

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

प्राकृत ग्रन्थाङ्क १०

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्यको अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और गद्यमय अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ. हीरालाल जैन,
एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये,
एम० ए०, डी० लिट्०



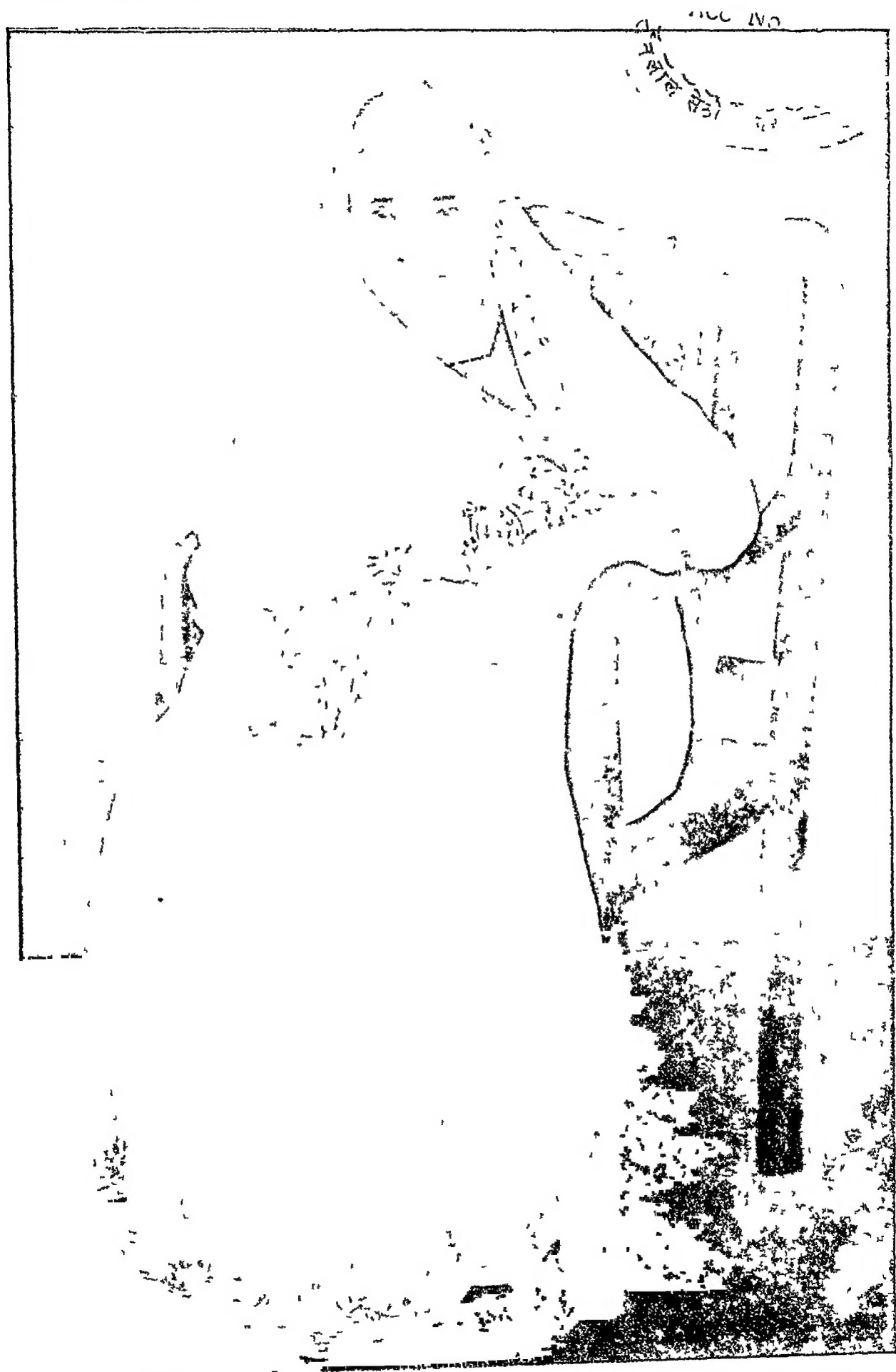
प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक—बाबूलाल जैन फागुल, सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनाद्व
फाल्गुन कृष्ण ६
वीर नि० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सन् १९४७



स्वर्गीय मूर्तिदेवी, मातेव्वरी साहू शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ
PRAKRIT GRNTHA, No 10

PAN̄CASANGRAHA

SANSKRIT TĪKĀ, PRĀKRIT VRITTI AND
HINDI TRANSLATION



EDITOR

Pandit **HIRALAL JAIN** Siddhantashastrī

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA, KĀSHĪ

First Edition }
1100 Copies }

BHĀDRAPAD, VIRA SAMVAT 2487
V. S. 2017
AUGUST 1960

{ Price
Rs. 15/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA Kāshi

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

BHĀRATĪYA JNĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ
JAIN GRANTHAMĀLĀ

PRAKRIT GRANTHA No. 10

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL,
PAURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRANSHA, HINDI,
KANNADA, TAMIL ETC, WILL BE PUBLISHED IN
THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT
SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL ALSO BE PUBLISHED

General Editors

Dr Hiralal Jain, M A , D Litt

Dr. A. N. Upadhye, M. A , D. Litt.

Publisher

**Seoy, Bharatiya Jnanapitha,
Durgakund Road, Varanasi**

Founded on
Phalguna krishna 9.
Vira Sam. 2470

All Rights Reserved

Vikrama Samvat 2000
18 Febr. 1944.

प्रधान सम्पादकोंका वक्तव्य

कर्म और कर्मफलका चिन्तन मानव जीवनकी एक प्राचीनतम प्रवृत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति यह देखना और जानना चाहता है कि वह जो कुछ करता है उसका क्या फल होता है। इसी अनुभवके आधारपर वह यह भी निश्चित करता है कि किस फलकी प्राप्तिके लिए उसे कौन-सा काम करना चाहिए। इस प्रकार मानवीय सम्यक्ताका समस्त ऐतिहासिक, सामाजिक व धार्मिक चिन्तन किसी-न-किसी प्रकार कर्म और कर्मफलको अपना विषय बनाता चला आ रहा है।

कर्म व कर्मफल सम्बन्धी चिन्तनकी दृष्टिसे ससारके समस्त दर्शनोको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक वे दर्शन हैं जो कर्मफल सम्बन्धी कारण-कार्य परम्पराको इस जीवन-भर तक चलनेवाली ही मानते हैं। वे यह विश्वास नहीं करते कि इस देहके विनष्ट हो जानेपर उसके कार्योंकी कोई परम्परा आगे चलती है। ऐसी मान्यता रखनेवाले दर्शनोको भौतिकवादी कहा जाता है, क्योंकि उनके अनुसार जीवन सम्बन्धी समस्त प्रवृत्तियाँ पञ्चभूतोंके मेलसे प्राणीके गर्भ या जन्म-कालसे प्रारम्भ होती हैं और आयुके अन्तमें शरीरके विनष्ट होकर पञ्चभूतोंमें मिल जानेपर उसकी समस्त प्रवृत्तियोंका अवसान हो जाता है।

इसके विपरीत दूसरे प्रकारके वे दर्शन हैं जो मानते हैं कि पञ्चभूतात्मक शरीरके भीतर एक अन्य तत्त्व, जीव व आत्मा, विद्यमान है जो अनादि और अनन्त है। उसकी अनादि-कालीन सासारिक यात्राके बीच किसी विशेष भौतिक शरीरको धारण करना और उसे त्यागना एक अवान्तर घटनामात्र है। आत्मा ही अपने भौतिक शरीरके साधनसे नाना प्रकारकी मानसिक, वाचिक व कायिक क्रियाओं द्वारा नित्य नये संस्कार उत्पन्न करता, उसके फलोंको भोगता और उन्हींके अनुसार एक योनिको छोड़ दूसरी योनिमें प्रवेश करता रहता है, जब तक कि वह विशेष क्रियाओं द्वारा अपनेको शुद्ध कर इस जन्म-मरण रूप ससारसे मुक्त होकर सिद्ध नहीं हो जाता। ऐसी ही मुक्ति व सिद्धि प्राप्त करना मानव-जीवनका परम उद्देश्य होना चाहिए और इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए आचार्योंने धर्मका उपदेश दिया है। इस प्रकारकी मान्यताओंको स्वीकार करने-वाले दर्शन अध्यात्मवादी कहलाते हैं।

जैन-दर्शन अध्यात्मवादी है और कर्म-सिद्धान्त उसका प्राण है। जैन कर्म-सिद्धान्तमें यह चिन्तन बड़ी गम्भीरता, सूक्ष्मता और विस्तारसे किया गया है कि विश्वके मूल तत्त्व क्या है और उनमें किस प्रकारके विपरिवर्तनों द्वारा प्रकृति और जीवनके नाना रूपोंकी विचित्रता उत्पन्न होती है। जैन मान्यतानुसार विश्वके मूल तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव अथवा चेतन और जड। निर्जीव अवस्थामें पृथ्वी, जल, अग्नि व वायु ये सब एक ही जड तत्त्वके रूपान्तर हैं, जिसे जैन-दर्शनमें पुद्गल कहा गया है। आकाश और काल भी जड तत्त्व हैं, किन्तु वे उपर्युक्त पृथ्वी आदिके समान मूर्तिमान् नहीं अमूर्त हैं। जीव व आत्मा इन सबसे पृथक् तत्त्व हैं जिसका लक्षण है चेतना। वह अपनी सत्ताका भी अनुभव करता है और अपने आस-पासके पर पदार्थोंका भी ज्ञान रखता है। उसकी इन्हीं दो वृत्तियोंको जैन-सिद्धान्तमें दर्शन और ज्ञानरूप उपयोग कहा गया है। दैहिकावस्थामें यह जीव अपनी रागद्वेषात्मक मन-वचन-कायकी प्रवृत्तियों द्वारा सूक्ष्मतम पुद्गल परमाणुओंको ग्रहण करता है और उनके द्वारा नाना प्रकारके आभ्यन्तर संस्कारोंको उत्पन्न करता है। जिन सूक्ष्म परमाणुओंको जीव ग्रहण करता है उन्हें ही जैन सिद्धान्तमें कर्म कहा गया है। उनके आत्म-प्रदेशोंमें आ मिलनेकी प्रक्रियाका नाम आस्रव है, और इस मेलके द्वारा जो शक्तियाँ व आत्म-स्वरूपकी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं उनका नाम बन्ध है। कर्म-बन्धकी इसी प्रक्रियाको विधिवत् समझना जैन कर्म-सिद्धान्तका विषय है।

जैन-साहित्यमें कर्म-सिद्धान्तका सबसे प्राचीन प्रतिपादन पूर्वोक्त किया गया था। जैन-धर्मके अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरने जो उपदेश दिया उसको उनके गणधरो व साक्षात् शिष्योंने बारह अंगोमें विभक्त किया। इन्हें ही द्वादशांग श्रुत या जैनागम कहा जाता है। बारहवें श्रुतांगका नाम दृष्टिवाद है और उसीके भीतर विद्यमान चौदह खण्डोका नाम 'पूर्व' है। वे पूर्व इस कारण कहलाये कि भगवान् महावीरने उन्हीका सर्वप्रथम उपदेश दिया था। नाना उल्लेखोपरसे यह भी अनुमान किया जाता है कि उनमें भगवान् महावीरसे भी पूर्वके तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तोका समावेश किया गया था, और इसीलिए वे पूर्व कहलाये। दुर्भाग्यसे वे पूर्व नामक ग्रन्थ कालक्रमसे विनष्ट हो गये। तथापि जैन-समाजके दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दोनों सम्प्रदाय इस सम्बन्धमें एकमत हैं कि उक्त १४ पूर्वोंमें दूसरा पूर्व आग्रायणीय नामक था और उसीके भीतर कर्म-सिद्धान्तका सूक्ष्म विवेचन किया गया था। उसीके आधारसे पश्चात्कालमें दिगम्बर सम्प्रदायके क्रमशः षट्खण्डागम व उनकी धवला टीका, कपायप्राभूत और उसकी चूर्णि व जयधवला टीका, गोम्मटसार व उसकी टीकाएँ तथा प्राकृत व संस्कृत पञ्चसंग्रह नामक ग्रन्थोंकी रचना हुई, तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी कर्मप्रकृति, पञ्चसंग्रह तथा उनके कर्म-ग्रन्थों का निर्माण हुआ।

प्रस्तुत पञ्चसंग्रह नामक ग्रन्थ कर्म-सिद्धान्तकी उक्त दिगम्बर परम्पराकी एक विशिष्ट रचना है, जो हाल ही प्रकाशमें आई है। उसके पाँच प्रकरणों के नाम हैं—जीवसमास, प्रकृति-समुत्कीर्तन, कर्मस्तव, शतक और सत्तरी। इनमेंसे प्रथम तीन अधिकारों के नाम तो उनके विषयको सूचित करनेवाले हैं, किन्तु शतक और सत्तरी विषयको नहीं, किन्तु विषयको प्रतिपादन करनेवाली मूल सौ और सत्तर गाथाओंको देखकर रख दिये गये हैं। यथार्थतः ये नाम मूल ग्रन्थमें पाये भी नहीं जाते। शतककी प्रथम मूलगाथामें कहा गया है कि यह वन्ध-समास प्रकरण संक्षेप रूपसे कर्मप्रवाद नामक श्रुतसागरका निस्त्यन्दमात्र वर्णन किया गया है। इसी प्रकार सत्तरीकी प्रथम मूलगाथामें कर्तनि कहा है कि मैं यहाँ वन्धोदय व सत्त्व प्रकृति-स्थानोंको दृष्टिवादके निस्त्यन्द रूप संक्षेपसे कहता हूँ तथा ७१वीं मूलगाथामें कहा है कि मैंने उक्त विषयका प्रतिपादन उस दृष्टिवादके आधारसे किया है जो दुर्गमनीय, निपुण, परमार्थ, सचिर और बहुभङ्गी युक्त है।

श्वेताम्बर पञ्चसंग्रहमें भी अन्तिम दो प्रकरणों के नाम ये ही शतक और सत्तरी पाये जाते हैं। उसके प्रथम तीन प्रकरणों के नाम सत्त्वकर्मप्राभूत, कर्मप्रकृति और कपायप्राभूत ध्यान देने योग्य हैं। दिगम्बर परम्परामें कपायप्राभूत गुणधर आचार्यकृत गाथात्मक रचना है और उसमें रागद्वेषात्मक वन्धहेतुओं का ही प्ररूपण किया गया है। षट्खण्डागमकी धवला टीकाके अनुसार दृष्टिवादके द्वितीय पूर्व आग्रायणीयके पाँचवें अधिकारका नाम च्यवनलब्धि था और उसके २० पाहुडोमेंसे चतुर्थ पाहुडका नाम था कर्म-प्रकृति। इसी कर्म-प्रकृति पाहुडके अन्तर्गत कृति, वेदना आदि २४ अधिकार थे जिनका संक्षेप परिचय षट्खण्डागम व उसकी धवला टीकामें कराया गया है और उसे संतकम्मपाहुड भी कहा गया है। इस प्रकार जहाँ तक कर्म-सिद्धान्तका सम्बन्ध है, न केवल विषयकी दृष्टिसे किन्तु अपने प्राचीनतम ग्रन्थोंके नामों तकमें दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायोंके बीच कोई विशेष भेद नहीं पाया जाता।

प्रस्तुत पञ्चसंग्रहके पाँचों अधिकारोंमें मूल गाथाओंकी संख्या ४४५ तथा भाष्यगाथाओंकी संख्या ८६४ कुल १३०९ दिखाई देती है। प्रथम दो अधिकारोंमें भाष्यगाथाएँ नहीं हैं, तथा दूसरे प्रकरण प्रकृति-समुत्कीर्तनमें गाथाएँ केवल १० ही हैं, किन्तु कर्म प्रकृतियोंको गिनानेवाला बहुत-सा अंश प्राकृत गद्यमें है, जो षट्खण्डागमके प्रथम खंड जीवद्वारणकी प्रकृति-समुत्कीर्तन नामक प्रथम चूलिकासे प्रायः जैसा-तैसा उद्धृत किया गया है और अधिकारका नाम भी वही है। समस्त रचना गोम्मटसारसे भी खूब मेल खाती है। गोम्मटसारका भी दूसरा नाम पञ्चसंग्रह है। वहाँ भी जीवकाण्डकी प्रथम गाथामें 'जीवस्य परूषण वोच्छ' रूपसे अधिकारके विषयका निर्देश किया गया है जो इस संग्रहमें भी जैसाका तैसा पाया जाता है। उसी प्रकार कर्मकाण्डके आदिमें 'पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छ' रूपसे जैसी अधिकारकी सूचना की गई है ठीक वैसी ही यहाँपर पाई जाती है। गोम्मटसारका तीसरा अधिकार 'बंधुदयसत्तजुत्त ओघादेसे धवं वोच्छ' इस

प्रकार कर्मस्तव अधिकारकी सूचनासे प्रारम्भ होता है और यहाँ 'बधोदयसंतजुय वोच्छामि थव णिसामेह' इस प्रतिज्ञा वाक्यके साथ। चतुर्थ अधिकार कर्मकाण्डकी ७८५ वीं गाथा में 'पयद्दीणं पच्चयं वोच्छ' के प्रतिज्ञा-वाक्यसे प्रारम्भ होता है, और यहाँ 'ज पच्चइओ बधो हवइ'। पाँचवाँ प्रकरण दोनों में उक्त प्रकार व्यवस्थित रीतिसे मेल नहीं खाता। गोम्मटसारकी कुल गाथा सख्या १७०५ है, जिनमेंकी बहुत-सी, विशेषतः प्रस्तुत पञ्चसग्रहके आदिके दो-तीन भागों में क्रमबद्ध जैसीकी तैसी पाई जाती है। यही कारण है कि इसके संस्कृत टीकाकार सुमतिकीर्तिने अपनी पुष्पिकाओं में इसे गोम्मटसार व लघुगोम्मटसार सिद्धांतके नामसे उल्लिखित किया है। जो भी हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गोम्मटसार और प्रस्तुत पञ्चसग्रहमें असाधारण मेल है। बीस प्ररूपणाओ द्वारा जीव समास निरूपण इन दोनों में समान है।

गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धांत-चक्रवर्ती और उसका रचना-काल १०वीं शतीके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु प्रस्तुत पञ्चसग्रहके कर्ता और उनके रचनाकालका कोई निश्चय नहीं पाया जाता। प्रस्तुत ग्रंथकी भूमिकामें सम्पादकने कल्पना की है कि इसकी एक गाथा धवला टीकामें भी पाई जाती है, इसलिए इसकी रचना उससे पूर्वकालकी होनी चाहिए, तथा कर्मप्रकृतिके कर्ता शिवशर्म ही श्वेताम्बर पञ्चसंग्रह अतर्गत शतकके रचयिता भी माने जाते हैं, अतः उसका रचनाकाल इसकी पूर्वाविधि कहा जा सकता है, और इस प्रकार इसकी रचना विक्रमकी ५वीं और ८वीं शतीके मध्यवर्ती कालमें हुई है। किन्तु पूर्वोक्त समस्त ग्रन्थ-परम्पराके प्रकाशमें यह कल्पना निर्णायक नहीं मानी जा सकती। विषयकी दृष्टिसे सम्पादकने हमारा ध्यान इसकी कुछ गाथाओंकी ओर आकर्षित किया है। इसके प्रथम अधिकारकी गाथा १०२-१०४ में द्रव्यवेदोकी विपरीतताका उल्लेख किया गया है, जबकि धवलाकारने स्पष्ट कहा है कि वेद अन्तर्मुहूर्तक नहीं होते, क्योंकि जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त एक ही वेदका उदय पाया जाता है। यही बात अमितगतिने अपने संस्कृत पञ्चसग्रहकी गाथा १९१ में कही है। उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थके प्रथम प्रकरण १९३ की गाथा में सम्यग्दृष्टि जीवकी छह अधस्तन पृथिवियो, ज्योतिषी, वाणव्यतर और भवनवासी देवो तथा समस्त स्त्री पर्यायोंके अतिरिक्त बारह मिथ्यावादोमें भी उत्पत्तिका निषेध किया गया है। किन्तु धवला और गोम्मटसारमें एक ही प्रकारसे उक्त निरूपण किया गया है जिसमें बारह मिथ्यावादका कोई उल्लेख नहीं है। यथार्थतः ये दोनों प्रकरण उक्त रचनाको धवलासे पूर्वकी नहीं, किन्तु उससे पश्चात्कालीन इंगित कर रहे हैं। धवलाकारने अपने पूर्ववर्ती सिद्धान्त ग्रन्थोका युत्र-तत्र स्पष्ट उल्लेख किया है। यदि यह पञ्चसग्रह उनके सम्मुख होता तो कोई कारण नहीं कि वे उसका उल्लेख न करते, विशेषतः बीस प्ररूपणाओंके प्रसंगमें जहाँ उन्हें शका-समाधान रूपमें कहना पड़ा है कि उनके निर्देश सूत्रोंमें नहीं हैं। अन्य किन्हीं रचनाओंमें भी इस ग्रन्थका उल्लेख प्रकाशमें नहीं आया। संस्कृत पञ्चसग्रहके कर्ता अमितगतिके सम्मुख कोई पूर्व-रचित पञ्चसग्रह अवश्य था, जिसके अन्तिम दो प्रकरणोंके नाम शतक और सत्तरी थे। यह बात माने बिना उनके द्वारा स्वीकार किये गये इन नामोंकी सार्थकता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि वहाँ स्वयं इन प्रकरणोंमें सौ और सत्तर पद्योंसे अधिक पाये जाते हैं। सम्भव है प्रस्तुत पञ्चसग्रहका मूलगाथा भाग ही उनके सम्मुख रहा हो। यदि यह बात ठीक हो तो इसके मूलरचनाकी उत्तरावधि वि० स० १०७३ सिद्ध होती है, क्योंकि यही उस संस्कृत पञ्चसग्रहकी रचनाका काल है। किन्तु इन दोनों रचनाओंमें जो अनेक भेद पाये जाते हैं, जिनका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थके सम्पादकने अपनी भूमिकामें किया है, उन्हें देखते हुए यह बात भी सर्वथा सन्देहके परे नहीं कही जा सकती। इस प्रकार इस रचनाका काल-निर्णय अभी भी विशेष अध्ययनकी अपेक्षा रखता है। हो सकता है कि मूलतः ये पाँचो प्रकरण पृथक् स्वतन्त्र गाथा-संग्रह थे, जिन्हें एकत्र कर व अन्य कुछ गाथाएँ जोड़कर भाष्यकारने पञ्चसग्रह नामसे प्रगट किया हो। इस सम्बन्धमें यह भी विचारणीय है कि जब पूर्वी व पाहुडोकी परम्परामें षट्खण्डागम व धवला टीकाके काल तक कर्मसिद्धान्तका विवेचन बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्ध विधान इन चार अधिकारों द्वारा ही किया जाता रहा, तब यह पाँच अधिकारोंकी परम्परा कब कहाँसे चल पड़ी।

पञ्चसंग्रहका यह सर्व-प्रथम प्रकाशन है और उसमें उन समस्त साहित्यका समावेश कर दिया गया है जो मूल संग्रहके आश्रयने निर्मित हुआ है। इसमें मूल और भाष्य गायार्थोंके अतिरिक्त १७वीं शतीमें मुमतिकीर्ति द्वारा रचित टीका भी है, एक प्राकृत वृत्ति भी है तथा श्रीपालमुत्त ढडुकृत मस्कृत पञ्चमग्रह भी है। मूलका पाठ हिन्दी अनुवाद, पादटिप्पण तथा गायानुक्रमणी व भूमिका परिश्रमसे तैयार किये गये हैं, जिनके लिए हम इसके सम्पादक पं० हीरालाल शास्त्रीको हृदयसे बन्धुवाद देते हैं। इस प्रकाशन-के लिए ज्ञानपीठके अधिकारी अभिनन्दनीय हैं। इन ग्रन्थके द्वारा जैन कर्म-मिथ्यान्तके अध्ययनको और भी अधिक गति मिलेगी, ऐसी आशा है।

शोलापुर }
१९-६-६० }

हीरालाल जैन,
आ० ने० उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

सम्पादकीय वक्तव्य

पन्द्रह वर्षों से भी अधिक हुए, जब मुझे प्राकृत पञ्चसग्रहकी मूल प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन व्यावरसे प्राप्त हुई और तभी मैंने उसकी प्रतिलिपि कर ली। उसके पश्चात् अन्य कार्योंमें व्यस्त रहनेसे इच्छा रहनेपर भी मैं उसका अनुवाद प्रारम्भ नहीं कर सका। दिनाङ्क ८-३-५३ को अनुवाद करना प्रारम्भ किया, पर वह भी लगातार चालू नहीं रह सका और बीच-बीचमें व्यवधान पड़ता रहा। अन्तमें सन् १९५७ के दिमम्बरमें वह पूरा किया जा सका और उसके पश्चात् वह प्रकाशनार्थ भारतीय ज्ञानपीठ काशी-को सौंप दिया गया। सम्पादक-मण्डलकी स्वीकृति मिल जानेपर ग्रन्थ प्रेसमें दे दिया गया। इसी समय पञ्च-सग्रहकी अधूरी सस्कृत टीका हस्तगत हुई और उसके प्रकाशनार्थ भी सम्पादक-मण्डलको लिखा गया। उसके भी प्रकाशनकी स्वीकृति मिलनेपर मूल और अनुवादके साथ नवमें फार्मसे उसका छपना प्रारम्भ कर दिया गया। इसी बीच प्राकृतवृत्तिकी प्रति आमेरके भण्डारसे और ङङ्गाकृत सस्कृत पञ्चसग्रहकी प्रति ईडरके भण्डारसे प्राप्त हुई। दोनोंकी उपयोगिता समझकर उनके भी प्रकाशनार्थ सम्पादक-मण्डलने स्वीकृति दे दी और अनुवादके अन्तमें दोनोंको मुद्रित करनेका निर्णय किया गया। फलस्वरूप १८ मासमें यह सम्पूर्ण ग्रन्थ मुद्रित हो सका है। इस प्रकार पूरे पन्द्रह वर्षोंके पश्चात् पञ्चसग्रहके सानुवाद-प्रकाशनकी भावना पूर्ण हुई। इसके लिए मैं भारतीय ज्ञानपीठके मस्थापक, सचालक और सम्पादक-मण्डलका आभारी हूँ।

ग्रन्थके सम्पादनमें पहले मूलगाथा दी गई है, उसके नीचे सस्कृत टीका (जहाँसे वह उपलब्ध हुई) और उसके नीचे हिन्दी अनुवाद दिया गया है। अमृतगतिकृत मुद्रित मूल-सस्कृत पञ्चमग्रहके जो श्लोक मूल गाथाके छायानुवाद रूप हैं, उन्हें गाथारम्भमें रोमन अङ्कोंके द्वारा टिप्पण-अङ्क देकर टिप्पणीमें सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। दूसरे ग्रन्थोंमें पायी जानेवाली या समता रखनेवाली गाथाओंके ऊपर हिन्दी अङ्कोंमें टिप्पण-अङ्क देकर उसके नीचे टिप्पणीमें स्थान दिया गया है। तदनन्तर प्रतियोंमें प्राप्त होनेवाले पाठ-भेदोंको (+) इत्यादि प्रकारके चिह्न-विशेष देकर टिप्पणीमें स्थान दिया गया है। इन तीनों प्रकारकी टिप्पणियोंमें से प्रथम प्रकारकी टिप्पणीको ग्रन्थारम्भसे लेकर ग्रन्थ-समाप्ति तक चालू रहनेके कारण प्रथम स्थान देना उचित समझा गया है।

सस्कृत टीका-गत जो पद्य जिस ग्रन्थके रहे हैं, उनकी सूचना टिप्पणीमें यथास्थान कर दी गई है। ङङ्गाकृत सस्कृत पञ्चसग्रहमें जो टिप्पणियाँ दी गई हैं, वे सब आदर्श प्रतिके हासियेपर लिखी हुई प्राप्त हुई हैं। प्रतिकी प्राचीनता, लेखनकी समता और अर्थ-बोधकी सरलता आदि कई बातें ऐसी हैं जो हमें यह कहनेके लिए प्रेरित करती हैं कि इन टिप्पणियोंको स्वयं ग्रन्थकार श्री ङङ्गाने ही लिखा है।

पञ्चमग्रह जैसे प्राचीन एवं दुर्गम ग्रन्थके अनुवादका काम कितना कठिन रहा है, यह उसके अभ्यासियोंसे छिपा न रहेगा। मैंने शक्ति-भर पूरी सावधानी रखी है, फिर भी यदि कहीं कोई चूक रह गई हो, तो विद्वान् पाठकोसे निवेदन है कि वे उसका सुधार कर लें और उसमें मुझे सूचित करें।

किसी भी ग्रन्थकी प्रस्तावना लिखनेका कार्य अनुवादसे अधिक कठिन होता है। फिर जिसके कर्त्ता आदिका पता न हो, और दि० श्वे० दोनों सम्प्रदायोंमें मान्य रहा हो, तथा जिसपर दोनों सम्प्रदायके आचार्योंने स्वतन्त्र चूर्ण और टीका-टिप्पण आदि लिखे हो, उसकी प्रस्तावना लिखनेका कार्य तो और भी अधिक गुरुतर एवं गमय-साध्य होता है। उसके लिए पर्याप्त समय और पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री अपेक्षित है। मेरे लिए समय और साधन दोनोंकी कमी रही है, इसलिए चाहते हुए भी मैं उन सब बातोंपर प्रकाश नहीं डाल सका हूँ, जिनपर कि उसकी आवश्यकता थी। फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण बातोंकी मैंने प्रस्तावनामें चर्चा की है और आशा करता हूँ कि इस विषयके अधिकारी विद्वान् अपेक्षित सभी मुख्य बातोंपर अनुसन्धान करेंगे और उसे

पाठकोके सामने रखेंगे । खास तौरसे वे 'पञ्चसंग्रहकार कौन है, उनका समय क्या रहा,' इस महत्वपूर्ण प्रश्नके समाधानके लिए अपनी अनुसन्धान-प्रवृत्तिको आगे बढ़ावें, ऐसा मेरा नम्र निवेदन है । प्रस्तावनाके लिए ग्रन्थको और आगे रोकना मैंने उचित नहीं समझा और इसलिए जैसी भी सम्भव हो सकी है, वैसी लिखकर उसे पाठकोके सम्मुख उपस्थित करना ही उचित समझा है ।

प्रतियोकी प्राप्तिके लिए मैं श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन व्यावर, दि० जैन पचायती मन्दिर, खजूर मस्जिद दिल्ली, दि० जैनशास्त्र-भण्डार ईडर और श्रीमहावीर-शास्त्र-भण्डार जयपुरके सचालको और व्यवस्थापकोका आभारी हूँ, जिन्होंने कि अपने-अपने भण्डारोसे अलम्य प्राचीन प्रतियाँ प्रस्तुत सस्करणके लिए भेजी हैं । प० परमानन्दजी शास्त्रीने भी अपनी हस्तलिखित मूल प्रति और प्राकृतवृत्ति मिलानके लिए दी, इसलिए मैं उनका भी आभारी हूँ ।

ग्रन्थके अधिकार-विभाजनमें श्री प० फैलाशचन्द्रजी सिद्धान्त-शास्त्रीने समय-समयपर समुचित परामर्श दिया और संस्कृत टीकाके भी साथमें प्रकाशनार्थ प्रेरणा दी, इसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ । ग्रन्थगत अनेक सदिग्ध पाठोंके निर्णय करनेमें तथा अनुवाद-सम्बन्धी कितनी ही गुत्थियोंके सुलझानेमें श्री० प० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीका सदैवकी भाँति पूर्ण साहाय्य प्राप्त हुआ है, इसलिए मैं उनका भी बहुत आभारी हूँ । सिद्धान्त ग्रन्थोंके गहरे अभ्यासी श्री० ब्र० रतनचन्द्रजी नेमिचन्द्रजी सहारनपुरसे भी समय-समयपर समुचित सूचनाएँ मिलती रही हैं, और श्री० प० महादेवजी चतुर्वेदी, व्याकरणाचार्य काशीसे अनेक सदिग्ध पाठोंके सशोधनमें भरपूर सहयोग मिला है, एतदर्थ मैं उनका भी आभारी हूँ ।

ग्रन्थ-मुद्रणके समय प्रूफ-सशोधनार्थ मुझे भारतीय ज्ञानपीठ काशीमें तीन बार लम्बे समय तक ठहरना पड़ा । उस समय मेरी सुख-सुविधा एवं मुद्रण आदिकी समुचित व्यवस्था करनेमें ज्ञानपीठके व्यवस्थापक और उनके स्टाफके समस्त सदस्योका जो प्रेममय व्यवहार रहा है, उसके लिए मैं किन शब्दोंमें अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ । सन्मति-मुद्रणालयके कम्पोजीटर्स और कर्मचारियों तकका मेरे साथ मधुर व्यवहार रहा है, इसके लिए मैं उन सबका आभारी हूँ ।

श्रावक-शिरोमणि श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा सस्थापित एवं सौ० श्री रमारानी द्वारा सचालित यह भारतीय ज्ञानपीठ अपने पवित्र सदुद्देश्योंकी पूर्तिमें उत्तरोत्तर अग्रेसर रहे, यही अन्तिम मङ्गल-कामना है ।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी }
२९-४-६०

—हीरालाल शास्त्री
सादरमल (शांसी)

प्रस्तावना

मूलग्रन्थ प्रति-परिचय

आ यह प्रति श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन व्यावरकी है। प्राकृत पञ्चसग्रहकी जितनी भी प्रतियाँ हमें मिल सकी, उनमें यह सबसे प्राचीन है और अत्यन्त शुद्ध भी है। हमने इसीको आधार बनाकर पञ्चसग्रहकी प्रतिलिपि की, अतः यह हमारे लिए आदर्श-प्रति रही है।

इस आदर्श-प्रतिका आकार १३ × ५ इंच है। पत्र-संख्या ७५ है। पत्रके प्रत्येक पृष्ठपर पक्ति-संख्या १० है और प्रत्येक पक्तिमें अक्षर-संख्या लगभग ५० के है। इस प्रकार पञ्चसग्रहकी समस्त गाथाओं, अक-सदृष्टियों और गद्यांशोंका श्लोक-प्रमाण लगभग ढाई हजार है।

प्रतिके प्रथम पत्रके ऊपरी पृष्ठपर 'पञ्चसग्रह ग्रन्थ, दिगम्बर जैन मन्दिर भोजगढ, राज सवाई जैपुर' लिखा है। प्रतिके अन्तमें लेखक-प्रशस्ति इस प्रकार पाई जाती है—

“संवत् १५३७ वर्षे आपाढ सुदि ५ श्रीमूलसधे नद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दा-चार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्ददेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीशुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवास्तच्छिष्यमुनिश्री-भुवनकीर्तिस्तदाम्नाये खडेलवालान्वये राउकागोत्रे साधु थेल्हा तद्धार्या थेल्हसिरी, तत्पुत्रास्त्रयो धीरा दान-पूजातत्परा साधु नापा, द्वितीय माणा, तृतीय पेता। नापा-भार्या गोगल, तत्पुत्र दासा। एतेषा मध्ये साधु नापाख्येन इदं ग्रन्थं लिखाप्यं वाई गूजरिजोगु दत्त विद्वद्भिः पठ्यमानं चिरं नदतु ॥०॥श्री॥”

उक्त प्रशस्तिसे सिद्ध है कि यह प्रति ४८० वर्ष प्राचीन है। इसे खडेलवाल-वंशीय एव रावका-गोत्रीय नापासाहुने लिखवाकर किसी ब्रह्मचारिणी वाई गूजरिजोगुके पठनार्थ प्रदान किया है। नापासाहुने अपने जन्मसे किम नगर या ग्रामको पवित्र किया, इस बातका पता उक्त प्रशस्तिसे नहीं लगता है। संभव है कि प्रशस्तिमें दी गई भट्टारक-परम्पराकी विशेष छान-बीन करनेपर नापासाहुकी जन्म-भूमि आदिका कुछ पता लग जावे।

व यह प्रति भी श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवनकी है। उपलब्ध प्रतियोंमें प्राचीनताकी दृष्टिसे इसका दूसरा स्थान है और यह भी पूर्व प्रतिके समान शुद्ध है। हाँ, प्राकृत भाषा-सम्बन्धी अनेक पाठ-भेद इसमें पाये जाते हैं, जिन्हें हमने यथास्थान टिप्पणमें व सकेतके साथ दिया है। दोनों प्रतियोंमें एक मौलिक अन्तर है। शतक-प्रकरणकी गाथा न० ६ आदर्शप्रतिमें नहीं है, जबकि वह इस प्रतिमें तथा इसके अतिरिक्त उपलब्ध अन्य अनेक प्रतियोंमें पाई जाती है।

इस प्रतिका आकार लेना हम भूल गये। पत्र-संख्या १०६ है। पत्रके प्रत्येक पृष्ठपर पक्ति-संख्या १० है और प्रत्येक पक्तिमें अक्षर-संख्या ३४-३५ के लगभग है। इस प्रतिमें ग्रन्थ-समाप्तिकी सूचना करते हुए निम्न गद्य-सन्दर्भ भी पाया जाता है—

“इति पञ्चसग्रहः समाप्तः ॥ श्री ॥ * ॥ वासपुधत्त त्रयाणामुपरि नवाना मध्य ४-५-६-७-८-९ ॥ श्री क्वचित्समाप्ती चेति दृश्यते ॥७॥८॥ अतः कोडाकोडिसज्ञा सागरोपमैककोट्युपरि कोटोकोटोमध्य। अन्तः-कोडाकोडिसज्ञा गोमटसारटीकाया समयूणकोडाकोडिपुहुदि समयाहियकोडि ति ॥”

इस गद्य-सन्दर्भमें किसी पाठकने तीन बातोंकी जानकारी दी है—पहली बातमें वर्षपृथक्त्वका प्रमाण बतलाया है कि तीन वर्षसे ऊपर और नौ वर्षसे नीचेके मध्यवर्ती कालको वर्षपृथक्त्व कहते हैं। दूसरी बात ‘इति’ शब्दके सम्बन्धमें बतलाई है कि इति शब्दका प्रयोग कहीं ‘समाप्ति’के अर्थमें भी देखा जाता है। तीसरी बात जो बतलाई गई है, वह एक सैद्धान्तिक मत-भेदको व्यक्त करती है। एक मतके अनुसार एक सागरोपम कोटि वर्षसे ऊपर और एक सागरोपम कोटाकोटि वर्षसे नीचेके कालको ‘अन्तःकोडाकोडी’ कहते हैं। किन्तु गोमटसारकी टीकामें एक समयाधिक कोटिवर्षसे लेकर एक समय-कम कोटाकोटिवर्ष तकके कालको अन्त-कोडाकोडी कहा गया है।

इसके पश्चात् लेखकने अपनी प्रशस्ति इस प्रकार दी है—

“॥श्री॥ सवत् १५४८ वर्षे आसो सुदि ३ शनौ सागवाडाशुभस्थाने श्री आदिनाथ चैत्यालये श्री मूलसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री विजयकीर्ति तच्छिष्य आ० श्री अभयचन्द्रदेवा तच्छिष्य मु० महीभूषणेन कर्मक्षयार्थं स्वयमेव लिखित ॥छ॥ शुभ भवतु ॥”

॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥

इस प्रशस्तिमें लेखकने प्रायः सभी आवश्यक बातोंकी जानकारी दे दी है। तदनुसार यह प्रति आजसे ४६९ वर्ष पूर्वकी लिखी हुई है। इसके लेखक मुनि महीभूषणने सागवाडाके श्री आदिनाथ चैत्यालयमें बैठकर कर्म-क्षयके लिए स्वयं ही अपने हाथसे इसे लिखा है। इस दृष्टिसे इस प्रतिका महत्त्व बहुत अधिक है कि वह एक मुनिके हाथसे लिखी हुई है और उस समय—जब कि जीवराज पापडीलाल जैसे सम्पन्न गृहस्थ सहस्रो जैन मूर्तियोंके निर्माण और प्रतिष्ठापनमें लग रहे थे, तब एक साधु कर्म-सिद्धान्तके एक प्राचीन ग्रन्थको लिखकर कर्म-क्षयके लिए अपनी आत्म-साधनामें सलग्न थे। आज भी यह अनुकरणीय है।

उक्त प्रशस्तिके पश्चात् भिन्न वर्णकी स्याही और बारीक कलमसे लिखा है—

“मुनिश्रीरत्रिभूषणस्तच्छिष्य ब्रह्मगणजीष्णोरिद पुस्तक ॥”

तत्पश्चात् भिन्न कलमसे ‘ब्र० वच्छराज’ लिखा है। तदनन्तर इसके नीचे अन्य स्याही और अन्य कलमसे लिखा है—

“इद पुराण आचार्य श्री रामकीर्तिको छै”

ऊपरके इन उल्लेखोंसे पता चलता है कि मुनि महीभूषणके पश्चात् उक्त प्रति मुनि श्री रत्रिभूषणके शिष्य ब्रह्मगण जिष्णुके पास रही है। तदनन्तर ब्र० वच्छराजजीके अधिकारमें रही है, जो कि अपना नाम तक भी शुद्ध नहीं लिख सकते थे। उनके पश्चात् यह प्रति ‘श्री रामकीर्ति’ के पास रही है। उनके ज्ञान और भावनाका अनुमान इस जरा-सी पक्तिसे ही हो जाता है कि वे पञ्चसंग्रह जैसे कर्म-सिद्धान्तके ग्रन्थको एक पुराण ही समझते हैं और इसपर अपना अधिकार बतलानेके लिए स्वयं ही अपने आपको “आचार्यश्री” बतलाते हुए “रामकीर्तिको छै” लिख रहे हैं। ये आचार्य नहीं, किन्तु कोई ऐसे भट्टारक प्रतीत होते हैं, जिन्हें उक्त पक्तिके प्रारम्भिक ‘इद’ पदका ‘अस्ति’ क्रियाके साथ सम्बन्ध जोड़ने और पद-विभक्तिको शुद्ध लिखने-का भी संस्कृत ज्ञान नहीं था।

उपरि-निर्दिष्ट दोनों प्रतियोंके अतिरिक्त हमें जयपुर-शास्त्र भण्डारकी दूसरी दो और प्रतियाँ भी श्री कस्तूरचन्द्रजी काशीवालकी कृपासे प्राप्त हुई, जो कि ऐलक सरस्वती भवनकी प्रतियोंके वादकी लिखी हुई है। इनमें प्रायः वे ही पाठ उपलब्ध हुए, जो कि ऊपरकी दोनों प्रतियोंमें पाये जाते हैं। किन्तु अपेक्षाकृत ये दोनों प्रतियाँ कुछ स्थलोपर अशुद्ध लिखी दृष्टि-गोचर हुई, अतएव उनके साथ प्रेस-कापीका मिलान करनेपर भी उनके पाठ-भेद देना हमने आवश्यक नहीं समझा और इसीलिए उन प्रतियोंका कोई परिचय भी नहीं दिया जा रहा है।

संस्कृत टीका प्रतिका परिचय

द यह प्रति श्रीदि० जैन पचायती मन्दिर खजूर मस्जिद दिल्लीके प्राचीन शास्त्र-भण्डारकी है। यद्यपि यह प्रति अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण और खण्डित है, तथापि उक्त शास्त्रभण्डारके सरक्षकोंने उसका जीर्णोद्धार करके उसे पढ़ने और प्रतिलिपि करनेके योग्य बना दिया है। वर्तमान प्रतिमें प्रारम्भके दो पत्र तथा १८१ और १९४ का पत्र तो विलकुल ही नहीं हैं, १८२ वाँ पत्र आधा है और २४-२५वाँ पत्र खण्डित एवं गलित है तथा बीचके कितने ही पत्रोंमें पानी लग जानेके कारण स्याही फैल गई है। इस प्रतिके अन्तमें पत्र-संख्या यद्यपि २०१ दी हुई है तथापि उसकी प्रतिलिपि करते समय ज्ञात हुआ कि प्रारम्भसे लेकर ५४वें पत्रके उत्तरार्धकी १३वीं पक्ति तक तो पञ्चसंग्रहकी केवल मूल गाथाएँ ही लिखी गई हैं, टीकाका प्रारम्भ तो इस पत्रके उत्तरार्धकी १३वीं पक्तिके ‘खीयति ॥३३॥ च्छ्वासा ४ प्रत्येकशरीर’से होता है। इस स्थलको देखते

हुए यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इस प्रतिके लेखकको भी प्रस्तुत टीका प्रारम्भसे नहीं प्राप्त हुई है, प्रत्युत मूल पञ्चसग्रह और उसकी संस्कृत टीकाकी खण्डित प्रतियाँ ही प्राप्त हुई हैं और लेखकने उसकी पूर्वापर छान-बीन किये बिना ही प्रतिलिपि करते हुए एक ही सिलसिलेसे पत्रोपर अङ्क-संख्या डाल दी है।

पत्र ५४के जिस स्थलसे टीकाका 'प्रत्येकशरीर' अंश प्रारम्भ होता है, वह यह सूचित करता है, कि इस प्रतिके लेखकके सामने प्रस्तुत टीकाका प्रारम्भिक अंश नहीं रहा है। गहरी छान-बीनके बाद ज्ञात हुआ कि टीकाका जो अंश उपलब्ध हो रहा है, वह पञ्चसग्रहके तीसरे कर्मस्तवकी ४० वीं गाथाके चतुर्थ चरणका टीकाश है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि पञ्चसग्रहके समग्र प्रथम, द्वितीय प्रकरणोंकी, तथा तृतीय प्रकरणके प्रारम्भसे लेकर ४० गाथाओंकी टीका अनुपलब्ध है। फिर भी यह उचित समझा गया कि जहाँसे भी टीका उपलब्ध है, वहाँसे ही मुद्रित कर देना चाहिए। अन्यथा कालान्तरमें यह अवशिष्ट अंश भी नष्ट हो जावेगा।

उपलब्ध प्रतिका आकार $८\frac{1}{2} \times ४\frac{1}{2}$ इंच है। पत्र-संख्या २०१ है। प्रत्येक पत्रमें पक्तिसं० पत्र ५५ तक १६ और आगे १५ है। प्रत्येक पक्तिमें अक्षर-संख्या ५०-५२ है। यदि प्रारम्भकी अप्राप्त टीकाके पत्रोंकी संख्या ५४ ही मान ली जाय तो प्रस्तुत टीका १० हजार श्लोक प्रमाण सिद्ध होती है। इसमेंसे यदि मूल ग्रन्थकी गाथाओंका लगभग दो हजार प्रमाण कम कर दिया जावे, तो टीका परिमाण आठ हजार श्लोक-प्रमाण ठहरता है। प्रस्तुत प्रतिके अन्तमें निम्न पुष्पिका पाई जाती है—

“स० १७११ वर्षे जाके १५७६ प्रवर्तमाने आश्विन सुदि ९ सोमवासरे श्रीपट्टणानगरे चतुर्मासि कृता। श्रेयोऽर्थ कल्याणमस्तु।”

प्रतिके इस लेखनकालसे ज्ञात होता है कि यह टीका-प्रति टीका-रचनाके ठीक ९१ वर्षके बाद लिखी गई है। यद्यपि लेखक या लिखानेवालेका इसमें कोई उल्लेख नहीं है तथापि 'चतुर्मासि' कृता पदसे यह अवश्य ज्ञात होता है कि किसी अच्छे ज्ञानी साधु, भट्टारक या ब्रह्मचारीने पटना नगरमें किये हुए चौमासेमें इसे लिखा है। इस प्रतिके अक्षर अत्यन्त सुन्दर हैं और प्रायः सभी सदृष्टियोंकी रेखाएँ लाल स्याहीसे खींची गई हैं।

इस टीका-प्रतिको देखते हुए ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस प्रतिके लिखे जानेके पश्चात् किसी विद्वान्ने उसे पढ़ा है और सशोधन भी किया है जो कि हासियेपर भिन्न स्याही और भिन्न कलमसे अंकित है।

प्राकृतवृत्ति-परिचय

संस्कृत-टीकाकी प्रशस्तिके पश्चात् परिशिष्ट रूपमें जो प्राकृत वृत्ति-सहित मूल पञ्चसग्रह मुद्रित (पृ० ५४७ई०) किया गया है, उसकी दो प्रतियाँ हमें उपलब्ध हुई—एक श्री कस्तूरचन्द्रजी काशलीवालकी कृपासे जयपुर शास्त्र-भण्डारकी और दूसरी प० परमानन्दजी शास्त्रीकी कृपासे—जिसपर कि ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बईकी मुहर लगी हुई है। इन दोनोंमें पहली बहुत प्राचीन है और दूसरी एक दम अर्वाचीन। वस्तुतः इसे नवीन ही कहना चाहिए, क्योंकि यह १५-२० वर्ष पूर्वकी ही लिखी हुई है और बहुत ही अशुद्ध है। इस प्रतिके लेखकने जिस प्राचीन प्रति परसे उसकी प्रतिलिपि की, वह सम्भवतः प्राचीन लिपिको ठीक पढ़ नहीं सका और इसीलिए उसकी प्रत्येक पक्ति अशुद्धियोंसे भरी हुई है।

जयपुर-शास्त्र-भण्डारकी जो प्रति प्राप्त हुई, उसके आधारपर ही प्राकृत-वृत्तिकी प्रेस कापी की गई है। प्रतिलिपि करते हुए हमें यह अनुभव हुआ कि जहाँ एक ओर वह प्रति उपरिनिर्दिष्ट समस्त प्रतियोंमें सर्वाधिक प्राचीन है, वहाँपर उसकी लिखावट भी अति दुर्लभ है। इसके लिखनेमें—खासकर नहीं पढ़े जा सकनेवाले सन्दिग्ध पाठोंके शुद्ध रूपकी कल्पना करनेमें हमें पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा है, तथापि कितने ही स्थल सदिग्ध ही रह गये और उनके स्थानपर या तो [] इस प्रकारके खड़े कोष्ठके भीतर कल्पित पाठ लिखा गया, अथवा (?) ऐसे गोल कोष्ठके भीतर प्रश्नवाचक चिह्न देकर छोड़ देना पड़ा। इस प्रतिका आकार $१२ \times ४\frac{1}{2}$ इंच है और पत्र संख्या ९८ है। वेष्टन न० १००४ है।

प्रतिके अन्तमें जो लेखक-प्रशस्ति पाई जाती है, वह इस प्रकार है—

“संवत् १५२६ वर्षे कांतिक सुदि ५ श्रीमूलसंघे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्रीपद्मनन्दिस्तत्पट्टे भ० श्रीशुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीजिनचन्द्रदेव भ० श्रीपद्मनन्दिसिद्ध (शिष्य) मु० मदनकीर्तिस्तच्छिष्य ब्र० नरसिंघ तस्योपदेशात् खण्डेलवालान्वये बाकुल्या वालगोत्रे सं पचाइण भार्या केलू तयो व्र जैता भार्या जैतथी तयोः पुत्र जिणदास सं० पचाइणाख्येन इदं शास्त्रं लिखापितम् ।”

इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि इस प्रतिको ब्र० नरसिंहके उपदेशसे खण्डेलवाल वंशीय और बाकुलीवाल-गोत्रीय संघी या संघपति पचाइणने लिखावाया ।

प्राकृतवृत्तिके पश्चात् (पृ० ६६३ ई०) श्रीडड्ढाकृत संस्कृत पञ्चसंग्रह मुद्रित किया गया है । इसकी एक मात्र प्रति ईडरके शास्त्र-भण्डारसे प्राप्त हुई है जिसका वेष्टन नं० २१ है । इसका आकार १२ × ५ इञ्च है । पत्र-संख्या ९५ है । प्रति-पृष्ठ पंक्ति-संख्या १० और प्रति-पंक्ति अक्षर-संख्या ३५-३६ है । प्रति साधारणतः शुद्ध है, किन्तु पडिमात्रा और गुजराती टाइपकी अक्षर-बनावट होनेसे पढ़नेमें दुर्गम है । कागज बाँसका और पतला है । प्रतिके अन्तमें लेखन-काल नहीं दिया है, तथापि वह लिखावट आदिकी दृष्टिसे, ३०० वर्षके लगभग प्राचीन अवश्य है ।

पञ्चसंग्रह-परिचय

समस्त जैन वाङ्मयमें पञ्चसंग्रहके नामसे उपलब्ध या उल्लिखित ग्रन्थोंकी तालिका इस प्रकार है—

(१) दि० प्राकृतपञ्चसंग्रह—उपलब्ध सर्व पञ्चसंग्रहोंमें यह सबसे प्राचीन दि० परम्पराका ग्रन्थ है । मूल प्रकरणोंके समान उनके संग्रह करनेवाले और उनपर भाष्य-गाथाएँ लिखनेवाले इस ग्रन्थकारका नाम और समय अभी तक अज्ञात है । पर इतना तो निश्चय पूर्वक कहा ही जा सकता है कि श्वेताम्बराचार्य श्री चन्द्रपिमहत्तरके द्वारा रचे गये पञ्चसंग्रहसे यह प्राचीन है । मूलप्रकरणोंके साथ इसकी गाथा-संख्या १३२४ है । गद्यभाग लगभग ५०० श्लोक प्रमाण है । यह प्रस्तुत ग्रन्थ पहली बार प्रकाशित हो रहा है ।

(२) श्वे० प्राकृत पञ्चसंग्रह—कर्मसिद्धान्तकी जिन मान्यताओंमें दिगम्बर-श्वेताम्बर आचार्योंका मतभेद रहा है, उनमेंसे श्वे० परम्पराके अनुसार मन्तव्योंको प्रकट करते हुए प्राचीन शतक आदि पाँच ग्रन्थोंका संक्षेप कर स्वतन्त्ररूपसे इस ग्रन्थकी रचना की गई है । इसमें शतक आदि मूलग्रन्थोंकी गाथाएँ नहीं हैं । समस्त गाथा-संख्या १००५ है । रचना कुछ विलप्ट होनेसे ग्रन्थकारने इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी लिखी है । जिसका प्रमाण आठ हजार श्लोक है । इसपर मलयगिरिकी संस्कृत टीका भी है । यह ग्रंथ उक्त दोनों टीकाओंके साथ मुक्ताबाई ज्ञानमन्दिर डभोई (गुजरात) से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ है । श्वे० मान्यतासे इसका रचनाकाल विक्रमकी सातवीं शताब्दी है ।

(३) दि० संस्कृत पञ्चसंग्रह (प्रथम) दि० प्रा० पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर उसे यथासम्भव पल्लवित करते हुए आ० अमितगतिने इसकी संस्कृत श्लोकोंमें रचना की है । इसके पाँचों प्रकरणोंकी श्लोक-संख्या १४५६ है । लगभग १००० श्लोक-प्रमाण गद्य-भाग है । इसका रचना-काल वि० सं० १०७३ है । यह मूल रूपमें सर्व-प्रथम माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे सन् १९२७ में प्रकाशित हुआ और पीछे पं० वंशी-धरजी शास्त्रीके अनुवादके साथ सोलापुरसे प्रकाशित हुआ है ।

(४) दि० सं० पञ्चसंग्रह (द्वितीय)—इसकी रचना भी दि० प्रा० पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर की गई है । इसमें अमितगतिके सं० पञ्चसंग्रहकी अपेक्षा अनेक विशेषताएँ हैं जिनका दिग्दर्शन आगे कराया जायगा । इनके रचयिता श्रीपालसुत श्री डड्ढा हैं, जो एक जैन गृहस्थ हैं । इसकी समस्त श्लोक-संख्या १२४३ है और गद्य-भाग लगभग ७०० श्लोक प्रमाण है । इसका रचनाकाल अनुमानतः विक्रमकी सत्तरहवीं शताब्दी है । इनकी एकमात्र प्रति ईडरके भण्डारसे प्राप्त हुई । यह पहली बार इसी ग्रन्थके साथ परिशिष्ट रूपमें प्रामाणित हो रहा है ।

(५) दि० प्रा० पञ्चसग्रह टीका—दि० प्राकृत पञ्चसग्रहपर यह एकमात्र संस्कृत टीका उपलब्ध हुई है, वह भी अपूर्ण । इस प्रतिका विशेष परिचय प्रति-परिचयमें दिया जा चुका है । टीका बहुत सरल है, मूलके भावको उत्तम रीतिसे प्रकट करती है । टीकाकारने अर्थको स्पष्ट करनेके लिए मूल प्राकृत या संस्कृत पञ्चसग्रहमें दी गई सदृष्टियोंके अतिरिक्त अनेको और भी सदृष्टियाँ लिखी हैं । इस टीकाके रचयिता श्री सुमतिकीर्ति हैं, जो सम्भवत भट्टारक थे । इस टीकाकी रचना वि० स० १६२० के भादो सुदी १० को हुई है ।

(६) दि० प्राकृत पञ्चसग्रह मूल और प्राकृत वृत्ति—प्रा० पञ्चसग्रहके मूल आधार जो पाँच मूल ग्रन्थ हैं, उनके ऊपर श्री पद्मनन्दिने प्राकृत वृत्तिकी रचना की है, जिसकी शैली प्राचीन चूर्णियोंके समान है । यह मूल और वृत्ति दोनों ही अपनी एक खास महत्ता रखती हैं, यह आगे बताया जायगा । इसके मूल प्रकरणोंकी गाय्या-मख्या ४१८ है और प्राकृतवृत्तिका परिमाण लगभग ४००० श्लोक है । ये दोनों ही प्रथम बार इसी ग्रन्थके साथ परिशिष्टमें प्रकाशित हो रहे हैं । प्राकृतवृत्तिका रचनाकाल भी अभी तक अज्ञात ही है ।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक पञ्चसग्रहोका उल्लेख मिलता है । उनमेंसे गोम्मटसार जीवकाङ्क-कर्मकाण्डको भी पञ्चसग्रह कहा जाता है, उनमें भी उक्त ग्रन्थोंके समान बन्धक, बन्धव्य, आदि पाँचों विषयोंका प्रतिपादन किया गया है । दि० प्राकृत पञ्चसग्रहके संस्कृत टीकाकार तो इसी कारण इतने अधिक भ्रमित हुए हैं कि उन्होंने प्रत्येक प्रकरणकी समाप्ति करते हुए “इति श्रीपञ्चसग्रहापरनाम लघुगोम्मटसार टीकाया” लिखा है और टीकाके अन्तमें भी “इति श्री लघुगोम्मटसार टीका समाप्ता” लिखा है । श्री हरि दामोदर बेलकरने अपने श्री जिनरत्न कोशमें ‘पञ्चसग्रह दोषक’ नामके एक और भी ग्रन्थका उल्लेख किया है । इसके रचयिता श्री इन्द्रवामदेव हैं । उन्होंने इसे गोम्मटसारका पद्यानुवाद बतलाया है और उसके पाँचों प्रकरणोंकी श्लोक-सख्या क्रमशः ८२५ + १४१ + १२५ + १८७ + २२० दी है, जिनका योग १४९८ होता है । यह अभी तक मेरे देखनेमें नहीं आई, इसलिए इसके विषयमें इससे अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता है ।

उक्त जिनरत्नकोशमें हरिभद्रसूरि-द्वारा बनाये गये एक और पञ्चसग्रहका उल्लेख किया गया है । पर हरिभद्रसूरि-रचित ग्रन्थोंकी जितनी भी सूचियाँ मेरे देखनेमें आई हैं, उनमेंसे किसीमें भी मैंने इस ग्रन्थका नाम नहीं देखा । इसके प्रकाशमें आनेपर ही उसके विषयमें कुछ विशेष जाना जा सकेगा ।

उपर्युक्त विवेचनसे इतना तो स्पष्ट है कि पञ्चसग्रहके आधारभूत बन्ध, बन्धक आदि पाँचों द्वार जैन दर्शनके लक्ष्यभूत मुख्य विषय हैं और इसीलिए दोनों सम्प्रदायके आविर्भाव होनेके पहलेसे ही जैन आचार्यों-ने उनपर प्रकरण-ग्रन्थोंकी रचना की और उनके आधारपर दोनों ही सम्प्रदायोंके आचार्योंने ‘पञ्चसग्रह’ यही नाम देकर उनपर तदाधारसे स्वतन्त्र ग्रन्थोंकी रचनाएँ की और अनेक टीका-टिप्पणियों और चूर्णियोंको लिखा ।

जैन वाङ्मयमें पञ्चसग्रह नामके अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमेंसे कुछ प्राकृतमें और कुछ संस्कृतमें रचे गये हैं । इनमेंसे कुछ दिगम्बराचार्योंके द्वारा रचे गये हैं और कुछ श्वेताम्बराचार्योंके द्वारा । यहाँ एक बात खास तौरसे ज्ञातव्य है और वह यह कि इन दोनों सम्प्रदायोंके द्वारा रचे गये या सकलन किये गये पञ्चसग्रहोंमें जिन पाँच ग्रन्थों या प्रकरणोंका सग्रह है, उनमेंसे एकाधको छोड़कर प्रायः सभी ग्रन्थों या मूल प्रकरणोंके रचयिताओंके नामादि अभी तक भी अज्ञात हैं और इसीसे उन मूल ग्रन्थोंकी प्राचीनता प्रमाणित होती है । मूलग्रन्थोंके अध्ययन करनेपर ऐसा ज्ञात होता है कि उनकी रचना उस समय हुई है, जबकि जैन-परम्परा अक्षुण्ण थी और उसमें दिगम्बर-श्वेताम्बर जैसे भेद उत्पन्न नहीं हुए थे । कालान्तरमें जब इन दोनों भेदोंने जैन-परम्परामें अपना स्थान दृढ़ कर लिया, तब पूर्व-परम्परासे चले आये श्रुतको उन्होंने अपनी-अपनी मान्यताओंके अनुरूप निबद्ध करना प्रारम्भ किया । संस्कृत-ग्रन्थोंमें जैसे तत्त्वार्थसूत्र अपनी-अपनी मान्यता-गत पाठ-भेदोंके साथ दोनों सम्प्रदायोंमें सम्मानित है और दोनों ही सम्प्रदायोंके आचार्योंने उसपर टीका-टिप्पण और भाष्यादि लिखे हैं, ठीक उसी प्रकार प्राकृत ग्रन्थोंमें हमें एकमात्र पञ्चसग्रह ही

ऐसा ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध हुआ है, जिसके मूल-प्रकरण दोनों सम्प्रदायोंमें थोड़ेसे पाठ-भेदोंके साथ समानरूपसे सम्मान्य हैं और दोनों ही सम्प्रदायके आचार्योंने उनपर प्राकृत भाषामें भाष्य-नाथाएँ और चूर्णियाँ, तथा संस्कृत भाषामें टीका और वृत्ति आदि रची हैं।

दोनों सम्प्रदायोंके इन पञ्चसंग्रहोंमें निबद्ध, संकलित या संगृहीत वे पाँच ग्रन्थ या प्रकरण कौनसे हैं, पाठकोंको यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है, अब सर्वप्रथम उन प्रकरणोंका परिचय दिया जाता है। दि० पञ्चसंग्रहके पाँचों प्रकरणोंके नाम दो प्रकारसे मिलने हैं, जो इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार	द्वितीय प्रकार
१ जीवसमान	१ वन्यक
२ प्रकृतिसमुत्कीर्तन	२ वध्यमान
३ वन्यस्तव	३ वन्यस्वामित्व
४ शतक	४ वन्य-कारण
५ मत्ततिष्ठा	५ वन्य-भेद

वे० पञ्चसंग्रहके पाँचों प्रकरणोंके नाम दो प्रकारसे मिलने हैं, जो कि इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार	द्वितीय प्रकार
१ सत्कर्मप्राप्त	१ वन्यक
२ कर्मप्रकृति	२ वन्यव्य
३ ज्ञाप्यप्राप्त	३ वन्य-हेतु
४ शतक	४ वन्य-विधि
५ मत्ततिष्ठा	५ वन्य-लक्षण

दि० परम्पराके पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकारवाले पाँचों प्रकरण संग्रहकर्त्तके बहुत पहलेसे स्तनत्र ग्रन्थके रूपमें चले आ रहे थे। संग्रहकारने देखा कि उनकी रचना सजिप्त या सूत्रात्मक है, तो उसने पूर्व-परम्परागत ग्रन्थोंके नामोंको और उनकी गायकोंको ज्यो-का-र्यों मुरझित रखकर और उन गायकोंको मूलगाथाका रूप देकर उनपर भाष्य-नायाओंकी रचना की। दूसरे प्रकारके नाम मिलने हैं अमितगतिके पञ्चसंग्रहमें, जिन्होंने पूर्वोक्त प्राचीन प्राकृत पञ्चसंग्रहका संस्कृत भाषामें कुछ पल्लवित पद्यानुवाद किया है। परन्तु उन्होंने भी ग्रन्थके प्रकारोंके अन्तमें नाम वे ही प्राचीन दिये हैं। द्वितीय प्रकारके नामोंका तो उल्लेख उन्होंने ग्रन्थके प्रारम्भमें किया है। परन्तु अर्थकी दृष्टिसे द्वितीय प्रकारके नामोंकी संगति प्रथम प्रकारके नामोंके साथ बैठ जाती है। यथा—

१ वन्यक नाम कर्मके वर्णनेवालेका है, जीवनमासमें कर्म-व्य करनेवाले जीवोंका ही चौदह मार्गा और गुणस्थानोंके द्वारा वर्णन किया गया है।

२ वध्यमान नाम बंधनेवाले कर्मोंका है; प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक द्वितीय अधिकांशमें उन्हीं कर्मोंकी मूलप्रकृतियों और उत्तर प्रकृतियोंका वर्णन किया गया है।

३ वन्यस्वामित्व और वन्यस्तव एकार्थक ही हैं।

४ शतक यह नाम वस्तुतः गुण-कृत नहीं, अपितु संख्याकृत है अर्थात् इस प्रकरणकी मूल प्राचीन-गाथाएँ १०० ही हैं, इसलिए इसे शतक कहते हैं और इसमें कर्मवन्धके कारण आदिका ही वर्णन है, अब ये दोनों नाम भी परम्परामें संगत बैठ जाते हैं।

५ मत्ततिष्ठा यह नाम भी संख्याकृत है, क्योंकि इस प्रकरणकी मूल-गाथाएँ भी ७० ही हैं और उनमें कर्मवन्धके योग, उपयोग, लेख्या आदिकी अपेक्षा भेदों या भगोंका वर्णन किया गया है।

इस प्रकारसे दि० परम्पराके पञ्चसंग्रहोंमें पाये जानेवाले दोनों प्रकारके नामोंमें कोई भीतिक अन्तर या भेद नहीं है।

किन्तु श्वे० पञ्चसंग्रहकी स्थिति कुछ भिन्न है। उसके रचयिताने स्वयं ही दोनो प्रकारके नाम दिये हैं। जिनमें प्रथम प्रकारके नामोका उल्लेख करते हुए कहा है कि यत् इस ग्रन्थमे शतक आदि पाँच ग्रन्थ यथा-स्थान सक्षिप्त करके संग्रह किये गये हैं, अतः इस ग्रन्थका नाम पञ्चसंग्रह है। अथवा इसमें वन्वक आदि पाँच अधिकार वर्णन किये गये हैं, इसलिए भी इसका पञ्चसंग्रह यह नाम यथार्थ या सार्थक है^१।

प्राकृत और संस्कृत पञ्चसंग्रहकी तुलना

आ० अमृतगतिने अपने संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचना यद्यपि प्राकृत पञ्चसंग्रहके आधारपर ही की है, तथापि उनकी रचनामें अनेक विशेषताएँ या विभिन्नताएँ हैं, जिनका विश्लेषण हम निम्नप्रकारसे कर सकते हैं—

- (१) मौलिक मत-भेद या विशेष मान्यताओंका निरूपण
- (२) पल्लवित वैशिष्ट्य
- (३) व्युत्क्रम या आगे-पीछे वर्णन
- (४) स्खलन या विषयका छोड़ देना
- (५) शैली-भेद
- (६) कुछ विशिष्ट ग्रन्थ या ग्रन्थकारोंके उद्धरण-उल्लेख आदि

१. मौलिक मत-भेद या विशेष मान्यताओंका निरूपण

१ प्रा० पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें वेदमार्गणाके भीतर द्रव्य और भाववेदकी जीवोंके सदृशता और विमदृशता वर्णन करनेवाली दो गाथाएँ इस प्रकार हैं—

तिव्वेद एव सव्वे वि जीवा दिट्ठा हु दव्वभावादो ।
ते चेव हु विवरीया सभवंति जहाकमं सव्वे ॥१०२॥
इत्थी पुरिस णउसय वेया खलु दव्व-भावदो होति ।
ते चेव य विवरीया हवति सव्वे जहाकमसो ॥१०४॥

दोनों गाथाएँ अर्थकी दृष्टिसे प्रायः समान हैं, इसलिए अमृतगतिने दूसरी गाथाके आधारपर केवल एक श्लोक रचा है—

स्त्रीपुंनपुंसका जीवाः सदृशाः द्रव्य-भावतः ।
जायन्ते विसदृशाश्च कर्मपाकनियन्त्रिताः ॥११२॥

ऊपरकी दोनों गाथाओंका और इस श्लोकका अर्थ एक ही है कि जीव कर्मोदयमे द्रव्य और भाववेदकी अपेक्षा स्त्री, पुरुष और नपुंसकरूपमे कभी सदृश भी होते हैं और कभी विसदृश भी होते हैं। किन्तु स० पञ्चमसंग्रहकारके सम्मुख सभवतः अन्य मान्यता भी उपस्थित थी और इसलिए प्रा० पञ्चमसंग्रहमें उसके नहीं होते हुए भी उन्होंने उसे यहाँ स्थान दिया, जो कि इस प्रकार है—

नान्तमौहृत्तिका वेदास्ततः सन्ति कपायवत् ।
आजन्ममृत्युतस्तेपामुदयो दृश्यते यतः ॥१११॥

कपायोंके उदयके समान वेदोंका उदय अन्तर्मुहूर्तमात्र कालावस्थायी नहीं है, क्योंकि जन्मसे लेकर मरण-पर्यन्त एक जीवके एक ही वेदका उदय देखा जाता है।

१. सयगाह पच गंधा जहारिह जेण एत्थ सखित्ता ।

दाराणि पंच अहवा तेण जहत्थाभिहाणमिणं ॥

(श्वे० पञ्चसं० द्वा० १ गा० २)

२ पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें गुणस्थानोंकी प्रत्युपपत्ति पञ्चान् जीवममानोंका निरूपण करते हुए अमिनिगति कहते हैं—

चतुर्दशसु पञ्चाक्ष. पर्याप्तस्तत्र वर्तते ।

एतच्छास्त्रमतेनाद्ये गुणस्थानद्वयेऽपरे ॥६॥

पूर्णः पञ्चेन्द्रियः संज्ञा चतुर्दशसु वर्तते ।

सिद्धान्तमततो मिथ्यादृष्टी सर्वे गुणे परे ॥७॥

अर्थात् इस शास्त्रके मतसे आदिके दो गुणस्थानोंमें सभी जीवसमाम होते हैं । किन्तु सिद्धान्तके मतसे केवल मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही सर्वजीवनमान होते हैं ।

३ दूसरे प्रकृतिममूर्त्तिकोर्तन नामके प्रकरणमें प्रा० पञ्चसंग्रहकारने वन्ययोग्य प्रकृतियोंकी संख्या १२० और उदय-योग्य प्रकृतियोंकी मत्वा १२० बतलाई है और यह मान्यता दि० और द्वा० सभी कर्म-विषयक ग्रन्थोंके अनुसृत ही है । पर इन स्थलपर न० पञ्चसंग्रहकार उक्त मान्यतानुसार वन्य और उदयके योग्य प्रकृतियोंकी सदा वन्यमानेके अनन्तर लिखते हैं—

मतेनापसृगाणां सर्वा. प्रकृतयोऽङ्गिनाम् ।

वन्योदयो प्रपद्यन्ते स्वहेतुं प्राप्य सर्वदा ॥

कुछ आचार्योंके मतसे सभी अर्थात् १४८ प्रकृतियाँ ही अपने-अपने निमित्तको पाकर वन्य और उदयको प्राप्त होती हैं ।

४ स० पञ्चसंग्रहके चौथे प्रकरणमें स्थितिवन्वका वर्णन करते हुए श्लोकाङ्क २०८ के नीचे एक गद्य-भाग इस प्रकारका मुद्रित है—

“पञ्चमंग्रहानिप्रायेणोदं; सिद्धान्तानिप्रायेण पुनरायुषोऽयावाधो नास्ति, स्थितिः कर्मनिपेचनम् ” ।

प्रगल्भ करनेपर भी मैं इस पंक्तिके द्वारा सूचित किये गये पञ्चसंग्रह और सिद्धान्तके अनिप्राय-भेदको नहीं समझ सका । यहाँ प्रकरण यह है कि आयुर्कर्मके सिवाय शेष सान् कर्मोंका जो स्थितिवन्व हुआ है, उनमेंसे उनका आवाधा काल घटाकर जो स्थितिवन्व शेष रहता है, उतना उनका कर्म-निपेककाल होता है । किन्तु आयुर्कर्मका जितना स्थितिवन्व होता है, उतना ही कर्म-निपेककाल होता है । (देखो प्रा० पञ्चसंग्रह प्रकरण चौथेकी गा० ३९५) । इसी गायके आवाधपर जो श्लोक इस स्थलपर अमिनि-गतिमें दिया है, वह भी गायके आवाधवाद रूप ही है । वह गाय और श्लोक इस प्रकार हैं—

गाथा—आवाधूणद्विती कम्मणिसेओ होइ सत्तकम्माणं ।

ठिठिमेव णिया सच्चा कम्मणिसेओ य आटस्स ॥३९५॥

श्लोक—आवाधो नास्ति सप्तानां स्थितिः कर्मनिपेचनम् ।

कर्मणामायुषो वाचि स्थितिरेव निजा पुनः ॥२०८॥

गायके अनुसार ही श्लोकका अर्थ भी है, फिर यह विचारणीय बात है कि इसी श्लोकके नीचे अन-भेदकी सूचक उक्त पंक्ति दी हुई है । माणिक्यन्द-ग्रन्थमालासे प्रकाशित पञ्चसंग्रहमें जो उक्त श्लोक मुद्रित है उसपर गौर करनेसे पाठकी दृष्टि उसके प्रथम चरण और उसपर दो गड़े टिप्पणियोंकी ओर जानपर इस समझाया समाधान सहजमें हो जाता है । प्रथम चरण इस प्रकार मुद्रित है—

“आवाधो नास्ति सप्तानां ”

ज्ञात होता है कि इनके सम्यक्को आदर्श प्रतिमें भी ऐसा ही पाठ उपलब्ध हुआ और इसीलिए इनके नीचेकी पंक्तियों प्रमाण मानकर उन्होंने भी एक टिप्पणी इसपर दे दी, जो इस प्रकार है—

“अपसिद्धान्तानिप्रायेण सप्तकर्मणामावाधो नास्ति । तर्हि किमस्ति ? कर्मनिपेचनम् । × × × पञ्चसंग्रहानिप्रायेण सप्तानां कर्मणामावाधाऽस्ति, आयुर्कर्मणोऽपि ज्ञातव्यम् ।”

इस टिप्पणीके देनेमें सम्पादक-महोदयको उक्त श्लोकके नीचे दी गई उक्त पक्ति ही प्रेरक हुई है और उस पक्तिको उन्होंने स० पञ्चसंग्रहके रचयिता आ० अमितगतिकी ही लिखी समझ ली है। पर वास्तविक स्थिति इसके प्रतिकूल है। यथार्थमें यह पक्ति किसी पुराने पाठकने उक्त अशुद्ध पाठको शुद्ध मान करके और उस पाठपर चिह्न लगाकर टिप्पणीके तौरपर प्रतिके हासियेपर लिखी होगी। कालान्तरमें उस प्रतिकी प्रतिलिपि करनेवाले लेखकने उसे मूलका अश समझकर उसे उक्त श्लोकके पश्चात् ही लिख दिया। इस प्रकार मूलपाठ 'आवाधो नास्ति' इस पदकी (आवाधा + ऊना + अस्ति) सन्धिको नहीं समझ सकनेके कारण जैसी मूल पुराने पाठकसे हो गई थी, ठीक वैसी ही मूल अशुद्ध पाठ और उक्त पक्तिके सामने होनेपर इसके सम्पादकसे भी हो गई है और उसीके फलस्वरूप उन्होंने भी उक्त भ्रमोत्पादक टिप्पणी दे दी है।

इस सारे कथनका निष्कर्ष यह है कि इस स्थलपर उक्त पक्ति न तो स० पञ्चसंग्रहका अंग है और न उसे वहाँपर होना चाहिए। फिर उसके आधारपर दी गई टिप्पणीकी व्यर्थता तो स्वतः सिद्ध हो जाती है। पञ्चसंग्रहादि कर्मग्रन्थ और सिद्धान्तग्रन्थ सभी उक्त विषयमें एक मत हैं।

२. पल्लवित वैशिष्ट्य

प्रा० पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें ज्ञान मार्गणाके भीतर अवधिज्ञानका वर्णन केवल दो गाथाओंमें किया गया है। पर अमितगतिने उसे पर्याप्त पल्लवित किया है और षट्खण्डागम तथा ध्वला टीकाके आधारसे चार श्लोकोंके द्वारा कितनी ही नवीन बातोंकी सूचना की है। जैसे—तीर्थङ्कर, देव और नारकियोंके अवधिज्ञान सर्वाङ्गसे उत्पन्न होता है, किन्तु शेष जीवोंके यदि वे मिथ्यादृष्टि हैं तो नाभिके नीचे सरट, मर्कट, काक, खर आदि अशुभ चिह्नोंसे प्रकट होता है और यदि वे सम्यग्दृष्टि हैं, जो नाभिके ऊपर शख, पद्म, श्रीवत्स आदि शुभ चिह्नोंसे उत्पन्न होता है। (देखो स० पञ्चसंग्रह, प्रथम प्रकरण, श्लोक २२३-२२५)

इसी प्रकारका पल्लवित वैशिष्ट्य संस्कृत पञ्चसंग्रहमें अनेक स्थलोपर दृष्टिगोचर होता है, जिसकी तालिका इस प्रकार है—

प्रथम जीवसमास प्रकरणमें अनन्तके नौ भेद (श्लोक ६-७), ग्यारह प्रतिमाएँ (श्लो० २९-३२), वर्ग, वर्गणा और स्पर्धक (श्लो० ४५-४६), गुणस्थानोंमें औदार्यकादि भाव (श्लो० ५२-५८), गुणस्थानोंमें जीवोंकी सख्या आदि (श्लो० ५९-९१), चतुर्गतिनिगोद (श्लो० १११), स्थावरकायिक जीवोंके आकार (श्लो० १५४) त्रसनालीके बाहिर त्रसोकी उपस्थिति (श्लो० ११६) तैजस्कायिक और वायुकायिक आदि जीवोंकी विक्रिया आदि (श्लो० १८१-१८५), द्रव्य-भाववेदकी अपेक्षा नौ भेद (श्लो० १९३-१९४), तीनो वेदवालोंके चिह्न-विशेष (श्लो० १९५-१९८), मति, श्रुत अवधिज्ञानके भेद-प्रभेद (श्लो० २१४-२२६), कपाय, नोकपाय और क्षायोपशमिकचारित्र (श्लो० २३४-२३७), द्रव्य-भाव-लेश्याओंका वर्णन (श्लो० २५४-२६३), पञ्च लब्धियोंका विस्तृत स्वरूप (श्लो० २८६ से २८९ तक तथा इनके मध्यवर्ती विस्तृत गद्यभाग) और तीन सौ तिरैसठ पाखण्डवादियोंका विस्तृत विवेचन (श्लो० ३०९-३१६ तथा इनके बीचका गद्य भाग) किया गया है।

प्रा० पञ्चसंग्रहमें चारो सज्ञाओंका केवल स्वरूप ही कहा गया है। किन्तु अमितगतिने प्रकरणोपयोगी होनेसे स्वरूपके साथ ही यह भी बतलाया है कि किस गुणस्थान तक कौन-सी सज्ञा होती है। (देखो स० पञ्चसंग्रह प्रक० १, श्लो० ३४५-३४७)

प्रा० पञ्चसंग्रहके दूसरे प्रकरणमें उद्वेलना-प्रकृतियोंकी केवल सख्या ही गिनाई गई है। किन्तु स० पञ्चसंग्रहकारने साथमें उद्वेलनाका लक्षण भी दे दिया है, जो कि प्रकरणको देखते हुए बहुत उपयोगी है।

प्रा० पञ्चसंग्रहके तीसरे प्रकरणमें चूलिकाधिकारके भीतर नौ प्रश्नोंका उत्तर प्रकृतियोंके नाममात्र गिनाकर दिया गया है। किन्तु स० पञ्चसंग्रहकारने इस स्थलपर गद्य और पद्य भागके द्वारा प्रत्येक प्रश्नका सहेतुक विस्तृत वर्णन किया है, जो कि अभ्यासी व्यक्तिके लिए अत्युपयोगी है।

स० पञ्चसंग्रहके चौथे प्रकरणमें अमितगतिने जिन विशिष्ट विषयोंकी चर्चा की है उनका संस्कृत-टीकाकारने यथास्थान निर्देश कर उन श्लोकोंको भी अधिकांशमें उद्धृत कर दिया है। इसके लिए देखिए—
गा० १०२, १०३-१०४, १४०, १७८-१७९, २१५, २२६, २८८, ३०४, ३६३-३९४, ३९५, ४६६, ४८९, ४९५,
५०२, ५१४-५१५ और ५१६-५१९की संस्कृतटीका और हिन्दी अनुवाद।

इसी चौथे प्रकरणमें स्थितिबन्धका उपसंहार करते हुए आयुर्वन्ध-सम्बन्धी अन्य कितनी ही बातोंका वर्णन स० पञ्चसंग्रहकारने किया है। (इसके लिए देखिए श्लो० २५८-२६०)

प्रा० पञ्चसंग्रहकी गा० ४६६ में शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामियोंका वर्णन किया गया है। गाथा-पठित 'शेष' पदसे कितनी और कौन-सी प्रकृतियाँ प्रकृतमें ग्राह्य हैं, इसका भी उहापोह अमितगतिने श्लो० २९० से २९२ तक किया है, जिसकी चर्चा उक्त गाथाके विशेषार्थमें इन श्लोकोंके उद्धरणके साथ कर दी गई है।

प्रा० पञ्चसंग्रहके पाँचवें प्रकरणमें समुद्धातगत केवलीको अपर्याप्त मानकर नामकर्मके बीस प्रकृतिक आदि उदयस्थानोंका वर्णन नहीं किया गया है। किन्तु अमितगतिने (पृष्ठ १७९ पर) 'उदये विंशतिः' श्लोकको आदि लेकर 'अत्रैकत्रिंशत स्थान' श्लोक तक समुद्धातगत केवलीके सर्व उदयस्थानोंका वर्णन किया है। (देखो, प्रकरण ५, श्लोक ५७४ से ५८३ तक)

३. व्युत्क्रम वर्णन

प्रा० पञ्चसंग्रहकारने प्रथम प्रकरणका आरम्भ करते हुए जिन बीस प्ररूपणाओंके कथनकी प्रतिज्ञा की है, उनका वर्णन भी उन्होंने अपने उसी क्रमसे किया है। तदनुसार स० पञ्चसंग्रहकारको भी इसी क्रमसे वर्णन करना चाहिए था। गो० जीवकाण्डमें भी इसी क्रमको अपनाया गया है। किन्तु अमितगतिने ऐसा नहीं किया। उन्होंने बीस प्ररूपणाओंकी संख्या गिनाते हुए ग्रन्थके आरम्भमें (श्लो० न० ११ में) प्राणोंको पर्याप्तियोंसे पूर्व और सज्ञाको प्राणोंके पश्चात् न गिनाकर उपयोगके पश्चात् गिनाया और उन सज्ञाओंका वर्णन भी क्रम-प्राप्त पाँचवें स्थानपर न करके अपने क्रमके अनुसार बीसवें स्थानपर किया है। इस क्रम-भग-का क्या कारण या रहस्य रहा है, वे ही जानें।

प्राकृत पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणकी अन्तिम (२००-२०६) सात गाथाओंमें वर्णित विषयका वर्णन भी संस्कृत पञ्चसंग्रहकारको प्रकरणके अन्तमें ही करना चाहिए था। पर उन्होंने वैसा न करके गाथाङ्क २०० का विषय श्लोकाङ्क ३२७ में, गा० २०१ का श्लो० ३०१ में, गा० २०२ का श्लो० २९४ में, गा० २०३ का श्लो० २९५ में, गा० २०४ का श्लो० २९६ में और गा० २०५ का श्लो० ३३९ में किया है।

प्रा० पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें लेख्याओंका समग्र वर्णन क्रम-प्राप्त लेख्या मार्गणामे न करके कितनी ही बातोंका वर्णन बीसों प्ररूपणाओंका वर्णन कर देनेके बाद प्रकरणका उपसंहार करते हुए किया है। प्रा० पञ्चसंग्रहकारका यह क्रम-भङ्ग कुछ खटकता-सा है। स० पञ्चसंग्रहकारको भी सम्भवतः यह बात खटकी और उन्होंने उक्त दोनों स्थलोंका वर्णन एक ही क्रम-प्राप्त स्थान लेख्यामार्गणके भीतर कर दिया। अतएव मूलग्रन्थको देखते हुए यह व्युत्क्रम-वर्णन भी अमितगतिकी बुद्धिमत्ताका सूचक हो गया है। (देखो प्रा० पञ्चसंग्रह गा० १४२-१५३ तथा १८३-१९२ और स० पञ्चसंग्रह श्लो० २५३-२८२)

प्रा० पञ्चसंग्रहके इसी प्रथम प्रकरणमें कौन-सा समय किस गुणस्थानमें या किस गुणस्थान तक होता है, इस बातका वर्णन गा० १९५ में किया गया है। अमितगतिको यह क्रम-भङ्ग भी खटका और उन्होंने इस विषयका वर्णन भी समयमार्गणामे यथास्थान ही कर दिया।

प्रा० पञ्चसंग्रहके तीसरे प्रकरणकी गा० ४४ में वर्णित विषयको उदीरणा वर्णन करनेके प्रारम्भमें न कहकर अन्तमें किया है। (देखो स० पञ्चसंग्रह ३, ६०)

प्रा० पञ्चसग्रहके चौथे प्रकरणमे मार्गणा, जीवसमास और गुणस्थानोंमें योग, उपयोग और प्रत्यय आदिका वर्णन जिस क्रमसे किया गया है, स० पञ्च सग्रहकारने उस क्रममे भी कुछ परिवर्तन करके विषय-का सृष्टियोंके साथ विस्तृत गद्य भागके द्वारा वर्णन किया है। दोनोंके वर्णन-क्रमका अन्तर इस प्रकार है—

प्राकृत पञ्चसग्रह	संस्कृत पञ्चसग्रह
१ मार्गणाओमें जीवसमास	१ मार्गणाओमें जीवसमास
२ जीवसमासोमे उपयोग	२ „ गुणस्थान
३ मार्गणाओमें „	३ „ उपयोग
४ जीवसमासोमें योग	४ „ योग
५ मार्गणाओमे „	५ जीवसमासोमें उपयोग
६ „ गुणस्थान	६ „ योग
७ गुणस्थानोमें उपयोग	७ गुणस्थानोमें उपयोग
८ „ योग	८ „ योग
९ „ प्रत्यय	९ „ प्रत्यय
१० मार्गणाओमे प्रत्यय	१० मार्गणाओमें प्रत्यय

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि प्रारम्भके छह वर्णनोंके क्रममे कुछ अन्तर है, शेष चार वर्णन समान हैं।

४. स्खलन या विषयका छोड़ देना

प्रा० पञ्चसग्रहके प्रथम प्रकरणमें मिथ्यात्व गुणस्थानका स्वरूप बतलाते हुए उसके भेदादिका भी वर्णन दो गाथाओंके द्वारा किया गया है। किन्तु स० पञ्चसग्रहकारने उसे छोड़ दिया है। इसी प्रकार प्रथम प्रकरणकी गा० १२, २८-२९, १२८, १३५-१३६, १४२-१४३, १६२-१६६, १८३-१८४ और २०६ की गाथायें वर्णित विषयोंकी भी अमितगतिने कोई चर्चा नहीं की है।

प्रा० पञ्चसग्रहके चौथे प्रकरणमें गाथाङ्क ३२५ के द्वारा यह सूचना की गई है कि ओषकी अपेक्षा बतलाया गया बन्ध-प्रकृतियोंका स्वामित्व आदेशकी अपेक्षा भी जान लेना चाहिए। मूलगाथाकी इस सूचनाके अनुसार भाष्यगाथाकारने गा० ३२६ से लगाकर गा० ३८९ तक उक्त वर्णन किया है। पर अमितगतिने इतने लम्बे सारेके-सारे प्रकरणको ही छोड़ दिया है, शायद उन्होंने इस स्थलपर अपने पाठकोको इसके कथन-की आवश्यकताका ही अनुभव नहीं किया। किन्तु ग्रन्थ-समाप्तिके पश्चात् उन्हें अपनी यह बात खटकी और उन्होंने तब निम्न मंगल एवं प्रतिज्ञा-श्लोकके साथ उसकी रचना की। वह श्लोक इस प्रकार है—

नत्वा जिनेश्वर वीरं बन्धस्वामित्वसूदनम् ।

वक्ष्याम्योषविशेषाभ्यां बन्धस्वामित्वसम्भवम् ॥१॥

(सं० पञ्चस० पृ० २२६)

प्रा० पञ्चसग्रहके पाँचवें प्रकरणमें गतिमार्गणाके भीतर नामकर्मके उदयस्थानोंको कहकर गा० १९१ से लेकर २०७ गाथा तक इन्द्रियादि शेष तेरह मार्गणाओमें भी नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण किया गया है। किन्तु अमितगतिने इस सर्व वर्णनको छोड़ दिया है। सम्भवतः सुगम होनेसे उन्होंने यह वर्णन अनावश्यक समझा।

इसी प्रकरणमे गा० ४३२ से लगाकर ४७१ तककी गाथाओंके विषयको भी कोई वर्णन नहीं किया है, केवल निम्नलिखित एक श्लोक द्वारा उसे आगमानुसार जान लेनेकी सूचना भर कर दी है। वह श्लोक इस प्रकार है—

सर्वासु मार्गणास्त्वेवं सत्संख्याद्यष्टकेऽपि च ।
बन्धादित्रितय नाम्नो योजनीयं यथागमम् ॥

(स० पञ्चस० ५, ३७)

इसी पाँचवें प्रकरणके अन्तमें गा० ५०१ से लगाकर ५०४ तककी जो चार मूलगाथाएँ हैं, उनका वर्णन भी स० पञ्चसग्रहकारने नहीं किया है ।

५. शैली-भेद

प्रा० पञ्चसग्रहके चौथे प्रकरणमें गाथाङ्क १०५ से लगाकर गा० २०३ तक जो गुणस्थानोमे बन्ध-प्रत्ययोके भङ्गोका वर्णन किया गया है, उसका अधिकांश वर्णन गद्य या पद्यमें न करके अमितगतिने अङ्कसदृष्टियोंके द्वारा ही प्रकट किया है । (इसके लिए देखिए—स० पञ्चमग्रहके पृ० ९२ से ११० तक दो गई सदृष्टियाँ ।)

६. कुछ विशिष्ट ग्रन्थ या ग्रन्थकारादिके उल्लेख

अमितगतिने स० पञ्चसग्रहमें कुछ श्लोक 'अपरेऽप्येवमाहुः' इत्यादि कहकर उद्धृत किये हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उनके सामने मस्कृत भाषामें रचित कोई कर्म-विषयक ग्रन्थ रहा है । ऐसे कुछ उल्लेखोका निर्देश यहाँ किया जाता है—

१ तीसरे प्रकरणमें पाँचवें श्लोकके पश्चात् 'तदुक्तम्' कहकर निम्न श्लोक दिया है—

परस्परं प्रदेशानां प्रवेशो जीव-कर्मणोः ।

एकत्वकारको बन्धो रुक्म-काञ्चनयोरिव ॥६॥

मेरे उपर्युक्त अनुमानकी पुष्टि खास तौरसे इस श्लोकसे होती है, क्योंकि इसी अर्थका प्रतिपादन करने-वाली गाथा प्रा० पञ्चसग्रहके इसी तीसरे प्रकरणमें दूसरे नम्बरपर इस प्रकार पाई जाती है—

कंचण-रूपदन्नाणं पृथक् जेम अणुपवेसो स्ति ।

अण्णोणपवेसाणं तह बन्ध जीव-कम्माण ॥२॥

२ चौथे प्रकरणमें बन्ध-प्रत्ययोका निरूपण करनेके पश्चात् अमितगति लिखते हैं—

'इति प्रधानप्रत्ययनिर्देश । अपरेऽप्येवमाहुः—और इसके पश्चात् ३२२ से ३२५ तकके निम्न चार श्लोक दिये हैं—

मिथ्यात्वस्योदये यान्ति षोडश प्रथमे गुणे ।

सयोजनोदये बन्ध सासने पञ्चविंशतिः ॥

कपायाणा द्वितीयानामुदये निर्घते दश ।

स्वीक्रियन्ते तृतीयानां चतस्रो देशसंयते ॥

सयोगे योगतः सातं जेपः स्वे स्वे गुणे पुनः ।

विमुच्याहारकद्वन्द्वतीर्थकृत्वे कपायतः ॥

पष्टिः पञ्चाधिका बन्ध प्रकृतीनां प्रपद्यते ।

३ पाँचवें प्रकरणमें पृ० २२२ पर उपशमश्रेणीमें नोकपायोके उपशमनका प्ररूपण करते हुए 'शान्तः पण्ड' इस तिरपनवें श्लोकके पश्चात् 'उक्तं च' कहकर निम्न-लिखित दो श्लोक पाये जाते हैं—

पार्यते नोदयो दातु यत्तत् शान्तं निगद्यते ।

सक्रमोदययोर्यज्ञ तन्निघत्त मनीषिभिः ॥५४॥

शक्यते सक्रमे पाके यदुत्कर्षाकर्षयोः ।

चतुर्षु कर्म नो दातु भण्यते तन्निकाचितम् ॥५५॥

इन श्लोकोमें उपशम, निवृत्ति और निकाचित करणका स्वरूप बतलाया गया है ।

दोनों प्राकृत पञ्चसंग्रहोंमें प्राचीन कौन ?

दि० और श्वे० प्राकृत पञ्चसंग्रहमेंसे प्राचीन कौन है, यह एक प्रश्न दोनोंके सामने आनेपर उपस्थित होता है। इस प्रश्नके पूर्व हमें दोनोंके पाँचों अधिकारोंके नाम जानना आवश्यक है। दि० प्रा० पञ्चसंग्रहके पाँच प्रकरण इस प्रकार हैं—

१—जीवसमास, २—प्रकृतिसमुत्कीर्तन, ३—बन्धस्तव, ४—शतक और ५—सप्ततिका।

श्वे० प्रा० पञ्चसंग्रहके ५ संग्रह या प्रकरणोंके बारेमें ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं ग्रन्थकार ही किसी एक निश्चयपर नहीं है और इसीलिए वे ग्रन्थ प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं—

सयगाईं पंच गंधा जहारिह जेण एत्थ संखित्ता ।

दाराणि पच अहवा तेण जहत्थाभिहाणमिण ॥२॥

इस गाथाका भाव यह है कि यत इस ग्रन्थमें शतक आदि पाँच प्राचीन ग्रन्थ यथास्थान यथायोग्य संक्षेप करके संगृहीत हैं, इसलिए इसका 'पञ्चसंग्रह' यह नाम सार्थक है। अथवा इसमें बन्धक आदि पाँच द्वार वर्णन किये गये हैं। इसलिए इसका 'पञ्चसंग्रह' यह नाम सार्थक है।

ग्रन्थकारके कथनानुसार दोनों प्रकारके वे पाँच प्रकरण इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार

१—शतक

२—सप्ततिका

३—कषायप्राभूत

४—सत्कर्मप्राभूत

५—कर्मप्रकृति

द्वितीय प्रकार

१—बन्धक द्वार

२—बन्धव्य द्वार

३—बन्धहेतु द्वार

४—बन्धविधि द्वार

५—बन्धलक्षण द्वार

दि० प्रा० पञ्चसंग्रहके जिन पाँच प्रकरणोंके नाम ऊपर बतलाये हैं उनके साथ जब हम श्वे० पञ्चसंग्रहोक्त पाँचों अधिकारोंका ऊपरी तौरपर या मोटे रूपसे मिलान करते हैं तो शतक और सप्ततिका यह दो नाम तो ज्यो-के-त्यो मिलते हैं। शेष तीन नहीं। किन्तु जब हम वर्णित-अर्थ या विषयकी दृष्टिसे उनका गहराईसे मिलान करते हैं तो दिगम्बरोका जीवसमास श्वेताम्बरोका बन्धक द्वार है और दिगम्बरोका प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकार श्वेताम्बरोका बन्धव्यद्वार है। इस प्रकार दो और द्वारोंका समन्वय या मिलान हो जाता है। केवल एक द्वार 'बन्धलक्षण' शेष रहता है। सो उसका स्थान दिगम्बरोका 'बन्धस्तव' ले लेता है। इस प्रकार दोनोंके भीतर एकरूपता स्थापित हो जाती है।

दोनों प्रा० पञ्चसंग्रहोंका तुलनात्मक अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि दि० प्रा० पञ्चसंग्रहके भीतर यत संग्रहकारने अपनेसे पूर्व परम्परागत पाँच प्रकरणोंका संग्रह किया है और यद्यपि उनपर भाष्य गाथाएँ स्वतन्त्र रूपसे रची हैं तथापि पूर्वाचार्योंकी कृतिको प्रसिद्ध रखने और स्वयं प्रसिद्धिके व्यामोहमें न पडनेके कारण उनके नाम ज्यो-के-त्यो रख दिये हैं। दि० प्रा० पञ्चसंग्रहकारने प्रत्येक प्रकरणके प्रारम्भमें मंगलाचरण किया है। यहाँतक कि जहाँ सारा प्रकृतिसमुत्कीर्तनाधिकार गद्यरूपमें है वहाँ भी उन्होंने पद्यमें ही मंगलाचरण किया है। पर श्वे० पञ्चसंग्रहकार चन्द्रर्षिने ऐसा नहीं किया। इसका कारण क्या रहा, यह वे ही जानें। पर दोनोंके मिलानसे एक बात तो सहजमें ही हृदयपर अंकित होती है वह है दि० प्रा० पञ्चसंग्रहके प्राचीनत्वकी। दि० पञ्चसंग्रहकारने श्वे० पञ्चसंग्रहकारके समान ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की है कि मैं पञ्चसंग्रहकी रचना करता हूँ, जब कि चन्द्रर्षिने मंगलाचरणके उत्तरार्धमें ही 'वोञ्छामि पचसंग्रह' कहकर पञ्चसंग्रहके कथनकी प्रतिज्ञा की है। इस एक ही बातसे यह सिद्ध है कि उनके सामने दि० प्रा० पञ्चसंग्रह विद्यमान था और उसमें भी प्रायः वे ही शतक, सित्तरी आदि प्राचीन ग्रन्थ संगृहीत थे जिनका कि संग्रह चन्द्रर्षिने किया है। पर दि० पञ्चसंग्रहकी कितनी ही बातोंको वे अपनी श्वे० मान्यताके विरुद्ध देखते थे और इस कारण उससे वे सन्तुष्ट नहीं थे। फलस्वरूप उन्हें एक स्वतन्त्र पञ्चसंग्रह रचनेकी प्रेरणा प्राप्त हुई और

मतभेदवाले मन्तव्योको श्वेताम्बर आगमानुमोदित या स्वगुरु-प्रतिपादित ढगसे उन्हें यथास्थान निवद्ध करते हुए एक स्वतन्त्र पञ्चसग्रह निर्माण किया ।

चन्द्रपिने जिन शतक आदि पाँच प्राचीन ग्रन्थोको अपने पञ्चसग्रहमे यथास्थान सक्षेपसे निवद्ध कर सगृहीत किया है उनमेंसे सौभाग्यसे चार प्रकरण स्वतन्त्र रूपसे आज हमारे सामने विद्यमान हैं और वे चारो ही अपनी टीका-चूर्ण आदिके साथ प्रकाशित हो चुके हैं । उनमेंसे कपायपाहुड दिगम्बरोकी ओरसे और कर्मप्रकृति श्वेताम्बरोकी ओरसे प्रकाशमें आये है, और दोनों सम्प्रदाय एक-एकको अपने-अपने सम्प्रदायका ग्रन्थ समझते हैं । शतक और सप्ततिका दोनो सम्प्रदायोके भण्डारोंमें मिली हैं और दोनो ही सम्प्रदायोके आचार्योंने उनके विवादग्रस्त विषयोका अपनी-अपनी मान्यताओके अनुसार मूल पाठ रखकर चूर्ण, टीका और भाष्य गाथाओंसे उन्हें समृद्ध किया है । केवल एक सत्कर्मप्राभृत ही ऐसा शेष रहता है जिसकी स्वतन्त्र रचना अभी-तक भी प्राप्त नहीं हुई है । श्वे० परम्परामे तो इसका केवल नाम ही उपलब्ध है । किन्तु दि० परम्परामे प्रसिद्ध ग्रन्थ पट्टखण्डागमकी धवला टीकामे अनेक बार 'सत्कर्मपाहुड'का उल्लेख आया है और उसके अनेको उद्धरण भी मिलते हैं । श्वे० प्रा० पञ्चसग्रहके कर्त्ता चन्द्रपि और धवला टीकाके कर्त्ता वीरसेनके सम्मुख यह सत्कर्मप्राभृत था । यह बात दोनोके उल्लेखोंसे भलीभाँति सिद्ध है ।

दूसरी बात जो सबसे अधिक विचारणीय है वह है शतकादि प्राचीन ग्रन्थोंके सक्षेपीकरण की । जब हम शतक आदि प्राचीन ग्रन्थोंकी गाथा-सख्याको सामने रखकर श्वे० पञ्चसग्रहके उक्त प्रकरणकी गाथा-सख्याका मिलान करते हैं तो सक्षेपीकरणकी कोई भी बात सिद्ध नहीं होती । यह बात नीचे दी जानेवाली तालिकामे स्पष्ट है —

दि० प्राचीन शतक गाथा	१००
प्राचीन सप्ततिका गाथा	७०
	<u>१७०</u>

श्वे० पञ्चसग्रह शतक और सप्ततिका	
सम्मिलित गाथा-सख्या	१५६
परिशिष्ट गाथा	<u>११</u>
	१६७

प्राचीन शतक और सप्ततिकाकी गाथाओंका योग १७० होता है । श्वे० पञ्चसग्रहमे दोनो प्रकरणोंको सम्मिलित रूपमें ही रचा गया है । पृथक्-पृथक् नहीं । तो भी उनकी गाथा-सख्या मय परिशिष्टके १६७ होती है । इस प्रकार कुल तीन गाथाओंका सक्षेपीकरण प्राप्त होता है । यहाँ इन गाथाओंके सक्षेपीकरणमें यह बात भी ख़ाम तौरसे ध्यान देनेके योग्य है कि प्राचीन शतक आदि ग्रन्थोंमे मगलाचरण एव अन्तिम उपसहार आदि पाया जाता है । तब चन्द्रपिने वह कुछ भी नहीं किया । शतक प्रकरणमे ऐसी मगलादिकी प्रारम्भिक गाथाएँ दो हैं और उपसहारात्मक गाथाएँ तीन हैं । इसी प्रकार सप्ततिकामे भी प्रारम्भिक गाथा एक और उपसहारात्मक गाथाएँ तीन हैं । इन पाँच और चार—९ गाथाओंको छोड़ देना ही सक्षेपीकरण माना जाय तो बात दूसरी है ।

अब लीजिए प्राचीन कर्मपयडी (कर्मप्रकृति) के सक्षेपीकरणकी बात । सो उसकी भी जाँच कर लीजिए । दोनोके प्रकरणोंकी गाथा-सख्या इस प्रकार है —

प्राचीन कर्मप्रकृति गाथा-सख्या

वन्धनकरण	१०२
मक्रमकरण	१११
उद्धर्तना०	१०
उदीरणा०	८९
उपगमना०	७१
निधत्ति	३
	<u>३८६</u>

श्वे० पञ्चसग्रहान्तर्गत कर्मप्रकृति, गाथा-सख्या

"	"	११२
"	"	११९
"	"	२०
"	"	८६
"	"	१०२
"	"	<u>३</u>
		४४५

इस मिलानसे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है कि प्राचीन कर्मप्रकृतिके किसी भी प्रकरणकी गाथाओका सक्षेपीकरण नहीं हुआ है, प्रत्युत वृद्धिकरण ही हुआ है। यहाँ यह बात खास तौरसे विचारणीय है कि जब प्राचीन कर्मप्रकृतिमें उदय और सत्ता नामके दो अधिकार पृथक् पाये जाते हैं और जिनके कि गाथा सख्या ३२ और ५७ है, उन्हें श्वे० पञ्चसग्रहकारने क्यों छोड़ दिया ? यदि इन दोनों समूचे प्रकरणोको छोड़ देना ही उनका सक्षेपीकरण माना जाय तो बात दूसरी है।

श्वे० पञ्चसग्रहके अधिकारोकी स्थिति भी बड़ी विलक्षण है। ग्रन्थकारने ग्रन्थके प्रारम्भमें जैसी प्रतिज्ञा की है उसके अनुसार शतक आदि प्राचीन पाँच ग्रन्थोके सक्षेपीकरणवाले पाँच ही अधिकार स्पष्ट या पृथक् रूपसे इस पञ्चसग्रहमें होने चाहिए थे। सो उनमेंसे केवल दो ही अधिकार मिलते हैं—एक कर्मप्रकृति-सग्रहके नामसे और दूसरा सप्ततिका सग्रहके नामसे। जिनका इस प्रकार विश्लेषण किया जा सकता है कि कर्मप्रकृति सग्रहमें कर्मप्रकृतिके अतिरिक्त कषायप्राभूत और सत्कर्मप्राभूतका भी सक्षेपीकरण कर लिया गया है और सप्ततिका-सग्रहमें सप्ततिका और शतकका सक्षेप किया गया है। परन्तु सप्ततिका-सग्रहमें दोनों ग्रन्थोका सक्षेप कोई अर्थ नहीं रखता, क्योंकि ऊपर बतलाया जा चुका है कि मूल रूपसे मात्र तीन गाथाओका ही अन्तर है। इस प्रकार शतक एव सप्ततिकाके दो प्रकरणोके स्वतन्त्र दो अधिकार न बना कर एकमें सग्रह करना कोई खास महत्त्व नहीं रखता है।

रह जाती है कर्मप्रकृति-सग्रहमें कषायप्राभूत आदि प्राचीन तीन ग्रन्थोंके सक्षेपीकरणकी बात। सो ग्रन्थके प्रारम्भमें की गयी प्रतिज्ञाके अनुसार उत्तम तो यही होता कि ग्रन्थकार कर्मप्रकृति, कषायप्राभूत और सत्कर्मप्राभूतके सक्षेप करनेवाले तीन ही प्रकरण पृथक् निर्माण करते और सप्ततिका शतकवाले दो प्रकरण स्वतन्त्र रचते। तो इन पाँच ग्रन्थोके सक्षेपीकरणके रूपसे 'पञ्चसग्रह' यह नाम सार्थक होता। जैसा कि दि० पञ्चसग्रहकारने किया है कि प्राचीन पाँच ग्रन्थोको सग्रह करके और उनके कठिन या सक्षिप्त स्थलोके स्पष्टीकरणार्थ भाष्य-गाथाएँ रचकर प्राचीन नामोको ही अधिकारोका नाम देकर 'पञ्चसग्रह' नामको चरितार्थ किया है और स्वयं अपने नाम-ख्यातिके प्रलोभनसे इतने दूर रहे हैं कि कहीं भी उन्होंने अपने नामका उल्लेख करना तो दूर रहा, सकेत तक भी नहीं किया है। अस्तु।

थोड़ी देरके लिए उक्त पाँच ग्रन्थोका सग्रह दो ही प्रकरणोमें मानकर सन्तोष कर लिया जाय और ग्रन्थकारकी इच्छाको ही प्रधानता दे दी जाय, पर यह जाँच करना तो शेष ही रह जाता है कि कर्मप्रकृति आदि तीन ग्रन्थोका उन्होंने कर्मप्रकृति-सग्रहमें क्या सक्षेपीकरण किया। जहाँ तक कर्मप्रकृतिके प्रकरणोका सम्बन्ध है हम ऊपर बतला आये हैं कि वह कुछ महत्त्व नहीं रखता।

रह जाती है कर्मप्रकृतिवाले सग्रहमें कषायप्राभूत और सत्कर्मप्राभूतके सक्षेपीकरणकी बात। सो जाँच करनेपर वैसे कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

दुर्भाग्यसे आज हमारे सामने सत्कर्मप्राभूत—जैसा कि आचार्योंके उल्लेखो आदिसे सिद्ध होता है—मूल गाथाओके रूपमें उपस्थित नहीं है। या यह कहना अधिक उचित होगा कि उपलब्ध नहीं है। इसलिए उसके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता कि चन्द्रपिने अपने पञ्चसग्रहमें उसका क्या कितना सक्षेपीकरण किया है। पर सौभाग्यसे कषायप्राभूत आज उपलब्ध ही नहीं, अपितु मूल रूपमें अपनी चूर्णि और उसकी टीका अनुवाद आदिके साथ प्रकाशित भी हो चुका है। उसको सामने रखकर जब हम पञ्चसग्रहके इस कर्मप्रकृति-सग्रहवाले प्रकरणकी छानबीन करते हैं तो सक्षेपीकरणके नामपर हमें निराश ही होना पड़ता है।

यहाँ एक विशेष बात यह ज्ञातव्य है कि जहाँ दि० पञ्चसग्रहमें पूर्व-परम्परागत प्रकरणोकी गाथाओको सकलित करके उनके दुरूह अर्थवाली सक्षिप्त गाथाओके ऊपर ही अपनी भाष्य-गाथाएँ रची हैं, वहाँ चन्द्रपिने स्वतन्त्र रूपमें गाथाओकी रचना करके अपने पञ्चसग्रहका निर्माण किया है।

दि० श्वे० पञ्चसग्रहोके ऊपर एक दृष्टि डालनेपर सहजमें ही जो छाप हृदयपर अकित होती है वह उनके सरल और कठिन रचे जानेकी। दि० पञ्चसग्रहकी रचना जितनी सरल, सुस्पष्ट और सुगम है, श्वे०

पञ्चसंग्रहकी रचना उतनी ही क्लिष्ट, कठिन और दुर्गम है। जिन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंकी रचनाओका मौलिक रूपसे गहराईके साथ अध्ययन किया है वे इस बातसे सहमत हैं, कि सर्वप्रथम जिन ग्रन्थोंकी रचना की गयी वह अत्यन्त सरल शैलीकी रही है। पीछे-पीछे उनमें प्रौढता एवं दुर्गमता आई है। इस विषयमें कुछ ग्रन्थ अपवाद भी हैं, पर उनका उद्देश्य दूसरा था। कसायपाहुड, सप्ततिका आदि जैसे प्रकरणोंकी रचना सर्वमाधारणको दृष्टिमें रखकर नहीं की गयी है। प्रत्युत उच्चारणाचार्य या व्याख्यानार्थोंको दृष्टिमें रखकर की गयी है। दूसरे ये ग्रन्थ उस विस्तोर्ण पूर्व साहित्यके सक्षिप्त बिन्दु रूपमें रचे गये हैं जिसे कि 'श्रुतसागर' कहा जाता है। अतः कसायपाहुड आदि जैसे ग्रन्थ वस्तुतः एक सकेतात्मक बीजपद रूपसे रचे गये ऐसे ग्रन्थ हैं जिन्हें आचार्य अपने प्रधान शिष्योंको पढाकर और कण्ठस्थ कराकर उस पर उनके द्वारा सूचित या उनमें निबद्ध या निहित रहस्यका व्याख्यान देकर अपने शिष्योंको उनका यथार्थ अर्थबोध कराते थे। ये ग्रन्थ अम्यासियों एवं जिज्ञासुओंके लिए एक प्रकारके नोट्स थे, जिनके आधारपर वे गुरु-प्रदत्त ज्ञानका अवधारण कर लेते थे। इसलिए इस प्रकारके ग्रन्थोंको छोड़कर सर्वमाधारणके लिए जो रचनाएँ हमारे महर्षिगण करते रहे हैं वे अत्यन्त सरल भाषामें रची गयी हैं। इसे हम इस प्रकार भी विभाजन करके कह सकते हैं कि उस कालमें दो प्रकारकी रचना-शैलियाँ रही हैं। एक सूत्र-शैली, दूसरी भाष्य-शैली। कसाय-पाहुड, सतकम्मपाहुड, मित्तरी आदि सूत्र-शैलीकी रचनाएँ हैं। इनके अर्थका मौखिक अवधारण जब असम्भव-सा दिखने लगा तब मौखिक भाष्य-शैलीके स्थानपर लेखन रूप भाष्य-शैली प्रतिष्ठित हुई। उस समय उन सूत्ररूप मूल गाथाओंपर भाष्य-गाथाओंकी रचना की गयी। जब उतनेसे काम चलता दिखाई नहीं दिया, तब उनपर चूर्णियोंके लिखे जानेका क्रम अपनाया गया। यह बात हमें कसायपाहुड, सित्तरी आदिकी मूल-गाथाओं, भाष्य गाथाओं और उनपर लिखी गयी चूर्णियों आदिके देखनेसे सहजमें ही समझमें आ जाती है।

स्व० पञ्चसंग्रहकी रचना करते हुए चन्द्रपिके सम्मुख कम्मपयडी, कसायपाहुड, सतकम्मपाहुड, सतक और सित्तरी आदि ग्रन्थ तो ये ही, पर दि० प्रा० पञ्चसंग्रह भी था और उसके नामके आधारपर ही उन्होंने अपने ग्रन्थका पञ्चसंग्रह—यह नाम रखा। साथ ही यह प्रयत्न भी किया कि दि० पञ्चसंग्रहमें जो ग्रन्थ संग्रह करनेसे रह गये हैं उन सबका भी संग्रह इस नवीन रचे जानेवाले संग्रहमें कर दिया जाय। फलस्वरूप उन्होंने उन सबका संग्रह अपने पञ्चसंग्रहमें करना चाहा। पर उनके इस पञ्चसंग्रहमें उनके ही शब्दोंके अनुसार संग्रह तो नहीं हुआ है, हाँ, मक्षेपीकरण कहा जा सकता है। और प्रकरण-विभाजनकी दृष्टिसे हम उसे पञ्चसंग्रह न कहकर सप्त-संग्रह या अष्ट-संग्रह जरूर कह सकते हैं। अन्यथा उन्हें चाहिए यह था कि जैसे बन्धक आदि पाँच द्वारोंका स्वतन्त्र निर्माण कर “द्वाराणि पञ्च अहवा” रूप प्रतिज्ञाका निर्वाह किया है उसी प्रकार सतक, सित्तरी, सतकम्मपाहुड, कम्मपयडी और कसायपाहुड, इन पाँचों ग्रन्थोंके संग्रह या मक्षेपीकरण रूपसे पाँच ही संग्रह स्वतन्त्र बनाने थे और तभी ग्रन्थारम्भकी पहली और दूसरी गाथामें की हुई प्रतिज्ञाका भली-भाँति निर्वाह हो जाता। पर उन्होंने ऐसा न करके ऊपर बतलाये गये क्रमानुसार सात ही प्रकरण या द्वार रूपमें अपने पञ्चसंग्रहकी रचना की। ऐसा उन्होंने क्यों किया और संग्रह-संख्याकी विसंगति क्यों की, यह एक ऐसा प्रश्न है, जो कि ग्रन्थके किमी भी गहरे अम्यासी और अन्वेषकके हृदयमें उठे बिना नहीं रहता और सम्भवतः यही या इसी प्रकारका प्रश्न स्वयं चन्द्रपिके भी मनमें उठा है और उसका उन्होंने यह लिखकर स्वयंका और शकालुओका समाधान किया है कि ग्रन्थकर्त्ता अपनी रचना किस ढंगसे करे या कौन-सी बात पहले और कौन-सी पीछे कहे इसके लिए वह स्वतन्त्र होता है। स्वयं ग्रन्थकार ग्रन्थारम्भकी तीसरी गाथाकी स्वोपजवृत्तिमें शका उठाते हुए कहते हैं —

“अत्र कश्चिदाह—कोऽयं द्वारोपन्यासे क्रमः ?

यतः कर्तुरधोन्तत्वात् सर्वासा क्रियाणा”

इत्यादि

आश्चर्यकी बात तो यह है कि यदि प्रतिज्ञात पाँच द्वारोंमेंसे किसी द्वारको आगे-पीछे कहते तब तो ग्रन्थकारकी इच्छाको प्रधानता दी जा सकती थी, पर वैसा न करके ग्रन्थकारने प्रतिज्ञात पाँचों द्वारोंमेंसे कोई

भी द्वार पहले न कहकर योगोपयोग नामक एक और ही नये द्वारकी कल्पना ही नहीं की, सृष्टि भी कर डाली और उसकी पुष्टि इसी पहले द्वारकी तीसरी गाथाकी स्वोपज्ञ वृत्तिमें लिखा है, “यत् बन्धक जीवका परिज्ञान योग, उपयोगको जाने बिना नहीं हो सकता, अतः उनका वर्णन पहले किया जाता है।

इससे भी अधिक लक्ष्य देनेकी बात और देखिए—प्रतिज्ञात प्रथम द्वारको रचनामें दूसरा, प्रतिज्ञात द्वितीय द्वारको रचनामें तीसरा, प्रतिज्ञात तृतीय द्वारको रचनामें चौथा और प्रतिज्ञात चतुर्थ द्वारको रचनामें पाँचवाँ स्थान देकर कर्मप्रकृति और सप्ततिका सग्रह वाले दो नये ही द्वार बनाये। प्रतिज्ञात ‘बन्धलक्षणद्वार’ कहाँ गया? यदि कहा जाये कि इसका समावेश कर्मप्रकृति और सप्ततिका-सग्रहमें कर दिया गया है तो भी यह बात विचारणीय रहती है कि उन दो सग्रहोंको पृथक्-पृथक् क्यों रचा? एक हीमें क्यों नहीं रचा जिससे कि ग्रन्थके पाँच ही द्वार बने रहते।

इन सब स्थितिको देखते हुए कोई भी पाठक निस्मकोच इस निष्कर्षपर पहुँचेगा कि वास्तवमें ग्रन्थकार चन्द्रपि अपने सग्रहके नामकरणमें अटपटा गये हैं। किये गये विभागोंके अनुसार उन्हें पदसग्रह या सप्तसग्रह आदि किसी अन्य ही नामको रखना था। अथवा वे अधिकारोंका विभाजन ठीक तौरसे नहीं कर सके। यदि ऐसा नहीं है तो मैं पूछता हूँ कि जब शतक और सप्ततिका यह दो ग्रन्थ स्वतन्त्र थे और दोनोंका विषय भी चौथे और पाँचवें द्वारके रूपमें भिन्न-भिन्न था तो फिर दोनोंका एक ही अधिकारमें सग्रह क्यों किया गया? इस प्रकार बहुत छानबीन और ऊहापोह करनेपर भी हम किसी समुचित समाधानपर नहीं पहुँच सके। यदि अन्य कोई विद्वान् मेरे प्रश्नका समुचित समाधान करेगा, तो मैं उनका आभारी होऊँगा।

दि० श्वे० पञ्चसंग्रह-गत कुछ विशिष्ट मत-भेद

दि० पञ्चमसग्रह और चन्द्रपि महत्तरके पञ्चसग्रहमें जो मत-भेद हैं उनमेंसे कुछकी तालिका इस-प्रकार है—

१—दि० ग्रन्थकारोंने देवायु और नारकायुकी जघन्य स्थिति १० हजार वर्षकी और तीर्थकरप्रकृतिकी अन्त कोटाकोटि सागरोपमकी बतलाई है। किन्तु चन्द्रपिने तीर्थकरप्रकृतिकी उक्त स्थिति-सम्बन्धी मान्यताके विरुद्ध अपने पञ्चमसग्रहमें लिखा है—

सुर नारयाऊभाण दसवाससहस्र लघु सत्तिथ्याण । (५, ४६)

अर्थात् देव और नारकायुके समान वे तीर्थकर प्रकृतिकी भी जघन्य स्थिति १० हजार वर्षकी बतलाते हैं। ग्रन्थकारकी इस मान्यतापर संस्कृत टीकाकार मलयगिरि आपत्ति करते हुए लिखते हैं—“इह सूत्रकृता कस्याप्याचार्यस्य मतान्तरेण तीर्थकरनाम्नो दशवर्षसहस्रप्रमाणा जघन्या स्थितिरुक्ता, अन्यथा कर्मप्रकृत्या-दिषु जघन्या स्थितिस्तर्थात्करनाम्नोऽन्तःसागरोपमकोटिकोटिप्रमाणैर्वोच्यते—केवलमुत्कृष्टान्तःसागरोपमकोटी-कोट्याः सा संरयेयगुणहीना द्रष्टव्या। तथा चोक्त कर्मप्रकृतिचूर्णौ—“आहारग-तिथ्यरनामाण उक्कोसओ ठिइवओ अंतोकोडाओडी भणिओ। तओ उक्कोसओ ठिइवओ जहन्नओ ठिइवओ सखेजगुणहीणो, सो वि जहन्नओ अंतोकोडाओडी चेव।”

शतकचूर्णवैप्युक्त—आहारगशरीर-आहारगअंगोवग-तिथ्यरनामाण जहण्णो ठिइवओ अंतोसागरो-चमकोडाओडीओ, अतोसुहुत्तमावाहा, उक्कोसओ सखेजगुणहीणो जहण्णो ठिइवओ त्ति।

(पञ्चसग्रह स्वो० वृ० पृष्ठ २२५।१)

२—इसी प्रकार श्वे० पञ्चसग्रहकारने आहारक-द्विकी जघन्य स्थिति भी कर्मप्रकृति आदि प्राचीन कर्मग्रन्थोंसे भिन्न बतलाई है। यथा—

“आहारग विग्धावरणाण किंचूण ।” (५, ४७)

स्वयं ही इसकी व्याख्या करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं—“आहारकशरीर तदगोपाग विघ्न पच-प्रकारमन्तराय आवरण पचप्रकार ज्ञानावरण तत्सहचरित दर्शनावरणचतुष्कमेतासा पोडशाना प्रकृतीना किञ्चिदून सुहृत् जघन्या स्थितिः, इति गाथार्थः।”

अर्थात् जानावरण आदि प्रकृतियोंके समान आहारकक्षरीर और आहारकअंगोपागकी जवन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त होती है।

चन्द्रपिके इस कथनपर आपत्ति करते हुए मलयगिरि लिखते हैं—“अत्राप्याहारकद्विकस्य जवन्या स्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणोक्त। मतान्तरेण, अन्यथा सान्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा द्रष्टव्या, कर्मप्रकृत्यादिषु तथाभिधानात्।”

यन मलयगिरि कर्मप्रकृतिके भी टीकाकार हैं और अन्य कर्मग्रन्थकारोंके मतोंसे भी परिचित हैं। उन मूल पञ्चमग्रहकारके मतके विरुद्ध होने हुए भी ‘मतान्तरेण’ कहकर उनकी रक्षाका प्रयत्न कर रहे हैं। जब कि मूलमें मतान्तरका कोई संकेत नहीं है।

३—निद्रादिपञ्चककी जवन्य स्थिति भी ज्वे० पञ्चमग्रहकारने पूर्ववर्ती कार्मिक ग्रन्थोंसे भिन्न ही बतलाई है। यथा—

“सेमाणुक्कोसायभो मिच्छत्तडिइए जं एट्ठं ।’ (५, ४८)

इसकी वे मन्त्र व्याख्या करने हैं—

शेषाणां शेषप्रकृत्यानामुत्कृष्टस्थितिवन्धात् मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थित्या यद्वन्ध सा जवन्या स्थितिर्गतिः । एव च निद्रापञ्चके त्रयः सप्त सागाः ७३—इत्यादि ।

(ज्वे० पञ्चसंग्रह पृ० २०६।१)

इन कथनपर आपत्ति करते हुए मलयगिरि कहते हैं—

इदं च किल निद्रापञ्चकादारम्य सर्वासां प्रकृतीनां जवन्यस्थितिपरिमाणमाचार्येण मतान्तरमधिकृत्योनमवमेयं, कर्मप्रकृत्यादावन्यथा तस्याभिधानात् । कर्मप्रकृती तु—

वग्गुच्छोम ठिईणं मिच्छत्तुक्कोसगेणजं एट्ठं ।

सेसाण तु जहन्नो पत्तासंसेजगेणूणो ॥

सागरोपमस्य त्रयः सप्तसागाः, ते पत्तासंत्येयसागहीना निद्रापञ्चकासातवेदनाययोजवन्त्या स्थितिः ।

४—द्वौन्द्रियादि जीवोंकी उत्कृष्ट स्थितिके विषयमें ज्वे० पञ्चसंग्रहकार कर्मप्रकृति आदिकी पुरानी मान्यतासे विरुद्ध निरूपण करते हैं—

पणव्रीसा पत्तासा सय उससयताडिया इगिठिठिई ।

विगलासण्णीण कमा जायइ जेड्ढोव इयरा वा ॥ (४, ५५)

अर्थात् एकेन्द्रियोंके जवन्य या उत्कृष्ट स्थितिबन्धको २५,५०,१०० और १००० से गुणित करनेपर क्रमन द्वौन्द्रिय, त्रौन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और अर्धज्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंका जवन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होना है। पर उसकी यह मान्यता पुरातन कार्मिकोंके विरुद्ध है। इसलिए मलयगिरिकों ने उक्त गायान्ता अर्थ करने हुए लिखना पड़ा—

कर्मप्रकृतिकारादयः पुनरेवमाहुः—एकेन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः पञ्चविंशत्या गुणितो द्वौन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धो भवति । पञ्चशता गुणिनस्त्रौन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः, शतेन गुणितश्चतुरिन्द्रियाणां, महत्त्वेण गुणितोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणाम् । एष एवानन्तरोक्तद्वौन्द्रियादीनामान्मीय-आत्मीय उत्कृष्टस्थितिबन्धः पत्तासंत्येयसागहीनो जवन्यः स्थितिबन्धो वेदितव्य इति । तच्च पुनरतिशयज्ञानिनो विदन्ति ।” (पृष्ठ २३९।२)

५—ज्वे० पञ्चसंग्रहके चतुर्थ द्वारकी १८वीं गायत्री स्तोत्रप्रवृत्तिमें चतुरिन्द्रियादि-जीवोंके बन्ध-हेतुओंका प्रतिगहन करते हुए चन्द्रपिके तीनों वेद बतलाये हैं। किन्तु यह बात कर्मप्रकृति एव दि० कर्मग्रन्थोंके विरुद्ध है। अतः मलयगिरि इस मन्त्रबन्धमें लिखते हैं—

“इह सञ्जिपञ्चेन्द्रियव्यतिरिक्ताः शेषाः सर्वेऽपि संसारिणो जीवाः परमार्थतो नपुसकाः । केवलम-
संजिपञ्चेन्द्रियाः स्त्री-पुल्लिङ्गाकारमात्रमधिकृत्य स्त्रीवेदे [पुरुषवेदे] च प्राप्यन्ते, इति तत्र त्रयो वेदाः परि-
गृहीताः । चतुरिन्द्रियादीनां पुनर्बाह्यस्त्रीपुल्लिङ्गाकारमात्रमपि न विद्यते, तत इह नपुसकवेद एव द्रष्टव्यः ।”

(श्वे० पञ्चस० बृ० पृ० १८३।२)

इन मव उल्लेखोको देखते हुए यह सम्भव है कि चन्द्रपि महत्तरने अपनी इन मान्यताओको प्रतिष्ठित करनेके लिए ही स्वतन्त्र रूपसे अपने पञ्चसग्रहकी रचना की और मूलमे जिन बातोका निर्देश नही किया जा सका उनके स्पष्टीकरणार्थ उसपर उन्होने स्वोपज्ञ वृत्ति लिखी ।

प्राकृत पञ्चसंग्रहके कुछ महत्त्वपूर्ण पाठ

सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होता, इस प्रश्नके उत्तरमे एक ही गाथाके तीन रूप तीन ग्रन्थोमें पाये जाते हैं । यथा—

१—असु हेष्टिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्व-इत्थीसु ।

वारस मिच्छावादे सम्माइष्टिस्स णत्थि उव्वादो ॥ (प्रा० पञ्चसग्रह १, १६३)

२—असु हेष्टिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्व-इत्थीसु ।

णेद्रेसु समुप्पज्जइ सम्माइष्टी दु जो जीवो ॥ (धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०६)

३—हेष्टिमसुपुढवीणं जोइसि-वण-भवण-सव्व-इत्थीण ।

पुण्णिदरे ण हि सम्मो, ण सासणो णारयापुण्णे ॥ (गो० जीव० गाथा १२७)

उक्त तीनो ही गाथाओमे पूर्वादिके प्राय एक रहते हुए भी उत्तरार्धमे पाठ-भेद है । जिनमेसे सख्या १ और २ की गाथाओमे स्पष्टरूपसे एक ही बात बतलाई गयी है कि सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होता । फिर भी धवलाकी गाथाके पाठसे सम्यक्त्वके एकेन्द्रियादि असंज्ञी पञ्चेन्द्रियान्त तिर्यञ्चोमे उत्पादका निषेध-परक कोई पद नहीं है । यह एक कमी उस गाथामें रह गयी है, या पाई जाती है । पर यह गाथा धवलाकारने अपने कथनकी पुष्टिमे उद्धृत किया है ।

गो० जीवकाण्डकी गाथा उसके कर्त्ता द्वारा रची गयी है । यद्यपि उसका आधार पहली या दूसरी गाथा ही रही है । फिर भी उन्होने उसे अपने ढंगसे वर्णन करते हुए स्वतन्त्र रूपसे ही रचा है और इसीलिए उत्तरार्धमें खासकर ‘ण सासणो णारयापुण्णे’ यह पद जोड़ा है । इस विशेषताके प्रतिपादन करनेपर भी उसके तीन चरणोमे जो बात कही गयी है उससे सम्यक्त्वकी जीवके एकेन्द्रियादि जीवोमे उत्पन्न होनेका निषेध नहीं होता । यह एक कमी उसमे भी रह गयी है ।

पर प्राकृत पञ्चसग्रहका जो पाठ है वह अपने अर्थको सामस्त्यरूपसे प्रकट करता है और उसके ‘वारस मिच्छावादे’ पदके द्वारा उन सब तिर्यञ्चोका निषेध कर दिया गया है जिनमे कि बद्धायुज्ज भी सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होता है । इस दृष्टिसे प्रा० पञ्चसग्रहकी इस गाथाका यह पाठ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । आचार्य अमितगगतिने प्राकृत पञ्चसग्रहका ही संस्कृत रूपान्तर किया है । उन्होने उक्त गाथाका जो रूपान्तर किया है, वह इस प्रकार है—

निकायत्रितये पूर्वे श्वभ्रभूमिषु पट्स्वधः ।

चनितासु समस्तासु सम्यग्दृष्टिर्न जायते ॥ (स० पञ्चसग्रह १, २६७)

इस श्लोकको देखते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि उनके सामने प्रा० पञ्चसग्रहवाला पाठ न रहकर धवलावाला पाठ रहा है । अन्यथा यह सम्भव नहीं था कि वे इतनी बड़ी बात यो ही छोड़ जाते ।

दि० श्वे० शतकगत पाठभेद

१—श्वे० शतकमें ‘तेरस चउसु’ आदि १३ वे नम्वरकी गाथा न दि० मूल शतकमे है और न प्राकृत सभाष्य शतकमे ही ।

२—दि० श्वे० मूल शतकोमे जहाँ कही पाठ-भेद है वह पाठ-भेद प्रायः सर्वत्र सभाष्य शतकसे समता रखता है, मूल शतकसे नहीं ।

३—श्वे० शतकमे 'बधट्टाणा चउरो' इत्यादि गाथा गाथाक २६ के बाद मुद्रित तो है पर उसपर अक-सख्या नहीं दी, जिससे ज्ञात होता है कि वह मूल-बाह्य करार दी गयी है । दि० शतकमे यह गाथा नहीं पाई जाती ।

४—दि० शतककी गाथा 'अट्टविह मत्त छवघगा' का उत्तरार्ध श्वे० शतककी गाथा-सख्या २७से मिलता है । किन्तु सभाष्य शतकमे उसके स्थानपर नया ही पाठ है ।

५—श्वे० शतकमें पाई जानेवाली गाथा-सख्या ३८ और ३९ का सभाष्य शतकमे पता भी नहीं है ।

६—श्वे० शतकमे सख्या ५२, ५३ पर जो गाथाएँ पाई जाती हैं उनके स्थानपर दिगम्बर शतक और सभाष्य शतकमे तदर्थ-सूचक अन्य ही गाथाएँ पाई जाती हैं ।

७—श्वे० शतकमें गाथाक ५३ के बाद जो 'वारम अतमुहुत्ता' आदि गाथा दी है और जिसपर चूर्णि भी मुद्रित है, आश्चर्य है कि उसे मूल गाथामें क्यों नहीं गिना गया ? दि० शतकमे वह मूलरूपसे ही दी है और सभाष्य शतकमे भी ।

८—श्वे० शतकमे सख्या ७२, ७३ पर पाई जानेवाली दोनों गाथाएँ दि० शतकसे समता रखती हैं, पर सभाष्य दि० शतकसे नहीं । वहाँ दोनों गाथाएँ अर्थ-साम्य रखते हुए भी पाठ-भेदसे युक्त हैं । यह भी एक विचारणीय बात है । (देखो गाथा ७०, ७१ मूल)

९—श्वे० शतककी गाथा सख्या ८० दिगम्बर शतककी इसी गाथासे समता रखती है पर सभाष्य शतकमें २० के स्थानपर मिश्रको मिलाकर सर्वघातिया २१ प्रकृतियाँ बतलाई गयी हैं । यह पाठभेद भी उल्लेखनीय है कि प्राकृतवृत्तिमे मिश्रको क्यों नहीं गिनाया गया ।

१०—श्वे० शतकमे गाथा ८१ मे देशघाती प्रकृतियाँ २५ ही बतलाई हैं, यही बात दि० मूल शतकमे भी है । पर सभाष्य शतकमे अन्तर स्पष्ट है । वहाँ पर २६ देशघातियाँ प्रकृतियाँ बतलाई गयी हैं । यह भी अन्तर महत्त्वपूर्ण है ।

दिगम्बर और श्वेताम्बर सप्ततिकागत पाठभेद

१—गाथाक ७ दिगम्बर श्वे० दोनों सप्ततिकाओमे समान है, पर सभाष्य सप्ततिकामे उसके स्थानपर 'णव छक्क' आदि नवीन ही गाथा पायी जाती है ।

२—गाथाक ८के विषयमे दोनों समान है । किन्तु सभाष्य सप्ततिकामे उसके स्थानपर नवीन गाथा है ।

३—गा० ९ की दिगम्बर श्वे० मूल सप्ततिकासे सभाष्य सप्ततिकामे अर्द्ध-समता और अर्द्ध-विषमता है ।

४—गा० १० (गोदेसु सत्त भगा) सभाष्य सप्ततिका और दि० मूल सप्ततिकामे है । पर श्वेताम्बर सप्ततिकामे वह नहीं पायी जाती है ।

५—गा० १५ दि० श्वे० सप्ततिकामे समान है । पर सभाष्य सप्ततिकामे भिन्न है ।

६—श्वे० सप्ततिकाके हिन्दी अनुवाद एव सम्पादक 'दस बावीसे' इत्यादि गाथा १५ को तथा 'चत्तारि' आदि णव वधएसु इत्यादि गा० १६ को मूल गाथा स्वीकार करते हुए भी उन्हें सभाष्य सप्ततिकामे मूल गाथा माननेसे क्यों इनकार करते हैं ? यह विचारणीय है ।

७—गाथा १७ का उत्तरार्ध दि० श्वे० सप्ततिकामे समान है । पर सभाष्य सप्ततिकामे भिन्न है ।

८—'एक्क च दोणि व तिण्णि' इत्यादि गाथाक १८ न श्वे० सप्ततिकामे है और न सभाष्य सप्ततिकामें । इसके स्थानपर श्वे० सप्ततिकामें 'एतो चउवघादि' इत्यादि गाथा पाई जाती है । पर सभाष्य सप्ततिकामे तत्स्थानीय कोई भी गाथा नहीं पायी जाती ।

९—श्वे० सचूर्णि सप्ततिकामें मुद्रित गा० २६, २७ न दि० सप्ततिकामें ही पाई जाती है और न सभाष्य सप्ततिकामे । यह बात विचारणीय है ।

१०—दि० सप्ततिकामे गा० २९ 'तेरम णव चटु पण्ण' यह न तो श्वे० सप्ततिकामें पाई जाती है और न सभाष्य सप्ततिकामें ही । मेरे मतसे इसे मूल गाथा होनी चाहिए ।

११—'सत्तेव अपज्जत्ता' इत्यादि ३५ सख्यावाली गाथाके पञ्चात् श्वे० और दि० सप्ततिकामें 'णाण-तराय तिविहमवि' इत्यादि तीन गाथाएँ पाई जाती हैं किन्तु वे सभाष्य सप्ततिकामे नहीं । उनके स्थानपर अन्य ही तीन गाथाएँ पाई जाती हैं । जिनके आद्य चरण इस प्रकार हैं—

णाणावरणे विग्घे (३३) णव छक्कं चत्तारि य (३४) और उवरयन्नन्धे सते (३५) ।

१२—श्वे० सचूर्णि सप्ततिकामे गा० ४५ के बाद 'वारस पण सट्टसया' इत्यादि गाथा अन्तर्भाष्य गाथाके रूपमें दी है । माथमे उमकी चूर्णि भी दी है । यही गाथा दि० सप्ततिकामे भी सवृत्ति पाई जाती है । फिर इसे मूल गाथा क्यों नहीं माना जाय ?

१३—गा० ४५ दि० सप्ततिको और सभाष्य सप्ततिकामें पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध व्युत्क्रमको लिये हुए है । पर ध्यान देनेकी बात यह है कि वह श्वे० सचूर्णि सप्ततिकाके साथ दि० सप्ततिकामे एक-ही पाई जाती है ।

सत्कर्मप्राभृत

सतकम्मपाहुड या सत्कर्मप्राभृत क्या वस्तु है यह प्रश्न अद्यावधि विचारणीय बना हुआ है । श्वे० ग्रन्थकारो और चूर्णिकारोने इनके नामका उल्लेख मात्र ही किया है । पर दि० ग्रन्थकारोसे धवला और जयधवलाकारने बीसो बार सतकम्मपाहुडका उल्लेख किया है और अनेको स्थलोपर कसायपाहुड आदिके अभि-प्रायोसे उसकी विभिन्नताका भी निर्देश किया है । जिससे ज्ञात होता है कि धवला और जयधवलादिके रचे जानेके समय तक यह ग्रन्थ उपलब्ध था और सैद्धान्तिक-परम्परामें अपना विशिष्ट स्थान रखता था ।

यहाँ हम कुछ अवतरण दे रहे हैं जिनसे सिद्ध है कि सतकम्मपाहुडका उपदेश कसायपाहुडके उपदेशसे कितने ही विषयोंमें भिन्न रहा है—

१—धवला पुस्तक १ पृ० २१७ पर नवम गुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली १६ और ८ प्रकृ-तियोंके मत-भेदका उल्लेख आया है । धवलाकार कहते हैं कि सतकम्मपाहुडके उपदेशानुसार पहले सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है और पीछे आठ प्रकृतियोंकी । पर कसायपाहुडका उपदेश है कि पहले आठ प्रकृतियोंकी व्युच्छिन्ति होती है, पीछे सोलहकी । इस बातकी शकाका उद्भावन करते हुए धवलाकार कहते हैं—

“एसो सतकम्मपाहुडउवएसो । कसायपाहुड उवएसो पुण” इत्यादि

(धवला पुस्तक १, पृ० २१७)

२—पुन गिण्य पूछता है कि इन दोनोंमेंसे किसे प्रमाण माना जाय ? सतकम्मपाहुड और कसाय-पाहुड इन दोनोंको ही सूत्र रूपसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है, इन दोनोंमेंसे कोई एक ही सूत्र रूपसे या जिनोक्त वचनरूपसे प्रमाण माना जा सकता है ?

आयरियकहियाण सतकम्म कसायपाहुडाण कथ सुत्तत्तणमिदि चे ण...इत्यादि

(धवला पुस्तक १, पृ० २२१)

अन्तमें धवलाकार ममाधान करते हुए लिखते हैं कि आज वर्तमानकालमें केवली या श्रुतकेवली नहीं हैं जिनसे कि उक्त मत-भेदमेंसे किसी एककी सच्चाई या सूत्रताका निर्णय किया जा सके । दोनों ही ग्रन्थ वीतराग आचार्योंके द्वारा प्रणीत हैं, अतः दोनोंका ही सग्रह करना चाहिए ।

धवलाकारके इस निर्णयमें दो बातें स्पष्ट रूपसे सिद्ध होती हैं—एक तो उनके सामने सतकम्मपाहुडके या उसके उपदेशके प्राप्त होनेकी और दूसरी बात सिद्ध होती है उसकी प्रामाणिकताकी ।

३—एस्थ एदेसि चउण्हमुवक्कमाण जहा सतकम्मपयडिपाहुडे परुविदं, तहा परुवेयव्व । जहा महावंधे परुविद, तहा परुवणा एस्थ किण्ण कीरदे ? ण, तरस पढमसमयव्वन्धमि चेव वावारादो ।

(धवला क पत्र १२६७)

४—सतकम्मपाहुडके विषयमे स्वय ही शका उठाते हुए धवलाकार लिखते हैं—

“पुणो एदेसि चउण्ह पि वन्धणोवक्कमाण अथो जहा सतकम्मपाहुडमि उत्तो तहा वत्तव्वो ? सतकम्मपाहुडमिदि णाम कदम ? महाकम्मपयडिपाहुडस्स चउवीस-अणिभोगहारेसु चउत्थ-छट्ठम-सत्तमणि-योगहाराणि दव्व-काल-भाव-विहाणणामधेयाणि । पुणो तहा महाकम्मपयडिपाहुडस्स पंचमो पयडिणामा-हियारो । तत्थ चत्तारि अणियोगहाराणि अट्कम्माण पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेससत्ताणि परुविय सूचि-दुत्तरपयडिद्विदिअणुभागपदेससत्तादो । एदाणि सतकम्मपाहुड णाम ।

(धवला पुस्तक १५, पजिका पृ० १८, परि०)

५—इसी बातको स्पष्ट करते हुए जयधवलामे भी लिखा है—

“संतकम्ममहाहियारे कदि-वेदणादि चउवीसणियोगहारेसु पडिषट्ठेसु उदओ णाम अत्थाहियादो द्विदि अणुभाग-पदेसाण पयडिसमणिणयाणमुक्कस्साणुक्कस्सजहण्णाजहण्णुदयपरुवणे य वावारा ।”

(जयधवला अ० ५१२)

‘भवोपगहिया’ पदकी व्याख्या करते हुए जयधवलाकार लिखते हैं—‘संतकम्मपाहुडे वित्थारेण भणिदो ।’

(जयध० मैनु० पृ० ६५८)

६—वर्गणा खण्डके पञ्चात् धवलाकारने जिन १८ अनुयोगद्वारोका वर्णन किया है उनके ऊपर किसी अज्ञात आचार्यने पजिका नामक एक वृत्तिको रचा है । उसे रचते हुए वे कहते हैं—“पुणो तेहिंतो सेसट्ठारसाणियोगहाराणि संतकम्मे सव्वाणि परुविदाणि, तो वि तस्साइगभीरत्तादो अत्थविसमपदानमत्थे थोरु-च्चेयण पंजियसरुवेण भणिस्सामो ।” (धवला पुस्तक १५, पृष्ठ १)

इन उल्लेखोंसे सिद्ध होता है कि महाकम्मपयडिपाहुडके जिन शेष १८ अनुयोगद्वारोका पट्खण्डागममे वर्णन नहीं किया जा सका उन्हींके वर्णन करनेवाले मूलसूत्ररूप ग्रन्थका नाम सन्तकम्मपाहुड रहा है ।

७—यह ग्रन्थ गद्य-सूत्रोमे रहा, या पद्य-गाथाओमे, यह एक प्रश्न पाठकोके हृदयमे सहज ही उत्पन्न होता है । धवला और जयधवलाके भीतर जितने भी उल्लेख मिलते हैं उनसे इस विषयपर कोई स्पष्ट प्रकाश नहीं पड़ता है । किन्तु सप्ततिकाचूर्णिमे दिये गये एक उल्लेखसे यह ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ गाथा-निबद्ध रहा है । वह उल्लेख इस प्रकार है—

सन्तकम्मे भणियं-णिट्ठादुगस्स उदओ खीणग खवगे परिच्चज्ज ।

(सप्ततिका चूर्णि गाथा ६)

ऐसा प्रतीत होता है कि पट्खण्डागमके वेदना और वर्गणा खण्डमे जो सूत्रगाथाएँ पाई जाती हैं वे सम्भवत इसी सतकम्मपाहुडकी रही हैं और उन्हे ही आधार बनाकर पट्खण्डागमकारने अपने जीवस्थान आदि अधिकारोकी रचना की है ।

८—धवला पुस्तक ६ के पृष्ठ १०९ पर वीरसेनाचार्य एक शकाका उद्धावन कर उसका समाधान करते हुए लिखते हैं—

‘विगल्लिदियाण बधो उदओ वि दुस्सर चेव होदि त्ति ।’

अर्थात् विकलेन्द्रियोसे दु स्वर प्रकृतिका ही वन्ध होता है और उमका ही उदय रहता है । जो भ्रमर आदिके स्वरको मधुर मानकर विकलेन्द्रिय जीवोके सुस्वर नामकर्मके उदयका प्रतिपादन करते हैं, उनका मत ठीक नहीं है ।

किन्तु चूर्णिमे सतकम्मपाहुडका जो उल्लेख आया है, उममे धवलाकारके मतसे सर्वथा भिन्न या प्रति-कूल ही मत पाया जाता है । वह उल्लेख इस प्रकार है—

“अण्णे भणंति—सुस्सरं विगल्लिंदियाणं गत्थि । तण्ण, संतकम्मे उक्तत्वात् ।”

(सित्तरी चूर्णि० गा० २५ पत्र २१११)

अर्थात् जो लोग यह कहते हैं कि विकलेन्द्रियोके सुस्वर कर्मका उदय नहीं होता है, तो उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सतकम्मपाहुडमे विकलेन्द्रिय जीवोके सुस्वर कर्मका उदय कहा गया है ।

इस शका-समाधानसे यह निष्कर्ष निकलता है कि सतकम्मपाहुडके सभी उपदेश वीरसेनको मान्य नहीं रहे हैं । इस बातकी पुष्टि एक अन्य उद्धरणसे भी होती है—

धवला पुस्तक ९ पृ० ३१८ पर वीरसेनने कहा है—

“एदमप्पाबहुगं सोलसवदिय-अप्पाबहुएण सह विरुज्झदे ” तेणेत्य उवएस लहिय एगदरणिण्णभो कायव्वो । संतकम्मपयडिपाहुडं मोत्तूण सोलसपदिय अप्पाबहुभदडए पहाणे कदे...।”

अर्थात् सतकम्मपाहुडके उपदेशको छोड़कर इस सोलहपदिक उपदेशकी मुख्यतासे इस विवक्षित अल्प-बहुत्वका निर्णय करना चाहिए ।

ऊपर दिये गये अन्तिम दो उल्लेखोंसे यह बात भलीभाँति सिद्ध होती है कि कितनी ही बातोंमें सत-कम्मपाहुडका उपदेश कसायपाहुड, कम्मपयडी आदिके उपदेशोंसे भिन्न रहा है और धवलाकारको जहाँ जो बात उचित जैची है वहाँ उसका समर्थन या निषेध कर दिया है । अथवा तुल्य बलवाली बातोंमें दोनोंको प्रमाण मानकर उनके उपदेशको संग्रह करनेका भी विधान कर दिया है ।

उक्त विवेचनके प्रकाशमें जब हम न० ४ और न० ५ के उद्धरणोंका मिलान करते हैं, तो बहुत-सी बातें विचारणीय हो जाती हैं—

१ महाकम्मपयडि पाहुडके जिन उदय आदि शेष अट्टारह अनुयोग द्वारोको सतकम्मपाहुड माननेकी सूचना धवला और जयधवलाकारने की है, क्या वह ठीक है ?

२ सतकम्मपाहुडके नामसे जितने भी मतभेद धवला, जयधवला और सित्तरी चूर्णि आदिमें मिलते हैं, वे सब क्या उक्त अट्टारह अनुयोग द्वारोंमें उपलब्ध हैं ? यदि नहीं, तो फिर उन्हें संतकम्मपाहुड क्यों माना जाय ?

३ न० ७ पर दिये गये उद्धरणके अनुसार सतकम्मपाहुडको गाथा-निबद्ध होना चाहिए । पर उक्त १८ अनुयोग द्वारोंके जितने भी सूत्र मिलते हैं, वे सब गद्यरूप हैं । पद्यरूपमें उनके भीतर एक भी प्राप्त नहीं है । ऐसी दशामें यही क्यों न माना जाय कि षट्खण्डागमको जो सतकम्मपाहुड मानते हैं उनकी धारणा भ्रम-मूलक है ।

दो दिगम्बर संस्कृत पञ्चसंग्रह

प्राकृत पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर जिस संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचना आचार्य अमितगतिने की है उसका परिचय पहले दिया जा चुका है । उसी प्राकृत पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर श्री श्रीपालसुत डड्डाने अपने संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचना की । अमितगतिके संस्कृत पञ्चसंग्रहके होते हुए उन्हें एक और संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचना क्यों आवश्यक प्रतीत हुई यह एक विचारणीय प्रश्न है । दोनों संस्कृत पञ्चसंग्रहोंका तुलनात्मक अध्ययन करनेपर उक्त प्रश्नका उत्तर हमें मिल जाता है । आचार्य अमितगतिने मूल प्राकृत पञ्चसंग्रहका शब्दश अनुकरण नहीं किया । कितने ही स्थलोपर उन्होंने मूलके अश को छोड़ा है और कितने ही स्थलोपर कुछ नवीन बातोंको जोड़ा भी है । इस बातकी चर्चा हम पहले स्वतन्त्र रूपसे कर आये हैं । अमितगतिकी यह बात सम्भवत डड्डाको अच्छी नहीं लगी और इसीलिए उन्हें एक स्वतन्त्र पद्या-नुवादकी प्रेरणा प्राप्त हुई । डड्डाने सर्वत्र मूलका अनुगमन किया है । जहाँ अमितगतिने अनावश्यक या अतिरिक्त वर्णन किया है उसे प्रायः डड्डाने छोड़ दिया है । हाँ, कहीं-कहीं कुछ आवश्यक बातोंका निरूपण

अवश्य उन्होंने यथास्थान किया है। दोनों संस्कृत पञ्चसंग्रहोंकी तुलना संक्षेपमें इस प्रकार की जा सकती है—

१—कितने ही स्थलोपर स्थानकी उपयुक्तता डड्डाकृत पञ्चसंग्रहमें पाई जाती है वह अमितगतिके पञ्चसंग्रहमें नहीं है।

(क) सज्ञाओंके स्वरूप डड्डाने यथास्थान दिये हैं किन्तु अमितगतिके जीवसमास प्रकरणके अन्तमें दिये हैं।

(ख) साधारण वनस्पतिका लक्षण डड्डाकृत स० पञ्चसंग्रहमें प्रा० पञ्चसंग्रहके समान यथास्थान दिया गया है। किन्तु अमितगतिके उसे यथास्थान न देकर उससे बहुत पहले दिया है। (देखो जीवसमास प्रकरण श्लो० १०५ आदि ।)

(ग) जीवसमास प्रकरणमें ज्ञानमार्गणाका वर्णन डड्डाने प्रा० पञ्चसंग्रहके ही अनुसार किया है। किन्तु अमितगतिके इसे कुछ परिवर्धित किया है, अत मत्यज्ञान आदिका स्वरूप मूलके अनुसार यथास्थान न होकर स्थानान्तरित हो गया है।

२—कितने ही स्थलोपर डड्डाकी रचना अमितगतिकी अपेक्षा अधिक सुन्दर है। देखो मार्गणाओंके नामवाले दोनोंके श्लोक

अमितगति पञ्चसंग्रह श्लोक १, १३२, १३३

डड्डा „ १, ६८

३—डड्डाकी रचना मूल गाथाओंके अधिक समीप है, अमितगतिकी नहीं। देखो प्रथम प्रकरणमें चारो गतियोंका स्वरूप तथा कायमार्गणा और कपायमार्गणाके श्लोक आदि।

४—प्राकृत पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें 'अण्डज पोतज जरजा' इत्यादि गाथा दी हुई है। पर अमितगतिके इसका अनुवाद नहीं दिया, जब कि डड्डाने दिया है। (देखो श्लोक १, ८६)। इसी प्रकार सयममार्गणामें ११ प्रतिमावाली गाथाका भी। (देखो श्लोक १, १७१)।

५—जीवसमासकी ७४वीं मूल गाथाका पद्यानुवाद जितना डड्डाका मूलके समीप है उतना अमितगतिका नहीं। (देखो १, १५१ और १, १८७)।

६—अमितगतिके जीवसमासकी 'साहारणमाहारो' इत्यादि तीन गाथाओंका (प्रकरण १, गाथा ८७ आदि) जहाँ स्पर्श भी नहीं किया, वहाँ डड्डाने उनका सुन्दर पद्यानुवाद किया है। समझमें नहीं आता कि अमितगतिके उक्त गाथाओंको क्यों छोड़ दिया।

७—उक्त स्थलोपर अमितगतिके गोम्मटसार जीवकाण्डकी 'उववाद मारणतिय' इत्यादि गाथाका आश्रय लेकर उसका अनुवाद किया है जबकि जीवसमासके मूलमें वह गाथा नहीं है और इसीलिए डड्डाने उसका अनुवाद नहीं किया।

८—कितने ही स्थलोपर डड्डाने अमितगतिकी अपेक्षा कुछ विषयोंको बढ़ाया भी है। यथा —

(क) प्रथम प्रकरणमें धर्मोंका स्वरूप।

(ख) योगमार्गणाके अन्तमें विक्रियादिका स्वरूप।

९—अमितगतिके 'मन पर्ययदर्शन क्यों नहीं होता' इस प्रश्नपर भी प्रकाश डाला है। यत यह बात मूल गाथामें नहीं है अत डड्डाने उसपर कुछ प्रकाश नहीं डाला। (देखो दर्शनमार्गणा प्रकरण १)।

१०—अमितगतिके प्रथम प्रकरणमें सम्यक्त्व मार्गणाके भीतर गोम्मटसार कर्मकाण्डके आधारसे ३६३ पाखण्डियोंकी चर्चा की है। पर मूलमें न होनेसे डड्डाने उसकी चर्चा नहीं की है।

११—अमितगतिके तीसरे प्रकरणके श्लोक सख्या ८२, ८७ आदिके पश्चात् जिस बातको संस्कृत गद्यके द्वारा स्पष्ट किया है वैसा डड्डाने नहीं किया। सम्भवत इसका कारण यह ज्ञात होता है कि वे मूलसे बाहरकी बातको नहीं कहना चाहते हैं।

दोनों संस्कृत पञ्चसंग्रहोंके सम्बन्धमें कुछ विचारणीय बातें

१—अमितगतिने पाँचवें प्रकरणमें पृष्ठ १७४के नीचे 'उक्त च' कहकर 'असम्प्राप्त' इत्यादि १६५ वाँ श्लोक दिया है। ठीक इसी प्रकारसे इसी स्थलपर डड्डाने श्लोक १४८ के नीचेवाली गद्यके पश्चात् 'उक्त च' कहकर "अयश की०" इत्यादि अमितगतिसे भिन्न ही श्लोक दिया है।

यहाँ विचारणीय बात यह है कि जब दोनों ही श्लोक अर्थ-साम्य रखते हुए भी शब्द-साम्य नहीं रखते, तो फिर 'उक्त च'का क्या अर्थ है? क्या यह 'मक्षिकास्थाने मक्षिकापात' नहीं है? यही बात आगे भी दृष्टिगोचर होती है।

२—अमितगतिके संस्कृत पञ्चसंग्रहके पृष्ठ २०४ पर 'एतदुक्तम्' कहकर 'चतु षष्ठ्या' इत्यादि ३५० वाँ श्लोक है। तथैव डड्डाके पञ्चसंग्रहमें सप्ततिकामें श्लोकाङ्क ३१७ 'उक्तं च' कहकर दिया गया है। खास बात यह है कि अर्थ-साम्य होते हुए भी दोनों श्लोकोमें शब्द-साम्य नहीं है।

३—डड्डाकृत सप्ततिकाके श्लोक सख्या २४९ के पश्चात् 'अत्र वृत्तिश्लोका पञ्च' वाक्य दिया है। उसका आधार क्या है? यह विचारणीय है। यदि इन श्लोकोका आधार पञ्चसंग्रहकी संस्कृत वृत्ति ही है तो यह सिद्ध है कि डड्डा संस्कृत टीकाकारके पीछे हुए हैं।

४—अमितगतिसे डड्डाके पञ्चसंग्रहमें एक विशेषता यह भी है कि जहाँ अमितगतिने सप्ततिकामें पृष्ठ २२१ पर श्लोकाङ्क ४५३ में शेष मार्गणाओंके वन्धादि-त्रिको न कहकर मूलके समान ही 'पर्यालोच्यो यथागम' कहकर छोड़ दिया है, वहाँ डड्डाने श्लोकाङ्क ३९० में 'वन्धादित्रय नेय यथागम' कहकर भी उसके आगे समस्त मार्गणाओंमें उसे आधार बनाकर वन्धादि-त्रिकके पूरे स्थानोको गिनाया है जो कि प्राकृत पञ्चसंग्रहके निर्देशानुसार होना ही चाहिए। अमितगतिने उन्हें क्यों छोड़ दिया? यह बात विचारणीय है।

सभाष्य पञ्चसंग्रह

पञ्चसंग्रहमें सगृहीत पाँचों प्रकरणोंके मूल रूपोंको देखनेपर सहजमें ही यह अनुभव होता है कि प्रत्येक प्रकरणकी मूल-गाथा-सख्या अल्प रही है और संग्रहकारने उनपर भाष्यगाथाएँ रचकर उन्हें पल्लवित या परिवर्धित कर प्रस्तुत सकलनका नाम 'पञ्चसंग्रह' रखा है। प्रस्तुत ग्रन्थमें संग्रहकारने जिन पाँच प्रकरणोंका संग्रह किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—१ जीवसमास, २ प्रकृतिसमुत्कीर्तन, ३ कर्मस्तव, ४ शतक और ५ सप्ततिका। इनमेंसे अन्तिम तीन प्रकरण अपने मूलरूप और उसकी प्राकृत चूर्ण एव संस्कृत टीकाओंके साथ विभिन्न मस्थाओंसे प्रकाशित हो चुके हैं। उनके साथ जब हम प्रस्तुत ग्रन्थमें सगृहीत इन प्रकरणोंका मिलान करते हैं, तो स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि संग्रहकारने किस प्रकरणपर कितनी भाष्य-गाथाएँ रची हैं। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कर्मस्तवको कर्मवन्धस्तव या वन्धस्तव भी कहते हैं। श्वे० सम्प्रदायमें इसकी गणना प्राचीन कर्म-ग्रन्थोंमें की जाती है। अभी तक भी इसके संग्रहकर्ता या रचयिताका नाम अज्ञात है। श्वे० सस्थाओंकी ओरसे जो इसके संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उनमें इसकी गाथा-सख्या ५५ पाई जाती है। और प्रस्तुत ग्रन्थके अन्तमें मुद्रित प्राकृतवृत्ति-युक्त पञ्चसंग्रहमें इसकी गाथा-सख्या ५४ पाई जाती है। किन्तु इसपर रची गई भाष्य-गाथाओंको देखते हुए इस प्रकरणकी मूल-गाथा-सख्या ५२ ही सिद्ध होती है, अतः हमने तदनुसार ही गाथाके प्रारम्भमें यही मूल-गाथा-सख्या दी है। संग्रहकारने सभी मूल गाथाओंपर भाष्य-गाथाएँ नहीं रची हैं, किन्तु उन्हें जो गाथाएँ क्लृप्त या अर्थ-बहुल प्रतीत हुईं, उनपर ही उन्होंने भाष्य-गाथाएँ रची हैं। इस प्रकार १२ गाथाएँ ही इस प्रकरणमें भाष्य-गाथाओंके रूपमें उपलब्ध होती हैं।

इसी प्रकरणके अन्तमें एक चूलिका प्रकरण भी है जो श्वे० सस्थाओंसे प्रकाशित वन्धस्तवमें नहीं पाया जाता। प्राकृतवृत्तिमें उसकी गाथा-सख्या ३४ है। किन्तु सभाष्य-कर्मस्तवमें चूलिका रूपसे केवल १३ गाथाएँ ही मिलती हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इन दोनों चूलिकाओंमें विषय-गत समता होते हुए भी गाथागत कोई

समानता नहीं है। प्रत्युत ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त १३ गाथाओंको सामने रखकर उनके भाष्यरूपमें ३४ गाथाओंका निर्माण किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थके चौथे प्रकरणका नाम शतक है। यत इसकी मूल-गाथाएँ १०० ही रही हैं, अतः इसका नाम गाथा-संख्याके आधारपर शतक ही प्रसिद्ध या प्रचलित हो गया है। श्वे० सस्याओंसे मुद्रित शतक प्रकरणमें इसकी गाथा-संख्या १०६ पाई जाती है। प्राकृतवृत्तिके अनुसार इसकी गाथा-संख्या १३९ है। किन्तु सभाष्य शतकके अनुसार इसकी गाथा-संख्या १०५ ही सिद्ध होती है। यद्यपि दोनों सम्प्रदायोंके अनुसार इस प्रकरणकी मूल-गाथाएँ १०० से अधिक मिलती हैं, पर ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भकी उत्थानिका-गाथा और अन्तकी उपसहारात्मक-गाथाओंको न गिननेपर विवक्षित विषयकी प्रतिपादक गाथाओंको लक्ष्य करके 'शतक' यह नाम प्रत्यात हुआ है। भाष्यकारने इन मूल-गाथाओपर जो भाष्य-गाथाएँ रची हैं, उन्हें मिलाकर इस प्रकरणकी गाथा-संख्या ५२२ हो जाती है, जिसका यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रकरणकी भाष्य-गाथा-संख्या ४१७ है।

पाँचवें प्रकरणका नाम सप्ततिका है। प्राकृत भाषामें इसे सित्तरी या सत्तरी भी कहते हैं। इस प्रकरणका भी नाम-करण उसकी गाथा-संख्याके आधारपर प्रसिद्ध हुआ है। सित्तरी या सप्ततिका नामको देखते हुए इसकी मूल-गाथा-संख्या ७० ही होनी चाहिए। श्वे० सस्याओंसे प्रकाशित प्रतियोंके अनुसार इसकी गाथा-संख्या ७२ है। प्राकृतवृत्तिमें उसकी गाथा-संख्या ९९ पाई जाती है। परन्तु भाष्यगाथाकारके अनुसार ७२ ही सिद्ध होती है। इसकी यदि आदि और अन्तकी उत्थानिका और उपसहार-गाथा रूप २ गाथाओंको छोड़ दिया जावे, तो विवक्षित अर्थकी प्रतिपादन करनेवाली ७० गाथाएँ ही रह जाती हैं और तदनुसार इसका सित्तरी या सप्ततिका नाम भी मार्थक हो जाता है। भाष्य-गाथाकारने इन मूल-गाथाओपर जो भाष्य-गाथाएँ रची हैं, उनके समेत इस प्रकरणकी कुल गाथा-संख्या ५०७ है और इसके अनुसार भाष्य-गाथाओंकी संख्या ४३५ सिद्ध होती है।

उक्त दोनों प्रकरणोंपर ही मगहकारने सबसे अधिक भाष्य-गाथाओंकी रचना की है। यत विषयकी दृष्टिसे ये दोनों प्रकरण ही दुर्गम एवं अर्थ-वहुल रहे हैं, अतः उनपर अधिक भाष्य-गाथाओंका रचा जाना स्वाभाविक ही है।

पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणका नाम जीवसमास है। इस नामका एक ग्रन्थ श्री ऋषभदेवजी केशरीमल-जी श्वेताम्बर सस्या रत्नलामकी ओरसे सन् १९२८ में एक संग्रहके भीतर प्रकाशित हुआ है, जिसकी गाथा-संख्या २८६ है। नाम-साम्य होते हुए भी अधिकांश गाथाएँ न विषय-गत समता रखती हैं और न अर्थगत समता ही। गाथा-संख्याकी दृष्टिसे भी दोनोंमें पर्याप्त अन्तर है। फिर भी जितना कुछ साम्य पाया जाता है, उनके आधारपर एक बात सुनिश्चित रूपसे कही जा सकती है कि श्वे० सस्याओंसे प्रकाशित जीवसमास प्राचीन है। पञ्चसंग्रहकारने उसके द्वारा सूचित अनुयोग द्वारोंमेंसे १-२ अनुयोग द्वारके आधारपर अपने जीवसमास प्रकरणकी रचना की है। इसके पक्षमें कुछ प्रमाण निम्न प्रकार हैं—

१ श्वे० सस्याओंसे प्रकाशित जीवसमासको 'पूर्वभूतसूरिसूत्रित' माना जाता है। इसका यह अर्थ है कि जब जैन परम्परामें पूर्वोंका ज्ञान विद्यमान था, उस समय किसी पूर्ववेत्ता आचार्यने इसका निर्माण किया है। ग्रन्थ-रचनाके देखनेसे ऐसा ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ भूतबलि और पुष्पदन्तसे भी प्राचीन है और वह पट्खण्डागमके जीवदृष्टाण नामक प्रथम खण्डकी आठो प्ररूपणाओंके सूत्र-निर्माणमें आधार रहा है, तथा यही ग्रन्थ प्रस्तुत पञ्चसंग्रहके जीवसमान नामक प्रथम प्रकरणका भी आधार रहा है। इसकी साक्षीमें उक्त ग्रन्थकी एक गाथा प्रमाण रूपमें उपस्थित की जाती है जो कि श्वे० जीवसमासमें मगलाचरणके पश्चात् ही पाई जाती है। वह इस प्रकार है—

णिकखेव-णिरुत्तोहि य छहिं अट्ठहिं अणुभोगदारेहिं ।

गइभाइमग्गणाहि य जीवसमासाणुगंतव्वा ॥२॥

इसमें वतलाया गया है कि नामादि निक्षेपोंके द्वारा, निरुक्तिके द्वारा, निर्देश, स्वामित्व आदि छह

और सत्, सख्या आदि आठ अनुयोग-द्वारोंसे तथा गति आदि चौदह मार्गणा-द्वारोंसे जीवममासको जानना चाहिए । इसके पञ्चात् उक्त सूचनाके अनुसार ही सत्-सख्यादि आठो प्ररूपणाओ आदिका मार्गणास्थानोंमें वर्णन किया गया है । इस जीवसमास प्रकरणकी गाथा-सख्याकी स्वल्पता और जीवदृष्टाणके आठो प्ररूपणाओकी सूत्र-सख्याकी विशालता^१ ही उसके निर्माणमें एक दूसरेकी आधार-आधेयताको सिद्ध करती है ।

जीवसमासकी गाथाओका और पट्खण्डागमके जीवस्थानखण्डकी आठो प्ररूपणाओका वर्णन-क्रम विषय-की दृष्टिसे कितना समान है, यह पाठक दोनोंका अध्ययन कर स्वयं ही अनुभव करें ।

प्रस्तुत पञ्चसग्रहके जीवसमास प्रकरणके अन्तमें उपसहार करते हुए जो १८२ अक्ष-संख्यावाली गाथा पाई जाती है, उससे भी हमारे उक्त कथनकी पुष्टि होती है । वह गाथा इस प्रकार है—

निक्खेवे एयद्धे णयप्पमाणे निरुक्ति-अणिओगे ।

मग्गइ वीसं मेए सो जाणइ जीवसम्भावं ॥

अर्थात् जो पुरुष निक्षेप, एकार्थ, नय, प्रमाण, निरुक्ति और अनुयोगद्वारोंसे मार्गणा आदि बीस भेदोंमें जीवका अन्वेषण करता है, वह जीवके यथार्थ सद्भाव या स्वरूपको जानता है ।

पाठक स्वयं ही देखें कि पहली गाथाकी बातको ही दूसरी गाथाके द्वारा प्रतिपादित किया गया है । केवल एक अन्तर दोनोंमें है । वह यह कि पहली गाथा उक्त प्रकरणके प्रारम्भमें दी है, जब कि दूसरी गाथा उस प्रकरणके अन्तमें । पहले प्रकरणमें प्रतिज्ञाके अनुसार प्रतिपाद्य विषयका प्रतिपादन किया गया है, जब कि दूसरे प्रकरणमें केवल एक निर्देश अनुयोग द्वारसे १४ मार्गणाओंमें जीवकी विंशतिविधा सत्प्ररूपणा की गई है और शेष सख्यादि प्ररूपणाओको न कहकर उनके जाननेकी सूचना कर दी गई है ।

२ पृथिवी आदि पट्कायिक जीवोंके भेद प्रतिपादन करनेवाली गाथाएँ भी दोनों जीवसमासोंमें बहुत कुछ समता रखती हैं ।

३ प्राकृत वृत्तिवाले जीवसमासकी अनेक गाथाएँ उक्त जीवसमासमें ज्यो-की-त्यो पाई जाती हैं ।

उक्त समताके होते हुए भी पञ्चसग्रहकारने उक्त जीवसमास-प्रकरणकी अनेक गाथाएँ जहाँ सकलित की हैं, वहाँ अनेक गाथाएँ उनपर भाष्यरूपसे रची हैं और अनेक गाथाओका आगमके आधारपर स्वयं भी स्वतन्त्र रूपसे निर्माण किया है । ऐसी स्थितिमें उनकी निश्चित सख्याका वतलाना कठिन है । प्राकृत वृत्तिवाले जीवसमासमें गाथा-सख्या १७६ और सभाष्य पञ्चसग्रहमें २०६ पाई जाती है । इनमें कई गाथाएँ एकसे दूसरेमें मर्वया भिन्न एवं नवीन भी पाई जाती हैं, जिनका पता पाठकोको उनका अध्ययन करनेपर स्वयं लग जायगा ।

पञ्चसग्रहके दूसरे प्रकरणका नाम प्रकृति समुत्कीर्तन है । प्रकृतियोंके नामोंका समुत्कीर्तन गद्यके द्वारा ही किया गया है । यह गद्य-भाग पट्खण्डागमके जीवदृष्टाण खण्डके अन्तर्गत प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकारके साथ शब्दशः समान है और दोनोंकी स्थिति देखते हुए यह कहा जा सकता है कि पञ्चसग्रहकारने वहाँसे ही अपने इस प्रकरणका सग्रह किया है । इस प्रकरणके आदि और अन्तमें जो १२ गाथाएँ पायी जाती हैं उनमेंसे कुछ तो पूर्व परम्परागत हैं और शेषका निर्माण पञ्चमग्रहकारने किया है । प्राकृतवृत्तिके इस प्रकरणमें गद्य-भाग तो समान ही है । गाथाओंमें प्रारम्भ की ४ गाथाओको छोड़कर कोई समता नहीं है । उसमेंकी अनेक गाथाएँ इधर-उधरसे सकलित की गईं ज्ञात होती हैं, जब कि पहलेकी गाथाएँ सग्रहकार-द्वारा रची गईं प्रतीत होती हैं । श्वे० सम्प्रदायमें इस नामवाला कोई प्रकरण देखनेमें नहीं आया । हाँ, इस विषयके जो कर्म विपाक आदि प्रकरण रचे गये हैं, ये सब अर्वाचीन हैं और गाथाओंमें हैं । अतः उनके साथ प्रस्तुत सग्रहकी रचना-समानताकी बात करना व्यर्थ है ।

भाष्य गाथाओके साथ समस्त गाथाओकी सख्या १३२४ है । गद्य-भाग इससे पृथक् है । जिसका

१ जीवसमासकी गाथासंख्या २८६ है, जब कि पट्खण्डागमके जीवदृष्टाणकी सूत्रसंख्या ढाई हजारके लगभग है ।

कि परिमाण ५०० श्लोकोसे भी अधिक है। पाँचों ही प्रकरणोंके प्रारम्भमें स्वतन्त्र मङ्गलाचरण किया गया है और उसके साथ ही प्रतिपाद्य विषयके निरूपणकी प्रतिज्ञा की गई है।

पाँचों प्रकरणोंकी उपर्युक्त स्थितिमें यह बात असंदिग्ध रूपसे सिद्ध हो जाती है कि प्रस्तुत ग्रन्थमें संगृहीत पाँचों ही प्रकरण संग्रहकारको पूर्व परम्परासे प्राप्त थे और उन्हें संक्षिप्त एवं अर्थ-बोधकी दृष्टिसे दुर्गम देखकर उन्होंने उनपर भाष्य-गाथाएँ रची, और उन पूर्वगित पाँचों प्रकरणोंके वही नाम रखकर अपने संग्रहको पञ्चसंग्रहका रूप दिया। पर जहाँ तक मेरी जानकारी है, संग्रहकार या भाष्य-गाथाकारने अपने शब्दोंमें 'पञ्चसंग्रह' ऐसा नाम कहीं भी प्रकट नहीं किया है। उक्त प्रकरण एक साथ एक ही आचार्यके द्वारा भाष्य-गाथाओंके साथ निबद्ध होनेके पश्चात् ही परवर्ती विद्वानोंके द्वारा 'पञ्चसंग्रह' नाम प्रचलित हुआ प्रतीत होता है।

पञ्चसंग्रहकार कौन ?

प्रस्तुत ग्रन्थके पाँचों मूल प्रकरणोंके रचयिताओंके नाम अभी तक अज्ञात ही हैं। हाँ, श्वेताम्बर विद्वान् शिवशर्मको शतकका निर्माता मानते हैं। शतककी मुद्रित चूर्णिके प्रारम्भिक अंशसे भी इस बातकी पुष्टि होती है। किन्तु शेष चारों प्रकरणोंके रचयिताओंका कुछ भी पता नहीं चलता है। साथ ही जिन शतक और सप्ततिका इन दो प्रकरणोंपर प्राकृत चूर्णियाँ उपलब्ध हैं, उनके रचयिताओंका भी अभी तक कोई पता नहीं है। इससे पञ्चसंग्रहके मूल प्रकरणों और उनकी चूर्णियोंकी प्राचीनता, प्रामाणिकता और उभय सम्प्रदायमें मान्यता सिद्ध है।

पञ्चसंग्रहके ऊपर भाष्य-गाथाएँ रचनेवाले और पाँचों प्रकरणोंको एकत्र निबद्ध करनेवाले आचार्यका नाम भी अभी तक अज्ञात ही है, जब तक कोई आधार या प्रमाण स्पष्ट रूपसे सामने नहीं आ जाता है, तब तक उसके कर्त्तके विषयमें-कल्पना करना कोरी कल्पना ही समझी जायगी। इसलिए उसपर विचार न करके यह विचार करना उचित होगा कि पञ्चसंग्रहके ऊपर भाष्य-गाथाएँ रचनेवाले आचार्य किस समयमें हुए हैं ?

प्रस्तुत ग्रन्थके पाँचों मूल प्रकरणोंकी रचना कर्मप्रकृति या कम्मपयडीके आस-पास होना चाहिए। और यत कर्मप्रकृतिके रचयिता शिवशर्म ही शतकके भी रचयिता माने जाते हैं, और इनपर रची गई चूर्णियाँ भी यतः इनके कुछ समय बाद ही रची गईं प्रतीत होती हैं, अतः उन मूल प्रकरणोंकी रचनाका काल भी शिवशर्मके लगभगका माना जा सकता है। इस प्रकार शिवशर्मके कालको मूल पञ्चसंग्रहकारके कालकी पूर्वावधि कहा जा सकता है।

धवला टीकामें जीवसमास नामके साथ जिस 'छप्पचणवविहाण' इत्यादि गाथाका उल्लेख आया है। वह गाथा ज्यो-की-न्यो प्रस्तुत ग्रन्थके जीवसमास प्रकरणमें पायी जाती है, अतः उक्त प्रकरणका रचना-काल धवला टीकासे पूर्व होना चाहिए। यत स्वे० पञ्चसंग्रहकार चन्द्रपिके सामने दि० सभाष्य पञ्चसंग्रह विद्यमान था, जैसा कि हम पहले सिद्ध कर आये हैं, अतः उनके पूर्व इसकी रचनाका होना सिद्ध है। शतक चूर्णिके एक स्थलपर जो गाथा-गत पाठ-भेदका उल्लेख किया गया है, उससे सिद्ध होता है कि उक्त चूर्णिके पूर्व सभाष्य पञ्चसंग्रह रचा जा चुका था। शतक-गत वह गाथा इस प्रकार है—

आठक्कस्स पएसस्स पच मोहस्स सत्त ठाणाणि ।

सेसाणि तणुसामो बंधइ उक्कोसगे जोगे ॥६३॥

इस गाथाकी चूर्णिके "अन्ने पढति आठक्कस्स छत्ति" -- अन्ने पढति मोहस्स णव उ ठाणाणि" इस प्रकारसे आयुर्कर्म और मोहकर्म सम्बन्धी स्थानोंके दो पाठ-भेद आये हैं। ये दोनों पाठ-भेद दि० पञ्चसंग्रहके चौथे शतक प्रकरणमें इस प्रकार पाये जाते हैं—

१ केष कय ? "अणेगवायसमालद्धविजण्ण सिवसम्मायरियणामधेज्जेण कयं इत्यादि, (शतक चूर्णि गा० १, पत्र १ । २ धवला पु० ४, पृ० ३१५ ।

आडक्कस्स पदेसस्स छच्च भोहस्स णव दु ठाणाणि ।

सेसाणि तणुक्काओ बध्ह उक्कोसगे जोगे ॥४,५०२॥

यद्यपि शतकचूर्णिके निर्माणका काल अभी तक निश्चित नहीं है, तथापि वह चूर्ण-युगमें ही रची गई है, इतना तो निश्चित है और इसी आधारपरसे उसे कम-से-कम विक्रमकी सातवीं शताब्दीसे पूर्वकी तो मान ही सकते हैं ।

उक्त आधारोंके बलपर इतना कहा जा सकता है कि सभाष्य प्राकृत पञ्चसग्रहकी रचना विक्रमकी पाँचवीं और आठवीं शताब्दीके मध्यवर्ती कालमें हुई है ।

प्राकृतवृत्तिगत पञ्चसंग्रह

प्रस्तुत ग्रन्थमें सभाष्य पञ्चसग्रहके पश्चात् प्राकृत वृत्ति-सहित पञ्चसंग्रह भी मुद्रित है । प्रकरणोंके नाम वे ही हैं, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है । किन्तु उनके क्रममें अन्तर है और गाथा-सख्यामें भी । गाथा-सख्याका अन्तर पहले बतला आये हैं । क्रमका अन्तर यह है कि इसमें पहले प्रकृति समुत्कीर्त्तन, पुन कर्मस्तव और तदनन्तर जीवसमास प्रकरण निबद्ध किये गये मिलते हैं । अन्तिम दोनो प्रकरण दोनोमें समान-रूपसे चौथे और पाँचवे स्थानपर निबद्ध है । तीसरा अन्तर अन्तिम प्रकरणके मंगलाचरणका है, जब कि प्रथम चार प्रकरणोंकी मंगल-गाथाएँ समान हैं ।

उपर्युक्त स्थितिको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत-वृत्तिकारको उक्त प्रकरण स्वतन्त्र रूपसे ही अपने स्वतन्त्र पाठोंके साथ प्राप्त हुए और उन्होंने पञ्चसग्रहके अन्यत्र प्रसिद्ध बध्य, बन्धेश, बन्धक, बन्ध-कारण और बन्धभेद इन पाँच द्वारोंके अनुसार उनका सकलन कर व्याख्या करना उचित समझा है । गाथाओंके सकलनको देखते हुए ऐसा लगता है कि वृत्तिकारको सभाष्य पञ्चसग्रह नहीं उपलब्ध हुआ और इसीलिए उन्होंने प्राचीन चूर्णियोंकी शैलीमें ही अपनी प्राकृत वृत्तिकी रचना की है ।

प्राकृत वृत्ति और वृत्तिकार

इस वृत्तिके रचयिता श्री पद्मनन्दि मुनि हैं, यह बात शतक नामक चौथे प्रकरणके मध्यमें दी गई गाथाओंसे ज्ञात होती है । वे गाथाएँ इस प्रकार हैं—

जह जिणवरेहिं कहियं गणहरदेवेहि गथिय सम्म ।

आयरियकमेण पुणो जह गगणहपवाहुव्व ॥

तह पउमणादिमुणिणा रइय भवियाण बोहणट्ठाए ।

ओघादेसेण य पयढीण बधसामित्त ॥

छउमत्थयाय रइयं जं इत्थ हविज पवयणविरुद्धं ।

तं पवयणाहकुसला सोहंतु मुणी पयत्तेण ॥

इन गाथाओंका भाव यह है कि जो कर्म-प्रकृतियोंका बन्धस्वामित्व जिनेन्द्रदेवने कहा, जिसे गणघर देवोंने गूँथा और जो गगानदीके प्रवाहके समान आचार्य-परम्परासे चला आ रहा है, उसे मुक्त पद्मनन्दी मुनिने भव्योंके प्रबोधनार्थ रचा है । इसमें मेरे छद्मस्थ होनेके कारण जो कुछ भी प्रवचन-विरुद्ध कहा गया हो, उसे प्रवचनमें कुशल मुनिजन सावधानीके साथ शुद्ध करें ।

इस उल्लेखके अतिरिक्त उक्त वृत्तिमें अन्यत्र कोई दूसरा उल्लेख नहीं मिलता है, जिससे कि उसके रचयिताकी आचार्य-परम्परा आदिके विषयमें कुछ विशेष जाना जा सके । हाँ, वृत्तिमें उद्धृत पद्योंके आधार-पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे अकलङ्कदेवसे पीछे हुए हैं, क्योंकि उनके लघीयस्त्रयकी 'ज्ञान प्रमाणमित्याहु.' इत्यादि कारिका पाई जाती है ।

पद्मनन्दि नामके अनेक मुनि हुए हैं । उनमेंसे किसने इस प्राकृतवृत्तिको रचा, यह यद्यपि निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है, तथापि जम्बूद्वीपपण्णत्तीके रचयिता पद्मनन्दिकी ही अधिक सम्भावना

दिखती है। साधनाभावसे हम कोई निर्णय करनेमें असमर्थ हैं। अनुमानतः विक्रमकी दशवीं शताब्दीसे पूर्वमे ही इसका रचा जाना अधिक मभव है।

वृत्तिकारने अपनी रचनामें कसायपाहुडकी चूर्णि और धवला टीकाकी शैलीका अनुसरण किया है। विषय-प्रतिपादनको देखते हुए यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि वे जैनमिद्धान्तके अच्छे वेत्ता रहे हैं। उनके द्वारा दी गई अनेक परिभाषाएँ अपूर्व हैं, क्योंकि उनका अन्यत्र दर्शन नहीं होता है। वृत्तिकारने सभी गाथाओपर वृत्ति नहीं लिखी है, किन्तु चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभके समान उन्हें जिस गाथापर कुछ कहना अभीष्ट हुआ, उसीपर ही उन्होंने लिखा है। यतिवृषभके समान ही उन्होंने गाथाओंकी समुत्कीर्तना कर 'पुत्तो सव्वपयडीण बन्धवुच्छेदो कादव्वो भवदि । तं जहा'—इत्यादि वाक्योंको लिखा है।

प्राकृतवृत्तिके आदिमे ग्रन्थकी उत्थानिकाके रूपमें जो सन्दर्भ दिया हुआ है, वह धवला—जयधवलाकी उत्थानिकाका अनुकरण करते हुए भी अपनी बहुत कुछ विशेषता रखता है। पर इसके विषयमे एक बात खासतौरसे विचारणीय है और वह यह कि जहाँ धवला या जयधवलाकार उम प्रकारकी उत्थानिकाके अन्त-में प्रतिपाद्य-विवक्षित ग्रन्थका नामोल्लेख करके उसके नामकी सार्थकता आदिका निरूपण करते हैं, वहाँ इस प्राकृतवृत्तिमें पञ्चसंग्रहका कोई नामोल्लेख आदि नहीं पाया जाता। प्रत्युत 'आराधना'का नाम पाया जाता है। वह इस प्रकार है—

‘तत्थ गुणणाम आराहणा इदि किं कारणं ? जेण आराधिज्जते अणभा दसण-णाण-चरित्त-तवाणि त्ति^१ ?’

इस उद्धरणमें स्पष्टरूपसे 'आराधना'का नाम दिया गया है और उसकी निरुक्तिके द्वारा यह भी बतला दिया गया है कि जिसके द्वारा दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य और तपकी आराधना की जाती है उसे आराधना कहते हैं।

इस उल्लेखको देखते हुए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इनके पूर्वका और आगेका समस्त उत्थानिका-सन्दर्भ 'भगवती आराधना'की उस प्राकृत टीकाका है, जिसका उल्लेख अपराजित सूरिने अपनी विजयोदया टीकामें अनेक बार किया है। दुर्भाग्यसे आज वह उपलब्ध नहीं है, फिर भी इसे कम मौभाग्य नहीं माना जा सकता कि इस रूपमे उसकी 'वानगी' या 'नमूना' हमें देखनेको मिल गया है।

भगवती आराधनामे दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य और तप इन चारो ही आराधनाओंका वर्णन किया गया है, यह उसके मगलाचरण एवं उसके आगेवाली गाथासे ही सिद्ध एवं सर्वविदित है। भ० आराधनाकी वे दोनो गाथाएँ इस प्रकार हैं—

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउविह आराहणा फल पत्ते ।

वंदित्ता अरहत्ते वोच्छ आराहणा कमसो ॥१॥

उज्जीवणमुज्जवणं णिव्वहण साहणं च णिच्छरण ।

दसण-णाण-चरित्त-तवाणमाराहणा भणिया ॥२॥

ऐसा ज्ञात होता है कि पञ्चसंग्रहकी प्रतिलिपि करनेवाले किसी लेखकको उक्त भ० आराधनाकी प्राकृत टीकाका उक्त अंश उपलब्ध हुआ और उसे उमने लिखकर उमके आगे सवृत्ति पञ्चसंग्रहकी प्रतिलिपि करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे वे दोनो एक ही ग्रन्थके अंश समझे जाने लगे। यहाँ इतना और ज्ञातव्य है कि अभी तक प्राकृत वृत्तिकी एक ही प्रति मिली है। यदि आगे किसी अन्य भण्डारसे कोई दूसरी प्रति उपलब्ध होगी, तो उससे उक्त बातपर और भी अधिक प्रकाश पड सकेगा।

१ देखो प्रस्तुत ग्रन्थके पृष्ठ ५६६ आदि।

२ देखो प्रस्तुत ग्रन्थका पृष्ठ ५४३।

दोनों संस्कृत पञ्चसंग्रहोंका रचना-काल

प्राकृत सभाष्य पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर दि० सम्प्रदायमें दो संस्कृत पञ्चसंग्रह रचे गये हैं—
एकके रचयिता हैं अनेक ग्रंथोंके निर्माता आ० अमितगति और दूसरेके निर्माता हैं श्रीपालसुत ढड्डा ।
इनमें पहलेवाला पञ्चसंग्रह भाणिकचंद ग्रन्थमालासे सन् १९२७ में प्रकाशित हो चुका है । आ० अमितगति-
का समय निश्चित है । उन्होंने अपने इस स० पञ्चसंग्रहकी रचना मसूतिकापुरमें वि० स० १०७३ में की
है, यह बात उसमें दी गई अन्तिम प्रशस्तिके इस श्लोकसे सिद्ध है—

त्रिसप्तत्यधिकेऽब्दानां सहस्रे शकविद्विषः ।

मसूतिकापुरे जातमिदं शास्त्रं मनोरमम् ॥६॥

प्रा० पञ्चसंग्रहके साथ अमितगतिके इस स० पञ्चसंग्रहको रखकर तुलना करनेपर यह स्पष्ट ज्ञात हो
जाता है कि उन्होंने प्राकृत पञ्चसंग्रहका ही संस्कृत पद्यानुवाद किया है । पर आश्चर्यकी बात तो यह है कि
उन्होंने समग्र ग्रन्थ भरमें कही ऐसा एक भी संकेत नहीं किया, कि जिससे उक्त बात ज्ञात हो सके । इसके
विपरीत उन्होंने ग्रन्थके प्रत्येक प्रकरणके अन्तमें श्लेषरूपसे अपने नामको अवश्य व्यक्त किया है ।

यथा—

१ सोऽश्नुतेऽमितगतिः शिवास्पदम् । (१,३५३)

२ याति स भव्योऽमितगतिदृष्टम् ॥ (२,४८)

३ ज्ञानात्मक सोऽमितगत्युपैति । (३,१०६)

४ सिद्धिमबन्धोऽमितगतिरिष्टाम् । (४,३७५)

५ सोऽस्तु तेऽमितगतिः शिवास्पदम्-१ (५,४८४)

इस सबके पश्चात् प्रशस्तिमें तो स्पष्ट ही कहा है कि मसूतिकापुरमें इस शास्त्रकी रचना हुई है ।

आ० अमितगति-द्वारा रचे गये अन्य ग्रन्थोंमें भी यही बात दृष्टिगोचर होती है । क्या अपने नाम-
प्रसिद्धिके व्यामोहमें दूसरेके नामका अपलाप पाप नहीं है ? यह ठीक है कि प्रा० पञ्चसंग्रहके रचयिता अज्ञात
आचार्य रहे हैं । परन्तु यथार्थ स्थितिसे अपने पाठकोको परिचित रखनेके लिए कमसे कम उन्हें प्राकृत
पञ्चसंग्रहके अस्तित्वका और उसके आधारपर अपनी रचना रचनेका उल्लेख तो करना ही चाहिए था । यही
गनीमतकी बात है कि उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ और उसके प्रकरणोंका नाम नहीं बदला और प्राकृत पञ्चसंग्रहके
समान वे ही नाम अपने संस्कृत पञ्चसंग्रहमें दिये ।

यह संस्कृत पञ्चसंग्रह लगभग २५०० श्लोक प्रमाण है ।

दूसरे संस्कृत पञ्चसंग्रहकी एक मात्र प्रति ईडरके भण्डारसे ही सर्वप्रथम प्राप्त हुई है । इसके रच-
यिता श्रीपाल-सुत ढड्डा है । इन्होंने अपनी रचनामें तीन स्थलोपर जो परिचयात्मक पद्य दिये हैं, उनमेंसे दो
तो बिल्कुल शब्दशः समान हैं । एकके उत्तरार्धमें कुछ विभिन्नता है । वे दोनों पद्य इस प्रकार हैं—

१ श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते ।

श्रीपालसुतढड्डेन स्फुटार्थः पञ्चसंग्रहः ॥ ४,३३६

५,४२८

२ श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते ।

श्रीपालसुतढड्डेन स्फुटः प्रकृतिसंग्रहः ॥ (५,८५)

(मुद्रित पृ० ७४२)

इन उपर्युक्त दोनों ही पद्योंमें रचयिताने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है, उससे इतना ही विदित
होता है कि चित्रकूट (सम्भवतः चित्तौरगढ) के निवासी, प्राग्वाट (पोरवाड या परवार) जातीय वैश्य
श्रीश्रीपालके सुपुत्र ढड्डाने इस स० पञ्चसंग्रहकी रचना की है । इतने मात्र संक्षिप्त परिचयसे न उनके
समयपर प्रकाश पड़ता है और न उनके गुरु आदिकी परम्परा पर ही । परन्तु पञ्चसंग्रहकी संस्कृत टीकाका

प्रभाव श्रीडड्डा पर रहा है, यह बात उनके द्वारा दी गई सदृष्टियोंसे अवश्य हृदयपर अंकित होती है। संस्कृतटीकाकारने अपनी रचनाका काल विक्रम सं० १६२० दिया है अतः इसके बाद ही इस दूसरे सं० पञ्चसंग्रहकी रचना हुई है। प्राप्त प्रतिकी स्थिति और लिखावट आदि देखते हुए वह ३०० वर्ष प्राचीन प्रतीत होती है—यह बात हम प्रति-परिचयमें बतला आये हैं अतः इसके विक्रमकी सत्तरहवीं शताब्दीमें रचे जानेका अनुमान होता है।

दि० परम्परामें प० आशाधरजी, प० मेधावी और प० राजमल्लजीके पश्चात् संस्कृत भाषामें ग्रन्थ-रचना करनेवाले सम्भवतः ये अन्तिम विद्वान् प्रतीत होते हैं। ये गृहस्थ थे, यह बात अपनी जाति और पिताके नामोल्लेखसे ही सिद्ध है। ये प्रतिभाशाली एवं कर्मशास्त्रके अच्छे अधिकारी विद्वान् रहे हैं, ऐसा उनकी रचनाका अध्ययन करनेपर महज ही अनुभव होता है। अमृतगतिके सं० पञ्चसंग्रहके होते हुए इन्होंने क्यों पुनः सं० पञ्चसंग्रहकी रचना की, यह बात पहले इसी प्रस्तावनामें स्पष्ट की जा चुकी है। यह सं० पञ्चसंग्रह लगभग २००० श्लोक-प्रमाण है।

प्रा० पञ्चसंग्रहकी संस्कृत टीका

प्राकृत पञ्चसंग्रहके ऊपर जो संस्कृत टीका उपलब्ध हुई है यह प्रस्तुत ग्रन्थमें दी गई है। दुर्भाग्यसे इसका प्रारम्भिक अंश उपलब्ध नहीं हो सका और न दूसरी कोई प्रति ही मिल सकी, जिससे कि उम खण्डित अंशकी पूर्ति की जा सकती। यद्यपि यह टीका तीसरे प्रकरणकी ४०वीं गाथातक त्रुटित है, तथापि उमके भी विनाशके भयसे व्याकुल होकर एवं श्रुत-रक्षाकी भावनासे प्रेरित होकर ज्ञानपीठके संचालको और उसके सम्पादकोने उसे प्रकाशमें लाना उचित समझा और इसीलिए जहाँसे भी वह उपलब्ध हुई, वहीसे उसे प्रकाशित करनेकी व्यवस्था की गई है।

टीका अपने आपमें माङ्गोपाङ्ग है। प्रत्येक स्थलपर अग्रिम वक्तव्यकी उत्थानिका देकर और गाथाको पूरा उद्धृत कर टीका लिखी गई है। प्रत्येक आवश्यक स्थलपर अक-सदृष्टियाँ दी गई हैं, जिससे उसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है। बीच-बीचमें अपने कथनकी पूर्णिमें अमृतगतिके संस्कृत पञ्चसंग्रहके अनेकों श्लोक एवं गोमटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्डकी अनेकों गाथाएँ उद्धृत की गई हैं। टीकाकी भाषा अत्यन्त सरल और प्रमादगुण-युक्त है।

टीकाकार

इस टीकाके रचयिता मूरि (सम्भवतः भट्टारक) श्री सुमतिकीर्ति हैं। इन्होंने अपनी इस टीकाको वि० सं० १६२० के भाद्रपद शुक्ल दशमीके दिन ईलाव (?) नगरके आदिनाथ-चैत्यालयमें पूर्ण किया है, यह बात टीकाके अन्तमें दी गई प्रगतिमें स्पष्ट है। टीकाकारने अपनी जो गुरु-परम्परा दी है, उसके अनुसार वे मूलसध और बलात्कारगणमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें उत्पन्न हुए पद्मनन्दी, देवेन्द्रकीर्ति, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण और प्रभाचन्द्रके पश्चात् भट्टारक पदपर आसीन हुए हैं। इस नामक किसी वर्णिके उप-देशमें प्रेरित होकर उन्होंने प्रस्तुत टीकाका निर्माण किया है। इसका सञ्चोचन उनके गुरु ज्ञानभूषणने किया है।

संस्कृत टीकाकारकी एक भूल

पञ्चसंग्रहके टीकाकार सुमतिकीर्ति समग्र ग्रन्थकी संस्कृत टीका करते हुए भी एक बहुत बड़ी भूल प्रस्तुत ग्रन्थके यथार्थ नामको नहीं समझ सकनेके कारण उसके अध्याय-विभाजनमें कर गये हैं। गोमटसारका हमरा नाम पञ्चसंग्रह उसके टीकाकारने दिया है। सकलकीर्तिने देखा कि गो० जीव काण्डका विषय प्रस्तुत ग्रन्थके प्रथम प्रकरण जीवसमासमें आया है। किन्तु गो० जीवकाण्डमें तो ७३३ गाथाएँ हैं और इसमें केवल २०६ ही। अतः यह लघु गो० जीवकाण्ड होना चाहिए। इसी प्रकार गो० कर्मकाण्डके प्रकृति समुत्कीर्त्तन अधिकारमें ९० के लगभग गाथाएँ पाई जाती हैं, पर इसमें तो केवल १२ ही हैं। इसी प्रकार आगे भी गो० कर्मकाण्डके जिस प्रकरणमें जितनी गाथाएँ हैं, उससे प्रस्तुत ग्रन्थके विवक्षित प्रकरणमें कम ही गाथाएँ दृष्टिगोचर हो रही

है, अतः यह लघु गो० कर्मकाण्ड होना चाहिए। इस प्रकारके मति-विभ्रम हो जानेके कारण उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थको लघु गोम्मटसार ही समझ लिया और इसीके फलस्वरूप अधिकारोके अन्तमें जो पुष्पिका-वाक्य दिये हैं, उसमें उन्होंने सर्वत्र उक्त भूलको दुहराया है। यहाँ हम इस प्रकारकी पुष्पिकाके दो उद्धरण देते हैं—

१. इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनामलघुगोम्मटसारसिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे बन्धोदयोदीरणसत्त्वप्ररूपणो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

(देखो, पृ० ७४ की टिप्पणी)

२. इति श्रीपञ्चसंग्रहगोम्मटसारसिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे जीवसमासादिप्रत्ययप्ररूपणो नाम चतुर्थोऽधिकारः ।

(देखो, पृ० १७४ की टिप्पणी)

इस प्रकारकी भूल सभी अधिकारोंमें हुई हैं। उक्त दोनों उद्धरण गो० कर्मकाण्डके नामोल्लेख वाले दिये गये हैं, गो० जीवकाण्डके नामवाले नहीं। इसका कारण यह है कि प्रारम्भके दो प्रकरणोंपर अर्थात् जीवसमास और प्रकृति समुत्कीर्तनपर सस्कृत टीका उपलब्ध नहीं है। जो आदर्श प्रति प्राप्त हुई है, उसके प्रारम्भके ३७ पत्र नहीं मिल सके हैं जिनमें उक्त दोनों प्रकरणोंकी सस्कृत टीका रही है। लेकिन प्राप्त पुष्पिकाओंके आधारपर यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि जीवसमासकी समाप्तिपर टीकाकार-द्वारा जो पुष्पिका दी गई होगी, उसमें उसे 'लघु गोम्मटसार जीवकाण्ड' अवश्य कहा गया होगा। साथ ही आगेके अधिकारोके विभाजनको देखते हुए यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसके भी अधिकारोका विभाजन उन्होंने ठीक उसी प्रकार किया होगा, जिस प्रकारसे कि गो० जीवकाण्डमें पाया जाता है। इसके प्रमाणमें हम उपलब्ध पुष्पिकाओंसे दिये गये अधिकारोकी क्रम-संख्याको प्रस्तुत करते हैं।

प्रा० पञ्चसंग्रहका कर्मस्तव तीसरा अधिकार है। पर उसके अन्तमें जो पुष्पिका दी गयी है, उसमें उसे दूसरा अध्याय कहा गया है। (देखो, पृ० ७४ की ऊपर दी गई पुष्पिका) इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक दूसरे अधिकारको प्रथम अधिकार समझा है। और यत गो० कर्मकाण्डमें प्रकृति-समुत्कीर्तन नामका प्रथम और बन्धोदयसत्त्व प्ररूपणावाला द्वितीय अधिकार पाया जाता है, अतः टीकाकारने प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारसे लेकर आगेके भागको गो० कर्मकाण्डका सक्षिप्त रूप मान लिया, और उसके पूर्ववर्ती भागको गो० जीवकाण्डका। अतः उन्होंने तदनुसार ही अधिकारोका विभाजन करना प्रारम्भ कर दिया। यदि उन्हें यह विभ्रम न होता, तो वे पञ्चसंग्रहके मूल अधिकारोंके समान ही अधिकारोका विभाजन करते और उनके अन्तमें ही अपनी पुष्पिका देते।

उक्त विभ्रमकी पुष्टिमें दूसरी बात यह है कि प्रारम्भके दो अधिकारोकी टीकाको छोड़कर शेष अधिकारोंपर जो टीका की गई है, उसपर मूल अधिकारोके समान ही अधिकारोकी अक-संख्या दी जानी चाहिए थी। किन्तु हम देखते हैं कि पाँचवें सप्ततिका अधिकारकी समाप्तिपर सातवें अध्यायके समाप्तिका निर्देश किया गया है।

टीकाकारने मूल-गाथा और भाष्य-गाथाका अन्तर न समझ सकनेके कारण कहीं-कहीं मूल और भाष्य-गाथाकी टीका एक साथ ही की है। पर मैंने सर्वत्र मूल-गाथासे भाष्य-गाथाको पृथक् रखा है और तदनुसार पृथक् रूपसे ही उसका अनुवाद किया है। इससे २-१ स्थलोपर अनुवाद कुछ अमंगल-सा दिखाई देने लगा है (देखो, पृ० ४१५ इत्यादि)। परन्तु मूल-गाथाओकी भिन्नता प्रकट करनेके लिए उनका पृथक् अनुवाद करना अनिवार्य रूपसे आवश्यक था।

जिस प्रकार आ० अमृतगतिने श्लेषरूपमें प्रत्येक अधिकारके अन्तमें अपने नामका उल्लेख किया है ठीक उसी प्रकारसे सस्कृत टीकाकारने भी किया है और इसलिए अमृतगतिके स० पञ्चसंग्रहका अपनी टीकामें भर-पूर उपयोग करते हुए एवं पर्याप्त-संख्यामें उसके श्लोकोको उद्धृत करते हुए भी उन्होंने उनके

अधिकार-समाप्तिपर दिये गये श्लोकोमें थोडा-बहुत शब्द-परिवर्तन कर स्व-रचितके रूपमें उपस्थित किया है । उदाहरणके लिए एक वानगी इस प्रकार है—

बन्धविचार बहुतमभेदं यो हृदि धत्ते विगलितखेदम् ।

याति स भव्यो व्यपगतकष्टां सिद्धिमवन्धोऽमितगतिरिष्टाम् ॥

(स० पञ्चस० पृ० १४६)

बन्धविचार बहुविधिभेदं यो हृदि धत्ते विगलितपापम् ।

याति स भव्यः सुमतिसुकीर्तिं सौख्यमनन्तं शिवपदसारम् ॥

(प्रस्तुत ग्रन्थ पृ० २६३)

दोनों पद्योंमें एक ही बात कही गई है, शब्द और अर्थ-साम्य भी है । परन्तु 'अमितगति' के नामपर अपने 'सुमतिकीर्ति' नामको प्रतिष्ठित कर दिया गया है जो स्पष्टरूपसे अनुकरण है ।

विषय-परिचय

जैसा कि इस ग्रन्थके नामसे प्रकट है, इसमें पाँच प्रकरणोंका संग्रह किया गया है । उनके नाम इस प्रकार हैं—जीवसमास, प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन, बन्धस्तव, शतक और सप्ततिका ।

१ जीवसमास—इस प्रकरणमें गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग, इन बीस प्ररूपणाओंके द्वारा जीवोंकी विविध दशाओंका वर्णन किया गया है । मोह और योगके निमित्तसे होनेवाले जीवोंके परिणामोंके तारतम्यरूप क्रम-विकसित स्थानोंको गुणस्थान कहते हैं । गुणस्थान चौदह होते हैं—मिथ्यात्व, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, देगविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्व-करण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपगान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली । इनका स्वरूप प्रथम प्रकरणके प्रारम्भमें बतलाया गया है । दूसरी जीवसमास प्ररूपणा है । जिन धर्मविशेषोंके द्वारा नाना जीव और उनकी नाना प्रकारकी जातियाँ जानी जाती हैं, उन धर्मविशेषोंको जीवसमास कहते हैं । जीवसमासके सक्षेपसे चौदह भेद हैं और विस्तारकी अपेक्षा इक्कीस, तीस, बत्तीस, छत्तीस, अडतीस, अडतालीस, चौवन और सत्तावन भेद होते हैं । इन सर्व भेदोंका प्रथम प्रकरणमें विस्तारसे विवेचन किया गया है । तीसरी पर्याप्ति-प्ररूपणा है । प्राणोंके कारणभूत शक्तिकी प्राप्तिको पर्याप्ति कहते हैं । पर्याप्तियाँ छह प्रकारकी होती हैं—आहारपर्याप्ति, गरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भापापर्याप्ति और मन पर्याप्ति । एकेन्द्रिय-जीवोंके प्रारम्भकी चार, विकलेन्द्रिय जीवोंके प्रारम्भकी पाँच और सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके छहो पर्याप्तियाँ होती हैं । चौथी प्राणप्ररूपणा है । पर्याप्तियोंके कार्यरूप इन्द्रियादिके उत्पन्न होनेको प्राण कहते हैं । प्राणोंके दस भेद हैं—स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, कर्णेन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास । इनमेंसे एकेन्द्रिय जीवोंके स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास, ये चार प्राण होते हैं । द्वीन्द्रियजीवोंके रसनेन्द्रिय और वचनबल इन दोके साथ उपर्युक्त चार प्राण मिलाकर छह प्राण होते हैं । त्रीन्द्रियजीवोंके इन्हीं छहमें घ्राणेन्द्रिय मिला देनेपर सात प्राण होते हैं । चतुरिन्द्रिय जीवोंके इन्हीं सातमें चक्षुरिन्द्रिय मिला देनेपर आठ प्राण होते हैं । असज्ञी पञ्चेन्द्रियजीवोंके इन्हीं आठमें कर्णेन्द्रिय मिला देनेपर नौ प्राण होते हैं । सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके इन्हीं नौ प्राणोंमें मनोबल और मिला देनेपर दस प्राण होते हैं । पाँचवी सज्ञा-प्ररूपणा है । जिनके सेवन करनेसे जीव इस लोक और परलोकमें दुःखोंका अनुभव करता है, उन्हें सज्ञा कहते हैं । सज्ञाके चार भेद हैं—आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा और परिग्रह सज्ञा । एकेन्द्रियसे लगाकर पञ्चेन्द्रिय तकके सर्व जीवोंके ये चारो ही सज्ञाएँ पायी जाती हैं । जिन अवस्थाविशेषोंमें जीवोंका अन्वेपण किया जाता है, उन्हें मार्गणा कहते हैं । मार्गणाओंके चौदह भेद हैं—गतिमार्गणा, इन्द्रिय-मार्गणा, कायमार्गणा, योगमार्गणा, वेदमार्गणा, कपायमार्गणा, ज्ञानमार्गणा, सयममार्गणा, दर्शनमार्गणा,

लेख्यामार्गणा, भव्यमार्गणा, सम्यक्त्वमार्गणा, सज्जिमार्गणा और आहारमार्गणा। प्रथम प्रकरणमें इन चौदह मार्गणाओका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। बीसवी उपयोग-प्ररूपणा है। वस्तुके स्वरूपको जाननेके लिए जीवका जो भाव प्रवृत्त होता है, उसे उपयोग कहते हैं। उपयोग दो प्रकारका होता है—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। साकारोपयोगके आठ और अनाकारोपयोगके चार भेद होते हैं। इस प्रकार पहले जीवसमास प्रकरणमें बीसप्ररूपणोंके द्वारा जीवोंकी विविध दशाओका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है।

२ प्रकृतिसमुत्कीर्तन—यह पञ्चसग्रहका द्वितीय प्रकरण है। इसमें कर्मोंकी मूल प्रकृतियों और उत्तर प्रकृतियोंका निरूपण किया गया है। मूलप्रकृतियाँ आठ हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनकी उत्तर प्रकृतियाँ क्रमशः पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवे, दो और पाँच हैं। जो सब मिलाकर १४८ होती हैं। इनमेंसे बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ १२०, उदययोग्य प्रकृतियाँ १२२, उद्वेलन-प्रकृतियाँ ११, ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ ४७, अध्रुवबन्धी ११, परिवर्तमान प्रकृतियाँ ६२ तथा सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ १४८ हैं। पञ्चसग्रहके पाँचों प्रकरणोंमें यह सबसे छोटा प्रकरण है। यत कर्म-विषयक अन्य ग्रन्थोंमें कर्म-प्रकृतियोंका विस्तृत विवेचन किया गया है, अतः ग्रन्थकारने प्रकृतियोंके नाम-निर्देशके अतिरिक्त अन्य कुछ वर्णन करना आवश्यक नहीं समझा है।

३ कर्मस्तव—यह पञ्चसग्रहका तृतीय प्रकरण है। कुछ आचार्य इसे बन्धस्तव और कुछ कर्म-बन्धस्तवके नामसे भी इसका उल्लेख करते हैं। इस प्रकरणकी मूलगाथाओकी संख्या ५२ और भाष्यगाथाओ तथा चूलिका गाथाओकी संख्या मिलाकर सर्व गाथाएँ ७७ हैं। इस प्रकरणमें चौदह गुणस्थानोंमें बँधनेवाली, नही बँधनेवाली और बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका, तथा सत्त्व-योग्य, असत्त्व-योग्य और सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका विवेचन किया गया है और अन्तमें चूलिकाके भीतर नौ प्रश्नोंको उठाकर उनका समाधान करते हुए बतलाया गया है कि किन प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छिन्ति, उदय-व्युच्छिन्ति और सत्त्व-व्युच्छिन्ति पहले, पीछे या साथमें होती है। इस नवप्रश्नरूप चूलिकाके द्वारा कर्मप्रकृतियोंकी बन्ध, उदय और सत्त्व-व्युच्छिन्ति सम्बन्धी कितनी ही ज्ञातव्य बातोंका सहजमें ही बोध हो जाता है। 'स्तव' नाम विवेच्य वस्तुके विवेचन करनेवाले अधिकारका है, अतः यह मूल प्रकरण दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें कर्मस्तव या बन्धस्तव नामसे प्रसिद्ध है।

४ शतक—पञ्चसग्रहके चौथे प्रकरणका नाम शतक है। यत इस प्रकरणके मूल गाथाओकी संख्या सौ है, अतः यह प्रकरण 'शतक' नामसे ही दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें प्रसिद्ध है। इस प्रकरणमें चौदह मार्गणाओके आधारसे जीवसमास, गुणस्थान, उपयोग और योगका वर्णन करके तदनन्तर कर्म-बन्धके कारणभूत मिथ्यात्व, अविरति आदि बन्ध-प्रत्ययोका विस्तारसे वर्णन किया गया है। साथ ही मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंमें जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्ययोकी अपेक्षा सम्भव सयोगी भगोका विस्तृत विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके विशेष बन्ध-प्रत्ययोका वर्णन किया गया है। पुनः कर्मबन्धके प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका स्वामित्व आदि अनेक अधिकारोंके द्वारा विस्तारसे साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है। इस प्रकरणके मूलगाथाओकी संख्या १०५ है और उनके साथ भाष्य-गाथाओकी संख्या ५२२ है।

५ सप्ततिका—पञ्चसग्रहके पाँचवें प्रकरणका नाम सप्ततिका है। यत इस प्रकरणके मूलगाथाओकी संख्या सत्तर है, अतः यह प्रकरण दोनों ही सम्प्रदायोंमें 'सित्तरी' या 'सप्ततिका'के नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकरणमें मूलकर्मों और उनके अवान्तर भेदोंके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानोंका स्वतन्त्ररूपसे एवं चौदह जीवसमास और गुणस्थानोंके आश्रयसे विवेचन कर उनके सभब भगोका विस्तारसे वर्णन करते हुए अन्तमें कर्मोंकी उपशमना और क्षणका विवेचन किया गया है। इस प्रकरणकी मूलगाथाएँ अतिसक्षिप्त एवं दुर्लभ हैं, इस बातका अनुभव करके ही भाष्यगाथाकारने उनका विवेचन भाष्यगाथाएँ रचकर अतिसुगम कर दिया है। इस प्रकरणकी मूलगाथा-संख्या ७२ है और उनके साथ भाष्यगाथाओकी संख्या ५०७ है।

शतक और सप्ततिका इन दोनों ही प्रकरणोंमें भगोका निरूपण करनेवाली अनेको भाष्यगाथाएँ शब्दशः समान हैं, जिन्हें उनके रचयिताने दोनों ही प्रकरणोंकी स्वतन्त्रताको अक्षुण्ण रखनेके लिए दोनों ही प्रकरणोंमें निबद्ध किया है और इसीसे यह सिद्ध होता है कि इन प्रकरणोंके भाष्यगाथाओंके रचयिता एक ही व्यक्ति हैं।

—हीरालाल शास्त्री

ग्रन्थ-विषय-सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
१ जीवसमास-अधिकार	१-४३	मनुष्यगति स्वरूप	१३
मगलाचरण और वस्तु-निरूपणकी प्रतिज्ञा	१	देवगति "	१३
जीवप्ररूपणाके भेद	२	सिद्धगति "	१४
गुणस्थानका स्वरूप और भेद	२	इन्द्रियमार्गणाका वर्णन और इन्द्रियका स्वरूप	१४
मिथ्यात्वगुणस्थानका स्वरूप	३	इन्द्रियोके आकार	१४
सामादनगुणस्थान "	३	एकेन्द्रियादि जीवोके इन्द्रिय-निरूपण	१४
सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थान "	३	इन्द्रियोके विषय	१४
अविरतमम्यक्त्वगुणस्थान "	४	एकेन्द्रिय जीवका स्वरूप	१५
देशविरतगुणस्थान "	४	द्वीन्द्रियजीवोके भेद	१५
प्रमत्तमयतगुणस्थान "	४	त्रीन्द्रिय जीवोके भेद	१५
अप्रमत्तसयतगुणस्थान "	५	चतुरिन्द्रिय जीवोके भेद	१५
अपूर्वकरणगुणस्थान "	५	पंचेन्द्रिय जीवोके भेद	१५
अनिवृत्तिकरणगुणस्थान "	५	अतीन्द्रिय जीवोका स्वरूप	१५
सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान "	५	कायमार्गणाका वर्णन और कायका स्वरूप	१६
उपशान्तकपायगुणस्थान "	६	पृथिवीकायिक जीवोके भेद	१६
क्षीणकपायगुणस्थान "	६	जलकायिक "	१६
सयोगिकेवल्लिगुणस्थान "	६	अग्निकायिक "	१६
अयोगिकेवल्लिगुणस्थान "	७	वायुकायिक "	१७
सिद्धोका स्वरूप	७	वनस्पतिकायिक "	१७
जीवममामका स्वरूप	७	साधारणवनस्पतिकायिक जीवोका वर्णन	१७
जीवममासोके भेद	७	त्रसकायिक जीवोके भेद	१८
पर्याप्तिप्ररूपणा	८-९	अकायिक जीवोका स्वरूप	१८
प्राणप्ररूपणा	९	योगमार्गणाका वर्णन और योगका स्वरूप	१८
सज्ञाप्ररूपणा	१०	मनोयोगके भेद और उनका स्वरूप	१८-१९
आहारमज्ञाका स्वरूप	११	वचनयोगके भेद और उनका स्वरूप	१९
भयसज्ञा "	११	औदारिक काययोगका "	२०
मैथुनमंज्ञा "	११	औदारिक मिश्रकाययोग "	२०
परिश्रमसज्ञा "	१२	वैक्रियिककाययोग "	२१
मार्गणाका स्वरूप और भेद	१२	वैक्रियिकमिश्रकाययोग "	२१
आठ सान्तरमार्गणा	१२	आहारककाययोग "	२१
गतिका स्वरूप	१२	आहारकमिश्रकाययोग "	२१
नरकगति "	१३	कार्मणकाययोग "	२१
तिर्यग्गति "	१३	अयोगि जीवोका स्वरूप	२२
		वेदमार्गणाका वर्णन और वेदका स्वरूप	२२

वेदके भेद और वेद-वैषम्यका निरूपण	२२	केवल दर्शन	३०
भाववेद और द्रव्यवेदका कारण	२२	लेश्यामार्गणा, लेश्याका स्वरूप	३०
वेद-वैषम्यका कारण	२२	लेश्याके स्वरूपका दृष्टान्त-द्वारा स्पष्टीकरण	३१
स्त्रीवेदका स्वरूप	२३	कृष्णलेश्याका लक्षण	३१
पुरुषवेदका स्वरूप	२३	नीललेश्या	३१
नपुंसकवेद	२३	कापोतलेश्या	३१
अपगतवेदी जीव	२३	तेजोलेश्या	३२
कषाय मार्गणा, कषायका स्वरूप	२३	पद्मलेश्या	३२
कषायोके भेद और उनके कार्य	२४	शुक्ललेश्या	३२
क्रोध कषायकी जातियाँ और उनका फल	२४	अलेश्यजीवोका स्वरूप	३२
मान कषायकी	२४	भव्यमार्गणा, भव्यका स्वरूप	३३
माया कषायकी	२४	भव्य और अभव्य जीवोका विशेष निरूपण	३३
लोभ कषायकी	२४	भव्यत्व और अभव्यत्वसे रहित जीवोका वर्णन	३३
चारो जातिकी कषायोके कार्य	२५	सम्यक्त्वमार्गणा, सम्यक्त्वप्राप्तिकी योग्यता	३४
अकषायिक जीवोका स्वरूप	२५	सम्यक्त्वका स्वरूप	३४
ज्ञानमार्गणा, ज्ञानका स्वरूप	२५	क्षायिकसम्यक्त्व	३४
मत्यज्ञानका स्वरूप	२५	वेदकसम्यक्त्व	३४
श्रुताज्ञान	२६	उपशमसम्यक्त्व	३५
विभगज्ञान	२६	तीनो सम्यक्त्वोका गुणस्थानोमें विभाजन	३५
मतिज्ञान	२६	सासादनसम्यक्त्वका स्वरूप	३५
श्रुतज्ञान	२६	सम्यग्मिथ्यात्व	३६
अवधिज्ञान	२६	मिथ्यात्व	३६
अवधिज्ञानके भेद	२७	उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें सर्वोपशम और	
मन पर्ययज्ञानका स्वरूप	२७	देशोपशमका नियम	३६
केवलज्ञान	२७	सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पश्चात् मिथ्यात्व-	
सयममार्गणा, द्रव्यसयमका स्वरूप	२७	प्राप्तिका नियम	३६
भावसयमका स्वरूप	२८	सज्जिमार्गणा, सजी और असज्जिका सामान्य स्वरूप	३६
सामायिक सयम	२८	सजी असज्जिका विशेष स्वरूप	३७
छेदोपस्थापना	२८	आहारमार्गणा, आहारकका स्वरूप	३७
परिहारविशुद्धि	२८	आहारक और अनाहारक जीवोका विभाजन	३७
सूक्ष्मसाम्पराय	२८	उपयोग प्ररूपणा, उपयोगका स्वरूप और भेद	३७
यथाख्यात	२९	साकार उपयोग	३८
सयमामयम	२९	अनाकार उपयोग	३८
सयमामयमका विशेष स्वरूप	२९	युगपद् उभयोपयोगी जीवोके कालका निरूपण	३८
देशविरतके भेद	२९	जीवसमास अधिकारका उपसहार	३८
असयमका स्वरूप	२९	छहो लेश्याओके वर्ण	३८
दर्शनमार्गणा, दर्शनका स्वरूप	३०	नरकोमें लेश्याओका निरूपण	३९
चक्षुदर्शनका	३०	तिर्यञ्च और मनुष्योमे	३९
अवधिदर्शन	३०	गुणस्थानोमें	३९

देवोमें लेश्याओका निरूपण	४०	गुणस्थानोमें मूल प्रकृतियोंकी उदीरणाका निरूपण	५३
पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवोंकी लेश्याओका निरूपण	४०	दशवें और बारहवें गुणस्थानमें उदीरणाका नियम	५३
विग्रहगतिको प्राप्त " " "	४०	गुणस्थानोमें मूल प्रकृतियोंके सत्त्वका निरूपण	५४
लेश्या-जनित भावोंका दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण	४०	गुणस्थानोमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली	
सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होता	४१	प्रकृतियोंका वर्णन	५४
एक जीवके कौन-कौनसी मार्गणाएँ एक साथ		बन्धके विषयमें कुछ विशेष नियम	५४
नहीं होती	४१	मिथ्यात्व गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली	
सयमोका गुणस्थानोमें निरूपण	४१	प्रकृतियाँ	५६
समुद्घातके भेद	४१	सासादन गुणस्थानमें " " "	५७
केवलिसमुद्घातका निरूपण	४१	अविरत गुणस्थानमें " " "	५७
केवलिसमुद्घातमें काययोगोका वर्णन	४२	देशविरत गुणस्थानमें " " "	५७
केवलिसमुद्घातका नियम	४२	प्रमत्तविरत गुणस्थानमें " " "	५७
सम्यक्त्व, अणुव्रत और महाव्रतको प्राप्ति का नियम	४२	अप्रमत्त विरत गुणस्थानमें " " "	५८
दर्शन मोहके क्षयका अधिकारी जीव	४२	अपूर्वकरण गुणस्थानमें " " "	५८
क्षायिक सम्यग्दृष्टिके ससार-वासका नियम	४३	अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें " " "	५८
दर्शन मोहके उपगमका अधिकारी जीव	४३	सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें " " "	५९
सम्यक्त्व आदिके विरह-कालका नियम	४३	सयोगि केवलीके " " "	५९
नारकियोंके विरह-कालका नियम	४३	गुणस्थानोमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियों-	
		की सख्याका निरूपण	५९
२. प्रकृतिसमुत्कीर्तन-अधिकार ४४-५०		कुछ विशेष प्रकृतियोंके उदय-विषयक नियम	५९
मंगलाचरण और प्रकृति समुत्कीर्तन करनेकी प्रतिज्ञा	४४	आनुपूर्वीके उदय-विषयक कुछ विशेष नियम	६०
प्रकृतियोंके भेद	४४	मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली	
मूल प्रकृतियोंके नाम	४४	प्रकृतियाँ	६१
मूल प्रकृतियोंके स्वभावका दृष्टान्त द्वारा निरूपण	४४	सासादन गुणस्थानमें " " "	६२
उत्तर प्रकृतियोंके भेदोंका पृथक्-पृथक् वर्णन	४५	सम्यग्मिथ्यात्वमें " " "	६२
बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ	४८	अविरत सम्यक्त्वमें " " "	६२
बन्धके अयोग्य प्रकृतियाँ	४८	देशविरतमें " " "	६२
उदयके अयोग्य प्रकृतियाँ	४९	प्रमत्त विरतमें " " "	६३
उद्वेलना-योग्य प्रकृतियाँ	४९	अप्रमत्तविरतमें " " "	६३
ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ	४९	अपूर्वकरणमें " " "	६३
अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ	४९	अनिवृत्ति करणमें " " "	६३
परिवर्तमान प्रकृतियाँ	५०	सूक्ष्म साम्परायमें " " "	६३
		उपगान्त मोहमें " " "	६३
३. कर्मस्तव अधिकार ५१-७२		क्षीण मोहमें " " "	६४
मंगलाचरण और कर्मोंके बन्ध-उदयादि-		सयोगि केवलीके " " "	६४
कथनकी प्रतिज्ञा	५१	अयोगि केवलीके " " "	६५
बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्त्वका स्वरूप	५१	उदय और उदीरणामें तीन गुणस्थान-गत	
गुणस्थानोमें मूल प्रकृतियोंके बन्धका निरूपण	५२	विशेषताका निरूपण	६५
गुणस्थानोमें मूल प्रकृतियोंके उदयका निरूपण	५२	गुणस्थानोमें प्रकृतियोंके क्षयका क्रम	६८

कुछ विशेष प्रकृतियोंके सत्त्व-असत्त्व-विषयक नियम	६९
अनिवृत्ति करणमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ	७१
सूक्ष्मसाम्परायमें	७२
क्षीणकपायमें	७२
अयोगि केवलीके द्विचरम समयमें	७२
अयोगि केवलीके चरम समयमें	७३
कर्मस्त्वकी अन्तिम मगल-कामना	७३
बन्ध-उदयादि-सम्बन्धी नवप्रश्न-चूलिका	७४
नौ प्रश्नोंमेंसे द्वितीय प्रश्नका समाधान	७५
„ तृतीय „ „	७५
„ प्रथम „ „	७६
„ पाँचवें „ „	७७
„ चौथे „ „	७७
„ छठे „ „	७७
„ आठवें „ „	७८
„ सातवें „ „	७८
„ नवें „ „	७९

४. शतक अधिकार ८०-२६३

मगलाचरण और वस्तु-कथनकी प्रतिज्ञा	८०
जिनवचनामृतकी महत्ता	८०
प्रतिपाद्य विषयके सुननेके लिए श्रोताओंको सम्बोधन	८१
प्रतिपाद्य विषयका निर्देश	८१
शतककार-द्वारा मार्गणा स्थानोंमें जीवसमासोका निरूपण	८१
भाष्य गाथाकार-द्वारा „ „ „	८२-८६
शतककार-द्वारा जीव समासोंमें उपयोगका निरूपण	८७
भाष्य गाथाकार-द्वारा „ „ „	८७
भाष्य गाथाकार-द्वारा मार्गणा स्थानोंमें „ „	८८-९२
शतककार-द्वारा जीवसमासोंमें योगोका वर्णन	९२
भाष्य गाथाकार-द्वारा „ „ „	९३
भाष्य गाथाकार-द्वारा मार्गणाओंमें योगोका वर्णन	९४-९७
शतककार-द्वारा मार्गणाओंमें गुणस्थानोका निरूपण	९८
भाष्य गाथाकार-द्वारा „ „ „	९८-१०२
शतककार-द्वारा गुणस्थानोंमें उपयोगका वर्णन	१०२
भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका विशद विवेचन	१०२-१०३

शतककार-द्वारा गुणस्थानोंमें योग-निरूपण	१०३
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण	१०४
बन्ध-प्रत्ययोंके भेदोका निर्देश	१०५
गुणस्थानोंमें मूल बन्ध-प्रत्ययोका वर्णन	१०५
गुणस्थानोंमें उत्तर-प्रत्ययोका निरूपण	१०६
किस गुणस्थानमें कौन-कौनसे उत्तर प्रत्यय नहीं होते	१०६
मार्गणाओंमें बन्ध-प्रत्ययोका निरूपण	१०८-११३
गुणस्थानोंकी अपेक्षा एक जीवके एक समयमें सम्भव, जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट बन्ध-प्रत्ययोका निर्देश	११३
काय-विराधना-सम्बन्धी गुणकारोका निरूपण	११४-११६
मिथ्यादृष्टिके भी अवस्था-विशेषमें एक आवली कालतक अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं होता	११६
मिथ्यादृष्टिके दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भगोका निरूपण	११७
मिथ्यादृष्टिके ग्यारह „ „ „	११९
„ बारह „ „ „	१२०
„ तेरह „ „ „	१२२
„ चौदह „ „ „	१२४
„ पन्द्रह „ „ „	१२६
„ सोलह „ „ „	१२८
„ सत्रह „ „ „	१२९
„ अट्ठारह „ „ „	१३१
सासादन सम्यग्दृष्टिके बन्ध-प्रत्यय-गत विशेष निर्देश	१३२
सासादन सम्यग्दृष्टिके दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भगोका निरूपण	१३२
सासादन सम्यग्दृष्टिके ग्यारह „ „ „	१३३
„ बारह „ „ „	१३४
„ तेरह „ „ „	१३५
„ चौदह „ „ „	१३६
„ पन्द्रह „ „ „	१३८
„ सोलह „ „ „	१३९
„ सत्रह „ „ „	१४०
सम्यग्मिथ्यादृष्टिके नौ „ „ „	१४१
„ दश „ „ „	१४१

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भगोका निरूपण	१४२	वेदनीय कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्यय वर्णन	१६८
सम्यग्मिथ्यादृष्टिके बारह " " "	१४३	दर्शन मोहनीय कर्मके " "	१६९
" तेरह " " "	१४४	चारित्र मोहनीय कर्मके " "	१६९
" चौदह " " "	१४५	नरकायु कर्मके " "	१७०
" पन्द्रह " " "	१४६	तिर्यगायु कर्मके " "	१७०
" सोलह " " "	१४७	मनुष्यायु कर्मके " "	१७१
असयत सम्यग्दृष्टिके बन्ध-प्रत्ययगत विशेषताका निरूपण	१४८	देवायु कर्मके " "	१७१
असयत सम्यग्दृष्टिके नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भगोका निरूपण	१४९	नाम कर्मके " "	१७२
असयत सम्यग्दृष्टिके दम " " "	१५०	गोत्र कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोका निरूपण	१७२
" ग्यारह " " "	१५१	अन्तराय कर्मके " " "	१७३
" बारह " " "	१५१	कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोका निरूपण अनुभाग-	
" तेरह " " "	१५२	बन्धकी अपेक्षासे जानना चाहिए	१७४
" चौदह " " "	१५३	कर्मके बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोका निरूपण	१७४
" पन्द्रह " " "	१५४	शतककार-द्वारा गुणस्थानोमें मूल कर्मके बन्ध-	
" सोलह " " "	१५५	स्थानोका वर्णन	१७४
देशसयतके सम्भव बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी गुणकार	१५६	भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण	१७५
देशसयतके आठ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भगोका निरूपण	१५७	शतककार-द्वारा गुणस्थानोमें, उदयस्थानोमें उदय-	
देशसयतके नौ " " "	१५७	स्थानोका निरूपण	१७५
" दश " " "	१५८	भाष्य गाथाकार-द्वारा उदीरकोका कथन	१७६
" ग्यारह " " "	१५९	शतककार-द्वारा उदीरकोका विशेष निरूपण १७६-१८०	
" बारह " " "	१६०	प्रकृति बन्धसे सादि-अनादि आदि नौ भेदोका	
" तेरह " " "	१६१	कथन	१८१
" चौदह " " "	१६२	उक्त बन्ध-भेदोका स्वरूप	१८२
प्रमत्तसयतके बन्ध-प्रत्यय-गत विशेषताका निरूपण	१६२	मूल प्रकृतियोंके सादि-आदि बन्धोका निरूपण	१८२
प्रमत्तसयतके पाँच बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भगोका निरूपण	१६३	उत्तर प्रकृतियोंके " " "	१८३
प्रमत्तसयतके छह " " "	१६३	ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंका निरूपण	१८३
प्रमत्तसयतके मात " " "	१६४	निष्प्रतिपक्ष अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ	१८३
अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण सयतके बन्ध-प्रत्यय और उनके भगोका निरूपण	१६४	सत्प्रतिपक्ष अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ	१८४
अनिवृत्तिकरण सयतके बन्ध-प्रत्यय और उनके भगोका निरूपण	१६५	मूल प्रकृतिस्थान और भुजाकारादिका निरूपण	१८४
सूक्ष्मसाम्परायादि शेष गुणस्थानोके बन्ध-प्रत्यय और उनके भगोका निरूपण	१६७	उत्तर प्रकृतियोंके प्रकृतिस्थान और भुजाकारादिका वर्णन	१८६
ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्यय वर्णन	१६७	दर्शनावरण कर्मके बन्धस्थानोका वर्णन	१८६
	१६७	दर्शनावरण कर्मके भुजाकार बन्धोका वर्णन	१८६
		दर्शनावरण कर्मके बन्धस्थानोका गुणस्थानोमें निरूपण	१८७
		मोहकर्मके बन्धस्थान और भुजाकारादिका वर्णन	१८८
		मोहकर्मके दश बन्धस्थानोका निरूपण	१८८
		उक्त बन्धस्थानोका प्रकृति निर्देशपूर्वक गुणस्थानोमें वर्णन	१८८-१९१

मोहकर्मके भुजाकार बन्धोका निरूपण	१९२	सासादन गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ	२१७
मोहकर्मके अल्पतर और अवक्तव्य बन्धोका वर्णन	१९४	अविरत आदि चार गुणस्थानोमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ	२१७-२१८
नामकर्मके बन्धस्थान आदिका निर्देश	१९६	अपूर्वकरण गुणस्थानमे बन्धसे ,, ,,	२१९
नामकर्मके बन्धस्थानोका निरूपण	१९६	नवें और दशवे गुणस्थानमें ,, ,,	२२०
नामकर्मके भुजाकार बन्धस्थानोका वर्णन	१९६-१९८	तेरहवे गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतिका निर्देशकर प्रकृत अर्थका उपसहार	२२१
नामकर्मके अल्पतर और अवक्तव्य बन्धस्थानोका वर्णन	१९८-१९९	शतककार-द्वारा मार्गणाओमें बन्ध व्युच्छिन्न प्रकृतियोंको जाननेका निर्देश	२२२
नामकर्मके चारो गतियोंमें सम्भव बन्ध-स्थानोका निरूपण	२००	भाष्यगाथाकार-द्वारा नरकगतिमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके निरूपण	२२३-२२४
नरकगति युक्त बँधनेवाले अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका वर्णन	२०१	तिर्यग्गतिमे प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण	२२५
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले प्रथम तीस प्रकृतिक स्थानका वर्णन	२०२	मनुष्यगतिमें ,, ,, ,,	२२६
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले द्वितीय और तृतीय प्रकारके तीस प्रकृतिक स्थानोका वर्णन	२०३	देवगतिमें ,, ,, ,,	२२७
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले तीनो प्रकारके उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानोका निरूपण	२०४	ध्वनत्रिक देव और सर्व देवियोंके बन्धादिका निरूपण	२२८
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले छब्बीस प्रकृतिक बन्ध-स्थानका वर्णन	२०५	कल्पवासी देवोंके बन्धादिका निरूपण	२२९
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले प्रथम पच्चीस प्रकृतिक स्थानका वर्णन	२०५	इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका वर्णन	२३०
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले द्वितीय प्रकृतिक बन्ध-स्थानका वर्णन	२०६	कायमार्गणाकी ,, ,, ,,	२३१
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले तेईस ,, ,,	२०७	योगमार्गणाकी ,, ,, ,,	२३२-२३४
मनुष्यगति युक्त बँधनेवाले तीस ,, ,,	२०८	वेदमार्गणाकी ,, ,, ,,	२३५
,, बँधनेवाले प्रथम उनतीस ,, ,,	२०९	कषायमार्गणाकी ,, ,, ,,	२३६
,, बँधनेवाले द्वितीय ,, ,,	२०९	ज्ञान, सयम और दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादि जाननेका निर्देश	२३६
,, बँधनेवाले तृतीय ,, ,,	२१०	लेख्या मार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका वर्णन	२३७-२४०
,, बँधनेवाले पच्चीस ,, ,,	२११	भव्य और सम्यक्त्व मार्गणाकी अपेक्षा ,,	२४१
देवगति युक्त बँधनेवाले इकतीस ,, ,,	२१२	शेष मार्गणाओकी अपेक्षा बन्धादि जाननेका निर्देश	२४२
,, बँधनेवाले तीस ,, ,,	२१२	कर्म प्रकृतियोंके स्थिति बन्धके नव अधिकारोका निरूपण	२४३
,, बँधनेवाले प्रथम उनतीस ,, ,,	२१३	मूल प्रकृतियोंके स्थिति बन्धका वर्णन	२४३
,, बँधनेवाले द्वितीय ,, ,,	२१३	कर्मोंके आबाधाकालका निरूपण	२४४
,, बँधनेवाले प्रथम अट्ठाईस ,, ,,	२१४	कर्म-निषेधका निरूपण	२४५
,, बँधनेवाले द्वितीय ,, ,,	२१४	कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका विशद वर्णन	२४६-२४९
,, बँधनेवाले एक ,, ,,	२१४	कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका विस्तृत वर्णन	२४९-२५२
गुणस्थानोकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्ध-स्वामित्वका निरूपण	२१५-२१६		
मिथ्यात्व गुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ	२१६		

मूल प्रकृतियोंके जघन्यादि बन्ध-सम्बन्धी		प्रदेश बन्धका वर्णन	२८०
सादि-आदि भेदोकी प्ररूपणा	२५३	जीवके द्वारा ग्रहण किये जानेवाले कर्मरूप	
उत्तर प्रकृतियोंके सादि आदि भेदोकी प्ररूपणा	२५४	पुद्गल द्रव्यका प्रमाण	२८०
कर्मोंकी स्थितियोंमें शुभ और अशुभपनेका		प्रति समय आनेवाले कर्म-पिण्डका आठ कर्मोंमें	
निरूपण	२५५	विभाजन	२८१
उत्कृष्ट स्थितिवन्ध-गत कुछ विशिष्ट प्रकृतियोंके		मूलकर्मोंके उत्कृष्टादि प्रदेश बन्धके सादि आदि	
स्वामियोंका निरूपण	२५६	भेदोका वर्णन	२८२
शेष उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति बन्धकोका		उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेश बन्धके सादि आदि	
निरूपण	२५७-२५८	भेदोका वर्णन	२८२-२८३
जघन्य स्थितिवन्धके स्वामित्वका निरूपण	२५८-२५९	गुणस्थानोकी अपेक्षा मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट	
अनुभाग बन्धका निरूपण	२६०	प्रदेश बन्धके स्वामित्वका निरूपण	२८४
मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि भेदोंमें सम्भव		मूलप्रकृतियोंके जघन्य प्रदेश बन्धके स्वामित्वका	
सादि आदि अनुभागबन्धका निरूपण	२६१	वर्णन	२८५
उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि भेदोंमें		उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका	
सम्भव सादि आदि अनुभाग बन्धकी		वर्णन	२८६
प्ररूपणा	२६२-२६३	उत्कृष्ट प्रदेश बन्धकी सामग्री विशेषका निरूपण	२८७
मूल और उत्तर प्रकृतियोंके स्वमुख-परमुख		उत्तर प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्ध और उनके	
विपाकरूप अनुभागका निरूपण	२६४	स्वामित्वका निरूपण	२८८
प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्धका		चारों बन्धोंके कारणोंका निर्देश	२८९
वर्णन	२६५	चारों बन्धोंका स्वरूप	२९०
तीव्र अनुभाग बन्धके स्वामित्वका निरूपण	२६५	योगस्थान, प्रकृति-भेद, स्थिति बन्ध्याध्यवसाय	
प्रशस्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश	२६५	स्थान, अनुभाग बन्ध्याध्यवसाय स्थान और	
अप्रशस्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश	२६६	प्रदेश बन्धादिके अल्पबहुत्वका निरूपण	२९१
कुछ विशिष्ट प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-		शतककार-द्वारा ग्रन्थका उपसंहार और अपनी	
बन्ध करनेवाले जीवोंका वर्णन	२६७	लघुताका प्रदर्शन	२९२
अप्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करने-		प्रकृत ग्रन्थके अध्ययनका फल	२९३
वाले जीवोंका वर्णन	२६८	५. सप्ततिका अधिकार	२९४-५४०
जघन्य अनुभाग बन्धके स्वामित्वका निरूपण	२७०-२७४	भाष्य गाथाकार-द्वारा मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	२९४
सर्वधाति प्रकृतियोंका निरूपण	२७४	सप्ततिकाकार-द्वारा बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोंके	
देशधाति " "	२७५	कथनकी प्रतिज्ञा	२९४
पुण्य और पापरूप प्रकृतियोंका वर्णन	२७५	बन्ध, उदय और सत्त्व-सम्बन्धी भगोंको जाननेकी	
चतु स्थानीय-त्रिस्थानीय आदि अनुभागबन्धका		सूचना	२९५
निरूपण	२७६	मूल प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोंके	
पुण्य और पापरूप प्रकृतियोंके अनुभागका दृष्टान्त-		सम्भव भगोंका निरूपण	२९६
पूर्वक वर्णन	२७६	चौदह जीव समासोंमें बन्ध, उदय और सत्त्व	
प्रत्ययरूप अनुभागबन्धका निरूपण	२७७	स्थानोंके सयोगी भगोंका निरूपण	२९७
पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और भवविपाकी		गुणस्थानोंमें बन्धादि-त्रिसयोगी भगोंका निरूपण	२९८
प्रकृतियोंका निरूपण	२७८	मूल प्रकृतियोंके समान उत्तर प्रकृतियोंमें भी	
जीवविपाकी प्रकृतियोंका निरूपण	२७९	बन्धादि-त्रिसयोगी भगोंको जाननेकी सूचना	२९९

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्मके बन्धादि त्रिकके संयोगी भगोंका निरूपण	२९९	नामकर्मके चारो गतियोंमें सम्भव बन्धस्थानोंका वर्णन	३३६
दर्शनावरण कर्मके बन्धादि त्रिकके संयोगी भगोंका वर्णन	३००	नामकर्मके उक्त बन्धस्थानोंका स्पष्टीकरण	३३६
भाष्य गायकार-द्वारा उक्त भगोंका स्पष्टीकरण	३००-३०२	नामकर्मके नरक गति संयुक्त बंधनेवाले अष्टाईस प्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियाँ	३३७
वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके बन्धादि त्रिकके संयोगी भगोंका वर्णन	३०३	नामकर्मके तिर्यग्गतियुक्त बंधनेवाले प्रथम तीस प्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियाँ	३३७
गोत्र कर्मके भगोंका स्पष्टीकरण	३०५-३०७	नामकर्मके द्वितीय तीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन	३३८
वेदनीय कर्मके भगोंका स्पष्टीकरण	३०८	नामकर्मके तृतीय तीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन	३३९
नरकानु कर्मके भगोंका वर्णन	३०९	नामकर्मके अनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण	३३९
तिर्यगायु कर्मके "	३११	नामकर्मके छत्वीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण	३४०
मनुष्यायु कर्मके "	३१२	नामकर्मके प्रथम पच्चीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन	३४१
देवायु कर्मके "	३१४	नामकर्मके द्वितीय पच्चीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन	३४१
मोहनीय कर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण	३१५	नामकर्मके तेईस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन	३४२
भाष्य गायकार-द्वारा उक्त बन्धस्थानोंका स्पष्टीकरण	३१६	मनुष्यगति युक्त बंधनेवाले तीन प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण	३४३
उक्त बन्धस्थानोंके भगोंका निरूपण	३१८	मनुष्यगति युक्त बंधनेवाले प्रथम, द्वितीय और तृतीय अनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानोंका निरूपण	३४४-३४५
मोहनीय कर्मके उदयस्थानोंका निरूपण	३१९	मनुष्यगति युक्त बंधनेवाले पच्चीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण	३४५
भाष्य गायकार-द्वारा उक्त उदय स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश	३१९	देवगति संयुक्त बंधनेवाले इकतीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण	३४६
मोहनीय कर्मके सत्त्व स्थानोंका निरूपण	३२०	देवगति संयुक्त बंधनेवाले तीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण	३४६
भाष्य गायकार-द्वारा सत्त्व स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश	३२१	देवगति संयुक्त बंधनेवाले प्रथम और द्वितीय अनतीस प्रकृतिकबन्ध स्थानका निरूपण	३४७
मोहनीय कर्मके बन्ध स्थानोंमें उदयस्थानोंका निरूपण	३२२	देवगति संयुक्त बंधनेवाले प्रथम और द्वितीय अष्टाईस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण	३४८
भाष्य गायकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण	३२३-३२५	नामकर्मके एक प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण	३४८
मोहके बन्धस्थानोंमें सम्भव उदय स्थानोंका निरूपण	३२६	सप्ततिकाकार-द्वारा नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन	३४९
मोहके उदयस्थानोंके भगोंका निरूपण	३२७-३२८		
मोहके उदय-विकल्पके प्रकृति-परिवर्तन-जनित भगोंका परिमाण	३२९		
मोहकर्मके समस्त उदय-विकल्प और पदवृत्तोंका प्रमाण	३२९		
मोहकर्मके बन्धस्थानोंमें नस्त्व स्थानके भगोंका सामान्य कथन	३३०		
उक्त भगोंका विशेष कथन	३३०-३३५		
नामकर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण	३३५		

भाष्य-गाथाकार-द्वारा नरकगति संयुक्त नामकर्म-

के उदयस्थानोका वर्णन ३४९

नरकगति संयुक्त इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३४९

नरकगति संयुक्त पञ्चीस प्रकृतिक " ३५०

नरकगति संयुक्त सत्ताईस " " ३५०

नरकगति संयुक्त अट्ठाईस " " ३५१

नरकगति संयुक्त उनतीस " " ३५१

तिर्यग्गतिमें नामकर्मके उदयस्थानोका निरूपण ३५२

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके नामकर्मके उदयस्थानोका वर्णन ३५२

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके इक्कीस प्रकृतिक " ३५२

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके चौबीस " " ३५४

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके पञ्चीस " " ३५४

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके छत्तीस " " ३५५

आतप और उद्योत प्रकृतिके उदयवाले एकेन्द्रिय जीवोंके उदयस्थानोका निरूपण ३५५-३५६

विकलेन्द्रिय जीवोंके नामकर्मके उदयस्थानोका निरूपण ३५७

द्वीन्द्रियजीवके इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण ३५८

द्वीन्द्रियजीवके छत्तीस " " " ३५८

द्वीन्द्रियजीवके अट्ठाईस " " " ३५९

द्वीन्द्रियजीवके उनतीस " " " ३५९

द्वीन्द्रियजीवके तीस " " " ३५९

उद्योतके उदयवाले द्वीन्द्रियके उदयस्थानोका निरूपण ३६०

उद्योतके उदयवाले द्वीन्द्रियके उनतीस प्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण ३६०

उक्त जीवके तीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३६०

" इक्कीस " " " ३६०

द्विन्द्रिय जीवके समान त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके उदयस्थान जाननेकी सूचना ३६१

विकलेन्द्रिय जीवोंके तीस और इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानोंके कालका वर्णन ३६१

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके उदयस्थानोका निरूपण ३६२

उद्योतके उदयसे सहित और रहित पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके उदयस्थानोका कथन ३६२

उद्योतके उदयसे रहित इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३६२

उद्योतके उदयसे रहित छत्तीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३६३

उद्योतके उदयसे रहित अट्ठाईस " " ३६४

उद्योतके उदयसे रहित उनतीस " " ३६५

उद्योतके उदयसे रहित तीस " " ३६५

उद्योतके उदयवाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके उदयस्थानोका निरूपण ३६५

उद्योतके उदय-सहित उनतीस प्रकृतिक उदयस्थानका कथन ३६६

उद्योतके उदय-सहित तीस " ३६७

उद्योतके उदय-सहित इक्कीस " ३६७

तीस और इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानोंके कालका निरूपण ३६७

सर्व तिर्यञ्चोंके नामकर्मके उदयस्थानोंके समस्त भगोकी सख्याका निरूपण ३६७

मनुष्यगतिमें नामकर्मके उदयस्थानोका वर्णन ३६८

मनुष्यगतिके उदयस्थान-गत विशेषताका निरूपण ३६९

मनुष्यगति-सम्बन्धी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३६९

मनुष्यगति-सम्बन्धी छत्तीस " " ३७०

मनुष्यगति-सम्बन्धी अट्ठाईस " " ३७०

मनुष्यगति-सम्बन्धी उनतीस " " ३७१

मनुष्यगति-सम्बन्धी तीस " " ३७१

आहारक शरीरवाले मनुष्यके उदयस्थानोका निरूपण ३७१

आहारक शरीरवाले मनुष्यके पञ्चीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३७२

आहारक शरीरवाले मनुष्यके सत्ताईस " ३७२

आहारक शरीरवाले मनुष्यके अट्ठाईस " ३७२

आहारक शरीरवाले मनुष्यके उनतीस " ३७३

तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदय-युक्त सयोगिजिनके इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण ३७३

तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदय-युक्त अयोगिजिनके नौ प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३७४

तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदय-रहित अयोगिजिनके आठ प्रकृतिक उदयस्थानका कथन ३७४

मनुष्यगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंके सर्व भगोका निरूपण ३७४

देवगति-सम्बन्धी उदयस्थानोका निरूपण ३७६

देवगति-सम्बन्धी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका	वन्धस्थानको आधार बनाकर उदयस्थान और
वर्णन	सत्त्वस्थानका निरूपण
देवगति-सम्बन्धी पञ्चीस " "	३७६ ३९१
देवगति-सम्बन्धी सत्ताईस " "	३७७ भाष्य गाथाकार-द्वारा उपर्युक्त अर्थका स्पष्टीकरण ३९२
देवगति-सम्बन्धी अट्ठाईस " "	३७७ अट्ठाईस प्रकृतिक वन्धस्थानमें उदय और सत्त्व-
देवगति-सम्बन्धी उनतीस " "	३७८ की विशिष्ट दशामें सम्भव स्थान विशेषोका
देवगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंके सर्व उदय विक-	निरूपण ३९३
त्योका निरूपण ३७८	उक्त वन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत
चतुर्गति-सम्बन्धी नामकर्मके उदयस्थानोंके सर्व	दूसरी विशेषता ३९४
भगोका निरूपण ३७८	उक्त वन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत
इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा सामान्य एकेन्द्रिय	तीसरी विशेषता ३९५
जीवोंके उदयस्थानोंका वर्णन ३७९	उक्त वन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत
विकलेन्द्रिय जीवोंके उदयस्थानोंका वर्णन ३७९	चौथी विशेषता ३९५
पञ्चेन्द्रिय " " ३७९	उक्त वन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत
कायमार्गणाकी अपेक्षा स्थावरकाय और त्रसकाय	पाँचवी विशेषता ३९५
जीवोंके उदयस्थानोंका वर्णन ३७९	उक्त वन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत
योगमार्गणाकी अपेक्षा मनोयोगियो और वचन-	छठी विशेषता ३९६
योगियोंके उदयस्थानोंका वर्णन ३८०	उक्त वन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत
काययोगियोंके उदयस्थानोंका निरूपण ३८०-३८१	सातवी विशेषता ३९६
वेद और कपायमार्गणाकी अपेक्षा उदयस्थानाका	उक्त वन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत
वर्णन ३८१	आठवी विशेषता ३९७
ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्पज्ञानियो और श्रुता-	उनतीस और तीस प्रकृतिक वन्धस्थानमें उदय
ज्ञानियोंके उदयस्थानोंका निरूपण ३८१	सत्त्वस्थानोंका निरूपण ३९७
शेष ज्ञानवाले जीवोंके उदयस्थानोंका कथन ३८१	उनतीस प्रकृतिक वन्धस्थानमें इक्कीस प्रकृतिक
सममार्गणाकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका	उदय स्थानके साथ तेरानवे और इक्क्यानवे
वर्णन ३८२	प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामीका निरूपण ३९८
दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका	उक्त वन्धस्थान और उदयस्थानके साथ वानवे
कथन ३८२	और नव्वे प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी
लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका	का निरूपण ३९८
कथन ३८२	उक्त वन्धस्थान और उदयस्थानके साथ अट्ठासी,
भव्यत्व आदि शेष मार्गणाओंकी अपेक्षा नामकर्मके	चौरासी और वयासी प्रकृतिक सत्त्वस्थानके
उदयस्थानोंका निरूपण ३८३	स्वामीका वर्णन ३९९
सप्ततिकाकार-द्वारा नामकर्मके सत्त्वस्थानोंका	उनतीस प्रकृतिक वन्धस्थानमें चौबीस प्रकृतिक-
वर्णन ३८५	उदयस्थानके साथ वानवे, नव्वे आदि पाँच
भाष्य गाथाकार-द्वारा नामकर्मके सर्व सत्त्वस्थानों-	सत्त्वस्थानोंके स्वामीका निरूपण ३९९
की प्रकृतियोंका निरूपण ३८५-३८७	उक्त वन्धस्थानमें पञ्चीस प्रकृतिक उदयस्थानके
गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण ३८८	साथ तेरानवे आदि सात सत्त्वस्थानोंके
सप्ततिकाकार-द्वारा वन्धस्थान, उदयस्थान और	स्वामियोंका कथन ३९९
सत्त्वस्थान इन तीनोंको एकत्र मिलाकर	उक्त वन्धस्थानमें छब्बीसमे लेकर तीस प्रकृतिक
कहनेकी सूचना ३९१	उदयस्थानोंके साथ तेरानवे आदि सात
	सत्त्वस्थानोंके स्वामियोंका कथन ४००

उक्त बन्धस्थानमें एकही प्रकृतिक उदयस्थानके साथ बानवे, नख्खे, अठायी, चीरसी और वयासी प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामियोंका वर्णन	४००	गुणस्थानोंमें दर्शनावरणके बन्धादि स्थानोंका निरूपण	४२५-४२६
तीस प्रकृति बन्धस्थानमें संभव उदयस्थानों और सत्त्वस्थानोंका वर्णन	४०१	मत्तिकाकार-द्वारा वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके बन्धादि स्थान सम्बन्धी भगोंका निरूपण	४२७
उक्त स्थानोंमें संभव विशेषताका निरूपण	४०२-४०३	भाष्यगाथाकार-द्वारा वेदनीयकर्मके भगोंका वर्णन	४२७
मत्तिकाकार-द्वारा छेप बन्धस्थानोंमें संभव उदय और सत्त्वस्थानोंका निरूपण	४०४	गुणस्थानोंमें आयुकर्मके भगमर्यादिका वर्णन	४२८-४२९
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण	४०५	नरकायुके भगोंका वर्णन	४२९
उपर्युक्त बन्धादि तीनों प्रकारके स्थानोंका जीव- ममास और गुणस्थानोंकी अपेक्षा स्वामित्व जाननेकी सूचना	४०६	तिर्यगायुके " "	४३०
जीवममासोंमें ज्ञानावरण और अन्तर्गत कर्मके बन्धादि स्थानोंके स्वामित्वका निर्देश	४०७	मनुष्यायुके " "	४३०
दर्शनावरणकर्मके बन्धादि स्थानोंके स्वामित्वगत भगोंका जीवममासोंमें निर्देश, वेदनीय, आयु और गोत्रके स्थानोंके भग जाननेका मकेन और मोहकर्मके भग-निरूपणकी प्रतिज्ञा	४०८	देवायुके " "	४३१
भाष्यगाथाकार-द्वारा वेदनीय, आयु और गोत्र- कर्मके भगोंकी मर्यादा निर्देश	४१०	आयुकर्मके ११३ भगोंका स्पष्टीकरण	४३१-४३४
वेदनीयकर्मके भगोंका जीवममासोंमें निरूपण	४१०	गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भगोंका निरूपण	४३४
आयुकर्मके भगों का जीवममासों में निरूपण	४११	उपर्युक्त भगोंका स्पष्टीकरण	४३५-४३६
गोत्रकर्मके भगों का जीवममासोंमें निरूपण	४१४	मत्तिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें मोहकर्मके बन्ध- स्थानोंका निरूपण	४३६
सप्तनिकाकार-द्वारा जीवममासोंमें मोहकर्मके भगों का निरूपण	४१५	उक्त अर्थका भाष्य गाथाकार-द्वारा स्पष्टीकरण	४३७
भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण	४१६	भाष्यगाथाकार-द्वारा मोहकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण	४३८
मत्तिकाकार-द्वारा जीवममासों में नामकर्मके बन्ध उदय और सत्त्वस्थान सम्बन्धी भगों - का निरूपण	४१७	मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्भव मोहकर्मके उदय- स्थानोंका वर्णन	४३८
भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टी- करण	४१८-४२२	सासादनादि गुणस्थानोंमें उपर्युक्त स्थानोंका वर्णन	४३९-४४०
सप्तनिकाकार-द्वारा ज्ञानावरण और अन्तराय- कर्मके बन्धादि-स्थानोंका गुणस्थानों में वर्णन	४२३	सप्तनिकाकार-द्वारा प्रत्येक गुणस्थानमें सम्भव उदयस्थानोंका निरूपण	४४१
दर्शनावरण कर्मके बन्धादि स्थानों का गुणस्थानोंमें वर्णन	४२४	मत्तिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंके भगोंका वर्णन	४४२
भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त स्थानोंका स्पष्टीकरण	४२४	भाष्य गाथाकार-द्वारा उपर्युक्त अर्थका स्पष्टी- करण	४४३-४४४
		सर्वगुणस्थानोंके मोहकर्म सम्बन्धी उदय- विकल्पोका निरूपण	४४५
		गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंका तथा उनके पदबन्धोंका निरूपण	४४५-४४८
		सप्तनिकाकार-द्वारा योग, उपशोग और लेख्यादि- का आश्रय करके मोहकर्मके उदयस्थान- सम्बन्धी भगोंको जाननेकी सूचना	४४८
		भाष्यगाथाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें योगोंका निरूपण	४४८

मिथ्यादृष्टिके योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण	४४९	अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरणमें उपयोगकी अपेक्षा	
सासादन सम्यग्दृष्टिके " " "	४५०	उदयप्रकृतिगत पदवृन्दोंका निरूपण	४६९
सम्यग्मिथ्यादृष्टिके " " "	४५०	अनिवृत्तिकरणमें " " "	४६९
अविरत सम्यग्दृष्टिके " " "	४५०	सर्वगुणस्थानोंके उक्त पदवृन्दोंका योग	४६९-४७०
देशविरतके " " "	४५०	लेश्याओंकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें मोहके उदयस्थान	
प्रमत्त विरतके " " "	४५१	जाननेकी सूचना और उनमें सम्भव लेश्याओं-	
अप्रमत्त विरतके " " "	४५१	का निरूपण	४७०-४७१
अपूर्वकरणके " " "	४५१	मिथ्यात्व और सासादनमें लेश्याओंकी अपेक्षा मोहके	
योग सम्बन्धी सर्व भंगोंका निर्देश	४५२	उदय-भंग	४७१
सासादन गुणस्थानोंमें योगसम्बन्धी भंग-गत		मिश्र और अविरतमें " " "	४७२
विशेषताका निरूपण	४५३	देश, प्रमत्त और अप्रमत्त विरतमें " " "	४७२
अविरत गुणस्थानमें उक्त विशेषताका निरूपण	४५३	अपूर्वकरणमें " " "	४७३
अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके		अनिवृत्तिकरणमें " " "	४७३
योग सम्बन्धी भंगोंका निरूपण	४५५	उपर्युक्त सर्व उदय-विकल्पोंका प्रमाण	४७३
गुणस्थानोंमें सम्भव सर्व योग-भंगोंका उपसंहार	४५६	लेश्याओंकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंका निरूपण	४७४
गुणस्थानोंमें योगके पदवृन्दोंका निरूपण	४५६	मिथ्यात्व और सासादनमें " " "	४७४
मिथ्यादृष्टिके योगसम्बन्धी पदवृन्दोंका निरूपण	४५७	मिश्र और अविरतमें " " "	४७४
सासादन गुणस्थानमें " " "	४५८	देशविरत और प्रमत्तविरतमें " " "	४७४
मिश्र गुणस्थानमें " " "	४५८	अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरणमें " " "	४७४
अविरत गुणस्थानमें " " "	४५९	अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्परायमें " " "	४७५
देशविरत गुणस्थानमें " " "	४५९	उपर्युक्त सर्व पदवृन्दोंका परिमाण	४७५
प्रमत्तविरत " " "	४५९	वेदकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय विकल्पोंका	
अप्रमत्तविरत " " "	४६०	निरूपण	४७६
अपूर्वकरण " " "	४६०	वेदकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंका वर्णन	४७७
उक्त सर्वगुणस्थानोंके पदवृन्दोंके प्रमाणका		संयमकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्पोंका	
निरूपण	४६०	निरूपण	४७८
सासादन गुणस्थानगत विशेष भंगोंका निरूपण	४६१	संयमकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंका वर्णन	४७९
अविरत " " "	४६२	सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्प	४८०
मोहकर्मके योगोंकी अपेक्षा सम्भव सर्वभंगोंका		सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या	४८१
निरूपण	४६३-४६४	सप्ततिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें मोहकर्मके	
उपयोगकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें मोहकर्मके उदय-		सत्त्वस्थानोंका निरूपण	४८२
स्थानगत भंगोंका निरूपण	४६५-४६७	भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त कथनका स्पष्टीकरण	४८३-४८५
गुणस्थानोंमें उपयोगकी अपेक्षा मोहकर्मकी उदय-		सप्ततिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें नामकर्मके बन्ध,	
प्रकृतियोंकी संख्या जाननेकी सूचना	४६७	उदय और सत्त्वस्थानोंका निर्देश	४८६
मिथ्यात्व और सासादनमें उपयोगकी अपेक्षा		भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त त्रिसंयोगी स्थानोंका	
उदयप्रकृतिगत पदवृन्दोंका निरूपण	४६८	स्पष्टीकरण	४८७
मिश्र और अविरतमें " " "	४६८		
देशविरत और प्रमत्तविरतमें " " "	४६९		

मिथ्यात्व गुणस्थानमें नामकर्मके बन्ध, उदय और

सत्त्वस्थान ४८७

सासादन	"	"	"	४८७
मिश्र	"	"	"	४८८
अविरत	"	"	"	४८८
देशविरत	"	"	"	४८९
प्रमत्तविरत	"	"	"	४८९
अप्रमत्तविरत	"	"	"	४९०
अपूर्वकरण	"	"	"	४९०
अनिवृत्तिकरण	"	"	"	४९१
सूक्ष्मसाम्पराय	"	"	"	४९१
क्षीणकपाय	"	"	"	४९१
सयोगिकेवली	"	"	"	४९१
अयोगिकेवली	"	"	"	४९२

सप्ततिकाकार-द्वारा मार्गणाओमें नामकर्मके

बन्धादि स्थानोका निर्देश करते हुए गति

मार्गणामें निरूपण ४९३

भाष्यगाथाकार-द्वारा नरक गतिमें उक्त बन्धादि

स्थानोका निरूपण ४९३

तिर्यग्गतिमें नामकर्मके बन्धादि स्थानोका निरूपण ४९४

मनुष्यगतिमें " " " ४९४

देवगतिमें " " " ४९५

सप्ततिकाकार-द्वारा इन्द्रिय मार्गणाओमें उक्त

स्थानोका निर्देश ४९६

भाष्यगाथाकार-द्वारा एकेन्द्रिय जीवोंमें उक्त

स्थानोका निर्देश ४९६

विकलेन्द्रिय जीवोंमें उक्त स्थानोका निर्देश ४९७

पचेन्द्रिय जीवोंमें " " ४९७

कायमार्गणामें नामकर्मके बन्धादि स्थानोका

निरूपण ४९८

योग मार्गणामें " " " ४९९-५०१

वेदमार्गणामें " " " ५०१

कपायमार्गणामें " " " ५०२

ज्ञानमार्गणामें " " " ५०२-५०३

सयममार्गणामें " " " ५०४-५०६

दर्शनमार्गणामें " " " ५०६

लेश्यामार्गणामें " " " ५०७-५०८

भव्यमार्गणामें " " " ५०८-५०९

सम्यक्त्वमार्गणामें नामकर्मके बन्धादि स्थानोका

निरूपण ५०९-५११

संज्ञिमार्गणामें " " " ५११-५१२

आहारमार्गणामें " " " ५१२-५१३

संस्कृत टीकाकार-द्वारा चौदह मार्गणाओमें

नामकर्मके उक्त बन्ध, उदय और

सत्त्वस्थानोकी अकसदृष्टि ५१३-५१८

सप्ततिकाकार-द्वारा उपर्युक्त अर्थका उपसंहार

और विशेष जाननेके लिए आवश्यक निर्देश ५१८

इकतालीस प्रकृतियोंमें उदयकी अपेक्षा उदीरणा-

गत विशेषताका निरूपण ५१९

उक्त इकतालीस प्रकृतियोंका नाम-निर्देश ५२०

उक्त इकतालीस प्रकृतियोंमें नामकर्म

सम्बन्धी नौ प्रकृतियों का निरूपण ५२१

सप्ततिकाकार-द्वारा गुणस्थानोमें कर्मप्रकृतियोंके

बन्धका वर्णन ५२२-५२३

भाष्यगाथाकार-द्वारा मिथ्यात्व और सासादनमें

बँधनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन ५२४

असयत देशसयत और प्रमत्तसयतके बँधनेवाली

प्रकृतियोंका वर्णन ५२४

अप्रमत्त और अपूर्वकरणके बँधनेवाली प्रकृतियों-

का वर्णन ५२५

अनिवृत्तिकरण आदिके " " ५२६

सप्ततिकाकार-द्वारा मार्गणाओमें भी बन्धस्वामित्व-

को जाननेकी सूचना ५२७

सप्ततिकाकार-द्वारा चारो गतियोंमें कर्मप्रकृतियों-

के सत्त्वका निरूपण ५२८

भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण ५२८

सप्ततिकाकार-द्वारा दर्शन मोहकर्मके उपशमन

करनेका विधान ५२८

सप्ततिकाकार-द्वारा चरित्र मोहके उपशमन

करनेका विधान ५२९

भाष्यगाथाकार-द्वारा उपशान्त होनेवाली

प्रकृतियोंके क्रमका निरूपण ५३०

सप्ततिकाकार-द्वारा कर्मप्रकृतियोंके क्षणका

विधान ५३१-५३३

भाष्यगाथाकार-द्वारा अयोगिकेवलीके द्विचरम

समय और चरम समयोंमें क्षय होनेवाली

प्रकृतियोंका नाम-निर्देश ५३४-५३६

अयोगिनेवलीके उदयमें आनेवाली प्रकृतियों का निरूपण	५३६-५३७	सप्ततिकाकार-द्वारा अपनी लघुताका प्रदर्शन संस्कृतटीकाकारकी प्रशस्ति	५३९ ५४०
अयोगि जिनके मनुष्यानुपूर्विका उदय किस क्षण तक रहता है, इस बातका भयुक्तिक निरूपण	५३७	परिशिष्ट	७४५-७५४
कर्म-क्षयसे प्राप्त होनेवाली अवस्था विशेषका वर्णन	५३८	१ संदृष्टियाँ	७४५-७५४
सप्ततिकाकार-द्वारा प्रकरणका उपसंहार और आवश्यक ज्ञानव्य तत्त्वका निर्देश	५३८	२ सभाष्य प्रा० पञ्चसंग्रह-गाथानुक्रमणिका	७५५-७६६
		३ संस्कृतटीकोद्घृत-पद्यानुक्रमणी	७६७
		४ प्राकृत वृत्तिगत-पद्यानुक्रमणी	७६८-७७३
		५ संस्कृत पञ्चसंग्रहस्थश्लोकानुक्रम	७७४-७८४

संकेत-विवरणा

- आचा० नि०—आचाराङ्ग निर्युक्ति
क० पा० गा०—कसायपाहुड गाथा
कर्मवि०—कर्मविपाक (गर्गापिप्रणीत)
कर्मस्त०—कर्मस्तव (श्वेताम्बर)
गो० क०—गोम्मटमार कर्मकाण्ड
गो० जी०—गोम्मटसार जीवकाण्ड
जीवस०—जीवसमास प्रकरण (पूर्वभृद्-रचित)
द—ऐलक सरस्वती भवन व्यावरकी प्रति स० १५४८ वाली
धव०—पट्खण्डागमकी धवला टीका
प—पचायती मन्दिर खजूर मस्जिद दिल्लीकी प्रति
व—ऐलक सरस्वती भवन व्यावरकी प्रति स० १५३७ वाली
मूला०—मूलाचार
शतक०—शतक प्रकरण (भावनगर-मुद्रित)
पट्ख० प्र० स० चू०—पट्खण्डागम प्रकृति समुत्कीर्तन चूलिका
स्था० सू०—स्थानाङ्गसूत्र

पञ्चसंग्रह



पञ्चसंग्रहः

प्रथम अधिकार

जीवसमास

मंगलाचरण और वस्तु-निरूपणकी प्रतिज्ञा—

¹छद्मव-णवपयत्ये दम्बाइचउन्विहेण जाणते ।

वंदिता अरहंते जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥१॥

द्रव्यादि चार प्रकारसे छह द्रव्य और नौ पदार्थोंको जाननेवाले अरहन्तोंको नमस्कार करके जीवकी प्ररूपणा कहूंगा ॥१॥

अस्स णमोकारस्स विवरण । त जहा—²दम्बेण सपमाणादो सन्वे जीवा केत्तिया, अणता । खेत्तेण सन्वे जीवा केत्तिया, अणता लोका । कालेण सन्वे जीवा केत्तिया, अतीदकालादो अणतगुणा । भावेण सन्वे जीवा केत्तिया, केवलणाणस्य अणतिमभागमिच्छा । ³पुग्गल-काल-आगासाणं जीवभंगो । णवरिविसेसो, जीवरासीदो पुग्गलरासी अणतगुणा । पुग्गलरासीदो कालरासी अणतगुणा । कालरासीदो आगास अणतगुण त्ति वत्तन्व । ⁴धम्माधम्मा दो वि दम्बेण असंखेज्जा । खेत्तेण लोगपमाणा । कालेण अतीदकालस्स अणतिमभागो । भावेण केवलणाणस्स अणतिमभागो । ओहिणाणस्स दो वि असंखेज्जदिमभागो । णवण्हं पयत्थाणं मज्जे जीवाजीवाणं पुव्वभगो । पुण्ण-पावा दो वि दम्बेण असंखिज्जा । खेत्तेण घणगुलस्स असंखिज्जदिमभागो । कालेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिमभागो । आसवाइपचण्हं पयत्थाणं दम्बेण अभवसिद्धिण्हि अणतगुणा । अहवा सिद्धाणमणतिमभागो । खेत्तेण अणता लोका । कालेण अतीदकालस्स अणतगुणो + । भावेण केवलणाणस्स अणतिमभागो ।

1. स० पञ्चस० १, ३ । 2. १, ४-५ । 3. १, ८ । 4. १, ६ ।

* व -भागो । † व -दिमभागो । + व -गुणा ।

इस नमस्काररूप गाथासूत्रका विवरण इस प्रकार है.—द्रव्यकी अपेक्षा स्वप्रमाणसे सर्व जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । क्षेत्रकी अपेक्षा सर्व जीव कितने हैं ? अनन्त लोक-प्रमाण हैं । कालकी अपेक्षा सर्व जीव कितने हैं ? अतीत कालसे अनन्तगुणित है । भावकी अपेक्षा सर्व जीव कितने हैं ? केवलज्ञानके अनन्तवें भागमात्र है । पुद्गल, काल और आकाश द्रव्यका परिमाण जीवद्रव्यके प्रमाणके समान है । विशेषता केवल यह है कि जीवराशिसे पुद्गलराशि अनन्तगुणित है, पुद्गलराशिसे कालराशि अनन्तगुणित है और कालराशिसे आकाशद्रव्य अनन्तगुणित है, ऐसा कहना चाहिए । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये दोनों ही द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यात हैं । क्षेत्रकी अपेक्षा लोकप्रमाण हैं । कालकी अपेक्षा अतीत कालके अनन्तवें भाग हैं । भावकी अपेक्षा केवलज्ञानके अनन्तवें भाग है और दोनों ही द्रव्य अवधिज्ञानके असंख्यातवें भाग हैं । नौ पदार्थोंके मध्यमे जीव और अजीव पदार्थका परिमाण पूर्वके भंग है अर्थात् जीवादि द्रव्योंके परिमाणके समान है । पुण्य और पाप ये दोनों ही पदार्थ द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यात हैं । क्षेत्रकी अपेक्षा घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । कालकी अपेक्षा पत्थोपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं । भावकी अपेक्षा अवधिज्ञानके असंख्यातवे भागप्रमाण हैं । आस्रवादि पांचो पदार्थोंका प्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा अभव्यसिद्धोसे अनन्तगुणित है । अथवा सिद्धोके अनन्तवे भागमात्र है । क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्त लोकप्रमाण है । कालकी अपेक्षा अतीतकालसे अनन्तगुणित है और भावकी अपेक्षा केवलज्ञानके अनन्तवे भागमात्र है ।

जीव-प्ररूपणाके भेद—

^१गुण जीवा पञ्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य ।

उवओगो वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया ^१॥२॥

१४।१४।६।१०।४।१४ (४।५।६।१।५।३।५।६।७।४।६।२।६।२।२) १२ ।

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएं और उपयोग; इस प्रकार क्रमसे ये बीस प्ररूपणा कही गई हैं ॥२॥

गुणस्थानके १४, जीवसमासके १४, पर्याप्तिके ६, प्राणके १०, संज्ञाके ४, मार्गणाके १४ और उपयोगके १२ भेद हैं । इनमेंसे १४ मार्गणाओके अवान्तर भेद इस प्रकार हैं—गति ४, इन्द्रिय ५, काय ६, योग १५, वेद ३, कषाय १६, ज्ञान ८, संयम ७, दर्शन ४, लेख्या ६, भव्यत्व २, सम्यक्त्व ६, संज्ञित्व २ और आहार २ ।

गुणस्थानका स्वरूप और भेद—

^२जेहिं दु लक्खिजंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहि ।

जीवा ते गुणसण्णा णिदिट्ठा सव्वदरिसीहिं ^२॥३॥

^३मिच्छो सासण मिससो अवरिदसम्मो य देसविरदो य ।

विरदो पमत्त इयरो अपुव्व अणियट्ठि सुहुमो य ^३॥४॥

उवसंतर्खीणमोहो सजोगिकेवल्लिजिणो अजोगी य ।

चोइस गुणट्ठाणाणि यं क्रमेण सिद्धा य णायव्वा ^४॥५॥

१. स० पञ्चस० १, ११ । २. १, १२ । ३. १, १५-१८ ।

१. गो० जी० २ । २. धवला० भा० १, पृ० १६१ गा० १०४, गो० जी० ८ । ३. गो० जी० ६ ।

४. गो० जी० १०, पर तत्र तृतीयचरणे 'चोइस जीवसमासा' इति पाठः ।

* व-उगो ।

तिअ दोणिण छक्कक वावीस []

सत्तरसादिय दो य इकारस समासदो हुंति मोहस्स (११) ॥५२॥

णामस्स य अट्ठ ठाणाणि—

तेवीसं पणुवीसं छवीसं अट्ठवीसपुगुतीसं ।

तीसेक्कतीसमेयं वंधट्ठाणाणि णामस्स ॥५३॥

इगि तिणिण पंच-पंच य वंधट्ठाणाणि जाण णामस्स ।

णिरयगइ-तिरिय-मणुया देवगई संजुदा हुंति ॥५४॥

अट्ठावीसं णिरए तेवीसं [पंच-] वीस छवीसं ।

उणतीसं तीसं [च हि] तिरियगईसंजुदा पंच ॥५५॥

पणुवीसं उगुतीसं तीसं च य तिणिण हुंति मणुसगई ।

इगितीसादेगुण अट्ठावीसेक्कं च देवेसु ॥५६॥

णिरयगईसंजुत्तं एगट्ठाणं । तं जहा—णिरयगइ पंचिंदियजादि वेउन्विय तेजा कम्मइय-सरीर हुंडसंठाण वेउन्वियसरीर अंगोवंग वण्ण गंध रस फास णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुग-लहुग उवघाद परघाद उस्सास अप्पसत्थविहायगइ तस वादर पज्जत्त पत्तेयसरीर थिर असुभग दुब्भग दुस्सर अणादिज्ज अजसक्कित्ती अ णिमिणणामाओ अट्ठवीस पगडीओ वंधमाणस्स कम्म-भूमि-कम्मभूमिपडिभागी सण्णी असण्णी पंचिंदिय तिरिक्ख पज्जत्त-कम्मभूमिमणुसपज्जत्तमिच्छा-दिट्ठिस्स एगठाणपदरस भंगो एक्को ।

तिरिक्खगईसंजुत्ताणि पंच ट्ठाणाणि । तत्थ पढमाए तीसं ठाणं । तं जहा—तिरिक्खगइ पंचिंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर छ संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीर अंगोवंग छ-संधणणमेक्कदरं वण्ण गंध रस फास तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद पर-घाद उस्सास उज्जोव पसत्थापसत्थविहायगदीणमेक्कदरं तस वादर पज्जत्त पत्तेयसरीर थिरा-थिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं आदिज्ज-अणादिज्जाणमेक्कदरं जस-अजस-क्कित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाणं तीसपगडीणं वंधमाणं भोगभूमि-भोगभूमिपडिभागी सण्णी पंचिंदियतिरिय-भोगभूमिमणुस-आणदादिदेववज्जाण मिच्छादिट्ठीणं एदं ठाणं संठाण-छव्वंभा-संधण-छव्वंभेहिं गुणिया ३६ । ते चेव विहायगदि-दोभंभेहिं गुणिया ७२ । ते चेव थिराथिर-दोभंभेहिं गुणिया १४४ । ते चेव सुभासुभ-दोभंभेहिं गुणिया २८८ । ते चेव सुभग-दुभग-दोभंभेहिं गुणिया ५७६ । ते चेव सुस्सर-दुस्सर दोभंभेहिं गुणिया ११५२ । ते चेव आदेज्ज-अणादिज्जदोभंभेहिं गुणिया २३०४ । ते चेव जसक्कित्ति-अजसक्कित्तीणं दोभंभेहिं गुणिदा ४६०८ ।

एवं विदियतीसाए ठाणं । णवरि हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्ठा सरीरसंधणं च णत्थि । असंखिज्जवस्साउगतिरिक्ख-मणुस्साणदादिदेव वज्ज सासणसम्मादिट्ठीणं विदियतीसं । एदस्स भंगा ण गहिंया, पुव्वुत्तभंगेसु पुणरुत्तं ति ।

तदियतीसाए ठाणं तं जहा—तिरिक्खगइ वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियजादीणं इक्कदरं ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर हुंडसंठाण ओरालियसरीर-अंगोवंग असंपत्तसेवट्ठसरोरसंधण-वण्ण गंध रस फास तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास उज्जोव अप्पसत्थविहायगइ तस वादर पज्जत्त पत्तेयसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग

४ अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानका स्वरूप—

^१णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे चावि* ।

जो सदहइ जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो †सो ॥११॥

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सदहदि ।

सदहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा^३ ॥१२॥

जो पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंसे विरत नहीं है और न त्रस तथा स्थावर जीवोंके घातसे ही विरक्त है, किन्तु केवल जिनोक्त तत्त्वका श्रद्धान करता है, वह चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत-सम्यग्दृष्टि है । सम्यग्दृष्टि जीव जिन-उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् (सद्भावको) नहीं जानता हुआ गुरुके नियोग (उपदेश या आदेश) से असद्भावका भी श्रद्धान कर लेता है ॥११-१२॥

५ देशविरतगुणस्थानका स्वरूप—

^२जो तसवहाउ विरदो णो विरओ अक्ख-थावरवहाओ× ।

पडिसमयं सो जीवो विरयाविरओ जिणेक्कमई^४ ॥१३॥

जो जीव एक मात्र जिन भगवान्मे ही मति (श्रद्धा) को रखता है, तथा त्रस जीवोंके घातसे विरत है और इन्द्रिय-विषयोंसे एवं स्थावर जीवोंके घातसे विरक्त नहीं है, वह जीव प्रति समय विरताविरत है । अर्थात् अपने गुणस्थानके कालके भीतर हर-क्षण विरत और अविरत इन दोनों संज्ञाओंको एक साथ एक समयमे धारण करता है ॥१३॥

६ प्रमत्तसंयतगुणस्थानका स्वरूप—

^३वत्तावत्तपमाए जो वसइ पमत्तसंजओ होइ ।

सयलगुणसीलकलिओ महव्वई चित्तलायरणो^५ ॥१४॥

^४विकहा तहा कसाया इंदियणिदा तहेव पणओ य ।

चदु चदु पण एगेगं होंति पमादा हु पण्णरसा^६ ॥१५॥

जो पुरुष सकल मूलगुणोंसे और शील अर्थात् उत्तरगुणोंसे^१सहित है, अतएव महाव्रती है; तथा व्यक्त और अव्यक्त प्रमादमे रहता है, अतएव चित्रल-आचरणो है, वह प्रमत्त संयत कहलाता है । चार विकथा (स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, [अवनिपालकथा] चार कपाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) पाँच इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, नासिका, नयन, श्रवण) एक निद्रा और एक प्रणय (प्रेम या स्नेह-सम्बन्ध) ये पन्द्रह (४ + ४ + ५ + १ + १ = १५) प्रमाद होते हैं ॥१४-१५॥

१. स० पञ्चस० १, २३ । २. १, २४ । ३. १, २८ । ४. १, ३३ ।

१. ध० भा० १ पृ० १७३ गा० १११ । गो० जी० २६ । २. ध० भा० १ पृ० १७३ गा० ११० ।

गो० जी० २७ । ३. ध० भा० १ पृ० १७५ गा० ११२ । गो० जी० ३१ । ४. ध० भा० १

पृ० १७८ गा० ११३ । गो० जी० ३३ । ५. ध० भा० १ पृ० १७८ गा० ११४ । गो० जी० ३४ ।

* गो० जी० 'वापि' । † अरहते य पदत्थे अविरदसम्मो दु, सदहदि । इति प्राकृतवृत्तौ मूलगाथापाठः ।

× थूले जीवे वधकरणवज्जगो हिंसगो य इदराण ।

एकग्धि चेव समए विरदाविरदु त्ति णादव्वो ॥ इति प्राकृतवृत्तौ मूलगाथापाठः ।

७ अप्रमत्तसंयतगुणस्थानका स्वरूप—

^१णट्ठासेसपमाओ वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी ।

अणुवसमओ ×अखवओ भाणणिलीणो हु अप्पमत्तो सो^१ ॥१६॥

जो व्यक्त और अव्यक्तरूप समस्त प्रकारके प्रमादसे रहित है, महाव्रत, मूलगुण और और उत्तरगुणोंकी मालासे मंडित है, स्व और परके ज्ञानसे युक्त है, और कपायोका अनुपशमक या अक्षपक होते हुए भी ध्यानमे निरन्तर लीन रहता है, वह अप्रमत्तसंयत कहलाता है ॥१६॥

८ अपूर्वकरणसंयतगुणस्थानका स्वरूप—

^२भिण्णसमयट्ठिएहिं दु जीवेहि ण होइ सव्वहा सरिसो ।

करणेहिं एयसमयट्ठिएहिं सरिसो विसरिओ वा^२ ॥१७॥

एयम्मि गुणट्ठाणे विसरिससमयट्ठिएहिं जीवेहिं ।

पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा^३ ॥१८॥

तारिसपरिणामट्ठियजीवा हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं ।

मोहस्सऽपुव्वकरणा खवणुवसमणुजया भणिया^४ ॥१९॥

इस गुणस्थानमे, भिन्न समयवर्ती जीवोंमे करण अर्थात् परिणामोंकी अपेक्षा कभी भी सादृश्य नहीं पाया जाता । किन्तु एक समयवर्ती जीवोंमे सादृश्य और वैसादृश्य दोनों ही पाये जाते हैं । इस गुणस्थानमे यत्. विभिन्न-समय-स्थित जीवोंके पूर्वमे अप्राप्त अपूर्व परिणाम होते हैं, अतः उन्हें अपूर्वकरण कहते हैं । इस प्रकारके अपूर्वकरण परिणामोंमे स्थित जीव मोहकर्मके क्षपण या उपशमन करनेमें उद्यत होते हैं, ऐसा गलित-तिमिर अर्थात् अज्ञानरूप अन्धकारसे रहित वीतरागी जिनोने कहा है ॥१७-१९॥

९ अनिवृत्तिकरणसंयतगुणस्थानका स्वरूप—

^३एकम्मि कालसमए संठाणादीहि जह णिवट्ठंति ।

ण *णिवट्ठंति तह च्चिय परिणामेहिं मिहो जम्हा^५ ॥२०॥

होंति अणियट्ठिणो ते पडिसमयं जेसिमेक्कपरिणामा ।

विमलयर - भाणहुयवहसिहाहिं णिद्धुक्कम्मवणा^६ ॥२१॥

इस गुणस्थानके अन्तर्मुहूर्त-प्रमित कालमें से विवक्षित किसी एक समयमे अवस्थित जीव यतः संस्थान (शरीरका आकार) आदिकी अपेक्षा जिस प्रकार निवृत्ति या भेदको प्राप्त होते हैं, उस प्रकार परिणामोंकी अपेक्षा परम्पर निवृत्तिको प्राप्त नहीं होते हैं, अतएव वे अनिवृत्तिकरण कहलाते हैं । अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवोंके प्रति समय एक ही परिणाम होता है । ऐसे ये जीव अपने अति विमल ध्यानरूप अग्निकी शिखाओंसे कर्मरूप वनको सर्वथा जला डालते हैं ॥२०-२१॥

१ स० पचस० १, ३४ । २. १, ३५-३७ । ३. १, ३८-४० ।

१ ध० भा० १ पृ० १७६ गा० १५५ । गो० जी० ४६ । २. ध० भा० १ पृ० १८३ गा० ११६ ।

गो० जी० ५२ । ३ ध० भा० १ पृ० १८३ गा० ११७ । गो० जी० ५१ । ४ ध० भा० १

पृ० १८३ गा० ११८ । गो० जी० ५४ । ५ ध० भा० १ पृ० १८६ गा० ११८ । गो० जी०

५६ । ६. ध० भा० १ पृ० १८६ गा० १२० । गो० जी० ५७ ।

× द व -यखवओ । * व -निव० । - व -वर ।

१० सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानका स्वरूप—

१कोसुंभो जिह राओ अब्भंतरदो य सुहुमरत्तो य ।

एवं सुहुमसराओ सुहुमकसाओ त्ति णायव्वो ॥२२॥

पुव्वापुव्वप्फड्डयअणुभागाओ अणंतगुणहीणे ।

लोहाणुम्मि य ढ्ढिअओ हंदि सुहुमसंपराओ य ॥२३॥

जिस प्रकार कुसुमली रंग भीतरसे सूक्ष्म रक्त अर्थात् अत्यन्त कम लालिमावाला होता है, उसी प्रकार सूक्ष्म राग-सहित जीवको सूक्ष्मकपाय या सूक्ष्मसाम्पराय जानना चाहिए। लोभाणु अर्थात् सूक्ष्म लोभमें स्थित सूक्ष्मसाम्परायसंयत पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकके अनुभाग से अनन्तगुणितहीन अनुभागवाला होता है ॥२२-२३॥

विशेषार्थ—अनेक प्रकारकी अनुभाग शक्तिसे युक्त कर्मणवर्गणाओके समूहको स्पर्धक कहते हैं। जो स्पर्धक अनिवृत्तिकरणके पहले पाये जाते हैं, उन्हें पूर्वस्पर्धक कहते हैं। जिन स्पर्धकोका अनिवृत्तिकरणके निमित्तसे अनुभाग क्षीण होता है, उन्हें अपूर्वस्पर्धक कहते हैं। सूक्ष्म-कपाय-सम्बन्धी स्पर्धककी अनुभाग-शक्ति उक्त दोनों ही स्पर्धकोकी अनुभाग-शक्तिसे अनन्तगुणी हीन होती है।

११ उपशान्तकषायगुणस्थानका स्वरूप—

२सकयाहलं जलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलयं ।

सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होइ ॥२४॥

कतकफल (निर्मली)से सहित जल, अथवा शरद्-कालमें सरोवरका पानी जिस प्रकार निर्मल होता है, उसी प्रकार जिसका सम्पूर्ण मोहकर्म सर्वथा उपशान्त हो गया है, ऐसा उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती जीव अत्यन्त निर्मल परिणामवाला होता है ॥२४॥

१२ क्षीणकपायगुणस्थानका स्वरूप—

३णिस्सेसखीणमोहो फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।

खीणकसाओ भण्णइ णिग्गंथो वीयराएहिं ॥२५॥

जह सुद्धफलिहभायणखित्तं णीरं खु णिम्मलं सुद्धं ।

तह × णिम्मलपरिणामो खीणकसाओ मुणेयव्वो ॥२६॥

मोहकर्मके निशेष क्षीण हो जानेसे जिसका चित्त स्फटिकके विमल भाजनमें रक्खे हुए सलिलके समान स्वच्छ हो गया है, ऐसे निर्ग्रन्थ साधुको, वीतरागियोंने क्षीणकपायसंयत कहा है। जिस प्रकार निर्मली, फिटकरी आदिसे स्वच्छ किया हुआ जल शुद्ध-स्वच्छ स्फटिकमणिके भाजनमें नितरा लेनेपर सर्वथा निर्मल एवं शुद्ध होता है, उसी प्रकार क्षीणकपायसंयतको भी निर्मल, स्वच्छ एवं शुद्ध परिणामवाला जानना चाहिये ॥२५-२६॥

१. स० पं० स० १, ४१-४४ । २. १, ४७ । ३. १, ४८ ।

१ गो० जी० ५६, पर तत्र प्रथम-द्वितीयचरणयो. 'धुदकोसुअयवत्थ होदि जहा सुहुमरायसजुत्' ईदक् पाठः । २. ध० भा० १ पृ० १८८ गा० १२१ । ३. गो० जी० ६१, पर तत्र प्रथमचरणे 'कदकफलजुदजल वा' इति पाठः । ४ ध० भा० १ पृ० १६० गा० १२३ । गो० जी० ६२ ।

—व -हीणो । * व -नीर । † व -निम्मल । × व -निम्मल ।

१३ सयोगिकेवलिगुणस्थानका स्वरूप—

^१केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासिअण्णाणो ।

णवकेवललद्धुगमपावियपरमप्पववएसो^१ ॥२७॥

जं णत्थि राय-दोसो तेण ण बंधो हु अत्थि केवलिणो ।

जह सुक्कुडुलगा वालुया सडइ तह कम्मं ॥२८॥

असहायणाण-दंसणसहिओ वि हु केवली हु× जोएण ।

जुत्तो त्ति सजोइजिणो अणाइणिहणारिसे* बुत्तो^२ ॥२९॥

केवलज्ञानरूप दिवाकर (सूर्य) की किरणोंके समूहसे जिनका अज्ञानान्धकार सर्वथा नष्ट हो गया है, जिन्होंने जो केवल-लब्धियोंके उद्गमसे 'परमात्मा' संज्ञा प्राप्त की है और जो पर-सहायसे रहित केवलज्ञान-दर्शनसे सहित हैं, ऐसे योग-युक्त केवली भगवान्को अनादि-निधन आर्पण सयोगिजिन कहा है । केवली भगवान्के यतः राग-द्वेष नहीं होता, इस कारणसे उनके नवान् कर्मका बन्ध भी नहीं होता है । जिस प्रकार सूखी भित्तीपर आकरके लगी हुई वालुका तत्क्षण भड़ जाती है, इसी प्रकार योगके सद्भावसे आया हुआ कर्म भी कषायके न होनेसे तत्क्षण भड़ जाता है ॥२७-२९॥

१४ अयोगिकेवलिगुणस्थानका स्वरूप—

^३सेलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो ।

कम्मरयविप्पमुको गयजोगो केवली होइ^३ ॥३०॥

जो जीव शैलेशी अवस्थाको प्राप्त हुए है, अर्थात् शैल (पर्वत) के समान स्थिर परिणाम-वाले हैं; अथवा जिन्होंने अठारह हजार भेदवाले शीलके स्वामित्वरूप शीलेशत्वको प्राप्त किया है, जिनका निःशेष आस्रव सर्वथा रुक गया है, जो कर्म-रजसे विप्रमुक्त हैं और योगसे रहित हो चुके हैं, ऐसे केवली भगवान्को अयोगिकेवली कहते हैं ॥३०॥

१५ गुणस्थानातीत सिद्धोंका स्वरूप—

^४अट्टविहकम्मवियडा सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।

अट्टगुणा कयकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा^४ ॥३१॥

जो अष्ट-विध कर्मोंसे रहित हैं, अत्यन्त शान्तिमय हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, क्षायिक सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंसे युक्त हैं, कृतकृत्य हैं और लोकके अग्रभागपर निवास करते हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं ॥३१॥

इस प्रकार गुणस्थानप्ररूपणा समाप्त हुई ।

अब दूसरी जीवसमासप्ररूपणाका वर्णन करते हैं—

^५जेहिं अणेया जीवा णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी ।

ते पुण संगहिदत्था जीवसमासे^५ त्ति विण्णेया^५ ॥३२॥

१ सं० पञ्चस० १, ४६ । २. १, ५० । ३. १, ५१ । ४. १, ६३ ।

१. ध० भा० १ पृ० १६१ गा० १२४ । गो० जी० ६३ । २. ध० भा० १ पृ० १६२ गा० १२५ ।

गो० जी० ६४ । ३. ध० भा० १ पृ० १६६ गा० १२६ । गो० जी० ६५ । पर तत्र 'सीलेसिं'

इति पाठः । ४ ध० भा० १ पृ० २०० गा० १२७ गो० जी० ६८ । ५. गो० जी० ७० ।

× द व केवलीहि । * व -णोरिसे । † व -समासा ।

जिन धर्म-विशेषोंके द्वारा नाना जीव और उनकी नाना प्रकारकी जातियाँ जानी जाती हैं, पदार्थोंका संग्रह करनेवाले उन धर्मविशेषोंको जीवसमास जानना चाहिये ॥३२॥

जीवसमासोंके भेदोंका वर्णन—

¹जीवद्वुणवियप्पा चोदस इगिवीस तीस बत्तीसा ।

छत्तीस *अद्वतीसाऽडयाल चउवण्ण सयवण्णा ॥३३॥

जीवोंके स्थानोंको जीवसमास कहते हैं । जीवस्थानोंके भेद क्रमशः चौदह, इक्कीस, तीस, बत्तीस, छत्तीस, अद्वतीस, अद्वतालीस, चौवन और सत्तावन होते हैं ॥३३॥

चौदह भेदोंका निरूपण—

²बायरसुहुमेगिंदिय-वि-ति-चउरिंदिय-असण्णि-सण्णी य ।

पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चोदसा होंति ॥३४॥

बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिपंचेन्द्रिय और संज्ञिपंचेन्द्रिय, ये सातों ही पर्याप्तक और अपर्याप्तक रूप होते हैं । इस प्रकार जीवसमासके चौदह भेद होते हैं ॥३४॥ (देखो सट्ठि स० १)

इक्कीस भेदोंका निरूपण—

³चोदस पुण्वुदिट्ठा अलद्विपज्जत्तया य सत्तेव ।

इय एवं इगिवीसा णिदिट्ठा जिणवरिंदेहि ॥३५॥

पूर्वोद्दिष्ट चौदह भेद, तथा लब्ध्यपर्याप्तक-सम्बन्धी उपर्युक्त सातों ही भेद, इस प्रकार जीवसमासके ये इक्कीस भेद जिनवरेन्द्रोने कहे हैं ॥३५॥ (देखो स० स० २)

तीस भेदोंका निरूपण—

⁴पंच वि थावरकाया बादर-सुहुमा पज्जत्त इयरा य ।

दस चेव तसेसु तहा एवं जाणे हु तीसा य ॥३६॥

पाँचों ही स्थावरकायिकजीव बादर-सूक्ष्म और पर्याप्तक-अपर्याप्तकके भेदसे बीस भेदरूप होते हैं । तथा त्रसजीवोमे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिपंचेन्द्रिय और संज्ञिपंचेन्द्रिय इन पाँचोंके ही पर्याप्तक-अपर्याप्तकके भेदसे दश भेद होते हैं । इस प्रकार स्थावरोंके बीस, त्रसोंके दश ये दोनों मिलकर तीस भेद जानना चाहिये ॥३६॥ (देखो स० स० ३)

वत्तीस भेदोंका निरूपण—

⁵पुण्वुत्ता वि य तीसा जीवसमासा य होंति णवरं तु ।

सुपरिद्विय दो सहिया जीवसमासेहि बत्तीसा ॥३७॥

पूर्वोक्त जो तीस जीवसमास हैं, उनमे केवल वनस्पतिकायिक-सम्बन्धी सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित ये दो भेद और मिला देनेपर बत्तीस जीवसमास हो जाते हैं ॥३७॥ (देखो स० स० ४)

1. स० पञ्चस० १, ६८-६९ । 2. १, ६४-६५ । 3. १, १०० । 4. १, १०१-१०२ ।

5. १, १०३-१०४ ।

१. गो० जी० ७२ ।

* व -अद्वतीसा ।

छत्तीस भेदोंका वर्णन—

¹चउ-इयरणिगोएहिं जुआ बत्तीसा य होइ छत्तीसा ।

बादर-सुहुमेहिं तहा पज्जत्ता इयरसंखेहिं ॥३८॥

पूर्वोक्त बत्तीस भेदोंमे बादर चतुर्गतिनिगोद पर्याप्तक, बादर चतुर्गतिनिगोद-अपर्याप्तक, बादरनित्यनिगोद पर्याप्तक और बादर नित्यनिगोद-अपर्याप्तक ये सप्रतिष्ठितके चार भेद और मिलानेपर छत्तीस जीवसमास हो जाते हैं ॥३८॥ (देखो स० स० ५)

अड़तीस भेदोंका वर्णन—

²पुव्वुत्ता छत्तीसा अड्ढत्तीसा य सा होइ ।

अपइट्ठिएहिं सहिया दो जीवसमासएहिं च ॥३९॥

पूर्वोक्त छत्तीस भेदोंमे अप्रतिष्ठित वनस्पतिके पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास और मिला देनेपर अड़तीस जीवसमास हो जाते हैं ॥३९॥ (देखो स० स० ६)

अड़तालीस भेदोंका वर्णन—

³सोलस जीवसमासा अलद्धिपज्जत्तगेषु जे भणिया ।

तेहिं जुआ बत्तीसा अड्डालीसा य सा होइ ॥४०॥

लब्ध्यपर्याप्तकोंमें जो पहले सोलह जीवसमास कहे गये हैं, उनसे बत्तीस जीवसमास युक्त करनेपर अड़तालीस भेद हो जाते हैं ॥४०॥ (देखो स० स० ७)

चौपन भेदोंका वर्णन—

⁴अट्टारसेहिं जुत्ता अलद्धिपज्जत्तएहिं छत्तीसा ।

जीवसमासेहिं तहा चउवण्णा *जाण णियमेण ॥४१॥

लब्ध्यपर्याप्तकोंके अठारह जीवसमासोंके साथ पूर्वोक्त छत्तीस जीवसमास युक्त करने पर चौपन भेद हो जाते हैं, ऐसा नियमसे जानना चाहिए ॥४१॥ (देखो स० स० ८)

सत्तावन भेदोंका वर्णन—

⁵उणवीसेहिं य जुत्ता अलद्धिपज्जत्तएहिं अड्ढत्तीसा ।

जीवसमासेहिं तहा सयवण्णा सा य विण्णेया ॥४२॥

लब्ध्यपर्याप्तकोंके उन्नीस जीवसमासोंके साथ पूर्वोक्त अड़तीस जीवसमास युक्त करने पर सत्तावन जीवसमास हो जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४२॥ (देखो स० स० ९)

इस प्रकार जीवसमासप्ररूपणा समाप्त हुई

पर्याप्तिप्ररूपणा—

⁶जह पुण्णापुण्णाइं गिह-घड-वत्थाइयाइं दव्वाइं ।

तह पुण्णापुण्णाओ पज्जत्तियरा मुणेयव्वा ॥४३॥

1. स० पञ्चस० १, १०८-१०९ । 2. १, ११२-११३ । 3. १, ११५ । 4. १, ११६ ।

5. १, ११७ । 6. १, १२७ ।

१. गो० जी० ११७ ।

* व -जाणि ।

^१आहारसरीरिन्दियपञ्जर्त्ता आणपाणभासमणो ।

चत्तारि पंच छपि य एहंदि-वियल-सण्णीणं ॥४४॥

जिस प्रकार गृह, घट, वस्त्रादिक अचेतन द्रव्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकारके होते हैं, उसी प्रकार जीव भी पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकारके होते हैं। पूर्ण जीवोंको पर्याप्त और अपूर्ण जीवोंको अपर्याप्त जानना चाहिए। आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनपान (श्वासोच्छ्वास) भाषा और मन ये छह पर्याप्तियाँ होती हैं। इनमेंसे एकेंद्रियोंके आदिकी चार, विकेंद्रियोंके आदिकी पाँच और संज्ञी पंचेन्द्रियोंके छहों पर्याप्तियाँ होती हैं ॥४३-४४॥

इन प्रकार पर्याप्तिप्ररूपणा समाप्त हुई ।

प्राणप्ररूपणा—

^२बाहिरपाणेहिं जहा तहेव अन्तरेहि पाणेहिं ।

जावन्ति जेहिं जीवा पाणा ते होन्ति बोहव्वा ॥४५॥

^३पंचेविंदियपाणा मण-वचि-काएण तिणिण बलपाणा ।

आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण दस होन्ति ॥४६॥

जिस प्रकार बाह्य प्राणोंके द्वारा जीव जीते हैं, उसी प्रकार जिन आभ्यन्तर प्राणोंके द्वारा जीव जीते हैं, वे प्राण कहलाते हैं, ऐसा जानना चाहिए। स्पर्शन, रसन, घ्राण, नयन और श्रवण ये पाँच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल और कायबल ये तीन बल, आयु और आनपान ये दस प्राण होते हैं ॥४५-४६॥

विशेषार्थ—पौंड्रलिक द्रव्येन्द्रियोंके व्यापारको बाह्यप्राण कहते हैं। बाह्यप्राणके निमित्तभूत ज्ञानावगण और अन्तरायकर्मके ज्योपरामादिने विजृम्भित चेतनव्यापारको आभ्यन्तर प्राण कहते हैं। इन दोनों ही प्रकारके प्राणोंके सद्भावमें जीवमें जीवितपनका और वियोग होने पर मरणपनका व्यवहार होता है, इसलिए इन्हें प्राण कहते हैं। ये प्राण पूर्वोक्त पर्याप्तियोंके कार्यरूप हैं और पर्याप्ति कारणरूप हैं; क्योंकि गृहीत पुद्गल स्कन्ध-विशेषोंको इन्द्रिय, वचन आदिरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति और वचन-व्यापार आदिकी कारणभूत शक्तिकी, तथा वचन आदिकी प्राण कहते हैं।

^४उम्मासो पजत्ते सच्चैसिं काय-हंदिआऊणि ।

वचि पजत्ततसाणं चित्तयलं सण्णिपजत्ते ॥४७॥

दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणांतिमस्स वे ऊणा ।

पजत्तेसु दरेसु अ सत्त दुए सेसगेगूणा ॥४८॥

पुण्णेसु सण्णि सच्चं मणरहिया होन्ति ते दु इयरम्मि ।

मोदन्निवथाणजिम्मरहिया सेसिगिंदिमाएणा ॥४९॥

पंचक्ख-दुए पाणा मण वचि उम्मास ऊणिया सच्चं ।

कण्णक्खिगंधरसणारहिया सेसेनु ते अपुण्णेसु ॥५०॥

होहंदिआदिपञ्चने १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० । सण्णिपंचिदिआदि-अपञ्चत्ते ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० ।

१. मं० पंचसं० १, १२८ । २. १, १२९ । ३. १, १२८ । ४. १, १२५-१२६ ।

१. गौ० जी० ११८ । २. घ० भा० १ घ० २५६ भा० १२१ । गौ० जी० १२८ । ३. गौ० जी० १२६ । ४. गौ० जी० १३२ ।

५ व-आग । १ व-विचि ।

कायबल, इन्द्रियो और आयु ये प्राण सभी पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके होते हैं। श्वासोच्छ्वास पर्याप्त स्थावर और त्रसजीवोंके होता है। वचनबल पर्याप्त त्रसजीवोंके, तथा मनोबल संज्ञी पर्याप्त जीवोंके होता है। पर्याप्त सञ्ज्ञीपंचेन्द्रियोंके दश प्राण होते हैं। शेष पर्याप्त जीवोंके एक-एक प्राण कम होता है और एकेन्द्रियोंके दो प्राण कम होते हैं। अपर्याप्त संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रियोंके सात प्राण होते हैं, और शेष जीवोंके एक-एक प्राण कम होता जाता है। पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रियोंके पौँचो इन्द्रियों, तीनों बल, आयु और आनपान ये दशो प्राण होते हैं। पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रियके मन-रहित शेष नौ प्राण होते हैं। पर्याप्त चतुरिन्द्रियके उक्त नौ प्राणोंमेंसे श्रोत्र-रहित शेष आठ प्राण होते हैं। पर्याप्त त्रीन्द्रियके उक्त आठ प्राणोंमेंसे चक्षु-रहित शेष सात प्राण होते हैं। पर्याप्त द्वीन्द्रियके उक्त सात प्राणोंमेंसे घ्राण-रहित शेष छह प्राण होते हैं। पर्याप्त एकेन्द्रियके उक्त छह प्राणोंमेंसे रसनाइन्द्रिय और वचनबल इन दो प्राणोंसे रहित शेष चार प्राण होते हैं। अपर्याप्त पंचेन्द्रिय-द्विकमे मनोबल, वचनबल और श्वासोच्छ्वास इन तीनसे कम शेष सात प्राण होते हैं। अपर्याप्त चतुरिन्द्रियके उक्त सातमें कर्णेन्द्रिय कम करनेपर शेष छह प्राण होते हैं। अपर्याप्त त्रीन्द्रियके उक्त छहमेंसे चक्षुरिन्द्रिय कम करने पर शेष पौँच प्राण होते हैं। अपर्याप्त द्वीन्द्रियके घ्राणेन्द्रिय कम करने पर शेष चार प्राण होते हैं। अपर्याप्त एकेन्द्रियके रसना-रहित शेष तीन प्राण होते हैं। इनको अंकसंहति मूलमें दी है ॥४७-५८॥

इस प्रकार प्राणप्ररूपणा समाप्त हुई।

संज्ञाप्ररूपणा—

^१इह जाहि बाहिया वि य जीवा पावति दारुणं दुक्खं ।

सेवंता वि य उभए ताओ चत्तारि सण्णाओ^१ ॥५१॥

जिनसे बाधित होकर जीव इस लोकमें दारुण दुःखको पाते हैं और जिनको सेवन करनेसे जीव दोनों ही भवोंमें दारुण दुःखको प्राप्त करते हैं, उन्हें संज्ञा कहते हैं और वे चार होती हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा ॥५१॥

आहारसंज्ञाका स्वरूप—

^२आहारदंसणेण य तस्सुवओगेण ऊणकुट्टेण ।

सादिदरुदीरणाए होदि हु आहारसण्णा दु^३ ॥५२॥

वहिरंगमें आहारके देखनेसे, उसके उपयोगसे और उदररूप कोठाके खाली होने पर तथा अन्तरंगमें असातावेदनीयकी उदीरणा होने पर आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है ॥५२॥

भयसंज्ञाका स्वरूप—

^३अइ^४भीमदंसणेण य तस्सुवओगेण ऊणसत्तेण ।

भयकम्मदुदीरणाए भयसण्णा जायदे चउहि^३ ॥५३॥

वहिरङ्गमें अति भयानक रूपके देखनेसे, उसका उपयोग करनेसे और शक्तिकी हीनता होने पर, तथा अन्तरंगमें भयकर्मकी उदीरणा होने पर, इस प्रकार इन चार कारणोंसे भयसंज्ञा उत्पन्न होती है ॥५३॥

१. स० पञ्चस० १, ३४४ । २. १, ३४८ । ३. १, ३४६ ।

१. गो०जी० १३३ । २. गो०जी० १३४ । ३. गो० जी० १३५ ।

उ द -उभये । † व -ओन, द -ओमु । ‡ व -इय । × व -ऊन ।

मैथुनसंज्ञाका स्वरूप—

^१पणिदरसभोयणेण य तस्सुवओगेण कुसीलसेवाए ।

वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं^१ ॥५४॥

बहिरंगमे गरिष्ठ, स्वादिष्ठ और रसयुक्त भोजन करनेसे, पूर्व-भुक्त विषयोंके ध्यान करनेसे, कुशीलका सेवन करनेसे, तथा अन्तरंगमे वेदकर्मकी उदीरणा या तीव्र उदय होनेपर मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है ॥५४॥

परिग्रहसंज्ञाका स्वरूप —

^२उवयरणदंसणेण य तस्सुवओगेण मुच्छियाए व ।

लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा^२ ॥५५॥

बहिरंगमे भोगोपभोगके साधनभूत उपकरणोंके देखनेसे, उनका उपयोग करनेसे, उनमें मूर्च्छाभाव रखनेसे तथा अन्तरंगमे लोभकर्मकी उदीरणा होने पर परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है ॥५५॥

इस प्रकार संज्ञाप्ररूपणा समाप्त हुई ।

मार्गणाप्ररूपणा—

^३जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।

ताओ चौदस जाणे सुदणाणे मग्गणाओ त्ति^३ ॥५६॥

^४गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य ।

संजम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे^४ ॥५७॥

जिन-प्रवचन-दृष्ट जीव जिन भावोंके द्वारा, अथवा जिन पर्यायोंमे अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवोंका अन्वेपण करनेवाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञानमे चौदह कहीं गई हैं, ऐसा जानना चाहिए। वे चौदह मार्गणाएँ इस प्रकार हैं— १, गतिमार्गणा, २ इन्द्रियमार्गणा, ३ कायमार्गणा, ४ योगमार्गणा, ५ वेदमार्गणा, ६ कषायमार्गणा, ७ ज्ञानमार्गणा, ८ संयममार्गणा, ९ दर्शनमार्गणा, १० लेश्यामार्गणा, १२ भव्यमार्गणा, १२ सम्यक्त्वमार्गणा, १३ संज्ञिमार्गणा और १४ आहारमार्गणा ॥५६-५७॥

^५मणुया य अपज्जत्ता वेउव्वियमिस्सऽहारया दोण्णि ।

सुहुमो सासणमिस्सो उवसमसम्मो य संतरा अट्ठ^५ ॥५८॥

एत्थ एगो गईए १ । तितय जोगे ३ । सुहुमो सजमे १ । तयं सम्मत्ते ३ । इदि अट्ठ सतरा ८ ।

१. स० पचस० १, ३५० । २. १, ३५२ । ३. १, १३१ । ४. १, १३२-१३३ । ५. १, १३४-१३५ ।

१. गो० जी० १३६ । २. गो० जी० १३७ । ३. ध० भा० १ पृ० १३२ गा० ८३ । गो० जी० १४० । ४. गो० जी० १४१ ।

* व टिप्पणी—सत्त टिणा छम्मासा वासपुत्त च वारस सुहुत्ता ।

पल्लासख तिण्ह वरमवर एगममओ दु ॥१॥

पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदीए चउहसा दिवसा ।

विरदीए पण्णरसा विरहिदकालो दु वोहव्वो ॥२॥ गो० जी० १४३-१४४ ।

उवसमेण सह अणुव्वयंतरं दिणं १४। तेण सह महव्वयतरं दिणं १५। पेयादोसाभिप्पायादो तस्से-
वतरं दिणं २४। प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्य ४०। अपर्याप्तमनुष्यस्य पत्थोपमासख्याततमभागः उत्कृष्टेन
शून्यकालो भवति। आहारकद्वितयस्य सप्ताष्टौ वर्षाणि। वैक्रियिकमिश्रे द्वादश सुहृत्ताः। सूचमयाभिराय-
सयमस्य पण्मासा। सासादन-मिश्रयो. पत्थोपमासख्याततमभागः। औपशमिकस्य सप्त दिनानि।

अपर्याप्त मनुष्य, वैक्रियिकमिश्रयोग, दोनो आहारक अर्थात् आहारककाययोग और आहारक मिश्रकाययोग, सूक्ष्मसाम्परायचारित्र, सासादनसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और उपशमसम्यक्त्व ये आठ सान्तर मार्गणा होती हैं ॥५८॥

इनमेसे गतिमार्गणामे एक, योगमार्गणामे तीन, संयममार्गणामे सूक्ष्मसाम्परायचारित्र तथा सम्यक्त्वमार्गणामे अन्तिम तीन, इस प्रकार आठ सान्तर मार्गणाएँ जानना चाहिए । अब गतिमार्गणाका वर्णन करते हुए पहले गतिका स्वरूप कहते हैं—

^१गृहकम्मविणिब्बत्ता जा चेद्धा सा गई मुणेयव्वा ।

जीवा हु चाउरंगं गच्छंति हु सा गई होइ ॥५९॥

गतिनामा नामकर्मसे उत्पन्न होनेवाली जो चेष्टा या क्रिया होती है उसे गति जानना चाहिए । अथवा जिसके द्वारा जीव नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव इन चारों गतियोंमे गमन करते हैं, वह गति कहलाती है ॥५९॥

नरकगतिका स्वरूप—

^२ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल भावे य ।

अण्णोण्णेहि य णिच्चं तम्हा ते णारया भणियाँ ॥६०॥

यतः तत्स्थानवर्ती द्रव्यमे, क्षेत्रमे, कालमे और भावमे जो जीव रमते नहीं हैं, तथा परस्परमे भी जो कभी भी प्रीतिको प्राप्त नहीं होते हैं, अतएव वे नारक या नारकी कहे जाते हैं ॥६०॥

तिर्यग्गतिका स्वरूप—

^३तिरियंति कुडिलभावं विगयसुसण्णा णिकट्टमण्णाणा + ।

अच्चंतपाववहुला तम्हा ते तिरिच्छिया भणियाँ ॥६१॥

यतः जो सदा कुटिलभावका आचरण करते हैं, उत्कट सजाओके धारक है, निष्कृष्ट एवं अज्ञानी है, अत्यन्त पाप-बहुल हैं, अतः वे तिर्यञ्च कहे जाते हैं ॥६१॥

मनुष्यगतिका स्वरूप—

^४मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा जदो दु जे जीवा ।

मणउक्कडा य जम्हा तम्हा ते माणुसा भणियाँ ॥६२॥

यतः जो मनके द्वारा नित्य ही हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्त्व और धर्म-अधर्मका विचार करते हैं, कार्य करनेमे निपुण हैं, मनसे उत्कृष्ट हैं, अर्थात् उत्कृष्ट मनके धारक है, और युगके आदिमे मनुष्योंसे उत्पन्न हुए हैं, अतएव वे मनुष्य कहलाते हैं ॥६२॥

देवगतिका स्वरूप—

^५कीडंति जदो णिच्चं गुणेहिं अट्ठेहिं दिव्वभावेहिं ।

भासंतदिव्वकाया तम्हा ते वणििया देवाँ ॥६३॥

१ सं० पञ्चस० १, १३६ । २. १, १३७ । ३. १, १३८ । ४ १, १३९ । ५ १, १४० ।

१. ध०भा० १ पृ० १३५ गा० ८४ । २. ध०भा० १ पृ० २०२ गा० १२८ । गो०जी० १४६ ।

३. ध० भा० १ पृ० २०२ गा० १२६ । गो० जी० १४७ । ४. ध० भा० १ पृ० २०३ गा० १३० । गो०जी० १४८ ।

५ ध०भा० १ पृ० २०३ गा० १३१ । गो०जी० १५० । परन्तु भयत्रापि 'कीडति' स्थाने 'दिव्वति' पाठः ।

+ द- मन्नाणा ।

जो इन्द्रियोंके व्यापारसे युक्त नहीं हैं, अवग्रहादिके द्वारा भी पदार्थोंके ग्राहक नहीं हैं और जिनके इन्द्रिय-सुख भी नहीं है, ऐसे अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान और सुखवाले जीवोंको इन्द्रियातीत सिद्ध जानना चाहिये ॥७४॥

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब कायमार्गणाका वर्णन करते हुए पहले कायका स्वरूप कहते हैं—

^१अप्पप्पवुत्तिसंचियपुग्गलपिंडं वियाण काओ त्ति ।

सो जिणमयम्हि भणिओ पुढवीकायाइयो छद्दा^१ ॥७५॥

योगरूप आत्माकी प्रवृत्तिसे संचयको प्राप्त हुए औदारिकादिरूप पुद्गलपिंडको काय जानना चाहिये । वह काय जिनमतमे पृथिवीकाय आदिके भेदसे छह प्रकारका कहा गया है ॥७५॥

^२जहं भारवहो पुरिसो वहइ भरं गिण्हिऊण काउडियं ।

एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकाउडियं^२ ॥७६॥

जिस प्रकार कोई भारको ढोनेवाला पुरुष कावटिकाको लेकर भारको वहन करता है, इसी प्रकार यह जीव कायरूपी कावटिकाको ग्रहण करके कर्मरूपी भारको वहन करता है ॥७६॥ पृथिवीकायिक जीवोंके भेद—

^३पुढवी य सक्करा वालुया य उवले सिलाइ छत्तीसा ।

पुढवीमया हु जीवा णिदिट्ठा जिणवरिंदेहिं^३ ॥७७॥

पृथिवी, शर्करा, वालुका उपल, शिला आदिके भेदसे छत्तीस प्रकारके पृथ्वीमय अर्थात् पृथिवीकायिक जीव जिनवरेन्द्रोने निर्दिष्ट किये हैं ॥७७॥

जलकायिक जीवोंके भेद—

^४ओसा य हिमिय महिया हरदणु सुद्धोदयं घणुदयं च ।

एदे दु आउकाया जीवा जिणसासणे दिट्ठा^४ ॥७८॥

ओस, हिमिका (बर्फ), महिका (कुहरा), हरदणु, (हरे तृण आदिके ऊपर अवस्थित जलविन्दु) शुद्धोदक (चन्द्रकान्त, मणिसे उत्पन्न शुद्ध जल) घनोदक (स्थूल सघन जल) इत्यादि अष्ठायिक (जलकायिक) जीव जिनशासनमे कहे गये हैं ॥७८॥

अग्निकायिक जीवोंके भेद—

^५इंगाल जाल अच्ची मुम्मुर सुद्धागणी य अगणी य ।

अणोवि एवमाई त्तेउकाया समुदिट्ठा^५ ॥७९॥

सं० पंचसं० १. १, १५३ । २. १, १५२ । ३. १, १५५ । ४. १, १५६ । ५. १, १५७ ।
१. ध० भा० १ पृ० १३६ गा० ८६ । गो० जी० १८०, परं तत्रोत्तरार्धसाम्यमेव । २. ध० भा० १
पृ० १३६ गा० ८७ । गो० जी० २०१ । ३. मूला० गा० २०६ । आचा० नि० ७३ । ध०
भा० १, पृ० २७२ गा० १४६ । ४. मूला० गा० २१० । आचा० नि० १०८ । ध० भा० १
पृ० २७३ गा० १५० । परं तत्र पूर्वार्धे पाठोऽयम्—ओसा य हिमो धूमरि हरदणु सुद्धोदको
घणोदो य । ५. मूला० गा० २१२ । आचा० नि० १६६ । ध० भा० १ पृ० २७३ गा० १५२ ।
प्रतिपु 'जिह' पाठः । † च तेज०, द्र तेज ।

अंगार, ज्वाला, अर्चि (अग्निकिरण), मुर्मुर (निर्धूम और ऊपर राखसे ढँकी हुई अग्नि) शुद्ध-अग्नि (विजली और सूर्यकान्तमणिसे उत्पन्न अग्नि) और धूमवाली अग्नि इत्यादि अन्य अनेक प्रकारके तेजस्कायिक जीव कहे गये हैं ॥७६॥

वायुकायिक जीवोंके भेद—

^१वाउब्भामो उक्कलिक्ख मंडलि गुंजा महाघण तणू य ।

एदे दु वाउकाया जीवा जिणसासणे दिट्ठा^१ ॥८०॥

सामान्य वायु, उद्भ्राम (ऊर्ध्व भ्रमणशील) वायु, उत्कलिका (अधोभ्रमणशील और तिर्यक् बहनेवाली), मण्डलिका (गोलरूपसे बहनेवाली वायु), गुंजा (गुंजायमान वायु), महावात (वृक्षादिको गिरा देनेवाली वायु), घनवात और तनुवात इत्यादिक अनेक प्रकारके वायुकायिक जीव जिनशासनमे कहे गये हैं ॥८०॥

वनस्पतिकायिक जीवोंके भेद—

^२मूलगपोरवीया कंदा तह खंध वीय वीयरुहा ।

सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य^२ ॥८१॥

मूलबीज, अग्रबीज, पर्वबीज, कन्दबीज, स्कन्धबीज, बीजरुह और सम्मुच्छिमा, ये नाना प्रकारके प्रत्येक और अनन्तकाय (साधारण) वनस्पतिकायिक जीव कहे गये हैं ॥८१॥

^३साहारणमाहारो साहारण आणपाणमहणं च ।

साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं^३ ॥८२॥

साधारण अर्थात् अनन्तकायिक वनस्पति जीवोंका साधारण अर्थात् समान ही आहार होता है और साधारण ही श्वास-उच्छ्वासका ग्रहण होता है, इस प्रकार साधारण जीवोंका साधारण लक्षण कहा गया है ॥८२॥

^४जत्थेक्क मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं ।

चक्कमइ जत्थ एक्को तत्थक्कमणं अणंताणं^४ ॥८३॥

साधारण जीवोंमे जहाँ एक मरता है, वहाँ उसी समय अनन्त जीवोंका मरण होता है और जहाँ एक जन्म धारण करता है, वहाँ अनन्त जीवोंका जन्म होता है ॥८३॥

एयणिओयसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।

सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण^५ ॥८४॥

एक निगोदिया जीवके शरीरमे द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिद्धोंसे और सर्वव्यतीत कालसे अनन्तगुणित जीव सर्वदर्शियोंके द्वारा देखे गये हैं ॥८४॥

१. स० पञ्चस० १, १५८ । २ १, १५९ । ३ १, १०५ । ४ १, १०७ ।

१. मूला० २१३ । ध० भा० १ पृ० २७३ गा० १५२ । २. ध० भा० १ पृ० २७३ गा० १५३ । गो० जी० १८५ । ३. ध० भा० १ पृ० २७० गा० १४५ । गो० जी० १६१ । ४. ध० भा० १ पृ० २७० गा० १४६ । गो० जी० १६२ । ५ ध०, भा० १, पृ० २७० गा० १४७ । गो० जी० १५६ ।

६ द व -उक्किल । † व -माण । ‡ व द -चक्कमण तत्थ ।

^१अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसत्तपरिणामो ।

भावकलंकसुपउरा* णिगोयवासं ण मुंचंति^१ ॥८५॥

नित्य निगोदमें ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं, जिन्होंने त्रस जीवोंकी पर्याय आजतक भी नहीं पाई है और जो प्रचुर कलंकित भावोंसे युक्त होनेके कारण निगोद-वासको कभी भी नहीं छोड़ते ॥८५॥

त्रसजीवोंके भेद—

^२विहिं तिहिं चऊहिं पंचहिं सहिया जे इंदिएहिं लोयमिह ।

ते तसकाया जीवा णेया वीरोवएसेण^२ ॥८६॥

लोकमें जो दो इन्द्रियोंसे, तीन इन्द्रियोंसे, चार इन्द्रियोंसे और पाँच इन्द्रियोंसे सहित जीव दिखाई देते हैं, उन्हें वीर भगवान्के उपदेशसे त्रसकायिक जीव जानना चाहिए ॥८६॥

अकायिक जीवोंका स्वरूप—

^३जहा कंचणमग्गिमयं मुच्चइ किट्ठेण कलियाए य ।

तह कायबंधमुक्ता अकाइया भाणजोएण^३ ॥८७॥

जिस प्रकार अग्निमें दिया गया सुवर्ण किट्टिका (बहिरंगमल) और कालिमा (अन्तरंगमल) इन दोनों प्रकारके मलोंसे रहित हो जाता है, उसी प्रकार ध्यानके योगसे शुद्ध हुए और कायके बन्धनसे मुक्त हुए जीव अकायिक जानना चाहिए ॥८७॥

इस प्रकार कायमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ

अब योगमार्गणाका वर्णन प्रारम्भ करते हुए पहले योगका स्वरूप कहते हैं—

^४मणसा वाया काएण वा वि जुत्तस्स विरियपरिणामो ।

जीवस्स ऽप्पणिओगो जोगो त्ति जिणेहिं णिदिट्ठो^४ ॥८८॥

मन, वचन और कायसे युक्त जीवका जो वीर्य-परिणाम अथवा प्रदेश-परिस्पन्द रूप प्रणि-योग होता है, उसे योग कहते हैं, ऐसा जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है ॥८८॥

मनोयोगके भेद और उनका स्वरूप—

^५सव्भावो सच्चमणो जो जोगो सो दु सच्चमणजोगो ।

तन्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोस त्ति^५ ॥८९॥

सद्भाव अर्थात् समीचीन पदार्थके विषय करनेवाले मनको सत्य मन कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है, उसे सत्यमनोयोग कहते हैं। इससे विपरीत योगको मृषामनोयोग कहते हैं। सत्य और मृषारूप योगको सत्यमृषामनोयोग कहते हैं ॥८९॥

१ म० पञ्चस० १, ११० । २ १, १६० । ३ १, १६४ । ४ १, १६५ । ५ १६७ ।

१. ध० भा० १ पृ० २७१ गा० १४८ । गो० जी० १४६ । २. ध० भा० १ पृ० २७४ गा०

१५४ । गो० जी० १४७ । ३. ध० भा० १, पृ० २६६ गा० १४४ । गो० जी० २०२ ।

४. ध० भा० १ पृ०, १४० गा० ८८ । स्था० सू० पृ० १०१ । गो० जी० २०७ । ५. ध०

भा० १ पृ० २८१ गा १५४ ।

* द -सपउरा । † प्रतिपु 'जिह' पाठः । ‡ व द -य णिय० ।

ण य सच्चमोसजुत्तो जो हु मणो सो असच्चमोसमणो ।

जो जोगो तेण हवे असमच्चमोसो दु मणजोगो ॥६०॥

जो मन न तो सत्य हो और न मृषा हो, उसे असत्यमृषामन कहते हैं । उस असत्यमृषा-मनके द्वारा जो योग होता है, उसे असत्यमृषामनयोग कहते हैं ॥६०॥

वचनयोगके भेद और उनका स्वरूप—

‘दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो ।

तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोस त्ति ॥६१॥

जो णेव सच्चमोसो तं जाण असच्चमोसवचिजोगो ।

अमणणं जा भासा सण्णीणामंतणीयादी ॥६२॥

दश प्रकारके सत्य वचनमे वचनवर्गणाके निमित्तसे जो योग होता है उसे सत्यवचन-योग कहते हैं । इससे विपरीत योगको मृषावचनयोग कहते हैं । सत्य और मृषा वचनरूप योगको उभयवचनयोग कहते हैं । जो वचनयोग न तो सत्यरूप हो और न मृषारूप ही हो, उसे असत्यमृषावचनयोग कहते हैं । असंज्ञी जीवोकी जो अनंतरूप भाषा है और सज्ञी जीवोकी जो आमंत्रणी आदि भाषाएँ हैं, उन्हें अनुभय भाषा जानना चाहिए ॥६१-६२॥

विशेषार्थ—जनपदसत्य, सम्मतिसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीत्यसत्य, व्यवहारसत्य, संभावनासत्य, भावसत्य और उपमासत्य ये दश प्रकारके सत्य वचन होते हैं । विभिन्न देशवासी लोगोंके व्यवहारमे जो शब्द रुढ़ हो रहा है, उसे जनपदसत्य कहते हैं; जैसे भक्त नाम अग्निसे पके हुए चावलका है, उसे कहीं ‘भात’ और कहीं ‘कुलु’ कहते हैं । बहुतसे लोगोंकी सम्मतिसत्य जो सत्य माना जाय, अथवा कल्पनासे जो सत्य हो, उसे सम्मतिसत्य या संवृतिसत्य कहते हैं, जैसे पट्टरानीके सिवाय किसी सामान्य स्त्रीकी भी देवी कहना । भिन्न वस्तुमें भिन्न वस्तुके समारोप करनेवाले वचनको स्थापनासत्य कहते हैं, जैसे प्रतिमाको चन्द्रप्रभ कहना । दूसरी कोई अपेक्षा न रखकर केवल व्यवहारके लिए जो नाम रखा जाता है, उसे नामसत्य कहते हैं, जैसे जिनदत्त । यद्यपि उसको जिनभगवान् ने नहीं दिया है तथापि व्यवहारके लिए उसे जिनदत्त कहते हैं । पुद्गलके रूपादिक अनेक गुणोमेसे रूपकी प्रधानतासे जो वचन कहा जाय, उसे रूपसत्य कहते हैं । जैसे किसी मनुष्यके केशोंको काला कहना, अथवा उसके शरीरमे रसादिकके रहनेपर भी उसे श्वेत, धवल, गौर आदि कहना । किसी विवक्षित पदार्थकी अपेक्षा दूसरे पदार्थके स्वरूप-वर्णनको प्रतीत्यसत्य या आपेक्षिक-सत्य कहते हैं; जैसे किसीको दीर्घ, स्थूल आदि कहना । नैगमादि नयोकी प्रधानतासे जो वचन बोला जाय, उसे व्यवहार सत्य कहते हैं; जैसे नैगमनयकी अपेक्षासे ‘भात पकाता हूँ’ आदि वचन बोलना । असंभवताका परिहार करते हुए वस्तुके किसी धर्मके निरूपण करनेमें प्रवृत्त वचनको संभावनासत्य कहते हैं, जैसे इन्द्र जम्बूद्वीपको उलट-पलट कर सकता है आदि । आगम-वर्णित विधि-निषेधके अनुसार अतीन्द्रिय पदार्थोंमें संकल्पित परिणामको भाव कहते हैं, उसके आश्रित जो वचन बोले जाते हैं, उन्हें भावसत्य कहते हैं; जैसे सूखे, पके और अग्निसे तपे या नमक, मिर्च, खटाई आदिसे संमिश्रित द्रव्यको प्रासुक माना जाता है । यद्यपि प्रासुक माने जानेवाले द्रव्यके तद्रूप अन्तर्बर्ती

१. सं० पञ्चसं० १, १६८-१७१ ।

१ ध० भा० १ पृ० २८६ गा० १५६ । गो० जी० २१८ । २ ध० भा० १ पृ० २८६ गा० १५६ । गो० जी० २१८ । ३ ध० भा० १ पृ० २८६ गा० १५७ । गो० जी० २२० ।

सूक्ष्म जीवोंको इन्द्रियोंसे देख नहीं सकते, तथापि आगमप्रामाण्यसे उसकी प्रासुकताका वर्णन किया जाता है। इस प्रकारके पापवर्ज वचनको भावसत्य कहते हैं। दूसरे प्रसिद्ध-सदृश पदार्थको उपमा कहते हैं। उपमाके आश्रयसे जो वचन बोले जाते हैं, उन्हें उपमासत्य कहते हैं, जैसे पल्योपम। पल्य नाम गड्ढेका है, उसकी उपमासे पल्योपमका व्यवहार होता है। अनुभय भापाके नौ भेद होते हैं, आमत्रणी, आज्ञापनी, याचनी, आपृच्छनी, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, संशयवचनी, इच्छानुलोम्नी और अनक्षरगता। 'हे देवदत्त, यहाँ आओ', इस प्रकारसे बुलानेवाले वचनोंको आमंत्रणी-भापा कहते हैं। 'यह काम करो' ऐसे आज्ञारूप वचनोंको आज्ञापनी भापा कहते हैं। 'यह मुझे दो', ऐसे याचना-पूर्ण वचनोंको याचनी-भापा कहते हैं। 'यह क्या है' ऐसे प्रश्नात्मक वचनोंको आपृच्छनी भापा कहते हैं। 'मैं क्या करूँ' ऐसे सूचनात्मक वचनोंको प्रज्ञापनी भापा कहते हैं। 'मैं इसे छोड़ता हूँ' ऐसे त्याग या परिहाररूप वचनोंको प्रत्याख्यानी भापा कहते हैं। 'यह वक्रपंक्ति है या ध्वजपंक्ति' ऐसे संशयात्मक वचनोंको संशयवचनी भापा कहते हैं। 'मुझे भी ऐसा ही होना चाहिए' ऐसी इच्छाके व्यक्त करनेवाले वचनोंको इच्छानुलोम्नी भापा कहते हैं। द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञिपंचेन्द्रिय तकके जीवोंकी बोलीको अनक्षरगता भापा कहते हैं। ये नौ प्रकारकी भापा अनुभववचनरूप हैं, क्योंकि इनके सुननेसे व्यक्त और अव्यक्त दोनों अंशोंका बोध होता है, सामान्य अंशके व्यक्त होनेसे इन्हें असत्य भी नहीं कह सकते और विशेष अंशके व्यक्त न होनेसे सत्य भी नहीं कह सकते। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सत्य और अनुभव वचनयोगका मूल कारण भापापर्याप्ति और शरीरनामकर्मका उदय है। तथा मृपा और अनुभववचनयोगका मूल कारण अपना-अपना आवरणकर्म है ॥६१-६२॥

काययोगके सात भेदोंमेंसे औदारिककाययोगका स्वरूप—

^१पुरु महमुदारुरालं एयडुं तं वियाण तम्हि भवं ।

ओरालिय त्ति वुत्तं ओरालियकायजोगो सो ॥६३॥

पुरु, महत् उदार और उराल ये सब शब्द एकार्थ-वाचक हैं। उदार या स्थूलमें जो उत्पन्न हो, उसे औदारिक जानना चाहिए। (यहाँ पर भव-अर्थमें ठण् प्रत्यय हुआ है।) उदारमें होने वाला जो काययोग है, वह औदारिककाययोग कहलाता है। अर्थात् मनुष्य और तिर्यचोंके स्थूल शरीरमें जो योग होता है, उसे औदारिककाययोग कहते हैं ॥६३॥

औदारिकमिश्रकाययोगका स्वरूप—

^२अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णो त्ति ।

जो तेण संपओगो ओरालियमिस्सकायजोगो सो ॥६४॥

औदारिकशरीरकी उत्पत्ति प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लगाकर अन्तर्मुहूर्त तक मध्यवर्ती कालमें जो अपरिपूर्ण शरीर है, उसे औदारिकमिश्र जानना चाहिए। उसके द्वारा होनेवाला जो संप्रयोग है, वह औदारिकमिश्र काययोग कहलाता है। अर्थात् शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे पूर्व कर्मणशरीरकी सहायतासे उत्पन्न होनेवाले औदारिककाययोगको औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं ॥६४॥

1-2 स० पञ्चस०, १, १७३ ।

१ य० मा० १ पृ० २६१ गा० १६० । गो० जी० २२६ । २ घ० मा० १ पृ० २६१ गा० १६१ । गो० जी० २३०, परन्तु मयत्रापि प्रथमचरणे 'ओरालिय टत्तत्थ' इति पाठः ।

अत्र एयडु, उ एयट्टा ।

वैक्रियिककाययोगका स्वरूप—

^१विविहगुणइड्डिजुत्तं वेउव्वियमहव विकिरियं चेव ।

तिस्से भवं च णेयं वेउव्वियकायजोगो सो^१ ॥६५॥

विविध गुण और ऋद्धियोसे युक्त, अथवा विशिष्ट क्रियावाले शरीरको वैक्रियिक कहते हैं । उसमें उत्पन्न होनेवाला जो योग है, उसे वैक्रियिककाययोग जानना चाहिए ॥६५॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगका स्वरूप—

^२अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णो त्ति ।

जो तेण संपओगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो सो^२ ॥६६॥

वैक्रियिकशरीरकी उत्पत्ति प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लगाकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्तके मध्यवर्ती अपरिपूर्ण शरीरको वैक्रियिकमिश्रकाय कहते हैं । उसके द्वारा होनेवाला जो संप्रयोग है, वह वैक्रियिकमिश्रकाययोग कहलाता है । अर्थात् देव-नारकियोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने तक कर्मणशरीरकी सहायतासे उत्पन्न होनेवाले वैक्रियिककाययोगको वैक्रियिकमिश्रकाययोग कहते हैं ॥६६॥

आहारककाययोगका स्वरूप—

^३आहरइ अणेण गुणी सुहुमे अट्ठे सयस्स सन्देहे ।

गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारकायजोगो सो^३ ॥६७॥

स्वयं सूक्ष्म अर्थमे सन्देह उत्पन्न होनेपर मुनि जिसके द्वारा केवलि-भगवान्के पास जाकर अपने सन्देहको दूर करता है, उसे आहारक काय कहते हैं । उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाले योगको आहारककाययोग कहते हैं ॥६७॥

आहारकमिश्रकाययोगका स्वरूप—

^४अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णो त्ति ।

जो तेण संपओगो आहारयमिस्सकायजोगो सो^४ ॥६८॥

आहारकशरीरकी उत्पत्ति प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लगाकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्तके मध्यवर्ती अपरिपूर्ण शरीरको आहारकमिश्रकाय कहते हैं । उसके द्वारा जो योग उत्पन्न होता है वह आहारकमिश्रकाययोग कहलाता है ॥६८॥

कर्मणकाययोगका स्वरूप—

^५कम्मेव य कम्मइयं कम्मभवं तेण जो दु संजोगो ।

कम्मइयकायजोगो एय-विय-तियगेसु समएसु^५ ॥६९॥

कर्मोंके समूहको, अथवा कर्मणशरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले कायको कर्मणकाय कहते हैं और उसके द्वारा होनेवाले योगको कर्मणकाययोग कहते हैं । यह योग विग्रहगतिमे अथवा केवलिसमुद्घातमे एक, दो अथवा तीन समय तक होता है ॥६९॥

1-2 सं० पञ्चसं० १, १७३-१७४ । 3-4 १, १७५-१७७ । 5. १, १७८ ।

१. ध० भा० १ पृ० २६१ गा० १६२ । गो० जी० १३१ । २. ध० भा० १ पृ० २६२ गा० १६३ । गो० जी० २३३ । पर तत्र प्रथमचरणे पाठभेदः । ३ ध० भा० १ पृ० २६४ गा० १६४ । गो० जी० २३८ । ४ ध० भा० १ पृ० २६४ गा० १६५ । गो० जी० २३९, परं तत्र प्रथमचरणे पाठभेदः । ५ ध० भा० १ पृ० २६५ गा० १६६ । गो० जी० २४० ।

योगरहित अयोगिजिनका स्वरूप—

^१जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपापमंजणया ।

ते होंति अजोइजिणा अणोवमाणंतगुणकलिया^१ ॥१००॥

जिनके पुण्य और पापके संजनक अर्थात् उत्पन्न करनेवाले शुभ और अशुभ योग नहीं होते हैं, वे अयोगिजिन कहलाते हैं, जो कि अनुपम और अनन्त गुणोंसे सहित होते हैं ॥१००॥

इस प्रकार योगमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब वेदमार्गणाका निरूपण करते हुए पहले वेदका स्वरूप कहते हैं—

^२वेदस्सुदीरणाए वालत्तं पुण णियच्छदे बहुसो ।

इत्थी पुरिस णउंसय वेयंति तदो हवदि वेदो^२ ॥१०१॥

वेदकर्मकी उदीरणा होनेपर यह जीव नाना प्रकारके बालभाव अर्थात् चांचल्यको प्राप्त होता है और स्त्रीभाव, पुरुषभाव एवं नपुंसक भावका वेदन करता है, अतएव वेदकर्मके उदयसे होनेवाले भावको वेद कहते हैं ॥१०१॥

वेदके भेद और वेद-वैषम्यका निरूपण—

^३तिव्वेद एव सव्वे वि जीवा दिट्ठा हु दव्व-भावादो ।

ते चेव हु विवरीया संभवंति जहाकमं सव्वे ॥१०२॥

द्रव्य और भावकी अपेक्षा सर्व ही जीव तीनों वेदवाले दिखाई देते हैं और इसी कारण वे सर्व ही यथाक्रमसे विपरीत वेदवाले भी सम्भव हैं ॥१०२॥

भाववेद और द्रव्यवेदका कारण—

^४उदयादु णोकसायाण भाववेदो य होइ जंतूणं ।

जोगी य लिंगमाई णामोदय दव्ववेदो दु ॥१०३॥

नोकपायोंके उदयसे जीवोंके भाववेद होता है । तथा योनि, लिंग आदि द्रव्यवेद नाम-कर्मके उदयसे होता है ॥१०३॥

वेद-वैषम्यका कारण—

^५इत्थी पुरिस णउंसय वेया खलु दव्व-भावदो होंति ।

ते चेव य विवरीया हवंति सव्वे जहाकमसो ॥१०४॥

स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये तीनों ही वेद निश्चयसे द्रव्य और भावकी अपेक्षा दो प्रकारके होते हैं और वे सर्व ही विभिन्न नोकपायोंके उदय होनेपर यथाक्रमसे विपरीत भी परिणत होते हैं ॥१०४॥

१ सं० पञ्चस० १, १८० । २. १, १८६-१८७ । ३. १, १९१-१९२ । ४ १, १८८-१८९ ।

५ १, १९३-१९४ । परन्त्वत्र मतभेदो दृश्यते ।

१. ध० भा० १ पृ० २८० गा० १५३ । गो० जी० २४२ । २ ध० भा० १ पृ० १४१ गा० ८६ ।

स्त्रीवेदका स्वरूप—

¹छादयदि सयं दोसेण जदो छादयदि परं पि दोसेण ।

छादणसीला णियदं तम्हा सा *वणिण्या इत्थी¹ ॥१०५॥

जो मिथ्यात्व आदि दोषसे अपने आपको आच्छादित करे और मधुर-भाषणादिके द्वारा दूसरेको भी आच्छादित करे, वह निश्चयसे यतः आच्छादन स्वभाववाली है अतः 'स्त्री' इस नामसे वर्णित की गई है ॥१०५॥

पुरुषवेदका स्वरूप—

²पुरु गुण भोगे सेदे करेदि लोयम्हि पुरुगुणं कम्मं ।

पुरु + उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वणिओ पुरिसो² ॥१०६॥

जो उत्तम गुण और उत्कृष्ट भोगमें शयन करता है, लोकमें उत्तम गुण और कर्मको करता है, अथवा यतः जो स्वयं उत्तम है, अतः वह 'पुरुष' इस नामसे वर्णित किया गया है ॥१०६॥

नपुंसकवेदका स्वरूप—

³णेवित्थी ण य पुरिसो णउंसओ उभयलिंगवदिरित्तो ।

इट्ठावगिसमाणो वेदणगरुओ कलुसचित्तो³ ॥१०७॥

जो भावसे न स्त्रीरूप है और न पुरुषरूप है, तथा द्रव्यकी अपेक्षा जो स्त्रीलिंग और पुरुषलिंगसे रहित है, ईंटोंको पकानेवाली अग्निके समान वेदकी प्रबल वेदनासे युक्त है, और सदा कलुषित-चित्त है, उसे नपुंसकवेद जानना चाहिए ॥१०७॥

अपगतवेदी जीवोंका स्वरूप—

⁴करिसतणेट्ठावगीसरिसपरिणामवेदणुम्मुका ।

अवगयवेदा जीवा सयसंभवXणंतवरसोक्खा⁴ ॥१०८॥

जो कारीप अर्थात् कंडेकी अग्नि, तृणकी अग्नि और इष्टपाककी अग्निके समान क्रमशः स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदरूप परिणामोंके वेदनसे उत्पन्न हैं और अपनी आत्मामें उत्पन्न हुए श्रेष्ठ अनन्त सुखके धारक या भोक्ता है, वे जीव अपगतवेदी कहलाते हैं ॥१०८॥

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कपायमार्गणा, कपायका स्वरूप—

⁵सुह-दुक्खं बहुसस्सं कम्मविखत्तं कसेइ जीवस्स ।

संसारगदी + मेरं तेण कसाओ त्ति णं विंति⁵ ॥१०९॥

जो क्रोधादिक जीवके सुख-दुःखरूप बहुत प्रकारके धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूप खेत को कर्षण करते हैं, अर्थात् जोतते हैं और जिनके लिए संसारकी चारों गतियों मर्यादा या मेढ़-रूप हैं, इसलिए उन्हें कपाय कहते हैं ॥१०९॥

1 स० पञ्चस० १, १९९ । 2. १, २०० । 3. १, २०१ । 4. १, २०२ । 5. १, २०३ ।

१ ध० भा० १ पृ० ३४१ गा० १७० । गो० जी० २७३ । २ ध० भा० १ पृ० २४१ गा० १७१ । गो० जी० २७२ । ३ ध० भा० १ पृ० ३४२ गा० १७२ । गो० जी० २७४ ।

४ ध० भा० १, पृ० ३४२ गा० १७३ । गो० जी० २७१ । ५ ध० भा० १, पृ० १४२ गा० १० । गो० जी० २८१ ।

छव चत्तिया । + दव पुरउत्तिमो । † द-सारं । X दव -मणत्त ।

कषायोंके भेद और उनके कार्य—

¹सम्मत्त-देससंजम-संसुद्धीवाइकसाईं पढमाईं ।

तेसिं तु भवे नासे सङ्गाई चउहं उत्पत्ती ॥११०॥

प्रथमादि अर्थात् अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन कषाय क्रमशः सम्यक्त्व, देशसंयम, संकलसंयम और पूर्ण शुद्धिरूप यथाख्यातचारित्रका घात करते हैं। किन्तु उनके नाश होनेपर आत्मामें श्रद्धा अर्थात् सम्यक्त्व आदिक चारों गुणोंकी उत्पत्ति होती है ॥११०॥

क्रोधकषायकी जातियाँ और उनका फल—

²सिलभेय पुढविभेया धूलीराई य उदयराइसमा ।

*णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु कोहवसा ॥१११॥

अनन्तानुबन्धी क्रोध शिलाभेदके समान है, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध पृथ्वीभेदके समान है, प्रत्याख्यानावरण क्रोध धूलिराजिके समान है और संज्वलनक्रोध उदक अर्थात् जल-राजिके समान है। इन चारो जातिके क्रोधके वशसे जीव क्रमशः नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगतिको प्राप्त होते हैं ॥१११॥

मानकषायकी जातियाँ और उनका फल—

³सेलसमो अड्डिसमो दारुसमो तह य जाण वेत्तसमो ।

× णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु माणवसा ॥११२॥

अनन्तानुबन्धी मान शैल-समान है, अप्रत्याख्यानावरण मान अस्थि-समान है, प्रत्याख्यानावरण मान दारु अर्थात् काष्ठके समान है और संज्वलन मान वेत्त (वेत) के समान है। इन चारों जातिके मानके वशसे जीव क्रमशः नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवत्वको प्राप्त होते हैं ॥११२॥

मायाकषायकी जातियाँ और उनका फल—

⁴वंसीमूलं मेसस्स सिंग गोमुत्तियं च खोरुप्पं ।

+ णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु मायवसा ॥११३॥

अनन्तानुबन्धी माया बोंसकी जड़के समान है, अप्रत्याख्यानावरण माया मेपाके सींगके समान है, प्रत्याख्यानावरण माया गोमूत्रके समान है और संज्वलन माया खुरपाके समान है। इन चारो ही जातिके मायाके वशसे जीव क्रमशः नरक, तिर्यच्च, मनुष्य और देवत्वको प्राप्त होते हैं ॥११३॥

लोभकषायकी जातियाँ और उनका फल—

⁵किमिराय चक्कमल कदमो य तह चेयः जाण हारिदं ।

* णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु लोहवसा ॥११४॥

1. स० पञ्चस० १, २०४-२०५ । 2. १, २०६ । 3. १, २०७ । 4. १, २०८ । 5. १, २०९ ।

† द व -चउ हुं । ‡ व णिर । × व णिर । + व णिर । - च चेय । * व णिर ।

अनन्तानुबन्धीलोभ किरमिजी रंगके समान है, अप्रत्याख्यानावरणलोभ चक्र अर्थात् गाड़ीके पहियेके मलके समान है, प्रत्याख्यानावरणलोभ कर्म अर्थात् कीचड़के समान है और संज्वलन लोभको हल्दीके रंगके समान जानना चाहिए। इन चारो ही जातिके लोभके वशसे जीव क्रमशः नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवत्वको प्राप्त होते हैं ॥११४॥

चारों जातिके कषायोंके पृथक्-पृथक् कार्योंका वर्णन—

^१पढमो दंसणघाई विदिओ तह घाइ देसविरइ त्ति ।

तइओ संजमघाई चउथो जहखायघाईया ॥११५॥

प्रथम अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यग्दर्शनका घात करती है, द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशविरतिकी घातक है। तृतीय प्रत्याख्यानावरण कषाय सकलसंयमकी घातक है और चतुर्थ संज्वलन कषाय यथाख्यातचारित्रकी घातक है ॥११५॥

अकषाय जीवोंका वर्णन—

^२अप्पपरोभयवाहणबंधासंजमणिमित्तकोहाई ।

जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥११६॥

जिनके अपने आपको, परको और उभयको बाधा देने, बन्ध करने और असंयमके आवरणमे निमित्तभूत क्रोधादि कषाय नहीं हैं, तथा जो बाह्य और आभ्यन्तर मलसे रहित हैं, ऐसे जीवोंको अकषाय जानना चाहिए ॥११६॥

इस प्रकार कषायमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ।

ज्ञानमार्गणा, ज्ञानका स्वरूप—

^३जाणइं तिकालसहिए* दव्व-गुण-पज्जए बहुम्भेए ।

पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाण त्ति† णं विंति^३ ॥११७॥

जिसके द्वारा जीव त्रिकाल-विषयक सर्व द्रव्य, उनके समस्त गुण और उनकी बहुत भेदवाली पर्यायोंको प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे जानता है, उसे निश्चयसे ज्ञानी जन ज्ञान कहते हैं ॥११७॥

मत्यज्ञानका स्वरूप—

^४विस-जत-कूड-पंजर-बंधादिसु‡ अणुवदेसकरणेण ।

जा खलु पवत्तइ मई मइअण्णाण त्ति णं विंति^३ ॥११८॥

परोपदेशके बिना जो विषय, यन्त्र, कूट, पंजर तथा बन्ध आदिके विषयमे बुद्धि प्रवृत्त होती है, उसे ज्ञानी जन मत्यज्ञान कहते हैं ॥११८॥

१. सं० पञ्चस १, २०५। २ १, २१२। ३. १, २१३। ४ १, २३१ पूर्वार्ध।

१. ध० भा० १ पृ० ३५४, गा० १७८। गो० जी० २८८। २ ध० भा० १ पृ० १४४, गा० ६१। गो० जी० २६८। ३ ध० भा० १ पृ० ३५८, गा० १७६। गो० जी० ३०२।

❧ 'अणेण जीवो' इति मूलग्रन्थौ पाठः। † दत्तण, चत्तण। ‡ प्रतिषु 'बद्धादिसु' इति पाठः।

श्रुताज्ञानका स्वरूप—

¹आभीयमासुरक्खा भारह-रामायणादि-उवएसा ।

तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाणं चि णं विंति^१ ॥११६॥

चौरशास्त्र, हिसाशास्त्र तथा महाभारत, रामायण आदिके तुच्छ और परमार्थ-शून्य होनेसे साधन करनेके अयोग्य उपदेशोंको ऋषिगण श्रुताज्ञान कहते हैं ॥११६॥

कुअवधि या विभंगज्ञानका स्वरूप—

²विचरीयओहिणाणं खओवसमियं च कम्मवीजं च ।

वेभंगो चि य वुच्चइ समत्तणाणीहिं समयम्हि^२ ॥१२०॥

जो क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मिथ्यात्वसे संयुक्त होनेके कारण विपरीत स्वरूप है, और नवीन कर्मका बीज है, उसे समाप्त अर्थात् जिनका ज्ञान सम्पूर्णताको प्राप्त है ऐसे ज्ञानियोंके द्वारा उपदिष्ट आगममें कुअवधि या विभंगज्ञान कहा है ॥१२०॥

आभिनिबोधिक या मतिज्ञानका स्वरूप—

³अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदि-इंदियज ।

बहुउग्गहाइणा खलु कयच्छत्तीसा तिसयभेयं^३ ॥१२१॥

अनिन्द्रिय अर्थात् मन और इन्द्रियोकी सहायतासे उत्पन्न होनेवाले, अभिमुख और नियमित पदार्थके बोधको आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं। उसके बहु आदिक वारह प्रकारके पदार्थोंकी और अवग्रह आदिकी अपेक्षा तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं ॥१२१॥

श्रुतज्ञानका स्वरूप—

⁴अत्थाओ अत्थंतरउवलंमे तं भणंति सुयणाणं ।

आहिणिबोहियपुव्वं णियमेण य सदयं मूलं^४ ॥१२२॥

मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके अवलम्बनसे तत्सम्बन्धी दूसरे पदार्थका जो उपलम्भ अर्थात् ज्ञान होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान नियमसे आभिनिबोधिकज्ञान-पूर्वक होता है। (इसके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक अथवा शब्दजन्य और लिगजन्य, इस प्रकार दो भेद हैं)। उनमें अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका मूल कारण शब्द-समूह है ॥१२२॥

अवधिज्ञानका स्वरूप—

⁵अवहीयदि चि ओही सीमाणाणेत्ति वणिणियं समए ।

भव-गुणपच्चयविहियं तमोहिणाणं चि णं विंति^५ ॥१२३॥

1. स० पञ्चस० १, २३१ उत्तरार्ध । 2. १, २३२ । 3. १, २१४ । 4. १, २१७-२१८ । 5. १, २२०-२२१ ।

१ ध० भा० १ पृ० ३५८, गा० १८० । गो० जी० ३०३ । २. ध० भा० १ पृ० ३५६, गा० १८१ । गो० जी० ३०४ । ३. ध० भा० १ पृ० ३५६, गा० १८२ । गो० जी० ३०५, परं तत्रोत्तरार्धे 'अवग्रहर्हवायाधारणगा ह्येति पत्तेय' इति पाठः । ४. ध० भा० १ पृ० ३५६, गा० १८३ । गो० जी० ३१४ । ५. ध० भा० १ पृ० ३५६, गा० १८४ । गो० जी० ३६६ ।
 ✽ द -णत्तण । † द -णाणेत्ति ।

जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा अवधि अर्थात् सीमासे युक्त अपने विषयभूत पदार्थको जाने, उसे अवधिज्ञान कहते हैं, सीमासे युक्त जाननेके कारण परमागममे इसे सीमा-ज्ञान कहा है। यह भवप्रत्यय और गुणप्रत्ययके द्वारा उत्पन्न होता है, ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं ॥१२३॥

अवधिज्ञानके भेदोंका वर्णन—

¹अणुगो अणाणुगामी × तेत्तियमेत्तो य अप्पवहुगोऽयं ।

वड्डइ कमेण हीयइ ओही जाणाहि छब्बमेओ ॥१२४॥

अनुगामी, अननुगामी, तावन्मात्र अर्थात् अनस्थित, अल्प-बहुत अर्थात् अनवस्थित, क्रमसे बढ़नेवाला अर्थात् वर्द्धमान और क्रमसे हीन होनेवाला अर्थात् हीयमान, इस प्रकार अवधिज्ञान छह भेदरूप जानना चाहिए ॥१२४॥

मनःपर्ययज्ञानका स्वरूप—

²चिंतियमचिंतियं* वा अद्धं† चिंतिय अणेयभेयगयं ।

मणपज्जव त्ति णाणं जं जाणइ तं तु णरलोए ॥१२५॥

जो चिन्तित अर्थात् भूतकालमे विचारित, अचिन्तित अर्थात् अतीतमे अविचारित किन्तु भविष्यमे विचार्यमाण, और अर्धचिन्तित इत्यादि अनेक भेदरूप दूसरेके मनमे अवस्थित पदार्थको नरलोक अर्थात् पैतालीस लाख योजनरूप मनुष्यक्षेत्रमे जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान कहलाता है ॥१२५॥

केवलज्ञानका स्वरूप—

³संपुण्णं तु समगं केवलमसपत्तां सव्वभावगयं ।

लोयालोयवित्तिमिरं केवलणाणं गुणेयव्वं ॥१२६॥

जो जीवद्रव्यके शक्ति-गत ज्ञानके सर्व अविभागप्रतिच्छेदोके व्यक्त हो जानेसे सम्पूर्ण है, ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मके सर्वथा क्षय हो जानेसे अप्रतिहतशक्ति है, अतएव समग्र है, जो केवल अर्थात् इन्द्रिय और मनकी सहायतासे रहित है, असपन्न अर्थात् प्रतिपक्षसे रहित है, युगपत् सर्व भावोंको जाननेवाला है, लोक और अलोकमे अज्ञानरूप तिमिर (अन्धकार)से रहित है, अर्थात् सर्व-व्यापक और सर्व-ज्ञायक है, उसे केवलज्ञान जानना चाहिए ॥१२६॥

इस प्रकार ज्ञानमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

संयममार्गणा, द्रव्यसंयमका स्वरूप—

⁴वय-समिदि-कसायाणं दंडाणं इंदियाण पंचण्हं ।

धारण-पालण-णिग्गह-चाय-जओ संजमो भणिओ³ ॥१२७॥

अहिसादि पाँच महाव्रतोका धारण करना, ईर्यादि पाँच समितियोंका पालन करना, क्रोधादि चारो कपायोंका निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप तीन दण्डोंका त्याग करना और पाँचो इन्द्रियोंका जीतना सो द्रव्यसंयम कहा गया है ॥१२७॥

1. स० पञ्चस० १, २२२ । 2. १, २२७-२२८ । 3. १, २२६ । 4. १, २३८ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३६०, गा० १८५ । गो० जी० ४३७ । २. ध० भा० १ पृ० ३६०, गा० १८६ । गो० जी० ४५६ । ३. ध० भा० १ पृ० १४५, गा० ६२ । गो० जी० ४६४ ।

× द व -णाणुगामी य † अत्थ चित्ता । † व -वन्न, द -वण्ण ।

भावसंयमका स्वरूप—

सगवण जीवहिंसा अट्टावीसिंदियत्थदोसा य ।

तेहिंतो जो विरओ^१ भावो सो संजमो भणिओ ॥१२८॥

पहले जीवसमासोंमें जो सत्तावन प्रकारके जीव वता आये हैं, उनकी हिंसासे उपरत होना, तथा अट्टाईस प्रकारके इन्द्रिय-विषयोंके दोषोंसे विरत होना, सो भावसंयम कहा गया है ॥१२८॥

सामायिकसंयमका स्वरूप—

^१संगहियसयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।

जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजदो होइ^१ ॥१२९॥

जिसमें सकल संयम संगृहीत हैं, ऐसे सर्व सावद्यके त्यागरूप एकमात्र अनुत्तर एवं दुरवगम्य अभेद-संयमको धारण करना सो सामायिकसंयम है, और उसे धारण करने वाला सामायिक-संयत कहलाता है ॥१२९॥

छेदोपस्थापनासंयमका स्वरूप—

^२छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।

पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो^२ ॥१३०॥

सावद्य व्यापाररूप पुरानी पर्यायको छेद कर अहिंसादि पाँच प्रकारके यमरूप धर्ममें अपनी आत्माको स्थापित करना छेदोपस्थापनासंयम है, और उसका धारक जीव छेदोपस्थापक-संयत कहलाता है ॥१३०॥

परिहारविशुद्धिसंयमका स्वरूप—

^३पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सया वि जो हु सावज्जं ।

पंचजमेयजमो वा परिहारयसंजदो^३ साहू^३ ॥१३१॥

पाँच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त होकर सदा ही सर्व सावद्य योगका परिहार करना तथा पाँच यमरूप भेद-संयम (छेदोपस्थापना) को, अथवा एक यमरूप अभेद-संयम (सामायिक) को धारण करना परिहार विशुद्धि संयम है, और उसका धारक साधु परिहार-विशुद्धिसंयत कहलाता है ॥१३१॥

सूक्ष्मसाम्परायसंयमका स्वरूप—

^४अणुलोहं वेयंतो जीओ उवसामगो व खवगो वा ।

सो सुहुमसंपराओ जहखाणूणओ किंचि^४ ॥१३२॥

मोहकर्मका उपशमन या क्षपण करते हुए सूक्ष्म लोभका वेदन करना सूक्ष्मसाम्परायसंयम है और उसका धारक सूक्ष्मसाम्परायसंयत कहलाता है । यह संयम यथाख्यातसंयमसे कुछ ही कम होता है । (क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायसंयम दशवें गुणस्थानमें होता है और यथाख्यातसंयम ग्यारहवें गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है) ॥१३२॥

१. स० पञ्चस० १, २३६ । २. १, २४० । ३. १, २४१ । ४. १, २४२ ।

१ ध० भा० १ पृ० ३७२, गा० १८७ । गो० जी० ४६६ । २. ध० भा० १ पृ० ३७२, गा० १८८ । गो० जी० ४७० । ३. ध० भा० १ पृ० ३७२, गा० १८६ । गो० जी० ४७१ ।

४. ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १९० । गो० जी० ४७३ ।

छे द -विरड । † द व -संजमो ।

यथाख्यातसंयमका स्वरूप—

^१उवसंते खीणे वा असुहे कम्ममिह मोहणीयमिह ।

छदुमत्थो व जिणो वा जहखाओ संजओ साहू^१ ॥१३३॥

अशुभ (पाप) रूप मोहनीय कर्मके उपशान्त अथवा क्षीण हो जानेपर जो वीतराग संयम होता है, उसे यथाख्यातसंयम कहते हैं । उसके धारक ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ साधु और तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली जिन यथाख्यातसंयत कहलाते हैं ॥१३३॥

संयमासंयमका सामान्य स्वरूप—

^२जो ण विरदो दु भावो थावरवह-इंदियत्थदोसाओ ।

तसवहविरओ । सोच्चिय संजमासंजमो दिट्ठो ॥१३४॥

भावोसे स्थावर-वध और पाँचो इन्द्रियोके विषय-सम्बन्धी दोषोसे विरत नहीं होने, किन्तु त्रस-वधसे विरत होनेको संयमासंयम कहते हैं और उनका धारक जीव नियमसे संयमासंयमी कहा गया है ॥१३४॥

संयमासंयमका विशेष स्वरूप—

पंच-तिय-चउविहेहिं अणु-गुण-सिक्खावएहिं संजुत्ता ।

बुच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी भडियकम्मा^२ ॥१३५॥

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिष्टाव्रतोंसे संयुक्त होना विशिष्ट संयमासंयम है । उसके धारक और असंख्यातगुणश्रेणीरूप निर्जराके द्वारा कर्मोंके भङ्गानेवाले ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव देशविरत या संयतासंयत कहलाते हैं ॥१३५॥

देशविरतके भेद—

दसण-वय-सामाइय पोसह सच्चित्त राइभत्ते य ।

वंभारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदेदे^३ ॥१३६॥

दार्शनिक, व्रतिक, सामयिकी, प्रोपधोपवासी, सच्चित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत ये देशविरतके ग्यारह भेद होते हैं ॥१३६॥

असंयमका स्वरूप—

^३जीवा चउदसमेया इंदियविसया य अट्ठवीसं तु ।

जे तेसु णेय विरया असंजया ते मुणेयव्वा^४ ॥१३७॥

जीव चौदह भेद रूप हैं और इन्द्रियोके विषय अट्ठाईस है । जीवघातसे और इन्द्रिय-विषयोसे विरत नहीं होनेको असंयम कहते हैं । जो इनसे विरत नहीं हैं, उन्हें असंयत जानना चाहिए ॥१३७॥

इस प्रकार संयममार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ

१ स० पञ्चस० १, २४३ । २ १, २४६ । ३. १, २४७-२४८ ।

१ ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १६१ । गो० जी० ४७४ । परन्तुभयत्रापि 'सो दु' तथा 'सो हु' इति पाठः । २. ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १६२ । गो० जी० ४७५ । ३. ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १६३ । गो० जी० ४७६ । ४ ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १६४ । गो० जी० ४७७ ।

॥ द -खाउ । ‡ व सुच्चिय, द सुच्चिय ।

दर्शनमार्गणा, दर्शनका स्वरूप—

^१जं सामणं गहणं भावाणं णेव कट्ठु आयारं ।

अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए^१ ॥१३८॥

सामान्य-विशेषात्मक पदार्थोंके आकार-विशेषको ग्रहण न करके जो केवल निर्विकल्परूपसे अंशका या स्वरूपमात्रका सामान्य ग्रहण होता है, उसे परमागममे दर्शन कहा गया है ॥१३८॥
चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनका स्वरूप—

^२चक्खुण जं पयासइ दीसइ तं चक्खुदंसणं विति ।

सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खु त्ति^२ ॥१३९॥

चक्षुरिन्द्रियके द्वारा जो पदार्थका सामान्य अंश प्रकाशित होता है, अथवा दिखाई देता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। शेष चार इन्द्रियोंसे और मनसे जो सामान्य-प्रतिभास होता है, उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिए ॥१३९॥

अवधिदर्शनका स्वरूप—

^३परमाणुआदियाइं अंतिमखंधं ऋत्ति मुत्तदब्बाइं ।

तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइं पच्चक्खं^३ ॥१४०॥

सर्व-लघु परमाणुसे आदि लेकर सर्व-महान् अन्तिम स्कन्ध तक जितने मूर्त्त द्रव्य हैं, उन्हें जो प्रत्यक्ष देखता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं ॥१४०॥

केवलदर्शनका स्वरूप—

^४बहुविह बहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्हि खेत्तम्हि ।

लोयालोयवितिमिरो सो^४ केवलदंसणुज्जोवो^४ ॥१४१॥

बहुत जातिके और बहुत प्रकारके चन्द्र-सूर्यादिके उद्योत (प्रकाश) तो परिमित क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं, अर्थात् वे थोड़ेसे ही पदार्थोंको अल्प परिमाणमें प्रकाशित करते हैं। किन्तु जो केवलदर्शनरूप उद्योत है, वह लोकको और अलोकको भी प्रकाशित करता है, अर्थात् सर्व चराचर जगत्को स्पष्ट देखता है ॥१४१॥

इस प्रकार दर्शनमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

लेश्यामार्गणा, लेश्याका स्वरूप—

लिप्पइ अप्पीकीरइ एयाए णियय पुण्ण पावं च ।

जीवो त्ति होइ लेसा लेसागुणजाणयक्खाया^५ ॥१४२॥

१. स० पञ्चत्तं १, २४८ । २. १, २५० । ३. १, २५१ (पूर्वार्ध) । ४. १, २५१ (उत्तरार्ध) ।

१. ध० भा० १ पृ० १४६, गा० ६३ । गो० जी० ४८१ । २. ध० भा० १ पृ० ३८२, गा० १६५ । गो० जी० ४८३ । ३. ध० भा० १ पृ० ३८२, गा० १६६ । गो० जी० ४८४ ।

४. ध० भा० १ पृ० ३८२, गा० १६७ । गो० जी० ४८५ । ५. ध० भा० १ पृ० १५०, गा० ६४ । गो० जी० ४८८, परं तत्र द्वितीय-चरणे 'गियञ्जपुण्णपुण्ण च' इति पाठः ।

अ व च । † द तं ।

जिसके द्वारा जीव पुण्य और पापसे अपने आपको लिप्त करता है अर्थात् उनके आधीन होता है, ऐसी कषायानुरंजित योगको प्रवृत्तिको लेश्याके गुण-स्वरूपादिके जाननेवाले गणधरोंने लेश्या कहा है ॥१४२॥

लेश्याके स्वरूपका दृष्टान्त-द्वारा स्पष्टीकरण—

जह × गेरुवेण कुड्डो लिप्पइ लेवेण आमपिट्ठेण ।

तह परिणामो लिप्पइ सुहासुहा य त्ति लेवेण ॥१४३॥

जिस प्रकार आमपिट्ठ (दालकी पिट्टी या तैलादि) से मिश्रित गेरू मिट्टीके लेप-द्वारा भित्ती (दीवाल) लीपी या रंगी जाती है, उसी प्रकार शुभ और अशुभ भावरूप लेपके द्वारा जो आत्माका परिणाम लिप्त किया जाता है उसे लेश्या कहते हैं ॥१४३॥

कृष्णलेश्याका लक्षण—

^१चंडो ण मुयइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।

दुड्डो ण य एइ वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स^१ ॥१४४॥

जो प्रचण्ड-स्वभावी हो, वैरको न छोड़े, भंडनशील या कलहस्वभावी हो, धर्म और दयासे रहित हो, दुष्ट हो, और जो किसीके भी वशमें न आवे, ये सब कृष्णलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१४४॥

नीललेश्याका लक्षण—

^२मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य ।

माणी माई य तहा आलस्सो चेव* भेजो† य ॥१४५॥

णिदावंचणबहुलो धण-धण्णे होइ तिव्वसण्णाओ ।

लक्खणमेयं भणियं समासओ णीललेसस्स^३ ॥१४६॥

जो कार्य करनेमें मन्द-उद्यमी एवं स्वच्छन्द हो, बुद्धि-विहीन हो, कला और चातुर्यरूप विशेष ज्ञानसे रहित हो, इन्द्रियोके विषयोका लोलुपी हो, मानी हो, मायाचारी हो, आलसी हो, अमेद्य-स्वभावी हो, अर्थात् दूसरे लोग जिसके अभिप्रायको प्रयत्न करने पर भी न जान सकें, बहुत निद्रालु हो, पर-वंचनमें अतिदत्त हो, और धन-धान्यके सग्रहादिमें तीव्र लालसावाला हो, ये सब सत्त्वसे नीललेश्यावालेके लक्षण कहे गये हैं ॥१४५-१४६॥

कापोतलेश्याका लक्षण—

^४रुसइ णिंदइ अण्णे दूसणबहुलो य सोय-भयबहुलो ।

असुवइ परिभवइ परं ‡पसंसइ य अप्पयं बहुसो ॥१४७॥

ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं पिव परं पि मण्णंतो ।

तूसइ अइथुव्वंतो ण य जाणइ हाणि-वड्डीओ^३ ॥१४८॥

१. स० पञ्चस० १, २७२-२७३ । २ १, २७४-२७५ । ३ १, २७६-२७७ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३८६, गा० २०० । गो० जी० ५०८ । २ ध० भा० १ पृ० ३८८-३८९, गा० २०१-२०२ । गो० जी० ५०९-५१० । ३ ध० भा० १ पृ० ३८६, गा० २०३-२०४ । गो० जी० ५११-५१२ ।

× द व जिह । * व -वेव । † 'भीरु' इति मूलपाठ । ‡ द -पास ।

^१मरणं पत्येह रणे देहं सु बहुयं पि शुक्वमाणो हु ।

ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्सं ॥१४६॥

जो दूसरोंके ऊपर रोप करता हो, दूसरोंकी निन्दा करता हो, दूषण-बहुल हो, शोक-बहुल हो, भय-बहुल हो, दूसरेसे ईर्ष्या करता हो, परका पराभव करता हो, नानाप्रकारसे अपनी प्रशंसा करता हो, परका विश्वास न करता हो, अपने समान दूसरेको भी मानता हो, स्तुति किये जाने पर अति संतुष्ट हो, अपनी हानि और वृद्धि [लाभ] को न जानता हो, रणमें मरणका इच्छुक हो, स्तुति या प्रशंसा किये जाने पर बहुत धनादिक देवे और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यको कुछ भी न गिनता हो, ये सब कापोतलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१४७-१४६॥

तेजोलेश्याका लक्षण—

^२जाणइ कज्जाकज्जं सेयासेयं च सव्वसमपासी ।

दय-दानरदो य विदू लक्खणमेयं तु तेउस्सं ॥१५०॥

जो अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य और सेव्य-असेव्यको जानता हो, सबमे समदर्शी हो, दया और दानमे रत हो, मृदु-स्वभावी और ज्ञानी हो, ये सब तेजोलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१५०॥

पद्मलेश्याका लक्षण—

^३चाईं भदो चोक्खो उज्जुयकम्मो य खमइं बहुयं पि ।

साहुगुणपूयणिरओ लक्खणमेयं तु पउमस्सं ॥१५१॥

जो त्यागी हो, भद्र (भला) हो, चोखा (सच्चा) हो, उत्तम कार्य करनेवाला हो, बहुत भी अपराध या हानि होने पर क्षमा कर दे, साधुजनोंके गुणोंकी पूजनमे निरत हो, ये सब पद्मलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१५१॥

शुक्ललेश्याका लक्षण—

^४ण कुणेइं पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसु ।

णत्थि य राओ दोसो णेहो वि हु सुक्कलेस्सं ॥१५२॥

जो पक्षपात न करता हो, और न निदान करता हो; सबमे समान व्यवहार करता हो, जिसे परमे राग न हो, द्वेष न हो और स्नेह भी न हो, ये सब शुक्ललेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१५२॥

अलेश्य जीवोंका स्वरूप—

^५किण्हाइलेसरहिया संसारविणिग्गया अणंतमुहा ।

सिद्धिपुरीसंपत्ता अलेसिया ते मुणेयव्वां ॥१५३॥

१ सं० पञ्चसं० १, २७८ । २. १, २७६ । ३. १, २८० । ४. १, २८१ । ५. १, २८३ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३८६, गा० २०५ । गो० जी० ५१३ । २. ध० भा० १ पृ० ३८६, गा० २०६ । गो० जी० ५१४ । परन्तु भयत्रापि 'मिदू' इति पाठः । ३. ध० भा० १ पृ० ३८०, गा० २०७ । गो० जी० ५१५ । ४. ध० भा० १ पृ० ३८०, गा० २०८ । गो० जी० ५१६ । ५ धवला, भा० १ पृ० ३८०, गा० २०६ । गो० जी० ५५५ ।

जो कृष्णादि छहो लेश्याओसे रहित हैं, पंच परिवर्तनरूप संसारसे विनिर्गत हैं, अनन्त-सुखी हैं, और आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरीको संप्राप्त हैं, ऐसे अयोगिकेवली और सिद्ध जीवोको अलेश्य जानना चाहिए । ॥१५३॥

इस प्रकार लेश्यामार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

भव्यमार्गणा, भव्यसिद्धका स्वरूप—

^१सिद्धत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते भवंति भवसिद्धा ।

ण उ मलविगमे णियमा ताणं कणकोपलाणमिव^१ ॥१५४॥

जो जीव सिद्धत्व अर्थात् सर्व कर्मसे रहित मुक्तिरूप अवस्था पानेके योग्य हैं, वे भव्य-सिद्ध कहलाते हैं । किन्तु उनके कनकोपल (स्वर्ण-पापाण) के समान मलका नाश होनेमें नियम नहीं है ॥१५४॥

विशेषार्थ—भव्यसिद्ध जीव दो प्रकारके होते हैं—एक वे, जो कि सिद्ध-अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, और एक वे, जो कभी सिद्ध-अवस्था प्राप्त नहीं कर सकते । जो भव्य होते हुए भी सिद्ध-अवस्थाको प्राप्त नहीं कर सकते हैं, उनके लिए स्वर्ण-पापाणका दृष्टान्त ग्रन्थकारने दिया है । जिसप्रकार किसी स्वर्ण-पापाणमें सोना रहते हुए भी उसको पृथक् किया जाना संभव नहीं है, उसी प्रकार सिद्धत्वकी योग्यता होते हुए कितने ही जीव तदनुकूल सामग्रीके नहीं मिलनेसे सिद्ध अवस्था नहीं प्राप्त कर पाते ।

भव्य और अभव्य जीवोंका निरूपण—

^२संखेज्ज असंखेज्जा अणंतकालेण चावि ते णियमा ।

सिज्मंति भव्वजीवा अभव्वजीवा ण सिज्मंति ॥१५५॥

भविया *सिद्धी जेसिं जीवाणं ते भवंति भवसिद्धा ।

तव्विवरीयाऽभव्वा संसाराओ ण सिज्मंति^३ ॥१५६॥

जो भव्य जीव हैं, वे नियमसे संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्तकालके द्वारा सिद्धपद-प्राप्त कर लेते हैं । किन्तु अभव्य जीव कभी भी सिद्ध-पद प्राप्त नहीं कर पाते हैं । जिन जीवोकी मुक्तिपद-प्राप्तिरूप सिद्धि होनेवाली है, अथवा जो उसकी प्राप्तिके योग्य हैं, उन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं । जो इनसे विपरीत स्वरूपवाले हैं, वे अभव्य कहलाते हैं और वे कभी संसारसे छूटकर सिद्ध नहीं होते हैं ॥१५५-१५६॥

भव्यत्व और अभव्यत्वसे रहित जीवोंका वर्णन—

^३ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहा होंति तीदसंसारा ।

ते जीवा णायव्वा णो भव्वा णो अभव्वा य^३ ॥१५७॥

जो न भव्य हैं और न अभव्य हैं, किन्तु जिन्होंने मुक्ति-सुखको प्राप्त कर लिया है और अतीत-संसार हैं, अर्थात् पंचपरिवर्तनरूप संसारको पार कर चुके हैं, उन जीवोको 'नो भव्य नो अभव्य' जानना चाहिए ॥१५७॥

इस प्रकार भव्यमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

१. सं० पञ्चस० १, २८३ । २. १, २८४ । ३. १, २८५ ।

१. ध० भा० १ पृ० १५०, गो० जी० ५५७, पर तत्र 'सिद्धत्तणस्य' स्थाने 'भवत्तणस्य' इति पाठः । २. ध० भा० १ पृ० ३६४, गो० जी० ५५६ । ३. गो० जी० ५५८ ।

* व सिद्धि ।

सम्यक्त्वमार्गणा, जीव सम्यक्त्वको कब प्राप्त करता है, इस बातका निरूपण—

^१भूवो पंचिदिओ सण्णी जीवो पज्जत्तओ तहा ।

काललद्धाइ-संजुत्तो सम्मत्तं पडिवज्जए ॥१५८॥

जो भव्य हो, पंचेन्द्रिय हो, संव्री हो, पर्याप्त हो, तथा काललब्धि आदिसे संयुक्त हो, ऐसा जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है । [यहाँ पर आदि पदसे वेदनाभिभव, जातिन्मरण आदि बाह्य कारण विवक्षित हैं । संस्कृत पञ्चसंग्रह] ॥१५८॥

सम्यक्त्वका स्वरूप—

^२छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवद्वहाणं ।

आणाए अहिगमेण य सद्वहणं होइ सम्मत्तं ॥१५९॥

जितवर्गोंके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ प्रकारके पदार्थोंका आज्ञा या अविगमसे श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥१५९॥

ज्ञायिकसम्यक्त्वका स्वरूप—

खीणे दंसणमोहे जं सद्वहणं सुणिम्मलं होइ ।

तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेलं ॥१६०॥

^३वयणेहिं विं हेलुहि य इंदियभयजणणगेहिं रुवेहिं ।

वीमच्छ-जुगुंछेहि य णो तेल्लोकेण चालिज्जा ॥१६१॥

एवं विउल्ला बुद्धी ण य विमयमेदि किंचि दट्ठणं ।

पडुविए सम्मत्ते खइए जीवस्स लद्धीए ॥१६२॥

दर्शनमोहनीय कर्मके सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है, उसे ज्ञायिक सम्यक्त्व कहते हैं । वह सम्यक्त्व नित्य है, अर्थात् होकरके फिर कभी छूटता नहीं है और सिद्धयद् प्राप्त करने तक शेष कर्मोंके जपणका कारण है । यह ज्ञायिकसम्यक्त्व श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाले वचनोंसे, तर्कोंसे, इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले रूपों [आकारों] से तथा वीमत्स और जुगुप्सित पदार्थोंसे भी चलायमान नहीं होता । अधिक व्या कहा जाय, वह त्रैलोक्यके द्वारा भी चल-विचल नहीं होता । ज्ञायिकसम्यक्त्वके प्रस्थापन अर्थात् प्रारम्भ होने पर अथवा लब्धि अर्थात् प्राप्ति या निष्ठापन होने पर ज्ञायिकसम्यक्दृष्टि जीवके ऐसी विशाल, गम्भीर एवं दृढ़ बुद्धि उत्पन्न हो जाती है कि वह कुछ (असंभव वा अनहोनी घटनाएँ) देखकर भी विमय या होमको प्राप्त नहीं होता ॥१६०-१६२॥

वेदकसम्यक्त्वका स्वरूप—

बुद्धी मुहाण्वंघी मुइक्कम्मरओ सुए य संवेगो ।

तच्चत्ये सद्वहणं पियधम्मैः तिव्वणिच्चेदो ॥१६३॥

१. सं० पञ्चसंग्रह १, २८६ । २. १. २६० । ३. १, २६३ ।

१. य० भा० १ पृ० ३६५, गो० जी० ५६० । २. य० भा० १ पृ० ३६५, गो० जी० ६४५ ।

३. य० भा० १ पृ० ३६५, गो० जी० ६४६ ।

४ व वि । † व -विमय । ‡ व द धम्मो ।

इचेवमाइया जे वेदयमाणस्स होंति ते य गुणा ।
वेदयसम्मत्तमिणं सम्मत्तुदएण जीवस्स ॥१६४॥

वेदकसम्यक्त्वके उत्पन्न होने पर जीवकी बुद्धि शुभानुबन्धी या सुखानुबन्धी हो जाती है, शुचि कर्ममें रति उत्पन्न होती है, श्रुतमें संवेग अर्थात् प्रीति पैदा होती है, तत्त्वार्थमें श्रद्धान, प्रिय धर्ममें अनुराग, एवं संसारसे तीव्र निर्वेद अर्थात् वैराग्य जागृत हो जाता है। इन गुणोंको आदि लेकर इस प्रकारके जितने गुण हैं, वे सब वेदकसम्यक्त्वी जीवके प्रगट हो जाते हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयका वेदन करनेवाले जीवको वेदकसम्यक्त्वी जानना चाहिए ॥१६३-१६४॥

उपशमसम्यक्त्वका स्वरूप—

देवे अणणभावो विसयविरागो य तच्चसद्दहणं ।
दिट्ठीसु असम्मोहो सम्मत्तमणूणयं जाणे ॥१६५॥
दंसणमोहस्सुदए उवसंते सच्चभावसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णकलुसं जहा तोयं ॥१६६॥

उपशमसम्यक्त्वके होने पर जीवके सत्यार्थ देवमें अनन्य भक्तिभाव, विषयोसे विराग, तत्त्वोंका श्रद्धान और विविध मिथ्या दृष्टियों (मतों) में असम्मोह प्रगट होता है, इसे ज्ञायिक-सम्यक्त्वसे कुछ भी कम नहीं जानना चाहिए। जिस प्रकार पंकादि-जनित कालुष्यके प्रशान्त होने पर जल निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार दर्शनमोहके उदयके उपशान्त होनेपर जो सत्यार्थ श्रद्धान उत्पन्न होता है उसे उपशमसम्यक्त्व कहते हैं ॥१६५-१६६॥

तीनों सम्यक्त्वोंका गुणस्थानोंमें विभाजन—

^१खाइयमसंजयाइसु वेदयसम्मत्तमप्पमत्तंते ।
उवसमसम्मत्तं पुण *उवसंतंतेसु णायन्वं ॥१६७॥

ज्ञायिकसम्यक्त्व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपरिम सर्व गुणस्थानोंमें होता है। वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक होता है और उपशमसम्यक्त्व उपशान्तमोह गुणस्थानान्त जानना चाहिए ॥१६७॥

सासादनसम्यक्त्वका स्वरूप—

^२ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो हु परिवडिओ ।
सो सासणो ति णेओ सादियपरिणामिओ भावो ॥१६८॥

उपशमसम्यक्त्वसे परिपतित होकर जीव जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं हुआ है, तब तक उसे सासादनसम्यग्दृष्टि जानना चाहिए। इसके सादि पारिणामिक भाव होता है ॥१६८॥

१. स० पञ्चस० २६८। २. १, ३०२।

१. गो० जी० ६५३, पर तत्र चतुर्थचरणे 'पचमभावेण सञ्जतो' इति पाठ ।

॥ द ते -मुण्येयन्व ।

सम्यग्मिथ्यात्वका स्वरूप—

¹सदहणासदहणं जस्स य जीवेसु होइ तच्चेसु ।

विरयाविरएण समो सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो¹ ॥१६६॥

जिसके उदयसे जीवोंके तत्त्वोंमें श्रद्धान और अश्रद्धान युगपत् प्रगट हो, उसे विरता-विरतके समान सम्यग्मिथ्यात्व जानना चाहिए ॥१६६॥

मिथ्यात्वका स्वरूप—

²मिच्छादिद्वी जीवो उवइद्वं पवयणं ण सदहइ ।

सदहइ असव्भावं उवइद्वं अणुवइद्वं वा² ॥१७०॥

मिथ्यात्वकर्मके उदयसे मिथ्याद्विष्ट जीव जिन-उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रद्धान करता नहीं, है, किन्तु कुदेवादिकके द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भावका श्रद्धान करता है ॥१७०॥

उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके विषयमें सर्वोपशम और देशोपशमका नियम—

³सम्मत्तपढमलंभो सयलोवसमा दु भव्वजीवाणं ।

णियमेण होइ अवरो सव्वोवसमा दु देसपसमा वा³ ॥१७१॥

भज्यजीवोंके प्रथम बार उपशमसम्यक्त्वका लाभ नियमतः दर्शनमोहनीयके सकलोपशमसे ही होता है । किन्तु अपर अर्थात् द्वितीयादि बार सर्वोपशम अथवा देशोपशमसे होता है ॥१७१॥

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पश्चात् मिथ्यात्व-प्राप्तिका नियम—

⁴सम्मत्तादिमलंभस्साणंतरं णिच्छएण णायव्वो ।

मिच्छासंगो पच्छा अण्णस्स दु होइ भयणिज्जो⁴ ॥१७२॥

आदिम सम्यक्त्वके लाभके अनन्तर मिथ्यात्वका संगम निश्चयसे जानना चाहिए । किन्तु अन्य अर्थात् द्वितीयादि बार सम्यक्त्व-लाभके पश्चात् मिथ्यात्वका संगम भजनीय है, अर्थात् किसीके होता भी है और किसीके नहीं भी होता ॥१७२॥

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणा, संज्ञी और असंज्ञीका स्वरूप—

⁵सिक्खाकिरिओवएसा आलावगाही मणोवल्लेण ।

जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी यं⁵ ॥१७३॥

जो जीव मनके अवलम्बनसे शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण करता है, उसे संज्ञी कहते हैं । जो इससे विपरीत है, अर्थात् शिक्षा आदिको ग्रहण नहीं कर सकता, उसे असंज्ञी कहते हैं ॥१७३॥

विशेषार्थ—जिसके द्वारा हितका ग्रहण और अहितका त्याग किया जा सके, उसे शिक्षा कहते हैं । इच्छापूर्वक हस्त-पाद आदिके संचालनको क्रिया कहते हैं । वचनादिके द्वारा वताये हुए कर्तव्यको उपदेश कहते हैं । श्लोक आदिके पाठको आलाप कहते हैं ।

1. सं० पञ्चसं० १, ३०३ । 2. १, ३०५ । 3. १, ३१७ । 4. १, ३१८ । 5. १, ३१९ ।

१. गो० जी० ६५४ । २. गो० जी० ६५५ । ३. तुलना—सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह विवट्टेण । भजियव्वो य भिक्खुं सव्वोवसमेण देसेण ॥ क० पा० गा० १०४ । ४. तुलना—सम्मत्तपढमलमस्सणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं । लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥ क० पा० गा० १०५ । ५. घ० भा० १ पृ० १५२ गो० जी० ६६० ।

संज्ञी-असंज्ञीके स्वरूपका और भी स्पष्टीकरण—

¹मीमंसइ जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।

सिक्खइ णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीओ^१ ॥१७४॥

एवं कए मए पुण एवं होदि त्ति कज्जणिप्पत्ती ।

जो दु विचारइ जीवो सो सण्णी असण्णि इयरो य ॥१७५॥

जो जीव किसी कार्यको करनेके पूर्व कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यकी मीमांसा करे, तत्त्व और अतत्त्वका विचार करे, योग्यको सीखे और उसके नामसे पुकारने पर आवे, उसे समनस्क या संज्ञी कहते हैं। इससे विपरीत स्वरूपवालेको अमनस्क या असंज्ञी कहते हैं। जो जीव ऐसा विचार करता है कि मेरे इस प्रकारके कार्य करने पर इस प्रकारके कार्यकी निष्पत्ति होगी, वह संज्ञी है। जो ऐसा विचार नहीं करता है, वह असंज्ञी जानना चाहिए ॥१७४-१७५॥

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणा, आहारकका स्वरूप—

²आहारइ सरीराणं तिण्हं एकदरवग्गणाओ य ।

भासा मणस्स णिययं तम्हा आहारओ भणिओ^२ ॥१७६॥

जो जीव औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरोमेसे उदयको प्राप्त हुए किसी एक शरीरके योग्य शरीरवर्गणाको, तथा भाषावर्गणा और मनोवर्गणाको नियमसे ग्रहण करता है, वह आहारक कहा गया है ॥१७६॥

आहारक और अनाहारक जीवोंका विभाजन—

³विग्गहगइमावण्णा केवल्लिणो^३ समुहदो अजोगी य ।

सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा^४ ॥१७७॥

विग्रहगतिको प्राप्त हुए चारो गतिके जीव, प्रत्तर और लोकपूरण समुदातको प्राप्त सयोगि-केवली और अयोगिकेवली, तथा सिद्ध भगवान् ये सब अनाहारक होते हैं, अर्थात् औदारिकादि शरीरके योग्य पुद्गलपिण्डको ग्रहण नहीं करते हैं। इनके अतिरिक्त शेष सब जीव आहारक होते हैं ॥१७७॥

इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।

उपयोगग्ररूपणा, उपयोगका स्वरूप और भेद-निरूपण—

⁴वत्थुणिमित्तो भावो जादो जीवस्स होदि उवओगो ।

उवओगो सो दुविहो सागारो चेव अणगारो^५ ॥१७८॥

1 सं० पञ्चसं० १, ३२० । 2. १, ३२३ । 3. १, ३२४ । 4. १, ३३२ ।

१ गो० जी० ६६१ । २ ध० भा० १ पृ० १५२ गा० ६८ । गो० जी० ६६४ । ३ ध० भा० १

पृष्ठ १५३ गा० ६६ । गो० जी० ६६५ । ४. गो० जी० ६७१ ।

५ द -वदो ।

जीवका जो भाव वस्तुके ग्रहण करनेके लिए प्रवृत्त होता है, उसे उपयोग करते हैं। वह साकार और अनाकारके भेदसे दो प्रकारका जानना चाहिए ॥१७८॥

साकार-उपयोगका स्वरूप—

¹मइ-सुइ-ओहि-मणेहि य जं सयविसयं विसेसविण्णाणं ।

अंतोमुहुत्तकालो उवओगो सो हु सागारो¹ ॥१७९॥

मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्ययज्ञानके द्वारा जो अपने-अपने विषयका विशेष विज्ञान होता है, उसे साकार-उपयोग कहते हैं। यह अन्तर्मुहूर्त्तकाल तक होता है ॥१७९॥

अनाकार-उपयोगका स्वरूप—

²इंदियमणोहिणा वा अत्थे अविसेसिऊण जं गहणं ।

अंतोमुहुत्तकालो उवओगो सो अणागारो² ॥१८०॥

इन्द्रिय, मन और अवधिके द्वारा पदार्थोंकी विशेषताको ग्रहण न करके जो सामान्य अंशका ग्रहण होता है, उसे अनाकार-उपयोग कहते हैं। यह भी अन्तर्मुहूर्त्तकाल तक होता है ॥ १८० ॥

³केवल्लिणं सागारो अणागारो जुगवदेव उवओगो ।

सादी अणंतकालो पच्चक्खो सव्वभावगदो ॥१८१॥

केवल्लियोंके साकार और अनाकार उपयोग युगपत् ही होता है। उसका काल सादि और अनन्त है, अर्थात् उत्पन्न होनेके पश्चात् अनन्तकाल तक रहता है। वह प्रत्यक्ष है और सर्व भाव-गत है, अर्थात् चराचर जगद्-व्यापी समस्त पदार्थोंको जानता है ॥१८१॥

इस प्रकार उपयोगप्ररूपणा समाप्त हुई ।

जीवसमास-अधिकारका उपसंहार—

⁴णिक्खेवे एयट्ठे णयप्पमाणे णिरुत्ति अणिओगे ।

मग्गइ वीसं मेए सो जाणइ जीवसव्वभावं ॥१८२॥

जो ज्ञानी पुरुष निक्षेप, एकार्थ, नय, प्रमाण, निरुक्ति और अनुयोगमे उपर्युक्त बीस प्ररूपणा-रूप भेदोंका अन्वेषण करता है, वह जीवके सद्भाव अर्थात् यथार्थ स्वरूपको जानता है ॥१८२॥
छहों लेश्याओंके वर्ण—

किण्हा भमर-सवण्णा णीला पुण णील-मुलियसंकासा ।

काऊ कओद-वण्णा तेऊ तवणिज्ज-वण्णा हु ॥१८३॥

पम्हा पउमसवण्णा सुक्का पुणु कासकुसुमसंकासा ।

वण्णंतरं च एदे हवन्ति परिमिता अणंता वा ॥१८४॥

1. स० पचसं० १, ३३३ । 2. १, ३३४ । 3. १, ३३५ । 4. १, ३५३ ।

१ गो० जी० ६७३, पर तत्र द्वितीयचरणे 'ज सयविसय' स्थाने 'सगसगविसये' इति पाठः ।

२. गो०जी० ६७४ ।

कृष्णलेश्या भौरेके समान वर्णवाली है, नीललेश्या नीलकी गोली, नीलमणि या मयूरकंठके समान वर्णवाली है। कापोतलेश्या कपोत (कबूतर) के समान वर्णवाली है। तेजोलेश्या तपे हुए सोनेके समान वर्णवाली है। पद्मलेश्या पद्म (गुलाबी रंगके कमल) के सदृश वर्णवाली है और शुक्ललेश्या कांसके फूलके समान श्वेतवर्णवाली है। इन छहों लेश्याओंके वर्णान्तर अर्थात् तारतम्यकी अपेक्षा मध्यवर्ती वर्णोंके भेद इन्द्रियो-द्वारा ग्रहण करनेकी दृष्टिसे संख्यात है, स्कन्ध-गत जातियोंकी अपेक्षा असंख्यात है और परमाणु-गत भेदकी अपेक्षा अनन्त हैं ॥१८३-१८४॥

नरकोंमें लेश्याओंका निरूपण—

^१काऊ काऊ तह काऊ-णील नीला य नील-किण्हा य ।

किण्हा य परमकिण्हा लेसा रयणादि-पुढवीसु ॥१८५॥

रत्नप्रभादि पृथिवियोंमें क्रमशः कापोत, कापोत, कापोत और नील, नील, नील और कृष्ण, कृष्ण, तथा परमकृष्ण लेश्या होती है ॥१८५॥

विशेषार्थ—प्रथम पृथिवीके नारकियोंके कापोतलेश्याका जघन्य अंश होता है। द्वितीय पृथिवीके नारकियोंके कापोतलेश्याका मध्यम अंश होता है। तृतीय पृथिवीके नारकियोंके कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अंश और नीललेश्याका जघन्य अंश होता है। चतुर्थ पृथिवीके नारकियोंके नीललेश्याका मध्यम अंश होता है। पंचम पृथिवीके नारकियोंके नीललेश्याका उत्कृष्ट अंश और कृष्णलेश्याका जघन्य अंश होता है। षष्ठ पृथिवीके नारकियोंके कृष्णलेश्याका मध्यम अंश होता है। सप्तम पृथिवीके नारकियोंके परम कृष्णलेश्या अर्थात् कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अंश होता है।

तिर्यंच और मनुष्योंमें लेश्याओंका निरूपण—

^२एइंदिय-वियलंदिय-असण्णि-पंचिंदियाण पढमतिर्यं ।

संखदीदाऊणं सेसा सेसाण छप्पि लेसाओ ॥१८६॥

३।३।६।

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें प्रथम तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। संख्यातीत आयुवालोंके अर्थात् असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियों मनुष्य और तिर्यंचोंके शेष तीन शुभ लेश्याएँ होती हैं। शेष अर्थात् संख्यात वर्षकी आयुवाले कर्मभूमियों मनुष्य और तिर्यंचोंके छहो लेश्याएँ होती हैं ॥१८६॥ (इनकी अकसदृष्टि गाथाके नीचे दी है)

गुणस्थानोंमें लेश्याओंका निरूपण—

^३पढमाइचउ छलेसा सुहाउ जाणे हु तिसु तिण्णेव ।

उवरिमगुणेषु सुक्का णिल्लेसो अंतिमो भणिओ ॥१८७॥

६।६।६।६।३।३।३।१।१।१।१।१।१।०।

प्रथम गुणस्थानसे लेकर चौथे गुणस्थान तक छहों लेश्याएँ होती हैं। पाँचवेसे लेकर सातवें तक तीन गुणस्थानोंमें तीन शुभ लेश्याएँ ही होती हैं। उपरिम गुणोंमें अर्थात् आठवेसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक एक शुक्ललेश्या ही होती है। अन्तिम अयोगकेवली गुणस्थान निर्लेश्य अर्थात् लेश्या-रहित कहा गया है ॥१८७॥ (इनकी अकसदृष्टि गाथाके नीचे दी है)

१. स० पञ्चसं० १, २६८ । २. १, २६७ । ३. १, २६५ ।

१. जीवस० ७२, मूला० ११३४, गो० जी० ५२८ ।

देवोंमें लेश्याओंका निरूपण—

¹तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दुण्हं च तेरसण्हं च ।

एदो य चउदसण्हं लेसाण समासओ मुणहं ॥१८८॥

तेऊ तेऊ तह तेउ-पम्म पम्मा य पम्म-सुक्का य ।

सुक्का य परमसुक्का लेसा भवणाइदेवाणं ॥१८९॥

भवनादि तीन देवोंके अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंके जघन्य तेजोलेश्या होती है । सौधर्म और ईशान इन दो कल्पवासी देवोंके मध्यम तेजोलेश्या होती है । सनत्कुमार और महेन्द्र इन दो कल्पवासी देवोंके उत्कृष्ट तेजोलेश्या और जघन्य पद्मलेश्या होती है । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र इन छह कल्पवासी देवोंके मध्यम पद्मलेश्या होती है । शतार, सहस्रार इन दो कल्पवासी देवोंके उत्कृष्ट पद्मलेश्या और जघन्य शुक्ललेश्या होती है । आनत, प्राणत, आरण, अच्युत इन चार कल्पवासी देवोंके तथा नव ग्रैवेयकवासी कल्पातीत देवोंके, इन तेरहोंके मध्यम शुक्ललेश्या होती है । इससे ऊपर नव अनुदिश और पंच अनुत्तर इन चौदह कल्पातीत देवोंके परम अर्थात् उत्कृष्ट शुक्ललेश्या होती है ॥१८८-१८९॥

²पज्जत्तयजीवाणं सरीर-लेसा हवन्ति छब्भेया ।

सुक्का काऊ य तहा अपज्जत्ताणं तु वोहव्वा ॥१९०॥

पर्याप्तक जीवोंके शरीरकी लेश्या अर्थात् द्रव्य लेश्या छहों होती हैं । किन्तु अपर्याप्तकोंके शरीरलेश्या शुक्ल और कापोत जानना चाहिए ॥१९०॥

³विग्रहगइमावण्णा जीवाणं दव्वओ य सुक्का य ।

सरीरमिह असंगहिए काऊ तह अपज्जत्तकाले य ॥१९१॥

विग्रहगतिको प्राप्त हुए चारों गतिके जीवोंके शरीरके ग्रहण नहीं करने अर्थात् जन्म नहीं लेनेतक द्रव्यसे शुक्ललेश्या होती है । पुनः जन्म लेनेके पश्चात् शरीरपर्याप्तिके पूर्ण नहीं होने तक अपर्याप्तकालमें कापोतलेश्या होती है ॥१९१॥

लेश्या-जनित भाइयोंका दृष्टान्त-द्वारा निरूपण—

⁴णिम्मूल खंध साहा गुंछा चुणिऊण । कोइ पडिदाइ ।

जह एदेसिं भावा तह वि य लेसा मुणेयव्वा^१ ॥१९२॥

जिस प्रकार कोई पुरुष किसी वृक्षके फलोंको जड़-मूलसे उखाड़कर, कोई स्कन्धसे काटकर, कोई गुच्छोंको तोड़कर, कोई फलोंको चुनकर और कोई गिरे हुए फलोंको वीन करके खाना चाहे, तो उनके भाव जैसे उत्तरोत्तर विशुद्ध हैं, उसी प्रकार कृष्णादि लेश्याओंके भाव भी क्रमशः उत्तरोत्तर विशुद्ध चाहिए ॥१९२॥

1. १, २६६-२७१ । 2. १, २५३-२५६ । 3. १, २५७ । 4. १, २६४ ।

१. गो० जी० ५३३ । जीवस० गा० ७३, परं तत्र चतुर्थचरणे 'सक्कादिविमाणवासीण' इति पाठः । २. गो० जी० ५३४ । तत्र चतुर्थचरणे भवणतियाऽपुण्णगे असुहा इति पाठः । ३. गो० जी० ५०७ । उत्तरार्थे पाठभेद ।

-द व चुणिऊण ।

सम्यग्दृष्टि जीव मर कर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होता—

^१छसु हेडिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवन-सव्वइत्थीसु ।

वारसं मिच्छावादे सम्माइडिस्स णत्थि उववादो^१ ॥१६३॥

प्रथम पृथ्वीके बिना अधस्तन छहो पृथिवियोमे; ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देवोंमें, सर्वप्रकारकी स्त्रियोमे अर्थात् तिर्यचनी, मनुष्यनी और देवियोमे, तथा वारह मिथ्यावादमे अर्थात् जिनमे केवल एक मिथ्यात्व ही गुणस्थान होता है, ऐसे एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और असंज्ञिपञ्चेन्द्रियसम्बन्धी तिर्यञ्चोके वारह जीवसमासोंमें सम्यग्दृष्टि जीवका उत्पाद नहीं है, अर्थात् वह मरकर इनमे उत्पन्न नहीं होता है ॥१६३॥

एक जीवके कौन-कौन सी मार्गणाएँ एक साथ नहीं होती हैं—

^२मणपज्जव परिहारो उवसमसम्मत्त दोणिण आहारा ।

एदेसु एकपयदे णत्थि त्ति असेसयं जाणे^२ ॥१६४॥

मन पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम, प्रथमोपशमसम्यक्त्व और दोनों आहारक, अर्थात् आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग, इन चारोंमेसे किसी एकके होने पर शेष तीन मार्गणाएँ नहीं होतीं, ऐसा जानना चाहिए ॥१६४॥

संयमोंका गुणस्थानोंमें निरूपण—

^३जा सामाइय छेदोऽणियड्ढि परिहारमप्पमत्तो त्ति ।

सुहुमो सुहुमसराओ उवसंताई जहक्खाय ॥१६५॥

छठे गुणस्थानसे लेकर नवे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक सामायिक और छेदोपस्थापना संयम होता है । अप्रमत्तान्त अर्थात् छठे और सातवे गुणस्थानमे परिहारविशुद्धिसंयम होता है । सूक्ष्मसाम्परायसंयम सूक्ष्मसरागनामक दशवे गुणस्थानोमे होता है और यथाख्यातसंयम उपशान्तकपायादि अन्तिम चार गुणस्थानमें होता है ॥१६५॥

समुद्धातके भेद—

^४वेयण कसाय वेउन्विय मारणंतिओ समुघाओ ।

तेजाऽऽहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं च^३ ॥१६६॥

१ वेदनासमुद्धात २ कषायसमुद्धात ३ वैक्रियिकसमुद्धात ४ मारणान्तिकसमुद्धात, ५ तैजससमुद्धात, छट्ठा आहारकसमुद्धात और सातवाँ केवलियोंके होनेवाला केवलिसमुद्धात ये सात प्रकारके समुद्धात होते हैं । (वेदनादि कारणोंसे मूल शरीरके साथ सम्बन्ध रखते हुए आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्धात कहते हैं ।) ॥१६६॥

केवलिसमुद्धातका निरूपण—

^५पढमे दंडं कुणइ य विदिए य कवाडयं तहा समए ।

तइए पयरं चेव य चउत्थए लोयपूरणयं ॥१६७॥

१ स० पञ्चस० १, २६७ । २. १, ३४० । ३. १, २४४ । ४. १, ३३७ । ५. १, ३२६ ।

१ ध० भा० १ पृ० २०६, गा० १३३ । पर तत्रोत्तरार्धे 'णेदेसु समुप्पज्जइ सम्माइड्ढी दु जो जीवो' इति पाठः । गो० जी० १२७, तत्राय पाठ — हेडिठमद्वप्पुढवीण जोइसि-वण-भवन-सव्व-इत्थीण । पुणिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ॥ २. गो० जी० ७२८ । ३. ध० १, ३, २ गो० जी० ६६६ ।

४ प्रतिपु 'तेज्जा' इति पाठ ।

विवरं पंचमसमए जोई मंथणयं तदो छट्ठे ।

सत्तमए य क्वाडं संवरइ तदोऽट्ठमे दंडं ॥१६८॥

समुद्रातगतकेवली भगवान् प्रथम समयमें दंडरूप समुद्रात करते हैं । द्वितीय समयमें कपाटरूप समुद्रात करते हैं । तृतीय समयमें प्रतररूप और चौथे समयमें लोकपूरण समुद्रात करते हैं । पाँचवे समयमें वे सयोगिजिन लोकके विवर-गत आत्मप्रदेशोंका संवरण (संकोच) करते हैं । पुनः छठे समयमें मन्थान-(प्रतर-) गत आत्मप्रदेशोंका संवरण करते हैं । सातवें समयमें कपाट-गत आत्मप्रदेशोंका संवरण करते हैं और आठवें समयमें दंडसमुद्रात-गत आत्म-प्रदेशोंका संवरण करते हैं ॥१६८-१६८॥

केवलिसमुद्रातमें काययोगोंका निरूपण—

^१दंडदुगे ओरालं क्वाडजुगले य पयरसंवरणे ।

मिस्सोराळं भणियं कम्मइओ सेस तत्थ अणहारी ॥१६९॥

केवलिसमुद्रातके उक्त आठों समयोंमेंसे दण्ड-द्विक अर्थात् पहले और आठवे समयके दोनों दण्डसमुद्रातोंमें औदारिककाययोग होता है । कपाट-युगलमें अर्थान् विस्तार और संवरण-गत दोनों कपाटसमुद्रातोंमें तथा संवरण-गत प्रतरसमुद्रातमें यानी दूसरे, छठे और सातवें समयमें औदारिकमिश्रकाययोग होता है, ऐसा परमागममें कहा गया है । शेष समयोंमें अर्थान् तीसरे, चौथे और पाँचवें समयमें कर्मणकाययोग होता है और उस समय केवली भगवान् अनाहारक रहते हैं ॥१६९॥

केवलिसमुद्रातका नियम—

^२छम्मासाउगसेसे उत्पण्णं जेसिं केवलं णाणं ।

ते णियमा समुग्घायं सेसेमु हवंति भयणिज्जा^१ ॥२००॥

जिनके छह मास आयुके शेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वे केवली नियमसे समुद्रात करते हैं । शेष केवलियोंमें समुद्रात भजनीय है, अर्थात् कोई करते भी हैं और कोई नहीं भी करते ॥२००॥

सम्यक्त्व, अणुव्रत और महाव्रतकी प्राप्तिका नियम—

^३चत्तारि वि छेत्ताइं आउयवंधेण होइ सम्मत्तं ।

अणुवय-महव्वयाइं ण लहइ देवाउअं मोत्तु^२ ॥२०१॥

जीव चारों ही क्षेत्रों (गतियों) की आयुका वन्ध होनेपर सम्यक्त्वको प्राप्त कर सकता है । किन्तु अणुव्रत और महाव्रत देवायुको छोड़कर शेष आयुका वन्ध होने पर प्राप्त नहीं कर सकता ॥२०१॥

दर्शनमोहनीयका जय कौन करता है—

^४दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।

णियमा मणुसगदीए णिड्ठवगो चावि सव्वत्थ^३ ॥२०२॥

१. सं पञ्चमं १, ३२५ । २. १, ३२७ । ३. १, ३०१ । ४. १, २६४ ।

१. मूलारा २१०१ । ध० भा० १ पृ० ३०३ गा० १६७ । २. ध० भा० १ पृ० ३२६ गा० १६६ । गो० जी० ६५२, गो० क० ३३४ । ३. क० पा० २ गा० १६७ गो० जी० ६४७ ।
छ व खेत्ताइ ।

मनुष्यगतिमे उत्पन्न हुआ कर्मभूमियों मनुष्य ही नियमसे दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयका प्रस्थापक होता है अर्थात् प्रारम्भ करता है। किन्तु निष्ठापक सर्वत्र होता है। अर्थात् पूर्व-वद्ध आयुके वशसे किसी भी गतिमें उत्पन्न होकर उसकी निष्ठापना (पूर्णता) कर सकता है ॥२०२॥
क्षायिकसम्यग्दृष्टिके संसार-वासका नियम—

^१खवणाए पट्टवगो जम्मि भवे णियमदो तदो अण्णे ।

णादिकदि तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि ॥२०३॥

जो मनुष्य जिस भवमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापन करता है, वह दर्शनमोहके क्षीण होने पर नियमसे उससे अन्य तीन भवोंका अतिक्रमण नहीं करता है। अर्थात् दर्शनमोहके क्षीण हो जानेपर तीन भवमें नियमसे मुक्त हो जाता है ॥२०३॥

दर्शनमोहनीयका उपशम कौन करता है—

^२दंसणमोह-उवसामगो दु चउसु वि गईसु वोहव्वो ।

पंचिदिओ य सण्णी णियमा सो होइ पज्जत्तो ॥२०४॥

दर्शनमोहका उपशम करनेवाला जीव चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु वह नियमसे पंचेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है। अर्थात् चारों ही गतिके संज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव उपशमसम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं ॥२०४॥

विरह (अन्तर) कालका नियम—

^३सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदे य चउदसा होंति ।

विरदेसु य पण्णरसं विरहियकालो य वोहव्वो ^३ ॥२०५॥

उपशमसम्यक्त्वका विरहकाल सात दिन, उपशमसम्यक्त्व-सहित विरताविरतका विरह-काल चौदह दिन और उपशमसम्यक्त्व-सहित विरत अर्थात् प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतका विरहकाल पन्द्रह दिन जानना चाहिए ॥२०५॥

नारिक्योंके विरहकालका नियम—

पणयालीस मुहुत्ता पक्खो मासो य विण्णि चउ मासा ।

छम्मास वरिसमेयं च अंतरं होइ पुढवीणं ॥२०६॥

जीवसमासो समत्तो

रत्नप्रभादि सातों पृथिवियोंमें नारिक्योंकी उत्पत्तिका अन्तरकाल क्रमशः पैतालीस मुहूर्त, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास, छह मास और एक वर्ष होता है ॥२०६॥

इस प्रकार जीवसमास नामक प्रथम अविकार समाप्त हुआ ।



१ सं० पञ्चस० १, २६५ । २. १, २६६ । ३ १, ३३६ ।

१. क० पा०, गा० ११३ । २ क०पा० गा० ६५ । ३. गो० जी० १४४ 'पर तत्र प्रथमचरणे पढमुवसमसहिदाए' इति पाठः ।

† द अण्णो ।

द्वितीय अधिकार प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन

मंगलाचरण और प्रतिज्ञा—

¹पयडि-विवंधणमुक्कं पयडिसरूवं विसेसदेसयरं ।

पणविय वीरजिणिंदं पयडिसमुक्कित्तणं वुच्छं ॥१॥

कर्म-प्रकृतियोंके बन्धनसे विमुक्त, एवं प्रकृतियोंके स्वरूपका विशेषरूपसे उपदेश करनेवाले ऐसे श्रीवीर जिनेन्द्रको प्रणाम करके मैं प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन नामक अधिकारको कहूँगा ॥१॥

पयडीओ दुविहाओ मूलपयडीओ उत्तरपयडीओ । तं जहा—

प्रकृतियों दो प्रकारकी होती हैं—मूलप्रकृतियों और उत्तरप्रकृतियों । उनका विशेष विवरण इस प्रकार है—

²णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीय मोहणियं ।

आउग णामागोदं तहंतरायं च मूलाओ ॥२॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये कर्मोंकी आठ मूलप्रकृतियों हैं ॥२॥

कर्मोंके स्वभावका दृष्टान्त-द्वारा निरूपण—

पड पडिहारसिमज्जा हडि चित्त कुलाल भंडयारीणं ।

जह एदेसिं भावा तह वि य कम्मा गुणेयव्वा^३ ॥३॥

पट (देव-मुखका आच्छादक वस्त्र) प्रतीहार (राजद्वार पर बैठा हुआ द्वारपाल) असि (मधु-लिप्त तलवार) मद्य (मदिरा) हडि (पैर फंसानेका खोड़ा) चित्रकार (चितेरा) कुम्भकार (वर्त्तन बनानेवाला कुम्भार) और भंडारी (कोपाध्यक्ष) इन आठोंके जैसे अपने-अपने कार्य करनेके भाव होते हैं, उस ही प्रकार क्रमशः कर्मोंके भी स्वभाव समझना चाहिए ॥३॥

1. सं० पञ्चस० २, १ । 2. २, २ ।

१ कर्मस्त० ६ । गो० क० ८, पर तत्र चतुर्थ-चरणे—‘तरायमिदि अट्ट पयडीओ’ इति पाठः ।

२. गो० क० २१ । कर्मवि० ६ ।

कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियोंका निरूपण—

^१पंच णव दोणिण अट्ठावीसं चउरो तहेव तेणउदी ।

दोणिण य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा होति^१ ॥४॥

ज्ञानावरणादि आठो मूल-प्रकृतियोंकी उत्तरप्रकृतियों क्रमसे पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तेरानवे, दो और पाँच कही गई है ॥४॥

प्रत्येक कर्मकी उत्तरप्रकृतियोंका पृथक्-पृथक् निरूपण—

^२जं तं णाणावरणीयं कम्मं तं पंचविहं—आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुद-
णाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि^२ । जं दंसणावरणीयं कम्मं
तं णवविहं—णिदाणिदा पयलापयला थीणगिद्धी णिदा य पयला य । चक्खुदंसणा-
वरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि^३ । जं वेय-
णीयं कम्मं तं दुविहं—सादावेयणीयं असादावेयणीयं चेदि^४ ।

जो ज्ञानावरणीयकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुत-
ज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय । जो दर्शना-
वरणीयकर्म है, वह नौ प्रकारका है—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला ।
तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ।
जो वेदनीयकर्म है, वह दो प्रकारका है—सातावेदनीय और असातावेदनीय ।

जं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं—दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेदि^५ । जं
दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं । संतकम्मं पुण ति विहं—मिच्छत्तं सम्मत्तं
सम्मामिच्छत्तं चेदि^६ । जं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं—कसायवेयणीयं णोकसाय-
वेयणीयं चेदि^७ । जं कसायवेयणीयं कम्मं तं सोलसविहं—अणंताणुबंधिकोह-माण-
माया-लोहा, अपचक्खणावरणकोह-माण-माया-लोहा, पचक्खणावरणकोह-माण-
माया-लोहा, संजलणकोह-माण-माया-लोहा चेदि^८ । जं णोकसायवेयणीयं कम्मं तं
णवविहं—इत्थिवेदं पुरिसवेदं णउंसयवेदं हास रइ अरइ सोय भय दुगुंछा चेदि^९ ।

जो मोहनीयकर्म है, वह दो प्रकारका है—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय । जो
दर्शनमोहनीयकर्म है, वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है । किन्तु सत्कर्म (सत्त्व) की अपेक्षा
तीन प्रकारका है—मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व । जो चारित्रमोहनीयकर्म है,
वह दो प्रकारका है—कपायवेदनीय और नोकपायवेदनीय । जो कषायवेदनीयकर्म है, वह

१. स० पञ्चस० २, ३ । २. २, ५-३५ ।

१. कर्मस्त० १०, पर तत्र 'तेणउदी' स्थाने 'बायाला' इति पाठ । गो० क० २२, पर
तत्रोत्तरार्धे 'ते उत्तर सय वा दुग पणग उत्तरा होति' इति पाठ । २ पट्० प्र० समु० चू० सू० १४
३. पट्० प्र० स० चू० सू० १६ । ४. पट्० प्र० स० चू० सू० १८ । ५. पट्० प्र० स० चू० सू०
२० । ६. पट्० प्र० स० चू० सू० २१ । ७ पट्० प्र० स० चू० सू० २२ । ८ पट्० प्र० स०
चू० सू० २३ । ९. पट्० प्र० स० चू० सू० २४ ।

॥ द 'भणिट' इत्यधिकः पाठः ।

सोलह प्रकारका है—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ । जो नोकपायवेदनीयकर्म है, वह नौ प्रकारका है—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा ।

जं आउकम्मं तं चउव्विहं—णिरियाउगं तिरियाउगं मणुयाउगं देवाउगं चेदि^१ ।

जो आयुकर्म है, वह चार प्रकारका है—नरकायुष्क, तिर्यगायुष्क, मनुष्यायुष्क और देवायुष्क ।

जं णामकम्मं तं वायालीसं पिंडापिंडपयडीओ^२ । पिंडपयडीओ चउद्दस १४ । अपिंडपयडीओ अट्ठावीसं २८ । तं जहा—गइणामं जाइणामं सरीरणामं सरीरबंधण-णामं सरीरसंधायणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंधयणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं विहायगइणामं अगुरुगलहुगणामं उवघाद-णामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं तसणामं थावरणामं दादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साहारणसरीरणामं थिरणामं अथिर-णामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दुब्भगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि^३ ।

जो नामकर्म है, वह पिंड और अपिंड प्रकृतियोंके समुच्चयकी अपेक्षा व्यालीस प्रकारका है । उनमें पिंडप्रकृतियों चौदह हैं और अपिंडप्रकृतियों अट्ठाईस हैं । उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीर-बन्धननाम, शरीर-संघातनाम, शरीर-संस्थाननाम, शरीर-अंगोपांगनाम, शरीर-संहनननाम, वर्णनाम, गन्धनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, विहायोगतिनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतापनाम, उद्योतनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, वादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीर-नाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थकरनाम ।

जं गइणामकम्मं तं चउव्विहं—णिरयगइणामं तिरियगइणामं मणुयगइणामं देवगइणामं चेदि^४ । जं जाइणामकम्मं तं पंचविहं—एइंदियजाइणामं वेइंदियजाइणामं तेइंदियजाइणामं चउरिदियजाइणामं पंचेदियजाइणामं चेदि^५ । जं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेयसरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि^६ ।

१. पट्ठं प्र० स० चू० सू० २५-२६ । २. पट्ठं प्र०स० चू० सू० २७ । ३. पट्ठं प्र०स०चू० सू० २८ । ४. पट्ठं प्र० स० चू० सू० २९ । ५. पट्ठं प्र० स० चू० सू० ३० । ६. पट्ठं प्र० स० चू० सू० ३१ ।

इनमें जो गतिनामकर्म है, वह चार प्रकारका है—नरकगतिनाम, तिर्यग्गतिनाम, मनुष्य-गतिनाम और देवगतिनाम । जो जातिनामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, और पंचेन्द्रियजातिनाम । जो शरीर-नामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियिकशरीरनाम, आहारकशरीर-नाम, तैजसशरीरनाम और कर्मणशरीरनाम ।

जं सरीरबंधणनामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरबंधणनामं वेउव्वियसरीरबंधण-
नामं आहारसरीरबंधणनामं तेयसरीरबंधणनामं कम्मइयसरीरबंधणनामं चेदि^१ । जं
सरीरसंघायणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरसंघायणामं वेउव्वियसरीरसंघायणामं
आहारसरीरसंघायणामं तेयसरीरसंघायणामं कम्मइयसरीरसंघायणामं चेदि^२ ।

जो शरीर-बन्धननामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—औदारिकशरीरबन्धननाम, वैक्रियिकशरीरबन्धननाम, आहारकशरीरबन्धननाम, तैजसशरीरबन्धननाम और कर्मणशरीर-बन्धननाम । जो शरीर-संघात नामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—औदारिकशरीरसंघातनाम, वैक्रियिकशरीरसंघातनाम, आहारकशरीरसंघातनाम, तैजसशरीरसंघातनाम और कर्मणशरीर-संघातनाम ।

जं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं—समचउरससरीरसंठाणणामं णिग्गोहपरि-
मंडलसरीरसंठाणणामं सोइयसरीरसंठाणणामं खुज्जयसरीरसंठाणणामं वामणसरीर-
संठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि^३ । जं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं—ओरा-
लियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि^४ ।

जो शरीरसंस्थाननामकर्म है, वह छह प्रकारका है—समचतुरस्रशरीरसंस्थाननाम, न्यग्रोधपरिमंडलशरीरसंस्थाननाम, स्वातिशरीरसंस्थाननाम, कुब्जकशरीरसंस्थाननाम, वामन-शरीरसंस्थाननाम और हुंडकशरीरसंस्थाननाम । जो शरीर-अंगोपागनामकर्म है, वह तीन प्रकारका है—औदारिकशरीर-अंगोपागनाम वैक्रियिकशरीर-अंगोपागनाम और आहारकशरीर-अंगो-पागनाम ।

जं सरीरसंघयणणामकम्मं तं छव्विहं—वज्जरिसहणारायसरीरसंघयणणामं
वज्जणारायसरीरसंघयणणामं णारायसरीरसंघयणणामं अद्धणारायसरीरसंघयणणामं
खीलियसरीरसंघयणणामं असंपत्तसेपट्टसरीरसंघयणणामं चेदि^५ ।

जो शरीरसंहनननामकर्म है, वह छह प्रकारका है—वज्रऋषभनाराचशरीरसंहनननाम, वज्रनाराचशरीरसंहनननाम, नाराचशरीरसंहनननाम, अर्धनाराचशरीरसंहनननाम, कीलकशरीर-संहनननाम और असंप्राप्तसूपाटिकाशरीरसंहनननाम ।

जं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं—किण्हवण्णणामं णीलवण्णणामं रत्तवण्णणामं
पीतवण्णणामं सुक्कवण्णणामं चेदि^६ । जं गंधणामकम्मं तं दुविहं—सुरहिगंधणामं

१. पट्० प्र० स० चू० सू० ३२ । २ पट्० प्र० स० चू० सू० ३३ । ३ पट्० प्र० स० चू०
सू० ३४ । ४. पट्० प्र० स० चू० सू० ३५ । ५ पट्० प्र० स० चू० सू० ३६ । ६. पट्० प्र०
स० चू० सू० ३७ ।

दुरहिगंधनामं चेदि^१ । जं रसनामकम्मं तं पंचविहं—तित्तनामं कडुयणामं कसाय-
णामं अंविलणामं महुरणामं चेदि^२ । जं फासनामकम्मं तं अट्ठविहं—कक्खण्डणामं
मउयणामं गरुयणामं लहुयणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीयणामं उण्हणामं चेदि^३ ।

जो वर्णनामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवर्णनाम,
पीतवर्णनाम और शुक्लवर्णनाम । जो गन्धनामकर्म है, वह दो प्रकारका है—सुगन्धिगन्धनाम
और दुरभिगन्धनाम । जो रसनामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—तित्तनाम, कटुकनाम, कपाय-
नाम, आम्लनाम और मधुरनाम । जो स्पर्शनामकर्म है, वह आठ प्रकारका है—कर्कशनाम,
मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, स्निग्धनाम, रुक्षनाम, शीतनाम और उष्णनाम ।

जं आणुपुब्बीणामकम्मं तं तं चउव्विहं—णिरयगइपाओग्गाणुपुब्बीणामं
तिरियगइपाओग्गाणुपुब्बीणामं मणुयगइपाओग्गाणुपुब्बीणामं देवगइपाओग्गाणुपुब्बी-
णामं चेदि^४ । जं विहायगइणामकम्मं तं दुविहं—पसत्थविहायगइणामं अपसत्थ-
विहायगइणामं चेदि^५ ।

जो आनुपूर्वी नामकर्म है, वह चार प्रकारका है—नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम, तिर्यगति-
प्रायोग्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम । जो विहायो-
गतिनामकर्म है, वह दो प्रकारका है—प्रशस्तविहायोगतिनाम और अप्रशस्तविहायोगतिनाम ।

जं गोयकम्मं तं दुविहं—उच्चगोयं णीचगोयं चेदि^६ । जं अंतरायकम्मं
तं पंचविहं—दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोयंतराइयं उवभोयंतराइयं विरियंतराइयं चेदि^७ ।

जो गोत्रकर्म है, वह दो प्रकारका है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । जो अन्तरायकर्म है,
वह पांच प्रकारका है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।
बन्ध-योग्य प्रकृतियोंका निरूपण—

^१पंच णव दोणिणं छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी ।

दोणिणं य पंच य भणिया एयाओ बंधपयडीओ^१ ॥५॥

ज्ञानावरणीयकी पाँच, दर्शनावरणीयकी नौ, वेदनीयकी दो, मोहनीयकी छव्वीस, आयु-
कर्मकी चार, नामकर्मकी सड़सठ, गोत्रकर्मकी दो और अन्तरायकर्मकी पाँच; इस प्रकार एक सौ
वीस (१२०) बंधने योग्य उत्तरप्रकृतियों कहीं गई है ॥५॥

बन्ध-प्रकृतियों १२० ।

बन्धके अयोग्य प्रकृतियोंका निरूपण—

^२वण्ण-रस-गंध-फासा चउ चउ इगि सत्त सम्ममिच्छत्तं ।

होंति अवंधा बंधण पण पण संघाय सम्मत्तं ॥६॥

१. स० पञ्चसं० २, ३६ । २. २, ३७ ।

१. पट्० प्र० स० चू० सू० ३८ । २. पट्० प्र० स० चू० सू० ३९ । ३. पट्० प्र० स० चू०
सू० ४० । ४. पट्० प्र० स० चू० सू० ४१ । ५. पट्० प्र० स० चू० सू० ४३ । ६. पट्० प्र० स०
चू० सू० ४५ । ७. पट्० प्र० स० चू० सू० ४६ । ८. गो० क० ३५ ।

चार वर्ण, चार रस, एक गन्ध, सात स्पर्श, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, पौंच बन्धन और पौंच संघात; ये अट्ठाईस (२८) प्रकृतियों बन्धके अयोग्य होती हैं ॥६॥

अवन्ध-प्रकृतियों २८ ।

उदयके अयोग्य प्रकृतियोंका निरूपण—

^१वण्ण-रस-गंध-फासा चउ चउ सत्तेक्कमणुदयपयडीओ ।

एए पुण सोलसयं वंधण-संघाय पंचेवं ॥७॥

अणुदयपयडीओ २६ । उदयपयडीओ १२२ ।

चार वर्ण, चार रस, एक गन्ध, सात स्पर्श, पौंच बन्धन और पौंच संघात; ये छव्वीस प्रकृतियों उदयके अयोग्य हैं । शेष एक सौ बाईस (१२२) प्रकृतियों उदयके योग्य होती हैं ॥७॥

अनुदय-प्रकृतियों २६ । उदय-प्रकृतियों १२२ ।

उद्वेलना-योग्य प्रकृतियाँ—

^२आहारय-वेउव्विय-णिर-णर-देवाण होंति जुगलाणि ।

सम्मत्तुच्चं मिस्सं एया उव्वेल्लणा-पयडी ॥८॥

। १३ ।

आहारक-युगल (आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग) वैक्रियिक-युगल (वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-अंगोपांग) नरक-युगल (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी) नर-युगल (मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी) देव-युगल (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी) सम्यक्त्वप्रकृति, मिश्रप्रकृति (सम्यग्मिथ्यात्व) और उच्चगोत्र ये तेरह उद्वेलना प्रकृतियों हैं, अर्थात् इन प्रकृतियोंका उद्वेलनसंक्रमण होता है ॥८॥

उद्वेलन-प्रकृतियाँ ११ ।

ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ—

^३आवरण विग्घ सन्वे कसाय मिच्छत्त णिमिण वण्णचदुं ।

भय णिंदाऽगुरु तेयाकम्भुवघायं धुवाउ सगदालं ॥९॥

। ४७ ।

ज्ञानावरणीय पौंच, दर्शनावरणीय पौंच, अन्तराय पौंच, कपाय सोलह, मिथ्यात्व, निर्माण वर्णचतुष्क (वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श) भय, जुगुप्सा, अगुरुलघु तैजस, कर्मण और उपघात ये सैंतालीस ध्रुवबन्धी प्रकृतियों हैं; क्योंकि बन्ध-योग्य गुणस्थानमे इनका निरन्तर बन्ध होता है ॥९॥

ध्रुवबन्धी प्रकृतियों ४७ ।

अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ—

^४परघादुस्सासाणं आयवउज्जोयमाउ चत्तारि ।

तित्थयराहारदुगं एगारह होंति सेसाओ ॥१०॥

। ११ ।

परघात, उच्छ्वास, उद्योत, चारों आयु कर्म, तीर्थंकर, आहारकशरीर और आहारक-अंगोपांग ये ग्यारह शेष अर्थात् अध्रुवबन्धी प्रकृतियों हैं ॥१०॥

अध्रुवबन्धी प्रकृतियों ११ ।

परिवर्तमान प्रकृतियाँ—

१ साद्वयरं वेदनियं हस्तादिचतुष्कं पञ्च जाद्वयो ।

संठाणं संघटणं छ छक चउक आणुपुन्वी य ॥११॥

गहचउ दो य सरीरं गोयं च य दोणि अंगवंगा य ।

दह जुवलाणि तसाई गयणगड्डुगं विसट्टि परिवत्ता ॥१२॥

। ६२ ।

एवं पयडिसमुद्धित्तणं समत्तं ।

सातावेदनीय असातावेदनीय, तीनों वेद, हास्यादि-चतुष्क, पाँचो जातियाँ, छहों संस्थान, छहों संहनन. चारों आनुपूर्वियों, चारों गतियों, औदारिक और वैक्रियिक ये दो शरीर, दोनों गोत्रकर्म. औदारिक और वैक्रियिक ये दो अंगोपांग, त्रसादि दश युगल और विद्यायोगति-युगल ये बासठ प्रकृतियाँ परिवर्तमान जानना चाहिए ॥११-१२॥

विशेषार्थ—जिन परस्पर-विरोधी प्रकृतियोंका उद्भय एक साथ संभव नहीं है, उन्हें परिवर्तमान कहते हैं। जैसे सातावेदनीयका उद्भय जिस समय किसी जीवके होगा, उस समय उसके असातावेदनीयका उद्भय संभव नहीं है। किसी एक वेदके उद्भय होने पर उस समय दूसरे वेदका उद्भय नहीं हो सकता। इसलिए इन्हें परिवर्तमान प्रकृति कहते हैं। ऐसी परिवर्तमान प्रकृतियाँ ६२ होती हैं जिन्हें ऊपर गिनाया गया है। उनमें जो त्रसादि दश युगल बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं—१ त्रस-स्थावर, २ वादर-सूक्ष्म, ३ पर्याप्त-अपर्याप्त, ४ प्रत्येकशरीर-साधारण-शरीर, ५ स्थिर-अस्थिर, ६ शुभ-अशुभ, ७ सुभग-दुर्भग, ८ सुन्दर-दुस्वर, ९ आदेय-अनादेय और १० यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति ।

इसप्रकार प्रकृतिसमुद्धीर्त्तन नामक द्वितीय अविकार समाप्त हुआ ।

१. सं० पञ्च० २, ४५-४६ ।

२. तस-थावरं च वादर-सूक्ष्मं पञ्चत्त तह अपञ्चत्तं ।

पत्तेयसरीरं पुण साधारणसरीरं विरमयिरं ॥५॥

सुह-असुह सुभग दुर्भग सुस्वर-दुस्वर तदेव णायत्ता ।

आदिजन्मगादिज्जं जसक्किन्ति-अजसक्किन्ति च ॥२॥ द व टिप्पणी ।

तृतीय अधिकार

कर्मस्तव

मंगलाचरण और प्रतिज्ञा—

[मूलगा० १] ^१णमिऊण अणंतजिणे तिहुअणवरणाण-दंसणपईवे ।

बंधोदयसंतजुयं वोच्छामि ^२थवं ^३णिसामेह^४ ॥१॥

त्रिभुवनको प्रकाशित करनेके लिए उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शनरूपी प्रदीपस्वरूप अनन्त जिनोको नमस्कार करके कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वसे युक्त स्तवको कहूंगा, सो (हे जिज्ञासु जनो, तुम लोग) सुनो ॥१॥

विशेषार्थ—जिसमे विवक्षित विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी अंगोंका विस्तार या संक्षेपसे वर्णन किया जावे उसे स्तव कहते हैं। प्रकृत प्रकरणमे कर्म-सम्बन्धी बन्ध, उदय, उदीरणा आदि सभी विषयोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है, इसलिए इसका नाम कर्मस्तव है।

बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्त्वका स्वरूप—

^२कंचण-रूपदवाणं एयत्तं जेम अणुपवेसो त्ति ।

अण्णोण्णपवेसाणं तह बंधं जीव-कम्माणं ॥२॥

^३धणस्स × संगहो वा संतं जं पुव्वसंचियं कम्मं ।

^४भुंजणकालो उदओ उदीरणाऽपक्कपाचणफलं व^५ ॥३॥

जिस प्रकार कांचन (स्वर्ण) और रूपा (चौदी) द्रव्यके प्रदेश परस्पर एक-दूसरेमें अनुप्रविष्ट होकर एकत्वको प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव और कर्मोंके परस्पर एक-दूसरेमे प्रविष्ट हुए प्रदेशोंके एकमेक होकर बंधनेको बन्ध कहते हैं। धान्यके संग्रहके समान जो पूर्व-संचित कर्म हैं, उनके आत्मामे अवस्थित रहनेको सत्त्व कहते हैं। कर्मोंके फल भोगनेके कालको उदय कहते हैं। तथा अपक्व कर्मोंके पाचनको उदीरणा कहते हैं ॥२-३॥

१. स० पञ्चस० ३, १ । २. ३, २, ६ । ३. ३, ५ । ४. ३, ३-४ ।

१. कर्मस्त० गा० १, परं तत्र 'अणंतजिणे' इति स्थाने 'जिणवरिदे' इति पाठः ।

* द व पयं । † तुलना—णमिऊण णेमिचद असहायपरक्कमं महावीरं । बंधुदयसत्तजुत्त ओघादेसे थव वोच्छ ॥ गो० क० ८७ । × द व धज्जस्स । ‡ द व वा ।

गुणस्थानोंमें मूल प्रकृतियोंके बन्धका निरूपण—

^१सत्तद्वल्लकठाणा मिस्सापुव्वाणियट्ठिणो सत्त ।

छह सुहुमे तिण्णेगं बंधंति अवंधओज्जोओ ॥४॥

आउस्स बंधकाले अट्ट कम्माणि, सेसकाले सत्त ।

७	७	७	७	७	७	७	७	७	६
८	८	०	८	८	८	८	०	०	०

मोहाउगेहि विणा ६ । वेयणीय १ । १ । १ । ० । +

मिश्रगुणस्थानको छोड़कर अप्रमत्तगुणस्थान तकके छह गुणस्थानवर्ती जीव आयुकर्मके विना सात कर्मोंको, अथवा आयुकर्म-सहित आठ कर्मोंको बंधते हैं। मिश्र, अपूर्वकरण और अनि-वृत्तिकरण गुणस्थानवाले जीव आयुकर्मके विना शेष सात कर्मोंको बंधने हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुण-स्थानवर्ती जीव आयु और मोहनीय कर्मके विना छह कर्मोंको बंधते हैं। ग्यारहवे, बारहवें और तेरहवें ये तीन गुणस्थानवर्ती जीव केवल एक वेदनीय कर्मको ही बंधते हैं। अयोगिकेवली जिन किसी भी कर्मका बन्ध नहीं करते हैं ॥४॥

मिश्रके विना आदिके छह गुणस्थानोंमें आयुकर्मके बंधकालमें आठ कर्म बंधते हैं और शेष कालमें सात कर्म बंधते हैं। आठवें और नवे गुणस्थानमें आयुके विना सात कर्म बंधते हैं। दशवे गुणस्थानमें मोह और आयु कर्मके विना छह कर्म बंधते हैं। शेषमें एक वेदनीय कर्म बंधता है। चौदहवे गुणस्थानमें कोई कर्म नहीं बंधता। इनकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६	१	१	१	०
८	८	०	८	८	८	८	०	०	०				

गुणस्थानोंमें मूलप्रकृतियोंके उदयका निरूपण—

^२सुहुमं ति × अट्ट वि कम्मा खीणुवसंता य सत्त मोहूणा ।

धाह्वउक्केणूणा वेयंति य केवली वि चत्तारि ॥५॥

८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ७ । ७ । ४ । ४ । उदयः ।*

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तकके जीव आठों ही कर्मोंका वेदन करते हैं। उपशान्तकपाय और क्षीणकपाय गुणस्थानवर्ती जीव मोहकर्मके विना सात कर्मोंका वेदन करते हैं। तेरहवे और चौदहवे गुणस्थानवर्ती केवली भगवान् धातिचतुष्कके विना चार कर्मोंका वेदन करते हैं ॥५॥

गुणस्थानोंमें मूल कर्मोंके उदयकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४

१. स० पञ्चस० ३, ११-१२ । २. ३, १३ ।

+ द 'इति कर्मणां बन्धः कथितः' इत्यधिकः पाठः । × द तिहुवि । शब्द 'इति कर्मणां उदयः कथितः' ईदृक् पाठः ।

गुणस्थानोंमें मूलप्रकृतियोंकी उदीरणाका निरूपण—

¹घाडितियं खीणंता तह मोहमुदीरयंति सुहुमंता ।

तह आउ पमत्तंता णामं गोयं सजोअंता ॥६॥

क्षीणकषायगुणस्थान तकके जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तकके जीव मोहकर्मकी उदीरणा करते हैं । प्रमत्तसंयतगुणस्थान तकके जीव वेदनीय और आयुर्कर्मकी उदीरणा करते हैं । तथा सयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीव नाम और गोत्रकर्मकी उदीरणा करते हैं ॥६॥

²एत्थ मिस्सं वज्ज मिच्छाइपमत्तंताणं मरणावलियासेसे आउस्स उदीरणा णत्थि, तेण सत्त, मिस्सो अट्ठ चेव उदीरेइ, आउस्स मरणावलियासेसे मिस्सगुणाभावादो ।

८	८	८	८	८	८	६	६	६
७	७	०	७	७	७	०	०	०

यहाँ पर इतना विशेष जानना चाहिए कि मिश्रगुणस्थानको छोड़कर मिथ्यात्वसे लेकर प्रमत्तसंयतगुणस्थान तकके जीवोंके मरणावलीके शेष रहनेपर आयुर्कर्मकी उदीरणा नहीं होती है । इसलिए वे सात कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । मिश्रगुणस्थानवाला आठों ही कर्मोंकी उदीरणा करता है, क्योंकि आयुर्कर्मकी मरणावली शेष रहनेपर मिश्रगुणस्थान नहीं होता ।

नौ गुणस्थानोंमें उदीरणाकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अपू०	अनि०
८	८	८	८	८	८	६	६	६
७	७	०	७	७	७			

दशवें और चारहवें गुणस्थानमें उदीरणाका नियम—

³सगुणा अट्ठावलिआसेसे सुहुमोदीरेइ पंचेव ।

६	५
५	०

अट्ठावलियासेसे खीणो णाम-गोदे चेव उदीरेइ ॥७॥

५	२	०
२		

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव अपने गुणस्थानके कालमें आवलीमात्र शेष रह जानेपर नाम और गोत्रको छोड़कर शेष पाँचों ही कर्मोंकी उदीरणा करता है । क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीव अपने गुणस्थानके कालमें आवलीमात्र शेष रह जानेपर नाम और गोत्र इन दो ही कर्मोंकी उदीरणा करता है ॥७॥

शेष गुणस्थानोंमें उदीरणाकी संदृष्टि इस प्रकार है—

सू०	उ०
६	५
५	

क्षी०	स०	अ०
५	२	०
२		

1. सं पञ्चस० ३, १४ । 2. ३, १५ । 3. ३, १६ ।

* द 'इति उदीरणा समाप्ता' इत्यधिकः पाठः ।

गुणस्थानोंमें मूलप्रकृतियोंके सत्त्वका निरूपण—

^१जा उवसंता संता अड सत्त य मोहवज्ज खीणम्मि ।
जोयम्मि अजोयम्मि य चत्तारि अघाइकम्माणि ॥८॥

म।म।म।म।म।म।म।म।म।म।७।४।४।

उपशान्तकपाय गुणस्थान तक आठो ही कर्मोंका सत्त्व रहता है । क्षीणकपायगुणस्थानमें मोहकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका सत्त्व रहता है । सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीमें चार अघातिया कर्म विद्यमान रहते हैं ॥८॥

गुणस्थानोंमें मूलकर्मोंके सत्त्वकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	७	४	४

गुणस्थानोंमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका निरूपण—

[मूलगा० २] ^२मिच्छे सोलस पणुवीस सासणे अविरए य दह पयडी ।

चउ छक्कमेयकमसो विरयाविरयाइ बंधवोछिण्णा ॥९॥

[मूलगा० ३] दुअ तीस चउरपुण्वे पंचणियट्ठिहिं वंधवुच्छेओ ।

सोलस सुहुमसराए सायं सजोइ-जिणवरिंदे ॥१०॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें सोलह, सासादनमें पच्चीस, अविरतमें दश, देशविरतमें चार, प्रमत्तविरतमें छह और अप्रमत्तविरतमें एक प्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न होती है । अपूर्वकरणमें क्रमसे दो, तीस और चार अर्थात् छत्तीस प्रकृतियों, तथा अनिवृत्तिकरणमें पाँच प्रकृतियोंका बन्धसे व्युच्छेद होता है । सूक्ष्मसाम्परायमें सोलह प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं और सयोगि-जिनवरेन्द्रके एक सातावेदनीय बन्धसे व्युच्छिन्न होती है ॥९-१०॥

बन्ध-व्युच्छिन्न प्रकृतियोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
१६	०५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०

बन्धके विषयमें कुछ विशेष नियम—

सव्वासिं पयडीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधओ भणिओ ।

तित्थयराहारदुअं मुत्तूण य सेसपयडीणं ॥११॥

^३सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं ।

वज्झंति सेसियाओ मिच्छत्तादीहिं हेऊहिं ॥१२॥

मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थकर और आहारकद्विक, इन तीन प्रकृतियोंको छोड़ करके शेष सभी प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला कहा गया है । इसका कारण यह है कि तीर्थकर प्रकृतिका सम्यक्त्वगुणके निमित्तसे और आहारकद्विकका संयमके निमित्तसे बन्ध होता है । किन्तु शेष एक सौ सत्तरह प्रकृतियाँ मिथ्यात्व आदि कारणोंसे बन्धको प्राप्त होती हैं ॥११-१२॥

१. सं० पञ्चसं० ३, १७ । २. ३, १६-२० । ३. ३, १८ ।

१ कर्मस्त० गा० २ । २ कर्मस्त० गा० ३ ।

† प्रतिषु 'णियट्ठोहि' इति पाठः । ‡ प्रतिषु 'मव्वेसिं' इति पाठः ।

	१६		२५		०
१ तिथ्यराहारदुग्णा मिच्छमि	११७	सासादने	१०१	मण्य-देवाडं विणा मिस्से	७४
	३		१६		४६
	३१		४७		७४

तिथ्यर-मण्य-देवाऊहि	१०	४	६	१	
सह अविरदे	७७	६७	६३	आहारदुगेण	५६
	४३	५३	५७	सह अप्पमत्ते	६१
	७१	८१	८५		८६

अपुव्वकरणे सत्तसु	२	०	०	०	०	३०	४	अणियट्टिपवसु	१	१	१	१	१
भाएसु	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६	भाएसु	२२	२१	२०	१६	१८
	६२	६४	६४	६४	६४	६४	६४		६८	६६	१००	१०१	१०२
	६०	६२	६२	६२	६२	६२	१२२		१२६	१२७	१२८	१२९	१३०

	१६	०	०	०	०
सुहुमाडसु	१७	१	१	१	०
	१०३	११६	११६	११६	१२०
	१३१	१४७	१४७	१४७	१४८

आठों कर्मोंको एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंमेंसे बन्धके योग्य प्रकृतियों एक सौ बीस पहले बतला आये हैं, उनमेंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थकर और आहारकद्विक ये तीन बन्धके अयोग्य हैं, अतः इन तीनके बिना शेष एक सौ सत्तरह प्रकृतियों बँधती हैं, मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोंकी बन्धसे व्युच्छिन्न होती है और इकतीसका अबन्ध रहता है। सासादन गुणस्थानमें एक सौ एक प्रकृतियों बँधती है, अनन्तानुबन्धीचतुष्क आदि पच्चीस प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं, उन्नीस बन्धके अयोग्य होती हैं और सैंतालीसका अबन्ध रहता है। मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यायु और देवायुके बिना शेष चौहत्तर प्रकृतियों बँधती हैं। यहाँपर किसी भी प्रकृतिका बन्ध-व्युच्छिन्न नहीं होती। यहाँ बन्धके अयोग्य छयालीस प्रकृतियों हैं और चौहत्तरका अबन्ध रहता है। अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें तीर्थकर, मनुष्यायु और देवायुका बन्ध होने लगता है, अतः उनको मिलाकर सत्तहत्तर प्रकृतियों बँधती हैं, अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्क आदि दश प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं, तेतालीस प्रकृतियों बन्धके अयोग्य हैं और इकहत्तरका अबन्ध रहता है। देशविरतमें सड़सठका बन्ध होता है, तिरेपन बन्धके अयोग्य हैं, इक्यासीका अबन्ध रहता है और प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी बन्ध-व्युच्छिन्न होती है। प्रमत्तविरतमें तिरेसठका बन्ध होता है, सत्तावन बन्धके अयोग्य हैं, पचासीका अबन्ध रहता है और असाता-वेदनीय आदि छह प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। अप्रमत्तविरतमें आहारकद्विकका बन्ध होने लगता है, अतः उनसठ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इकसठबन्धके अयोग्य हैं, नवासीका अबन्ध रहता है और एक देवायुकी बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। अपूर्वकरणके सात भागोंमें प्रथम भागमें अट्ठावन प्रकृतियोंका बन्ध होता है, वासठ बन्धके अयोग्य हैं, नव्वैका अबन्ध रहता है और निद्राद्विककी बन्ध-व्युच्छिन्न होती है। अपूर्वकरणके दूसरे, तीसरे, चौथे और

पॉचवें भागमे छप्पन प्रकृतियों बंधती हैं, चौसठ बन्धके अयोग्य हैं, वानवैका अवन्ध रहता है । इन भागोमे बन्ध-व्युच्छित्ति किसी भी प्रकृतिकी नहीं होती है । अपूर्वकरणके छठे भागमें बन्धादि तो पॉचवे भागके ही समान ही रहता है किन्तु यहाँ पर देवद्विक आदि तीस प्रकृतियों-की बन्धव्युच्छित्ति होती है । अपूर्वकरणके सातवें भागमे छव्वीस प्रकृतियों बंधती हैं, चौरानवै बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ वाईसका अवन्ध रहता है और हास्यादि चार प्रकृतियोंको बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । अनिवृत्तिकरणके पॉच भागोमे से प्रथम भागमे वाईस प्रकृतियों बंधती हैं, अट्टानवै बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ छव्वीसका अवन्ध है और एक पुरुषवेदकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । द्वितीय भागमे इक्कीस प्रकृतियों बंधती हैं, निन्यानवै बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ सत्ताईसका अवन्ध है और एक संज्वलन क्रोधकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । तृतीय भागमे बीस प्रकृतियों बंधती हैं, सौ प्रकृतियों बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ अट्टाईसका अवन्ध है और एक संज्वलन मानकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । चतुर्थ भागमे उन्नीस प्रकृतियों बंधती हैं, एक सौ एक प्रकृतियों बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ उनतीसका अवन्ध है और एक संज्वलन मायाकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । पॉचवे भागमें अट्टारह प्रकृतियों बंधती हैं, एक सौ दो प्रकृतियों बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ तीसका अवन्ध है और एक संज्वलन लोभकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । सूक्ष्मसाम्परायमे सत्तरह प्रकृतियों बंधती हैं, एक सौ तीन प्रकृतियों बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ इक्कीसका अवन्ध है और ज्ञानावरण-पंचक आदि सोलह प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं । उपशान्तमोह और क्षीणमोहमें केवल एक सातावेदनीयका बन्ध होता है, एक सौ उन्नीस बन्धके अयोग्य हैं और एक सौ सैंतालीसका अवन्ध रहता है । इन दोनों गुणस्थानोमे बन्ध-व्युच्छित्ति नहीं होती । सयोगिकेवलीके बन्ध-अवन्धादिप्रकृतियोंकी संख्या तो क्षीणमोहके ही समान है, विशेष बात यह है कि यहाँ पर एकमात्र अवशिष्ट सातावेदनीय भी बन्धसे व्युच्छिन्न हो जाती है । अयोगिकेवलीके न किसी प्रकृतिका बन्ध ही होता है और न बन्ध-व्युच्छित्ति ही । अतएव यहाँ पर बन्धके अयोग्य एक सौ बीस और अवन्ध प्रकृतियों एक सौ अड़तालीस कहीं गई हैं, ऐसा जानना चाहिए । (देखो सद्यष्टि स० १०)

मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ४] 'मिच्छ णउंसयवेयं णिरयाउ तह य चेव णिरयदुअं ।

इगि-वियलिंदियजाई हुंडमसंपत्तमायावं' ॥१३॥

[मूलगा० ५] थावर सुहुमं च तहा साहारणयं तहेव अपज्जत्तं ।

एए सोलह पयडी मिच्छम्मि अ बंधवुच्छेओ^१ ॥१४॥

११६।

मिथ्यात्व, नर्पुंसकवेद, नरकायु तथा नरकद्विक (नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी) एकेन्द्रिय-जाति, विकलेन्द्रिय जातियों (द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति) हुंडकसंस्थान, असंप्राप्तसृष्टिकासंहनन, आताप, स्थावर, सूक्ष्म तथा साधारण और अपर्याप्त; ये सोलह प्रकृतियों मिथ्यात्वगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥१३-१४॥

मिथ्यात्वमें बन्धसे व्युच्छिन्न प्रकृतियों १६ ।

१. सं० पञ्चसं० ३, २१-२२ ।

१. कर्मस्त० गा० ११ । २. कर्मस्त० गा० १२ ।

सासादनगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ६] ^१धीणतियं इत्थी वि य अण तिरियाऊ तहेव तिरियदुगं ।

मज्झिमचउसंठाणं मज्झिमचउ चेव संघयणं^२ ॥१५॥

[मूलगा० ७] उज्जोयमप्पसत्था विहायगइ दुब्भगं अणादेज्जं ।

दुस्सर णिच्चागोयं सासणसम्महि वोच्छिणा^३ ॥१६॥

॥२५॥

स्त्यानत्रिक (स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला) स्त्रीवेद, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, तिर्य-
गायु तथा तिर्यग्-द्विक (तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वी) मध्यम चार संस्थान और मध्यम ही चार
संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, अनादेय, दुस्वर और नीचगोत्र, ये पच्चीस प्रकृ-
तियाँ सासादनसम्यक्त्वमे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥१५-१६॥

सासादनमे बन्धसे व्युच्छिन्न २५ ।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ८] ^२विदियकसायचउकं मणुयाऊ मणुयदुव य ओरालं ।

तस्स य अंगोवंगं संघयणादी अविरदस्स^३ ॥१७॥

॥१०॥

द्वितीयकपायचतुष्क, अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यायु,
मनुष्यद्विक (मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी) औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग और प्रथम
संहनन, ये दश प्रकृतियाँ अविरतसम्यग्दृष्टिके बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥१७॥

अविरतसम्यग्दृष्टिमे बन्धसे व्युच्छिन्न १० ।

देशविरतगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ९] ^३तइयकसायचउकं विरयाविरयमिह बंधवोच्छिणा ।

॥१८॥

तृतीय कपायचतुष्क अर्थात् प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार
प्रकृतियाँ विरताविरत गुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ।

देशविरतमे बन्धसे व्युच्छिन्न ४ ।

प्रमत्तविरतगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

साइयरमरइसोयं तह चेव य अथिरमसुहं च^४ ॥१८॥

[मूलगा० १०] अजसकित्ती य तहा पमत्तविरयमिह बंधवुच्छेओ ।

॥१९॥

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयश कीर्ति, ये छह प्रकृतियाँ प्रमत्त-
विरत गुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥१८॥

प्रमत्तविरतमे बन्धसे व्युच्छिन्न ६ ।

१ स० पञ्चस० ३, २३-२५ । २ ३, २६-२७ । ३. ३, २८-२९ ।

१ कर्मस्त० गा० १३ । २. कर्मस्त० गा० १४ । ३. कर्मस्त० गा० १५ । ४ कर्मस्त० गा० १६ ।

अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—
देवाउअं च एयं पमत्तइयरमिह णायव्वो^१ ॥१६॥

११।

अप्रमत्तविरतनामक सातवें गुणस्थानमें एक देवायु ही बन्धसे व्युच्छिन्न होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥१६॥

अप्रमत्तविरतमें बन्धसे व्युच्छिन्न १ ।

अपूर्वकरणगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ११] ^१णिदा पयला य तहा अपुव्वपढममिह बंधवुच्छेओ ।

१२।

देवदुयं पंचिंदिय ओरालियवज्ज चदुसरीरं च^२ ॥२०॥

[मूलगा० १२] समचउरस वेउव्विय आहारयअंगुवंगणामं च ।

वण्णचउक्कं च तहा अगुरुयलहुयं च चत्तारिं^३ ॥२१॥

[मूलगा० १३] तसचउ पसत्थमेव य विहाइगइ थिर सुहं च णायव्वो ।

मुहयं सुस्सरमेव य आइज्जं चेव णिमिणं च^४ ॥२२॥

[मूलगा० १४] ^२तिथयरमेव तीसं अपुव्वछवभाए बंधवोच्छिण्णा ।

१३०।

हास रइ भय दुगुंछा अपुव्वचरिममिह बंधवोच्छिण्णा^५ ॥२३॥

१४।

अपूर्वकरणके प्रथम भागमें निद्रा और प्रचला, ये दो प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अपूर्वकरणके छठे भागमें देवद्विक (देवगति-देवगत्यानुपूर्वी) पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-शरीरको छोड़कर शेष चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक-अंगोपांग, आहारक-अंगोपांग, वर्णचतुष्क (वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श) अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपधात, परधात, उच्छ्वास) त्रसचतुष्क, (त्रस, वादर, प्रत्येकशरीर, पर्याप्त,) प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थकर, ये तीस प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अपूर्वकरणके अन्तिम सातवें भागमें हास्य, गति, भय और जुगुप्सा, ये चार प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२०-२३॥

अपूर्वकरणके प्रथम भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न

२

अपूर्वकरणके छठे भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न

३०

अपूर्वकरणके सातवें भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न

४

३६

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० १५] ^३पुरिसं चउसंजलणं पंच य पयडी य पंचभागमिह ।

अणियट्ठी-अट्ठाए जहाकमं बंधवुच्छेओ^४ ॥२४॥

१५।

१ स० पञ्चस० ३, ३०-३३ । २ ३, ३४ । ३ ३, ३५ ।

४ कर्मस्त० गा० १७ । २. कर्मस्त० गा० १८ । ३. कर्मस्त० गा० १९ । ४. कर्मस्त० गा० २० । ५. कर्मस्त० गा० २१ । ६ कर्मस्त० गा० २२ ।

अनिवृत्तिकरणकालके पाँचों भागोंमें यथाक्रमसे पुरुषवेद, संव्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ, ये पाँच प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२४॥

अनिवृत्तिकरणमें बन्ध-व्युच्छिन्न ५ ।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० १६] ^१णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि उच्च जसकित्ती ।

एए सोलह पयडी सुद्धमकसायमिह वोच्छेओ^१ ॥२५॥

।१६।

ज्ञानावरणीयकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी चार (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन) उच्चगोत्र और यशःकीर्ति, ये सोलह प्रकृतियों सूक्ष्मकपायमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२५॥

सूक्ष्मसाम्परायमें बन्धसे व्युच्छिन्न १६ ।

सयोगिकेवलीके बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृति—

[मूलगा० १७] ^२उवसंत खीण चत्ता जोगिमिह य सायबंधवोच्छेदो ।

णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो^३ अणंतो य^४ ॥२६॥

।१७।

उपशान्तमोह और क्षीणमोहगुणस्थानमें कोई प्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न नहीं होती है, अतएव उन्हें छोड़कर सयोगीजिनके एक सातावेदनीय ही बन्धसे व्युच्छिन्न होती है । (अयोगिकेवलीके न कोई प्रकृति बंधती है और न व्युच्छिन्न ही होती है ।) इस प्रकार गुणस्थानोंमें बन्धका अन्त अर्थात् व्युच्छेद और अनन्त अर्थात् बन्ध जानना चाहिए ॥२६॥

सयोगिकेवलीमें बन्धसे व्युच्छिन्न १ ।

इस प्रकार बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

गुणस्थानोंमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी सख्याका निरूपण—

[मूलगा० १८] ^३पण णव इगि सत्तरसं अड पंच चउर छक्क छच्चेव ।

इगि दुग सोलह तीसं बारह उयए अजोयंता^३ ॥२७॥

पहले मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर चौदहवें अयोगिकेवली तक क्रमसे पाँच, नौ, एक, सत्तरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और बारह प्रकृतियों उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२७॥

कुछ विशेष प्रकृतियोंके उदय-विषयक नियम—

^४मिस्सं उदेइ मिस्से अविरयसम्माइचउसु सम्मत्तं ।

तित्थयराहारदुअ कमेण जोए पमत्ते य ॥२८॥

१. सं० पञ्चस० ३, ३६ । २ ३, ३६-४० । ३. ३, ३७ ।

१ कर्मस्त० गा० २३ । २. कर्मस्त० गा० २४ । गो० क० १०२ । केवलमुत्तरार्धे साम्यम् ।

३. कर्मस्त० गा० ४ । गो० क० २६४ ।

४ द व बंधो संतो ।

मिश्रप्रकृतिका उदय तीसरे मिश्रगुणस्थानमें होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय चौथे अविरतसम्यक्त्व आदि चार गुणस्थानोंमें होता है। तीर्थङ्करप्रकृतिका उदय तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थानमें और आहारकद्विकका उदय छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें होता है ॥२८॥

आनुपूर्वीके उदय-विषयक कुछ विशेष नियम—

^१गिरयाणुपुन्वि उदओ णासाए जण्ण गिरयउप्पत्ती ।

सव्वाणुपुन्वि-उदओ ण होइ मिस्से जदो ण मरणं से ॥२९॥

यतः सासादनसम्यग्दृष्टिकी नरकमें उत्पत्ति नहीं होती, अतः सासादनगुणस्थानमें नरक-गत्यानुपूर्वीका उदय नहीं होता। सभी आनुपूर्वियोंका उदय मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है; क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टिका मरण नहीं होता। (अतएव मिथ्यात्व और अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें चारोंका और सासादनगुणस्थानमें तीन आनुपूर्वियोंका उदय होता है।) ॥२९॥

		५				६		
*सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-आहारदुय-तिथ्यरेहि		११७		गिरयाणुपुव्विविणा सासणे		१११		
विणा मिच्छादिट्ठिमि		५				११		
		३१				३७		
		१						
तिरिय-मणुय-देवाणुपुव्वी विणा सम्मामिच्छत्तेण सह मिस्से		१००		सव्वाणुपुव्वि-सम्मत्तेण सह				
		२२						
		४८						
		५				४		
अविरदे	१७	८					६	
	१०४	देसे	८७	आहारदुएण सह पमत्ते	८१	अप्पमत्ते	७६	अपुव्वे
	१८		३५		४१		४६	
४४		६१	६७		७२		७६	
		५		२		१४		
अणियट्ठीए	६६	सुहुमाइसु	६०	५६	खीणदुचरिमसमए	५७	खीणचरिमसमए	
	५६		६२	६३		६५		५५
	८२		८८	८६		६१		६३
		३०		१२				
		४२		१२				
		८०		११०				
		१०६		१३६				
		३०		१२				
		४२		१२				
		८०		११०				
		१०६		१३६				

आठो कर्मोंकी एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंमेंसे उदयके योग्य प्रकृतियाँ एक सौ बाईस होती हैं, यह बात पहले बतला आये हैं। उनमेंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृति, ये पाँच प्रकृतियाँ उदयके योग्य नहीं हैं, अतः उनके बिना शेष रही एक सौ सत्तरह प्रकृतियोंका उदय है। सर्व अनुदय-प्रकृतियाँ इकतीस हैं। यहाँ पर मिथ्यात्व आदि पाँच प्रकृतियोंकी उदयसे व्युच्छिन्ति होती है। सासादन गुणस्थानमें नरकानुपूर्वीका उदय नहीं होता, अतः वहाँ पर उदय-योग्य प्रकृतियाँ एक सौ ग्यारह हैं, उदयके अयोग्य ग्यारह और अनुदय-प्रकृतियाँ सैतीस हैं। यहाँ पर अनन्तानुबन्धीचतुष्क आदि नौ प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। मिश्रगुणस्थानमें तिर्यगानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी और देवानु-

१ स० पञ्चस० ३, ३८। * २, 'एताः सम्यक्त्व' इत्यादिगद्यभागः पृ० (५६)।

पूर्वोक्ता भी उदय नहीं होता, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होता है, अतः उदय-योग्य प्रकृतियों सौ और उदयके अयोग्य बाईस हैं। अनुदयप्रकृतियों अड़तालीस हैं। यहाँ पर एक सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उदयसे व्युच्छिन्ति होती है। अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें उदयके योग्य प्रकृतियों एक सौ चार हैं, क्योंकि यहाँ पर सभी अर्थात् चारों आनुपूर्वियोंका और सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होता है। उदयके अयोग्य प्रकृतियों अठारह और अनुदय-प्रकृतियों चवालीस हैं। यहाँ पर अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्क आदि सत्तरह प्रकृतियों उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। देशविरतमे सत्तासी प्रकृतियोंका उदय होता है, उदयके अयोग्य पैंतीस हैं, अनुदयप्रकृतियों इकसठ हैं और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क आदि आठ प्रकृतियों उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। प्रमत्तविरतमे आहारक-द्विकका उदय होता है, अतः उनके साथ उदयके योग्य प्रकृतियों इक्यासी हैं, उदयके अयोग्य इकतालीस हैं और अनुदय सड़सठका है। यहाँ पर स्त्यानगृद्धि आदि पाँच प्रकृतियोंकी उदयसे व्युच्छिन्ति होती है। अप्रमत्तविरतमें उदयके योग्य छिहत्तर, उदयके अयोग्य छयालीस और अनुदय प्रकृतियों वहत्तर हैं। यहाँ पर सम्यक्त्वप्रकृति आदि चारकी उदय-व्युच्छिन्ति होती है। अपूर्वकरणमे उदय-योग्य वहत्तर, उदयके अयोग्य पचास और अनुदय-प्रकृतियों छिहत्तर हैं। यहाँ पर हास्यादि छह प्रकृतियोंकी उदय-व्युच्छिन्ति होती है। अनिवृत्तिकरणमे उदय-योग्य छयासठ, उदयके अयोग्य छापन और अनुदय प्रकृतियों वियासी हैं। यहाँ पर वेद-त्रिकादि छह प्रकृतियों उदयसे व्युच्छिन्न होती है। सूक्ष्मसाम्परायमे उदय-योग्य साठ, उदयके अयोग्य बासठ और अनुदय-प्रकृतियों अठासी है। यहाँ पर एकमात्र संज्वलन लोभकी उदय-व्युच्छिन्ति होती है। उपशान्तमोहमे उदय-योग्य उनसठ, उदयके अयोग्य तिरेसठ और अनुदयप्रकृतियों नवासी हैं। यहाँ पर वज्रनाराच और नाराचसंहनन इन दो प्रकृतियोंकी उदय-व्युच्छिन्ति होती है। क्षीण-मोहके द्विचरम समय तक सत्तावनका उदय रहता है अतः उदयके अयोग्य पैसठ और अनुदय प्रकृतियों इक्यानवे जानना चाहिए। यहाँ पर द्विचरम समयमे निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी उदय-व्युच्छिन्ति होती है। इसी गुणस्थानके चरम समयमे उदय-योग्य पचपन, उदयके अयोग्य सड़सठ और अनुदय-प्रकृतियों तेरानवे हैं। चरम समयमे ज्ञानावरण-पचकादि चौदह प्रकृतियोंकी उदयसे व्युच्छिन्ति होती है। सयोगिकेवली गुणस्थानमे तीर्थङ्कर-प्रकृतिका उदय होता है, अतः उदयके योग्य वियालीस, उदयके अयोग्य अस्सी और अनुदयप्रकृतियों एक सौ छह हैं। यहाँ पर संस्थान, सहनन आदि तीस प्रकृतियों उदयसे व्युच्छिन्न होती है। अयोगिकेवली गुणस्थानमे अवशिष्ट रही वारह प्रकृतियोंका उदय होता है, उदयके अयोग्य एक सौ दश और अनुदय-प्रकृतियों एक सौ छत्तीस हैं। यहाँ पर मनुष्यगति आदि जिन वारह प्रकृतियोंका उदय होता है, अन्तिम समयमे उन सबकी उदयसे व्युच्छिन्ति हो जाती है। (देखो, सदृष्टि-सरया ११)

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० १६] ^१मिच्छत्तं आयावं सुहुममपज्जत्तया य तह चेव ।

साहारणं च पंच य मिच्छम्हि य उदयवुच्छेओ ॥३०॥

।५।

मिथ्यात्व, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, ये पाँच प्रकृतियों मिथ्यात्वगुणस्थानमे उदयसे व्युच्छिन्न होती है ॥३०॥

मिथ्यात्वमे उदय-व्युच्छिन्न ५ ।

सासादनगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० २०] ^१अण एइंदियजाई वियलिंदियजाइमेव थावरयं ।

एए णव पयडीओ सासणसम्महि उदयवोच्छेओ ^१ ॥३१॥

।६।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क, एकेन्द्रियजाति, तीनों विकलेन्द्रिय जातियों, तथा स्थावर; ये नौ प्रकृतियाँ सासादनसम्यक्त्वमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३१॥

सासादनमे उदय-व्युच्छिन्न ६ ।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृति—

[मूलगा० २१] ^२सम्मामिच्छत्तेयं सम्मामिच्छमिह उदयवोच्छिणो ।

।१।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमे एक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति ही उदयसे व्युच्छिन्न होती है ।

सम्यग्मिथ्यात्वमे उदय-व्युच्छिन्न १ ।

अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

^३विदियकसायचउकं तह चेव य णिरय-देवाऊ ^३ ॥३२॥

[मूलगा० २२] मणुय-तिरियाणुपुव्वी वेउव्वियल्लक दुब्भगं चेव ।

अणादिज्जं च तहा अजसकित्ती अविरयमिह ^३ ॥३३॥

।१७।

द्वितीयकपायचतुष्क, नरकायु, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकपट्क (वैक्रियिक-शरीर, वैक्रियिक-अंगोपाग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी) दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्त्ति, इस प्रकार सत्तरह प्रकृतियाँ अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३२-३३॥

अविरतसम्यक्त्वमे उदय-व्युच्छिन्न १७ ।

देशविरतगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० २३] ^४तदियकसायचउकं तिरियाऊ तह य चेव तिरियगदी ।

उज्जोअ णिच्चगोदं विरयाविरयमिह उदयवुच्छेओ ^५ ॥३४॥

।८।

तृतीयकपायचतुष्क, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, उद्योत और नीचगोत्र, ये आठ प्रकृतियाँ विरता-विरतगुणस्थानमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३४॥

विरताविरतमे उदय-व्युच्छिन्न ८ ।

१. स० पचस० ३, ४२ । २. ३, ४३ पूर्वार्ध । ३. ३, ४३ उत्तरार्ध, ४४-४५ । ४. ३, ४६ ।

५. कर्मस्त० गा० २६ । २. कर्मस्त० गा० २७ । ३. कर्मस्त० गा० २८ । ४. कर्मस्त० गा० २९ ।

प्रमत्तविरतगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—
[मूलगा० २४] ^१थीणतियं चेव तहा आहारदुअं पमत्तविरयम्हि ।

।५।

स्त्यानत्रिक (स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला) तथा आहारकद्विक ये पाँच प्रकृतियाँ प्रमत्तविरतमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ।

प्रमत्तविरतमें उदय-व्युच्छिन्न ५ ।

अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—
^२सम्मत्तं संघयणं अंतिमतियमप्पमत्तम्हि ॥३५॥

।६।

सम्यक्त्वप्रकृति और अन्तिम तीन संहनन, ये चार प्रकृतियों अप्रमत्तविरतगुणस्थानमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३५॥

अप्रमत्तविरतमे उदय-व्युच्छिन्न ४ ।

अपूर्वकरणगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—
[मूलगा० २५] ^३तह णोकसायल्लक्कं अपुव्वकरणे य उदयवोच्छिण्णं ।

।६।

नोकपायपट्क अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, ये छह प्रकृतियाँ अपूर्वकरणगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ।

अपूर्वकरणमे उदय-व्युच्छिन्न ६ ।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—
^४वेयतियं कोह-माण-मायासंजलण अणियट्ठिम्हि ॥३६॥

।६।

तीनों वेद, तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया, ये छह प्रकृतियों अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३६॥

अनिवृत्तिकरणमे उदय-व्युच्छिन्न ६ ।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—
[मूलगा० २६] ^५संजलणलोहमेयं सुहुमकसायम्हि उदयवोच्छिण्णा ।

।१।

सूक्ष्मकपायगुणस्थानमे एक संज्वलनलोभ प्रकृति ही उदयसे व्युच्छिन्न होती है ।

सूक्ष्मसाम्परायमे उदय-व्युच्छिन्न १ ।

उपशान्तमोहगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—
^६तह वज्जयणारायं णारायं चेव उवसंते ॥३७॥

।२।

1. स० पञ्चस० ३, ४७ । 2. ३, ४८ पूर्वार्ध । 3. ३, ४८ उत्तरार्ध । 4. ३, ४९ पूर्वार्ध ।

5. ३, ४९ उत्तरार्ध । 6. ३, ५० पूर्वार्ध ।

१. कर्मस्त० गा० ३० । २. कर्मस्त० गा० ३१ । २. कर्मस्त० गा० ३२ ।

* प्रतिपु 'अपुव्वकरणाय' इति पाठः ।

वज्रनाराचसंहनन और नाराचसंहनन ये दो प्रकृतियों उपशान्तमोहगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३७॥

उपशान्तमोहमे उदय-व्युच्छिन्न २ ।

जीणमोहगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० २७] ^१णिदा पयला य तहा खीणदुचरिमहि उदयवोच्छिण्णा ।

॥३८॥

निदा और प्रचला ये दो प्रकृतियों जीणकपायके द्विचरम समयमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ।

जीणमोहके द्विचरमसमयमे उदय-व्युच्छिन्न २ ।

^२णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमहि ॥३८॥

॥३९॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच और दर्शनावरणकी चतुर्दर्शनावरणदि चार; ये चौदह प्रकृतियों जीणमोहके अन्तिम समयमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३८॥

जीणमोहके चरमसमयमे उदय-व्युच्छिन्न १४ ।

सयोगिकेवलीगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० २८] ^३अण्णयरवेयणीयं ओरालियतेयणामकम्मं च ।

छवेव य संठाणं ओरालिय-अंगवंगं च ॥३९॥

[मूलगा० २९] आदी वि य संघयणं वण्णचउक्कं च दो विहायगई ।

अगुरुलहुयचउक्कं पत्तेय थिराथिरं चेव ॥४०॥

[मूलगा० ३०] सुह-सुस्सरजुयला वि य णिमिणं च तहा हवंति णायव्वा ।

एए तीसं पयडी सजोयचरिमहि वोच्छिणो ॥४१॥

॥४२॥

[अन्यतरद्वेदनीय १ औदारिकशरीरं १ तैजसनाम १ कार्मणशरीरनाम १ नस्यानपट्क ६ औदारिक-काहोपाङ्ग १ वज्रवृषभनाराचसंहननं १ वर्णचतुष्क ४ विहायोगतिद्विक २ अगुरुलघुचतुष्क ४] अन्येकशरीर १ स्थिरास्थिर २ शुभाशुभे २ सुस्वर-दुस्वरौ २ निर्माणं १ चेति एतास्त्रिंशत्प्रकृतयः ३० सयोगिकेवलिगुण-स्थानस्य चरमसमये उदयतो व्युच्छिन्ना भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥३९-४१॥

साता-असातावेदनीयमेंसे कोई एक वेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थान, औदारिक-अंगोपाङ्ग, आदिका वज्रवृषभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, अगुरुलघुचतुष्क, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ-युगल, सुस्वर-युगल, तथा निर्माण ये तीस प्रकृतियों सयोगिकेवलीके चरमसमयमे उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३९-४१॥

सयोगिकेवलीमें उदय-व्युच्छिन्न ३० ।

१ न० पचन० ३, ५० उत्तरार्ध । २. ३, ५१ । ३. ३, ५२-५४ पूर्वार्ध ।

१. कर्मस्त० गा० ३३ । गो० क० २७० । २. कर्मस्त० गा० ३४ । ३. कर्मस्त० गा० ३५ । ४. कर्मस्त० गा० ३६ ।

[मूलगा० ३१] ^१अण्णयरवेयणीयं मणुयाऊ मणुयगई य वोहव्वा ।

पंचिदियजाई वि य तस सुभगादेज्ज पज्जत्तं ^१ ॥४२॥

वायरजसकित्ती वि य तित्थयरं उच्चगोइयं चेव ।

[मूलगा० ३२] एए + वारह पयडी अजोइमिह × उदयवोच्छिण्णा ^१ ॥४३॥

११२।

अयोगगुणस्थाने अन्यतरदेक वेदनीय १ मनुष्यायुः १ मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियजातिनाम १ त्रस-
सुभगादेय-पर्याप्तानि ४ वादरः १ यशःकीर्तिः १ तीर्थंकरत्वं १ उच्चैर्गोत्र १ चेति एता द्वादश प्रकृतयः
अयोगिकेवल्लिगुणस्थानचरमसमये व्युच्छिन्नयो भवन्तीति ज्ञातव्याः । नानाजीवापेक्षयैव उक्ताः । सयोगा-
योगयोस्वेक जीवं प्रति साते असाते वा व्युच्छिन्ने त्रिंशद् द्वादश ३०।१२ । नानाजीवान् प्रति उभयच्छेदा
भावादेकत्रिंशत् ३१ त्रयोदश १३ ज्ञातव्याः ॥४०-४३॥

इति गुणस्थानेषु उत्तरप्रकृतीनामुदयभेदः समाप्तः ।

कोई एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्त,
वादर, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र; ये वारह प्रकृतियों अयोगि-जिनके चरम समयमें
उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४२-४३॥

अयोगि-जिनके उदय-व्युच्छिन्न १२ ।

इस प्रकार उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

[मूलगा० ३३] ^२उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जइ विसेसो ।

मोत्तूण तिणिण ठाणं पमत्त जोई अजोई य ^३ ॥४४॥

अथोदीरणभेदं गायचतुष्केणाह—['उदयस्सुदीरणस्स य' इत्यादि ।] उदयस्योदीरगायाश्च
स्वामित्वाद् विशेषो न विद्यते, प्रमत्त-योग्यऽयोगित्रयं स्थानं मुक्त्वा अन्यत्र विशेषो नेत्यर्थः ॥४४॥

स्वामित्वकी अपेक्षा उदय और उदीरणामे प्रमत्तविरत, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली;
इन तीन गुणस्थानोंको छोड़कर कोई विशेष (अन्तर) नहीं है ॥४४॥

[मूलगा० ३४] ^३तीसं वारस उदयं केवल्लिणं मेलणं च काऊण ।

सायासायं च तहा मणुआउगमवणियं किच्चो ^४ ॥४५॥

[मूलगा० ३५] सेसं उगुदालीसं जोगीसु उदीरणा य वोहव्वा ।

अवणिय तिणिण य पयडी पमत्तउदयमिह पक्खित्ता ^५ ॥४६॥

तत्र को विशेषः इति चेदाह—सयोगाऽयोगयोः उदयव्युच्छिन्ता त्रिंशद्-द्वादश एकीकृत्य ४२ तत्र
साताऽसातमनुष्यायुष्यपनेतव्यानि ३६ । शेषकोनचत्वारिंशत्प्रकृत्युदीरणा ३६ सयोगिकेवल्लिगुणस्थाने भव-
न्तीति बोधव्याः । तदपनीतसाताऽसातामनुष्यायु-प्रकृतित्रयं प्रमत्तमयते उदयप्रकृतिपञ्चके प्रक्षेपणीयम् ।
ततः कारणात् प्रमत्ते अष्टौ ८ व्युच्छिद्यन्ते, नाप्रमत्तादिषु तत्त्रयोदीरणाऽस्ति, अप्रमत्तादित्वात् सक्लिष्टंभ्योऽ-
न्यत्र तदमम्भवात् ॥४५-४६॥

१. स० पञ्चसं० ३, ५४ उक्त०-५५ । २. ३, ६० । ३. ३, ५८-५९ ।

१. कर्मस्त० गा० ३७ । २. कर्मस्त० गा० ३८ । ३. कर्मस्त० गा० ३९ । गो० क० २७८ ।

४. कर्मस्त० गा० ४० । गो० क० २७९ । ५. कर्मस्त० गा० ४१ ।

+ द एदे । × व अजोइहि, व अजोगिहि ।

उदीरणा योग्य एक सौ बाईस प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, तीर्थकर और आहारकद्विकके विना मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक सौ सत्तरह प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है। यहाँ पर उदीरणाके अयोग्य पाँच, और सर्व अनुदीर्ण प्रकृतियों इकतीस हैं। मिथ्यात्व आदि पाँच प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। सासादनमें नरकानुपूर्वीके विना उदीरणा-योग्य प्रकृतियों एक सौ ग्याह है, उदीरणाके अयोग्य ग्याह और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ सैंतीस हैं। यहाँ पर अनन्तानुवर्धी-चतुष्क आदि नौ प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। मिश्रमें तिर्यञ्च, मनुष्य और देव-आनुपूर्वीके विना, तथा सम्यग्मिथ्यात्वके साथ उदीरणाके योग्य प्रकृतियों सौ हैं। उदीरणाके अयोग्य बाईस और अनुदीर्ण प्रकृतियों अड़तालीस हैं। यहाँ पर एक सम्यग्मिथ्यात्वकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। अविरतमें उदीरणाके योग्य एक सौ चार हैं, क्योंकि यहाँ सभी आनुपूर्वियोंकी और सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदीरणा होने लगती है। उदीरणाके अयोग्य अट्टारह और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ चवालीस हैं। यहाँ पर अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्क आदि सत्तरह प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। देशविरतमें सत्तासी प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है, उदीरणाके अयोग्य पैतीस हैं, अनुदीर्ण प्रकृतियों इकसठ हैं और प्रत्याख्यानावरण-चतुष्क आदि आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। प्रमत्तविरतमें आहारकद्विकके साथ उदीरणा-योग्य प्रकृतियाँ इक्यासी हैं, उदीरणाके अयोग्य इकतालीस हैं अनुदीर्ण प्रकृतियों सबसठ हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय और मनुष्यायुकी उदीरणा छठे गुणस्थान तक ही होती है आगे नहीं होती, ऐसा वतला आये है, अतएव इस गुणस्थानमें स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, आहारक-शरीर, आहारक-अंगोपाग, सातावेदनीय, असातावेदनीय और मनुष्यायु, इन आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। अप्रमत्तविरतमें उदीरणाके योग्य तिहत्तर, उदीरणाके अयोग्य उनंचास और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ पिचहत्तर हैं। यहाँ पर सम्यक्त्वप्रकृति आदि चार प्रकृतियों उदीरणासे व्युच्छिन्न होती हैं। अपूर्वकरणमें उदीरणाके योग्य उनहत्तर, उदीरणाके अयोग्य तिरेपन, और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ उन्यासी हैं। यहाँ पर हास्यादि छह नोकपायोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। अनिवृत्तिकरणमें उदीरणाके योग्य तिरेसठ, उदीरणाके अयोग्य उनसठ और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ पचासी हैं। यहाँ पर तीनो वेद और संज्वलन क्रोध, मान, मायाकषाय, इन छह प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। सूक्ष्मसाम्परायमें उदीरणाके योग्य सत्तावन, उदीरणाके अयोग्य पैसठ और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ इक्यानवे हैं। यहाँ पर एकमात्र संज्वलनलोभकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। उपशान्तकषायमें उदीरणा-योग्य छप्पन, उदीरणाके अयोग्य छ्यासठ और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ वानवे हैं। यहाँ पर वज्रनाराचादि दो संहननोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। क्षीणकषायके उपान्त्य समय तक चौवन प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है, अतः वहाँ पर उदीरणाके अयोग्य अडसठ और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ चौरानवे जानना चाहिए। यहाँ पर निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी उदीरणाव्युच्छिन्ति होती है। इसी गुणस्थानके अन्तिम समयमें उदीरणाके योग्य बावन, उदीरणाके अयोग्य सत्तर और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ छ्यानवे हैं। अन्तिम समयमें ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी चार और अन्तरायकी पाँच, इन चौदह प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। सयोगिकेवली गुणस्थानमें तीर्थङ्कर-प्रकृतिको मिलानेसे उदीरणाके योग्य उनतालीस, उदीरणाके अयोग्य तेरासी और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ एक सौ नौ हैं। यतः अयोगिकेवली गुणस्थानमें किसी भी प्रकृतिकी उदीरणा नहीं होती, अतः वहाँ पर उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली बारह प्रकृतियोंमेंसे नौकी उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थानमें ही होती है। शेष तीन (साता-असाता वेदनीय और मनुष्यायु) की उदीरणा छठे गुणस्थानमें होती है, यह पहले वतला आये है। इस प्रकार तेरहवें गुणस्थानमें उनतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति होती है। अयोगिकेवलीके उदीरणा और उदीरणा-व्युच्छिन्तिके

योग्य कोई भी प्रकृति शेष नहीं रही है। अतएव उद्दीरणाके अयोग्य एक सौ बाईस और अनुदीर्ण प्रकृतियों एक सौ अड़तालीस जानना चाहिए। (देखो संहति-सख्या १२)

इस प्रकार उद्दीरणासे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ।

गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके क्षयका क्रम—

[सूलगा०३८] ^१अण मिच्छ मिस्स सम्मं अविरयसम्माइ-अप्पमत्तंता ।
सुर-णिरय-तिरिय-आऊ णिययभवे चेय खीयंति ^१॥४६॥

[सूलगा०३९] ^२सोलह अट्टेकेके छक्केके चेय खीणमणियट्ठी ।
एयं सुहुमसराए खीणकसाए य सोलसयं ^२॥५०॥

[सूलगा०४०] वावत्तरी दुचरिमे तेरह चरिमे अजोइणो खीणा ।
अडयालं पयडिसयं खविय जिणं णिव्वुयं वंदे ^३॥५१॥

अथ गुणस्थानेषु प्रकृतिसत्त्व गाथापञ्चदशकेनाऽऽह—क्षपकश्रेण्यऽपेक्षयेद् गाथासूत्रं कथ्यते—[‘अण मिच्छ मिस्स सम्म’ इत्यादि ।] अविरतसम्यक्त्वाद्यऽप्रमत्तान्ताः अविरतसम्यग्दृष्टयो वा देशसंयता वा प्रमत्तसंयता वा अप्रमत्तसंयता वा अनन्तानुबन्धि-क्रोध-मान-माया-लोभकपायान् ४ मिथ्यात्व १ मिश्रं सम्यग्मिथ्यात्वं २ सम्यक्प्रकृतिं च क्षयं कुर्वन्ति क्षायिकसम्यग्दृष्टयो भवन्ति । पश्चात् वैमानिकदेवाः सज्जाताः । बद्धायुष्कात् वर्माया नारकाः सज्जाताः, पश्चात् भोगभूमिजास्तिर्यङ्मो वा जाताः । तत्र सुर-नरक-तिर्यग्गायूपि निज-निजभवे सुर-नरक-तिर्यग्भवे क्षयन्ति क्षपयन्ति । अवद्धतत्त्रयायुष्को जीवो मनुष्यायुष्क भुज्यमानः सन् क्षपकश्रेणिषु चटति ॥४६॥

अनिवृत्तिकरणादिषु क्षययोग्यप्रकृतीनां क्रममाह—[‘सोलह अट्टेकेके’ इत्यादि ।] सप्तप्रकृतीनां असंयतादिचतुर्गुणस्थानेषु कस्मिंश्चिदेकस्मिन् क्षपितत्वात् नरक-तिर्यग्-देवायुषा चाऽबद्धायुष्कत्वेनाऽसत्त्वात् तत्क्षयवे तत्तदायुः क्षपित्वाच्च वा अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने षोडशा १६ द्वा ८ वेक १ मेक १ पट्क ६ मेक १ मेक १ मेक १ सत्त्वप्रकृतिव्युच्छिन्तिः । अनिवृत्तिकरण गुणस्थान-संयमधरः क्षपकः अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे षोडश प्रकृतीः क्षपयति, द्वितीये अष्टौ ८, तृतीये एकाम् १, चतुर्थे एकाम्, पञ्चमे पट् ६, षष्ठे एकाम् १, सप्तमे एकाम् १, अष्टमे एकाम् १, नवमे भागे एकाम् १ च क्षपयतीत्यर्थः । ततः उपरि सूक्ष्म-साम्पराये एकां प्रकृतिं क्षपयति १ । क्षीणकपाये षोडश प्रकृतीः क्षपयति । तत्र सत्त्वम् १६ । अयोगे द्विचरमसमये द्वासप्ततिप्रकृतीः क्षपयति, तत्र तासां व्युच्छेदः ७२ । चरमसमये त्रयोदश प्रकृतीः क्षपयति, तत्र तासां व्युच्छेदः १३ । अयोगिनः क्षीणाः अष्टचत्वारिंशदुत्तरप्रकृतिशत १४८ क्षयं नीता वा ताः, अयोगिनो जिनान् क्षपयित्वा निर्वृतिं निर्वाणं प्राप्तान् अहं वन्दे नमस्करोमि ॥५०-५१॥

अनन्तानुबन्धी-चतुष्क, मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति, ये सात प्रकृतियों अविरत-सम्यक्त्वसे लेकर अप्रमत्तपर्यन्त क्षयको प्राप्त होती हैं। तथा देवायु, नरकायु और तिर्यगायु अपने-अपने भवमें ही क्षयको प्राप्त होती हैं। अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें क्रमसे सोलह, आठ, एक, एक, छह, और एक, एक, एक, एक प्रकृति क्षयको प्राप्त होती है। सूक्ष्मसाम्परायमे एक

१ स० पञ्चस० ३, ६२ । २ ३, ६३-६५ ।

१. कर्मस्त० गा० ६ । २. कर्मस्त० गा० ७ । ३. कर्मस्त० गा० ८ ।

प्रकृति और क्षीणकषायमें सोलह प्रकृतियों क्षय होती हैं । अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें वहत्तर और चरम समयमें तेरह प्रकृतियों क्षीण होती हैं । इस प्रकार एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंका क्षय करके निर्वाणको प्राप्त हुए जिन भगवान्की मैं वन्दना करता हूँ ॥४६-५१॥

कुछ विशेष प्रकृतियोंका सत्त्व-असत्त्व-विषयक नियम—

^१तिथ्यराहारदुःसासणसम्ममि णत्थि संतेण ।

मिस्सम्मि य तिथ्यरं सत्तं खलु णत्थि णियमेण ॥५२॥

सत्त्वसम्भवाऽऽसम्भवनियममाह—['तिथ्यराहारदुः' इत्यादि ।] सासादनसम्यग्दृष्टौ तीर्थङ्कराऽऽहारकद्विक सत्त्वेन नास्ति । यस्य तीर्थङ्करप्रकृतिसत्त्व आहारकद्वयस्य सत्त्व च भवति, स सासादने नाऽऽगच्छतीत्यर्थः । मिथ्यादृष्टौ तीर्थकृत्वसत्त्वे आहारकसत्त्वं न, 'तिथ्याहार जुगव' इति वचनात् । मिश्रे सम्यग्मिथ्यात्वे गुणस्थाने तीर्थकृत्वसत्त्व खलु नियमेन नास्ति ॥५२॥

तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियोंका सत्त्व निश्चयसे सासादन-सम्यक्त्व-गुणस्थानमें नहीं होता है । तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व नियमसे मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है ॥५२॥

० सुर-णिरय-तिरियाऊहि विणा मिच्छे		० १४५ ३	तिथ्यराहारदुग्गणा सासणे		० १४२ ६	आहारदुगेण सह मिस्से		० १४४ ४		
तिथ्ययरेण सह असज्जे		७ १४५ ३	देसे	७ १४५ ३	पमत्ते	७ १४५ ३	अप्पमत्ते	७ १४५ ३	अपुच्चे	० १३८ १०
अणियट्ठिणवभाणसु		१६ १३८ १०	८ १२२ २६	१ ११४ ३४	१ ११३ ३५	६ ११२ ३६	१ १०६ ४२	१ १०५ ४३	१ १०४ ४४	१ १०३ ४५
सुहुमे		१ १०२ ४६	उवसते	० १०१ ४७	खीणदुचरिमे समए	२ १०१ ४७	खीणचरिमसमए	१४ ६६ ४६	सजोगे	० ८५ ६३
अजोगे दुचरिमसमए		७२ ८५ ६३		चरिमसमए		१३ १३ १३५				

सुर-नरक-तिर्यगायुस्त्रिकसत्त्वैर्विना मिच्छे (मिथ्यात्वे), तीर्थङ्कराऽऽहारकद्विकोना सासादने, आहारकद्विकेन सह मिश्रे, तीर्थकृत्वसत्त्वेन सह असयते, अथ सप्तप्रकृतोना असयतादिचतुर्गुणस्थानेषु एकत्र क्षपयित्वात् नरक-तिर्यग्देवायुषा चावद्धत्वेन वा तद्वत् क्षपितत्वात् असत्त्वमायुस्त्रिक एव दशप्रकृत्यभावात् [उक्तप्रकारेण सत्त्वप्रकृतयो ज्ञेया.] ।

योग्य कोई भी प्रकृति शेष नहीं रही है। अतएव उद्दीरणाके अयोग्य एक सौ बाईस और अनुदीर्ण प्रकृतियों एक सौ अड़तालीस जानना चाहिए। (देखो सदष्टि-संख्या १२)

इस प्रकार उद्दीरणासे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ।

गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके क्षयका क्रम—

[मूलगा० ३८] ^१अण मिच्छ मिस्स सम्म अविरयसम्माइ-अप्पमत्तं ता ।
सुर-णिरय-तिरिय-आऊ णिययभवे चैय खीयंति ॥४६॥

[मूलगा० ३९] ^२सोलह अट्टेक्के छक्के चैय खीणमणियट्ठी ।
एयं मुहुमसराए खीणकसाए य सोलसयं ॥५०॥

[मूलगा० ४०] वावत्तरी दुचरिमे तेरह चरिमे अजोइणो खीणा ।
अट्ठयालं पयडिसयं खविय जिणं णिव्वुयं वंदे ॥५१॥

अथ गुणस्थानेषु प्रकृतिमत्त्वं गाथापञ्चदशकेनाऽऽह—क्षपकश्रेण्यऽपेक्षयेदं गाथासूत्रं कथ्यते—[‘अण मिच्छ मिस्स सम्म इत्यादि ।] अविरतमस्यक्त्वाद्यऽप्रमत्तान्ता’ अविरतमस्यगदृष्टयो वा देगसंयता वा प्रमत्तमयता वा अप्रमत्तसंयता वा अनन्तानुबन्धि-क्रोध-मान-माया-लोभकषायान् ४ मिथ्यात्व १ मिश्रं सम्यग्मिव्यात्वं २ सम्यक्प्रकृतिं च क्षयं कुर्वन्ति चायिकमस्यगदृष्टयो भवन्ति । पश्चात् वैमानिकदेवाः सज्जाताः । ब्रह्माण्डात् वर्मायां नारकाः सज्जाताः, पश्चात् भोगभूमिजास्तिर्यङ्मो वा जाताः । तत्र सुर-नरक-तिर्यग्गायूषि निज-निजभवे सुर-नरक-तिर्यग्भवे क्षयन्ति क्षपयन्ति । अष्टदशतन्त्रयायुष्को जीवो मनुष्यायुष्क भुज्यमानः सन् क्षपकश्रेणिषु चटति ॥४६॥

अनिवृत्तिकरणादिषु क्षययोग्यप्रकृतीनां क्रममाह—[‘सोलह अट्टेक्के’ इत्यादि ।] सप्तप्रकृतीनां असयनादिचतुर्गुणस्थानेषु कस्मिंश्चिदेकस्मिन् क्षपितत्वात् नरक-तिर्यग्-देवायुषां चाऽऽनृतायुष्कवेनाऽमत्त्वात् तन्मद्भवे तत्तद्रायु क्षपितत्वाच्च वा अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने षोडशा १६ द्वा ८ वेक १ मेक १ पट्ठ ६ मेक १ मेक १ मेक १ सत्त्वप्रकृतिव्युच्छित्तिः । अनिवृत्तिकरण गुणस्थान-संयमधर. क्षपकः अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे षोडश प्रकृती. क्षपयति, द्वितीये अष्टौ ८, तृतीये एकाम् १, चतुर्थे एकाम्, पञ्चमे पट्ठ ६, षष्ठे एकाम् १, सप्तमे एकाम् १. अष्टमे एकाम् १, नवमे भागे एकाम् १ च क्षपयतीत्यर्थः । ततः उपरि सूक्ष्म-साम्पराये एकां प्रकृतिं क्षपयति १ । क्षीणकषाये षोडश प्रकृतीः क्षपयति । तत्र मत्त्वम् १६ । अयोगे द्विचरममये द्वासप्ततिप्रकृतीः क्षपयति, तत्र तामां व्युच्छेदः ७२ । चरममये त्रयोदश प्रकृतीः क्षपयति, तत्र तानां व्युच्छेदः १३ । अयोगिनः क्षीणा. अष्टचन्वान्निदुत्तरप्रकृतिशतं १२८ क्षयं नीता वा ताः, अयोगिनो जिनान् क्षपयित्वा निवृत्तिं निर्वाणं प्राप्तान् अह वन्दे नमस्क्रामे ॥५०-५१॥

अनन्तानुबन्धी-चतुष्क, मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति, ये सात प्रकृतियों अविरत-सम्यक्त्वसे लेकर अप्रमत्तपर्यन्त क्षयको प्राप्त होती हैं। तथा देवायु, नरकायु और तिर्यगायु अपने-अपने भवमें ही क्षयको प्राप्त होती हैं। अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें क्रमसे सोलह, आठ, एक, एक, छह, और एक, एक, एक, एक प्रकृति क्षयको प्राप्त होती है। सूक्ष्मसाम्परायमे एक

१ सं० पञ्चसं० ३. ६२ । २. ३, ६३-६५ ।

१. कर्मस्त० गा० ६ । २. कर्मस्त० गा० ७ । ३. कर्मस्त० गा० ८ ।

प्रकृति और क्षीणकषायमे सोलह प्रकृतियों क्षय होती है । अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमे वहतर और चरम समयमें तेरह प्रकृतियों क्षीण होती हैं । इस प्रकार एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंका क्षय करके निर्वाणको प्राप्त हुए जिन भगवान्की मैं वन्दना करता हूँ ॥४६-५१॥

कुछ विशेष प्रकृतियोंका सत्त्व-असत्त्व-विषयक नियम—

^१तिथ्यराहारदुः सासणसम्ममि णत्थि संतेण ।

मिस्सम्मि य तिथयरं सत्तं खलु णत्थि णियमेण ॥५२॥

सत्त्वसम्भवाऽऽसम्भवनियममाह—['तिथ्यराहारदुः' इत्यादि ।] सासादनसम्यग्दृष्टौ तीर्थङ्कराऽऽहारकद्विक सत्त्वेन नास्ति । यस्य तीर्थङ्करप्रकृतिसत्त्व आहारकद्वयस्य सत्त्व च भवति, स सासादने नाऽऽगच्छतीत्यर्थः । मिथ्यादृष्टौ तीर्थकृत्वसत्त्वे आहारकसत्त्वं न, 'तिथ्याहार जुगव' इति वचनात् । मिश्रे सम्यग्मिथ्यात्वे गुणस्थाने तीर्थकृत्वसत्त्व खलु नियमेन नास्ति ॥५२॥

तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियोंका सत्त्व निश्चयसे सासादन-सम्यक्त्व-गुणस्थानमे नहीं होता है । तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व नियमसे मिश्रगुणस्थानमे नहीं होता है ॥५२॥

० सुर-णिरय-तिरियाऊहि विणा मिच्छे		० १४५ ३	तिथ्यराहारदुग्णा सासणे		० १४२ ६	आहारदुगेण सह मिस्से		० १४४ ४	
तिथ्ययरेण सह असज्जे	७ १४५ ३	देसे	७ १४५ ३	यमत्ते	७ १४५ ३	अप्पमत्ते	७ १४५ ३	अपुच्चे	० १३८ १०
अणियट्ठिणवभाएसु	१६ १३८ १०	८ १२२ २६	१ ११४ ३४	१ ११३ ३५	६ ११२ ३६	१ १०६ ४२	१ १०५ ४३	१ १०४ ४४	१ १०३ ४५
सुद्धमे	१ १०२ ४६	० उवसते १०१ ४७	२ खीणदुचरिमे समए	१०१ ४७	१४ खीणचरिमसमए	६६ ४६	सजोगे	० ८५ ६३	
अजोगे दुचरिमसमए				७२ ८५ ६३	चरिमसमए		१३ १३ १३५		

सुर-नरक-तिर्यगायुस्त्रिकसत्त्वैर्विना मिच्छे (मिथ्यात्वे), तीर्थङ्कराऽऽहारकद्विकोना सासादने, आहारकद्विकेन सह मिश्रे, तीर्थकृत्वसत्त्वेन सह असंयते, अथ सप्तप्रकृतीना असयतादिचतुर्गुणस्थानेषु एकत्र क्षपयित्वात् नरक-तिर्यग्देवायुषां चावद्धत्वेन वा तज्जवे क्षपितत्वात् असत्त्वमायुस्त्रिक एव दशप्रकृत्यभावात् [उक्तप्रकारेण सत्त्वप्रकृतयो ज्ञेयाः] ।

मिथ्यात्वगुणस्थानमें देवायु, नरकायु और तिर्यगायुके बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंका सत्त्व और तीनका असत्त्व रहता है। सत्त्व-व्युच्छिन्ति किमी भी प्रकृतिकी नहीं होती। मासाद्रन गुणस्थानमें तीर्थङ्कर और आहारक-द्विकके बिना एक सौ व्यालीस प्रकृतियोंका सत्त्व और छहका असत्त्व रहता है। मिश्रगुणस्थानमें आहारक-द्विककी भी सत्ता पाई जाती है, अतः एक सौ चवालीसका सत्त्व और चार प्रकृतियोंका असत्त्व रहता है। अविरतसम्प्रकृत्वमें तीर्थङ्कर प्रकृतिकी भी सत्ता पाई जाती है, अतः एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंका सत्त्व और तीन प्रकृतियोंका असत्त्व रहता है, इस गुणस्थानमें ज्ञायिकसम्प्रवृष्टिजीवकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी-चतुष्क और दर्शनमोह-त्रिक इन सात प्रकृतियोंका अभाव पाया जाता है इसलिए सात प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। अविरतके समान देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें भी एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंका सत्त्व, तीनका असत्त्व और सातकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति जानना चाहिए। अपूर्वकरणमें एक सौ अड़तीस प्रकृतियोंका सत्त्व होता है, क्योंकि ज्ञायिकसम्प्रकृत्व होते समय अनन्तानुबन्धी-चतुष्क और दर्शनमोह-त्रिकका तो क्षय पहले ही कर दिया था। तथा नरकायु, तिर्यगायु और देवायु, इन तीनोंकी भी सत्ता यहाँ नहीं पाई जाती है, अतः दश प्रकृतियोंका असत्त्व रहता है। अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें क्रमसे सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक और एक प्रकृतिकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है, अतः उन भागोंमेंसे पहले भागमें एक सौ अड़तीस प्रकृतियोंका सत्त्व और दशका असत्त्व है। यहाँ म्यानगृद्धि आदि सोलहकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। दूसरे भागमें एक सौ बाईसका सत्त्व और छव्वीसका असत्त्व है, तथा आठ मध्यम कषायोंकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। तीसरे भागमें एक सौ चौदहका सत्त्व और चौतीसका सत्त्व है। यहाँ पर एक नपुंसकवेदकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। चौथे भागमें एक सौ तेरहका सत्त्व और पैंतीसका असत्त्व है। एक त्रीवेदकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। पाँचवें भागमें एक सौ बारहका सत्त्व और छत्तीसका असत्त्व है। यहाँ पर हान्यादि छह नोकषायोंकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। छठे भागमें एक सौ छहका सत्त्व और व्यालीसका असत्त्व है। एक पुनपवेदकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। सातवें भागमें एक सौ पाँचका सत्त्व और तेतालीसका असत्त्व है तथा एक संज्वलनक्रोधकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। आठवें भागमें एक सौ चारका सत्त्व और चवालीसका असत्त्व है, तथा एक संज्वलन मानकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। नवें भागमें एक सौ तीनका सत्त्व और पैंतालीसका असत्त्व है, तथा एक संज्वलन मायाकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। मूढमाम्यरायगुणस्थानमें एक सौ दो प्रकृतियोंका सत्त्व और छयालीसका असत्त्व है, तथा एक मंज्वलन लोभकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। उपशान्तमोहमें एक सौ एक प्रकृतियोंका सत्त्व और सैंतालीसका असत्त्व है। यहाँ पर किसी भी प्रकृतिकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति नहीं होती। क्षीणमोहके द्विचरम समयमें एक सौ एकका सत्त्व और सैंतालीसका असत्त्व रहता है। यहाँ पर निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। श्रागमोहके चरमसमयमें निन्यानवे प्रकृतियोंका सत्त्व और उनचास प्रकृतियोंका असत्त्व रहता है। यहाँ पर ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी चार और अन्तरायकी पाँच; इन चौदह प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। सयोगिकेवलीके पचासीका सत्त्व और तिरेसठका असत्त्व रहता है। यहाँ पर किसी भी प्रकृतिकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति नहीं होती। अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें पचासीका सत्त्व और तिरेसठका असत्त्व रहता है। यहाँ पर आगे कहीं जानेवाली देव-द्विक आदि बहिर प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। अयोगिकेवलीके चरम समयमें तेरहका सत्त्व और एक सौ पैंतीसका असत्त्व रहता है। इसी समय मनुष्य-द्विक आदि आगे बड़ी जानेवाली तेरह प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छिन्ति होती है। इस प्रकार सर्व गुणस्थानोंमें कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंका सत्त्व-असत्त्वादि जानना चाहिए। (देवो, मंदि-संख्या १३)

अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ४१] ^१थीणतियं चेव तहा णिरयदुअं चेव तह य तिरियदुयं ।
इगि-वियल्लिंदियजाई आयाउज्जोवथावरयं ॥५३॥

[मूलगा० ४२] साहारण सुहुमं चिय सोलस पयडी य होंति णायव्वा ।

१९६।

विदियकसायचउक्कं तइयकसायं च अट्ठेए ॥५४॥

१९७।

[मूलगा० ४३] ^२एय णउंसयवेयं इत्थीवेयं तहेव एयं च ।
छण्णोकसायछक्कं पुरिसं कोवं च माणो य ॥५५॥

[मूलगा० ४४] मायं चिय अणियट्ठीभायं गंतूण संतवोछिण्णा ।

१९८। १९९। २००। २०१।

अनिवृत्तिवृत्तिकरणगुणस्थानादिषु ताः षोडशादिप्रकृतयः का इति चेदाह—['थीणतियं चेव तहा' इत्यादि ।] अनिवृत्तिकरणस्य नवसु भागेषु सत्त्वव्युच्छेदस्य गायानावर्णनसम्बन्धः । स्थानगृह्णित्यत्र ३ नरकगति-तदनुपूर्व्यद्विक २ तिर्यग्गति-तदनुपूर्व्यद्विक २ एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय जातिचतुष्क ४ आतपः १ उद्योत १ स्थावर १ साधारण १ सूक्ष्म १ चेति षोडश प्रकृतयः अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे ज्ञय गता, तत्र तासां व्युच्छेदः १६ ज्ञातव्यः । द्वितीयभागे अप्रत्याख्यानावरणद्वितीयकपायचतुष्क ४ प्रत्याख्यानावरण-तृतीयकपायचतुष्क ४ चेति अष्टौ कपायाः ज्ञय गता, तत्र तासां व्युच्छेदः ८ । तृतीयभागे एको नपुंसकवेदो ज्ञय गतः १ । चतुर्थभागे एकस्य स्त्रीवेदस्य ज्ञयः १ । पञ्चमे भागे 'पण्णोकपायपट्क' हाम्यरत्यजरति-शोक-भय-जुगुप्सना पण्णा ज्ञयः ६ । षष्ठे भागे पुवेदः ज्ञयं गतः १ । सप्तमे भागे संज्वलनक्रोध ज्ञय गतः १ । अष्टमे भागे संज्वलनमानः ज्ञय गतः १ । नवमे भागे संज्वलनमाया ज्ञय गता १ । यत्र ज्ञयस्तत्र तद्-व्युच्छिन्ति, अनिवृत्तिकरणस्य भागान् गत्वा सत्त्वव्युच्छिन्ति ॥५३-५५॥

अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें स्थानत्रिक, नरकद्विक, तिर्यग्द्विक, एकेन्द्रियजाति, तीन विकलेन्द्रियजातियों, आतप, उद्योत, स्थावर, साधारण और सूक्ष्म, ये सोलह प्रकृतियों सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं, ऐसा जानना चाहिए । अनिवृत्तिकरणके द्वितीय भागमें द्वितीय अप्रत्याख्यानावरणकपायचतुष्क और तृतीय प्रत्याख्यानावरणकपायचतुष्क; ये आठ प्रकृतियों सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं । तृतीय भागमें एक नपुंसकवेद, चतुर्थभागमें एक स्त्रीवेद, पंचम भागमें छह नोकपाय, छठे भागमें पुरुषवेद, सातवें भागमें संज्वलन क्रोध, आठवें भागमें संज्वलन मान और अनिवृत्तिकरणके नवें भागमें जाकर संज्वलन माया सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती है ॥५३-५५॥

अनिवृत्तिकरणके नवों भागोंमें क्रमशः सत्त्व-व्युच्छिन्न प्रकृतियोंकी अंक-संदृष्टि—

१६, ८, १, १, ६, १, १, १, १

१. सं० पञ्चस० ३, ६८-६९ । २ ३, ७० ।

१ कर्मस्त० गा० ४३ । २. कर्मस्त० गा० ४४ । ३ कर्मस्त० गा० ४५ ।

छ द - 'व' ।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृति—

¹लोभं च य संजलणं सुहृमकसायमिह वोच्छिण्णा¹ ॥५६॥

।१।

तद्वाधार्थमाह—['लोभं च य संजलण' इत्यादि ।] सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मसञ्जलनलोभः व्युच्छिन्नः क्षय गतः ॥५६॥

सूक्ष्मकपायमे एक संज्वलनलोभप्रकृति सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती है ॥५६॥

सूक्ष्मसाम्परायमे सत्त्व-व्युच्छिन्न १

क्षीणकपायगुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[सूलागा०४५] ²क्षीणकसायदुचरिमे णिहा पयला य हणइ छदुमत्थो ।

णाणंतरायदसयं दंसण चत्तारि चरिममिह³ ॥५७॥

।२।१४।

क्षीणकपायस्य द्विचरमे उपान्त्यसमये निद्रा-प्रचलाद्वय छद्मस्थक्षीणकपायो मुनिर्हन्ति, क्षयं नय-
तीत्यर्थः । चरमसमये ज्ञानावरणपञ्चक ५ दानाद्यन्तरायपञ्चक ५ चक्षुर्दर्शनावरणादीनि चत्वारि ४, एव
चतुर्दश प्रकृतयः १४ क्षय गतास्तत्र व्युच्छेदः ॥५७॥

क्षीणकपायके द्विचरम समयमे छद्मस्थ वीतरागसंयत निद्रा और प्रचला; इन दो प्रकृतियों-
का क्षय करता है । तथा चरम समयमे ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच और दर्शनावरण-
की चक्षुर्दर्शनावरणादि चार; इन चौदह प्रकृतियोंका घात करता है ॥५७॥

क्षीणकपायके उपान्त्य समयमे सत्त्व-व्युच्छिन्न प्रकृतियों २, अन्त्य समयमे १४

अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[सूलागा०४६] ³देवदुअ× पणसरीरं पंच सरीरस्स बंधणं चेव ।

पंचेव य संघायं संठाणं तह य छक्कं च⁴ ॥५८॥

[सूलागा०४७] तिणिण य अंगोवंगं संघयणं तह य होइ छक्कं च ।

पंचेव य वण्ण-रसं दो गंधं अट्ठ फासं च⁵ ॥५९॥

[सूलागा०४८] अगुरुयलहुयचउच्चं विहायगइ-दुग थिराथिरं चेव ।

सुह-सुरसरजुवला वि य पत्तेयं दुब्भगं अजसं⁶ ॥६०॥

[सूलागा०४९] आणादेज्जं णिमिणं च य अपज्जत्तं तह य णीचगोदं च ।

अण्णयरवेयणीयं अजोगिदुचरिममिह वोच्छिण्णा¹ ॥६१॥

।७२।

1. स० पञ्चसं० ३, ७१ प्रथमचरणम् । 2. ३, ७१ चरणत्रयम् । 3. ३, ७२-७५ ।

१. कर्मस्त० गा० ४६ । २. कर्मस्त० गा० ४७ । ३. कर्मस्त० गा० ४८ । ४. कर्मस्त०
गा० ४९ । ५. कर्मस्त० गा० ५० । ६. कर्मस्त० गा० ५१ ।

× द—दुगं ।

सयोगे क्षयः सत्त्वव्युच्छेदश्च नास्ति । अयोगस्य द्विचरमसमये द्वासप्ततिक्षयः व्युच्छेदः गाथाचतुष्केण कथ्यते—['देवदुःख पणसरीर' इत्यादि ।] देवगति देवगत्याऽऽनुपूर्व्यद्विक २ औदारिकादिशरीरपञ्चकं ५ औदारिकादिशरीरसंघातपञ्चक ५ समचतुरस्त्रादिसंस्थानपट्टकं ६ औदारिक-वैक्रियिकाऽऽहारकशरीराङ्गोपाङ्ग-त्रिकं ३ वज्ररूपभनाराचादिसंहननपट्टक ६ श्वेत पीतादिवर्णपञ्चक-५ कटु-तिक्तादिरसपञ्चक ५ सुगन्ध-दुर्गन्धौ द्वौ २ कर्कश-कोमलादिस्पर्शाष्टकं ८ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्क ४ प्रशस्ताऽप्रशस्तविहायो-गतिद्विकं २ स्थिराऽस्थिरं द्वे २ शुभाशुभौ द्वौ २ सुस्वर-दुःस्वरौ द्वौ २ प्रत्येकशरीर १ दुर्भगः १ अयशः-कीर्त्तिः १ अनादेय १ निर्माण १ अपर्याप्त १ नीचगोत्र १ अन्यतरद् वेदनीयं सातमसातं वा एकं १ चेत्येवं द्वासप्ततिप्रकृतीः अयोगिद्विचरमसमये अयोगिकेवली क्षपयति क्षयं नयति, तत्र तासां सत्त्वव्युच्छेदः ॥५८-६१॥

देवद्विक, पाँचो शरीर, पाँचों शरीरोंके पाँच बन्धन, पाँच संघात, तथा छह संस्थान, तीन अंगोपांग, तथा छह संहनन, पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध, आठ स्पर्श, अगुरुलघुचतुष्क, विहायोगतिद्विक, स्थिर-अस्थिर, शुभ-युगल, सुस्वर-युगल, प्रत्येकशरीर, दुर्भग, अयशःकीर्त्ति, अनादेय, निर्माण, अपर्याप्त, तथा नीचगोत्र और कोई एक वेदनीय, ये वहत्तर प्रकृतियाँ अयोगि-केवलीके द्विचरम समयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥५८-६१॥

अयोगीके द्विचरम समयमें सत्त्व-व्युच्छिन्न ७२ ।

अयोगिकेवलीके चरम समयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ५०] 'अण्णयरवेयणीयं मणुयाऊ मणुअदुअं च बोहव्वा ।

पचिंदियजाई वि य तस सुभगादेज्ज पज्जत्तं' ॥६२॥

[मूलगा० ५१] वायर जसकित्ती वि य तित्थयरं उच्चगोययं चेव ।

एए तेरस पयडी अजोइचरिमहि संतवोच्छिण्णा' ॥६३॥

११३।

अयोगिचरमसमये त्रयोदशप्रकृतिसत्त्वव्युच्छेदं गाथाद्वयेनाह—['अण्णयरवेयणीयं' इत्यादि ।] अयोगिचरमसमये अन्यतरद् वेदनीयं सातमसातं वा एक १ मनुष्यायुः १ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ पञ्चेन्द्रियजातिः १ त्रस-सुभगादेय-पर्याप्तानि चत्वारि ४ वादरत्न १ यशःकीर्त्तिः १ तीर्थकरत्वं १ उच्चैर्गोत्र १ चेत्येताः त्रयोदश प्रकृतीः अयोगिचरमसमयस्थः केवली क्षपयति, तत्र तत्सत्त्वव्युच्छेदः १३ ॥६२-६३॥

कोई एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्त, वादर, यशःकीर्त्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र; ये तेरह प्रकृतियाँ अयोगीके चरम समयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥६२-६३॥

अयोगीके चरम समयमें सत्त्व-व्युच्छिन्न १३ ।

अन्तिम मंगल-कामना—

[मूलगा० ५२] *सो मे तिहुअणमहिओ सिद्धो बुद्धो गिरंजणो णिचो ।

दिसउ वरणाण-दंसण-चरित्तसुद्धि समाहिं च' ॥६४॥

१. स० पञ्चसं० ३, ७६-७७ ।

१. कर्मस्त० गा० ५२ । २ कर्मस्त० गा० ५३ । ३ कर्मस्त० गा० ५४ ।

* गो० क० ३५७ । पर तत्रोत्तरार्धे 'दिसदु वरणाणलाहं बुद्धजणपरिपत्थण परमसुद्ध' इति पाठः ।

कविः स्वात्मलाभं याचते—['सो मे तितुभणमहिभो' इत्यादि] स सिद्धः स्वात्मोपलब्धिं प्राप्तः मे मया वर-विशिष्ट-केवलज्ञान-दर्शन-यथाख्यातचारित्र-शुद्धि समाधि च रत्नत्रयलाभ धर्मध्यान-शुक्लध्यानं वा दिशतु प्रयच्छतु ददातु । स सिद्धः कथम्भूतः ? त्रिभुवनेन जनेन महितः पूजितः । पुनः कथम्भूतः ? बुद्धः केवलज्ञान-दर्शनमयः, निरञ्जनः—द्रव्य भाव-नोकर्ममलेभ्यो निःक्रान्तः, नित्यः—स्वस्वरूपादच्युतः । एवम्भूतः सिद्धः मह्यं वरज्ञानादिकं दिशतु ॥६४॥

सर्व कर्म-प्रकृतियोंसे रहित, ऐसे वे शुद्ध, बुद्ध, निरंजन और नित्य सिद्ध भगवान् मुझे उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी शुद्धि और समाधिकी देवे ॥६४॥

सूरीश्वरश्रेणिशिरोऽवतंसो लोकत्रयी-निर्मित-सत्प्रशंसः ।

श्रीमद्गुरुर्ज्ञानविभूषणेन्द्रो जीयात्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रचन्द्रः ॥*

इस प्रकार सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

कर्मस्तव-चूलिका

बन्ध, उदय और सत्त्व-व्युच्छित्तिके स्पष्टीकरणार्थ नौ प्रश्न—

¹ छिज्जइ × पढमं वंधो किं उदओ किं च दो वि जुगवं किं ।

किं सोदएण वंधो किं वा अण्णोदएण उभएणं ॥६५॥

संतरं† गिरंतरो वा किं वा वंधो हवेज्ज उभयं वा ।

एवं णवविहपण्हं + कमसो वोच्छामि एयं तु ॥६६॥

लक्ष्मीवीरेन्दुचिद्भूपान् पाठकान् परमेष्ठिनः ।

प्रणम्य चूलिका वक्ष्ये नवधा-प्रश्नपूर्विकाम् ॥

अथ नवभेदबन्धस्य नवधाप्रश्नोत्तरस्वरूपं गाथात्रयोदशकेनाऽऽह । के नव प्रश्ना इति चेदाऽऽह—['छिज्जइ पढमं वंधो' इत्यादि ।] श्रीगुरुणामग्रे शिष्यः नवविध प्रश्न करोति—हे भगवन्, प्रथमं पूर्वं बन्धः छिद्यते विनश्यति व्युच्छेद प्राप्यते, किमिति प्रश्ने १ ? उदयः विपाकः पूर्वं किं च छिद्यते व्युच्छेदः क्रियते २ ? द्वावपि बन्धोदयो युगपत् समं किं वा छिद्यते ३ ? हे गुरो, स्वोदयेन स्वकीयप्रकृत्युदयेन बन्धः स्वकीयप्रकृतिबन्धः किं वा भवति ४ ? अन्योदयेन किं बन्धो भवति ५ ? किं उभयेन स्वपरोदयेन बन्धो भवति ६ ? हे भगवन्, किं वा सान्तरं बन्धो भवति ७ ? किं वा निरन्तरः अविच्छिन्नः बन्धो भवति ८ ? किं वा उभयः सान्तर-निरन्तरं बन्धो भवति ९ ? एवममुना प्रकारेण शिष्येण नवविधप्रश्ने कृते सति श्रीगुरोराऽऽह—हे शिष्य, क्रमशः अनुक्रमेण नवविधप्रश्नोत्तरान् एतान् अहं वक्ष्यामि; त्वं शृणु ॥६५-६६॥

गुणस्थानोमे पहले जो बन्ध-उदयादि व्युच्छित्ति बतलाई गई है, उनमेसे क्या बन्ध प्रथम व्युच्छिन्न होता है १, क्या उदयकी पहले व्युच्छित्ति होती है २, अथवा क्या वे दोनों ही एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं ३, क्या स्वोदयसे बन्ध होता है ४, क्या परोदयसे बन्ध होता है

1. म० पञ्चस ० ३, ७८-७९ ।

* इतोऽग्रेऽधस्तनः सन्दर्भ उपलभ्यते—

इति श्रीपञ्चसंग्रहाऽपरनामलघुगोमट्टसारसिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे बन्धोदयोदीरणासत्त्व-प्ररूपणो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

× व छिज्जइ । † द संतरो । + ष द पण्हे ।

५, अथवा क्या उभयके उदयसे बन्ध होता है ६, क्या बन्ध सान्तर होता है ७, अथवा निरन्तर होता है ८, अथवा क्या उभयरूप होता है ९ ? ये नौ प्रकारके प्रश्न हैं । अब मैं क्रमसे इनका उत्तर कहूँगा ॥६५-६६॥

उक्त नौ प्रश्नोंमेंसे अल्प वक्तव्यके कारण सर्वप्रथम द्वितीय प्रश्नका समाधान करते हैं—

^१देवाउ अजसकित्ती वेउव्वाहार-देवजुयलाइं ।

पुव्वं उदओ णस्सइ पच्छा वंधो वि अट्ठण्हं ॥६७॥

।८।

देवायुष्कं १ अयशःकीर्तिः १ वैक्रियिकयुगल २ आहारकयुगल २ देवयुगल २ चेत्यष्टानां प्रकृतीनां पूर्वं प्रथम उदयः पश्यति, पश्चात् बन्धो नश्यति । तथाहि—देवायुपः असंयते उदयव्युच्छित्तिः ४, अप्रमत्ते बन्धव्युच्छेदः ७ । अयशस्कीर्त्तिसंयते उदयव्युच्छित्तिः ४, प्रमत्ते बन्धव्युच्छित्तिः ६ । वैक्रियिकशरीर-तदङ्गोपाङ्गद्वयस्य २ देवगति-तदानुपूर्व्यद्वयस्य २ च असंयते उदयव्युच्छित्तिः ४, अपूर्वकरणस्य पष्ठे भागे बन्धव्युच्छित्तिः ८ । आहारकद्वयस्य प्रमत्ते उदयव्युच्छित्तिः ६, अपूर्वकरणस्य पष्ठे भागे बन्धव्युच्छित्तिः ८ ॥६७॥

देवायु, अयशःकीर्ति, वैक्रियिक-युगल, आहारक-युगल और देव-युगल, इन आठ प्रकृतियोंका पहले उदय नष्ट होता है, पीछे बन्ध व्युच्छिन्न होता है ॥६७॥

बन्धसे पूर्व उदय-व्युच्छिन्न प्रकृतियों ८ ।

तृतीय प्रश्नका समाधान—

^२हस्स रइ भय दुगुंछा सुहुमं साहारणं अपज्जत्तं ।

जाइ-चउक्कं थावर सव्वे व कसाय अंत-लोहूणा ॥६८॥

पुवेदो मिच्छत्तं णराणुपुव्वी य आयवं चेव ।

इगितीसं पयडीणं जुगवं वंधुदयणासो त्ति ॥६९॥

।९।

हासस्य	अपूर्वकरणे	बन्धोदयौ	व्युच्छित्तौ(ज्ञौ)	युगपत्	समं	भवतः ।
यं० ८	रतेः	८	जुगुप्साया	८	भयस्य	८ बन्धोदयौ समं भवतः ।
उ० ८		८		८		

सूक्ष्म-साधारणाऽपर्याप्तैकेन्द्रियादिजातिचतुष्क-स्थावराणां अष्टानां प्रकृतीनां ८ मिथ्यात्वगुणस्थाने बन्धोदयौ समं भवतः यं० १ । अन्तलोभोना सज्जलनलोभरहिताः सर्वे कपायाः तेषां युगपत् बन्धोदय-व्युच्छेदौ भवतः । उ० १ ।

तथा हि—अनन्तानुबन्धिचतुष्टयस्य सासादने बन्धोदयौ सम व्युच्छेदं प्राप्नोति भवतः ^२ । अप्रत्याख्यानचतुष्टयस्य देशविरते युगपद् बन्धोदयौ विच्छेदौ भवतः ^५ । क्रोध-मान-मायासज्जलनत्रयस्य अनिवृत्तिकरणे सम बन्धोदयौ व्युच्छिन्नौ भवतः ^६ । पुवेदस्य अनिवृत्तिकरणे बन्धोदयौ विच्छेदौ सम भवतः ^७ । मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वगुणस्थाने बन्धोदयौ सम व्युच्छेदौ भवतः ^१ । नरानुपूर्व्याः असंयते बन्धोदयौ व्युच्छिन्नौ सम ^४ भवतः ।

आतपस्य मिथ्यात्वे बन्धोदयौ व्युच्छिन्नौ[समं]भवतः ^१ । इति एकत्रिंशत्प्रकृतीनां युगपद् बन्धोदयनाश-
इति । उदयव्युच्छित्तिर्बन्धव्युच्छित्तिश्च द्वे समं स्त इत्यर्थः ॥६८-६९॥

हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, एकेन्द्रियादि चार जातियों, स्थावर, अन्तिम संज्वलनलोभके विना सभी (१५) कपाय, पुरुषवेद, मिथ्यात्व, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आताप; इन इकतीस प्रकृतियोंके बन्ध और उदयका नाश एक साथ होता है ॥६८-६९॥

युगपत् बन्धोदय-व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ३१ ।

प्रथम प्रश्नका समाधान—

^१एकासी पयडीणं ज्ञानावरणादयाण सेसाणं ।

पुर्वं बंधो छिन्नह पच्छा उदओ ति नियमेण ॥७०॥

।८१।

शेषाणां एकाशीतिप्रकृतीनां ज्ञानावरणादीनां पूर्वं प्रथम बन्धः छिद्यते, पश्चात् उदयः छिद्यते ।
तथा हि—(उपरि उदयोच्छेदगुणस्थानाङ्कसंख्या, अधस्तात् बन्धोच्छेदगुणस्थानाङ्कसंख्या ।) पञ्चानां
ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पञ्चानामन्तरायाणां एतासां चतुर्दशप्रकृतीनां १४ कीलकपायान्ते
उदयव्युच्छेदः, सूक्ष्मसाम्पराये बन्धव्युच्छेदः ^{१२} यशस्कीर्त्युच्चगोत्रयोः ^{१४} स्थानगृद्धित्रयस्य ^६ निद्रा-
^{१०} प्रचलयोः ^{१२} सद्ब्रह्मस्य ^{१४} असद्ब्रह्मस्य ^{१४} संज्वलनलोभस्य ^{१०} स्त्रीवेदस्य ^६ नपुंसकवेदस्य ^६ अरति-
शोकयोः ^६ नरकायुषः ^४ तिर्यगायुषः ^५ मनुष्यायुषः ^{१४} नरकगतेः ^४ तिर्यगगतेः ^५ मनुष्यगतेः ^{१४} पञ्चेन्द्रियजातेः
^{१४} औदारिकशरीरस्य ^{१३} तैजसस्य ^{१३} कर्मणस्य ^{१३} समचतुरस्तस्य ^{१३} मध्यमसंस्थानचतुष्टयस्य ^{१३}
हुण्डकस्य ^{१३} औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गस्य ^{१३} वज्रवृषभनाराचसहनस्य ^{१३} वज्रनाराच-नाराचयोः ^{११}
अर्धनाराच-कीलिकासंहननयोः ^७ असम्प्राप्तसृपाटिकासंहननस्य ^७ वर्णादिचतुष्टयस्य ^{१३} नरकगत्यानु-
पूर्व्या. ^४ तिर्यगत्त्यानुपूर्व्याः ^४ अगुरुलब्धादिचतुष्टयस्य ^{१३} प्रशस्तविहायोगतेः ^{१३} अप्रशस्तविहा-
योगतेः ^{१३} व्रत-वाढर-पर्याप्तानां ^{१४} प्रत्येकशरीरस्य ^{१३} स्थिरस्य ^{१३} अस्थिरस्य ^{१३} अशुभस्य ^{१३}
सुभगस्य ^{१४} दुर्भगस्य ^४ सुस्वरस्य ^{१३} दुःस्वरस्य ^{१३} आदेयस्य ^{१४} अनादेयस्य ^४ निर्माणस्य ^{१३}
तीर्थविधायितायाः ^{१३} नीचगोत्रस्य ^५ ॥७०॥

शेष बचीं ज्ञानावरणादि कर्मोंकी इक्यासी प्रकृतियोंकी नियमसे पहले बन्ध-व्युच्छित्ति होती है और पीछे उदय-व्युच्छित्ति होती है ॥७०॥

उदयसे पूर्व बन्ध-व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ८१ ।

पाँचवें प्रश्नका समाधान—

¹तिस्थिराहारदुःखं वेउन्वियल्लक णिरय-देवाळ ।

एयारह पयडीओ बज्जंति परस्स उदयाहिं ॥७१॥

१११।

यासां परोदयेन बन्धः, ताः प्रकृतयाः—तीर्थकरत्व १ आहारकद्विक २ वैक्रियिकपट्कं ६ नरक-
देवायुपी २ चेत्येकादश प्रकृतीः परेपामुदयैः बध्नन्ति । तीर्थकरनाम्नोऽपि परोदयेन बन्धः । कुतः ?
तीर्थकरकर्मोदयसम्भविगुणस्थानयोः सयोगाऽयोगयोस्तद्वन्धाऽनुपलम्भात् । आहारकद्वयस्यापि परोदयेन
बन्धः । कुतः ? आहारकद्वयोदयरहितयोरप्रमत्तापूर्वयोर्बन्धोपलम्भात् । नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी-देवगति-
देवगत्यानुपूर्वी-वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गानां पण्णा बन्धयोग्येषु गुणेषु परोदयेन बन्धः । कुतः ?
स्वोदयेन बन्धस्य विरोधात् । देवनारकायुषोः परोदयेन बन्धः, स्वोदयेन बन्धस्य विरोधात् ॥७१॥

तीर्थङ्कर, आहारक-द्विक, वैक्रियिकपट्क, नरकायु और देवायु; ये ग्यारह प्रकृतियों परके
उदयसे बंधती हैं ॥७१॥

परोदयसे बंधनेवाली प्रकृतियों ११ ।

चौथे प्रश्नका समाधान—

²णाणंतरायदसयं दंसणचउ तेय कम्म णिमिणं च ।

थिर-सुहजुयले य तहा वण्णचउं अगुरु मिच्छत्तं ॥७२॥

सत्ताहियवीसाए पयडीणं सोदया दु बंधो त्ति ।

१२७।

ज्ञानावरणान्तरायस्य दश प्रकृतयः १० दर्शनावरणस्य चतस्रः ४ बन्धयोगेषु गुणस्थानेषु स्वोदयेन
बध्यन्ते, मिथ्यादृष्ट्यादि-बीणकपायान्तेषु एतासां १४ निरन्तरोदयोपलम्भात् । तैजस कर्मण-निर्माण-स्थिरा-
स्थिर-शुभाशुभ-वर्णचतुष्कागुरुलघु-प्रकृतयः द्वादश स्वोदयेनैव बध्यन्ते, भ्रुवोदयत्वात् । मिथ्यात्वस्य स्वोद-
येनैव बन्धो भवति; मिथ्यात्वकारणकपोढशप्रकृतिषु पाठात्, बन्धोदययोः समानकाले प्रवृत्तित्वाद्वा । एव
ससाधिकविंशतिप्रकृतीनां २७ स्वोदयाद् बन्धो भवतीत्यर्थः ॥७२॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी चतुर्दशनावरणादि चार, तैजस-
शरीर, कर्मणशरीर, निर्माण, स्थिर-युगल, शुभ-युगल, तथा वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और मिथ्यात्व;
इन सत्ताईस प्रकृतियोंका स्वोदयसे बन्ध होता है ॥७२॥

स्वोदयसे बंधनेवाली प्रकृतियों २७ ।

छठे प्रश्नका समाधान—

सपरोदया दु-बंधो हवेज्ज वासीदि सेसाणं ॥७३॥

१८२।

शेषाणां द्वयशीति-प्रकृतीनां ८२ स्व-परोदयाद् बन्धो भवेत् । तद्यथा—दर्शनावरणपञ्चक ५ वेद्यद्वय
२ कपाय पोढश १६ नोकपाय-नवक ६ तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्गुण २ तिर्यग्गति-मनुष्यगतियुगल २ एक द्वि-
त्रि-चतुःपञ्चेन्द्रियजात्यौ ५ दारिकौदारिकाङ्गोपाङ्गं २ सस्थानपट्क ६ सहननपट्क ६ तिर्यग्गति-मनुष्यगति-
प्रायोग्यानुपूर्व्य २ उपघात १ परघातो १ च्छासा १ तपो १ द्योत १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति २ अस १

स्थावर १ वावर १ सूक्ष्म १ पर्वासापर्याप्त २ प्रत्येक १ साधारण १ सुभग १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वराऽ
१ देयानादेय २ यशोऽयशःकीर्ति २ नीचोच्चगोत्र २ नामिकानां द्वयगीतिप्रकृतीनां ८२ स्वपरोदयाद् बन्धो
दृष्टव्य, स्वोदयेनेव परोदयेनापि बन्धाविरोधात् ॥७३॥

इति द्वितीयप्रश्नत्रयस्य ग्रन्थोत्तरो जातः ।

शेष गृही व्यासी प्रकृतियोंका बन्ध स्वोदयसे भी होता है और परोदयसे भी होता है ॥७३॥

स्व-परोदयसे बँधनेवाली प्रकृतियों ८२ ।

आठवें प्रश्नका समाधान—

^१तिथ्यराहारदुर्धं चउ आउ धुआ य वेइ^३ चउवर्णा^१ ।

एयाणं सन्वाणं पयडीणं णिरंतरो बंधो ॥७४॥

।७४।

तृतीयप्रश्नत्रयप्रकृतीर्गाथाचतुष्टयेनाऽऽह—['तिथ्यराहारदुर्धं' इत्यादि ।]

तीर्थकरत्वं १ आहारकद्विकं २ आयुश्चतुष्क ४ सप्तचचारिणदं ध्रुवबन्धप्रकृतयः ४७ चेति एकी-
कृताश्चतुःपञ्चाशत् ५४ । एतासां सर्वासां चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनां निरन्तरो बन्धो भवति । तद्यथा—पञ्च-
ज्ञानावरण ५ नव दर्शनावरण ६ पञ्चान्तराय ५ मिथ्यान्त्र १ पादगकपाय १६ भय-जुगुप्सा २ नैजम-
कार्मणाऽ २ गुल्मघृषवात् २ निर्माण १ वर्णचतुष्कानीति ४७ सप्तचचारिणदं ध्रुवबन्धाः स्युः, एतासां
ध्रुवबन्धो भवति । कुतः ? बन्धयोग्यगुणस्थाने निन्यं बन्धोपलम्भात् । एता. ४७ आयुश्चतुष्टयाहारकद्वय-
तीर्थकरैर्युताश्चतुःपञ्चाशत् ५४ । एताश्च बन्ध यान्ति निरन्तरमिति ॥७४॥

ध्रुवबन्धस्य निरन्तरबन्धस्य च को विशेषः ? महान् विशेषो यत् श्लोकौ—

^२बन्धयोग्यगुणस्थाने याः स्वकारणसन्निधौ ।

सर्वकालं प्रवध्यन्ते ध्रुवबन्धाः भवन्ति ताः ॥१॥

बन्धकालो जवन्त्योऽपि यासामन्तर्मुहूर्त्तकः ।

बन्धाऽऽसमाप्रितस्तत्र ता निरन्तर-बन्धना. ॥२॥

तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, चारो आयु और ध्रुवबन्धी सैंतालीस प्रकृतियों, इन सब जीवन
प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता है ॥७४॥

निरन्तर बँधनेवाली प्रकृतियों ५४ ।

सातवें प्रश्नका समाधान—

^३संठाणं संघयणं अंतिमदसयं च साइ उज्जायं ।

इगि विगलिंदिय थावर संहिथी अरइ सोय अयसं च ॥७५॥

दुर्भग दुस्सरममुभं सुह्रुमं साहारणं अपज्जत्तं ।

णिरयदुअमणादियं असायमथिरं विहायमपसत्थं ॥७६॥

चउतीसं पयडीणं बन्धो णियमेण संतरो भणिओ ।

।७५।

सप्तचतुर्त्रयमन्यान-वज्ररूपभनाराचसंहननाभ्या विना संस्थान-संहननपञ्चकमित्यन्यदशकं १० आतपः
१ द्योतः १ एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजातिचतुष्कं ४ स्थावरं १ पण्डर्वावेदी २ अरति १ शोकः १ अयशाः-

१ ३, ६३ । २. ३, ९४-९५ । ३. ३, ९६-९८ ।

इय चेइ । † च वर्णा ।

कीर्त्तिः १ दुर्भगः १ दुःस्वरः १ अशुभं १ सूक्ष्म १ साधारण १ अपर्याप्तं १ नरकगति-तद्वानुपूर्वीद्विकं २ अनादेयं १ असातं १ अस्थिरं १ अप्रशस्तविहायोगतिश्चेत्येतासा चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां ३४ सान्तरौ बन्धो भणितः ॥७५-७६॥

को नाम सान्तर बन्धः ? उक्तञ्च—

^१बन्धो भूत्वा क्षणं यासामसमाप्तो निवर्तते ।

बन्धाऽपूर्तेः क्षणेनैताः सान्तरा विनिवेदिताः ॥

^२अन्तर्मुहूर्त्तमात्रत्वाज्जन्यस्यापि कर्मणाम् ।

सर्वेषां बन्धकालस्य बन्धः सामयिकोऽस्ति नो ॥

अन्तिम पाँच संस्थान, अन्तिम पाँच संहनन, सातावेदनीय, उद्योत, एकेन्द्रियजाति, तीन विकलेन्द्रियजातियों, स्थावर, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, अरति, शोक, अयश कीर्त्ति, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, नरकद्विक, अनादेय, असातावेदनीय, अस्थिर और अप्रशस्त-विहायोगति; इन चौतीस प्रकृतियोंका नियमसे सान्तर बन्ध कहा गया है ॥७५-७६॥

विशेषार्थ—जिसका बन्ध अन्तर-गहित होता है उसे निरन्तरबन्धी प्रकृति कहते हैं और जिसका बन्ध अन्तर-सहित होता है, उसे सान्तरबन्धी प्रकृति कहते हैं ।

सान्तर बंधनेवाली प्रकृतियों ३४ ।

नवें प्रश्नका समाधान—

वत्तीस सेसियाणं बंधो समयम्मि उभओ वि ॥७७॥

॥३२॥

इति पयद्वीणं बंधोदयोर्द्वारण-सत्ताभेय समत्त

कम्मस्थव-चूलिका समत्ता ।

जेयाणां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धः उभयथा सान्तर-निरन्तरो जिनसिद्धान्ते भणितः । तद्यथा—
सुरद्विक २ मनुष्यद्विकं २ औदारिकद्विकं २ वैक्रियिकद्विकं २ प्रशस्तविहायोगतिः १ वज्रवृषभनाराचं १ पर-
धातोच्छ्वासौ २ समचतुरत्नसंस्थानं २ पञ्चेन्द्रियजातिः १ त्रम १ वादर १ पर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १
शुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ यशस्कीर्त्तयः १ सातं १ हास्य-रती २ पुवेदः १ गोत्रद्विकं २ चेति
द्वात्रिंशत्प्रकृतयः सप्रतिपक्षे सान्तरा भवन्ति, तस्मिन्पक्षे निरन्तरोदयबन्धा भवन्ति । तत्र सुरद्विक नरक-
तिर्यङ्-मनुष्यद्विकैः मिथ्यादृष्टौ, तिर्यङ्-मनुष्यद्विकाभ्यां सासादने, मनुष्यद्विकेन मिश्रास्यतयोश्च सप्रति-
पक्षमिति ज्ञेयम् ॥७७॥

इति तृतीयप्रश्नत्रयस्योत्तरो जातः* ।

शेष वच्ची वत्तीस प्रकृतियोंका बन्ध परमागममे उभयरूप अर्थात् सान्तर और निरन्तर कहा गया है ॥७७॥

उभयबन्धी प्रकृतियों ३२ ।

इस प्रकार नवप्रश्नात्मक चूलिका समाप्त हुई ।

कर्मस्तव नामक तीसरा अधिकार समाप्त हुआ ।

१ मं० पञ्चम० ३, ६६ । २ ३, १००-१०१ ।

*इतोऽग्नेऽथस्तनः सन्दर्भ उपलभ्यते—

इति श्रीपद्मसंग्रहाऽपरनामलघुगोमट्टसारे सिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे नवप्रश्नोत्तरचूलिका-व्याख्या-
तृतीयोऽधिकारः ॥३॥

चतुर्थ-अधिकार

शतक

मंगलाचरण और प्रतिज्ञा—

सयलससिसोमवयणं णिम्मलगतं पसत्थणाणधरं ।
पगमिय सिरसा वीरं सुयणाणादो पदं वोच्छं ॥१॥

श्रीवीरेन्दुसुधीभूपान् साधून् सद्गुणधारकान् ।
प्रणिपत्य स्तवं (पदं) वक्ष्ये वीरनाथमुखोद्भवम् ॥

वक्ष्ये अहं वक्ष्यामि । किं तत् ? पदं स्थान स्थलम्, 'थव' पाठे वा स्तव द्वादशाङ्गश्रुतरहस्यम् । कुतः ? श्रुतज्ञानात् । किं कृत्वा ? पूर्वं वीर शिरसा प्रणम्य । विशिष्टां मा लक्ष्मीं राति ददाति गृह्णातीति वीरः, त वीर महावीरं मस्तकेन नमस्कृत्य । कथम्भूतम् ? सम्पूर्णचन्द्रसदृशसौम्यवदनम् । पुनः किं-
शिष्टम् ? निर्मलगात्रं प्रस्वेद-मल मूत्रादिरहितशरीरम् । पुनः किंलक्षणम् ? प्रशस्तज्ञानधरम्—गृहस्थाऽ-
वस्थायां मत्यादिप्रशस्तज्ञानत्रयधारकम्, दीक्षानन्तर मनःपर्ययज्ञानधारकम्, घातिक्षयानन्तरं केवलज्ञान-
धारकम् । पुनर्भूत वीरं नत्वा पदं स्तवं वा वक्ष्ये ॥१॥

सम्पूर्ण चन्द्रके समान सौम्य मुख, निर्मल गात्र और प्रशस्त ज्ञानके धारक श्रीवीरभगवान्-
को मस्तक नवा करके प्रणामकर मैं श्रुतज्ञानसे पदका उद्धार करके कहूँगा ॥१॥

¹णाणोदहिणिस्संदं विण्णाणतिसाहिघायजणणत्थं ।
भवियाण × अमियभूयं जिणवयणरसायणं इणमो ॥२॥

जिनवचनरसायनं हृदानीं भो भव्या यूयं शृणुत । कथम्भूत जिनवचनम् ? रसामृतम्—भविकानां
भव्यजनानां अमृतभूतं जन्म-जरा-मरणहरम् । पुनः किम्भूतम् ? जिनोदधिनिर्वासम्—ज्ञानसमुद्रस्य निर्वासं
सारभूतम् । किमर्थम् ? विज्ञानतृप्ताभिधातजननार्थम् ॥२॥

यह जिनवचनरूप रसायन श्रुतज्ञानरूप समुद्रका निष्पन्द (निचोड़ या साररूप विन्दु) है,
तथापि भव्य जीवोकी विशिष्ट ज्ञानकी प्राप्तिरूप तृप्ता-पिपासाको शान्त करनेके लिए अमृतके
समान है ॥२॥

[मूलगा० १] ^१सुणह इह जीवगुणसण्णिएसु^१ ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
वोच्छं कदिवइयाओ गाहाओ दिड्ढिवादाओ^१ ॥३॥

दृष्टिवादाद्गतः कतिपयगाथा. सारयुक्ताः तत्त्वसहिताः अह वक्ष्ये । क ? स्थानेषु मार्गणादिस्थानेषु ।
कथम्भूतेषु ? जीवगुणसन्निभेषु—जीवानां गुणाः परिणामाः, तत्सदृशस्थानेषु जीवसमास-गुणस्थानक-
सन्निभेषु ॥३॥

जीवसमास और गुणस्थान-सम्बन्धी सार-युक्त कुछ गाथाओंको दृष्टिवादसे उद्धार करके
मैं कहूँगा, सो हे मन्व्यजीवो ! तुम लोग सावधान होकर सुनो ॥३॥
[मूलगा० २] ^२उवओगा जोगविही जेसु य ठाणेसु जेत्तिया अत्थि ।
जं पच्चइओ बंधो हवइ जहा जेसु ठाणेसु^२ ॥४॥

[मूलगा० ३] बंध-उदया^३ उदीरण^३ विधिं च तिण्हं पि तेसि संजोगो ।
बंध-विधानो^३ × य तहा किंचि समासं पवक्खामि^३ ॥५॥

उपयोगा ज्ञान दर्शनोपयोगाः । योगविधयः औदारिकादिससकाययोगाः, मनोवचनानामष्टौ, तेषां
विधयः विद्यानानि कर्तव्यानि येषु स्थानेषु मार्गणादिस्थानेषु यावन्ति सन्ति, तान् तेषु प्रवक्ष्यामि । य-
द्यत्ययः बन्धः मिथ्यात्वाद्यास्तबन्धः येषु स्थानेषु यथा भवति तथा तं तेषु प्रवक्ष्यामि । बन्धोदयोदीरणविधिं
मूलोत्तरप्रकृतीनां बन्धविधिं उदयविधान उदीरणविधिं चकारात्सत्त्वविधिं तेषु गुणेषु स्थानेषु प्रवक्ष्यामि—
तेषां त्रयाणां बन्धोदयोदीरणानां संयोगान् प्रवक्ष्यामि । क ? बन्धविधाने बन्धविधौ तथा किञ्चित् समास
इति जीवसमासान् प्रवक्ष्यामि तेषु स्थानेषु ॥४-५॥

^३ ये सन्ति यस्मिन्नुपयोगयोगाः सप्रत्ययास्तान्निगदामि तत्र ।

जीवे गुणे वा परिणामतोऽहमेकत्र बन्धादिविधिं च किञ्चित् ॥१॥

जिन जीवसमास या गुणस्थानोमे जितने योग और उपयोग होते हैं, जिन-जिन स्थानोमे
जिन-जिन प्रत्ययोंके निमित्तसे जिस प्रकार बन्ध होता है; तथा बन्ध, उदय और उदीरणके
जितने विकल्प संभव हैं और उन तीनोंके संयोगरूप जितने भेद हो सकते हैं, उन्हें तथा बन्धके
चारो भेदोंका मैं संक्षेपसे कुछ व्याख्यान करूँगा ॥४-५॥

[मूलगा० ४] ^४एइंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव ।
पंचिंदिएसु एवं चत्तारि हवंति ठाणाणि^४ × ॥६॥

[मूलगा० ५] ^५तिरियगईए चोइस हवंति सेसासु जाण दो दो दु ।
मग्गणठाणस्सेवं पेयाणि समासठाणाणि^५ ॥७॥

+ अथ मार्गणासु जीवसमासाः कथ्यन्ते—तिर्यग्गतौ चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति । शेषासु तिसृषु
गतिषु द्वौ द्वौ जीवसमासौ भवतः । एवं गतिमार्गणाया जीवसमासा ज्ञातव्याः ॥७॥

जीवसमासके सर्व स्थान चौदह है, उनमेंसे एकेन्द्रियोमे चार स्थान होते हैं । विकलेन्द्रियों-
मे छह स्थान होते हैं और पंचेन्द्रियोंमे चार स्थान होते हैं । तिर्यग्गतिमें चौदह जीवसमास होते

१. स० पञ्चस० ४, २ । २. ४, ३ । ३. ४, ३ । ४. ४, ४ । ५. ४, ५ ।

१. शतक० १ । २. शतक० २ । ३. शतक० ३ । ४. शतक० ४ । ५. शतक० ५ ।

ॠद् -सण्णिएसु । †व उदय । ‡व -उदीरण । × द ब -विधाने वि । + सस्कृतटीका नोपलभ्यते ।

हैं। शेष तीन गतियोंमें दो-दो ही जीवसमास जानना चाहिए। इस प्रकार सर्व मार्गणास्थानोंमें भी जीवसमासस्थानोंको लगा लेना चाहिए ॥६-७॥

अब चौदह मार्गणाओंमें जीवसमासोंको बतलाते हैं—

णिरय-णर-देवगईसुं सण्णी पज्जत्तया अपुण्णा य ।

एहंदिआइं चउदस तिरियगईए हवन्ति सन्वे वि ॥८॥

एहंदिएसु बायर-सुहुमा चउरो अपुण्ण पुण्णा य ।

पज्जत्तियरा वियल[†] सयल[‡] सण्णी असण्णिदरा पुण्णियरा ॥९॥

पंचसु थावरकाए बायर सुहुमा अपुण्ण पुण्णा य ।

वियले पज्जत्तियरा सयले सण्णियर पुण्णियरा ॥१०॥

नरकगतौ पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तोऽपर्याप्तौ द्वौ द्वौ, मनुष्यगत्यां पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तौ द्वौ द्वौ, देवगतौ पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तोऽपर्याप्तौ द्वौ द्वौ, तिर्यग्गत्यां एकेन्द्रियादिचतुर्दशजीवसमासाः सर्वे १४ भवन्ति ॥८॥

ते के ?

बायर-सुहुमेगिदिय वि-ति- चउरक्खा असण्णि-सण्णी य ।

पज्जत्ताऽपज्जत्ता जीवसमासा चउदसा होंति ॥२॥ इति ।

१ गतिमार्गणाया जीवसमासाः— न० ति० म० दे०
२ १४ २ २

इन्द्रियमार्गणायां एकेन्द्रियेषु बादर-सूक्ष्मेकेन्द्रियो पर्याप्तोऽपर्याप्तौ इति चत्वारः ४ । विकले विकलत्रये द्वीन्द्रिये त्रीन्द्रिये चतुरिन्द्रिये च पर्याप्तेतरौ निजपर्याप्तोऽवपर्याप्तौ द्वौ द्वौ प्रत्येक भवतः २, २, २ । सकले पञ्चेन्द्रिये सङ्घसंज्ञि-पर्याप्तोऽपर्याप्तश्चत्वारः ४ । ॥९॥

२ इन्द्रियमार्गणायां जीवसमासाः— ए० द्वी० त्री० च० प०
४ २ २ २ ४

कायमार्गणायां पृथिव्यादिपञ्चसु प्रत्येक बादर-सूक्ष्मौ पर्याप्तोऽपर्याप्तौ इति चत्वारः स्थावरकाये जीवसमासा भवन्ति । विकले विकलत्रये पर्याप्तोऽपर्याप्ता इति पट् । सकले पञ्चेन्द्रिये सङ्घसंज्ञि-पर्याप्तोऽपर्याप्ता इति चत्वारः । एव दश जीवसमासाः १० त्रसकाये भवन्ति ॥१०॥

३ कायमार्गणायां जीवसमासाः— पृ० अ० ते० वा० व० त्र०
४ ४ ४ ४ ४ १०

नरक, मनुष्य और देव इन तीन गतियोंमें संज्ञि-पर्याप्तक और संज्ञि-अपर्याप्तक ये दो-दो जीवसमास होते हैं । तिर्यग्गतिमें एकेन्द्रियको आदि लेकर संज्ञिपञ्चेन्द्रिय तकके जीवोंकी अपेक्षा सर्व ही चौदह जीवसमास होते हैं (१) । इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोमें बादर-पर्याप्त, बादर-अपर्याप्त, सूक्ष्म-पर्याप्त और सूक्ष्म-अपर्याप्त ये चार जीवसमास होते हैं । विकलेन्द्रियोमें द्वीन्द्रिय-पर्याप्त, द्वीन्द्रिय-अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय-पर्याप्त, त्रीन्द्रिय-अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय-पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्त ये छह जीवसमास होते हैं । पञ्चेन्द्रियोमें असंज्ञि-पर्याप्त, असंज्ञि-अपर्याप्त; संज्ञि-पर्याप्त और संज्ञि-अपर्याप्त ये चार जीवसमास होते हैं (२) । कायमार्गणाकी अपेक्षा पोंचो स्थावरकायो-मेंसे प्रत्येकमें बादर-सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त; ये चार-चार जीवसमास होते हैं । त्रसजीवोंमेंसे विकलत्रयोंमें प्रत्येकके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो जीवसमास होते हैं । तथा सकलेन्द्रियोमें संज्ञी, असंज्ञी तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो-दो मिलकर चार जीवसमास होते हैं (३) ॥८-१०॥

†व -वियले । ‡व सयले ।

तिय वचि चउ मणजोए सण्णी पज्जत्तओ दु णायव्वो ।

असच्चमोसवचिए पंच वि वेहंदियाइ पज्जत्ता ॥११॥

ओरालमिस्स-कम्मे सत्ताऽपुण्णा य सण्णिपज्जत्तो ।

ओरालकायजोए पज्जत्ता सत्त णायव्वा ॥१२॥

वेउव्वाहारदुगे सण्णी पज्जत्तओ मुणोयव्वो ।

वेउव्वमिस्सजोए सण्णि-अपज्जत्तओ होइ ॥१३॥

योगमार्गणाया त्रिकवचनयोगेषु चतुर्मनोयोगेषु च पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्त एक एव ज्ञातव्यः १ । असत्यमृषावचि अनुभयवाग्योगे द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-संज्ञ्यऽसंज्ञिपर्याप्ताः पञ्च जीवसमासाः भवन्ति ॥११॥

औदारिकमिश्रकाययोगे कर्मणकाययोगे च अपर्याप्ताः सप्त, सयोगिकेवलिनः संज्ञिपर्याप्त एकः, एवमष्टौ ८ । सयोगस्य कपाट्युगमसमुद्घातकाले औदारिकमिश्रकाययोगः, दण्ड- (द्वय-) प्रतरयोः लोकपूरण-काले च कर्मणकाययोग इति । औदारिककाययोगे सप्त पर्याप्ताः ७ ज्ञातव्याः ॥१२॥

वैक्रियिककाययोगे संज्ञिपर्याप्त एकः १ । आहारकद्विके संज्ञ्यऽपर्याप्त एक एव १ ज्ञातव्यः । वैक्रियिकमिश्रकाययोगे पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यऽपर्याप्तो भवति १ ॥१३॥

४ योगमार्गणायां स० मृ० उ० अ० स० मृ० उ० अ० औ० औ० मि० वै० वै० मि० आ० आ० मि० का०
जीवसमासाः— १ १ १ १ १ १ १ ५ ७ ८ १ १ १ १ ८

योगमार्गणाकी अपेक्षा असत्यमृषावचनयोगको छोड़कर शेष तीन वचनयोगोमें और चारो मनोयोगोमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास जानना चाहिए । असत्यमृषावचनयोगमें द्वीन्द्रियादि पाँच पर्याप्तक जीवसमास होते हैं । औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगमें सातो अपर्याप्तक तथा संज्ञिपर्याप्तक ये आठ जीवसमास होते हैं । औदारिककाययोगमें सातो पर्याप्तक जीवसमास जानना चाहिए । वैक्रियिककाययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास जानना चाहिए । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास होता है ॥११-१३॥

इत्थि-पुरिसेसु णेया सण्णि असण्णी अपुण्ण पुण्णा य ।

संठे कोहाईसु य जीवसमासा हवन्ति सव्वे वि ॥१४॥

स्त्रीवेदे पुवेदे च पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यऽसंज्ञिनौ पर्याप्ताऽपर्याप्तौ इति चत्वारः ४ । पण्डवेदे क्रोधकपाये मानकपाये मायाकपाये लोभकपाये च सर्वे चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति ॥१४॥

५ वेदमार्गणायां स्त्री० पु० नपु० | ६ कपायमार्गणायां क्रो० मा० भा० लो०
जीवसमासाः— ४ ४ १४ | जीवसमासाः— १४ १४ १४ १४

वेदमार्गणाकी अपेक्षा स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें सञ्जी, असंज्ञी, पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये चार जीवसमास होते हैं । नपुंसकवेदमें तथा कपायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि चारो कपायोमें सर्व ही जीवसमास होते हैं ॥१४॥

मइ-सुय-अण्णाणेसु य चउदस जीवा सुओहिमइणाणे ।

सण्णी पुण्णापुण्णा विहंग-मण-केवलेसु संपुण्णो ॥१५॥

मति-श्रुताज्ञानद्वये चतुर्दश जीवसमासाः स्युः १४ । श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने मतिज्ञाने च पञ्चेन्द्रिय-संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ २ । विभगज्ञाने मनःपर्ययज्ञाने केवलज्ञाने च पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तः पूर्णपर्याप्त एक एव १ । केवलज्ञाने तु संज्ञिपर्याप्तसयोगेऽपर्याप्तौ (सयोगे संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ) द्वौ । अयं विशेषः गोमट्ट-सारेऽस्ति ॥१५॥

ज्ञानमार्गणायां जीवसमासाः— कुम० कुश्रु० विभ० मति० श्रु० अव० मनः केव०
१४ १४ १ २ २ २ १ १

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानमें चौदह ही जीवसमास होते हैं । मति, श्रुत और अवधिज्ञानमें संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास होते हैं । विभगावधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास होता है ॥१५॥

सामाह्याइ-छस्सु य सण्णी पज्जत्तओ मुणेयव्वो ।

अस्संजमे अचक्खु चउदस जीवा हवन्ति णायव्वा ॥१६॥

चक्खुदंसे छद्वा जीवा चउरिंदियाइ ओहम्मि ।

सण्णी पज्जत्तियरा केवलदंसे य सण्णि-संपुण्णो ॥१७॥

सामायिकादिषु षट्सु पञ्चेन्द्रियसंज्ञी पर्याप्तको मन्तव्यः । सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः संज्ञि-पर्याप्ताऽऽहारकाऽपर्याप्तौ द्वौ, अयं तु विशेषः । देशसंयम-परिहारविशुद्ध-सूक्ष्मसाम्परायेषु पञ्चेन्द्रियसंज्ञि-पर्याप्त एक. १ । यथाख्याते तु संज्ञिपर्याप्त-समुद्घातकेवल्यऽपर्याप्तौ द्वौ २, अयमपि विशेषः । असंयमे अचक्षुर्दर्शने च चतुर्दश जीवसमासा ज्ञातव्याः ॥१६॥

८ संयममार्गणायां जीवसमासाः— सा० छे० परि० सू० यथा० देश० असं०
१ १ १ १ १ १ १ १४

चक्षुर्दर्शने चतुरिन्द्रियाऽसंज्ञि-संज्ञि-पर्याप्ताऽपर्याप्ताः षट् ६ । अपर्याप्तकालेऽपि चक्षुर्दर्शनस्य त्रयोप-शमसद्भावात्, शक्त्यपेक्षया वा षड्धा जीवसमासा भवन्ति ६ । अवधिदर्शने पञ्चेन्द्रियमज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ २ । केवलदर्शने संज्ञिसम्पूर्णपर्याप्त एकः । समुद्घातसयोग्यऽपर्याप्तो विशेषः ॥१७॥

९ दर्शनमार्गणाया जीवसमासाः— चक्षु० अच० अव० केव०
६ १४ २ २

संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक आदि पाँच संयम और देशसंयम, इन छहोमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास जानना चाहिए । असंयम और दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा अचक्षुदर्शनमें चौदह ही जीवसमास जानना चाहिए । चक्षुदर्शनमें चतुरिन्द्रियादि छह जीवसमास होते हैं । अवधिदर्शनमें संज्ञिपर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास होते हैं । केवलदर्शनमें एक संज्ञि-पर्याप्तक जीवसमास होता है ॥१६-१७॥

किंहाइतिए चउदस तेआइतिए य सण्णि दुविहा वि ।

भव्वाभव्वे चउदस उवसमसम्माइ सण्णि-दुविहो वि ॥१८॥

सासणसम्मे सत्त अपज्जत्ता होंति सण्णि-पज्जत्तो ।

मिस्से सण्णी पुण्णो मिच्छे सव्वे वि बोहव्वा ॥१९॥

कृष्णादित्रिके अशुभलेश्यासु तिसृषु प्रत्येक चतुर्दश जीवसमासाः स्युः १४ । तेजोलेश्यादित्रिके पीत-पद्म-शुक्लेश्यासु तिसृषु प्रत्येक पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ द्वौ २ । शुक्लेश्यायां विशेषः— केवल्यऽपर्याप्ताऽपर्याप्ते एवान्तर्भावाद् द्वौ २ । भव्याऽभव्ययोः चतुर्दश जीवसमासाः १४ । उपशमसम्यक्त्वादिषु त्रिषु पञ्चेन्द्रियसंज्ञिद्विविधः पर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ २ भवतः । अत्र विशेषः । को विशेषः ? प्रथमोपशमसम्यक्त्वे मरणाभावात्संज्ञिपर्याप्त एक एव २ । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे मनुष्यसंज्ञिपर्याप्तदेवास्यतापर्याप्तौ द्वौ २ । वेदकसम्यक्त्वे संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्ता द्वौ २ । अपर्याप्तः कथम् ? घर्मानारकस्य भवनत्रयवर्जित-देवस्य भोगभूमिनर-तिरश्चोः अपर्याप्तत्वेऽपि तत्सम्भवात् । क्षायिकसम्यक्त्वे तु जीवसमासौ द्वौ संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ । संज्ञिपर्याप्तः १, वद्धायुष्कापेक्षया घर्मानारक-भोगभूमिनर-तिर्यग्-वैमानिकदेवाऽपर्याप्तश्चेति १, [एवं] द्वौ २ । ॥१८॥

१० लेश्यामार्गणाया जीवसमासाः—

कृ०	नी०	का०	ते०	प०	शु०
१४	१४	१४	२	२	२

११ भव्यमार्गणाया जीवसमासाः—

भव्य०	अभव्य०
१४	१४

१२ सम्यक्त्वमार्गणाया जीवसमासाः—

प्रथ०	द्विती०	वे०	ज्ञा०	सा०	मिश्र	मिथ्या०
१	२	२	२	८, ७, २	१	१४

सासादनसम्यक्त्वे अपर्याप्ताः सप्त भवन्ति, एकः पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तो भवति १, एवमष्टौ ८ । तद्यथा—चादर एकेन्द्रियापर्याप्तः १, द्वि त्रि-चतुरिन्द्रियापर्याप्ता ३, पञ्चेन्द्रिय-तत्संज्ञ्यऽसंज्ञ्यऽपर्याप्तौ द्वौ २, संज्ञिपर्याप्तः एकः १, एव सप्त ७ । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकस्य सासादनत्वप्राप्तिपक्षे च संज्ञिपर्याप्तदेवापर्याप्तावपि द्वौ सासादने ॥१२॥ अत्र द्वितीयोपशमे श्रेणिपरिभृष्ट[स्य] निश्चयेन देवगतौ गमन भवति, तेन देवभवेऽपर्याप्तकाले सास्वादनः प्राप्यते । तेन सास्वादने सप्ताऽपर्याप्ता जीवसमासा भवन्ति ८ । अत्र विशेषविचारोऽस्ति । मिश्रे पञ्चेन्द्रियसंज्ञी पूर्णः एकः १ । मिथ्यात्वे सर्वे चतुर्दश जीवसमासा ज्ञातव्याः १४ ॥१६॥

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्णादि तीनों अशुभलेश्याओंमें चौदह-चौदह जीवसमास होते हैं । तेज आदि तीनों शुभलेश्याओंमें संज्ञिपर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास होते हैं । भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्य और अभव्यके चौदह ही जीवसमास होते हैं । सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा औपशमिकसम्यक्त्व आदि तीनों सम्यग्दर्शनोमें संज्ञिपर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो-दो जीवसमास होते हैं । सासादनसम्यक्त्वमें विग्रहगतिकी अपेक्षा सातो अपर्याप्तक और संज्ञिपर्याप्तक ये आठ जीवसमास होते हैं । मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास होता है । मिथ्यात्वमें सर्वे दो जीवसमास जानना चाहिए ॥१८-१६॥

सण्णिम्मि सण्णि-दुविहो इयरे ते वज्ज वारसाहारे ।

चउदस जीवा इयरे सत्त अपुण्णा य सण्णि-संपुण्णा ॥२०॥

एवं मगणासु जीवसमासा समत्ता ।

संज्ञिमार्गणायां संज्ञिजीवे पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ २ । इतरे असंज्ञिजीवे तौ सञ्च्युक्त-पर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ वर्जयित्वा अन्ये द्वादश भवन्ति १२ । आहारमार्गणाया आहारकजीवे चतुर्दश जीवसमासाः स्युः १४ । इतरे अनाहारकजीवे विग्रहगतिमाश्रित्य अपर्याप्ताः सप्त ७, संज्ञिपर्याप्त एक १, एवमष्टौ ८ । सयोगस्य प्रतरद्वये लोकपूर्णकाले कर्मणस्य अनाहारकत्वात् संज्ञिपूर्णः एक ॥२०॥

१३ संज्ञिमार्गणायां जीवसमासाः—

स०	असं०	१४ आहारमार्गणायां जीवसमासाः—	आ०	अना०
२	१२		१४	८

इति चतुर्दशसु मार्गणासु जीवसमासाः समाप्ता ।

अथ गोमट्टसारे गुणस्थानेषु जीवसमासानाह—

मिच्छे चोद्दस जीवा सासण अयदे पमत्तविरदे य ।

सण्णिदुगं सेसगुणे सण्णीपुण्णो दु खीणो त्ति ॥३॥

मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश १४ । सासादनेऽविरते प्रमत्ते चशब्दात्सयोगे च पञ्चेन्द्रियसंज्ञि-
पर्याप्ती द्वौ २ । जेपाष्टगुणस्थानेषु अपिशब्दादयोगे च सञ्ज्ञिपर्याप्त एक एव १ ।

गुणस्थानेषु	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
जीवसमासा—	१४	२	१	२	१	२	१	१	१	१	१	१	२	१

इति मार्गणा-गुणस्थानेषु जीवसमासा समाप्ताः ।

अथ गुणस्थानेषु पर्याप्तीः प्राणाश्चाऽऽह—

पज्जत्ती पाणा वि य सुगमा भाविदियं ण जोगिम्हि ।

तहि वाचुस्सासाङ्गकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ ॥४॥

मिथ्यादृष्टादिक्षीणकपायपर्यन्तेषु पट् पर्याप्तयः ६, दश प्राणाः १० । सयोगिजिने भावेन्द्रियं न,
द्रव्येन्द्रियाऽपेक्षया पट् पर्याप्तयः ६, वागुच्छ्वासनिःश्वासाऽऽयु कायप्राणाश्चत्वारश्च भवन्ति ४ । शेषेन्द्रिय-
मनः—प्राणाः पट् न सन्ति, तत्रापि वायुयोगे विश्रान्ते त्रयः ३ । पुनः उच्छ्वास-निःश्वासे विश्रान्ते द्वौ २ ।
अयोगे आयुःप्राणः एतः १ ।

गुणस्थानेषु पर्याप्तयः प्राणाश्च—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	देश०	प्रम०	अप्र०	अ०	अ०	सू०	उप०	क्षी०	सयो०	अयो०
पर्याप्ति	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	द्र० ६	०
प्राण	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	४, ३, २	१

अथ गुणस्थानेषु सज्ञा—

छट्ठो त्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणवेक्खा ।

पुण्यो पढमणियट्ठो सुहुसो त्ति कमेण सेसाओ ॥५॥

मिथ्यादृष्टादिप्रमत्तान्तं सकार्याः आहार-भय-मैथुन-परिग्रह-सज्ञाश्चतस्रः ४ स्युः । पष्टे गुणस्थाने
आहारसज्ञा व्युच्छिन्ना, शेषास्तिस्रः अप्रमत्तादिषु कारणास्तित्वाऽपेक्षया अपूर्वकरणान्त कार्यरहिता भवन्ति ३ ।
तत्र भयसज्ञा व्युच्छिन्ना । अन्निवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागे कार्यरहिते मैथुन-परिग्रहसज्ञे द्वे स्तः २ । तत्र
मैथुनसज्ञा व्युच्छिन्ना । सूक्ष्मसाम्पराणे परिग्रहसज्ञा व्युच्छिन्ना । उपशान्तादिषु कार्यरहिताऽपि न, कारणा-
भावे कार्यस्याभावः ।

गुणस्थानेषु सज्ञा—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
					१		१	१	१				
४	४	४	४	४	४	३	३	२	१	०	०	०	०

इति गोमट्टसारोक्तविचारः ।

संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञिपचेन्द्रियोमे संज्ञिपर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास
होते हैं । असंज्ञिपचेन्द्रियोमे संज्ञिपचेन्द्रिय-सम्बन्धी दो जीवसमास छोड़कर शेष वारह जीव-
समास होते हैं । आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंमें चौदह ही जीवसमास होते हैं ।
अनाहारकोंमें सातों अपर्याप्तक और एक संज्ञिपर्याप्तक ये आठ जीवसमास होते हैं ॥२०॥

इस प्रकार चौदह मार्गणाओंमें जीवसमासोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अव जीवसमासस्थानोंमें उपयोगका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६] ^१एयारसेसु ति ति यां दोसु चउक्कं च वारमेकस्मि ।
जीवसमासस्सेदे उवओगविही मुणेयन्वा^१ ॥२१॥

अथ जीवसमासेषु यथासम्भवमुपयोगान् गाथात्रयेणाऽऽह—[‘एयारसेसु तिणिण य’इत्यादि ।]
एकादशसु जीवसमासेषु त्रय उपयोगाः स्युः ३ । द्वयोर्जीवसमासयोश्चतुष्क चत्वार उपयोगाः सन्ति ४ ।

एकस्मिन् जीवसमासे द्वादश उपयोगा भवन्ति । जीव० ११ २ १ इति जीवसमासेषु एते उप-
उप० ३ ४ १२ इति जीवसमासेषु एते उप-
योगविधयः विधानानि ज्ञातव्याः ॥२१॥

ग्यारह जीवसमासोंमें तीन-तीन उपयोग होते हैं । दो जीवसमासोंमें चार-चार उपयोग होते हैं । एक जीवसमासमें बारह ही उपयोग होते हैं । इस प्रकार जीवसमासोंमें यह उपयोग-विधि जानना चाहिए ॥२१॥

भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त मूलगाथाका स्पष्टीकरण—

^२मइ-सुअ-अण्णाणाइं अचक्खु एयारसेसु तिण्णेव ।
चक्खूसहिया ते च्चिय चउरक्खे असण्णि-पज्जत्ते ॥२२॥
मइ-सुय-ओहिदुगाइं सण्णि-अपज्जत्तएसु उवओगा ।
सव्वे वि सण्णि-पुण्णे उवओगा जीवठाणेषु ॥२३॥

सूचम-बादर एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रियाः पर्याप्ताऽपर्याप्ताः एतेऽष्टौ ८ । चतुः-पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यऽ
संज्ञिनः अपर्याप्तास्त्रयः ३ एवमेकादशजीवसमासेषु मति-श्रुताज्ञाने द्वे २, अचक्षुर्दर्शनमेक १ इति त्रयः
उपयोगाः ३ भवन्ति । ते त्रयः चक्षुर्दर्शनसहिताः चतुरिन्द्रियपर्याप्ते असंज्ञिपर्याप्ते च द्वयोर्जीवसमासयो-
चत्वार उपयोगाः ४ स्युः ॥२२॥

पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्तकर्जीवेषु मति-श्रुतावधिद्विक मतिज्ञान १ श्रुतज्ञान १ अवधिद्विक अवधिज्ञान-
दर्शनद्वय २ चकारात् अचक्षुर्दर्शन १ इति पञ्च उपयोगा ५ । कुमति-कुश्रुतज्ञानद्वयमिति सप्त केचिद्
वदन्ति अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसंज्ञिजीवेषु भवन्तीति विशेषणाल्पेयम् । तन्मिथ्यादक्षु कुमति-कुश्रुताऽचक्षुर्दर्शन-
त्रिकं ज्ञेयमिति । संज्ञिपूर्णं पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तेषु जीवेषु सर्वे ज्ञानोपयोगा अष्टौ, दर्शनोपयोगाश्चत्वारः ४
इति द्वादशोपयोगाः १२ स्युः । केवलज्ञान-दर्शनद्वय विना दशोपयोगा १० इति केचिद् । जीवसमासेषु
स्थानेषु उपयोगाः कथिताः ॥२३॥

जीवसमासेषु उपयोगाः—

एके० एके० एके० एके० द्वी० द्वी० त्री० त्री० चतु० चतु० पचे० पंचे० पचे० पचे०
सू०अ० सू०प० वा०अ० वा०प० अप० पर्या० अप० पर्या० अप० पर्या० अम०अ अस प स अ. स प.
३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३।४ ४ ३।४ ४ ३।४।५।७ १२।१०

इति जीवसमासेषु उपयोगाः कथिताः ।

१ सं पञ्चसं ४, ६ (पृ० ८१) २. ४, ‘केवलद्वयमतः पर्यवर्णिता’ इत्यादि गद्यभागः (पृ० ७८) ।

१. शतक ६ ।

† ति ति तिणिण य ।

चतुर्दशमार्गणास्थानेषु उपयोगाः—

गतिमार्गणायां—	इन्द्रियमार्गणायां—	कायमार्गणायां—	योगमार्गणायां—
न० लि० म० दे० ६ ६ १२ ६	ए० द्वी० त्री० च० प० ३ ३ ३ ४ १२	पृ० अ० ते० वा० व० त्र० ३ ३ ३ ३ ३ १२	
मनोयोगे—	वचनयोगे—	काययोगे—	
स० मृ० स० अ० १२ १० १० १२	स० मृ० स० अ० १२ १० १० १२	ओ० औ० मि० वै० वै० मि० आ० आ० मि० का० १२ ६ ६ ७ ६ ६ ६	
वेदमार्गणायां—	कपायमार्गणायां—	ज्ञानमार्गणायां—	
स्त्री० पु० न० ६ १० ६	क्रो० मा० माया० लो० १० १० १० १०	कु० कुश्रु० वि० म० श्रु० अव० म० के० ५ ५ ५ ७ ७ ७ ७ २	
सयममार्गणायां—	दर्शनमार्गणायां—	लेख्यामार्गणायां—	
सा० ज्ञे० प० सू० य० सं० अ० ७ ७ ६ ७ ६ ६ ६	च० अच० अव० के० १० १० ७ २	कृ० नी० का० ते० प० शु० ६ ६ ६ १० १० १२	
भव्यमार्गणायां—	सम्यक्त्वमार्गणायां—	संज्ञिमार्गणायां—	आहारमार्गणायां—
म० अ० १० ५	औ० वे० क्षा० सा० मिश्र मि० ६ ७ ६ ५ ६ ५	स० अ० १० ४	आ० अना० १२ ६

एकेन्द्रियोके बाहर, सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये चार; द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय-सम्बन्धी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये चार; तथा चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी अपर्याप्तक ये तीन; इस प्रकार इन ग्याग्रह जीवसमासोंमें मत्त्यज्ञान, श्रुताज्ञान और अचक्षुदर्शन; ये तीन-तीन उपयोग होते हैं। चतुरिन्द्रिय और असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तक इन दो जीवसमासोंमें चक्षुदर्शनसहित उपर्युक्त तीन उपयोग, इस प्रकार चार-चार उपयोग होते हैं। मिथ्यादृष्टि संज्ञिपंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवोंमें उपर्युक्त चार, तथा सम्यग्दृष्टि संज्ञि अपर्याप्तकोंमें मति, श्रुत और अवधिद्विक ये चार उपयोग होते हैं। संज्ञिपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें सर्व ही अर्थात् बारह ही उपयोग होते हैं। इस प्रकार चौदह जीवसमासोंमें उपयोगोंका वर्णन किया गया ॥२२-२३॥

मार्गणास्थानोंमें उपयोगोंका निरूपण—

^१केवलदुय मणवज्जं णिरि तिरि देवेसु होति सेसा दु ।

मणुए बारह णेया उवओगा मग्गणस्सेवं ॥२४॥

अथ रचना—रचितमार्गणासु यथासम्भ्रमुपयोगान् गाथासप्तदशकेनाऽऽह—[‘केवलदुय मणवज्जं’ इत्यादि ।] गुणपर्ययत्रयस्तु, तद्-ग्रहणव्यापार उपयोगः । ज्ञान न वस्तूत्थम् । तथा चोक्तम्—

स्वहेतुजनितोऽयर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा ।

तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ॥६॥

[ज्ञान] न पदार्थाऽऽलोककारणक, परिच्छेद्यत्वात्; तमोवत् । स उपयोगः ज्ञान-दर्शनभेदाद् द्वेधा । तत्र ज्ञानोपयोगः कुमति-कुश्रुत-विभङ्ग मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानभेदादृष्ट्या । दर्शनोपयोगः चक्षुर-चक्षुरवधि-केवलदर्शनभेदाच्चतुर्धा । तत्र नरक-तिर्यग्देवगतिषु तिसृषु प्रत्येकं केवलज्ञान-दर्शन-मनःपर्ययत्रय-वर्जिताः णेया नवोपयोगा ६ भवन्ति । तु पुनः मनुष्यगत्या द्वादशोपयोगा ज्ञेयाः १२ । एव गतिमार्गणायां ज्ञातव्याः ॥२४॥

गतिमार्गणाकी अपेक्षा नरक, तिर्यच और देवगतिमे केवलद्विक और मनःपर्ययज्ञान इन तीनको छोड़कर शेष नौ-नौ उपयोग होते हैं। मनुष्यगतिमें बारह ही उपयोग होते हैं। शेष मार्गणाओमें उपयोग इस प्रकार ले जाना चाहिए ॥२४॥

वि-ति-एहंदियजीवे अचक्खु मइ सुइ अणाणा उवओगा ।

चउरक्खे ते चक्खुजुत्ता सव्वे वि पंचक्खे ॥२५॥

इन्द्रियमार्गणायां एकेन्द्रिये द्वीन्द्रिये त्रीन्द्रिये च अचक्षुर्दर्शनमेकम् १, मति-श्रुताज्ञानद्विकम् २ इति उपयोगाश्चयः स्युः ३। चतुरक्षे चतुरिन्द्रिये ते पूर्वोक्ताश्चयः चक्षुर्दर्शनयुक्ता इति चत्वारः ४। पञ्चाक्षे पञ्चेन्द्रिये सर्वे द्वादशोपयोगाः स्युः १२। उपचारतो द्वादश १०, अन्यथा दश १०। जिनस्योपचारतः पञ्चेन्द्रियत्वमिति ॥२५॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीवोमें अचक्षुर्दर्शन, मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान ये तीन तीन उपयोग होते हैं। चतुरिन्द्रियजीवोमें चक्षुर्दर्शनसहित उक्त तीनों उपयोग, इस प्रकार चार उपयोग होते हैं। पंचेन्द्रियोंमें सर्व ही उपयोग होते हैं ॥२५॥

जिन भगवान्के उपचारसे पचेन्द्रियपना माना गया है इस अपेक्षासे बारह उपयोग कहे हैं। अन्यथा केवलद्विकको छोड़कर शेष दश उपयोग होते हैं।

पंचसु थावरकाए अचक्खु मइ सुअ अणाणा उवओगा ।

पढमंते मण-वचिए तसकाए उरालएसु सव्वे वि ॥२६॥

मज्झिल्ले मण-वचिए सव्वे वि हवन्ति केवलदुगूणा ।

ओरालमिस्स-कम्मे मणपज्ज-विहंग-चक्खुहीणा ते ॥२७॥

वेउव्वे मणपज्जव-केवलजुगल्लणया दु ते चेव ।

तम्मिस्से केवलदुग-मणपज्ज-विहंग-चक्खूणा ॥२८॥

केवलदुय-मणपज्जव-अणाणतिएहिं होंति ते ऊणा ।

आहारजुयलजोए पुरिसे ते केवलदुगूणा ॥२९॥

केवलदुग-मणहीणा इत्थी-संढम्मि ते दु सव्वे वि ।

केवलदुगपरिहीणा कोहादिसु होंति णायव्वा ॥३०॥

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकार्येषु पञ्चसु स्थावरेषु अचक्षुर्दर्शन मति-श्रुताज्ञानद्वयमिति त्रय उप-योगाः ३। त्रसकाये सर्वे द्वादश उपयोगाः १२। प्रथमान्ते मनोवचनयोगे सत्याऽनुभयमनो-वचनयोगेषु चतुर्षु प्रत्येक सर्वे द्वादश उपयोगाः १२। औदारिककाययोगे सर्वे द्वादश १२ उपयोगाः सन्ति ॥२६॥

मन्येषु असन्योभयमनो-वचनयोगेषु चतुर्षु प्रत्येक केवलज्ञान-दर्शनद्वयोनाः अन्ये सर्वे उपयोगाः दश १० भवन्ति। औदारिकमिश्रकाययोगे कार्मणकाययोगे च मनःपर्यय-विभङ्गज्ञान-चक्षुर्दर्शनहीनाः अन्ये ते नव ९ उपयोगाः स्युः ॥२७॥

वैक्रियिककाययोगे मनःपर्यय-केवलज्ञान-दर्शनयुगलोनाः अन्ये नवोपयोगाः ९ स्युः। तन्मिश्रे वैक्रियिकमिश्रकाययोगे केवलदर्शन-ज्ञानद्वय-मनःपर्यय-विभङ्गज्ञान-चक्षुर्दर्शनरहिताः अन्ये सप्त भवन्ति ॥२८॥

आहारकाऽऽहारकमिश्रकाययोगद्वये केवलद्विक-मनःपर्ययज्ञानाऽज्ञानत्रिकोनाः अन्ये पद्वे ते उपयोगाः आद्यज्ञानत्रय-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि पद्वे भवन्ति। पुवेदे ते उपयोगाः केवलज्ञान-दर्शनद्वयोनाः १० दश ॥२९॥

†च अणाणा । ‡च अणाणा ।

स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च केवलज्ञान-दर्शनद्वय-मनःपर्ययरहिताः अन्ये ते उपयोगाः सर्वे ते ६ भवन्ति ।
क्रोध माने माया[या] लोभे च केवलज्ञान-दर्शनद्विकपरिहाना अन्ये १० उपयोगा भवन्तीति ज्ञातव्याः॥३०॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा पाँचो स्थावरकायोमे अचक्षुदर्शन, मत्त्यज्ञान और श्रुताज्ञान ये तीन-तीन उपयोग होते हैं । त्रसकायमे सर्व ही उपयोग होते हैं । योगमार्गणाकी अपेक्षा प्रथम और अन्तिम मनोयोग तथा वचनयोगमे और औदारिककाययोगमे सर्व ही उपयोग होते हैं । मध्यके दोनो मनोयोग और वचनयोगमे केवलद्विकको छोड़कर शेष सर्व उपयोग होते हैं । औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगमे मनःपर्ययज्ञान, विभंगावधि और चक्षुदर्शन, इन तीनको छोड़कर शेष नौ उपयोग होते हैं । वैक्रियिककाययोगमे मनःपर्ययज्ञान और केवलद्विकको छोड़कर शेष नौ उपयोग होते हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे केवलद्विक, मनःपर्ययज्ञान, विभंगावधि और चक्षुदर्शन इन पाँचको छोड़कर शेष सात उपयोग होते हैं । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमे केवलद्विक, मनःपर्ययज्ञान और अज्ञानत्रिक, इन छहको छोड़कर शेष छह उपयोग होते हैं । वेदमार्गणाकी अपेक्षा पुरुषवेदमें केवलद्विकको छोड़कर शेष दश उपयोग होते हैं । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमे केवलद्विक और मनःपर्ययज्ञान; इन तीनको छोड़कर शेष सर्व उपयोग होते हैं । कपायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि चारो कपायोमें केवलद्विकको छोड़कर शेष दश-दश उपयोग जानना चाहिए ॥२६-३०॥

अण्णाणतिहंति य अण्णाणतियं अचक्षु-चक्षुणि ।

सण्णाण-पढमचउरे अण्णाणतिगूण केवलदुगूणा ॥३१॥

केवलणाणम्मि तहा केवलदुगमेव होइ णायव्वं ।

सामाइय-छेय-सुहुमे अण्णाणतिगूण केवलदुगूणा ॥३२॥

दंसण-णाणाइतियं देसे परिहारसंजमे य तहा ।

पंच य सण्णाणाइ दंसणचउरं च जहखाए ॥३३॥

असंजमम्मि णेया मणपज्जव-केवलजुगलएहिं हीणा ते ।

दंसण-आइदुगे खलु केवलजुगलेण ऊणिया सव्वे ॥३४॥

ओहीदंसे केवलदुग अण्णाणतिऊणिया सव्वे ।

केवलदंसं णेयं केवलदुगमेव होइ णियमेण ॥३५॥

अज्ञानत्रिके कुमति-कुश्रुत-विभङ्गज्ञानेषु प्रत्येकं अज्ञानत्रिकं ३ चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयं २ इति पञ्चो-पयोगाः ५ स्युः । सज्ज्ञानप्रथमचतुषु मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने मनःपर्ययज्ञाने च अज्ञानत्रिको-न-केवलद्विकोना अन्ये सप्तोपयोगा ७ स्युः ॥३१॥

केवलज्ञाने केवलदर्शन-ज्ञानोपयोगा ज्ञातव्या द्वौ भवतः २ । सामायिकच्छेदोपस्थापन-सूक्ष्म-साम्परायसयमेषु अज्ञानत्रिक-केवलद्विकोना अन्ये सप्त ७ उपयोगाः सन्ति ॥३२॥

देशसयमे तथा परिहारविशुद्धिसयमे च चक्षुरादिदर्शनत्रिक ३, मन्यादिज्ञानत्रिकमिति षडुपयोगा भवन्ति ६ । यथाख्यातमयमे मतिज्ञानदिसज्ज्ञानपञ्चकं ५, चक्षुरादिदर्शनचतुष्कं ४ इति नवोपयोगाः ६ स्युः ॥३३॥

अमयमे मनःपर्यय-केवलजुगलैर्हीना अन्ये ते उपयोगाः ६ स्युः । दर्शनादिद्विके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलज्ञान-दर्शनजुगलेन रहिता अन्ये सर्वे दशोपयोगाः १० स्युः ॥३४॥

अवधिदर्शने केवलज्ञान-दर्शनद्विकाज्ञानत्रिकोनाः अन्ये सर्वे सप्त ७ । केवलदर्शने केवलदर्शन-ज्ञानद्विकमेव भवतीति ज्ञेय निश्चयतः ॥३५॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा तीनों अज्ञानोंमें तीनों अज्ञान और चक्षुदर्शन वा अचक्षुदर्शन ये पाँच-पाँच उपयोग होते हैं। प्रथमके चारों सद्विज्ञानोंमें तीन अज्ञान और केवलद्विकके विना शेष सात-सात उपयोग होते हैं। केवलज्ञानमें केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो उपयोग जानना चाहिए। संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक, छेदोपस्थापना और सूक्ष्मसाम्परायसंयममें अज्ञान-त्रिक और केवलद्विकके विना शेष सात-सात उपयोग होते हैं। परिहारसंयम तथा देशसंयममें आदिके तीन दर्शन और तीन सद्विज्ञान इस प्रकार छह-छह उपयोग होते हैं। यथाख्यातसंयममें पाँचों सद्विज्ञान और चारों दर्शन इस प्रकार नौ उपयोग होते हैं। असंयममें मनःपर्ययज्ञान और केवलद्विकके विना शेष नौ उपयोग होते हैं। दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा आदिके दो दर्शनोंमें केवलद्विकके विना शेष दश-दश उपयोग होते हैं। अवधिदर्शनमें केवलद्विक और अज्ञानत्रिकके विना शेष सात उपयोग होते हैं। केवलदर्शनमें नियमसे केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो उपयोग होते हैं ॥३१-३५॥

किण्हाइति णेया मण-केवलजुगलएहि ऊणा ते ।
 तेऊ पम्मे भविए केवलदुयवज्जिया दु ते चेव ॥३६॥
 सुक्काए सव्वे वि य मिच्छा सासण अभविय जीवेसु ।
 अण्णाणतियमचक्खु चक्खूणि हवन्ति णायव्वा ॥३७॥
 दंसण-णाणाइतियं उवसमसम्मम्मि होइ वोहव्वं ।
 मिस्से ते चिय × मिस्सा अण्णाणतिगूणया खइए ॥३८॥
 वेदयसम्मे केवलदुअ-अण्णाणतियऊणिया सव्वे ।
 केवलदुएण रहिया ते चेव हवन्ति सण्णिम्मि ॥३९॥
 मइ-सुअअण्णाणाइं अचक्खु-चक्खूणि होंति इयरम्मि ।
 आहारे ते सव्वे विहंग-मण-चक्खु-ऊणिया इयरे ॥४०॥

एवं मग्गणासु उवओगा समत्ता ।

कृष्णादित्रिके कृष्ण-नील-कापोतलेश्यासु तिसृषु प्रत्येक मनःपर्यय-केवलदर्शन-ज्ञानयुगलैरूना ते उपयोगा नव ६ । तेजोलेश्यायां पद्मलेश्यायां भव्ये च केवलद्विकवर्जिताः अन्ये ते उपयोगा दश १० । सयोगाऽयोगयोः भव्यव्यपदेशो नास्तीति केवलद्विकं न ॥३६॥

शुक्ललेश्यायां सर्वे द्वादशोपयोगाः स्युः १२ । मिथ्यात्वरुचिर्जीवे सासादनसम्यक्त्वे जीवे अभव्य-जीवे चाज्ञानत्रिक चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्विकं २ इति पञ्चोपयोगाः ५ ज्ञातव्या भवन्ति ॥३७॥

उपशमसम्यक्त्वे चक्षुरादिदर्शनत्रय ३ मत्यादिज्ञानत्रिक २ चेति पट्पयोगा भवन्तीति बोधव्याः ६ । मिश्रे ते पट् मिश्रा मति-श्रुतावधिज्ञान-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनाख्या मिश्ररूपाः शुभाशुभरूपाः पट् उपयोगाः ६ स्युः ॥३८॥

वेदकसम्यक्त्वे केवलज्ञान-दर्शनद्वयाऽज्ञानत्रिकोनाः अन्ये सर्वे सप्तोपयोगाः स्युः । संज्ञिजीवे केवलज्ञान-दर्शनद्वयेन रहितास्ते उपयोगाः दश १० भवन्ति । सयोगाऽयोगयोः नोइन्द्रियेन्द्रियज्ञानाभावात् सज्यऽसज्जिव्यपदेशो नास्ति, अतः केवलद्विकं संज्ञिनि न ॥३९॥

इतरस्मिन् असंज्ञिजीवे कुमति-कुश्रुताज्ञानद्विक चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्विक चेति चत्वार उपयोगाः ४ स्युः । आहारके ते उपयोगाः सर्वे द्वादश भवन्ति १२ । इतरस्मिन् अनाहारे विभङ्गज्ञान-मनःपर्ययज्ञान-चक्षुर्दर्शनोनाः अन्ये नवोपयोगाः ९ स्युः । विग्रहगतौ मिथ्यादृष्टि-सासादनासयतेषु प्रतरद्वये लोकपूरणसमये सयोगिनि अयोगिनि सिद्धे च अनाहार इति । अनाहार इति किम् ? शरीराङ्गोपाङ्गनामोदयजनित शरीर-वचन-चित्तनोक्तमवर्गणा-ग्रहण आहारः । न आहारः अनाहारः ॥४०॥

इत्येवं मार्गणासु उपयोगाः समाप्ताः ।

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्णादि तीनों अशुभलेश्याओंमें मनःपर्ययज्ञान और केवलद्विकके विना शेष नौ-नौ उपयोग होते हैं । तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्य-जीवोमें केवलद्विकके विना शेष दश-दश उपयोग होते हैं । शुक्ललेश्यामें सर्व ही उपयोग होते हैं । अभव्यजीवोंमें तथा सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सासादनसम्यक्त्वमें तीनों अज्ञान, चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन ये पाँच-पाँच उपयोग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए । औप-शमिकसम्यक्त्वमें आदिके तीन दर्शन और तीन सद्ज्ञान ये छह उपयोग होते हैं । सम्यग्मि-थ्यात्वमें वे ही छह मिश्रित उपयोग होते हैं । ज्ञायिकसम्यक्त्वमें अज्ञानत्रिकके विना शेष नौ उपयोग होते हैं । वेदकसम्यक्त्वमें केवलद्विक और अज्ञानत्रिकके विना शेष सात उपयोग होते हैं । संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी जीवोमें केवलद्विकके विना शेष दश उपयोग होते हैं । असंज्ञी जीवोमें मत्तज्ञान, श्रुताज्ञान, चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन ये चार उपयोग होते हैं । आहार-मार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोमें सर्व ही उपयोग होते हैं । अनाहारक जीवोंमें विभंगावधि, मनःपर्ययज्ञान और चक्षुर्दर्शनके विना शेष नौ उपयोग होते हैं ॥३६-४०॥

इस प्रकार मार्गणाओंमें उपयोगोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूलशतककार जीवसमासोंमें योगोंका वर्णन करते हैं—

[मूलगा०७] 'णवसु चउक्के एक्के जोगा' एको य दोण्णि चोदस ते ।

तवभवगएसु एदे भवंतरगएसु कम्मइओ ॥४१॥

अथ जीवसमासेषु यथासम्भव योगान् गाथात्रयेण दर्शयति—['णवसु चउक्के एक्के' इत्यादि ।] नवसु जीवसमासेषु योगः एकः १, चतुषु जीवसमासेषु द्वौ योगौ २, एकस्मिन् जीवसमासे चतुर्दश ते योगाः १४ । तद्वगतेषु एते तद्विवक्षितभवप्राप्तेषु एते योगा भवन्ति, भवान्तरगतेषु विग्रहगतौ एकः कर्मणयोगः १ ।

जीवस० १	४	१
यो० १	२	१४।१२

तद्यथा—सूक्ष्म-बादरैकेन्द्रिययोर्द्वयोः पर्याप्तयोः औदारिककाययोग एकः १ सूक्ष्म-बादरैकेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-सञ्चयऽसञ्चिषु सप्तसु अपर्याप्तेषु औदारिकमिश्रः एक इति समुदायेन नवसु जीवसमासेषु ९ एको योगः । द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियासञ्चिषु पर्याप्तेषु चतुषु औदारिककाययोगाऽनुभयभाषायोगौ द्वौ भवतः २ । पञ्चेन्द्रियसञ्चिनि पर्याप्ते एकस्मिन् चतुर्दश योगाः १४ । केचिदाचार्याः पञ्चदश योगान् कथयन्ति ॥४१॥

१. सं० पञ्चस० ४, १० ।

१. शतक० ७ । पर तत्र 'चोदस' स्थाने 'पञ्जरस' पाठः । प्राकृतवृत्तौ मूलगाथायामपि 'पण्णरसा' इति पाठः । स० पञ्चसंग्रहेऽपि 'समस्ता सन्ति सञ्चिनि' इति पाठः (पृ० ८२, श्लो० १०)

† व जोगो ।

नौ जीवसमासोंमें एक योग होता है, चार जीवसमासोंमें दो योग होते हैं और एक जीवसमासमें चौदह योग होते हैं। तद्वगत् अर्थात् अपने वर्तमान भवके शरीरमें विद्यमान जीवोंमें ये योग जानना चाहिए। किन्तु भवान्तरगत अर्थात् विग्रहगतिवाले जीवोंके केवल एक कर्मणकाययोग होता है ॥४१॥

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंके चार जीवसमास और शेष अपर्याप्तजीवोंके पाँच जीवसमास इन नौ जीवसमासोंमें सामान्यसे एक काययोग होता है। किन्तु विशेषकी अपेक्षा सूक्ष्म और बादर पर्याप्तक एकेन्द्रिय जीवोंके औदारिककाययोग तथा सूक्ष्म और बादर अपर्याप्तक एकेन्द्रिय-जीवोंके औदारिकमिश्रकाययोग होता है। 'पण्णरस' इस पाठान्तरकी अपेक्षा कुछ आचार्योंके अभिप्रायसे बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंके वैक्रियिककाययोग और बादरवायुकायिक अपर्याप्तोंके वैक्रियिकमिश्रकाययोग होता है। शेष द्वीन्द्रियादि सर्व अपर्याप्तक जीवोंके एकमात्र औदारिक-मिश्रकाययोग ही होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तक, इन चारों जीवसमासोंके औदारिककाययोग और असत्यमृषावचनयोग, ये दो-दो योग होते हैं। संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तक नामके एक जीवसमासमें चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और सातों काययोग, इस प्रकार पन्द्रह योग होते हैं। यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि पर्याप्तकसंज्ञि-पंचेन्द्रियके जो अपर्याप्तकदशोंमें संभव औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारक-मिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग बतलाये गये हैं, सो सयोगिजिनके केवलिसमुद्धातकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग कहा गया है, तथा जो औदारिककाययोगी जीव विक्रिया और आहारकशुद्धिको प्राप्त करते हैं, उनकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कर्मण-काययोग बतलाया गया है। अन्यथा मिश्रकाययोग अपर्याप्तकदशामें और कर्मणकाययोग विग्रहगतिमें ही संभव हैं।

अब भाष्यगाथाकार जीवसमासोंमें योगोंका वर्णन करते हैं—

१ छसु पुण्णोसु उरालं सत्त अपज्जत्तएसु तम्मिस्सं ।

भासा असच्चमोसा चदुसु वेइदियाइपुण्णोसु ॥४२॥

सण्णि-अपज्जत्तेसु वेउन्वियमिस्सकायजोगो दु ।

सण्णी-संपुण्णोसु चउदस जोया मुणेयन्वा ॥४३॥

अथ नियमगाथाद्वयं कथ्यते—[छसु पुण्णोसु उरालं इत्यादि ।] पदसु पूर्णेषु औदारिककाययोगः—एकेन्द्रियसूक्ष्म-बादरपर्याप्तौ द्वौ २, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियपर्याप्तास्त्रय ३, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ते एकः, इति पण्णा पर्याप्तानां औदारिककाययोगः स्यात् । सप्ताऽपर्याप्तेषु तन्मिश्रः—सूक्ष्म-बादरैकेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतु-पञ्चेन्द्रियसंज्ञि-संज्ञिषु अपर्याप्तेषु सप्तविधेषु औदारिकमिश्रकाययोग स्यात् १ । चतुषु द्वीन्द्रियादिषु पूर्णेषु असत्यमृषा [भाषा] स्यात् । द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रियाऽसंज्ञिजीवपर्याप्तानां चतुर्णां अनुभवाभाषौदारिककाययोगौ द्वौ २ भवतः ॥४२॥

देव-नारकसंज्ञ्यऽपर्याप्तेषु वैक्रियिकमिश्रकाययोगात्, देव-नारकाणां अपर्याप्तकाले वैक्रियिकमिश्रकाययोगात्, मनुष्य-तिर्यगपेक्षया संज्ञिसम्पूर्णेषु पर्याप्तेषु वैक्रियिकमिश्र विना चतुर्दश १४ योगाः ज्ञातव्या ॥४३॥

१. ४, 'गतावनाहारकद्वया' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० ८०)

॥४३॥ पुण्णे सोराल ।

चतुर्दशमार्गणासु योगरचना—

गतिमार्गणायां—	इन्द्रियमार्गणायां—	कायमार्गणायां—	योगमार्गणायां—
न० ति० म० दे० ११ ११ १३ ११	ए० द्वी० त्री० च० प० ३ ४ ४ ४ १५	पृ० अ० ते० वा० व० त्र० ३ ३ ३ ३ ३ १५	
मनोयोगे—	वचनयोगे—	काययोगे—	
स० मृ० स० अ० १ १ १ १	म० मृ० स० अ० १ १ १ १	औ० धौ० मि० वै० वै० मि० आ० आ० मि० का० १ १ १ १ १ १ १ १	
वेदमार्गणायां—	कषायमार्गणायां—	ज्ञानमार्गणायां—	
स्त्री० पु० न० १३ १५ १३	क्रो० मा० माया० लो० १५ १५ १५ १५	कुम० कुशु० वि० म० श्रु० अ० म० के० १३ १३ १० १५ १५ १५ ६ ७	
सयममार्गणायां—	दर्शनमार्गणायां—	लेख्यामार्गणायां—	भव्यमार्गणायां—
सा० हे० प० सू० य० म० अ० ११ ११ ६ ६ ११ ६ १३	च० अ० अव० दे० १२ १५ १५ ७	कृ० नी० का० ते० प० शु० १३ १३ १३ १५ १५ १५	भ० अ० १५ १३
सम्यक्त्वमार्गणायां—	मज्झिमार्गणायां—	आहारमार्गणायां—	
औ० वे० क्षा० सा० मिश्र० मि० १३ १५ १५ १३ १० १३	सं० अ० १५ ४	आ० अना० १४ १	

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, और चादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञिपंचेन्द्रिय इन छह पर्याप्तक जीवसमासोंमेंसे आदिके दो जीवसमासोंमें केवल एक औदारिककाययोग होता है, और शेष चार पर्याप्तक जीवसमासोंमें औदारिककाययोग और असत्यमृपावचनयोग ये दो योग होते हैं। सातो अपर्याप्तक जीवसमासोंमें यथासंभव औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाययोग होता है। असत्यमृपावचनयोग द्वीन्द्रियादि चार पर्याप्तक जीवसमासोंमें होता है। संज्ञिपंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीवोंमें वैक्रियिकमिश्रकाययोग भी होता है। संज्ञिपंचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीवोंमें कर्मणकाययोगको छोड़कर शेष चौदह योग जानना चाहिए ॥४२-४३॥

अब मार्गणाओंमें योगोंका निरूपण करते हैं—

ओरालाहारदुष्ट वज्रिय सेसा दुष्ट गिरय-देवेसु ।

वेउव्वाहारदुष्टगूणा तिरिए मणुए वेउव्वदुगहीणा ॥४४॥

अथ मार्गणासु यथामभवं रचनाया रचितयोगान् गायैकादशकेनाऽऽह—[‘ओरालाहारदुष्ट’ इत्यादि ।] नरकगन्थां देवगन्थां च औदारिकौदारिकमिश्राऽऽहारकाऽऽहारकमिश्रान् चतुरो योगान् वर्जयित्वा शेषा एकादश योगाः ११ स्युः । तिर्यग्गतौ वैक्रियिकवैक्रियिकमिश्राऽऽहारकाऽऽहारकमिश्रैरुनाः अन्ये एकादश योगाः । मनुष्यगर्ता वैक्रियिक-तन्मिश्रद्वयहीनाः शेषाः त्रयोदश १३ योगा भवन्ति ॥४४॥

गतिमार्गणाकी अपेक्षा नारकी और देवोंमें औदारिकद्विक अर्थात् औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और आहारकद्विक अर्थात् आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग इन चार योगोंको छोड़कर शेष ग्यारह-ग्यारह योग होते हैं। तिर्यग्भावमें वैक्रियिकद्विक अर्थात् वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग तथा आहारकद्विक, इन चार योगोंको छोड़कर शेष ग्यारह योग होते हैं। मनुष्योंमें वैक्रियिकद्विकको छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं ॥४४॥

कम्मोरालदुगाइं जोगा एइंदियम्मि वियलेसु ।

वयणंतजोयसहिया ते चिय पंचिदिए सव्वे ॥४५॥

एकेन्द्रिये कर्मणकौदारिकद्विकमिति त्रयो योगाः ३ । विकलत्रये द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियेषु त्रिषु ते त्रयः वचनान्तानुभयभाषासहिताश्चत्वारः ४ योगाः । पञ्चेन्द्रिये सर्वे पञ्चदश योगा नानाजीवापेक्षया भवन्ति ॥४५॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोमे कर्मणकाययोग और औदारिकद्विक ये तीन योग होते हैं । विकलेन्द्रियोमे अन्तिम वचनयोग अर्थात् असत्यमृषावचनयोग-सहित उपर्युक्त तीन योग, इस प्रकार चार योग होते हैं । पचेन्द्रियोमें सर्व योग होते हैं ॥४५॥

कम्मोरालदुगाइं थावरकाएसु होंति पंचेसु ।

तसकाएसु य सव्वे सगो सगो होइ जोएसु ॥४६॥

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिस्थावरकायेषु पञ्चसु कर्मणः १ औदारिकौदारिकमिश्रौ द्वौ २ इति त्रयो योगाः ३ । तसकायेषु सर्वेषु पञ्चदश योगा १५ । योगेषु पञ्चदशसु सत्यादिषु स्वकः स्वको भवति, सत्य-मनोयोगे सत्यमनोयोगः १ इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयम् ॥४६॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा पौंचो स्थावरकायिकोमे कर्मणकाययोग और औदारिकद्विक ये तीन योग होते हैं, तथा तसकायिकजीवोमे सभी योग होते हैं । योगमार्गणाकी अपेक्षा स्व-स्वयोग-वाले जीवोके स्व-स्वयोग होता है । अर्थात् सत्यमनोयोगियोंके सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोगियोंके असत्यमनोयोग इत्यादि ॥४६॥

पुरिसे सव्वे जोगा इत्थी-संदम्मि आहारदुगूणा ।

कोहाईसु य सव्वे मइ-सुय-ओहीसु होंति सव्वे वि ॥४७॥

मइ-सुअअण्णाणेसुं आहारदुगूणया दु ते सव्वे ।

अपुण्णजोगरहिया आहारदुगूणया य विभंगे ॥४८॥

केवलजुयले मण-वचि पढमंतोरालजुगलकम्मक्खा ।

मण-सुहुमे परिहारे देसे ओराल मण-वचि-चउक्का ॥४९॥

पुवेदे सर्वे योगाः १५ । स्त्रीवेदे पण्डवेदे च आहारकद्विकोनास्त्रयोदश १३ । क्रोधे माने मायायां लोभे च सर्वे योगाः १५ । मति-श्रुतावधिज्ञानेषु सर्वे पञ्चदश १० योगा भवन्ति ॥४७॥

मति-श्रुताज्ञानयो द्वयोः आहारकद्विकोनाः ते सर्वे त्रयोदश योगाः स्युः १३ । विभङ्गज्ञाने औदा-रिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कर्मणकापर्याप्तयोगत्रयरहिताः आहारकद्विकोनाश्चान्येऽष्टौ मनो-वचनयोगा औदा-रिक वैक्रियिककाययोगौ द्वौ एव दश योगाः १० ॥४८॥

केवल युगले इति केवलज्ञाने केवलदर्शने च प्रथमान्तमनो-वचन सत्यानुभयमनो-वचनचतुष्क ४ औदारिक-तन्मिश्र-कर्मणाद्यास्त्रय इति सप्त योगाः ७ । मन-पर्ययज्ञाने सूक्ष्मसाम्प्रायसयमे परिहारविशुद्धि-संयमे देशसयमे च औदारिककाययोगः १, सत्यादिमनोयोगचतुष्क ४ सत्यादिवचनयोगचतुष्क ४ इत्येव नव ९ योगाः स्युः ॥४९॥

वेदमार्गणाकी अपेक्षा पुरुषवेदियोंके सभी योग होते हैं । स्त्रीवेदी और नपुंकेवेदी जीवोके आहारकद्विको छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं । कषायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोके सभी योग पाये जाते हैं । ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मति, श्रुत और अवधिज्ञानी

जीवोंके सर्व ही योग होते हैं। मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके आहारकद्विको छोड़कर शेष तेरह-तेरह योग होते हैं। विभंगज्ञानियोंके अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कर्मणकाययोग ये तीन योग तथा आहारकद्विक इनके बिना शेष दश योग होते हैं। केवल-युगल अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शनवाले जीवोंके प्रथम और अन्तिम मनोयोग एवं वचन-योग, तथा औदारिकयुगल और कर्मणकाययोग ये सात-सात योग होते हैं। मनःपर्ययज्ञान, सूक्ष्मसाम्परायसंयम, परिहारविशुद्धिसंयम और संयमासंयमवाले जीवोंके मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क और औदारिककाययोग ये नौ-नौ योग होते हैं ॥४७-४९॥

आहारदुगोराला मण-वचि-चउरा य सामाइय-छेदे ।

कम्मोरालदुगाइ' मण-वचि-चउरा य जहखाए ॥५०॥

सामायिक-छेदोपस्थापनयोः आहारकद्वयोदारिककाययोगास्त्रयः ३ मनोयोगाश्चत्वारः ४ वचन-योगाश्चत्वारः ४ इत्येकादश योगाः ११ । यथाख्याते कर्मणकौदारिक-तन्मिश्रकाययोगास्त्रयः ३ मनो-वचनयोगाः अष्टौ ८ एवं एकादश ११ योगाः ॥५०॥

संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिकसंयम और छेदोपस्थापनासंयमवाले जीवोंके चारो मनोयोग, चारो वचनयोग, आहारकद्विक और औदारिककाययोग ये ग्यारह-ग्यारह योग होते हैं। यथाख्यातसंयमवाले जीवोंके चारो मनोयोग, चारो वचनयोग, औदारिकद्विक और कर्मण-काययोग ये ग्यारह योग होते हैं ॥५०॥

किण्हाइ-तिआऽसंजम अभव्व जीवेसु आहारदुगूणा ।

तेआइतियाऽचक्खू ओही भव्वेसु होंति सव्वे वि ॥५१॥

चक्खूदंसे जोगा मिस्सतिगं वज्ज होंति सेसा दु ।

उवसम-मिच्छा-सादे आहारदुगूणया णेया ॥५२॥

वेदय-खइए सव्वे मिस्से मिस्सतिगाहारदुगहीणा ।

सण्णियजीवे णेया सव्वे जोया जिणेहिं णिदिट्ठा ॥५३॥

इयरे कम्मोरालियदुगवयणंतिल्लया होंति ।

आहारे कम्मूणा अणहारे कम्मए व जोगो दु ॥५४॥

एव समगणासु जोगा समत्ता ।

कृष्ण-नील-कापोतलेश्यात्रिके असयमे अभव्यजीवे च आहारकद्विकोना अन्ये त्रयोदश १३ योगाः । पीत-पद्म-शुक्ललेश्यात्रिके अचक्षुर्दर्शने अवधिदर्शने भव्यजीवे च सर्वे पञ्चदश योगाः १५ भवन्ति ॥५१॥

चक्षुर्दर्शने मिश्रत्रिक औदारिक-वैक्रियिकमिश्रकर्मणकत्रिक वर्जयित्वा शेषाः द्वादश योगाः १२ स्युः । औपशमिकमय्यक्त्वे मिथ्यादृष्टौ सासादने आहारकद्विकोनाः अन्ये त्रयोदश योगाः १३ ज्ञेयाः ॥५२॥

वेदकमय्यगृष्टौ क्षायिकसम्यगृष्टौ च सर्वे पञ्चदश योगाः १५ ज्ञेयाः । मिश्रे मिश्रत्रिकाऽऽहारक-द्विकोनाः अन्ये योगाः १० । संज्ञिजीवे सर्वे पञ्चदश १५ योगाः ज्ञेयाः । जिनैर्निर्दिष्टाः कथिताः ॥५३॥

इतरस्मिन् असंज्ञिजीवे कर्मणकौदारिक-तन्मिश्रानुभयवचनयोगाश्चत्वारः ४ । आहारके कर्मणकोना अन्ये योगाश्चतुर्दश १४ । अनाहारे कर्मणक एको योगो भवति ॥५४॥

इति मार्गणासु योगाः समाप्ताः ।

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्यावालोके, तथा असंयमी और अभव्य जीवोके आहारकद्विकको छोड़कर शेष तेरह-तेरह योग होते हैं। तेजोलेश्यादि तीन लेश्यावालोके, अचक्षु-दर्शनी, अवधिदर्शनी और भव्यजीवोमे सर्व ही योग पाये जाते हैं। चक्षुदर्शनी जीवोमें अपर्याप्त-काल-सम्बन्धी तीनों मिश्रयोगोको छोड़कर शेष बारह योग पाये जाते हैं। सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा उपशमसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोके आहारकद्विकको छोड़कर शेष तेरह-तेरह योग जानना चाहिए। वेदकसम्यग्दृष्टि और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोमे सभी योग पाये जाते हैं। मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोमे अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी मिश्रत्रिक और आहारकद्विकको छोड़कर शेष दश योग पाये जाते हैं। संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी जीवोमे सभी योग जानना चाहिए, ऐसा जिन भगवान्ने उपदेश दिया है। असंज्ञी जीवोमे कर्मणकाय-योग, औदागिकद्विक और अन्तिम वचनयोग ये चार योग होते हैं। आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोमे कर्मणकाययोगको छोड़कर शेष चौदह योग पाये जाते हैं। अनाहारक जीवोमे एकमात्र कर्मणकाययोग ही पाया जाता है ॥५१-५४॥

मार्गणांमे योगोका वर्णन समाप्त हुआ।

[मूलगा० ८] उवओगा जोगविही मग्गण-जीवेसु वण्णिया एदे ।

एत्तो गुणेहिं सह परिणदाणि ठाणाणि मे सुणह^१ ॥५५॥

[मूलगा० ९] मिच्छा सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य ।

णव संजए य एवं चउदस गुणणाम ठाणाणि ॥५६॥

मार्गणासु जीवसमासेषु च उपयोगा वर्णिताः, योगविधयश्च वर्णिताः । इत पर गुणै. सह परिण-
तानि गुणस्थानकै सह परिणमितानि मिश्राणि युक्तानि मार्गस्थानानि गतीन्द्रिय-काय-योगादीनि इमानि
वक्ष्यमाणानि भो भव्या यूयं शृणुत ॥५५॥

मिथ्यादृष्टिः १ सासादनः २ मिश्रः ३ अविरतसम्यग्दृष्टिः ४ देशविरतश्च ५ प्रमत्ता ६ प्रमत्ता ७
पूर्वकरणा ८ निवृत्तिकरण ९ सूक्ष्मसाम्परायो १० पणान्त ११ क्षीणकपाय १२ सयोगाऽ १३ योगसयता
इति नव । एव चतुर्दश गुणस्थाननामधेयानि गुणस्थाननामानि ॥५६॥

चतुर्दशमार्गणास्थानेषु गुणस्थानरचनेयम्-

गतिमार्गणाया-	इन्द्रियमार्गणाया-	कायमार्गणाया-	योगमार्गणाया-	मनोयोगे-
न० ति० म० दे०	ए० द्वी० त्री० च० प०	पृ० अ० ते० वा० व० त्र०	स० मृ० स० अ०	
४ ५ १४ ४	१ १ १ १ १४	१ १ १ १ १ १४	१३ १२ १२ १३	
	२ २ २ २	२ २	२	
वचनयोगे-	काययोगे-	वेदमार्गणाया-		
स० मृ० स० अ०	औ० औ०मि० वै० वै०मि० आ० आ०मि० का०	स्त्री० पु० न०		
१३ १२ १२ १३	१३ ४ ४ ३ १ १ ४	६ ६ ६		
कपायमार्गणायां-	ज्ञानमार्गणायां-	सयममार्गणाया-		
क्रो० मा० माया० लो०	कुम० कुश्रु० वि० म० श्रु० अ० म० के०	सा० छे० प० सू० य० स० अ०		
६ ६ ६ १०	२ २ २ ६ ६ ६ ७ २	४ ४ २ १ ४ १ ४		

१. शतक० ८ । पर तत्र मग्गण-जीवेसु' स्थाने 'जीवसमासेसु' इति पाठः । प्राकृतवृत्तावप्यय

पाठः । २ शतक० ९ ।

* व च्छो । † व धेयाणि ।

दर्शनमार्गणायां—	लेख्यामार्गणायां—	भव्यमार्गणायां—	सम्यक्त्वमार्गणायां—
च० अच० अव० के० कृ० नो० का० ते० प० शु० भ० अ० औ० वे० छा० सा० मिश्र० मि०			
१२ १२ ६ २ ४ ४ ४ ७ ७ १३ १२ १ ८ ४ ११ १ १ १			
सज्जिमार्गणायां—		आहारमार्गणायां—	
स० अ०		आ० अना०	
१२ २		१३ ५	

इस प्रकार मार्गणा और जीवसमासोंमें यह उपयोग और योगविधिका वर्णन किया है। अब इससे आगे गुणोंसे परिणत इन स्थानोंको कहता हूँ सो सुनो। मिथ्यात्व, सामादन, मिश्र, अविरतसम्यक्त्व और देशविरत, तथा इससे आगे संयतोके नौ गुणस्थान इस प्रकार सार्थक नामवाले चौदह गुणस्थान होते हैं ॥५५-५६॥

मार्गणाओंमें गुणस्थानोंका निरूपण—

[मूलगा० १०] ^१सुर-णारणसु चत्तारि होंति तिरिणसु जाण पंचेव ।
मणुयगईए वि तहा चोदस गुणणामधेयाणि ॥५७॥
^२मिच्छाई चत्तारि य सुर-णिरए पंच होंति तिरिणसु ।
मणुयगईए वि तहा चोदस गुणणामधेयाणि ॥५८॥

अथ मार्गणास्थानेषु रचितगुणस्थानानि गाथाचतुर्दशकेन प्ररूपयति—देवगत्यां नरकगत्यां च मिथ्यादृष्ट्याऽऽदीनि चत्वारि गुणस्थानानि ४, तिर्यग्गतौ मिथ्यादीनि पञ्च गुणस्थानानि त्व जानीहि ५ । मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्ट्याऽऽद्ययोगान्तानि चतुर्दश गुणस्थानानि भवन्तीति जानीहि त्व भव्य मन्यस्व ॥५७-५८॥

गतिमार्गणाकी अपेक्षा देव और नरकगतिमें मिथ्यात्वको आदि लेकर चार गुणस्थान होते हैं। तिर्यचोमें मिथ्यात्व आदि पाँच गुणस्थान होते हैं। तथा मनुष्यगतिमें चौदह ही गुणस्थान होते हैं ॥५७-५८॥

मिच्छा सादा दोण्णि य इगि-वियले होंति ताणि णायव्वा ।
पंचिंदियम्मि चोदस भूदयहरिणसु दोण्णि पढमाणि ॥५९॥
तेऊ-वाऊकाए मिच्छं तसकाए चोदस हवंति ।
मण-वचि-पढमंतेसुं ओराले चेव जोगंता ॥६०॥
खीणंता मज्झिल्ले मिच्छाई चयारि वेउव्वे ।
तम्मिस्से मिस्सूणा हारदुगे पमत्त एगो दु ॥६१॥
ओरालमिस्स-कम्मे मिच्छा सासण अजइ सजोगा य ।
कोहाइतिय तिवेदे मिच्छाई णवय दस लोहे ॥६२॥

१. स० पञ्चसं० ४, ६ । (पृ० ७५) । २. ४, 'नारकमुष्ठाशिकयोश्चत्वार्याद्यानि' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ७६) ।

एकेन्द्रिये विकलत्रये च मिथ्या-सासादने द्वे भवतः २ । तदेकेन्द्रिय-विकलत्रयाणां पर्याप्तकाले एक मिथ्यात्वम् १ । तेषां केपाद्धिद्व अपर्याप्तकाले उत्पत्तिसमये सासादनं सम्भवति । पञ्चेन्द्रिये तानि सर्वाणि गुणस्थानानि चतुर्दश १४ ज्ञातव्यानि भवन्ति । भूदकहरितेषु पृथ्वीकायिके अकायिके वनस्पतिकायिके च मिथ्यात्वसासादनगुणस्थाने द्वे २ भवतः ॥५६॥

तेजस्कायिके वायुकायिके च मिथ्यात्वमेकम् १ । तयोरेक कथम् ? सासादनस्थो जीवो मृत्वा तेजो-वायुकायिकयोर्मध्ये न उत्पद्यते, इति हेतोः । त्रसकायिके मिथ्यात्वादीनि चतुर्दश १४ गुणस्थानानि भवन्ति । मनो-वचनप्रथमान्तेषु सत्यानुभयमनो-वचनचतुष्टये औदारिककाययोगे च मिथ्यात्वाऽऽदीनि सयोगान्तानि त्रयोदश गुणस्थानानि स्युः ॥६०॥

मध्यमेषु असत्योभयमनो-वचनयोगेषु चतुर्षु सञ्जिमिथ्यादृष्टाद्यादीनि क्षीणकपायान्तानि द्वादश १२ । वैक्रियिककाययोगे मिथ्यात्वादीनि चत्वारि ४ । तन्मिश्रयोगे देवता-नारकाऽपर्याप्तानां मिश्रोनानि मिथ्यात्व-सासादनाविरतानि त्रीणि ३ । आहारके सञ्जिपर्याप्तप्रमत्त एक पष्ठगुणस्थानम् १ । आहारकमिश्रे सञ्ज्यऽ-पर्याप्तपष्ठगुणस्थानमेकम् १ ॥६१॥

औदारिकमिश्रकाययोगे मिथ्यात्व-सासादन-पुवेदोदयाऽस्यतकपाटसमुद्धातसयोगगुणस्थानानि चत्वारि ४ । उक्तञ्च—

मिच्छे सासणसम्मे पुवेदयदे कवाटजोगिम्हि ।
गर-तिरिये वि य दोण्णि चि होति त्ति जिणेहिं णिदिट्ठं^१ ॥७॥

कार्मणकाययोगे मिथ्यात्व-सासादनाऽविरतगुणस्थानत्रय चतुर्गतिविग्रहकालसयुक्त प्रतरयोलोकपूरण-कालसयुक्त सयोगगुणस्थानञ्चेति चत्वारि ४ । उक्तञ्च—

योगिन्यौदारिको दण्डे मिश्रो योगः कपाटके ।
कार्मणो जायते तत्र प्रतरे लोकपूरणे^२ ॥८॥

क्रोधे माने मायाया च, नपुसकवेदे स्त्रीवेदे पुवेदे च मिथ्यात्वादीन्यनिवृत्तिकरणपर्यन्तानि नव ९ । अत्र किञ्चिद्विशेषः—पण्डवेदः स्थावर-कायमिथ्यादृष्टाद्यनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागान्त भवति । स्त्रीवेद-पुवेदौ सञ्ज्यऽसञ्जिमिथ्यादृष्टाद्यनिवृत्तिकरणस्वस्ववेदभागपर्यन्त भवतः । क्रोध-मान मायाः मिथ्यादृष्टाद्य-निवृत्तिकरण-द्वि-त्रि-चतुर्भागान्त भवन्ति । लोभे सज्जलनलोभापेक्षया मिथ्यात्वाऽऽदीनि सूक्ष्मसाम्पराया-न्तानि दश १० भवन्ति ॥६२॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवोमे मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होते हैं । यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि उक्त जीवोमे सासादनगुणस्थान निवृत्त्य-पर्याप्तक-दशामे ही संभव है, अन्यत्र नहीं । पञ्चेन्द्रियोमे चौदह ही गुणस्थान होते हैं । काय-मार्गणाकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोमे आदिके दो गुणस्थान होते हैं । तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवोमें मिथ्यात्व गुणस्थान होता है और त्रसकायिक जीवोमे चौदह ही गुणस्थान होते हैं । योगमार्गणाकी अपेक्षा प्रथम और अन्तिम मनोयोग और वचनयोगमे तथा औदारिककाययोगमें सयोगिकेवली तकके तेरह गुणस्थान होते हैं । मध्यके दोनो मनोयोगो और वचनयोगोंमे क्षीणकपायतकके बारह गुणस्थान होते हैं । वैक्रियिककाय-योगमे मिथ्यात्व आदि चार गुणस्थान होते हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे मिश्रगुणस्थानको छोड़-कर आदिके तीन गुणस्थान होते हैं । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमे एक

१. गो० जी० ६८० ।

२ स० पञ्चसं० ४, १४ (पृ० ८३)

प्रमत्तसंयत गुणस्थान होता है। औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और सयोगकेवली ये चार-चार गुणस्थान होते हैं। वेदमार्गणाकी अपेक्षा तीनों वेदोंमें तथा कषायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि तीन कषायोंमें मिथ्यात्व आदि नौ गुणस्थान होते हैं। लोभकषायमें आदिके दश गुणस्थान होते हैं ॥५६-६२॥

पठमा दोऽण्णाणति ए णाणति ए णव दु अविरयाई ।

सत्त पमत्ताइ मणे केवलजुयलम्मि अंतिमा दोणि ॥६३॥

अज्ञानत्रिके कुमति-कुश्रुत-विभङ्गज्ञानेषु प्रत्येक मिथ्यात्वसासादनप्रथमद्वयं स्यात् । ज्ञानत्रिके मति-श्रुतावधिज्ञानेषु त्रिषु प्रत्येक अविरतादीनि क्षीणकषायान्तानि नव ६ स्युः । मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तादीनि क्षीणकषायान्तानि सप्त ७ । केवलज्ञाने केवलदर्शने च सयोगायोगान्तिमद्वयं २ भवति ॥६३॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा अज्ञानत्रिक अर्थात् कुमति, कुश्रुत और विभङ्गज्ञानवाले जीवोंके आदिके दो गुणस्थान होते हैं। ज्ञानत्रिक अर्थात् मति, श्रुत और अवधिज्ञानवाले जीवोंमें असंयत-सम्यग्दृष्टिको आदि लेकर नौ गुणस्थान होते हैं। मनःपर्ययज्ञानवाले जीवोंके प्रमत्तसंयतको आदि लेकर सात गुणस्थान होते हैं। केवलजुगल अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शनवाले जीवोंके अन्तिम दो गुणस्थान होते हैं ॥६३॥

सामाइय-छेदेसुं पमत्तयाईणि होति चत्तारि ।

जहखाए संताई सुहुमे देसम्मि सुहुम देसा य ॥६४॥

असंजमम्मि चउरो मिच्छाई दुवालस हवंति ।

चक्खु अचक्खू य तहा परिहारे दो पमत्ताई ॥६५॥

अजयाई खीणंता ओहीदंसे हवंति णव चेव ।

किण्हाइति ए चउरो मिच्छाई तेर सुक्काए ॥६६॥

तेऊ पम्मासु तहा मिच्छाई अप्पमत्तंता ।

खीणंता भव्वम्मि य अभव्वे मिच्छमेयं तु ॥६७॥

सामायिक-च्छेदोपस्थापनयोः प्रमत्ताधनिवृत्तिकरणान्तानि चत्वारि ४ भवन्ति । यथाख्याते उपशान्ताद्ययोगान्तानि चत्वारि ४ । सूक्ष्मसाम्परायसयमे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमेकम् १ । देशसयमे देशसयम पञ्चम गुणस्थान भवति ॥६४॥

असंयमे मिथ्यादगादीनि चत्वारि ४ । चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वये मिथ्यादृष्ट्याऽऽदीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादश १२ । परिहारविशुद्धिसयमे प्रमत्ताप्रमत्तद्वय २ भवति ॥६५॥

अवधिदर्शने असयतादीनि क्षीणकषायान्तानि नव ६ भवन्ति । कृष्णादित्रिके स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याऽऽद्यसंयतान्तानि [चत्वारि ४] भवन्ति । शुक्ललेश्यायां सज्जिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तानि त्रयोदश गुणस्थानानि १३ भवन्ति ॥६६॥

तेजोलेश्यायां पद्मलेश्याया च सज्जिमिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानि गुणस्थानानि सप्त ७ । भव्ये स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादश १२ । सयोगायोगयोर्भव्यव्यपदेशो नास्तीति । अभव्ये मिथ्यात्वमेकम् १ ॥६७॥

संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापना संयमवाले जीवोंके प्रमत्तसंयत आदि चार गुणस्थान होते हैं। यथाख्यातसंयमवाले जीवोंके उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थान होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायसंयमवालोंके एक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान और देशसंयमवालोंके

एक देशविरतगुणस्थान होता है। असंयमी जीवोंके मिथ्यात्व आदि चार गुणस्थान होते हैं। परिहार विशुद्धिसंयमवालोके प्रमत्तसंयत आदि दो गुणस्थान होते हैं। दर्शनसमर्पणकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंके मिथ्यात्व आदि बारह गुणस्थान होते हैं। अवधिदर्शनी जीवोंके असंयतसम्यग्दृष्टिको आदि लेकर क्षीणकषायतकके नौ गुणस्थान होते हैं। लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्यावाले जीवोंके मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान होते हैं। शुक्ललेश्यावालोके मिथ्यात्वादि तेरह गुणस्थान होते हैं। तथा तेज और पद्मलेश्यावालोके मिथ्यात्वको आदि लेकर अप्रमत्तसंयतान्त सात गुणस्थान होते हैं। भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्यजीवोंके क्षीणकषायान्त बारह गुणस्थान होते हैं। अभव्य जीवोंके तो एकमात्र मिथ्यात्वगुणस्थान होता है ॥६४-६७॥

अट्टेयारह चउरो अविरयाईणि होंति ठाणाणि ।

उवसम-खय-मिस्सम्मि य मिच्छाइतियम्मि एय तण्णामं ॥६८॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे असंयताद्यप्रमत्तान्तानि चत्वारि ४ । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे असंयताद्युपशान्त-कषायान्तानि गुणस्थानान्यष्टौ ८ । कुतः ? 'विदियठवसमसम्मत्त अविरदसम्मादि-सतमोहो त्ति' । अप्रमत्ते द्वितीयोपशमसम्यक्त्व समुत्पाद्योपर्युपशान्तकषायान्त गत्वाऽधोऽवतरणेऽसंयतान्तमपि तत्सम्भवात् । क्षायिक-सम्यक्त्वे असंयताद्ययोगान्तानि एकादश ११ । सिद्धेषु तत्सम्भवति । त्रयोपशमे वेदकसम्यक्त्वे अविरताद्य-प्रमत्तान्तानि चत्वारि ४ । मिथ्यात्वादित्रिके मिथ्यादृष्टौ सासादने मिश्रे च स्व-स्वनाम्ना स्व-स्वगुणस्थान भवति ॥६८॥

सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वी जीवोंके अविरतसम्यक्त्व आदि आठ गुणस्थान होते हैं। क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंके अविरतसम्यक्त्व आदि ग्यारह गुणस्थान होते हैं। त्रयोपशमसम्यक्त्वी जीवोंके अविरतसम्यक्त्व आदि चार गुणस्थान होते हैं। मिथ्यात्वादित्रिकमें तत्तन्नामक एक एक ही गुणस्थान होता है अर्थात् मिथ्यादृष्टियोंके पहला मिथ्यात्वगुणस्थान, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सासादननामक दूसरा गुणस्थान और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके सम्यग्मिथ्यात्व नामक तीसरा गुणस्थान होता है ॥६८॥

मिच्छाई खीणंता सण्णिम्मि हवंति वारां ठाणाणि ।

असण्णियम्मि जीवे दोण्णि य मिच्छाइ वोहव्वा ॥६९॥

संज्ञिजीवे संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानि दश गुणस्थानानि भवन्ति १० । असंज्ञिजीवे मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानद्वय ज्ञातव्यम् ॥६९॥

संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी जीवोंके मिथ्यात्वादि क्षीणकषायान्त बारह गुणस्थान होते हैं। असंज्ञी जीवोंमें मिथ्यात्वादि दो गुणस्थान जानना चाहिए ॥६९॥

मिच्छाइ-सजोयंता आहारे होंति तह अणाहारे ।

मिच्छा साद अविरदा अजोइ* जोई य णायव्वा ॥७०॥

एवं मग्गणासु गुणट्ठाणा समत्ता

आहारके मिथ्यादृष्ट्यादिसंयोगान्तानि त्रयोदश १३ भवन्ति । अनाहारके मिथ्यादृष्टि-सासादनाऽसंयताऽयोग-संयोगगुणस्थानानि पञ्च भवन्ति बोधव्यानि ५ । कुतः ? स अनाहारसंयतगुणस्थानवाले

दंसणआइदुअं दुसु दससु तं ओहिदंसणाजुत्तं ।
केवलदंसण-णाणा उवओगा दोसु य गुणेसु ॥७३॥

३ ३ ३ ३ ३ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ सजोगाजोगाण २।२
२ २ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३

इति गुणट्टाणेषु उवओगा समत्ता ।

गुणम्यानेषु उपयोगा न्यस्ता । [तान्] गाथाद्वयेन विगेषयति-मिथ्यादृष्टौ सासादने च अज्ञानत्रिकं
कृनति-कृश्रुत-विभङ्गज्ञानोपयोगास्त्रयः । सम्यग्मिथ्यावे मिश्रे त एव मिश्ररूपज्ञानोपयोगास्त्रयः ३ । ततो
युगले अमंयमे देगे च ज्ञानाद्वित्रय सुमति-सुश्रुतावपिज्ञानोपयोगास्त्रयः ३ । ततः प्रमत्तादि-चीणकपायान्तेषु
सप्तगुणस्थानेषु मन पर्ययेण सहिताः त एव त्रयः, इति चतुर्ज्ञानोपयोगाः ४ स्युः । मिथ्यात्व-सामादनयो-
र्द्वयो दर्शनाद्य द्विक चक्षुरचक्षुर्दर्शनोपयोगो द्वौ २ । ततः दशसु मिश्रादि-चीणकपायान्तेषु तदेवावधिदर्शन-
युक्त चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रयः भवन्ति । द्वयोः सयोगाऽयोगयोः केवलदर्शनं १ केवलज्ञानं च द्वौ
उपयोगो भवतः २। २। ॥७२-७३॥

गुणस्थानेषु विगेषेण उपयोगा—

गु०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	ची०	स०	अयो०
ज्ञानो०	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	१	१
दर्शनो०	२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	१	१

इति गुणस्थानेषु उपयोगा दर्शिता ।

आदिके दो गुणस्थानोंमें तीनों अज्ञान होते हैं । सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीनों अज्ञान
तीनों सद्-ज्ञानोंसे मिश्रित होते हैं । चौथे और पाँचवें इन दो गुणस्थानोंमें मति, [श्रुत और
अवधि ये तीन ज्ञानोपयोग होते हैं । छठेसे लेकर बारहवें गुणस्थान तक सात गुणस्थानोंमें मन-
पर्ययज्ञानके साथ उक्त तीनों ज्ञानोपयोग होते हैं । आदिके दो गुणस्थानोंमें आदिके दो दर्शनो-
पयोग होते हैं । तीसरेसे लेकर बारहवें तक दश गुणस्थानोंमें अवधिदर्शनसे युक्त आदिके दोनो
दर्शनोपयोग होते हैं । तेरहवें और चौदहवें इन दो गुणस्थानोंमें केवलज्ञान और केवलदर्शन ये
दो-दो उपयोग होते हैं ॥७२-७३॥

अब गुणस्थानोंमें योगोंका वर्णन करते हैं—

[मूलगा० १२] 'तिसु तेरेगे दस णव सत्तसु इक्कमिह हुंति एक्कारा ।

इक्कमिह सत्त जोगा अजोयठाणं हवइ सुण्णं' ॥७४॥

१३।१३।१०।१३।६।११।६।६।६।६।६।६।७।०।

अथ गुणस्थानेषु यथामग्नमव योयान् गाथात्रयेण दर्जयति—['तिसु तेरे एगे दस' इत्यादि ।]
त्रिषु त्रयोदश १३, एकस्मिन् दश १०, सप्तसु नव ९, एकस्मिन् एकादश ११ भवन्ति । एकस्मिन् सप्त-
योगाः ७ । अयोगिस्थान शून्यं भवेत् ॥७४॥

१ ४, १२-१३ ।

१. गनकं । एतद्गाथास्थाने इमे द्वे गाथे उपलभ्येते—

तिसु तेरेस एगे दस नव जोगा हांति सत्तसु गुणेसु ।

एक्कारस य पमत्ते सत्त मजोगे अजोगिक्के ॥१२॥

तेरेस चटसु दसेगे पंचसु नव दोसु हांति एगारा ।

एगमि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवइ एगं ॥१३॥

गुणस्थानेषु योगाः—

मि० सा० मि० अ० दे० प्र० अ० अ० अ० सू० उ० क्षी० म० अयो०
१३ १३ १० १३ ६ ११ ६ ६ ६ ६ ६ ७ ०

इति गुणस्थानेषु योगा निरूपिताः ।

मिथ्यात्व, सासादन और अविरतसम्यक्त्व इन तीन गुणस्थानोंमें तेरह-तेरह योग होते हैं। एक सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें दश योग होते हैं। छठे गुणस्थानको छोड़कर पाँचवेंसे चारहवें तक सात गुणस्थानोंमें नौ-नौ योग होते हैं। एक प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थानमें न्यारह योग होते हैं। एक सयोगिकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानमें सात योग होते हैं और अयोगिकेवली नामक एक चौदहवाँ गुणस्थान योग-रहित होता है ॥७४॥

अथ उक्त मूलगाथाके अर्थका दो भाष्यगाथाओंसे स्पष्टीकरण करते हैं—

^१आहारदुग्गूणा तिसु वेउव्वोराल मण-वचि चउका ।

मिस्से वेउव्वूणा सत्तसु आहारदुयजुया छट्ठे ॥७५॥

भासा-मणजोआणं असच्चमोसा य सच्चजोगा य ।

^२ओरालजुयल-कम्मा सत्तेदे होंति जोगिमि ॥७६॥

इति गुणस्थानेषु चतुर्दशसु योगाः दर्शिताः ॥

मिथ्यात्व-सासादनाऽप्यसमगुणस्थानेषु त्रिषु आहारकाऽऽहारकमिश्रद्विकोना अन्ये त्रयोदश योगाः १३ । मिश्रे वैक्रियिकौदारिकाययोगौ २, सन्यासस्योभयानुभयमनो-वचनयोगाः अष्टौ, एवं दश १० । अप्रमत्ताऽ-पूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायोपगान्त-क्षीणकपाय-देशविरतगुणस्थानेषु सप्तसु वैक्रियिक[द्वि]कोना औदारिकाययोगः १, मनो-वचनयोगाः अष्टौ ८, एवं नव योगाः ६ भवन्ति । पठे प्रमत्ते पूर्वोक्ताः नव ६, आहारकद्विकयुक्ता एकादश ११ ॥७५॥

सयोगिनि गुणस्थाने भाषा-मनोयोगानां मध्ये असत्यमृपायोगौ मुक्त्वा अन्ये अनुभयमनो-वचनयोगौ २, सत्यमनो-वचनयोगौ २, औदारिकौदारिकमिश्र-कर्मणकयोगास्त्रयः ३, इत्येते सप्त योगाः सयोगिमेवल्लिनि भवन्ति ॥७६॥

इति गुणस्थानेषु योगा दर्शिताः ।

पहले, दूसरे और चौथे इन तीन गुणस्थानोंमें आहारकद्विकके बिना शेष तेरह योग होते हैं। तीसरे मिश्रगुणस्थानमें चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिकाययोग और वैक्रियिक-काययोग ये दश योग होते हैं। इन दश योगोंमेंसे वैक्रियिककाययोगको छोड़कर शेष नौ योग छठे गुणस्थानके सिवाय शेष सात गुणस्थानोंमें होते हैं। छठे गुणस्थानमें आहारकद्विकयुक्त उपर्युक्त नौ योग अर्थात् न्यारह योग होते हैं। सयोगिकेवलीमें भाषा और मनोयोगके असत्य-मृपा और सत्ययोगरूप चार भेद, तथा औदारिकद्विक और कर्मणकाययोग ये तीन, इस प्रकार कुल सात योग होते हैं ॥७५-७६॥

इस प्रकार चौदह गुणस्थानोंमें योगोंका निरूपण किया ।

अथ गुणस्थानोंमें बन्धके कारणोंका वर्णन करनेके लिए ग्रन्थकार बन्ध-हेतुओंके भेदोंका निर्देश करते हैं—

^१मिच्छासंजम हुंति हु कसाय जोगा य बंधहेऊ ते ।

पंच दुवालस* भैया क्रमेण पणुवीस पणरसं ॥७७॥

५।१२।२५।१५ मिलिया ५७ ।

अथ गुणस्थानेषु यथासम्भव सामान्य-विशेषेण प्रत्ययान् गाथासप्तकेनाऽऽह—['मिच्छाऽसंजम' इत्यादि ।] मिथ्यात्वाऽसंयमो भवतः, कषाय-योगौ च भवतः, इत्येते चत्वारो मूलप्रत्यया भवन्ति ४ । ते कथम्भूताः ? बन्धहेतवः, कर्मणा बन्धकारणानि । तेषां मिथ्यात्वाऽसंयम-कषाय-योगानां भेदाः क्रमेण पञ्च ५ द्वादश १२ पञ्चविंशति* २५ पञ्चदश १५ भवन्ति । मिलित्वोत्तरप्रत्ययाः सप्तपञ्चाशत् ५७ भवन्ति । तेषां कर्म-बन्धहेतवः ॥७७॥

मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार कर्मबन्धके मूल कारण हैं । इनके उत्तर भेद क्रमसे पाँच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह हैं । इस प्रकार सब मिलकर कर्म-बन्धके सत्तावन उत्तर-प्रत्यय होते हैं । (प्रत्यय, हेतु और कारण ये तीनों पर्यायवाची नाम हैं ।) ॥७७॥

[मूलगा० १३] ^२चउपच्चइओ बंधो पढमे अणंतरतिण तिपच्चइओ ।

मिस्सय विदिओ उवरिमदुगं च देसेकदेसम्हि* ॥७८॥

[मूलगा० १४] ^३उवरिल्लपंचया पुण दुपच्चया जोयपच्चया तिणिण ।

सामण्णपच्चया खलु अट्ठहं होंति कम्माणं* ॥७९॥

४।३।३।३।३।२।२।२।२।२।१।१।१।०

मूलप्रत्ययाः गुणस्थानेषु कथ्यन्ते—प्रथमे मिथ्यादृष्टौ बन्धश्चतुःप्रत्ययिकः चतुर्विधः प्रत्ययः ४ । अनन्तरत्रिके मूलप्रसासादनमिश्राऽविरतगुणस्थानेषु त्रिषु मिथ्यात्वं विना त्रिप्रत्ययिकः ३ । देशेन लेशेनैक-मसंयमं दिशति परिहरतीति देशैकदेशः देशसंयतः, तत्रापि त्रिप्रत्ययिकः । ते प्रत्ययाः विरमणेन मिश्रमविर-मण कषाययोगौ चेति, त्रसवधविना स्थावर-विराधनादिसंयुक्तौ कषाय-योगौ इत्यर्थः । सार्धद्वयप्र-त्ययबन्धः ॥७८॥

उपरितनाः पञ्च गुणाः द्वि-द्विप्रत्यया कषाया योगा, प्रमत्तादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तेषु पञ्चसु कषाय-योगौ प्रत्ययौ द्वौ द्वौ भवत इत्यर्थः । ततः त्रयो गुणा उपशान्तादयः योगप्रत्ययाः, उपशान्तादिषु त्रिषु एक-योगप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । इत्येव खलु अष्टकर्मणा सामान्यप्रत्ययाः तद्वन्धननिमित्तानि भवन्ति ॥७९॥

गुणस्थानेषु मूलप्रत्ययाः—

मि० सा० मि० अ० टे० प्र० अ० अ० अ० सू० उ० क्षी० स० अ०
४ ३ ३ ३ ३ २ २ २ २ २ १ १ १ ०

प्रथम गुणस्थानमे उपर्युक्त चारो प्रत्ययोंसे कर्म-बन्ध होता है । तदनन्तर तीन गुण-स्थानोंमें मिथ्यात्वको छोड़कर शेष तीन कारणोंसे कर्म-बन्ध होता है । देशविरत नामक पाँचवें गुणस्थानमें दूसरा असंयमप्रत्यय मिश्र अर्थात् आधा और उपरिम दो प्रत्यय कर्म-बन्धके कारण हैं । तदनन्तर ऊपरके पाँच गुणस्थानोंमें कषाय और योग इन दो कारणोंसे कर्म-बन्ध होता है ।

१. सं० पञ्चसं ४, १५-१६ । २. ४, १८-१९ । ३. ४, १८-२१ ।

१ शतक० १४ । तत्र 'अणतरतिण' इति स्थाने 'उवरिमतिगे' इति पाठः । २. गो०क० ७८७-७८८ ।

* द दुवारस ।

ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें इन तीन गुणस्थानोमे केवल योगप्रत्ययसे कर्म-बन्ध होता है। इस प्रकार आठो कर्मोंके बन्धके कारण ये सामान्य प्रत्यय होते हैं ॥७८-७९॥
अब गुणस्थानोंमें उत्तर प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

^१पणवण्णा पण्णासा तेयाल छयाल^१ सत्ततीसा य ।

चउवीस दु वावीसा सोलस एऊण जाव णव सत्ता ॥८०॥

^२णाणाजीवेसु णाणासमएसु उत्तरपच्चया गुणट्ठाणेसु ५५।५०।४३।४६।३७।२४।२२।२२।

अणियट्ठिमि १६।१५।१४।१३।१२।११।१०। सुहुमाइसु पचसु १०।९।८।७।६।

उत्तरप्रत्ययाः गुणस्थानेषु क्रमेण कथ्यन्ते—पञ्चपञ्चाशत् ५५, पञ्चाशत् ५०, त्रिचत्वारिंशत् ४३, पट्चत्वारिंशत् ४६, सप्तत्रिंशत् ३७, चतुर्विंशतिः २४, द्विवारद्वविंशतिः २२, २२; षोडश १६ यावन्नवाङ्गं ९ तावदेकोनः १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १, ० ॥८०॥

नानाजीवेषु नानासमयेषु उत्तरप्रत्ययाः गुणस्थानेषु—

मि० सा० मि० अ० दे० प्र० अ० अ० अनिवृत्तस्य सप्तभागेषु सू० उ० क्षी० स० अ०
५५ ५० ४३ ४६ ३७ २४ २२ २२, १६ १५ १४ १३ १२ ११ १०, १० ९ ८ ७ ०

मिथ्यात्व गुणस्थानमें पचपन उत्तर प्रत्ययोसे कर्म-बन्ध होता है। सासादनमें पचास उत्तर प्रत्ययोसे कर्म-बन्ध होता है। मिश्रमे तेतालीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अविरतमे छयालीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। देशविरतमे सैंतीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। प्रमत्तविरतमें चौबीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अप्रमत्तविरतमे बाईस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अपूर्वकरणमे बाईस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अनिवृत्तिकरणमे सोलह और आगे एक-एक कम करते हुए दश तक उत्तर प्रत्यय होते हैं। सूक्ष्म-साम्परायमे दश उत्तर प्रत्यय होते हैं। उपशान्तकपाय और क्षीणकपायमे नौ-नौ उत्तर प्रत्यय होते हैं। सयोगिकेवलीमे सात उत्तर प्रत्यय होते हैं। अयोगिकेवलीमे कर्म-बन्धका कारणभूत कोई भी मूल या उत्तर प्रत्यय नहीं होता है ॥८०॥

गुणस्थानोमे नाना जीवोंकी अपेक्षा नाना समयोंमे उत्तरप्रत्यय इस प्रकार होते हैं—

मि० सा० मि० अवि० दे० प्र० अप्र० अपू० अनिवृत्तिकरण
५५ ५० ४३ ४६ ३७ २४ २२ २२, १६ १५ १४ १३ १२ ११ १०,
सू० उ० क्षी० स० अ०
१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ ०

अब ग्रन्थकार किस गुणस्थानमें कौन-कौन उत्तरप्रत्यय नहीं होते, यह दिखलाते हैं—

^३आहारदुअ-विहीणा मिच्छूणा अपुण्णजोअ अणहीणा ते ।

अपज्जत्तजोअ सह ते ऊण तसवह विदिय अपुण्णजोअ वेउव्वा ॥८१॥

ते एयारह जोआ छट्ठे संजलण णोकसाया य ।

आहारदुगूणा दुसु कमसो अणियट्ठिए इमे भेया ॥८२॥

छक्कं हस्साईणं संढित्थी पुरिसवेय संजलणा ।

वायर सुहुमो लोहो सुहुमे सेसेसु सए सए जोया ॥८३॥

१. स० पञ्चसं० ४, ३२-३४ । २. ४, ३५ । ३. ४, 'आहारकद्वयोना' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ८५)।

† व छयाल ।

मिथ्यादृष्टौ आहारकद्विकविहीना अन्ये पञ्चपञ्चाशत् ५५ । मिथ्यात्वपञ्चकोनाः सासादने पञ्चाशत् ५० । औदारिक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाऽपूर्णयोगत्रयाऽनन्तानुबन्धिनीना. मिश्रगुणे त्रिचत्वारिंशत् ४३ । अपर्याप्तयोगत्रयसहिता. असंयते पट्चत्वारिंशत् ४६ । त्रसवधाऽप्रत्याख्यानद्वितीयचतुष्कौदारिकवैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोग-वैक्रियिकैर्नवभिरूना. देशसंयते सप्तत्रिंशत् ३७ । पष्ठे प्रमत्ते ते अपूर्णत्रिक-वैक्रियिकेभ्यो विना एकादश योगाः ११, सज्ज्वलनकपायचतुष्क ४ नव नोकपायाः ६ चेति चतुर्विंशतिः प्रमत्ते २४ स्युः । द्वयोरप्रमत्तापूर्वकरणयोः ते पूर्वोक्ता आहारकद्विकोनाः द्वाविंशति । मनो-वचनयोगाः अष्टौ ८, औदारिक-काययोगः १ सज्ज्वलनकपायचतुष्क ४ नव नोकपायाः ६ इति द्वाविंशतिः प्रत्यया २२ अप्रमत्ते अपूर्वकरणे च भवन्ति । अनिवृत्तिकरणे इमान् वक्ष्यमाणान् भेदान् क्रमेणाह—अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे हास्यादि-पट्कं विना पोटश, पण्डवेदं विना द्वितीये १५, स्त्रीवेद विना तृतीये १४, पुवेद विना चतुर्थे १३, सज्ज्वलनक्रोधं विना पञ्चमे १२, सज्ज्वलनमान विना पष्ठे भागे एकादश ११ । बादरलोभ. बादर-अनिवृत्तिकरणे व्युच्छिन्नः । सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभोऽस्ति १, अष्टौ मनो-वचनयोगाः ८, औदारिककाययोगः एकः १ । एव १० दश सूक्ष्मसाम्पराये भवन्ति । ग्रेपेषु उपशान्तादिषु चतुर्षु स्वे स्वे योगाः । उपशान्ते क्षीणकपाये च अष्टौ मनो-वचनयोगाः ८, औदारिककाययोगः १ एवं ६ । सयोगे सत्याऽनुभयमनोवागीदारिकद्विक-कार्मण-योगा. सप्त ७ । अयोगे शून्य ० ॥८१-८३॥

इति गुणस्थानेषु यथासम्भव सामान्य-विशेषभेदेन प्रत्ययबन्धः समाप्तः ।

अथ मार्गणास्थानेषु यथासम्भवं प्रत्ययान् प्ररूपयति—

गतिमार्गणाया प्रत्ययाः— इन्द्रियमार्गणायां प्रत्ययाः— कायमार्गणायां प्रत्ययाः—

न० ति० म० दे० ए० द्वो० त्री० च० प० ष० अ० ते० वा० व० त्र० योगमार्गणाया प्रत्ययाः—
५१ ५३ ५५ ५२ ३८ ४० ४१ ४२ ५७ ३८ ३८ ३८ ३८ ५७

मनोयोगे—

वचनयोगे—

काययोगे—

स० मृ० स० अ० स० मृ० स० अ० ओ० औ० मि० वै० वै० मि० आ० आ० मि० का०
४३ ४३ ४३ ४३ ४३ ४३ ४३ ४३ ४३ ४३ १२ १२ ४३

वेदमार्गणायां प्रत्ययाः— कपायमार्गणायां प्रत्ययाः—

ज्ञानमार्गणायां प्रत्ययाः—

स्त्री० पु० न० क्रो० मा० माया० लो० कुम० कुश्रु० वि० म० श्रु० अव० म० के०
५३ ५५ ५५ ४५ ४५ ४५ ४५ ५५ ५५ ५२ ४८ ४८ ४८ २० ७

सयममार्गणायां प्रत्ययाः—

दर्शनमार्गणायां प्रत्ययाः—

लेश्यामार्गणाया प्रत्ययाः—

सा० झे० प० सू० य० स० अ० च० अच० अव० के० कृ० नी० का० ते० प० शु०
२४ २४ २२ १० ११ ३७ ५५ ५७ ५७ ४८ ७ ५५ ५५ ५५ ५७ ५७ ५७

अव्यमार्गणाया प्रत्ययाः— सम्यक्त्वमार्गणायां प्रत्ययाः— सज्जिमार्गणायां प्रत्ययाः— आहारमार्गणायां प्रत्ययाः—

म० अ० औ० वे० क्षा० सा० मिश्र मि० स० अ० आ० अना०
५७ ५५ ४६ ४८ ४८ ५० ४३ ५५ ५७ ४५ ५६ ४३

इति मार्गणासत्यत्ययरचनेयम् ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमे आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ये दो प्रत्यय नहीं होते हैं । सासादनमे उक्त आहारकद्विक और पौंचों मिथ्यात्व ये सात प्रत्यय नहीं होते हैं । मिश्रगुणस्थानमे अपर्याप्तकालसम्बन्धी औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मण-काययोग ये तीन योग, अनन्तानुबन्धी कपायचतुष्क और उपर्युक्त सात इस प्रकार चौदह प्रत्यय नहीं होते हैं । अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे उक्त चौदह प्रत्ययोमेसे अपर्याप्तकालसम्बन्धी तीन

प्रत्यय होते हैं, शेष ग्यारह प्रत्यय नहीं होते हैं। देशविरतमें त्रसवध; द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण-कपायचतुष्क, अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी तीनों योग, वैक्रियिककाययोग तथा उपर्युक्त ग्यारह प्रत्यय (मिथ्यात्वपञ्चक, अनन्तानुबन्धिचतुष्क और आहारकद्विक) इस प्रकार बीस प्रत्यय नहीं होते हैं। छठे गुणस्थानोमे चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग और आहारकद्विक ये ग्यारह योग, संज्वलनचतुष्क और नौ नोकपाय इस प्रकार चौबीस प्रत्यय होते हैं। (शेष तेतीस प्रत्यय नहीं होते हैं।) इन चौबीसमेंसे सातवें और आठवें इन दो गुणस्थानोमे आहारकद्विकके विना शेष बाईस प्रत्यय होने हैं। अनिवृत्तिकरणके सात भागोमे बन्ध-प्रत्ययोंके भेद इस प्रकार होते हैं—प्रथम भागमे अपूर्वकरणके बाईस प्रत्ययोमेंसे हास्यादि-पट्कके विना सोलह प्रत्यय होते हैं। द्वितीय भागमे नपुंसकवेदके विना पन्द्रह, तृतीय भागमें स्त्रीवेदके विना चौदह, चतुर्थ भागमे पुरुषवेदके विना तेरह, पंचम भागमे संज्वलनक्रोधके विना बारह, षष्ठ भागमे संज्वलन-मानके विना ग्यारह और सप्तम भागमे संज्वलनमायाके विना बादरलोभ-सहित दश उत्तर प्रत्यय होते हैं। दशवे गुणस्थानमे चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग और सूक्ष्मसंज्वलन लोभ ये दश उत्तर प्रत्यय होते हैं। शेष अर्थात् ग्यारहवे और बारहवे गुणस्थानमे सूक्ष्मसंज्वलन लोभके विना शेष नौ नौ प्रत्यय होते हैं। तेरहवे गुणस्थानमे प्रथम और अन्तिम दो-दो मनोयोग और वचनयोग, तथा औदारिकद्विक और कर्मण काययोग ये सात प्रत्यय होते हैं ॥८१-८३॥

अथ मार्गणाओमें बन्ध प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

१ओरालिय-आहारदुगूणा हेऊ हवंति सुर-णिरए ।

आहारय-वेउव्वदुगूणा सव्वे वि तिरिएसु ॥८४॥

वेउव्वजुयलहीणा मणुए पणवण्ण पच्चया होंति ।

गइचउरएसु एवं सेसासु वि ते मुणेयव्वा ॥८५॥

अथ मार्गणास्थानेषु यथासम्भवं प्रत्ययान् गाथासप्तदशकेनाह—[‘ओरालिय आहार—’ इत्यादि ।] सुरगत्यां नारकगत्यां च औदारिकद्विकाऽऽहारकद्विकोना अन्ये द्विपञ्चाशत्, एकपञ्चाशत् हेतवः प्रत्ययाः आसन्वा भवन्ति । देवगतीं तु नपुंसकवेद विना, नारकगतीं तु स्त्री-पुवेदाभ्यां विना ज्ञातव्याः । तिर्यगगत्यां आहारकद्विक-वैक्रियिकद्विकोना अन्ये त्रिपञ्चाशत् ५३ भवन्ति ॥८४॥

मनुष्यगतीं वैक्रियिकयुग्महीना अन्ये पञ्चपञ्चाशत् प्रत्ययाः ५५ भवन्ति । गतिषु चतुषु एवम् । गेषासु मार्गणासु एकेन्द्रियादिषु ते वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः ज्ञातव्याः ॥८५॥

गतिमार्गणाकी अपेक्षा नरकगतिमे औदारिकद्विक, आहारकद्विक, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन छहके विना शेष इकावन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। देवगतिमे उक्त छहमेंसे स्त्रीवेद और पुरुषवेद निकालकर और नपुंसकवेद मिलाकर पाँचके विना शेष वावन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। तिर्यगगतिमे वैक्रियिकद्विक और आहारकद्विक इन चारके विना शेष सभी अर्थात् तिरेपन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। मनुष्यगतिमें वैक्रियिकद्विकके विना शेष पचपन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। इस प्रकार चारों गतियोंमें बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण किया। इसी प्रकारसे शेष मार्गणाओमें भी उन्हें जान लेना चाहिए ॥८४-८५॥

मिच्छताइचउट्टय वारह-जोगूणिगिंदिए मोत्तुं ।
कम्मोरालदुअं खलु वयणंतजुआ दु ते वियले ॥८६॥

एकेन्द्रिये कर्मणौदारिकयुग्मं मुक्त्वा शेषद्वादशयोगोना रसनादिचतुष्क-मनः पुवेद-स्त्रीवेदेभ्यो विना च शेषा. अष्टात्रिंशत्प्रत्ययाः ३८ । मिथ्यात्वादिमूलप्रत्ययचतुष्टयः, तन्मध्ये मिथ्यात्वपञ्चक ५ कायपट्क ६, स्पर्शनेन्द्रियाऽस्यमः १, स्त्री-पुवेदरहितकपायास्त्रयोविंशति २३ । औदारिकयुग्म-कर्मणयोग एक इति त्रिक ३ चेत्यष्टात्रिंशत्प्रत्यया एकेन्द्रियाणां भवन्तीत्यर्थः. ३८ । विकलत्रये त एव वचनान्तस्वेन्द्रिययुक्ता भवन्ति । द्वीन्द्रिये त एव ३८ अनुभयभाषा-रसनाभ्यां सह ४० । त्रीन्द्रिये घ्राणेन सह त एव ४१ । चक्षुषा सह चतुरिन्द्रिये त एव ४२ इत्यर्थः ॥८६॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोमे मिथ्यात्व आदि चार मूलप्रत्ययोमेसे औदारिक-द्विक तथा कर्मणकाययोगके विना शेष वारह योगोंको, एवं रसनादि चार इन्द्रिय और मन-सम्बन्धी पाँच अविरति तथा स्त्री और पुरुष इन दो वेदोंको छोड़कर बाकीके अड़तीस बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए । विकलेन्द्रियोंमें अन्तिम वचनयोग-सहित वे सर्व प्रत्यय होते हैं ॥८६॥

विशेषार्थे—यद्यपि भाष्य-गाथामे एकेन्द्रियोके बन्धप्रत्यय बतलाते हुए 'वारह जोगूण' पदके द्वारा केवल वारह जोगोंके विना शेष प्रत्यय होनेका विधान किया गया है, जिसके अनुसार एकेन्द्रियोंमें पैंतालीस प्रत्यय होना चाहिए । पर वे सम्भव नहीं हैं । अतः 'मिच्छतादि-चउट्टय' पदके पाये जानेसे तथा 'योग' पदको उपलक्षण मान करके रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन ये पाँच अविरति एव स्त्रीवेद और पुरुषवेद ये दो नोकपाय इनको भी कम करना चाहिए । अर्थात् पाँच अविरति, दो नोकपाय और वारह योग, इन उन्नीस प्रत्ययोंको सर्व सत्तावन प्रत्ययोंमेसे कम करने पर शेष अड़तीस बन्ध-प्रत्यय एकेन्द्रियोंमे होते हैं, ऐसा जानना चाहिए । द्वीन्द्रियोंमे रसनेन्द्रिय और अनुभयवचनयोगको मिलाकर चालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । त्रीन्द्रियोंमे घ्राणेन्द्रियको मिलाकर इकतालीस और चतुरिन्द्रियोंमे चक्षुरिन्द्रियको मिलाकर व्यालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं ।

तस पंचक्खे सव्वे थावरकाए इगिंदिए जेम ।
चोदस जोयविहीणा तेरस जोएसु ते णियं मोत्तुं ॥८७॥
संजलण णोकसाया संढित्थी वज्ज सत्त णिय जोगा ।
आहारदुगे हेऊ पुरिसे सव्वे वि णायव्वा ॥८८॥
इत्थि-णउंसयवेदे आहारदुगूणया होंति ।
कोहाइकसाएसुं कोहाइ इयर-दुवालस-विहीणा ॥८९॥

त्रसकाये पञ्चाक्षे च सर्वे प्रत्ययाः सप्तपञ्चाशत् भवन्ति ५७ । यथा एकेन्द्रियोक्ताः अष्टात्रिंशत्प्रत्यया, तथा पृथिव्यसेजोवायु-वनस्पतिकायेषु पञ्चसु स्थावरेषु ३८ भवन्ति । आहारकयुग्म परित्यज्य अन्ये त्रयो-दशयोगेषु निज निज योग राशिमध्ये मुक्त्वा चतुर्दशयोगविहीनास्ते प्रत्ययाः ४३ भवन्ति । मिथ्यात्वपञ्चक ५, अस्यमाः १२, कपायाः २५, स्वकीययोगः, एव ४३ । ॥८७॥

सज्जलनचतुष्क ४, नपुसक-स्त्रीवेदवजितनोकपायसप्तक ७ निजयोगैकसहित १ इति द्वादश हेतवः प्रत्ययाः आहारककाययोगे आहारकमिश्रकाये च भवन्ति १२ । पुवेदे एकस्मिन् समये सर्वे वेदा न भवन्ति, इति हेतोः द्वाभ्यां वेदाभ्यां विना अन्ये सर्वे आस्रवाः ५५ ज्ञातव्या ॥८८॥

स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च आहारकद्विकाऽन्यतरवेदद्वयरहिताः प्रत्ययाः ५३ भवन्ति । क्रोधादिकषायेषु क्रोधादेरितरद्वादशविहीनाः, यदा क्रोधो भवति, तदाऽन्यत् मानादित्रय न भवति, इति हेतोरनन्तानुबन्ध्य-प्रत्याख्यानानादिभेदेन द्वादशरहिताः ४५ ॥८६॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा त्रसकायिक जीवोंमें और पंचेन्द्रियोमे सर्व ही बन्ध-प्रत्यय होते हैं । स्थावरकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोके समान अड़तीस बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए । योगमार्गणाकी अपेक्षा आहारकद्विकके विना बाकीके तेरह योगोमे निज-निज योगको छोड़कर शेष चौदह योगोसे रहित तेतालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । आहारकद्विकमे चारो संज्वलन, तथा नपुंसक और स्त्रीवेदको छोड़कर शेष सात नोकषाय और स्वकीय योग इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं । वेदमार्गणाकी अपेक्षा पुरुषवेदी जीवोमे सभी बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए । स्त्रीवेदी और नपुंसक-वेदी जीवोंमे आहारकद्विकको छोड़कर शेष सर्व प्रत्यय होते हैं । कषायमार्गणाकी अपेक्षा विवक्षित क्रोधादि कषायोंमें अपने चारके सिवाय अन्य बारह कषायोंके घट जानेसे शेष पैतालीस-पैतालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥८७-८८॥

विशेषार्थ—वेदमार्गणामें इतना विशेष ज्ञातव्य है कि विवक्षित वेदवाले जीवके बन्ध-प्रत्यय कहते समय उसके अतिरिक्त अन्य दो वेदोंको भी कम करना चाहिए; क्योंकि एक जीवके एक समयमे सभी वेदोंका उदय संभव नहीं है । अतएव पुरुषवेदीके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके विना पचपन बन्ध-प्रत्यय होते हैं । तथा स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदीके स्व-व्यतिरिक्त शेष दो वेद और आहारकद्विकके विना शेष तिरेपन-तिरेपन बन्ध-प्रत्यय होते हैं ।

मइ-सुअअण्णाणेसुं आहारदुगूणया मुणेयव्वा ।

मिस्सतियाहारदुअं वज्जित्ता सेसया दु वेभंगे ॥८९॥

मइ-सुअ-ओहिदुगेसुं अणचदु-मिच्छत्तपंचहि विहीणा ।

हस्साइ छक्क पुरिसो संजलण मण-वचि चउर उरालं ॥९०॥

मणपज्जे केवलदुवे मण-वचि पढमंत कम्म उरालदुगं ।

संजलण णोकसाया मण-वचि ओराल आहारदुगं ॥९१॥

सामाइय-छेएसुं आहारदुगूणया दु परिहारे ।

मण-वचि अट्ठोरालं सुहुमे संजलण लोहंते ॥९२॥

कम्मोरालदुगाइं मण-वचि चउरा य होंति जहखाए ।

असंजमम्मि सव्वे आहारदुगूणया णेया ॥९३॥

अण मिच्छ विदिय तसवह वेउव्वाहारजुयलाइं

ओरालमिस्सकम्मा तेहिं विहीणा दु होंति देसम्मि ॥९४॥

मति-श्रुताऽज्ञानद्वये आहारकद्विकोनाः अन्ये पञ्चपञ्चाशत् प्रत्ययाः ५५ ज्ञातव्याः । विभङ्गज्ञाने औदारिक-वैक्रियिकमिश्र-कामर्णमिति मिश्रत्रिक आहारकद्विक च वर्जयित्वा शेषाः ५२ प्रत्ययाः स्युः ॥९०॥

मति श्रुतावधिज्ञानेषु अवधिदर्शने च अनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वपञ्चकैर्विहीनाः अन्ये अष्टचत्वारिंशत् ४८ प्रत्ययाः स्युः । मनःपर्ययज्ञाने हास्यादिषट्क ६ पुवेदः १ सज्वलनचतुष्क ४ मनोयोगचतुष्कं ४ वचनयोगचतुष्क ४ औदारिक १ चेति विंशतिः २० ॥९१॥

केवलज्ञाने केवलदर्शने च मनो-वचनप्रथमान्ताः सत्यानुभयमनो-वचनयोगाः ४, कर्मणं १ औदारिकद्विक २ चेति सप्ताऽऽज्ञवा. ७ स्युः । सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः सञ्चलनाः ४ नव नोकषायाः ६ मनो-वचनयोगाः ८ औदारिकाऽऽहारकद्विकं ३ चेति चतुर्विंशतिः प्रत्ययाः २४ स्युः ॥६२॥

परिहारविशुद्धौ त एव २४ आहारकद्विकोना. द्वाविंशतिः २२ । सूक्ष्मसाम्परायसंयमे मनो-वचन-योगाः अष्टौ ८, औदारिककाययोगः १ । कथम्भूते सूक्ष्मे ? सञ्चलनलोभान्ते । सञ्चलनलोभोऽन्ते यस्य, स सूक्ष्मलोभसंयुक्तः १ । एव दश प्रत्ययाः १० ॥६३॥

यथाख्याते कर्मण १ औदारिकद्विक २ मनो-वचनयोगा अष्टौ ८ चेत्येकादश ११ भवन्ति । असंयमे आहारकद्वयोनाः अन्ये सर्वे पञ्चपञ्चाशत् प्रत्यया ५५ ज्ञेयाः ॥६४॥

अनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वपञ्चकाप्रत्याख्यानचतुष्क-त्रसवध-वैक्रियिकयुग्माऽऽहारकयुगलौदारिक-मिश्रकर्मणकैस्तैर्विंशतिसंख्यैर्विहीनाः अन्ये सप्तत्रिंशत्प्रत्ययाः देशसंयमे ३७ भवन्ति ॥६५॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्तज्ञानो और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आहारकद्विकके विना शेष पचपन-पचपन बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए । विभंगज्ञानियोंमें मिश्रत्रिक अर्थात् औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कर्मणकाययोग, तथा आहारकद्विक; इन पाँचको छोड़कर शेष बावन बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए । मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिद्विक अर्थात् अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क और मिथ्यत्वपंचक, इन नौके विना शेष अड़तालीस-अड़तालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । मनःपर्ययज्ञानियोंमें हास्यादिषट्क, पुरुषवेद, सञ्चलनचतुष्क, मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क और औदारिककाययोग, ये बीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । केवलद्विक अर्थात् केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंमें आदि और अन्तके दो-दो मनोयोग और वचनयोग, तथा औदारिकद्विक और कर्मणकाययोग, इस प्रकार सात-सात बन्ध-प्रत्यय होते हैं । संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी जीवोंमें सञ्चलनचतुष्क, नौ नोकषाय, मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क, औदारिककाययोग और आहारकद्विक, ये चौबीस-चौबीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । परिहारविशुद्धसंयमी जीवोंमें उक्त चौबीसमेंसे आहारकद्विकके सिवाय शेष बाईस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । सूक्ष्मसाम्परायसंयमियोंमें मनोयोग-चतुष्क, वचनयोगचतुष्क, औदारिककाययोग और सूक्ष्मलोभ, ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं । यथाख्यातसंयमियोंमें मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क, औदारिकद्विक और कर्मणकाययोग, ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं । असंयमी जीवोंमें आहारकद्विकके विना शेष पचपन बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए । देशसंयमी जीवोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क, अप्रत्याख्यानवरणचतुष्क, मिथ्यात्वपंचक, त्रसवध, वैक्रियिकयुगल, आहारकयुगल, औदारिकमिश्र और कर्मणकाययोग, इन बीसके विना शेष सैंतीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥६०-६५॥

तेज-तिय चक्षुजुयले सव्वे हेऊ हवति भव्वे य ।

किण्हाइतियाऽभव्वे आहारदुगूणया णेया ॥६६॥

तेजस्विके पीत-पद्म-शुक्लेश्यासु, चक्षुर्युगले चक्षुर्दर्शने अचक्षुर्दर्शने भव्यजीवे च सर्वे सप्तपञ्चाशत्कर्मणां हेतवः प्रत्ययाः ५७ भवन्ति । कृष्णादित्रिके अभव्ये च आहारकद्विकोना अन्ये पञ्चपञ्चाशत् ५५ प्रत्ययाः ज्ञेयाः ॥६६॥

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा तेज-त्रिक अर्थात् तेज, पद्म और शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें, दर्शन-मार्गणाकी अपेक्षा चक्षुयुगल अर्थात् चक्षुर्दर्शनी और अचक्षुर्दर्शनी जीवोंमें तथा भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्योंमें सभी बन्ध-प्रत्यय होते हैं । कृष्णादि तीन लेश्यावालोंमें, तथा अभव्योंमें आहारक-द्विकके विना पचपन बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए ॥६६॥

अणमिच्छाहारदुगूणा सव्वे उवसमे णेया ।

आहारजुयल^१जुत्ता वेदय-खइयम्मि ते होंति ॥६७॥

मिच्छाहारदुगूणा साए मिच्छम्मि आहारदुगूणा ।

अण-मिच्छ-मिस्स जोगा हारदुगूणा हवंति मिस्सम्मि ॥६८॥

उपशमसम्यक्त्वे अनन्तानुबन्धिचतुष्क मिथ्यात्वपञ्चकाऽऽहारद्विकोनाः अन्ये सर्वे पट्चत्वारिंशत्प्रत्ययाः ४६ ज्ञेयाः । वेदकसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वे च त एवाऽऽहारकयुगलयुक्ताः ४८ भवन्ति ॥६७॥

सासादनरुचौ मिथ्यात्वपञ्चकाऽऽहारद्विकोनाः पञ्चाशत् प्रत्ययाः ५० स्युः । मिथ्यात्वे आहारकद्वि-
कोनाः पञ्चपञ्चाशत् ५५ प्रत्ययाः स्युः । मिश्रे अनन्तानुबन्धिचतुष्क मिथ्यात्वपञ्चकमिश्रत्रिकयोगाऽऽहारकद्वयो-
नास्त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः ४३ स्युः ॥६८॥

सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा औपशमिकसम्यक्त्वी जीवोमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क, मिथ्यात्वपञ्चक, और आहारकद्विक इन ग्यारहके विना शेष छयालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । वेदकसम्यक्त्वी और क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंमें आहारकयुगलसे युक्त उपर्युक्त छयालीस अर्थात् अड़तालीस-अड़तालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टियोमें मिथ्यात्वपञ्चक और आहारकद्विक, इन सातके विना शेष पचास बन्ध-प्रत्यय होते हैं । मिथ्यादृष्टियोंमें आहारकद्विकके विना शेष पचपन प्रत्यय होते हैं । मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क, मिथ्यात्वपञ्चक, तीनो मिश्रयोग (औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कर्मण) तथा आहारकद्विक, इन चौदहके विना शेष तैंतालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥६७-६८॥

मिच्छाइचउकेयारजोगूणा असणिए मोत्तु' ।

भासंतोरेलदुअं कम्मं सणिमि सव्वे वि ॥६९॥

मिथ्यात्वाद्विचतुष्कं मिथ्यात्वाविरतकपाययोगा इति चतुष्क तन्मध्ये पञ्चदश योगा वर्तन्ते । तत्र भाषान्त अनुभयवचनं औदारिकद्विक कर्मण चेति चतुर्योगान् मुक्त्वा शेषैकादश योगा, असंज्ञित्वान्मनो विना अन्ये ४५ असंज्ञिजीवे प्रत्ययाः स्युः । ते के ? मिथ्यात्वपञ्चकं ५, अविरतयः ११, कपायाः २५, योगाः ४ एव ४५ । संज्ञिजीवे सर्वे सप्तपञ्चाशत् ५७ प्रत्ययाः स्युः ॥६९॥

संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा असंज्ञी जीवोमें मिथ्यात्व आदि चार मूलप्रत्ययोंमेंसे योग-सम्बन्धी अन्तिम वचनयोग, औदारिकद्विकयोग और कर्मणकाययोग, इन चारको छोड़कर शेष चार मनोयोग, आदिके तीन वचनयोग, वैक्रियिकद्विक और आहारकद्विक इन ग्यारह योगोंके विना अवशिष्ट बन्ध-प्रत्यय होते हैं । संज्ञी जीवोमें सर्व ही बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥६९॥

विशेषार्थ—यद्यपि भाष्य-गाथामे 'एयार जोगूणा' ऐसा निर्देश है, अतः ग्यारह ही योग कम करना चाहिए थे । परन्तु यतः असंज्ञी जीवोंके मन नहीं होता, अतः मन-सम्बन्धी अविरतिका न होना भी स्वतः-सिद्ध है । इस प्रकार ग्यारह योग और एक मन-सम्बन्धी अविरतिके घटाने पर शेष पैतालीस बन्ध-प्रत्यय असंज्ञी जीवोमें पाये जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए ।

आहारे कम्मूणा इयरे कम्मूण जोयरहिया ते ।

एवं तु मग्गणासु उत्तरहेऊ जिणेहिं णिद्धिडा ॥१००॥

मग्गणासु पचया समत्ता ।

आहारके कर्मणोनाः अन्ये ५६ आल्लवाः स्युः । इतरे अनाहारे कर्मणे चतुर्दशयोगरहितास्ते प्रत्ययाः ४३ भवन्ति । मिथ्यात्वपञ्चकं ५, अविरतयः १२, कपायाः २५, कर्मणयोगः १, एवं अनाहारके ४३ भवन्ति । एव तु पुनः मार्गणास्थानेषु उत्तरहेतवः उत्तरप्रत्ययाः कर्म-कारणानि जिनैर्निर्दिष्टा कथिता ॥१००॥

इति मार्गणासु प्रत्ययाः समाप्ताः ।

आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोमे कर्मणकाययोगको छोड़कर शेष छप्पन बन्ध-प्रत्यय होते हैं । अनाहारक जीवोमे कर्मणकाययोगके बिना शेष चौदह योग नहीं पाये जाते हैं, अतएव उनके घट जानेसे तेतालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं । इस प्रकार जिनन्द्रदेवने मार्गणाओंमें बन्धके उत्तर-प्रत्ययोंका निर्देश किया है ॥१००॥

अब गुणस्थानोंकी अपेक्षा एक जीवके एक समयमें संभव जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट बन्ध-प्रत्ययोंका निर्देश करते हैं—

^१दस अट्टारस दसयं सत्तर णव सोलसं च दोणहं पि ।

अट्ट य चउदस पणयं सत्त ति ए दु ति दु एगेगं ॥१०१॥

एयजीव पडुच्च एयममये जहणुक्स्म-उत्तरोत्तरपच्चया—

१०	१०	६	६	८	५	५	५	२	२	१	१	१
१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१

अथ मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु एकजीवस्य एकस्मिन् समये जघन्य-मध्यमोत्कृष्टभेदेन सम्भवदुत्तरोत्तरप्रत्ययान् प्ररूपयति—['दस अट्टारस दसयं' इत्यादि ।] एकस्य जीवस्यैकस्मिन् समये सम्भवत्प्रत्ययस-मूहः स्थानम् । तच्च गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ जघन्यस्थानं दशकम् १० । मध्यममेकैकाधिकम् ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७ यावदुत्कृष्टमष्टादशकम् १८ । सासादने जघन्य दशकं स्थानम् १०, तथा मध्यम ११, १२, १३, १४, १५, १६ यावदुत्कृष्टम् १७ स्थान सप्तदशकम् । मिश्रे जघन्यं नवकम् ९ । तथा मध्यम [१०, ११, १२, १३, १४, १५ यावत्] उत्कृष्ट षोडशकम् १६ । तथाऽसयतेऽपि जघन्यं नवकम् ९ । तथा मध्यम [१०, ११, १२, १३, १४, १५ यावत्] उत्कृष्टं षोडशकम् १६ । द्वयोरपि वचनान् । देशसयते जघन्यमष्टकम् ८ । तथा मध्यम [९, १०, ११, १२, १३ यावत्] उत्कृष्ट चतुर्दशकम् १४ । त्रिके प्रमत्ताऽप्रमत्ताऽपूर्वकरणेषु प्रत्येक पञ्च-पट्क्-सप्तकानि ज० ५, म० ६, उ० ७ । अनिवृत्तिकरणे द्विके २ त्रिके ३ द्वे । सूक्ष्मसाम्पराये द्विकम् २ । उपशान्तकपायादित्रये एककमेकैकम् । अयोगे शून्यं प्रत्ययाभावात् ॥१०१॥

एकजीवं प्रतीत्य आश्रित्य एकसमये जघन्योत्कृष्टोत्तरोत्तरप्रत्यया एते—

गुण०	मि०	मा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	ची०	स०	अयो०
जघ०	१०	१०	६	६	८	५	५	५	२	२	१	१	१	०
उत्कृ०	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१	०

मिथ्यात्व गुणस्थानमे जघन्यसे दश और उत्कर्षसे अट्टारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं । सासा-दनगुणस्थानमें जघन्यसे दश और उत्कर्षसे सत्तरह, मिश्रगुणस्थानमे जघन्यसे नौ और उत्कर्षसे सोलह, अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें भी जघन्यसे नौ और उत्कर्षसे सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं । देशविरतगुणस्थानमे जघन्यसे आठ और उत्कर्षसे चौदह, प्रमत्तविरत आदि तीन गुणस्थानोंमें जघन्यसे पाँच-पाँच और उत्कर्षसे सात-सात बन्ध-प्रत्यय होते हैं । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें जघन्यसे दो और उत्कर्षसे तीन बन्ध-प्रत्यय होते हैं । सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें जघन्य और उत्कर्षसे दो ही बन्ध-प्रत्यय होते हैं । उपशान्तकपाय, क्षीणकपाय और सयोगिकेवली इन तीनों गुणस्थानोंमें जघन्य और उत्कर्षसे एक-एक ही बन्ध-प्रत्यय होता है ॥१०१॥

इस प्रकार गुणस्थानोंमें एक जीवकी अपेक्षा एक समयमें जघन्यसे और उत्कर्षसे संभव उत्तर बन्ध-प्रत्ययोकी संदृष्टि इस प्रकार जानना चाहिए—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षी०	सथो०	अयो०
ज०	१०	१०	६	६	८	५	५	५	२	२	१	१	१	०
उ०	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	२	१	१	१	१	०

अब काय-विराधना-सम्बन्धी गुणकारोंको बतलाते हैं—

^१एय वियकायजोगे तिय चउ जोयम्मि पंच छजोए ।

छप्पंच दस य बीसा णणरस छक्केय कायगुणकारा ॥१०२॥

१ २ ३ ४ ५ ६ एवं संजोयादिगुणयारा ।
६ १५ २० १५ ६ १

अथैकादिकायविराधनागुणकारान् दर्शयति—['एयवियकायजोगे' इत्यादि ।]

एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट्संयोगेन कायिकाः ।

गुणकारा भवेयुर्ये ते षट्-पञ्चदशादयः ॥६॥

अनुलोम-विलोमाभ्यां एकैकोत्तरवृद्धितः ।

एक-द्वि-त्र्यादिसंयोगे विनिक्षिप्य पटीयसा^१ ॥१०॥

अनुलोम-विलोमरचना— ६ ५ ४ ३ २ १
१ २ ३ ४ ५ ६

पूर्वकेन परं राशिं गुणयित्वा विलोमतः ।

क्रमादेकादिकैरङ्कैर्भाजिते लभ्यते फलम्^२ ॥११॥

पडादीन् एकपर्यन्तान् अङ्कान् सस्थाप्य तदधोहारान् एकादीन् एकोत्तरान् संस्थापयेत् । अत्र प्रथम-हारेण १ स्वाशे ६ भक्ते लब्ध प्रत्येकभङ्गाः ६ पट् । पुनः परस्पराऽऽहतपट् पञ्चांशः ५ अन्योन्याहतः ३० । तदेक १ द्विकाहारेण २ भक्ते लब्धं द्विकायसंयोगभङ्गाः पञ्चदश १५ । पुनः परस्पराऽऽहत-तत्त्रिंश ३० चतुरंशे ४ = १२० । तथाकृतद्वित्रि ३ हारेण ६ भक्ते लब्धं त्रिकायसयोगा विंशतिः २० । पुनः तथाकृत-विंशत्यधिकशत १२० । ३ त्र्यशे ३६० तथाकृतपट् ६ चतु ४ हारेण २४ भक्ते लब्धं चतुःकायविराधनसयोगाः पञ्चदश १५ । पुनः तथाकृतपट्यधिकत्रिंशते ३६० द्वयंशे २ । ७२० तथाकृतचतुर्विंशतिः २४ पञ्चहारेण भक्ते १२० लब्ध पञ्चकायविराधनासयोगाः पट् ६ । पुनः तथाकृत १२० विंशत्यधिकसप्तशते ७२० एकांशे १ तथाकृतविंशत्यधिकशत १२० पट् ६ हारेण ७२० भक्ते लब्धं पट्कायसंयोग एकः १ । मिलित्वा ७२० । प्रत्येकं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुष्के सयोगगुणकाराः त्रिपष्टिः ६३ भवन्ति ।

१ २ ३ ४ ५ ६
६ १५ २० १५ ६ १ = ६३

मि सा मि अ एककायसंयोगभङ्गाः ६ । एव एककायविराधनायां भङ्गाः ६ । पृथ्वी १ अप् १ तेज १ वात १ वनस्पति १ असकाय १ ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
द्वयो' संयोगे भङ्गाः १५—पृथ्वी पृथ्वी पृथ्वी पृथ्वी पृथ्वी अप् अप् अप् अप् तेज तेज तेज
अप् तेज वात वन० अस तेज वात वन० अस वात वन० अस

^१ स० पंचसं० ४, ४ ।

^२ स० पञ्चसं० ४, ४४-४५ । २ ४, ४६ ।

† व पण्ण ।

१३ १४ १५

वात वात वन० एव द्विकायविराधनायां भङ्गाः १५ ।

वन० त्रस त्रस

त्रयाणां संयोगभङ्गाः २०—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी
अप्	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	तेज	वात	वात	वन०
तेज	वात	वन०	त्रस	वात	वन०	त्रस	वन०	त्रस	त्रस

११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०

पृथ्वी पृथ्वी अप् अप् अप् अप् तेज तेज तेज वात एव त्रिकायविराधनाया भङ्गाः २० ।

तेज तेज तेज वात वात वन० वात वात वन० वन०
वात वन० त्रस वन० त्रस त्रस वन० त्रस त्रस त्रस

चतुःसंयोगभङ्गाः १५—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्
अप्	अप्	अप्	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	तेज	वात	तेज
तेज	तेज	तेज	वात	वात	वन०	वात	वात	वन०	वन०	वात
वात	वन०	त्रस	वन०	त्रस	त्रस	वन०	त्रस	त्रस	त्रस	वन०

१२ १३ १४ १५

अप् अप् अप् तेज

तेज तेज वात वात

वात वन० वन० वन०

त्रस त्रस त्रस त्रस

एवं चतुष्कायविराधनायां पञ्चदश भङ्गाः १५ ।

पञ्चकायसंयोगजाता भङ्गाः ६—

१	२	३	४	५	६
पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्
अप्	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज
तेज	तेज	तेज	वात	वात	वात
वात	वात	वन०	वन०	वन०	वन०
वन०	त्रस	त्रस	त्रस	त्रस	त्रस

यदा पण्णां कायाना मध्ये कश्चित् प्रत्येकमेकैक काय विराधयति तदा पट् भेदाः ६ । यदा द्वय द्वय काय विराधयति, तदा भेदाः पञ्चदश १५ । यदा त्रिक त्रिक काय विराधयति, तदा भेदाः विशतिः २० । यदा कश्चित् कायचतुष्क कायचतुष्कं विराधयति, तदा भेदाः पञ्चदश १५ । यदा कश्चित् कायपञ्चक पञ्चकं विराधयति, तदा भेदाः पट् ६ । यदा कश्चित् युगपत् पट्कायान् विराधयति, तदा भेद एकः १ । एव [सर्वे] भेदाः ६३ ॥१०२॥

कायवधसम्बन्धी एकसंयोगी भंगोंका गुणकार छह, द्विसंयोगी भंगोंका गुणकार पन्द्रह, त्रिसंयोगी बीस, चतुःसंयोगी पन्द्रह, पंचसंयोगी छह और षट्संयोगी कायगुणकार एक जानना चाहिए ॥१०२॥

विशेषार्थ—गुणस्थानोंमें बन्ध-प्रत्ययोके एकसंयोगी, द्विसंयोगी आदि भंग कितने होते हैं, यह बतलानेके लिए ग्रन्थकारने देशामर्शकरूपसे प्रकृत गाथासूत्र कहा है । इन संयोगी भंगोंके सिद्ध करनेका करणसूत्र यह है कि जिस विवक्षित राशिके भंग निकालने हों, उस विवक्षित राशि-प्रमाणसे लेकर एक-एक कम करते हुए एकके अन्त तक अंकोंको स्थापित करना चाहिए । तथा उसके नीचे दूसरी पंक्तिमें एक अंकसे लेकर विवक्षित राशिके प्रमाण तक अंक लिखना चाहिए । पहली पंक्तिके अंकोंको अंश या भाज्य और दूसरी पंक्तिके अंकोंको हार या भागहार कहते हैं । ये भंग भिन्नगणितके अनुसार निकाले जाते हैं, इसलिए यहाँ क्रमसे पहले भाज्योंके साथ अगले भाज्योंका और पहले भागहारोंके साथ अगले भागहारोंका गुणा करना

चाहिए। पुनः भाज्योके गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उसमें भागहारोके गुणा करनेसे उत्पन्न राशिका भाग देना चाहिए। इस प्रकार जो प्रमाण आवे, तत्प्रमाण ही विचक्षित स्थानके भंग जानना चाहिए। इसी नियमको ध्यानमें रखकरके ग्रन्थकारने मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें संभव काय-वधके संयोगी भंगोंका निरूपण किया है, जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—आदिके चार गुणस्थानोंमें पट्कायिक जीवोंका वध सम्भव है, अतएव छह, पाँच, चार, तीन, दो और एक, इन भाज्य अंकोंको क्रमसे लिखकर पुनः उनके नीचे एक, दो, तीन, चार, पाँच और छह, इन भागहार अंकोंको लिखना चाहिए। इनकी अक सदृष्टि इस प्रकार होती है—

६ ५ ४ ३ २ १

१ २ ३ ४ ५ ६

यहाँपर पहली भाज्यराशि छहमें पहली हारराशि एकका भाग देनेसे छह आते हैं, अतएव एकसंयोगी भंगोंका प्रमाण छह होता है। पहली भाज्यराशि छहका अगली भाज्यराशि पाँचसे गुणा करनेपर गुणनफल तीस आता है, तथा पहली हारराशि एकका अगली हारराशि दोसे गुणा करनेपर हारराशिका प्रमाण दो आता है। इस दो हारगशिका भाज्यराशि तीसमें भाग देनेपर भजनफल पन्द्रह आता है, यही द्विसंयोगी भंगोंका प्रमाण है। इसी क्रमसे त्रिसंयोगी भंगोंका प्रमाण बीस, चतुःसंयोगी भंगोंका पन्द्रह, पंचसंयोगी भंगोंका छह और पट्संयोगी भंगोंका प्रमाण एक आता है।

इन संयोगी भंगोंकी अंकसदृष्टि इस प्रकार है—

१ २ ३ ४ ५ ६
६ १५ २० १५ ६ १

यह उपर्युक्त गाथासूत्र अन्य बन्ध-प्रत्ययोंके भंग जाननेके लिए बीजपदरूप है, इसलिए शेष बन्ध-प्रत्ययोंके भी भंग इसी उपर्युक्त प्रकारसे सिद्ध करना चाहिए।

यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि आगे मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें उत्तरप्रत्ययोंकी अपेक्षा जो भंग विकल्प बतलाये हैं, उनके लानेके लिए केवल काय-अविरतिके भेदोंकी अपेक्षा गुणकाररूपसे संख्या-निर्देश करना पर्याप्त नहीं है, किन्तु उन काय-अविरति-भेदोंके जो एक-संयोगी, द्वि-संयोगी आदि भंग होते हैं, गुणकाररूपसे उन भंगोंकी संख्याका निर्देश करने पर ही सर्व भंग-विकल्प आते हैं, इसलिए यहाँपर छह काय-अविरतियोंकी अपेक्षा एक-संयोगी आदि भंग लाकर उन्हें काय-गुणकार-संज्ञा दी गई है। इस प्रकारके काय-विराधना-सम्बन्धी गुणकार तिरेसठ होते हैं, जो कि मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं। इनका विशेष विवरण संस्कृत टीकामें दिया गया है जिसका अभिप्राय यह है कि जब कोई जीव क्रोधादि कषायोंके वश होकर पट्कायिक जीवोंमेंसे एक-एक कायिक जीवको विराधना करता है, तब एक संयोगी छह भंग होते हैं। जब छह कायिकोंमेंसे किन्हीं दो-दो कायिक जीवोंकी विराधना करना है, तब द्विसंयोगी पन्द्रह भंग होते हैं। इसी प्रकार किन्हीं तीन-तीन कायिक जीवोंकी विराधना करनेपर त्रिसंयोगी भंग बीस, चार-चारकी विराधना करनेपर चतुःसंयोगी भंग पन्द्रह, पाँच-पाँचकी विराधना करनेपर पंच-संयोगी भंग छह होते हैं। तथा एक साथ छहों कायिक जीवोंकी विराधना करनेपर पट्संयोगी भंग एक होता है। इस प्रकारसे उत्पन्न हुए एक-संयोगी आदि भंगोंका योग तिरेसठ होता है।

^१आवलिय मेत्तकालं अणंतवंधीण होइ णो उदओ ।

अंतोमुहुत्त मरणं मिच्छत्तं दंसणा पत्ते ॥१०३॥

१मिच्छत्तकथं काओ कोहाई तिणि वेद एगो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो दस होंति हेऊ* ते ॥१०४॥

१११११३११२११ मिलिया १० ।

य. सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं प्राप्तस्तस्याऽनन्तानुबन्धिना आवलिकामात्रकाल उदयो नास्ति, अन्तर्मुहूर्त्तकाले मरणमपि नास्तीति तदाह—['आवलिमेत्तकाल' इत्यादि] दर्शनात् अनन्तानुबन्ध-विसंयोजितवेदकसम्यक्त्वात् मिथ्यात्वकर्मोदयान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं प्राप्ते सति आवलिमात्रकाल आवलिपर्यन्त अनन्तानुबन्धिनां उदयो नास्ति । अन्तर्मुहूर्त्तं यावत्, तावन्मरण नास्ति । तावत्काल सम्यक्त्वप्राप्ति-र्नास्ति ॥१०३॥ तथा चोक्तम्—

अण संजोजिदसम्मे मिच्छं पत्ते ण आवलि त्ति अणं ।

उवसम खविये सम्मं ण हि तत्थ वि चारि ठाणाणि ॥१२॥

अणसंजोजिद मिच्छे मुहुत्त-अतो त्ति णत्थि मरणं तु ॥१३॥ इति

कालमावलिकामात्रं पाकोऽनन्तानुबन्धिनाम् ।

जन्तोरस्ति न सम्यक्त्वं हित्वा मिथ्यात्वयायिनः ॥१४॥

सम्यक्त्वतो न मिथ्यात्वं प्रयातोऽन्तर्मुहूर्त्तकम् ।

मिथ्यात्वतो न सम्यक्त्वं शरीरी याति पञ्चताम् ॥१५॥ इति

पञ्च [मिथ्यात्वानि, पण्डित्याणि, एक द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-पट्कायवधान्, चत्वारि क्रोधचतुष्काणि त्रीन् वेदान्, हास्ययुग्मारतियुग्मे आहारकद्वय विना] त्रयोदशयोगाश्च उपर्युपरि तिर्यग् रचयित्वा इदं कूटं कथ्यते—भय-जुगुप्सारहित प्रथम कूटं १ । तदन्यतरयुत द्वितीयं कूटं २ । तद्द्वययुत तृतीयं कूटं ३ । इति सामान्यकूटानि त्रीणि ३ । अनन्तानुबन्धूनानि कूटानि त्रीणि ३ । मिलित्वा मिथ्यादृष्टो पट् कूटानि ६ भवन्ति । अनन्तानुबन्धि-रहितप्रथमे कूटे—

मिथ्यात्व १ मिन्द्रियं १ कायः कपायैकतमत्रयम् ३ ।

एको वेदो १ द्वियुग्मैकं २ दशयोगैककः १ परम् ॥१६॥

मि०	इ०	का०	कपा०	वे०	हा०	यो०
१	१	१	३	१	२	१

मेलिता. पिण्डीकृताः दश १० । एते जघन्यहेतवः प्रत्ययानि मिथ्यादृष्टो भवन्ति १० । 'अत्र पञ्चाना मिथ्यात्वाना मध्ये एकतमस्योदयोऽस्तीत्येको मिथ्यात्वप्रत्ययः १ । पण्णामिन्द्रियाणामेकतमेन पण्णा कायानामेकतमविराधने कृते असंयमप्रत्ययः १ । प्रथमचतुष्कहीनाना चतुर्णां कपायाणामेकतमत्रिकोदये त्रयः कपायप्रत्ययाः ३ । त्रयाणां वेदानामेकतमोदये एको वेदप्रत्ययः १ । हास्य-रतियुग्माऽरतिशोवयुग्मयोरेक-तरोदये द्वौ युग्मप्रत्ययौ २ । आहारकद्वय-मिश्रत्रयहीनाना दशाना योगानामेकतमोदयेन एको योगप्रत्ययः १ । एवमेते मिथ्यादृष्टेरेकस्मिन् समये जघन्यप्रत्ययाः दश १० ॥१०४॥

२सत्रयोदशयोगस्य सम्यग्दर्शनधारिणः ।

मिथ्यात्वमुपयातस्य शान्तानन्तानुबन्धिनः ॥१७॥

पाकोनावलिका यस्मादस्त्यनन्तानुबन्धिनाम् ।

ततोऽनन्तानुबन्धूनकषायप्रत्ययत्रयम् ॥१८॥

१ स० पञ्चस० ४, ४७ । २ ४, ४८-४९ ।

१ गो० क० ४७८ । २ गो० क० ५६१ (पूर्वार्ध) । ३ स० पञ्चस० ४, ४१-४२ ।

४, सं० पञ्चसं० ४, 'अत्र पचाना' इत्यादि गद्यभागः शब्दशस्तुत्यः (पृ० ६०) ।

छद् ते हेऊ ।

असौ न म्रियते यस्मात्कालमन्तर्मुहूर्तकम् ।

मिश्रत्रयं विना तस्माद्यौगिकाः प्रत्ययाः दश^१ ॥१६॥ इति

११११३।१२।१

जो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वको छोड़कर मिथ्यात्वगुण-स्थानको प्राप्त होता है, उसके एक आवलीमात्रकाल तक अनन्तानुबन्धी कपायोका उदय नहीं होता है । तथा सम्यक्त्वको छोड़कर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवका अन्तर्मुहूर्तकाल तक मरण भी नहीं होता है इस नियमके अनुसार मिथ्यादृष्टिके एक समयमें पाँच मिथ्यात्वोमे-से एक मिथ्यात्व, पाँच इन्द्रियोमेंसे एक इन्द्रिय, छह कार्योंमे-से एक काय, अनन्तानुबन्धीके विना शेष कषायोमेसे क्रोधादि तीन कषाय, तीन वेदोमेसे कोई एक वेद, हास्यादि दो युगलोमेसे कोई एक युगल और आहारकद्विक तथा अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी तीन मिश्रयोग, इन पाँचके विना शेष दश योगोमेसे कोई एक योग इस प्रकार जघन्यसे दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०३-१०४॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— मि० इ० का० क० वे० हा० यो०
 $१ + १ + १ + ३ + १ + २ + १ = १०$

का० अ० भ० इस कूटका अभिप्राय इस प्रकार है—
 १ ० ०

आगे मिथ्यात्वादि गुणस्थानोमे जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट संख्या तकके बन्ध-प्रत्ययोके उत्पन्न करनेके जो प्रकार बतलाये गये हैं, उनमें जहाँ जितने और जो बन्ध-प्रत्यय विवक्षित है यद्यपि उनका संख्याके साथ नाम-निर्देश गाथाओंमें किया गया है, तथापि काय-सम्बन्धी अविरति, अनन्तानुबन्धि-चतुष्क और भय-युगलके सद्भाव-असद्भावके जिन भंगोका निर्देश किया गया है, वहाँ उनके स्थानमें विवक्षित अन्य प्रत्ययोके साथ उनके अन्य भंग भी हो सकते हैं । परन्तु ऐसा करनेसे स्थानोकी निश्चित संख्याका व्यतिक्रम हो जाता है, जो विवक्षित स्थान-संख्याको ध्यानमें रखते हुए अभीष्ट नहीं है । इस प्रकारके इस गूढ़ार्थको स्पष्ट करनेके लिए कूटोंकी रचना की गई है । इन कूटोंसे गाथाओंमें निर्दिष्ट विवक्षित स्थान-संख्याके साथ काय-विराधना आदि तीनोंके भंगोका स्पष्ट बोध हो जाता है । उदाहरण-स्वरूप दश-प्रत्ययक बन्धस्थानके इस कूटके प्रथम भागमें 'का०'के नीचे एकका अंक दिया हुआ है, जिसका अभिप्राय यह है कि यहाँपर काय-सम्बन्धी एक-संयोगी गुणकार विवक्षित है । 'अ०' के नीचे शून्य दिया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि यहाँपर अनन्तानुबन्धि-चतुष्कसे रहित स्थान विवक्षित है । 'भ०'के नीचे जो शून्य दिया गया है, उससे यह सूचित किया गया है कि यहाँपर भय-युगलसे रहित स्थान विवक्षित है । आगे आनेवाले सभी कूटोंमें दिये गये अंको या शून्योंसे भी इसी प्रकारका अर्थ लेना चाहिए । इस प्रकारके गूढ़ रहस्यसे अन्तर्हित रखनेके कारण इसे कूट-संज्ञा दी गई है ।

पच मिच्छत्ताणि, छ इदियाणि, छक्काया, चत्तारि वि कसाया, तिणि वेया, एयजुयल, दस जोगा ।
 ५।६।६।४।३।२।१० । अण्णोणगुणिया दसजोगजहणभंगा ४३२०० ।

एतेपाञ्च भङ्गाः—मिथ्यात्वपञ्चकेन्द्रियपट्क कायपट्क-कषायचतुष्क-वेदत्रय-युरमद्वययोगदशैकतमभङ्गाः
 ५।६।६।४।३।२।१० । अन्योन्यगुणिताः दशसंयोगस्य जघन्यभङ्गाः स्युः ४३२०० । तत्कथम् ? दश १०
 द्वाभ्यां २ गुणिताः विंशतिः २०, त्रिभिर्गुणिताः पष्टिः ६०, चतुर्भिर्गुणिताः २४० । एते पड्भिर्गुणिताः
 १४४० । एते पुनः पड्भिर्गुणिताः ८६४० । एते पञ्चभिर्गुणिताः ४३२०० । अनेन प्रकारेण सर्वत्र
 अन्योन्यभङ्गाः गुणनीयाः ॥१०४॥

इन दश बन्ध-प्रत्ययोंके भंग तेतालीस हजार दो सौ होते हैं। उनके निकालनेका प्रकार यह है—पॉच मिथ्यात्व, छह इन्द्रियो, छह काय, चारो कषाय, तीनों वेद, हास्यादि एक युगल और दश योग, इन्हें क्रमसे स्थापित करके परस्परसे गुणा करनेपर जघन्य दश बन्ध-प्रत्ययोंके भंग सिद्ध होते हैं। इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—

$4 \times 6 \times 6 \times 8 \times 3 \times 2 \times 10 = 83200$ दश बन्ध-प्रत्ययोंके भंग ।

आगे बतलाये जानेवाले मिथ्यादृष्टिके ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-
सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अ०	भ०
२	०	०
१	१	०
१	०	१

मिच्छत्तक्खं दुकाया कोहाई तिणिण वेय एगो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो एयारसं हेऊं ॥१०५॥

१११२१३११२११ मिलिया ११ ।

मिथ्यात्वमेक १ खमिन्द्रियमेक १ द्विकायविराधनाद्विक २ अनन्तानुबन्धिरहित-कषायत्रिक ३ वेद एकः १ हास्यादियुगल २ योग एकः १ चेत्येव संयोगीकृता मध्यमहेतवः प्रत्यया भवन्ति १ । १ । २ । ३ । १ । १ । २ । १ । मीलितः ११ ॥१०५॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमे मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०५॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $1 + 1 + 2 + 3 + 1 + 2 + 1 = 11$ ।

मिच्छत्तक्खं काओ कोहाइचउक्क वेय एगो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो एयारसं हेऊ ॥१०६॥

१११११४११२११ मिलिया ११ ।

मिथ्यात्वमेकतम १ खमिन्द्रियमेक १ कायः १, क्रोधादिचतुष्कं ४ अत्रानन्तानुबन्धित्वात् । वेद एकतमः १ हास्यादियुगलं १ । संयोगे एकादश ११ मध्यमप्रत्ययाः १११११४११२११ मीलितः ११॥१०६॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०६॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $1 + 1 + 1 + 4 + 1 + 2 + 1 = 11$ ।

मिच्छत्तक्खं काओ कोहाई तिणिण वेय एगो य ।

हस्साइजुयं एयं भयदुय एयं च जोगो_ते ॥१०७॥

१११११३११२१११ मिलिया ११ ।

मिथ्यात्वे १ न्द्रिय १ क्रोधादिकै ३ कवेदै १ क-हास्यादियुगम २ भयैक १ योगैकतमा भङ्गाः १११ १११३११२११ पिण्डीकृताः ११ ॥१०७॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-जुगुप्सामेंसे एक, और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०७॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $1 + 1 + 1 + 3 + 1 + 2 + 1 + 1 = 11$ ।

एदेसि च भगा—५६१५४१३१२१०१ एदे अण्णोण्णगुणिया १०८००० ।

५६१६४१३१२१३१ एदे अण्णोण्णगुणिय ५६१६० ।

५।६।६।४।३।२।२।१०। एते अण्णोण्गुणिया ८६४०० ।

ए तिण्णिम्मि मिलिण् सज्झिमभंगा हवन्ति १०८००० + ५६१६० + ८६४०० = २५०५६० ।

एतेषां त्रयाणां भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।१० । एते अन्योन्यगुणिताः १०८००० । ५।६।६।४।३।२।१३ एते परस्पर गुणिताः ५६१६० । ५।६।६।४।३।२।१० एते अन्योन्यगुणिताः ८६४०० । एते त्रयो राशयः पृथक्कृताः एकादगातासुत्तरोत्तरमध्यमभङ्गाः २५०५६० भवन्ति ।

इन उपर्युक्त ग्यारह बन्ध-प्रत्ययोके तीनों प्रकारोंके भंग इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।६।४।३।२।१०। इनका परस्पर गुणा करनेपर १०८००० भंग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५।६।६।४।३।२।१३। इनका परस्पर गुणा करनेपर ५६१६० भंग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—५।६।६।४।३।२।१०। इनका परस्पर गुणा करनेपर ८६४०० भंग होते हैं ।

उक्त तीनों प्रकारोंके भंगोंके प्रमाणको जोड़ देनेपर (१०८००० + ५६१६० + ८६४०० =) मध्यम ग्यारह बन्ध-प्रत्ययोके सर्व भंगोंका प्रमाण २५०५६० होता है ।

	का०	अ०	म०
मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले बारह बन्ध-प्रत्यय-	३	०	०
सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस	२	१	०
प्रकार है—	२	०	१
	१	१	१
	१	०	२

मिच्छत्तक्खतिकाया कोहाई तिण्णि एय वेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो बारह हवन्ति ते हेऊ ॥१०८॥

१।१।३।३।१।२।१। मिलिया १२ ।

मिथ्यात्वं खमिन्द्रिय १ त्रिकायविराधना ३ अनन्तानुबन्ध्यूनक्रोधाद्विषयं ३ एको वेदः १ हास्यादि-युगल २ योग एकः १ इत्येवं द्वादश हेतवः १२ प्रत्ययास्ते भवन्ति ॥१०८॥

१।१।३।३।१।२।१। मीलितः १२ । एतेषां भङ्गाः—मिथ्यात्वपञ्चके ५ इन्द्रियपदक ६ त्रिकायविराधनासंयोगविगतिः २० कपायचतुःक ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुगल २ मिश्रत्रिकाऽऽहारकद्विकरहितयोगाः १० भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।१० परस्परगुणिताः १४४००० ।

अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानमे मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कपाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ३ + १ + २ + १ = १२ ।

मिच्छत्तक्खदुकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो बारह हवन्ति ते हेऊ ॥१०९॥

१।१।२।४।१।२।१। एते मिलिया १२ ।

१।१।२।४।१।२।१। एते मीलितः १२ । एतेषां भङ्गाः विकल्पाः ५।६।१५।४।३।२।१३ परस्पर-गुणिताः १४०४०० ॥१०९॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, योग एक, इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + ४ + १ + २ + १ = १२ ।

मिच्छत्तत्खदुकाया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥११०॥

१११२।३।१।२।१।१ । एते मिलिया १२ ।

१११२।३।१।२।१।१ एते मिलिताः १२ । एतेषां भङ्गाः ५।६।१।५।४।३।२।१० परस्परं हताः २१६००० ॥११०॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेसे एक और योग एक; इस प्रकार बारह बन्धप्रत्यय होते हैं ॥११०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+१+२+३+१+२+१+१=१२ ।

मिच्छत्तत्खं काओ कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१११॥

११११।४।१।२।१।१ । एते मिलिया १२ ।

११११।४।१।२।१।१ एते विण्डीकृताः १२ । एतेषां विकल्पाः ५।६।६।४।३।२।१।१३ परस्परेण गुणिताः ११२३२० ॥१११॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेसे एक, और योग एक; इस प्रकार बारह बन्धप्रत्यय होते हैं ॥१११॥

इसकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+१+१+४+१+२+१+१=१२ ।

मिच्छत्तत्खं काओ कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥११२॥

११११।३।१।२।२।१ । एते मिलिया १२ ।

११११।३।१।२।२।१ एते मिलिताः १२ । एतेषां भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।१।१० परस्परेण गुणिताः ४३२०० ॥११२॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल एक और योग एक; इस प्रकार बारह बन्धप्रत्यय होते हैं ॥११२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+१+१+३+१+२+२+१=१२ ।

एतेषां च भङ्गाः—५।६।२०।४।३।२।१० । एते अण्णोणगुणिताः = १४४०००

५।६।१।५।४।३।२।१३ । एते अण्णोणगुणिताः = १४०४००

५।६।१।५।४।३।२।११० । एते अण्णोणगुणिताः = २१६०००

५।६।६।४।३।२।२।१३ । एते अण्णोणगुणिताः = ११२३२०

५।६।६।४।३।२।२।१० । एते अण्णोणगुणिताः = ४३२००

एए पच वि मिलिया मज्झिमभङ्गा = ६५५१२०

एते पञ्च राशयः एकीकृता मिथ्यात्वे मध्यमद्वादशप्रत्ययानां उत्तरोत्तरमध्यमभङ्गाः ६५५१२० भवन्ति । सुगमत्वात् वार वार वृत्तिविस्तरो न कृतोऽस्ति ।

इन उपर्युक्त बारह बन्धप्रत्ययोंके पाँचों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४००० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५।६।१।५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४०४०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—५।६।१।५।४।३।२।११० इनका परस्पर गुणा करनेपर २१६००० भङ्ग होते हैं ।

चतुर्थ प्रकार—५।६।४।३।२।१।३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ११२३२० भङ्ग होते हैं।
 पंचम प्रकार—५।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ४३२०० भङ्ग होते हैं।
 उक्त पाँचों प्रकारोंके भङ्गोंके प्रमाणको जोड़ देनेपर (१४४००० + १४०४०० + २१६००० + ११२३२० + ४३२०० =) बारह बन्धप्रत्यय-सम्बन्धी सर्व मध्यम भङ्गोंका प्रमाण ६५५६२० होता है।

	का०	अन०	भ०
	४	०	०
मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले तेरह बन्ध-प्रत्यय-	३	१	०
सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस	३	०	१
प्रकार है—	२	१	१
	२	०	२
	१	१	२

मिच्छत्तु चउकाया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो तेरह हवंति ते हेऊ ॥११३॥

१।१।४।३।१।२।१। एदे मिलिया १३ ।

मध्यमत्रयोदशप्रत्ययभेदाः चतुस्त्रिद्विधैककायविराधनादिभेदान् गाथापट्केनाऽऽह—['मिच्छत्तु चउकाया' इत्यादि ।] १।१।४।३।१।२।१ एते मिलिताः १३ । एतेषां च भङ्गाः ५।६।१।४।३।२।१० एते अन्योन्यगुणिताः १०८००० ॥११३॥

अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानमे मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११३॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ३ + १ + २ + १ = १३ ।

मिच्छत्तुत्तुखतिकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो तेरह हवंति ते हेऊ ॥११४॥

१।१।३।४।१।२।१ । एदे मिलिया १३ ।

१।१।३।४।१।२।१ एते मिलिताः १३ त्रयोदश मध्यमप्रत्ययाः भवन्ति । एतेषां विकल्पाः ५।६।२०।४।३।२।१३ एते परस्परगुणिताः १८७२०० ॥११४॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११४॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ४ + १ + २ + १ = १३ ।

मिच्छत्तुत्तुखतिकाया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥११५॥

१।१।३।३।१।२।१।१ । एदे मिलिया १३ ।

१।१।३।३।१।२।१।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः भवन्ति । एतेषां भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।२।१० । एते परस्परगुणिताः २८८००० विकल्पा भवन्ति ॥११५॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक्रमेसे एक और योग एक; इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११४॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ३ + १ + २ + १ + १ = १३ ।

मिच्छत्तक्खदुकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो च ॥११६॥

१११२।४।११२।१११ । एदे मिलिया १३ ।

१११२।४।११२।१११ एते पिण्डीकृताः प्रत्ययाः १३ । एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१३ । एते अन्योन्यगुणिताः २८०८०० उत्तरोत्तरविकल्पाः स्युः ॥११६॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक्रमेसे एक और योग एक; इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११६॥

इनकी अंक संहति इस प्रकार है—१ + १ + २ + ४ + १ + २ + १ + १ = १३ ।

मिच्छत्तक्खदुकाया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।
हस्साई दुयमेयं भयजुयलं होंति जोगो य ॥११७॥

१।२।३।११२।२।१ । मिलिया १३ ।

१११२।३।११२।२।१ एते एकीकृताः १३ । एतेषां च भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः १०८००० विकल्पा भवन्ति ॥११७॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११७॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + २ + ३ + १ + २ + २ + १ = १३ ।

मिच्छत्तक्खं कायो कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं होंति जोगो य ॥११८॥

११११।४।११२।२।१ । एदे मिलिया १३ ।

११११।४।११२।२।१ एते मेलिताः १३ प्रत्ययाः स्युः । एतेषां च भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।१३ एते अन्योन्यगुणिताः ५६१६० विकल्पा भवन्ति ॥११८॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार; वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग, इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११८॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + १ + ४ + १ + २ + २ + १ = १३ ।

एदेसिं च भगा—५।६।१५।४।३।२।१० । एदे अण्णोणगुणिदा = १०८०००

५।६।२०।४।३।२।१३ । एदे अण्णोणगुणिदा = १८७२००

५।६।२०।४।३।२।२।१० । एदे अण्णोणगुणिदा = २८८०००

५।६।१५।४।३।२।१३ । एदे अण्णोणगुणिदा = २८०८००

५।६।१५।४।३।२।१० । एदे अण्णोणगुणिदा = १०८०००

५।६।६।४।३।२। ३ । एदे अण्णोणगुणिदा = ५६१६०

एदे सन्वे वि मिलिया हवंति = १०२८१६०

एतेषां पट् राशयः एकीकृताः १०२८१६० मध्यमत्रयोदशप्रत्ययानामुत्तरोत्तरविकल्पा भवन्ति ।

इन उपर्युक्त तेरह बन्ध-प्रत्ययोके छहो प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १०८००० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १८७२०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—५।६।२०।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २८८००० भङ्ग होते हैं ।

चतुर्थ प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर २८०८०० भङ्ग होते हैं।

पंचम प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १०८००० भङ्ग होते हैं।

षष्ठ प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५६१६० भङ्ग होते हैं।

उक्त छहों प्रकारोंके भङ्गोंके प्रमाणको जोड़ देनेपर (१०८००० + १८७२०० + २८८००० + २८०८०० + १०८००० + ५६१६० =) तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व मध्यम भङ्गोंका प्रमाण १०२८१६० होता है।

का० अन० भ०

५ ० ०

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

४ १ ०

४ ० १

३ १ १

३ ० २

२ १ २

मिच्छन्स्व पंचकाया कोहाई तिणि एयवेदो य।

हस्साइजुयलमेयं जोगो चउदह हवंति ते हेऊ ॥११६॥

१।१।५।३।१।२।१। एदे मिलिया १४।

अथ चतुर्दशप्रत्ययभेदे पञ्चचतुश्चतुस्त्रिद्विकायविराधनादिभेदान् गाथापट्केनाऽऽह—[‘मिच्छन्स्व पंचकाया’ इत्यादि।] १।१।५।३।१।२।१ एते पिण्डीकृताः १४ प्रत्यया मध्यमा भवन्ति। एतेषां भङ्गाः ५।५।६।४।३।२।१० परस्परेणाभ्यस्ताः ४३२०० उत्तरोत्तरविकल्पाः स्युः ॥११६॥

अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११६॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ३ + १ + २ + १ = १४।

मिच्छन्स्व चउकाया कोहाइचउक् एयवेदो य।

हस्साइजुयलमेयं जोगो चउदस हवंति ते हेऊ ॥१२०॥

१।१।४।४।१।२।१। एदे मिलिया १४।

१।१।४।४।१।२।१ एते मीलितः १४ मध्यमप्रत्यया भवन्ति। एतेषां च भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१३ अन्योन्यगुणिताः १४०४०० विकल्पा भवन्ति ॥१२०॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२०॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ४ + १ + २ + १ = १४।

मिच्छन्स्व चउकाया कोहाई तिणि एयवेदो य।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एय जोगो य ॥१२१॥

१।१।४।३।१।२।१।१। एदे मिलिया १४।

१।१।४।३।१।२।१।१ एकत्रीकृताः १४। एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः २१६००० भवन्ति।

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और एक योग; इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२१॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ३ + १ + २ + १ + १ = १४।

मिच्छत्तकख तिकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१२२॥

१११३।४।१।२।१।१ । एदे मिलिया १४ ।

१११३।४।१।२।१।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः स्युः । एतेषां भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।२।१३ अन्योन्य-
गुणिताः ३७४४०० विकल्पा भवन्ति ॥१२२॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि
युगल एक, भयद्विक्रमेसे एक और एक योग, इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२२॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१+१+३+४+१+२+१+१=१४ ।

मिच्छत्तकखतिकाया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइजुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१२३॥

१११३।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१११३।३।१।२।२।१ एकत्रीकृताः १४ । एतेषां भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।१० परस्परगुणिताः
१४४००० भवन्ति ॥१२३॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि
युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२३॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१+१+३+३+१+२+२+१=१४ ।

मिच्छत्तकख दुकाया कोहाइचउक एकवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१२४॥

१११२।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१११२।४।१।२।२।१ एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१३ परस्परगुणिताः १४०४०० ॥१२४॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि
युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२४॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१+१+२+४+१+२+२+१=१४ ।

एदेसिं च भंगा—५।६।६।४।३।२।१० एदे अण्णोणगुणिदा = ४३२००

५।६।१५।४।३।२।१३ एदे अण्णोणगुणिदा = १४०४००

५।६।१५।४।३।२।१०। एदे अण्णोणगुणिदा = २१६०००

५।६।२०।४।३।२।१३। एदे अण्णोणगुणिदा = ३७४४००

५।६।२०।४।३।२।१० एदे अण्णोणगुणिदा = १४४०००

५।६।१५।४।३।२।१३। एदे अण्णोणगुणिदा = १४०४००

एदे सब्बे वि मिलिए = १०५८४००

एते सर्वे पहराणयः मिलिताः १०५८४०० । इति चतुर्दश-मध्यमप्रत्ययाना उत्तरोत्तर-
विकल्पा भवन्ति ।

इन उपर्युक्त चौदह बन्ध-प्रत्ययोंके छहों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ४३२०० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४०४०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २१६००० भङ्ग होते हैं ।

चतुर्थ प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ३७४४०० भङ्ग होते हैं।
 पंचम प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४००० भङ्ग होते हैं।
 षष्ठ प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४०४०० भङ्ग होते हैं।
 उक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— १०५८४००

यह सब चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण जानना चाहिए।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-
 सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस
 प्रकार है—

का०	अन०	म०
६	०	०
५	१	०
५	०	१
४	१	१
४	०	२
३	१	२

मिच्छिदिय छकाया कोहाई तिणिं एयवेदो य ।

हस्सादिजुयलमेयं जोगो पण्णरस पच्चया होंति ॥१२५॥

१।१।६।३।२।१। एदे मिलिया १५ ।

अथ पञ्चदशमध्यमप्रत्ययभेदेषु पट् ६ पञ्च ५ पञ्च ५ चतु ४ श्रुतु ४ स्त्रिकाय ३ विराधनादिभेदान्
 गाथापट्केन कथयति—['मिच्छिदिय छकाया' इत्यादि ।]

१।१।६।३।१।२।१। एते मीलितः १५ प्रत्यया भवन्ति । एतेषां भङ्गाः ५।६।१।४।३।२।१०। एते
 परस्परेण गुणिता ७२०० उत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पा भवन्ति ॥१२५॥

अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कपाय तीन,
 वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ६ + ३ + १ + २ + १ = १५ ।

मिच्छक्ख पंचकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्सादिजुयलमेयं जोगो पण्णरस पच्चया होंति ॥१२६॥

१।१।५।४।१।२।१। एदे मिलिया १५ ।

१।१।५।४।१।२।१। एते मीलितः १५ उत्तरप्रत्ययाः । एतेषां च भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।१३। एते
 अन्योन्यगुणिताः ५६१६० ॥१२६॥

अथवा मिथ्यात्व एक, काय पाँच, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक,
 और योग एक; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ४ + १ + २ + १ = १५ ।

मिच्छक्ख पंचकाया कोहाई तिणिं एयवेदो य ।

हस्सादिजुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१२७॥

१।१।५।३।१।२।१।१। एदे मिलिया १५ ।

१।१।५।३।१।२।१।१। एकीकृताः १५ । एतेषां विकल्पाः ५।६।६।४।३।२।१०। एते परस्परेण
 हताः ८६४०० भवन्ति ॥१२७॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कपाय तीन, वेद एक, हास्यादि
 युगल एक, भयद्विक्रमेसे एक, और योग एक; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ३ + १ + २ + १ + १ = १५ ।

मिच्छत्स्व चउकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च × होंति जोगो य ॥१२८॥

१११४१४१२१११ एदे मिलिया १५ ।

१११४१४१२१११ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषा विकल्पाः ५६१५४३१२११३ । एते परस्परेण गुणिताः २८०८०० भवन्ति ॥१२८॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक्रमेसे एक और योग एक; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२८॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ४ + १ + २ + १ + १ = १५ ।

मिच्छत्स्व चउकाया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१२९॥

१११४१३१२१२११ एदे मिलिया १५ ।

१११४१३१२१२११ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषा भङ्गाः ५६१५४३१२१२१०१ एते अन्योन्याभ्यस्ताः १०८००० ॥१२९॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२९॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ३ + १ + २ + २ + १ = १५ ।

मिच्छत्स्व तिकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्साइदुअं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१३०॥

१११३१४१२१२११ एदे मिलिया १५ ।

१११३१४१२१२११ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ५६१२०१४३१२१२१३१ एते अन्योन्यगुणिताः १८७२०० ॥१३०॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३०॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ४ + १ + २ + २ + १ = १५ ।

एदेसि च भगा—५६११४३१२११० एदे अण्णोणगुणिदा = ५७२००

५६१६४३१२१३ एदे अण्णोणगुणिदा = ५६१६०

५६१६४३१२११० एदे अण्णोणगुणिदा = ८६४००

५६१५४३१२१२१३ एदे अण्णोणगुणिदा = २८०८००

५६१५४३१२११० एदे अण्णोणगुणिदा = १०८०००

५६१२०१४३१२१३ एदे अण्णोणगुणिदा = १८७२००

एदे सन्वे मिलिया = ७२५७६०

एते पट् राशयो मीलिताः ७२०० + ५६१६० + ८६४०० + २८०८०० + १०८००० + १८७२०० =

७२५७६० पञ्चदशप्रत्ययानामुत्तरोत्तरविकल्पाः स्युः ।

इन उपर्युक्त पन्द्रह बन्ध-प्रत्ययोंके छहो प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार—५६११४३१२११० इनका परस्पर गुणा करनेपर ७२०० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५६१६४३१२१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५६१६० भङ्ग होते हैं ।

× च भयजुयलं एय जोगो य ।

तृतीय प्रकार—५।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ८६४०० भङ्ग होते हैं ।
 चतुर्थ प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर २८०८०० भङ्ग होते हैं ।
 पंचम प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १०८००० भङ्ग होते हैं ।
 षष्ठ प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १८७२०० भङ्ग होते हैं ।
 उपर्युक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— ७२५७६०

यह सब पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण जानना चाहिए ।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सोलह बन्ध-प्रत्यय-
 सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस
 प्रकार है—

का०	अन०	भ०
१	१	०
१	०	१
५	१	१
५	०	२
४	१	२

मिच्छिंदिय छकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्सादिजुयं एयं जोगो सोलस हवंति ते हेऊ ॥१३१॥

१।१।६।४।१।२।११ एदे मिलिया १६ ।

अथ मध्यमपोडशप्रत्ययभेदेषु पट्-पट्-पञ्च-पञ्च-चतुःकायविराधनादिप्रत्ययभेदान् गाथापञ्चकेनाऽऽह-
 ['मिच्छिंदिय छकाया' इत्यादि ।] १।१।६।४।१।२।११ एकीकृताः ते पोडश १६ हेतवो भवन्ति । एतेषां
 भङ्गाः ५।६।१।४।३।२।१३ एते परस्परगुणिताः ६३६० विकल्पा भवन्ति ॥१३१॥

अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानमे मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार,
 एक वेद, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३१॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ६ + ४ + १ + २ + १ = १६ ।

मिच्छिंदिय छकाया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च सोलसं जोगो ॥१३२॥

१।१।६।३।१।२।१।११ एदे मिलिया १६ ।

१।१।६।३।१।२।१।११ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ५।६।१।४।३।२।२।१० एते अन्योन्य-
 गुणिताः १४४०० भवन्ति ॥१३२॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि
 युगल एक, भययुगलमेंसे एक और योग एक, इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३२॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ६ + ३ + १ + २ + १ + १ = १६ ।

मिच्छिन्व पंचकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च सोलसं जोगो ॥१३३॥

१।१।५।४।१।२।१।११ एदे मिलिया १६ ।

१।१।५।४।१।२।१।११ एकीकृताः १६ । एतेषां भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।२।१३ एते अन्योन्यताद्विताः
 ११२३२० प्रत्ययविकल्पाः स्युः ॥१३३॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि
 युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक, इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३३॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ४ + १ + २ + १ + १ = १६ ।

मिच्छक्ख पंचकाया कोहाई तिणि एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं भयजुयलं सोलसं जोगो ॥१३४॥

१११५१३११२१२११ एदे मिलिया १६ ।

१११५१३११२१२१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ५१६१६४३१२१० एते परस्पर-
गुणिताः ४३२०० ॥१३४॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पौंच, क्रोधादि कपाय तीन, वेद एक, हास्यादि
युगल एक, भययुगल और योग एक; इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३४॥

इनकी अकसंष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ३ + १ + २ + २ + १ = १६ ।

मिच्छक्खं चउकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१३५॥

१११४१४११२१२११ एदे मिलिया १६ ।

१११४१४११२१२११ एकीकृताः १६ । एतेषां भङ्गाः ५१६१५१४३१२१३ । परस्परेण गुणिताः
१४०४०० ॥१३५॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि
युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३५॥

इनकी अकसंष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ४ + १ + २ + २ + १ = १६ ।

एदेसि च भगा— ५१६११४३१२१३ एदे अण्णोणगुणिदा = ६३६०

५१६११४३१२१२१० एदे अण्णोणगुणिदा = १४४००

५१६११४३१२१२१३ एदे अण्णोणगुणिदा = ११२३२०

५१६११४३१२११० एदे अण्णोणगुणिदा = ४३२००

५१६१५१४३१२१३ एदे अण्णोणगुणिदा = १४०४००

एए सव्वे मिलिया = ३१६६८०

एते सर्वे पञ्चराशयः सोलिताः ३१६६८० इति मध्यमपोदशप्रत्ययानां विकल्पाः समाप्ताः ।

इन उपर्युक्त सोलह बन्ध-प्रत्ययोके पौंचो प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—५१६११४३१२१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ६३६० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५१६११४३१२१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—५१६११४३१२१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ११२३२० भङ्ग होते हैं ।

चतुर्थ प्रकार—५१६११४३१२१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ४३२०० भङ्ग होते हैं ।

पंचम प्रकार—५१६१५१४३१२१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४०४०० भङ्ग होते हैं ।

उपर्युक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— = ३१६६८०

यह सोलह बन्ध प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण है ।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सत्तरह बन्ध-प्रत्यय-
सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस
प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	१	१
६	०	२
५	१	२

मिच्छदिय छकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च सत्तरस जोगो ॥१३६॥

१११६१४११२११११ एदे मिलिया १७ ।

अथ सप्तदशमध्यमप्रत्ययानां भेदे षट्-षट्-पञ्चकायविराधनादिप्रत्ययान् गाथान्नयेणाऽऽह—[‘मिच्छि-
दिय छकाया’ इत्यादि] १।१।६।१।१।२।१।१।१ एकीकृताः १७ प्रत्ययाः स्युः। एतेषां भेदाः ५।६।१।१।३।२।२
एते परस्पराङ्गेन गुणिताः १८७२० उत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पाः ॥१३६॥

अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कपाय
चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक्रमेसे एक और योग एक; इस प्रकार सत्तरह बन्ध-
प्रत्यय होते हैं ॥१३६॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + १ + ६ + ४ + १ + २ + १ + १ = १७$ ।

मिच्छिदिय छकाया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं भयजुयलं सत्तरस जोगो ॥१३७॥

१।१।६।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १७ ।

१।१।६।३।१।२।२।१ एकीकृताः १७ । एतेषां भंगा ५।६।१।१।३।२।१।१० । एते परस्परेण हताः
७२०० विकल्पाः स्युः ॥१३७॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कपाय तीन, वेद एक, हास्यादि
युगल एक, भययुगल और योग एक; इस प्रकार सत्तरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३७॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + १ + ६ + ३ + १ + २ + २ + १ = १७$ ।

मिच्छिदिय पंचकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं सत्तरस जोगो ॥१३८॥

१।१।५।१।१।२।२।१ एदे मिलिया १७ ।

१।१।५।१।१।२।२।१ एकीकृताः १७ प्रत्ययाः। एतेषां भंगाः ५।६।६।१।३।२।१।१३ । एते अन्योन्य-
गुणिताः ५६१६० ॥१३८॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पौंच, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि
युगल एक, भययुगल और योग एक; इस प्रकार सत्तरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३८॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + १ + ५ + ४ + १ + २ + २ + १ = १७$ ।

एदेसि च भगा— ५।६।१।१।३।२।२।१३ एदे अण्णोणगुणिता = १८७२०

५।६।१।१।३।२।१० एदे अण्णोणगुणिता = ७२००

५।६।६।१।३।२।१३ एदे अण्णोणगुणिता = ५६१६०

एए सव्वे मिलिया = ८२०८०

एते त्रयो राशयो मीलितः $१८७२० + ७२०० + ५६१६० = ८२०८०$ । एते सप्तदश-प्रत्ययानां
विकल्पा भवन्ति ।

इन उपर्युक्त सत्तरह बन्ध-प्रत्ययोके तीनों प्रकारोके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।१।१।३।२।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १८७२० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५।६।१।१।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ७२०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—५।६।६।१।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५६१६० भङ्ग होते हैं ।

उपर्युक्त सर्व बन्ध-प्रत्ययोका जोड़— = ८२०८०

यह सत्तरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोका प्रमाण है ।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले अद्वारह बन्ध-प्रत्यय-
सम्बन्धी भङ्गोको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस
प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	१	२

मिच्छिदिय छकाया कोहाइचउक एयवेदो य ।
हस्ताइदुयं एयं भयजुयलं अट्टरस जोगो ॥१३६॥

१११६।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १८ ।

अथाष्टादशोत्कृष्टभेदे कायपट्कविशोधनादिभेदमाह—१११६।४।१।२।२।१ एकीकृताः १८ प्रत्ययाः ।
'पञ्चानां मिथ्यात्वानां मध्ये एकतममिथ्यात्वप्रत्ययः । पण्णामिन्द्रियाणामेकतमेन पट्कायविशोधने सप्तास्यम-
प्रत्ययाः १।६ । चतुर्णां कपायाणां मध्ये एकतमचतुष्कोदये चत्वार प्रत्ययाः ४ । वेदानां त्रयाणां मध्ये
एकतरो वेद १ । हास्य-रतियुगलाऽरति-शोकयुगलयोर्मध्ये एकतरयुगल २ । भय-जुगप्साद्वय २ । आहारक-
द्वय विना त्रयोदशानां योगानामेकतमो योगः १ । एवमेतेऽष्टादशोत्कृष्टप्रत्ययाः १८ । मिथ्यात्वपञ्चके ५
न्द्रियपट्कै ६ ककाय १ कपायचतुष्क ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुगमद्वय २ योगत्रयोदशक १३ भगा-
५।६।१।४।३।२।१।१।१३ परस्परं गुणिता ६३६० अष्टादशोत्कृष्टप्रत्ययानां विकल्पा स्युः ॥१३६॥

अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानमे मिथ्यात्वएक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कपाय चार,
वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; इस प्रकार अट्टारह बन्ध-प्रत्यय
होते हैं ॥१३६॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ६ + ४ + १ + २ + २ + १ = १८ ।

एट्रेसि च भंगा— ५।६।१।४।३।२।१३ । एते मिलिया ६३६० ।

मिच्छाहृष्टिस्त भगा ४१७३१२० ।

मिच्छुत्तगुणट्टाणस्स पच्चयभगा समत्ता ।

मिथ्यात्वगुणस्थाने दशैकादशाष्टादशानां जघन्य-मध्यमोत्कृष्टानां प्रत्ययानां सर्वे भगा उत्तर-
विकल्पा एकीकृताः विशत्यग्रैकशतत्रिसप्ततिसहस्रैकचत्वारिंशल्लक्षसंख्योपेताः ४१७३१२० मिथ्याहृष्टिषु
भवन्ति ।

इति मिथ्यात्वस्य भगाः समाप्ताः ।

अट्टारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग $५ \times ६ \times १ \times ४ \times ३ \times २ \times १३ = ६३६०$ होते हैं ।

इस प्रकार मिथ्याहृष्टि गुणस्थानमें दशसे लेकर अट्टारह बन्ध-प्रत्ययो तकके सर्व भङ्गोंका
प्रमाण ४१७३१२० होता है । जिसका विवरण इस प्रकार है—

दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग—	४३२००
ग्यारह " " "	२५०५६०
बारह " " "	६५५६२०
तेरह " " "	१०२८१६०
चौदह " " "	१०५८४००
पन्द्रह " " "	७२५७६०
सोलह " " "	३१६६८०
सत्तरह " " "	८२०८०
अट्टारह " " "	६३६०
मिथ्याहृष्टिके सर्व बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका जोड़—	४१७३१२०
इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानके बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भंग समाप्त हुए ।	

१ स० पञ्चसं० ४, पृ० ६५ 'पञ्चानां मिथ्यात्वानां' इत्यादि गद्यभाग शब्दशः समान ।

२ स० पञ्चसं० ४, पृ० ९६ 'मिथ्यात्वपञ्चके' इत्यादि गद्यभाग शब्दशस्तुल्यः ।

अब सासादन गुणस्थान-सम्बन्धी बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

वेउव्वमिस्सजोयं पडुच्च वेदो णउंसओ णत्थि ।

उववज्जइ णो णिरए सासणसम्मो त्ति वयणाओ ॥१४०॥

अथ सासादनसम्यग्दृष्टौ जघन्य-मध्यमोक्तप्रत्ययभेदान् गार्थैकोनविंशत्या प्ररूपयति—['वेउव्व-मिस्सजोय' इत्यादि ।] वैक्रियिकमिश्रयोग प्रतीत्याऽऽश्रित्य स्वीकृत्य वैक्रियिकमिश्रे नपुंसकवेदो नास्ति । कुतः ? यतः 'सासादनसम्यग्दृष्टिः नरकेषु न उत्पद्यते' इति वचनात् । देवेषु वैक्रियिकमिश्रकाले स्त्री-पुवेदावेव ॥१४०॥ उक्तञ्च—

सासादनो यतो जातु श्वभ्रभूमि न गच्छति ।

मिश्रे वैक्रियिके योगे स्त्री-पुवेदद्वयं यतः ॥२०॥

योगैर्द्वादशभिस्तस्मान्मिश्रवैक्रियिकेण च ।

त्रिभिर्द्वाभ्यां च भेदाभ्यां तस्य भङ्गप्रकल्पना ॥२१॥

संस्थाप्य सासनं द्वेधा योग-वेदैर्यथोदितैः ।

गुणयित्वाऽखिला भङ्गास्तस्याऽऽनेया यथागमम् ॥२२॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगकी अपेक्षा नपुंसकवेद संभव नहीं है; क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा आगमका वचन है ॥१४०॥

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
१	१	०

इंदियमेओ काओ कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो दस पच्चया सादे ॥१४१॥

१।१।४।१।२।१ एदे मिलिया १० ।

सासादने पण्णामिन्द्रियाणा मध्ये एकतमेन्द्रियाऽसंयमप्रत्ययः १ । पण्णां कायविराधनानां एकतम-कायविराधनाऽसंयमप्रत्ययः १ । चतुर्णां कपायाणा मध्ये एकतमचतुष्कोदये चत्वारः कपायप्रत्ययाः ४ । त्रयाणां वेदानामेकतरवेदप्रत्ययः १ । हास्य-रतियुग्माऽरति शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्मं २ । नारकवैक्रियिक-मिश्राऽऽहारकद्वयरहितद्वादशयोगानां मध्ये एकतमो योगः १ । एवमेते दश जघन्यप्रत्ययाः सासादन-सम्यग्दृष्टौ भवन्ति । १।१।४।१।२।१ एकीकृताः १० । इन्द्रियपट्क ६ कायपट्क ६ कपायचतुष्क ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुग्म २ नारकवैक्रियिकमिश्राऽऽहारकद्विरहितयोगद्वादशक १२ भगाः ६।६।४।३।२।१२ परस्परेण गुणिताः सन्तः १०३६८ उत्तराः जघन्यदशकस्य विकल्पाः स्युः । पुनः अपूर्णदेववैक्रियिकापेक्षया एते १।१।४।१।२।१ एकीकृताः १० । असंयमपट्क ६ कायपट्क ६ कपायचतुष्क ४ पण्णोनवेदद्वय २ हास्यादि-युग्म २ देवसम्बन्धिवैक्रियिकमिश्रयोगैकभगाः ६।६।४।२।२।१ परस्परेण गुणिताः ५७६ भवन्ति । एते द्विराशयः एकीकृताः १०३६८ + ५७६ = १०९४४ जघन्यदशप्रत्ययानां सर्वे उत्तरोत्तरभगा एते । एवं सर्वत्र गमनिका ज्ञेया ॥१४१॥

सासादन गुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४१॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + ४ + १ + २ + १ = १०

एदेसि च भंगा— ६।६।४।३।२।१२ । एदे अण्णोण्णगुणिदा = १०३६८
 ६।६।४।२।२।१ । एदे अण्णोण्णगुणिदा = ५७६
 एदे मेलिए = १०६४४

दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार होंगे—

प्रथम प्रकार—६।६।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर १०३६८ भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—६।६।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५७६ भङ्ग होते हैं ।

सासादनगुणस्थानमे दशबन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी उपर्युक्त सर्व भङ्गोका जोड़ १०६४४ होता है ।

विशेषार्थ—सासादन गुणस्थानवाला जीव नरकगतिको नहीं जाता है, इसलिए इस गुणस्थानवालेके यदि वैक्रियिकमिश्रकाययोग होगा, तो देवगतिकी अपेक्षासे होगा और वहाँ स्त्रीवेद तथा पुरुषवेद ये दो ही वेद होते हैं, नपुंसक वेद नहीं होता । अतएव बारह योगोंके साथ तीनों वेदोंको जोड़कर भङ्गोकी रचना होगी । तदनुसार $६ \times ६ \times ४ \times ३ \times २ \times १२ = १०३६८$ भङ्ग होते हैं । किन्तु वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ नपुंसकवेदको छोड़कर शेष दो वेदोंकी अपेक्षा भङ्गोकी रचना होगी । तदनुसार $६ \times ६ \times ४ \times २ \times २ \times १ = ५७६$ भङ्ग होते हैं । इस प्रकार सासादन गुणस्थानमे दशबन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन दोनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्गोका जोड़ १०६४४ हो जाता है ।

सासादन सम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले ग्यारह वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	म०
२	१	०
१	१	१

इंदिय दोणि य काया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो एकारसा सादे ॥१४२॥

१।२।४।१।२।१ । एदे मिलिया ११ ।

१।२।४।१।२।१ एकीकृता ११ । एतेपा भगा: ६।१।४।३।२।१२॥ ६।१।४।२।२।१ । परस्परण गुणिता. २५६२०।१४४० ॥१४२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४२॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + २ + ४ + १ + २ + १ = ११$ ।

इंदियमेओ काओ कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१४३॥

१।१।४।१।२।१।१ । एदे मिलिया ११ ।

१।१।४।१।२।१।१ एकीकृता: ११ । एतेपा भगा: ६।१।४।३।२।१२ । वैक्रियिकमाश्रित्य ६।६।४।२।२।१ । एते अन्योन्यगुणिता २०७३६ । ११५२ । एते सर्वे मीलित्ता: ४६२४८ त्रिकल्पा: मध्यमैकादशाना भवन्ति ॥१४३॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक्रमेसे एक और योग एक; इस प्रकार ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४३॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + १ + ४ + १ + २ + १ + १ = ११$ ।

एदेसि च भगा—	६।१५।४।३।२।१२	एदे अण्णोण्णगुणिदा = २५६२०
	६।१५।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = १४४०
	६।६।४।३।२।२।१२	एदे अण्णोण्णगुणिदा = २०७३६
	६।६।४।२।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = ११५२
	एए सन्वे वि मेलिए	= ४६२४८

ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी उपर्युक्त दोनो प्रकारोंके भङ्ग ऊपर विशेषार्थमें बतलाई गई दोनो विचक्षाओंकी अपेक्षा इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—	{ ६।१५।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २५६२० भङ्ग होते हैं।
	{ ६।१५।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भङ्ग होते हैं।
द्वितीय प्रकार—	{ ६।६।४।३।२।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २०७३६ भङ्ग होते हैं।
	{ ६।६।४।२।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर ११५२ भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार सासादन गुणस्थानमें ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ ४६२४८ होता है।

सासादन सम्यग्दृष्टिसे आगे बतलाये जानेवाले बारह	का०	अन०	भ०
बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी	३	१	०
रचना इस प्रकार है—	२	१	१
	१	१	२

इंदिय तिणिण य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो वारस हवंति ते हेऊ ॥१४४॥

१।३।४।१।२।१ एदे मिलिया १२ ।

१।३।४।१।२।१ एकीकृताः १२ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।२०।४।३।२।१२ । पुनः वैक्रियिक-मिश्रापेक्षया ६।२०।४।२।२।१ । एते परस्परं गुणिताः ३४५६० । १६२० ॥१४४॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४४॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + ३ + ४ + १ + २ + १ = १२ ।

इंदिय दोणिण य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१४५॥

१।२।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १२ ।

१।२।४।१।२।१।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भगाः ६।१५।४।३।२।२।१२ । पुनः वै० ६।१५।४।२।२।१ गुणिताः ५१८४०।२८८० ॥१४५॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमेंसे एक और योग एक, ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४५॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + २ + ४ + १ + २ + १ + १ = १२ ।

इंदियमेओ काओ कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१४६॥

१।१।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १२ ।

१।१।४।१।२।२।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भगाः ६।६।४।३।२।१२ । ६।६।४।२।२।१ स्त्री-पुंवेदो २।२ । वै० मि० १ । परस्परं गुणिताः १०३६८ । ५७६ ॥१४६॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + १ + ४ + १ + २ + २ + १ = १२$ ।

एदेसि च भगा—६।२०।४।३।२।१२	एदे अण्णोणगुणिदा = ३४५६०
६।२०।४।२।२।२	एदे अण्णोणगुणिदा = १६२०
६।१५।४।३।२।२।१२	एदे अण्णोणगुणिदा = ५१८४०
६।१५।४।२।२।२।१	एए अण्णोणगुणिदा = २८८०
६।६।४।३।२।१२	एए अण्णोणगुणिदा = १०३६८
६।६।४।२।२।१	एए अण्णोणगुणिदा = ५७६
	एदे सब्बे वि मिलिदे = १०२१४४

एते पद्दशयो मिलिताः १०११४४ द्वादशप्रत्ययाना सर्वे विकल्पाः उत्तरोत्तरविकल्पा भवन्ति ।

बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी उक्त तीनों प्रकारोंके ऊपर बतलाई गई दोनों विचक्षाओंसे भंग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—	{ ६।२०।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर ३४५६० भङ्ग होते हैं ।
	{ ६।२०।४।२।२।२ इनका परस्पर गुणा करनेपर १६२० भङ्ग होते हैं ।
द्वितीय प्रकार—	{ ६।१५।४।३।२।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५१८४० भङ्ग होते हैं ।
	{ ६।१५।४।२।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर २८८० भङ्ग होते हैं ।
तृतीय प्रकार—	{ ६।६।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर १०३६८ भङ्ग होते हैं ।
	{ ६।६।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५७६ भङ्ग होते हैं ।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानमें बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका जोड़ १०२११४ होता है ।

सासादन सम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—	का०	अन०	म०
	४	१	०
	३	१	१
	२	१	२

इंदिय चउरो काया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं जोगो तेरस हवंति ते हेऊ ॥१४७॥

१।४।४।१।२।१ एदे मिलिया १३ ।

१।४।४।१।२।१ एकीकृता मूलप्रत्ययास्त्रयोदश १३ भवन्ति । एतेषा भगाः ६।१५।४।३।२।२।१२ । वै० मि० ६।१५।४।२।२ । एते उत्तरप्रत्ययाः परस्परेण गुणिता २५६२० । १४४० उत्तरोत्तरप्रत्यय-विकल्पा स्युः ॥१४७॥

अथवा सासादनगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ४ + ४ + १ + २ + १ = १३$ ।

इंदिय तिणिण य काया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१४८॥

१।३।४।१।२।१।१ । एदे मिलिया १३ ।

१।३।४।१।२।१।१ एकीकृताः १३ । एतेषां भङ्गाः ६।२०।४।३।२।२।१२ वै० मि० ६।२०।४।३।२।२।२।१ परस्परेण गुणिताः ६६१२० । ३८४० ॥१४८॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-
द्विकमेंसे एक और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४८॥

इनकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है— $१ + ३ + ४ + १ + २ + १ + १ = १३$ ।

इंदिय दोणि य काया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१४९॥

१।२।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १३ ।

१।२।४।१।२।१ एकीकृताः प्रत्ययाः १३ । एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२। वै० मि० ६।१५।४।२।२।
एते परस्परं गुणिताः २५६२० । १४४० ॥१४९॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-
युगल और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४९॥

इनकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है— $१ + २ + ४ + १ + २ + २ + १ = १३$ ।

एतेषि च भगा—६।१५।४।३।२।१२ एए अण्णोणगुणिदा = २५६२०

६।१५।४।२।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = १४४०

६।२०।४।३।२।२।१२ एए अण्णोणगुणिदा = ६६१२०

६।२०।४।२।२।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = ३८४०

६।१५।४।३।२।१२ एए अण्णोणगुणिदा = २५६२०

६।१५।४।२।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = १४४०

एए सन्वे मिलिया = १२७६८०

सर्वे मिलिताः १२७६८० ।

तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन तीनों प्रकारोंके उक्त दोनों विवक्षाओंसे भंग इस प्रकार
उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार— { ६।१५।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २५६२० भङ्ग होते हैं ।
{ ६।१५।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार— { ६।२०।४।३।२।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर ६६१२० भङ्ग होते हैं ।
{ ६।२०।४।२।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर ३८४० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार— { ६।१५।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २५६२० भङ्ग होते हैं ।
{ ६।१५।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भङ्ग होते हैं ।

इस प्रकार सासादन गुणस्थानमें तेरह बन्ध प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ १२७६८० होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले चौदह बन्ध-	का०	अन०	भ०
प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना	५	१	०
इस प्रकार है—	४	१	१
	३	१	२

इंदिय पंच य काया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो चउदस हंति ते हेऊ ॥१५०॥

१।५।४।१।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१।५।४।१।२।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।१२ पुनः वै० मि० ६।६।४।
२।२।१ एते परस्परं गुणिताः १०३६८ । ५७६ ॥१५०॥

अथवा सासादनगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५०॥

इनकी संदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ५ + ४ + १ + २ + १ = १४$ ।

इंदिय चउरो काया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१५१॥

११४१११२१११ एदे मिलिया १४ ।

११४१११२१११ एकीकृताः १४ प्रत्यया । एतेषा भङ्गाः ६१५४१३२१२१ वै० सि० ६१५४१२१२११ एते अन्योन्यगुणिता ५१८४० । २८८० ॥१५१॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विक्रमे से एक और योग एक, ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ४ + ४ + १ + २ + १ + १ = १४$ ।

इंदिय तिणिण य काया कोहाइचउक एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१५२॥

११३१४११२१२१ एदे मिलिया १४ ।

११३१४११२१२१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः । एतेषा भङ्गाः ६१२०१३२१२१ वै० सि० ६१२०१३२१२११ एते परस्परेण गुणिता ३४५६० । १६२० ॥१५२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और एक योग; ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ३ + ४ + १ + २ + २ + १ = १४$ ।

एदेसि च भगा—६१६१४३२१२	एए अण्णोणगुणिदा = १०३६८
६१६१४२१२१	एए अण्णोणगुणिदा = ५७६
६१५४१३२१२१२	एए अण्णोणगुणिदा = ५१८४०
६१५४१२१२१	एए अण्णोणगुणिदा = २८८०
६१२०१३२१२१२	एए अण्णोणगुणिदा = ३४५६०
६१२०१३२१२१	एए अण्णोणगुणिदा = १६२०

एए सच्चे मेलिए— = १०२१४४

एते सर्वे पट् राशयो मीलित्ताः १०२१४४ एते मध्यमचतुर्दशप्रत्ययानामुत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पा भवन्ति ।

चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन तीनों प्रकारोंके उक्त दोनों विवक्षाओंसे भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—६१६१४३२१२ इनका परस्पर गुणा करने पर १०३६८ भङ्ग होते हैं ।
६१६१४२१२१ इनका परस्पर गुणा करने पर ५७६ भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—६१५४१३२१२१२ इनका परस्पर गुणा करने पर ५१८४० भङ्ग होते हैं ।
६१५४१२१२१ इनका परस्पर गुणा करने पर २८८० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—६१२०१३२१२१२ इनका परस्पर गुणा करने पर ३४५६० भङ्ग होते हैं ।
६१२०१३२१२१ इनका परस्पर गुणा करने पर १६२० भङ्ग होते हैं ।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानमे चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ १०२१४४ होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले पन्द्रह का० अन० भ०
बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी ६ १ ०
रचना इस प्रकार है— ५ १ १
४ १ २

इंदिय छक्क य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो पण्णरस पच्चया सादे ॥१५३॥

१।६।४।१।२।१ एदे मिलिया १५ ।

१।६।४।१।२।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१।४।३।२।१।२। वै मि० ६।१।४।२।१।१।
एते अन्योन्यगुणिताः १७२८ । ६६ । ॥१५३॥

अथवा सासादनगुणस्थानमे इन्द्रियमें एक, काय छह, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५३॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + ६ + ४ + १ + २ + १ = १५ ।

इंदिय पंचय काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्सादिजुयलमेयं भयजुय एयं च जोगो य ॥१५४॥

१।५।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १५ ।

१।५।४।१।२।१।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।२।१।२। वै० मि० ६।६।४।२।
२।२।१।१। एते परस्परगुणिताः २०७३६ । ११५२ ॥१५४॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विक्रमेसे एक और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५४॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + ५ + ४ + १ + २ + १ + १ = १५ ।

इंदिय चउरो काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एगजोगो य ॥१५५॥

१।४।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १५ ।

१।४।४।१।२।२।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१।५।४।३।२।२।१।२। वै० मि०
६।१।५।४।२।२।१। एते परस्परगुणिताः २५६२० । १४४० ॥१५५॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कपाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५५॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + ४ + ४ + १ + २ + २ + १ = १५ ।

एदेसि च भगा—६।१।४।३।२।१।२ एए अण्णोण्णगुणिदा = १७२८

६।१।४।२।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = ६६

६।६।४।३।२।२।१।२ एए अण्णोण्णगुणिदा = २०७३६

६।६।४।२।२।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = ११५२

६।१।५।४।३।२।१।२ एए अण्णोण्णगुणिदा = २५६२०

६।१।५।४।२।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = १४४०

एए सच्चे मेलिए—

= ५१०७२

एते सर्वे पड् राशयो मीलिताः ५१०७२ । इति पञ्चदशप्रत्ययानामुत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पाः कथिताः ।

पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन तीनों प्रकारोंके उक्त दोनों विवक्षाओंसे भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—६।१।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर १७२८ भङ्ग होते हैं।

६।१।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर ६६ भङ्ग होते हैं।

द्वितीय प्रकार—६।६।४।३।२।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर २०७३६ भङ्ग होते हैं।

६।६।४।२।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर २१५२ भङ्ग होते हैं।

तृतीय प्रकार—६।१५।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर २५६२० भङ्ग होते हैं।

६।१५।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर १४४० भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानमे पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ ५१०७२ होता है।

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

	का०	अन०	म०
बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी	६	१	१
रचना इस प्रकार है—	५	१	२

इंदिय छक्क य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च सोलसं जोगो ॥१५६॥

१।६।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १६।

१।६।४।१।२।१।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः। एतेषां भगाः ६।१।४।३।२।२।१२। वै० मि० ६।१।४।२।२।१। एते अङ्काः परस्परगुणिताः ३४५६। १६२ ॥१५६॥

अथवा सासादनगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५६॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + ६ + ४ + १ + २ + १ + १ = १६।

इंदिय पंच य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।

हस्सादिजुयलमेयं भयजुयलं सोलसं जोगो ॥१५७॥

१।५।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १६।

१।५।४।१।२।२।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः। एतेषां भगाः ६।६।४।३।२।१२। वै० मि० ६।६।४।२।२।१। एते गुणिताः १०३६८। ५७६ ॥१५७॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; ये सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५७॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + ५ + ४ + १ + २ + २ + १ = १६।

एदेसि च भगा—६।१।४।३।२।२।१२ एए अण्णोण्णगुणिदा = ३४५६

६।१।४।२।२।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = १६२

६।६।४।३।२।१२ एए अण्णोण्णगुणिदा = १०३६८

६।६।४।२।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = ५७६

एए सब्बे मेलिए—

= १४५६२

एते सर्वे चत्वारो राशयो मीलिताः १४५६२ षोडशप्रत्ययानां सर्वे उत्तरप्रत्ययविकल्पा भवन्ति।

सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन दोनों प्रकारोंके उक्त दोनों अपेक्षाओंसे भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—६।१।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर ३४५६ भङ्ग होते हैं ।
 ६।१।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर १६२ भङ्ग होते हैं ।
 द्वितीय प्रकार—६।६।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर १०३६८ भङ्ग होते हैं ।
 ६।६।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर ५७६ भङ्ग होते हैं ।

इस प्रकार सासादन गुणस्थानमें सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ १४५६२ होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे वतलाये जानेवाले सत्तरह बन्ध-प्रत्यय सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए वीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	१	२

इंदिय छक्कय काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
 हस्साइदुयं एयं भयजुयलं सत्तरस जोगो ॥१५८॥

१।६।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १७ ।

१।६।४।१।२।२।१ एकीकृताः १७ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१।४।३।२।१२ । वै० मि० ६।१।४।२।२।१ एते परस्परेण गुणिताः १७२८ । ६६ ॥१५८॥

अथवा सासादनगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; ये सत्तरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५८॥

इनकी अंकसदृष्टि इस प्रकार है—१ + ६ + ४ + १ + २ + २ + १ = १७ ।

एदेसिं च भगा—६।१।४।३।२।१२ एदे अण्णोण्णगुणिदा = १७२८

६।१।४।२।२।१ एदे अण्णोण्णगुणिदा = ६६

एए सव्वे वि मिलिए = १८२४

सव्वे मिलिया—

४५६६४८ ।

सासादनगुणट्टाणस्स भंगा समत्ता ।

[सप्तदशप्रत्ययानां सर्वे भङ्गाः १८२४ ।] जघन्यदश-मध्यमैकादशादि-सप्तदशप्रत्ययानां सर्वे मीलिताः भगाः चतुर्लक्षैकोनपष्टिसहस्र-पट्शताष्टचत्वारिंशतः उत्तरोत्तरविकल्पाः ४५६६४८ सासादन-सम्यग्दृष्टिषु भवन्ति ।

सत्तरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग उक्त दोनों अपेक्षाओंसे इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—
 ६।१।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर १७२८ भङ्ग होते हैं । ६।१।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर ६६ भङ्ग होते हैं । इन सर्व भङ्गोंका जोड़—१८२४ होता है ।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानमे दशसे लेकर सत्तरह बन्ध-प्रत्ययों तकके सर्व भङ्गोंका प्रमाण ४५६६४८ होता है । जिसका विवरण इस प्रकार है—

दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग	१०६४४
ग्यारह " " "	४६२४८
बारह " " "	१०२१४४
तेरह " " "	१२७६८०
चौदह " " "	१०२१४४
पन्द्रह " " "	५१०७२

सोलह " " " १४५६२

सत्तरह " " " १८२४

सासादनसम्यग्दृष्टिके सर्व बन्ध-प्रत्ययोके भङ्गोका जोड़ ४५६६४८ होता है ।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानके भङ्गोका विवरण समाप्त हुआ ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले नौ बन्ध-प्रत्यय-

सम्बन्धी भङ्गोको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का० भ०
१ ०

इंदियमेओ काओ कोहाई तिणि एयवेदो य ।

हस्साइजुयलमेयं जोगो णव होंति पच्चया मिस्से ॥१५६॥

१११३११२११ एदे मिलिया ६ ।

अथ मिश्रगुणस्थाने जघन्यनवक-मध्यमदशकाद्युत्कृष्टपोढशपर्यन्त प्रत्ययमेदान् गाथाऽष्टादशकेन प्राह—['इंदियमेओ काओ' इत्यादि ।] षण्णामिन्द्रियाणां मध्ये एकतमेन्द्रियाऽमयमप्रत्ययः १ । षण्णां कायाना एकतमकायविराधकाऽसयमप्रत्ययः १ । मिश्रे अनन्तानुबन्धिनामुदयाऽभावात् अप्रत्याख्यानाऽऽदीनां कपायाणां मध्ये अन्यतमक्रोधादयस्त्रयः प्रत्यया ३ । त्रिवेदानां एकतमवेदः १ । हास्य-रतियुग्माऽ-रति-शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतमयुग्मम् २ । मिश्रे आहारकद्विक-मिश्रत्रिकयोगाऽभावात् दशाना योगाना मध्ये एकतमयोगप्रत्ययः १ । एव मिश्रे नव प्रत्ययाः ६ भवन्ति । १११३११२११ एकीकृताः ६ प्रत्ययाः ॥१५६॥

मिश्रगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय एक, अनन्तानुबन्धीके विना अत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन-सम्बन्धी क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक, ये नौ बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + १ + २ + १ = ६ ।

एदेसि च भगा—६।६।४।३।२।१० एए अण्णोण्णगुणिया = ८६४०

इन्द्रियपट्क ६ कायपट्क ६ कपायचतुष्क ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुग्म २ मनो-वचनौदारिकवैक्रियक्रयोगाः दश १० । भङ्गाः ६।६।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः ८६४० नवप्रत्ययानामुत्तरोत्तरविकल्पा भवन्ति । एव सर्वत्राग्रे कर्तव्यम् ।

इनके ६।६।४।३।२।१० परस्पर गुणा करने पर नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी ८६४० भङ्ग होते हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाने जानेवाले दश बन्ध-प्रत्यय-

सम्बन्धी भङ्गोको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का० भ०
२ ८
१ १

इंदिय दोणि य काया कोहाई तिणि एयवेदो य ।

हस्सादिजुयलमेयं जोगो दस पच्चया मिस्से ॥१६०॥

११२।३।१।२।१ । एदे मिलिया १० ।

११२।३।१।२।१ एकीकृता १० । एतेषां भङ्गा ६।१५।४।३।२।१० । परस्परेण गुणिताः २१६०० ॥१६०॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक, ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + २ + ३ + १ + २ + १ = १० ।

† व होइ ।

इंदियमेओ काओ कोहाई तिणि एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१६१॥

१११३११२१११ एदे मिलिया १० ।

१११३११२१११ एकीकृताः १० प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।२।१० । परस्परगुणिताः १७२८० ॥१६१॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेसे एक और योग एक; ये दशबन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६१॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + १ + ३ + १ + २ + १ + १ = १०$ ।

एदेसिं च भगा— ६।१५।४।३।२।१० एए अणोणगुणिता = २१६००

६।६।४।३।२।२।१० " = १७२८०

एदे मेलिए— = ३८८८०

सर्वे मीलिताः— ३८८८० ।

मिश्र गुणस्थानमे दशबन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी दोनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—

(१) ६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर २१६०० भङ्ग होते हैं ।

(२) ६।६।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर १७२८० भङ्ग होते हैं ।

दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़— ३८८८० होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले ग्यारह बन्ध-का० भ०
प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना
इस प्रकार है—
३ ०
२ १
१ २

इंदिय तिणि य काया कोहाई तिणि एयवेदो य ।

हस्सादिजुयलमेयं जोगो एकारं पचया मिस्से ॥१६२॥

११३।३।१।२।१ एदे मिलिया ११ ।

११३।३।१।२।१ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।२०।४।३।२।१० । परस्परगुणिताः २८८०० ॥१६२॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६२॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + ३ + ३ + १ + २ + १ = ११$ ।

इंदिय दोणि य काया कोहाई तिणि एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१६३॥

११२।३।१।२।११ एदे मिलिया ११ ।

११२।३।१।२।११ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः एतेषां । भङ्गाः ६।१५।४।३।२।२।१० । परस्परगुणिताः ४३२०० ॥१६३॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक, और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६३॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + २ + ३ + १ + २ + १ + १ = ११$ ।

इंदियमेओ काओ कोहाई तिणिण एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१६४॥

१११३११२११ एदे मिलिया ११ ।

१११३११२११ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः । एतेषा भङ्गाः ६।६।४।३।२।१० । गुणिताः ८६४० ॥१६४॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + १ + ३ + १ + २ + २ + १ = ११$ ।

एदेसि च भगा— ६।२०।४।३।२।१० एए अणोणगुणिया = २८८००

६।१५।४।३।२।१० „ = ४३२००

६।६।४।३।२।१० „ = ८६४०

एए सब्बे मेलिए— = ८०६४०

एते सर्वे मीलिता— = ८०६४० ।

मिश्रगुणस्थानमे ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी तीनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—

(१) ६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर २८८०० भङ्ग होते हैं ।

(२) ६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर ४३२०० भङ्ग होते हैं ।

(३) ६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर ८६४० भङ्ग होते हैं ।

ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़— ८०६४० होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
४	०
३	१
२	२

इंदिय चउरो काया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं जोगो वारस हवंति ते हेऊ ॥१६५॥

११४३११२११ एदे मिलिया १२ ।

११४३११२११ एकीकृताः १२ द्वादश कर्मणा ते हेतवः प्रत्यया भवन्ति । एतेषा भङ्गाः ६।१५।४।३।२।१० परस्परेण गुणिता २१६०० ॥१६५॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक, ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ४ + ३ + १ + २ + १ = १२$ ।

इंदिय तिणिण वि काया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च वारसं जोगो ॥१६६॥

११३३११२१११ एदे मिलिया १२ ।

११३३११२१११ एकीकृताः १२ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गा ६।२०।४।३।२।१० गुणिता ५७६०० ॥१६६॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ३ + ३ + १ + २ + १ + १ = १२$ ।

इंदिय दोणिं य काया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१६७॥

१।२।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १२ ।

१।२।३।१।२।२।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।१० गुणिताः २१६०० ॥१६७॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-
युगल और योग एक, ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६७॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + २ + ३ + १ + २ + २ + १ = १२$ ।

एदेसि च भगा— ६।१५।४।३।२।१० एए अण्णोणगुणिया = २१६००

६।२०।४।३।२।२।१० ,, = ५७६००

६।१५।४।३।२।१० ,, = २१६००

सन्वे मेलिए—

= १००८००

सर्वे मीलिताः १००८०० द्वादशप्रत्ययानां विकल्पाः ।

मिश्र गुणस्थानमे बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी तीनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार—६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर २१६०० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर ५७६०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर २१६०० भङ्ग होते हैं ।

उक्त सर्व भङ्गोका जोड़—

१००८०० होता है ।

सम्यमिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले तेरह बन्ध-प्रत्यय-
सम्बन्धी भङ्गोको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
५	०
४	१
३	२

इंदिय पंच वि काया कोहाई तिणिण एय वेदो य ।

हस्साइजुयं एयं जोगो तेरस हवंति ते हेऊ ॥१६८॥

१।५।३।१।२।१ एदे मिलिया १३ ।

१।५।३।१।२।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।१० गुणिताः ८६४० ॥१६८॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि
युगल एक और योग एक, ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६८॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + ५ + ३ + १ + २ + १ = १३$ ।

इंदिय चउरो काया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१६९॥

१।४।३।१।२।१।१ एदे मिलिया १३ ।

१।४।३।१।२।१।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।२।१० परस्परेण गुणिताः
४३२०० ॥१६९॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, एक वेद. हास्यादि युगल एक, भय-
द्विक्रमेसे एक और योग एक, ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६९॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + ४ + ३ + १ + २ + १ + १ = १३$ ।

इंदिय तिणिं य काया कोहाई तिणिं एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं तेरसं जोगो ॥१७०॥

१।३।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १३ ।

१।३।३।१।२।२।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।२०।४।३।२।१० परस्परं गुणिताः २८८०० ॥१७०॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७०॥

एदेसि च भगा— ६।६।४।३।२।१० एए अणोणगुणिया = ८६४०
६।१५।४।३।२।१० „ = ४३२००
६।२०।४।३।२।१० „ = २८८००
एए सन्वे मेलिए = ८०६४०

एते त्रयो राशयो मीलिताः ८०६४० त्रयोदशप्रत्ययानां विकल्पाः ।

मिश्रगुणस्थानमे तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी तीनो प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार—६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ८६४० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ४३२०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २८८०० भङ्ग होते हैं ।

उक्त सर्व भंगोंका जोड़— = ८०६४० होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	म०
६	०
५	१
४	२

इंदिय छक्कय काया कोहाई तिणिं एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं जोगो चउदस हवंति ते हेऊ ॥१७१॥

१।६।३।१।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१।६।३।१।२।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।१।४।३।२।१० परस्परं गुणिताः १४४० ॥१७१॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक; ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ६ + ३ + १ + २ + १ + १ = १४ ।

इंदिय पंचय काया कोहाई तिणिं एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१७२॥

१।५।३।१।२।१।१ पदे मिलिया १४ ।

१।५।३।१।२।१।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः । तेषां भगाः ६।६।४।३।२।१० गुणिताः १७२८० ॥१७२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक, ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + ३ + १ + २ + १ + १ = १४ ।

इंदिय चउरो काया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं चउदसं जोगो ॥१७३॥

१।४।३।१।२।२।१ मिलिया १४ ।

१।४।३।१।२।२।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।१।४।३।२।१० अन्योन्यगुणिताः २१६०० ॥१७३॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक, ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७३॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ४ + ३ + १ + २ + २ + १ = १४$ ।

एदेसिं च भगा— ६।१।४।३।२।१० एदे अण्णोणगुणिदा = १४४०

६।६।४।३।२।२।१० एदे अण्णोणगुणिदा = १७२८०

६।१।४।३।२।१० एदे अण्णोणगुणिदा = २१६००

एए सव्वे मिलिया—

= ४०३२०

एते सर्वे त्रयो राशयो मीलितः ४०३२० चतुर्दशप्रत्ययानां विकल्पाः स्युः ।

मिश्रगुणस्थानमे चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी तीनां प्रकारोके भंग इस प्रकार हैं—

(१) ६।१।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भंग होते हैं ।

(२) ६।६।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १७२८ भंग होते हैं ।

(३) ६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २१६०० भंग होते हैं ।

उक्त सर्व भंगोंका जोड़—

४०३२० होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का० भ०

६ १

५ २

इंदिय छक य काया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च पण्णरस जोगो ॥१७४॥

१।६।३।१।२।१।१ एदे मिलिया १५ ।

१।६।३।१।२।१।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः भगाः ६।१।४।३।२।२।१० गुणिताः २८८० ॥१७४॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकर्मेसे एक और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ६ + ३ + १ + २ + १ + १ = १५$ ।

इंदिय पंचय काया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं पण्णरस जोगो ॥१७५॥

१।५।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १५ ।

१।५।३।१।२।२।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।६।४।३।२।१० परस्परगुणिताः ८६४० ॥१७५॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक, ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— $१ + ५ + ३ + १ + २ + २ + १ = १५$ ।

एदेसिं च भंगा—६।१।४।३।२।२।१०

एए अण्णोण्णगुणिदा = २८८०

६।६।४।३।२।१०

एदे अण्णोण्णगुणिदा = ८६४०

दो वि मेलिए—

= ११५२०

एतौ द्वौ राशी एकीकृतौ ११५२० । एते पञ्चदशप्रत्ययानां विकल्पाः ।

मिश्र गुणस्थानमें पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी दोनो प्रकारोके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—६।१।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २८८० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ८६४० भङ्ग होते हैं ।

उक्त सर्व भङ्गोका जोड़—

११५२० होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सोलह बन्ध-

प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना

का० भ०
६ २

इस प्रकार है—

इंदिय छक् य काया कोहाई तिणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं सोलसं जोगो ॥१७६॥

१।६।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १६ ।

१।६।३।१।२।२।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः । एतेषां भगा. ६।१।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः

१४४० ॥१७६॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७६॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + ६ + ३ + १ + २ + २ + १ = १६ ।

एदेसिं च भंगा—६।१।४।३।२।१० एए अण्णोण्णगुणिदा = १४४० ।

मिस्सभगा एव सन्वे मिलिया ३६२८८० ।

मिस्सगुणट्टाणस्स भगा समत्ता ।

एव सर्वे नवादि-पोडशान्तप्रत्ययानां भगा. त्रिलक्ष द्वापट्टि-सहस्राष्टशताशीतिविकल्पाः ३६२८८०

मिश्रगुणस्थाने भवन्ति ।

उक्त सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

६।१।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भङ्ग होते हैं ।

इस प्रकार मिश्रगुणस्थानमे दशसे लेकर सोलह बन्ध-प्रत्ययो तकके सर्व भङ्गोका प्रमाण ३६२८८० होता है । जिसका विवरण इस प्रकार है—

नौ	बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग—	८६४०
दश	” ” ”	३८८०
ग्यारह	” ” ”	८०६४०
बारह	” ” ”	१००८००
तेरह	” ” ”	८०६४०
चौदह	” ” ”	४०३२०
पन्द्रह	” ” ”	११५२०
सोलह	” ” ”	१४४०

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सर्व बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोका जोड़— ३६२८८० होता है ।

इस प्रकार मिश्रगुणस्थानके भङ्गोका विवरण समाप्त हुआ ।

जे पचया वियप्पा मिस्से भणिया पडुच्च दसजोगं ।

ते चेव य अजईए अपुण्णजोगाहिया णेया ॥१७७॥

अथाऽसंयतसम्यग्दृष्टौ नवादि-पोडशान्तप्रत्ययानां भगानाह—दशयोगान् प्रतीत्य मनो-वचनाष्टकौ-
दारिक-वैक्रियिकद्वययोगान् स्वीकृत्याऽऽश्रित्य ये प्रत्यय-विकल्पाः मिश्रगुणस्थाने भणिताः, त एव मिश्रोक्त-
दशयोगाऽऽश्रिताः प्रत्यय-विकल्पाः । तेषु औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रकर्मणेषु अपूर्णयोगेषु यावन्तः प्रत्यय-
विकल्पाः सम्भवन्ति, तैः अपूर्णयोगोक्तैरधिकाः असंयते अविरतसम्यग्दृष्टौ ज्ञेयाः । असंयते मिश्रोक्ताः
प्रत्ययविकल्पाः तथा मिश्रयोगत्रिकोक्ताः प्रत्ययविकल्पाश्च भवन्तीत्यर्थः ॥१७७॥

मिश्रगुणस्थानमें दशयोगोंकी अपेक्षा जो बन्ध-प्रत्यय और विकल्प अर्थात् भङ्ग कहे हैं,
असंयतगुणस्थानमें अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कर्मणकाययोगसे
अधिक वे ही बन्ध-प्रत्यय और भंग जानना चाहिए ॥१७७॥

विशेषार्थ—मिश्रगुणस्थानमें अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी तीनों अपर्याप्त योग नहीं थे, केवल
दश योगोंसे ही बन्ध होता था, किन्तु असंयतगुणस्थानमें अपर्याप्तकालमें देव और नारकियोंकी
अपेक्षा वैक्रियिकमिश्र और कर्मणकाययोग, तथा वद्धायुष्क तिर्यञ्च और मनुष्योंकी अपेक्षा औदा-
रिकमिश्रकाययोग सम्भव है, अतएव दशके स्थानपर तेरह योगोंसे बन्ध होता है । इस कारण
भंग-संख्या भी योग-गुणकारके बढ़ जानेसे बढ़ जाती है ।

ओरालमिस्सजोगं पडुच्च पुरिसो तहा भवे एको ।

वेउव्वमिस्सकम्मे पडुच्च इत्थी ण होइ त्ति ॥१७८॥

सम्माइद्धी णिर-तिरि-जोइस-वण-भवण-इत्थि-संढेसु ।

जीवो वद्धाऊयं मोत्तु' णो उववञ्जइ त्ति वयणाओ ॥१७९॥

असंयते औदारिकमिश्रकाययोग प्रतीत्याऽऽश्रित्य एक. पुवेदो भवेत्, औदारिकमिश्रयोगे पुमानेवेति ।
कुतः ? पूर्वं तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा बद्ध्वा पश्चात्सम्यग्दृष्टिर्जातः मृत्वा भोगभूमौ तिर्यग्जीवो मनुष्यो वा
जायते । तदा औदारिकमिश्रपुवेद एव, न तु नपुसक-स्त्रीवेदौ भवतः । अथवा सम्यक्त्ववान् देवो नारको वा
मृत्वा कर्मभूमौ मानुष्याः गर्भे उत्पद्यते, तदा औदारिकमिश्रे पुवेदः । वैक्रियिकमिश्र कर्मणयोगं च
प्रतीत्याऽऽश्रित्य स्त्रीवेदोऽसंयते न भवति, सम्यग्दृष्टिर्मृत्वा देवेषु उत्पद्यते, तथा वैक्रियिकमिश्रे कर्मणकाले
पु वेद एव । तथा प्रथमनरके उत्पद्यते, तदा नपु सकवेद एव, न तु स्त्रीवेदः । वैक्रियिकमिश्र-कर्मणयोः
स्त्री नेति ॥१७८॥

कुतः इति चेत् सम्यग्दृष्टिर्जीवः नारक-तिर्यग्ज्योतिष-वानव्यन्तर-भवनवासि-स्त्री-पण्डेषु नोत्पद्यते,
बद्धाऽऽयुष्कं मुक्त्वा । कथम् ? पूर्वं नरकायुर्वद्ध पश्चाद् वेदको वा ज्ञायिकसम्यग्दृष्टिर्वा जातः, असौ मृत्वा
प्रथमधर्मानरके उत्पद्यते । अथवा तिर्यगायुर्मनुष्याऽऽयुर्वा बद्ध्वा पश्चात् सम्यग्दृष्टिर्जातः, स मृत्वा भोगभूमौ
तिर्यग् मनुष्यो वा जायते । अन्यथा सम्यग्दृष्टिर्नरकेषु तिर्यक्षु नपुंसकेषु च नोत्पद्यते । भवनत्रिवेषु स्त्रीषु च
सर्वथा नोत्पद्यते इति वचनात् । उक्तञ्च तथा—

योगे वैक्रियिके मिश्रे कर्मणे च सुधाशिपु ।

पुवेद पण्डवेदश्च श्वभ्रे वद्धायुषः पुनः ॥२३॥

तिर्यच्वौदारिके मिश्रे पूर्ववद्धायुषो मृतः ।

मनुष्येषु च पुवेदः सम्यक्त्वालङ्कृतात्मनः^१ ॥२४॥

त्रिभिर्द्वाभ्यां तथैकेन वेदेनास्य प्रताडना ।

भङ्गानां दशभिर्योगैर्द्वाभ्यामेकेन च क्रमात् ॥२५॥

अस्यार्थः—चिरन्तनचतुश्चत्वारिंशच्छ्रुतादिलक्षण राशि त्रिधा व्यवस्थाप्यैक त्रिभिर्वेदैः, अन्यं द्वाभ्यां पुनपु सकवेदाभ्याम्, पर राशि एकेन पु वेदेन गुणित हास्यादियुगलेन २ गुणयित्वा योगैरेक दशभिः, अन्य द्वाभ्या वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाभ्यां परमेकेनौदारिकमिश्रेण गुणयेत् । तत एकीकरणे फलं भवति ॥१७६॥

असंयतगुणस्थानमे औदारिकमिश्रकाययोगकी अपेक्षा एक पुरुषवेद ही होता है । तथा वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगकी अपेक्षा स्त्रीवेद नहीं होता है । (किन्तु देवोकी अपेक्षा पुरुष वेद और नारकियोंको अपेक्षा नपुंसक वेद होता है ।) क्योंकि, बद्धायुष्कको छोड़कर सम्यग्दृष्टि जीव नारकी, तिर्यञ्च, ज्योतिष्क, व्यन्तर, भवनवासी, स्त्री और नपुंसक जीवोंसे उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा आगमका वचन है ॥१७८-१७९॥

विशेषार्थ—असंयतगुणस्थानवर्ती जीव यदि बद्धायुष्क नहीं है, तो उसके वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग देवोमे ही मिलेगे । तथा उसके केवल पुरुषवेद ही संभव है । यदि असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव बद्धायुष्क है, तो वह नरकगतिमें भी जायगा और उसके वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ नपुंसकवेद भी रहेगा । इसलिए असंयतगुणस्थानके भंगोको उत्पन्न करनेके लिए तीन वेदोंसे, दो वेदोंसे और एक वेदसे गुणा करना चाहिए । तथा पर्याप्तकालमे संभव दश योगोंसे और अपर्याप्तकालमे संभव दो योगोंसे और एक योगसे भी गुणा करना चाहिए । इस प्रकार वेद और योग-सम्बन्धी विशेषताकृत भेद तीसरे और चौथे गुणस्थानके भंगोंमें है; अन्य कोई भेद नहीं है । इसलिए ग्रन्थकारने नौ, दश आदि बन्ध-प्रत्ययोके भंगादिका गाथाओ-द्वारा वर्णन न करके केवल अंकसंदृष्टियोंसे ही उनका वर्णन किया है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिके नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको का० भ०
निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

$$\text{एए } १४४११२११ \text{ तेणेदे} = २८८$$

$$\text{एए } १४४१२१२१२ \text{ तेणेदे} = ११५२$$

$$\text{दसजोग-भगा} = ८६४०$$

$$\text{तिणिण वि मिलिए जहणभगा भवन्ति} = १००८० -$$

इन्द्रियमेक १ कायमेक १ कपायः ३ वेदः १ हास्यादियुग्म २ योगः १ एते एकीकृताः ६ प्रत्ययाः । एतेषा भगाः ६।६।४ परस्पर गुणिताः १४४ । एते एकेन पु वेदेन १ गुणितास्त एव । हास्यादियुग्मेन गुणिताः २८८ । एकेनौदारिकमिश्रकायेन १ गुणितास्त एव २८८ ।

१।१।३।१।२।१ एकीकृताः ६ भगाः ६।६।४।२।२।२ परस्परहताः १४४ । पु वेद-नपु सकवेदाभ्या २ हताः २८८ । हास्यादियुग्मेन रहिताः ५७६ । वैक्रियिकमिश्र कार्मणाभ्या २ हताः ११५२ ।

६।६।४ गुणिताः १४४ । वेदत्रयेण ३ गुणिताः ४३२ । हास्यादियुग्मेन २ हताः ८६४ । एते दश-भिर्योगैः १० हताः ८६४० । एते त्रयो राशयो मीलितः जघन्यभगाः १००८० भवन्ति ।

असंयतगुणस्थानमे नौ बन्ध-प्रत्ययोके भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

$$\text{नपुंसकवेद और एक योगकी अपेक्षा } ६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times १ \times २ \times १ = २८८$$

$$\text{दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा } ६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times २ \times २ \times २ = ११५२$$

$$\text{तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा } ६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times ३ \times २ \times १० = ८६४०$$

$$\text{नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्गोंका जोड़—} \quad १००८०$$

इस प्रकार नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग १००८० होते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टिके दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको का० भ०
निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है— २ ०
१ १

एदेसि भगा— ३६०।१।२।१ एदे अण्णोणगुणिदा = ७२०
३६०।२।२।२ एदे अण्णोणगुणिदा = २८८०
१४४।१।२।२।१ एदे अण्णोणगुणिदा = ५७६
१४४।२।२।२।२ एदे अण्णोणगुणिदा = २३०४
दसयोग-तिवेद-भगा— = ३८८०
सब्बे वि मेलिए सति— = ४५३६०

मिश्रोक्ताः १।२।३।१।२।१ एकीकृताः १० । एतेषा भगाः ६।१५।४ पु वेद १ हास्यादियुग्म २
औदारिकमिश्रकाययोगे परस्परगुणिताः ३६० । एते पुवेदेन गुणितास्त एव ३६० । हास्यादियुग्मेन २
गुणिताः ७२० । एते औदारिकमिश्रेण १ गुणितास्त एव ७२० ।

१।२।३।१।२।१ एकीकृताः १० । [एतेषां भगाः] ६।१५।४।२।२ परस्परेण गुणिताः ३६० ।
पुवेद-नपुसकवेदाभ्यां २ गुणिताः ७२० । हास्यादियुग्मेन २ गुणितास्ते १४४० । एते वैक्रियिकमिश्र-कर्म-
णाभ्यां २ गुणिताः २८८० ।

१।२।३।१।२।१ एकीकृताः १० । एतेषां भगाः ६।१५।४।३।२।१० परस्परगुणिताः २१६०० ।

मिश्रोक्ताः १।२।३।१।२।१ एकीकृताः १० । एतेषां भगाः ६।६।४ । पुवेदः १ हास्यादियुग्म २
भययुग्म २ औदारिकमिश्र १ परस्परगुणिताः ५७६ ।

१।१।३।१।२।१ एकीकृताः १० । भगाः ६।६।४।२।२।२।२ । परस्परेण गुणिताः १४४ । पुवेद-
नपुसकवेदाभ्यां द्वाभ्यां २ गुणिताः २८८ । एते हास्यादियुग्मेन २ गुणिताः ५७६ । भययुग्मेन २ गुणिताः
११५२ । एते वैक्रियिकमिश्र-कर्मणाभ्यां २ गुणिताः २३०४ ।

१।१।३।१।२।१।१ एकीकृताः १० भेदाः । ६।६।४।३।२।२ । यो० १० परस्परं गुणिताः १७२८० ।
दशप्रत्ययानां भगाः सर्वे मिलिताः ४५३६० सन्ति ।

असंयतगुणस्थानमे दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

- (१) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times १ \times २ \times १ = ७२०$
दो वेद और एक योगकी अपेक्षा $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times २ \times २ \times २ = २८८०$
- (२) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा $६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times १ \times २ \times २ \times १ = ५७६$
दो वेद और दो योगकी अपेक्षा $६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times २ \times २ \times २ \times २ = २३०४$
- (३) तीनों वेद और दश योगकी अपेक्षा
दोनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग— $२१६०० + १७२८० = ३८८८०$ होते हैं ।
उपर्युक्त सर्व भङ्गोका जोड़— ४५३६० होता है ।

इस प्रकार दशबन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग ४५३६० होते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टिके ग्यारह बन्धप्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको का० भ०
निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है— ३ ०
२ १
१ २

एदेसि भगा—	४८०।१।२।१	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	६६०
	४८०।२।२।२	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	३८४०
	३६०।१।२।२।१	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	१४४०
	३६०।२।२।२।२	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	५७६०
	१४४।१।२।१	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	२८८
	१४४।२।२।२	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	११५२

सन्वे वि मेलिण् सति—

= ६४०८०

१।३।३।१।२।१ एकीकृताः ११ । एतेषां भगाः ६।२०।४ । पुवेद १ हास्यादियुग्म २ औं मि १ परस्परगुणिताः ६६० ।

१।३।३।१।२।१ एकीकृताः ११ । एतेषां भगाः ६।२०।४। गुणिता ४८० । नपुसक-पुवेदाभ्यां २ गुणिताः ६६० । युग्मेन गुणिताः १६२० । वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाभ्यां २ गुणिताः ३८४० ।

१।३।३।१।२।१ एकीकृताः ११ । भेदाः ६।२०।४।३।२ यो० १० । परस्पर गुणिता २८८०० ।

१।२।३।१।२।१।१ एकीकृताः ११ । एतेषां भगा ६।१५।४।१।२।२। परस्पर गुणिताः १४४० ।

१।२।३।१।२।१।१ एकीकृताः ११ । एतेषां भगाः ६।१५।४।२।२।२।२ परस्परेण गुणिताः ५७६० भगाः ६।१५।४ वे० ३।२।२।१० परस्परेण गुणिताः ४३२०० ।

१४४ पुवेदः १।२ । औं मि० १ परस्परं गुणिताः २८८ ।

१४४ पु-नपु सकौ २।२ वै० मि० का० २ गुणिताः ११५२ ।

१४४ वेद ३ हास्यादि २ भय २ योगाः १० परस्परेण गुणिताः ८६४० ।

एकादशप्रत्ययानां भगाः सर्वे ६४०८० भवन्ति ।

असंयतगुणस्थानमे ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१)	एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—	$६ \times २० \times ४ (= ४८०) \times १ \times २ \times १$	= ६६०
	दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—	$६ \times २० \times ४ (= ४८०) \times २ \times २ \times २$	= ३८४०
(२)	एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—	$६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times १ \times २ \times २ \times १$	= १४४०
	दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—	$६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times २ \times २ \times २ \times २$	= ५७६०
(३)	एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—	$६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times १ \times २ \times १$	= २८८
	दो वेद और एक योगकी अपेक्षा—	$६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times २ \times २ \times २$	= ११५२
	तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा		
	तीनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग—	$२८८०० + ४३२०० + ८६४०$	= ८०६४०
	सर्व भङ्गोंका जोड़—		६४०८०

इस प्रकार ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग ६४०८० होते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टिके चारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको

का०	भ०
४	०
३	१
२	२

निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

एदेसि भगा—	३६०।१।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	७२०
	३६०।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	२८८०
	४८०।१।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	१६२०
	४८०।२।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	७६८०
	३६०।१।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	७२०
	३६०।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	२८८०
			= १००८००

सन्वे वि मिलिया सति—

= ११७६००

मिश्रोक्ताः १।४।३।१।२।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भगाः ६।१५।४। पुं० १।२ औं मि० १ परस्पर गुणिताः ७२० भंगाः ।

६।१५।४।२।२।२ इन्द्रियपट्-कायभेदपञ्चदशक-कपायचतुष्केण गुणिताः ३६० । नपुंसक-पु वेदाभ्यां २ गुणिताः ७२० । एते युग्मेन २ गुणिताः १४४० । वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगाभ्यां २ गुणिताः २८८० ।

६।१५।४ वेद ३।२।१० । एते परस्परेण गुणिताः २१६०० ।

त्रिवेद-दशयोगाश्रिता विकल्पा एते मिश्रोक्ताः १००८०० ।

मिश्रोक्ताः १।३।३।१।२।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भगाः ६।२०।४ । पु वेद १।२।२ औं मि० १ । इन्द्रियपट्क ६ कायविराधनाभेदविंशतिः २० कपायचतुष्केण ४ गुणिताः ४८० । पु वेदेन १ गुणितास्त एव ४८० । हास्यादि २ भययुग्म २ गुणिताः ९६० । औदारिकमिश्रेण १ गुणिताश्च १९२० ।

इन्द्रियपट्कायविराधना २० कपायै ४ गुणिताः ४८० । पुं०-नपुंसकौ २।२।२ । वैं मि० का० २ परस्परेण गुणिताः ७६८० ।

४८० । वैं ३।२।१० परस्परं गुणिताः ५७६०० ।

३६०।२।२।४ गुणिताः २८८० ।

३६० । वेद ३ । २।१० गुणिताः २१६०० ।

सर्वे द्वादशप्रत्ययानां भगाः ११७६०० ।

असंयतगुणस्थानमे वारह वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times १ \times २ \times १ = ७२०$

दो वेद और दो योगकी अपेक्षा— $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times २ \times २ \times २ = २८८०$

(२) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $१ \times २० \times ४ (= ४८०) \times १ \times २ \times २ \times १ = १९२०$

दो वेद और दो योगकी अपेक्षा— $६ \times २० \times ४ (= ४८०) \times २ \times २ \times २ \times २ = ७६८०$

(३) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times १ \times २ \times १ = ७२०$

दो वेद और दो योगकी अपेक्षा— $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times २ \times २ \times २ = २८८०$

तीनों वेद और दश योगकी अपेक्षा

तीनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग— $२१६०० + ५७६०० + २१६०० = १००८००$

सर्व भंगोंका जोड़— ११७६०० होता है ।

इस प्रकार वारह वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भंग ११७६०० होते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टिके तेरह वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको
निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का० भ०
५ ०
४ १
३ २

एदेसि भगा— १४४।१।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = २८८

१४४।२।२।२ एए अण्णोणगुणिदा = ११५२

३६०।१।२।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = १४४०

३६०।२।२।२।२ एए अण्णोणगुणिदा = ५७६०

४८०।१।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = ९६०

४८०।२।२।२ एए अण्णोणगुणिदा = ३८४०

= ८८६४०

सब्बे वि मेलिए—

= ९४०८०

१।५।३।१।२।१ एकीकृताः १३ । भगाः ६।६।४ गु० १४४ । पुवेद १ हास्यादि २ औ० मि० १ ।
एव २८८ ।

१४४ नपुसक-पुवेदौ २।२ । वैक्रियिकमिश्र-कर्मणद्वय २ गुणिताः ११५२ एतेषां भगाः ।
६।१।५।४ गुणिता ३६० । पुवेदेन १।२।२ वैक्रियिकमिश्रेण १ परस्पर गुणिताः १४४० ।
३६० । पुवेद-नपुसकाम्या २।२।२ वैक्रियिकमिश्र-कर्मणाम्यां २ परस्पर गुणिताः ५७६० ।
६।२०।४ गुणिताः ४८० । पुवेदः १।२ औदारिकमिश्र १ परस्पर गुणिता ६६० ।
४८० । वेद २।२।२ परस्पर गुणिताः ३८४० ।
मिश्रोक्तत्रिवेद-दशयोगप्रत्ययविकल्पाः पूर्वोक्ताः १४४ वे० ३ हा० २ यो० १० गुणिताः ८६४० ।
पूर्वोक्ताः ३६० । वे० ३ हा० २ भ० २ यो० १० गुणिताः ४३२०० ।
पूर्वोक्ताः ४८० वे० ३ हा० २ यो० १० गुणिताः २८८०० ।
त्रयो मीलितः ८०६४० ।
सर्वे मीलितः त्रयोदशप्रत्ययानां विकल्पाः ६४०८० ।

असंयतगुणस्थानमे तेरह वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

- (१) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times १ \times २ \times १ = २८८$
दो वेद और दो योगकी अपेक्षा— $६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times २ \times २ \times २ = ११५२$
(२) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times १ \times २ \times २ \times १ = १४४०$
दो वेद और दो योगकी अपेक्षा— $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times २ \times २ \times २ \times २ = ५७६०$
(३) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times २० \times ४ (= ४८०) \times १ \times २ \times १ = ६६०$
दो वेद और दो योगकी अपेक्षा— $६ \times २० \times ४ (= ४८०) \times २ \times २ \times २ = ३८४०$
तीनो वेद और दश योगकी अपेक्षा
तीनो प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग— $८६४० + ४३२०० + २८८०० = ८०६४०$
सर्व भङ्गोंका जोड़— ६४०८०

इस प्रकार तेरह वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग ६४०८० होते हैं।

असंयतसम्यगृष्टिके चौदह वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको
निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
६	०
५	१
४	२

एदेसि भगा— २४।१।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = ४८
२४।२।२।२ एए अण्णोणगुणिदा = १६२
१४४।१।२।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = ५७६
१४४।२।२।२।२ एए अण्णोणगुणिदा = २३०४
३६०।१।२।१ एए अण्णोणगुणिदा = ७२०
३६०।२।२।२ एए अण्णोणगुणिदा = २८८०

एए भंगा— = ४०३२०
सन्वे वि मेलिए सति— = ४७०४०

१।६।३।१।२।१ एकीकृता १४ । एतेषां भगाः ६।१।४।१।२ औ० १ परस्परगुणिता ४८ ।
२४ । पुनपुसकौ २।२।२ परस्परगुणिताः १६२ ।
६।६।४।१।२।२ औदारिकमिश्र १ परस्पर गुणिता ५७६ ।
६।६।४।२।२।२ अन्योन्यगुणिता २३०४ ।

६।१५।४ गुणिताः ३६०।१।२।१ गुणिताः ७२० ।

३६०।२।२।२ गुणिताः २८८० ।

मिश्रोक्तत्रिवेद-दशयोगराशिद्वयविकल्पाः ४०३२० ।

सर्वे मीलिताश्चतुर्दशप्रत्ययविकल्पाः ४७०४० भवन्ति ।

असंयतगुणस्थानमें चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

- (१) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times १ \times ४ (= २४) \times १ \times २ \times १ = ४८$
 दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा— $६ \times १ \times ४ (= २४) \times २ \times २ \times २ = १६२$
- (२) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times १ \times २ \times २ \times १ = ५७६$
 दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा— $६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times २ \times २ \times २ \times २ = २३०४$
- (३) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times १ \times २ \times १ = ७२०$
 दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा— $६ \times १५ \times ४ (= ३६०) \times २ \times २ \times २ = २८८०$

तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा $१४४० + १७२८० + २१६०० = ४०३२०$
 तीनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग—

सर्व भङ्गोंका जोड़—

४७०४०

इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग ४७०४० होते हैं ।

असंयतसम्यगृष्टिके पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको

का० भ०

निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

५ १

६ २

एदेसि भगा—	२४।१।२।२।१	एए अण्णोणगुणिदा =	६६
	२४।२।२।२।२	एए अण्णोणगुणिदा =	३८४
	१४४।१।२।१	एए अण्णोणगुणिदा =	२८८
	१४४।२।२।२	एए अण्णोणगुणिदा =	११५२

तिवेद-दशयोग भगा— = ११५२०

सन्वे वि मिलिया सति— = १३४४०

१।६।३।१।२।१।१ एकीकृताः १५ । एतेषां भगाः ६।१।४ गु० २४ । पुंवेदः १।२।२ । औ० मि० १

परस्परगुणिताः ६६ ।

२४ पु० नपु० २।२।२ वै० मि० का० २ परस्पर गुणिताः ३८४ ।

१।५।३।१।२।१ एकीकृताः १५ । एतेषां भगाः ६।४।४ गुणिताः १४४ । पुंवेदः १ हास्यादि २

औ० मि० १ परस्परेण गुणिताः २८८ ।

१४४।२।२।२ परस्पर गुणिताः ११५२ ।

मिश्रोक्तत्रिवेद-दशयोगराशिद्वयप्रत्ययानां विकल्पाः ११५२० ।

सर्वे पञ्चदशप्रत्ययानां विकल्पाः १३४४० ।

असंयतगुणस्थानमें पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

- (१) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times १ \times ४ (= २४) \times १ \times २ \times २ \times १ = ६६$
 दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा— $६ \times १ \times ४ (= २४) \times २ \times २ \times २ \times २ = ३८४$
- (२) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा— $६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times १ \times २ \times १ = २८८$
 दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा— $६ \times ६ \times ४ (= १४४) \times २ \times २ \times २ = ११५२$

तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा } $२८८० + ८६४० = ११५२०$
 दोनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग—

सर्व भङ्गोंका जोड़—

१३४४०

इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग १३४४० होते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टिके सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको
निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का० भ०
६ २

एदेसि भगा—	२४११२१	एए अण्णोण्णगुणिदा	= ४८
	२४१२१२	एए अण्णोण्णगुणिदा	= १६२
	२४१३११०	एए अण्णोण्णगुणिदा	= १४४०
सन्वे वि मेलिए सति—			= १६८०

१६१३११२११ एकांकृताः १६ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६११४ । गुणिताः २४ । पुवेद १२ ।
औ० मि० १ परस्पर गुणिताः ४८ ।

२४१२१२ परस्पर गुणिताः १६२ ।

६११४१३११० परस्पर गुणिताः १४४० ।

सर्वे षोडशप्रत्ययानां प्रत्ययविकल्पाः १६८० भवन्ति ।

असंयतगुणस्थानमें सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—	$६ \times १ \times ४ (= २४) \times १ \times २ \times १$	= ४८
दो वेद और दो योगकी अपेक्षा—	$६ \times १ \times ४ (= २४) \times २ \times २ \times २$	= १६२
तीन वेद और दश योगकी अपेक्षा—	$६ \times १ \times ४ (= २४) \times ३ \times २ \times १०$	= १४४०
सर्व भङ्गोंका जोड़—		१६८०

इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग १६८० होते हैं ।

अविरदस्स सन्वेवि भङ्गा—४२३३६०

अविरदगुणट्टाणस्स भंगा समत्ता ।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने नवादि-षोडशान्तप्रत्ययानामुत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पाश्चतुर्लक्ष-त्रयोविंशति-
सहस्र-त्रिशतषष्टिः ४२३३६० भवन्ति ।

इत्यविरतगुणस्थानस्य भगा. समाप्ताः ।

इस प्रकार असंयतगुणस्थानमें नौसे लेकर सोलह बन्ध-प्रत्ययों तकके सर्व भङ्गोंका प्रमाण ४२३३६० होता है । जिसका विवरण इस प्रकार है—

नौ	बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी	भङ्ग—	१००८०
दश	”	”	४५३६०
ग्यारह	”	”	६४०८०
बारह	”	”	११७६००
तेरह	”	”	६४०८०
चौदह	”	”	४७०४०
पन्द्रह	”	”	१३४४०
सोलह	”	”	१६८०

असंयतसम्यग्दृष्टिके सर्व बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका जोड़ ४२३३६० होता है ।

इस प्रकार असंयतगुणस्थानके भङ्गोंका विवरण समाप्त हुआ ।

इगि दुग तिग संजोए देसजयम्मि चउ पंच संजोए ।

पंचेव दस य दसगं पंच य एकं भवति गुणयारा ॥१८०॥

५।१०।१०।५।१।

अथ देशसंयतगुणस्थाने जघन्य-मध्यमोत्कृष्टान् अष्टकनवकादि-चतुर्दशकान्तप्रत्ययभेदान् गाथापोडश-केनाऽऽह—['इगि दुग तिग संजोए' इत्यादि ।] ५।१०।१०।५।१ । पञ्चादीन् एकपर्यंतान् अष्टान् सस्थाप्य तदधो हारान् एकादीन् एकोत्तरान् सस्थाप्य ^{५ ४ ३ २ १} _{१ २ ३ ४ ५} अत्र प्रथमहारेण १ स्वाशे ५ भक्ते लब्धं प्रत्येक-भंगाः ५ । पुनः परस्पराहतपञ्चचतुरंशोऽन्योन्यहत २० तदेक-द्विकहारेण भक्ते लब्ध द्विसंयोगभगाः दश १० । पुनः परस्पराहत-तद्विंशतिः २० अशे तथाकृतद्वि २ त्रि ३ हारेण भक्ते लब्ध त्रिसंयोगा दश १० । पुनस्तथाकृतपष्टिद्वयंशे तथाकृत १२० षट्चतुर्हारेण २४ भक्ते लब्ध चतुःसंयोगाः पञ्च ५ । पुनस्तथाकृत-विंशत्यधिकैकशतैकांशे १२० तथाकृत-चतुर्विंशति-पञ्चहारेण १२० भक्ते लब्ध पञ्चसंयोग एकः १ । ५।१०।१०। ५।१ मिलित्वा ३१ देशसंयमे गुणकाराः ^{१ २ ३ ४ ५} _{५ १० १० ५ १} तद्यथा—

एक-द्विक-त्रिकसंयोगे चतुः-पञ्चसंयोगे च एककायसंयोगे एकैककायहिसका भगाः पञ्च ५ । द्विकाय-संयोगे द्विकायहिसकाः दश १० । त्रिकायसंयोगे त्रिकायहिसका भगाः दश १० । चतुः-कायसंयोगे चतुः-कायहिसका भगाः पञ्च ५ । पञ्चमयोगे तु युगपत्पञ्चकायहिसको भग एकः १ ।

एकैककायहिसका भंगाः ५—पृथ्वी १ अप् १ तेज १ वायु १ वनस्पति १ । एव एकैककायविराध-नायाम् ५ ।

द्विकायहिसका भगाः १०—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	वात
	अप्	तेज	वात	वन०	तेज	वात	वन०	वात	वन०	वन०
त्रिकायहिसका भगाः १०—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्	अप्	अप्	तेज
	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	वात	तेज	तेज	वात	वात
	तेज	वात	वन०	वात	वन०	वन०	वात	वन०	वन०	वन०
चतुःकायहिसका भंगाः ५—	१	२	३	४	५					
	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्					
	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज					
	तेज	तेज	वात	वात	वात					
	वात	वन०	वन०	वन०	वन०					

पञ्चकायहिसको भगः १ एकः—पृथ्वी अप् तेज वात वन० युगपद्द्वार हिनस्ति ।

एव [५ + १० + १० + ५ + १] ३१ भगाः ॥१८०॥

अथ देशसंयतगुणस्थानमे सम्भव उत्तरप्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोका निरूपण करते हैं—

देशसंयतगुणस्थानमे संभव भङ्गोंको निकालनेके लिए एक संयोगीका गुणकार पांच, द्विसंयोगीका गुणकार दश, त्रिसंयोगीका गुणकार दश, चतुःसंयोगीका गुणकार पाँच और पंच-संयोगीका गुणकार एक है ॥१८०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१।१०।१०।५।१।

देशसंयतके आठ वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको निकालनेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

का० भ०
१ ०

इंदियमेओ काओ कोहाई विणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं जोगो अड्ड य हवंति ते देसे ॥१८१॥

१११२११२११ एदे मिलिया ८ ।

पण्णामिन्द्रियाणां मध्ये एकतमेन्द्रियप्रत्ययः १ । त्रसवध विना पञ्चानां कायानां मध्ये एकतमकाय-
विराधकासयमप्रत्ययः १ । अनन्तानुबन्धप्रत्याख्यानरहितानां चतुर्णां कपायाणां मध्ये अन्यतमक्रोधादिद्वय-
प्रत्ययः २ । त्रयाणां वेदानां मध्ये एकतमवेदप्रत्ययः १ । हास्यरतियुग्मारतिशोकयुग्मयोर्मध्ये एकतमयुग्म
२ । सत्यादिमनोवचनौदारिकयोगानां नवानां मध्ये एकतमयोगोदय १ ॥१८१॥

देशसंयतमे इन्द्रिय एक, काय एक, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन सम्बन्धी क्रोधादि
कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये आठ बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८१॥

एदेसिं च भगा—६।५।४।३।२।१ एदे अण्णोण्णगुणिदा ६४८० ।

१११२११२११ एकीकृता. ८ प्रत्ययाः जघन्याः इन्द्रियपट् ६ कायपञ्च ५ कषायचतुष्क ४ वेदत्रय
३ हास्यादियुग्म २ सत्यादियोगनवकभगा ६।५।४।३।२।१ । एते परस्परेण गुणिताः देशसयमजघन्याष्ट-
कस्य प्रत्ययविकल्पाः ६४८० भवन्ति । एव सर्वत्रापि ज्ञेयम् ।

देशसंयतमे सर्वजघन्य आठ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

६।५।४।३।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर ६४८० भङ्ग होते हैं ।

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + २ + १ + २ + १ = ८ ।

देशसंयतके नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको निकालनेके लिए

कूट-रचना इस प्रकार है—

का० भ०
२ ०
१ १

इंदिय दोणिण य काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं जोगो णव होंति ते देसे ॥१८२॥

११२।२।११२।११ एदे मिलिया ६ ।

११२।२।११२।१ एकीकृता. नव ६ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।१०।४।३।२।१ । एते अन्योन्यगुणिता
१२६६० भगा स्युः ॥१८२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग
एक; ये नौ बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८२॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + २ + २ + १ + २ + १ = ९ ।

इंदियमेओ काओ कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१८३॥

१११२।११२।१११ एदे मिलिया ६ ।

१११२।११२।१११ एकीकृताः ६ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।५।४।३।२।१ परस्परेण गुणिता
१२६६० ॥१८३॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-
द्विकमेसे एक और योग एक, ये नौ बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८३॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + २ + १ + २ + १ + १ = ९ ।

एदेसिं च भगा— ६।१०।४।३।२।१ एए अण्णोण्णगुणिता = १२६६०

६।५।४।३।२।१ ॥ ॥ = १२६६०

एए दो वि मेलिए सति

= २५६२०

एतौ द्वौ राशी मीलितौ २५६२० । एते विकल्पाः सन्ति ।

देशसंयतमे नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—६।१०।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२६६० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—६।५।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२६६० भङ्ग होते हैं ।

इन दोनोंके मिलाने पर सर्व भङ्ग २५६२० होते हैं ।

का० भ०

३ ०

२ १

१ २

देशसंयतके दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको लानेके लिए
कूट रचना इस प्रकार है—

इंदिय-तिणिण य काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं जोगो दस होंति ते देसे ॥१८४॥

१।३।२।१।२।१ एदे मिलिया १० ।

१।३।२।१।२।१ एकीकृताः १० प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।१०।४।३।२।६ । अन्योन्यगुणिताः १२६६० ॥१८४॥

अथवा देशसंयतमे इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८४॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + ३ + २ + १ + २ + १ = १० ।

इंदिय दोणिण य काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१८५॥

१।२।२।१।२।१।१ एदे मिलिया १० ।

१।२।२।१।२।१।१ एकीकृताः १० प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।१०।४।३।२।६ गुणिताः २५६२० प्रत्ययविकल्पाः स्युः ॥१८५॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमेसे एक और योग एक; ये दशबन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८५॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + २ + २ + १ + २ + १ + १ = १० ।

इंदियमेओ काओ कोहाई दुणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१८६॥

१।१।२।१।२।२।१ एदे मिलिया १० ।

१।१।२।१।२।२।१ एकीकृताः प्रत्ययाः १० । एतेषां भगाः ६।५।४।३।२।६ । एते परस्परेण गुणिताः ६४८० ॥१८६॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विक और योग एक; ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८६॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१ + १ + २ + १ + २ + २ + १ = १० ।

एदेसिं च भगां— ६।१०।४।३।२।६ एए अण्णोण्णगुणिदा = १२६६०

६।१०।४।३।२।२।६ एए अण्णोण्णगुणिदा = २५६६०

६।५।४।३।२।६ एए अण्णोण्णगुणिदा = ६४८०

एए सन्वे वि मिलिया—

= ४५३६०

एते त्रयो राशयो मीलिताः ४५३६० मध्यमदशप्रत्ययानां भगाः भवन्ति ।

देशसंयतमे दश-बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—६।१०।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२६६० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—६।१०।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २५६२० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—६।१।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर ६४८० भङ्ग होते हैं ।

दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग— ४५३६० होते हैं ।

देशसंयतके ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको लानेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
४	८
३	१
२	२

इंदिय चउरो काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं जोगो एकारसं देसे ॥१८७॥

१।४।२।१।२।१ एदे मिलिया ११ ।

१।२।२।१।२।१ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।१।४।३।२।६ । एते अन्योन्यहता ६४८० ॥१८७॥

अथवा देशसंयतमें इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८७॥

इनकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है—१+४+२+१+२+१=११ ।

इंदिय तिणिण य काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१८८॥

१।३।२।१।२।१।१ एदे मिलिया ११ ।

१।३।२।१।२।१।१ एकीकृताः ११ प्रत्यया । एतेषां भगाः ६।१०।४।३।२।६ अन्योन्यगुणिताः २५६२० ॥१८८॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक भयद्विक्रमेसे एक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८८॥

इनकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है—१+३+२+१+२+१+१=११ ।

इंदिय दोणिण य काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१८९॥

१।२।२।१।२।२।१ एदे मिलिया ११ ।

१।२।२।१।२।२।१ एकीकृता ११ प्रत्यया । एतेषां भगाः ६।१०।४।३।२।६ । एते गुणिता १२६६० ॥१८९॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादियुगल एक, भयद्विक्र-और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८९॥

इनकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है—१+२+२+१+२+२+१=११ ।

एदेसिं च भंगा—	६।५।४।३।२।१	एए अण्णोण्णगुणिया =	६४८०
	६।१०।४।३।२।१	,,	,, = २५६२०
	६।१०।४।३।२।१	,,	,, = १२६६०
सन्वे मिलिया—			= ४५३६०

एकादशप्रत्ययानां विकल्पाः सर्वे एकत्रीकृताः ४५३६० भवन्ति ।

देशसंयतमे ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) ६।५।४।३।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर ६४८० भङ्ग होते हैं ।

(२) ६।१०।४।३।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर २५६२० भङ्ग होते हैं ।

(३) ६।१०।४।३।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर १२६६६ भङ्ग होते हैं ।

ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग— ४५३६० होते हैं ।

देशसंयतके बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको लानेके लिए	का० भ०
कूटरचना इस प्रकार है—	५ ०
	४ १
	३ २

इंदिय पंच वि काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं जोगो वारस हवंति ते हेऊ ॥१६०॥

१।५।२।१।२।१ एदे मिलिया १२ ।

१।५।२।१।२।१ एकीकृताः १२ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।१।४।३।२।१ एते अन्नोन्यगुणिताः १२६६ ॥१६०॥

अथवा देशसंयतमें इन्द्रिय एक, काय पाँच क्रोधादि कपाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६०॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + ५ + २ + १ + २ + १ = १२$ ।

इंदिय चउरो काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१६१॥

१।४।२।१।२।१।१ एदे मिलिया १२ ।

१।४।२।१।२।१।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भगाः ६।५।४।३।२।१ परस्परेण गुणिताः १२६६० ॥१६१॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कपाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमेसे एक और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६१॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + ४ + २ + १ + २ + १ + १ = १२$ ।

इंदिय तिणिण य काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१६२॥

१।३।२।१।२।२।१ एदे मिलिया १२ ।

१।३।२।१।२।२।१ एकीकृताः १२ प्रत्ययाः । एतेषां भगाः ६।१०।४।३।२।१ परस्परेण गुणिताः १२६६० ॥१६२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कपाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६२॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + ३ + २ + १ + २ + २ + १ = १२$ ।

एदेसि च भगा—	६।१।४।३।२।१६	एए अण्णोण्णगुणिए =	१२६६
„	६।५।४।३।२।१६	„ „	= १२६६०
„	६।१०।४।३।२।१६	„ „	= १२६६०
एए सव्वे वि मेलिए			= २७२१६

एते सर्वे त्रयो राशयो मीलिताः २७२१६ ।

देशसंयत गुणस्थानमे वारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) ६।१।४।३।२।१६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२६६ भङ्ग होते हैं ।

(२) ६।५।४।३।२।१६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२६६० „ होते हैं ।

(३) ६।१०।४।३।२।१६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२६६० „ होते हैं ।

इन सबके मिलाने पर सर्व भङ्ग २७२१६ „ होते हैं ।

देशसंयतके तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको लानेके लिए का० भ०

कूट-रचना इस प्रकार है—

५ १
४ २

इंदिय पंच वि काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्ताइदुयं एयं भयदुय एयं च तेरसं जोगो ॥१६३॥

१।५।२।१।२।१।१ एदे मिलिया १३ ।

१।५।२।१।२।१।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः । एतेषा भङ्गाः ६।१।४।३।२।१६ । एते अन्योन्यगुणिताः २५६२ ॥१६३॥

अथवा देशसंयतमें इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कपाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक्रमेसे एक और योग एक, ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६३॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + २ + १ + २ + १ + १ = १३ ।

इंदिय चउरो काया कोहाई दोणिण एयवेदो य ।

हस्ताइदुयं एयं भयजुयलं एगजोगो य ॥१९४॥

१।४।२।१।२।२।१ एदे मिलिया १३ ।

१।४।२।१।२।२।१ एकीकृताः १३ । एतेषा भङ्गाः ६।५।४।३।२।१६ । गुणिताः ६४८० ॥१९४॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कपाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१९४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + २ + १ + २ + २ + १ = १३ ।

एदेसि च भगा— ६।१।४।३।२।१६ एए अण्णोण्णगुणिए = २५६२

६।५।४।३।२।१६ „ „ = ६४८०

एए दो वि मेलिए संति— = ६०७२

एतौ द्वौ राशी मीलितौ ६०७२ ।

देशसंयतमें बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) ६।१।४।३।२।१६ इनका परस्पर गुणा करने पर २५६२ भङ्ग होते हैं ।

(२) ६।५।४।३।२।१६ इनका परस्पर गुणा करने पर ६४८० भङ्ग होते हैं ।

इन दोनोंके मिलानेपर सर्व भङ्ग ६०७२ होते हैं ।

देशसंयतके चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको लानेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

का० भ०
५ २

इंदिय पंच वि काया कोहार्ई दोणिण एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१६५॥

१।५।२।१।२।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१।५।२।१।२।२।१ एकीकृताः १४ । एतेषां भङ्गा ६।१।४।३।२।६ । एते परस्परं गुणिताः सयता-
सयतस्योत्कृष्टभङ्गाः १२६६ ॥१६५॥

अथवा देशसंयतगुणस्थानमे इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कपाय दो, वेद एक, हास्यादि
युगल एक, भय-युगल और योग एक, ये चौदह वन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६५॥

इनकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है—१ + ५ + २ + १ + २ + २ + १ = १४ ।

एदेसि च भंगा—६।१।४।३।२।६ एए दो वि अणोणगुणिथा उक्कस्सभगा हवत्ति संजयासजयस्स
१२६६ । सच्चे वि मिलिया १६०७०४ ।

देससजदस्स भंगा समत्ता ।

सर्वेऽपि जवन्यादयो मीलितः १६०७०४ ।

देशसंयतगुणस्थानस्य भङ्गविकल्पाः समाप्ताः ।

६।१४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर संयतासंयतके उत्कृष्ट चौदह वन्ध-प्रत्यय-
सम्बन्धी भङ्ग १२६६ होते हैं । तथा उपर्युक्त सर्व भङ्ग मिलकर १६०७०४ होते हैं । जिनका विव-
रण इस प्रकार है—

आठ वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग	६४८०
नौ " " "	२५६२०
दश " " "	४५३६०
ग्यारह " " "	४५३६०
बारह " " "	२७२१६
तेरह " " "	६०७२
चौदह " " "	१२६६

सर्व भङ्गोका जाइ—

१६०७०४

इस प्रकार देशसंयतके भङ्गोका विवरण समाप्त हुआ ।

अब प्रमत्तसंयतके सम्भव वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोका निरूपण करते हैं—

^१आहारजुयलजोगं पडुच्च पुरिसो हवेज्ज णो इयरा ।

अपसत्थवेदउदया जायइ णाहारलद्धि वयणाओ ॥१६६॥

अथ प्रमत्तस्थाने जवन्यपञ्चकाद्युत्कृष्टसप्तान्तप्रत्ययमेतान् गाथाचतुष्केणाऽऽह—[‘आहारजुयलजोग’
इत्यादि ।] पष्ठे प्रमत्ते आहारकाऽऽहारकमिश्रयोगयुगल प्रतीत्याऽऽश्रित्य पुवेदो भवेत् । प्रमत्तसंयतानां
पुवेदोदये सति आहारकद्वय भवति । इतरस्त्री-नपुंसकवेदोदयात् आहारकलब्धिर्न जायते इति वचनात् ॥१६६॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानमे आहारककाययोगद्विकर्की अपेक्षा केवल एक पुरुषवेद होता है,
इतर दोनों वेद नहीं होते हैं । क्योंकि, ‘अप्रशस्तवेदके उदयमे आहारककृद्धि नहीं उत्पन्न होती है’
ऐसा आगमका वचन है ॥१६६॥

प्रमत्तसंयतके सम्भव वन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोको लानेके लिए कूट-रचना
इस प्रकार है—

भ
०
१
२

संजलणं एयदरं एयदरं चैव तिणि वेदाणं ।

हस्साइदुयं एयं जोगो पंच हवन्ति ते हेऊ ॥१६७॥

१११२११ एदे मिलिया ५ ।

चतुर्णां कपायाणां मध्ये एकतर सज्वलनकपायप्रत्ययः १ । त्रयाणां वेदानां मध्ये एकतरवेदोदयः १ । हास्य-रतियुग्माऽतिशोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्मोदयः २ । सत्यमनोयोगाद्यौदारिकयोगानां नवानां मध्ये एकतरयोगोदयः । १११२११ । एते एकीकृताः ५ । एतेषां ५ प्रत्ययानां भङ्गाः ४३।२।६ । आहारक-द्वयापेक्षया भङ्गाः ४ । पुवेदः १।२ आहारकद्वयं परस्परद्वयभङ्गराशिं गुणयित्वा २१६।१६ ॥१६७॥

प्रमत्तसंयतमे कोई एक सज्वलन कपाय, तीन वेदोंमें से कोई एक वेद, हास्यादि एक युगल और कोई एक योग, इस प्रकार पाँच बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६७॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + १ + २ + १ = ५$ ।

एदेसिं च भगा—४३।२।६ एए अणोणगुणिए = २१६

४११२।२ „ „ = १६

एए दोणि वि मिलिए = २३२

राशिद्वयं पिण्डोक्त २३२ ।

प्रमत्तसंयतके पाँच बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंग इस प्रकार है—

(१) ४३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २१६ भंग होते हैं ।

(२) ४११२।२ इनका परस्पर गुणा करने पर १६ भंग होते हैं ।

उक्त दोनों भंग मिला देने पर प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें २३२ भंग पाँच बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी होते हैं ।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें छह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंग कहते हैं—

संजलणं य एयदरं एयदरं चैव तिणि वेदाणं ।

हस्साइदुयं एयं भयदुयं एयं च छच्च जोगो य ॥१६८॥

१११२१११ एदे मिलिया ६ ।

१११२१११ एकीकृताः ६ । एतेषां भङ्गाः ४३।२।२।६ । आहारकद्वयापेक्षया ४११२।२।२ अन्योन्यगुणिताः ४३२।३२ ॥१६८॥

कोई एक सज्वलनकपाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्यादि एक युगल, भयद्विकमेंसे कोई एक और एक योग; ये छह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६८॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है— $१ + १ + २ + १ + १ = ६$ ।

एदेसिं च भगा—४३।२।२।६ एए अणोणगुणिए = ४३२

४११२।२।२ „ „ = ३२

एए दो वि मेलिए मज्झिमभगा भवति = ४६४

एतौ द्वौ राशी मिलिते मध्यमप्रत्ययभङ्गविकल्पाः ४६४ भवन्ति ।

इनके भंग इस प्रकार हैं—

(१) ४३।२।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर ४३२ भंग होते हैं ।

(२) ४११२।२।२ इनका परस्पर गुणा करने पर ३२ भंग होते हैं ।

ये दोनों ही मिलकर मध्यम भंग ४६४ होते हैं ।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सात बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंग कहते हैं—

संजलण य एयदरं एयदरं चैव तिणि वेदाणं ।

हस्साइदुयं एयं भयजुयलं सत्त जोगो त्ति ॥१६६॥

१।१।२।२।१ । एदे मिलिया ७ ।

१।१।२।२।१ एकीकृताः ७ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ४।३।२।६ । आहारकद्वयापेक्षया ४।१।२।२ परस्पर गुणिताः २१६।१६ ॥१६६॥

कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्यादि एक युगल, भययुगल और एक योग, इस प्रकार सात बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६६॥

इनकी अकसंष्टि इस प्रकार है— $१ + १ + २ + २ + १ = ७$

एदेसि च भगा—४।३।२।६ एए अणोणगुणिए=२१६

४।१।२।२ ,, ,, = १६

दो वि मेलिए उक्कस्सभंगा भवति पमत्तस्स = २३२

सब्बे भगा (२३२ + ४६४ + २३२ =) ९२८

पमत्तसजदस्स भगा समत्ता ।

राशिद्वयमीलितं प्रमत्तसंयतस्योत्कृष्टभङ्गविकल्पाः २३२ भवन्ति ।

पञ्चकादयः सर्वे एकीकृताः ९२८ प्रमत्तस्य भङ्गाः स्युः ।

इति प्रमत्तगुणस्थानभङ्गाः समाप्ताः ।

इनके भंग इस प्रकार हैं—

(१) ४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २१६ भंग होते हैं ।

(२) ४।१।२।२ इनका परस्पर गुणा करने पर १६ भंग होते हैं ।

उक्त दोनों भंगोंके मिलाने पर प्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट भंग २३२ होते हैं ।

इस प्रकार सर्व भंग ९२८ होते हैं । जिनका विवरण इस प्रकार है—

पाँच बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भंग— २३२

छह ” ” ” ४६४

सात ” ” ” २३२

सर्व भङ्गोका जोड़— ९२८

इस प्रकार प्रमत्तसंयतगुणस्थानके भङ्गोका विवरण समाप्त हुआ ।

अब अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण करते हैं—

^१जे पच्चया वियप्पा भणिया णियमा पमत्तविरदम्मि ।

ते अप्पमत्तऽपुब्बे आहारदुगूणया णेया ॥२००॥

अथाप्रमत्ताऽपूर्वकरणयोः प्रत्ययभेदान् प्राऽऽह—[‘जे पच्चया वियप्पा’ इत्यादि ।] प्रमत्तविरते ये प्रत्ययविकल्पाः पञ्चादिसप्तान्तोक्ताः प्रत्ययभङ्गाः भणितास्त एव प्रत्ययाः भङ्गाः अप्रमत्ताऽपूर्वकरणगुणस्थान-योराहारकद्वयोना ज्ञेया नियमात् ॥२००॥

प्रमत्तविरतगुणस्थानमें जो बन्ध-प्रत्यय और उनके भंग कहे हैं, नियमसे वे ही अप्रमत्त-विरत और अपूर्वकरणमें आहारकद्विकके बिना जानना चाहिए ॥२००॥

४।३।२।६ एए अणोणगुणि ए भगा २१६
 ४।३।२।२।६ ,, ,, मज्झिम ,, ४३२
 ४।३।२।६ ,, ,, उक्कस्स ,, २१६ भवति ।
 सन्वे भगा (२१६ + ४३२ + २१६) = ८६४
 अप्पमत्तापुव्वसज्जाण भगा समत्ता ।

सञ्ज्वलनैकतरः १ वेदैकतरः १ हास्यादियुग्मैकतर २ नवयोगाना मध्ये एकतमयोगः १।१।२।१
 एकीकृताः ५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ४।३।२।६ । एते परस्पर गुणिताः २१६ जघन्यप्रत्ययभङ्गाः स्युः ।
 १।१।२।१।१ एकीकृताः ६ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ४।३।२।२।६ । एते अन्योन्यगुणिता मध्यमप्रत्ययभङ्गाः
 ४३२ भवन्ति । १।१।२।२।१ एकीकृताः ७ । एतेषां भङ्गाः ४।३।२।६ । एते अन्योन्यगुणिताः उत्कृष्टभङ्गाः
 २१६ भवन्ति । सर्वे जघन्याद्येकीकृताः ८६४ स्युः । अप्रमत्तस्य प्रत्ययभङ्गाः ८६४ । अपूर्वकरणस्य
 प्रत्ययभङ्गाः ८६४ ।

इत्यप्रमत्ताऽपूर्वकरणयोः प्रत्ययभङ्गाः समाप्ताः ।

उक्त दोनों गुणस्थानोके भंग इस प्रकार हैं—

- (१) जघन्य भंग—४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २१६ भंग होते हैं ।
 - (२) मध्यम भंग—४।३।२।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर ४३२ भंग होते हैं ।
 - (३) उत्कृष्ट भंग—४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २१६ भंग होते हैं ।
- इस प्रकार उक्त सर्व भङ्गोका जोड़ ८६४ होता है ।

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानके भङ्गोका विवरण समाप्त हुआ ।

अब नव अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण करते हैं—

^१संजलण-तिवेदाणं णवजोगाणं च होइ एयदरं ।

संदूणदुवेदाणं एयदरं पुरिसवेदो य ॥२०१॥

१।१।१ एए मिलिया ३ ।

अनिवृत्तिकरणे प्रत्ययभेदान् गाथाद्वयेनाऽऽह—[‘संजलणतिवेदाणं’ इत्यादि ।] अनिवृत्तिकरणस्य
 सवेदस्य प्रथमे भागे चतुर्णां सञ्जलनकपायाणा मध्ये एकतरकपायोदयः प्रत्ययः १ । त्रयाणा वेदाना मध्ये
 एकतरवेदोदयः १ । नवाना योगाना मध्ये एकतरयोगोदयः १।१।१।१ । एकीकृताः प्रत्ययाः ३ ॥२०१॥

नव गुणस्थानके सवेद भागमें चारो संज्वलन, तीनो वेद और नव योग, इनमेसे कोई
 एक-एक, इस प्रकार तीन बन्ध-प्रत्यय होते हैं । अथवा नपुंसक वेदको छोड़कर शेष दो वेदोमेसे
 कोई एक वेद, अथवा केवल पुरुषवेद होता है ॥२०१॥

इनकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है—१ + १ + १ = ३

एदेसिं च भगा—४।३।६ एए उक्कस्सभगा भवति १०८ ।

४।२।६ ,, ,, ,, ७२ ।

४।१।६ ,, ,, ,, ३६ ।

एतेषां भङ्गाः ४।३।६ । परस्पर गुणिताः १०८ । एते उत्कृष्टप्रत्ययभङ्गाः प्रथमे भागे भवन्ति ।
 तद्द्वितीयभागे षण्णवेदोनयोः स्त्री-पुवेदयोर्मध्ये एकतरोदयः १ । १।१।१ एकीकृताः ३ । एतेषां भङ्गाः ४।२।६
 अन्योन्यगुणिताः ७२ । एते उत्कृष्टभङ्गाः अनिवृत्तिकरणस्य द्वितीयभागे स्युः । तत्तृतीयभागे पुवेदोदय एक
 एव । १।१।१ एकीकृता ३ । एतेषां भङ्गाः ४।१।६ परस्परगुणिता ३६ उत्कृष्टभङ्गाः स्युः ।

अनिवृत्तिकरण-सवेदभागके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

- (१) ४।३।६ इनका परस्पर गुणा करने पर उत्कृष्ट भङ्ग १८८ होते हैं ।
 (२) ४।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर उत्कृष्ट भङ्ग ७२ होते हैं ।
 (३) ४।१।६ इनका परस्पर गुणा करने पर उत्कृष्ट भङ्ग ३६ होते हैं ।
 उक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— २१६ होता है ।

^१चदुसंजलणवण्हं जोगाणं होइ एयदर दो ते ।

कोहूणमाणवज्जं मायारहियाण एगदरगं वा ॥२०२॥

१।१ एए मिलिया जहणपच्चया दोणिण हवति २ ।

अनिवृत्तिकरणस्य अवेदस्य चतुर्थे भागे चतुर्णां संज्वलनकषायाणां मध्ये एकतरकषायोदयः १ ।
 नवानां योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १ । इति द्वौ २ जघन्यौ प्रत्ययौ । १।१ एतौ ॥२०२॥

नवे गुणस्थानके अवेद भागमे चारो संज्वलनोमेसे कोई एक कषाय, तथा नव योगोमेसे कोई एक योग; ये दो बन्ध-प्रत्यय होते हैं । अथवा क्रोधको छोड़कर शेष तीनमेसे, मानको छोड़कर शेष दोमेसे एक और मायाको छोड़कर केवल लोभ-संज्वलन इस प्रकार एक कषाय होती है ॥२०२॥

एदेति च भगा—४।६ एए अण्णोणगुणिए = ३६ ।

३।६ „ „ = २७ ।

२।६ „ „ = १८ ।

१।६ „ „ = ६ ।

एवमणियट्टिस्स भंगा ३०६ ।

अणियट्टिस्सजदस्स भंगा समत्ता ।

तयोभंगौ ४।६ परस्परेण गुणितौ ३६ । क्रोधोने संज्वलनक्रोध-रहिते तत्पञ्चमे भागे ३।६ । गुणितौ २७ । संज्वलनमानवर्जिते तत्पष्ठे भागे २।६ । अन्योन्यगुणितौ १८ । वा अथवा माया-रहितलोभोदयः एकतरः, तदा १।६ । अन्योन्यगुणितौ ६ । एते सर्वे मीलित्वा ३०६ उत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पाः अनिवृत्तिकरणे भवन्ति ।

इत्येवमनिवृत्तिकरणस्य भंगा समाप्ताः ।

इस प्रकार एक संज्वलन कषाय और एक योग, ये दो जघन्य बन्ध-प्रत्यय होते हैं ।

इनके भंग इस प्रकार हैं—

४।६ इनका परस्पर गुणा करने पर ३६ भंग होते हैं ।

३।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २७ भंग होते हैं ।

२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १८ भंग होते हैं ।

१।६ इनका परस्पर गुणा करने पर ६ भंग होते हैं ।

इस प्रकार दो बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्गोंका जोड़ ६० होता है ।

तीन प्रत्यय-सम्बन्धी २१६ और दो प्रत्यय-सम्बन्धी ६० इनके मिलाने पर नवे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे सर्व भङ्ग ३०६ होते हैं ।

अब सूक्ष्मसाम्परायादि शेष गुणस्थानोंके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण करते हैं—

^१सुहुमस्मि सुहुमलोहं णवण्ह जोयाण तिसु एयदरं ।

जोगस्मि य सत्तण्हं भणिया तिविहा वि पच्चय-वियप्पा ॥२०३॥

सू १११ एए २।१।६ उप० १।१ क्षीण० १।६ सयो० १।७ एए सच्चे मेलिया ३४ ।

सुहुमसपरायसजदस्स सेसाणं च भगा समत्ता ।

सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभोदय एक एव १ । त्रिषु गुणस्थानेषु सूक्ष्मसाम्परायोपशान्तकपाय-क्षीण-कपायेषु नवाना योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १ । योगः १ । एकीकृतौ २ । तयोर्भङ्गौ १।६ अन्योन्य-गुणितो तावेव ६ । उपशान्तकपाये नवानां योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १ । तद्भङ्गाः ६ । गुणिता नवैव ६ । क्षीणकपाये नवानां योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १ । तद्भङ्गाः ६ । गुणिता नवैव ६ । सयोगिकेवलिगुणस्थाने सप्तानां योगानां मध्ये एकतर योगोदयः १ । तद्भङ्गाः ७ । गुणिताः सप्तैव ७ । इत्येवं [त्रिषु] गुणस्थानेषु त्रिविधाः प्रत्ययविकल्पाः भणिता जघन्यसध्यमोत्कृष्टा आस्रवभङ्ग-भेदाः कथिता ॥२०३॥

इति त्रयोदशगुणस्थानेषु प्रत्ययविकल्पाः समाप्ताः ।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे एक सूक्ष्म लोभकपाय और नव योगोंमेंसे कोई एक योग ये दो बन्ध-प्रत्यय होते हैं । उपशान्तकपाय और क्षीणकपाय गुणस्थानमे नौ योगोंमेंसे कोई एक योगरूप एक ही बन्ध-प्रत्यय होता है । सयोगिकेवली गुणस्थानमे सात योगोंमेंसे कोई एक योगरूप एक ही बन्ध-प्रत्यय होता है । इस प्रकार इन गुणस्थानोंमे तीन प्रकारके प्रत्यय-विकल्प कहे गये हैं ॥२०३॥

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमे $२ \times १ \times ६ = १८$ भंग होते हैं ।

क्षीणकपाय गुणस्थानमे $१ \times ६ = ६$ भंग होते हैं ।

सयोगिकेवली गुणस्थानमे $१ \times ७ = ७$ भंग होते हैं ।

उक्त गुणस्थानोंके सर्व भंग मिलकर ३४ होते हैं ।

अब आठों कर्मोंके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हुए सबसे पहले ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्यय बतलाते हैं—

[मूलगा० १५]^२पडिणीयमंतराए उपघाए तप्पदोस णिण्हवणे ।

आवरणदुअं भूओ वंधइ अच्चासणाए य^१ ॥२०४॥

अथ प्रत्ययोदयकार्यजीवपरिणामानां ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मबन्धकारणत्वप्रतिपत्तिं गाथात्रयोदश-वेनाऽऽह—[‘पडिणीयमंतराए’ इत्यादि ।] श्रुतधरादिषु भविनयवृत्तिः प्रत्यनीकं प्रतिकूलनेत्यर्थः १ । ज्ञानविच्छेदकरणमन्तरायः २ । मनसा वचनेन वा प्रशस्तज्ञानदूषणमुपघातः ३ । तत्त्वज्ञाने हर्षाभावः, तस्य मोक्षसाधनस्य कीर्तने कृते सति कस्यचिदनभिव्याहारतोऽन्तः पशुन्य वा प्रद्वेषः ४ । कुतश्चित्कारणाज्ञानज्ञपि एतत्पुस्तकमस्मत्पाश्वं नास्ति, एतच्छ्रुतमहं न वेद्मीति व्यपलपन अप्रसिद्धगुरुन् अपलप्य प्रसिद्धगुरुकथन वा निह्वः ५ । कायवचनाभ्यामननुमनन कायेन वाचा वा परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनं वा इत्याऽऽसादनम् ६ । एतेषु पट्सु सत्सु जीवो ज्ञानावरणदर्शनावरणद्वयं भूयो बध्नाति प्रचुरवृत्त्या स्थित्यनुभागी बध्नातीत्यर्थः । ते पडपि तद्-द्वयस्य युगपद् बन्धकारणानि ॥२०४॥

१. सं० पञ्चस० ४, ६८-६९ । २. ४, ७० ।

१ शतक० १६ ।

ज्ञान-दर्शन और उनके साधनोंमें प्रतिकूल आचरण, अन्तर्गाय, उपघात, प्रदोष और निहव करनेसे, तथा असातना करनेसे यह जीव आवरणद्विक अर्थात् ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मका प्रचुरतासे बन्ध करता है ॥२०४॥

विशेषार्थ—ज्ञानके, ज्ञानियोंके और ज्ञानके साधनोंके प्रतिकूल आचरण करनेसे, उनमें विघ्न करनेसे, उनका मूलसे घात करनेसे, उनमें दोष लगाने और ईर्ष्या करनेसे, उनका निहव (निपेध) और असातना (विराधना) करनेसे, अकालमें स्वाध्याय करनेसे, कालमें स्वाध्याय नहीं करनेसे, स्वयं संक्लेश करनेसे, दूसरेको संक्लेश उत्पन्न करनेसे, तथा दूसरे प्राणियोंको पीड़ा पहुँचानेसे ज्ञानावरण कर्मका भारी आस्रव होता है अर्थात् उनका स्थितिवन्ध और अनुभागबन्ध भारी परिमाणमें होता है। इसी प्रकार दर्शनगुण, उसके धारक और साधनोंके विषयमें प्रतिकूल आचरण करनेसे, विघ्न करनेसे उपघात, प्रदोष, निहव और असातना करनेसे, तथा आलसी जीवन बितानेसे, विषयोमें मग्न रहनेसे, अधिक निद्रा लेनेसे, दूसरेकी दृष्टिमें दोष लगानेसे, दृष्टिके साधन उपनेत्र (चश्मा) आदिके चुरा लेने या फोड़ देनेसे और प्राणिवधादि करनेसे दर्शनावरणकर्मका तीव्र स्थितिवन्ध और अनुभागबन्ध होता है।

अब वेदनीयकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १६]^१ भूयाणुकंप-वय-जोग उज्जओ॥ खंति ण-गुरुभत्तो ।

बंधइ सायं भूओ विवरीओ बंधए इयरं ॥२०५॥

गतौ कर्मोदयाद् भवन्तीति भूताः प्राणिनः, तेषु प्राणिषु अनुकम्पा दत्ता १ । व्रतानि हिंसाऽनृतस्तेया-ब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिः २ । योगः समाधिः, धर्मध्यान-शुद्धध्यानम् ३ तैर्युक्तः, क्रोधादिनिवृत्तिलक्षणया चान्त्या क्षमया, चतुर्विधदानेन, पञ्चगुरुभक्त्या च सम्पन्नः । स जीवः सात सातावेदनीयं सुखरूपकर्म-तीव्रानुभाग भूयो बध्नाति । तद्विपरीतस्तादृगसात असातावेदनीयं कर्म बध्नाति ॥२०५॥

प्राणियों पर अनुकम्पा करनेसे, व्रत-धारण करनेमें उद्यमी रहनेसे तथा उनके धारण करनेसे, क्षमा धारण करनेसे, दान देनेसे, तथा गुरुजनोंकी भक्ति करनेसे सातावेदनीय कर्मका तीव्र बन्ध होता है। और इनसे विपरीत आचरण करनेसे असातावेदनीय कर्मका तीव्र बन्ध होता है ॥२०५॥

विशेषार्थ—सर्व जीवों पर दया करनेसे, धर्ममें अनुराग रखनेसे, धर्मके आचरण करनेसे, व्रत, शील और उपवासके सेवनसे, क्रोध नहीं करनेसे, शील, तप और संयममें निरत व्रती जनोंको प्रासुक वस्तुओंके दान देनेसे, बाल, वृद्ध, तपस्वी और रोगी जनोंकी वैयावृत्त्य करनेसे, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा माता, पिता और गुरुजनोंकी भक्ति करनेसे, सिद्धायतन और चैत्य-चैत्यालयोंकी पूजा करनेसे, मन, वचन और कायको सरल एवं शान्त रखनेसे सातावेदनीय कर्मका तीव्र बन्ध होता है। प्राणियोंपर क्रूरतापूर्वक हिंसक भाव रखने और तथैव आचरण करनेसे, पशु-पक्षियोंका बध-बन्धन, छेदन-भेदन और अंग-उपांगादिके काटनेसे, उन्हें बधिया (नपुंसक) करनेसे, शारीरिक और मानसिक दुःखोंके उत्पादनसे, तीव्र अशुभ परिणाम रखनेसे, विषय-कपाय-बहुल प्रवृत्ति करनेसे, अधिक निद्रा लेनेसे, तथा पंच पापरूप आचरण करनेसे तीव्र असातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है।

१. सं० पञ्चस० ४, ७१-७३ ।

१. शतक० १७ ।

॥२०५॥

अब मोहनीय कर्मके भेदोंमेंसे पहले दर्शनमोहके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १७]^१अरहंत-सिद्ध-चैत्य-तप-गुरु-धर्म-संघपडिणीओ ।

बंधइ दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण^१ ॥२०६॥

यो जीवोऽहंस्तिद्ध-चैत्य-तपो-गुरु श्रुत-धर्म-संघप्रतिकूलः स तद्दर्शनमोहनीयं बध्नाति येनोदयागतेन जीवोऽनन्तससारी स्यात् ॥२०६॥

अरहंत, सिद्ध, चैत्य, तप, श्रुत, गुरु, धर्म और संघके अवर्णवाद करनेसे, जीव दर्शनमोह कर्मका बन्ध करता है, जिससे कि वह अनन्तसंसारी बनता है ॥२०६॥

विशेषार्थ—जिसमें जो अवगुण नहीं है, उसमें उसके निरूपण करनेको अवर्णवाद कहते हैं। वीतरागी अरहंतोंके भूख, प्यासकी बाधा बताना, रोगादिकी उत्पत्ति कहना, सिद्धोंका पुनरागमन कहना, तपस्वियोंमें दूषण लगाना, हिंसामें धर्म बतलाना, मद्य मांस, मधुके सेवनको निर्दोष कहना, निर्ग्रन्थ साधुको निर्लज्ज और गन्दा कहना, उन्मार्गका उपदेश देना, सन्मार्गके प्रतिकूल प्रवृत्ति करना, धर्मात्मा जनोंमें दोष लगाना, कर्म-मलीमस असिद्धजनोंको सिद्ध कहना, सिद्धोंमें असिद्धत्वकी भावना करना, अदेव या कुदेवोंको देव बतलाना, देवोंमें अदेवत्व प्रकट करना, असर्वज्ञको सर्वज्ञ और सर्वज्ञको असर्वज्ञ कहना, इत्यादि कारणोंसे संसारके बढ़ानेवाले और सम्यक्त्वका घात करनेवाले दर्शनमोहनीयकर्मका तीव्र बन्ध होता है यह कर्म सर्व कर्मोंमें प्रधान है। इसे ही कर्म-सन्नाट या मोहराज कहते हैं और उसके तीव्रबन्धसे जीवको संसारमें अनन्तकाल तक परिभ्रमण करना पड़ता है।

अब मोहनीयकर्मके दूसरे भेद चारित्रमोहके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १८]^२तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणओ रायदोससंसत्तो ।

बंधइ चरित्तमोहं दुविहं पि चरित्तगुणघादी^३ ॥२०७॥

यस्तोत्रकपायनोकपायोदययुतः बहुमोहपरिणतः रागद्वेषसंसक्तः चारित्रगुणविनाशनशीलः, स जीवः कपाय-नोकपायभेद द्विविधमपि चारित्रमोहनीयं बध्नाति ॥२०७॥

तीव्रकषायी, बहुमोहसे परिणत और राग-द्वेषसे संयुक्त जीव चारित्रगुणके घात करनेवाले दोनों ही प्रकारके चारित्रमोहनीयकर्मका बन्ध करता है ॥२०७॥

विशेषार्थ—चारित्रमोहनीय कर्मके दो भेद हैं—कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय। राग-द्वेषसे संयुक्त तीव्र कषायी जीव कषायवेदनीयकर्मका और बहुमोहसे परिणत जीव नोकषाय-वेदनीयकर्मका बन्ध करता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तीव्र क्रोधसे परिणत जीव क्रोधवेदनीयकर्मका बन्ध करता है। इसी प्रकार तीव्र मान, माया और लोभसे परिणत जीव मान, माया और लोभवेदनीयकर्मका बन्ध करता है। तीव्र रागी, अतिमानी, ईर्ष्यालु, अलोक-भाषी, कुटिलाचरणी और पर-स्त्री-रत जीव स्त्रीवेदका बन्ध करता है। सरल व्यवहार करनेवाला मन्दकपायी, मृदुस्वभावी, ईर्ष्या-रहित और स्वदार-सन्तोषी जीव पुरुषवेदका बन्ध करता है। तीव्रक्रोधी, पिशुन, पशुओंका बध-वन्धन और छेदन-भेदन करनेवाला, स्त्री और पुरुष दोनोंके साथ अनगक्रीडा करनेवाला, व्रत, शील और संयम-धारियोंके साथ व्यभिचार करनेवाला, पंचेन्द्रियोंके विषयोंका तीव्र अभिलाषी, लोलुप जीव नपुंसकवेदका बन्ध करता है। स्वयं हंसने

१. स० पञ्चसं० ४, ७४ । २. ४, ७५ ।

१. शतक० १८ । २. शतक० १६ ।

वाला, दूसरोको हँसानेवाला, मनोरंजनके लिए दूसरोकी हँसी उड़ानेवाला विनोदी स्वभावका जीव हान्यकर्मका बन्ध करता है। स्वयं शोक करनेवाला, दूसरोको शोक उत्पन्न करनेवाला, दूसरोको दुखी देखकर हर्षित होनेवाला जीव शोककर्मका बन्ध करता है। नाना प्रकारके क्रीड़ा-कुतूहलके द्वारा स्वयं रमनेवाला और दूसरोको रमानेवाला, दूसरोको दुखसे छुड़ानेवाला और सुख पहुँचानेवाला जीव रतिकर्मका बन्ध करता है। दूसरोके आनन्दमें अन्तराय करनेवाला, अरति उत्पन्न करनेवाला और पापी जनोका संसर्ग रखनेवाला जीव अरतिकर्मका बन्ध करता है। स्वयं भयसे व्याकुल रहनेवाला और दूसरोको भय उपजानेवाला जीव भय कर्मका बन्ध करता है। साधु-जनोको देखकर ग्लानि करनेवाला, दूसरोको ग्लानि उपजानेवाला और दूसरेकी निन्दा करनेवाला जीव जुगुप्सा कर्मका बन्ध करता है। इस प्रकार चारित्र मोहकर्मकी पृथक्-पृथक् प्रकृतियोंका आस्रव करके बन्धप्रत्ययोका निरूपण किया। अब सामान्यसे चारित्रमोहके बन्धप्रत्ययोका निरूपण करते हैं—जो व्रत-शील-सम्पन्न, धर्मगुणानुगायी, सर्वजगद्वत्सल साधुजनोंकी निन्दा-गर्हा करता है, धर्मात्माजनोंके धर्म-सेवनमें बिघ्न करता है, उनमें दोष लगाता है, मद्य, मांस मधुके सेवनका प्रचार करता है, दूसरोको कपाय और नोकपाय उत्पन्न करता है, ऐसा जीव चारित्रमोहकर्मका तीव्र बन्ध करता है। इस प्रकार चारित्रमोहके बन्धप्रत्ययोका निरूपण किया।

अब आयुर्कर्मके चार भेदोंमेंसे पहले नरकायुर्कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १६]^१मिच्छादिद्वी महारंभ-परिग्रहो तिव्वलोह णिस्सीलो ।

णिरयाउयं णिवंधइ पावमई रुदपरिणामो ॥२०८॥

यो मिथ्यादृष्टिर्जीवो बह्वाऽऽरम्भ-बहुपरिग्रहः, तीव्राऽनन्तानुबन्धिलोभः, निःशीलः शील-रहितो लम्पटः, पापकारणबुद्धिः, रौद्रपरिणामः स जीवो नरकायुर्वन्नाति ॥२०८॥

मिथ्यादृष्टि, महारम्भी, महापरिग्रही, तीव्रलोभी, निःशीली, रौद्रपरिणामी और पापबुद्धि जीव नरकायुका बन्ध करता है ॥२०८॥

विशेषार्थ—जो जीव धर्मसे पराङ्मुख है, पापोंका आचरण करनेवाला है, जिस आरम्भ और परिग्रहमें महा हिसा हो, उसका करनेवाला है, जिसके व्रत-शीलादिका लेश भी न हो, भक्ष्य-अभक्ष्यका कुछ भी विचार न हो अर्थात् मद्य-मांसका सेवी और सर्व-भक्षी हो, जिसके परिणाम सदा रौद्रध्यानमय रहते हों और जिसका चित्त पत्थरकी रेखाके समान कठोर हो, ऐसा जीव नरकायुर्कर्मका बन्ध करता है।

अब तिर्यगायुर्कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २०]^२उम्मग्गदेसओ सम्मग्गणासओ गूढहिययमाइल्लो ।

सढसीलो य ससल्लो तिरियाउ णिवंधए जीवो ॥२०९॥

य उन्मार्गोपदेशकः सन्मार्गविनाशकः, गूढहृदयो मायावी शठशीलः, सशल्यः माया-मिथ्या-निदान-शल्यत्रयो जीवः स तिर्यगायुर्वन्धनानि ॥२०९॥

उन्मार्गका उपदेशक, सन्मार्गका नाशक, गूढहृदयी, महामायावी, परन्तु मुखसे मीठे वचन बोलनेवाला, शठशील और शल्ययुक्त जीव तिर्यगायुका बन्ध करता है ॥२०९॥

१. सं० पञ्चसं० ४, ७६ । २. ४, ७७ ।

१. शतक० २० । २. शतक० २१ ।

विशेषार्थ—जो जीव केवल कुमार्गका उपदेश ही न देता हो, अपितु सन्मार्गके विरुद्ध प्रचार भी करता हो, सन्मार्ग पर चलनेवालोंके छिद्रान्वेषण और असत्य दोषारोपण करनेवाला हो, माया, मिथ्यात्व और निदान इन तीन शक्तियोंसे युक्त हो, जिसके व्रत और शीलमें अतिचार लगते रहते हों, पृथिवी-रेखाके सदृश रोपका धारक हो, गूढ़-हृदय मायावी और शठशील हो, ऐसा जीव तिर्यगायुका बन्ध करता है। यहाँ पर अन्तिम तीनों विशेषण विशेषरूपसे विचारणीय है। जिसके हृदयकी बातका पता कोई न चला सके, उसे गूढ़हृदय कहते हैं। जो सोचे कुछ और, तथा करे कुछ और उसे मायावी कहते हैं। जो मनमें कुटिलता रख करके भी वचनोसे मधुरभाषी हो, उसे शठशील कहते हैं। ऐसा जीव तिर्यगायुका बन्ध करता है।

अब मनुष्यायुके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २१]^१पयडीए^१ तणुकसाओ दाणरओ सील-संजमविहूणो ।

मज्झिमगुणोहि जुत्तो मणुयाउ णिवंधए जीवो ॥२१०॥

य प्रकृत्या स्वभावेन मन्दकपायोदयः, चतुर्विधदानप्रीतिः, शीलैः सयमेन च विहीन, मध्यम-गुणयुक्तः, स जीवो मानुष्यायुर्वध्नाति ॥२१०॥

जो प्रकृतिसे ही मन्दकपायी है, दान देनेमें निरत है, शील-संयमसे रहित होकरके भी मनुष्योचित मध्यम गुणोंसे युक्त है, ऐसा जीव मनुष्यायुका बन्ध करता है ॥२१०॥

जो स्वभावसे ही शान्त एवं अल्प कषायवाला हो, प्रकृतिसे ही भद्र और विनोत हो, समय-समय पर लोकोपकारक कार्योंके लिए दान देता रहता हो, अप्रत्याख्यानावरण कषायके तीव्र उदय होनेसे व्रत-शीलादिके नहीं पालन कर सकने पर भी मानवोचित दया, क्षमा, आदि गुणोंसे युक्त हो, वालुकाराजिके सदृश रोपका धारक हो, न अति संक्लेश परिणामोका धारक हो और न अति विशुद्ध भावोका ही धारक हो, किन्तु सरल हो और सरल कार्य करनेवाला हो, ऐसा जीव मनुष्यायुकर्मका बन्ध करता है।

अब देवायुके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २२]^२अणुवय-महव्वएहि य वालतवाकामणिज्जराए य ।

देवाउयं णिवंधइ सम्माइद्धी य जो जीवो ॥२११॥

य सम्यग्दृष्टिर्ज्ञात्र म केवलसम्यक्त्वेन साक्षादणुव्रतैर्महाव्रतैर्वा देवायुर्वध्नाति । यो मिथ्यादृष्टिर्जीवः स उपचाराणुव्रत-महाव्रतैर्वा लतपसा अकामनिर्जरया वा देवायुर्वध्नाति ॥२११॥

अणुव्रतो, शीलव्रतो और महाव्रतोके धारण करनेसे, वालतप और अकामनिर्जराके करनेसे जीव देवायुका बन्ध करता है। तथा जो जीव सम्यग्दृष्टि है, वह भी देवायुका बन्ध करता है ॥२११॥

विशेषार्थ—जो पौंचो अणुव्रतो और सप्त शीलोंका धारक है, महाव्रतोको धारण कर पड़जीव-निकायकी रक्षामें निरत है, तप और नियमका पालक है, ब्रह्मचारी है, सरागसंयमी है, अथवा वालतप और अकाम निर्जरा करनेवाला है, ऐसा जीव देवायुका बन्ध करता है। यहाँ वालतपसे अभिप्राय उन मिथ्यादृष्टि जीवोंके तपसे है जिन्होंने कि जीव-अजीवके स्वरूपको ही नहीं समझा है, आपा-परके विवेकसे रहित हैं और अज्ञानपूर्वक नाना प्रकारसे कायक्लेशको

१. स० पञ्चस० ४, ७८ । २ ४, ७६ ।

१. शतक० २२ । २. शतक० २३ ।

^१व पयडीय ।

सहन करते हैं। विना इच्छाके पराधीन होकर जो भूख-प्यासकी और शीत-उष्णादिकी बाधा सहन की जाती है, उसे अकाम निर्जरा कहते हैं। कारागारमे परवश होकर पृथिवी पर सोनेसे, रुखे-सूखे भोजन करनेसे, स्त्रीके अभावमे विवश होकर ब्रह्मचर्य पालनेसे, सदा रोगी रहनेके कारण परवश होकर पथ्य-सेवन करने और अपथ्य-सेवन न करनेसे जो कर्मोंकी निर्जरा होती है, उसे अकामनिर्जरा कहते हैं। इस अकामनिर्जरा और बालतपके द्वारा भी जीव देवायुका बन्ध करता है। जो सम्यग्दृष्टि जीव चारित्र्यमोहकर्मके तीव्र उदयसे लेशमात्र भी संयमको नहीं धारण कर पाते हैं, फिर भी वे सम्यक्त्वके प्रभावसे देवायुका बन्ध करते हैं। तथा जो जीव संक्लेश-रहित हैं, जलराजिके सदृश रोषके धारक हैं, और उपवासादि करने वाले हैं, वे भी देवायुका बन्ध करते हैं। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सम्यक्त्वी और अणुव्रत-महाव्रतोंका धारक जीव कल्पवासी देवोंकी ही आयुका बन्ध करते हैं, जब कि अकामनिर्जरा करनेवाले प्रायः भवनत्रिक देवोंकी ही आयुका बन्ध करते हैं और बालतप करनेवाले यथासंभव सभी प्रकारके देवोंकी आयुका बन्ध करते हैं।

अब नामकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २३]^१मण-वयण-कायवंको माइल्लो गारवेहिं पडिबद्धो + ।

असुहं बंधइ णामं तप्पडिक्खेहिं सुहणामं ॥२१२॥

यो मनोवचनकायैर्वक्रः, मायावी गारवत्रयप्रतिबद्धः, स जीवो नरकगति-तिर्यग्गत्याऽऽद्यशुभ नामकर्म बध्नाति । तत्प्रतिपक्षपरिणामो हि शुभ नामकर्म बध्नाति ॥२१२॥

जिसके मन-वचन-कायकी प्रवृत्ति वक्र हो, जो मायावी हो और तीनों गारवोंका धारक हो, ऐसा जीव अशुभ नामकर्मका बन्ध करता है और इनसे विपरीत कर्म करनेसे शुभ नामकर्मका बन्ध होता है ॥२१२॥

विशेषार्थ—जो मायाचारी है, जिसके मन-वचन-कायकी प्रवृत्ति कुटिल है, जो रस-गारव ऋद्धिगारव और सातगारव इन तीनों प्रकारके गारवों या अहंकारोंका धारक है, झूठे नाप-तौलके बोट रखता है और हीनाधिक देता-लेता है, अधिक मूल्यकी वस्तुमें अल्प मूल्यकी वस्तु मिलाकर बेचता है, रस-धातु आदिका वर्ण-विपर्यास करता है, नकली बनाकर बेचता है, दूसरोंको धोका देता है, सोने-चौदीके जेवरोंमें खार मिलाकर और उन्हें असली बताकर व्यापार करता है, व्यवहारमे विसंवादनशील एवं झगड़ाछ मनोवृत्तिका धारक है, दूसरोंके अंग-उपांगोंका छेदन-भेदन करनेवाला है, दूसरोंकी नकल करता है, दूसरोंसे ईर्ष्या रखता है, और दूसरोंके देहको विकृत बनाता है, ऐसा जीव अशुभ नामकर्मका बन्ध करता है, किन्तु जो इनसे विपरीत आचरण करता है, सरल-स्वभावी है, कलह और विसंवाद आदिसे दूर रहता है, न्यायपूर्वक व्यापार करता है और ठीक-ठीक नाप-तौल कर देता लेता है, वह शुभ नामकर्मका बन्ध करता है।

अब गोत्रकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २४]^२अरहंताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाणं गुणपेही ।

बंधइ उच्चागोयं विवरीओ बंधए इयरं ॥२१३॥

यः अर्हदादिषु भक्तः, गणधराद्युक्ताऽऽगमेषु श्रद्धाऽध्ययनार्थविचार-विनयादिगुणदर्शी, स जीवः उच्चैर्गोत्रं बध्नाति । तद्विपरीतः नीचैर्गोत्रं बध्नाति ॥२१३॥

१. स० पञ्चस० ४, ८० । २. ४, ८१ ।

१. शतक० २४ । २. शतक० २५ ।

+ व परिवद्धो । *द पढमाण० ।

जो अरहंत आदिकी भक्ति करनेवाला है, आगमका अभ्यासी है और उच्च जाति, कुलादिका धारक होने पर भी जो अहंकारसे रहित है ऐसा जीव उच्चगोत्रकर्मका बन्ध करता है । तथा इससे विपरीत आचरण करनेवाला नीचगोत्रका बन्ध करता है ॥२१३॥

विशेषार्थ—जो सदा अरहत, सिद्ध, चैत्य, गुरु और प्रवचनकी भक्ति करता है, नित्य सर्वज्ञ-प्रणीत आगमसूत्रका स्वयं अभ्यास करता है और अन्यको कराता है, दूसरोको तत्त्वका उपदेश देता है और आगमोक्त तत्त्वका स्वयं श्रद्धान करता है, उत्तम जाति, कुल, रूप, विद्यादिसे मंडित होने पर भी उनका अहंकार नहीं करता और न हीन जाति-कुलादिवालोका तिरस्कार ही करता है, पर-निन्दासे रहित है, भूल करके भी दूसरोंके बुरे कार्यों पर दृष्टि नहीं डालता है, किन्तु सदाकाल सबके गुणोंको ही देखता है और गुणाधिकोंके साथ अत्यन्त विनम्र व्यवहार करता है, ऐसा जीव उच्चगोत्रकर्मका बन्ध करता है । किन्तु इससे विपरीत आचरण करनेवाला जीव नीचगोत्रकर्मका बन्ध करता है अर्थात् जो सदा अहंकारमें मस्त रहता है, दूसरोके बुरे कार्यों पर ही जिसकी दृष्टि रहती है, दूसरोका अपमान और तिरस्कार करता है, अरहंतादिकी भक्तिसे रहित है और आगमके अभ्यासको वेकार समझता है, ऐसा जीव नीचयोनियोंमें उत्पन्न करनेवाले नीचगोत्रकर्मका बन्ध करता है ।

अब अन्तरायकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २५]^१पाणवहाइस्मिह रओ जिणपूआ—मोक्खमग्ग-विग्घयरो ।

अज्जेइ अंतरायं ण लहइ हिय × इच्छियं जेण ॥२१४॥

यः द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय [पञ्चेन्द्रिय-] वधेषु स्व-परकृतेषु प्रीतः, जिनपूजाया रत्नत्रयप्राप्तेश्च स्वान्ययो-विघ्नकरः, स जीवस्तदन्तरायकर्म अर्जयति येनोदयेन हृदयेऽप्यसितं तत् [वस्तु] न लभ्यते ॥२१४॥

प्राणियोंकी हिंसादिमें रत रहनेवाला और जिन-पूजनादि मोक्षमार्गके साधनोंमें विघ्न करनेवाला जीव अन्तराय कर्मका उपार्जन करता है, जिससे कि वह हृदय-इच्छित वस्तुको नहीं प्राप्त कर पाता है ॥२१४॥

विशेषार्थ—जो जीव पोंचो पापोंको करते हैं, महाऽऽरम्भी और परिग्रही हैं, तथा जिन-पूजन, रोगी साधु आदिकी वैयावृत्त्य, सेवा-उपासनादि मोक्षमार्गके साधनभूत धार्मिक क्रियाओंमें विघ्न डालते हैं, रत्नत्रयके धारक साधुजनोंको आहारादिके देनेसे रोकते हैं, तथा किसी भी प्राणी के खान-पानका निरोध करते हैं, उन्हें समय पर खाने-पीने और सोने-वैठने नहीं देते हैं, जो दूसरेके भोगोपभोगके सेवनमें बाधक होते हैं, दूसरेको आर्थिक हानि पहुँचाते हैं और उत्साह-भङ्ग करते हैं, दान देनेसे रोकते हैं, दूसरेकी शक्तिका मर्दन करते हैं, उसे निराश और निश्चेष्ट बनानेका प्रयत्न करते हैं, अथवा कराते हैं, वे जीव नियमसे अन्तराय कर्मका तीव्र बन्ध करते हैं । इस प्रकारसे संचित किये गये अन्तरायकर्मका जब उदय आता है, तब यह संसारी जीव अपनी इच्छाके अनुकूल न आर्थिक लाभ ही उठा पाता है, न भोग-उपभोग ही भोग सकता है और न इच्छा करते हुए भी किसीको कुछ दान ही दे पाता है ।

कुछ अन्य प्रत्यय भी अन्तरायकर्मके आस्रवमें सहायक होते हैं—

^२अंतरायस्स कोहाई पच्चूहकरणं तहा ।

आस्रवम्मि वि जे हेऊ ते वि कज्जोवचारओ ॥२१५॥

१. स० पञ्चसं० ४, ८२ । २. ४, ८३ ।

१ शतक० २६ ।

ॐ द व वहाँहि । ‡व पूया । × द हियइ ।

आत्मवेपु ये हेतवः मिथ्यात्वादयः कारणानि प्रत्ययान्तेऽपि कार्यापचास्तः अन्तरायस्य दानाद्यन्तराय-
कर्मणो हेतवः । तथा क्रोधादिभिर्विघ्नकण्ठम् । उक्तञ्च—

बन्धस्य हेतवो येऽस्मी आत्मवस्यापि ते मताः ।

बन्धो हि कर्मणां जन्तोरात्मवे सति जायते ॥२७॥ इति ॥२१५॥

तथा जो दूसरोंपर क्रोधादि करता है और दूसरोंके दान, लाभ, भोग, उपभोग और
वीर्यमें विघ्न-बाधाएँ उपस्थित करना है, मिथ्यात्वादिका सेवन करता है ऐसा जीव भी अन्तराय-
कर्मको उत्पन्न करता है । इस प्रकार कर्मोंके आत्मवके सम्बन्धमें जो हेतु या प्रत्यय बतलाये
गये हैं, वे सब कारणमें कार्यके उपचारसे कर्म-बन्धके भी कारण जानना चाहिए ॥२१५॥

पडिणीयाइ हेऊ जे अणुभायं पडुच्च ते भणिया ।

णियमा पदेसबंधं पडुच्च वहिचारिणो सन्वे ॥२१६॥

इदि विसेसपञ्चया बंधासवाण ।

अनुभागं प्रतीत्याऽऽश्रित्य ये प्रत्यनीकादिहेतवो भणिताः, अनुभागबन्धं प्रति ये प्रत्यनीक-प्रदोषादि-
हेतवः प्रोक्ता नियमान् ते प्रत्यनीक-प्रदोषादिहेतवः प्रदेशबन्धं प्रतीत्याऽऽश्रित्य सर्वे व्यभिचारिणः, अन्यया-
कारा । तथा चेत्तम्—

अनुभागं प्रति प्रोक्ता ये प्रदोषादिहेतवः ।

प्रदेशं प्रति ते नूनं जायन्ते व्यभिचारिणः ॥२७॥ ॥२१६॥

ज्ञानावरणादि कर्मोंके जो प्रत्यनीक आदि आत्मव हेतु बतलाये गये हैं, वे सब अनुभाग
बन्धकी अपेक्षा कहे गये जानना चाहिए; क्योंकि प्रदेशबन्धकी अपेक्षा वे सब नियमसे व्यभि-
चारी देखे जाते हैं ॥२१६॥

इस प्रकार कर्मोंके आत्मव और बन्धके विशेष प्रत्ययोका निरूपण समाप्त हुआ ।

अब कर्मोंके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

बंधद्वयाणां च उरो तिष्ठति य उदयरसं हौति ठाणाणि ।

पंच य उदीरणाए संजोगं अउ परं वोच्छं ॥२१७॥

[मूलभा० २६] छसु ठाणेषु सत्तद्विहं बंधंति तिसु य सत्तविहं ।

छन्विहमेओ तिण्णेषविहं तु अवंधओ एओ ॥२१८॥

श्री विद्यानन्दिनं देवं मल्लिभूषणसद्गुरुम् ।

लक्ष्मीवारेन्दुचिद्भूषणं नत्वा बन्धादिकं ब्रुवे ॥२८॥

अथ बन्धोदयसत्त्वयुक्तस्थानं कथ्यते । किं स्थानम् ? एकस्य जीवस्य एकस्मिन् समये सम्भवतीनां
प्रकृतानां समूहः तन्स्थानम् । तावद्गुणस्थाने मूलप्रकृतानां बन्धोदयोदीरणामेदं गायानवर्कनाऽऽह—
[‘छसु ठाणेषु’ इत्यादि ।] पदसु स्थानेषु मिथ्यात्वसामादनाऽविरत-विगताविरत-प्रमत्ताऽप्रमत्तगुणस्थानेषु
ज्ञानावरणाद्यष्टविध आयुर्विना सप्तविधं च कर्म जीवा बध्नन्ति, बन्धं नयन्तीत्यर्थः । त्रिषु मित्राऽपूर्वकरणाऽ-
निवृत्तिकरणगुणस्थानेषु आयुर्विना सप्तविधं कर्म जीवा बध्नन्ति । एकः सूक्ष्ममाप्तरायगुणस्थानवर्ती
आयुर्मोहवर्जित पदविधं कर्म बध्नाति । त्रयः उपशान्तकपाय-जीणकपाय-सयोगिनः एकं सातावेदनीयं
बध्नन्ति । एकः अयोगी अवन्धको भवति ॥२१७-२१८॥

* इनोऽग्रे प्रती मन्दर्भोज्यं प्राप्यते—इति श्री पञ्चसंग्रहगोमटसरमिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे जीव-
ममासादिप्रत्ययप्ररूपणो नाम चतुर्थोऽधिकारः ॥श्री॥

१. म० पञ्चमं ४, ८३ । २. संस्कृत टीका नापलभ्यते । ३. शतक० २७ ।

बन्धस्थान चार होते हैं। उदयके स्थान तीन होते हैं, किन्तु उदीरणाके स्थान पाँच होते हैं। इनके वर्णन करनेके पश्चात् इनके संयोगी स्थानोंको कहेंगे ॥२१७॥

छह गुणस्थानोंमें जीव सात या आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते हैं। तीन गुणस्थानोंमें सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते हैं। एक गुणस्थानमें छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते हैं। तीन गुणस्थानोंमें एक कर्मका बन्ध करते हैं और एक गुणस्थान अवन्धक है अर्थात् उसमें किसी भी कर्मका बन्ध नहीं होता ॥२१८॥

अब भाष्यकार उक्त मूलगाथाके अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१छप्पदमा बंधंति य मिस्सूणा सत्तकम्म अट्ठं वा ।

आऊणा सत्तेव य मिस्सापुन्वाणियट्ठिणो णेया ॥२१९॥

मोहाऊणं हीणा सुहुमो बंधेइ कम्म छच्चेव ।

वेयणियमेय तिणिण य बंधंति अबंधओऽजोगो ॥२२०॥

७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ६ १ १ १ ०

८ ८ ० ८ ८ ८ ८

तदेव गाथाबन्धेन विवृणोति—मिश्रोना. पट् प्रथमाः अप्रमत्तान्ताः विनाऽऽयुः सप्तविध तत्सहित-मष्टविध च बध्नन्ति । मिश्राऽपूर्वकरणऽनिवृत्तिकरणा आयुरून सप्तविध कर्म बध्नन्ति । तन्नयः आयुर्वन्ध-हीना ज्ञेयाः ॥२१९॥

सूक्ष्मसाम्परायस्थो मुनिरायुर्मोहिनीयकर्मद्वयहीनानि पदेव कर्माणि बन्धाति, ततस्त्रयः उपशान्त-हीणकषाय-मयोगजिना एक सातावेदनीय बन्धन्ति । अयोगी अवन्धकः स्यात् ॥२२०॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	ची०	स०	अ०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६	१	१	१	०
८	८	०	८	८	८	८	०	०	०	०	०	०	०

मिश्र गुणस्थानको छोड़कर पहलेके छह गुणस्थानवर्ती जीव आयुके बिना सात कर्मोंका, अथवा आयु-सहित आठ कर्मोंका बन्ध करते हैं। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन तीन गुणस्थानोंके जीव आयु-कर्मके बिना सात कर्मोंका बन्ध करनेवाले जानना चाहिए। सूक्ष्म-साम्परायगुणस्थानवर्ती जीव मोह और आयुके बिना शेष छह कर्मोंका बन्ध करते हैं। ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीव एक वेदनीय कर्मका ही बन्ध करते हैं। अयोगिकेवली भगवान् अवन्धक कहे गये हैं ॥२१९-२२०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गु०—मि० सा० मि० अ० दे० प्र० अ० अ० अ० सू० उ० ची० स० अ०
 वं० ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ६ १ १ १ ०
 ८ ८ ० ८ ८ ८ ८ ० ० ० ० ० ० ०

अब उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २७]^२अट्ठविह-सत्त-छ-बंधगा वि वेयंति अट्ठयं णियमा ।

*उवसंतस्त्रीणमोहा मोहूणाणि य जिणा अघाईणि ॥२२१॥

१. सं० पञ्चस० ४, ८४-८५ । २. ४, ८६ ।

१. शतक० २८ । पर तत्रोत्तरार्धे 'एगविहबन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएत्ति' इति पाठः ।

* मूलप्रती ईदृक् पाठः—'एगविहबधगा पुण चत्तारि व सत्त चेव वेदति' ।

दादादादादादादादा उवसंत-खीणार्णं ७।७।

सजोगाजोगाण ४।४।

अष्टविध-सप्तविधकर्मबन्धका जीवा ज्ञानावरणाद्यष्टविध कर्म वेदयन्ति उदयरूपेण भुञ्जन्तीत्यर्थः
न नियमात् । उपशान्त-क्षीणमोहो उपशान्तकपाय-क्षीणकपायिणो छद्मस्थौ मोहनीयं विना सप्त कर्माणि
उदयरूपेणानुभवतः ७ । जिनौ इति सयोगाऽयोगिनौ वेद्यायुर्नामगोत्राणीति अघातीन्यनुभवतः ४ ॥२२१॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४

इति गुणस्थानेषु मूलप्रकृतीनामुदयः ।

आठ, सात और छह प्रकारके कर्म-बन्ध करनेवाले जीव नियमसे आठों ही कर्मोंका वेदन करते हैं । उपशान्तमोही और क्षीणमोही जीव मोहकर्मके विना शेष सात कर्मोंका वेदन करते हैं । सयोगी और अयोगी जिन चार अघातिया कर्मोंका वेदन करते हैं ॥२२१॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—

गु०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
७०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४

घाईणं छदुमत्था उदीरगा राइणो य मोहस्स ।

तइयाउयं पमत्ता × जोगंता + णाम-गोयाणं ॥२२२॥

गुणठाणेषु उदीरणा—दादादादादादा६।६।६।६।५।५।२।० ।

अथोदीरणा कथ्यते—घातिकर्मणां चतुर्णां मिथ्याइगादि-क्षीणकपान्ताः छद्मस्था एवोदीरका भवन्ति ।
तत्रापि मोहनीयस्य रागिणः सूक्ष्मसाम्परायान्ताः उदीरकाः स्युः । वेदनीयायुषोः प्रमत्तान्ताः पष्ठान्ताः
उदीरणां कुर्वन्ति । नाम-गोत्रयोः सयोगिपर्यन्ता एव उदीरकाः ॥२२२॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०

इति सामान्येन गुणस्थानेषु उदीरणा ।

छद्मस्थ अर्थात् बारहवें गुणस्थान तकके जीव घातिया कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । किन्तु
मोहकर्मकी उदीरणा करनेवाले रागी अर्थात् सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान तकके ही जीव माने गये
हैं । तृतीय वेदनीय कर्म और आयुर्कर्मकी उदीरणा प्रमत्तगुणस्थान तकके जीव करते हैं । तथा
नाम और गोत्रकर्मकी उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीव करते हैं ॥२२२॥

गुणस्थानोंमें कर्मोंकी उदीरणा इस क्रमसे होती है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०

[मूलगा० २८] 'मिच्छादिद्विष्पभिर्इ अट्ट उदीरंति जा पमत्तो त्ति ।

अट्टावलियासेसे मिस्सूणा सत्त आऊणा ॥२२३॥

तद्विशेषयति—मिथ्यादृष्टिप्रभृतयो यावत्प्रमत्तान्ताः मिथ्यात्वादि-प्रमत्तान्ता ज्ञानावरणादीन्यष्टौ
कर्माण्युदीरयन्ति उदीरणां कुर्वन्ति । सम्यग्मिथ्यादृष्टेराऽऽयुष्याऽऽवलिमात्रेऽवशिष्टे सति नियमेन गुणस्थाना-

1. स० पञ्चस० ४, ८६-८८ ।

१. शतक० २६ ।

× व० प्रमत्तो । + मूल प्रतौ 'दुति दुण्हं पि' इति पाठः ।

न्तराश्रयणात् । तं मिश्र विना मिथ्यादृष्टि-प्रमत्तान्ता पञ्च निजाऽऽयुषि अद्धाकालविशेषाऽऽवलिमात्रेऽवशिष्टे सति आयुर्वर्जितसप्तकर्माण्युदीरयन्ति उदीरणां कुर्वन्तीत्यर्थः ॥२२३॥

अब ग्रन्थकार इसी अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके जीव आठों ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । किन्तु अपने-अपने आयुकालमें आवलीमात्र शेष रहने पर मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव आयुर्कर्मके विना शेष सात कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव आठों ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं क्योंकि आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थान छूट जाता है अर्थात् वह जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हो जाता है ॥२२३॥

[मूलगा० २६]^१वेयणियाउयवज्जे छक्कम्मदीरंति चत्तारि ।

अद्धावलियासेसे सुहुमोदीरेइ पंचेव^२ ॥२२४॥

चत्वारोऽप्रमत्ताऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायलक्ष्मस्थाः वेदनीयायुर्द्वय वर्जयित्वा षट्कर्माण्युदीरयन्ति, पण्णां कर्मणा उदीरणां कुर्वन्तीत्यर्थः । सूक्ष्मसाम्परायस्तु, अद्धावलिकाशेषे आवलिकामात्रेऽवशिष्टे सति आयुर्मोहवेदनीयकर्मत्रिकवर्जितशेषकर्मपञ्चक उदीरयन्ति ॥२२४॥

अप्रमत्तसंयतसे आदि लेकर चार गुणस्थानवर्ती जीव वेदनीय और आयुर्कर्मको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके कालमें आवलीमात्र कालके शेष रह जाने पर सूक्ष्मसाम्परायसंयत वेदनीय, आयु और मोहकर्मको छोड़कर शेष पाँच कर्मोंकी उदीरणा करते हैं ॥२२४॥

[मूलगा० ३०]^२वेयणियाउयमोहे वज्जिय उदीरंति दोण्णि पंचेव ।

अद्धावलियासेसे णामं गोयं च अकसाई^३ ॥२२५॥

द्वौ उपशान्त-क्षीणकषायौ वेदनीयाऽऽयुर्मोहनीयत्रिक वर्जयित्वा शेषकर्मपञ्चकमुदीरयतः तद्गुणस्थान-धोरावलिकालेऽवशिष्टे नाम-गोत्रकर्मद्वयमुदीरयतः ॥२२५॥

उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय, ये दो गुणस्थानवर्ती जीव वेदनीय, आयु और मोहको छोड़कर शेष पाँचों ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । किन्तु अकषायी अर्थात् क्षीणकषायी जीव क्षीणकषाय गुणस्थानके कालमें आवलीमात्र कालके शेष रहने पर नाम और गोत्र इन दो कर्मोंकी उदीरणा करते हैं ॥२२५॥

[मूलगा० ३१]^३उदीरेइ णाम-गोदे छक्कम्म विवज्जिए सजोगी दु ।

वडुत्तो दु अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ^४ ॥२२६॥

सयोगी वर्तमान-सन् कर्मषट्क वर्जिते नाम-गोत्रे द्वे कर्मणो उदीरयति २ । पुनः अयोगी किमपि कर्म उदीरयति न, उदीरणां न करोतीत्यर्थः ॥२२६॥

सयोगिकेवली जिन शेष छह कर्मोंको छोड़कर नाम और गोत्र इन दो ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । चार अघातिया कर्मोंके उद्दयमें वर्तमान भी अयोगी जिन योगके अभाव होनेसे किसी भी कर्मकी उदीरणा नहीं करते हैं ॥२२६॥

१ स० पञ्चसं० ४, ८६ । २ स० पञ्चसं० ४, ६० । ३ स० पञ्चसं० ४, ६१ ।

१. शतक० ३० । २. शतक० ३१ । ३. शतक० ३२ ।

गुणस्थानेषु उदीरणा—

८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०
७	७	०	७	७	७	०	०	०	५	०	२	०	०

^१एतत् मरणावलियाणु आउस्स उदीरणा णत्थि । आवलियासेसे आउम्मि मिस्सगुणो वि ण मंभवद् ।

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	६	६	६	५	५	५	२	०
७	७	०	७	७	७	०	०	०	२	२	२	०	०

इति गुणस्थानेषु [विशेषेण] उदीरणा ।

अत्रापक्वपाननमुदीरणेति वचनादुदयावलिकायां प्रविष्टायाः कर्मस्थितेर्नोदीरणेति मरणावलिकाया-
मायुपः उदीरणा नास्ति । सूक्ष्मे मोहस्योदीरणा नास्ति । क्षीणे घातित्रयस्योदीरणा नास्ति । मरणावलिका-
शेषाऽऽयुपि मिश्रो गुणोऽपि न सम्भवति ।

गुणस्थानोर्मे उदीरणाका क्रम इति प्रकार है—

८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०
७	७	०	७	७	७	०	०	०	५	०	२	०	०

यहाँ इतना विशेष जानने योग्य है कि मरणावलीके शेष रहने पर आयुकर्मकी उदीरणा नहीं होती है । तथा आयुकर्मके आवलीमात्र शेष रह जाने पर मिश्रगुणस्थान भी नहीं होता है ।

विशेषार्थ—शतककी मूलगाथाङ्क ३० के उत्तरार्धमे यह बतलाया गया है कि अकपायी जीव आवलीमात्र कालके शेष रह जाने पर नाम और गोत्र इन दो कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । मूलगाथाके नीचे दी गई अङ्कसंहितके अंकोंको देखनेसे विदित होता है कि गाथामे दिये गये 'अकसाई' पदसे बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणकपायी संयत अभिप्रेत है । आ० अमितगति-रचित संस्कृत पञ्चसंग्रहसे भी 'अकसाई' पदके इसी अर्थकी पुष्टि होती है । यथा—

ससैवावलिकाशेषे पञ्चाद्या मिश्रक विना ।

वेद्यायुर्मोहहीनानि पञ्च सूक्ष्मकपायकः ॥

नामगोत्रद्वय क्षीणस्तत्रोदीरयते यतिः ।

(सं० पञ्चसं० ४, ८६ १०)

इन श्लोकोके नीचे दी गई अंकसंहितसे भी इसी अर्थकी पुष्टि होती है । शतकप्रकरणकी मुद्रित चूर्णिमें भी 'अकसाई' पदका अर्थ 'क्षीणकपाय' किया गया है । यथा—

“अद्धावलिकाशेषे णाम गोयं च अकसाइ त्ति” क्षीणकसायद्धाणु आवलिकाशेषे णाम गोयं च क्षीण-
कसाओ उदीरेइ । कम्हा ! णाणदसणावरणतराङ्गाणि आवलिगापविट्ठाणि ण उदीरेत्ति त्ति काउं ।”

शतकके संस्कृत टीकाकार मलधारीय श्री हेमचन्द्राचार्यने भी 'अकसाई' पदका अर्थ क्षीणकपायी ही किया है । यथा—

“अद्धावलिकाशेषे आवलिकामात्र प्रविष्टे ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मणीति शेषः । नामगोत्राख्ये द्वे एव कर्मणी उदीरयति । क इत्याह—‘अकसाइ’ त्ति । न विद्यन्ते कपाया अस्थेति अकपायी, क्षीणमोह इत्यर्थः । इदमुक्तं भवति—क्षीणमोहो ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणि क्षपयन् प्रतिसमयं तावदुदीरयति यावत्केवलोत्पत्ति प्रत्यासत्तावावलिकावशेषाणि भवन्ति । तत ऊर्ध्वमनुदीरयन्नेव क्षपयत्यावलिकागतानामुदीरणाभावादिति । तदा नाम-गोत्रयोरेवास्योदीरणासम्भवः । उपशान्तमोहस्तु सर्वत्र पञ्चैवोदीरयति, तस्य ज्ञानावरणादीनां क्षयाभावेनावलिकाप्रवेशाभावादिति ।”

(शतक टीका गा० ३१)

उपर्युक्त उद्धरणमे तो स्पष्टरूपसे कहा गया है कि उपशान्त मोहगुणस्थानवाला जीव अपने सर्वकालमे पाँचो ही कर्मोंकी उदीरणा करता है ।

किन्तु प्राकृत पंचसंग्रहके संस्कृत टीकाकार श्रीसुमतिकीर्तिने गाथोक्त 'अकसाई' पदका अर्थ 'द्वौ उपशान्त-क्षीणकषायौ' कह कर उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय किया है, जैसा कि उक्त गाथाके नीचे दी गई संस्कृत टीकासे स्पष्ट है । इतना ही नहीं, प्रत्युत संस्कृतटीकाके नीचे जो अंकसंहति दी गई है, उसमे दिये गये अंकोसे भी उन्होंने अपने उपर्युक्त अर्थकी पुष्टि की है । संस्कृत टीकाकार-द्वारा किया गया यह अर्थ विचारणीय है, क्योंकि किसी भी अन्य आधारसे उसकी पुष्टि नहीं होती है ।

[मूलगा० ३२] अट्टविहमणुदीरंतो अणुहवइ चउन्विहं गुणविसालो ।

इरियावहं ण बंधइ आसणपुरकडो^१ दिट्ठो ॥२२७॥

अथैकस्मिन् जीवे बन्धोदयोदीरणात्रिक [गाथा-] पञ्चकेनाऽऽह—

अट्टविहमणुदीरंतो अणुहवइ चउन्विहं गुणविसालो ।

इरियावहं ण बंधइ आसणपुरकमो दिट्ठो ॥२६॥

आसन्न. पराक्रमो यस्य स आसन्नपराक्रमः, पञ्चलध्वजपठनकालस्य मध्ये अघातिचतुष्कर्मशत्रु-विध्वंसनात् चतुर्दशगुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली ईर्यापथ सातावेदनीय कर्म न बध्नाति, ज्ञानावरणाद्यष्ट-विध कर्म अनुदीरयन् उदीरणामकुर्वन् चतुर्विध वेद्याऽऽयुनाम-गोत्राघातिकर्मचतुष्क अनुभवति उदयरूपेण भुङ्क्ते । स कथम्भूत ? गुणैश्चतुरशीतिलक्षैर्विशाल. विस्तीर्णः आसन्नपराक्रमः एवम्भूतो दृष्ट. कथित. ॥२२७॥

गुणविशाल अर्थात् चौरासी लाख उत्तर गुणोका स्वामी अयोगी जिन आठो कर्मोंमेसे किसी भी कर्मकी उदीरणा नहीं करते हुए भी चारो ही अघातिया कर्मोंका वेदन करते हैं । तथा योगका अभाव होनेसे वे ईर्यापथका भी बन्ध नहीं करते हैं, क्योंकि उनका मोक्ष अतिसन्निकट है ॥२२७॥

[मूलगा० ३३]^१ इरियावहमाउत्ता चत्तारि वि सत्त चेव वेयंति ।

उदीरंति दोण्णि पंच य संसारगदम्हि भयणिज्जं^१ ॥२२८॥

सयोगवेवलीत्यध्याहार्यम् । ईर्यापथ कर्म सातावेदनीय आयत्त बध्नन् चत्वार्यघातिकर्माणि वेदयति, उदयति उदयरूपेण भुङ्क्ते । द्वे नाम-गोत्रे कर्मणी उदीरयति । संसारगते इति क्षीणकषाये उपशान्ते च

1 स० पञ्चस० ४, ६२ ।

१ शतक० ३४ ।

१ 'आसन्ने' त्यादि—इह 'सन्' पदेन 'मोक्ष' उच्यते, तस्यैव वस्तुवृत्त्या सत्त्वात् । संसारावस्था-विशेषा हि सर्वे कर्ममलपटलाच्छादितत्वात्, स्वरूपालाभरूपत्वात्, आसन्न. जीवाना वस्तुतोऽसन्त एव । मोक्षपर्यायस्तु कर्ममलपटलविनिर्मुक्तत्वात्, स्वरूपालाभरूपत्वात् सन् उच्यते । ततश्च 'पुरक्खडो' इत्युकारस्यालाक्षणिकत्वादासन्न. पुरस्कृतोऽप्रीकृत सन् मोक्षो येन स आसन्न-पुरस्कृत. सन् । इदमुक्तं भवति आसन्नमोक्षस्त्वयोगिकेवली अवन्धकोऽनुदीरयन् चतुर्विध वेदयतीति गाथार्थः । शतकप्रकरण गा० ३३ टीका ।

अज्जो गिरियावहिय सायावेय पि नेव बधेइ । आसन्ननियडवत्ती पुरक्खडो सम्मुहो य कम्मो ॥

सतो मोक्खो जेण सो आसन्नपुरक्खडो सतो । बुच्चइ पुरक्खडो इह सहे ओ (उ) लक्खणविहीणो ॥

—शतक० भाष्यगा० ६६-७० ।

ईर्यापथमेक सातावेदनीय बध्नन् मोह विना सप्त कर्माणि वेदयति, उदयरूपेणानुभवति मुनिः शेषः । क्षीणकपाये तु ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-नाम-गोत्र-पञ्चक्रानां उदीरणां करोति क्षीणकपायो मुनिः । आव-
लिकाशेषकाले भजनीय नाम-गोत्रयोरुदीरणां करोति पञ्चक-द्विकयोर्विकल्पा भजनीयमिति । उपशान्ते तु
ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-नाम-गोत्राणां पञ्चानामुदीरणा भवति ॥२२८॥

ईर्यापथ आस्रवसे संयुक्त उपशान्तमोही और क्षीणमोही जीव मोहकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका वेदन करते हैं और पाँच कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । तथा सयोगिकेवली जिन चार अधातिया कर्मोंका वेदन करते हैं और नाम वा गोत्र इन दो कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । किन्तु ईर्यापथ आस्रवसे संयुक्त उपशान्तकषायी जीव संसारगत दशामे भजनीय है अर्थात् कोई प्राप्त हुई बोधिका विनाश कर देता है और कोई नहीं भी करता है ॥२२८॥

[मूलगा० ३४]^१छप्पंचमुदीरंतो बंधइ सो छव्विहं तणुकेसाओ ।

अट्ठविहमणुभवंतो सुकज्झाणे दहइ कम्मं ॥२२९॥

तनुकपायः सूक्ष्मसाम्परायो मुनिः षट्-पञ्चकर्माणि उदीरयन् मोहाऽऽयुभ्यां विना पण्णां कर्मणां ६, आयुर्मोहवेदनीयत्रिक विना पञ्चानां कर्मणां उदीरणां करोति ५ । स सूक्ष्मसाम्परार्या षट्विध मोहाऽऽयुद्विकं विना षट्प्रकारं कर्म बध्नाति । स मुनिः सूक्ष्मसाम्परायो ज्ञानावरणाद्यष्टविध कर्म उदयरूपेण भुङ्क्ते । स मुनिः प्रथमशुक्लध्यानेन सूक्ष्मलोभ कर्म दहति भस्मीकरोति ॥२२९॥

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीव छह अथवा पाँच प्रकारके कर्मोंकी उदीरणा करते हुए भी मोह और आयुके विना शेष छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते हैं । तथा वही सूक्ष्मसाम्पराय-संयत आठों ही कर्मोंका अनुभवन करते हुए शुक्लध्यानमे मोहकर्मको जलाता है ॥२२९॥

[मूलगा० ३५]^२अट्ठविहं वेयंता छव्विहमुदीरंति सत्त बंधंति ।

अणियट्ठी य णियट्ठी अप्पमत्तो य तिण्णेदे^३ ॥२३०॥

अनिवृत्तिकरणः अपूर्वकरणः अप्रमत्तश्चैते त्रयः ज्ञानावरणादीन्यष्टौ कर्माणि वेदयन्तः उदयरूपेणानु-
भवन्ति ८ । आयुर्वेद्यद्वय विना षट्कर्माणि (षट्कर्मणां) उदीरणां कुर्वन्ति ६ । आयुर्विना सप्त कर्माणि
बध्नन्ति ७ ॥२३०॥

अनिवृत्तिकरणसंयत, अपूर्वकरणसंयत और अप्रमत्तसंयत, ये तीनों ही गुणस्थानवर्ती जीव आठों ही कर्मोंका वेदन करते हुए आयु और वेदनीयको छोड़कर शेष सात कर्मोंका बन्ध करते हैं ॥२३०॥

विशेषार्थ—उक्त गाथामे जो अप्रमत्त संयतके भी आयुकर्मके बन्धका अभाव बतलाया गया है, सो उसका अभिप्राय यह है कि अप्रमत्तसंयत जीव आयुकर्मके बन्धका प्रारम्भ नहीं करता है, किन्तु यदि प्रमत्तसंयतने आयुकर्मका बन्ध प्रारम्भ कर रक्खा है, तो वह उसे बंधता है, अन्यथा नहीं ।

[मूलगा० ३६]^३बंधंति य वेयंति य उदीरंति य अट्ठ अट्ठ अवसेसा ।

सत्तविहबंधगा पुण अट्ठण्हमुदीरणे भज्जा^४ ॥२३१॥

१. स० पञ्चस० ४, ६४ । २. सं० पञ्चस० ४, ६५ । ३. सं० पञ्चस० ४, ६६-६७ ।

४. शतक० ३५ । २ शतक० ३६ । ३. शतक० ३७ । पर तत्र पूर्वार्धे 'अवसेसट्ठविहकरा वेयंति उदीरगावि अट्ठण्ह' इति पाठः ।

अज्ञेया. मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तान्ताः षड् गुणस्थानका. ज्ञानावरणादीन्यष्टौ कर्माणि बध्नन्ति, तदष्टौ कर्माणि वेदयन्ति उदयरूपेण भुञ्जन्ति । पुनस्ते षड्-गुणस्थानकाः कथम्भूताः ? आयुर्विना सप्तविध-कर्म-बन्धकाः ७ भवन्ति, ते अष्टानां कर्मणां उद्दीरणायां भाज्या विकल्पनीयाः । आयुषः मरणावलिकागणे उद्दीरणा नास्ति, इत्याऽऽयुर्विना सप्तकर्मोद्दीरकाः ७ अष्टकर्मोद्दीरकाश्च ८ ॥२३१॥

ऊपर कहे गये जीवोंके अतिरिक्त अवशिष्ट गुणस्थानवाले जो जीव हैं वे अर्थात् मिथ्या-दृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत तकके जीव आठो ही कर्मोंका बन्ध करते हैं, आठो ही कर्मोंका वेदन करते हैं और आठो ही कर्मोंकी उद्दीरणा करते हैं । किन्तु आयुर्कर्मको छोड़कर शेष सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीव आठो कर्मोंकी उद्दीरणामे भजनीय हैं । अर्थात् अपनी अपनी आयुर्मे आवली काल शेष रहनेके पूर्व तक तो वे आठो ही कर्मोंकी उद्दीरणा करते हैं और आवली मात्र कालके शेष रह जानेके अनन्तर सात प्रकारके कर्मोंकी उद्दीरणा करते हैं ॥२३१॥

ଭା	ଭା	ଓ	ଭା	ଭା	ଭା	ଭା	ଓ	ଓ	୬	୧	୧	୧	୦
ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ଓ	ନ	ଓ	ଓ	୪	୪
ଭା	ଭା	ନ	ଭା	ଭା	ଭା	୦।୬	୬	୬	୬।୫	୫	୫।୨	୨	୦

एतथ प्रमत्तो आउवध आरभेद्, अप्रमत्तो होऊण समाणेड ति णिडिड्ढ । तत्थ सव्वकम्माणि बधेड्ढ ति वुत्तं ।

बन्धोदयोद्दीरणासम्पृक्तयन्त्रम्—

गुणस्थान—	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	ट०	ज्ञो०	स०	अ०
बन्ध.—	७।८	७।८	७	७।८	७।८	७।८	७।८	७	७	६	१	१	१	०
उदयः—	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
उद्दीरणा—	७।८	७।८	८	७।८	७।८	७।८	६	६	६	६।५	५	५।२	२	०

अत्राप्रमत्ते कर्माष्टकस्य बन्धः कथम् ? भवता भव्य पृष्टम्, प्रमत्तो मुनिराऽऽयुर्वन्धं आरभति प्रारभति, अप्रमत्तो भूत्वा तत्पूर्णं करोति समाप्तिं नयति । यतोऽप्रमत्ते आयुर्वन्धाऽऽरम्भो नास्तीति तत्र सप्तमे गुणस्थाने तद्-दृष्ट कथितं सर्वकर्माणि बध्नातीति उक्तमिति ।

ऊपर कहे गये बन्ध, उदय और उद्दीरणा सम्बन्धी अर्थकी बोधक अंकसंदृष्टि मूलमे दी हुई है ।

यहाँ यह बात ध्यानमे देनेकी है कि प्रमत्तसंयत जीव आयुर्कर्मके बन्धका प्रारम्भ करता है और अप्रमत्तसंयत होकर उसकी समाप्ति करता है, इस अपेक्षा 'वह सर्व कर्मोंका बन्ध करता है' ऐसा गाथासूत्रमें कहा गया है ।

अब बन्धके नौ भेदोंका वर्णन करते हैं—

¹सादि अणादि य ध्रुवद्भुवो य पयडिड्ढाणं च भुजगारो ।

अप्पयरमवडिड्ढं च हि सामित्तेणावि णव होंति ॥२३२॥

नवधा कर्मबन्धा भवन्तीत्याऽऽह—सादिवन्धः १ अनादिवन्धः २ ध्रुवबन्धः ३ अध्रुवबन्धः ४ प्रकृतिस्थानबन्धः ५ भुजाकारबन्धः ६ अल्पतरबन्धः ७ अवस्थितबन्धः ८ स्वामित्वेन सह ९ नव बन्ध-भेदा भवन्ति ॥२३२॥

सादिवन्ध, अनादिवन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, प्रकृतिस्थानबन्ध, भुजाकारबन्ध, अल्पतर-बन्ध, अवस्थितबन्ध और स्वामित्वकी अपेक्षा बन्ध, इस प्रकार बन्धके नौ भेद होते हैं ॥२३२॥

अब उक्त बन्धभेदोंका स्वरूप कहते हैं—

^१साइ अबंधा बंधइ अणाइबंधो य जीवकम्माणं ।

ध्रुवबंधो य अभव्ये बंध-विणासेण अद्धुवो होज्ज ॥२३३॥

अप्पं बंधिय कम्मं बहुयं बंधेइ होइ भुययारो ।

विचरीओ अप्पयरो अवट्ठिओ तेत्तिय त्ति बंधंतो ॥२३४॥

तत्त्वलक्षणमाह—योऽबन्धकर्मप्रकृतीर्बध्नाति स सादिवन्धः । अबन्धपतितस्य कर्मणः पुनर्वन्धे सति सादिवन्धः स्यात् । यथा ज्ञानावरणपञ्चकस्योपशान्तकपायादवतरतः सूक्ष्मसाम्पराये बन्धो भवति १ । जीव-कर्मणोः अनादिवन्धः स्यात् । तथा उपरितनगुणस्थान श्रेणिः, तत्रानारूढे अनादिवन्धः स्यात् २ । अभव्ये अभव्यसिद्धे ध्रुवबन्धो भवति, निःप्रतिपक्षाणां बन्धस्य तत्रानाद्यनन्तत्वात् । बन्ध-विनाशेन कर्म-बन्धविध्वसनेनाध्रुवबन्धो भवेत् । अथवा अबन्धे सति अध्रुवबन्धो भवति । स अध्रुवबन्धो भव्ये भवति ४ । सख्याभेदेनैकस्मिन् जीवे युगपत्सम्भवत्प्रकृतिसमूहः स्थानमिति प्रकृतिस्थानबन्धः ५ अल्पं बध्वा बहुकं बध्नातः योऽल्पकर्मप्रकृतिक बध्वा बहुकर्मप्रकृतिक बध्नाति, स भुजाकारो बन्धः स्यात् ६ । तद्विपरीतो यो बहुकर्म बध्नातोऽल्पकर्मप्रकृतिक बध्नाति, स अल्पतरो बन्धः स्यात् ७ । अल्पकर्मप्रकृतिकं बहुकर्मप्रकृतिकं वा बध्वा अनन्तरसमये तावदेव बध्नातोऽवस्थितो बन्धः ८ । आसामेव प्रवृत्तीनामयमेव गुणस्थानवर्त्ती जीवो बन्धको भवतीति स्वामित्वम् । तथा कर्म-बन्धविशेषस्य कर्तृ स्वामित्व ९ ज्ञातव्यम् । इति स्वामित्वेन सह नवविधबन्धस्य लक्षणं ज्ञेयम् ॥२३३-२३४॥

विवक्षित कर्मप्रकृतिके अबन्ध अर्थात् बन्धविच्छेद हो जाने पर पुनः जो उसका बन्ध होता है, उसे सादिवन्ध कहते हैं । जीव और कर्मके अनादिकालीन बन्धको अनादिवन्ध कहते हैं । अभव्यके बन्धको ध्रुवबन्ध कहते हैं । एक बार बन्धका विनाश होकर पुनः होनेवाले बन्धको अध्रुवबन्ध कहते हैं । अथवा भव्यके बन्धको अध्रुवबन्ध कहते हैं । (एक जीवमे एक समय बंधनेवाली प्रकृतियोंके समूहको प्रकृतिस्थानबन्ध कहते हैं ।) अल्प कर्म-बन्धको करके अधिक कर्मके बन्ध करनेको भुजाकारबन्ध कहते हैं । अधिक कर्म-बन्धको करके अल्प कर्मके बन्ध करनेको अल्पतर बन्ध कहते हैं । पहले समयमे जितना कर्म-बन्ध किया है, दूसरे समयमे उतना ही कर्म-बन्ध होनेको अवस्थितबन्ध कहते हैं । (इन विवक्षित कर्मप्रकृतियोंका इस गुणस्थानवर्त्ती जीव बन्ध करता है, इस प्रकारसे कर्मबन्धके स्वामित्व-विशेषके निरूपणको स्वामित्वकी अपेक्षा बन्ध कहते हैं ।) ॥२३३-२३४॥

अब मूलप्रकृतियोंके सादिवन्ध आदिका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३७]^२साइ अणाइ य ध्रुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मल्लकस्स ।

तइए साइयसेसा अणाइ ध्रुवसेसओ आऊ ॥२३५॥

अथ मूलप्रकृतीनां सादि-बन्धादि कथ्यते—कर्मपट्कस्य ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ मोहनीय ३ नाम ४ गोत्रा ५ न्तरायाणां ६ पण्णां कर्मणां प्रत्येक सादिवन्धः । १ अनादिवन्धः २ ध्रुवबन्धः ३ अध्रुव-बन्धः ४ चेति चतुर्धा बन्धो भवति । तृतीये वेदनीयकर्मणि सादितः शेषास्त्रयो बन्धा ज्ञेयाः । अनादिवन्धः १ ध्रुवबन्धः २ अध्रुवबन्ध ३ श्रेति त्रिविधबन्धो वेदनीयकर्मणो भवतीत्यर्थः, सातापेक्षया तस्य गुणप्रतिप-क्षेषु उपशमश्रेण्याऽऽरोहणाऽऽरोहणे च निरन्तरबन्धेन सादित्वाऽसम्भवात् । आयुष्कर्मणोऽनादि-ध्रुवाभ्या

विना शेषौ साद्यध्रुवौ भवतः, आयुषः सादिवन्धाऽध्रुववन्धौ भवतः । कुतः ? एकवारादिना बन्धेन सादिवन्धात् अन्तर्मुहूर्त्तवसानेन चाध्रुवत्वात् ॥२३५॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय; इन छह कर्मोंका सादिवन्ध भी होता है, अनादिवन्ध भी होता है, ध्रुववन्ध भी होता है और अध्रुववन्ध भी होता है, अर्थात् चारों प्रकारका बन्ध होता है । तीसरे वेदनीय कर्मका सादिवन्धको छोड़कर शेष तीन प्रकारका बन्ध होता है । आयु कर्मका अनादिवन्ध और ध्रुववन्धके सिवाय शेष दो प्रकारका बन्ध होता है ॥२३५॥

अब उत्तरप्रकृतियोंके सादिवन्ध आदिका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३८]^१उत्तरपयडीसु तहा ध्रुवियाणं बंधचउवियप्पो दु ।

सादिय अद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ ॥२३६॥

अथोत्तरप्रकृतिषु सादिवन्धादिका कथ्यन्ते—तथा मूलप्रकृतिप्रकारेण उत्तरप्रकृतिषु मध्ये सप्तचत्वारिंशद्-ध्रुवप्रकृतीनां ४७ सादिवन्धादिचतुर्विकल्पश्चतुर्धा भवति । सादिवन्धाऽध्रुववन्धा शेषा एकादशा ११ द्विपष्टिः परिवर्त्तिकाश्च प्रकृतयः ६२ । ॥२३६॥

उत्तरप्रकृतियोंमें जो सैंतालीस ध्रुववन्धी प्रकृतियों हैं, उनका चारों प्रकारका बन्ध होता है । तथा शेष बची जो तेहत्तर परिवर्तमान प्रकृतियों हैं, उनका सादिवन्ध और अध्रुववन्ध होता है ॥२३६॥

अब सैंतालीस ध्रुववन्धी प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

^२आवरण विग्घ सव्वे कसाय मिच्छत्त णिमिण वण्णचदुं ।

भयणिंदागुरुतेयाकम्भुवघायं ध्रुवाउ सगदालं ॥२३७॥

का ध्रुवा प्रकृतयः का. परिवर्त्तिका इति चेदाऽऽह—ज्ञानावरण-दर्शनावरणान्तरायैकोनविंशतिः ११, सर्वे षोडश कषायाः १६, मिथ्यात्व १ निर्माण १ वर्णचतुष्क ४ भय-निन्दाद्वय २ अगुरुलघुक १ तैजस-कर्मणे द्वे २ उपघातश्चेति १ सप्तचत्वारिंशद्-ध्रुवाणां प्रकृतीनां ४७ साद्यऽनादिध्रुवाऽध्रुववन्धश्चतुर्विधो भवति ॥२३७॥

पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, सभी अर्थात् सोलह कषाय, मिथ्यात्व, निर्माण, वर्णादि चार, भय, जुगुप्सा, अगुरुलघु, तैजसशरीर, कर्मणशरीर और उपघात, ये सैंतालीस ध्रुववन्धी प्रकृतियों हैं, अर्थात् बन्ध-व्युच्छित्तिके पूर्व इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है ॥२३७॥

निष्प्रतिपक्ष और सप्रतिपक्षके भेदसे परिवर्तमान प्रकृतियोंके दो भेद हैं । उनमेंसे पहले निष्प्रतिपक्ष अध्रुववन्धी प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

^३परघादुस्सासाणं आयावुज्जोवमाउ चत्तारि ।

तित्थयराहारदुयं एकारस होंति सेसाओ ॥२३८॥

इदि णिपडिवक्खा अद्धुवा ११

१. स० पञ्चस० ४, १०६ । २ ४, १०७-१०८ । ३ ४, १०६-११० ।

१. शतक० ४१ ।

* इसके स्थान पर मूल प्रतिमें निम्न दो गाथाएँ पाई जाती हैं—

णाणतरायदसय दसण णव मिच्छ सोलस कसाया । भयकम्मदुगुक्खा वि य तेजाकम्म च वण्णचदु ॥१॥
अगुरुगलहुगुवघावा णिमिण च तहा भवति सगदाल । बधो य चदुवियप्पो ध्रुवपगडीण पगिदिबवो ॥२॥

इदि ध्रुवाओ ४७ ।

परवातोच्छ्वासद्वयं २ आतपोद्योती २ आयुषि चत्वारि ४ तीर्थकरत्वं १ आहारकद्विकं चेति पञ्चादश प्रकृतयो निःप्रतिरक्षाः ११ भवन्ति । शेषा द्वापष्टिः प्रकृतयः अभ्रुवाः ६२ ॥२३॥

परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, चारों आयु, तीर्थकर और आहारकद्विक, ये ग्यारह निष्प्रतिपक्ष अभ्रुवन्धी प्रकृतियाँ हैं ॥२३॥

अब सप्रतिपक्ष अभ्रुवन्धी प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

१ सादियरं वेयावि य हस्साइचउक पंच जाईओ ।

संठाणं संघयणं छच्छक चउक आणुपुन्वी य ॥२३९॥

गह चउ दोय सरीरं गोयं च य दोणि अंगवंगा य ।

दह जुयलाण तसाइं गयणगइदुअं विसड्डिपरिवत्ता ॥२४०॥

मप्यडिवक्ता ६२ ।

ता का इति चेदाऽऽह—साताऽसातद्वयं २ वेदास्त्रयः ३ हास्यरत्यरतिशोकचतुष्कं ४ एकद्वि-त्रि-चतु-पञ्चेन्द्रियजातिपञ्चकं ५ समचतुर्न्नादिसंस्थानपट्कं ६ वज्रवृषभनाराचमंहननादिपट्कं ७ नरकगत्याद्याऽऽनुपूर्वीचतुष्कं ८ नरकाद्विगतिचतुष्कं ९ औदारिक वैक्रियिकशरीरद्वयं २ नौचोच्चगोत्रद्वयं २ औदारिक वैक्रियिकशरीरगङ्गोपाङ्गद्वयं २ त्रसद्वयं २ वादरद्वयं २ पर्यासद्वयं २ प्रत्येकद्वयं २ स्थिरद्वयं २ शुभद्वयं २ सुन्दरद्वयं २ आदेशद्वयं २ यग-कौत्सिद्वयं २ चेति दश-युगल-त्रसादिकं प्रगन्नाऽप्रशस्तगतिद्वयं २ इति द्वापष्टिः परिवर्त्तिकाः । परावर्त्तिकाः सप्रतिपक्षाः ६२ । एकादश निःप्रतिपक्षाः । इत्येकाकृतानां त्रिसप्तत्यभ्रुवाणां प्रकृतीनां ७३ सादिवन्वाऽभ्रुवन्धी भवतः । अत्र विगेषः—साताऽसातद्वयं त्रिवन्ध्युक्तं गोत्रद्वयं चतुर्वन्ध्युक्तं चेति मूलप्रकृतिषु प्रोक्तमस्ति तेन ज्ञायत इति ॥२३९-२४०॥

सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीनों वेद, हास्यादि चार, जातियाँ पाँच, संस्थान छह, संहनन छह, आनुपूर्वी चार, गति चार, औदारिक और वैक्रियिक ये दो शरीर, तथा इन दोनोंके दो अंगोपांग, दो गोत्र, त्रसादि दश युगल और दो विहायोगति, ये वासठ सप्रतिपक्ष अभ्रुवन्धी प्रकृतियाँ हैं ॥२३९-२४०॥

अब मूल प्रकृतिस्थान और भुजाकारादिका निरूपण करते हैं—

[मृलगा० ३६]^१ चत्वारि पयडिठाणाणि तिणिण भुजगार अप्पयराणि ।

मूलपयडीसु एवं अवड्डिओ चउसु णायच्चो ॥२४१॥

मूलप्रकृतिषु सामान्यवन्प्रस्थानानि अष्टकं ८ सप्तकं ७ पट्कं ६ एककं १ इति चत्वारि मा० ३६।१। मिथ्यान्वाऽऽद्यप्रमत्तान्ता अष्टौ कर्माणि वदन्ति ८ । ततः अपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणां आयुर्विना मत्त कर्माणि वदन्तः ७ । सूक्ष्मसात्परायः पट् कर्माणि वदन्ति ६ । उपशान्तः एकं सातं वदन्ति १ । एतेषां च उपशमप्रेषाऽवतरगे भुजाकारवन्वान्प्रयः १ ६ ७ । तद्यथा—उपशान्तो मुनिः एकं सातं कर्म वच्चा सूक्ष्मान्परायं गतः सन् आयुर्नोहद्वयं विना पट् कर्माणि वदन्ति ६ । सूक्ष्मान्परायो मुनिः कर्मपट्कं वच्चा अनिवृत्तिकरणमपूर्वकरणं च समागतः सन् आयुर्विना सप्त कर्माणि वदन्ति ७ । तत्र कर्मसप्तकं वच्चा अप्रमत्त-प्रमत्त-देशमयनाऽप्ययत-मास्वादन-मिथ्यावगुणान् प्राप्तः सन् अष्टौ कर्माणि वदन्ति ८ । मिथ्ये आयुर्विना

१. सं० पञ्चसं० ८, १११-११२ । २. ४, ११३ ।

१. शतक० ४२ ।

सप्त कर्माणि बध्नातीत्यर्थः । उपर्युपरि गुणस्थानारोहणे अल्पतरबन्धास्त्रयः ८ ७ ६ । तथाहि—प्रमत्तोऽप्रमत्तो वा अष्टौ कर्माणि बध्नान् अपूर्वकरणेऽनिवृत्तिकरणे च चटितः सन् आयुर्विना सप्त कर्माणि बध्नाति ७ । तत्र कर्मसप्तकं बध्नान् सूक्ष्मसाम्पराये चटितः सन् आयुर्मोहद्वयं विना षट् कर्माणि बध्नाति ६ । सूक्ष्मसाम्परायस्थः कर्मषट्कं बध्नान् उपशान्तादिकं प्राप्तः सन् एकं सातं कर्म १ बध्नातीत्यर्थः । स्वस्थानेऽवस्थितबन्धाश्चत्वारो भवन्ति ८ ७ ६ १ । अल्पं बध्ना बहु बध्नातः भुजाकारो बन्धः १ । बहु बध्नाऽल्पं बध्नातोऽल्पतरबन्धः स्यात् २ । अल्पं बहु वा बध्नाऽनन्तरसमये तावदेव बध्नातोऽवस्थितबन्धः ३ । किमप्यऽबध्ना पुनर्बध्नातोऽवस्थितबन्धः ४ । किमपि बध्नाऽवस्थितबन्धनादयं भेदो मूलप्रकृतिबन्धस्थानेष्वस्ति ॥२४१॥

मूल प्रकृतियोंके प्रकृतिस्थान चार हैं, भुजाकार तीन हैं, अल्पतर तीन है, और अवस्थित-बन्ध चार जानना चाहिए ॥२४१॥

बध्नाणाणि	८।७।६।१	भुजयारा	१ ६ ७
			६ ७ ८
अल्पयारा	८ ६ १	अवस्थिता	८ ७ ६ १
	७ ६ १		८ ७ ६ १
बन्धस्थानानि	८।७।६।१। भुजाकारा	१ ६ ७	अल्पतराः ६ ७ ८
		६ ७ ८	अवस्थिताः ८ ७ ६ १

चार प्रकृतिबन्धस्थान इस प्रकार हैं—८।७।६।१।

तीन भुजाकार बन्ध इस प्रकार हैं—१।६।७।
६।७।८।

तीन अल्पतर बन्ध इस प्रकार हैं—८।७।६।
७।६।१।

चार अवस्थितबन्ध इस प्रकार हैं—८।७।६।१।
८।७।६।१।

विशेषार्थ—उक्त अर्थका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्त-गुणस्थान तकके जीव आठों ही कर्मोंका बन्ध करते हैं । अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान वाले जीव आयुके विना शेष सात कर्मोंका बन्ध करते हैं । सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीव मोह और आयुके विना छह कर्मोंका बन्ध करते हैं । उपशान्तकपायादि तीन गुणस्थानवर्ती जीव एक सातावेदनीय कर्मका बन्ध करते हैं । इस प्रकार आठ, सात, छह और एक प्रकृतिरूप चार प्रकृतिबन्धस्थान होते हैं । इनके तीन भुजाकारबन्धोंका विवरण इस प्रकार है—उपशान्त-कपायसंयत एक सातावेदनीयकर्मका बन्ध करके उतरता हुआ जब दशवे गुणस्थानमें आता है, तब वहाँ वह मोह और आयुके विना शेष छह कर्मोंका बन्ध करने लगता है । यह एक भुजाकार-बन्ध हुआ । पुनः दशवे गुणस्थानसे भी नीचे आकर जब नवें और आठवे गुणस्थानको प्राप्त होता है, तब वहाँ पर आयुकर्मके विना शेष सात कर्मोंका बन्ध करने लगता है, यह छहसे सात कर्मके बंधने रूप दूसरा भुजाकारबन्ध हुआ । पुनः वही जीव और भी नीचेके गुणस्थानोंमें उतरकर आठों कर्मोंका बन्ध करने लगता है । यह सातसे आठ कर्मके बंधनेरूप तीसरा भुजाकार बन्ध हुआ । इसी प्रकार ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़नेपर तीन अल्पतर बन्धस्थान होते हैं—जैसे आठ कर्मका बन्ध करनेवाला कोई प्रमत्त या अप्रमत्तसंयत अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें चढ़कर आयुके विना सात कर्मोंका ही बन्ध करने लगता है । यह प्रथम अल्पतर बन्धस्थान हुआ । वही जीव दशवे गुणस्थानमें पहुँच कर मोह और आयुके विना छह कर्मोंका बन्ध करने

लगता है। यह दूसरा अल्पतर बन्धस्थान हुआ। वही जीव ग्यारहवें या बारहवें गुणस्थानमें चढ़कर एक सातावेदनीय कर्मका बन्ध करने लगता है, तब तीसरा अल्पतर बन्धस्थान होता है। पूर्व समयमें आठों कर्मोंका बन्ध कर उत्तर समयमें भी आठों ही कर्मोंका बन्ध करना, पूर्व समयमें सात कर्मोंका बन्ध कर उत्तर समयमें भी सात ही कर्मोंका बन्ध करना, पूर्व समयमें छह कर्मोंका बन्ध कर उत्तर समयमें भी छह ही कर्मोंका बन्ध करना और पूर्व समयमें एक कर्मका बन्ध करके उत्तर समयमें भी एक ही कर्मका बन्ध करना; इस प्रकारसे चार अवस्थित बन्धस्थान होते हैं।

अब उत्तर प्रकृतियोंके प्रकृतिस्थान और भुजाकारादि बतलाते हैं—

[मूलगा० ४०] 'तिणिण दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरण-मोह-णामाणं ।

एत्थेव य भुजयारा सेसेसेयं हवह् ठाणं' ॥२४२॥

अथोत्तरप्रकृतीनां तत्समुत्कीर्त्तनमाह—दर्शनावरण-मोह-नामकर्मणां बन्धस्थानानि क्रमशः त्रीणि ३ दश १० अष्टौ ८ भवन्ति । तेन भुजाकारबन्धा अप्येवमेव, नान्येषु । शेषेषु मध्ये ज्ञानावरणेऽन्तराये च पञ्चात्मक एक बन्धस्थानम् । गोत्राऽऽयुर्वेदनीयेष्वेकात्मक चैकैकमेव बन्धस्थान भवेदिति कारणम् ॥२४२॥

दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्मके क्रमशः तीन, दश और आठ प्रकृतिबन्धस्थान हैं। इनमें यथासम्भव भुजाकार बन्ध होते हैं। उक्त कर्मोंके सिवाय शेष पाँच कर्मोंके एक एक ही बन्धस्थान होता है ॥२४२॥

अब दर्शनावरणकर्मके तीन बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^२णव छक्क चउकं च हि दंसणावरणस्स होंति ठाणाणि ।

भुजयारप्पयरा दो अवट्ठिया होंति तिण्णेव ॥२४३॥

बंधठाणाणि—६, ६, ४ ।

दर्शनावरणस्य त्रीणि स्थानानि कानि चेदाऽऽह—दर्शनावरणस्य बन्धस्थानानि त्रीणि भवन्ति—नवप्रकृतिक ६ । स्त्यानगृद्धित्रयेण विना पट्-प्रकृतिक ६ । पुनः निद्रा-प्रचले विना चतुःप्रकृतिक ४ चेति त्रीणि । तेषां भुजाकारौऽल्पतरौ द्वौ, अवस्थितबन्धास्त्रयो भवन्ति । चशब्दादवक्तव्यबन्ध (?) एव स्युः ६।६।४ ॥२४३॥

दर्शनावरण कर्मके तीन बन्धस्थान हैं—नौ प्रकृतिरूप, स्त्यानगृद्धित्रिकके विना छह प्रकृतिरूप और निद्रा-प्रचलाके विना चार प्रकृतिरूप। इनमें दो भुजाकार, दो अल्पतर और तीन अवस्थित बन्ध होते हैं ॥२४३॥

दर्शनावरणके बन्धस्थान तीन हैं—६, ६, ४ ।

अब दर्शनावरणके भुजाकार बन्धोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

^३चउ छक्कं बंधंतो छण्णव बंधेह् होंति भुजयारा ।

विवरीया अप्पयरा णवाइ हु अवट्ठिया णेया ॥२४४॥

भुजयारा ४ ६ अप्पयरा ६ ६ अवट्ठिया ६ ६ ४ ।
६ ६ ४ ६ ४ ६ ६ ४ ।

उपशमश्रेण्यावरोहको मुनिरपूर्वकरणद्वितीयभागे चतुःप्रकृतिक बध्नाति । तत्प्रथमे भागे अवतीर्णः पट्प्रकृतिक बध्नाति ^४ ६ । प्रमत्तो देशसयतो मिश्रो वा पट् प्रकृतिक बध्न् मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा वा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिः सास्वादनो भूत्वा नवप्रकृतिक बध्नाति ^६ ६ । भुजाकारौ द्वौ भवतः ^४ ६ । तद्विपरीतौ अल्पतरौ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखो मिथ्यादृष्टिरनिवृत्तिकरणलब्धिचरमसमये नवप्रकृतिक बध्नन्नन्तरसमयेऽसयतो देशसयतः प्रमत्तो वा भूत्वा पट्-प्रकृतिक बध्नातीति ^६ ६ । तथोपशमकः क्षपको वाऽपूर्वकरणः प्रथमभागचरमसमये पट्-प्रकृतिकं बध्न् द्वितीयभागप्रथमसमये चतुःप्रकृतिक बध्नातीत्यल्पतरौ द्वौ भवतः ^६ ६ । नवादयोऽवस्थितास्त्रयो ज्ञेयाः । तथाहि—मिथ्यादृष्टिः सासादनो वा नवप्रकृतिक मिश्राद्यपूर्वकरणप्रथमभागान्तः पट्प्रकृतिकं ^६ ६ अपूर्वकरणद्वितीयभागादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तः चतुःप्रकृतिक च बध्न् ^४ ६ अनन्तरसमये तदेव बध्नातीत्यवस्थितवन्धास्त्रयः ^६ ६ ४ ॥२४४॥

उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला जीव अपूर्वकरणके द्वितीय भागमे चार प्रकृतिक स्थानका बन्ध करके प्रथम भागमें उतरकर छह-प्रकृतिक स्थानका बन्ध करने लगता है, यह प्रथम भुजाकार हुआ । पुनः और भी नीचे उतर कर मिथ्यादृष्टि होकर, अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वा सासादनसम्यग्दृष्टि होकर नौ प्रकृतिस्थानका बन्ध करने लगता है, यह दूसरा भुजाकार हुआ । इस प्रकार दर्शनावरणके दो भुजाकार बन्ध होते हैं । इससे विपरीत क्रममें अर्थात् क्रमशः ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़ने पर दो अल्पतर बन्ध होते हैं—नौ प्रकृतिक स्थानको बाँधकर छह प्रकृतिक स्थानके बाँधनेपर पहला अल्पतर बन्ध होता है । तथा छहको बाँधकर चारके बाँधने पर दूसरा अल्पतर बन्ध होता है । अवस्थित बन्ध तीन होते हैं—नौका बन्ध कर पुनः नौके बाँधने पर पहला, छहका बन्धकर पुनः छहके बाँधने पर दूसरा और चारका बन्धकर पुनः चारके बाँधने पर तीसरा ॥२४४॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है ।

अब दर्शनावरण कर्मके कितने प्रकृतिक स्थानका कहाँ तक बन्ध होता है, इस बातका निरूपण करते हैं—

^१मिच्छा सासण णवयं मिस्साइ-अपुव्वपढमभायंता ।

थीणतिगूणं णिदादुगूणं बंधंति सुहुमंता ॥२४५॥

मिथ्यात्व-सास्वादनस्थाः दर्शनावरणस्थ नवप्रकृतिक बन्धन्ति । मिश्राद्यपूर्वकरणगुणस्थानप्रथमभागपर्यन्तस्थाः जीवाः स्थानगृद्धित्रिकोनपट्प्रकृतिक बन्धन्ति । अपूर्वकरणद्वितीयभागात् सूक्ष्मसाम्परायान्ता जीवा निद्रा-प्रचलोनचतुःप्रकृतिक ४ बध्न्ति ॥२४५॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं । मिश्रगुण-स्थानको आदि लेकर अपूर्वकरणके प्रथम भाग तकके जीव स्थानगृद्धित्रिकके विना छह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं । अपूर्वकरणके द्वितीय भागसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तकके जीव निद्राद्विकके विना चार प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं ॥२४५॥

६।६।६।६।६।६ १अपुन्वपदमसत्तमभागे ६ । अपुन्वविद्वियसत्तमभागप्पहुई जाव सुहुमता ४ ।

मि० ६ सा० ६ मि० ६ अ० ६ दे० ६ प्र० ६ । अपूर्वकरणस्य प्रथमभागे ६ । अपूर्वकरणस्य द्वितीयादिसप्तभागप्रभृति सूचमान्ताः ४ ।

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—

गुणस्थान— १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ प्रथम भाग ८ द्वितीयादिभाग ६ १०

बन्धस्थान— ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ४ ४ ४

अब मोहकर्मके बन्धस्थान और भुजाकारादिका निरूपण करते हैं—

^२दस बंधट्टाणाणि मोहस्स हवन्ति वीस भुजयारा ।

एयारप्पयराणि य अवट्टिया होंति तेत्तीसा ॥२४६॥

अथ मोहनीयस्य स्थानादिसमुत्कीर्तन—मोहनीयस्य कर्मणो बन्धस्थानानि दश भवन्ति १० । किं स्थानम् ? एकस्य जीवस्य एकस्मिन् समये सम्भवतीनां प्रकृतीनां समूहः । तत्स्थानसमुत्कीर्तनम् । मोहनीयस्य विंशतिः भुजाकारबन्धाः २० । अल्पतरबन्धा एकादश ११ अवस्थितबन्धास्त्रयस्त्रिंशत् ३३ भवन्ति ॥२४६॥

मोहकर्मके बन्धस्थान दश होते हैं । तथा भुजाकार बीस, अल्पतर ग्यारह और अवस्थित बन्ध तेत्तीस होते हैं ॥२४६॥

अब मोहके दश बन्धस्थानों को बतलाते हैं—

वावीसमेकवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच ।

चउ तिय दुयं च एक्कं बंधट्टाणाणि मोहस्स ॥२४७॥

२२।२१।१७।१३।६।५।४।३।२।१।

दश बन्धस्थानानि कानि चेठाऽऽह—मोहस्य बन्धस्थानानि द्वाविंशतिकं एकविंशतिकं सप्तदशकं त्रयोदशकं नवकं पञ्चकं चतुष्कं त्रिकं द्विकं एककं चेति दश १० । मिथ्यादष्टौ द्वाविंशतिकं २२ सास्वादने विंशतिकं २१ मिश्रामयतयोः सप्तदशकं १७ त्रेशसयते त्रयोदशकं १३ प्रमत्तेऽप्रमत्तेऽपूर्वकरणे च प्रत्येकं नवकं ६ अनिवृत्तिकरणे पञ्चकं ५ चतुष्कं ४ त्रिकं ३ द्विकं २ एककं १ च ॥२४७॥

२२ २१ १७ १३ ६ ५ ४ ३ २ १

वाईस, इक्कीस, सत्तरह, तेरह, नौ, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप मोहके दश बन्धस्थान होते हैं ॥२४७॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—२२, २१, १७, १३, ६, ५, ४, ३, २, १ ।

अब उक्त बन्धस्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश करते हुए उनके गुणस्थानादिका निरूपण करते हैं—

^३मिच्छम्मि य वावीसा मिच्छा सोलस कसाय वेओ य ।

हस्साइजुयलेक्किंदा भएण' विदिए दु मिच्छ-संदूणा ॥२४८॥

मिथ्यादष्टौ मिथ्यात्वं १ षोडश कषायाः १६ वेदानां त्रयाणां मध्ये एकतरवेदः १ हास्यरतियुग्माञ्जति-शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्म २ निन्दाभयेन सहितं युग्म २ इति मिलिते द्वाविंशतिकं स्थानं मिथ्या-दष्टिर्वध्नाति । १ १६ १ २ २ मीलित्वा २२ । 'विदिए दु मिच्छ-संदूणा' इति सासादने द्वितीये मिथ्यात्वेन रहितमेकविंशतिकम् । पण्डोना पण्डस्य मिथ्यात्वे व्युच्छेदः । स्त्री-पुवेदयोर्मध्ये एकतरवेदः ॥२४८॥

१. स० पञ्चसं० 'अपूर्व प्रथम' इत्यादि गद्यभागः । (पृ० ११७) । २. ४, ११८ । ३. ४, ११६ ।

१. गो० क० ४६३ ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमे बाईस प्रकृतिके स्थानका बन्ध होता है। वे बाईस प्रकृतियों इस प्रकार है—मिथ्यात्व, सोलह कपाय, तीन वेदोमेसे एक वेद, हास्यादि दो युगलोंमेसे एक युगल और भय-जुगुप्सा। दूसरे गुणस्थानमे मिथ्यात्वको छोड़कर शेष इक्कीस प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध होता है। यहाँ नपुंसक वेदका भी बन्ध नहीं होता है, अतएव दो वेदोंमेसे किसी एक वेदको ही लेना चाहिए ॥२४८॥

२
२ २
११६।१।२।२ मेलिया २२ मिच्छन्मि २२। पच्छायारो १ १ १ भगा ६। सासणे २१।
४ ४ ४ ४
१

२
२ २
पत्थायारो जहा १ १ ० । भगा ४।
४ ४ ४ ४

२ भ
२ २
मिथ्यात्वे प्रस्तारः १ १ १ तद्गङ्गाः हास्यारतिद्विकाभ्यां वेदत्रये हते पट् २ २।
४ ४ ४ ४
मि० १

२
२ २
प्रस्तारः १ १ ० सासादने षोडश कपायाः १६ वेदयोर्मध्ये एकतरवेदः १ हास्यादियुग्म २
४ ४ ४ ४ भयद्वयम् २ १६ १ २ २ मीलिताः २१। तद्गङ्गाः वेदद्वययुग्मजाः
४ ४ ४ ४ चत्वारः ४।

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—मि० कपाय वेद हा० भय०
 $१ + १६ + १ + २ + २ = २२$

प्रस्तारका आकार मूलमे दिया है। मिथ्यात्व गुणस्थानमे तीन वेदोसे हास्यादि दो युगलों-के गुणा करने पर छह भंग होते हैं। सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्वके बिना शेष इक्कीस प्रकृतियों-का बन्ध होता है। प्रस्तारकी रचना मूलमे दी है। यहाँ नपुंसकवेदके बन्ध न होनेसे दो वेदोंको हास्यादि दो युगलोंसे गुणा करने पर चार भंग होते हैं।

१पठमचउक्केणिथी-रहिया मिस्से अविश्यसम्मे य ।

विदिणूणा देसे छठे तइऊण सत्तमट्टे य ॥२४९॥

मिश्रगुणस्थाने अविरतसम्यग्दृष्टौ च अनन्तानुबन्धि-प्रथमचतुष्कं विना शेषाः सप्तदश । स्त्रीवेदः सासादने विच्छिन्नः, पुवेदः एक एव १। देशसयसेऽप्रत्याख्यानद्वितीयचतुष्कं विना त्रयोदश १३। षष्ठे प्रमत्तेऽ-प्रमत्ते सप्तमे अष्टमेऽपूर्वकरणे च प्रत्याख्यानतृतीयचतुष्कं विना शेषा नवैव ६ ॥२४९॥

मिश्र और अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे प्रथम चतुष्क अर्थात् अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विना सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ पर स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता, केवल एक पुरुष-

वेदका ही बन्ध होता है। देशविरत गुणस्थानमे द्वितीय चतुष्क अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण चौकड़ीके बिना शेष तेरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। छठे, सातवें और आठवें गुणस्थानमे तृतीय चतुष्क अर्थात् प्रत्याख्यानावरण चौकड़ीके बिना नौ प्रकृतियोंका बन्ध होता है ॥२४६॥

मिस्त्रासजयाण १७ । पत्थायारो जहा $\begin{array}{c} 2 \\ 2 \ 2 \\ 0 \ 1 \ 0 \\ 3 \ 3 \ 3 \ 3 \end{array}$ । भंगा २ । देसे १३ । पत्थायारो $\begin{array}{c} 2 \\ 2 \ 2 \\ 0 \ 1 \ 0 \\ 2 \ 2 \ 2 \ 2 \end{array}$

भगा २ । पमत्ते ६ । पत्थायारो $\begin{array}{c} 2 \\ 2 \ 2 \\ 0 \ 1 \ 0 \\ 1 \ 1 \ 1 \ 1 \end{array}$ भगा २ ।

मिश्राऽसंयतयोः प्रस्तारौ यथा— $\begin{array}{c} 2 \\ 2 \ 2 \\ 0 \ 1 \ 0 \\ 3 \ 3 \ 3 \ 3 \end{array}$ हास्यारतिद्विकजौ द्वौ द्वौ भङ्गौ $\begin{array}{c} 1 \ 1 \\ 2 \ 2 \end{array}$ ।

देशसयते १३ प्रस्तारः— $\begin{array}{c} 2 \\ 2 \ 2 \\ 0 \ 1 \ 0 \\ 2 \ 2 \ 2 \ 2 \end{array}$ तद्भङ्गौ द्विकद्वयजौ [द्वौ] $\begin{array}{c} 1 \ 2 \\ 2 \end{array}$ ।

प्रमत्ते ६ प्रस्तारः— $\begin{array}{c} 2 \\ 2 \ 2 \\ 0 \ 1 \ 0 \\ 1 \ 1 \ 1 \ 1 \end{array}$ तद्भङ्गौ द्विकजौ ६ ।

मिश्र और अविरत गुणस्थानमें सत्तरह-सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इनके प्रस्तारकी रचना मूलमे दी है। यहाँपर हास्यादि दो युगलोंकी अपेक्षा भंग दो-दो ही होते हैं। देशविरत गुणस्थानमे तेरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रस्तारकी रचना मूलमे दी है। भंग पूर्ववत् दो ही होते हैं। प्रमत्तविरतमे नौ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रस्तारकी रचना मूलमे दी है। यहाँ पर भी भंग दो ही होते हैं।

^१अरई सोएणूणा परम्मि पुंवेय संजलणा ।

एणेणूणा एवं दह द्वाणा मोहबंधम्मि ॥२५०॥

प्रमत्तेऽरति-शोकद्वयबन्धविच्छिन्नत्वाद्प्रमत्तापूर्वकरणयोः । अरतिशोकोनाः । एव सति सख्यामध्ये भेदो न, संख्या तावन्मात्रा ६ । किन्तु भङ्ग एक एव । परस्मिन् अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेषु पुवेद-सञ्चलनक्रोध-मान-माया-लोभानां मध्ये क्रमेणैकोनाः । एव मोहबन्धे दश स्थानानि ॥२५०॥

प्रमत्तविरतमे अरति और शोक युगलकी बन्धव्युच्छिन्ति हो जानेसे सातवें और आठवें गुणस्थानमे उनका बन्ध नहीं होता, अतएव उनमे एक-एक ही भंग होता है। इससे परे नवें गुणस्थानमें पुरुषवेद और सञ्चलनचतुष्क, इन पाँचका बन्ध होता है, तथा पुरुषवेद आदि एक-

एक प्रकृतिके बन्ध कम होते-जानेसे चार, तीन, दो और एक प्रकृतिका भी बन्ध होता है। इस प्रकार सर्व मिलाकर मोहनीय कर्मके दश बन्धस्थान होते हैं ॥२५०॥

अप्पमत्तापुब्बाण १ । पत्थारो जहा २ भगा १ अणियट्ठियम्मि ५।४।३।२।१। पत्थारो
१ १ १ १

१ १ १ १ ।

अप्रमत्तापूर्वकरणयोः ६ । संज्वलन ४ भयद्विकेपु २ वेद १ हास्यद्विके २ च मिलिते नवकम् ६ ।

प्रस्तारो यथा— तद्भङ्गः एकः । अत्र हास्यद्वक-भयद्विके व्युच्छिन्ने अनिवृत्ति-
करणस्य पञ्चसु भागेषु ५ ४ ३ २ १ प्रस्तारः— १ १ १ १

चतुःसंज्वलनकपायेषु पुवेदे मिलिते पञ्चकम् । तद्भङ्गः— ५ । अत्र प्रथमे भागे पुवेदो व्युच्छिन्नः । द्वितीये
भागे कपायचतुष्कम् । तद्भङ्गः— ४ । अत्र क्रोधो व्युच्छिन्नः । तृतीयभागे कपायत्रयम् । भङ्ग एकः ३ ।

अत्र मानो व्युच्छिन्नः । चतुर्थभागे कपायद्वयम् । भङ्ग एकः २ । अत्र माया व्युच्छिन्ना । पञ्चमभागे लोभः ।

एकभङ्गः १ ।

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणमें नौ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । इनकी प्रस्ताररचना मूलमें दी है । यहाँ पर भंग एक-एक ही होता है । अनिवृत्तिकरणके पाँचो भागोमे क्रमशः पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिका बन्ध होता है । इनकी प्रस्ताररचना मूलमें दी है ।

अब मोहनीय कर्मके सर्व बन्धस्थानोंके भगोंका निरूपण करते हैं—

छव्वावीसे चउ इगिवीसे सत्तरस तेर दो दो दु ।

णवबंधए वि एवं एगेगमदो परं भंगा ॥२५१॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।१।

उक्तभङ्गसंख्यामाह—मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणान्तेषु उक्तमोहनीयबन्धस्थानेषु भङ्गाः—द्वाविंशतिके
पट् भङ्गाः ६ । एकविंशतिके चत्वारो भङ्गाः ४ । सप्तदशके द्विवारं द्वौ द्वौ भङ्गौ २ । २ । त्रयोदशके नवक-
बन्धेऽपि प्रमत्तपर्यन्त द्वौ द्वौ भङ्गौ २।२ अन्त उपरि सर्वस्थानेषु एकैको भङ्गः १ ॥२५१॥

मि० सा० मि० अ० दे० प्रम० अप्र० अपू० अनि० अनि० अनि० अनि० अनि०

२२ २१ १७ १७ १३ ६ ६ ६ ५ ४ ३ २ १

६ ४ २ २ २ २ १ १ १ १ १ १ १

वाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें छह भंग होते हैं, इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानमे चार भंग होते हैं । सत्तरह, तेरह और नौ प्रकृतिक बन्धस्थानमें दो-दो भंग होते हैं । इससे परवर्ती पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बन्धस्थानोमे एक-एक ही भंग होता है ॥२५१॥

इन भंगोंकी अंकसंहति इस प्रकार है—६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।१।

अथ मोहनीयकर्मके बीस भुजाकार बन्धोंका निरूपण करते हैं—

¹एकई पण्यंत ओदरमाणो दुगाहणवयंत ।

बंधतो बंधेइ सत्तरसं वा सुरेसु उववण्णो ॥२५२॥

अल्पप्रकृतिकं बध्नन् अनन्तरसमये बहुप्रकृतिकं च बध्नाति, तदा भुजाकारबन्धः स्यात् । मोहनी-
यस्य विंशतिः भुजाकारबन्धाः कथ्यन्ते—एकादिपञ्चान्तं अधोऽवतरन् अनिवृत्तिकरणः बध्नन् द्विकादि-गवान्तं
बध्नाति । वा अथवा सुरे देवलोकं वैमानिकेऽस्य तदेव उत्पन्नः सप्तदश बध्नाति ॥२५२॥

उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला अनिवृत्तिकरणसंयत एकको आदि लेकर पाँच प्रकृतिपर्यन्त
स्थानोंका बन्ध करता हुआ दो को आदि लेकर नौ प्रकृतिपर्यन्त स्थानोंका बन्ध करता है, अथवा
देवोंमें उत्पन्न होता हुआ सत्तरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है ॥२५२॥

अणियट्ठी एयं बधतो हेट्ठा ओदरिय दुविह बधइ । तत्थेव काल काऊण देवेसुप्पण्णो सत्तरसं वा
बंधइ । एवं सव्वत्थ उच्चारणीयं ।

	१	२	३	४	५
मोहभुजयारा—	२	३	४	५	६
	१७	१७	१७	१७	१७

अनिवृत्तिकरणः एक बध्नन् अधः उत्तीर्य द्विविधं २ बध्नाति । वा अथवा तत्रैवैकबन्धस्थानकेऽधोऽ-
वतरन् संज्वलनलोभ-मायाद्वयं बध्नन् कालं कृत्वा मरणं प्राप्य वैमानिकदेवे उत्पन्नः सप्तदशकं १७ बध्नाति ।
एव सर्वत्रोच्चारणीयम् ।

	१	२	३	४	५
मोहभुजाकाराः—	२	३	४	५	६
	१७	१७	१७	१७	१७

अनिवृत्तिकरणसंयत एक संज्वलन लोभका बन्ध करता हुआ नीचे उतरकर संज्वलन
माया और लोभरूप दो प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है । अथवा यदि वह बद्धायुष्क है और
यदि आयुका क्षय हो जाता तो यहीं पर मरण कर वैमानिक देवोंमें उत्पन्न होता हुआ सत्तरह
प्रकृतिकस्थानका बन्ध करता है । इस प्रकार एकका बन्ध कर दो प्रकृतिकस्थानके बाँधनेपर एक
भुजाकार बन्ध हुआ, तथा सत्तरह प्रकृतिक स्थानके बाँधने पर दूसरा भुजाकार बन्ध हुआ ।
इस प्रकार एक प्रकृतिक स्थानके दो भुजाकार बन्ध होते हैं । इसी प्रकार सर्वत्र उच्चारण करना
चाहिए । अर्थात् दो, तीन, चार और पाँच प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता हुआ अनिवृत्तिकरण-
संयत क्रमशः तीन, चार, पाँच और नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है, अथवा मरणकर
देवोंमें उत्पन्न होके सत्तरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है । अतएव दो, तीन, चार और पाँच
प्रकृतिक स्थानके भी दो-दो भुजाकार बन्ध होते हैं । इस प्रकार ये सर्व मिलकर दश भुजाकार
हो जाते हैं । इनकी अकसंह्य मूलमें दी गई है ।

अथ आधी गाथाके द्वारा शेष भुजाकारोंका वर्णन करते हैं—

णवगाई बंधतो सव्वे हेट्ठाणि बंधदे जीवो ।

	६	१३	१७	२१
	१३	१७	२१	२२
भुजयारा—	१७	२१	२२	
	२१	२२		
	२२			

['णवगाईं वधतो' इत्यादि ।] नवकाद्येकविंशतिपर्यन्त वध्नतः सर्वाधोऽधः स्थानानि जीवो वध्नाति ।

	प्र०	६	१३	१७	२१
	दे०	१३	१७	२१	२२
भुजाकाराः—	अ०	१७	२१	२२	
	मि०	१७	२२		
	सा०	२१			
	मि०	२२			

तद्यथा—विंशतिभुजाकाराणां सम्भवत्प्रकारः पुनः विंशदतयोच्यते—भवरोहकानिवृत्तिकरणो मुनिः सज्ज्वलनलोभमेक १ वध्नन् अधस्तनभागेऽवतीर्य मायासहित द्विक २ वध्नाति । वा स यदि बद्धायुष्को म्रियते

तदा देवासयतो भूत्वा सप्तदशक १७ वध्नातीत्येकबन्धके भुजाकारौ द्वौ २ । पुनः तद्वद्वय सज्ज्वलनलोभ-
१७

मायाद्वय २ वध्नन् अवतीर्याधोभागे मानसहित त्रिक वध्नाति । वा तथा देवासयतो भूत्वा सप्तदश
२
वध्नातीति द्विकबन्धके द्वौ भुजाकारौ ३ । पुनः सज्ज्वलनलोभ-माया-मानत्रय वध्नन्नवतीर्याधस्तनभागे चतु-
१७

सज्ज्वलनान् ४ वध्नाति । वा देवासयतो भूत्वा सप्तदश च वध्नातीति त्रिवन्धके भुजाकारौ द्वौ ४ । पुनः
१७

सज्ज्वलनचतुष्कं वध्नन्नवतीर्याधस्तनभागे पुवेदसहित पञ्चक ५ वध्नाति । वा [देवाऽ] सयतो भूत्वा
४
सप्तदश वध्नातीति चतुष्कबन्धके द्वौ भुजाकारौ ५ । पुनस्तत्पञ्चक वध्नन्नवतीर्यापूर्वकरणे नवक वध्नाति ।
१७

वा देवासयतो भूत्वा सप्तदश वध्नातीति पञ्चबन्धके द्वौ भुजाकारौ ६ ।
१७

पुनः अपूर्वकरणोऽग्रमत्तः प्रमत्तो वा नवकं ६ वध्नन् क्रमेणावतीर्य देशसयतो भूत्वा त्रयोदश १३,
वा देवासयतो भूत्वा सप्तदश १७, वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वः स सासादनो भूत्वा एकविंशति २१, वा
वेदकसम्यक्त्वी मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा द्वाविंशति च वध्नाति । एव नवकबन्धके चत्वारो भुजाकारबन्धाः

६
१३
१७ । पुनस्त्रयोदश १३ बन्धको देशसयतोऽसयतो देवासयतो वा भूत्वा सप्तदश १७, वा प्रथमोपशम-
२१
२२

सम्यक्त्वः सः सासादनो भूत्वा एकविंशति २१, वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वो वेदकसम्यक्त्वश्च स मिथ्यादृष्टि-
१३
भूत्वा द्वाविंशति च वध्नातीति त्रयोदशके त्रयो भुजाकारबन्धाः १७ । पुनस्तत्सप्तदशक १७ बन्धकः प्रथ-
२१
२२

मोपशमसम्यक्त्वः सासादनो भूत्वा एकविंशति २१, वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वो वेदकसम्यक्त्वो मिथ्यश्च
१७
मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा द्वाविंशति २२ च वध्नातीति सप्तदशबन्धे द्वौ भुजाकारौ २१ । पुनस्तदेकविंशति २१ वध्नन्
२२

मिव्यादष्टिर्भूत्वाऽस्मिन् अन्यस्मिन् वा भवे द्वाविंशति वध्नातीति एकविंशतिवन्धे एको भुजाकारवन्धः २१ ।

एवं भुजाकारा विंशति. २० ॥२५२३॥

नौ आदिस्थानोका वन्ध करता हुआ जीव अधस्तन सर्व स्थानोंका वन्ध करता है ॥२५२३॥

विशेषार्थ—नौ प्रकृतिक स्थानका वन्ध करनेवाला जीव नीचे उतरकर पाँचवे गुणस्थानमें पहुँचनेपर तेरहका, चौथे गुणस्थानमें पहुँचने पर सत्तरहका, दूसरे गुणस्थानमें पहुँचनेपर इक्कीसका और पहले गुणस्थानमें पहुँचने पर वाईसका वन्ध करता है । इसी प्रकार तेरह प्रकृतिक स्थानका वन्ध करनेवाला जीव नीचे उतरता हुआ सत्तरह, इक्कीस और वाईसका वन्ध करता है । सत्तरह प्रकृतिका बाँधनेवाला नीचे उतरकर इक्कीस और वाईसका वन्ध करता है, तथा इक्कीसवाला नीचे उतरकर वाईसका वन्ध करता है । इस प्रकार ये सर्व मिल दश भुजाकार होते हैं । इनमें ऊपर चतलाये गये दश भुजाकारोंके मिला देनेपर समस्त भुजाकार वन्धोंकी संख्या बीस हो जाती है ।

अब मोहकर्मके ग्यारह अल्पतर वन्धोंका तथा दो अवक्तव्य भंगोंका निरूपण करते हैं—

१वावीसं बंधतो सत्तरस तेरस णवाणि बंधेह ॥२५३॥

०२
अप्पयरा— १७
१३
६

२सत्तरसं बंधतो बंधेह तेरह णवाणि अप्पयरो ।

तेरहविहबंधतो बंधेह णवयं तमेव पणयं वा ॥२५४॥

१७ १३ ६
अप्पयरा— १३ ६ ५
६

३तं बंधतो चउरो बंधेह तं चिय तियं दुयं तमेक्कं च ।

उवरदबंधो हेड्डा एक्कं सत्तरस सुरेसु अवत्तन्वा ॥२५५॥

अप्पयरा— ५ ४ ३ २
४ ३ २ १

अथैकादशाल्पतरवन्धा उच्यन्ते—[‘वावीसं बंधतो’ इत्यादि ।] अल्पतरवन्धास्त्रयोऽनादिः साद्विर्वा मिव्यादष्टि करणत्रयं कुर्वन्ननिवृत्तिकरणलब्धिवचनसमये द्वाविंशतिकं वध्नन् धनन्तरममये प्रथमो-पशमसम्यग्दष्टिर्भूत्वा, वा साद्विमिव्यादष्टिरेव सम्यक्प्रकृत्युदये सति वेदकसम्यग्दष्टिर्भूत्वा भूयोऽप्यप्रत्या-स्थानोदयेऽप्यंतो भूत्वा सप्तदशकं १७ वध्नाति । वा प्रत्यास्थानोदये देशसंयतो भूत्वा त्रयोदशकं १३

२२

वध्नाति । वा संवलनोदयेऽप्रमत्तो भूत्वा नवकं ९ वध्नातीति द्वाविंशतिके त्रयोऽल्पतरवन्धाः १७ पुन-

१३ ६

वेदकसम्यग्दष्टिः द्वायिकसम्यग्दष्टिर्वाऽप्यतः सप्तदशकं १७ वध्नन् देशसंयतो भूत्वा त्रयोदशकं १३, वा

१७

प्रमत्तो भूत्वा नवकं ९ च वध्नातीति सप्तदशकवन्धे द्वौ अल्पतरौ १३ । पुनस्त्रयोदशकवन्धकोऽ १३ प्रमत्तो

६

भूत्वा नवकं बध्नाति ६ । नवकबन्धकोऽपूर्वकरणोऽनिवृत्तिकरणप्रथमभाग प्राप्तः प्रकृतिपञ्चकं बध्नाति
६ [इति] सप्तदशकबन्धे द्वौ २, त्रयोदशकबन्धे एकः १, नवकबन्धे एकः । एव अल्पतराश्चत्वारः—

१७ १३ ६
१३ ६ ५ । तत्पञ्चक बध्नन् पञ्चकबन्धकः अनिवृत्तिकरणस्य द्वितीयभागे चत्वारि बध्नाति^५ । चतुर्बन्धक-
६

स्तृतीयभागे त्रीणि बध्नाति^४ । त्रिबन्धकश्चतुर्थभागे द्वे बध्नाति^३ । द्विबन्धकः पञ्चमभागे एक बध्नाति

२ । इति एकैकाल्पतरबन्धाश्चत्वारः । इति द्वाविंशतिकबन्धादि-द्विबन्धान्तेषु अल्पतरबन्धा एकादश ११
भवन्ति । बहुप्रकृतिकं बध्नन् अनन्तरसमयेऽल्पप्रकृतिकं बध्नाति, तदाल्पतरबन्धः स्यात् । अवक्तव्यभुजा-
कारौ द्वौ । उपरतबन्धोऽबन्धः सन् उपशमश्रेण्याऽधोऽवतीर्य सूक्ष्मसाम्परायोऽस्तमोहबन्धोऽवतरणेऽनिवृत्ति-
करणो भूत्वा एकं सज्जलनलोभं बध्नातीत्येकः । स एव यदि वद्धायुष्क आरोहणेऽवरोहणे वा म्रियते, तदा
देवासयतो भूत्वा द्विधा सप्तदशकं बध्नातीति द्वौ ॥२५२३-२५५॥

चाईस प्रकृतिक बन्धस्थानका बाँधनेवाला जीव ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़कर सत्तरह, तेरह
और नौ प्रकृतिक स्थानोंका बन्ध करता है । सत्तरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करनेवाला जीव
ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़कर तेरह और नौ प्रकृतिक स्थानोंका बन्ध करता है । तेरह प्रकृतिक
स्थानका बन्ध करनेवाला नौ प्रकृतिक स्थानको बाँधता है । नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करनेवाला
पाँच प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है । पाँच प्रकृतिक स्थानका बन्धक चार प्रकृतिक स्थानका
बन्ध करता है । चार प्रकृतिक स्थानका बन्धक तीन प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है । तीन
प्रकृतिक स्थानका बन्धक दो प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है और दो प्रकृतिक स्थानका बन्धक
एक प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है । इस प्रकार सर्व मिलकर ग्यारह अल्पतर बन्धस्थान हो
जाते हैं । उपरत बन्धवाला नीचे उतरकर एकका और देवोमें उत्पन्न होकर सत्तरहका बन्ध
करता है । ये दो अवक्तव्य बन्ध हैं ॥२५२३-२५४॥

^१उवसतकसायो हेहा ओदरिय अहवा सुहमुवसामओ हेहा ओदरिय अणियट्ठी होऊण एयं वधइ ।

अहवा सुहुमुवसामओ काल काऊण देवेसुप्पणो सत्तरस वधइ । अवत्तव्वभुजयारा— १ । भुजयार-अल्प-
१७

यरावत्तव्वसमासेण अवट्ठिया हांति ३३ ।

उपशान्तकपायादधोऽवतीर्य सूक्ष्मसाम्परायोद्वाऽधोऽवतीर्य अनिवृत्तिकरणो भूत्वा एकं सज्जलनलोभं
बध्नाति । अथवा सूक्ष्मसाम्परायो मुनिः कालं कृत्वा मरणं प्राप्य देवासयतो भूत्वा सप्तदशकं १७ बध्नातीति

० ०
अवक्तव्यभुजाकारौ द्वौ २ । १ १ ।
१७ १७

भुजाकारा विंशतिः २०, अल्पतरबन्धा एकादश ११, अवक्तव्यौ २ । एव सर्वे एकीकृताः सक्षेपेणा-
वस्थितबन्धास्त्रयस्त्रिंशत् ३३ भवन्ति ॥२५५॥

मोहकर्मके बन्धसे रहित एकादशम गुणस्थानवर्ती उपशान्तकषाय संयत नीचे उतरकर
अथवा सूक्ष्मसाम्पराय-उपशामक नीचे उतरकर अनिवृत्तिकरण संयत होकर एक प्रकृतिक स्थानका
बन्ध करता है । अथवा सूक्ष्मसाम्पराय-उपशामक मरण कर देवोंमें उत्पन्न होने पर सत्तरह

प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। इस प्रकार दो अवक्तव्य भुजाकार बन्धस्थान होते हैं। इस प्रकार भुजाकार बीस, अल्पतर ग्यारह और अवक्तव्य दो; ये सर्व मिलाकर तैतीस अवस्थित बन्धस्थान होते हैं।

अब नामकर्मके बन्धस्थान आदिका वर्णन करते हैं—

^१अडु य बंधट्टाणा वावीस हवन्ति णामभुजयारा ।

इगिवीसं अप्पयरा अवट्टिया होंति छायाला ॥२५६॥

वध० ८ । भुज० २२ । अप्प० २१ । अव० ४६ ।

अथ नामकर्मणो बन्धस्थान-भुजाकाराऽल्पतराऽवस्थितबन्धमेदानाऽऽह—नामकर्मणोऽष्टौ बन्धस्थानानि भवन्ति ८ । द्वाविंशतिर्भुजाकारबन्धाः २२ । एकविंशतिर्गुणतरबन्धाः २१ । पट्चत्वारिंशदवस्थितबन्धान्च ४६ भवन्ति ॥२५६॥

भा२२।२१।२६

नामकर्मके प्रकृति-बन्धस्थान आठ होते हैं। भुजाकार बाईस, अल्पतर इक्कीस और अवस्थित बन्धस्थान छयालीस होते हैं ॥२५६॥

प्रकृतिबन्धस्थान ८ । भुजाकार २२ । अल्पतर २१ । अवस्थित ४६ ।

^२तेवीसं पणुवीसं छवीसं अडुवीसमुगुतीसं ।

तीसेकतीसमेयं बंधट्टाणाणि णामस्स ॥२५७॥

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३१।

कानि नाम्ना बन्धस्थानानि ? ['तेवीसं पणुवीसं' इत्यादि ।] त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ पट्त्रिंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनविंशतिकं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ एक १ चैत्यष्टौ बन्धस्थानानि २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३१। आद्यानि सप्त बन्धस्थानानि मित्यादष्टयऽऽद्यपूर्वकरणपद-भागपर्यन्तं ययाम्भावं बध्यन्ते । एककं यगस्कीर्त्तिचं १ उपशम-क्षपकश्रेण्योर्पूर्वकरणसप्तमभागस्य प्रथमममयं प्रारभ्य सूक्ष्मसात्परायस्य चरमसमयपर्यन्तं बध्यते ॥२५७॥

तेईस, पचीस, छवीस, अडुईस, उनतीस, तीस, इकतीस और एक प्रकृतिक इस प्रकार ये आठ नामकर्मके बन्धस्थान होते हैं ॥२५७॥

उनकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है— २३ २५ २६ २८ २९ ३० ३१ १ ।

अब नामकर्मके भुजाकार बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

जसकिची बंधतो अडुवीसाई हु एक्कतीसंता ।

तेवीसाई बंधइ तीसंता हवन्ति भुजयारा ॥२५८॥

इगितीसंता बंधइ बंधतो अडुवीसाई ।

भुजयारा जहा—

१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
२९	२६	२८	२९	३०	३१	
३०	२८	२९	३०	३१		
३१	२९	३०				
३०						

१. सं० पञ्चसं० ४, १८८ । २. ४, १३६ ।

१. पट्त्रं० जीव० त्रु० स्थान० सू० ६० । गो० व० ५२१ ।

द्वाविंशतिभुजाकारबन्धा उच्यन्ते—['जसक्ती वधतो' इत्यादि ।] अत्यन्तरप्रकृतिक बद्ध्या बहुप्रकृतिक बध्नातीति भुजाकारबन्धः स्यात् । एकां यशस्कीर्त्तिं बध्नन् अष्टाविंशतिक २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्क ३० एकत्रिंशत्कं ३१ च बध्नाति । तथाहि—उपशमश्रेण्यधोऽवतीर्णोऽपूर्वकरणस्यो मुनि कश्चिदेकविध यशस्कीर्त्तिनाम बध्नन् देवगतियुतमष्टाविंशतिक स्थान बध्नाति । तत्किम् ? देवगति देवगन्यानुपूर्व्ये २ पञ्चेन्द्रिय १ वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गयुग्म २ तैजस-कर्मणयुग्म २ समचतुरस्रमस्थान १ त्रसचतुष्कं ४ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ स्थिर १ शुभं १ सुभग १ सुस्वर १ प्रशस्तविहायोगति १ यशःकीर्त्तिः १ आदेयं १ निर्माणं १ चैत्यष्टाविंशतिक बध्नाति २८ । तथाविधोऽपूर्वकरणः कश्चिन्मुनिरेका यशस्कीर्त्तिं बध्नन् तदेवाष्टाविंशतिक तीर्थकरत्वयुतमेकोनत्रिंशत्कं बध्नाति २९ । तथोपशमश्रेण्यवरोहकापूर्वकरणं एकाद्येककं यशस्कीर्त्तित्वं बध्नन् तदेवाष्टाविंशतिक आहारयुग्मयुत त्रिंशत्कं ३० बध्नाति । तथाविधोऽपूर्वकरणो यशस्कीर्त्तिमेकां बध्नन् तदेवाष्टाविंशतिक तीर्थकरत्वाऽऽहारकयुग्मसहितमेकत्रिंशत्कं बध्नाति ।

१

२८

इति चत्वारो भुजाकारा भवन्ति २९ ।

३०

३१

'तेवीसाई बधह तोसता हवति भुजयारा' इति त्रयोविंशकादीनि स्थानानि बध्नन् त्रिंशत्कान्तानि बध्नाति । तथाहि—त्रयोविंशतिक बध्नन् पञ्चविंशतिक २५ षड्विंशतिक २६ अष्टाविंशतिक २८ एकोनत्रिंशत्क

२३

२५

शत्क २९ त्रिंशत्क ३० बध्नातीति पञ्च भुजाकाराः ५ । २६ । पञ्चविंशतिक बध्नन् षड्विंशतिक २६ अष्टा-

२८

२९

३०

३५

२६

विंशतिक २८ एकोनत्रिंशत्क २९ त्रिंशत्कं च बध्नातीति चत्वारो भुजाकाराः ४ । षड्विंशतिक बध्नन् अष्टा-

३६

३०

२६

३८

विंशतिक २८ नवविंशतिक २९ त्रिंशत्कं च बध्नातीति त्रयो भुजाकाराः ३ । एव षोडश भुजाकारा भवन्ति ।

२९

३०

अष्टाविंशतिकादीनि बध्नन् एकत्रिंशत्कान्तानि बध्नाति । तथाहि—अष्टाविंशतिक बध्नन् एकोनत्रिंशत्क ३१ त्रिंशत्क

२८

२९

३० एकत्रिंशत्क ३१ च बध्नाति २९ । एकोनत्रिंशत्क बध्नन् त्रिंशत्क ३० एकत्रिंशत्क ३१ च बध्नाति ३० ।

२९

३०

३१

३१

त्रिंशत्क बध्नन् एकत्रिंशत्क बध्नाति ३० ॥ २७८३ ॥

३१

द्वाविंशतिभुजाकाराणामेकत्र रचना—

४	५	४	३	३	२	१
मु	मु	मु	मु	मु	मु	मु
१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
२९	२६	२८	२९	३०	३१	
३०	२८	२९	३०	३१		
३१	२९	३०				
३०						

उपशम श्रेणीसे उतरने वाला अपूर्वकरणसंयत एक यशस्कीर्तिका बन्ध करता हुआ अट्ठाईसको आदि लेकर इकतीस तकके स्थानोंको बाँधता है। इसी प्रकार तेईस आदि स्थानोंका बन्ध करनेवाला जीव पच्चीस आदि लेकर तीस तकके स्थानोंका बन्ध करता है। तथा अट्ठाईस आदि स्थानोंको बाँधता हुआ जीव उनतीसको आदि लेकर इकतीस तकके स्थानोंका बन्ध करता है। इस प्रकार नामकर्मके बाईस भुजाकार बन्धस्थान होते हैं ॥२५८॥

उक्त भुजाकार बन्धस्थानोंकी अङ्कसंहति मूलमे दी है।

अब नामकर्मके अल्पतर और अवलम्ब्य बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

तीसाइ तेवीसंता तह तीसुगुतीसमेक्कमिगितीसं ॥२५९॥

इक्कं बंधइ णियमा अडवीसुगुतीस बंधंतो ।

उवरदबंधो हेड्डा एक्कं देवेसु तीसमुगुतीसा ॥२६०॥

अल्पतरा—	३०	२९	२८	२६	२५	३१	२८	२९	३०
	२९	२८	२६	२५	२३	३०	१	१	१
	२८	२६	२५	२३		२९			
	२६	२५	२३			१			
	२५	२३							
	२३								

अथाल्पतराः—त्रिशत्कादीनि बध्नन् त्रयोविंशतिकान्तानि बध्नाति । एकत्रिशत्कं बध्नन् त्रिशत्कं ३० एकोनत्रिशत्कं २९ एकं १ च बध्नाति । तथाहि—त्रिशत्कं ३० बध्नन् एकोनत्रिशत्कं २९ अष्टाविंशतिकं

२८ पञ्चविंशतिकं २६ पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ । एकोनत्रिशत्कं बध्नन् अष्टाविंशतिकं २५ पञ्चविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ । अष्टाविंशतिकं बध्नन् पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ । पञ्चविंशतिकं बध्नन् पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ ।

अष्टाविंशतिकं २५ पञ्चविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ । पञ्चविंशतिकं बध्नन् पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ । पञ्चविंशतिकं बध्नन् पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ ।

अष्टाविंशतिकं २५ पञ्चविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ । पञ्चविंशतिकं बध्नन् पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ । पञ्चविंशतिकं बध्नन् पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति २६ ।

२५ त्रयोविंशतिक २३ च बध्नाति २५ । पञ्चविंशतिक बध्नात् त्रयोविंशतिकं २३ बध्नाति । २५ । एकत्रिंशत्क २३

३१
बध्नात् त्रिंशत्क ३० एकोनत्रिंशत्क एककं च बध्नाति ३० । अष्टाविंशतिकं बध्नात् एकं बध्नाति २५ । एकोनत्रिंशत्क १

बध्नात् एकां यशस्कीर्त्तिं बध्नाति २६ । त्रिंशत्क बध्नात् एकं बध्नाति ३० । इत्येवमल्पतराः २१ भवन्ति ।

अपूर्वकरणः चटने एकैकं . . . देवगतिचतुःस्थानानि २६ ३० २६ १ २६ नानि बध्नात् . . . गत्वा एकैक १

बध्नातीति चत्वारोऽल्पतराः ३१, ३० . . . । उपरतबन्ध. अबन्धः सन् अधोऽवतीर्थ एकं १ बध्नात् त्रिंशत्क ३० २५, २६

एकोनत्रिंशत्कं २६ च बध्नाति ॥ २५६-२६० ॥

तीसको आदि लेकर तेईस तकके स्थानोको बौधनेपर, तथा इकतीसको बौधकर तीस, उनतीस और एक प्रकृतिको बौधनेपर अल्पतर बन्धस्थान होते हैं। अट्ठाईस और उनतीसको बौधनेवाला नियमसे एक यशस्कीर्त्तिको बौधता है। इस प्रकार भी अल्पतर बन्धस्थान होते हैं। अब अवक्तव्यबन्धस्थानोंको कहते हैं—उपरतबन्धवाला जीव नीचे उतरकर एक प्रकृतिको बौधता है। अथवा मरकर देवोमें उत्पन्न हो तीस और उनतीस प्रकृतियोंको बौधता है। इस प्रकार अवक्तव्यबन्धस्थान प्राप्त होते हैं ॥ २५६-२६० ॥

उक्त अल्पतरबन्धस्थानोकी अङ्कसंष्टि मूलमें दी है।

उवसतकसाभो हेष्टा ओदरिय सुहमुवसामभो होऊण जसकिंति बंधइ । अहवा उवसतकसाभो कालं

काऊण देवेसुप्पणो मणुसगइसंजुत्त तीसं उणतीस वा बंधइ । अवत्तव्वभुजयारा— १ ३० । २६

भुजयारप्पयरऽवत्तव्वसमासेण अवट्टिया होति ४६ ।

तदेव कथयति—उपशान्तकपायः किमपि नामाऽबध्नात् पतितः सूक्ष्मसाम्पराय गतः एकां यशस्कीर्त्तिं बध्नाति । अथवा उपशान्तकपायो मुनिः कालं कृत्वा मरणं प्राप्य देवास्यतो भूत्वा मनुष्यगति-

युक्त नवविंशतिक २६, वा मनुष्यगति-तीर्थकरत्त्वयुक्त त्रिंशत्क च बध्नाति १ ३० अवक्तव्यभुजाकारा इति । २६

पूर्वस्थानस्याल्पप्रकृतिकस्य बहुप्रकृतिकेनानुसन्धाने भुजाकारा भवन्ति । परस्थानस्य बहुप्रकृति-कस्याल्पप्रकृतिकेनानुसन्धाने अल्पतरा भवन्ति । नामकर्मणि भुजाकारबन्धा द्वाविंशतिः २२ । अल्पतरबन्धा एकविंशतिः २१ । अवक्तव्यास्त्रयश्च ३ । एते सर्वे एकीकृताः षट्चत्वारिंशदवस्थितबन्धा ४६ भवन्ति ।

उपशान्तकपायसंयत नीचे उतरकर और सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक होकर एक यशस्कीर्त्तिको बौधता है । अथवा उपशान्तकपायसंयत मरण करके देवोमें उत्पन्न होकर मनुष्यगतिसंयुक्त

॥ पत्रके गलित और नुष्टित होनेसे छूटे पाठके स्थानपर.....विन्दुएँ दी गई हैं ।

तीस या उनतीस प्रकृतियोंको बँधता है। इस प्रकार अवक्तव्यभुजाकार तीन होते हैं, जिनकी संदृष्टि मूलमे दी है। भुजाकार २२ अल्पतर २१ अवक्तव्य ३ ये सर्व मिलकर ४६ अवस्थित बन्धस्थान होते हैं।

अब नामकर्मके चारों गतियोंमें सभब बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

१इगि पंच तिणिण पंच य बंधट्टाणाणि होंति णामस्स ।

णिरयगइ-तिरिय-मणुय-देवगईसंजुया हुंति ॥२६१॥

१।५।३।५।

अथ तद्वाधारगतिसम्बन्धेन स्वामित्वं दर्शयति—[‘इगि पंच तिणिण पंच य’ इत्यादि ।] नामकर्मणः एकं पञ्च त्रीणि पञ्च बन्धस्थानानि भवन्ति । कथम्भूतानि ? नरक-तिर्यङ्मनुष्य-देवगतियुक्तानि क्रमेण भवन्ति । तद्यथा—नरकगत्यां एकं बन्धस्थानम् १ । तिर्यग्गत्यां पञ्च बन्धस्थानानि ५ । मनुष्यगतौ त्रीणि बन्धस्थानानि ३ । देवगतौ पञ्च बन्धस्थानानि ५ ॥२६१॥

नरकगतिसंयुक्त नामकर्मका एक बन्धस्थान है। तिर्यग्गतिसंयुक्त नामकर्मके पाँच बन्धस्थान हैं। मनुष्यगतिसंयुक्त नामकर्मके तीन बन्धस्थान हैं और देवगतिसंयुक्त नामकर्मके पाँच बन्धस्थान होते हैं ॥२६१॥

नरकगतिसंयुक्त १ । तिर्यग्गतिसंयुक्त ५ । मनुष्यगतिसंयुक्त ३ । देवगतिसंयुक्त ५ बन्धस्थान ।

उक्त बन्धस्थानोंका स्पष्टीकरण—

२अट्ठावीसं णिरए तेवीसं पंचवीसं छव्वीसं ।

उणतीसं तीसं च हि तिरियगई संजुया पंच ॥२६२॥

णि० २८ । ति० २३।२५।२६।२६।३० ।

तानि कानि चेदाऽऽह—नरकगतौ नरकगतिसहितमष्टाविंशतिकं बन्धस्थानमेक भवति २८ । तिर्यग्गतौ त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ नवविंशतिकं २६ त्रिंशत्कं ३० चेति तिर्यग्गतिसंयुक्तानि पञ्च बन्धस्थानानि इति ॥२६२॥

२३।२५।२६।२६।३०

नरकगतिके साथ बँधनेवाला नामकर्मका अट्ठाईस प्रकृतिक एक बन्धस्थान है। तेईस, पच्चीस, छव्वीस, उनतीस और तीस; ये पाँच बन्धस्थान तिर्यग्गतिसंयुक्त बँधते हैं ॥२६२॥

नरकगतियुक्त २८ । तिर्यग्गतियुक्त २३।२५।२६।२६।३० ।

पणवीसं उगुतीसं तीसं चियं तिणिण होंति मणुयगई ।

देवगईए चउरो एक्कत्तीसाइ णिगई एयं ॥२६३॥

म० २५।२६।३० । दे० ३।३।३०।२६।२८।१।

1. स० पञ्चसं० ४, १३७ । 2. ४, १४२ ।

क्लृप्त् चिय ।

† मूलप्रतिमें इसका उत्तरार्ध इस प्रकार है—

इगितीसादेगुण अट्ठावीसेक्कग च देवेसु ॥

‡, १७६ ।

मनुष्यगतौ मनुष्यगतिसहित पञ्चविंशतिकं २५ मनुष्यगतियुतमेकोनत्रिंशत्क २६ मनुष्यगतिसहित त्रिंशत्क ३० चेति त्रीणि बन्धस्थानानि भवन्ति । देवगतौ चत्वारि बन्धस्थानानि एकत्रिंशत्कादीनि । देवगतिमहितमेकत्रिंशत्क ३१ देवगतियुत त्रिंशत्क ३० देवगतियुतमेकोनत्रिंशत्क २६ देवगतियुतमष्टाविंशतिकम् २८ । एक निर्गति गतिरहित एकक कयापि गत्या युत न भवति । चत्वारि स्थानानि गतिसहितानि, एक गतिरहित स्थानम् । एव देवगत्या पञ्च बन्धस्थानानि-३१।३०।२६।२८।१ । एतानि स्थानानि सर्वाणि जीवाः तत्तत्स्थानबन्धयोग्यपरिणामाः सन्तो बध्नन्ति ॥२६३॥

मनुष्यगतिके साथ नामकर्मके पचीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक तीन स्थान होते हैं । देवगतिके साथ इकतीस आदि चार स्थान होते हैं । तथा एक प्रकृतिक स्थान गतिरहित है ॥२६३॥

मनुष्यगतियुक्त २५।२६।३० । देवगतियुक्त ३१।३०।२६।२८ । गतिरहित १ ।

^१गिरयदुयं पंचिदिय वेउव्विय तेउणाम कम्मं च ।

वेउव्वियंगवंगं वण्णचउक्कं तहा हुंडं ॥२६४॥

अगुरुयलहुयचउक्कं तसचउ असुहं च अप्पसत्थगई ।

अत्थिर दुब्भग दुस्सर अणादेज्जं चेव णिमिणं च ॥२६५॥

अज्जसकित्ती य तहा अट्ठावीसं हवंति णायव्वा ।

गिरयगईसंजुत्तं मिच्छादिट्ठी दु वंधंति ॥२६६॥

नरकगतिस्थान तद्वन्धक जीव च गाथात्रयेणाऽऽह-['गिरयदुय पंचिदिय' इत्यादि ।] मिथ्या-दृष्टयो जीवास्तिर्यञ्चो मनुष्या वा अष्टाविंशतिकं स्थान बध्नन्तीति ज्ञातव्या भवन्ति । तत्किम् ? नरकगति-नरकगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ पञ्चेन्द्रियत्व १ वैक्रियिकशरीर १ तैजस-कर्मणे द्वे २ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग १ वर्णचतुष्कं ४ हुण्डकसंस्थान १ अगुरुलघुपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्क ४ त्रस-बादर-पर्याप्त प्रत्येकचतुष्क ४ अशुभ १ अप्रशस्तविहायोगति १ अस्थिर १ दुर्भग १ दुस्वरः १ अनादेय १ निर्माण १ अयस्कीर्त्तिः १ इत्यष्टाविंशतिकं नरकगतियुक्त बन्धस्थानं मिथ्यादृष्टिर्जीवो नरकगतिं यान्ता बध्नाति २८ । मिथ्यादृग्गुणस्थानवर्ती जीवो नरस्तिर्यङ्जीवो वा नारको भवति, नामकर्मणोऽष्टाविंशतिक २८ बध्नस्थान बध्नातीत्यर्थः ॥२६४-२६६॥

नरकद्विक (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी), पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क (रूप, रस, गन्ध स्पर्शनामकर्म) हुण्डक-संस्थान, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास) त्रसचतुष्क (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर), अशुभ, अप्रशस्तगति, अस्थिर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, निर्माण और अयशःकीर्त्ति, ये अट्ठाईस प्रकृतियों अट्ठाईसप्रकृतिकस्थानकी जानना चाहिए । मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोको नरकगतिसंयुक्त बंधते है ॥२६४-२६६॥

गिरयगईपचिदियपज्जत्तसजुत्तं एगो भंगो ।१।

एत्थ गिरयगईए सह वुत्तिअभावादो एइदिय-वियल्लिदियजाईओ ण वज्झति ।

नरकगत्यां पञ्चेन्द्रियपर्याप्तसंयुक्त एको भङ्गः १ । अत्र नरकगत्या सह प्रवृत्त्यभावात् एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजाती जीवा न बध्नाति । उक्तञ्च—

एकाक्ष-विकलाक्षाणां बध्यन्ते नात्र जातयः ।

श्वभ्रगत्या समं तासां सर्वदा वृत्त्यभावतः ॥२८॥

१. स० पञ्चस० १३८-१४० ।

१. पट् खडा० जीव० चू० ठाग० सू० ६१ ६२ । २. स० पञ्चस० ४, १४१ ।

अवणेज्जो एक्कयरं सासणसम्मो य वंधेह् ॥२७०॥

इसी प्रकार द्वितीय तीस प्रकृतिक बन्धस्थान होता है । विशेषता केवल यह है कि उसमें प्रथम तीसमेंसे असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन और हुण्डकसस्थान इन दोको निकाल देना चाहिए । अर्थात् छह संस्थान और छह संहननके स्थान पर पाँच संस्थान और पाँच संहननमेंसे कोई एक-एकका ग्रहण करना चाहिए । इस द्वितीय तीस प्रकृतिक स्थानको सासादनसम्यग्दृष्टि जीव बोधता है ॥२७०॥

द्वितीयत्रिशत्के सासादने अन्तिमसंस्थानान्तिमसहननद्वय कुतो बन्ध नागच्छति ? तद्योग्यतीव्रसकल-
शाभावात् प्रथमगुणस्थाने द्वयस्य व्युच्छेदत्वाच्च । अतः द्वयस्य सासादने बन्धो न । ५।५।२।२।२।२।२।२
अन्योन्यगुणिता द्वितीयत्रिशत्क[स्य पृतावन्तः ३२०० विकल्पा भवन्ति । पृते पूर्वो-] क्तेषु ४६०८ प्रविष्टाः
पुनरुक्ता इति हेतोर्न गृह्यन्ते ॥

एयाओ पयडोओ मिच्छादिडो दु बंधंति^२ ॥२७३॥

१. पट्ट स० जीव० चू० स्थान० सू० ६६ । २. पट्ट ख जीव० चू० स्थान० सू० ६८-६९ ।

४ त्रसचतु- [एक ४ उद्योतं १ अप्रशस्त-] विहायोगतिः १ स्थिर-शुभ-यशोयुगलानां त्रयाणां मध्ये एकतरं ३ अनादेयः १ दुर्भगः १ दुःस्वरं १ निर्माणं १ द्वि- [त्रि-चतुर्गिन्द्रियजातीनां म-] ध्ये एकतरं १ चैवं त्रिंशत्प्रकृतीनां स्थानं त्रिंशत्क मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती तिर्यग्जीवो मनुष्यो वा [तिर्यग्गतिं गन्ता वध्नाति ।] ॥२७१-२७३॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक तृतीय बन्धस्थान है। उसकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर-अंगोपांग, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्त-सृष्टादिकासंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ और यशस्कीर्ति, इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक-एक; अनादेय, दुर्भग, दुःस्वर, निर्माण और विकलेन्द्रियजातियोंमेंसे कोई एक; इन प्रकृतियोंको तिर्यग्गतिमें जाननेवाला मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यक् ही बाँधता है ॥२७१-२७३॥

^१पुन्य वियलिन्द्रियाण हुंडसंस्थानमेवमेव । तद्देव एदेमि वधोदयाण दुस् रमेव । तिणि वियलिन्द्रिय-जाईओ विर सुह-जसजुयलानि ३।२।२।२। अण्णोपगुणिया भ्ना २४ ।

[अत्र विकलेन्द्रियाणा हुंडसंस्थानमेवकम् । तथैतेषां बन्धोदययोर्दुःस्वरमेवेति । वि-] कलत्रय-जातयः स्थिर-शुभ-यशोयुगलानि त्रीणि ३।२।२।२ अन्योन्यगुणितास्तृतीय-त्रिंशत्कस्य भ- [ज्ञाः २४ भवन्ति ।]

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि विकलेन्द्रिय जीवोंके हुंडकसंस्थान ही होता है। तथा इनके दुःस्वरप्रकृतिका ही बन्ध और उदय होता है। इनकी तीन विकलेन्द्रिय-जातियाँ तथा स्थिर, शुभ और यशस्कीर्तियुगल; इनके परस्पर गुणा करनेसे (३×२×२×२=२४) चौबीस भंग होते हैं।

^२जह तिण्हं तीसाणं तह चैव य तिणिण ऊणतीसं तु ।

एवरि विसेसो जाणे उज्जोवं णत्थि सव्वत्थं ॥२७४॥

एयासु पुव्वुत्तमंगा ४६०दा२४ ।

यथा येन प्रकारेण [प्रथम द्वितीय तृतीयं त्रिंश-] त्क ३०।३०।३० कथितं तथैव प्रकारेणैकोन-त्रिंशत्कस्थानानि त्रीणि २६।२६।२६ भवन्ति । किन्तु पुनः नव [रि वचयमाणमिमं विशेष] त्वं जानीहि भो भव्य ? को विणेष ? सर्वत्र निर्यञ्छोतो नास्ति । केचिज्जीवा उद्योतं वध्नान्ति, केचिन्न वध्नान्तीत्यर्थः ।-द्योतो यत्रैकोनत्रिंशत्कं तत्रोद्योतो नास्ति । एतासु पूर्वोक्ता भङ्गाः २६।२६।२६ एतेषां त्रयाणां भङ्गा ४६०दा२४ ॥२७४॥

जिस प्रकारसे तीन प्रकारके तीसप्रकृतिक बन्धस्थानोंका निरूपण किया है, उसी प्रकारसे तीन प्रकारके उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान भी होते हैं। केवल विशेषता यह ज्ञातव्य है कि उन सभीमें उद्योतप्रकृति नहीं होती है ॥२७४॥

इन तीनों ही प्रकारके उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानोंके भंग पूर्वोक्त ४६०दा और २४ ही होते हैं।

१. सं०पञ्चसं० ४, 'अत्र विकलेन्द्रियाणा इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२२) । २. ४; १५१ ।

१. पदसं० जीव० चू० स्थान० सू० ७०-७५ ।

१ तस्य इमं छन्वीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च ।

एइंदिय वण्णचदुं अगुत्तलहुयचउक्कं होइ हुंडं च ॥२७५॥

आयावुज्जोयाणमेक्कयरं थावर वादरयं ।

पज्जत्तं पत्तेयं थिराथिराणं च एकयरं ॥२७६॥

एक्कयरं च सुहासुह दुब्भग-जसजुयल एकयरं ।

णिमिणं अणादेज्जं चेव तहा मिच्छादिट्ठी दु वंधंति ॥२७७॥

नित्यादृष्टिदेवः पर्याप्तो भवनत्रय-सौचर्मद्वयजः एकेन्द्रियपर्याप्त-तिर्यग्गतिपुत्रनिर्दिष्टं [पद्भिर्गतिकं नामप्रकृतं] तिस्थानं वदन्नाति । क ? तत्र तिर्यग्नात्ता । किं तत् ? [तिर्यग्नादि-] तिर्यगन्धानुपूर्व्यं द्वे २ औदारिक-तैजस-कर्मगशरीरत्रिकं ३ [एकेन्द्रियं १ वर्गचतुष्कं ४] अगुत्तलवृषवातपरवातोच्छ्वसचतुष्कं ४ हुण्डकसंस्थानं १ आतपोद्योतयोर्मध्ये एकतरं १ स्यावरं १ वादरं १ पर्याप्तं १ [प्रत्येकशरीरं १ स्थिर-] स्थिरयोर्मध्ये एकतरं १ शुभाशुभयोर्मध्ये एकतरं १ दुर्मगं १ यशोऽशशोर्मध्ये एकतरं निर्माणं १ अ- [नादेयं १ चेति पद्भि-] गतिकं नामप्रकृतिन्यायं नित्यादृष्टिदेवो भवनत्रयजः सौचर्मद्वयजो वदन्नाति २६ ॥२७५-२७७॥

छन्वीस प्रकृतिक वन्वस्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मगशरीर, एकेन्द्रियजाति. वर्णचतुष्क, अगुत्तलवृषचतुष्क. हुण्डकसंस्थान, आतप और उद्योतमेंसे कोई एक, न्यावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर-अस्थिरमेंसे कोई एक. शुभ-अशुभमेंसे कोई एक, दुर्मग और यशस्कीर्त्ति-अयशःकीर्त्ति युगलोंमेंसे कोई एक, निर्माण और अनादेय इन छन्वीस प्रकृतियोंको एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले नित्यादृष्टि देव बँधते हैं ॥२७५-२७७॥

२ तह (पुत्थ) पइदिप्पु अंगोवंगं णत्थि. अट्ठंगाभावाद्दो । मंडागलवि एयमेव हुंडं । उदो आया-वुज्जोव-थिरायिर-सुहासुह-जसजसजुयलणि २।२।२।२ अण्णोगगुणिता मंगा १६ ।

तथात्र एकेन्द्रियाणां अष्टोपाङ्गं [नास्ति, तेषामष्टाङ्ग-] नावात् । संस्थानमप्येकमेव हुण्डकम् । अतः कारणादातपोद्योत-स्थिर-स्थिर-शुभाशुभ-यशोऽशशो- [गलानि २।२।२।२ अन्योन्य-] गुणिताः पद्भिर्गतेर्मङ्गल विकल्पा. १६ भवन्ति ।

यहाँ पर एकेन्द्रियोंमें अंगोपांग नामकर्मका उदय नहीं होता है, क्योंकि उनके हस्त, पाद आदि आठ अंगोंका अभाव है । उनके संस्थान भी एक हुण्डक ही होता है । अतः आतप-उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्त्ति-अयशःकीर्त्ति युगलोंको परस्पर युगा करने पर (२×२×२×२=१६) सोलह भंग होते हैं ।

३ तह छन्वीसं ठाणं तह चेव य होइ पढमपणुवीसं ।

णवरि विसेसो जाणे उज्जोवादावरहियं तु ॥२७८॥

वायर सुहुमेक्कयरं साहारण पत्तेयं च एकयरं ।

संजुत्तं तह चेव य मिच्छादिट्ठी दु वंधंति ॥२७९॥

1. सं० पञ्चसं० ४, १५२-१५५ । 2. ४, 'अत्राष्टाङ्गमावा' इत्यदिगद्यभागः (पृ० १२२-१२३) ।

3. ४, १५६ ।

१. पदं० जीव० चू० स्थान० सू० ३६-३७ । २. पदं० जीव० चू० स्थान० सू० ७५-७६ ।

[यथापूर्वो-] क्तप्रकारेण षड्विंशतिकं स्थानं भणितं, तथैव प्रकारेण प्रथमपञ्चविंशतिकं स्थानं भवति । नवरि वि- [शेषो ज्ञातव्यः । को वि-] शेषः ? तत्स्थानमुद्योताऽऽतपरहितम् । तु पुनर्वादर-सूक्ष्म-योर्मध्ये एकतरं १ साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतर- [२१ संयुक्त पञ्चविंशतिकं स्थानं मिथ्या-] दृष्टिर्वचनाति । तद्यथा--तिर्यग्गतिद्विकौदारिक-तैजस-कर्मणवर्णचतुष्कागुरुचतुष्क-हुण्डकानि १४ । ए [केन्द्रियजातिः १ स्थावर १ वादर-सू-] क्ष्मयोर्मध्ये एकतर १ साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतर १ पर्याप्त १ स्थिरास्थिरयोः एकतर १ शुभाशु- [भयोर्मध्ये एकतर १ दुर्भाग १] यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरं निर्माण १ अनादेय १ चेति पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिबन्धस्थानं मिथ्यादृष्टि [स्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाती-] त्यर्थः । ननु देवा इदं स्थानं कथं न बध्नन्ति ? साधु पृष्टम् । यद्यपि देवाः सहस्रारपर्यन्तं तिर्यग्गतिं बध्नन्ति, तथापि एकेन्द्रिय-जातिं भवन्-] त्रय-सौधर्मद्वयजा एव, नान्ये बध्नन्ति ॥२७८-२७९॥

जिस प्रकार छत्तीस प्रकृतिक स्थान है, उस ही प्रकार प्रथम पञ्चीस प्रकृतिक स्थान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह जानना चाहिए कि वह उद्योत और आतप इन दो प्रकृतियोंसे रहित है । इस स्थानको वादर-सूक्ष्ममेसे किसी एकसे संयुक्त तथा साधारण-प्रत्येकशरीरमेसे किसी एकसे संयुक्त मिथ्यादृष्टि जीव बाँधते हैं ॥२७८-२७९॥

^१ एतत् सुदुमसाहारणाणि भवणाइ-ईशानना देवा न बध्ति । एतत् या जसकिति निरुभिरुण थिरा-थिर-दो भगा सुहासुह-दोभगेहि गुणिया ४ । अजसकिति निरुभिरुण वायर-पत्तेय-थिर-सुहजुयलाणि २।२।२।२ अण्णोणगुणिया अजसकितिभगा १६ । दोणि वि २० ।

अत्र पञ्चविंशतिके स्थाने सूक्ष्म-साधारणे द्वे भवनादीशानान्ता देवाः [न बध्नन्ति । ततोऽयशःकीर्त्ति] निरुद्ध्य समाश्रित्य स्थिरास्थिरभङ्गो २ शुभाशुभङ्गाभ्यां द्वाभ्यां २ गुणितौ चत्वारो भङ्गा २।४ अयशः [कीर्त्ति निरुद्ध्य वा-] दर-प्रत्येक-स्थिर-शुभयुगलानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणिताः अयशस्कीर्त्ति-भङ्गा १६ । द्वयेऽपि २० ।

इस प्रथम पञ्चीस प्रकृतिक स्थानमे वतलाई गई प्रकृतियोंमेसे सूक्ष्म और साधारण ये दो प्रकृतियों भवनवासियोंको आदि लेकर ईशान स्वर्ग तकके देव नहीं बाँधते हैं । यहाँ पर यशस्कीर्त्तिको निरुद्ध करके स्थिर-अस्थिर-सम्बन्धी दो भंगोंको शुभ-अशुभ-सम्बन्धी दो भंगोंसे गुणित करने पर चार भंग होते हैं । तथा अयशःकीर्त्तिको निरुद्ध करके वादर, प्रत्येक स्थिर और शुभ इन चार युगलोंको परस्पर गुणित करने पर (२×२×२×२=१६) अयशःकीर्त्ति-सम्बन्धी सोलह भंग होते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त चार और सोलह ये दोनों मिलकर २० भंग हो जाते हैं ।

^२ विदियपणवीसठाणं तिरियदुगोराल तेजकम्मं च ।

वियलिंदिय-पंचिंदिय एककयरं हुंडसंठाणं ॥२८०॥

ओरालियंगवंगं वण्णचउक्कं तहा अपज्जत्तं ।

अगुरुयलहुगुवघादं तस वायरयं असंपत्तं ॥२८१॥

पत्तेयमथिरमसुभं दुहगं णादेज्ज अजस णिमिणं च ।

बंधह मिच्छादिट्ठी अपज्जत्तयसंजुयं एयं ॥२८२॥

१. स० पञ्चस० ४, 'अत्र प्रथमाया पञ्चविंशतौ' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२३) ।

२. ४, १५७-१५९ ।

१. पट् ख० जीव चू० स्थान० सू० ८०-८१ ।

मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा द्वितीयपञ्चविंशतिकमपर्याप्तसंयुक्तमेक बध्नाति । तत्किम् ? तिर्यग्गति [तिर्यग्-] गत्यानुपूर्व्ये द्वे २ औदारिक तैजसकर्मणशरीराणि ३ विकलेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजातीनां मध्ये एकतर १ हुण्डकसंस्थान औदारिकाङ्गोपाङ्ग १ वर्णचतुष्क, ४ अपर्याप्त १ अगुरुलघुपघातद्वय २ त्रस १ बादरं १ सृपाटिकासहनन १ प्रत्येक १ अस्थिर १ अशुभ १ दुर्भगं १ अनादेय १ अयशः १ निर्माण १ चेति द्वितीय-पञ्चविंशतिकं नामकर्मणः स्थान २५ मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति ॥२८०-२८२॥

द्वितीय पञ्चीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियों इस प्रकार हैं—तिर्यग्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, विकलत्रय और पञ्चेन्द्रियजातिमेंसे कोई एक, हुण्डकसंस्थान, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, सृपाटिकासहनन, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति और निर्माण । इस द्वितीय पञ्चीस प्रकृतिक अपर्याप्त-संयुक्त स्थानको तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव बध्नाति है ॥२८०-२८२॥

^१एतथ य परघादुस्सासविहायगद्दुस्सरणामाण अपज्जत्तेण सह बधो णत्थि, विरोहादो, अपज्जत्तकाले य एदेसि उदयाभावादो य । एतथ चत्तारि जाह्मगा ४।

अत्र द्वितीयायां पञ्चविंशतौ परघातोच्छ्वास-विहायोगतिदुःस्वरानामपर्याप्तेन सह बन्धो नास्ति । कुतः ? विरोधात्, अपर्याप्तकाले चैषामुदयाभावात् । अत्र चत्वारो जातिभङ्गाः द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रिय-इति ११११११ जातिभङ्गाश्चत्वारः ४ ।

यहोपर परघात, उच्छ्वास, विहायोगति और दुःस्वर नामकर्मका अपर्याप्तनामकर्मके साथ बन्ध नहीं होता, क्योंकि विरोध है । दूसरे अपर्याप्तकालमें इन प्रकृतियोंका उदय भी नहीं होता है । यहोपर जातिसम्बन्धी चार भंग होते हैं ।

^२तत्थ इमं तेवीसं तिरियदुगोराल तेजकम्मं च ।

एइंदिय वण्णचदुं अगुरुयलहुगं च उवघादं ॥२८३॥

थावर अथिरं असुहं दुभग अणादेज्ज अजस णिमिणं च ।

हुंडं च अपज्जत्तं वायर-सुहुमाण एक्कयरं ॥२८४॥

साहारणपत्तेयं एक्कयरं बंधओ तहा मिच्छो ।

एए बंधट्ठाणा तिरियगईसंजुया भणिया ॥२८५॥

तत्र तिर्यग्गतौ द्वे त्रयोविंशतिक स्थान मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति । तत्किम् ? तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वय २ औदारिक-तैजस-कर्मणत्रिक ३ एकेन्द्रिय १ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघुत्व १ उपघात १ स्थावरं १ अस्थिर १ अशुभ १ दुर्भग १ अनादेय १ अयशः १ निर्माण १ हुण्डक १ अपर्याप्त १ बादर-सूक्ष्मयोर्मध्ये एकतर १ साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतर १ चेति एतासा त्रयोविंशतिर्नामप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ्मनुष्यो वा बन्धको भवति २३ । एतानि नामप्रकृतिबन्धस्थानानि तिर्यग्गतिसंयुक्तानि जिनैर्भणितानि ॥२८३-२८५॥

तेईस प्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियों इस प्रकार हैं—तिर्यग्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, एकेन्द्रियजाति, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण, हुण्डकसंस्थान, अपर्याप्त, बादर-सूक्ष्ममेसे कोई एक और

१. स०पञ्चस० ४, 'अत्र द्वितीयाया पञ्चविंशतौ' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२३) । २ ४, १६०-१६२ ।

१ पट् ख० जीव० चू० स्थान० सू० ८२-८३ ।

साधारण—प्रत्येकमेसे कोई एक । इस तेईस प्रकृतिक स्थानको तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव बँधता है । इस प्रकार तिर्यगगतिसंयुक्त बँधनेवाले उपर्युक्त बन्धस्थान कहे ॥२८३-२८५॥

^१एतत् संघयणबन्धो णत्थि, एड्दियस्स संघयणउदयाभावादो । एतत् वादर-सुहुमभंगानं पत्तेय-माहारणभगगुणणाए चत्तारि भगा ४ ।

एवं तिरियगइजुत्त-सत्त्वभगा ६३०८

अत्र त्रयोविंशतिके संहननबन्धो नास्ति । कुतः ? एकेन्द्रियाणां संहननोदयाभावात् । ततोऽत्र वादर-सूक्ष्मयोः प्रत्येक-साधारणान्यां गुणिने चत्वारो भगाः ४ ।

एव तिर्यगगतियुताः सर्वे भगाः ४६०८ । ४६०८ । १६।२०।४।४। मीलिताः ६३०८ [भवन्ति] ।

२४ २४

इति तिर्यगगति (तीस) नामप्रकृतिबन्धस्थानविचारः सम्पूर्णः ।

उक्त तेईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे संहननका बन्ध नहीं बतलाया गया है, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवके संहननका उदय नहीं होता । यहाँपर वादर-सूक्ष्मसम्बन्धी भंगोको प्रत्येक और साधारण-सम्बन्धी दो भंगोके साथ गुणा करनेपर चार भंग होते हैं ।

इस प्रकार तिर्यगगतिसंयुक्त सर्व भंग (४६०८ + २४ + ४६०८ + २४ + १६ + २० + ४ + ४ = ६३०८) होते हैं ।

अब मनुष्यगतिसंयुक्त बँधनेवाले स्थानोंका निरूपण करते हैं—

^२तत्थ य तीसं ठाणं मणुयदुगोराल तेज कम्मं च ।

ओरालियंगवंगं समचउरं वज्जरिसहं च ॥२८६॥

तसचउ वण्णचउकं अगुरुयलहुयं च होंति चत्तारि ।

थिराथिर-सुहासुहाणं एकयरं सुहयमादेज्जं ॥२८७॥

सुस्सरजसजुयलेकं पसत्थगइ णिमिणं च तित्थयरं ।

पंचिंदियं च तीसं अविरदसम्मो दु बंधेइ ॥२८८॥

अथ मनुष्यगत्या सह नामप्रकृतिबन्धस्थानानि गाथादशकेनाऽऽह—[तत्थ य तीसं ठाणं' इत्यादि] तत्र मनुष्यगतौ अविरतसम्प्रदृष्टिवैमानिकदेवो धर्माद्विनरकत्रयजो नारको वा मनुष्यगत्या सह त्रिशत्कं ३० नामकर्मणो बन्धस्थानं वन्नाति । तत्किम् ? मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ औदारिक-तैजस-कर्मण-शरीरत्रिकं ३ औदारिकाद्गोपाङ्गं १ समचतुरस्रस्थान १ वज्रवृषभनाराचसंहननं १ त्रस-वादर-प्रत्येक-शरीरचतुष्कं ४ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-शुभयोर्मध्ये एकतरं २ सुभग १ आदेयं १ सुस्वरः १ यगोऽयगोर्मध्ये एकतरं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ निर्माणं १ तीर्थकरत्वं १ पञ्चेन्द्रियत्वं १ चेति नामकर्मणस्त्रिंशत्प्रकृतीः ३० असंयतगुणस्थानवर्ती वैमानिक-देवो धर्माद्विनरकत्रयभवो नारको वा वन्नाति ॥२८६-२८८॥

उनमें तीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मनुष्यद्विक (मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्वी) औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र-स्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभमेंसे कोई एक-एक, सुभग, आदेय, सुस्वर और यश कीर्तियुगलमेंसे एक, प्रशस्त-

1. सं०पञ्चसं० ४, 'अत्र संहननबन्धो नास्ति' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२४) । 2. ४, १६४-१६६ ।

१ पट्त्वं जीव० चू० स्थान० सू० ८५-८६ ।

विहायोगति, निर्माण, तीर्थङ्कर और पंचेन्द्रियजाति । इस तीस प्रकृतिक स्थानको वैमानिक देव या रत्नप्रभादि तीन पृथिवियोंका नारकी अविरतसम्यग्दृष्टि जीव बंधता है ॥२८६-२८८॥

एतत्तु दुर्भगदुस्वरऽऽद्यानां तित्थयेण सम्मत्तेण य सह विरोहादो ण वधेइ । ^१सुहग-सुस्सरा-
देयाणमेव वधो, तेण तिण्णि जुयलाणि २।२।२। अण्णोणगुणिया भंगा ८ ।

अत्र त्रिशत्के दुर्भग-दुःस्वरानादेयानां बन्धो न । कुतः ? तीर्थकरत्वेन सम्यक्त्वेन च सह विरोधात् ।
तदुक्तम्—

२ न दुर्भगमनादेयं दुःस्वरं याति बन्धताम् ।

सम्यक्त्व-तीर्थकृत्वाभ्यां सह बन्धविरोधतः ॥२८९॥

इति सुभग-सुस्वराऽऽदेयानामेवान्न बन्धः । तत्र त्रीणि युगलानि २।२।२। अन्योन्यगुणिता भङ्गा
विकल्पा अष्टौ ८ ।

यहोपर दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन तीन प्रकृतियोंका तीर्थङ्कर प्रकृति और सम्य-
क्त्वके साथ विरोध होनेसे बन्ध नहीं होता है, किन्तु सुभग, सुस्वर और आदेयका ही बन्ध
होता है । इसलिये शेष तीन युगलोंके परस्पर गुणित करनेपर (२×२×२=) ८ भंग होते हैं ।

३ जह तीसं तह चेव य उणतीसं तु जाण पढमा दु ।

तित्थयरं वज्जित्ता अविरदसम्मो दु बंधेइ ॥२८९॥

वं० २९ । एतत्तु अष्ट भगा ८ पुनरुक्ता ।

यथा येन प्रकारेण इदं त्रिशत्क बन्धस्थानमुक्तं, तथैव प्रकारेण प्रथममेकोनत्रिशत्कं स्थान २९
जानीहि हे भग्य, त्वं सम्यक् । किं कृत्वा ? तीर्थकरत्वं वर्जयित्वा । तीर्थकरत्वं विना एकोनत्रिशत्कं नाम-
प्रकृतिस्थानं २९ अविरतसम्यग्दृष्टिर्जीवो देवो नारको वा वध्नाति ॥२८९॥

अत्राष्टौ भङ्गाः ८ पुनरुक्ता ।

जिस प्रकार तीस प्रकृतिक बन्धस्थान बतलाया गया है, उसी प्रकार प्रथम उनतीस
प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए । इसमें केवल तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़ देते हैं । इस स्थानका
भी अविरत सम्यग्दृष्टि देव या नारकी जीव बन्ध करता है ॥२८९॥

यहोपर उपर्युक्त ८ भंग होते हैं, जो कि पुनरुक्त हैं ।

४ जह पढमं उणतीसं तह चेव य विदियं उणतीसं तु ।

णवरिविसेसो सुस्सर-सुभगादेज्ज जुयलाणमेकयरं ॥२९०॥

हुंढमसंपत्तं पि य वज्जिय सेसाणमेकयरं च ।

विहायगइज्जुयलमेकयरं सासणसम्मा दु बंधंति ॥२९१॥

यथा येन प्रकारेण प्रथममेकोनत्रिशत्कं स्थानमुक्तं तथैव प्रकारेण द्वितीयमेकोनत्रिशत्कं स्थान २९
सास्वादनसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति । नवरि किञ्चिद्विशेषः । को विशेषः ? सुस्वरदुःस्वर-सुभगदुर्भगाऽऽद्याना-

१. ४, 'सुभगसुस्वरा' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२४) । २ स० पञ्चसं० ४, १६७ । ३. ४, १६८ ।

४. ४, १७१ ।

१ पट्ख० जीव० चू० स्थान० सू० ८७ । २. पट्ख० जीव० चू० स्थान० सू० ८६-८० ।

क्लृप्तं सु० ।

कि वह सृपाटिकासंहनन और हुण्डकसंस्थान सहित है । तथा सात युगलोंमेंसे किसी एक प्रकृति-के साथ उसे चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीव बंधते हैं ॥२६२॥

इस तृतीय उनतीस प्रकृतिक स्थानमें छह संस्थान, छह संहनन और सात युगलोके परस्पर गुणा करनेपर ($६ \times ६ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ =$) ४६०८ भंग होते हैं ।

^१तत्थ इमं पणुवीसं मणुयदुगं उराल तेज कम्मं च ।

ओरालियंगवंगं हुंडमसंपत्तं वण्णचदुं ॥२६३॥

अगुरुगलहुगुवघाद तस बादर पत्तेयं अपज्जत्तं ।

अत्थिरमसुहं दुब्भगमणादेज्जं अजसणिमिणं च ॥२६४॥

पंचिंदियसंजुत्तं पणुवीसं बंधओ तहा मिच्छो^१ ।

मणुसगई-संजुत्ताणि तिण्णि ठाणाणि भणियाणि ॥२६५॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा मनुष्यगत्या सहेद पञ्चविंशतिकस्थान बध्नाति २५ । कि तत् ? मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ औदारिक-तैजस-कर्मणशरीराणि ३ औदारिकाङ्गोपाङ्ग १ हुण्डकसं-स्थान १ असम्प्राप्तसंहनन १ वर्णचतुष्क १ अगुरुलघूपघातौ २ त्रसं १ बादर १ प्रत्येक १ अपर्याप्त १ अस्थिर १ अशुभ १ दुर्भगं अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ पञ्चेन्द्रियं १ चेति पञ्चविंशतिकं नामप्रकृति-स्थानं मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति २५ । मनुष्यगतिसहितानि त्रीणि नामप्रकृतिबन्धस्था-नानि जिनैर्भणितानि ॥२६३-२६५॥

पच्चीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियों इस प्रकार हैं—मनुष्यद्विक, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कर्मणशरीर, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशः-कीर्त्ति, निर्माण और पंचेन्द्रियजाति । पंचेन्द्रियजातिसंयुक्त इस पच्चीस प्रकृतिक स्थानको तिर्यक्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव बंधता है । इस प्रकार मनुष्यगतिसंयुक्त उक्त तीन स्थान कहे गये हैं ॥२६३-२६५॥

^२एत्थ सक्किलेसेण वज्जमाणा-अपज्जत्तेण सह धिरादीणा विसुद्धिपयद्दीणं बधो णत्थि तेण १ भगो ।

८
एवं मणुसगईसन्वभगा ४६०८ ४६१७ ।
१
४६१७

अत्र पञ्चविंशतिके संक्लेशेन बध्यमानेनापर्याप्तेन सह स्थिरादीना विशुद्धिप्रकृतीना बन्धो नास्ति, तेन भङ्ग एक एव १ ।

एवं मनुष्यगतेः सर्वे भङ्गाः ४६१७ ।

यहाँ पर संक्लेशके साथ बंधनेवाली अपर्याप्त प्रकृतिके साथ स्थिर आदि विशुद्धिकालमें बंधनेवाली प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है, इसलिए भंग एक ही है ।

इस प्रकार मनुष्यगतिसंयुक्त सर्वभंग ($८ + ४६०८ + १ = ४६१७$) होते हैं ।

१. सं० पञ्चस० ४, १७२-१७४ । २. ४, १७५ ।

१. पट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ६३-६४ ।

अव देवगतिसंयुक्तं बंधनेवाले स्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१देवदुयं पंचिदिय वेउव्विय आहार-तेज-कम्मं च ।

समचउरं वेउव्विय आहारय अंगवंगं च ॥२६६॥

तसचउ वण्णचउकं अगुरुयलहुयं च चत्तारि ।

थिर सुभ सुभगं सुस्सर पसत्थगइ जस य आदेज्जं ॥२६७॥

^२एत्थ देवगईए सह संघयणाणि ण वज्झति, देवेषु संघयणाणमुदयाभावादो । एत्थ भगो १ ।

णिमिणं चि य तित्थयरं एकत्तीसं ति होंति णेयाणि ।

बंधइ पमत्त-इयरो अपुव्वकरणो य णियमेण ॥२६८॥

अथ देवगत्या सह नामप्रकृतिबन्धस्थानविचारं गाथानवकेनाऽऽह—[‘देवदुयं पंचिदिय’ इत्यादि ।] प्रमत्तादितरः अप्रमत्तः, अपूर्वकरणश्च नामकर्मण एकत्रिंशत्कं प्रकृतीर्बध्नाति । ताः का इति चेदाऽऽह—देवगति-देवगत्यानुपूर्व्यद्विकं २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिकाऽऽहारक-तैजसकर्मणशरीराणि ४ समचतुरस्रसंस्थानं १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं २ त्रस-बाडर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्कं ४ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघूपघातपर-घातोच्छ्वासचतुष्कं ४ स्थिरं १ शुभं १ सुभगं १ सुस्वरः १ प्रशस्तविहायोगतिः १ यशस्कीर्त्तिः १ आदेयं १ निर्माणं १ तीर्थकरत्वं १ चेति एकत्रिंशत्कं नामप्रकृतिस्थानं ३१ अप्रमत्तो यतिः अपूर्वकरणोपशमकश्च बध्नाति नियमेन भवतीति ज्ञेयम् ॥२६६-२६८॥

देवद्विक (देवगति-देवगत्यानुपूर्वी), पचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर-अंगोपांग, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, यशःकीर्त्ति, आदेय, निर्माण और तीर्थकर; ये इकंतीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियों जानना चाहिए । इस स्थानको अप्रमत्तसंयत या अपूर्वकरणसंयत ही नियमसे बंधते हैं ॥२६६-२६८॥

अत्रैकत्रिंशत्के देवगत्या सह संहननानि न बध्नन्ति । कुतः ? देवानां संहननानामुदयाभावात् । अत्र भङ्गः १ एकः ।

यहाँ पर देवगतिके साथ किसी भी संहननका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि देवोंमें संहननो-का उदय नहीं पाया जाता । यहाँ पर भंग एक ही है ।

^३एमेव होइ तीसं णवरि हु तित्थयरवज्जियं णियमा ।

बंधइ पमत्त-इयरो अपुव्वकरणो य णायव्वो ॥२६९॥

अप्रमत्तस्थो मुनिः अपूर्वकरणस्थः साधुश्चैवमेकत्रिंशत्कप्रकारेण नामप्रकृतिस्थानं त्रिंशत्कं ३० बध्नाति । नवरि विणेपः । कथम्भूतः ? तीर्थकरत्ववर्जितं तीर्थकरत्वं वर्जयित्वा त्रिंशत्कं अप्रमत्तोऽपूर्वकरणो वा बध्नाति ज्ञातव्यमिति नियमात् ॥२६९॥

इसी प्रकार—इकतीस प्रकृतिक स्थानके समान—तीस प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि इसमें तीर्थकर प्रकृति छूट जाती है । इस तीस प्रकृतिक स्थानको भी अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत ही नियमसे बंधते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२६९॥

१. सं० पञ्चसं० ४, १७७-१८० । २. ४, १८१ । ३. ४, १८२ ।

१. पट्ख० जीव० चू० स्थान० सू० ६६ । २. पट्ख० जीव० चू० स्थान० सू० ६८ ।

^१एत्थ अथिरादीण बन्धो ण होइ, विसुद्धीए सह एएसिं बंधविरोहादो । तेनेत्थ भगो १ ।

अत्रास्थिरादीना बन्धो न भवति । कुतः ? विशुद्धया सहैतासामस्थिरादीना बन्धविरोधात् । ततोऽत्र भङ्ग एक एव १ ।

यहाँ पर अस्थिर आदि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि विशुद्धिके साथ इनके बंधनेका विरोध है । इस कारण यहाँ पर भंग एक ही है ।

^२आहारदुयं अवणिय एकत्तीसम्हि पढमउणतीसं ।

बंधइ अपुव्वकरणो अप्पमत्तो य णियमेण^१ ॥३००॥

एत्थ वि भगो १ ।

पूर्वोक्तैकत्रिंशत्कात् ३१ आहारकद्विकमपनीय दूरीकृत्याऽऽहारकद्विकं विना प्रथमैकोनत्रिंशत्कं प्रकृति-स्थानं २६ अपूर्वकरणोऽप्रमत्तश्च बध्नाति । तत्किम् ? देवगति-तदानुपूर्वीद्विकं २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिक-तैजस-कार्मणत्रिकं ३ समचतुरस्रं १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गं १ त्रस-वर्णाङ्गुलधुचतुष्कं १२ । स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-प्रशस्तगतयः ५ यशः १ आदेय १ निर्माण १ तैर्ध्र्यं १ चेति प्रथममेकोन त्रिंशत्कं स्थानं २६ अपूर्व-करणोऽप्रमत्तश्च मुनिर्वध्नातीति निश्चयेन ॥३००॥

अत्रापि भङ्गः १ ।

इकतीस प्रकृतिक स्थानमेसे आहारकद्विक (आहारकशरीर-आहारक अंगोपांग) को निकाल देने पर प्रथम उनतीस प्रकृतिक स्थान हो जाता है । इस स्थानको अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण-संयत नियमसे बंधते हैं ॥३००॥

प्रथम उनतीस प्रकृतिक स्थानमे भी भंग एक ही होता है ।

^३एवं विदिउगुतीसं णवरि य थिर सुभ जसं च, एकयरं ।

बंधइ पमत्तविरदो अविरदो देसविरदो य^२ ॥३०१॥

एव प्रथममेकोनत्रिंशत्कप्रकारेण द्वितीयमेकोनत्रिंशत्कं स्थानं २६ प्रमत्तविरतो मुनिरविरतोऽसंयत-सम्यग्दृष्टिर्देशविरतश्च बध्नाति । नवरि किञ्चिद्विशेषः—स्थिरास्थिर शुभाशुभ-यशोऽयशसा मध्ये एकतर १।१।१। स्थिरास्थिरयो शुभाशुभयोर्यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरम् [बध्नातीत्यर्थः] ॥३०१॥

इसी प्रकार द्वितीय उनतीस प्रकृतिक स्थान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि यहाँ पर स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति; इन तीन युगलोंमेंसे किसी एक-एक प्रकृतिका बन्ध होता है । इस द्वितीय उनतीस प्रकृतिक स्थानको प्रमत्तविरत, देशविरत और अविरतसम्यग्दृष्टि जीव बंधते हैं ॥३०१॥

^४एत्थ देवगईए सह उज्जोव ण वज्झइ, देवगदिम्मि तस्स उदयाभावादो, तिरियगई^१ सुच्चा अण्णगईए सह तस्स बंधविरोहादो । देवाण देहदित्ती तदो कुदो ? वण्णणामकम्मोदयादो । एत्थ य तिण्णि जुयलानि २।२।२ अण्णोणगुणिया भगा म ।

अत्र देवगत्या सहोद्योतो न बध्यते, तत्र देवगतो तस्योद्योतस्य उदयाभावात्, तिर्यग्गतिं मुक्त्वा अन्यथा गत्या सह तस्योद्योतस्य बन्धविरोधात् । देवानां देहदीप्तिस्तर्हि कुतः ? वण्णनामकर्मोदयात् । अत्र द्वितीयैकोनत्रिंशत्के स्थिरादीनि त्रीणि युगलानि २।२।२ अन्योन्यगुणितानि भङ्गा अष्टौ म ।

यहाँ पर देवगतिके साथ उद्योतप्रकृति नहीं बंधती है, क्योंकि देवगतिमें उसका उदय नहीं होता है । तिर्यग्गतिको छोड़ कर अन्य गतिके साथ उसके बंधनेका विरोध है । तो देवोमे

१. स० पञ्चस० ४, १८३ । २. ४, १८४ । ३. ४, १८५ । ४. ४, 'अत्र देवगत्या सहोद्योतो' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२६) ।

१. पट्ख० जीव० चू० स्थान० सू० १०० । २. पट्ख० जीव० चू० स्थान० सू० १०२ ।

देह-दीप्ति किस कर्मके उदयसे होती है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वर्णनाम कर्मके उदयसे उनके शरीरोमें दीप्ति होती है। यहाँपर स्थिरादि तीन युगलोके परस्पर गुणा करनेसे (२×२×२=) ८ भंग होते हैं।

^१तित्थयराहादुयं एकत्तीसम्हि अवणिण पढमं।

अट्ठावीसं बंधइ अपुव्वकरणो य अप्पमत्तो य ॥३०२॥

एत्थ भंगो १। पुनरुत्तो ण गहिओ।

पूर्वोक्ते एकत्रिंशत्के ३१ तीर्थकरत्वाऽऽहारकद्वयेऽपनीते दूरीकृते प्रथममष्टाविंशतिकं स्थानं २८ अपूर्वकरणो मुनिरप्रमत्तो मुनिश्च ब्रह्माति २८ ॥३०२॥

अत्र भङ्गः १ पुनरुत्तान्न गृहीतः।

इकत्तीसप्रकृतिक स्थानमेसे तीर्थङ्कर और आहारकद्विक, इन तीन प्रकृतियोंके निकाल देनेपर शेष वहीं अट्ठाईस प्रकृतियोंको अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत बाँधते हैं। यह प्रथम अट्ठाईसप्रकृतिक स्थान है ॥३०२॥

^२विदियं अट्ठावीसं विदिउगुतीसं च तित्थयरहीणं।

मिच्छादिपमत्तंता य बंधगा होंति णायव्वा ॥३०३॥

द्वितीयमष्टाविंशतिकं २८ द्वितीयैकोनत्रिंशत्के २६ तीर्थकरहीनं सत् मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तान्ता बध्नन्ति बन्धका भवन्तीति ज्ञातव्यम्। तथाहि-देवगति-देवगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिक-तैजस-कामर्ण-त्रिक ३ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गं १, समचतुरस्त्रं १ त्रस-वर्णागुरुलघुचतुष्कं १२ स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशोऽयशसां युगलानां मध्ये एकतर १।१।१ सुस्वरः १ सुभगं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ आदेय १ निर्माणं १ चेत्यष्टा-विंशतिकनामप्रकृतिबन्धस्थानस्य मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तान्ता बन्धका भवन्ति २८ ॥३०३॥

यहाँपर भंग एक ही है। किन्तु वह पुनरुक्त है, अतः उसका ग्रहण नहीं किया गया है।

द्वितीय उनतीस प्रकृतिक स्थानमेसे तीर्थङ्कर प्रकृतिके कम कर देनेपर द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिक स्थान हो जाता है। इस स्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत-गुणस्थान तकके जीव होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३०३॥

^३कुदो एवं, उवरिजाणं अप्पमत्तादीण अथिर-असुह-अजसकित्तीण बधाभावादो। भगा ८।

स्थिरादीनि २।२।२ परस्परगुणितानि ८ भङ्गाः। कुत एव? अप्रमत्तादीनां उपरिजानां गुणस्थानानां अस्थिराशुभायशस्कीर्तीनां बन्धाभावात्।

ऐसा क्यों होता है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अप्रमत्तसंयतादि उपरितनगुणस्थान-वर्ती जीवोंके अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति, इन तीनों प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। यहाँपर शेष तीन युगलोंके गुणा करनेसे आठ भंग होते हैं।

^४बंधंति जसं एगं अपुव्व अणियट्ठि सुहुमा य।

तेरे णव चउ पणयं बंध-वियप्पा हवंति णामस्स ॥३०४॥

एवं ठाणबधो समत्तो।

1. स० पञ्चस० ४, १८६। 2. ४, १८६। 3. ४ 'अप्रमत्तादीना' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२७)

4. ४, १८८।

१. पट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० १०४-१०५। २. पट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० १०६-१०७।

३. पट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० १०८-१०९।

अपूर्वकरणानिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराया मुनयः एकं यशःप्रकृतिकं [स्थान] बध्नन्ति । देवगत्या सह बन्धस्थानभेदा गुणस्थानेषु—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८
			२६	२६	२६	२६	२६
						३०	३०
							३१
							१

अपूर्वादिषु १११११ मिथ्यात्वादिप्रमत्तेषु अपूर्वकरणेषु अष्टौ भङ्गाः ८ । भिन्नीकरणेषु पृथक् पृथक् अष्टौ भङ्गाः ८ । अभेदतायां देवगतौ एकोनविंशतिभङ्गाः १६ । नामकर्मणः प्रकृतिस्थानानां त्रयोदश-नव-चतुःपञ्चसंख्योपेताः सर्वे बन्धविकल्पाः १३६४५ भवन्ति ।

घोरसंसारवाराशितरङ्गनिकरोपमैः ।

नामबन्धपदैर्जीवा वेष्टितास्त्रिजगद्भवाः^१ ॥३०॥

इति नामकर्मणः प्रकृतिस्थानबन्धः समाप्तः ।

यशस्कीर्तिरूप एक प्रकृतिक स्थानको अपूर्वकरणसंयत, अनिवृत्तिकरणसंयत और सूक्ष्म-साम्परायसंयत बंधते हैं । (इस प्रकार देवगतिसंयुक्त सर्व भंग (१ + १ + १ + ८ + १ + ८ = २०) होते हैं । तथा नामकर्मके ऊपर बतलाये गये सर्व बन्धविकल्प (तिर्यग्गति-सम्बन्धी ६३०८ + मनुष्यगतिके ४६१७ + देवगतिसम्बन्धी २० = १३६४५) तेरह हजार नौ सौ पैंतालीस होते हैं ॥३०४॥

चतुर्गति-सम्बन्धी सर्व विकल्प १३६४५ होते हैं ।

इस प्रकार नामकर्मके बन्धस्थानोका विवरण समाप्त हुआ ।

अब गुणस्थानोंकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्ध स्वामित्वको कहते हैं—

[मूलगा० ४१] ^१सन्वासिं पयडीणं मिच्छादिङ्गी दु बंधगो भणिओ ।

तित्थयराहारदुगं मोत्तूणं सेसपयडीणं^१ ॥३०५॥

[मूलगा० ४२] ^२सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारा ।

वज्झन्ति सेसियाओ मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं^२ ॥३०६॥

अथ गुणस्थानेषु बन्धाबन्धप्रकृतिभेद दर्शयति—['सन्वासिं पयडीण' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्टिः सर्वासां प्रकृतीनां बन्धको भणित, तीर्थकृत्वाऽऽहारकद्विकं मुक्त्वा शेषसप्तदशोत्तरशतप्रकृतीनां ११७ बन्धको मिथ्यात्वगुणस्थाने मिथ्यादृष्टिजीवो भवति सम्यक्त्वगुणकारणतीर्थकरत्व उपशम-वेदक-ज्ञायाकाणां मध्ये अन्यतरसम्यक्त्वे सति तीर्थकरत्वस्याविरताऽद्यपूर्वकरणस्य पष्ठभागपर्यन्त बन्धो भवति । सयमेन सामायिक-च्छेदोपस्थापनेन आहारकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं अप्रमत्ताद्यपूर्वकरणपष्ठभागान्ता मुनयो बध्नन्ति । 'सम्मेव तित्थबन्धो आहारदुगं पमादरहिदेसु' इति वचनात् । शेषाः प्रकृतीर्मिथ्यात्वाऽविरतिकपाययोगहेतुभिः प्रत्ययैः कृत्वा मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु बध्नन्ति ॥३०५-३०६॥

१. स० पञ्चसं० ४, १६२ । २. ४. १६३ ।

१. गो० कर्म० गा० ५८२ सस्कृतटीकायामपि उपलभ्यते ।

१. शतक० ४४ । २. शतक० ४५ । ३. गो० क० गा० ६२ ।

तीर्थङ्कर और आहारकट्टिक, इन तीन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सर्व प्रकृतियोंका बन्धक मिथ्यादृष्टि जीव कहा गया है। इसलिए मिथ्यात्वगुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। सन्यक्त्वगुणके निमित्तसे तीर्थङ्कर प्रकृतिका और संयमगुणके निमित्तसे आहारकट्टिकका बन्ध होता है। शेष एक सौ सत्तरह प्रकृतियों मिथ्यात्व, अविरति आदि हेतुओंसे बँधती है॥३०५-३०६॥

अब कितनी प्रकृतियाँ किस गुणस्थान तक बँधती हैं, इस बातका निरूपण करते हैं—

३सोलस मिच्छत्तंता आसादंता य पंचवीसं तु ।

तित्थयराउवसेसा अविरय-अंता दु मिस्सस्स ॥३०७॥

पोडण प्रकृती. मिथ्यादृष्टिगुणस्थानचरमसमयान्ता बन्धव्युच्छिन्ना वप्नन्ति १६ । पञ्चविंशति-प्रकृती सामादन्तान्ता बन्धव्युच्छेदं प्राप्ता वप्नन्ति २५ । तीर्थङ्करप्रकृतिं देव-नरायुद्धं च विना याः शेषाः प्रकृतीः अविरतान्ता वप्नन्ति ता मिश्रे च वप्नन्ति । तथाहि—मिश्रे मनुष्यायुर्देवायुर्वन्वो न । असंयतादौ तीर्थकरत्वबन्धोऽस्ति, नरायुपो व्युच्छेदः । अप्रमत्तान्त देवायुपो बन्धः ॥३०७॥

मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्त तक वक्ष्यमाण सोलह प्रकृतियाँ बँधती हैं। पचवीस प्रकृतियों सासादनगुणस्थानके अन्त तक बँधती है। अविरतगुणस्थानके अन्त तक जिनका बन्ध होता है, ऐसी तीर्थङ्कर और आयुद्विकके विना चौत्तर प्रकृतियों मिश्रगुणस्थानके अन्त तक तक बँधती हैं ॥३०७॥

	१६	२५	०
इति तित्थयराहार दुग्गा मिच्छादिङ्गिम्भि	११७	१०१	७४ ।
	१	१६	४६
	३१	४७	७४

इति गुणस्थानेषु प्रकृतानां स्वामित्वं बध्यते-तीर्थङ्करत्वाऽऽहारकट्टयोना मिथ्यादृष्टौ, सास्वादने, मनुष्य-देवायुर्मा विना मिश्रे—

	म०	मा०	मि०
त्रि०	१६	२५	०
य०	११७	१०५	७४
अ०	३	१६	४६
व०	३१	४७	७४

इस प्रकार तीर्थङ्कर और आहारकट्टिकके विना मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें बन्धव्युच्छिस्तिके योग्य प्रकृतियों १६ हैं, बन्धके योग्य ११७ हैं, अवन्धप्रकृतियों ३ हैं और ३१ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। सासादनगुणस्थानमें बन्धव्युच्छिस्तिके योग्य प्रकृतियाँ २५ हैं, बन्धके योग्य ११७ हैं, अवन्धप्रकृतियों १६ हैं और ४७ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यायु और देवायुके विना बन्ध-योग्य प्रकृतियों ७४ हैं, अवन्धप्रकृतियाँ ४६ हैं और ७४ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। इस गुणस्थानमें किसी भी प्रकृतिको बन्धव्युच्छिस्तिके नहीं होती है।

अवप्रथम गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंको गिनाते हैं--

^१मिच्छ णउंसयवेयं णिरयाऊ तह य चेय णिरयदुगं ।

इगि-वियलिंदियजाई हुंडमसंपत्तमादावं ॥३०८॥

थावर सुहुमं च तहा साधारण तहेव अपज्जत्तं ।

एवं सोलह पयडी मिच्छत्तमिह य बंधवोच्छेओ ॥३०९॥

मिथ्यात्वं १ नपुंसकवेद १ नरकायुः १ नरकगति-नरकगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजातयः ४ हुण्डक १ असम्प्राप्तसृष्टिकासंहनन १ आतपः १ स्थावरं १ सूक्ष्म १ साधारण १ अपर्याप्त १ चेत्येव षोडश प्रकृतयो मिथ्यात्वहेतुभूता मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्युच्छिन्नाः १६ । एतासामग्रेऽभावः ॥३०८-३०९॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु तथा नरकद्विक, एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियजातित्रिक, हुण्डकसंस्थान, सृष्टिकासंहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त ये सोलह प्रकृतियों मिथ्यात्वगुणस्थानके अन्तर्मे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३०८-३०९॥

अब दूसरे गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ बतलाते हैं--

^२थीणतियं इत्थी विय अण तिरियाऊ तहेव तिरियदुगं ।

मज्झिमचउसंठाणं मज्झिमचउ चेव संघयणं ॥३१०॥

उज्जोयमप्पसत्थं विहायगइ दुब्भगं अणादेज्जं ।

दुस्सर णीचागोदं सासणसम्ममिह वोच्छिण्णा ॥३११॥

स्त्यानगृद्धित्रय निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिरिति त्रिक ३ स्त्रीवेद १ अनन्तानुबन्धि-क्रोधादिचतुष्क ४ तिर्यगायुः १ तिर्यगति-तद्वानुपूर्व्ये २ न्यग्रोध-बाह्मीक-कुब्जक-वामनसंस्थानमध्यचतुष्क ४ वज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितसंहननमध्यचतुष्क ४ उद्योत १ अप्रशस्तविहायोगतिः १ दुर्भग १ अनादेयं १ दुःस्वरः १ नीचगोत्रं १ एव पञ्चविंशतिप्रकृतयः सासादनगुणस्थाने [बन्ध] व्युच्छिन्ना भवन्ति २५ ॥३१०-३११॥

स्त्यानत्रिक (स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला) स्त्रीवेद, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तिर्यगायु, तिर्यगद्विक, मध्यम चार संस्थान, मध्यम चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, अनादेय, दुःस्वर और नीचगोत्र, ये पञ्चीस प्रकृतियों सासादनगुणस्थानके अन्तर्मे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३१०-३११॥

अब अविरतादि चार गुणस्थानोंमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी संख्या बतलाते हैं--

[मूलगा० ४४] अविरयअंता दसयं विरयाविरयंतिया दु चत्तारि ।

ल्लचेव पमत्तंता एया पुण अप्पमत्तंता ॥३१२॥

दश प्रकृतयः अविरतान्ताः अविरते व्युच्छेद प्राप्ता इत्यर्थः । चतस्रः प्रकृतयो विरताविरतान्ता देशसयते व्युच्छिन्नाः ४ । षट् प्रकृतयः प्रमत्तान्ताः प्रमत्ते व्युच्छिन्नाः ६ । एका प्रकृतिः अप्रमत्तान्ता अप्रमत्ते व्युच्छिन्ना ॥३१२॥

१. ४, 'तत्र मिथ्यात्वनपुंसक' इत्यादि गद्यभाग (पृ० १२६) । २. ४, 'स्त्यानगृद्धित्रय' इत्यादि-गद्यभागः (पृ० ११७) ।

अविरतगुणस्थानके अन्तमें दश प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। विरताविरतके अन्तमें चार प्रकृतियों और प्रमत्तविरतके अन्तमें छह प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अप्रमत्तविरतके अन्तमें एक प्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न होती है ॥३१२॥

	१०	४	६	
तिथ्यर-मणुय-देवाऊहि सह असजयसस्माद्विष्टिम्	७७	६७	६३	आहारदुगेण
	४३	५३	५७	
	७१	८१	८५	

१
सह अप्पमत्ते ५६ ।
६१
८६

तोर्थकरत्वेन मनुष्य-देवायुभ्यां च सह असयतसम्यग्दष्टौ, देश-विरते प्रमत्ते, आहारकेयुगेन सहाप्रमत्ते—

	अ०	दे०	प्र०	अ०
वि०	१०	४	६	१
ब०	७७	६७	६३	५६
अ०	४३	५३	५७	६१
ब०	७१	८१	८५	८६

तीर्थङ्कर, मनुष्यायु और देवायुके साथ असंयतसम्यग्दष्टिगुणस्थानमें ७७ प्रकृतियों बंधती हैं, १० प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अबन्धप्रकृतियों ४३ है और ७१ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। देशविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियों ४ है, बन्धके योग्य ६७ हैं, अबन्धप्रकृतियों ५३ हैं और ८१ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। प्रमत्तविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियों ६ हैं, बन्धके योग्य ६३ हैं, अबन्धप्रकृतियों ५७ हैं और ८५ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। अप्रमत्तविरतमें आहारकद्विकके साथ बन्धयोग्य प्रकृतियों ५६ हैं, बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृति १ है, अबन्धप्रकृतियों ६१ है और ८६ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है।

अब अविरत आदि चार गुणस्थानोंमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

^१विदियकसायचउक्कं मणुयाऊ मणुयदुगय उरालं ।

तस्स य अंगोवंगं संघयणाई अविरयस्स ॥३१३॥

^२तइयकसायचउक्कं विरयाविरयमिह बंधवोच्छिण्णो ।

^३साइयरमरइ सोयं तह चैव य अथिरमसुहं च ॥३१४॥

अज्जसकित्ती य तहा पमत्तविरयमिह बंधवोच्छेदोक्क ।

देवाउयं च एयं पमत्तइयरमिह णायव्वो ॥३१५॥

प्रत्याख्यानचतुष्क ४ मनुष्यायुः १ मनुष्यगति-तदानुपूर्व्यं द्वे २ औदारिक १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वज्रवृषभनाराचमाद्यसंहननं १ । एव दश प्रकृतीनां असयतगुणस्थाने विच्छेदः १० प्रत्याख्यानतृतीयचतुष्कं ४ देशसयमे बन्धव्युच्छिन्नम् ४ । असातं १ अरतिः १ शोकः १ अस्थिर १ अशुभं १ अयशस्कीर्तिः १

१. स०-पञ्चसं० ४, 'द्वितीयकषायचतुष्क' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२६) । २. ४, 'चतुर्थी तृतीय कषायाणां' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२६) । ३. ४, 'शोकारत्य' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२६) ।
क्षेव बोच्छिण्णो ।

चेति प्रमत्तस्यते पट् प्रकृतयो व्युच्छिद्यन्ते ६ । अप्रमत्ते एकस्य देवायुषो [बन्ध] व्युच्छेदो ज्ञातव्यः ॥३१३-३१५॥

द्वितीय अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, औदारिकशरीर, औदारिक-अङ्गोपाङ्ग और वज्रवृषभनाराचसंहनन; ये दश प्रकृतियों अविरतगुणस्थानके अन्तमे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। तृतीय प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क, विरताविरतगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति ये छह प्रकृतियों प्रमत्तविरतगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। एक देवायुप्रकृति अप्रमत्तविरतगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होती है ॥३१३-३१५॥

अब अपूर्वकरणगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी संख्या बतलाते हैं—

[मूलगा० ४५] दो तीस चत्तारि य भागा भागेषु संखसण्णाओ ।

चत्तारि समयसंखा अपुव्वकरणंतिहा^१ होंति^१ ॥३१६॥

अपूर्वकरणस्य सप्त भागास्त्रिधा भवन्ति—प्रथमभागे प्रकृतिद्वयस्य बन्धव्युच्छेद^२ २ । पष्ठे भागे त्रिंशत्कप्रकृतीनां व्युच्छेदः ३० । सप्तमे भागे चतुःप्रकृतीनां बन्धव्युच्छेदः ४ । अपूर्वकरणस्य त्रिषु भागेषु प्रकृतीनां संख्यासंज्ञार्थं २।३०।४। शेषाश्चत्वारो भङ्गाः समयसंख्यार्थं कालसंख्यार्थं ज्ञातव्यम् २ ॥३१६॥

अपूर्वकरणगुणस्थानके संख्यात अर्थात् सात भाग होते हैं। उनमेसे प्रथम भागमें दो प्रकृतियों, छठे भागमें तीस प्रकृतियों और सातवें भागमें चार प्रकृतियों बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। इस प्रकार बन्धव्युच्छिन्निकी अपेक्षा अपूर्वकरणके तीन भाग प्रधान हैं। शेष चार भाग अपूर्वकरणगुणस्थानके समय अर्थात् काल बतलानेके लिए निरूपण किये गये हैं ॥३१६॥

	२	०	०	०	०	३०	४
अपुव्वेषु सत्तसु भागेषु	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
	६२	६४	६४	६४	६४	६४	६४
	६०	६२	६२	६२	६२	६२	१२२
		२	०	०	०	३०	४
अपूर्वकरणस्य सप्तसु भागेषु	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
	६२	६४	६४	६४	६४	६४	६४
	६०	६२	६२	६२	६२	६२	१२२

अपूर्वकरणके सातों भागोके बन्धाबन्धयोग्य प्रकृतियोंकी अङ्कसदृष्टि मूलमे दी हुई है।

अब अपूर्वकरणमें बन्ध-व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

^१णिदा पयला य तहा अपुव्वपढमम्हि बंधवोच्छेओ ।
 देवदुयं पंचिदिय ओरालिय वज्ज चउसरीरं च ॥३१७॥
 समचउरं वेउव्विय आहारय अंगवंगणामं च ।
 वण्णचउक्कं च तहा अगुरुयलहुगं च चत्तारि ॥३१८॥
 तसचउ पसत्थमेव य विहायगइ थिर सुहं च णायव्वं ।
 सुभगं सुस्सरमेव य आदेज्जं चेव णिमिणं च ॥३१९॥

१ स० पञ्चस० ४, 'अपूव्वस्य प्रथमे' इत्यादिगद्याशः (पृ० १२६) -

२. शतक० ४८ ।

१ब -तिया ।

तिथ्यरमेव तीसं अपुव्वच्छभाय बंधवोच्छिण्णा ।

हस्स रइ भय दुगुंछा अपुव्वचरिमहि वोच्छिण्णा ॥३२०॥

अपूर्वकरणस्य प्रथमे भागे निद्रा-प्रचले द्वे बन्धव्युच्छिन्ने २ । पष्ठे भागे चरमसमये देवगति-
देवगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ पञ्चेन्द्रियं १ औदारिकजनित वैक्रियिकाऽऽहारक-तैजस-कर्मणशरीरचतुष्कं ४ समचतुर-
स्रसंस्थानं १ वैक्रियिकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वय २ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघुचतुष्क ४ त्रसचतुष्कं ४ प्रशस्तविहायो-
गतिः १ स्थिरं १ शुभं १ सुभगं १ सुस्वरः १ आदेयं १ निर्माणं १ तीर्थकरत्वं १ एवं त्रिंशत्प्रकृतयोऽपूर्व-
करणस्य पष्ठे भागे बन्धाद् व्युच्छिन्नाः ३० । हास्य १ रतिः १ भयं १ जुगुप्सा १ इति चतस्रः प्रकृतयोऽ-
पूर्वकरणस्य चरमे सप्तमे भागे बन्ध-व्युच्छिन्नाः ॥३१७-३२०॥

निद्रा और प्रचला, ये दो प्रकृतियाँ अपूर्वकरणके प्रथम भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं । देवद्विक, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीरको छोड़कर शेष चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग, आहारक-अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, प्रशस्त-विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थकर, ये तीस प्रकृतियाँ अपूर्वकरणके छठवें भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं । हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, ये चार प्रकृतियाँ अपूर्वकरणके चरम समयमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३१७-३२०॥

अब नववें आर दसवें गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी संख्या बतलाते हैं—

[मूलगा० ४६] संखेज्जदिमे सेसे आढत्ता* वायरस्स चरिमंतो ।

पंचसु एककेवकंता सुहुमंता सोलसा होंति ॥३२१॥

वादरस्यानिवृत्तिकरणस्य शेषान् संख्याततमान् कांश्चिद् भागान् मुक्त्वा उद्धरित (?) भागेषु आहत्ता आरुह्य [आढत्ता आरभ्य] ततः पञ्चसु भागेषु चरमान्ते प्रान्ते एकैकस्याः प्रकृतेरन्तो व्युच्छेदो भवतीत्यर्थः । सूक्ष्मान्ताः सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये षोडश प्रकृतयो व्युच्छिन्ना भवन्ति १६ ॥३२१॥

वादरसाम्पराय अर्थात् अनिवृत्तिकरणके संख्यातवें भागके शेष रह जानेपर वहाँसे लगाकर चरम समयके अन्ततक होनेवाले पाँच भागोंमें एक-एक प्रकृति क्रमशः बन्धसे व्युच्छिन्न होती है । शेष सोलह प्रकृतियाँ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तसे बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३२१॥

अणिअट्टियन्मि पंचसु भाएसु सुहुमम्मि जहा पत्थारो—

१	१	१	१	१	१६
२२	२१	२०	१९	१८	१७
६८	६६	१००	१०१	१०२	१०३
१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१

अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेषु सूक्ष्मसाम्पराये च प्रस्तारो यथा—

१	१	१	१	१	१६
२२	२१	२०	१९	१८	१७
६८	६६	१००	१०१	१०२	१०३
१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१

अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें तथा सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें बन्धाबन्ध प्रकृतियोंकी प्रस्तार-रचना मूलमें दी है ।

अब नवें गुणस्थानमें, बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके नाम बतलाते हैं—

^१पुरिसं चउसंजलणं पंच य पयडी य पंचभायम्मि ।

अणिअट्ठी-अट्ठाए जहाकमं बंधवुच्छेओ ॥३२२॥

अनिवृत्तिकरणस्याद्धाभागेषु पञ्चसु यथाक्रम [बन्ध-] व्युच्छेदः । प्रथमभागे पुवेदः १ । द्वितीय-
भागे सज्जलनक्रोधः १ । तृतीयभागे सज्जलनमानः १ । चतुर्थभागे सज्जलनमाया १ । पञ्चमे भागे
सज्जलनलोभः १ बन्धव्युच्छिन्नः ॥३२२॥

अनिवृत्तिकरण कालके पाँच भागोमें पुरुषवेद और चार संज्वलनकषाय, ये पाँच प्रकृतियों
यथाक्रमसे एक-एक करके बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३२२॥

अब दशवें गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके नाम बतलाते हैं—

^२णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि उच्च जसकित्ती ।

एए सोलह पयडी सुहुमकसायम्मि वोच्छेओ ॥३२३॥

ज्ञानावरणपञ्चक ५ अन्तरायपञ्चक ५ चक्षुरचक्षुरवधिक्वेवलदर्शनावरणचतुष्क ४ उच्चैर्गोत्र १ यश-
स्कीर्त्तिः १ इत्येताः षोडश प्रकृतयः सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये [बन्धाद्] व्युच्छिन्नाः १६ ॥३२३॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी चार, उच्चगोत्र और यश'कीर्त्ति ये
सोलह प्रकृतियों सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके अन्तिम समयमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३२३॥

अब तेरहवें गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतिका निर्देश कर प्रकृत अर्थका
उपसंहार करते हैं—

[मूलगा० ४७] ^३सायंतो जोयंतो एत्तो पाएण णत्थि बंधो त्ति ।

णायव्वो पयडीणं बंधो संतो अणंतो य ॥३२४॥

साताया अन्तो व्युच्छेदः योगान्तः सयोगपर्यन्तः । इतः पर प्रायेण गुणस्थानकेन बन्धो नास्तीति
उपशान्तादिषु ज्ञातव्यं प्रकृतीनां सन्तः अवन्धः अनन्तः व्युच्छेदः । चकाराद् बन्धाबन्धो ज्ञातव्यः ॥३२४॥

योगके अन्ततक सातावेदनीयकर्मका बन्ध होता है, अर्थात् ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें
गुणस्थानमें एक सातावेदनीयकर्म ही बंधता है । तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें उसकी भी बन्धसे
व्युच्छिन्ति हो जाती है । इससे आगे चौदहवें गुणस्थानमें योगका अभाव हो जानेसे फिर किसी
भी कर्मका बन्धका नहीं होता है । इस प्रकार चौदह गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंका सान्त अर्थात्
बन्धव्युच्छिन्ति और अनन्त अर्थात् बन्ध जानना चाहिए ॥३२४॥ (देखो संहृष्टि संख्या १४)

विशेषार्थ—इस गाथाके चतुर्थ चरणके पाठ दो प्रकारके मिलने हैं—१ 'बंधो संतो'
अणंतो य' और २ 'बन्धस्संतो अणंतो य' । प्रथम पाठ प्रकृत गाथामें दिया हुआ है और द्वितीय
पाठ शतक प्रकरणकी गाथाङ्क ५० और गो० कर्मकाण्डकी गाथाङ्क १२१ में मिलता है ।
शतकचूर्णमें 'अहवा सन्तो बंधो अणंतो य भव्वाभव्वे पडुच्च' कहकर 'बंधो संतो अणंतो य'
पाठको भी स्वीकार किया है और तदनुसार शतकप्रकरणके संस्कृत टीकाकारने उसका अर्थ
इस प्रकार किया है—

१. स० पञ्चस० ४, ४, 'पुवेद सज्जल' इत्यादि गद्याशः (पृ० १२६) । २. ४, 'उच्चगोत्रयशो'
इत्यादि गद्याशः (पृ० १२६-१३०) । ३. ४, 'शान्तचोणकपायौ व्यतीत्यैकस्य सातस्य'
इत्यादिगद्यांशः (पृ० १३०) ।

‘अथवा सर्वोऽप्य प्रकृतीनां बन्धः सान्तो ज्ञातव्यो भव्यानाम्, अनन्तश्च ज्ञातव्योऽभव्यानामिति’ ।

अर्थात् भव्योंकी अपेक्षा सभी प्रकृतियोंका बन्ध सान्त है । किन्तु अभव्योंकी अपेक्षा अनन्त जानना चाहिए; क्योंकि उनके कभी भी किसी प्रकृतिका अन्त नहीं होता ।

दूसरे पाठका अर्थ गो० कर्मकाण्डके टीकाकारने इस प्रकार किया है—

‘बन्धस्यान्तो व्युच्छित्तिः । अनन्तः बन्धः । चशब्दादबन्धश्चोक्तः ।’ बन्धका अन्त यानी व्युच्छित्ति, अनन्त यानी बन्ध और गाथा-पठित ‘च’ शब्दसे अबन्ध जानना चाहिए ।

शतक प्रकरणके संस्कृत टीकाकारने इस दूसरे पाठका अर्थ इस प्रकार किया है—

‘यत्र गुणस्थाने यासां प्रकृतीनां बन्धस्यान्त उक्तस्तत्र तासां बन्धस्यान्तस्तत्र भावस्तदुत्तरत्राभाव इत्येवलक्षणो ज्ञातव्यः । शेषाणां त्वनन्तस्तदुत्तरत्रापि भावलक्षणो ज्ञातव्यः । यथा षोडश प्रकृतीनां मिथ्या-दृष्टौ बन्धस्यान्तः शेषस्य त्वेकोत्तरशतस्थानान्तस्तदुत्तरत्रापि गमनात् । एवमुत्तरत्र गुणस्थानेष्वप्यन्तानन्त-भावना कार्या ।

अर्थात् जिस गुणस्थानमें जिन प्रकृतियोंके बन्धका अन्त कहा है, वहाँ तक उनका सद्भाव है और आगे उनका असद्भाव है । तथा जहाँपर जिन प्रकृतियोंका अन्त या असद्भाव है, वहाँपर शेष प्रकृतियोंका ‘अनन्त’ अर्थात् अन्तका अभाव यानी सद्भाव है ।

ऐसी अवस्थामें प्राकृतपञ्चसंग्रहके संस्कृत टीकाकार-द्वारा किया गया अर्थ विचारणीय है ।

	०	०	१	०
उवसतादि—	१	१	१	०
	११६	११६	११६	१२०
	१४७	१४७	१४७	१४८
उ०	क्षी०	स०	अ०	
०	०	०		
१	१	१	०	
११६	११६	११६	१२०	
१४७	१४७	१४७	१४८	

इति गुणस्थानेषु प्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं समाप्तम् ।

उपशान्तकपाय, क्षीणकपाय और सयोगिकेवलीके एक साता-वेदनीयका बन्ध होता है, शेष ११६ प्रकृतियोंका अबन्ध है । सयोगिकेवलीके सातावेदनीयकी भी बन्धसे व्युच्छित्ति हो जाती है । अतः अयोगकेवलीके १२० का ही अबन्ध रहता है ।

अब मूलशतककार आदेश अर्थकी सूचनाके लिए उत्तर गाथासूत्र करते हैं—

[मूलगा० ४८] गइयादिएसु एवं तप्पाओगाणंमोघसिद्धाणं ।

सामित्तं णायन्वं पयडीणं णाण (ठाण) मासेज्जं ॥३२५॥

अथ गत्यादिषु मार्गणासु प्रकृतीनां स्वामित्वं दर्शयति—[‘गइयादिएसु’ इत्यादि ।] गत्यादि-मार्गणासु एवं गुणस्थानोक्तप्रकारेण तत्प्रायोग्यानां गत्यादिमार्गणायोग्यानां गुणस्थानप्रसिद्धानां प्रकृतीनां स्वामित्वं ज्ञातव्यं ज्ञानमाश्रित्य श्रुतज्ञानमागम स्वीकृत्य ॥३२५॥

इसी प्रकार गति, इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणाओमें उन उनके योग्य ओघसिद्ध प्रकृतियोंका स्वामित्व ऊपर बतलाये गये गुणस्थानों या बन्धस्थानोंके आश्रयसे लगा लेना चाहिए ॥३२५॥

अव सूत्रकारके द्वारा सूचित अर्थका भाष्यकार व्याख्या करते हैं—

इग्नि-विगलिंदियजाई वेउन्वियल्लकणिरयदेवाळ ।
आहारदुगादावं थावर सुद्धमं अपुण्ण साहरणं ॥२२६॥
तेहि विणा णेरइया बंधंति य सन्वबंधपयडीओ ।

॥१०१॥

ताओ वि तित्थयरूणा मिच्छादिट्ठी दु णियमेण ॥३२७॥

॥१००॥

मिच्छ णउंसयवेयं हुंडमसंपत्तसंघयणं ।
एयाणि विणा ताओ सासणसम्मा दु णेरइया ॥३२८॥

॥६६॥

आसाय छिण्णपयडी णराउरहिया उ ताओ मिस्सा दु ।

॥७०॥

तित्थयरणराउजुया अविरयसम्मा दु णेरइया ॥३२९॥

॥७२॥

नरकगती गुणस्थानमाश्रित्य बन्धयोग्यप्रकृतीः प्रकाशयति—एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजातयः ४ नरकगतिः नरकगत्यानुपूर्वी देवगतिः देवगत्यानुपूर्वी वैक्रियिकं वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गमिति वैक्रियिकपट्कं ६ नारकायुः देवायुः १ आहारकद्विक २ आतपः १ स्थावरं १ सूक्ष्म १ अपर्याप्त १ साधारणं १ एवमेकोनविंशति-प्रकृती १६ विना शेषाः सामान्येन नारका बध्नन्ति १०१ । ताभिरेकोनविंशत्या प्रकृतिभिर्विना एकोत्तरशतसर्व-बन्धप्रकृतीनारका बध्नन्ति १०१ । ता अपि प्रकृतयः घर्मादित्रये बन्धयोग्यमेकोत्तरशतम् १०१ । अञ्जना-दित्रये तीर्थकरत्वं विना शतम् १०० । माघव्यां मनुष्यायुर्विना एकोनशतम् ६६ । तत्र घर्मानरके ता एव पूर्वोक्ताः १०१ तीर्थकरत्वेनाः शतप्रकृतीर्मिथ्यादृष्टिर्वध्नाति १०० नियमेन । मिथ्यात्व १ नपुंसकवेदः १ हुण्डक १ असम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन १ चैताश्चतस्रः प्रकृतयो मिथ्यात्वे व्युच्छिन्नाः ४ । एतामिश्रतत्त्वमिः प्रकृतिभिर्विना ताः प्रकृतीः सासादनसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ६६ । ताः पणवतिः ६६ प्रकृतयः सास्वादनस्य व्युच्छिन्नपञ्चविंशतिप्रकृति २५ नरायूरहिता इति ससतिप्रकृतीः ७० मिश्रा मिश्रगुणस्थानवर्तिनो बध्नन्ति । एतास्तीर्थकरत्व-मनुष्यायुर्भ्यां युक्ताः ७२ अविरतसम्यग्दृष्टयो नारका बध्नन्ति ॥३२६-३२९॥

एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियजातित्रिक, वैक्रियिकपट्क (वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अङ्गो-पाङ्ग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी) नरकायु, देवायु, आहारकद्विक, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण; इन उन्नीस प्रकृतियोंके विना नारकी जीव शेष सर्व प्रकृतियोंका अर्थात् १०१ का बन्ध करते हैं । उनमे भी मिथ्यादृष्टि नारकी तीर्थद्वर प्रकृतिके विना १०० प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और सृपाटिकासंहनन, इन चारके विना ६६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । सासा-दनगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली २५ प्रकृतियों और मनुष्यायु इन २६ के विना शेष ७० प्रकृतियोंका सम्यग्मिथ्यादृष्टि बन्ध करते हैं । अविरतसम्यग्दृष्टि नारकी तीर्थद्वर और मनुष्यायुके सार्थ उक्त ७० प्रकृतियोंका अर्थात् ७२ का बन्ध करते हैं ॥३२६-३२९॥ (देखो सट्टिसंख्या १५)

आसाय छिण्णपयडी पढमाविदियातिदियासु पुढवीसु एव चउसु वि गुणेषु । एव चउत्थ-पचमि-छट्ठी णेरइया । ताओ चउसु वि गुणेषु । णवरि तित्थयर असजदो ण बधेइ ॥१००॥६६॥७०॥७१॥

एव प्रथम-द्वितीय-तृतीयपृथ्वीषु घर्मा-वंशा-मेघानरकत्रये एताः सास्वादनव्युच्छिन्नाः प्रकृतयः २५ चतुर्षु गुणस्थानेषु पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञातव्याः । नवरि किञ्चिद्विशेषः—असंयतसम्यग्दृष्टिस्तीर्थकरत्वं न बन्धा-तीति अञ्जनादित्रये तीर्थकर विना, [घर्मादि-] त्रयवत् ।

	मि०	सा०	मि०	अ०
घर्मादित्रये—	४	२५	०	१०
	१००	६६	७०	७२
	१	५	३१	२६
	मि०	सा०	मि०	अ०
अञ्जनादित्रये—	४	२५	०	१०
	१००	६६	७०	७१
	०	४	३०	३१

सासादनमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली २५ प्रकृतियों नारकसामान्यके भी गुणस्थानवत् जानना । इसी प्रकार पहली, दूसरी और तीसरी पृथिवीके नारकियोंके चारों ही गुणस्थानोंकी बन्धरचना जानना चाहिए । इसी प्रकार चौथी पौंचवीं और छट्टी पृथिवीके नारकियोंकी बन्धरचना है । उनके चारो ही गुणस्थानोंमें वे ही बन्धादि-सम्बन्धी प्रकृतियों हैं । विशेषता केवल यह है कि उन पृथिवियोंका असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं करता है । उन पृथिवियोंके चारों गुणस्थानोंमें बन्ध-योग्य प्रकृतियों क्रमशः १००, ६६, ७० और ७१ हैं ।

अब सातवें नरकमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

सामण्णिरियपयडी तित्थयर-णराउ-रहियाऊ ।

बंधंति तमतमाए णेरइया संकिलिद्धभावेण ॥३३०॥

।६६।

णरदुयउच्चूणाओ ताओ तत्थेव मिच्छदिट्ठिया ।

।६६।

तिरियाऊ मिच्छ संढय हुंडासंपत्तरहियपयडीओ ॥३३१॥

ताओ तत्थ य णिरया सासणसम्मा दु बंधंति ।

।६१।

तिरियाऊण-सासण-वोच्छिण्णपयडिविहीणाओ ॥३३२॥

णरदुयउच्चजुयाओ मिस्सा अजई वि बंधंति ।

।७०।

तमस्तमःप्रभानरके सप्तमे नारकास्तीर्थकरत्वं-मनुष्यायुभ्यां रहिताः सामान्यनारकोक्तप्रकृतीः ६६ बध्नन्ति [सक्लिष्टभावेन] । तत्र माघव्यामेव नवनवति-प्रकृतीर्मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्व्योच्चैर्गोत्रत्रिकोनाः ६६ मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति । ताः पण्णवतिप्रकृतयः ६६ तिर्यगायुर्मिथ्यात्व-पण्डवेद-हुण्डक-संस्थानाऽसम्प्राप्तसुपा-टिकासंहननपञ्चप्रकृतिरहिता इत्येकनवतिप्रकृतीस्तत्र नारकोद्भवाः सासादनसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ६१ । तिर्यगायुरूना सास्वादनस्य व्युच्छिन्नप्रकृति २४ विहीनास्ताः सास्वादनोक्ता मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्व्योच्चैर्गोत्रयुक्ता इति सप्ततिप्रकृतीर्मिश्रगुणस्थानवर्तिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च बध्नन्ति ७० माघव्याम् ॥३३०-३३२॥

इति नरकगतिः समाप्ता ।

तमस्तमा अर्थात् महातमःप्रभा पृथिवीके नारकी संक्लिष्ट भाव होनेसे तीर्थङ्कर और मनुष्यायुके विना नारकसामान्यके बंधनेवाली शेष ६६ प्रकृतियोंको बंधते हैं। उसी पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रके विना शेष ६६ प्रकृतियोंको बंधते हैं। तथा वहींके सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी तिर्यगायु, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुंडकसंस्थान और सृपाटिकासंहनन, इन पाँच प्रकृतियोंके विना शेष ६१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। वहाँके मिश्र और असंयत-गुणस्थानवर्ती नारकी तिर्यगायुके विना तथा सासादनमे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके विना, तथा मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र सहित शेष ७० प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३३०-३३२३॥
(देखो सदृष्टिसख्या १६)

अथ तिर्यग्गतिमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

तित्थयराहारदुगूणाओ बंधंति बंधपयडीओ ॥३३३॥

तिरिया तिरियगईए मिच्छाइट्टी वि इत्तिया चेव ।

११७।

ताओ मिच्छाइट्टी-वोच्छिण्णपयडिविहीणाओ ॥३३४॥

सासणसम्माइट्टी तिरिया बंधंति णियमेण ।

११०१।

आसायछिण्णपयडी मणुसोरालदुग आइसंघयणं ॥३३५॥

णरदेवाऊ-रहिया मिस्सा बंधंति ताओ तिरिया-हु ।

१६६।

ताओ देवाउजुआ अजई तिरिया दु बंधंति ॥३३६॥

१७०।

विदियकसाएहिं विणा ताओ तिरिया उ देसजई ।

१३६।

अथ तिर्यग्गत्यां बन्धप्रकृतिमेवं गाथापट्केनाऽऽह—['तित्थयराऽऽहारदुगूणाओ' इत्यादि ।] तिर्यग्गतौ बन्धप्रकृतिराणि १२० मध्यातीर्थकरत्वाऽऽहारकद्वय परिहृत्य शेषबन्धयोग्यप्रकृतयः सप्तदशोत्तर ११७ इत्येतावतीः प्रकृतीर्मिथ्यादृष्ट्यस्तिर्यञ्चो बध्नन्ति । ताः सप्तदशोत्तरशतप्रकृतयः ११७ मिथ्यादृष्ट्यु-च्छिन्नप्रकृति १६ विहीना इत्येकोत्तरशतप्रकृतीः १०१ सासादनसम्यग्दृष्टितिर्यञ्चो बध्नन्ति नियमेन । सासा-दनच्युच्छिन्नप्रकृतिपञ्चविंशतिक २५ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्विकं २ औदारि-[कशरीरौदारि-]काङ्गो-पाङ्गद्वय ० वज्रवृषभनाराचमंहनन १ मनुष्यायुः १ देवायुष्कं १ चेति द्वाविंशत्क प्रकृतिभिर्विहीनास्ताः पूर्वाक्ताः १०१ एवमेकोनसप्ततिप्रकृतीर्मिश्रगुणस्थानकास्तिर्यञ्चो बध्नन्ति । ता मिश्रोक्ता ६६ देवायुर्मुक्ता सप्तति प्रकृतीः ७० असंयतसम्यग्दृष्ट्यस्तिर्यञ्चो बध्नन्ति ॥३३२३-३३६३॥

तिर्यग्गतिमे मिथ्यादृष्टि तिर्यच तीर्थकर और आहारकद्विकके विना शेष उतनी ही अर्थात् ११७ बन्धप्रकृतियोंको बंधते हैं। उनमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थानमे व्युच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियोंके विना शेष १०१ प्रकृतियोंको सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच नियमसे बंधते हैं। सासादनमे व्युच्छिन्न होनेवाली २५ प्रकृतियोंके, तथा मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, आदि संहनन, मनुष्यायु और देवायुके विना शेष वहीं ६६ प्रकृतियोंको मिश्रगुणस्थानवर्ती तिर्यच बंधते हैं। उनमें एक देवायुको मिलाकर ७० प्रकृतियोंको असंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यच बंधते हैं। द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण-कपायचतुष्कके विना शेष ६६ प्रकृतियोंको देशव्रती तिर्यच बंधते हैं ॥३३२३-३३६३॥
(देखो सदृष्टिसख्या १७)

एवं तिरियपंचिदिय पुण्णा बंधंति ताओ पयडीओ ॥३३७॥
 पञ्जत्ता णियमेणं पंचिदियतिरिक्खिणीओ य ।
 तित्थयराहारदुयं वेउव्वियल्लक्कणिरयदेवाऊ ॥३३८॥
 तेहि विणा बंधाओ तिरियपंचिदियअपञ्जत्ता ।

॥१०६॥

एवं अमुना प्रकारेण ताः सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियपर्याप्तास्तिर्यञ्चो वदन्ति । तथा पञ्चेन्द्रियपर्याप्तिरिश्च्यो योनिमतिर्यञ्चः एतावत् ११७ प्रकृतीर्वदन्ति ॥

पर्याप्तपञ्चेन्द्रिययोनिमतिर्यङ्ग-रचनायन्त्रम्—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०
१६	३१	०	४	४
११७	१०१	६६	७०	६४
०	१६	४८	४७	५१

तीर्थकरत्वाऽऽहारकद्वय ३ देव-नरकगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिक-वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियिकपट्कं ६ नरकायुः १ देवायुः १ चेत्येकादशप्रकृतिभिस्तामिर्विना शेषनवोत्तरशतप्रकृतिबन्धका लब्धपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चो भवन्ति ॥३३६३-३३८३॥

अलब्धपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्ग-रचनायन्त्रम्—१०६ ।

इसी प्रकार तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी ऊपर बतलाई गई सामान्य तिर्यञ्चोंवाली उन्हीं प्रकृतियोंको बंधते हैं। इसी प्रकार पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चनी भी नियमसे उन्हीं प्रकृतियोंको बंधती हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव तीर्थकर, आहारकद्विक वैक्रियिकपट्क नरकायु और देवायुके बिना शेष १०६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३३६३-३३८३॥

अब मनुष्यगतिमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

मणुयगईए सव्वा तित्थयराहारहीणया मिच्छा ॥३३९॥

१२० मि० ११७।

मिच्छम्मि च्छिण्णपयडी-ऊणाओ आसाय ।

॥१०१॥

आसायच्छिण्णपयडीमणुसोरालदुय आइसंघयणं ॥३४०॥

णर-देवाऊरहिया मिस्सा बंधंति ताओ मणुयाऊ ।

॥६६॥

तित्थयर-सुराउजुआ ताओ बंधंति अजइमणुया दु ॥३४१॥

॥७१॥

विदियकसाएहिं विणा ताओ मणुया दु देसजई ।

॥६७॥

पमत्तादिसु ओघो जि होज्ज मणुया दु पञ्जत्ता ॥३४२॥

तह मणुय-मणुसिणीओ अपुण्णतिरिया* व णरअपञ्जत्ता ।

* द. 'तिरियव्व' पाठः ।

मनुष्यगतौ सर्वाः प्रकृतयो १२० बन्धयोग्या भवन्ति । तत्र तीर्थकरत्वाऽऽहारकद्वयहीनाः अन्या सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीर्मिथ्यादृष्टिमनुष्या बध्नन्ति ११७ । मिथ्यात्वव्युच्छिन्नप्रकृतिभिः १६ हीनास्ता सासादनस्थमनुष्या बध्नन्ति १०१ । सासादनव्युच्छिन्नप्रकृति २५ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यादौदारिका-ज्ञोपाङ्गचतुष्क-वज्रवृषभनाराचसहनन- मनुष्य-देवायुष्कद्वयरहितास्ताः पूर्वोक्ता मिश्रगुणस्थानस्थमनुष्या एकोनसप्ततिं प्रकृतीर्वध्नन्ति ६६ । ता एकोनसप्ततिं तीर्थकर-देवायुर्युता एकसप्ततिप्रकृतीरसयत-मनुष्या बध्नन्ति । एता द्वितीयकपायचतुष्केन विना सप्तपष्टि प्रकृती देशसयतमनुष्या बध्नन्ति ६७ । प्रमत्तादि-गुणस्थानेषु गुणस्थानोक्तवत् । तथाहि—प्रमत्ते ६३ अग्रमत्ते ५६ अपूर्वकरणे ५८ अनिवृत्तिकरणे २२ सूक्ष्म-साम्पराये १७ उपशान्ते १ क्षीणे १ सयोगेषु च १ प्रकृतीः पर्याप्ता मनुष्या बध्नन्ति । तथा तेनैव पर्याप्त-मनुष्योक्तप्रकारेण प्रकृतीः पर्याप्ता मानुष्यः १२० बध्नन्ति । मिथ्यादृष्टिलब्धपर्याप्ततिर्यग्गतित्वत् मनुष्य-लब्धपर्याप्ता १०६ बध्नन्ति ॥३३८३-३४२३॥

पर्याप्तमानुष्या बन्धयोग्याः १२० ।

लब्धपर्याप्तमनुष्येषु १०६ ।

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
१६	३१	०	४	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
पर्याप्तमनुष्यरचना—	११७	१०१	६६	७१	६७	६३	५६	५८	२२	१७	१	१	०
	३	१६	५१	४६	५३	५७	६१	६२	६०	१०७	११६	११६	१२०

मनुष्यगतिमें सभी अर्थात् १२० प्रकृतियों बंधती हैं । उनमेंसे मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीर्थकर और आहारिकद्विकसे हीन शेष ११७ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यात्वमें विच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियोंसे हीन शेष १०१ का बन्ध करते हैं । मिश्रगुणस्थान-वर्ती मनुष्य सासादनमें विच्छिन्न होनेवाली २५ प्रकृतियोंसे, तथा मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, आदिसंहनन, मनुष्यायु और देवायुसे रहित शेष ६६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थकर और देवायु सहित उक्त प्रकृतियोंका अर्थात् ७१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । देशसंयत मनुष्य द्वितीय कपायचतुष्के विना शेष ६५ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । प्रमत्तादि ऊपरके गुणस्थानवर्ती मनुष्योंमें ओधके समान प्रकृतियोंका बन्ध जानना चाहिए । सामान्य मनुष्योंके समान पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियों प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । तथा अपर्याप्त तिर्यञ्चके समान अपर्याप्त मनुष्य १०६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३३८३-३४२३॥

(देखो सदृष्टिमंख्या १८)

अव देवगतिमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

सुहुमाहार अपुण्णवेउव्वियल्लक्कणिरयदेवाऊ ॥३४३॥

साहारण-वियल्लिंदियरहिया बंधंति देवाओ ।

१५०४।

तित्थयरूणे मिच्छा सासाणसम्मो दु थावरादावं ॥३४४॥

इगिजाइहुंडसंढयमिच्छासंपत्तरहियाओ ।

मि० १०३।सा० ६६।

आसायल्लिणपयडीणराउ ताउ मिस्सा दु ॥३४५॥

तित्थयरणराउजुया अजई देवा दु बंधंति ।

मि० ७०।अ०७२।

अथ देवगतौ बन्धयोग्यप्रकृतीर्गाथाद्वादशोनाऽऽह—['सुहुमाहारभपुण्ण'—इत्यादि ।] सूक्ष्मं १ आहारकद्विक २ अपर्याप्त १ वैक्रियिकवैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग-देवगति-तदानुपूर्व्य-नरकगति-तदानुपूर्व्यमिति वैक्रियिकप्रकृ ६ नरकायुः १ देवायुः १ साधारण १ विकलत्रयं ३ चेति षोडश १६ प्रकृतिरहिताः अन्याश्चतुस्तर-शतं १०४ बन्धयोग्यप्रकृतीर्देवाः सामान्यतया वध्नन्ति । ता एव १०४ तीर्थकरोना १०३ मिथ्यादृष्टिदेवा वध्नन्ति । तु पुनः स्थावराऽऽतपौ २ एकेन्द्रियजातिः १ हुडकसंस्थान १ नपुंसकवेदं १ मिथ्यात्वासम्प्राप्त-सृपाटिकासहनने २ एव सप्तप्रकृतिभिः रहितास्ताः पणवतिप्रकृतीः ६६ सासादनस्था देवा वध्नन्ति । सासादनव्युच्छिन्नप्रकृति २५ मनुष्यायुरहितास्ता एव ७० मिश्रगुणस्थदेवा वध्नन्ति । ता एव सप्तति ७० तीर्थकर-मनुष्यायुःसहिता इति द्वासप्ततिं ७२ प्रकृतीरसंयतसम्यग्दृष्टिदेवा वध्नन्ति । ॥३४२३-३४५३॥

	मि०	सा०	मि०	अ०
सामान्येन देवगतौ—	७	२५	०	१०
	१०३	६६	७०	७२
	१	८	३४	३२

सूक्ष्म, आहारकद्विक, अपर्याप्त, वैक्रियिकपट्क, नरकायु, देवायु, साधारण और विकलेन्द्रिय-त्रिक; इन सोलहके बिना शेष १०४ प्रकृतियोंको सामान्यतया देव बाँधते हैं । उनमें मिथ्यादृष्टि देव तीर्थकरके बिना १०३ प्रकृतियोंको बाँधते हैं । सासादन सम्यग्दृष्टि देव स्थावर, आतप, एकेन्द्रियजाति, हुडकसंस्थान, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व और सृपाटिका संहनन; इन सातसे रहित शेष ६६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । मिश्रगुणस्थानवर्ती देव सासादनगुणस्थानमें विच्छिन्न होनेवाली २५ और मनुष्यायु इन २६ से रहित शेष ७० प्रकृतियोंको बाँधते हैं । असंयत देव तीर्थकर और मनुष्यायु सहित उक्त प्रकृतियोंका अर्थात् ७२ का बन्ध करते हैं ॥३४२३-३४५३॥

(देखो सदृष्टिसंख्या १६)

अब देवविशेषोंमें बन्धादिका निरूपण करते हैं—

तिकायदेव-देवी सोहम्मीसाण देवियाणं च ॥३४६॥

मिच्छाईतिसु ओघो अजई तित्थयररहियाओ ।

सामण्णदेवभंगो सोहम्मीसाणकप्पदेवाणं ॥३४७॥

एत्तो उवरिल्लाणं देवाण जहागमं वोच्छं ।

भवनवासि-व्यन्तर-ज्योतिष्कत्रयोत्पन्नदेव-देवीनां सौधर्मैशानोत्पन्नदेवीनां च मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु ओघवत् । मिथ्यादृष्टौ १०३ सासादने ६६ मिश्रे ७० असंयते तीर्थकरत्वं विना ७१ ।

मि०	सा०	मि०	अ०
७	२५	०	१०
१३	६६	७०	७१

सामान्यदेवभङ्गरचनावत्सौधर्मैशानकल्पजदेवानां मिथ्यादृष्टौ । अत उपरितनानां देवानां बन्धयोग्य-प्रकृतीर्थयागमानुसारेण वक्ष्येऽहम् ॥३४५३-३४७३॥

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी, इन तीन कायके देव और देवियोंके; तथा सौधर्म और ईशान कल्पोत्पन्न देवियोंके मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंका बन्ध ओघके समान क्रमशः १०३, ६६ और ७० जानना चाहिए । असंयतगुणस्थानवर्ती उक्त देव और देवियों तीर्थकररहित ७१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । सौधर्म-ईशान-कल्पवासी देवोंके प्रकृतियोंका बन्ध सामान्य देवोंके समान जानना चाहिए । अब इससे ऊपरके कल्पवासी देवोंके बन्धादिको आगमके अनुसार कहता हूँ ॥३४५३-३४७३॥

(देखो सदृष्टिसंख्या २०)

तद्वक्पाई जाव दु सहसारंता देवा जा ॥३४८॥
देवगईपयडीओ एकस्त्रादावथावरूणाओ ।

११०१।

मिच्छातिथयरूणा हुंडा संपत्तमिच्छसंदूणा ॥३४९॥
सासणसम्मा देवा ताओ वंधंति णियमेण ।

मि० १००।सा० ६६।

आसायक्खिण्णपयडीणराउरहियाउ ताउ मिस्सा दु ॥३५०॥
तिथयर-णराउजुया अजई वंधंति देवाओ ।

मि० अ० ७२।

तृतीयरूपादि यावत्सहस्रारान्ता. मनकुमार-माहेन्द्र-ग्रह-ग्रहोत्तरलान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-गतार-सहस्रारजा देवा. या' सामान्यदेवगत्युक्तप्रकृतय' १०४ एकेन्द्रियाऽऽतपस्यावरत्रयोनास्ता एव १०१ वध्नन्ति, [एतन्निकस्य] तद्वन्धाभावात् । तीर्थकरत्वोना १०० प्रकृति' सनत्कुमारादि-सहस्रारान्ता मिथ्यादृष्टिदेवा वध्नन्ति । हुण्डकमंस्थानात्सप्राप्तसृपाटिकापहननमिथ्यात्व-पण्डवेदोनास्ता एव ६६ सनत्कुमारादि सहस्रारान्ता सासादनस्थदेवा वध्नन्ति । सासादनस्य व्युच्छिन्नप्रकृती. २५ मनुष्यायुरहितास्ता एव ७० प्रकृती सनत्कुमारादि-सहस्रारान्ता मिश्रगुणस्थानस्था देवा वध्नन्ति । तीर्थकरत्वमनुष्यायुष्या युक्तास्ता एव ७२ सनत्कुमारादि-सहस्रारान्ता. असंयतदेवा वध्नन्ति ॥३४७३-३५०३॥

तृतीय कल्पसे लेकर सहस्रारकल्प तकके देव एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके बिना देवगति-सम्यग्धी शेष १०१ प्रकृतियोंको बांधते हैं । उक्त कल्पोंके मिथ्यादृष्टिदेव उक्त १०१ मेंसे तीर्थकरके बिना १०० प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । इन्हीं कल्पोंके सासादनसम्यग्दृष्टि देव हुण्डकमंस्थान, सृपाटिकासंहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेदके बिना शेष ६६ प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करते हैं । उक्त कल्पोंके मिश्रगुणस्थानवर्ती देव सासादनमें विच्छिन्न होनेवाली २५ तथा मनुष्यायुके बिना शेष ७० प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । तथा इन्हीं कल्पोंके असंयतसम्यग्दृष्टि देव तीर्थकरप्रकृति और मनुष्यायुके सहित ७० अर्थात् कुल ७२ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३४७३-३५०३॥ (देखो सदृष्टिसंख्या २१)

आणदक्कप्पप्पहुई उवरिमगेवज्जयं तु जावं ति ॥३५१॥
तत्थुप्पणा देवा सत्ताणउदिं च वंधंति ।

१६७।

देवगईपयडीओ तिरियाउ-तिरियजुयल एइंदी ॥३५२॥
थावर-आदाउज्जोऊण वंधंति ते णियमा ।
मिच्छा तिथयरूणा हुंडासंपत्तमिच्छसंदूणा ॥३५३॥
सासणसम्मा देवा ताओ वंधंति णियमेण ।

मि० ६६ सा ६२।

तिरियाऊ तिरियदुयं तह उज्जोवं च मोत्तपूर्णं ॥३५४॥

आसायद्धिण्णपयदी णराउरहियाऊ मिस्सा दु ।

१५०१

तिस्थयर-णराऊजुया अजई देवा य वंथंति ॥३५५॥

१७११

अणुदिस-अणुत्तरवासी देवा ता चेव णियमेण ।

१७२१

आनतकल्पप्रमृत्त्युपगमिग्रवेयकान्तास्तत्रोत्पन्ना देवाः सप्तनवति ६७ प्रकृतीर्बध्नन्ति । तत्कथम् ? सामान्यतया देवगयुक्तप्रकृतयः १०४ तिर्यगायुः १ तिर्यग्जाति-तिर्यगन्यानुपूर्य्यं द्वे २ एकेन्द्रियं १ स्थावर १ आनप १ उद्योतः १ चेति सप्तभिः प्रकृतिभिरुना इति परायोग्यबन्धप्रकृतीः ते आनन-प्राणताऽऽरणाऽऽच्युत-नवग्रवेयकान्ता देवा बध्नन्ति ६७ नियमेन । ता एव ६७ तीर्थकरवोनाः प्रकृतीः षण्णवति आनतादिनव-ग्रवेयकान्ता मिथ्यादृष्ट्यो देवा बध्नन्ति ६६ । हुण्डकामम्रास १ मिथ्यात्व १ पण्डवेदोनास्ता एव ६२ सासादनस्या देवा बध्नन्ति नियमेन । तिर्यगायुः १ स्तिर्यग्विक्रं २ उद्योत १ श्चेति प्रकृतिचतुष्कं सुक्त्वा परिवर्ज्य सासादनच्युच्छिन्नप्रकृति २ ३ मनुष्यायू रहितास्ता एव मिश्रगुणस्थाने देवा बध्नन्ति ७० । ता एव ७० तीर्थकरत्व-मनुष्यायुस्यां युक्ता ७२ आनतादिनवग्रवेयकामंयतदेवा बध्नन्ति । नवानुदिश-पञ्चानुत्तर-वागिनो देवान्ता एवाभ्यन्तगुणोक्ता प्रकृती ८० बध्नन्ति । आनतादि-नवग्रवेयकेषु बन्धयोग्याः ६७ । नवानुदिश-पञ्चानुत्तरेषु देवेषु अविरते ७२ ॥३५०३-३५५३॥

आनतकल्पसे लेकर उपगमि ग्रवेयक तक उनमें उत्पन्न होनेवाले देव ६७ प्रकृतियोंको बाँधते हैं । अर्थात् देवगतिमें बन्धयोग्य जाँ १०४ प्रकृतियों वतलाई गई हैं उनमेंसे तिर्यगायु, तिर्यग्विक्र, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आनप और उद्योतके बिना शेष ६७ प्रकृतियोंका उक्त देव नियमसे बन्ध करने हैं । उक्त कल्पोंके मिथ्यादृष्टि देव तीर्थङ्करके बिना ६६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि देव हुण्डकसंस्थान, सृपादिकासंहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेदके बिना ६२ प्रकृतियोंका नियमसे बाँधते हैं । उक्त कल्पोंके मिश्र गुणस्थानवर्ती देव तिर्यगायु, तिर्यग्विक्र तथा उद्योतको छोड़कर सासादनमें विच्छिन्न होनेवाली शेष प्रकृतियोंके बिना तथा मनुष्यायुके बिना ७० प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । उन्हीं कल्पोंके असंयतसम्यग्दृष्टि देव तीर्थङ्कर और मनुष्यायु सहित उक्त प्रकृतियोंका अर्थात् ७२ का बन्ध करते हैं । नव अनुदिश और पंच अनुत्तरवासी देव यतः सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, अतः वे नियमसे उन्हीं ७२ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३५०-३५५३॥ (देखो संदष्टि संख्या २२),

अब इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

इगि-विगलिंदियर्जावे तिरियपंचिदिय अपुण्णभंगमिव ॥३५६॥

मिच्छं तेत्तियमेत्तं णउत्तरसयं तु णायच्चं ।

१६०२१

मिच्छंतेच्छिणोहिं ऊणाओ ताओ आसाया णिरयाऊ ॥३५७॥

णेरइयदुयं मोत्तु पंचिदियम्मि ओधमिव ।

१६६१

एकेन्द्रियमार्गणायां बन्धयोग्यप्रकृतीर्गायादयेनाऽऽह—[‘इगिविगलिंदियर्जावे’ इत्यादि ।] एकेन्द्रिय-दि-दि-चतुरिन्द्रिय-विकलेन्द्रियजीवेषु लक्ष्यपर्याप्तकषेत्रेन्द्रियतिर्यग्वत् तीर्थङ्करत्वाऽऽहारकद्वय-मुरनारकायुवै-क्रियिकपद्वन्धनाभावाद् बन्धयोग्यं नवोत्तरगतम् १०६ । गुणस्थाने द्वे । तत्र मिथ्यादृष्टौ नवोत्तरगतमात्रं

बन्धयोग्य ज्ञातव्यम् । मिथ्यात्वव्युच्छिन्नाभिरुनास्ता एव नरकायुर्नरकद्वयं २ च मुक्त्वा एतत्त्रयं परिहृत्य त्रयोदशप्रकृतिभिर्हीना अन्यः पणवतिः सासादने एक-विकलत्रयाणां बन्धः ६६ । तथा गोमट्टसारे एव प्रोक्तमस्ति—‘मनुष्य-तिर्यगायुर्द्वयं मिथ्यादृष्टौ व्युच्छिन्नम् । सासादने एतद्द्वयं नास्ति । कुतः ? ‘सासणो देहे पञ्जतिं ण वि पावदि, इदि णर तिरियाउग णत्थि’^१ इति एकेन्द्रिय-विकलत्रयाणां मिथ्यादृष्टौ व्युच्छिन्तिः १५ पञ्चदश तत्पोढशके नरकद्विक-नरकायुपोरभावे नर-तिर्यगायुषोः क्षेपात् पञ्चदश एक विकलत्रयेषु पञ्चेन्द्रियेषु ओघवत् गुणस्थानवत् । बन्धयोग्यप्रकृतिक १२० । गुणस्थानानि १४ ॥ ३५५^३—३५७^३॥

	मि०	सा०
एकेन्द्रिय-विकलत्रययन्त्रम्—	१५	२६
	१०५	६४
	०	१५

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवोंमें प्रकृतियोंका बन्ध तिर्यञ्चपंचेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंके बन्धके समान तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकपट्टके विना १०६ का होता है । उनके अपर्याप्त अवस्थाकी अपेक्षा दो गुणस्थान माने गये हैं, सो उक्त जीवोंके मिथ्यात्व-गुणस्थानमें तो उतनी ही १०६ प्रकृतियोंका बन्ध जानना चाहिए । सासादनगुणस्थानवर्ती एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव नरकायु और नरकद्विकको छोड़कर मिथ्यात्वमें विच्छिन्न होनेवाली शेष १३ के विना ६६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । पंचेन्द्रिय जीवोंमें प्रकृतियोंका बन्ध ओघके समान जानना चाहिए ॥ ३५५^३—३५७^३॥ (देखो संदष्टिसर्या २३)

विशेषार्थ—भाष्यगाथाकारने यहाँपर एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंकी बन्ध-प्रकृतियों बतलाते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें नरकायु और नरकद्विकके विना १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छिन्ति कर सासादनमें बन्ध-योग्य ६६ प्रकृतियों कहीं हैं । परन्तु गो० कर्मकाण्ड गाथाङ्क ११३ में मनुष्यायु और तिर्यगायुकी भी बन्ध-व्युच्छिन्ति मिथ्यात्वमें बतला करके सासादनमें ६४ प्रकृतियोंका बन्ध बतलाया है और उसके लिए युक्ति यह दी है कि ‘तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे पञ्जतिं ण वि पावदि, इदि णर-तिरियाउगं णत्थि, अर्थात् यत्. एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाला सासादनगुणस्थानवर्ती जीव शरीरपर्याप्तिको पूरा नहीं कर पाता, क्योंकि सासादनका काल अल्प और निर्वृत्त्यपर्याप्तअवस्थाका काल अधिक है, अतः सासादनगुणस्थानमें मनुष्यायु और तिर्यगायुका बन्ध नहीं होता है । किन्तु मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही उनका बन्ध होता है और उसीमें उनकी व्युच्छिन्ति भी हो जाती है । तथा इसी गाथामें जो पंचेन्द्रियसामान्यकी बन्ध-विधिका ओघके समान निर्देश किया गया है, सो वह पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंका समझना चाहिए; क्योंकि निर्वृत्त्यपर्याप्तक पंचेन्द्रियोंके केवल पाँच गुणस्थान ही होते हैं, सभी नहीं ।

(देखो संदष्टि सं० २४)

अब कायमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका वर्णन करते हैं—

भूदयववणप्फदीसुं मिच्छा सासण इगिंदिभंगमिव ॥ ३५८ ॥

णरदुय-णराउ-उच्चूण तेउ-वाउइगिंदियपयडीओ ।

११०५।

पृथ्वीकायाप्कायवनस्पतिकायेषु मिथ्यात्व-सासादनोक्तैकेन्द्रियभङ्गरचनावत् । मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वय-मनुष्यायुरुच्चैर्गोत्रेणा एकेन्द्रियोक्तप्रकृतयः १०५ । तेजस्काये वायुकाये च मिथ्यादृष्टौ १०५ बन्धयोग्याः ॥ ३५८^३॥

पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंमें मिथ्यात्व और सासादनगुण-स्थान-सम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध एकेन्द्रिय जीवोंके बन्धके समान जानना चाहिए । तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है । तथा वे मनुष्यद्विक, मनुष्यायु और उच्चगोत्रके विना एकेन्द्रियसम्बन्धी शेष अर्थात् १०५ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३५८॥

अब योगमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका वर्णन करते हैं—

तस-मण-त्रचि ओरालाहारे जह ॐ संभवं हवे ओघो ॥३५९॥

त्रसकायिकेषु सामान्यगुणस्थानवत्, तेन तेषु बन्धयोग्याः १२० । गुणस्थानानि १४ । योगमार्गणायां मनोवचनयोगेषु औदारिककाययोगे आहारककाययोगे च यथासम्भवं ओघो भवेत्, गुणस्थानोक्तवत् । तेन सत्यानुभयमनोवचनचतुष्के बन्धयोग्यप्रकृतयः १२० । गुणस्थानानि त्रयोदश १३ । असत्योभयमनोवचन-चतुष्के बन्धप्रकृतयः १२० । गुणस्थानानि १२ । औदारिककाययोगेषु मनुष्यगतिरचनावद् बन्धयोग्यप्रकृतयः १२० । गुणस्थानानि १४ । आहारकाययोगिनां प्रमत्तोक्तवत् । आहारकमिध्रे 'तस्मिन्ने णत्थि देवाऊ' इति वचनात् ॥३५९॥

त्रसकायिकोंमें, तथा मनोयोगियोंमें, वचनयोगियोंमें, औदारिककाययोगियोंमें और आहारककाययोगियोंमें यथासम्भव ओघके समान बन्धादि जानना चाहिए ॥३५९॥

णिरयदुग-आहारजुयलणिरि-देवाऊहिं हीणाओ ।

ओरालमिस्सजोए बंधाओ होंति णायव्वं ॥३६०॥

११४१

तिथयर-सुरचदूणा ताओ बंधंति मिच्छदिट्ठी य ।

११०६१

णिरयाऊ णिरयदुयं मोत्तुं वोच्छिण्णमिच्छपयडीहिं ॥३६१॥

तिरिय-मणुयाउगेहि य रहियाओ ताउ आसाय ।

१६४१

आसाय छिण्णपयडीऊणे तिरियाउयं मोत्तुं ॥३६२॥

तिथयर-सुरचदुजुया ताओ अजई दु बंधंति ।

१७५१

औदारिकमिध्रे बन्धयोग्यं गाथासार्धत्रयेणाऽऽह—['णिरयदुगआहारजुयल' इत्यादि ।] औदारिक-मिश्रकाययोगेषु नरकगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ आहारकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वय २ नारक-देवायुर्द्वयं २ चेति षड्भिर्हीनाः अन्याः प्रकृतयः ११४ बन्धयोग्याः भवन्तीति ज्ञातव्यम् । कथं तत्पट्क न ? तथाहि—औदारिकमिश्रकाययोगिनो हि लब्धपर्यासा निर्वृत्त्यपर्यासाश्च भवन्ति, तेन देव-नारकायुषी २ आहारकद्वयं २ नरकद्वयं च तत्र बन्धयोग्यं न चेति चतुर्दशोत्तरशतम् ११४ । तत्रापि सुरचतुष्कं ४ तीर्थञ्च मिथ्यादृष्टि-सासादनयोर्न बध्नाति, अविरते च बध्नाति । तदाऽऽह—'तिथयर-सुरचदूणा ताओ बंधंति मिच्छदिट्ठी य' । तीर्थकरत्व-देवगति-देवगत्यानुपूर्व्य-वैक्रियिक-तदाङ्गोपाङ्ग-सुरचतुष्कोनास्ता एव प्रकृतीरौदारिकमिश्रकाययोगिनो मिथ्यादृष्टयो बध्नान्ति १०६१ । नरकायुर्नारकद्वयं च मुक्त्वा अपनीय मिथ्यात्वव्युच्छिन्नप्रकृतिभिः १३ तिर्यङ्-मनुष्यायुर्भ्यां च रहितास्ता एव प्रकृतीः सासादनस्थौदारिकमिश्रयोगिनो बध्नान्ति ६४ । तिर्यङ्-मनुष्यायु-र्द्वयं मिथ्यात्वे व्युच्छिन्नम् । एव पञ्चदश तत्र व्युच्छिन्नाः । तिर्यगायुः परिहृत्य सासादनव्युच्छिन्नचतुर्विंश-

तिप्रकृतिभिरूनाः तीर्थङ्करत्व-सुरचतुष्केन युताश्च ता एव प्रकृतीरौदारिकमिश्रकाययोगिनोऽविरतसम्यग्दृष्टयो
७५ ब्रह्मन्ति ॥३६०-३६२३॥

औदारिकमिश्रकाययोगिना रचना—

मि०	सा०	अ०	स०
१५	२४	७४	१
१०६	६४	७५	१
५	२०	३६	११३

औदारिक मिश्रकाययोगमे नरकद्विक, आहारकयुगल, नरकायु और देवायुके विना बन्ध-
योग्य शेष ११४ प्रकृतियों जानना चाहिए । उनमेंसे तीर्थङ्कर और सुरचतुष्क (देवगति, देव-
गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग) इन पाँचके विना मिथ्यादृष्टि १०६
प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि नरकायु और नरकद्विकको
छोड़कर मिथ्यात्वमें विच्छिन्न होनेवाली १३ प्रकृतियोंके विना तथा तिर्यगायु और मनुष्यायुके
विना शेष ६४ प्रकृतियोंको बाँधते हैं । औदारिकमिश्रकाययोगी अविरतसम्यग्दृष्टि तिर्यगायुको
छोड़कर सासादनमे विच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके विना तथा तीर्थङ्कर और सुरचतुष्कसहित ७५
प्रकृतियोंको बाँधते हैं ॥३६०-३६२३॥ (देखो सट्टि स० २५)

वेउव्वे सुरभंगो सुरपयडी तिरिय-णराऊणा ॥३६३॥

११०२।

तम्मिस्से तित्थयरूणाओ बंधंति ताउ मिच्छा दु ।

११०१।

इगिजाइथावरादवहुंडासंपत्तमिच्छसंदूणा ॥३६४॥

सासणसम्माइड्डी ताओ बंधंति पयडीओ ।

१६५।

तिरियाउयं च मोत्तुं सासणवोच्छिण्ण बंधवोच्छिण्णा ॥३६५॥

बंधपयडीहिं रहिया तित्थयरजुआ ताउ बंधंति अजई दु ।

१७१।

वैक्रियिककाययोगे सुरभङ्ग. देवगत्युक्तवत् सूक्ष्मत्रय-विकलत्रय-नरकद्विक-नरकायुः-सुरचतुष्क-
सुरायुराहारकद्वयोनाः पोडशानामवन्धाद्वन्धयोग्यप्रकृतयः १०४ ।

देवसम्बन्धिवैक्रियिकानां रचना—

मि०	सा०	मि०	अ०
७	२५	०	१०
१०३	६६	७०	७२
१	८	३४	३२

तन्मिश्रे वैक्रियिक [मिश्र-] काययोगे तिर्यग्मनुष्यायुर्म्हा ऊना देवगत्युक्तप्रकृतयो बन्धयोग्याः
१०२ भवन्ति । तीर्थङ्करत्वोनास्त एव १०१ प्रकृतीर्वैक्रियिकमिश्रयोगिनो मिथ्यादृष्टयो ब्रह्मन्ति । एकेन्द्रिय-
जातिः १ स्थावर १ क्षात्तपः १ दुण्डक १ असम्प्राप्तसृष्टाटिकासहनन १ मिथ्यात्वं १ पण्डवेदः १ चेति
सप्तमि प्रकृतिभिरूनास्त एव प्रकृतीः ६४ सासादनस्था वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनो ब्रह्मन्ति । तिर्यगायुष्कं

मुक्त्वा सासादनस्थव्युच्छिन्न २४ प्रकृतिभी रहितास्तोर्थङ्करत्वयुक्ताश्च ता एव प्रकृतीः ७१ वैक्रियिकाययोगिनोऽस्यता बध्नन्ति ॥३६२३-३६५३॥

मि०	सा०	अस०
७	२४	६
१०१	६४	७१
१	८	३

वैक्रियिकाययोगमे देवसामान्यके समान बन्धरचना जानना चाहिए। उनमें १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे तिर्यगायु और मनुष्यायुके विना शेष १०२ देवगतिसम्बन्धी प्रकृतियाँ बँधती हैं। उनमेंसे तीर्थङ्करके विना शेष १०१ प्रकृतियों मिथ्यात्व-गुणस्थानमें बँधती हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, हुंडकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेद इन सातके विना शेष ६४ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। उक्त योगवाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तिर्यगायुको छोड़कर सासादनमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली २४ प्रकृतियोंके विना, तथा तीर्थङ्करसहित ७१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३६२३-३६५३॥ (देखो संदृष्टि सं० २६)

विशेषार्थ—आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंकी बन्ध-प्रकृतियों सुगम होनेसे भाष्यगाथाकारने नहीं बतलाई हैं सो उनकी बन्ध-प्रकृतियों प्रमत्तगुणस्थानके समान जानना चाहिए। आहारकमिश्रकाययोगियोंके इतना विशेष ज्ञातव्य है कि उनके बन्धयोग ६२ प्रकृतियों ही होती है; क्योंकि 'तस्मिन्से णत्थि देवाऊ' इस आगम-वचनके अनुसार अपर्याप्तदशामे देवायुका बन्ध नहीं होता है।

णिरयदुगाहारजुयलचउरो आऊहि बंधपयडीहि ॥३६६॥

कम्मइयकायजोईरहिया बंधंति णियमेण ।

११२।

सुरचदुतिथयरूणा ताओ बंधंति मिच्छदिट्ठी दु ॥३६७॥

११०७।

नरकगति-तदानुपूर्वद्वय २ आहारक-तदङ्गोपाङ्गद्वय २ नरकाद्यायुश्चतुष्कं ४ इत्यष्टाभिर्वन्धप्रकृतिभी रहिताः अन्याः द्वादशोत्तरशतप्रकृतीः कार्मणकाययोगिनो बध्नन्ति ११२। तद्योगिना विग्रहगतौ तद्वन्धाभावाज्जियमेन। तत्र देवगति-तदानुपूर्व-वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्ग-तीर्थकरत्वोनास्ता एव प्रकृतीः कार्मणकाययोगिनो मिथ्यादृष्टयो १०७ बध्नन्ति ॥३६५३-३६७॥

कार्मणकाययोगी जीव नरकद्विक, आहारकयुगल और चारो आयुक्रमोंके विना शेष ११२ प्रकृतियोंको नियमसे बँधते हैं। उनमें भी कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सुरचतुष्क और तीर्थङ्करके विना १०७ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३६५३-३६७॥

एतथ मिच्छादिट्ठिवुच्छिण्णपयडोण मज्जे णिरयाउग-णिरयदुग तिण्णि पयडीओ मुत्तूण सेसाओ तेरस पयडीओ अवणिय सेसाओ चउणउदिपयडीओ सासणसम्मादिट्ठिणो बंधंति ६४।

अत्र मिथ्यादृष्टिव्युच्छिन्नप्रकृतीनां १६ मध्ये नारकायुष्य नारकद्वयमिति तिस्रः प्रकृतीः मुक्त्वा शेषास्त्रयोदशप्रकृतीरपनीय शेषारचतुर्नवति प्रकृतीः सास्वादनस्थकार्मणकाययोगिनो बध्नन्ति ६४।

यहोपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें विच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियोंमेंसे नरकायु और नरकद्विक, इन तीन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष तेरह प्रकृतियोंको निकालकर बाकी बची चौरानवे प्रकृतियोंको कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि बँधते हैं।

जोगिमि ओघभंगो सासणवोच्छिण-बंधपयडोहिं ।
सुरचउ-तिथयरजुया रहिया बंधंति अजई दु ॥३६८॥

।७५।

सयोगकेवलनि ओघभङ्गः त्रयोदशगुणस्थानोक्तवत् सास्वादनस्थव्युच्छिन्न २४ प्रकृतिभी रहितास्ता एव सुरचतुष्क तीर्थकरत्वयुक्ताः प्रकृतीः पञ्चसप्ततिं ७५ कार्मणकाययोगिनोऽस्यतसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ॥३६८॥

मि०	सा०	अ०	सयो०
१३	२४	७४	१
१०७	६४	७५	१
५	१८	३७	१११

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव (तीर्थगायुके विना) सासादनमे विच्छिन्न होने वाली २४ प्रकृतियोंसे रहित, तथा सुरचतुष्क और तीर्थङ्कर सहित ७५ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियोंमे बन्धरचना ओघके समान जानना चाहिए ॥३६८॥

(देखो सदृष्टि स० २७)

अव वेदमार्गणाकी अपेक्षा बन्धादि बतलानेके लिए गाथासूत्र कहते हैं—

अणियट्ठिं मिच्छाई वेदे वावीस बंधयं जाव ।

तत्तो परं अवेदे ओघो भणिओ सजोगो ति ॥३६९॥

अथ वेदादिमार्गणसु प्रकृतिबन्धभेदः कथ्यते—वेदेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणगुणस्थानकस-
वेदभागेषु द्वाविंशतिबन्धकं यावत् तावद्वन्धकः । वेदेषु बन्धयोग्य १२० । गुणस्थानानि ६ । स्त्रीवेदिना
नपुंसकवेदिनां पुवेदवेदिनां च रचना—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०
१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	१
११७	१०१	७४	७२	६७	६३	५६	५८	२२
३	१६	४६	४३	५३	५७	६१	६२	६८

पुवेदिनां तु क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमचरमसमये इति विशेषः । निवृत्त्यपर्याप्ताना स्त्रीणा बन्धयोग्य १०७ । कुतः २ आयुश्चतुष्क तीर्थकराहारकद्वयवैक्यिकषट्कानामबन्धात् । पण्डवेदिनां निवृत्त्यपर्याप्ताना बन्धयोग्य १०८ । लब्धपर्याप्तकबन्धात् तीर्थगमनुष्यायुषी अपर्णाय नारकासयतापेक्षया तीर्थबन्धस्यात्र प्रक्षेपात् । पुवेदिनां निवृत्त्यपर्याप्तानां नारक विना त्रिगतिजानामेव बन्धयोग्य ११२ । अत्रासयते तीर्थ-
सुरचतुष्कयोर्बन्धोऽस्तीति ज्ञातव्यम् । स्त्री-पण्डवेदयोरपि तीर्थाहारकबन्धो न विरुध्यते, उदयस्यैव पुवेदिषु नियमात् । ततः परं अवेदे ओघो भणितः सयोगपर्यन्त सूक्ष्मसाम्परायादि-सयोगान्ताना वेदो नास्ति, स्वगुणस्थानोक्तबन्धादिक ज्ञातव्यम् ॥३६९॥

	मि०	सा०
निवृत्त्यपर्याप्तस्त्रीवेदिना रचना—	१०७	६४
	०	१३
	मि०	सा०
	१३	२४
निवृत्त्यपर्याप्तपण्डवेदिनां रचना—	१०७	६४
	१ ती०	१४
	मि०	सा०
	१३	२४
निवृत्त्यपर्याप्तपुवेदिनां रचना—	१०७	६४
	५	१८

तीनों वेदोंमें मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें वाईस प्रकृतियोंके बन्ध होने तक ओघके समान बन्ध-रचना जानना चाहिए । अवेदियोंमें उससे आगे इक्कीस प्रकृतियोंके बन्धस्थानसे लगाकर सयोगिकेवली पर्यन्त ओघके समान बन्ध-रचना कही है ॥३६६॥

अब कपायमार्गणाकी अपेक्षा बन्धादिका निर्देश करनेके लिए गाथासूत्र कहते हैं—

क्रोहाइकसाएसुं अकसाईसु य हवे मिच्छाई ।

इगिवीसादी जाव ओघो संतादि जोगंता ॥३७०॥

क्रोध-मान-माया-लोभकपायेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणस्य द्वितीयादिभागेषु एकत्रिशत्याद्यष्टा-दशपर्यन्त सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभस्य बन्धोऽस्ति, वादरलोभन्यानिवृत्तिकरणस्य पञ्चमे भागे बन्धोऽस्ति । अकपायेषु उपशान्तादिसयोगान्तगुणस्थानवत् । कपायमार्गणायां हि बन्धयोग्यं १२० । गुणस्थानानि तपकानिवृत्तिकरण-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमभागपर्यन्तानि ६ । क्रोध-मान-माया-वादर-लोभानां गुणस्थानोक्त-वत् । सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसाम्परायमिव ॥३७०॥

क्रोधादि चारों कपायोंमें मिथ्यात्वको आदि लेकर क्रमशः अनिवृत्तिकरणके इक्कीस, बीस, उन्नीस और अट्ठारह प्रकृतियोंके बंधनेतक ओघके समान बन्ध-रचना जानना चाहिए । तथा अकपायी जीवोंमें उपशान्तमोहगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त ओघके समान बन्ध-रचना कही है ॥३७०॥

अब ज्ञान, संयम और दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा बन्धादिका निर्देश करते हैं—

णाणेषु संजमेसु य दंसणठाणेषु होइ णायव्वो ।

जिह संभवं च ओघो मिच्छाइगुणेषु जोयंते ॥३७१॥

अष्टसु ज्ञानेषु च सप्तसु संयमेषु च चतुर्षु दर्शनेषु च यथासम्भवमोघो जातव्यो भवति । मिथ्यात्वादि-सयोगान्तगुणस्थानानि । तथाहि—कुमति-श्रुत-विमङ्गाज्ञानेषु बन्धयोग्यं ११७ । सुज्ञानत्रयं ७६ । मनःपर्यये बन्धयोग्यं ६५ । प्रमत्तादि-जीणान्तगुणस्थानरचना ।

	मि०	सा०						
	१६	२५						
कुमति-श्रुत-विमङ्गाज्ञानिनां रचना—	११७	१०१						
	०	१६						
	अ०	इ०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०
	१०	४	६	१	३६	५	१६	०
मति-श्रुतावधिज्ञानिनां रचना—	७७	६७	६३	५६	५८	२२	१७	१
	२	१०	१६	२०	२१	५७	६२	७८
	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	जी०	
	६	६	३६	५	१६	०	०	
मनःपर्ययज्ञानिनां रचना—	६३	५६	५८	२२	१७	१	१	
	२	६	७	४३	४८	६४	६४	
	स०	अ०						
	१	०						
केवलज्ञानिनां रचना—	१	०						
	११६	१००						

	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
संयममार्गणायां—	६३	५६	५८	२२	१७	१	१	१	०
	२	६	७	४२	४८	६४	६४	११६	१२०
	मि०	सा०	मि०	अ०					
	१६	२५	०	१०					
असंयमस्थ—	११७	१०१	७४	७७					
	१	१७	४४	४१					
					प्र०	अ०	अ०	अ०	
	४				६	१	३६	५	
देशसंयतस्थ—	६७	सामायिक-छेदोपस्थापनयोः—	६३	५६	५८	२२			
	५३		२	६	७	४३			
	प्र०	अप्र०							
	६	१			१६				
परिहारविशुद्धे—	६३	५६	सूक्ष्मसाम्पराये—	१७					
	२	६		१०३					
	उ०	क्षी०	स०	अ०					
	०	०	१	०					
यथाख्याते—	१	१	१	०					
	०	०	०	०					

दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्वन्धयोग्य १२० । मिथ्याहृष्ट्यादि-क्षीणकपायान्त गुणस्थान-
द्वादशोक्तवत् । अवधिदर्शने अवधिज्ञानवत् बन्धयोग्या ७६ । गुणस्थानान्यसंयतादीनि नव ६ । केवल-
दर्शने संयोगायोगगुणस्थानद्वयम् २ ॥३७१॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा आठो ज्ञानोमे, संयममार्गणाकी अपेक्षा सातो स्थानोमे तथा दर्शन-
मार्गणाकी अपेक्षा चारो दर्शनोमे मिथ्यात्वगुणस्थानको आदि लेकर यथासंभव अयोगिकेवली
गुणस्थान तक ओघके समान बन्धादि जानना चाहिए ॥३७१॥

विशेषार्थ—कुमति, कुश्रुत और विभंगा; इन तीनों कुज्ञानोमे आदिके दो गुणस्थान होते
हैं । मत्त्यादि चार सुज्ञानोमे चौथेसे लगाकर बारहवें तकके नौ गुणस्थान होते हैं । केवलज्ञानमें
अन्तिम दो गुणस्थान होते हैं । सो विवक्षित ज्ञानवाले जीवोके तत्तत्संभवगुणस्थानोके समान
बन्धरचना जानना चाहिए । संयममार्गणाकी अपेक्षा ५ संयमके, १ देशसंयमका और १ असंयम
का ऐसे सात स्थान होते हैं । सामायिक और छेदोपस्थापना संयममे छेदोसे लगाकर नवमें गुण-
स्थान तकके चार, परिहारविशुद्धिसंयममें छट्ठा और सातवाँ, ये दोः सूक्ष्मसाम्परायमे एक दशवाँ
और यथाख्यातसंयममे अन्तिम चार गुणस्थान होते हैं । देशसंयममें पाँचवाँ और असंयममे
आदिके चार गुणस्थान होते हैं । इन सातो संयमस्थानोमे उपर्युक्त गुणस्थानोके समान
बन्धरचना जानना चाहिए । दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा चार स्थान हैं सो चक्षुर्दर्शन और अचक्षु-
दर्शनमे आदिके १२ गुणस्थान होते हैं । अवधिदर्शनमें चौथेसे लेकर बारहवें तकके नौ गुणस्थान
होते हैं । तथा केवलदर्शनमे अन्तिम दो गुणस्थान होते हैं । अतः विवक्षित दर्शनवाले जीवोकी
बन्धरचना उनमे संभव गुणस्थानोंके समान जानना चाहिए ।

अब लेख्यामार्गणाकी अपेक्षा बन्धादिका वर्णन करते हैं—

किण्हाईतिसु पोया आहारदुगूण ओघबंधाओ ।

तित्थयरूणा ताओ मिच्छादिट्ठी दु बंधंति ॥३७२॥

॥११७॥

मिच्छे वोच्छिण्णूणा ताओ बंधंति आसाया ।

॥१०१॥

आसायच्छिण्णपयडी सुराउ-मणुयाउगेहिं ऊणाओ ॥३७३॥

सम्मामिच्छाइट्ठी ताओ बंधंति णियमेण ।

॥७४॥

देव-मणुयाउ-तित्थयरजुया ताओ अजई दु णायन्वा ॥३७४॥

॥७७॥

कृष्ण-नील-कापोतलेश्यासु तिसृषु आहारकद्वयोना अन्याः सर्वबन्धप्रकृतयः ११८ । एतास्तीर्थकर-
त्वोनास्ता एव मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति ११७ । मिथ्यात्वस्य व्युच्छिन्नो १६ नास्ता एव १०१ सासादना
बध्नन्ति । सासादनव्युच्छिन्न २५ प्रकृतिदेवायु १ मनुष्यायुष्कै १ रूनास्ता एव चतुःसप्तति प्रकृतीमिश्र-
गुणस्थानवर्त्तिनो बध्नन्ति ७४ । ता एव देवमनुष्यायुष्क-तीर्थकरत्वयुक्ता असंयता बध्नन्ति ७७ कृष्ण-नील
कापोतेषु ॥३७२-३७४॥

	मि०	सा०	मि०	अ०
कृष्णादिलेश्यात्रययन्त्रम्—	१६	२५	०	१०
	११७	७४	७४	७७
	१	१७	४४	४१

कृष्ण, नील और कापोत; इन तीन लेश्याओंमें आहारकद्विकके विना शेष ११८ प्रकृतियों
बन्ध-योग्य हैं । उनमेंसे उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थङ्करके विना शेष ११७
प्रकृतियों बंधते हैं । मिथ्यात्वमें व्युच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियोंके विना शेष १०१ को सासा-
दनगुणस्थानवर्ती बंधते हैं । उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सासादनमें
व्युच्छिन्न होनेवाली २५ और देवायु तथा मनुष्यायु ये दो; इन २७ के विना शेष ७४ प्रकृतियोंको
नियमसे बंधते हैं । उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव देवायु, मनुष्यायु और
तीर्थङ्करसहित उक्त ७४ को अर्थात् ७७ प्रकृतियोंको बंधते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३७२-३७४॥
(देखो संदृष्टि सं० २८)

वियलिंदिय-णिरयाऊ णिरयदुगापुण्ण-सुहुम-साहरणा ।

रहियाउ ताउ बंधा तेजाए होति णायन्वा ॥३७५॥

॥१११॥

तित्थयरआहारदुगूणाउ च बंधंति ताउ मिच्छा दु ।

॥ ०८॥

इगिजाइ थावरादवहुंडासंपत्तमिच्छसंदृणा ॥३७६॥

सासणसम्माइट्ठी ताओ बंधंति णियमेण ।

॥१०१॥

मिस्साइ ओधभंगो अपमत्तंतेसु णायन्वो ॥३७७॥

विकलेन्द्रियजातयः ३ नारकायुष्य १ नारकद्वय २ अपर्याप्तं सूक्ष्मं साधारण १ चेति एता नव-
प्रकृतिरहिताः अन्या बन्धयोग्या एकादशोत्तरशतप्रकृतयः १११ तेजोलेश्यायां भवन्ति ज्ञातव्याः । ताः १११
तीर्थकराहारकद्विकोना १०८ मिथ्यादृष्टयो वदन्ति । एकेन्द्रियजातिः १ स्थावरं १ आतपः १ हुण्डक १
असम्प्राप्तसृपाटिका १ मिथ्यात्व १ पण्डवेदः १ चेति सप्तमिः प्रकृतिभिस्ता ऊना इति एकोत्तरशतप्रकृतीः
सासादनस्थाः १०१ वदन्ति । मिश्राद्यप्रमत्तान्तेषु ओघमङ्गः गुणस्थानोक्तबन्धो ज्ञातव्यः ॥३७५-३७७

	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०
तेजोलेश्याया बन्धयोग्याः १११ । रचना—	७	२५	०	१०	४	६	१
	१०८	१०१	७४	७७	६७	६३	५६
	३	१०	३७	३४	४४	४८	५२

तेजोलेश्यामे विकलेन्द्रियत्रिक, नरकायु, नरकद्विक, अपर्याप्त, सूक्ष्म और साधारण, इन
नौके बिना शेष १११ प्रकृतियों बन्धयोग्य हैं, ऐसा जानना चाहिए । उनमेंसे तेजोलेश्यावाले
मिथ्यादृष्टिजीव तीर्थद्वार और आहारकद्विकके बिना १०८ का बन्ध करते हैं । उक्त लेश्यावाले
सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन,
मिथ्यात्व और नपुंसकवेद; इन सातके बिना शेष १०१ प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करते हैं ।
मिश्रसे लगाकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तकके तेजोलेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना ओघके समान
जानना चाहिए ॥३७५-३७७॥

(देखो सदृष्टि स० २६)

इगि-विगल-थावरादव-सुहुमापजत्तसाहरणे ।

णिरयाउ-णिरयदुगूणाउ वंधा हवति पम्माए ॥३७८॥

११०८।

तित्थयराहारजुयलरहियाओ जाओ पयडीओ ।

पंचुत्तरसयमेत्ता ताओ वंधंति मिच्छा दु ॥३७९॥

११०५।

आसाया पुण ताओ हुंडासंपत्तमिच्छसंदृणा ।

११०१।

मिस्साइ ओघभंगो अपमत्तंतेसु णायव्वो ॥३८०॥

एकेन्द्रिय-विकलत्रयजातयः ४ स्थावर १ आतपः १ सूक्ष्मं १ अपर्याप्त १ साधारण १ नरकायुष्य १
नारकद्वयं २ चेति द्वादशप्रकृतिभिर्विहीनाः अन्याः अष्टोत्तरशत बन्धयोग्याः १०८ पद्मलेश्यायां भवन्ति ।
तीर्थद्वाराऽऽहारकयुगलरहिता याः प्रकृतयस्ता एव पञ्चोत्तरशत प्रकृतीरिति मिथ्यादृष्टयो वदन्ति १०५ ।
हुण्डकसंस्थानासम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन-मिथ्यात्व-पण्डवेदोनास्ता एव प्रकृतीः सासादना वदन्ति १०१ ।
मिश्राद्यप्रमत्तान्तेषु गुणस्थानोक्तबन्धो ज्ञातव्यः ॥३७८-३८०॥

	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०
पद्मलेश्यायां बन्धयोग्याः १०८ । रचना—	४	२५	०	१०	४	६	१
	१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५९
	३	७	३४	३१	४१	४५	४८

पद्मलेश्यामें एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रिक, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नर-
कायु और नरकद्विक, इन चारहके बिना शेष १०८ प्रकृतियों बन्ध-योग्य हैं । उनमेंसे पद्मलेश्यावाले
मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थद्वार और आहारकयुगल, इन तीनसे रहित जो १०५ प्रकृतियों शेष रहती हैं,
उन्हें बाँधते हैं । उक्त लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन,
मिथ्यात्व और नपुंसकवेद, इन चारके बिना शेष १०१ का बन्ध करते हैं । मिश्रगुणस्थानकी

आदि लेकर अप्रमत्तसंयत तकके पद्मलेश्यावाले जीवोमे बन्ध-रचना ओघके समान जानना चाहिए ॥३७८-३८०॥ (देखो संदृष्टि सं० ३०)

इगि-विगल-थावरादव-उज्जोवापुण्ण-सुहुम-साहरणा ।

णिरि-तिरियाऊ णिरि तिरिदुगूणा बंधा हवंति सुक्काए ॥३८१॥

११०४।

तित्थयराहारदुगूणाओ बंधंति मिच्छदिट्ठी दु ।

११०१।

आसाया पुण ताओ हुंडासंपत्त-मिच्छ-संदूणा ॥३८२॥

११०।

तिरियाऊ तिरियजुयलं उज्जोवं च इय साय-पयडीहिं ।

देव-मणुसाउगेहि य रहियाओ ताओ मिस्सा दु ॥३८३॥

१०४।

तित्थयर-सुर-गराऊ सहिया बंधंति ताओ अजई दु ।

१०७।

जाव य सजोगकेवलि विरयाविरयाइ ताव ओघो त्ति ॥३८४॥

एकेन्द्रियविकलेन्द्रियजातयः ४ स्थावर १ आतपः १ उद्योतः १ अपर्याप्त १ सूक्ष्म १ साधारण १ नारक-तिर्यगायुषो नारकद्वय २ तिर्यग्द्वय २ चेति षोडशप्रकृतिभिर्भिना अन्याश्चतुस्तरशतं १०४ बन्धयोग्याः प्रकृतयः शुक्ललेश्यायां भवन्ति । तीर्थकरत्वाऽऽहारकद्वयोनास्ता एव १०१ मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति । हुण्डका-सम्प्राप्तसृपाटिका-मिथ्यात्वपण्डवेदोनास्ता एव प्रकृतीः सासादना बध्नन्ति १०७ । तिर्यगायुष्यं १ तिर्यग्विद्वक २ उद्योतः १ चेति प्रकृतिचतुष्क ४ सासादनव्युच्छिन्नप्रकृतीनां मध्ये त्यक्त्वा अन्याः सासादनव्युच्छिन्नप्रकृतय एकविंशतिः २१ देवमनुष्यायुर्द्वय २ एवं त्रयोविंशत्या प्रकृतिभि २३ विरहितास्ता एव प्रकृती ७४ मिश्रगुणा बध्नन्ति । तीर्थङ्करत्व-देव-मनुष्यायुःसहितास्ता एव प्रकृती ७७ रसंयता बध्नन्ति । विरताविरतादिसयोग-केवलिगुणस्थानपर्यन्त गुणस्थानोक्तबन्धादिको ज्ञेयः । ३८१-३८४॥

शुक्ललेश्यायां बन्धयोग्यप्रकृतयः १०४ । शुक्ललेश्यायन्त्रम्—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०
४	२१	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	०
१०१	६७	७४	७७	६७	६३	५६	५८	२२	१७	१	१	१
३	७	३०	२७	३७	४१	४५	४६	८२	८७	१०३	१०३	१०३

शुक्ललेश्यामै एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियत्रिक, स्थावर, आतप, उद्योत, अपर्याप्त, सूक्ष्म, साधारण, मनुष्यायु, तिर्यगायु, मनुष्यद्विक और तिर्यग्विद्वक; इन सोलहके विना शेष १०४ प्रकृतियों बन्ध-योग्य हैं । उनमेंसे शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थङ्कर और आहारकद्विकके विना शेष १०१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । उक्त लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हुंडकसंस्थान, सृपाटिका-संहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेदके विना शेष ६७ प्रकृतियोंको बंधते हैं । शुक्ललेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यगायु, तिर्यग्विद्वक और उद्योत; इन चारको छोड़कर सासादनमें व्युच्छिन्न होनेवाली शेष २१ प्रकृतियोंसे तथा देवायु और मनुष्यायुसे रहित शेष ७४ प्रकृतियोंको बंधते हैं । शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तीर्थङ्कर, देवायु और नरकायु, इन तीनके साथ उक्त

७४ का अर्थात् ७७ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। पाँचवें विरताविरतगुणस्थानसे लेकर सयोगि-
केवली तकके शुक्ललेखावाले जीवोंकी बन्धरचना ओघके समान जानना चाहिए ॥३८१-३८४॥
(देखो सदृष्टि स० ३१)

अब भव्य और सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा बन्धादिका निरूपण करते हैं—

वेदय-खड्ग भव्वाभव्वे जहसंभवं ओघो ।

उवसमअजई जीवा सत्तत्तरि सुर-णराउरहियाओ ॥३८५॥

।७५।

त्रिदियचदु-मणुसोरालियदुगाइसंधयणऊणिया पयडी ।

विरयाविरयाजीवा ताओ बंधति णियमेण ॥३८६॥

।६६।

तइयचउक्कयरहिया पमत्तविरया दु ताओ बंधति ।

।६२।

असुहाजसाथिरारइ-असायसोऊण आहारेः सहिया ॥३८७॥

।५८।

बंधंति अप्पमत्ता अपुव्वकरणाइ ओघभंगो य ।

सासणसम्माइतिए णियणियठाणम्मि ओघो दु ॥३८८॥

वेदकसम्यक्त्वे क्षायाकसम्यक्त्वे भव्ये अभव्ये च यथासम्भव ओघः गुणस्थानोक्तयोग्यप्रकृतिबन्धादिको
ज्ञातव्यः । भव्यजीवेषु बन्धप्रकृतियोग्य १२० । गुणस्थानानि १२ । गुणस्थानोक्तवद् रचना । अभव्यजीवेषु
मिथ्यात्वं गुणस्थानमेकम् । बन्धयोग्या प्रकृतयः ११७ । उपशमाविरतसम्यग्दृष्टयो जीवाः सप्तसप्ततिः
प्रकृतयो देव-मनुष्यायुष्यद्वयरहिता इति पञ्चसप्तति-प्रकृती बध्नन्ति ७५ । अप्रत्याख्यातद्वितीयकपायचतुष्कं
४ मनुष्यगति—मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्विक २ औदारिक-तद्गोपाङ्गद्वय वज्रवृषमनाराचप्रथमसहननं १ चेति
नवप्रकृतिभिरुनास्ता एव प्रकृतीर्विरताविरता देशविरता उपशमसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति नियमेन । प्रत्याख्या-
नतृतीयचतुष्केन ४ रहितास्ता एव द्वापर्द्धि प्रकृतीः प्रमत्तमंयता उपशमसम्यक्त्वा बध्नन्ति ६२ । अशुभ १
अयशः १ अस्थिर १ अरति १ असातावेदनीय १ शोकः १ चेति पद्भिः । प्रकृतिभिरुना आहारकद्वयसहि-
तास्ता एव ५८ प्रकृती २ प्रमत्तोपशमसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति । अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूचमसाम्परायोपशा-
न्तकपायेषु ओघभङ्ग गुणस्थानोक्तवत् । तथाहि—उपशमसम्यग्दृष्टीनां तिर्यग्मनुष्यगत्यो ७२ देवायुषो
नरक-देवगत्यो ७२ मनुष्यायुषश्चावन्धात् उभयोपशमसम्यक्त्वे तद्द्वयस्याप्यभावात् ।

	अ०	दे०	प्र०	अ०
प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टौ गुणस्थानचतुष्क—	६	४	६	०
	७५	६६	६२	५८
	२	११	१५	१६

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेऽपि बन्धयोग्याः ७७ । गुणस्थानानि ८ ।

अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	ख०	उ०
६	४	६	०	३६	५	१६	०
७५	६६	६३	५८	५८	२२	१७	१
२	११	१५	१६	१६	५५	६०	७६

अब आहरे ।

तत्र श्रेण्यवरोहकासंयते उपशमश्रेण्यां द्वितीयोपशमिकं क्षायिक च । क्षपकश्रेण्यां क्षायिकमेव सम्यक्त्वमिति नियमान् । सासादनसम्यक्त्वादित्रये निज-निजगुणस्थाने गुणस्थानोक्तवत् ॥३८५-३८८॥

	१६		२५		०
मिथ्यारुचीनां—	११७	सासादनरुचीनां	१०१	मिश्ररुचीनाम्	७४
	३		१६		४६

भव्य और अभव्य जीवोंमें तथा वेदक और क्षायिक सम्यक्त्वी जीवोमे यथासंभव ओघके समान प्रकृतियोंका बन्ध जानना चाहिए । अभव्योंके एक पहिला ही गुणस्थान होता है और भव्योंके सभी गुणस्थान होते हैं । वेदकसम्यक्त्वी जीवोके चौथेसे लेकर सातवे तकके चार और क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोके चौथेसे लेकर चौदहवे तकके ग्यारह गुणस्थान होते हैं । उपशमसम्यक्त्वी अविरती जीव देवायु और मनुष्यायुसे रहित सत्तहत्तर अर्थात् पचहत्तर प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । विरताविरत उपशमसम्यक्त्वी जीव द्वितीय कपायचतुष्क, मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और आदिम संहनन, इन नौके बिना शेष ६६ प्रकृतियोंको नियमसे बाँधते हैं । प्रमत्तविरत उपशमसम्यक्त्वी तृतीय कपायचतुष्कसे रहित शेष ६२ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । अप्रमत्तविरत उपशमसम्यक्त्वी अशुभ, अयशःकीर्ति, अस्थिर, अरति, असातावेदनीय और शोक इन छह प्रकृतियोंके बिना तथा आहारकद्विकसहित ५८ प्रकृतियोंको बाँधते हैं । अपूर्वकरणसे आदि लेकर उपशान्तमोह तकके उपशमसम्यक्त्वी जीवोके ओघके समान बन्धरचना जानना चाहिए । सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोकी बन्धरचना उन-उन गुणस्थानोंमें वर्णित सामान्य बन्धरचनाके समान जानना चाहिए ॥३८५-३८८॥

(देखो संहति सं० ३२)

अब शेष मार्गणाओंकी अपेक्षा बन्धादिका निर्देश करते हैं—

सण्णि-असण्णि-आहारीसुं जह संभवो ओघो ।

भण्णिओ अणहारीसु जिणेहिं कम्मइयभंगो ॥३८९॥

११२।

एव मग्गणासु पयद्विबन्धसामित्तं ।

सङ्ख्यऽसङ्ख्याऽऽहारकेषु यथासंभव ओघः गुणस्थानोक्तबन्धो भणितः । अनाहारकेषु कर्मणोक्तगुणस्थानवत् बन्धादिको जिनैर्भणितः । तथाहि—संज्ञिमार्गणार्था बन्धयोग्यं १२० । गुणस्थानानि १२ । मिथ्यात्वादि-क्षीणान्तेषु गुणस्थानोक्त यथा । असंज्ञिमार्गणार्था बन्धप्रकृतियोग्य ११७ । मि० सा०

१६	२६
११७	६८
०	१६

आहारकेषु बन्धयोग्य १२० । गुणस्थानानि १३ । बन्धादिक गुणस्थानोक्तवत् । अनाहारमार्गणार्था बन्धयोग्य ११२ । कर्मणोक्तरचनावत् । देव-नारकायुष्यद्वयं २ आहारकद्वयं २ नारकद्वयं २ तिर्यग्द्विक २ हृत्यष्टानां अबन्धत्वात् शेषबन्धयोग्य ११२ ॥३८९॥

मि०	सा०	अवि०	सयो०	अयो०
१३	२४	६।६५	१	०
१०७	६४	७५	१	०
५	१८	३७	१११	११२

इति मार्गणासु प्रकृतिबन्धस्वामित्वं समाप्तम् ।

संज्ञी, असंज्ञी और आहारक जीवोमे प्रकृतियोंका बन्ध यथासंभव ओघके समान जानना

चाहिए। अनाहारक जीवोमे प्रकृतियोंका बन्ध जिनेन्द्रभगवान्ने कर्मणकाययोगियोंके समान कहा है ॥३८६॥

विशेषार्थ—संज्ञियोंके आदिके १२ गुणस्थानोंके समान, पर्याप्त असंज्ञियोंके मिथ्यात्वगुण-स्थानके समान, अपर्याप्त असंज्ञियोंके आदिके दो गुणस्थानोंके समान, तथा आहारकोके सयोगि-केवली पर्यन्त १३ गुणस्थानोंके समान बन्धरचना जानना चाहिए। अनाहारक जीवोंकी बन्धरचना यद्यपि कर्मणकाययोगियोंके समान कही गई है, तथापि इतना विशेष जानना चाहिए कि अयोगिकेवली भी अनाहारक होते हैं, अतएव अनाहारकोंकी बन्धरचना करते समय उन्हें भी परिगणित करना चाहिए।

इस प्रकार चौदह मार्गणाओंमें प्रकृतियोंके बन्धस्वामित्वका निरूपण किया।

अब कर्मप्रकृतियोंके स्थितिवन्धका निरूपण करते हैं—

^१उक्स्समणुक्स्सो जहणमजहणओ य ठिदिबन्धो ।

सादि अणादि य धुवाधुव सामित्तेण सहिया णव होंति ॥३६०॥

अथ-स्थितिवन्धः उत्कृष्टादिभिर्नवधा कथ्यते—['उक्स्समणुक्स्सो' इत्यादि ।] स्थितिवन्धो नवधा भवति । स्थितिरिति कोऽर्थः १ स्थितिः कालावधारणमित्यर्थः । उत्कृष्टस्थितिवन्धः १ । अनुत्कृष्टस्थितिवन्धः, उत्कृष्टात् किञ्चिद्धीनोऽनुत्कृष्टः २ । जघन्यस्थितिवन्धः ३ । अजघन्यस्थितिवन्धः, जघन्यात्किञ्चिदधिकोऽजघन्यः ४ । सादिस्थितिवन्धः, यः अवन्ध स्थितिवन्ध बध्नाति स सादिवन्ध ५ । अनादि स्थितिवन्धः, जीव-कर्मणोरनादिवन्धः स्यात् ६ । ध्रुवः स्थितिवन्धः, अभव्ये ध्रुववन्धः, अनाद्यनन्तत्वात् ७ । अध्रुवः स्थितिवन्धः, स्थितिवन्धविनाशे अध्रुववन्धः । अवन्धे सति वा अध्रुववन्धः स्यात्, भव्येषु भवति । स्वामित्वेन बन्धकर्जावेन सह ६ नवधा स्थितिवन्धा भवन्ति ॥३६०॥

उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव और स्वामित्वके साथ स्थितिवन्ध नौ प्रकारका है ॥३६०॥

विशेषार्थ—कर्मोंकी आत्माके साथ नियत काल तक रहनेकी मर्यादाका नाम स्थिति है। उसके सर्वोत्कृष्ट बंधनेको उत्कृष्टस्थितिवन्ध कहते हैं। उससे एक समय आदि हीन स्थितिके बन्धको अनुत्कृष्टस्थितिवन्ध कहते हैं। कर्मोंकी सबसे कम स्थितिके बंधनेको जघन्यस्थितिवन्ध कहते हैं। उससे एक समय आदि अधिक स्थितिके बन्धको अजघन्य स्थितिवन्ध कहते हैं। विवक्षित कर्मकी स्थितिके बन्धका अभाव होकर पुनः उसके बंधनेको सादि स्थितिवन्ध कहते हैं। गुणस्थानोंमें बन्धव्युच्छित्तिके पूर्व तक अनादिकालसे होनेवाले स्थितिवन्धको अनादिस्थितिवन्ध कहते हैं। जिस स्थितिवन्धका कभी अन्त न हो उसे ध्रुवस्थितिवन्ध कहते हैं, जैसे अभव्यजीवके कर्मोंका बन्ध। जिस स्थितिके बन्धका नियमसे अन्त हो, उसे अध्रुवस्थितिवन्ध कहते हैं। जैसे भव्य जीवोंके कर्मोंकी स्थितिका बन्ध। कौन जीव किस जातिकी स्थितिका बन्ध करता है, इस बातका निर्णय उसके स्वामित्वके द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार स्थितिवन्धके नौ भेद कहे गये हैं।

अब मूलकर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ४६] ^२तिण्हं खलु पढमाणं उक्स्सं अंतराइयस्सेव ।

तीसं कोडाकोडी सायरणाणामाणमेव ठिदी ॥३६१॥

1 सं० पञ्चसं० ४, 'उत्कृष्टानुत्कृष्ट' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १३५) । 2. ४, १६७-१६८ ।

† व - माणाण ।

[मूलगा० ५०] मोहस्स सत्तरी खलु वीसं णामस्स चेव गादस्स ।
तेतीसमाउगाणं उवमाउ सायराणं तु+ ॥३६२॥

मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिवन्धं गाथाद्वयेनाऽऽह—[‘तिण्ह खलु पढमाणं’ इत्यादि ।] त्रयाणां प्रथमानां ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीयानां कर्मणां अन्तरायस्य कर्मणश्च उत्कृष्टस्थितिवन्धः सागरोपमाणां त्रिंशत्कोटीकोटयः खलु निश्चयेन ॥३६१॥

ज्ञाना० ३० को० । दर्श० ३० को० । वेद० ३० को० । अन्त० ३० को० ।

मोहनीयस्य कर्मणः सप्ततिः ७० सागराणां कोटीकोटयः उत्कृष्टस्थितिवन्धः । नामकर्मणः गोत्रकर्मणश्चोत्कृष्टस्थितिः विंशतिसागरोपमकोटीकोटयः स्थितिवन्धः । आयुषः कर्मणः उत्कृष्टस्थितिवन्धः शुद्धानि त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि ॥३६२॥

मो० ७० को० । ना० २० को० । गो० २० को० । आयुषः साग० ३३ ।

आदिके तीन कर्मोंका अर्थात्—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीयकर्मका तथा अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है । मोहनीयकर्मका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम, नाम और गोत्रकर्मका बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम और आयुर्कर्मका तेतीस सागरोपम है ॥३६१-३६२॥

वस्ससयं आवाहा कोडाकोडी ठिदिस्स जलहीणं ।

सत्तण्हं कम्माणं आउस्स दु पुव्वकोडित्ठअंसो ॥३६३॥

तैरासिएण णेया उक्कस्सा होंति सव्वपयडीणं ।

अंतोमुहुत्तवाहा अहमा पुण सव्वकम्माणं ॥३६४॥

उत्कृष्ट-जघन्याऽऽवाधाकालभेदं गाथाद्वयेनाऽऽह—[‘वस्ससयं आवाहा’ इत्यादि ।] आयुर्वर्जित-सप्तकर्मणामुदयं प्रत्युत्कृष्टाऽऽवाधा कोटाकोटिसागरोपमाणां गतवर्षमात्रो भवति । सागरकोटिं प्रति वर्षशतं वर्षगतं आवाधाकालो भवतीत्यर्थः । आयुष पूर्वकोट्याः तृतीयांशः तृतीयभागः आवाधाकालः उत्कृष्टः । सर्वमूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च त्रैराशिमेनोत्कृष्टा आवाधा ज्ञातव्या भवन्ति । तत्कथम् ! कोटीकोटि-सागरोपमस्य गतवर्षम्, तदा त्रिंशत् सप्तते विंशतेश्च कोटीकोटिसागरोपमस्य किमिति त्रैराशिके कृते प्रमाणं सागरा० १ को० फलं वर्षः १०० । इच्छा सा० ३० को०, ७० को० । २० को० । इति इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन तु भाजयेत् । लब्धम् ३००० । २००० । तथाहि—ज्ञानावरणस्योत्कृष्टावाधाकालः वर्षः ३००० । दर्शनावरणस्योत्कृष्टावाधाकालः वर्षः ३००० । वेदनीयस्योत्कृष्टावाधाकालः वर्षः ३००० । अन्तरायस्योत्कृष्टावाधाकालः वर्षः ३००० । मोहनीयस्योत्कृष्टावाधाकालः वर्षः ७००० । नामकर्मणः उत्कृष्टावाधाकालः वर्षः २००० । गोत्रस्योत्कृष्टावाधाकालः वर्षः २००० । सर्वेषां ज्ञानावरणादीनां अष्टानामुत्तरप्रकृतीनां च जघन्यावाधाकालः अन्तर्मुहूर्तः । आयुषः कर्मणः उत्कृष्टावाधा पूर्वकोटिवर्षत्रिभागः स्यात् ३३ ३३ ३३ ३ ३ अयं तृतीयांशः । उक्तं च—

1. सं० पञ्चसंग्र० ४, १६६ । 2. ४, २०० ।

+ इन दोनों गाथाओंके स्थानपर शतकप्रकरणमें ये दो निम्नगाथाएँ पाई जाती हैं—

सत्तरि कोडाकोडी अयराणं होइ मोहणीयस्स ।

तीसं आइतिगंते वीसं नामे य गोए य ॥५२॥

तेत्तीसुद्धी आउम्मि केवला होइ एकमुंकोसा ।

मूलपयडीण एत्तो ठिई जहसो निसामेह ॥५३॥

त्रयस्त्रिंशज्जिनैर्लक्षाः सत्रिभागा निवेदिताः ।

आवाधा जीवितव्यस्य पूर्वकोटीस्थितेः स्फुटम् ॥३१॥

पूर्वाणां त्रयस्त्रिंशल्लक्षा इति शेषः ३३३ । आयुषो जघन्याऽऽवाधाकालः अन्तर्मुहूर्त । पञ्चान्तरेणा-
सक्षेपाद्धा वा भवति । न विद्यतेऽस्मादन्यः सक्षेपः असक्षेपः । स चासौ अद्धा च असक्षेपाद्धा, आवृत्य-
संख्येयभागमात्रत्वात् । आयुषः कर्मणः एवमेव भवति । न च स्थिति-त्रिभागेन । तर्हि असख्यातवर्षायुष्काणां
त्रिभागे उत्कृष्टा कथं नोक्ता ? तच्च, देवानां नारकाणां च स्वस्थितौ पण्मासेषु, भोगभूमिजानां नवमासेषु
चावशिष्टेषु त्रिभागोनायुर्वन्धासम्भवात् । आवाधालक्षणं गोमट्टमारे प्रोक्तमस्ति—

कम्मसरुवेणागयद्वन् ण य एदि उदयरुवेण ।

रुवेणुदीरणस्स य आवाहा जाव ताव हवे ॥३२॥

कर्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगहेतुना कर्मणवर्गणायातपुद्गलस्कन्धा-
मूलोत्तरप्रकृतिरूपेणाऽऽमप्रदेशेषु अन्योन्यप्रवेशानुलक्षणवन्धरूपेणाप्रस्थिता । फलदानपरिणतिलक्षणोदय-
रूपेणापक्वपाचनलक्षणोदीरणारूपेण वा यावन्नाऽऽयान्ति तावान् कालः 'आवाधा' इत्युच्यते । कर्मस्व-
रूपेण परिणतकर्मणद्रव्यं यावदुदयरूपेणोदीरणारूपेण वा न एति, न परिणमति तावान् कालः 'आवाधा'
कथ्यते । तथा चोक्तम्—

यावत्कालमुदीर्यन्ते न कर्मपरमाणवः ।

उदीरणां विनाऽऽवाधा तावत्कालोऽभिधीयते ॥३३॥३६३-३६४॥

वैधा हुआ कर्म जितने कालतक फल देना प्रारम्भ नहीं करता, उतने कालको आवाधाकाल
कहते हैं । कौन कर्म कितने समय तक फल नहीं देता, इसका एक निश्चित नियम है । आगे
उसीका निरूपण करते हैं—

एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवन्धकी आवाधा सौ वर्ष प्रमाण होती है । इस नियम
के अनुसार सातों मूल कर्मोंकी, तथा उनकी उत्तरप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आवाधा त्रैराशिकसे जान
लेना चाहिए । आयुर्कर्मकी उत्कृष्ट आवाधा पूर्वकोटी वर्षका त्रिभाग है । सर्व कर्मोंकी जघन्य
आवाधा अन्तर्मुहूर्त काल-प्रमाण है ॥३६३-३६४॥

विशेषार्थे—सातों कर्मोंकी उत्कृष्ट आवाधा इस प्रकार जानना चाहिए—ज्ञानावरण,
दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्मकी ३००० वर्ष, दर्शनमोहकी ७००० वर्ष, चारित्रमोहकी
४००० वर्ष, नाम और गोत्रकर्मकी २००० वर्ष उत्कृष्ट आवाधा होती है ।

^१आवाधूणट्टिदी कम्मणिसेओ होइ सत्तकम्माणं ।

ठिदिमेव णिया सव्वा कम्मणिसेओ य आउस्स ॥३६५॥

अथ निपेकलक्षणमाह—['आवाधूणियकम्मट्टिदी' इत्यादि ।] आयुर्वर्जितससमूलप्रकृतीना ज्ञाना-
वरणादीना आवाधोनितकर्मस्थितिः कर्मनिपेचनं क्षरण निपेको भवति । कर्मनिपेचनं कर्मोदय इत्यर्थः ।
आयुषः कर्मणः निजा स्थितिः सर्वा कर्मनिपेकरूपा भवति । आयुषः स्वस्थितिः सर्वैव निपेको भवति ।
तथा चोक्तम्—

आवाधोनाऽस्ति सप्तानां स्थितिः कर्मनिपेचनम् ।

कर्मणामायुषोऽवाचि स्थितिरेव निजा पुनः ॥३४॥ इति

१. स० पञ्चस० ४, २०८ ।

१. स० पञ्चस० ४, २०५ । २. गो० क० गा० १५५ । ३ स० पञ्चस० ४, २०७ । ४ स०
पञ्चस० ४, २०८ ।

१ गो० क० गो० गा० १६०, पर तत्रोत्तरार्धे पाठभेदोऽस्ति ।

आयुषो यावतो स्थितिस्तावान्निपेको भवति । तथा च —

आवाधोर्ध्वस्थितावस्यां समयं समयं प्रति ।

कर्माणुस्कन्धनिक्षेपो निपेकः सर्वकर्मणाम् ॥३५॥

परतः परतः स्तोकः पूर्वतः पूर्वतो बहुः ।

समये समये ज्ञेयो यावत्स्थितिसमापनम् ॥३६॥

स्वां स्वामावाधां सुक्त्वा सर्वकर्मणां निपेका वक्तव्याः । तेषाञ्च गोपृच्छाकारेणावस्थितिः ॥३६५॥

आयुके बिना शेष सात कर्मोंको बँधी हुई स्थितिमेंसे आवाधाकालके घटा देनेसे जो स्थिति शेष रहती है, वह कर्मनिपेककाल है । आयुकर्मका कर्मनिपेककाल उसकी अपनी सर्व स्थिति ही जाननी चाहिए ॥३६५॥

विशेषार्थ—प्रत्येक समयमें खिरने या निर्जीर्ण होनेवाले कर्मपरमाणुओंके समूहको निपेक कहते हैं । आयुके बिना शेष कर्मोंका जितना स्थितिवन्ध होता है, उसमेंसे ऊपर बतलाये गये नियमके अनुसार आवाधाकालके घटा देनेपर जो स्थिति शेष रहती है, उसे निपेककाल कहते हैं । इसका अभिप्राय यह हुआ कि विवक्षित समयमें बँधनेवाले कर्मपिण्डमें जितने परमाणु हैं, वे आगममें बतलाई गई एक निश्चित विधिके अनुसार निपेककालके जितने समय है, उनमें विभक्त हो जाते हैं और फिर अपनी-अपनी अवधिके पूर्ण होनेपर खिर जाते हैं । किन्तु आयुकर्म उक्त नियमका अपवाद है । उसमें अन्य कर्मोंके समान आवाधाकाल और निपेककाल ऐसे दो विभाग नहीं हैं; किन्तु जिस आयुकर्मकी जितनी स्थिति बँधती है, वह सभी निपेककाल है । अर्थात् उतनी स्थिति-प्रमाण उसके निपेककी रचना होती है । ऊपर जो आयुकर्मकी उत्कृष्ट आवाधा पूर्वकोटी वर्षका त्रिभाग बतलाया गया है, सो भुज्यमान आयुकी अपेक्षा बतलाया गया है, बध्यमान आयुकी अपेक्षा नहीं, ऐसा विशेष जानना चाहिए । मूल शतककी जो चूर्णि उपलब्ध है, उसमें नरकायु-देवायुकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटी वर्षके त्रिभागसे अधिक तेतीस सागरोपम बतलाया है । यथा—

‘देव-निरयाडगाण उक्कोसगो ठिड्वयो तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडित्तिभागहियाणि, पुव्वकोडित्ति-भागो अवाहा । अवाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो ।

इसी प्रकार मनुष्य-तिर्यञ्चोंकी भी उत्कृष्ट आयुके विषयमें कहा है—

‘मणुस-तिरियाडगाण उक्कोसट्ठिई तिणिण पल्लोवमाणि पुव्वकोडित्तिभागसहियाणि । पुव्वकोडित्ति-भागो अवाहा । अवाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो ।’

यह कथन पूर्वकोटी प्रमाण कर्मभूमियों मनुष्य-तिर्यञ्चोंकी भुज्यमान आयुके त्रिभाग-रूप आवाधाकालको सम्मिलित करके कहा गया समझना चाहिए ।

अब उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका निरूपण करते हैं—

‘आवरणमंतराए पण णव पणयं असायवेयणियं ।

तीसं कोडाकोडी सायरणामाणमुक्कस्सं ॥३६६॥

२० पृदामि ठिडी ३० ।

अथोत्तरप्रकृतीनां स्थितिमुत्कृष्टां गाथाद्वादशकेनाऽऽह—[‘आवरणमन्तराए’ इत्यादि ।] मतिज्ञा-नावरणादिपञ्चक ५ चक्षुर्दर्शनावरणादि नव ९ दानान्तरायादिपञ्चक ५ असातवेदनीयं १ चेति विशतेः

१. सं० पञ्चसं० ४, २११ ।

१. सं० पञ्चसं० ४, २०६-२१० । २. एपापि पडिक्तस्तत्रैवोपलभ्यते (सं० पञ्चसं० पृ० १३२)

प्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धः त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमप्रमाणः । विंशतेः प्रकृतीनां स्थितिः ३० कोटा० ॥३६६॥

ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ६, अन्तरायकी ५ और असातावेदनीय इन बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होता है ॥३६६॥

^१मणुसदुग इत्थिवेयं सायं पण्णरसं कोडिकोडीओ ।

मिच्छत्तस्स य सत्तरि चरित्तमोहस्स चत्तालं ॥३६७॥

एदेसिं ठिदी १५ । मिच्छत्तस्स ७० । सोलसकसायाण ४० ।

मनुष्यगति- [मनुष्य-] गत्यानुपूर्व्यद्वय २ स्त्रीवेदः १ सातवेदनीय चेति चतसृणा प्रकृतीनामुत्कृष्ट-स्थितिबन्धः पञ्चदशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणो भवति १५ । मिथ्यात्वस्योत्कृष्टस्थितिबन्धः सप्ततिकोटाकोटि-सागरप्रमाणः स्यात् ७० कोटा० । चारित्रमोहस्यानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभानां षोडशकपायाणां उत्कृष्टस्थितिबन्धः चत्वारिंशत्सागरोपमकोटाकोटिप्रमाणः ४० कोटा० ॥३६७॥

मनुष्यद्विक, स्त्रीवेद, सातावेदनीय, इन चार प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है । मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी और चारित्रमोहनीयका चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होता है ॥३६७॥

^२णिरयाउग-देवाउगठिदि-उक्कस्सं च होइ तेत्तीसं ।

मणुयाउय-तिरियाउय-उक्कस्सं तिण्णि पल्लाणि ॥३६८॥

॥३३॥

नारक-देवायुपोरुत्कृष्टस्थितिबन्धः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं साग० ३२ । मनुष्यायुषः तिर्यगायु-पश्चोत्कृष्टस्थितिबन्धः त्रीणि पत्तोपमप्रमाणानि पत्त्य० ३ ॥३६८॥

नरकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतोस सागरोपम है । मनुष्यायु और तिर्यगायु-का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पत्तोपम है ॥३६८॥

^३भयमरइदुगुंछा विय णउंसयं सोय णीचगोयं च ।

णिरयगइ-तिरियदोण्णि य तेसिं च तहाणुपुव्वी य ॥३६९॥

एइंदिय-पंचिदिय-तेजा कम्मं च अंगवंगदुयं ।

दोण्णि य सरीर हुंडं वण्णचउकं असंपत्तं ॥४००॥

अगुरुयलहुयचउकं आदाउज्जोव अप्पसत्थगदिं ।

थावरणामं तसचउ अथिरं असुहं अणादेज्जं ॥४०१॥

दुब्भग दुस्सरमजसं णिमिणं च य वीस कोडिकोडीओ ।

सायरसंखाणियमो ठिदि-उक्कस्सं वियाणाहि ॥४०२॥

४३ एयासिं ठिदी २० ।

भयं १ भरतिः १ जुगुप्ता १ नपुंसकवेदः १ शोकः १ नीचगोत्रं १ नरकगतिः १ नरकगत्यानुपूर्वी १ तिर्यगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ एकेन्द्रियं १ पञ्चेन्द्रियं १ तैजसं १ कामणं १ अङ्गोपाङ्गद्वय २ औदारिक-

१. स० पञ्चस० ४, २१२ । २. ४, २१३ । ३. ४, २१४-२१७ ।

॥३६६॥

वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गद्विकं २ शरीरे द्वे औदारिक-वैक्रियिकशरीरे द्वे २ हुण्डकसंस्थानं १ स्पर्श-रस-गन्ध-
वर्णचतुष्कं ४ असम्प्राप्तसृपाटिकासहननं १ अगुरुलघुपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं, ४ आतपः १ उद्योतः १
अप्रशस्तविहायोगतिः १ स्थावरनाम १ त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्कं ४ अस्थिरं १ अशुभ १ अनादेयं १
दुर्भग १ दुःस्वर १ अयशःकीर्तिः १ निर्माण १ चेति त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ४३, उत्कृष्टस्थितिबन्धः विंशति-
कोटाकोटिसागरोपमप्रमाणमिति त्वं जानीहि । एतासां ४३ प्रकृतीनां स्थितिः २० कोटा० ॥३६६-४०२॥

भय, अरति, जुगुप्सा, नपुंसकवेद, शोक, नीचगोत्र, नरकगति, तिर्यग्गति, नरकानुपूर्वी
तिर्यगानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर,
औदारिक-अगोपांग, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-अंगोपांग, हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासहनन, वर्ण-
चतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, त्रसचतुष्क, अस्थिर,
अशुभ, अनादेय, दुर्भग, दुःस्वर, अयशःकीर्ति और निर्माण; इन तेतालीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट
स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ीसागरोपम जानना चाहिए ॥३६६-४०२॥

^१हास-रह-पुरिसवेयं देवगहदुयं पसत्थसंठाणं ।

आदी वि य संघयणं पसत्थगहसुस्सरं सुभगं ॥४०३॥

थिर सुह जस आदेज्जं उच्चागोदं ठिदी य उक्कस्सं ।

दस सागरोवमाणं पुण्णाओ कोडकोडीओ ॥४०४॥

१५ एयासिं ठिदी १० ।

हास्यं १ रतिः १ पुंवेदः १ देवगति-देवत्यानुपूर्व्यद्वयं २ समचतुरस्रसंस्थानं १ वज्रवृषभनाराच-
सहनन १ प्रशस्तविहायोगतिः १ सुस्वरः १ सुभगं १ स्थिरं १ [शुभ १] यशः १ आदेयं १ उच्चैर्गोत्रं १
चेति पञ्चदशप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धः दश कोटाकोटिसागरोपमप्रमाणः । अमू पुण्यप्रकृतयः १५ तासां
स्थितिः १० कोटा० ॥४०३-४०४॥

हास्य, रति, पुरुषवेद, देवगति, देवत्यानुपूर्वी, प्रशस्त अर्थात् समचतुरस्रसंस्थान, आदि-
का अर्थात् वज्रवृषभनाराचसहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुस्वर, सुभग, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति,
आदेय और उच्चगोत्र; इन पन्द्रह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दश कोड़ाकोड़ीसागरोपम
होता है ॥४०३-४०४॥

^२बितिचउरिंदिय सुहुमं साधारणणामयं अपज्जत्तं ।

अट्टारस कोडकोडी ठिदिउक्कस्सं समुद्धिद्धं ॥४०५॥

६ एयासिं १८ ।

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणि ३ सूक्ष्म १ साधारणं १ अपर्याप्त १ चेति पण्णां प्रकृतीनां ६
उत्कृष्टस्थितिबन्धः अष्टादशकोटाकोटि- [सागरोपम-] प्रमाणः । प्र० ६ । १८ कोटा० ॥४०५॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त नाम; इन छह प्रकृ-
तियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अट्टारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम कहा गया है ॥४०५॥

१संठाणं संघयणं विदियं तदियं य वारस चोद्दसयं च ।
सोलस कोडाकोडी चउत्थसंठाणं-संघयणं ॥४०६॥

२-१२।२-१४।२-१६

२पंचमयं संठाणं संघयणं तह य होइ पंचमयं ।
अट्टरस कोडकोडी ठिदि-उकस्सं समुद्धिं ॥४०७॥

२।१८

संस्थान-संहननयोः द्वितीययोः न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान-वज्रनाराचसंहननयोरुत्कृष्टस्थितिवन्धः द्वादशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाण । २-१२ कोटा० । तृतीययोः वाल्मीक-नाराच-संस्थान-संहननयोर्द्वयो-रुत्कृष्टस्थितिवन्धः चतुर्दशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाण । २-१४ कोटा० । चतुर्थयोः कुञ्जकसंस्थानार्धनाराच-संहननयोर्द्वयोरुत्कृष्टस्थितिवन्धः षोडशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाण । २-१६ कोटा० । पञ्चमं संस्थान पंचम संहनन पञ्चमयोर्वाचनसंस्थान-कीलिकासंहननयोर्द्वयोरुत्कृष्टस्थितिवन्धः अष्टादशकोटाकोटिसागरोपमाणि, इति समुद्धिं जिनैरिति । २-१८ कोटा० ॥४०६-४०७॥

दूसरे संस्थान और संहननका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध वारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है । तीसरे संस्थान और संहननका चौदह, चौथे संस्थान और संहननका सोलह तथा पाँचवें संस्थान और संहननका अठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम उत्कृष्टस्थितिवन्ध कहा गया है ॥४०६-४०७॥

३अंतोकोडाकोडी ठिदी दु आहारदुगय तित्थयरं ।
सन्वासिं पयडीणं ठिदि-उकस्सं वियाणाहि ॥४०८॥

आहारकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयस्य तीर्थकृतश्चोत्कृष्टस्थितिरेतन्तःकोटाकोटिसागरोपमाणि । एककोट्या उपरि द्विकवारकोट्या मध्ये अन्तःकोटाकोटिः कथ्यते । सर्वासां त्रिशत्युत्तरशतप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिं हे भव्य, त्व जानीहि ॥४०८॥

आहारकद्विक और तीर्थद्वरप्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम है । इस प्रकार सर्व कर्मप्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध जानना चाहिए ॥४०८॥
अथ मूलकर्मोंके जघन्य स्थितिवन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ५१] १वारस य वेयणीए णामे गोदे य अट्ट य मुहुत्ता ।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचहं ॥४०९॥

अथ मूलप्रकृतीनां जघन्यस्थितिवन्धमाह—['वारस य वेयणीए' इत्यादि ।] जघन्यस्थितिवन्धो वेदनीये द्वादश मुहूर्ता १२ । नामकर्मणि अष्टौ मुहूर्ता ८ । गोत्रकर्मणि अष्टौ मुहूर्ताः ८ । तु पुनः शेषाणां पञ्चानां ज्ञानावरणदर्शनावरण-मोहनीयाऽऽयुष्यान्तरायाणां भिन्नमुहूर्तः । अत्र भिन्नमुहूर्त इत्युक्ते अन्तर्मुहूर्तो लभ्यते । स क्वेति चेत्-ज्ञानावरणान्तरायाणां त्रयाणां जघन्या स्थितिः सूक्ष्मसागरोपमाणि ज्ञातव्या । मोहनीयस्यानिवृत्तिकरणगुणस्थाने जघन्या स्थितिर्ज्ञेया । आयुषो जघन्या स्थितिः कर्मभूमिजमनुष्येषु तिर्यक्षु च ज्ञेया ॥४०९॥

1. स०पञ्चसं० ४, २२१ । 2. ४, २२२ । 3. ४, २२३ । 4. २२४ ।

इसके स्थान पर शतकप्रकरणमें निम्न गाथा पाई जाती है—

वारस अंतमुहुत्ता वेयणीए अट्ट नाम-गोयाण ।

सेसाणतमुहुत्त खुडुभव आउए जाण ॥

वेदनीयकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध वारह मुहूर्त, नाम और गोत्रका आठ मुहूर्त तथा शेष पाँच कर्मका भिन्नमुहूर्त है । (यहाँ भिन्नमुहूर्तसे अभिप्राय अन्तर्मुहूर्तका है) ॥४०६॥
अब कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध वतलाते हैं—

^१आवरण-अंतराए पण चउ पणयं तह लोहसंजलणं ।
ठिदिबंधो दु जहण्णो भिण्णमुहुत्तं वियाणाहि ॥४१०॥

।१५।

^२वारस मुहुत्त सायं अट्ट मुहुत्तं तु उच्च-जसकित्ती ।
वे मास मास पक्खं कोहं माणं च मायं च ॥४११॥

एत्थ कोहसजलणे मासा २ । माणे मासो १ । मायाए पक्खो १ ।

अथोत्तरप्रकृतीनां जघन्यस्थितिवन्धं गायत्र्यदशकेनाऽऽह—['आवरणमन्तराए' इत्यादि ।] ज्ञाना-
वरणपञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुरवधिवेवलादर्शनावरणचतुर्कं ४ दानान्तरायादिपञ्चकं ५ संज्वलनलोभ १ इत्येतासां
पञ्चदशप्रकृतीनां जघन्यस्थितिवन्धः अन्तर्मुहूर्तः, इति हे भव्य, जानीहि त्वम् । सातावेदनीयस्य द्वादश
मुहूर्ता जघन्या स्थितिः १२ । उच्चगोत्रस्य यशस्कीर्त्तेश्च जघन्या स्थितिरष्टौ मुहूर्ताः । अत्र संज्वलनक्रोधे
जघन्या स्थितिः द्वौ मासौ २ । संज्वलनमाने जघन्या स्थितिरैको मासः १ । संज्वलनमायायां जघन्या
स्थितिः पक्षः पञ्चदश दिनानि १५ ॥४१०-४११॥

ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी चार, अन्तरायकी पाँच, तथा संज्वलनलोभ इन
पन्द्रह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध भिन्नमुहूर्त जानना चाहिए । सातावेदनीयका वारह मुहूर्त,
उच्चगोत्र और यशःकीर्त्तिका आठ मुहूर्त जघन्य स्थितिवन्ध कहा गया है । संज्वलनक्रोधका
जघन्य स्थितिवन्ध दो मास, संज्वलनमानका एक मास और संज्वलन मायाका एक पक्ष जघन्य
स्थितिवन्ध है ॥४१०-४११॥

^३पुरिसस्स अट्टवासं आउदुगं भिण्णमेव य मुहुत्तं ।
देवाउय-णिरयाउय वाससहस्सा दस जहण्णा ॥४१२॥

पुवेदस्य जघन्यस्थितिवन्धः अष्टौ वर्षाणि ८ । आयुर्द्विकं मनुष्य-तिर्यगायुषोः अन्तर्मुहूर्तः । देवायुषो
नारकायुषश्च जघन्यस्थितिवन्धो दशसहस्रवर्षमिति १०००० ॥४१२॥

पुरुषवेदका जघन्य स्थितिवन्ध आठ वर्ष, मनुष्यायु और तिर्यगायुका अन्तर्मुहूर्त; तथा
देवायु और नरकायुका दश हजार वर्ष है ॥४१२॥

^४पंच य विदियावरणं साइयरं वेयणीय मिच्छत्तं ।
वारस अट्ट य णियमा कसाय तह शोकसाया य ॥४१३॥

एत्थ वंसणावरणीयस्स णिहापंचय ।

तिण्णि य सत्त य चदु दुग सायर उवमस्स सत्त भागा दु ।
ऊणा असंखभागे पल्लस्स जहण्णठिदिबंधो ॥४१४॥

प्र	प्र	प्र	प्र
६	१	१२	८
३	ठि	७	ठि
७	७	७	७

द्वितीयदर्शनावरणपञ्चकं निद्रा १ निद्रानिद्रा १ प्रचला १ प्रचलाप्रचला १ स्थानगृद्धिः १ असाता-
वेदनीयं चेत्येतासा पण्णा प्रकृतीनां ६ जघन्या स्थितिः सागरोपमस्य सप्तभागाना मध्ये त्रयो भागाः प्र०
६ । ३ । मिथ्यात्वस्य जघन्या स्थितिः सागरोपमप्रमिता १ । अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान क्रोध-मान
माया-लोभाना द्वादशानां प्रकृतीना जघन्या स्थितिः सागरोपमस्य सप्तभागानां मध्ये चत्वारो भागाः प्र० १२ । ४ ।
पुंवेदं विना अष्टाना नोकपायाणां जघन्या स्थितिः सागरोपमस्य सप्तभागाना मध्ये द्वौ भागौ । प्र० ८ ।
२ । तत्रेवाऽऽह-निद्रादिपञ्चकस्यासातस्य पण्णां प्रकृतीनां जघन्या स्थितिः सागरस्य त्रयः सप्त-भागाः
पत्योपमस्यासंख्यातभागहीनाः । मिथ्यात्वस्य जघन्या स्थितिः सागरस्य सप्त-सप्तभागाः पत्यासंख्यात-
भागहीना । द्वादशकपायाणां चत्वारः सप्तभागाः पत्योपमासंख्यातभागहीना । पुंवेदं विनाऽष्टाना नोकपा-
याणा जघन्या स्थितिः सागरस्य द्वौ सप्तभागौ पत्यासंख्यातभागहीनौ ॥४१३-४१४॥

द्वितीय आवरण अर्थात् दर्शनावरणकी पौंच निद्राएँ और असातावेदनीय; इन छह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध एक सागरोपमके सात भागोंमेंसे पत्यके असंख्यातवें भाग हीन तीन भागप्रमाण है । मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिवन्ध सागरोपमके सात भागोंमेंसे पत्यासंख्यातभागहीन सात भागप्रमाण है । संज्वलन कपायचतुष्कको छोड़कर शेष बारहकपायोंका जघन्य स्थितिवन्ध सागरोपमके सात भागोंमेंसे पत्यासंख्यातभाग हीन चार भागप्रमाण है । तथा शेष आठ नोकपायोंका जघन्य स्थितिवन्ध सागरोपमके सात भागोंमेंसे पत्यासंख्यातभागहीन दो भागप्रमाण है ॥४१३-४१४॥ (इनकी अकसदृष्टि मूलमें दी है ।)

१तिरियगइ मणुयदोणिं य पंच य जाई सरीरणामतिर्यं ।

संठाणं संघयणं छल्लक ओरालियंगवंगो य ॥४१५॥

वण्ण-रस-गंध-फासं अगुरुयलहुयादि होंति चत्तारि ।

आदाउज्जोवं खलु विहायगई वि य तहा दोणि ॥४१६॥

तस-थावरादिजुयलं णव णिमिणं अजसकित्ति णिच्चं च ।

सागर वि-सत्तभागा पल्लासंखेज्जभागूणा ॥४१७॥

५८ ठिदी २

तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयं २ मनुष्यगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ एकेन्द्रियादिजातिपञ्चक ५ औदारिक-तैजस-कर्मणशरीरत्रय ३ समचतुरस्त्रादिसंस्थानपट्कं ६ वज्रवृषभनाराचादिसंहननपट्कं ६ औदारिका-ङ्गोपाङ्गं १ वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शचतुष्कं ४ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ आतपः १ उद्योतः १ प्रशस्तप्रशस्तविहायोगतिद्वयं २ त्रस-स्थावर २ सुभग-दुर्भग २ सुस्वर-दुस्वर २ शुभाशुभ २ सूक्ष्म-वादर २ पर्यासापर्यास २ स्थिरास्थिरा २ देयानादेय २ प्रत्येक-साधारण २ युगलनवक निर्माण १ अयशस्कीर्तिः १ नीचैर्गोत्र १ चेत्यष्टपञ्चाशत्प्रकृतीना जघन्यस्थितिवन्धः सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ । किम्भूतौ १ पत्योपमा-संख्यातभागहीनौ ॥४१५-४१७॥

तिर्यग्गतिद्विक, मनुष्यगतिद्विक एकेन्द्रियादि पौंच जातियाँ, औदारिक, तैजस, कर्मण ये तीन शरीर, छह संस्थान, छह संहनन, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु आदि चार, आतप, उद्योत, प्रशस्त और अप्रशस्त दोनो विहायोगतियों, त्रस-स्थावरादि नौ युगल,

निर्माण, अवशोर्ध्व और नीचगोत्र; इन अष्टावन प्रकृतियोंका जवन्य स्थितिबन्ध सागरोपमके सप्त भागोंमेंसे पञ्चसंख्यावभागीन दो भागप्रमाण है ॥४१५-४१७॥

उद्विप्तहृन्मसः तदा वि-सप्तभागा जहण्यादिदिव्यो ।

वेदवियद्यकस्म य पञ्चसंख्येजमागूणा ॥४१८॥

६ दिदी २८ सवर्गितं २०००

वैक्रियकृत्कृत्य नरकगति-तदानुपूर्व-देवगति-तदानुपूर्व-वैक्रियक-वैक्रियकज्ञेयाङ्गानां पञ्चां प्रकृतानां ६ जवन्यस्थितिबन्धः उद्वे-सागरोपमस्य सप्तभागाकृतस्य द्वि-सप्तभागा २। कथन्मृताः ?

पञ्चसंख्यावभागीनाः । सागरोपमाकृतस्य २८२० सवर्गितं सप्तभिर्गुणित्वा २००० पञ्च मन्त्रिताः ॥४१८॥

वैक्रियकृत्कृत्य (वैक्रियकृत्शरीर, वैक्रियक-अङ्गोराङ्ग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी) का जवन्य स्थितिबन्ध सागरोपमसप्तभागा पञ्चसंख्यावभागीन दो बंटे सप्त भाग २ प्रमाण है ॥४१८॥

वैक्रियकृत्कृत्का ज० स्थितिबन्ध २००० अर्थात् २८२० सागरोपम है ।

आहार्यं मरारं अंगोवंगं च णाम नित्ययरं ।

अंतोकोडाकोडी जहण्यादिव्यो दिदी होइ ॥४१९॥

आहार्यं, मरारं, अंगोवंगं, आहारका-आहारक-शरीराङ्गद्वयस्य तीर्थकरणस्य च जवन्यस्थितिबन्धः अन्त-कोडाकोडिसागरोपमभागे भवति ॥४१९॥

इति मूलेनारकस्थितिबन्धः उक्त्यो जवन्यश्च समाप्तः ।

आहारकशरीर, आहारक-अङ्गोराङ्ग और तीर्थकरणनामकर्मका जवन्य स्थितिबन्ध अन्त-कोडाकोडीसागरोपम है ॥४१९॥

विशेषार्थ—गायोत्र दोनो प्रकृतियोंका उक्त स्थितिबन्ध भी अन्तकोडाकोडी सागरोपम पहेले वक्तव्य आये हैं और यहाँ पर जवन्य स्थितिबन्ध भी उतना ही बतला रहे हैं, सो दोनों स्थितिबन्धोंको समान नहीं जानना । किन्तु उक्त स्थितिबन्धसे इनका ही जवन्य स्थितिबन्ध संख्यानुगुनित होन होता है । जैसा कि शानकचूर्णमें कहा है—“आहारकशरीर-आहारकाङ्गोवंग-नित्यकरणानां जहण्यादिदिव्यो अंतोकोडाकोडी । अन्तेसुहृन्मवाहा । उक्तोपमा मन्त्रेजगुर्दोषो ।” (शु० चू० पृ० २८) दूसरी विशेषता उक्त और जवन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंकी है । उक्त प्रकृतियोंमेंसे आहारककृत्का उक्तस्थित्व अस्मत्सम्बन्धके होता है; किन्तु जवन्य स्थितिबन्ध अविकरण गुणत्याजवर्ती क्षयके अर्थात् अन्त्युच्छिन्निके समय होता है । जैसा कि गो० कर्मकाण्डमें कहा है—“नित्यद्वारा-अंतोकोडाकोडी जहण्यादिदिव्यो । नवगो नगसगवन्वन्देज्जकाले हवे निम्नो ॥४२॥ तीर्थकर प्रकृतिका उक्त स्थितिबन्ध अविरतसम्यग्दृष्टि अनुगुणके होता है ।

1. सं० पृष्ठ ४, २३३ । 2. ४, २३४ ।

१ व उद्विप्त हृन्मसः । २ व २८२० ईदृक् पाठः

जैसा कि आगे गाथा नं० ४२७ तथा गो० कर्मकाण्डमे भी कहा है—“तित्थयर च मणुस्सो अवि-
रदसम्मो समज्जेइ ॥” गा० १३६ ।

इस प्रकार मूल और उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध समाप्त हुआ ।

अब मूल प्रकृतियोंके जघन्यादिवन्ध-सम्बन्धी सादि आदि भेदोंकी प्ररूपणा करते हैं—
[मूलगा० ५२] 'मूलद्विदिअजहण्णो सत्तण्हं वंधचदुवियप्पो य ।

सेसतिए दुवियप्पो आउचउक्के य दुवियप्पो' ॥४२०॥

इदि मूलपयडीसु । एत्तो उत्तरासु—

अथाजघन्यादीनां सम्भवत्साद्यादिभेदानाह—['मूलद्विदिअजहण्णो' इत्यादि ।] आयुर्वर्जितसप्तविध-
मूलप्रकृतीनां अजघन्यस्थितिबन्धः साद्यनादि-ध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विधो भवति ४ । शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्ट-
त्रितये साद्यध्रुवौ द्वौ भवतः २ । आयुःकर्मचतुष्के अजघन्यजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टेषु चतुर्विधेषु द्वौ विकल्पौ
साद्यध्रुवौ भवतः २ । इति मूलप्रकृतिषु जघन्यादिषु साद्यादयः ॥४२०॥

आयुर्वर्जितसप्तमूलप्रकृतीनां साद्यादियन्त्रम्—

प्रकृति ७	जघन्य	सादि	०	०	अध्रुव ३
प्रकृति ७	अजघन्य	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव ४
प्रकृति ७	उत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव ३
प्रकृति ७	अनुत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव ३

आयुषः साद्यादियन्त्रम्—

जघन्य १	सादि	०	०	अध्रुव
अजघन्य २	सादि	०	०	अध्रुव
अनुत्कृष्ट ३	सादि	०	०	अध्रुव
उत्कृष्ट ४	सादि	०	०	अध्रुव

आयुर्कर्मको छोड़कर शेष सात मूलप्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव, इन चारों ही प्रकारोंका होता है । उक्त सातों कर्मोंके शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध सादि और अध्रुव ऐसे दो प्रकारके होते हैं । आयुर्कर्मके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य, ये चारों ही प्रकारके स्थितिबन्ध भी सादि और अध्रुव ये दो प्रकारके होते हैं ॥४२०॥

विशेषार्थ—जिससे अन्य और कोई छोटा स्थितिबन्ध न हो, ऐसे सबसे छोटे स्थिति-
बन्धको जघन्य स्थितिबन्ध कहते हैं । इसको छोड़कर आगे एक समय अधिकसे लगाकर ऊपर
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तकके जितने भी शेष स्थितिबन्ध हैं, उन सबको अजघन्य स्थितिबन्ध कहते
हैं । जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तकके जितने भी स्थितिबन्ध हैं, वे सर्व जघन्य और अजघन्य
इन दोनों स्थितिबन्धोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं । जिससे अन्य अधिक स्थितिवाला और कोई स्थिति-
बन्ध न हो, ऐसे सर्वोत्कृष्ट स्थितिबन्धको उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहते हैं । इसको छोड़कर एक समय
कमसे लगाकर जघन्य स्थितिबन्ध तकके जितने भी शेष स्थितिबन्ध हैं, उन सबको अनुत्कृष्ट
स्थितिबन्ध कहते हैं । उत्कृष्टसे लगाकर जघन्य स्थितिबन्ध तकके जितने भी स्थितिबन्ध हैं,
वे सर्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट, इन दोनों ही स्थितिबन्धोंके अन्तर्गत आ जाते हैं इस अर्थपदके
अनुसार आयुके सिवाय शेष सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता
है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध

सूक्ष्मसाम्परायक्षपकका चरमसमयभावी स्थितिवन्ध है, सो वह सादि भी है और अध्रुव भी है। इसका कारण यह है कि क्षपकके सर्वस्तोक अजघन्य स्थितिवन्धसे जघन्य स्थितिवन्धको संक्रमण होनेपर जघन्य स्थितिवन्ध सादि हुआ। तत्पश्चात् वन्धका अभाव हो जानेपर वह अध्रुव कहलाया। सूक्ष्मसाम्परायक्षपकके अन्तिम समयमें होनेवाले इस जघन्य स्थितिवन्धके सिवाय जितना भी शेष स्थितिवन्ध है, वह अजघन्य स्थितिवन्ध है। सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकके अन्तिम समयके स्थितिवन्धसे सूक्ष्मसाम्पराय-उपशामकके अन्तिम समयका अजघन्य स्थितिवन्ध दुगुना है। उपशान्तकपायके उक्त छह कर्मोंका वन्ध नहीं होता है। पुनः वहाँसे गिरनेवालेके अजघन्य स्थितिवन्ध सादि है। जिसने कभी वन्धका अभाव नहीं किया, उसके अनादिवन्ध है। अभव्यके उक्त कर्मोंका जितना भी स्थितिवन्ध है, वह ध्रुववन्ध है, क्योंकि वह कभी भी न तो अपने वन्धका अभाव करेगा और न कभी जघन्यस्थितिवन्धको ही करेगा। भव्यजीवोंके उक्त कर्मोंका जितना भी स्थितिवन्ध है, वह अध्रुव है, क्योंकि वे नियमसे उसका वन्ध-विच्छेद करेगे। इसी प्रकार मोहनीय कर्मके सादि आदिकी प्ररूपणा जानना चाहिए। केवल इतना विशेष ज्ञातव्य है कि अनिवृत्तिक्षपकके अन्तिम समयमें मोहकर्मका सर्वजघन्य स्थितिवन्ध होता है। सातो कर्मोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिवन्ध सादि और अध्रुव होता है। इनमेंसे जघन्य स्थितिवन्धके सादि और अध्रुव होनेका कारण पहले कहा जा चुका है। सातो कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सर्वाधिक सक्तेशसे युक्त संज्ञी मिथ्यादृष्टिके पाया जाता है, सो वह सादि और अध्रुव है। जैसे किसी जीवने विवक्षित समयमें सातो कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध प्रारम्भ किया। वह एक समयसे लगाकर अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् नियमसे उसे छोड़कर अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध करेगा। इस प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध सादि हुआ। पुनः जघन्यसे एक अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् और उत्कर्षसे अनन्त कल्पकालके पश्चात् उसने उक्त कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध किया। इस प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध अध्रुव हो गया और उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सादि हो गया। इस प्रकार परिभ्रमण करते हुए उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धोंके करनेपर दोनों ही सादि और अध्रुव सिद्ध हो जाते हैं। सातो कर्मोंका भव्यजीवोंके अनादि ध्रुववन्ध संभव नहीं है। आयुकर्मके उत्कृष्टादि चारों स्थितिवन्ध अध्रुव होनेके कारण अर्थात् कादाचित्क बंधनेसे सादि और अध्रुव ही होते हैं।

इस प्रकार मूल प्रकृतियोंके सादि आदि भेदोंका निरूपण किया।

अब इससे आगे मूलशतककार उत्तरप्रकृतियोंके सादि आदिकी प्ररूपणा करते हैं—

[मूलगा० ५३] ^१अट्टारसपयडीणं अजहण्णो वंधचउवियप्पो दु।

सादियअध्रुवबंधो सेसतिण होइ वोहव्वो ॥४२१॥

णार्णतरायदसयं विदियावरणस्स होंति चत्तारि।

संजलणं च अट्टारस चदुधा अजहण्णबंधो सो ॥४२२॥

१९८।

अतः पर उत्तरप्रकृतिषु जघन्यसाद्यादिभेदानाह—['अट्टारस पयडीण' इत्यादि ।] ज्ञानावरणीय-पञ्चक ५ अन्तरायपञ्चक ५ चक्षुरचक्षुरवविकेवलदर्शनावरगचतुष्क ४ सज्जलनक्रोवादिचतुष्क ४ चेत्यष्टा-

दशाना प्रकृतीना अजघन्यबन्धः चतुर्विंशत्यं सायनादि-ध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विंशः ४ । शेषत्रिके जघन्यानु-
त्कृष्टोत्कृष्टबन्धत्रये साद्यध्रुवबन्धौ द्वौ इति ज्ञातव्यो भवति ॥४२१-४२२॥

स्थितिवन्धे अष्टादशोत्तरप्रकृतीनां साद्यादियन्त्रम्—

१८	जघन्य	सादि	०	०	अध्रुव
१८	अजघन्य	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव
१८	अनुत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव
१८	उत्कृष्ट	आदि	०	०	अध्रुव

आगे कही जानेवाली अष्टादह प्रकृतियोंका अजघन्य बन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है । उनके शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिवन्ध सादि और अध्रुव होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४२१॥

अब भाष्यगाथाकार उन अष्टादह प्रकृतियोंका नाम निर्देश करते हैं—

ज्ञानावरण और अन्तर्गायकी (५+५=) दश, दर्शनावरणकी चक्षुदर्शनावरणादि चार, तथा सज्जलन चार; इन अष्टादह प्रकृतियोंका जो अजघन्यबन्ध है वह चार प्रकारका होता है ॥४२२॥

अब मूलशतककार शेष उत्तरप्रकृतियोंके सादि आदिवन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०५४] 'उक्स्समणुकस्सं जहणमजहणओ य ठिदिबंधो ।

साइयअध्रुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं' ॥४२३॥

॥१०२॥

शेषाणा द्वयविक्रमप्रकृतीना १०२ उत्कृष्टस्थितिवन्धः साद्यध्रुवबन्धः, अनुत्कृष्टस्थितिवन्धः साद्य-
ध्रुवबन्धः, जघन्यस्थितिवन्धः साद्यध्रुवबन्धः, अजघन्यस्थितिवन्धः साद्यध्रुवबन्धो भवति ॥४२३॥

स्थितिवन्धे शेष १०२ प्रकृतीनां साद्यादियन्त्रम्—

१०२	जघन्य	सादि	०	०	अध्रुव
१०२	अजघन्य	सादि	०	०	अध्रुव
१०२	अनुत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव
१०२	उत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव

ऊपर कहीं गई अष्टादह प्रकृतियोंके सिवाय शेष जो १०२ बन्धप्रकृतियां हैं उनका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिवन्ध सादि और अध्रुव होता है ॥४२३॥

अब कर्मोंकी स्थितियोंमें शुभाशुभका निरूपण करनेके लिए उत्तर गाथासूत्र कहते हैं—

[मूलगा०५५] 'सच्चाओ वि ठिदीओ सुहासुहाणं पि होंति असुहाओ ।

माणस-तिरिक्ख-देवाउगं च मोत्तूण सेसाणं' ॥४२४॥

अथ स्थितिवन्धे स्वामित्वमाह—['सच्चाओ वि ठिदीओ' इत्यादि ।] मनुष्यतिर्यग्देवायूषि त्रीणि
सुक्त्वा शेषमर्वाशुभाशुमप्रकृतीना ११७ सर्वा स्थितयः ससारहेतुत्वादशुमा एव भवन्ति ॥४२४॥

मनुष्यायु, तिर्यगायु और देवायु, इन तीनोंको छोड़कर शेष जितनी भी शुभ और अशुभ प्रकृतियां हैं, उन सबकी स्थितियां अशुभ ही होती हैं ॥४२४॥

१. सं० पञ्चस० ४, २३७ । २. ४, २३८ ।

१. शतक० ५६ । २. शतक० ५७ ।

विशेषार्थ—आयुर्कर्मकी उक्त तीन प्रकृतियोंके सिवाय शेष ११७ प्रकृतियोंकी स्थितियोंको अशुभ कहनेका कारण संक्लेश है। अर्थात् परिणामोंमें संक्लेशकी वृद्धि होनेसे उक्त प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें वृद्धि होती है। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि प्रकृतियोंके शुभ-अशुभ या पुण्य-पापरूप जो दो विभाग किये गये हैं, वे अनुभागबन्धकी अपेक्षा किये गये हैं। किन्तु यहाँ-पर स्थितिवन्धकी अपेक्षा स्थितियोंके शुभ-अशुभका निर्णय किया जा रहा है। देवायु आदि तीन प्रकृतियोंकी स्थितियोंके शुभ कहनेका कारण विशुद्धि है। अर्थात् परिणामोंमें संक्लेशकी हानि और विशुद्धिकी वृद्धि होनेसे इन तीनों प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त एक कारण और भी है, जिससे कि तीर्थकर, उच्चगोत्र, यशस्कीर्ति आदि जैसी शुभ प्रकृतियोंको अशुभ कहा गया है और वह कारण यह है कि आयुत्रिकको छोड़कर शेष सभी प्रकृतियोंकी जैसे जैसे स्थितियाँ बढ़ती हैं, वैसे वैसे ही उनका अनुभाग घटता चला जाता है। किन्तु आयुत्रिकका क्रम इससे भिन्न है। उक्त तीनों आयुर्कर्मोंकी स्थितियाँ ज्यों-ज्यों बढ़ती हैं, त्यों-त्यों उनका अनुभाग भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है उक्त दोनों कारणोंसे आयुत्रिककी स्थितियोंको शुभ और शेष सर्वप्रकृतियोंकी स्थितियोंको अशुभ कहा गया है।

अब मूलशतककार इसी अर्थको स्वयं स्पष्ट करते हैं—

[मूलगा० ५६] 'सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण ।

विवरीओ दु जहण्णो आउगतिगं वज्ज सेसाणं ॥४२५॥

आउतिय गिरयाउं विणा ।

तिर्यग्मनुष्यदेवायुक्कत्रिकं वजयित्वा शेषाणां समदशोत्तरसर्वप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिवन्धः उत्कृष्टसंकलेश-परिणामेन भवति । तु पुनः तासां प्रकृतीनां ११७ जघन्यस्थितिवन्धः उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन भवति । तन्नयस्य तु उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन जघन्य तद्विपरीतेनोत्कृष्टमविशुद्धपरिणामेन च भवति ॥४२५॥

आयुत्रिकको छोड़कर शेष सर्व प्रकृतियोंकी स्थितियोंका उत्कृष्ट बन्ध उत्कृष्ट संक्लेशसे होता है और उनका जघन्य स्थितिवन्ध विपरीत अर्थात् संक्लेशके कम होनेसे होता है ॥४२५॥ यहाँपर आयुत्रिकसे अभिप्राय नरकायुके विना शेष तीन आयुर्कर्मोंसे है ।

[मूलगा० ५७] 'सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधगो भणिओ ।

आहारय-तित्थयरं देवाउगं च विमोत्तूणं ॥४२६॥

[मूलगा० ५८] 'देवाउगं पमत्तो+ आहारयमप्पमत्तविरदो दु ।

तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ ॥४२७॥

उत्कृष्टस्थितिवन्धकमाह—['सव्वुक्कस्स ठिदीण' इत्यादि ।] आहारकद्विकं २ तीर्थकरत्वं १ देवायुश्चेति १ चत्वारि मुक्त्वा शेष ११६ प्रकृतिसर्वोत्कृष्ट-स्थितियों मिच्छादिद्विरेव बन्धको भणितः । तच्चतुर्णां आहारकद्वयतीर्थकरत्वदेवायुपां तु सर्वोत्कृष्टस्थितियों सम्यग्द्विरेव बन्धको भवति । तत्रापि विशेषमाह— 'देवाउगं पमत्तो । इति पाठे देवायुर्लोकस्थितिक प्रमत्त एवाप्रमत्तगुणस्थानाभिमुखो बध्नाति । अप्रमत्ते तदव्युच्छिन्नावपि तत्र सातिशये तीव्रविशुद्धत्वेन तद्देवायुर्बन्धाजिरतिशये चोत्कृष्टासम्भवात् । तु पुनः आहारकद्वय उत्कृष्टस्थितिकं अप्रमत्तः प्रमत्तगुणस्थानाभिमुखः सखिल एव बध्नाति, आयुस्त्रयवजितानां

१ सं० पञ्चसं ४, २३६-२४३ । २. ४, २४४ । ३. ४, २४५ ।

१. शतक० ५८ । २. शतक० ५६ । ३. शतक० ६० ।

+ व. प्रती 'देवाउमप्पमत्तो' इति पाठः ।

उत्कृष्टस्थितिरुत्कृष्टसकलेनेत्युक्तत्वात् । तीर्थकरत्वं उत्कृष्टस्थितिक नरकगतिगमनाभिमुखमनुष्यामयत-
सम्यग्दृष्टिरेव बध्नाति ॥४२६-४२७॥

आहारकद्विक, तीर्थङ्कर और देवायुको छोड़कर शेष सर्व प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितियोंका बन्धक मिथ्यादृष्टि जीव कहा गया है । देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रमत्तसंयत, आहारकद्विकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अप्रमत्तसंयत और तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य करता है ॥४२६-४२७॥

विशेषार्थ—इन चारों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके विषयमें इतना विशेष जानना चाहिए—देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अप्रमत्तगुणस्थान चढ़नेके अभिमुख हुए अप्रमत्तसंयतके होता है । आहारकद्विकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रमत्तगुणस्थानमें आनेके लिए अभिमुख हुए अप्रमत्तसंयतके होता है । तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नरकगतिमें जानेको अभिमुख हुए असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता है ।

[मूलगा० ५६] ^१पणरसण्हं ठिदि-उकस्सं बंधंति मणुय-तेरिच्छा ।

छण्हं सुर-णेरइया ईसाणंता सुरा तिण्हं^१ ॥४२८॥

१५।६।३।

देवाउग वज्जेविय आउयतिय सुहुमणामऽपज्जत्तं ।

साधारण वियलिंदिय वेउव्वियछक्क पणरसं ॥४२९॥

११५।

तिरियगई ओरालं तस्स य तह अंगवंगणामं च ।

तिरियगइआणुपुन्वी असंपत्तं चेव उज्जोवं ॥४३०॥

छण्हं सुर-णेरइया ठिदिमुक्कस्सं ऋकरिंति पयडीणं ।

एइंदिय आयावं थावरणामं सुरा तिणिण ॥४३१॥

६।३।

शेषाणां ११६ उत्कृष्टस्थितिबन्धकमिथ्यादृष्टीन् गाथापञ्चकेनाऽऽह—[‘पणरसण्हं’ इत्यादि ।]
देवाऽऽयुक्क वर्जयित्वा नरक-तिर्यङ्मनुष्यायुष्यत्रय ३ सूचमनाम १ अपर्याप्त १ साधारण १ विकल्पत्रय ३
वैक्रियिकषट्क ६ चेति पञ्चदशप्रकृतीना १५ उत्कृष्टस्थितिबन्ध मनुष्यास्तिर्यङ्गश्च बध्नन्ति । तिर्यग्गतिः १
औदारिकशरीर १ औदारिकाङ्गोपाङ्ग १ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी असम्प्राप्तसृपाटिकासहनन १ उद्योत. १ चेति
पण्णां प्रकृतीना ६ उत्कृष्टस्थितिबन्ध सुर-नारकाः कुर्वन्ति बध्नन्तीत्यर्थः । एकेन्द्रियं १ भातप १ स्थावर-
नाम चेति तिसृणां प्रकृतीना ३ उत्कृष्टस्थितिबन्ध भवनत्रिक-सौधमैशानजा देवा बध्नन्ति ॥४२८-४३१॥

(वक्ष्यमाण) पन्द्रह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको मनुष्य और तिर्यञ्च बोधते हैं, छह प्रकृ-
तियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको देव-नारकी बोधते हैं और तीन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको ईशान
स्वर्ग तकके देव बोधते हैं ॥४२८॥

१. स० पञ्चस० ४, २४६-२४८ ।

१. शतक० ६१ ।

ऋक् किरिति ।

३३

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

देवायुको छोड़कर शेष तीन आयु, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलेन्द्रित्रिक और वैक्रियिकपट्टक, इन पन्द्रह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मनुष्य और संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च करते हैं। तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, तथा उसके अंगोपाङ्गनामकर्म, सृपाटिकासंहनन और उद्योत; इन छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध देव और नारकी करते हैं। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावरनामकर्म, इन तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ईशानकल्प तकके देव और देवी करते हैं ॥४२६-४३१॥

विशेषार्थ—उत्कृष्ट संक्लेशसे कुछ हीन, या नीचे उतरते संक्लेशको ईपन्मध्यम संक्लेश^१ करते हैं।

[मूलगा०६०] ^१सेसाणं चउगइया ठिदि-उक्स्सं †करिंति पयडीणं ।

उक्कस्ससंक्किलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि^१ ॥४३२॥

शेषाणां द्वानवतिसंख्योपेतप्रकृतीनां ६२ उत्कृष्टस्थितिबन्ध उत्कृष्टसंक्लेशेन परिणामेनाथवा ईपन्मध्यमसंक्लेशेन परिणामेन चातुर्गतिं मिथ्यादृष्टयो जीवा कुर्वन्ति बध्नन्ति ६२ ॥४३२॥

ऊपर कही हुई प्रकृतियोंके सिवाय जितनी भी शेष बानवै प्रकृतियों हैं, उनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चारों गतिके जीव उत्कृष्ट संक्लेशसे, अथवा ईपन्मध्यम संक्लेशसे करते हैं ॥४३२॥

अब मूलशतककार शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाले स्वामियोंका निर्देश करते हैं—

अब मूलशतककार जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६१] ^२आहारय-तिथयरं णियट्ठि अणियट्ठि पुरिस संजलणं ।

बंधइ सुहुमसराओ सायजसुच्चावरण विग्घं^३ ॥४३३॥

३।५। दसणावरणचउक्क १।७।

अथ जघन्यस्थितिबन्धस्वामिजीवान् गाथाद्वयेनाऽऽह—[‘आहारयतिथयर’ इत्यादि ।] आहारका-हारकाङ्गोपाङ्गद्वयस्य तीर्थकरत्वस्य च जघन्यस्थितिं अपूर्वकरणो निर्बध्नाति ३ । पुंवेद-चतुःसंज्वलनानां जघन्यस्थितिं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानस्थो मुनिर्बध्नाति ५ । सातवेदनीय १ यशस्कीर्त्तिं १ उच्चैर्गोत्रं १ ज्ञानावरणपञ्चक ५ दानाद्यन्तरायपञ्चक ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं ४ चेति सप्तदशप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्ध सूक्ष्मसाम्पराय एव बध्नाति १७ ॥४३३॥

आहारकद्विक और तीर्थङ्करनामकर्म; इन तीन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिको अपूर्वकरण-क्षपक; पुरुषवेद और संज्वलनचतुष्क इन पाँचकी जघन्य स्थितिको अनिवृत्तिकरण-क्षपक; तथा पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, सातवेदनीय, यशःकीर्त्ति और उच्चगोत्र; इन सत्तरह प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिको सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपक बंधते हैं ॥४३३॥

३।५। (ज्ञानावरण ५ + दर्शनावरण ४ + अन्तराय ५ + सा० १ य० १ उ० १) १७

१. स० पञ्चस० ४, २४६ । २. ४, २५०-२५१ ।

१. शतक० ६२ । २. शतक० ६३ ।

† च किरिति ।

१ उक्कोससंक्किलेसाओ ऊण-ऊणतराणि य ठिह्वबन्धज्झवसाणठाणाणि, तेहिपि तमेव उक्कस्सियं ठिह्वणिव्वत्तेति, ते ईसिमज्झिमा बुद्धति । शतकचूर्णि ।

[मूलगा० ६२] ^१छण्हमसणी ठिदिं कुणइ जहणमाउगाणमणयरो ।
सेसाणं पज्जत्तो बायर एइंदियविसुद्धो ॥४३४॥

[६।४।

देवगति देवगत्यानुपूर्व्य-नरकगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिकतदङ्गोपाङ्गानां घण्णा प्रकृतीनां जघन्यस्थिति-
बन्ध असंज्ञी एव बध्नाति ६ । आयुपा चतुर्णां जघन्यस्थितिं सञ्जी वा असञ्जी वा बध्नाति ४ । शेषाणां
पञ्चाशीतिप्रकृतीनां ८५ एकेन्द्रियो बादरः पर्याप्तको जीवो विशुद्धिं प्राप्तः सन् जघन्यस्थितिवन्ध
बध्नाति ॥४३४॥

वैक्रियिकषट्कका जघन्य स्थितिवन्ध असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च करता है । देवायु और
नरकायुका जघन्य स्थितिवन्ध कोई एक संज्ञी या असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव करता है । मनुष्य और
तिर्यगायुका जघन्य स्थितिवन्ध कर्मभूमियां मनुष्य या तिर्यञ्च करते हैं । शेष ८५ प्रकृतियोंका
जघन्य स्थितिवन्ध सर्वविशुद्ध, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव करता है ॥४३४॥

अव भाष्यगाथाकार उक्त कथन-गत विशेषताका स्पष्टीकरण करते हैं—

^२णिरयदुयस्स असणी पंचिंदियपुण्णओ ठिदिजहणं ।

जीवो करेइ जुत्तो तज्जोगो संकिलेसेण ॥४३५॥

तिस्से हवेज्ज हेऊ सो चेव य कुणइ सुरचउक्कस्स ।

णवरि विसेसो जाणे सव्वविसुद्धीए जुत्तो दु ॥४३६॥

^३पंचिदिओ असणी सणी वा कुणइ मंदठिदिबंधं ।

णिरयाउस्स य मिच्छो सव्वविसुद्धो दु पज्जत्तो ॥४३७॥

देवाउस्स य एवं तप्पाओग्गेण संकिलेसेण ।

जुत्तो णवरि य जीवो जहणवंधडिदिं कुणइ ॥४३८॥

^४मणुय-तिरियाउयस्स हि तिरिक्ख-मणुसाण कम्मभूमीणं ।

ठिदिवंधो दु जहणो तज्जोयासंकिलेसेण ॥४३९॥

^५सेणाणं पयडीणं जहणवंधडिदिं कुणइ ।

एइंदियपज्जत्तो सव्वविसुद्धो दु बायरो जीवो ॥४४०॥

सेसा ८५ ।

एव ठिदिवंधो समत्तो ।

वैक्रियिकषट्कस्य बन्धको विशेषयति—['णिरयदुगस्स असणी' इत्यादि ।] नारकद्विकस्य नरक-
गति-तदानुपूर्व्यद्वयस्य जघन्यस्थितिवन्ध पञ्चेन्द्रियः पर्याप्तकः असञ्जी जीवः करोति बध्नाति २ । स
कथम्भूतः ? असंज्ञी तद्योग्यसंक्लेशपरिणामेन युक्त संहितः तस्य नरकद्विकस्य जघन्यस्थितिवन्धकः । स
एवाऽसञ्जी पर्याप्तकः सुरचतुष्कस्य जघन्यस्थितिवन्धहेतुरसञ्जी पञ्चेन्द्रियः पर्याप्तको भवति—देवगति-तदानुपूर्व्य-
वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्गानां चतुर्णां जघन्यस्थितिवन्धकोऽसञ्जी पञ्चेन्द्रियपर्याप्तको भवति । नवरि विशेषः—

१. स० पञ्चस० ४. २५२ । २. ४, २५३-२५४ । ३ ४, २५५ । ४. ४, २५६ । ५ ४, २५७ ।

१. शतक० ६४ ।

एव ग ।

सर्वविशुद्धया युक्तः, इति विशेष त्वं जानीहि हे भन्य ! मिथ्यादृष्टिः पञ्चेन्द्रियः पर्याप्तकोऽसंज्ञी जीवः, अथवा संज्ञी जीवो वा नारकायुपो मन्दस्थितिवन्धं जघन्यस्थितिवन्धं करोति ब्रध्नाति । स कथम्भूतः ? असंज्ञी संज्ञी वा तत्प्रायोग्यं योऽसंज्ञी नरकायुपो जघन्यस्थितिवन्धकः सः सक्लिष्टपरिणत्या युक्तः । यः संज्ञी जीवः नरकायुपो जघन्यस्थितिवन्धकः स सर्वविशुद्धः सर्वविशुद्धया युक्तः । देवायुपश्च एव नरकायुप्योक्तवत् मिथ्या-दृष्टिः असंज्ञी पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकः संज्ञी पञ्चेन्द्रियपर्याप्तको वा देवायुपः जघन्यस्थितिवन्धं करोति । किञ्चि-न्नवरि विशेषः—योऽसंज्ञी मिथ्यादृष्टिः पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकः देवायुपो जघन्यस्थितिवन्धकः स विशुद्धि-परिणत्या युक्तः, यस्तु संज्ञी मिथ्यादृष्टिः पर्याप्तकः देवायुपो जघन्यस्थितिवन्धकः स तत्प्रायोग्यसक्लेशेन युक्तः, इति विशेष जानीहि । कर्मभूमिजानां तिर्यग्मनुष्याणां मनुष्यतिर्यगायुपोर्द्वयोर्जघन्यस्थितिवन्धो भवति । अन्तर्मुहूर्तकालः जघन्यस्थितिवन्धः । केन ? तद्योग्यसक्लेशेन । शेषाणां पञ्चाशीतिप्रकृतीनां ८५ जघन्यस्थितिवन्धं वादरैकेन्द्रियपर्याप्तको जीवस्तद्योग्यविशुद्ध एव करोति ब्रध्नाति ८५ ॥४३५-४४०॥

इति स्थितिवन्धः समाप्तः ।

नरकद्विक अर्थात् नरकगति और नरकगत्यानुपूर्विका जघन्यस्थितिवन्ध तद्-योग्य संक्लेशसे युक्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यञ्च जीव करता है । जो जीव नरकद्विकका जघन्य स्थितिवन्ध करता है, वही जीव ही सुरचतुष्क (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग) का भी जघन्य स्थितिवन्ध करता है । केवल इतनी बात विशेष जानना चाहिए कि सुरचतुष्कका बन्धक तद्-योग्य सर्वविशुद्धिसे युक्त होता है । नरकायुका जघन्य स्थितिवन्ध संक्लेशपरिणतिसे युक्त मिथ्यादृष्टि पर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अथवा सर्वविशुद्ध संज्ञी-पञ्चेन्द्रिय करता है । देवायुका जघन्य स्थितिवन्ध भी नरकायुके बन्धकके समान पर्याप्त, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी अथवा संज्ञी जीव करता है । केवल इतनी विशेषता ज्ञातव्य है कि यदि वह बन्धक असंज्ञी हो तो सर्वविशुद्ध और यदि संज्ञी हो, तो तद्-योग्य संक्लेशसे युक्त होना चाहिए । मनुष्यायु और तिर्यगायुका जघन्य स्थितिवन्ध तद्-योग्य संक्लेशसे युक्त कर्मभूमिके तिर्यञ्च और मनुष्योंके होता है । शेष बचीं ८५ प्रकृतियोंको जघन्य स्थितिवन्धको वादर, पर्याप्तक, सर्वविशुद्ध एकेन्द्रिय जीव करता है ॥४३५-४४०॥

इस प्रकार स्थितिवन्ध समाप्त हुआ ।

अब अनुभागवन्धका निरूपण करते हैं—

^१सादि अणादिय अद्वय पसत्थिदरपरुवणा तहा सण्णा ।

पच्चय-विवाय देसा सामित्तेणाह अणुभागो ॥४४१॥

८११४

अथ कर्मणां रसविशेषो विपाकरूपोऽनुभागस्तस्य बन्धभेदान् गाथाद्विचत्वारिंशता ग्राह—['सादि अणादिय अद्वय' इत्यादि ।] अनुभागवन्धश्चतुर्दशधा भवति । स कथम् ? साद्यादयोऽष्टौ इति । साद्यनु-भागवन्धः १ अनाद्यनुभागवन्धः २ ध्रुवानुभागवन्धः ३ अध्रुवानुभागवन्धः ४ जघन्यानुभागवन्धः ५ अजघन्यानुभागवन्धः ६ उत्कृष्टानुभागवन्धः ७ अनुत्कृष्टानुभागवन्धः ८ प्रशस्तप्ररूपणानुभागवन्धः ९ अप्रशस्तप्ररूपणानुभागवन्धः १० तथा देगघाति-सर्वघातिका इति सज्ञानुभागवन्धः ११ मिथ्यात्वादि-प्रधानप्रत्ययानुभागवन्धनिर्देशः १२ विपाकानुभागवन्धोपदेशः १३ स्वामित्वेन सहानुभागवन्धः १४ इति चतुर्दशानुभागवन्धान् आह ॥४४१॥

अनुभागबन्धके चौदह भेद हैं—वे इस प्रकार हैं—१ सादि-अनुभागबन्ध, २ अनादि-अनुभागबन्ध, ३ ध्रुव-अनुभागबन्ध, ४ अध्रुव-अनुभागबन्ध, ५ जघन्य-अनुभागबन्ध, ६ अजघन्य-अनुभागबन्ध, ७ उत्कृष्ट-अनुभागबन्ध, ८ अनुत्कृष्ट-अनुभागबन्ध, ९ प्रशस्तप्रकृति-अनुभागबन्ध, १० अप्रशस्तप्रकृति-अनुभागबन्ध, ११ देशघाति-सर्वघातिसंज्ञानुभागबन्ध, १२ प्रत्ययानुभागबन्ध, १३ विपाकानुभागबन्ध और १४ स्वामित्वेन सह अनुभागबन्ध । इन चौदह भेदोंकी अपेक्षा अनुभागबन्धका वर्णन किया जायगा ॥४४१॥

अब पहले मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि भेदोंमें संभव सादि आदि अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ६३] ^१घार्हणं अजहणो अणुक्स्सो वेयणीय-णामाणं ।

अजहणमणुक्स्सो गोए अणुभागबंधम्मि^१ ॥४४२॥

[मूलगा० ६४] ^२साह अणाह ध्रुव अध्रुवो बंधो दु मूलपयडीणं ।

सेसतिए दुवियप्पो आउचउक्के वि एमेव^२ ॥४४३॥

एत्थ च उक्क्स्तादीण साहयादयो भेदा ।

अथ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टाद्यनुभागानां साद्यादिसम्भवासम्भवौ गाथाद्वयेनाऽऽह—[‘घार्हणं अजहणो’ इत्यादि ।] घातिना ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीयान्तरायाणां मूलप्रकृतीनां चतुर्णां अजघन्यानुभागबन्धः स सादिवन्धः^१ अनादिवन्धः^२ ध्रुववन्धः^३ अध्रुववन्धः^४ इति अजघन्यानुभागबन्धः घातिना चतुर्विधो भवति ४ । वेदनीय-नामकर्मणोर्द्वयोरनुत्कृष्टानुभागबन्धः साद्यनादि-ध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुर्विधो भवति ४ । गोत्रकर्मणोऽनुभागबन्धे अजघन्यानुत्कृष्टानुभागबन्धौ साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुर्विधो ४ । शेषत्रिकेषु द्विविकल्पः घातिना शेषत्रिके इत्युक्ते जघन्योत्कृष्टा[नुत्कृष्टा]नुभागबन्धेषु साद्यध्रुवौ अनुभागबन्धौ द्वौ भवतः । वेदनीय-नामकर्मणोः शेषत्रिके इत्युक्ते उत्कृष्ट-जघन्याजघन्येषु साद्यध्रुवौ अनुभागबन्धौ भवतः ३ । गोत्रस्य जघन्योत्कृष्टानुभागबन्धौ द्वौ विकल्पो साद्यध्रुववन्धौ । आयुश्चतुष्के एव साद्यध्रुवौ-आयुश्चतुष्के जघन्या-जघन्योत्कृष्टवन्धाश्चत्वारः साद्यध्रुवानुभागबन्धा भवन्ति ॥४४२-४४३॥

अनुभागबन्धे आयुश्चतुष्कम्—

४	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
४	अज०	सादि	०	०	”
४	उत्कृ०	सादि	०	०	”
४	अनु०	सादि	०	०	”

अनुभागबन्धे घातिचतुष्कम्—

४	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
४	अज०	सादि	अनादि	ध्रुव	”
४	उत्कृ०	सादि	०	०	”
४	अनु०	सादि	०	०	”

अनुभागबन्धे नाम-वेद्ये—

२	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
२	अज०	सादि	०	०	”
२	उत्कृ०	सादि	०	०	”
२	अनु०	सादि	अनादि	ध्रुव	”

अनुभागबन्धे गोत्रम्—

१	जघ०	सादि	०	ध्रुव	अध्रुव
१	अज०	सादि	अनादि	”	”
१	उत्कृ०	सादि	०	”	”
१	अनु०	सादि	अनादि	”	”

मूल प्रकृतियोंमें जो चार घातिया कर्म हैं, उनका अजघन्यानुभागबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इन चारों ही प्रकारोंका होता है । वेदनीय और नामकर्मका अनुत्कृष्टानुभागबन्ध भी चारों प्रकारका होता है । तथा गोत्रकर्मका अजघन्यानुभागबन्ध और अनुत्कृष्टानुभागबन्ध भी चारों प्रकारका होता है । शेषत्रिक अर्थात् घातिया कर्मोंके अजघन्यानुभागबन्धके

१. स० पञ्चस० ४, २६२ । २. ४, २६३-२६४ ।

१. शतक० ६५ । २. शतक० ६६ ।

शेष जो जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध हैं, वे दो प्रकारके होते हैं—सादि अनुभाग-बन्ध और अध्रुव-अनुभागबन्ध । वेदनीय और नामकर्मके शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य-अनुभागबन्ध भी सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकारके होते हैं । गोत्रकर्मके जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी सादि और अध्रुवरूप दो-दो प्रकारके होते हैं । आयुर्कर्मके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य; ये चारों ही प्रकारके अनुभागबन्ध सादि और अध्रुव ये दो ही प्रकारके होते हैं ॥४४२-४४३॥

यहाँपर मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदिके सादि आदि बन्धोंका चित्र इस प्रकार है—

आयुर्कर्म						चार घातिया कर्म					
४	जघ०	सा०	०	०	अध्रु०	४	जघ०	सा०	०	०	अध्रु० २
४	अज०	सा०	०	०	अध्रु०	४	अज०	सा०	अना०	ध्रु०	अध्रु० ४
४	उत्कृ०	सा०	०	०	अध्रु०	५	उत्कृ०	सा०	०	०	अध्रु० २
४	अनु०	सा०	०	०	अध्रु०	४	अनु०	सा०	०	०	अध्रु० २
वेदनीय और नामकर्म						गोत्रकर्म					
२	जघ०	सा०	०	०	अध्रु० २	१	जघ०	सा०	०	०	अध्रु० २
२	अज०	सा०	०	०	अध्रु० २	१	अज०	सा०	अना०	ध्रु०	अध्रु० ४
२	उत्कृ०	सा०	०	०	अध्रु० २	१	उत्कृ०	सा०	०	०	अध्रु० २
२	अनु०	सा०	अना०	ध्रुव	अध्रु० ४	१	अनु०	सा०	अना०	ध्रु०	अध्रु० ४

अब मूलशतककार उत्तरप्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि भेदोंमें सम्भव सादि आदि अनुभागबन्धकी प्ररूपणा करते हैं—

[मूलगा० ६५] ^१अट्टण्हमणुक्कस्सो तेयालाणमजहण्णओ वंधो ।

णेओ दु चउवियप्पो सेसत्तिहोइ दुवियप्पो ॥४४४॥

दा४३

अथ ध्रुवासु प्रशस्ताप्रशस्तानामध्रुवाणां च जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानां सम्भवत्साद्यादिभेदान् गाथापञ्चकेनाऽऽह—['अट्टण्हमणुक्कस्सो' इत्यादि ।] अष्टानां प्रकृतीनां ८ अनुत्कृष्टानुभागबन्धः साद्यनादि-ध्रुवादध्रुवभेदेन चतुर्विकल्पः ४ । त्रिचत्वारिंशतः प्रकृतीनां ४३ अजघन्यानुभागबन्धः साद्यादिचतुर्भेदो ४ ज्ञेयः । शेषत्रिकेषु द्विविकल्पः साद्यध्रुवभेदाद् द्विप्रकारः दा४३ ॥४४४॥

वक्ष्यमाण आठ उत्तरप्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध, तथा तेतालीस उत्तरप्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध सादि आदि चारों प्रकारका जानना चाहिए । शेषत्रिक अर्थात् आठ प्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य और उत्कृष्ट, तथा तेतालीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभागबन्ध सादि और अध्रुव ऐसे दो-दो प्रकारके होते हैं ॥४४४॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त आठ और तेतालीस प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

^२तेजा कम्मसरीरं वण्णचउक्कं पसत्थमगुरुलहुं ।

णिमिणं च जाण अट्टसु चदुन्वियप्पो अणुक्कस्सो ॥४४५॥

णाणंतरायदसयं दंसणणव मिच्छ सोलस कसाया ।

उवघाय भय दुगुंछा वण्णचउक्कं च अप्पसत्थं च ॥४४६॥

तेयालं पयडीणं उक्कस्साईसु जाण दुवियप्पो ।

वंधो दु चदुवियप्पो अजहण्णो साइयाईया ॥४४७॥

तैजस-कार्मणशरीरद्वय २ प्रशस्तवर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शचतुष्क ४ अगुरुलघुकं १ निर्माण १ चेति ध्रुवप्रशस्तप्रकृतीनां अष्टाना अनुत्कृष्टानुभागवन्धः साद्यनादि-ध्रुवा-ध्रुवभेदाच्चतुर्धा भवति । शेषजघन्या-जघन्योत्कृष्टानुभागवन्धास्त्रयः साद्यध्रुवभेदाभ्यां द्विधा, एवं त्व जानीहि हे महानुभाव ! मतिज्ञानावरणादि-पञ्चकं ५ दानान्तरायादिपञ्चक ५ चक्षुर्दर्शनावरणादिनवक ९ मिथ्यात्व १ अनन्तानुबन्धप्रत्यारयान-प्रत्यारयान-सञ्चलनकोध मान-माया-लोभा पोढश कपायाः १६ उपघातः १ भयं १ जुगुप्सा १ वर्णचतुष्कमप्रशस्त ४ चेति ध्रुवाप्रशस्ताना त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ४३ उत्कृष्टानुत्कृष्ट-जघन्यानुभागवन्धास्त्रयः द्विविकल्पाः साद्यध्रुवभेदाभ्यां द्विविधा इति त्व जानीहि भो सिद्धान्तवेदिन् ! तासां च प्रकृतीना ४३ अजघन्यानुभागवन्धश्चतुर्विकल्पः साद्यनादि-ध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुःप्रकारो भवति ॥४४७-४४७॥

तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण, इन आठ प्रकृतियों-का अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध चारों प्रकारका जानना चाहिए । ज्ञानावरणकी पॉच, अन्तरायकी पॉच, दर्शनावरणकी नौ, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, उपघात, भय, जुगुप्सा और अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क; इन तेतालीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभागवन्ध सादि और अध्रुव दो प्रकारका है । तथा इन्हींका अजघन्य अनुभागवन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है ॥४४५-४४७॥

[मूलगा० ६६] ^१उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णगो दु अणुभागो ।

सादिय अद्धुववंधो पयडीणं होइ सेसाणं ॥४४८॥

।७३।

जेपाणा अध्रुवत्रिससतेः प्रकृतीना ७३ उत्कृष्टानुभागवन्धः साद्यध्रुवभेदाभ्यां द्विविधः । अनुत्कृष्टानु-भागवन्ध साद्यध्रुवाभ्यां अजघन्यानुभागवन्धः साद्यध्रुवभेदाभ्यां द्वेधा भवति ॥४४८॥

अनुभागवन्धे ८ प्रकृतीनाम्—					अनुभागवन्धे ४३ प्रकृतीनाम्—				
८	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव	४३	जघ०	०	अध्रुव
८	अज०	मादि	०	०	अध्रुव	४३	अज०	अना०	अध्रुव
८	उत्क०	सादि	०	०	अध्रुव	४३	उत्क०	०	अध्रुव
८	अनु०	मादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव	४३	अनु०	०	अध्रुव

अनुभागवन्धे ७३ प्रकृतीनाम्—

७३	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
७३	अज०	सादि	०	०	अध्रुव
७३	उत्क०	सादि	०	०	अध्रुव
७३	अनु०	सादि	०	०	अध्रुव

शेष ७३ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्ध सादि और अध्रुव ऐसे दो प्रकारका होता है ॥४४८॥

1. सं० पञ्चस० ४, २६६ ।

१ शतक० ६८ ।

उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागोके सादि आदि बन्धोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

८ प्रकृतियोंके सादि आदि बन्ध ४३ प्रकृतियोंके सादि आदि बन्ध ७३ प्रकृतियोंके सादि आदि बन्ध
 जघ० सादि ० ० अधु० २ जघ० सादि ० ध्रु० अधु० २ जघ० सादि ० ० अधु० २
 अज० सादि ० ० अधु० २ अज० सादि अना० ध्रुव ,, ४ अज० सादि ० ० अधु० २
 उत्कृ० सादि ० ० अधु० २ उत्कृ० सादि ० ध्रु० ,, २ उत्कृ० सादि ० ० अधु० २
 अनु० सादि अना० ध्रुव अधु० ४ अनु० सादि ० ध्रु० ,, २ अनु० सादि ० ० अधु० २

इस प्रकार उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि चारके सादि-आदि चार प्रकारके

अनुभागबन्धका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूल और उत्तरप्रकृतियोंके स्वमुख-परमुख विपाकरूप अनुभागका निरूपण करते हैं—

^१पञ्चति मूलपयडी पूर्णं समुहेण सन्वजीवाणं ।

समुहेण परमुहेण य मोहाउविवज्जिया सेसा ॥४४६॥

एत्थ सेसा उत्तरपयडीओ वुच्चति ।

अथ स्वमुख-परमुखविपाकरूपोऽनुभागः मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च गाथाद्वयेन कथ्यते—
 [‘पञ्चति मूलपयडी’ इत्यादि ।] नून निश्चयेन सर्वमूलप्रकृतयः ज्ञानावरणादयः ८ स्वमुखेन स्वोदयेन सर्वेषां जीवानां पाचयन्ति उदय यान्ति सर्वेषां जीवानां सर्वमूलप्रकृतीनां ८ अनुभागो विपाकरूपः आत्मनि फलदान स्वमुखेन भवति । कथम् ? मतिज्ञानावरण मतिज्ञानरूपेणैव [उदित] भवति । मोहनीयायुः-प्रकृतिवर्जिता उत्तरप्रकृतयः स्वमुखेन स्वोदयेन, परमुखेन परोदयेन पाचयन्ति उदयं यान्ति अनुभवन्ति । उत्तरप्रकृतयस्तुल्यजातीया अन्योदयेन स्वोदयेन वा पच्यन्ते । तथा गोमट्टसारे सर्वासा मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनानुभवो भवति [इत्युक्तम्] ॥४४६॥

मूल प्रकृतियों नियमसे सर्व जीवोके स्वमुख द्वारा ही पचती है, अर्थात् स्वोदय द्वारा ही विपाकको प्राप्त होती हैं । किन्तु मोह और आयुकर्मको छोड़कर शेष उत्तरप्रकृतियों स्वमुखसे भी विपाकको प्राप्त होती हैं और परमुखसे भी विपाकको प्राप्त होती हैं अर्थात् फल देती हैं ॥४४६॥

यहाँ गाथोक्त ‘शेष’ पदसे उत्तरप्रकृतियों कही गई हैं ।

किन्तु आयुकर्मके चारों तथा मोहकर्मके दोनों मूलभेद पर मुखसे विपाकको प्राप्त नहीं होते, इस बातका निरूपण करते हैं—

^२पञ्चइ णो मणुयाऊ णिरयाउमुहेण समयणिदिट्ठं ।

तह चरियमोहणीयं दंसणमोहेण संजुत्तं ॥४५०॥

उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीनां परमुखेनापि अनुभवो भवति । परन्तु आयुःकर्म-दर्शनमोह-चारित्र-मोहान् वर्जयित्वा । तदाह—[‘पञ्चइ णो मणुयाऊ’ इत्यादि ।] मनुष्यायुः नारकायुष्योदयमुखेन न पच्यते, नोदय याति । तथाहि—यदा जीवो मनुष्यायुष्य भुङ्क्ते, तदा नरकायुस्तिर्यगायुर्देवायुर्वा न भुङ्क्ते । यदा नरकायुर्जीवो भुङ्क्ते, तदा तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्वा न भुङ्क्ते तेनायुःप्रकृतयस्तुल्यजातीयाः अपि स्वमुखेनैव भुज्यन्ते, न तु परमुखेनेति समये निर्दिष्टं जिनसूत्रे जिनैरुक्तम् । चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीयेन युक्त न पच्यते नानुभवति । यथा दर्शनमोह भुज्जान् पुमान् चारित्रमोह न भुङ्क्ते । चारित्रमोह भुज्जान् पुमान् दर्शनमोह न भुङ्क्ते । एव तिसृणां प्रकृतीनां तुल्यजातीयानामपि परमुखेनानुभवो न भवति ॥४५०॥

इति स्वमुख-परमुखविपाकानुभागबन्धः समाप्तः ।

भुज्यमान मनुष्यायु-नरकायुमुखसे विपाकको प्राप्त नहीं होती है; ऐसा परमागममे कहा गया है। अर्थात् कोई भी विवक्षित आयु किसी भी अन्य आयुके रूपसे फल नहीं देती है। तथा चारित्रमोहनीयकर्म भी दर्शनमोहनीयसे संयुक्त होकर अर्थात् दर्शनमोहके रूपसे फल नहीं देता है। इसी प्रकार दर्शनमोहनीयकर्म भी चारित्रमोहनीयके मुखसे फल नहीं देता है ॥४५०॥

इस प्रकार स्वमुख-परमुख विपाकानुभागबन्ध समाप्त हुआ।

अब प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्धका वर्णन करते हैं—

[मूलगा०६७] ^१सुहृपयडीण विसोही तिव्वं असुहाण संकिलेसेण ।
विवरीए दु जहण्णो अणुभाओ सन्वपयडीणं ॥४५१॥

१११।

अथ प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतीनामनुभागबन्ध कथ्यते—['सुहृपयडीण विसोही' इत्यादि ।] शुभप्रकृतीनां सातादीनां ४२ विशुद्धपरिणामेन तीव्रानुभागो भवति। असाताद्यप्रशस्तानां ८२ प्रकृतीनां संक्लेशेन परिणामेन तीव्रानुभागो भवति। विपरीतेन संक्लेशपरिणामेन प्रशस्तानां प्रकृतीनां जघन्यानुभागो भवति। विशुद्धपरिणामेनाप्रशस्तानां जघन्यानुभागो भवति ॥४५१॥

सातावेदनीय आदिक शुभप्रकृतियोंका अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामोंसे तीव्र अर्थात् उत्कृष्ट होता है। असातावेदनीय आदिक अशुभ प्रकृतियोंका अनुभाग बन्ध संक्लेश परिणामोंसे उत्कृष्ट होता है। तथा इससे विपरीत परिणामोंमें सर्व प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध होता है। अर्थात् शुभ प्रकृतियोंका संक्लेशसे और अशुभप्रकृतियोंका विशुद्धिसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है ॥४५१॥

अब तीव्र अनुभागबन्धके स्वामीका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६८] ^२बायालं पि पसत्था विसोहिगुण उक्कडस्स तिव्वाओ ।
वासीय अप्पसत्था मिच्छुक्कड संकिलिडुस्स^३ ॥४५२॥

४२।८२।

सातादिप्रशस्ता द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः ४२ विशुद्धगुणेनोत्कटस्य जीवस्य तीव्रानुभागो [गा] भवति [न्ति] ४२। असातादिचतुर्वर्णोपेताप्रशस्ताः द्वयशीतिः प्रकृतयः ८२ मिथ्यादृष्ट्युत्कटस्य संक्लेशस्य जीवस्य तीव्रानुभागो [गा] भवति [न्ति] ॥४५२॥

जो व्यालीस प्रशस्त प्रकृतियों हैं। उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्धिगुणकी उत्कटतावाले जीवके होता है। तथा व्यासी जो अप्रशस्त प्रकृतियों हैं, उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥४५२॥

अब प्रशस्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

^३सार्यं तिण्णेवाऊग मणुयदुयं देवदुव य जाणाहि ।

पंचसरीरं पंचिदियं च संठाणमाईयं ॥४५३॥

तिण्ण य अंगोवंगं पसत्थविहायगइ आइसंधयणं ।

वण्णचउक्कं अगुरुय परघादुस्सासउज्जोवं ॥४५४॥

१. स० पञ्चस० ४, २७३। २ ४, २७४। ३ ४, २७५-२७७।

१. शतक० ६६। २ शतक० ७०।

❧व माईया।

आदाव तसचउक्कं थिर सुह सुभगं च सुस्सरं णिमिणं ।

आदेज्जं जसकित्ती तित्थयरं उच्च *बादालं ॥४५५॥

ताः प्रशस्ताः का, अप्रशस्ताः का इति चेद् गायसप्तकेनाऽऽह—['साद् तिण्णोवाउग' इत्यादि ।] सातावेदनीय तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्देवायुश्चितय ३ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वय २ देवगति-तदानुपूर्व्यद्वय २ औदारिक-वैक्रियिकाहारक तैजस-कर्मणकशरीराणि पञ्च ५ पञ्चेन्द्रियजातिः १ समचतुरस्रसंस्थान १ औदारिक-वैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गानि ३ प्रशस्तविहायोगतिः १ वज्रवृषभनाराचसंहनन १ प्रशस्तवर्णः प्रशस्तरसः प्रशस्तगन्धः प्रशस्तस्पर्श इति प्रशस्तवर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुः १ परघातः १ उच्छ्वासः १ उद्योतः १ आतपः १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येकशरीरमिति त्रसचतुष्कं ४ स्थिरः १ शुभः १ सुभगं १ सुस्वरः १ निर्माणं १ आदेय १ यशस्कीर्तिः १ तीर्थकरत्व १ उच्चैर्गोत्र १ मिति द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः प्रशस्ताः शुभाः पुण्यरूपा भवन्ति ४२ । 'सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्य' मिति परमागमसूत्रवचनात् पुण्यमिति ॥४५३-४५५॥

सातावेदनीय, नरकायुके विना शेष तीन आयु, मनुष्यद्विक, देवद्विक, पाँच शरीर, पञ्चेन्द्रियजाति, आदिका समचतुरस्रसंस्थान, तीनो अङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त विहायोगति, आदिका वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्तवर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, आतप, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, निर्माण, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थकर और उच्चगोत्र; ये व्यालीस प्रशस्त, शुभ या पुण्यप्रकृतियाँ हैं ॥४५३-४५५॥

अव अप्रशस्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

१णाणंतरायदसयं दंसणणव मोहणीय छव्वीसं ।

णिरयगइ तिरियदोणिण य तेसिं तह आणुपुव्वीयं ॥४५६॥

संठाणं पंचेव य संघयणं चेव होंति पंचेव ।

वण्णचउक्कं अपसत्थविहायगई य उवघायं ॥४५७॥

एइंदिय-णिरयाऊ तिणिण य वियल्लिंदियं असायं च ।

अप्पज्जत्तं थावर सुहुमं साहारणं णाम ॥४५८॥

दुव्वभग दुस्सरमजसं अणाइज्जं चेव अधिरमसुहं च ।

णीचागोदं च तहा वासीदी अप्पसत्थं तु ॥४५९॥

पञ्च ज्ञानावरणानि अन्तरायपञ्चकम् ५ नव दर्शनावरणानि ९ पद्विंशतिर्मोहनीयानि २६ नरकगति-तिर्यगतिद्वयं २ तद्द्वयस्यानुपूर्व्यद्वय २ प्रथमसंस्थानवर्जितसंस्थानपञ्चकं ५ प्रथमसंहननवर्जितसंहननपञ्चकं ५ अप्रशस्तवर्णचतुष्क ४ अप्रशस्तविहायोगतिः १ उपघातः १ एकेन्द्रियं १ नारकायुष्य १ विकलत्रय ३ असातावेदनीय १ अपर्याप्त १ स्थावर १ सूचमं १ साधारणं नाम १ दुर्भगं १ दुःस्वरः १ अयशः १ आदेय १ अस्थिर १ अशुभ १ नीचैर्गोत्र १ चेति द्व्यशीतिः अप्रशस्ताः अशुभाः पापरूपाः प्रकृतयः ८२ । 'अतोऽन्यत् पाप' मिति वचनात्पापरूपाः ॥४५६-४५९॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी नौ, मोहनीयकी छव्वीस, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यगति, तिर्यगत्यानुपूर्वी, आदिके विना शेष पाँचो संस्थान, आदिके विना

*द् वायाल ।

१ स० पञ्चम० ४, २८१-२८४ ।

१ तत्त्वार्थसू० अ० ८ सू० २५ । २ तत्त्वार्थसू० ८, २६ ।

शेष पौंचों संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, उपघात, एकेन्द्रियजाति, नरकायु, तीन विकलेन्द्रिय जातियाँ, असातावेदनीय, अपर्याप्त, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, दुर्भग, दुःस्वर, अयशःकीर्ति, अनादेय, अस्थिर, अशुभ और नीचगोत्र; ये व्यासी अप्रशस्त, अशुभ या पाप-प्रकृतियों हैं ॥ ४५६-४५६॥

अब उत्तरप्रकृतियोंमेंसे पहले प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाले जीवोंका विशेष वर्णन करते हैं—

[मूलगा०६६]^१ आदाओ उज्जोयं माणुस-तिरियाउगं पसत्थाओ ।

मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्माइड्डीसु सेसाओ ॥४६०॥

अथोत्कृष्टानुभागबन्धकान् जीवान् गाथासप्तकेनाऽऽह—['आदाओ उज्जोयं' इत्यादि ।] प्रशस्त-प्रकृतिषु ४२ आतपः १ उद्योतः १ मानव-तिर्यगायुपी द्वे २ चेति चतस्रः अमूः प्रशस्ताः प्रकृतयः विशुद्ध-मिथ्यादृष्टेस्तीवानुभागा भवन्ति । शेषाः साताघटान्निशत्प्रशस्ताः प्रकृतयः ३८ विशुद्धसम्यग्दृष्टेस्तीवानुभागा भवन्ति ॥४६०॥

प्रशस्तप्रकृतियोंमें जो आतप, उद्योत, मनुष्यायु और तिर्यगायु, ये चार प्रकृतियों हैं, उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि जीवके होता है । शेष अड़तीस जो पुण्यप्रकृतियाँ हैं, उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है ॥४६०॥

^२मणुयदुयं ओरालियदुगं च तह चेव आइसंधयणं ।

णिरय-सुरा सद्विड्डी करिंति तिव्वं विसुद्धीए ॥४६१॥

सम्यग्दृष्ट्युक्ताष्टान्निगन्मध्ये मनुष्यद्विक २ औदारिकद्विक २ वज्रवृषभनारासहनन चेति प्रकृतिपञ्चक ५ अनन्तानुबन्धिविसयोजकानिवृत्तिकरणचरमसमयविशुद्धसुर-नारकासयतसम्यग्दृष्टयस्तीवानुभाग कुर्वन्ति सम्यग्दृष्टयो देव-नारकाः पञ्चप्रकृतीनां तीवानुभागबन्ध कुर्वन्तीत्यर्थः । कथा ! विशुद्धया विशुद्ध-परिणामेन ॥४६१॥

मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और आदिका संहनन; इन पौंचों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध विशुद्धिसे युक्त सम्यग्दृष्टि देव और नारकी करते हैं ॥४६१॥

[मूलगा०७०] ^३देवाउमप्पमत्तो वायालाओ पसत्थाओ ।

तत्तो सेसा पयड्डी तिव्वं खवया करिंति बत्तीसं ॥४६२॥

४।५।१।३२ सन्वे मिलिया ४२ ।

अप्रमत्तो मुनिर्देवायुष्य तीवानुभागबन्ध करोति । ततो द्वाचत्वारिंशत्प्रशस्तेभ्यः शेषा द्वात्रिंशत्प्रकृ-तीना तीवानुभागान् क्षपकश्रेण्यारूढा क्षपकाः कुर्वन्ति ३२ । ताः का द्वात्रिंशदिति चेदाह—अपूर्वकरण-क्षपकस्योपघातवर्जिते पष्ठभागव्युच्छित्तित्रिंशति सूक्ष्मसाम्परायस्योच्चैर्गोत्रयशस्कीर्त्ति सातावेदनीयेषु मिलि-तेषु ताः अवशेषद्वात्रिंशत्प्रकृतयो भवन्ति ३२ । प्रशस्ता ४।५।१।३२ । सर्वा मिलिताः ४२ ॥४६२॥

१ स० पञ्चस० ४, २७८ । २ ४, २७९ । ३ ४, २८० ।

१ शतक० ७१ । पर तन्नेट्क् पाठः—

देवाउमप्पमत्तो तिव्वं खवया करिंति बत्तीस ।

बंधति तिरिया मणुया एक्कारस मिच्छभावेण ॥

† व पसत्थाओ ।

देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धको अप्रमत्तसंयत करता है। उक्त दशके विना व्यालीस प्रकृतियोंमें शेष बचीं जो बत्तीस प्रकृतियों हैं उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिवाले जीव करते हैं। ॥४६२॥

$$४ + ५ + १ = १० । ४२ - १० = ३२ । ३२ + १० = ४२ ।$$

अब अप्रशस्तप्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाले जीवोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०७१] ^१तिरि-णर मिच्छेयारह सुरमिच्छो तिणि जयइ पयडीओ ।

उज्जोवं तमतमगा सुर-णेरइया हवे तिणि ^१ ॥४६३॥

११।३।१।३

तिण्णेवाउयसुहुमं साहारण-वि-ति-चउरिदियं अपज्जत्तं ।

णिरयदुयं वंधंति य तिरिय-मणुया मिच्छभावा य ॥४६४॥

तिण्णेवाउगं, देवाउगं विणा ।

^२एइंदियआयावं थावरणामं च देवमिच्छम्मि ।

सुर-णिरयाणं मिच्छे तिरियगइदुगं असंपत्तं ॥४६५॥

तीव्रानुभागबन्धे स्वामित्वं गाथाचतुष्केनाह—[‘तिरि-णर-मिच्छेयारह’ इत्यादि ।] तिर्यङ्मनुष्या मिथ्यादृष्टो विशुद्धभावा एकादश प्रकृतीर्जयन्ति विन्वन्ति तीव्रानुभागबन्ध कुर्वन्तीत्यर्थः । ताः का इति [चेत्] ‘तिण्णेवाउय’ इत्यादि । नारकतिर्यङ्मनुष्यायुष्यं ३ सूक्ष्मनाम १ साधारणं १ द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-जातयः ३ अपर्याप्तं १ नरकगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ चेत्येकादशप्रकृतितीव्रानुभागबन्धान् तिर्यङ्मनुष्या मिथ्याभावा बध्नन्ति कुर्वन्ति । सुरमिथ्यादृष्टिस्तलः प्रकृतीस्तीव्रानुभागा बध्नाति । ताः काः ? एकेन्द्रियत्व १ आतपः १ स्थावरनाम १ एकेन्द्रियस्थावरद्वय संकिल्लो देवो मिथ्यादृष्टिः ३ आतपप्रकृतिक विशुद्धो मिथ्या-दृष्टिदेवः सुरमिथ्यादृष्टिस्थयोत्कृष्टानुभागबन्ध करोति ३ । तमस्तमकाः सप्तमनरकोद्भवा नारका उपशम-सम्यक्त्वामिमुखमिथ्यादृष्टिविशुद्धनारका उद्योत तीव्रानुभागं बध्नन्ति । कथम् ? अतिविशुद्धानां तद्वन्ध-त्वात् १ । सुरनारकास्तलः प्रकृतीस्तीव्रानुभागाः कुर्वन्ति ३ । ताः काः ? तिर्यङ्गति-तिर्यङ्गत्यानुपूर्व्यद्वयं २ असम्प्राप्तसृष्टिकासहननमेवं प्रकृतित्रयोत्कृष्टानुभागबन्धो मिथ्यात्वे मिथ्यादृष्टिदेव नारकाणां भवति ३ ॥४६३-४६५॥

आगे कही जानेवाली ग्यारह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यच करते हैं। वक्ष्यमाण तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि देव करते हैं। तमस्तमक अर्थात् महातमःप्रभानामक सातवीं पृथ्वीके उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि नारकी उद्योतप्रकृतिका तीव्र अनुभागबन्ध करते हैं। वक्ष्यमाण तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध मिथ्यादृष्टि देव और नारकी करते हैं ॥४६३॥

११।३।१।३

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नाम निर्देश करते हैं—

देवायुके विना शेष तीन आयु, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय-जाति, और नरकद्विक, इन ग्यारह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागको मिथ्यात्वभावसे युक्त मनुष्य

1. स० पञ्चस० ४, २८५-२८६ । 2. ४, २८७ ।

१ शतक० ७३ । परं तत्र प्रथमचरणे पाठोऽयम्—‘पंच सुरसम्मदिट्ठि’ ।

और तिर्यच बाँधते हैं। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरनामकर्म, इन तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि देवमे होता है। तिर्यगगतिद्विक और सृपाटिकासंहनन, इन तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि देव और नारकियोंके होता है ॥४६४-४६५॥

[मूलगा०७२]^१सेसाणं चउगइया तिव्वाणुभायं करिंति पयडीणं ।

मिच्छाइड्डी णियमा तिव्वकसाउकडा जीवा ॥४६६॥

।६४।

शेषाणा अष्टपट्टेः प्रकृतीना चातुर्गतिना मिथ्यादृष्ट्यस्तीव्रकपायोत्कृष्टा जीवा. संक्लिष्टास्तीवानुभाग उत्कृष्टानुभागबन्ध कुर्वन्ति बध्नन्ति नियमात् । अप्रशस्ताना अष्टपट्टेः ६८ उत्कृष्टानुभागबन्धान् चातुर्गतिक-संक्लिष्टा कुर्वन्तीत्यर्थः ॥४६६॥

शेष वची प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागबन्धको तीव्र कषायसे उत्कट चारो गतिवाले मिथ्या-दृष्टि जीव नियमसे करते हैं ॥४६६॥

विशेषार्थ—प्रस्तुत गाथामे उपरि-निर्दिष्ट प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष वची प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागबन्ध करनेवाले जीवोंका निर्देश किया गया है। यद्यपि गाथामे उन शेष प्रकृतियोंकी संख्याका कोई निर्देश नहीं किया गया है, तथापि अनेक प्रतियोंमें गाथाके पश्चात् शेष पदसे सूचित की गई संख्याके निर्देशार्थ '६४' का अंक दिया हुआ है। किन्तु संस्कृत टीकाकारने 'शेष' का अर्थ 'अष्टपट्टे. प्रकृतीनां' कहकर स्पष्ट शब्दोंमें ६८ प्रकृतियोंका निर्देश किया है और संस्कृत-पञ्चसंग्रहकारने भी 'प्रकृतीनामष्टपट्टि' (सं० पञ्चसं० ४, २८६) कहकर ६८ प्रकृतियोंको ही कहा है। दिल्ली भण्डारकी मूलप्रतिमें भी इस गाथाके अन्तमें ६८ का अंक दिया हुआ है, जिससे संस्कृत पञ्चसंग्रहकार और संस्कृत टीकाकारके द्वारा किये गये अर्थकी पुष्टि होती है। अब विचारनेकी बात यह है कि ६४ संख्या ठीक है, अथवा ६८। यह प्रश्न संस्कृत पञ्चसंग्रहकारके मनमे भी उठा है और सम्भवतः इसीलिए उन्होंने इसका समाधान भी उक्त श्लोकके आगे दिये गये तीन श्लोकों-द्वारा किया है, जो कि इस प्रकार हैं—

तिर्यगायुर्मनुष्यायुरातपोद्योतलक्षणम् ।

प्रशस्तासु पुरा दत्त प्रकृतीना चतुष्टयम् ॥२६०॥

तीवानुभागबन्धासु मध्ये यद्यपि तत्त्वतः ।

सम्भवापेक्षया भूयो मिथ्यादृष्टे. प्रदीयते ॥२६१॥

अप्रशस्त तथाप्येतत्केवल व्यपनीयते ।

पदशीतेरपर्नाते द्वयशीतिर्जायते पुनः ॥२६२॥

इन श्लोकोंका भाव यह है कि तिर्यगायु, मनुष्यायु, आतप और उद्योत; ये चार प्रकृतियों व्यालिस प्रशस्त प्रकृतियोंमें पहले गिनाई गई हैं और वे तत्त्वतः प्रशस्त ही हैं, किन्तु यहाँपर तीवानुभागबन्धवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंके बीचमें मिथ्यादृष्टिके बन्ध सम्भव होनेसे उन्हें फिर भी गिनाया गया है, सो उनका अप्रशस्तपना दिखलानेके लिए ऐसा नहीं किया गया है; किन्तु मिथ्यादृष्टि देव आतपप्रकृतिका, सप्तम नरकका मिथ्यादृष्टि नारकी उद्योतका और मनुष्य तिर्यच मिथ्यादृष्टि मनुष्यायु और तिर्यगायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, केवल यह दिखलानेके लिए ही यहाँपर उनका पुनः निर्देश किया गया है। इसलिए उन चारको छोड़कर ८२ प्रकृतियाँ ही अप्रशस्त जानना चाहिए ।

1 सं० पञ्चसं० ४, २८८-२८९ ।

१ शतक० ७४ ।

इम उपर्युक्त कथनका निष्कर्ष यह निकला कि प्रकृत गाथाके पूर्व 'तिरिगरमिच्छेयागह' इत्यादि ४६३ संख्यावाली मूलगाथामें जिन (११ + ३ + १ + ३ =) १८ प्रकृतियोंके अनुभाग-बन्धके स्वामित्वका निर्देश किया गया है उनमेंसे उक्त 'मनुष्यायु, तिर्यगायु, उद्योत और आतप' इन चार प्रशस्त प्रकृतियोंको पृथक् करके शेष बची १४ को ८२ अप्रशस्त प्रकृतियोंमेंसे घटानेपर ६८ प्रकृतियों शेष रहती हैं। उनकी ही सूचना गाथा-पठित 'सेसाणं' पदसे की गई है। अनेक प्रतियोंमें जो ६४ का अङ्क पाया जाता है, सो उसे देनेवालोंकी दृष्टि सम्भवतः गाथाङ्क ४६३ में पठित १८ प्रकृतियोंको ८२ प्रकृतियोंमेंसे घटानेकी रही है; क्योंकि ८२ में से १८ घटानेपर ६४ शेष रहते हैं किन्तु जब मनुष्यायु आदि उक्त ४ प्रकृतियोंकी गणना ८२ अप्रशस्त प्रकृतियोंमें है ही नहीं, तब उनका उनमेंसे घटाना कैसे संगत हो सकता है। अतः शेष पदसे सूचित ६८ प्रकृतियोंको ही प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए।

अब मूलशतककार जयन्य अनुभागबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूला०७३] चौदस सराय-चरिमे पंचऽनियङ्गी णियट्ठि एयारं ।

सोलस मंदणुभायं संजमगुणपत्थिओ जयइ ॥४६७॥

११४।५।१।१६

अथ जवन्यानुभागबन्धकानाह—['चौदस सुहुमसरागे' इत्यादि ।] सरागचरमे सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये स्व-स्व-बन्धव्युद्भिच्छिस्थाने संयमगुणविशुद्धजावे चतुर्दशप्रकृतीनां जवन्यानुभागो भवति १४ । अनिवृत्तिकरणन्याने पञ्चप्रकृतीनां जवन्यानुभागः ५ । अपूर्वकरणे एकादशप्रकृतीनां जवन्यानुभागबन्धः ११ । पोडशक्रपायान् जवन्यानुभागान् संयमगुणप्रस्थितो जावो जयति विनोति । पोडशमध्ये क्रियन्त्यः द्रव्यसंयमे गुणे भवन्ति, क्रियन्त्यो नावसंयमगुणे भवन्ति ॥४६७॥

वक्ष्यमाण चौदह प्रकृतियोंका मन्द (जयन्य) अनुभागबन्ध सराग अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय गुणन्यायके अन्तिम समयमें वर्तमान संयमके होता है। पाँच प्रकृतियोंका अनिवृत्तिकरणके चरम समयवर्ती क्षपक, न्यागहका चरम समयवर्ती अपूर्वकरण क्षपक और सोलह प्रकृतियोंका जयन्य अनुभागबन्ध संयमगुणस्थानको अनन्तर समयमें प्राप्त होनेवाला जीव करता है ॥४६७॥

११४।५।१।१६

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नामनिर्देश करते हैं—

^१णाणंतरायदसयं विदियावरणस्स होंति चत्तारि ।

एए चौदस पयडा सरायचरिमहि णायव्वा ॥४६८॥

^२पुरिसं चउसंजलणं पंचऽणियट्ठिम्मि होंति भायमिह ।

सय-सय चरिमस्स समये जहणवंधो य णायव्वो ॥४६९॥

^३हास रह भय दुगुंछा णिदा पयला य होइ उवघायं ।

वण्णचउक पसत्थं अउव्वकरणे जहण्णाणि ॥४७०॥

^४पढमकसायचउकं दंसणतिय मिच्छदंसणं मिच्छे ।

विदियकसायचउकं अविरयसम्मो मुणयव्वो ॥४७१॥

१. सं० पञ्चसंग्र० ४, २९३ । २. ४, २९४ । ३. ४, २९५ । ४. ४, २९७ ।

१. शतक० ७५ ।

^१तद्व्यकसायचउक्कं विरियाविरयम्हि जाण णियमेण ।

ॐमंदो अणुभागो सो संजमगुणपत्थिओ जयइ ॥४७२॥

ताः का इति चेदाह—['णांतरायदसयं' इत्यादि ।] पञ्च ज्ञानावरणानि ५ पञ्चान्तरायः ५ द्वितीयावरणस्य दर्शनावरणस्य चक्षुरचक्षुरवधि-केवलदर्शनावरणानि चत्वारि चेत्येताश्चतुर्दश प्रकृतयः । तासां १४ जघन्यानुभागबन्धः सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये ज्ञातव्यः, सूक्ष्मसाम्परायमुनयश्चतुर्दशप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्तीत्यर्थः १४ । अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेषु प्रथमभागे पुवेदस्य, द्वितीयभागे सज्वलनक्रोधस्य, तृतीयभागे सज्वलनमानस्य, चतुर्थभागे सज्वलनमायायाः, पञ्चमे भागे सज्वलनबादर-लोभस्य च जघन्यानुभागबन्धो ज्ञातव्यः, स्व-स्वबन्धव्युच्छित्तिस्थाने स्व-स्वगुणस्थानस्य चरमसमयान्ते जघन्यानुभागो भवति १।१।१।१।१। एवं पञ्चप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं अनिवृत्तिकरणो मुनिर्वध्नातीत्यर्थः । हास्य १ रति १ भय १ जुगुप्सा १ निद्रा १ प्रचला १ उपघातः १ प्रशस्तवर्णचतुष्कं ४ चेत्येकादशप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं अपूर्वकरणे मुनि करोति वध्नाति ११ । अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभ-प्रथमकषायचतुष्कं ४ दर्शनावरणत्रिकं स्त्यानगृद्धित्रिकं मिथ्यादर्शनं १ चेति प्रकृतीनामष्टानां जघन्यानुभागबन्धं मिथ्यादृष्टिवध्नाति ८ । अप्रत्याख्यानकषाया ४ असयते जघन्यानुभागाः, अविरतसम्यग्दृष्टिरप्रत्याख्यानानां कषायाणां जघन्यानुभागं करोतीत्यर्थः । विरताविरते देशसमये तृतीयकषायचतुष्कस्य प्रत्याख्यान-क्रोध-मान-माया-लोभस्य जघन्यानुभागो भवति । स अनुभागबन्धः सयमगुणप्रस्थितं तमनुभागबन्धं जयति चिनोतीत्यर्थः । इमाः षोडशप्रकृतयस्तत्र तत्र सयमगुणाभिमुखे एव विशुद्धजीवे जघन्यानुभागा भवन्ति ॥४६८-४७२॥

ज्ञानावरणकी पौंच, अन्तरायकी पौंच और दर्शनावरणकी चार; इन चौदह प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके अन्तिम समयमें जानना चाहिए । पुरुषवेद और संज्वलनचतुष्क इन पौंच प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अनिवृत्तिकरणमें अपने-अपने बन्धविच्छेद होनेके समय जानना चाहिए । हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, निद्रा, प्रचला, उपघात और प्रशस्त वर्णचतुष्क, इन ग्यारह प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अपूर्वकरणगुणस्थानमें अपने-अपने बन्धविच्छेदके समय होता है । प्रथम अर्थात् अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्क, दर्शन-त्रिक (निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि) और मिथ्यादर्शन, इन आठ प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयम धारण करनेके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके होता है । द्वितीय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणकषाय चतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध सयम धारण करनेके उन्मुख चरमसमयवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टिके जानना चाहिए । तृतीय अर्थात् प्रत्याख्यानावरण-कषायचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध संयमगुण धारण करनेके लिए प्रस्थान करनेवाले चरमसमय-वर्ती देशसंयतके नियमसे होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥४६८-४७२॥

[मूलगा०७४] ^२आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो दु अरइ-सोयाणं ।

सोलस मणुय-तिरिया-सुर-णिरया तमतमा तिणिं ॥४७३॥

२।२।१६।३

आहारकद्वयं प्रशस्तात् प्रमत्तगुणाभिमुखसंक्रिष्टः अप्रमत्तो मुनिः जघन्यानुभागं करोति वध्नाति २ । तु पुनः अरति-शोकयोः अप्रशस्तात् अप्रमत्तगुणाभिमुखविशुद्धप्रमत्तो मुनिर्जघन्यानुभागं वध्नाति २ ।

१ म०पञ्चस० ४, २९८ । २ ४, २९६ ।

ॐ प्रतिषु 'बंधो' इति पाठः ।

१ शतक० ७६ ।

षोडशप्रकृतीनां जघन्यानुभागं १६ मनुष्य-तिर्यञ्चो विदधति-कुर्वन्ति १६ । तिसृणां प्रकृतीनां सुर-नारका जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति ३ तमस्तमकाः सप्तमनरकोद्भवा नारका विशुद्धाः तिसृणां प्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति ३ ॥४७३॥

अनन्तर समयमें प्रमत्तभावको प्राप्त होनेके अभिमुख ऐसा अप्रमत्तसंयत आहारकद्विकके जघन्य अनुभागको बाँधता है । प्रमत्तशुद्ध अर्थात् अनन्तर समयमें अप्रमत्तभावको प्राप्त होने-वाला प्रमत्तसंयत अरति और शोकके जघन्य अनुभागका बन्ध करता है । वक्ष्यमाण सोलह-प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध मनुष्य और तिर्यञ्च करते हैं । तीन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध देव और नारकी करते हैं, तथा तीन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध तमस्तमक अर्थात् सप्तम पृथिवीके नारकी करते हैं ॥४७३॥

२।२।१६।३।३

अब भाष्यगाथाकार सोलह आदि प्रकृतियोंका नामनिर्देश करते हैं—

१वि-ति-चउरिदिय-सुहुमं साहारण णामकम्म अपज्जत्तं ।

तह वेउण्वियल्लक्कं आउचउक्कं दुगइ मिच्छे ॥४७४॥

ओरालिय उज्जोवं अंगोवंगं च देव-णेरइया ।

तिरियदुयं णिच्चं पि य तमतमा जाण तिण्णेदे ॥४७५॥

ताः षोडशादयः का इति चेदाह—['वि-ति-चउरिदिय सुहुम' इत्यादि ।] द्वि-त्रि चतुरिन्द्रिय जातयः ३ सूक्ष्म १ साधारण १ अपर्याप्त १ तथा वैक्रियिकपट्क ६ आयुश्चतुष्कं ४ चेति षोडशप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं तिर्यग्गतिजास्तिर्यञ्चो मनुष्यगतिजा मनुजा मनुष्याश्च मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति १६ । औदारिक १ उद्योतः १ औदारिकाङ्गोपाङ्ग चेति तिलः प्रकृतीर्जघन्यानुभागबन्धरूपा देव-नारका बध्नन्ति ३ । तत्रोद्योतः १ अतिविशुद्धदेवे बन्धाभावात्सक्लिष्टे एव लभ्यते । तिर्यग्विद्वक २ नीचगोत्र च सप्तम-पृथ्वीनरके तमस्तमका नारकाः विशुद्धा एतास्तिलः प्रकृतीर्जघन्यानुभागरूपा बध्नन्तीति जानीहि ३ ॥४७४-४७५॥

द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति; सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्तनामकर्म; तथा वैक्रियिकपट्क और आयुचतुष्क; इन सोलह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती मनुष्य और तिर्यञ्च, इन दो गतियोंके जीव बाँधते हैं । औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग और उद्योत, इन तीन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको देव और नारकी बाँधते हैं । तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र, इन तीन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको तमस्तमक नारकी बाँधते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४७४-४७५॥

[मूलगा०७५] २एइंदिय थावरयं मंदणुमायं करिंति तिगइया ।

परियत्तमाणमज्झिमपरिणामाः णारया वज्जे ॥४७६॥

नारकान् नरकगतिजान् वर्जयित्वा त्रिगतिजास्तिर्यग्मनुष्यदेवाः एवेन्द्रियत्व १ स्थावरनाम १ च मन्दानुभागबन्धं जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति बध्नन्ति लभ्यन्त इत्यर्थः । कथम्भूतास्ते ? त्रिगतिजाः परिवर्तमाना मध्यमपरिणामाः येषां ते मध्यमपरिणामप्रवर्तमाना इत्यर्थः ॥४७६॥

१ स० पञ्चस० ४, २९९-३०२ । २ ४, ३०३ ।

१ शतक० ७७ ।

* परावृत्य परावृत्य पगतीभो बंधति त्ति परिमत्तमाणं । जहा एगिंदिय थावरय, पचिंदिय तसमिदि । तेषु जे मज्झिमपरिणामा परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा इति । शतकचूर्णि

नारकियोंको छोड़कर शेष तीन गतिके परिवर्तनमान मध्यम परिणामी जीव एकेन्द्रियजाति और स्थावरनामकर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करते हैं ॥४७६॥

विशेषार्थ—परिवर्तन करके विवक्षित प्रकृतिके बौधनेवाले जीवको परिवर्तमान कहते हैं । जैसे पहले एकेन्द्रिय और स्थावर नामको बौधकर पुनः पंचेन्द्रिय और त्रसनामको बौधना । इस प्रकार परिवर्तन करते हुए भी मध्यम परिणामवाले जीवोंका प्रकृतमें ग्रहण किया गया है ।

[मूलगा०७६] ^१आसौधम्मादावं तित्थयरं जयइ अविरयमणुस्सो ।

चउगइउकडमिच्छो पण्णरस दुवे विसोधीए ॥४७७॥

११११५१२

आसौधमाद भवनत्रयजा सौधमैशानजा देवाश्च सक्लिष्टा सुराः आतपनाम-जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति । अविरतमनुष्या नरकगमनाभिमुखाः तीर्थकरनामजघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति जयन्ति बध्नन्तीत्यर्थः । चातुर्गतिकमिथ्यादृष्टसक्लिष्टा मिथ्यादृष्टयः पञ्चदशप्रकृतिजघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति १५ । वेदद्वयजघन्यानुभागबन्धं विशुद्धया मिथ्यादृष्टयश्चातुर्गतिजा बध्नन्ति ॥४७७॥

भवनत्रिकसे लेकर सौधर्म-ईशानकल्प तकके संक्लेश परिणामी देव आतपप्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करते हैं । नरक जानेके सन्मुख अविरत सम्यक्स्वी मनुष्य तीर्थकर प्रकृतिका जघन्य अनुभाग बन्ध करता है । (वक्ष्यमाण) पन्द्रह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका बन्ध चातुर्गतिके उत्कट संक्लेशवाले मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं । तथा (वक्ष्यमाण) दो प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको विशुद्ध परिणामवाले चातुर्गतिके जीव बौधते हैं ॥४७७॥

११११५१२

अब भाष्यगाथाकार उक्त पन्द्रह और दो प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

तैजाकम्मसरीरं पंचिंदिय तसचउक्क णिमिणं च ।

अगुरुयलहुगुस्सासं परघायं चैव वण्णचदुं ॥४७८॥

इत्थि-णउंसयवेयं अणुभायजहण्णयं च चउगइया ।

मिच्छाइड्डी बंधइ तिन्वविसोधीए संजुत्तो ॥४७९॥

ता काः पञ्चदशादय इति चेदाऽऽह—['तैजाकम्मसरीर' इत्यादि ।] तैजस-कर्मणशरीरे द्वे २ पञ्चेन्द्रियं १ त्रस-वादर-प्रत्येक पर्याप्तकमिति त्रसचतुष्क ४ निर्माण १ अगुरुलघुत्वं १ उच्छ्वास १ परघातः १ प्रशस्तवर्णचतुष्क ४ चेति चञ्चदशप्रकृतिजघन्यानुभागबन्धं चातुर्गतिजा सक्लिष्टाः कुर्वन्ति । स्त्रीवेद-नपुंसक-वेदयोर्जघन्यानुभागबन्धं मिथ्यादृष्टिश्चातुर्गतिको जीवो बध्नाति । स कथम्भूतः ? तीव्रविशुद्धया संयुक्तः ॥४७८-४७९॥

तैजसशरीर, कर्मणशरीर, पंचेन्द्रियजाति, त्रसचतुष्क, निर्माण, अगुरुलघु, उच्छ्वास, परघात तथा वर्णचतुष्क, इन पन्द्रह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको चातुर्गतिके तीव्र संक्लेश परिणामीमिथ्यादृष्टि जीव बौधते हैं । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागको तीव्रविशुद्धिसे संयुक्त चातुर्गतिके मिथ्यादृष्टि जीव बौधते हैं ॥४७८-४७९॥

१. सं० पञ्चस० ४, ३०४ । २ ४, ३०५-३०७ ।

१ शतक० ७८ ।

[मूलगा०७७] सम्माइट्टी मिच्छो व अट्ट परियत्तमज्झिमलो जयइ ।

परियत्तमाणमज्झिममिच्छाइट्टी दु तेवीसं ॥४८०॥

८।२३।

सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टिर्वा वक्ष्यमाणसूत्रोक्तैकत्रिशत्प्रकृतिषु प्रथमोक्तानामष्टानां यद्यपरिवर्त्तमानमध्यम-परिणामस्तदा जघन्यानुभाग जयति करोति ८ । शेषत्रयोविंशतेः प्रकृतीनां जघन्यानुभागं तु पुनः परिवर्त्त-मानमध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिरेव करोति ॥४८०॥

परिवर्त्तमान मध्यमपरिणामी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव (वक्ष्यमाण) आठ प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका बन्ध करते हैं । तथा परिवर्त्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव (वक्ष्यमाण) तेईस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका बन्ध करते हैं ॥४८०॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त आठ और तेईस प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

१ सायासायं दोणिण वि थिराथिरं सुहासुहं च जसक्किती ।

अज्जसक्किती य तहा सम्माइट्टी य मिच्छो वा ॥४८१॥

संठाणं संघयणं छच्छक्क तह दो विहाय मणुयदुगं ।

आदेज्जाणादेज्ज सरदुगं च हि दुब्भग-सुभगं तहा उच्चं ॥४८२॥

सातासातवेदनीयद्वयं २ स्थिरास्थिर-शुभाशुभयुगलं २।२ अयशस्कीर्त्ति-अयशस्कीर्त्तिद्वयं २ इत्यष्टौ सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा जघन्यानुभागानि सन्ति, अष्टानां प्रकृतीनां जघन्यानुभागं सम्यग्दृष्टिमिथ्या-दृष्टिर्वा बन्धं करोति ८ मध्यमं भाव प्राप्तः सन् । संस्थानं १ सहनन १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती २ मनुष्यद्विक ५ आदेयानादेयद्वयं २ देवदिकं २ दुर्भगसुभगद्विकं २ उच्चैर्गोत्र १ चेति त्रयोविंशनेर्जघन्यानु-भागबन्धं परिवर्त्तमानमध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिरेव बध्नाति २३ । अपरिवर्त्तमान-परिवर्त्तमानमध्यमपरिणाम-लक्षण गोमटसारे [कर्मकाण्डे] अनुभागबन्धमध्ये कथितमस्ति ॥४८१-४८२॥

इति जघन्यानुभागबन्धः समाप्तः ।

सातावेदनीय-असातावेदनीय, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्त्ति-अयशःकीर्त्ति, इन आठ प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि बंधते हैं । छह संस्थान, छह सहनन, विहायोगतिद्विक, मनुष्यगतिद्विक, आदेय-अनादेय, सुस्वर-दुःस्वर, सुभग-दुर्भग तथा उच्चगोत्र इन तेईस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको मिथ्यादृष्टि बंधते हैं ॥४८१-४८२॥

अब सर्वघाति-देशघातिसंज्ञक अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०७८] १ केवलणाणावरणं दंसणछक्कं च मोहवारसयं ।

ता सव्वघाइसण्णा मिस्स मिच्छत्तमेयवीसदिमं १ ॥४८३॥

एत्थ दंसणावरणस्स पढमा पच्च, अंतिल्ला एगा एव ६ । पढमसव्वकसाया सव्वघाईओ । २१ ।

अथ सर्वघाति-देशघाति-अघातिकर्मसंज्ञाः कथ्यन्ते—['केवलणागावरण' इत्यादि ।] केवलज्ञाना-वरण १ निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला १ सत्यानगृद्धिः १ केवलदर्शनावरण १ चेति दर्शनावरणपट्क ६ अनन्ता-नुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभकपाया इति मोहद्वादशकं १२ मिश्रं सम्यग्मिथ्यात्व १ मिथ्यात्व १ एकविंशतितमं संख्यया । एवं ताः सर्वा एकीकृता एकविंशतिः प्रकृतयः २१ सर्वघातिसंज्ञाः

१ स० पञ्चस० ४, ३०८-३०९ । २ ४, ३१०-३११ ।

३ शतक० ७९ । २ शतक० ८० । परं तत्र चतुर्थचरणे पाठोऽयम्—'हवति मिच्छत्त वीसइमं' ।

कथ्यन्ते । कुतः ? आत्मनः केवलज्ञान-दर्शन-सायिकसम्यक्त्व-चारित्र-दानादिक्षायिकान् गुणान्, मतिश्रुतावधि-मनःपर्ययज्ञानादिक्षयोपशमान् गुणान् च ण्मन्ति घातयन्ति ध्वसयन्तीति सर्वघातिसंज्ञा^१ । बन्धे २० उदये २१ । मिथ्यात्वस्य बन्धो भवति, न तु सम्यग्मिथ्यात्वस्य, सर्वोदयापेक्षया जात्यन्तरसर्वघातीति ।
उक्तं च—

मिथ्यात्वं विंशतिर्बन्धे सम्यग्मिथ्यात्वसंश्रुताः ।
उदये ता पुनर्दक्षैरेकविंशतिरीरिताः^२ ॥३७॥ इति

अत्र बन्धापेक्षया २० । सत्त्वोदयापेक्षया २१ ॥४८३॥

केवलज्ञानावरण, दर्शनावरणषट्क, मोहनीयकी चारह, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व; इन इक्कीस प्रकृतियोंकी सर्वघातिसंज्ञा है ॥४८३॥

यहाँपर दर्शनावरणषट्कसे प्रारम्भकी पौंचो निद्राएँ और अन्तिम केवलदर्शनावरण, ये छह प्रकृतियाँ अभीष्ट हैं । इसी प्रकार मोहनीयकी चारहसे प्रारम्भकी सर्व कषाय ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार सर्वघाती प्रकृतियों २१ हो जाती हैं ।

[मूलगा०७६] ^१णाणावरणचउक्कं दंसणतिगमंतराङ्गे पंच ।

ता होंति देसघाई सम्मं संजलण णोकसाया यं ॥४८४॥

२६ । सत्त्वे मेलिया ४७ ।

अथ देशघातिसंज्ञामाह—['णाणावरणचउक्क' इत्यादि ।] मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचतुष्क ४ चक्षुरवक्षुरवधिदर्शनावरणत्रय ३ दान-लाम-भोगोपभोगवीर्यान्तरायपञ्चक ५ सम्यक्त्वप्रकृतिः १ सत्त्वलन-क्रोधमानमायालोभकषायचतुष्क ४ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुनपुसकानीति नव नोकषायाः ६ चेति ताः षड्विंशतिः प्रकृतयः । देशघातिन्यो भवन्ति २६ । एकदेशोनात्मनः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययादिक्षयोपशमि-कान् गुणान् ण्मन्ति घातयन्तीति एकदेशगुणघातकत्वात् । आत्मनः सर्वगुणघातकत्वासर्वघातीनि २१ । देश-घातीनि २६ । सर्वमिलिताः ४७ ॥४८४॥

ज्ञानावरणकी चार, दर्शनावरणकी तीन, अन्तरायकी पौंच, सम्यक्त्वप्रकृति, सत्त्वलनचतुष्क और नव नोकषाय; ये छव्वीस देशघाती प्रकृतियाँ हैं ॥४८४॥

सर्वघाती २१ + देशघाती २६ दोनो मिलकर घातिप्रकृतियों ४७ होती हैं ।

[मूलगा०८०] ^२अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा ।

ता एव पुण्ण पावा सेसा पावा मुणेयव्वा^३ ॥४८५॥

१०१ । सत्त्वे मिलिया १४८ ।

सर्वघाति देशघातिप्रकृतिभ्यः ४७ अवशेषा एकोत्तरशतप्रमाणाः १०१ अघातिकाः प्रकृतयो भवन्ति, आत्मनो गुणघातने अशक्या इत्यघातिकाः । तां का इति चेदाह—वेदनीयस्य द्वे २ आयुश्चतुष्क ४ नाम्न-कर्मणः त्रिनवतिः ६३ गोत्रस्य द्वे २ । तथा चोक्तम्—

वेद्यायुर्नामगोत्राणां प्रोक्तं प्रकृतयोऽखिलाः ।

अघातिन्यः पुनः प्राज्ञैरेकोत्तरशतप्रमाः^३ ॥३८॥ इति

१. स० पञ्चस० ४, ३१२-३१३ । २ ४, ३१४-३१५ ।

१ स० पञ्च स० ४, ३११ । २ स० पञ्चम० ४, ३१४ ।

१ शतक० ८१ । परं तत्रोत्तरार्धे 'पणुवीस देसघाई सजलणा णोकसाया यं' ईदृक् पाठः ।

२ शतक० ८२ ।

ताः कथम्भूताः ? घातिकानां प्रतिभागाः घातिकर्मोक्तप्रतिभागाः भवन्ति, त्रिविधशक्तयो भवन्तीत्यर्थः । ता अघातिप्रकृतयः १०१ । एव पुण्यप्रकृतयः पापप्रकृतयश्च भवन्ति । शेषघातिप्रकृतयः सर्वाः ४७ पापरूपाः पापान्येवेति मन्तव्यम् ॥४८५॥

घातीनि ४७ अघातीनि १०१ मीलितः १४८ ।

उपर्युक्त सर्वघाती और देशघातीके सिवाय अवशिष्ट जितनी भी चार कर्मोंकी १०१ प्रकृतियों हैं, उन्हें अघातिया जानना चाहिए । वे स्वयं तो आत्मगुणोंके घातनेमें असमर्थ हैं, किन्तु घातिया प्रकृतियोंकी प्रतिभागी हैं । अर्थात् उनके सहयोगसे आत्मगुण घातनेमें समर्थ होती हैं । इन १०१ अघातिया प्रकृतियोंमें ही पुण्य और पापरूप विभाग है । शेष ४७ प्रकृतियोंको तो पापरूप ही जानना चाहिए ॥४८५॥

घातिया ४७ अघातिया १०१ = १४८ ।

अब स्थानरूप अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८१] ^१आवरण देशघायंतराय संजलण पुरिस सत्तरसं ।

चउविहभावपरिणया तिभावसेसा सयं तु सत्तहियं ॥४८६॥

१७।१०७।

अथ विपाकरूपोऽनुभागो गाथाद्वयेन कथ्यते—[‘आवरणदेशघाय’ इत्यादि ।] आवरणेषु देशघातीनि मति-श्रुतावधि मनःपर्ययज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानि ७ पञ्चान्तरायाः ५ चतुःसंज्वलनाः ४ पुंवेदश्चेति सप्तदशप्रकृतयः १७ लतादार्वास्थिशैल-लतादार्वास्थि-लतादारु-लतेति चतुर्विधानुभागभावपरिणता भवन्ति । शेषाः सप्ताधिकशतप्रमिताः प्रकृतयः १०७ वर्णचतुष्क द्विवारगणितम् । आसा प्रकृतीनां मिश्र-सम्यक्त्वप्रकृतीनां विना घात्यघातिनां सर्वासां त्रिविधा भावा दार्वास्थिपापाणुत्पत्त्याः त्रिविधभावशक्तिपरिणता भवन्ति । तथाहि—शेषा मिश्रोन-केवलज्ञानावरणादिसर्वघातिर्विशतिः २० नोकपायाष्टकं ८ अघातिपञ्चसप्तति ७५ अ दार्वास्थि-शैलसप्तत्रिधानुभागपरिणता भवन्ति ॥४८६॥

१७					२०।८।७५	
शै०	१७			शैल	२०।८।७५	
अ०	अ०	१७		अस्थि	अस्थि	२०।८।७५
दा०	दा०	दा०	१७	दारु	दारु	दारु
ल०	ल०	ल०	ल०	तीव्र	मध्यम	मन्द

मतिज्ञानावरणादि चार, चक्षुदर्शनावरणादि तीन, अन्तरायकी पौंच, संज्वलनचतुष्क और पुरुषवेद; ये सत्तरह प्रकृतियों लता, दारु, अस्थि और शैलरूप चार प्रकारके भावोंसे परिणत हैं । अर्थात् इनका अनुभागबन्ध, एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय होता है । शेष १०७ प्रकृतियों दारु, अस्थि और शैलरूप तीन प्रकारके भावोंसे परिणत होती हैं । उनका एकस्थानीय अनुभागबन्ध नहीं होता है ॥४८६॥

^२सुहृपयडीणं भावा गुड-खंड-सियामयाण खलु सरिसा ।

इयरा दु णिब-कंजीर-विस-हालाहलेण अहमाई ॥४८७॥

एत्थ इयरा असुहृपयडीभावा ।

१ स० पञ्चस० ४, ३१६-३१८ । २. ४, ३१६ ।

१ शतक० ८३ । पर तत्र चतुर्थचरणे पाठोऽयम्—‘तिविह परिणया सेसा’ ।

शुभप्रकृतीनां प्रशस्तद्वाचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ४२ भावाः परिणामाः परिणतयः गुड-खण्ड-शर्कराऽमृत-सदृशा एकत एकतोऽधिकमृष्टा खलु स्फुटं भवन्ति । तु पुनः इतरासा अन्यासा द्वयशीत्यप्रशस्तप्रकृतीनां भावाः निम्ब कांजीर-विप हालाहलेन सदृशाः । कथम्भूताः ? अधमादयः । क्रमेण जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टाः सर्वप्रकृतयः १२२ । तासु घातिन्यः ७५ । एतासु प्रशस्ता ४२ अप्रशस्ताः ३३ अप्रशस्तवर्णचतुर्षु अस्तीति तस्मिन् मिलिते ३७ । तथा कर्मप्रकृत्यां अभयनन्दिसूरिणा कर्मप्रकृतीनां तीव्र-मन्द-मध्यमशक्ति-विशेषो घातिकर्मणां अनुभागो लता-दार्ढ्यस्थि-शैलसमानः चतुस्थानः अघातिकर्मणा अशुभप्रकृतीनां अनुभागो निम्ब-कांजीर-विप-हालाहल-सदृशः चतुस्थानः शुभप्रकृतीनां अनुभागो गुड-खण्ड-शर्कराऽमृततुल्यः । चतुस्थानीयः । । ॥४८७॥

शुभ या पुण्यप्रकृतियोंके भाव अर्थात् अनुभाग गुड, खोंड़, शर्कर और अमृतके तुल्य उत्तरोत्तर मिष्ट होते हैं । इनके सिवाय अन्य जितनी भी पापप्रकृतियों हैं; उनका अनुभाग निम्ब, कांजीर, विप और हालाहलके समान निश्चयसे उत्तरोत्तर कटुक जानना चाहिए ॥४८७॥

गाथोक्त 'इतर' पदसे अशुभ या पाप प्रकृतियों विवक्षित हैं ।

अब प्रत्यय रूप अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८२] 'सायं चउपचइयो मिच्छो सोलह दुपचया पणुतीसं ।

सेसा तिपचया खलु तित्थयराहार वज्जा दु ॥४८८॥

एतत् मिच्छे १६, सासणे २५, असंजयसम्मादिहिमि १० ।

[अथानु] भागवन्धभेद गाथाद्वयेनाह—['सायं चउपचइयो' इत्यादि ।] सातावेदनीयस्य चतुर्थः प्रत्ययः प्रधानः योगो नाम । 'योगेन बध्यते सात' मिति वचनात् । तथाहि—उपशान्तकपाये क्षीणमोहे सयोगकेवलनि चैक्रं समयस्थितिक सातावेदनीयमेव बध्नाति, अन्य [अनुभय] सत्यादिमनोवचनौदारिक योगहेतुक बन्धम्, कपायादीनां तेष्वभावात् । षोडशप्रकृतीनां बन्धे मिथ्यात्वप्रत्यय प्रधानः । तथाहि—मिथ्यात्व द्रुण्डक-पण्डासम्प्राप्तकेन्द्रियस्थावरातपसूक्ष्मत्रि-विकलत्रयनरकद्विक-नरकायुष्याणां षोडशप्रकृतीनां बन्धे केवल मिथ्यात्वोदयहेतुबन्धः । सासादने पञ्चविंशतेः प्रकृतीनां बन्धे द्वितीयप्रत्ययः प्रधानः । कथम्भूतः ? अविरतयः कारणभूताः । शेषाणां प्रकृतीनां बन्धे तृतीयकपायाख्यः प्रत्ययः प्रधानभूतः । तीर्थङ्करस्वाहारक-द्वयं वर्जयित्वा शेषाणां कपायः कारणम् । अत्र मिथ्यात्वे १६ प्रकृतीनां मिथ्यात्वप्रत्ययः मुख्यः । सासादने २५ [प्रकृतीनां] अविरतिप्रत्ययः प्रधानभूतः । असयते १० [प्रकृतीनां] कपायप्रत्ययः प्रधानभूतः ॥४८८॥

सातावेदनीय चतुर्थ-प्रत्ययक है अर्थात् उसका अनुभागबन्ध चौथे योग-प्रत्ययसे होता है । मिथ्यात्वगुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली सोलह प्रकृतियों मिथ्यात्वप्रत्ययक हैं । दूसरे गुण-स्थानमें बन्धमे व्युच्छिन्न होनेवाली पच्चीस और चौथेमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली दश, ये पैंतीस प्रकृतियों द्विप्रत्ययक हैं, क्योंकि उनका पहले गुणस्थानमे मिथ्यात्वकी प्रधानतासे और दूसरेसे चौथे तक असंयमकी प्रधानतासे बन्ध होता है । तीर्थङ्कर और आहारकद्विकको छोड़कर शेष सर्वप्रकृतियों त्रिप्रत्ययक हैं, क्योंकि उनका बन्ध पहले गुणस्थानमे मिथ्यात्वकी प्रधानतासे, दूसरेसे चौथे तक असंयमकी प्रधानतासे और आगे कपायकी प्रधानतासे होता है ॥४८८॥

1 मं० पञ्चस० ४, ३२० ।

१ स० पञ्चम० ४, ३२० ।

१. शतक० ८३ । परं तत्र प्रथमचरणे 'चउपचय एग' इति पाठः ।

^१सम्पत्तगुणनिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं ।
बज्झन्ति सेसियाओ मिच्छत्ताईहिं हेऊहि ॥४८६॥

इदि बंधस्स पहाणहेउणिहेसो ।

तीर्थकरत्वं सम्यक्त्वगुणकारणं सम्यक्त्वगुणनिमित्तं 'सम्मेव तित्थबन्धो' इति वचनात् । आहारक-
द्वयं संयमेन सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमेन बध्नाति शेषाः प्रकृतीः मिथ्यात्वादिभिर्हेतुभिर्मिथ्यात्वा-
विरतिप्रमादकपाययोगैर्बध्नन्ति जीवा इति शेषा तथोत्तरप्रत्ययप्रधानत्वम् । प्रोक्तं च—

मिथ्यात्वस्योदये यान्ति षोडश प्रथमे गुणे ।
संयोजनोदये बन्धं सासने पञ्चविंशतिः ॥३६॥
कषायाणां द्वितीयानामुदये निर्वृते दश ।
स्वीक्रियन्ते तृतीयानां चतस्रो देशसंयते ॥४०॥
सयोगे योगतः सातं शेषाः स्वे स्वे गुणे पुनः ।
विमुच्याहारकद्वन्द्व-तीर्थकृत्त्वे कषायतः ॥४१॥
पष्टिः पञ्चाधिका बन्धं प्रकृतीनां प्रपद्यते ।
आहारकद्वयस्योक्तः संयमस्तोर्थकारिणः ॥४२॥
सम्यक्त्वं कारणं पूर्वं बन्धने बन्धवेदिभिः^२ ॥४३॥ ४८६॥

तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वगुणके निमित्तसे होता है । आहारकद्विकका बन्ध संयमके
निमित्तसे होता है । शेष ११७ प्रकृतियों मिथ्यात्व आदि हेतुओंसे बन्धको प्राप्त होती हैं ॥४८६॥
इस प्रकार बन्धके प्रधान हेतुओंका निरूपण किया ।

अब विपाकरूप अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८३] ^२पण्णरसं छ तिय छ पंच दोणि पंच य हवन्ति अट्ठेव ।

सरीरादिय फासंता य पयडीओ आणुपुब्बीए^१ ॥४६०॥

[मूलगा०८४] अगुरुयलहुगुवघाया परघाया आदबुज्जोव णिमिणणामं च ।

पत्तेय-थिर-सुहेदरणामाणि य पुगलविवागा^३ ॥४६१॥

॥६२॥

[मूलगा०८५] ^३आऊणि भवविवागी खेत्तविवागी उ आणुपुब्बी य ।

अवसेसा पयडीओ जीवविवागी मुणेयव्वा^३ ॥४६२॥

४॥४॥

अथ पुद्गलविपाकि-भवविपाकि-क्षेत्रविपाकि जीवविपाकिप्रकृतीर्गाथाचतुष्केनाऽऽह—['पण्णरसं छ
तिय' इत्यादि ।] शरीरादिस्पर्शान्ताः प्रकृतयः पञ्चाशत् ५० आनुपूर्व्या अनुक्रमेण ज्ञातव्याः । ताः काः ?
पञ्चशरीराणि, पञ्च बन्धनानि, पञ्च सघातानि, इति पञ्चदश १५ । पट् सस्थानानि ६ । औदारिकवैक्रियिका

१ सं० पञ्चस० ४, ३२१ । २. ४, ३२६-३२९ । ३ ४, ३३०-३३३ ।

१ गो० कर्म० गा० ६२ । २ सं० पञ्चस० ४, ३२२-३२५ ।

१ शतक० ८४ । पर तत्र 'पण्णरस' स्थाने 'पंच य' इति पाठः । २ शतक० ८५ ।

३. शतक० ८६ ।

१व गो ।

इस प्रकार अनुभागबन्ध समाप्त हुआ ।

< अथ प्रदेशबन्ध एकोनत्रिशद-गाथासूत्रैराह । किं तदाह—

स्वामित्वभागभागाम्यामष्टोत्कृष्टादयः सह ।

दश प्रदेशबन्धस्य प्रकाराः कथिताः जिनैः* ॥४४॥

अव प्रदेशबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ८६] ^१एकक्षेत्रोत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।

बंधइ जहुत्तहेउं सादियमहऽणादियं चावि^१ ॥४६४॥

एकक्षेत्रावगाह यथा भवति तथा सर्वात्मप्रदेशेषु कर्मयोग्यपुद्गलद्रव्यं जीवो बध्नाति । यथोक्त-
मिव्यात्वान्निकारण लब्ध्वा । किम्भूतं द्रव्यम् ? सादिकमथवाऽनादिक च । तथाहि—सूक्ष्मनिगोदशरीर-
वनाङ्गुलासंख्येयभाग जघन्यावगाहक्षेत्रं एकक्षेत्रम् । तेनावगाहितं कर्मस्वरूपपरिणमनयोग्य अनादिक सादिक
उभय च पुद्गलद्रव्य जीवः सर्वात्मप्रदेशैर्मिश्रादर्शनादिहेतुभिर्वध्नातीत्यर्थः ॥४६३॥

एकक्षेत्रावगाही, कर्मरूप परिणमनके योग्य, सादि, अथवा अनादि, तथा 'च' शब्दसे
सूचित उभयरूप जो पुद्गलद्रव्य है, उसे यह जीव यथोक्त मिथ्यात्व आदि हेतुओंसे अपने सर्व
प्रदेशोंके द्वारा बाँधता है । इसे ही प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥४६४॥

विशेषार्थ—प्रकृत प्रदेशबन्धका निरूपण उत्कृष्टप्रदेशबन्ध, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध, जघन्य-
प्रदेशबन्ध, अजघन्यप्रदेशबन्ध, सादिप्रदेशबन्ध, अनादिप्रदेशबन्ध, ध्रुवप्रदेशबन्ध, अध्रुवप्रदेशबन्ध
भागभाग और स्वामित्व, इन दश द्वारोंसे किया जायगा । एक शरीरकी अवगाहनासे रुके हुए
क्षेत्रमें अवस्थित पुद्गलद्रव्यको एकक्षेत्रावगाही द्रव्य कहते हैं । प्रकृतमें सूक्ष्मनिगोदिया जीवकी
वनाङ्गुलके असंख्यातमें भागप्रमाण अवगाहनाको एक क्षेत्र जानना चाहिए ।

अव जीवके द्वारा ग्रहण किये जानेवाले कर्मरूप पुद्गलद्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

[मूलगा० ८७] ^२पंचरस-पंचवण्णेहिं परिणयदुग्धं चदुहि फासेहिं ।

दवियमणंतपदेसं जीवेहिं^३ अणंतगुणहीणं^४ ॥४६५॥

तद्द्रव्यप्रमाणमाह—[‘पंचरस-पंचवण्णेहिं’ इत्यादि ।] पञ्चरस-पञ्चवर्ण-द्विगन्धैश्चरमणीतोष्णस्निग्ध-
सूक्ष्मचतुःस्पर्शैश्च परिणत यत्कर्मयोग्यपुद्गलद्रव्यम् । कथम्भूतम् ? अनन्तप्रदेशं अनन्तकर्मपुद्गलप्रदेशम् ।
पुनः कथम्भूतम् ? जीवराशिभ्योऽनन्तगुणहीनम् । तथा हि—सिद्धराशयनन्तैकभाग अभयराश्वनन्तगुणं
समयप्रवद्धद्रव्यं भवतीत्यर्थः । गोमटसारे तथा चोक्तं च—

सयलरसरूपगंधेहिं परिणदं चरिमचदुहिं फासेहिं ।

सिद्धादोऽभव्वादोऽणंतिमभागं गुणं दव्वं X ॥४६॥

वधदि त्ति किरियाणुवट्ठं । एगसमयमिह वज्जमाणपयदीणं दव्वमिदि णेयं । तथा च—

पुद्गलाः ये प्रगृह्यन्ते जीवेन परिणामतः ।

रसादित्वमिवाहाराः कर्मत्वं यान्ति तेऽखिलाः‡ ॥४६॥४६५॥

1 स० पञ्चम० ४, ३३६ । 2. ४, ३३७ ।

* मं० पञ्चम० ४, ३३४ । X गो० कर्म० गा० १९१ । ‡ स० पञ्चस० ४, ३३५ ।

१. शतक० ८७ । गो० क० १८५ । २ शतक० ८८ ।

† च जीवेति ।

पॉच रस, पाँच वर्ण, दो गन्ध और शीतादि अन्तिम चार स्पर्शसे परिणत, सिद्धजीवोंसे अनन्तगुणित हीन, तथा अभव्यजीवोंसे अनन्तगुणित अनन्तप्रदेशी पुद्गलद्रव्यको यह जीव एक समयमे ग्रहण करता है ॥४६५॥

अब आनेवाले द्रव्यके विभागका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८८] ^१आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अधिओ ।

आवरण अंतराए सरिसो अधिगो य मोहे वि ॥४६६॥

[मूलगा०८९] सच्चुवरि वेदणीए भागो अधिओ दु कारण किं तु ।

सुह-दुखकारणत्ता ठिदिविसेसेण सेसाणं ॥४६७॥

तत् [समयप्रवद्धद्रव्य] मूलप्रकृतिषु कथं विभज्यते इति चेदाह—['आउगभागो थोवो' इत्यादि ।] आयु.कर्मणो भाग. स्तोक्तः । नाम-गोत्रकर्मणो परस्पर समानः सदृशभागः, यतः आयु कर्मभागादधिक । ज्ञान-दर्शनावरणान्तरायकर्मसु तथा समानः सदृशभागः ततोऽधिकः । ततो मोहनीये कर्मणि अधिकभागः । ततो मोहनीयभागाद् वेदनीये कर्मणि अधिको भागः । एव भक्त्वा दत्ते सति मिथ्यादृष्टौ आयुश्चतुर्विधं ४ सासादने नारक नेति त्रिविधं ३ असंयते तैरश्वमपि नेति द्विविध २ देशसंयतादित्रये एक देवायुरेव १ । उपर्यनिवृत्तिकरणान्तेषु मूलप्रकृतयः सप्त ७ । सूक्ष्मसाम्पराये पट् ६ । उपशान्तादित्रये एका साता उदयात्मिका । वेदनीयस्य सर्वतः आधिक्ये कारणमाह—किन्तु वेदनीयस्य सुख-दुःखनिमित्ताद्बहुकं निर्जरयतीति हेतोः सर्वप्रकृतिभागद्रव्याद् बहुकं द्रव्यं भवति । वेदनीयं विना सप्तानां ज्ञेयसर्वमूलप्रकृतीनां स्थिति-विशेषप्रतिभागेन द्रव्यं भवति । तत्राधिकागमननिमित्तं प्रतिभागहारः आवल्यसत्येयभागः । तत्संदिष्टिर्नवाङ्कः ६ । कर्मणसमयप्रवद्धद्रव्यमिदं स १ । तदावल्यसत्यातभक्ता बहुभागाः स १ । आवल्यसत्यातभक्त-

बहुभागो बहुकस्य वेदनीयस्य देयः स १ । मोहनीयस्य स १ । ज्ञानावरणस्य स १ ।

दर्शनावरणस्य स १ । अन्तरायस्य स १ । नामकर्मण स १ । गोत्रस्य स १ ।

स १ । आयुषः स १ । एवं दत्ते 'आउगभागो थोवो' इति सिद्धम् । एवमुत्तर-

प्रकृतिषु गोमट्टसारे द्रष्टव्यः ॥४६६-४६७॥

एक समयमे जो पुद्गलद्रव्य आत्मप्रदेशोके साथ सम्बद्ध होता है, उसका विभाग आठों कर्मोंमें होता है । उसमेंसे आयुकर्मका भाग सबसे थोड़ा है । नाम और गोत्रकर्मका भाग यद्यपि आपसमें समान है, तथापि आयुकर्मके भागसे अधिक है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इन तीन घातिया कर्मोंका भाग यद्यपि परस्पर समान है, तथापि नाम और गोत्रकर्मके भागसे अधिक है । ज्ञानावरणादि कर्मोंके भागसे मोहनीय कर्मका भाग अधिक है । मोहनीयकर्मके भागसे भी वेदनीयकर्मका भाग अधिक है । वेदनीयकर्म सुख-दुखका कारण है, इसलिए उसका भाग सर्वोपरि अर्थात् सबसे अधिक है । शेष कर्मोंके विभाग उनकी स्थिति-विशेषके अनुसार जानना चाहिए ॥४६६-४६७॥

१. सं० पञ्चसं ४, ३४२-३४४ ।

१. शतक० ८६ । गो० क० १६२ । २ शतक० ६० ।

अब मूलकर्मोंके उत्कृष्टादि प्रदेशवन्धके सादि आदि भेदोंको कहते हैं—

[मूलगा०६०] ^१छण्हं पि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चउविहो होइ ।

सेसतिए दुवियप्पो मोहाउयाणं च सञ्चत्थं ॥४६८॥

अयोक्कृष्टादीनां साद्यादिविगेषं मूलप्रकृतिप्राह—['छण्हं पि अणुक्कस्सो' इत्यादि ।] पण्णां ज्ञाना-
वरण-दर्शनावरण-वेदनीय-नाम-गोत्रान्तरायागां कर्मणां अनुत्कृष्टः प्रदेशवन्धः सादिवन्धानादिवन्ध—[ध्रुववन्धा-
ध्रुववन्ध—] भेदाच्चतुर्विधो भवति ६ । पण्णां तु पुनः शेषोक्कृष्टाजघन्यजवन्येषु त्रिषु साद्यध्रुवभेदाद् द्विविध एव
६ । तु पुनः मोहाऽऽयुषोः सजा [तीये] सु चतुर्विधेषु साद्यध्रुवभेदाद् द्विविधः ॥४६८॥

प्रदेशवन्धे ज्ञा० १ द० २ वे० ३ ना० ४ गो० ५ अं० ६ प्र०

६ जव०	सादि	०	०	अध्रुव	२
६ अज०	सादि	०	०	"	२
६ उक्क०	सादि	०	०	"	२
६ अनु०	सादि	अनादि	ध्रुव	"	४

मोहनीयप्रदेशवन्धे आयुषः प्रदेशवन्धे साद्यादि—

२ जव०	सादि	०	०	अध्रुव	२
२ अज०	सादि	०	०	"	२
२ उक्क०	सादि	०	०	"	२
२ अनु०	सादि	०	०	"	२

मोहनीय और आयुके सिवाय जेप छह कर्मोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है । इन हो छह कर्मोंके शेषत्रिक अर्थात् उक्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्ध सादि और अध्रुवरूप दो प्रकारके होते हैं । मोहनीय और आयुकर्मके उत्कृष्टादि चारों प्रकारका प्रदेशवन्ध सादि और अध्रुवरूप दो प्रकारका होता है ॥४६८॥

इतकी संदृष्टि इस प्रकार है—

ज्ञानावरणादि ६ कर्म					मोहनीय और आयुकर्म				
कर्म					कर्म				
६ जव०	मादि	०	०	अध्रु०	२ जव०	सादि	०	०	अध्रु०
६ अज०	सादि	०	०	"	२ अज०	सादि	०	०	"
६ उक्क०	सादि	०	०	"	२ उक्क०	सादि	०	०	"
६ अनु०	सादि	अनादि	ध्रुव	"	२ अनु०	सादि	०	०	"

अब उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशवन्धके सादि आदि भेदोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६१] ^२तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपयदीसु चउविहो बंधो ।

सेसतिए दुवियप्पो सेसासु वि होइ दुवियप्पो ॥४६९॥

३०।६०

अयोक्कृष्टादीनां साद्यादिविशेषमुत्तरप्रकृतिषु गायान्रयेणाऽऽह—['तीसण्हमणुक्कस्सो' इत्यादि ।]
उत्तमप्रकृतिषु त्रिगतः प्रकृतीनां ३० अनुत्कृष्टप्रदेशवन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुर्विकल्पः । शेषोक्कृष्ट-

१. सं० पञ्चसं० ४, ३४६ । २. ४, ३४७-३४८ ।

१. शतक० २१ । गो० क्र० २०७ । २. शतक० ६२ । परं तत्र चतुर्थचरणे 'सेसासु य चउवि-
गप्पो वि' इति पाठः । गो० क्र० २०८ ।

जघन्याजघन्येषु त्रिषु साद्यध्रुवभेदाद् द्विविकल्पः । शेषनवतिप्रकृतीनामुत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यप्रदेशवन्ध-
चतुष्केऽपि साद्यध्रुवभेदाद् द्विविकल्प एव भवति ॥४६६॥

उत्तर प्रकृतियोंमेंसे (वक्ष्यमाण) तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है । उन्हींका शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्ध सादि और अध्रुवरूप दो प्रकारका होता है । उक्त प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष ६० प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि चारों प्रकारके प्रदेशवन्ध सादि और अध्रुवरूप दो प्रकारके होते हैं ॥४६६॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त तीस प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

णाणंतरायदययं दंसणछकं च मोहचउदसयं ।

तीसण्हमणुकस्सो पदेसवंधो चउवियप्पो ॥५००॥

अंतिमए छ दंसणछकं थीणतिगं वज्ज मोहचउदसयं ।

अण वज्ज वारह कसाया भय दुगुंछा य ॥५०१॥

११४।

तां त्रिंशत्तमाह—['णाणंतरायदसय' इत्यादि ।] पञ्चज्ञानावरणान्तरायाः १० निद्रा-प्रचला-
चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणपट्कं ६ अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनक्रोधमानमायालोभ-भय-शुगुप्सा
मोहनीयचतुर्दशकं १४ चेति त्रिंशत् प्रकृतीनां अनुत्कृष्टप्रदेशवन्ध साद्यनादिध्रुवाध्रुववन्धभेदाच्चतुर्विकल्पो
भवति । अत्र दर्शनावरणे स्थानत्रिकं वर्जयित्वा अन्तिमदर्शनपट्कं ६ मोहे अनन्तानुवन्धिचतुष्कं वर्जयित्वा
कषाया द्वादश, भय-शुगुप्साद्वयमिति मोहचतुर्दशकम् १४ ॥५००—५०१॥

प्रदेशवन्धे उत्तरप्रकृतयः ३० ज्ञा० ५ द० ६ अं० ५ मो० १४

प्र० ३० जघ० सादि ० ० अध्रु०

प्र० ३० अज० सादि ० ० ,,

प्र० ३० उत्कृ० सादि ० ० ,,

प्र० ३० अनु० सादि अनादि ध्रुव ,,

प्रदेशवन्धे उत्तरप्रकृतयः ६० उत्कृष्टादि० साद्यादिवन्ध-रचना—

प्र० ६० जघ० सादि ० ० अध्रुव०

प्र० ६० अज० सादि ० ० ,,

प्र० ६० उत्कृ० सादि ० ० ,,

प्र० ६० अनु० सादि ० ० ,,

इत्युत्कृष्टादिप्रदेशवन्ध-साद्यादिवन्धाष्टक समाप्तम् ।

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी छह और मोहकी चौदह; इन तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध चारों प्रकारका होता है । यहाँपर जो दर्शनावरणकी छह प्रकृतियों कहीं हैं सो स्थानगृह्णिकको छोड़कर अन्तिम छहका ग्रहण करना चाहिए । तथा मोहकी जो चौदह प्रकृतियों कहीं हैं, उनमें अनन्तानुवन्धी कषायचतुष्कको छोड़कर शेष बारह कषाय और भय तथा शुगुप्सा, ये चौदह प्रकृतियों ग्रहण की गई हैं ॥५००—५०१॥

उक्त प्रकृतियोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

३० प्रकृतियाँ

(ज्ञा० ५, द० ६, मो० १४, अ० ५)

३०	जघ०	सादि	०	०	अधु०
३०	अज०	सादि	०	०	,,
३०	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
३०	अनु०	सादि	अना०	ध्रुव	,,

शेष उत्तर प्रकृतियाँ ६०

६०	जघ०	सादि	०	०	अधु०
६०	अज०	सादि	०	०	,,
६०	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
६०	अनु०	सादि	०	०	,,

अब गुणस्थानोंकी अपेक्षा मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ६२] 'आउक्कस्स पदेसस्स छच्च मोहस्स णव दु ठाणाणि ।

सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कस्सजोगेण' ॥५०२॥

मिस्सवज्जेसु पढमगुणेषु ।

अथ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य गुणस्थाने स्वामित्वमाह—['आउक्कस्स पदेसस्स' इत्यादि ।] आयुप' उत्कृष्टप्रदेश मिश्रगुणं विना पङ्गुणस्थानान्यतीत्याग्रमत्तो भूत्वा बध्नाति । तु पुनः नवमं गुणस्थानं प्राप्यानिवृत्तिकरणो मोहनीयस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं बध्नाति । शेषज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-नाम-गोत्रान्तरा-याणां पण्णां सूक्ष्मसाम्पराय एवोत्कृष्टप्रदेशबन्धं बध्नाति । अत्रापि गुणस्थानत्रये उत्कृष्टयोगः प्रकृतिबन्धात्प-तर इति विशेषणद्वयं ज्ञातव्यम् ॥५०२॥

मिश्रवर्जितेषु प्रथमगुणस्थानेषु पट्षु । मिश्रगुणस्थाने आयुपः उत्कृष्टप्रदेशबन्धो नास्ति ।

आयुर्कर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मिश्रगुणस्थानको छोड़कर प्रारम्भके छह गुणस्थानोंमें होता है । तथा मोहकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध प्रारम्भके नौ गुणस्थानोंमें होता है । शेष छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको उत्कृष्ट योगसे संयुक्त सूक्ष्मसाम्परायसंयत बंधता है ॥५०२॥

यहाँपर मिश्रको छोड़कर प्रारम्भके छह गुणस्थानोंका ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—प्रकृत गाथामे आठो कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण किया गया है । यह गाथा गो० कर्मकाण्डमे भी २११वीं संख्याके रूपमे पाई जाती है । किन्तु वहाँपर जो उसके पूर्वार्धकी संस्कृतटीका पाई जाती है, वह विचारणीय है । टीकाका वह अंश इस प्रकार है—

“आयुप उत्कृष्टप्रदेश पङ्गुणस्थानान्यतीत्य अग्रमत्तो भूत्वा बध्नाति । मोहस्य तु पुनः नवमं गुण-स्थान प्राप्य अनिवृत्तिकरणो बध्नाति ।”

वहाँपर इसका हिन्दी अर्थ इस प्रकार किया गया है—“आयुर्कर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध छः गुणस्थानोंको उल्लंघ सातवे गुणस्थानमे रहनेवाला करता है । मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नवम गुणस्थानवर्ती करता है ।”

पञ्चसंग्रहके टीकाकारने इस गाथाकी टीकामे केवल 'मिश्रगुणं विना' इतने अंशको छोड़-कर शेष अर्थमें गो० कर्मकाण्डकी टीकाका ही अनुसरण किया है । यद्यपि 'मिश्रगुणं विना' इतना अंश उन्होंने उक्त गाथाके अन्तमे दी गई वृत्ति 'मिस्सवज्जेसु पढमगुणेषु' के सामने रहनेसे दिया

1. स० पञ्चस० ४, ३५१-३५३ ।

१. शतक० ६३ । पर तत्र पूर्वार्धे पाठोऽयम्—'आउक्कस्स पप्सस्स पंच मोहस्स सत्त ठाणाणि' । गो० क० २११ ।

है, तथापि उक्त दोनों टीकाओंमें किया गया अर्थ न तो मूलगाथाके शब्दोंसे ही निकलता है और न महाबन्धके प्रदेशबन्धगत स्वामित्व अनुयोगद्वारासे ही उसका समर्थन होता है। महाबन्ध-मे आयु और मोहकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण इस प्रकार किया गया है—

“मोहस्स उक्कस्सपदेसवन्धो कस्स ? अण्णदरस्स चटुगदियस्स पंचिदियस्स सण्णिस्स मिच्छादिद्विस्स वा सम्मादिद्विस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स सत्तविहवन्धगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सए पदेसवंधे वट्टमाणस्य । आउगस्स उक्कस्सपदेसवन्धो कस्स ? अण्णदरस्स चटुगदियस्स पंचिदियस्स सण्णिस्स मिच्छा-दिद्विस्स वा सम्मादिद्विस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयस्स अट्टविहवन्धगस्स उक्कस्सजोगिस्स ।”

(महाबन्ध पु० ६ पृ० १४)

इस उद्धरणमें आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध न केवल अप्रमत्तके बतलाया गया है और न मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध केवल अनिवृत्तिकरणके बतलाया गया है। किन्तु स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध आठो कर्मोंके बाँधनेवाले पञ्चेन्द्रिय संज्ञी, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवके होता है, तथा आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका बन्ध करनेवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके मोहकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। महाबन्धके इस कथनसे पंचसंग्रहकी मूलगाथा-द्वारा प्रतिपादित अर्थका ही समर्थन होता है। आ० अमितगतिके संस्कृत पञ्चसंग्रहसे भी ऊपर किये गये अर्थकी पुष्टि होती है। यथा—

उत्कृष्टो जायते बन्धः पट्सु मिश्र विनाऽऽयुपः ।

प्रदेशाख्यो गुणस्थाननवके मोहकर्मणः ॥ (स० पञ्चसं० ४, २५१)

संस्कृत टीकाकार सुमतिर्कीर्तिके सामने अमितगतिके सं० पञ्चसंग्रहके होते हुए और अनेक स्थानोंपर उसके वीसो उद्धरण देते हुए भी इस स्थलपर उन्होंने उसका अनुसरण न करके गो० कर्मकाण्डकी टीकाका अनुसरण क्यों किया, यह बान विचारणीय ही है।

उक्त गाथा श्वे० शतकप्रकरणमें भी पाई जाती है और वहाँ उसका गाथाङ्क ६३ है। परन्तु वहाँपर ‘छञ्च’ के स्थानपर ‘पंच’ और ‘णव’ के स्थानपर ‘सत्त’ पाठ पाया जाता है। जिसका अर्थ करते हुए चूणिकारने उक्त दोनों पाठ-भेदोंकी सूचना की है। यथा—

‘आउक्कस्स पएसस्स पच त्ति’ मिच्छादिद्वि असजतादि जाव अप्पमत्तसजओ एतेसु पचसु वि आउ-गस्स उक्कोसो पदेसवंधो लब्भइ । कहं ? सव्वथ उक्कोसो जोगो लब्भइ त्ति काउ । अन्ने पढति—‘आउक्को-सस्स पदेसस्स छत्ति’ । × × × ‘मोहस्स सत्त ठाणाणि’ त्ति सासण-सम्मा मिच्छादिद्विवज्जा मोहणिज्जबन्धका सत्तविहवधकाले सव्वेसि उक्कोसपदेसवध वधति । कहं ? मज्झइ—सव्वेसु वि उक्कोसो जोगो लब्भति त्ति । अन्ने पढति—‘मोहस्स णव उ ठाणाणि’ त्ति सासणसम्मा मिच्छेहि सह । (शतकप्रकरण, गा० ६३ चू० ४६)

उक्त पाठ-भेदोंके रहते हुए भी चूर्णिमें किये गये अर्थसे न पंचसंग्रहकी संस्कृतटीकाके अर्थका समर्थन होता है और न गो० कर्मकाण्डकी संस्कृतटीका-द्वारा किये गये अर्थका समर्थन होता है।

अब मूल प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ६३] सुहुमणिगोयअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णगे जोगे ।

सत्तण्हं पि जहण्णो आउगबंधे वि आउस्स ॥५०३॥

अथ मूलप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धक स्वामित्वं कथयति—[‘सुहुमणिगोद’ इत्यादि ।] सूक्ष्म-निगोदलब्ध्यपर्याप्तकः स्वभवप्रथमसमये जघन्ययोगेनायुर्विना सप्तमूलप्रकृतीनां जघन्यं प्रदेशबन्धं करोति । आयुर्वन्धसमये वा आयुषो जघन्यप्रदेशबन्धं च विदधाति स एव जीवः ॥५०३॥

सूक्ष्मनिगोदिया लब्धपर्याप्त जीवके अपनी पर्यायके प्रथम समयमें जघन्य योगमें वर्तमान होनेपर आयुके विना शेष सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है। तथा त्रिभागके समय आयुबन्ध करनेके प्रथम समयमें उसी जीवके आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है ॥५०३॥

अब उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६४] सत्तरस सुहुमसराए पंच णियड्डी य सम्मओ णवयं ।

^१अजदी विदियकसाए देसजदी तदियए जयइ ॥५०४॥

१७।५।६।४।४ सम्मओ मिस्सादियपुव्वंता ।

^२णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि साय जसकित्ती ।

उच्चागोदुक्कस्सं छव्विहवंधो तणुकसाई ॥५०५॥

उक्कस्सपदेसत्तं कुणइ अणियड्ढिवायरो चेव ।

पंचणं पयड्डीणं णियमा पुवेदसंजलणा ॥५०६॥

^३छण्णोकसाय पयला णिदा वि य तह य होइ तित्थयरं ।

उक्कस्सपदेसत्तं कुणइ य एव सम्मओ णेयं ॥५०७॥

अथोत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं तत्स्वामित्वं च गाथापटकेनाऽऽह—[‘सत्तरस सुहुमसराए’ इत्यादि] सूक्ष्मसाम्पराये सप्तदशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धद्रव्यं भवति । ताः काः ? ज्ञानावरणपञ्चकं ५ अन्तराय-पञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं ४ साता १ यशस्कीर्त्तिः १ उच्चैर्गोत्रं १ चेति सप्तदश-प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं तनुकपायी सूक्ष्मसाम्परायी मुनिः करोति बध्नाति १७ । उत्कृष्टप्रदेशबन्धः कथम्भूतः ? पट्विधबन्धः किं तत् ? उत्कृष्टप्रदेशबन्धः १ अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः २ सादिप्रदेशबन्धः ३ अनादि-प्रदेशबन्धः ४ ध्रुवप्रदेशबन्धः ५ अध्रुवप्रदेशबन्धः ६ इति षट्प्रकारप्रदेशबन्धः सप्तदशप्रकृतीनां भवतीत्यर्थः १७ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती पञ्चप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । पुवेद-संज्वलनक्रोधमानमाया-लोभानां पञ्चप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं अनिवृत्तिकरणो मुनिः क[रोति] । स[म्यग्दृष्टिः प्राणी नवप्रकृतीना-मुत्कृष्टप्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिरसंयताद्यपूर्वकरणो जीवः करोति बध्नाति ६ । असंयतश्चतुर्थगुणस्थानवर्ती द्वितीयकपायान् अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभान् उत्कृष्टप्रदेशबन्धान् करोति ४ । देशसंयतः श्रावकः तृतीयप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभान् उत्कृष्टप्रदेशबन्धान् करोति बध्नातीत्यर्थः ॥५०४-५०७॥

(वक्ष्यमाण) सत्तरह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें होता है । पाँच प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होता है । नौ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि करता है । अप्रत्याख्यानावरणकपाय चतुष्कका अविरतसम्यग्दृष्टि और प्रत्याख्यानावरणकपायचतुष्कका देशविरत गुणस्थानवाला उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ॥५०४

प्रकृतियों १७।५।६।४।४ गाथा-पठित ‘सम्यग्दृष्टि’ पदसे मिश्रगुणस्थानको आदि लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानतकके जीवोंका ग्रहण करना चाहिए ।

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी चार, सातावेदनीय, यशस्कीर्त्ति और उच्चगोत्र; इन सत्तरह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवरूप छह प्रकारके प्रदेशबन्धको सूक्ष्मसाम्परायसंयत करता है । पुरुषवेद और चार संज्वलनकपाय; इन

पाँच प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नियमसे अनिवृत्ति वादरसाम्परायसंयत करता है। हास्यादि छह नोकषाय, निद्रा, प्रचला और तीर्थकर; इन नौ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि करता है, ऐसा जानना चाहिए ॥५०५-५०७॥

[मूलगा०६५] ^१तेरह बहुप्पएसो सम्मो मिच्छो व कुण्ह पयडीओ ।

आहारमप्पमत्तो सेस पएसोसुक्कडो मिच्छो ॥५०८॥

१३।२।६६

सादेदर दो आऊ देवगइचउक्क आइसंठाणं ।

आदेज सुभग सुस्सर पसत्थगइ आइसंघयणं ॥५०९॥

एत्थ देव-मणुसाऊ ।

त्रयोदशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिर्वा करोति बध्नाति । ताः का इति चेदाह—
असातावेदनीय १ मनुष्य-देवायुपी द्वे २ देवगति-तदानुपूर्वि-वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्गचतुष्क ४ समचतुरस्र-
सस्थानं २ सुभग सुस्वर-प्रशस्तविहायोगतित्रिक ३ वज्रवृषभनाराचसहननं १ चेति त्रयोदशप्रकृतीनामुत्कृष्ट-
प्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिर्वा करोति १३ । आहारकद्वयस्याप्रमत्तो मुनिरुत्कृष्टप्रदेशबन्ध करोति २ ।
इति चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामित्वं कथितम् । शेषाणां स्थानगृद्धित्रिक ३ मिथ्यात्व १
अनन्तानुबन्धचतुष्क ४ स्त्री-नपुंसकवेद २ नारक-तिर्यगायुर्द्वय २ नरक-तिर्यग्मनुष्यगतित्रय ३ पञ्चैकेन्द्रिया-
दिजाति ५ औदारिक-तैजस कर्मणशरीरत्रय ३ न्यग्रोधपरिमण्डलादिसंस्थानपञ्चक ५ वज्रनाराचादिसहननपञ्चक
५ औदारिकाङ्गोपाङ्ग १ वर्णचतुष्क ४ नरक-तिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्त-
विहायोगति-त्रस-स्यावर-वादर-सूचम-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारण-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-दुःस्वरानादेया-
यगोनिर्माण-नीचगोत्राणा पट्पट् प्रकृतीना ६६ उत्कृष्टप्रदेशबन्ध मिथ्यादृष्टिरेव करोति । एवमुक्तानुक्त
१२० प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकारणमुत्कृष्टयोगादि प्रागुक्तमेव ज्ञेयम् । अत्र मिथ्यात्व मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्ति-
द्रव्यमुत्कृष्टमुक्तम् । तथाऽनन्तानुबन्धिनः सासादने किमिति नोच्यते ? तत्र, मिथ्यात्वद्रव्यस्य देशघाति-
नामेव स्वामित्वात् ॥५०८-५०९॥

(वक्ष्यमाण) तेरह प्रकृतियोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव करता है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अप्रमत्तसंयत करता है। शेष ६६ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध उत्कृष्ट योगवाला मिथ्यादृष्टि जीव करता है ॥५०८॥

प्रकृतियों १३।२।६६

अव भाष्यगाथाकार उक्त तेरह प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

असातावेदनीय, दो आयु, देवगतिचतुष्क, आदिका संस्थान, आदेय, सुभग, सुस्वर, प्रशस्तविहायोगति और प्रथम संहनन; इन तेरह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यक्त्वी जीव भी करते हैं और मिथ्यात्वी जीव भी करते हैं ॥५०९॥

यहोपर दो आयुसे देवायु और मनुष्यायुका अभिप्राय है ।

अव उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी सामग्रीविशेषका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६६] ^२उक्कस्सजोगसणी पज्जत्तो पयडिवंधमप्पयरं ।

कुण्ह पदेसुक्कस्सं जहण्णयं जाण विवरीयं ^३ ॥५१०॥

१. स० पञ्चसं० ४, ३५८-३६० । २. ४, ३६१ ।

१. शतक० ६६ । गो० क० २१४ अर्धसमता । २. शतक० ६७ । गो० क० २१० ।

अथोत्कृष्टबन्धस्य सामग्रीविशेषमाह—[‘उक्त्स्सजोगसण्णी’ इत्यादि ।] प्रदेशोत्कृष्टबन्धमुत्कृष्टयोग-
सञ्चिपर्याप्त एव प्रकृतिबन्धात्पतरः करोति । जघन्ये विपरीत जानीहि । जघन्ययोगासंज्ञपर्याप्तप्रकृतिबन्ध-
बहुतर एव जघन्यप्रदेशबन्धं करोतीत्यर्थः ॥५१०॥

जो जीव उत्कृष्ट योगसे युक्त है, संज्ञी, पर्याप्तक है और प्रकृतियोंका अल्पतर बन्ध करने-
वाला है, वही जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । जघन्य प्रदेशबन्धमे इससे विपरीत जानना
चाहिए । अर्थात् जो जघन्ययोगसे युक्त हो, असंज्ञी और अपर्याप्त हो, तथा प्रकृतियोंका अधिकतर
बन्ध करनेवाला हो, वह जघन्य प्रदेशबन्धको करता है ॥५१०॥

अब उत्तरप्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्ध और उनके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६७] ^१घोलणजोगमसण्णी बंधइ चदु दोणिमप्पमत्तो दु ।
पंचासंजदसम्मो सुहुमणिगोदो भवे सेसा ^१ ॥५११॥

४।२।५।१०६।

गिरयाउग देवाउग गिरयदुगं चेव जाण चत्तारि ।
आहारदुगं चेव य देवचउक्कं च तित्थयरं ॥५१२॥

अथोत्तरप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्ध तत्स्वामित्व च गाथाद्वयेनाऽऽह—[‘घोडगजोगमसण्णी’ इत्यादि ।]
येषां योगस्थानानां वृद्धिर्हानिरवस्थान च सम्भवति, तानि घोटमानयोगस्थानानि परिणामयोगस्थानानीति
भणित भवति । तद्योगोऽसंज्ञी पञ्चेन्द्रियजीवः प्रकृतिचतुष्कं वध्नाति । तत्किम् ? नारकायुष्यं १ देवायुष्यं १
देवगति नरकगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ चेति चतुर्णां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं असंज्ञी जीवः करोति वध्नातीति
जानीहि ४ । आहारकशरीर-तदङ्गोपाङ्गद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धं अप्रमत्तो मुनिः करोति वध्नाति । कुतः ?
अपूर्वकरणान्तस्य बहुप्रकृतिबन्धमभवात् २ । असंयतसम्यग्दृष्टिः पञ्चप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं वध्नाति ।
तत्किम् ? देवगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्गचतुष्कं ४ तीर्थंकरत्वं १ चेति पञ्चप्रकृतीनां जघन्यप्रदेश-
बन्ध असंयतसम्यग्दृष्टिर्भवग्रहणप्रथमसमयजघन्योपपादयोगः करोति वध्नातीति ज्ञेयम् ५ । एवमुक्तैकादशेभ्यः
शेषाणां नवोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्ध सूक्ष्मनिगोदिको जीवो द्वादशोत्तरपट्सहस्रापर्याप्तभवानां चरम-
भवस्थः विग्रहगतित्रिवक्त्रेषु प्रथमवक्त्रे सूक्ष्मनिगोदो वध्नाति ॥५११-५१२॥ तथा चोक्तम्—

चरिम-अपुण्णभवत्थो तिविग्गहे पढमविग्गहम्मि ठिओ ।

सुहुमणिगोदो वंधदि सेसाणं अवरबंधं तुक्कं ॥४७॥ इति ।

घोटमानयोगोका धारक असंज्ञी जीव (वक्ष्यमाण) चार प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धको
करता है । अप्रमत्तसंयत दो प्रकृतियोंके और असंयत सम्यग्दृष्टि पाँच प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेश-
बन्धको करता है । शेष १०६ प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धको चरम भवस्थ तथा तीन विग्रहोमे-
से प्रथम विग्रहमे अवस्थित सूक्ष्मनिगोदिया जीव करता है ॥५११॥

प्रकृतियों ४।२।५।१०६।

विशेषार्थ—जिन योगस्थानोकी वृद्धि भी हो, हानि भी हो और अवस्थान भी हो, उन्हें
घोटमानयोग कहते हैं । इन्हींका दूसरा नाम परिणामयोगस्थान भी है ।

१. स० पञ्चस० ४, ३६२-३६४ ।

१. शतक० १८ । गो० क० २१६ । परन्तु तत्र पाठभेदोऽस्ति ।

॥गो० कर्म० गा० २१७ ।

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

नरकायु, देवायु और नरकद्विक ये उपर्युक्त चार प्रकृतियों जानना चाहिए । दो प्रकृतियोंसे आहारकद्विकका, तथा पाँच प्रकृतियोंसे देवचतुष्क और तीर्थकर प्रकृतिका ग्रहण करना चाहिए ॥५१२॥

अब चारों बन्धोंके कारणोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६८] ^१जोगा पयडि-पदेसा ठिदि-अणुभागं कसायदो कुणइ ।

काल-भव-खेत्तपेही उदओ सविवाग-अविवागो ५१३॥

उक्तचतुर्विधबन्धानां कारणान्याह—['जोगा पयडिपसा' इत्यादि ।] योगात्मनोवचनकाययोगा-प्रकृतिबन्ध-प्रदेशबन्धौ भवतः, जीवाः कुर्वते । कपायतोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमान-मायालोभात् नवनोकपायाच्च स्थितिवन्धानुभागबन्धौ भवतः, जीवाः कुर्वते । कर्मणामुदयो विपाको भवति । द्रव्य-क्षेत्र-काल भव-भावलक्षण-कारणभेदोत्पादितनानात्व-विपाक-विविधोऽनुभवो ज्ञातव्यः । काल भवं क्षेत्र द्रव्यमपेक्ष्य काल चतुर्थादिकालं भवं नर-नारकादिभव क्षेत्र भरतैरावतविदेहादिक्षेत्र द्रव्य जीव-पुद्गल-सहननादिद्रव्यं प्राप्य कर्मणामुदयोऽनुभागो भवति । स कथम्भूत ? द्विविधः—सविपाकोऽविपाकश्च । चातुर्गतिकानां जीवानां शुभाशुभकर्मणां सुख-दुःखादिरूपोऽनुभव अनुभवन स विपाकोदयः । यच्च कर्म-विपाककालमप्राप्त उदयमनागत उपक्रमक्रियाविशेषबलादुदयमानीय आस्वाद्यते स अविपाकोदयः ॥५१३॥

तथा चोक्त च—

कालं क्षेत्रं भवं द्रव्यमुदयः प्राप्य कर्मणाम् ।

जायमानो मतो द्वेधा विपाकेतरभेदतः* ॥४८॥

जीव प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धको योगसे, तथा स्थितिवन्ध और अनुभागबन्धको कपायसे करता है । काल, भव और क्षेत्रका निमित्त पाकर कर्मोंका उदय होता है । वह दो प्रकारका है—सविपाक उदय और अविपाक-उदय ॥५१३॥

विशेषार्थ—पूर्वार्धमें प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण योग, तथा स्थितिवन्ध और अनुभागबन्धका कारण कपाय बतलाया गया है । उत्तरार्धके द्वारा उदयके निमित्त और उसके भेद बतलाये गये हैं । जिसका अभिप्राय यह है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावका आश्रय पाकरके कर्म अपना फल देते हैं । यहाँ इतना विशेष जानना आवश्यक है कि ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी चार, अन्तरायकी पाँच, मिथ्यात्व, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरु-लघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और निर्माण ये ३७ ध्रुवोदयो-प्रकृतियों कहलाती हैं, सो इनका तो उदय सर्व काल सर्व संसारी जीवोंके रहता है । इन्हें छोड़कर शेष जो ६५ उदय-प्रकृतियों हैं, वे क्षेत्र, कालादिका निमित्त पाकर उदय देती हैं । जैसे क्षेत्रविपाकी प्रकृतियों क्षेत्रका निमित्त पाकर फल देती हैं । भवविपाकी प्रकृतियों भवका निमित्त पाकर फल देती हैं । इसी प्रकार जो प्रकृतियों एकान्ततः नरकगति या देवगतिमें ही उदय आनेके योग्य है, वे उस-उस भवका निमित्त प्रकृतियों उदयमें आती है । निद्रा आदि प्रकृतियों कालका निमित्त पाकर उदयमें आती हैं । इसी प्रकार शेष सर्व प्रकृतियों जानना चाहिए । वह कर्मोदय सविपाक और अविपाकके भेदसे दो प्रकारका होता है । अपने समयके आने पर जो कर्म स्वतः स्वभावसे फल देते हैं, उसे सविपा-

१. स० पञ्चस० ४, ३६५ ।

१. शतक० ६६ । गो० क० २५७ पूर्वार्ध-समता ।

*स० पञ्चस० ४, ३६८ ।

कोदय कहते हैं । जैसे मनुष्यके मनुष्यगति नामकर्म अपने स्वरूपसे स्वतः स्वभाव उदयमें आकर फल देता है । जो कर्म स्वतः स्वभावसे उदयमें न आकर पर-प्रकृतिमुखसे उदयमें आकर विपाक-को प्राप्त होते हैं, उसे अविपाकोदय कहते हैं । जैसे मनुष्यके शेष तीन गतियोंका स्तिवुकसंक्रमण होकर मनुष्यगतिके उदयकालमें मनुष्यगतिके रूपसे परिणत होकर विपाकको प्राप्त होगा । इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंके सविपाकोदय और अविपाकोदयको जानना चाहिए ।

अब भाष्यगाथाकार प्रकृति आदि चारों बन्धोंका स्वरूप कहते हैं—

^१पयडी एत्थ सहावो तस्स अणासो ठिदी होज्ज ।

तस्स य रसोऽणुभाओ एत्तियमेत्तो पदेसो दु ॥५१४॥

^२एक्कम्मि महुरपयडी तस्स अणासो ठिदी होज्ज ।

तस्स य रसोऽणुभाओ कम्माणं एवमेवो त्ति ॥५१५॥

अथ प्रकृति-स्थित्यनुभाग-प्रदेशबन्धलक्षणं गाथाद्वयेनाऽऽह—[‘पयडी एत्थ सहावो’ इत्यादि ।] अत्र कर्मकाण्डे स्वभावः परिणामः शीलं प्रकृतिर्ज्ञेया । तस्य स्वभावस्याविनाशोऽच्युतिः स्थितिर्भवति । तस्याः स्थितेः अनुभागरूपो रसो भवति । तु पुनः एतावन्मात्रः प्रदेशः कर्मप्रकृतीनामंशावधारणं प्रदेशबन्धः स्यात् । उक्तञ्च—

प्रकृतिः परिणामः स्यात्स्थितिः कालावधारणम् ।

अनुभागो रसो ज्ञेयः प्रदेशः प्रचयात्मकः ॥४६॥

स्वभावः प्रकृतिर्ज्ञेया स्वभावादच्युतिः स्थितिः ।

अनुभागो रसस्तासां प्रदेशोऽशावधारणम्^१ ॥५०॥ इति

तद्वदष्टान्तमाह—[‘एक्कम्मि महुरपयडी’ इत्यादि ।] यथा एकस्मिन् वस्तुनि वृत्तादौ वा मधुरादि-प्रकृतिमिष्टता स्वभावः । तस्या मधुररसादिप्रकृतेरविनाशोऽप्रच्युतिः सा स्थितिः स्यात् । तस्याः स्थितेः रसरूपोऽनुभागोऽनुभवो विपाकः, तथा कर्मणामेवेति । यथा निम्बस्य कटुकता भवति, गुडस्य प्रकृतिर्मधुरता भवति, तथा ज्ञानावरणस्य प्रकृतिः अर्थापरिज्ञानम्, वेद्यस्य सुख-दुःखानुभवनमित्यादिप्रकृतिः १ । अष्टकर्मणामष्टप्रकृतिभ्योऽप्रच्युतिः स्थितिः । यथा अजा-गो-महिषीचीरस्य निजमाधुर्यस्वभावादच्युतिः, तथा ज्ञानावरणादिकर्मणामर्थापरिज्ञानादिस्वरूपादप्रस्खलितः स्थितिरुच्यते २ । स्थितौ सत्यां प्रकृतीनां तीव्र-मन्द-मध्यमरूपेण रसविशेषः अनुभवोऽनुभाग उच्यते । अजा-गो-महिष्यादिदुग्धानां तीव्र-मन्द-मध्यमत्वेन रमविशेषः कर्मपुद्गलानां स्वगतसामर्थ्यविशेषः ३ । कर्मत्वपरिणतपुद्गलस्कन्धानां परिमाणपरिच्छेदेन इयत्तावधारणं प्रदेश उच्यते ४ । तथा चोक्तम्—

प्रकृतिस्तिक्रता निम्बे स्थितिरच्यवनं पुनः ।

रसस्तस्यानुभागः स्यादित्येवं कर्मणामपि ॥५१॥ इति

जघन्यो नाधरो यस्माज्जघन्योऽस्ति सोऽधरः ।

उत्कृष्टो नोत्तरो यस्मादनुत्कृष्टोऽस्ति सोत्तरः^३ ॥५२॥

उपशमश्रेण्याऽऽरोहकः सूक्ष्मसाम्परायः उच्चैर्गोत्रानुभाग बध्वा उपशान्तकपायो जातः । पुनरवरोहणे सूक्ष्मसाम्परायो भूत्वा तदनुभागमनुत्कृष्ट बध्नाति, तदाऽस्य सादित्वम् । अथवा अवन्धपतितस्य कर्मणः

१. सं० पञ्चसं० ४, ३६६ । २. ४, ३६७ ।

१. सं० पञ्चसं० ४, ३६६ । २. सं० पञ्चसं० ४, ३६७ । ३. सं० पञ्चसं० ४, ३५० ।

पुनर्वन्धे सति माद्विवन्धः स्यात् । तत्सूक्ष्मसाम्परायचरमाद्विज्ञाद्विवन्धः । अभव्यसिद्धे ध्रुववन्धो भवति ।
भव्यमिद्वेऽध्रुववन्धो भवति ॥५१४-५१५॥

प्रकृतिनाम स्वभावका है । उस स्वभावका जितने काल तक विनाश नहीं होता, उतने कालका नाम स्थिति है । कर्मके रस या फलको अनुभाग कहते हैं । इतने प्रदेश अमुक कर्मके हैं, इस प्रकारके विभागको प्रदेशवन्ध कहते हैं । जैसे किसी एक वस्तुमें मधुरताका होना उसकी प्रकृति है । उस मधुरताका नियत कालतक उसमें बना रहना स्थिति है । उसके मधुररसका आस्वादन अनुभाग है और नियत मात्रामे उस मधुरताके परमाणुओंका होना प्रदेशवन्ध है । इसी प्रकारसे कर्मोंके भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशवन्धको जानना चाहिए ॥५१४-५१५॥

अथ योगस्थान, प्रकृति-भेद, स्थितिवन्धाध्यवसायस्थान, अनुभागवन्धाध्यवसायस्थान और उसके कार्य प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशवन्धादिके अल्प-बहुत्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६६] ^१सेद्विअसंखेज्जदिमे जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि ।

तेसिमसंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥५१६॥

[मूलगा०१००] ^२तासिमसंखेज्जगुणा ठिदी-विसेसा हवन्ति पयडीणं ।

ठिदिअज्झवसाणट्ठाणाणि असंखगुणियाणि तत्तो दु ॥५१७॥

[मूलगा०१०१] ^३तेसिमसंखेज्जगुणा अणुभागा होंति बंधठाणाणि ।

एत्तो अणंतगुणिया कम्मपएसा मुणेयव्वा ॥५१८॥

[मूलगा०१०२] ^४अविभागपलियच्छेदा अणंतगुणिया हवन्ति एत्तो दु ।

मुयपवरदिट्ठिवादे विसुद्धमयओ परिकहंति ॥५१९॥

अथ योगस्थान-प्रकृतिमंग्रह-स्थितिर्विकल्प-स्थितिवन्धाध्यवसायानुभागवन्धाध्यवसाय-कर्मप्रदेशानाम-
ल्पबहुत्वं गाथात्रयेणाऽऽह—['सेद्विअसंखेज्जदिमे' इत्यादि ।] निरन्तर-सान्तर-तदुभयभेदमिन्नयोगस्थानानि
श्रेण्यसंखेयभागसामानाजि ^{१२३} ^{११} ^{११} भवन्ति । एभ्योऽभ्युपगम्यतल्लोकगुणः सर्वप्रकृतिसंग्रहो $\frac{3}{9} = 9$
भवति । तेभ्यः प्रकृतिसंग्रहभेदेभ्यः प्रकृतौनां सर्वस्थितिर्विज्ञेयाः सर्वस्थितिविकल्पाः असंख्यातगुणा भवन्ति
 $\frac{3}{9} = 9$ १२०११ । एभ्यः स्थितिविकल्पेभ्यः स्थितिवन्धाध्यवसायस्थानानि असंख्यातगुणितानि भवन्ति ।
एभ्यः स्थितिवन्धाध्यवसानस्थानेभ्यः अनुभागवन्धाध्यवसायस्थानान्यसंख्यातल्लोकगुणितानि भवन्ति ।
एभ्योऽनुभागवन्धाध्यवसायेभ्यः कर्मप्रदेशा अनन्तगुणा ज्ञातव्याः । एकजीवप्रदेशेषु सर्वदा सत्त्वस्थितकर्म-
प्रदेशा सः १२ सर्वस्थित्यनुभागवन्धाध्यवसायस्थानेभ्योऽनन्तगुणा इति ज्ञातव्यम् । एभ्योऽनन्तगुणकर्मप्र-
देशेभ्यः पल्यस्याविभागप्रतिच्छेदा अनन्तगुणितानि भवन्ति । एवं इष्टिवादाङ्गपूर्वे श्रुतज्ञानप्रवरा शुद्धमतयः
सूरयः परिकथयन्ति । अथवा श्रुतप्रवरदृष्टिवादाङ्गपूर्वे ॥५१६-५१९॥ तथा चोक्तं ग्लोकचतुष्टये—

भागोऽसंख्यातिमः श्रेण्ययोगस्थानानि देहिनः ।

ततोऽसंख्यगुणो ज्ञेयः सर्वप्रकृतिसंग्रहः ॥५२॥

१. न० पञ्चस० ४, ३६६ । २ ४, ३७० । ३. ४, ३७१ । ४ ४, ३७२ ।

१ शतक० १०० । गो० क० २५८ । २. शतक० १०१ । गो० क० २५९ । ३. शतक० १०२ ।

गो० क० २६० । ४ शतक० १०३ ।

ततोऽसंख्यगुणानि स्युः स्थितिस्थानान्यतः स्थितेः ।
 स्थानान्यध्यवसायानामसंख्यातगुणानि वै ॥५४॥
 असंख्यातगुणान्यस्माद्रसस्थानानि कर्मणाम् ।
 ततोऽनन्तगुणाः सन्ति प्रदेशाः कर्मगोचराः ॥५५॥
 अविभागपरिच्छेदाः सर्वेषामपि कर्मणाम् ।
 एकैकत्र रसस्थाने ततोऽनन्तगुणाः मताः ॥५६॥ इति

सर्व योगस्थान जगच्छ्रेणीके असंख्यातवे भाग-प्रमाण हैं । योगस्थानोसे असंख्यात-गुणित मतिज्ञानावरणादि सर्व कर्म-प्रकृतियोंका संग्रह अर्थात् समुदाय या प्रमाण जानना चाहिए । प्रकृतियोंके संग्रहसे प्रकृतियोंकी स्थितियोंके भेद असंख्यात-गुणित हैं । स्थिति-भेदोंसे उनके बन्धके कारणभूत स्थितिवन्धाध्यवसायस्थान असंख्यात-गुणित होते हैं । स्थितिवन्धाध्यवसाय-स्थानोसे अनुभागवन्धाध्यवसायस्थान असंख्यात-गुणित होते हैं । अनुभागवन्धाध्यवसायस्थानोसे अनन्तगुणित कर्म-प्रदेश जानना चाहिए । कर्मप्रदेशोंसे उनके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणित होते हैं । इस प्रकार द्वादशांग श्रुतमे प्रवर अर्थात् सर्वश्रेष्ठ जो दृष्टिवाद है, उसमे कुशल एवं विशुद्धमतिवाले आचार्य कहते हैं ॥५१६-५१६॥

इस प्रकार प्रदेशबन्धका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूल शतककार ग्रन्थका उपसंहार करते हुए अपनी लघुता प्रकट करते हैं
 [मूलगा० १०३]^१ एसो बंधसमासो पिण्डस्वेवेण वणिणो किंचि ।

कम्मप्पवादसुयसायरस्स णिस्संदमेत्तो दु ॥५२०॥

एषः प्रत्यक्षीभूतः बन्धसमासः मूलोत्तरकर्मप्रकृतीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धसमासः सक्षेपः स्तोकमात्रः पिण्डरूपेणैकत्रीकरणेन मया वर्णितः प्रतिपादितः । स कथम्भूतः १ कर्मप्रवादपूर्वनामश्रुतसागरस्य निःस्यन्दमात्रो विन्दुमात्रो लेशः निर्यासः साररूप इत्यर्थः ॥५२०॥ तथा चोक्तम्—

कर्मप्रवादांम्बुधिविन्दुकल्पश्चतुर्विधो बन्धविधिः स्वशक्त्या ।

संक्षेपतो यः कथितो मयाऽसौ विस्तारणीयो महनीयबोधैः^२ ॥५७॥

यह बन्धसमास अर्थात् प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश, इन चारों प्रकारके बन्धोंका संक्षेपसे कुछ कथन मैंने पिण्डरूपसे एकत्रित करके वर्णन किया है, जो कि कर्मप्रवाद नामक श्रुतसागरका निःस्यन्द-मात्र अर्थात् सार-स्वरूप है ॥५२०॥

[मूलगा० १०४]^३ बंधविहाणसमासो रइओ अप्पसुयमंदमदिणा दु ।

तं बंधमोक्खकुसला पूरेदूणं परिकहेतुं ॥५२१॥

तु पुनः कर्मप्रकृतिबन्धविधानं सक्षेप मया रचितम् । किम्भूतेन मया ? अल्पश्रुतमन्दमतिना । तद्वन्धविधानं पूरयित्वा यद्दीनाधिक आगमविरुद्ध मया कथितं तत्सर्वं शुद्धं कृत्वा इत्यर्थः । भोः बन्ध-मोक्ष-कुशलाः कर्मबन्धमोक्षे कुशलाः कर्मणा बन्धमोचने दक्षाः परिसमन्तात् कथयन्तु प्रतिपादयन्तु ॥५२१॥

इस बन्ध-विधान-समासको अल्पश्रुत और मन्दमति मैंने रचा है. सो इसे बन्ध और मोक्ष तत्त्वके जाननेमे जो कुशल आचार्य हैं, वे छूटे हुए अर्थको पूरा करके उसका व्याख्यान करे ॥५२१॥

१. सं० पञ्चसं० ४, ३७३ । २. ४, ३७४ ।

३. शतक० १०४ । २. शतक० १०५ ।

४. सं० पञ्चसं० ४, ३६६-३७२ । ५. सं० पञ्चसं० ४, ३७३ ।

अब ग्रन्थकार प्रकृत ग्रन्थके अध्ययनका फल कहते हैं—

[मूलगा० १०५] इय कम्मपयडिपगदं संखेवुद्धिणिच्छिदमहत्थं ।

जो उवजुंजइ बहुसो सो णाहिदि बंधमोक्खट्ठं ॥५२२॥

इति अमुना प्रकारेण कर्मप्रकृतिप्रकृत कर्मप्रकृतीनां प्रवर्तितशास्त्र सक्षेपेणोद्दिष्टम् । कथम्भूतम् ? निश्चितमहदर्थं समुच्चीकृतबद्धर्थम् । यो भव्यस्तत्कर्मप्रकृतिस्वरूपशास्त्र उपयुञ्जति बहुशः वारम्बार विचारयति स भव्यः बन्ध-मोक्षार्थं स्वाति कर्ममलस्फेदनार्थं पवित्रो भवति, वा कर्मबन्धस्य मोक्षार्थं प्रवर्तते ॥५२२॥

विद्यानन्दिगुरुर्यतीश्वरमहान् श्रीमूलसङ्घेऽनघे
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणमुनिर्लक्ष्मीन्दु-वीरेन्दुकौ ।
तत्पट्टे भुवि भास्करो यतिव्रति श्रीज्ञानभूषो गणी
तत्पादद्वयपङ्कजे मधुकरः श्रीमत्प्रभेन्दुर्यती ॥५२॥
बन्धविचारं बहुविधिभेदं यो हृदि धत्ते विगलितपापम् ।
याति स भव्यः सुमतिमुकीर्तिं सौख्यमनन्तं शिवपदसारम् ॥५६॥
गुणस्थानविशेषेषु प्रकृतीनां नियोजने ।
स्वामित्वमिह सर्वत्र स्वयमेव विबुध्यताम् ॥६०॥*

इसप्रकार शब्द-रचनाकी अपेक्षा सक्षेपसे कहे गये, किन्तु अर्थके प्रमाणकी अपेक्षा महान् इस प्रकृत कर्मप्रकृति अधिकारका वार-वार उपयोगपूर्वक अध्ययन, मनन एवं चिन्तन करता है, वह बन्ध और मोक्ष तत्त्वके अर्थको जान लेता है । अथवा कर्म-बन्धसे मुक्त होकर मोक्षरूप अर्थको प्राप्त कर लेता है ॥५२२॥

इस प्रकार सभाष्य शतक नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्त हुआ ।

१ शतक० १०६ ।

२. संस्कृत पञ्चसंग्रहमें यह पद्य इस प्रकार पाया जाता है—

बन्धविचारं बहुतमभेदं यो हृदि धत्ते विगलितखेदम् ।

याति स भव्यो व्यपगतकष्टा सिद्धिमवन्धोऽमितगतिरिष्टाम् ॥ (स० पञ्चस० ४, ३७४ ।)

३ स० पञ्चस० ४, ३७५ ।

* इस श्लोकके अनन्तर संस्कृतटीकाकारकी यह पुष्पिका पाई जाती है—

इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनामलघुगोम्मट्टसारसिद्धान्तटीकाया कर्मकाण्डाधिकारशतके बन्धाधिकारनाम पञ्चमोऽधिकारः ।

पञ्चम अधिकार

सप्ततिका

मङ्गलाचरण और प्रतिज्ञा—

¹णमिऊण जिणिंदाणं वरकेवललद्धिसुखपत्ताणं ।
वोच्छं सत्तरिभंगं उवइठं वीरणाहेण ॥१॥

नत्वाऽहमर्हतो भक्त्या घातिकर्मविघातिनः ।
स्वशक्त्या सप्तति वक्ष्ये बन्धसत्त्वोदयादिकान् ॥

अतीतानागतवर्तमानजिनवरेन्द्रान् नमस्कृत्य वरकेवलज्ञानादिलब्धिसौख्यसम्प्राप्तान् सप्ततिभङ्गान्
सप्ततिमङ्गलोपेतान् भेदान् वक्ष्ये । कथम्भूतान् ? वीरनाथोपदिष्टान् ॥१॥

उत्कृष्ट केवलज्ञानरूप लब्धिको तथा अतीन्द्रिय सुखको प्राप्त हुए जिनेन्द्रदेवोंको नमस्कार
करके मैं श्री वीरनाथसे उपदिष्ट सप्ततिका-सम्बन्धी भगोंको कहूँगा ॥१॥

[मूलगा०१] ²सिद्धपदेहि महत्थं बन्धोदय-संत-पयडिठाणाणि ।
वोच्छं सुख संखेवेण णिस्संदं दिट्ठिवादादो ॥२॥

बन्धोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि संक्षेपेणाह वक्ष्ये; भो भव्य, शृणु । कथम्भूतानि ? सिद्धपदैर्महदर्थम् ।
आविष्टलिङ्गत्वादेकवचनम् । कथम्भूतम् ? दृष्टिवादाद्वात् निःस्यन्दं निर्यास सारभूत निर्गतं वा । बन्धप्रकृति-
स्थानानि उदयप्रकृतिस्थानानि सत्ताप्रकृतिस्थानानि निःसृतं कथयिष्याम्यहम् । प्रसिद्धपदवाक्यैः बह्वर्थं
महदर्थसमुक्तानीत्यर्थः ॥२॥

मैं संक्षेपसे बन्धप्रकृतिस्थान, उदयप्रकृतिस्थान और सत्त्वप्रकृतिस्थानोंको कहूँगा, सो हे
भव्यो, तुम सुनो । यह संक्षेप कथन भी सिद्धपदोंके द्वारा कहा जानेसे महान् अर्थवाला है
और दृष्टिवाद नामक वारहवे अङ्गका निष्यन्द अर्थात् निचोड़ या साररूप है ॥२॥

विशेषार्थ—जो पद सर्वज्ञ-भाषित अर्थके प्रतिपादक होते हैं, उन्हें सिद्धपद कहते हैं ।
प्रकृत ग्रन्थके सर्व ही पद सर्वज्ञ-भाषित महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके अर्थका प्रतिपादन करते हैं,
इसलिए उन्हें ग्रन्थकारने सिद्धपद कहा है । यह ग्रन्थ यद्यपि संक्षेपसे कहा जायगा, तथापि उसे
अल्पार्थक नहीं जानना चाहिए । क्योंकि वह दृष्टिवादका स्वरूप होनेसे महान् अर्थका धारक है ।
दूसरे इस ग्रन्थमें जिस विषयका वर्णन किया जानेवाला है, वह श्री महावीर भगवान्से उपदिष्ट

1. स० पञ्चसं० ५. १ । 2. ५, २ ।

१. सं० पञ्चमं० ५, १ । परं तत्र चतुर्थचरणे 'बन्धमेदावबुद्धये' इति पाठः ।

१. सप्ततिका० १. परं तत्र 'दिट्ठिवादादो' स्थाने 'दिट्ठिवायस्स' इति पाठः ।

है। इस वाक्यके द्वारा ग्रन्थकारने प्रस्तुत ग्रन्थकी प्रामाणिकता प्रकट की है। गाथाके द्वितीय चरणके द्वारा ग्रन्थकारने वक्ष्यमाण विषयका निर्देश किया है। कर्म-परमाणुओका आत्माके प्रदेशोंके साथ जो एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध होता है, उसे बन्ध कहते हैं। बद्ध कर्म परमाणुओके विपाकको प्राप्त होकर फल देनेको उदय कहते हैं। बँधनेके समयसे लेकर जब तक उन कर्म-परमाणुओका अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमण नहीं होता, या जब तक उनकी निर्जरा नहीं होती, तब तक आत्माके साथ उनके अवस्थानको सत्त्व कहते हैं। स्थान शब्द समुदाय वाचक है। अतएव प्रकृत ग्रन्थमे कर्मप्रकृतियोंके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान कहे जावेगे, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए।

अब ग्रन्थकार प्रतिपाद्य विषय-सम्बन्धी प्रश्नोंका स्वयं उद्भावन करके ग्रन्थका अवतार करते हैं—

[मूलगा० २] 'कदि बंधंतो वेददि कइया कदि पयडिठाणकम्मसा।

मूलोत्तरपयडीसु य भंगवियप्पा दु बोहव्वा' ॥३॥

अथमूलोत्तरप्रकृतीनां स्थानभङ्गभेदप्रश्नमाह—['कदि बधतो वेददि' इत्यादि ।] मूलप्रकृतिषु न उत्तरप्रकृतिषु च कति कर्माणि जीवो बधन् कति कर्माणि वेदयति अनुभवति कतीनां कर्मणामुदयमनुभवतीत्यर्थः । कति कर्माणि बधन् जीवः कतिपयानां कर्मणा सत्ता भवति । प्रकृतिस्थानकर्मांशा इति कर्म-प्रकृतिस्थानसत्त्वमेवेत्यर्थः । तु पुनः मूलप्रकृतिषु उत्तरप्रकृतिषु च भङ्गविकल्पाः कियन्तो भवन्तीति ज्ञातव्याः । तथा च—

बन्धे कत्युदये सत्त्वे सन्ति स्थानानि वा कति ।

मूलोत्तरगताः सन्ति कियन्त्यो भङ्गकल्पनाः^१ ॥१॥ इति

बन्धे कति स्थानानि, उदये कति स्थानानि, सत्ताया कति स्थानानि भवन्ति ? मूलोत्तरप्रकृतिगता भङ्गविकल्पाः कियन्तो भवन्तीति प्रश्ने बन्धे स्थानानि चत्वारि मा० ७।६।१ । उदये स्थानानि त्रीणि मा० ७।७ । सत्तायां स्थानानि त्रीणि मा० ७।८ । किं स्थानं को भङ्ग इति प्रश्ने सख्याभेदेनैकस्मिन् जीवे युगपत् प्रकृतिसमूहः स्थानम् । एकस्य जीवस्यैकस्मिन् समये सम्भवन्तीनां प्रकृतीनां समूहः स्थानमित्यर्थः । अभिन्नसख्यानां प्रकृतीनां परिवर्तनं भङ्गः, सख्याभेदेनैकत्वे प्रकृतिभेदेन वा भङ्गः ॥३॥

कितनी प्रकृतियोंका बन्ध करता हुआ जीव कितनी प्रकृतियोंका वेदन करता है ? तथा कितनी प्रकृतियोंका बन्ध और वेदन करनेवाले जीवके कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ? इस प्रकार मूल और उत्तर प्रकृतियोंमे सम्भव भङ्गोंके भेद जानना चाहिए ॥३॥

विशेषार्थ—इस गाथाके पूर्वार्ध-द्वारा दो बातें सूचित की गई हैं। पहली तो यह कि बन्ध, उदय और सत्त्वके स्थान कितने-कितने होते हैं और दूसरी यह कि किस बन्धस्थानके समय कितने उदयस्थान और सत्त्वस्थान होते हैं ? गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा उक्त स्थानोंके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियोंके भङ्गोंको जाननेकी सूचना की गई है। एक जीवके एक समयमे संभव होनेवाली प्रकृतियोंके समूहका नाम स्थान है। संख्याके एक रहते हुए भी प्रकृतियोंके परिवर्तनको भंग कहते हैं। मूलप्रकृतियोंके बन्धस्थान चार हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और एक प्रकृतिक। इनमेसे आठ प्रकृतिक बन्धस्थानमें सभी मूल

1. स० पञ्चस० ५, ३ ।

१ सप्तिका० २. पर तत्र 'पयडिठाणकम्मसा' स्थाने 'पयडिसंतठाणाणि' इति पाठः ।

२. स० पञ्चस० ५, ३ ।

प्रकृतियोंका, सात प्रकृतिक बन्धस्थानमें आयुर्कर्मके विना सातका, छह प्रकृतिक बन्धस्थानमें आयु और मोहकर्मके विना छहका, तथा एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें एक वेदनीय कर्मका बन्ध पाया जाता है। मिश्र गुणस्थानके विना अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक छह गुणस्थानोंमें आठों कर्मोंका, अथवा आयुके विना सात कर्मोंका बन्ध होता है। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-करण इन तीन गुणस्थानोंमें आयुके सिवाय शेष सात कर्मोंका ही बन्ध होता है। एक सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थानमें मोह और आयुके विना शेष छह कर्मोंका बन्ध होता है। उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवली, इन तीन गुणस्थानोंमें एक वेदनीय कर्मका ही बन्ध होता है। अयोगिकेवली नामक चौदहवें गुणस्थानमें किसी भी कर्मका बन्ध नहीं होता है। मूल प्रकृतियोंके उदयस्थान तीन हैं—आठ प्रकृतिक सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। आठ प्रकृतिक उदयस्थानमें सभी मूल प्रकृतियोंका, सात प्रकृतिक उदयस्थानमें मोहकर्मके विना सातका और चार प्रकृतिक उदयस्थानमें चार अघातिया कर्मोंका उदय पाया जाता है। आठों कर्मोंका उदय दशवें गुणस्थान तक पाया जाता है, अतः वहाँ तकके जीव आठ प्रकृतिक उदयस्थानके स्वामी जानना चाहिए। मोहकर्मके सिवाय शेष सात कर्मोंका उदय बारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। अतः सात प्रकृतिक उदयस्थानके स्वामी ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्त्ती जीव हैं। चार अघातिया कर्मोंका उदय चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है, अतः तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्त्ती जीव चार प्रकृतिक उदयस्थानके स्वामी हैं। मूल प्रकृतियोंके सत्त्वस्थान तीन हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें सभी मूल प्रकृतियोंका, सात प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें मोहके विना सात कर्मोंका और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें चार अघातिया कर्मोंका सत्त्व पाया जाता है। आठों कर्मोंका सत्त्व ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है, अतः वहाँ तकके सर्व जीव आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी हैं। मोहके विना सात कर्मोंका सत्त्व बारहवें गुणस्थानमें पाया जाता है, अतः क्षीणमोही जीव सात प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी हैं। चार अघातिया कर्मोंका सत्त्व चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है, अतः सयोगिकेवली और अयोगिकेवली भगवान् चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी हैं। किस बन्धस्थानके साथ कौन कौनसे उदयस्थान और सत्त्वस्थान पाये जाते हैं, इसका निर्णय आगे ग्रन्थकार स्वयं ही करेंगे।

अब आचार्य मूल प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोंके संभव भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३] 'अट्टविह-सत्त-छव्वंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा।

एयविहे तिवियप्पो एयवियप्पो अवंधम्मि' ॥४॥

बन्ध०	८ ७ ६	व०	१ १ १	०
उदय०	८ ८ ८	एवबंधे उ०	७ ७ ४	अबंधे ४
सत्त्व०	८ ८ ८	सं०	८ ७ ४	४

अथ ज्ञानावरणादीनां मूलप्रकृतीनां बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रयसयोगं भङ्गभेदं च गाथात्रयेणाऽऽह—

['अट्टविह-सत्त' इत्यादि ।] अष्टविध-सप्तविध-षड्विधबन्धके उदय-सत्त्वेऽष्टाष्टविधे स्तः भवतः ८ ८ ८ ।
८ ८ ८

1. न०पञ्चस० ५, ४ ।

१. सप्तिका० ३. परं तत्र 'उदयकम्मंसा' स्थाने 'उदयसत्ताइ' इति पाठः ।

एकविधबन्धके तु सप्ताष्टविधे सप्तसप्तविधे चतुश्चतुर्विधे स्तः ७ ७ ४ । अबन्धके चतुश्चतुर्विधे स्तः ४ ।
 ८ ७ ४

अष्टविध-सप्तविध-पट्विधबन्धकेषु एकविधबन्धे अबन्धे च भङ्गाः सप्त ॥४॥

आठ, सात और छह प्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवोंमें आठ प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया जाता है । एक प्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवके तीन विकल्प होते हैं—१ एक प्रकृतिकबन्ध स्थान, सात प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान; २ एक प्रकृतिक बन्धस्थान, सात प्रकृतिक उदयस्थान और सात प्रकृतिक सत्त्वस्थान; तथा ३ एक प्रकृतिक बन्धस्थान, चार प्रकृतिक उदयस्थान और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थान । अबन्धस्थानमें चार प्रकृतिक उदयस्थान और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानरूप एक ही विकल्प होता है ॥४॥

इनकी अङ्क संदृष्टि मूलमे दी है ।

अब आचार्य चौदह जीवसमासोंमें बन्ध उदय और सत्त्वस्थानोंके परस्पर संयोजन भगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०४] ^१सत्तद्व बंध अद्वोदयंस तेरससु जीवठाणेसु ।

एकस्मि पंच भंगा दो भंगा होंति केवलिनो ॥५॥

७ ८ ८ ७ ६ १ १ १ ०
^२तेरसजीवसमासेसु ८ ८ एकस्मि सण्णिपज्जते ८ ८ ८ ८ ७ ७ केवलीण ४ ४
 ८ ८ ८ ८ ८ ७ ४ ४

अथ जीवसमासेषु बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रिसयोगान् योजयति—[‘सत्तद्वबन्ध’ इत्यादि ।] त्रयोदश-जीवसमासेषु सप्तविधाष्टविधबन्धके उदयसत्त्वेष्टाष्टविधे स्तः । एकस्मिन् जीवसमासे पञ्च भङ्गाः । अष्टविध-सप्तविध-पट्विधैकैकविधबन्धकेषु अष्टविध सप्तविधोदयसत्त्वभेदा भवन्तीत्यर्थः । केवलिनि द्वौ भङ्गौ । एक-विधबन्धाबन्धे उदयसत्त्वे चतुश्चतुर्विधे भवतः । तथा हि—एकेन्द्रियसूक्ष्मवादारौ द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रि-यासंज्ञिजीवाश्चत्वारः ४ । एते एकीकृताः पट् पर्यासा अपर्यासाश्च । एवं द्वादश १२ । पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्य-पर्यासक एकः १ । सर्वे एकीकृताः त्रयोदश । तेषु त्रयोदशेषु जीवसमासेषु १३ आयुर्विना सप्तकर्मणां बन्धे सति अष्टविधकर्मणां उदयः सत्ता च । अथवाऽष्टविधकर्मबन्धकेऽष्टविधकर्मणामुदयः सत्ता च । एकस्मिन् पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्यासके जीवसमासेऽष्टविध-सप्तविध पट्विधैकैकविधकर्मबन्धकेषु उदये अष्टधाऽष्टधा सप्तधा सप्तधा सप्तधा । तत्र सत्तायां अष्टधा ८ अष्टधा ८ अष्टधा ८ अष्टधा ८ सप्तधा ७ चेति पञ्च भङ्गाः ।

८ ७ ६ १ १

८ ८ ७ ७ ७ केवलिनोः सयोगायोगयोः द्वौ भङ्गौ—सयोगे साताबन्धके उदय-सत्त्वे अघातिचतुष्के
 ८ ८ ८ ८ ७

१ ०

भवतः । अयोगे अबन्धे उदय-सत्त्वे चतुश्चतुर्विधे भवतः ४ ४ । अत्र भङ्गा ६ । इति जीवसमासेषु
 ४ ४

बन्धोदयसत्त्वस्थानानि समाप्तानि ॥५॥

आदिके तेरह जीवसमासोंमें सात प्रकृतिक बन्धस्थान, आठ प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान; तथा आठ प्रकृतिक बन्धस्थान, आठ प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान; ये दो भंग होते हैं । एक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय

१. स० पञ्चस० ५, ५ । २. ‘त्रयोदशसु’ इत्यादिगद्यभागः (पृ० १५०) ।

१. सप्ततिका० ४ ।

पर्याप्त जीवसमासमें पाँच भंग होते हैं—१ आठके बन्धमें आठका उदय और आठका सत्त्व; २ सातके बन्धमें आठका उदय और आठका सत्त्व; छहके बन्धमें आठका उदय और आठका सत्त्व, ४ एकके बन्धमें सातका उदय और आठका सत्त्व; ५ एकके बन्धमें सातका उदय और सातका सत्त्व । केवलीके दो भंग होते हैं—एकके बन्धमें चारका उदय और चारका सत्त्व; तथा अवन्धमें भी चारका उदय और चारका सत्त्व ॥५॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि मूलमें दी है ।

अब गुणस्थानमें बन्धादि त्रिसंयोगो भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ५] ^१अट्सु एयवियप्पो छासु वि गुणसण्णिदेसु दुवियप्पो ।
पत्तेयं पत्तेयं बंधोदयसंतकम्माणं ॥६॥

^२छसु मिच्छाद्वसु मिस्सरहिणसु दो भगा न न एगेगो अट्सु—
न न न न ७ ७ ४ ४
न न न न न ७ ४ ४

अथ गुणस्थानेषु तत्रिसंयोगभङ्गान् योजयति—['अट्सु एयवियप्पो' इत्यादि ।] अट्सु गुण-स्थानेषु प्रत्येक बन्धोदयसत्त्वकर्मणां एकैको भङ्गः । पट्सु गुणस्थानसंज्ञिकेषु प्रत्येकं द्वौ द्वौ विकल्पौ भङ्गौ भवतः । तथा हि—मिश्रापूर्वकरणानिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायोपशान्तचीणकपाय-सयोगायोगगुणस्थानेषु अट्सु प्रत्येकं एकैक गुणस्थान प्रति एकैको भङ्गः । केपाम् ? बन्धोदयसत्त्वकर्मणामेकैको भेदः । तद्वचना—

मिश्र	अपू०	अ०	सू०	उ०	ची०	स०	अ०
वं०	७	७	७	६	१	१	०
उ०	न	न	न	न	७	७	४
स०	न	न	न	न	न	७	४

मिथ्यात्व-सासादनाविरत-देश-प्रमत्ताप्रमत्तेषु पट्सु गुणस्थानेषु प्रत्येकं एकैक गुणस्थानं प्रति द्वौ द्वौ

विकल्पौ भङ्गौ भवतः न न । एवं भङ्गा दश भवन्ति १०॥६॥
न ७

पुनरपि बन्धोदय-[सत्त्व] रचना रच्यते—

१४	मि०	सा०	मि०	अ०	टे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	ची०	स०	अ०
वं०	७।८	७।८	७	७।८	७।८	७।८	७।८	७	७	६	१	१	१	०
उ०	न	न	न	न	न	न	न	न	न	न	७	७	४	४
स०	न	न	न	न	न	न	न	न	न	न	न	७	४	४

अन्तिम आठ गुणस्थानोंमें कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका पृथक्-पृथक् एक-एक भंग होता है । तथा मिश्रगुणस्थानको छोड़कर प्रारम्भके छह गुणस्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं ॥६॥

विशेषार्थ—मिश्र गुणस्थानके विना मिथ्यात्व आदि छह गुणस्थानोंमें आठ प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्व; तथा सातप्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्व; ये दो भंग होते हैं । मिश्रगुणस्थानमें सात

१. स० पञ्चसं० ५, ६ । २. ५, 'मिथ्यादृष्ट्यादीना' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १५०) ।

१. सप्ततिका० ५ ।

१व छसु ।

प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरण बादरसाम्पराय; इन दो गुणस्थानोमे सात प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्वरूप एक-एक भंग होता है। 'सूक्ष्मसाम्पराय' गुणस्थानमे छह प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। उपशान्त-मोह नामक ग्यारहवें गुणस्थानमे एक प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। क्षीणमोह नामक बारहवे गुणस्थानमे एक प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक उदय और सात प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। तेरहवे गुणस्थानमें एक प्रकृतिक बन्ध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। चौदहवें गुणस्थानमे बन्ध किसी भी कर्मका नहीं होता, अतएव अबन्धके साथ चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग पाया जाता है। इन सबकी अंकसहस्रि इस प्रकार है—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षीण०	सयो०	अयो०
बन्ध	७।८	७।८	७	७।८	७।८	७।८	७।८	७	७	६	१	१	१	०
उदय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
सत्त्व	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	४	४

१मूलपयडीसु एवं अत्थोगाढेण जिह विही भणिया ।

उत्तरपयडीसु एवं जहाविहिं जाण वोच्छामि ॥७॥

अथोत्तरप्रकृतिपवाह—['मूलपयडीसु एवं' इत्यादि ।] एवममुनोक्तप्रकारेणार्थावगाढेन अर्थोप-गूहनेन बह्वर्थगोपनेन मूलप्रकृतिषु यादृशी विधिर्भणिता, तादृशी विधिरुत्तरप्रकृतिषु यथोक्तविधिं वक्ष्यामि, त्व जानीहि ॥७॥

इस प्रकार अर्थके अवगाहन द्वारा मूल प्रकृतियोंमे जिस विधिसे बन्ध, उदय और सत्त्वके भंगोका प्रतिपादन किया है, उसी विधिसे उत्तर प्रकृतियोंमें भी कहता हूँ, सो हे भव्य, तुम जानो ॥७॥

अब ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मकी पाँच-पाँच प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्त्वके संयोगी भंग कहते हैं—

[मूलगा०६] १बन्धोदय-कम्मसा णाणावरणंतराए पंच ।

बन्धोवरमे वि तहा उदयंसा होंति पंचेव ॥८॥

ज्ञाना० अन्त०			ज्ञाना० अन्त०				
	ब०	५	५	ब०	०	०	
१दससु	उ०	५	५	उवसत-स्त्रीणाण	उ०	५	५
	स०	५	५		स०	५	५

अथ ज्ञानावरणस्यान्तरायस्य च पञ्च-पञ्चप्रकृतिषु बन्धोदयसत्त्वसयोगान् योजयति—['बन्धोदय-कम्मसा' इत्यादि ।] ज्ञानावरणान्तराययोर्मिथ्यदृष्टवादिसूक्ष्मसाम्परायपर्यन्तं बन्धोदयसत्त्वानि पञ्च पञ्च प्रकृतयो भवन्ति । बन्धोवरमे बन्धविरामे पञ्चप्रकृतीना अबन्धे सति उपशान्तक्षीणकपाययोरुदय-सत्त्वे तथा पञ्च पञ्च प्रकृतयः स्युः ॥८॥

१. स० पञ्चस० ५, ७ । २. ५, ८ । ३. ५, दशसु इत्यादि गद्यभागः (पृ० १५१) ।

१. सप्ततिका० ६, पर तत्र 'बन्धोदयकम्मसा' स्थाने 'बन्धोदयसत्त्वा' इति पाठः ।

	ज्ञाना०	अन्त०		ज्ञाना०	अन्त०
	त्र० ५	५		वं० ०	०
आद्यदशगुणस्थानेषु—	उ० ५	५	उपशांत-क्षीणकपाययोः—	उ० ५	५
	स० ५	५		स० ५	५

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्मकी पाँच-पाँच प्रकृतियोंका बन्ध दशवें गुणस्थान तक होता है, अतएव वहाँ तक उनका पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्त्वरूप एक-एक भंग पाया जाता है। दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें उनके बन्धका अभाव हो जानेपर भी ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानमें उक्त दोनों कर्मोंका पाँच-पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच-पाँच प्रकृतिक सत्त्वरूप एक-एक भंग पाया जाता है ॥८॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

अब दर्शनावरण कर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वके संयोगी भंग कहते हैं—

[मूलगा०७] ^१णव छक्कं चत्तारि य तिणिण य ठाणाणि दंसणावरणे ।

बंधे संते उदये दोणिण य चत्तारि पंच वा होंति ॥६॥

अथ दर्शनावरणस्योत्तरप्रकृतिषु बन्धोदयसत्त्वस्थानसंयोगभङ्गान् गाथापट्केनाऽऽह—['णव छक्कं चत्तारि य' इत्यादि ।] दर्शनावरणस्य बन्धके सत्तायां च नवप्रकृतिक ६ प्रथमं स्थानम् १ । स्थानगृद्धि-त्रयेण विना पट्प्रकृतिकं ६ द्वितीयं स्थानम् २ । निद्रा-प्रचले विना चतुःप्रकृतिकं ४ तृतीय स्थानं ३ चेति बन्धप्रकृतिस्थानानि त्रीणि भवन्ति ६।६।४। सत्ताप्रकृतिस्थानानि च त्रीणि भवन्ति ६।६।४। दर्शनावरणस्योदये द्वे स्थानके भवतः—चतुर्णां प्रकृतीनामुदयस्थानमेकम् ४ । वाऽथवा पञ्चानां मध्ये एकतरनिद्रासहितानां प्रकृतीनां उदयस्थानं द्वितीयम् ५ ॥६॥

दर्शनावरणके बन्ध और सत्त्वकी अपेक्षा नौ प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और चार प्रकृतिक; ये तीन स्थान होते हैं। उदयकी अपेक्षा चार प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक; ये दो स्थान होते हैं ॥६॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

^२णव सव्वाओ छक्कं थीणतिगूणाइ दंसणावरणे ।

णिदा-पयलाहीणा चत्तारि य बंध-संताणं ॥१०॥

६।६।४।

^३णेत्ताइदंसणाणि य चत्तारि उदिति दंसणावरणे ।

णिदादिपंचयस्स हि अण्णयरुदण्ण पंच वा जीवे ॥११॥

४।५।

^४मिच्छम्मि सासणम्मि य तम्मि य णव होंति बंध-संतेहिं ।

छब्बंधे णव संता मिस्साइ-अपुव्वपढमभायंते ॥१२॥

१. सपञ्चसं० ५, ६ । २. ५, १० । ३. ५, ११ । ४. ५, १२ ।

१. सप्ततिका० ७. पर तत्रायं पाठः—बंधस्स य सत्तस्स य पगइद्वागाइं तिणि तुल्लाइं । उदय-ट्टाणाइ दुवे चठ पणग दंसणावरणे ॥

[मिच्छे सासणे—] ४ ५ । मिस्साह-अपुव्वकरण-पढमसत्तमभाय जाव— ४ ५ ।
६ ६ ६ ६

चउवंधयम्मि दुविहाऽपुव्वऽणियट्ठीसु सुहुम-उवसमए ।

णव संता अणियट्ठी-खवए सुहुमखवयम्मि छवेव ॥१३॥

दुविधेसु खवगुवसामगेसु अपुव्वकरणाणियट्ठि तह उवसमसुहुमकसाए ४ ५ ।
६ ६

अणियट्ठि-सुहुम-खवगाण ४ ५ ।
६ ६

अथ दर्शनावरणस्य बन्ध-सत्तास्थानानि तानि कानीति चेदाह—['णव सव्वाओ छवक' इत्यादि ।] दर्शनावरणे बन्ध-सत्त्वयो सर्वा. चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचला-प्रचला स्यानगृद्धिनिद्रापञ्चकमिति सर्वा नव प्रकृतयो ६ भवन्तीत्येक प्रथम स्थानम् ६ । ता' स्यानगृद्धि-त्रिकोनाः बन्ध-सत्त्वपट्प्रकृतयः ६ इति द्वितीय स्थानम् । ता. निद्रा-प्रचलाहीनाश्चतस्रः प्रकृतयः ४ इति तृतीय स्थानम् । ६।६।४। ॥१०॥

दर्शनावरणस्योदयप्रकृतिचतुरात्मक उदयप्रकृतिपञ्चात्मकं स्थान च प्रद्योतयति—['णेत्ताइ दंसणाणि य' इत्यादि ।] दर्शनावरणे जाग्रज्जीवे नेत्रादिदर्शनावरणानि चत्वारि उदयन्ति । तथा हि—चक्षुरचक्षुर-वधिकेवलदर्शनावरणचतुष्क उदयात्मक स्थान ४ जाग्रज्जीवे भवति, उदय याति वा । निद्रिते जीवे निद्रादि-पञ्चकस्य मध्येऽन्यतरैकनिद्रया सह पञ्चात्मक स्थानम् । एकस्मिन् निद्रिते युगपत्पञ्च निद्रा उदय न यान्तीति हेतोरेका निद्रा चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनचतुष्कमिति पञ्चात्मक स्थान ५ निद्रितजीवे भवति । तद्यथा—दर्शनावरणस्योदयस्थान जाग्रज्जीवे मिथ्याहृष्ट्यादि-क्षीणकपायचरमसमयपर्यन्त चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शना-वरणचतुरात्मकं ४ भवति । तु पुनर्निद्रिते जीवे मिथ्यात्वादि-प्रमत्तपर्यन्त स्यानगृद्ध्यादिपञ्चसु मध्ये एकस्या-मुद्विताया पञ्चात्मकमेवं ५ । तत उपरि क्षीणकपायद्विचरमसमयपर्यन्त निद्रा-प्रचलयोर्मध्ये एकस्यामुद्वितायां पञ्चात्मकमेव ५ । तत पर तदुदयो नास्ति ॥११॥

अथ गुणस्थानेषु दर्शनावरणस्य बन्धोदयसत्त्ववस्थानत्रयसयोगान् तद्गङ्गानाह—['मिच्छग्ग्हि सासणग्ग्हि य' इत्यादि ।] दर्शनावरणे नवकबन्ध-नवकसत्त्वयोर्मिथ्याहृष्टि-सास्वादनयोर्द्वयोर्गुणस्थानयोश्चतुष्क

मि० सा०
वा पञ्चकोदयः स्यात् व० ६ ६ । ताः षड्बन्धकेषु मिश्राद्युभयश्रेण्यपूर्वकरणप्रथमभागा-
उ० ४।५ ४।५
सं० ६ ६

न्तेषु उदय-सत्त्वे एवमेव चत्वारि पञ्च वोदयः । सत्त्व नव । ६ ६
४ ५ ॥१२॥
६ ६

चतुर्वन्धकेऽपूर्वकरणस्य द्वितीयभागाद्युभयश्रेणिरूढानां वाऽनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायद्वयस्योपशम-श्रेण्यारूढानां मुनीनां च चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कबन्धे ४ सति नवप्रकृतीनां सत्ता ६ जाग्र-
जीवानां चतुर्दर्शनावरणादिचतुर्णामुदयः ४ । निद्रागतानां तु तदेकनिद्रासहितपञ्चानामुदयः ५ । ४ ५ ।
६ ६

अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः क्षपकश्रेण्यारूढानां च चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कस्य बन्धे सति स्थानगृद्धि-
त्रिक विना पट् प्रकृतीनां सत्ता, चक्षुरादिचतुर्णामुदयः ४ । अथवा निद्रितानां एकनिद्रासहिततदेवेति पञ्चानां-

४ ४

मुदयः ५ । ४ ५ ॥१३॥

६ ६

दर्शनावरण कर्मके नौ प्रकृतिक बन्ध और सत्त्वस्थानमे सभी प्रकृतियोंका बन्ध और सत्त्व होता है । छह प्रकृतिक स्थानमे स्थागृद्धित्रिकके विना शेष छहका बन्ध और सत्त्व होता है । तथा चार प्रकृतिक स्थानमें निद्रा और प्रचलाके विना शेष चारका बन्ध और सत्त्व होता है । दर्शनावरण कर्मके चार प्रकृतिक उदयस्थानमे चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृतियोंका उदय पाया जाता है । तथा पाँच प्रकृतिक उदयस्थानमे निद्रा आदि पाँच प्रकृतियोंमेसे किसी एक प्रकृति-
के उदयके साथ उक्त चार प्रकृतियोंका उदय पाया जाता है । मिथ्यात्व और सासादन गुण-
स्थानमे दर्शनावरण कर्मका नौ प्रकृतिक बन्ध और नौ प्रकृतिक सत्त्व रहता है । मिश्र गुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यन्त छह प्रकृतिक बन्ध और नौ प्रकृतिक सत्त्व रहता है । अपूर्वकरणके दूसरे भागसे लेकर उपशामक और क्षपक दोनों प्रकारके अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे, तथा उपशामक सूक्ष्मसाम्परायमे चार प्रकृतिक बन्ध और नौ प्रकृतिक सत्त्व रहता है । अनिवृत्तिकरण क्षपक और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकके चार प्रकृतिक बन्ध और छह प्रकृतिक सत्त्व रहता है ॥१०-१३॥

[मूलगा०८] ^१उवरयबंधे संते संता णव होंति छच्च खीणम्मि ।

खीणंते संतुदया चउ तेसु चयारि पंच वा उदयं ॥१४॥

० ०	० ०	०
उवसते ४ ५ खीणे ४ ५ खीणचरमसमय ४ एव सत्त्वे १३ ।		
६ ६	६ ६	४

सते इति उपशान्तकपायगुणस्थाने उपरतबन्धे अबन्धे सति नवप्रकृतिसत्तास्वरूपा भवन्ति

० ०	० ०
४ ५ । क्षीणकपायस्य क्षपकश्रेण्यां स्थानगृद्धित्रयं विना पण्णां प्रकृतीनां सत्ता ४ ४ । क्षीणकपायस्य	
६ ६	६ ६

द्विचरमान्ते पट् सत्ता । क्षीणकपायस्य चरमसमये अबन्धे सति चक्षुरादिचतुर्णामुदयः ४ । चक्षुरादिचतुर्णां

सत्ता ४ । ४ । तेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकपायोपान्त्यसमयपर्यन्तेषु जाग्रज्जीवेषु चक्षुदर्शनावरणादीनां

चतुर्णामुदयः ४ । वा निद्रितजीवानां कदाचिदेकनिद्रया सहित तदेव चतुष्कमिति पञ्चानामुदयः ५ । एवं सर्वे भङ्गास्त्रयोदश १३ ॥१४॥

१. सं० पञ्चसं० ४, १४-१७ । तथाऽग्रेतनगद्याशश्च (पृ० १५२) ।

१ श्वे० सप्ततिकायामस्याः स्थाने इमे द्वे गाथे स्तः—

वीयावरणे नवबंधगेषु चउ पंच उदय नव संता ।

छच्चउबधे चेव चउबंधुदए छलंसा ॥८॥

उवरयबंधे चउ पण नवंस चउरुदय छच्च चउसंता ।

वेयणियाउगमोहे विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥९॥

पुनरपि दर्शनावरणस्य गुणस्थानेषु रचना रचिताऽस्ति—

गु०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	उ०	क्षी०	च०
व०	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	०	०	०	०
उ०	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४
म०	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	४
उपशमश्रेणिषु—															
				गुण०	अपू०	अनि०	सू०	उप०							
				व०	६१४	४	४	०							
				उ०	४१५	४१५	४१५	४१५							
				स०	६	६	६	६							

उपरतवन्ध अर्थात् दर्शनावरणके वन्धका अभाव हो जाने पर उपशान्त मोहमे नौ प्रकृतिक सत्त्व होता है। क्षीणमोहके उपान्त्य समय तक लह प्रकृतिक सत्त्व और क्षीणमोहके अन्तिम समयमे चार प्रकृतिक सत्त्व और चार प्रकृतिक उदय रहता है। इससे पूर्ववर्ती गुणस्थानोमे जाग्रत अवस्थामे चार प्रकृतिक और निद्रित दशामे पाँच प्रकृतिक उदय रहता है ॥१४॥

उपर्युक्त कथनकी अंकसंदष्टि इस प्रकार है—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उप०	क्षी०	उ०	क्षी०	च०
वन्ध	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	०	०	०	०
उदय	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४१५	४
सत्त्व	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	४

अब वेदनीय, आयु और गोत्र कर्मके वन्ध, उदय और सत्त्वके संयोगी भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६] 'गोदेसु सत्त भंगा अट्ट य भंगा हवन्ति वेयणिण् ।

पण णव णव पण संखा आउचउक्के वि कमसो दु ॥१५॥

अथ गोत्र-वेदनीयाऽऽयुषां त्रिसयोगभङ्गान् भङ्क्त्वा गुणस्थानेषु योजयति—['गोदेषु सत्त भगा' इत्यादि ।] नीचोच्चगोत्रद्वयस्य असदृशभङ्गाः सप्त भवन्ति । ७। सातासातवेदनीयद्वयस्यासदृशभङ्गा अष्टौ भवन्ति ८। नरकगतीं नारकायुषः असदृशभङ्गा पञ्च भवन्ति ५। तिर्यग्गत्या तिर्यगायुषो भङ्गा नव विसदृशा भवन्ति ९। मनुष्यगत्या मनुष्यायुषो भङ्गा नव विसदृशा भवन्ति ९। देवगतौ देवायुषो भङ्गाः । पञ्च विसदृशाः स्युः ५। गोत्रे ७ वेद्ये ८ आयुषि ५। १। १५॥

गोत्र कर्मके सात भंग होते हैं। तथा वेदनीय कर्मके आठ भंग होते हैं। आयु कर्मकी चारों प्रकृतियोंके क्रमसे पाँच नौ, नौ और पाँच भंग होते हैं ॥१५॥

विशेषार्थ—गोत्रकर्मके सात भङ्गोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—गोत्रकर्मके दो भेद हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र। इन दोनों भेदोंमेंसे एक जीवके एक समयमें किसी एकका वन्ध और किसी एकका उदय होता है क्योंकि उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये दोनों परस्पर विरोधिनी प्रकृतियों हैं। अतएव इसका एक साथ वन्ध और उदय सम्भव नहीं है। किन्तु सत्त्व दोनोंका एक साथ

1. स० पञ्चसं० ५, १८।

१. श्वे० सप्ततिकायामस्याः स्थाने कापि गाथा नास्ति ।

पाये जानेमें कोई विरोध नहीं है। कुछ अपवादोको छोड़कर सभी जीवोंके दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है। इनमें पहला अपवाद अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंका है, क्योंकि वे दोनों उच्चगोत्रकी उद्वेलना भी करते हैं। अतः जिन्होंने उच्चगोत्रकी उद्वेलना कर दी है उनके, या वे जीव मरकर जब अन्य एकेन्द्रियादिकोमें उत्पन्न होते हैं, तब उनके भी उत्पन्न होनेके प्रारम्भिक अन्तर्मुहूर्त तक केवल एक नीचगोत्रका ही सत्त्व पाया जाता है। इसी प्रकार अयोगिकेवलीके उपान्त्य समयमें नीचगोत्रका क्षय होता है, तब उनके भी अन्तिम समयमें केवल एक उच्चगोत्रका सत्त्व पाया जाता है। इस कथनका सार यह है कि गोत्रकर्मका बन्धस्थान भी एक प्रकृतिक होता है और उदयस्थान भी एक प्रकृतिक होता है। किन्तु सत्त्वस्थान कहीं एक प्रकृतिक होता है और कहीं दो प्रकृतिक होता है। तदनुसार गोत्रकर्मके सात भंग ये हैं—१ नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और नीचगोत्रका सत्त्व; २ नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व; ३ नीचगोत्रका बन्ध, उच्चगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व; ४ उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व; ५ उच्चगोत्रका बन्ध, उच्चगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व, ६ बन्ध किसी गोत्रका नहीं, उच्चगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व, तथा ७ बन्ध किसी गोत्रका नहीं, उच्चगोत्रका उदय और उच्चगोत्रका सत्त्व। इनमेंसे पहला भंग नीचगोत्रकी उद्वेलना करनेवाले अग्निकायिक-वायुकायिक जीवोंके, और ये जीव मर कर जिन एकेन्द्रियादिकमें उत्पन्न होते हैं, उनके अन्तर्मुहूर्त कालतक पाया जाता है। दूसरा और तीसरा भंग मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंके पाया जाता है क्योंकि नीचगोत्रका बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही पाया जाता है। चौथा भंग आदिके पाँच गुणस्थानवर्ती जीवोंके सम्भव है; क्योंकि नीचगोत्रका उदय पाँचवें गुणस्थान तक ही होता है पाँचवाँ भंग आदिके दश गुणस्थानवर्ती जीवोंके सम्भव है; क्योंकि उच्चगोत्रका बन्ध दशवें गुणस्थान तक ही होता है। छठा भंग ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थानके उपान्त्य समय तक पाया जाता है। सातवाँ भंग चौदहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें पाया जाता है। इस प्रकार गोत्रकर्मके सात भंगोंका विवरण किया।

अब वेदनीय कर्मके आठ भंगोंका स्पष्टीकरण करते हैं—वेदनीय कर्मके दो भेद हैं—सातावेदनीय और असातावेदनीय। इन दोनोंमेंसे एक जीवके एक समयमें किसी एकका बन्ध और किसी एकका उदय होता है; क्योंकि, ये दोनों परस्पर विरोधिनी प्रकृतियों हैं। परन्तु किसी एक प्रकृतिके सत्तासे विच्छिन्न होने तक सत्त्व दोनोंका पाया जाता है। जब किसी एककी सत्त्वविच्छिन्ति हो जाती है, तब किसी एक ही प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। इस कथनका सार यह है कि वेदनीय कर्मका बन्धस्थान भी एक प्रकृतिक होता है और उदयस्थान भी एक प्रकृतिक होता है। किन्तु सत्त्वस्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक; इस प्रकार दो होते हैं। तदनुसार वेदनीयकर्मके आठ भंग ये हैं—१ असाताका बन्ध, असाताका उदय और दोनोंका सत्त्व; २ असाताका बन्ध, साताका उदय और दोनोंका सत्त्व; ३ साताका बन्ध, साताका उदय और दोनोंका सत्त्व; ४ साताका बन्ध, असाताका उदय और दोनोंका सत्त्व। इस प्रकार वेदनीयकर्मका बन्ध होने तक उपर्युक्त चार भंग होते हैं। तथा बन्धके अभावमें; ५ असाताका उदय और दोनोंका सत्त्व; ६ साताका उदय और दोनोंका सत्त्व; ७ असाताका उदय और असाता सत्त्व; तथा ८ साताका उदय और साताका सत्त्व, ये चार भंग होते हैं। इनमेंसे प्रारम्भके दो भंग पहले गुणस्थानसे लेकर छठे गुणस्थान तक होते हैं; क्योंकि, वहाँ तक ही असातावेदनीयका बन्ध होता है। तीसरा और चौथा भंग पहले गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक पाया जाता है; क्योंकि सातावेदनीयका बन्ध यहाँ तक ही होता है। पाँचवाँ और छठवाँ भंग चौदहवें गुणस्थानके उपान्त्य समय तक पाया जाता है; क्योंकि यहीं

तक दोनो प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है। सातवों और आठवों भंग चौदहवे गुणस्थानके अन्तिम समयमे पाया जाता है। जिन अयोगिकेवलीके उपान्त्य समयमे सातावेदनीयकी सत्त्व-व्युच्छित्ति हो गई है, उनके अन्तिम समयमें तीसरा भंग पाया जाता है और जिनके उपान्त्य समयमे असातावेदनीयकी सत्त्वव्युच्छित्ति होती है उनके अन्तिम समयमे चौथा भंग पाया जाता है। इस प्रकार वेदनीयकर्मके आठ भंगोंका विवरण किया।

चारो आयुक्रमोंके भंगोंका वर्णन भाष्यगाथाकारने आगे चलकर स्वयं किया है, अतएव यहाँ उनका वर्णन नहीं किया गया है।

अब भाष्यगाथाकार गोत्रकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

^१उच्चुच्चमुच्च णिच्चं णीचं उच्चं च णीच णीचं च ।

बंधं उदयम्मि चउसु वि संतुदयं सव्वणीचं च ॥१६॥

१ १ ० ० ०
१ ० १ ० ०
१० १० १० १० ०१०

अथ गोत्रस्य बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रिस्थानत्रिसयोगान् तद्गङ्गांश्च गुणस्थानेषु गाथान्नयेणाऽऽह—[‘उच्चुच्च-मुच्चणिच्च’ इत्यादि ।] उच्च-नीचगोत्रद्वयस्य रचना पत्तिक्रमेण बन्धोदयेषु चतुर्षु स्थानेषु प्रथमस्थाने उच्चैर्गोत्रस्य बन्धः १ उच्चैर्गोत्रस्योदयः १ । द्वितीयस्थाने उच्चैर्गोत्रस्य बन्धः १ नीचगोत्रस्योदयः ० । तृतीयस्थाने नीचैर्गोत्रस्य बन्धः ० उच्चैर्गोत्रस्योदयः १ । चतुर्थस्थाने नीचगोत्रस्य बन्धः ० नीचगोत्रस्योदयः ० । एतच्चतुर्षु स्थानेषु सत्ताद्विक उच्चैर्नीचैर्गोत्रे द्वे सत्त्वे भवतः ११० । पञ्चमभङ्गस्थाने सर्वनीचैर्गोत्र बन्धे नीचगोत्र ० उदये नीचगोत्रं ० सत्ताया नीचगोत्रम् ० । उच्चैर्गोत्रस्य संज्ञा एकाङ्कः १ । नीचगोत्रस्य संज्ञा शून्यमेव ० ॥१६॥

ब० १ १ ० ० ०
गोत्रस्य भङ्गा गुणस्थानेषु—उ० १ ० १ ० ०
स० १० १० १० १० ०१०

पंक्तिरचनाके क्रमसे प्रथम स्थानमें उच्चगोत्रका बन्ध और उच्चगोत्रका उदय लिखना । द्वितीय स्थानमें उच्चगोत्रका बन्ध और नीचगोत्रका उदय लिखना । तृतीय स्थानमें नीचगोत्रका बन्ध और उच्चगोत्रका उदय लिखना । चतुर्थस्थानमे नीचगोत्रका बन्ध और नीचगोत्रका उदय लिखना । इन चारों ही स्थानोंमें उच्च और नीच दोनों ही गोत्रोंका सत्त्व लिखना चाहिए । पाँचवे स्थानमे नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और नीचगोत्रका सत्त्व लिखना चाहिए । इस प्रकार लिखनेपर गोत्रकर्मके पाँच भंग हो जाते हैं । इनकी संदृष्टि मूलमें दी है ॥१६॥

^२मिच्छम्मि पंच भंगा सासणसम्मम्मि आइमचउक्कं ।

आइदुवं तीसुवरि पंचसु एको तहा पढमो ॥१७॥

^३मिच्छाइसु पंचण्हं विभागो—५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

मिथ्यादृष्टौ उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वं १ उच्चबन्धनीचोदयोभयसत्त्वं २ नीचबन्धोच्चोदयोभयसत्त्वं ३ नीचबन्धनीचोदयोभयसत्त्वं ४ नीचबन्धोदयसत्त्वं ५ चेति पञ्च भङ्गा मिथ्यादृष्टीना भवन्ति । सास्वादने चरिमो नेति आदिमाश्रित्वारो भङ्गा, तस्य सासादनस्य तेजोद्वयेऽनुत्पत्तेरुच्चातुद्वेलनात् । यश्चतुर्थगुणस्थाना-

१. स० पञ्चसं० ५, १६-२० । २. ५, २१ । ३. ५, ‘मिथ्यादृष्टादिषु इत्यादिगाथाशः (पृ० १३५) ।

१६ सतदुय ।

त्पतति स एव द्वितीये सासादने आगच्छति । चतुर्थे उच्चगोत्रस्य बन्धोऽस्ति, नीचस्य बन्धो नास्ति, तस्मात् द्वितीये सास्त्रादने उच्चगोत्रस्य सत्ता भवत्येव । ततोऽन्तिमो नास्ति । कुत्र ? सास्त्रादने । त्रिषु मिश्राविरत-देशविरतेषु उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वं उच्चबन्धनीचोदयोभयसत्त्वं चेति द्वौ द्वौ भङ्गौ । ततः पञ्चसु प्रमत्ताप्रमत्ता-पूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायेषु गुणस्थानेषु उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वमित्येकबन्धोच्चगोत्र ? उदयोच्च-

गोत्रं ? नीचोच्चगोत्रद्वयसत्त्वम् १ ॥१७॥
११०

इति मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु पञ्चानां विभागः कृतः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०
५	४	२	२	२	१	१	१	१	१

उक्त पाँच भंगोंमेंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें पाँचों ही भंग होते हैं । सासादनसम्यक्त्वगुण-स्थानमें आदिके चार भंग होते हैं । मिश्र, अविरत और देशविरत, इन तीन गुणस्थानोंमें आदिके दो-दो भंग होते हैं । प्रमत्तसंयतादि पाँच गुणस्थानोंमें आदिका एक ही प्रथम भंग होता है ॥१७॥

मिथ्यात्व आदि दश गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भङ्ग इस क्रमसे होते हैं—

मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म०
५	४	२	२	२	१	१	१	१	१

१^वधेण विणा पढमो उवसंताई अजोयदुचरिमम्हि+ ।
चरिमम्मि अजोयस्स उच्चं उदएण संतेण ॥१८॥

२^वउवसंताई चडसु १ १ १ १ अजोगता १ एवं सत्त्वे ७ ।
११० ११० ११० ११०

उपशान्त-क्षीणकृपाय-सयोगायोगोपान्त्यसमयान्तेषु बन्धं विना प्रथमभङ्गः उच्चोदयोभयसत्त्व-मित्येकः । अयोगस्य चरमसमये उच्चोदयसत्त्वं उ० १ । एवं गोत्रस्य गुणस्थानेषु सप्त भङ्गः विस-दशाः स्युः ७ ।

गु०	उप०	क्षीण०	स०	अयो०
उ०	१	१	१	१
स०	११०	११०	११०	११०

पुनरपि गोत्रद्वयस्य विचारः क्रियते-कर्मभूमिज-मनुष्याणामुच्चनीचगोत्रोदयो भवति । क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्यानामुच्चगोत्रमपरेषां नीचगोत्रम् । भोगभूमिजमनुष्य-चतुर्निकायदेवानामुच्चगोत्रोदयः । सर्वेषां तिरश्चां सर्वेषां नारकाणां च नीचगोत्रोदय एव भवति । उच्चगोत्रोदयागतभुज्यमानः १ सन् उच्चैर्गोत्रं वदन्ति । तदेव बन्धः, योऽसौ उच्चगोत्रस्य बन्धः कृतः, स एव सत्त्वं १ । नानाजीवापेक्षया मिथ्यादृष्टिना सासादन-

वन्धो १
स्येन जीवेन वा नीचगोत्रस्य बन्धः कृतः स एव सत्त्वरूपः ० उ० १ । अयं भङ्गः मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगवेवलि-स० १०

द्विचरममये भुज्यमानः उच्चैर्गोत्रस्योदयः स एव सत्त्वरूपः । अथवाऽधस्तनगुणस्थानेषु उच्चगोत्रं वदन्ति

१. सं० पञ्चस० ५, २२ । २. ५, 'चतुर्थ' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १५३) ।

+ व-दुच्चरिमं ।

तदेव सत्त्वमेव उच्चगोत्रोदयसत्त्व १ नीचगोत्रोदयागतभुज्यमानः सन् ० उच्चगोत्रं वध्नाति १ । तदेव सत्त्वमेव १ नानाजीवापेक्षया नीचगोत्रभुज्यमानेन केनापि मिथ्यादृष्टिना सासादनस्थेन वा नीचगोत्रं वध्ना तदेव सत्त्व कृतम् उ० नी० १ । अयं भङ्गः मिथ्यात्वादिदेशविरतपर्यन्तं भवति । उदयागतोच्चगोत्र भुज्यमानः सन् १ नीचगोत्रं वध्ना तदेव सत्त्वं कृतम् ० । नानाजीवापेक्षया केनापि जीवेनोच्चगोत्रं वध्ना उच्च-
 गोत्रं सत्त्व कृतम् उ० उ० ० । अयमपि भङ्गः वन्धापेक्षया मिथ्यात्वसास्वादनान्तं भवति । उदयागत-
 स० उ० १ नी०

नीचगोत्रं भुज्यमानः सन् ० नीचगोत्रं वध्ना नीचगोत्रं सत्त्वं कृतम् ० । सासादनापेक्षया कश्चित्तुर्थगुणस्था-
 नात्पतति । स द्वितीये सासादने समागच्छति । चतुर्थे उच्चगोत्रस्य वन्धोऽस्ति, न च नीचगोत्रस्य । तस्मा-
 त्सासादने उच्चगोत्रस्य सत्ता भवत्येव । अथवा तस्य तेजो-वायोरनुत्पत्तेरुच्चगोत्रस्यानुद्वेलेनात् ।
 व० नी०
 उ० नी० अयं भङ्गः मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य च भवति । उदयागतनीचगोत्रं भुज्यमानः सन् ०
 स० उ० १ नी०

नीचगोत्रं वध्ना तदेव सत्त्वं ० भुज्यमाननीचगोत्रसत्त्वं वा उ० नी० । अयं भङ्गो मिथ्यादृष्टेरेव भवति ।
 स० नी०

उपशान्तकपायगुणस्थानादिषु चतुर्षु एको भङ्गः । अयोगस्य चरमसमये एको भङ्गश्च । एव सप्त भङ्गाः । गोत्रस्य
 ज्ञेया भवन्ति ७ । एकाङ्क उच्चगोत्रस्य सज्ञा, नीचस्य शून्य सज्ञेति ॥१८॥

उ०	क्षी०	स०	अ० उपा०	अ० अन्त्य०
१	१	१-	१	१
१०	१०	१०	१०	१

उपशान्तकपायगुणस्थानसे आदि लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानके द्विचरम समय तक गोत्रकर्मके वन्धके विना प्रथम भंग होता है । अयोगिकेवलीके चरम समयमें उदय और सत्त्वकी अपेक्षा एक उच्चगोत्र ही पाया जाता है ॥१८॥

उपशान्तकपायसे आदि लेकर अयोगीके उपान्त्य समय तक गोत्रकर्मके भंग इस प्रकार होते हैं—

	उप०	क्षी०	सयो०	अयो० उपान्त्य
उद०	१	१	१	१
स०	१०	१०	१०	१०

अयोगीके अन्तिम समयमें १ एक यही भंग होता है । इस प्रकार गोत्रकर्मके सर्व भंग सात होते हैं । जिनकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भंग	वन्ध	उदय	सत्त्व	गुणस्थान
१	नीचगोत्र	नीचगोत्र	नीचगोत्र	१
२	नीचगोत्र	नीचगोत्र	नी० गो० उच्चगोत्र	१, २
३	नीचगोत्र	उच्चगोत्र	नी० गो० उ० गो०	१, २
४	उच्चगोत्र	नीचगोत्र	नी० गो० उ० गो०	१, २, ३, ४, ५
५	उच्चगोत्र	उच्चगोत्र	नी० गो० उ० गो०	१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०
६	०	उच्चगोत्र	नी० गो० उ० गो०	११, १२, १३, तथा १४ उ० स०
७	०	उच्चगोत्र	उच्चगोत्र	१४ का अन्तिम समय

अब वेदनीयकर्मके कौनसे भंग किस-किस गुणस्थान तक होते हैं, इस यातका निरूपण करते हैं—

^१वेदणीए गोदग्नि व षष्ठमा भंगा हवन्ति चत्वारि ।

मिच्छादिप्रमत्तं ते खलु सत्तसु वि आदिमा दोष्णि ॥१६॥

१ १ ० ०
१ ० १ ०
१० १० १० १०

^२आद्दुयं णिब्वंधं दुचरिमसमयम्हि होइ य अजोगे ।

उदयं संतमसायं सायं पुणुवरिमसमयम्मि ॥२०॥

१ ० ० १
१० १० ० १ । ८ भगाः समाप्ताः ।

वेदनीयस्य तत्रिसंयोगभङ्गान् गाथाद्वयेनाऽऽह—['वेदणीए गोदग्नि व' इत्यादि ।] वेदनीये गोत्र-वत् प्रथमा भङ्गाश्चत्वारो भवन्ति । गोत्रस्य पञ्चम भङ्ग त्यक्त्वा चत्वार आद्या भङ्गा वेद्यस्य भवन्ति । साता-सातैकतरमेव योग्यस्थाने बन्धः उदयो वा स्यात् । सत्त्व सयोगान्त द्वे द्वे अयोगे ते उदयागते । तेन वेदनीयस्य गुणस्थानं प्रति भङ्गाः मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तपर्यन्तेषु ते चत्वारो भङ्गा ४ ४ । सातबन्ध-सातोदय-सातासातोभयसत्त्वमिति प्रथमो भङ्गः १ । सातबन्धासातोदयोभयसत्त्वमिति द्वितीयो भङ्गः २ । असातव-न्धसातोदयोभयसत्त्वमिति तृतीयो भङ्गः ३ । असातबन्धोदयोभयसत्त्वमिति चतुर्थो भङ्गः ४ । इति चत्वारो भङ्गाः । मिथ्यात्व-सास्त्रादन-मिश्राविरत-देशविरत-प्रमत्तगुणस्थानेषु षट्सु प्रत्येकं चत्वारो भङ्गा भवन्ति । खलु निश्चयेनाप्रमत्तादि-सयोगान्तेषु सप्तसु द्वौ द्वौ भङ्गौ प्रत्येकं भवतः । असातावेदनीयस्य बन्धस्य षष्ठे प्रमत्ते व्युच्छेदत्वादप्रमत्तादि-सयोगान्तं केवलसातस्यैव बन्धः । ततः सातस्य बन्धः १ सातस्योदयः १

उभयसत्त्वमिति प्रथमभङ्गः १ १ । सातबन्धः १ असातोदयः ० सातासातसत्त्वम् १० इति द्वितीयभङ्ग १०

१
० २ । एवं द्वौ द्वौ भङ्गौ अप्रमत्तादि सयोगान्तं प्रत्येकं भवतः । अयोगस्य द्विचरमसमये बन्धरहितमादिसभङ्गद्वय १०

भवति । सातोदय', सातासातसत्त्व १० असातोदयः सातासातसत्त्वं १० इति द्वौ भङ्गौ अयोगस्योपा-न्त्यसमये भवतः । अयोगस्य चरमसमये असातोदयः सत्त्वमप्यसात ० उदये सात सत्तायां सातं १ नाना-जीवापेक्षया ज्ञेयमिति ॥१६-२०॥

अयोगे— १ ० ० १
१० १० ० १

इति वेदनीयस्य गुणस्थानं प्रति विसदृशभङ्गाः अष्टौ ।

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
४	४	४	४	४	४	२	२	२	२	२	२	२	४

गोत्रकर्मके समान वेदनीयकर्मके भी आदिके चार भंग होते हैं और वे निश्चयसे मिथ्यात्व-गुणस्थानसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं । अप्रमत्तसंयतको आदि लेकर ऊपरके सात

गुणस्थानोंमें आदिके दो भंग होते हैं। अयोगिकेवलीके द्विचरम समय तक वेदनीयके बन्ध विना असाताका उदय, दोनोका सत्त्व, तथा साताका उदय, दोनोका सत्त्व ये आदिके दो भंग होते हैं। पुनः अयोगीजिनके अन्तिम समयमे असाताका उदय, असाताका सत्त्व और साताका उदय, साताका सत्त्व, ये दो भंग होते हैं ॥१६-२०॥

उक्त भंगोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भंग	बन्ध	उदय	सत्त्व		गुणस्थान
१	असातावेद०	असातावेद०	असातावे०	सातावे०	१, २, ३, ४, ५, ६,
२	असातावेद०	सातावेद०	,,	,,	१, २, ३, ४, ५, ६
३	सातावेद०	असातावेद०	,,	,,	१ से १३
४	सातावेद०	सातावेद०	,,	,,	१ से १३
५	०	असातावेद०	,,	,,	१४ के उपान्त्य समय तक
६	०	सातावेद०	,,	,,	१४ के उपान्त्य समय तक
७	०	असातावेद०	असाता वेदनीय		१४ के अन्तिम समयमें
८	०	सातावेद०	साता वेदनीय		१४ के अन्तिम समयमें

इस प्रकार वेदनीय कर्मके आठ भङ्गोंका वर्णन समाप्त हुआ।

अब आयुर्कर्मके भङ्गोंका वर्णन करते हुए पहले नरकायुके भंग कहते हैं—

^१गिरयाउस्स य उदए तिरिय-मणुयाऊणब्बंघ वंघे य ।

गिरयाउयं च संतं गिरयाई दोणिं संताणि ॥२१॥

० २ ० ३ ०
१ १ १ १ १
१ १२ १२ १३ १३

अथाऽऽयुपो बन्धोदयसत्त्वस्थानभङ्गान् गाथाचतुष्केणाऽऽह—[‘गिरयाउस्स य उदये’ इत्यादि ।] नरकायुप उदये नरकायुर्भुज्यमाने तिर्यग्मनुष्यायुषोरबन्धे बन्धे च नरकायुःसत्त्व भवति, नरकादिद्वयायुः सत्त्वं भवति । तथाहि—उदयागतनरकगतौ नरकायुर्भुज्यमाने सति १ तिर्यग्मनुष्यायुषोरबन्धे ० भुज्यमाननरकायुःसत्त्वमेव १, तिर्यगायुर्बन्धे सति २ नरकतिर्यगायुःसत्त्वद्वय १२ । नरकायुर्भुज्यमाने सति १

उपरितनबन्धे ० भुज्यमाननरकायुः तिर्यगायुःसत्त्वं १ मनुष्यायुर्बन्धे सति नरक-मनुष्यायुःसत्त्वद्वयं १२

भवति १३ १ । पञ्चमभङ्गेऽबन्धे मनुष्यायुः ० भुज्यमाननरकायुः १ मनुष्यायुःसत्त्वं १ । १२ १३

तृतीयभङ्गे तिर्यगायुःसत्त्वं अबन्धे कथम् ? तथा पञ्चमभङ्गेऽबन्धे मनुष्यायुःसत्त्वं कथम् ? सत्यमेव, अहो उपरि-बन्धे अग्रे बन्धे यास्यति तदपेक्षया तदाऽऽयुस्तदभङ्गे सत्त्वम् । अयं विचारो गोम्मटसारेऽस्ति । आयुर्बन्धे अबन्धे उपरतबन्धे च एकजीवस्यैकभवे एकायुःप्रति त्रयो भङ्गा इति भङ्गाः पञ्च ५ ।

ब० ० ति २ ० म ३ ०
उ० नि० १ नि १ नि १ नि १ नि १-
स० नि० १ १ ति २ १ ति २ १म३ १म३

नरकायुष एकाङ्कः १ संज्ञा । तिर्यगायुषः द्विकाङ्कसंज्ञा २ । मनुष्यायुषश्चितयाङ्कसंज्ञा ३ । देवायु-
षश्चतुरङ्कसंज्ञा ४ । अबन्धस्य शून्यमेव संज्ञा ० । उपरते शून्यम् ० । तथा प्रकारान्तरेण नरकगत्यां
नरकायुषः पञ्च भङ्गा एते—

ब०	०	ति	०	म०	०
उ०	णि	णि	णि	णि	णि
स०	१	२	२	३	३

तथाऽऽयुषो बन्धः गोम्मटसारे प्रोक्तः—

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासावसिट्ठगे सगाउस्स ।

णरतिरिया सन्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥२॥

भोगभुमा देवायुं छम्मावसिट्ठगे य बंधंति ।

इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तगा तिरियं ॥३॥

परभवायुः स्वभुज्यमानायुष्युत्कृष्टेन षण्मासेऽवशिष्टे देव-नारकाः नार तैरश्च चायुर्बन्धन्ति, तद्वन्ध-
योग्याः स्युरित्यर्थः । नर-तिर्यश्चस्त्रिभागेऽवशिष्टे चत्वारि आयुंषि बन्धन्ति । भोगभूमिजाः षण्मासेऽवशिष्टे
दैवमायुर्बन्धन्ति । एक-विकलेन्द्रियाः नारं तैरश्च चायुर्बन्धन्ति । तेजोवायवः सप्तमपृथ्वीजाश्च तैरश्चमेवायु-
बन्धन्ति । नारकादीनामेकं स्व-स्वगत्यायुरेवोदेति १ । सत्त्वं परभवायुर्बन्धे उदयागतेन समं द्वे स्तः ।
अबद्धायुष्ये सत्त्वमेकमुदयागतमेव १ ॥२१॥

नवीन आयुके अबन्धकालमे नरकायुका उदय और नरकायुका सत्त्वरूप एक भंग होता
है । तिर्यगायु या मनुष्यायुके बन्ध हो जाने पर नरकायुका उदय और नरकायुके सत्त्वके
साथ तिर्यगायु और मनुष्यायुका सत्त्व पाया जाता है ॥२१॥

विशेषार्थ—आयुर्कर्म की उसके बन्ध-अबन्धकी अपेक्षा तीन दशाएँ होती हैं—१ परभव-
सम्बन्धी आयुके बंधनेसे पूर्वकी दशा, २ परभवसम्बन्धी आयुके बन्धकालकी दशा और ३ पर-
भवसम्बन्धी आयुके बंध जानेके उत्तरकालकी दशा । इन तीनों दशाओंको क्रमसे अबन्धकाल,
बन्धकाल और उपरतबन्धकाल कहते हैं । इनमेंसे नारकियोंके अबन्धकालमे नरकायुका उदय
और नरकायुकी सत्त्वरूप एक भंग होता है । बन्धकालमे तिर्यगायुका बन्ध, नरकायुका उदय
और तिर्यच-नरकायुकी सत्ता, तथा मनुष्यायुका बन्ध, नरकायुका उदय और मनुष्य-नरकायुकी
सत्ता ये दो भंग होते हैं । उपरतबन्धकालमे नरकायुका उदय और नरक-तिर्यगायुकी सत्ता, तथा
नरकायुका उदय और नरक-मनुष्यायुकी सत्ता ये दो भंग होते हैं । इस प्रकार नरकगतिमें आयुके
अबन्ध, बन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा कुल पाँच भंग होते हैं । मूलमें जो अंकसंदृष्टि दी है
उसमें एकके अंकसे नरकायुका दोके अंकसे तिर्यगायुका तीनके अंकसे मनुष्यायुका और चारके
अंकसे देवायुका संकेत किया गया है ।

नरकायुके उक्त भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भंग	काल	बन्ध	उदय	सत्त्व
१	अबन्धकाल	०	नरकायु	नरकायु
२	बन्धकाल	तिर्यगायु	नरकायु	नरकायु, तिर्यगायु
३	"	मनुष्यायु	नरकायु	" मनुष्यायु
४	उपरतबन्धकाल	०	नरकायु	" तिर्यगायु
५	"	०	नरकायु	" मनुष्यायु

अव तिर्यगायुके भंग कहते हैं—

^१तिरियाउयस्स^१ उदए चउणहमाऊणऽबन्ध बंधे य ।

तिरियाउयं च संतं तिरियाई दोणि संताणि ॥२२॥

० १ ० २ ० ३ ० ४ ०
२ २ २ २ २ २ २ २ २
२ २।१ २।१ २।२ २।२ २।३ २।३ २।४ २।४

तिर्यगायुप उदये भुज्यमाने सति चतुर्णां नरक-तिर्यग्मनुष्यदेवायुषा अबन्धे बन्धे च सति तिर्यगायु-
सत्त्वम् यदभुज्यमान तिर्यगायुस्तदेव सत्त्वम् २ । सर्वत्र चतुर्णामायुर्वन्धे उपरमे बन्धमग्रे यास्यति तत्र
सर्वत्र तिर्यगायुरादिद्वयमेव सत्त्वम् । तथाहि—उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमाने २ अबन्धे सति ० यद्भुज्यमान

तिर्यगायुस्तदेव सत्त्वं २ एको भङ्गः १ । तिर्यगायुरुदयागतभुज्यमाने प्रथम नरकायुर्वद्ध्वा १ तदेव सत्त्व १
२

भुज्यमानतिर्यगायुः २ सत्त्वं चेति १ द्वितीयो भङ्गः २ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमाने २ उपरमे
२।१

नरकायुर्वन्ध करिष्यति तदेव सत्त्वम् १ । तिर्यगायुर्भुज्यमानं सत्त्व च ० इति तृतीयो भङ्गः ३ ।
२।१

भुज्यमानोदयागततिर्यगायुः २ तिर्यगायुर्वद्ध्वा २ तदेव सत्त्वं २ भुज्यमानसत्त्व च इति चतुर्थो २ भङ्गः ४ ।
२।२

उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् २ उपरिमबन्धे ० अग्रे तिर्यगायुर्वन्धं करिष्यति तदेव सत्त्व २ इति पञ्चमो
२।२

भङ्गः ५ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् २ मनुष्यायुर्वद्ध्वा तदेव सत्त्व ३ भुज्यमानः सत्त्व च २ इति
२।३

षष्ठो भङ्गः ६ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् २ उपरिमबन्धे मनुष्यायुर्वन्धं करिष्यति तदेव सत्त्वं ३
भुज्यमानसत्त्व च ० इति सप्तमो भङ्गः ७ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् २ चतुर्थदेवायुर्वद्ध्वा
२।३

तदेव सत्त्व ४ भुज्यमानसत्त्वं च २ इति अष्टमो भङ्गः ८ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् अग्रे देवायु-
२।४

र्वन्धं करिष्यति, तदेव सत्त्व ४ भुज्यमानसत्त्व च २ २ इति नवमो भङ्गः ॥२२॥
२।४

तथा समुच्चयरचना नवभङ्गाः प्रस्तारिताः—

वं०	०	णि १	०	ति २	०	म ३	०	दे ४	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २
स०	ति २	ति २।१	ति २।३	२।२	२।२	ति २।३	२।३	२।४	२।४

१. स०पञ्चस० ५, २८ ।

❀ तिरियाउस्स य ।

तिर्यगायुके उदयमें और चारो आयुक्रमोंके अबन्धकालमें, तथा बन्धकालमे क्रमशः तिर्यगायुकी सत्ता, और तिर्यगायुके साथ नरकादि चारो आयुक्रमोंमेसे एक-एक आयुकी सत्ता, इस प्रकार दो आयुक्रमोंकी सत्ता पायी जाती है ॥२२॥

विशेषार्थ—तिर्यग्गतिमे अबन्धकालमे तिर्यचायुका उदय और तिर्यचायुकी सत्ता, यह एक भंग होता है। बन्धकालमें १ नरकायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और नरक-तिर्यगायुकी सत्ता २ तिर्यगायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और तिर्यञ्च-तिर्यगायुकी सत्ता, ३ मनुष्यायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और मनुष्य-तिर्यगायुकी सत्ता; तथा ४ देवायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय, और देव-तिर्यगायुकी सत्ता, ये चार भंग होते हैं। उपरतबन्धकालमे १ तिर्यगायुका उदय, और नरक-तिर्यगायुकी सत्ता; २ तिर्यगायुका उदय और तिर्यञ्च-तिर्यगायुकी सत्ता; ३ तिर्यगायुका उदय और मनुष्य-तिर्यगायुकी सत्ता; तथा तिर्यगायुका उदय और देव-तिर्यगायुकी सत्ता; ये चार भंग होते हैं। इस प्रकार तिर्यग्गतिमे अबन्ध, बन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा आयुक्रमके कुल नौ भङ्ग होते हैं।

तिर्यगायुके उक्त भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भङ्ग	काल	बन्ध	उदय	सत्त्व
१	अबन्धकाल	०	तिर्यगायु	तिर्यगायु
२	बन्धकाल	नरकायु	„	नरकायु, तिर्यगायु
३	„	तिर्यगायु	„	तिर्यगायु, तिर्यगायु
४	„	मनुष्यायु	„	मनुष्यायु, तिर्यगायु
५	„	देवायु	„	देवायु, तिर्यगायु
६	उपरतबन्धकाल	०	„	तिर्यगायु, नरकायु
७	„	०	„	तिर्यगायु, तिर्यगायु
८	„	०	„	तिर्यगायु, मनुष्यायु
९	„	०	„	तिर्यगायु, देवायु

अब मनुष्यायुके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

^१मणुयाउस्स य उदए चउण्हमाऊणऽबन्ध बंधे य ।

मणुयाउयं च संतं मणुयाई दोण्णि संताणि ॥२३॥

० १ ० २ ० ३ ० ४ ०
 ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३
 ३ ३।१ ३।१ ३।२ ३।२ ३।३ ३।३ ३।४ ३।४

मनुष्यायुप उदये चतुर्णां नरक-तिर्यग्मनुष्य-देवायुषामबन्धके चतुर्णामायुषां बन्धके च मनुष्यायुः-सत्त्वम् ३ । अन्यत्र मनुष्यायुरादिद्वय सत्त्व १ । तथाहि—उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् ३ अबन्धे सति

तदेव भुज्यमानमेव सत्त्वम् । ३ प्रथमो भङ्गः । उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् नरकायुर्बद्धा तदेव

सत्त्वं १ भुज्यमानसत्त्वं च ३ द्वितीयो भङ्गः २ । उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः अबन्धेऽग्रे नरकायु-

०
वन्धं करिष्यति, तदेव सत्त्वं भुज्यमानसत्त्वं च ३ तृतीयो भङ्गः ३ । उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् तिर्यगायु २
३।१

२
वद्ध्वा तदेव सत्त्वं २ भुज्यमानसत्त्वं च ३ चतुर्थो भङ्गः ४ । मनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् अबन्धे तिर्यगायु-
२।२

०
वन्धयिष्यति, तदेव सत्त्वं भुज्यमानसत्त्वं च ३ पञ्चमो भङ्गः ५ । उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् तृतीयं
३।२

३
मनुष्यायुर्वद्ध्वा ३ तदेव सत्त्वं भुज्यमानसत्त्वं च ३ षष्ठो भङ्गः ६ । मनुष्यायुर्भुज्यमानः अबन्धे ० अग्रे मनु-
३।३

०
प्यायुर्वन्धयिष्यति तदेव सत्त्वं ३ भुज्यमानसत्त्वं ३ च ३ सप्तमो भङ्गः ७ । उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः
३।३

४
सन् देवायुश्चतुर्थं ४ वद्ध्वा तदेव सत्त्वं भुज्यमानसत्त्वं च ३ अष्टमो भङ्गः ८ । उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः
३।४

०
अग्रे देवायुष्यं वन्धयिष्यति तदेव सत्त्वं ४ भुज्यमानसत्त्वं च ३ नवमो भङ्गः ९ ॥२३॥
३।४

व०	०	णि १	०	ति २	०	म ३	०	दे ४	०
उ०	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३
स०	म ३	म ३।१	म ३।१	म ३।२	म ३।२	म ३।३	म ३।३	म ३दे ४	म ३दे ४

इति मनुष्यायुषो नव भङ्गाः समाप्ताः ।

मनुष्यायुके उदयमें और चारो आयुक्रमोंके अबन्धकालमें तथा बन्धकालमें क्रमशः मनुष्यायुकी सत्ता, एवं मनुष्यायुकी सत्ताके साथ नरकादि शेष चारो आयुक्रमोंमेंसे एक-एक आयुकी सत्ता; इस प्रकार दो आयुक्रमोंकी सत्ता पायी जाती है ॥२३॥

विशेषार्थ—मनुष्यगतिमें भी तिर्यगगतिके समान ही नौ भङ्ग होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—अबन्धकालमें मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुकी सत्ता रूप एक ही भङ्ग होता है । बन्धकालमें १ नरकायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और नरक-मनुष्यायुकी सत्ता, २ तिर्यगायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और तिर्यग् मनुष्यायुकी सत्ता; ३ मनुष्यायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और मनुष्य-मनुष्यायुकी सत्ता, तथा ४ देवायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और देव-मनुष्यायुकी सत्ता; ये चार भङ्ग होते हैं । उपरतबन्धकालमें १ मनुष्यायुका उदय, और नरक-मनुष्यायुकी सत्ता; २ मनुष्यायुका उदय और तिर्यग्मनुष्यायुकी सत्ता, ३ मनुष्यायुका उदय और मनुष्य-मनुष्यायुकी सत्ता, तथा ४ मनुष्यायुका उदय और देव-मनुष्यायुकी सत्ता, ये चार भङ्ग होते हैं । इस प्रकार मनुष्यगतिमें अबन्ध, बन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा कुल नौ बन्ध होते हैं ।

मनुष्यायुके उक्त भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भङ्ग	काल	बन्ध	उदय	सत्ता
१	अबन्धकाल	०	मनुष्यायु	मनुष्यायु
२	बन्धकाल	नरकायु	"	मनुष्यायु नरकायु
३	"	तिर्यगायु	"	" तिर्यगायु
४	"	मनुष्यायु	"	" मनुष्यायु
५	"	देवायु	"	" देवायु
६	उपरतबन्धकाल	०	"	" नरकायु
७	"	०	"	" तिर्यगायु
८	"	०	"	" मनुष्यायु
९	"	०	"	" देवायु

अब देवायुके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

१ देवाउस्स य उदये तिरिय-मणुयाऊणऽबन्ध बंधे य ।

देवाउयं च संतं देवाई दोणिण संताणि ॥२४॥

० २ ० ३ ०
४ ४ ४ ४ ४
४ ४।२ ४।२ ४।३ ४।३

देवायुप उदये भुज्यमाने तिर्यग्मनुष्यायुपोरबन्धके बन्धके च देवायुः-सत्त्वं बन्धकादिचतुर्षु भङ्गेषु देवायुस्तिर्यगायुर्द्वयं सत्त्वं २, देवायुधर्ममनुष्यायुर्द्वयं सत्त्वं च [इति पञ्च भङ्गाः ५ ।] ॥२४॥

ब०	०	ति२	०	म३	०
उ०	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४
स०	दे ४	दे ४।२	दे ४।२	दे ४।३	दे ४।३

इति देवायुपः पञ्च भङ्गाः समाप्ताः ।

देवायुके उदयमे और तिर्यगायु तथा मनुष्यायुके अबन्ध और बन्धकालमें क्रमशः देवायुकी सत्ता और देवायु-मनुष्यायु तथा देवायु-तिर्यगायुकी सत्ता पायी जाती है ॥२४॥

विशेषार्थ—देवगतिमें नरकगतिके समान ही पाँच भङ्ग होते हैं, इसका कारण यह है कि जिस प्रकार नारकियोंके नरकायु और देवायुका बन्ध नहीं होता है, उसी प्रकार देवोंके भी इन्हीं दोनों आयुक्रमोंका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि स्वभावतः देव मरकर देव और नारकियोंमें, तथा नारकी मरकर नारकी और देवोंमें जन्म नहीं लेते हैं। देवगतिके पाँच भङ्गोंका विवरण इस प्रकार है—अबन्धकालमे देवायुका उदय और देवायुका सत्त्वरूप एक ही भङ्ग होता है। बन्धकालमें १ तिर्यगायुका बन्ध, देवायुका उदय और देव-तिर्यगायुकी सत्ता, २ मनुष्यायुका बन्ध, देवायुका उदय और देव-मनुष्यायुकी सत्ता; ये दो भङ्ग होते हैं। उपरत बन्धकालमे देवायुका १ उदय और देव-तिर्यगायुकी सत्ता, तथा २ देवायुका उदय और देव-मनुष्यायुकी सत्ता, ये दो भङ्ग होते हैं। इस प्रकार देवगतिमे कुल पाँच भङ्ग होते हैं।

देवायुके भङ्गोकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भङ्ग	काल	बन्ध	उदय	सत्ता
१	अवन्धकाल	०	देवायु	देवायु
२	वन्धकाल	तिर्यगायु	„	देवायु तिर्यगायु
३	„	मनुष्यायु	„	„ मनुष्यायु
४	उपरतवन्धकाल	०	„	„ तिर्यगायु
५	„	०	„	„ मनुष्यायु

अब मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १०] 'वावीसमेकवीसं सत्तारस तेरसेव नव पंच ।

चउ-तिय-दुयं च एयं बंधङ्गाणाणि मोहस्स' ॥२५॥

२२।२१।१७।१३।१५।४।३।२१।

अथ मोहनीयस्य बन्धस्थानानि, तथा तानि गुणस्थानेषु गाथापञ्चकेनाऽऽह—['वावीसमेकवीस' इत्यादि ।] मोहस्य बन्धस्थानानि द्वाविंशतिकं २२ एकविंशतिकं २१ सप्तदशक १७ त्रयोदशक १३ नवक ६ पञ्चक ५ चतुष्क ४ त्रिक ३ द्विकं २ एकक १ चेति दश स्थानानि भवन्ति ॥२५॥

२२।२१।१७।१३।१५।४।३।२१।

बाईसप्रकृतिक, इक्कीसप्रकृतिक, सत्तरहप्रकृतिक, तेरहप्रकृतिक, नौप्रकृतिक, पाँच-प्रकृतिक, चारप्रकृतिक, तीनप्रकृतिक, दोप्रकृतिक और एकप्रकृतिक; इस प्रकार मोहनीयकर्मके दश बन्धस्थान होते हैं ॥२५॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२२।२१।१७।१३।१५।४।३।२१।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मकी उत्तरप्रकृतियों अट्ठाईस हैं उनमेंसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिका बन्ध नहीं होता है, अतएव बन्धयोग्य शेष छब्बीस प्रकृतियों रहती हैं। इनमें भी तीन वेदोंका एक साथ बन्ध नहीं होता, किन्तु एक कालमें एक वेदका ही बन्ध होता है। तथा हास्य-रति और अरति-शोक; इन दोनों युगलोंमेंसे एक कालमें किसी एक युगलका ही बन्ध होता है। इस प्रकार छब्बीस प्रकृतियोंमेंसे दो वेद और किसी एक युगलके कम हो जानेपर बाईस प्रकृतियों शेष रहती हैं, जिनका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें होता है। मिथ्यात्वप्रकृतिका बन्ध पहले गुणस्थान तक ही होता है, अतः दूसरे गुणस्थानमें उसके बन्ध न होनेसे शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। नपुंसकवेदका भी बन्ध यद्यपि दूसरे गुणस्थानमें नहीं होता है, तथापि उसके न बंधनेसे इक्कीस प्रकृतियोंकी संख्यामें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हाँ, भङ्गोंमें अन्तर अवश्य हो जाता है। अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कका बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं। अतएव उक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे चार प्रकृतियोंके कम कर देनेपर तीसरे और चौथे गुणस्थानमें सत्तरह प्रकृतिकस्थानका बन्ध होता है। यद्यपि इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदका भी बन्ध नहीं होता है, तथापि उससे सत्तरह प्रकृतियोंकी संख्यामें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हाँ, भङ्गोंमें भेद अवश्य हो जाता है। अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कका बन्ध चौथे गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं। अतः सत्तरह प्रकृतिस्थानमेंसे उनके कम कर देनेपर पाँचवें गुणस्थानमें तेरहप्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कका बन्ध पाँचवें गुणस्थान

1. सं० पञ्चस० ५, ३१-३२ ।

१. सप्ततिका० १० ।

तक ही होता है, आगे नहीं। अतः तेरह प्रकृतिकस्थानमेंसे उनके कम कर देनेपर छठे गुणस्थानमें नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। अरति और शोकप्रकृतिका बन्ध यद्यपि छठे गुणस्थान तक ही होता है, तथापि हास्य और रति प्रकृतिके बन्ध होनेसे सातवें और आठवें गुणस्थानमें भी नौ प्रकृतिक स्थानके बन्ध होनेमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हास्य-रति और भय-जुगुप्साका बन्ध आठवें गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं। अतः नौ प्रकृतिक स्थानमेंसे इन चार के कम हो जानेसे शेष पाँच प्रकृतिक स्थानका बन्ध नवें गुणस्थानके प्रथम भाग तक होता है। नवें गुणस्थानके दूसरे भागमें पुरुषवेदका बन्ध नहीं होता, अतः वहाँ पर चार प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। तीसरे भागमें संज्वलन क्रोधका बन्ध नहीं होता, अतः वहाँ पर तीन प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। चौथे भागमें संज्वलनमानका बन्ध नहीं होता है, अतः वहाँ पर दो प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। पाँचवें भागमें संज्वलन मायाका बन्ध नहीं होता, अतः वहाँ पर एक प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। इस प्रकार नवें गुणस्थानके पाँच भागोंमें क्रमसे पाँच प्रकृतिक, चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक ये पाँच बन्धस्थान होते हैं। दशवें गुणस्थानमें एक प्रकृतिक बन्धस्थानका भी अभाव है; क्योंकि वहाँ पर मोहनीयकर्मके बन्धका कारणभूत बादर कषाय नहीं पाया जाता।

अब भाष्यगाथाकार उक्त अर्थका ही स्पष्टीकरण करते हैं—

^१मिच्छामि य वावीसा मिच्छा सोलह कसाय वेदो य ।

हस्सजुयलेकणिंदाभएण विदिए दु मिच्छ-संदूणा ॥२६॥

	२		२
	२२		२ २
^२ मिच्छे २२ पत्थारो—	१ १ १ । सासणे २० पत्थारो—		१ १
	१६		१६
	१		

मिथ्यात्वे मिथ्यात्व १ षोडश कषायाः १६ वेदानां त्रयाणां मध्ये एकतरवेदः १ हास्यरतियुग्माऽरति-शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्म २ भययुग्म २ सर्वस्मिन् मिलिते द्वाविंशतिक मोहनीयबन्धस्थानं मिथ्यादृष्टौ मिथ्यादृष्टिर्ब्रह्मातीत्यर्थः । मिथ्यादृष्टौ बन्धकूटे एकस्मिन् मिथ्यादृष्टिर्जावे द्वाविंशतिकं बन्धस्थानं सम्भवति ।

२ भ० जु

२ । २ हा

१ १ १ वे तद्गङ्गाः हास्यरतिद्विकाभ्यां २ वेदत्रये ३ हते पट् । सासादनगुणस्थाने मिथ्यात्व-षण्ठवेदोना

१६ क

१ मि

२

एते २१ । प्रस्तारः कूटं वा २।२ षोडश कषाया १६ भयद्वयं २ वेदयोर्द्विकयोर्मध्ये १ हास्यदियुग्मं २

१६

मिलिते एकविंशतिकं २१ । तद्गङ्गा वेदद्वय-युग्मद्वयजाश्चत्वारः ॥२६॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, तथा भय और जुगुप्सा, इन बाईस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। दूसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्व और नपुंसकवेदके विना शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है ॥२६॥

उक्त दोनों गुणस्थानोंके बन्धप्रकृतियोंकी प्रस्तार-रचना मूलमें दी है ।

१. स० पञ्चस० ५, ३३-३४ । २. ५, 'मिथ्यादृष्टौ' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० १५५)

^१पठमचउक्केणित्थीरहिया मिस्से अविरयसम्मे य ।
विदिएणूणा देसे छट्ठे तइऊण सत्तमट्ठे य ॥२७॥

मिस्सस्स असजयाण १७ पत्थारो—^२_१ देसे १३ पत्थारो—^२_१ पमत्ते ६ पत्थारो—^२_१ ।
१२ ८ ४

अनन्तानुबन्धिप्रथमचतुर्थ-(क) स्त्रीवेदेन १ रहिताः पूर्वोक्ताः सप्तदशक १७ मिश्रासयतयोः प्रस्तारः

^२_१ । द्वादशकपाय १२ भयद्विवेषु २ पुवेदे १ द्विकयोरेकस्मिन् २ च मिलिते सप्तदशकम् १७ ।
१२

तद्भङ्गाः हास्यारतिद्विकजौ द्वौ ^{१७}_२ । ^{१७}_२ । अप्रत्याख्यानद्वितीयचतुष्कोनाः त्रयोदशे १३ प्रस्तारः

देशसयतगुणस्थाने ^२_१ । अष्टकपाय-भयद्वय १० पुवेदे द्विकयोरेकस्मिन् २ च मिलिते त्रयोदशकं १३ ।
८

तद्भङ्गाः द्विकद्वयजौ द्वौ ^{१३}_२ । प्रत्याख्यानतृतीयचतुष्केन रहिताः षष्ठे, प्रमत्ते सप्तमाष्टमयोश्च प्रमत्ते ६ ।

प्रस्तारः ^२_१ कपायचतुष्क-भयद्विक-पुवेदेषु ७ द्विकयोरेकस्मिन् च मिलिते नवकम् । तद्भङ्गाः द्विक-
४

द्वयजौ ^६_२ ॥२७॥

प्रथम कषाय अनन्तानुबन्धिचतुष्क और स्त्रीवेदके विना शेष सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध मिश्र और अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे होता है । द्वितीय कषायचतुष्कके विना शेष तेरह प्रकृतियोंका बन्ध देशविरत गुणस्थानमे होता है । तृतीय कषायचतुष्कके विना शेष नौ प्रकृतियोंका बन्ध छठे, सातवें और आठवें गुणस्थानमें होता है ॥२७॥

उक्त गुणस्थानोंके बन्ध-प्रकृतियोंकी प्रस्तार-रचना मूलमें दी है ।

^२अरइ-सोएणूणा परम्मि पुंवेय-संजलणा ।

एगेगूणा एवं दह ठाणा मोहबंधम्मि ॥२८॥

अप्पमत्तापुव्वकरणेषु ६ पत्थारो—^२_१ अणियट्ठिम्मि—५।४।३।२।१ ।
४

अरतिशोकाभ्यामूनाः अप्रमत्ते अपूर्वकरणे च प्रस्तारः ६ । चतुःसज्ज्वलनभयद्विकेषु ६ पुवेदे १

हास्यद्विके २ च मिलिते नवकम् ^२_१ । तद्भङ्ग एकः । अत्र हास्यद्विक-भयद्विके व्युच्छिन्ने परस्मिन् अनिवृत्ति-
४

करणे प्रस्तारः ५ । कपायचतुष्क पुंवेद इति पञ्चकम् ^१ । तद्भङ्गः १ । अत्र पुवेदो व्युच्छिन्नः । द्वितीयभागे कपायचतुष्कम् ४ । तद्भङ्गः ^४ । क्रोधो व्युच्छिन्नः । तृतीयभागे कपायत्रिकम् ३ । भङ्गः ^३ । मानो व्युच्छिन्नः । चतुर्थभागे कपायद्वयम् २ । भङ्ग एककः ^२ । माया व्युच्छिन्ना । पञ्चमभागे लोभ एकः १ । भङ्ग एकः ^१ । इति मोहबन्धे दश स्थानानि ॥२८॥

अरति और शोकका बन्ध छठे गुणस्थान तक ही होता है । हास्य-रति और भय-जुगुप्सा-का बन्ध आठवे गुणस्थान तक होता है । अतएव नवें गुणस्थानके प्रथम भागमें पुरुषवेद और संव्वलनचतुष्क, इन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध होता है । नवें गुणस्थानके आगेके चार भागोंमें क्रमसे पुरुषवेद आदि एक-एक प्रकृतिका बन्ध कम होता जाता है, अतः चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक स्थानोंका बन्ध उन भागोंमें होता है । इस प्रकार मोहनीय कर्मके बन्धके विषयमें उक्त दश स्थान होते हैं ॥२८॥

उक्त गुणस्थानोंके बन्धप्रकृतियोंकी प्रस्तार-रचना मूलमें दी है ।

अब उपर्युक्त बन्धस्थानोंके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ११] ^१छव्वावीसे चउ इगिवीसे सत्तरस तेर दो दोसु ।

णवबंधए वि दोणिण य एगेगमदो परं भंगा ॥२९॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

उक्तभङ्गसंख्यामाह—['छव्वावीसे चउ' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणान्तेपूक्तमोहनीय-बन्धस्थानेषु भङ्गाः द्वाविंशतिके पट्, एकविंशतिके चत्वारः, सप्तदशके द्वौ, त्रयोदशके द्वौ, नवकबन्धे द्वौ । अतः परं उपरि सर्वस्थानेषु एकैको भङ्गः ॥२९॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

२२ २१ १७ १७ १३ ६ ६ ६ ५ ४ ३ २ १
६ ४ २ २ २ २ १ १ १ १ १ १ १

भङ्ग इति कोऽर्थः ? (१) मिथ्यात्वे २२ पट् सप्तदशभङ्गा भवन्ति । सर्वत्र ज्ञेय यथासम्भवम् । इति मोहस्य बन्धस्थानानि ।

चाईसप्रकृतिक बन्धस्थानके छह भंग होते हैं । इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानके चार भङ्ग होते हैं । सत्तरह और तेरह प्रकृतिक बन्धस्थानके दो दो भङ्ग होते हैं । नौप्रकृतिक बन्धस्थानके भी दो भङ्ग होते हैं । इससे परवर्ती पाँचप्रकृतिक आदि शेष बन्धस्थानोंका एक एक भङ्ग होता है ॥२९॥

उक्त बन्धस्थानोंके भङ्गोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनिवृत्तिकरण
बन्धस्थान	२२	२१	१७	१७	१३	६	६	६	५ ४ ३ २ १
भङ्ग	६	४	२	२	२	२	१	१ १ १ १ १	

१. स० पञ्चसं० ५, ३५ ।

१. सप्ततिका० १४ ।

अव मोहनीय कर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १२] ^१एकं च दो व चत्वारि तदो एयाधिया दसुकस्सं ।

ओघेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि णव होंति ॥३०॥

१०।६।८।७।६।५।४।३।१।

अथ मोहस्योदयस्थानानि गुणस्थानेषु तानि च योजयति गाथात्रयेण—['एकं च दो व चत्वारि' इत्यादि ।] मोहनीये उदयस्थानानि एकक १ द्विक २ चतुष्क ४ तत एकाधिका दशोत्कृष्ट यावत् पञ्चक ५ षट्क ६ सप्तक ७ अष्टक ८ नवक ९ दशक १० ओघवद् गुणस्थानोक्तवत् । मोहनीये एव नवोदयस्थानानि भवन्ति ॥३०॥

१०।६।८।७।६।५।४।३।१।

ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मके उदयस्थान नौ होते हैं । गाथामें उनका निर्देश पश्चादानु-पूर्वीसे किया गया है, किन्तु कथनकी सुविधासे उन्हें इस प्रकार जानना चाहिए—दशप्रकृतिक, नौप्रकृतिक, आठप्रकृतिक, सातप्रकृतिक, छहप्रकृतिक, पाँचप्रकृतिक, चारप्रकृतिक, दोप्रकृतिक और एकप्रकृतिक, ईस प्रकार मोहकर्मके सर्व उदयस्थान नौ होते हैं ॥३०॥

इसकी अंकसंहति इस प्रकार है—१०।६।८।७।६।५।४।३।१ ।

अव भाष्यगाथाकार उक्त उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंको कहते हैं—

^२मिच्छा कोहचउक्कं अण्णदरं तिवेद एकयरं ।

हस्सादिजुगस्सेयं भयणिंदा होंति दस उदया ॥३१॥

^३मिच्छत्तण कोहाई विदियं तदियं च हापए कमसो ।

भयजुयलेगं दोणिंय हस्साई वेदएकयरं ॥३२॥

^३एव दसगोदयसमासादो* कमेण मिच्छत्तादीहि अवणिदेहिं सेसोदया । ६।८।७।६।५।४।३।१।

मिथ्यात्वमेक १ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसज्जलनक्रोधमानसायालोभकपायाणां षोडशानां मध्ये अन्यतमक्रोधादिचतुष्क ४ त्रिषु वेदेष्वेकतमो वेद. १ हास्यरत्यरतिशोकयुगलयोर्मध्ये एकतरयुगम २ भय जुगुप्सा १ चेति १।४।१।२।१।१।१ एकीकृता उदया दश द्वाविंशतिवन्धस्थाने मिथ्यादृष्टौ एकस्मिन् जीवे १० सम्भवन्ति । दशोदयस्थानतो मिथ्यात्वमेक हीयते हीनः क्रियते, तदा सासादने उदयस्थान नवकम् ९ । ततः अनन्तानुबन्धिक्रोधादिचतुष्कत्यागे अपरचतुष्कत्रयैकतमत्रयग्रहणे एकतरवेदादिपञ्चकग्रहणे च ५ एव मोहप्रकृत्युदयस्थान अष्टकम् ८ मिश्रस्य सम्यग्मिथ्यादृष्टेरविरतगुणस्थानस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः वा ज्ञायिक-सम्यग्दृष्टेश्च भवति ८ । ततो द्वितीयाप्रत्याख्यानचतुष्कत्यागे अन्यचतुष्कद्वयान्यतरद्वयग्रहणे २ एकतरवेदादि-पञ्चकग्रहणे च ५ एव मोहप्रकृत्युदयस्थान सप्तकम् ७ सयतासयतस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः ज्ञायिकसम्यग्दृष्टेश्च भवति ७ । ततस्तृतीयप्रत्याख्यानचतुष्कत्यागे चतुर्णां सज्जलनानामेकतरग्रहणे १ एकतरवेदादिपञ्चकग्रहणे च ५ एव षट् मोहप्रकृतयः औपशमिक-ज्ञायिकसम्यग्दृष्टीना प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणाना भवन्ति ६ । ततो भयमेकं हापयेद् दूरीक्रियेत, तदा मोहप्रकृतिपञ्चकस्थानम् ५ । ततो जुगुप्सात्यागे चतुर्दशस्थान प्रमत्तादीना च भवति ४ । ततो हास्यादिद्वयत्यागे चतुर्णां सज्जलनानामेकतरग्रहणे १ त्रयाणां वेदानामेकतरग्रहणे १ सवेदस्यानिवृत्तिरुत्तरणस्य द्विकमुदयस्थानं २ निर्वेदस्यानिवृत्तिरुत्तरणस्य चतुर्णां सज्जलनानामेकतरैकमुदयस्था-नम् । अवन्धकस्य सूचमसात्परायस्य सूचमलोभस्यैकमुदयस्थानम् १ ॥३१-३२॥

एव दशकोदयसमूहात्क्रमेण मिथ्यात्वादिभिरपनीतैः शेषोदयाः ६।८।७।६।५।४।३।१।

१. स० पञ्चस० ५, ३८ । २. ५, ३६-४० । ३. ५, ४१ । ४. ५, 'अस्यार्थः—दशोदयस्थानतो'

इत्यादि गद्यभागः (पृ० १५७) ।

२. सप्ततिका० ११ ।

*द सयासादो ।

मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि चारों जातिकी सोलह कषायोंमेंसे कोई एक क्रोधादि-चतुष्क, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक, इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन दश प्रकृतियोंका उदय एक जीवमें एक साथ मिथ्यात्वगुणस्थानमें होता है। इस दशप्रकृतिक उदयस्थानमेंसे मिथ्यात्वके कम कर देने पर शेष नौ प्रकृतियोंका उदय दूसरे गुणस्थानमें होता है। नौप्रकृतिक उदयस्थानमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोधादि एक कषायके कम कर देने पर शेष आठ प्रकृतियोंका उदय तीसरे और चौथे गुणस्थानमें होता है। पुनः क्रमसे दूसरी और तीसरी कषायके कम कर देने पर सात प्रकृतियोंका उदय पाँचवें गुणस्थानमें और छह प्रकृतियोंका उदय छठे सातवें और आठवें गुणस्थानमें होता है। पुनः भययुगलमेंसे एकके कम कर देने पर पाँच प्रकृतियोंका और दोनोंके कम कर देने पर चार प्रकृतियोंका उदय भी छठे, सातवें और आठवें गुणस्थानोंमें होता है। पुनः हास्ययुगलके कम कर देने पर पुरुषवेद और कोई एक संज्वलन कषाय इन दो प्रकृतियोंका उदय नवें गुणस्थानके सवेद भाग तक होता है। पुनः पुरुषवेदके भी कम कर देने पर एकप्रकृतिक उदयस्थान नवें गुणस्थानके अवैद भागसे लेकर दशवें गुणस्थानके अन्तिम समय तक होता है ॥३१-३२॥

इस प्रकार दशप्रकृतिक उदयस्थानमेंसे क्रमशः मिथ्यात्व आदिके कम करने पर शेष नौ, आठ आदि प्रकृतिक उदयस्थान हो जाते हैं। उनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१०।६।७।६।५।४।३।२।१।

अब मोहनीय कर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १३] ^१अट्ट य सत्त य छक्कय चउ तिय दुय एय अहियवीसा य ।
तेरे वारेयारं एत्तो पंचादि एगूणं ॥३३॥

२८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

अथ मोहनीयस्य सत्त्वस्थानक तन्निर्योग च गाथाचतुष्केणाऽऽह—[अट्ट य सत्त य छक्कय' इत्यादि ।]
अष्ट सप्त-पट्-चतुस्त्रिद्वये काधिकविंशतयः त्रयोदश द्वादशैकादश इतः पर पञ्चाद्यैकैकोन च सत्त्वस्थान स्यात् ॥३३॥

२८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१। एव मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि पञ्चदश भवन्ति १५ ।

अट्टाईस, सत्ताइस, छब्बीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक, इस प्रकार मोहकर्मकी प्रकृतियोंके पन्द्रह सत्त्वस्थान होते हैं ॥३३॥

इन सत्त्वस्थानोंकी अङ्कसंहति इस प्रकार है—२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १ ।

[मूलगा० १४] संतस्स पयडिठाणाणि ताणि मोहस्स होंति पण्णरसं ।
वंधोदय-संते पुणु भंगवियप्पा बहुं जाणे^२ ॥३४॥

मोहस्य सत्त्वप्रकृतिसत्त्वस्थानानि तानि पञ्चदश भवन्ति । पुनः मोहस्य बन्धोदयसत्त्वस्थानेषु वहून् भङ्ग-विकल्पान् जानीहि ॥३४॥

१. स० पञ्चस० ५, ४२-४३ ।

१. सप्ततिका० १२ । २. सप्ततिका० १३ ।

उक्त बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानोंकी अपेक्षा मोहकर्मके भङ्गोंके बहुतसे विकल्प होते हैं, उन्हें जानना चाहिए ॥३४॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त सत्तास्थानोंकी प्रकृतियोंका निरूपण करते हैं—

^१मोहे संता सव्वा वीसा पुण सत्त-छहिहि संजुत्ता ।

उन्विळियम्मि सम्मे सम्मामिच्छे य अट्ठवीसाओ ॥३५॥

२८।२७।२६।

^२खविण अणकोहाई मिच्छे मिस्से य सम्म अडकसाए ।

संढित्थि हस्सल्लक्के पुरिसे संजलणकोहाई ॥३६॥

एव सेसाणि संतट्ठाणाणि ।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

मोहे सत्त्वप्रकृतयः सर्वाः अष्टाविंशतिर्भवन्ति २८ । एतेभ्यः अष्टाविंशतेर्मध्यात्सम्यक्त्वप्रकृतौ उद्धे-
ल्लिताया सप्तविंशतिक [सत्त्वस्थान] २७ भवति । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे उद्धेल्लिते पट्ठविंशतिक सत्त्वस्थान
२६ भवति । अष्टाविंशतिके अनन्तानुबन्धिकोधादिचतुष्के क्षपिते विमयोजिते वा चतुर्विंशतिक सत्त्वस्थानकम्
२४ । पुनर्मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिक सत्त्वस्थानम् २३ । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिक सत्त्वस्था-
नम् २२ । पुनः सम्यक्त्वे क्षपिते एकविंशतिक सत्त्वस्थानम् २१ । पुनः मध्यमप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकपायाष्टके
क्षपिते त्रयोदशकं सत्त्वस्थानम् १३ । पुनः पण्डे वा स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशक सत्त्वस्थानम् १२ । पुनः
स्त्रीवेदे वा पण्डे वा क्षपिते एकादशक सत्त्वस्थानम् ११ । पुनः पण्णोकपाये क्षपिते पञ्चकं सत्त्वस्थानम् ५ ।
पुवेदे क्षपिते चतुष्क सत्त्वस्थानम् ४ । सज्ज्वलनक्रोधे क्षपिते त्रिक सत्त्वस्थानम् ३ । पुनः, संज्वलनमाने क्षपिते
द्विक सत्त्वस्थानम् २ । पुनः सज्ज्वलनमायायां क्षपितायामेकक सत्त्वस्थानम् १ पुनर्वादरलोभे क्षपिते सूक्ष्म-
लोभरूपमेककम् १ । उभयत्र लोभसामान्येनैक्यम् ॥३५-३६॥

एव मोहनीयस्य सत्त्वस्थानानि २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

अमीपां पञ्चदशानां गुणस्थानसम्भव गोम्मटसारोक्तगाथामाह—

तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से चटुसु पण णियट्ठीए ।

तिणिण य थूलेकारं सुहुमे चत्तारि तिणिण उवसंते' ॥४॥

मि ३ । सा १ मि २ । अ ५ । दे ५ । प्र ५ । अप्र ५ । अपू ३ अनि ११ । सू ४ । उ ३ ।
तथाहि—मिथ्यादृष्टौ २८।२७।२६। सम्यक्त्व-मिश्रप्रकृत्युद्धेल्लनयोश्चतुर्गतिजीवाना तत्र करणात् ।
सासादने २८ । मिश्रे २८ । २४ । विमयोजितानन्तानुबन्धिनोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वोदये तत्राऽऽगमनात् ।
असंयतादिवर्तुषु प्रत्येक २८ । २४ । २३ । २२ । २१ । विसयोजितानन्तानुबन्धिन क्षपितमिथ्यात्वादि-
त्रयाणा च तेषु सम्भवात्, अनन्तानुबन्ध्यादिसप्तकस्य क्षयाद्वा । उपशमश्रेण्या चतुर्गुणस्थानेषु प्रत्येक
२८ । २४ । २१ । वियोजितानन्तानुबन्धिन उपशमित - क्षयोपशमकस्य क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य तत्स-
त्त्वस्य च तत्रारोहणात् । क्षपकश्रेण्यामपूर्वकरणेऽष्टकपायनिवृत्तिकरणे च एकविंशतिक २१ स्थानम् । तत्
उपरि पु'वेदोदयारूढस्य पञ्चकबन्धकानिवृत्तिकरणे त्रयोदशकम् १३ । द्वादकै १२ द्वादशकानि ११ । अष्ट-
कपायक्षपणानन्तर तत्र षण्डस्त्रीवेदयोः क्रमशः क्षपणात् । स्त्रीवेदोदयारूढस्य तत्रयोदशकम् १३ । पण्डे
क्षपिते च द्वादशकम् १२ । पण्डोदयारूढस्य तत्र त्रयोदशकमेव १३, स्त्रीपु वेदयोर्युगपत् क्षपणाप्रारम्भात् ।
एवमनिवृत्तिकरणे एकादश सत्त्वस्थानानि ११ । सूक्ष्मसाम्पराये उपशमश्रेण्या २८ । २४ । २१ । क्षपक-
क्षपकश्रेण्यां सूक्ष्मलोभरूपकम् १ ।

१. स० पञ्चस० ५, ४४ । २. ५, ४५-४७ ।

१. गो० क० ५०६ ।

गुणस्थानेषु मोहनीयस्य बन्धादिस्थानयन्त्रम्—

गुण०	बंध०	उदय०	सत्त्व०	बन्धस्था०	दृढयस्था०	सत्त्वस्थानानि
मि०	१	४	३	२२	१०, ६, ८, ७	२८, २७, २६
सा०	१	३	१	२१	६, ८, ७	२८
मि०	१	३	२	१७	६, ८, ७	२८, २४
अ०	१	४	५	१७	६, ८, ७, ६	२८, २४, २३, २२, २१
दे०	१	४	५	१३	८, ७, ६, ५	२८, २४, २३, २२, २१
प्र०	१	४	५	६	७, ६, ५, ४	२८, २४, २३, २२, २१
अप्र०	१	४	५	६	७, ६, ५, ४	२८, २४, २३, २२, २१
उपशमश्रेण्यां क्षपकश्रेण्याम्						
अपू०	१	३	३	६	६, ५, ४	२८, २४, २१ २१
अनि०	५	२	११	५, ४, ३, २, १	२	२८, २४, २१ २१, १२, ११, ५, ४, ३, २, १
सू०	०	१	४	०	१	२८, २४, २१ १
उप०	०	०	३	०	०	२८, २४, २१ ०
क्षी०	०	०	०	०	०	० ०

अट्टाईस प्रकृतिक सत्तास्थानमें मोहकर्मकी सभी प्रकृतियोंकी सत्ता होती है। पुनः अट्टाईस प्रकृतिक सत्तास्थानमेसे सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना होनेपर सत्ताईसप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेपर सादिमिथ्यादृष्टिके अथवा अनादिमिथ्यादृष्टिके छत्र्वीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः अट्टाईस प्रकृतिक सत्तास्थानोंमेसे अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चतुष्कके क्षपित अर्थात् विसंयोजित कर देनेपर चौबीसप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः मिथ्यात्वके क्षय करनेपर तेईसप्रकृतिक सम्यग्मिथ्यात्वके क्षय करनेपर बाईसप्रकृतिक और सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षय कर देनेपर डक्कीसप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तदनन्तर आठ मध्यम-कषायोंके क्षय होनेपर तेरहप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः नपुंसकवेदके क्षय होनेपर बारह प्रकृतिक, स्त्रीवेदके क्षय होनेपर ग्यारहप्रकृतिक और हास्यादि छह प्रकृतियोंके क्षय होनेपर पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः पुरुषवेदके क्षय होनेपर चार प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तदनन्तर संव्वलन क्रोधके क्षय होनेपर तीनप्रकृतिक, संव्वलनमानके क्षय होनेपर दोप्रकृतिक और संव्वलन मायाके क्षय होनेपर एकप्रकृतिक सत्तास्थान होता है ॥३५-३६॥

इस प्रकार मोहकर्मके सर्व सत्तास्थानोंकी अंकसंहति इस प्रकार है—

२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १।

अब मोहनीयकर्मके बन्धस्थानानोंमें उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १५] ^१वावीसादिसु पंचसु दसादि-उदया हवन्ति पंचैव ।
सेसे दु दोष्णि एगं एगेगमदो परं णेयं ^१ ॥३७॥

२२ २१ १७ १३ ६ अणित्थिम्मि ५ ४ ३ २ १ सुहुमे ०
१० ६ ८ ७ ६ २ २ १ १ १ सुहुमे १

१. स० पञ्चसं० ५, ४८ ।

१ ज्वे० सप्ततिकायां गाथेयं नोपलभ्यते ।

१ दि णेया ।

अथ मोहनीयस्य बन्धस्थानेषु उदयस्थानानि निरूपयन्ति—['बावीसादिसु पचसु' इत्यादि ।]
 पञ्चसु द्वाविंशतिकद्विवन्धस्थानेषु पञ्चोदयस्थानानि भवन्ति । शेषयो अनिवृत्तिकरणस्य प्रथम-द्वितीयभागयोः
 द्विकोदयस्थानद्वय २ तत्प्रथमभागे पञ्चकबन्धभागे द्विकोदयस्थानम् २ । तच्चतुर्वन्धके द्वितीयभागे द्विकोदय-
 मेकोदयस्थान च $\frac{२}{१}$ भवति । अतः पर तन्निबन्धके तृतीयभागे तद्विवन्धके चतुर्थभागे तदेकबन्धके
 पञ्चमे भागे च एककसुदयस्थान ज्ञेयम् । सूक्ष्मे वन्धरहिते सूक्ष्मलोभसुदयस्थानम् १ । तथाहि—मिथ्यादृष्टौ
 द्वाविंशतिकबन्धस्थाने एकस्मिन् जीवे मोहप्रकृत्युदयस्थान दशक १० भवति । ता का. ? मिथ्यात्वं
 १ पोटशकपायेषु क्रोधादयश्चत्वारः कपायाः ४ । वेदेषु एकतरवेदः १ । हास्यादियुग्मयोरेकयुग्मम् २ । अय-
 जुगुप्साद्वयम् २ । एव दणप्रकृतिकसुदयस्थानम् $\frac{२२}{१०}$ । इति प्रथमोदयस्थानम् १ । मिथ्यात्वरहिते एक-
 विंशतिकबन्धस्थाने सासादने मिथ्यात्वरहित नवप्रकृत्युदयस्थानम् $\frac{२१}{३}$ । इति द्वितीयोदयस्थानम् २ ।
 ततः पर अनन्तानुबन्धिचतुष्करहिते सप्तदशकबन्धस्थानके मिश्रगुणस्थाने असयमोपशमसम्यक्त्वे क्षायिक-
 सम्यग्दृष्टौ च अप्रत्याख्यानानादिचतुष्करत्रयैकतरत्रयं ३ एकतरवेदादिपञ्चकम् ५ । एवमष्टोदयप्रकृत्युदयस्थानक
 $\frac{१७}{८}$ भवति । इति तृतीयोदयस्थानम् ३ । ततः अप्रत्याख्यानचतुष्करहिते त्रयोदयकबन्धके देशसयमे
 प्रत्याख्यानानादिचतुष्करत्रयैकतरद्वय २ एकतरवेदादिपञ्चक ५ एव मोहप्रकृत्युदयसप्तकं स्थान ७ देशसयतौ-
 पशमिन्-क्षायिकसम्यग्दृष्टौ भवति $\frac{१३}{७}$ । इति चतुर्थोदयस्थानम् ४ । ततः प्रत्याख्यानचतुष्करहिते नवक-
 बन्धके सज्वलनमेकतर वेदादिपञ्चकमेवं षट्प्रकृत्युदयस्थान औपशमिक-क्षायिकसम्यग्दृष्टिप्रमत्ताप्रमत्तापूर्व-
 करणमुनो $\frac{६}{६}$ भवति । इति पञ्चमोदयस्थानम् ५ । ततः पु वेदसज्वलनपञ्चकबन्धक सज्वलनचतुर्वन्धका-
 निवृत्तिकरणभागयोः प्रथम-द्वितीययोः त्रिवेद-चतु सज्वलनानामेकैकोदयसम्भव द्विप्रकृत्युदयस्थानम् $\frac{५}{२}$ ४ ।
 तन्निबन्धके तृतीयभागे द्विवन्धके चतुर्थभागे सज्वलनलोभवन्धके पञ्चमभागे चैकस्थूललोभोदयस्थानम्
 $\frac{३}{१}$ २ १ । अत्रन्धके सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभस्योदयस्थानमेकम् $\frac{०}{१}$ ॥३७॥

मोहनीयकर्मके वाईस आठिक पाँच बन्धस्थानोंमें दश आदिक पाँच उदयस्थान होते हैं ।
 शेष बन्धस्थानोमेसे पाँचप्रकृतिक बन्धस्थानमे दोप्रकृतिक उदयस्थान होता है । चारप्रकृतिक
 बन्धस्थानमे दोप्रकृतिक उदयस्थान होता है । इससे आगेके तीन, दो और एक प्रकृतिक बन्ध-
 स्थानमे एकप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । दशवे गुणस्थानमे जहाँ मोहकी किसी प्रकृतिका
 बन्ध नहीं होता, वहाँपर एकप्रकृतिक उदयस्थान होता है ॥३७॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमे दी है ।

अब भाष्यगाथाकार उपर्युक्त गाथाका स्पष्टीकरण करते हैं—

^१अणरहिओ पढसिल्लो तइओ दो मिस्स-सम्मसहिया दु ।

दंसणजुत्ते सेसे अण्णो भंगो हवेज्ज दस एदे ॥३८॥

२२ २१ १७ १७ १३ ६ ६
 १० ८ ७ ६ त्रिषु गुणेषु द्वद ६ वेदकरहिते ।
 ६ ६ ६ ६ ८ ७ ६

अथ मिथ्यादृष्टौ मिश्रेऽसयतादिचतुषु^६ च सम्भवविशेषमाह—['अणरहिओ पढमिल्लो' इत्यादि ।]
 मोहप्रकृतीनां दशानामुदयः प्रथम आद्यः । स कथम्भूतः ? अनन्तानुबन्धुदयरहितः । कथम् ? उक्तञ्च—

अणसंजोजिदसम्मं मिच्छं पत्ते ण आवलि त्ति अणं^१ ॥५॥

अनन्तानुबन्धिविसयोजितवेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यात्वकर्मोदयानिमिथ्यादृष्टिगुणस्थान प्राप्ते आवलिकाल-

पर्यन्तमनन्तानुबन्धुदयो नास्ति । अतोऽनन्तानुबन्धिरहितं प्रथमस्थानं^{२०} उ.१० मिथ्यात्वरहितम् । सासा-
 उ. ६

दनं द्वितीय स्थानं^{२१} । तृतीय स्थानं द्वय कथम् ? एकं मिश्रगुणस्थानं द्वितीयं असयतगुणस्थान च ।

मिश्रे गुणस्थानेऽनन्तानुबन्धिरहितमष्टक मिश्रेण सम्यग्मिथ्यात्वेन सहित नवकम्^{१७} । असयतवेदक-

सम्यग्दृष्टौ मिश्रसहितमष्टकं सम्यक्त्वप्रकृतिसहितनवप्रकृत्युदयस्थानम्^{१७} ८ । शेषेषु देशविरत-प्रमत्त-
 ६

संयताप्रमत्तप्रयतवेदकसम्यक्त्वसहितेषु सम्यक्त्वरहितोऽन्यो भङ्गः, सम्यक्त्वप्रकृतिसहितोऽन्यो भङ्गः स्यात्
 १२ ६

७ ६ । एते दश वक्ष्यमाणा उदयाः अग्रगाथायाम् ।

८ ७

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०
२२	२१	१७	१७	१३	६
१०	६	६	८	७	६
६			६	८	७

त्रिषु वेदकरहितप्रमत्तादिगुणस्थानेषु द्वद^६ । वेदकरहितदेशे^{१३} वेदकरहितप्रमत्ताप्रमत्तयोः^६

अपूर्वकरणे^६ सम्यक्त्वप्रकृत्युदये अविरताद्यप्रमत्तान्तवेदकसम्यक्त्व भवति । तदुदये उपशमसम्यक्त्वं
 चायिकसम्यक्त्वं च न भवति । तदुक्तञ्च—

उवसम खइए-सम्मं ण हि तत्थ वि चारि ठाणाणि^२ ॥६॥

उपशमसम्यक्त्वे चायिकसम्यक्त्वे च सम्यक्त्वप्रकृत्युदयो नास्तीति तद्रहितानि असयतादिचतुषु^६
 चत्वारि स्थानानि भवन्ति ॥३८॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें मोहनीयकर्मका बाईस प्रकृतिक प्रथम बन्धस्थान अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित भी होता है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि यदि मिथ्यात्वकर्मके उदयसे मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हो, तो एक आवलीकालपर्यन्त उसके अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता है, ऐसा नियम है । अतएव बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें दश प्रकृतिक उदयस्थानके अतिरिक्त नौप्रकृतिक भी उदयस्थान होता है । इक्कीस प्रकृतिक दूसरे बन्धस्थानमे मिथ्यात्वके विना शेष नौ प्रकृतियोंके उदयवाला स्थान होता है । सत्तरह प्रकृतियोंके बन्धवाले तीसरे और चौथे गुणस्थानमे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके विना शेष आठप्रकृतिक उदयस्थान तथा तीसरेमें मिश्रप्रकृतिका और चौथेमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय बढ़ जानेसे नौ

प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है। सम्यक्त्वसहित शेष गुणस्थानोमे अर्थात् पौंचवे, छठे और सातवेंमे उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे रहित एक-एक भङ्ग और भी होता है। अतएव वक्ष्यमाण प्रकारसे दश भङ्ग उदयस्थानसम्बन्धी जानना चाहिए ॥३८॥

इनकी अंकदृष्टि मूलमे दी है।

^१भयरहिया णिदूणा जुगलूणा हुंति तिण्णि तिण्णोव ।

अण्णे वि तेसिमुदया एक्केकस्सोवरिं जाण ॥३९॥

	मिथ्या०	मिथ्या०	सासा०	मिश्र अविरत०	अवि०	देश०	देश०	प्र० अ०	प्र० अ०
वध०	२२	२२	२१	१७	१७	१७	१३	१३	६
	८	७	७	७	७	६	६	५	४
उदय०	६१६	८१८	८१८	८१८	८१८	७१७	७१७	६१६	५१५
	१०	६	६	६	६	८	८	७	६

द्वाविंशतिकबन्धके मिथ्यादृष्टौ उत्कृष्टतो दशमोहप्रकृत्युदया १०। भयरहिता नवोदयाः ६। जुगुप्सारहिता द्वितीयनवप्रकृत्युदयाः ६। भयजुगुप्सायुग्मोनाश्चाष्टप्रकृत्युदया ८ भवन्ति। एकैकस्योपरि तासां प्रकृतीनां नवार्दीनां अन्यान् उदयभङ्गान् त्रीन् त्रीन् जानीहि भो मध्यवरपुण्डरीकवम्। तथाहि—द्वाविंशतिकबन्धकेऽनन्तानुबन्ध्युदयरहिते मिथ्यादृष्टौ २२ नवप्रकृत्युदयाः ६। भयेन रहिता अष्टौ ८, निन्दया रहिताः अष्टौ ८, युग्मोनाश्च सप्त ७। एकविंशतिकबन्धे २१ सासादने नवप्रकृत्युदया ६, भयरहिता ८, जुगुप्सारहिता ८, युग्मोनाः सप्त ७। सप्तदशकबन्धके मिश्रे अनन्तानुबन्ध्युदयरहित-मिश्रप्रकृतिसहिता नवप्रकृत्युदयाः ६, भयरहिताः ८, निन्दारहिता ८, तद्युग्मरहिता वा ७। सप्तदशकबन्धकेऽविरतवेदकसम्यग्दृष्टौ मिश्रप्रकृतिरहिता सम्यक्त्वप्रकृतिसहिता नवप्रकृत्युदयाः ६, भयेन रहिताः ८, जुगुप्सारहिता ८, तद्युग्मोना वा ७। सप्तदशकबन्धकेऽविरतोपशमसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वे च सम्यक्त्वप्रकृतिरहिता अष्टौ प्रकृत्युदयाः ८, भयोनाः ७, निन्दोना वा ७, तद्युग्मोना वा ६। त्रयोदशकबन्धके देशसयमवेदकसम्यग्दृष्टौ अप्रत्याख्यानोदयरहितसम्यक्त्वप्रकृतिसहिता अष्टौ प्रकृत्युदयाः ८, भयोनाः ७, निन्दोना ७, तद्युग्मोनाः ६। त्रयोदशकबन्धके उपशमे क्षायिकसम्यक्त्वे देशसयमे १३ अप्रत्याख्यानोनां सप्तप्रकृत्युदया ७, भयोनाः ६, जुगुप्सोना ६, तद्युग्मोनाः ५। नवकबन्धकवेदकसम्यक्त्वप्रमत्तेऽप्रमत्ते च प्रत्याख्यानोनां सम्यक्त्वप्रकृतिसहिताः सप्तप्रकृत्युदयाः ७, भयोनाः ६, निन्दोना ६, तद्युग्मोनाः ५। नवकबन्धकोपशमक-क्षायिकसम्यग्दृष्टौ प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणमुनौ सज्जलनमेकतर १ पुवेदादिपञ्चक ५ एव पदप्रकृत्युदयाः ६, भयोनाः ५, जुगुप्सोना ५, तद्युग्मोना वा ४ ॥३९॥

	गुण०	मि०	मि०	सा०	मि०	अवि०	अवि०	दे०	दे०	प्र० अ०	प्र० अ०
	२२	२२	२१	१७	१७	१७	१३	१३	६	६	६
बन्ध०	८	७	७	७	७	६	६	५	५	५	४
उदय०	६१६	८१८	८१८	८१८	८१८	७१७	७१७	६१६	६१६	५१५	५१५
	१०	६	६	६	६	८	८	७	७	७	६

तथा उपर्युक्त बन्धस्थानोंके भय-रहित निन्दा अर्थात् जुगुप्सा-रहित और दोनोंसे रहित, इस प्रकार तीन-तीन अन्य भी उदयस्थान एक-एकके ऊपर जानना चाहिए ॥३९॥

चिशेषार्थ—वाईस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले मिथ्यादृष्टिके यदि सम्भव सभी प्रकृतियोंका उदय हो, तो दशप्रकृतिक उदयस्थान होगा। यदि विसंयोजनके हो जानेसे अनन्तानुबन्धी कपायका उदय नहीं है, तो नवप्रकृतिक उदयस्थान भी सम्भव है। यदि भय और

जुगुप्सामेसे, किसी एकका उदय न हो, तो आठ प्रकृतिक उदयस्थान होगा। और यदि भय और जुगुप्सा इन दोनोंका ही उदय न रहे, तो सात प्रकृतिक उदयस्थान होगा। इस प्रकार बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमे दश, नौ, नौ, आठ और सात प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थान दूसरे गुणस्थानमें होता है। वहाँपर अनन्तानुबन्धीका उदय तो रहता है, परन्तु मिथ्यात्वका उदय नहीं रहता, इसलिए नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। तथा भय-जुगुप्सामेसे किसी एकके उदय न रहनेसे आठप्रकृतिक और दोनोंका उदय न रहनेसे सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। सत्तरह प्रकृतिके बन्धवाले गुणस्थानसे लेकर नौ प्रकृतियोंके बन्धवाले गुणस्थान पर्यन्त तीन स्थानोंमे सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय रहता भी है और नहीं भी रहता है, इसलिए सत्तरह प्रकृतिक बन्धस्थानमे सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय न रहनेपर आठका उदयस्थान होता है। तथा भय और जुगुप्सामेसे किसी एकके उदय न रहनेपर सातका उदयस्थान होता है और दोनोंके ही उदय न रहनेपर छहका उदयस्थान होता है। तेरह प्रकृतिक बन्धस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय रहनेपर आठका उदयस्थान होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय न रहनेपर सातका उदयस्थान होता है। भय और जुगुप्सामेसे किसी एकके उदय न रहनेपर छहका तथा दोनोंके उदय न रहनेपर पाँचका उदयस्थान होता है। नौप्रकृतिक बन्धस्थानमे सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय रहने पर सातका उदयस्थान होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय न रहने पर छहका उदयस्थान होता है। जुगुप्सामेसे किसी एकके उदय न होने पर पाँचका उदयस्थान और दोनोंके उदय न रहने पर चारका उदयस्थान होता है। मूलमे दी गई अंकसंदृष्टिका यह अभिप्राय समझना चाहिए।

अब मोहके बन्धस्थानोंमें संभव उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

‘दस वाचीसे णव इगिचीसे सत्तादि उदय-कम्मंसा ।

छादी णव सत्तरसे तेरे पंचादि अट्टेव ॥४०॥

चत्तारि-आदिणवबंधएसु उक्कस्स सत्तमुदयंसा ।

चत्तालमिमेसुदया बंधट्टाणेसु पंचसु वि ॥४१॥

[४०]

[अथ] गुणस्थानेषु मोहप्रकृतिबन्धकेषु उदयस्थानानि प्ररूपयति—[‘दस वाचीसे णव इगि’ इत्यादि ।] द्वाविंशतिबन्धके सप्ताद्याः दशान्ताः अष्टौ मोहप्रकृत्युदयकर्मांशा उदयांशा उदयप्रकृतिस्थान-

२२	२२		२१।४
विकल्पा भवन्ति ८	७	८	७
	८।८	१।६	८।८
	६	१०	६

एकविंशतिकबन्धके सप्ताद्या नवप्रकृत्युदयस्थानचतुष्टयरूपाः

सप्तदशकबन्धके पडाद्या नवोत्कृष्टपर्यन्ताः प्रकृत्युदयस्थानरूपाः द्वादश भवन्ति १७।१२ । त्रयोदशबन्धके पञ्चाद्यष्टोत्कृष्टस्थानपर्यन्तं प्रकृत्युदयस्थानानि अष्टौ भवन्ति १३।८ । नवकबन्धके चतुरादिसप्तोत्कृष्टान्ताः मोहप्रकृत्युदयस्थानान्यष्टौ भवन्ति १।८ । इत्यमीषु पञ्चसु बन्धस्थानेषु प्रकृत्युदयस्थानानि चत्वारिंशद्भवन्ति ॥४०—४१॥

१. स० पञ्चस० ५, ‘द्वाविंशतेर्बन्धे सप्ताद्या’ इत्यादिगद्यभागः । (पृ० १२६) ।

१ श्वे० सप्ततिकायामियं गाथा मूलगाथारूपेण विद्यते ।

२. श्वे० सप्ततिकायामियमपि गाथा मूलरूपेणास्ति । पर तत्रोत्तरार्धे पाठोऽयम्—‘पंचविहवधने पुण उदओ दोण्हं मुणेयन्वो’ ।

बाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे सातको आदि लेकर दश तकके उदयस्थान होते हैं। इक्कीस-प्रकृतिक बन्धस्थानमे सातको आदि लेकर नौ तकके उदयस्थान होते हैं। सत्तरहप्रकृतिक बन्धस्थानमे छहको आदि लेकर नौ तकके उदयस्थान होते हैं। और तेरहप्रकृतिक बन्धस्थानमे पाँचको आदि लेकर आठ तकके उदयस्थान होते हैं। नौ प्रकृतियोंका बन्ध करने वाले जीवोंके चार प्रकृतिक उदयस्थानको आदि लेकर उत्कर्षसे सातप्रकृतिक तकके उदयस्थान होते हैं। इस प्रकार इन पाँच बन्धस्थानों मोहप्रकृतियोंके उदयस्थान चालीस होते हैं ॥४०-४१॥

विशेषार्थ—बाईस, इक्कीस, सत्तरह, तेरह और नौ प्रकृतिक बन्धस्थानोंमे जितने उदयस्थान पाये जाते हैं, उनमेंसे दशप्रकृतिक उदयस्थान एक हैं, नौप्रकृतिक उदयस्थान छह हैं, आठप्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह हैं, सातप्रकृतिक उदयस्थान दश हैं, छहप्रकृतिक उदयस्थान सात हैं, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान चार हैं और चारप्रकृतिक उदयस्थान एक है। इस प्रकार इन सबका योग (१ + ६ + ११ + १० + ७ + ४ + १ = ४०) चालीस होता है। यह बात ऊपर मूलमें दी गई सद्यष्टिमें स्पष्ट दिखाई गई है।

अब उपर्युक्त ४० भगोंको वक्ष्यमाण २४ भगोंसे गुणित करने पर जितने भंग होते हैं उनका निरूपण करते हैं—

^१जुगवेदकसाएहिं दुय-तिय-चउहि भवन्ति संगुणिया ।

चउवीस वियप्पा ते उदया सव्वे वि पत्तेयं ॥४२॥

^२एव पचसु बंधद्वारेषु चत्ताल उदया चउवीसभगगुणा हवति । एयावन्तो उदयवियप्पा ६६० ।

अमूनि सर्वप्रकृत्युदयस्थानानि ४० प्रत्येकं चतुर्विंशतिगुणितानि भवन्तीति तत्सम्भवगाथामाह—
[‘जुगवेदकसाएहिं’ इत्यादि ।] हास्यादियुग्मेन २ वेदत्रिकेण ३ कपायचतुष्केण ४ परस्परं संगुणिताश्चतुर्विंशतिविकल्पाः २४ भवन्ति । तानि सर्वाणि चत्वारिंशत्प्रकृत्युदयस्थानानि ४० प्रत्येकं चतुर्विंशतिविकल्पा भङ्गा भेदा भवन्ति ॥४२॥

तदाह—[‘एव पचसु’ इत्यादि ।] एवं पञ्चसु नवकादिद्वाविंशतिपर्यन्तबन्धस्थानेषु चत्वारिंशत् ४० प्रकृत्युदयस्थानानि चतुर्विंशति २४ गुणितानि एतानि एतावन्त उदयविकल्पाः ६६० पञ्च्यधिकनवशत-प्रकृत्युदयस्थानभङ्गा भवन्ति ।

हास्यादि दो युगल, तीन वेद और चार कपाय इनके परस्पर संगुणित करने पर चौवीस भङ्ग होते हैं। इनसे उपर्युक्त चालीस भङ्गोंको गुणित कर देने पर उदयस्थानोंके सर्व भङ्गोंका योग आ जाता है ॥४२॥

इस प्रकार पाँच बन्धस्थानोंके चालीस उदयस्थानोंको चौवीस भङ्गोंसे गुणा करने पर (४० × २४ = ६६०) सर्व उदयस्थान विकल्प नौ सौ साठ उपलब्ध होते हैं।

अब पाँच आदि शेष प्रकृतिक उदयस्थानोंके भगोंका निरूपण करते हैं—

^३वेदाहया कसाया भवन्ति भंगा दुवारदुगउदए ।

चउ-तिय-दुग एगेगं पंचसु एगोदएसु तदो ॥४३॥

	५	४	४	३	२	१	०	
अणियट्टिम्मि	२	२	१	१	१	१	सुहुमे	१ एवं सव्वे भगा मेलिया ३५ । पुब्बु-
	१२	१२	४	३	२	१	१	

तेहि सह एदावतो ६६५ ।

अनिवृत्तिकरणस्य द्विकोदये इति पञ्चबन्धक-चतुर्बन्धकानिवृत्तिकरणभागयोस्त्रिवेद-चतुःसंज्वलना-
नामेकैकोदयसम्भवं द्विप्रकृत्युदयस्थानं ^५ ४ ^१ १ स्यात् । तत्र संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभाश्चत्वारः ४ त्रिभिर्वेदै-

हंताः द्वादशः भङ्गा भवन्ति । द्विद्वादश द्वादश द्वादशेति २ १ । पञ्चान्तरापेक्षया चतुर्बन्धकचरमसमये
१२ १२

त्रिद्वयैकबन्धबन्धवेषु अबन्धके पञ्चेषु भागस्थानेषु क्रमेण चतुस्त्रिद्वयैकैकसंज्वलनानामेकैकोदयः सम्भव-
मेकैकोदयस्थानं स्यात् । तेन तत्र भङ्गाश्चतुस्त्रिद्वयैकैको भूत्वा एकादश ॥४३॥

	व०	५	४	४	३	२	१	०
अनिवृत्तिकरणस्य	उ०	२	२	१	१	१	१	अबन्धे सूक्ष्मे १ । एव सर्वे
	भ०	१२	१२	४	३	२	१	१

भङ्गा मिलिताः ३५ । पूर्वोक्तैः सह एतावन्तो भङ्गाः नवशतपञ्चनवतिः ॥६६५॥

द्विक-उदयमे अर्थात् अनिवृत्तिकरणके पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक बन्धस्थानमे जहाँ पर तीनो वेदोमेसे किसी एक वेद और चारो कषायोंमेंसे किसी एक कषायका उदय होता है, वहाँ पर तीनों वेदों और चारों कषायोके परस्पर बारह बारह भङ्ग होते हैं । एक प्रकृतिके उदय वाले पाँच बन्धस्थानोंमें अर्थात् चारप्रकृतिक बन्धस्थानके चरम समयमें, तीन, दो, एक प्रकृतिक बन्धस्थानमे और किसी भी प्रकृतिका बन्ध नहीं करनेवाले ऐसे, अबन्धकस्थानमें क्रमसे चार, तीन, दो, एक और एक भङ्ग होते हैं ॥४३॥

इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें दो प्रकृतिके उदयवाले पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमे बारह, चार प्रकृतिक बन्धस्थानमे बारह, एक प्रकृतिके उदयवाले चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें चार, तीन प्रकृतिक बन्धस्थानमें तीन, दो प्रकृतिक बन्धस्थानमें दो और एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें एक भङ्ग होता है । तथा किसी भी मोहप्रकृतिका बन्ध नहीं करने वाले सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमे एक-मात्र सूक्ष्म संज्वलनलोभका उदय होनेसे एक भङ्ग होता है । इस प्रकार ये सर्व भङ्ग मिल करके (१२ + १२ + ४ + ४ + २ + १ + १ = ३५) पैतीस भङ्ग हो जाते हैं । इन सर्व भङ्गोकी अंकसंहति मूलमे दी है । इन्हें पूर्वोक्त ६६० भङ्गोंमे मिला देने पर मोहनीयकर्मके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व विकल्प ६६५ हो जाते हैं ।

इन्हीं उदय-विकल्पोंको भाष्यगाथाकार उपसंहार करते हुए प्रकट करते हैं—

^१दसगादि-उदयठाणाणि भणियाणि मोहणीयस्स ।

पंचूणयं सहस्सं उदयवियप्पा हवन्ति ते चेव ॥४४॥

॥६६५॥

ते कति चेदाह—['दसगादि-उदयठाणाणि' इत्यादि] मोहनीयस्य दशकादीन्येकपर्यन्तान्युदय-प्रकृतिस्थानानि भणितानि । तेषां भङ्गाः पञ्चभिर्न्यून सहस्रं प्रकृत्युदयस्थानविकल्पा भवन्ति । दशकाद्येक-पर्यन्तप्रकृत्युदयस्थानानां भङ्गा विकल्पाः प्रकृत्युदयस्थानभेदा नवशतपञ्चनवतिसंख्योपेताः ६६५ भवन्तीत्यर्थः ॥४४॥

मोहनीयकर्मके दशप्रकृतियोंको आदि लेकर एक प्रकृति पर्यन्त जो दश उदयस्थान कहे गये हैं उनके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व विकल्प पाँच कम एक हजार अर्थात् ६६५ होते हैं ॥४४॥

अब उपर्युक्त उदयविकल्पोंके प्रकृति-परिवर्तन-जनित भंगोंका परिमाण कहते हैं—

^१पुन्वुत्ता जे उदया संगुणिया तेसिं उदयपयडीहिं ।

चउवीसा आदीहि य सगेहिं भंगेहिं होंति पदबन्धा ॥४५॥

^२एए छदसादि-चउरताणि उदयद्व्याणाणि एयाणि—^{१० ६ ८ ७ ६ ५ ४} दसादि^१ उदयत्य-

पयडिगुणियाणि १०।५४।८८।७०।४२।२०।४। मिलियाणि २८८ । पुणो चउवीसभंगगुणियाणि ६६१२ । अनियट्टिमि सुहुमे य दुगादिउदयपयडीओ २।२।१।१।१।१। सुहुमे । एयाओ एएहिं भंगेहिं १२।१२।४।३। २।१।१।गुणिया एयावत्तो २४।२४।४।३।२।१।१। मिलिया ५६ । पुव्विलेहिं सह पयवधा एया-
वत्तो । ६६७१ ।

अथ प्रकृतिभेदेन भङ्गानाह—['पुन्वुत्ता जे उदया' इत्यादि ।] ये पूर्वोक्ता उदया, अत्र दशानां एकोदयः ^{१०} नवानां पडुदयाः ^६ अष्टानां एकादशोदयाः ^८ सप्तानां दशोदयाः ^७ पण्णा ससो-
दयाः ^६ पञ्चानां चत्वार उदयाः ^५ चतुर्णामेकोदयः ^४ इत्येते उदयाः १।६।११।१०।७।४।१ एतेषां दशाद्युदयप्रकृतिभिः १०।६।८।७।६।५।४ संगुणिताः १०।५४।८८।७०।४२।२०।४ एते मिलिताः २८८ । पुनश्चतुर्विंशति २४ भङ्गताहिताः ६६१२ एते पदबन्धा उदयप्रकृतिविकल्पा भङ्गा भवन्ति । अनिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसाम्पराये च द्विकोदयः उदयप्रकृतयः २।२।१।१।१।१ सूक्ष्मे १ । एताः प्रकृतय एतेर्भङ्गैः १२।१२।४।३।२।१ गुणिता एतावन्तः २४।२४।४।३।२।१।१ । मिलिता ५६ । पूर्वैः ६६१२ सह पदबन्धा एतावन्तः ६६७१ मोहप्रकृतिसंख्यायाः पदबन्धा भवन्त्यसौ ॥४५॥

जो पहले दशप्रकृतिक आदि उदयस्थान कहे गये हैं, उन्हें पहले उदय होनेवाली प्रकृतियोंसे गुणित करे । पुनः चौबीस आदि स्व-स्व भंगोंसे गुणित करनेपर सर्वपदबन्ध अर्थात् भंग आ जाते हैं । उनका परिमाण ६६७१ है ॥४५॥

अब इन्हीं ६६७१ भंगोंका स्पष्टीकरण करते हैं—दशको आदि लेकर चार प्रकृति-पर्यन्तके जो उदयस्थान हैं, उन्हें दश आदि उदयस्थ प्रकृतियोंके साथ गुणित करनेपर २८८ भंग होते हैं । (इनकी अंकसंदृष्टि मूलमे दी हुई है ।) पुनः उन्हें चौबीस भंगोंसे गुणा करनेपर (२८८ × २४ = ६६१२) छह हजार नौ सौ बारह भंग प्राप्त होते हैं । पुनः अनिवृत्तिकरणमें जो दो आदिक उदय-प्रकृतियों हैं और सूक्ष्मसाम्परायमें जो एक उदय प्रकृति है, (यथा—०।२।१।१।१।१) उन्हें इनके १२।१२।४।३।२।१।१ इन भंगोंसे गुणा करनेपर क्रमशः इतने २४।२४।४।३।२।१।१ भंग आते हैं, जो सब मिलाकर ५६ होते हैं । इन्हें पूर्वोक्त ६६१२ में जोड़ देनेपर समस्त पदबन्धोंका अर्थात् भंगोंका प्रमाण ६६७१ होता है ।

अब मूलगाथाकार उपर्युक्त सर्व अर्थका उपसंहार करते हैं—

[मूलगा० १६] ^३णवपंचाणउदिसया उदयवियप्पेहिं मोहिया जीवा ।

ऊणत्तरि-एयत्तरिपयबन्धसएहिं विण्णोया ॥४६॥

६६५।६६७१।

पञ्चनवत्यधिकनवशतसंख्योपेतैः उदयविकल्पैः प्रकृत्युदयस्थानभङ्गैः ६६५ एकोनसप्ततिशतैकसप्तति-
पदबन्धैः पट्सहस्रनवशतैकसप्ततिसंख्योपेतैः ६६७१ पदबन्धैः प्रकृतिविकल्पैः प्रकृत्युदयसंख्याभङ्गैश्च त्रिकाल-

१. स० पञ्चस० ५, ५४ । २. ५, 'दशादीनि' इत्यादिषाद्यभाग. (पृ० १६०) । ३. ५, ५५ ।

†व दसा अपि ।

१. सप्ततिका० २० ।

त्रिलोकोदरवर्तिचराचरजीवा मोहिताः वैचिन्त्य प्रापिताः सन्ति ६६५ उदयविकल्पाः स्थानविकल्पाः भवन्ति ।
६६७१ प्रकृतिविकल्पा उदयप्रकृतिसंख्याभगा विज्ञेया भवन्ति ॥४६॥

इति मोहनीयप्रकृत्युदयभेदः समाप्तः ।

सर्व संसारी जीव नौ सौ पंचानवे उदय-विकल्पोसे तथा उनहत्तर सौ इकहत्तर अर्थात् छह हजार नौ सौ इकहत्तर भंगरूप पदबन्धोसे मोहित हो रहे है, ऐसा जानना चाहिए ॥४६॥
अब मोहनीयके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थानके भंग सामान्यसे कहते हैं—

^१पढमे विदिए तीसु वि पंचाई बंधउवरदे कमसो ।

कमसो तिणिण य एगं पंचय छह सत्त चत्तारि ॥४७॥

^२संतट्ठाणाणि — २२ २१ १७ १३ ६ ५ ४ ३ २ १ ०
३ १ ५ ५ ५ ६ ७ ४ ४ ४ ४

अथ मोहनीयबन्धस्थानेषु सत्त्वस्थानमहान् सामान्येनाह—['पढमे विदिए तीसु वि' इत्यादि ।]
प्रथमे द्वाविंशतिबन्धे सत्त्वस्थानानि त्रीणि २८।२७।२६ । द्वितीये एकविंशतिके बन्धे सत्त्वस्थानमेकं २८ ।
त्रिषु बन्धेषु सप्तदशकबन्धे त्रयोदशकबन्धे नवकबन्धके च सत्त्वस्थानानि पञ्च २८।२४।२३।२२।२१ ।
पञ्चबन्धके सत्त्वस्थानानि पट् २८।२४।२१।१३।१२।११ । चतुर्विधबन्धके सप्त सत्त्वस्थानानि २८।२४।२१।
१३।१२।११।५ । त्रिद्वयैकबन्धके अबन्धके च सत्त्वस्थानानि चत्वारि चत्वारि क्रमेण स्वभागबन्धकेषु
सत्त्वानि ॥४७॥

२२ २१ १७ १३ ६ ५ ४ ३ २ १ ०
३ १ ५ ५ ५ ६ ७ ४ ४ ४ ४

प्रथम बन्धस्थानमे, द्वितीय बन्धस्थानमें, तदनन्तर क्रमशः तीन बन्धस्थानोंमें, पुनः पंच
आदि एक पर्यन्त बन्धस्थानोमे और उपरतबन्धमें क्रमसे तीन, एक, पाँच, छह, सात और चार
सत्त्वस्थान होते हैं ॥४७॥

किस बन्धस्थानमे कितने सत्त्वस्थान होते हैं, इस बातको बतानेवाली अंकसंदृष्टि मूलमे
दी हुई है ।

एवं ओघेण भणियस्स विसेसेण बुच्चए—

इस प्रकार ओघसे बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थानोंको कह करके अब मूलगाथाकार
विशेषरूपसे उन्हें कहते हैं—

[मूलगा० १७] ^३आइतियं वावीसे इगिवीसे अट्ठवीस कम्मंसा ।

सत्तरस तेरस णव बंधए अड-चउ-तिग-दुगेगहियवीसा^१ ॥४८॥

^४वावीसबंधए संतट्ठाणाणि २८।२७।२६। एगवीसबंधए २८ । सत्तरस-तेरस-णवबंधएषु
२८।२४।२३।२२।२१।

अथ विशेषेण गुणस्थानेषु मोहबन्धस्थान प्रति सत्त्वस्थानान्याह—'एवं ओघेण भणिय विसेसेण
बुच्चइ' एवं उक्तप्रकारेण सामान्येन मोहप्रकृतिबन्धेषु सत्त्वस्थानानि । भणितानि गुणस्थानैः सह विशेषेण
तान्युच्यन्ते—

१. सं० पञ्चसं० ५, ५६ । २. ५, 'मोहस्य सत्तास्थानानि' इत्यादिगद्याशः (पृ० १६०) । ३. ५,
५७ । ४. ५, 'द्वाविंशतिबन्धके' इत्यादिगद्याशः (पृ० १६१) ।

१. सप्ततिका० २१ । परं तत्रैदम् पाठः—

तिन्नेव य वावीसे इगवीसे अट्ठवीस सत्तरसे ।

छत्तेव तेर-नवबंधगेषु पंचेव ठाणाइ ॥

एव भणिया ।

[‘आहतिय वारीसे’ इत्यादि ।] द्वाविंशतिकवन्धके मिथ्यादृष्टी आदित्रिकसत्त्वस्थानानि २८।२७।२६। तत्राष्टाविंशतिके सम्यक्त्वप्रकृतौ उद्वेक्षिताया सप्तविंशतिकम् २७ । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे उद्वेक्षिते षड्विंश-
तिकम् २६ । सासादने एकविंशतिवन्धके अष्टाविंशतिकमेकसत्त्वस्थानम् २८ । सप्तदशवन्धे त्रयोदशवन्धे
नववन्धे च प्रत्येक अष्टचतुस्त्रिद्वयोकाधिकविंशतिः । अष्टाविंशतिके २८ अनन्तानुबन्धचतुष्के विसंयोजिते
क्षपिते वा चतुर्विंशतिकम् २४ । ततः पुनः मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिकम् २३ । तत्र पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे
क्षपिते द्वाविंशतिकम् २२ । तत्र पुनः सम्यक्त्वप्रकृतिक्षपिते एकविंशतिकम् २१ । इति पञ्च सत्त्वस्थानानि
त्रिमंयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितमिथ्यात्वाद्वित्रयाणां च तेषु सम्भवात् ॥४८॥

वार्हसप्रकृतिक वन्धस्थानमे आदिके तीन सत्त्वस्थान होते हैं । इक्कीसप्रकृतिक वन्धस्थान-
मे अट्ठाईस प्रकृतिक एक सत्त्वस्थान होता है । सत्तरह प्रकृतिक, तेरह प्रकृतिक और नवप्रकृतिक
वन्धस्थानमे अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, वार्हस और इक्कीस प्रकृतिक पाँच-पाँच सत्त्वस्थान
होते हैं ॥४८॥

वार्हसप्रकृतिक वन्धस्थानमे २८, २७ और २६ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं । इक्कीस
प्रकृतिक वन्धस्थानमे २८ प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान होता है । सत्तरह, तेरह और नौ प्रकृतिक
सत्त्वस्थानमे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक पाँच पाँच सत्त्वस्थान होते हैं ।

[मूलगा० १८] ‘पंचविहे अड-चउ-एगहियवीसा तेर-वारसेगारं ।

चउविहवंधे संता पंचहिया होंति ते चेव’ ॥४९॥

पंचविहवंधे २८।२४।२१।१३।१२।११ चउविहवंधे २८।२४।२१।१३।१२।११।५।

पञ्चविधवन्धेऽष्टचतुरेकाधिकविंशति [त्रयोदश द्वादश एकादश च] सत्त्वस्थानानि भवन्ति ।
चतुर्विधवन्धके तानि पूर्वाक्तानि पञ्चाधिकानि सत्त्वस्थानानि भवन्ति । तथाहि—पुवेदसज्वलनचतुष्कमिति
पञ्चविधवन्धके अनिवृत्तिकरणोपशमश्रेण्यां अष्टाविंशतिकसत्त्वस्थानम् २८ । तत्रानन्तानुबन्धविसंयोजिते २४
दर्शनमोहसंज्ञके क्षपिते २१ एकविंशतिकम् । तत्पञ्चविधवन्धके अनिवृत्तिकरणक्षपकश्रेण्यां मध्यमकपायाष्टके
क्षपिते त्रयोदशक १३ सत्त्वस्थानम् । पण्डे स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादश सत्त्वस्थानकम् १२ । पुनः स्त्रीवेदे वा
पण्डवेदे क्षपिते एकादशकसत्त्वस्थानम् ११ । पुवेद विना चतुर्विधसज्वलनवन्धकेऽनिवृत्तिकरणोपशमश्रेण्यां
२८ अनन्तानुबन्धविसंयोजिते २४ क्षपितदर्शनमोहसंज्ञके एकविंशतिक सत्त्वस्थानम् २१ । तच्चतुर्विधवन्धका-
निवृत्तिकरणक्षपकश्रेण्यां एकविंशतिकसत्त्वस्थाने २१ मध्यमकपायाष्टके क्षपिते त्रयोदशक सत्त्वस्थानम् १३ ।
पण्डे स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशक सत्त्वस्थानम् १२ । पुनः स्त्रीवेदे वा पण्डवेदे क्षपिते ११ । पुनः पणो-
कपाये क्षपिते पञ्च सत्त्वं सज्वलनचतुष्क पुवेदश्चेति पञ्चप्रकृतिसत्त्वम् ५ ॥४९॥

पञ्चकवन्धेऽनिवृत्तिकरणोपशमके सत्त्वस्थानानि २८।२४।२१ तच्चतुर्विधप्रकृतिक्षपके सत्त्वस्था-
नानि २१।१३।१२।११।५ ।

पाँच प्रकृतिक वन्धस्थानमे अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह और ग्यारह ये छह
सत्त्वस्थान होते हैं । चार प्रकृतिक वन्धस्थानमे पाँच प्रकृतिक सत्त्वस्थानसे अधिक वे ही छह
अर्थात् सात सत्त्वस्थान होते हैं ॥४९॥

पाँच प्रकृतिक वन्धस्थानमे २८।२४।२१।१३।१२।११ ये छह सत्त्वस्थान तथा चार प्रकृतिक
वन्धस्थानमे २८।२४।२१।१३।१२।११।५ ये सात सत्त्वस्थान होते हैं ।

1 सं० पञ्चस० ५, ५६ ।

१ सप्ततिका० २२ पर तत्रेदक् पाठः—

पञ्चविह-चउविहेसु छ छक्क सेसेसु जाण पचेव ।

पत्तेय पत्तेय चत्तारि य वधवोच्छेए ॥

[मूलगा० १६] सेसेसु अबंधम्मि य संता अड-चउर-एगहियवीसा ।

ते पुण अहिया णेया कमसो चउ-तिय-दुगेणेण' ॥५०॥

सेसे बधतिए, अबधेवि चत्तारि सत्तट्ठाणाणि । तत्थ तिबंधए २८।२४।२१।४। दुवधए २८।२४।२१।३।
एयवधे २८।२४।२१।२। अबंधे २८।२४।२१।१।

शेषु त्रिद्व्येकबन्धके अबन्धके च प्रत्येक अष्टाविंशतिकं २८ चतुर्विंशतिकं २४ एकविंशतिकं च २१ ।
तानि पुनः क्रमशश्चतुस्त्रिद्विकैकेनाधिकानि मोहसत्त्वस्थानानि । तथाहि अनिवृत्तिकरणे सज्ज्वलनमानमाया-
लोभत्रयबन्धके उपशमके २८।२४।२१ । अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य विसंयोजितदर्शनमोहसत्त्वस्य क्षपण च
तत्र सम्भवात् । तत्रिबन्धानिवृत्तिक्षपके पुंवेदे क्षय गते चतुःसज्ज्वलनसत्त्वस्थानम् ४ । तद्विद्विकबन्धोपशमके
२८।२४।२१ । क्षपके क्रोधे क्षपिते संज्वलनत्रिकसत्त्वस्थानम् ३ । अनिवृत्तिकरणोपशमके एकवन्धके २८।२४।
२१ । क्षपके च मानक्षपिते संज्वलनमाया-लोभसत्त्वद्वयम् २ । अबन्धके सूक्ष्मसांपराये उपशमश्रेण्यां
२८।२४।२१ । क्षपकश्रेण्यां सूक्ष्मलोभसत्त्व सूक्ष्मकृष्टिकरणरूपलोभसत्त्वमेकम् १ । इति त्रिद्व्येकबन्धके
अबन्धके च चत्वारि सत्त्वस्थानानि ४।३।२।१ ॥५०॥

शेष तीन, दो और एक बन्धस्थानमे और अबन्धक स्थानमें क्रमशः चार, तीन, दो और
एक प्रकृतिक सत्त्वस्थानसे अधिक अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक ये चार-चार सत्त्वस्थान
होते हैं ॥५०॥

शेष तीन बन्धस्थानोंमे और अबन्धकस्थानमें चार-चार सत्त्वस्थान होते हैं । उनमेसे तीन
प्रकृतिक बन्धस्थानमे २८।२४।२१।४ ये चार सत्त्वस्थान होते हैं । द्विप्रकृतिक बन्धस्थानमें २८।
२४।२१ । ३ ये चार सत्त्वस्थान होते हैं । एक प्रकृतिक बन्धस्थानमे २८।२४।२१।२ ये चार
सत्त्वस्थान होते हैं । तथा अबन्धकस्थानमे २८।२४।२१।१ ये चार सत्त्वस्थान होते हैं ।

विशेषार्थ—मोहनीयके किस-किस बन्धस्थानमे किस-किस उदयस्थानके साथ कौन-कौन
से सत्त्वस्थान किस प्रकार सम्भव हैं, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—बाईस प्रकृतिक बन्ध-
स्थान मिथ्यादृष्टिके होता है । इसके सात, आठ, नौ और दश प्रकृतिक चार उदयस्थान और
अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक ये तीन सत्त्वस्थान होते हैं । इनमेसे सातप्रकृतिक
उदयस्थानके समय अट्ठाईस प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान होता है । इसका कारण यह है कि
सातप्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धीके उदयके बिना ही प्राप्त होता है और मिथ्यात्वमे अनन्ता-
नुबन्धीके उदयका अभाव उसी जीवके होता है जिसने पहले सम्यग्दृष्टिकी दशामें अनन्तानुबन्धि-
चतुष्ककी विसंयोजना की है । पुनः सम्यक्त्वसे गिरकर और मिथ्यात्वमे जाकर जिसने मिथ्यात्वके
निमित्तसे पुनः अनन्तानुबन्धि-चतुष्कका बन्ध प्रारम्भ किया । ऐसे जीवके एक आवलीकाल तक
अनन्तानुबन्धी कपायका उदय नहीं होता है । किन्तु ऐसे जीवके अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्त्व
अवश्य पाया जाता है । इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सात प्रकृतिक उदयस्थानमे अट्ठाईस प्रकृतिक
एक ही सत्त्वस्थान होता है । आठ प्रकृतिक उदयस्थानमे अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस ये
तीनों ही सत्त्वस्थान होते हैं । इसका कारण यह है कि आठ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकारका
होता है—एक तो अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित और दूसरा अनन्तानुबन्धीके उदयसे सहित ।
इनमेसे अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित आठ प्रकृतिक उदयस्थानमें अट्ठाईस प्रकृतिक एक ही
सत्त्वस्थान होता है । तथा अनन्तानुबन्धीके उदयसे सहित आठ प्रकृतिक उदयस्थानमे आदिके
तीनों ही सत्त्वस्थान सम्भव हैं । वह इस प्रकार कि जब तक सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना नहीं
होती, तब तक अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना हो जाने पर

सत्ताईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेगना हो जाने पर छव्वीसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। इसके अतिरिक्त छव्वीसप्रकृतिक सत्त्वस्थान अनादिमिथ्यादृष्टिके भी होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित नौप्रकृतिक उदयस्थानमे अट्ठाईसप्रकृतिक एक सत्त्वस्थान तो होता ही है; किन्तु अनन्तानुबन्धीके उदयसे सहित उसी नौ प्रकृतिक उदयस्थानमे आदिके तीनों ही सत्त्वस्थान सम्भव है। दशप्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धीके उदयवाले जीवके ही होता है, अतएव उसमे अट्ठाईस, सत्ताईस और छव्वीसप्रकृतिक तीनों सत्त्वस्थान बन जाते हैं।

इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानमे अट्ठाईसप्रकृतिक एक सत्त्वस्थान होता है। इसका कारण यह है कि इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थान सासादनगुणस्थानवर्ती जीवके ही होता है और यह गुणस्थान उपशमसम्यक्त्वसे च्युत हुए जीवके ही होता है। किन्तु ऐसे जीवके दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका सत्त्व अवश्य पाया जाता है। इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवके उदयस्थान सात, आठ और नौप्रकृतिक तीन पाये जाते हैं, अतएव उनके साथ एक ही अट्ठाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है।

सत्तरह प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ अट्ठाईस, सत्ताईस, चौबीस, तेईस, वाईस और इक्कीसप्रकृतिक छह सत्त्वस्थान होते हैं। सत्तरहप्रकृतिक बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि इन दो गुणस्थानोमे होता है। इनमेसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सात, आठ और नौप्रकृतिक तीन उदयस्थानसे होते हैं और अविरतसम्यग्दृष्टि जीवोंके छह, सात, आठ और नौ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। इनमेसे छहप्रकृतिक उदयस्थान उपशमसम्यक्त्वी या क्षायिक-सम्यक्त्वी जीवोंके प्राप्त होता है। इनमेसे उपशमसम्यक्त्वी जीवोंके अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं। अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान प्रथमोपशमसम्यक्त्वके समय होता है। जो जीव अनन्तानुबन्धीका उपशम करके उपशमश्रेणी पर चढ़कर गिरा है, उस अविरतसम्यग्दृष्टिके भी अट्ठाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। तथा जिसने अनन्तानुबन्धीकी उद्वेगना या विसंयोजना की है, उस औपशमिक अविरतसम्यक्त्वीके चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टिके केवल इक्कीस प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान होता है, क्योंकि अनन्तानुबन्धि-चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियोंके क्षय होने पर ही क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार छह प्रकृतिक उदयस्थानमे अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीनों ही सत्त्वस्थान होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सात प्रकृतिक उदयस्थानके साथ अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीसप्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं। इनमेसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव तीसरे गुणस्थानको प्राप्त होता है, उसके अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। किन्तु जिस मिथ्यादृष्टिने सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेगना करके सत्ताईस प्रकृतिक सत्त्वस्थानको तो प्राप्त कर लिया है, किन्तु अभी सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेगना नहीं की है, वह यदि मिथ्यात्वसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होता है, तो उसके सत्ताईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। सम्यग्दृष्टि रहते हुए जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है, वह यदि संक्लेशपरिणामोंके वशसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हो, तो उसके चौबीसप्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया जाता है। किन्तु अविरतसम्यक्त्वी जीवके सात प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, वाईस और इक्कीस पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। इनमेसे अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थान तो उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थान अनन्तानुबन्धिचतुष्ककी विसंयोजना करनेवालोंके ही होता है। तेईस और वाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान केवल वेदकसम्यक्त्वी जीवोंके ही होते हैं। इसका कारण यह है कि आठ वर्षसे ऊपरकी आयुवाला जो वेदकसम्यक्त्वी जीव दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत

होता है, उसके अनन्तानुबन्धि-चतुष्क और मिथ्यात्व, इन पाँचके क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। पुनः उसीके सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय हो जाने पर बाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। यह बाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा चारों ही गतियोंमें सम्भव है। इसी प्रकार आठप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए भी सम्यग्मिथ्या-दृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि जीवोंके क्रमशः पूर्वोक्त तीन और पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। नौ प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु अविरतोंमें नौप्रकृतिक उदयस्थान वेदकसम्यग्दृष्टियोंके ही होता है और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान पाये जाते हैं, अतः यहाँ पर भी उक्त चार सत्तास्थान होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सत्तरहप्रकृतिक बन्धस्थान, सात, आठ और नौप्रकृतिक तीन उदयस्थान तथा अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिक तीन सत्तास्थान होते हैं। अविरत-सम्यग्दृष्टियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टिके सत्तरहप्रकृतिक एक बन्धस्थान, छह, सात और आठ प्रकृतिक तीन उदयस्थान, तथा अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक दो सत्तास्थान होते हैं। क्षायिक-सम्यग्दृष्टिके सत्तरह प्रकृतिक एक बन्धस्थान, छह, सात और आठ प्रकृतिक तीन उदयस्थान, तथा इक्कीसप्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है। वेदकसम्यग्दृष्टिके सत्तरहप्रकृतिक एक बन्धस्थान सात, आठ और नौ प्रकृतिक तीन उदयस्थान, तथा अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक चार सत्तास्थान होते हैं।

तेरहप्रकृतिक बन्धस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। तेरह प्रकृतियोंका बन्ध देशविरतोके होता है। वे दो प्रकारके होते हैं—एक तिर्यच, दूसरे मनुष्य। इनमें जो तिर्यच देशविरत है, उनके चारों ही उदयस्थानोंमें अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं। इनमेंसे अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान तो उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि इन दोनों प्रकारके देशविरत तिर्यचोंके होता है। उसमें भी जो प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके समय ही देशविरतिको प्राप्त करता है, उसी देशविरतके उपशमसम्यक्त्वके रहते हुए अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। जो देशविरत मनुष्य है उनके पाँच प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं। छहप्रकृतिक और सातप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए प्रत्येकमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। तथा आठप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं।

नौ प्रकृतिक बन्धस्थान प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके होता है। इनके चार, पाँच, छह और सात प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। इनमेंसे चार प्रकृतिक उदयस्थानके साथ दोनों गुणस्थानोंमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन ही सत्त्वस्थान होते हैं; क्योंकि यह उदयस्थान उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके ही होता है। पाँच और छह प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए पाँच-पाँच सत्त्वस्थान होते हैं, क्योंकि ये उदयस्थान तीनों प्रकारके सम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्भव है। किन्तु सातप्रकृतिक उदयस्थान वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके ही होता है। अतएव यहाँ इक्कीसप्रकृतिक सत्त्वस्थानसम्भव नहीं है; शेष चार ही सत्त्वस्थान होते हैं।

पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें द्विकप्रकृतिक एक उदयस्थान और अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह और ग्यारह ये छह सत्तास्थान होते हैं। इनमेंसे उपशमश्रेणीकी अपेक्षा आदिके तीन सत्तास्थान पाये जाते हैं। तथा क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा इक्कीस, तेरह, बारह और ग्यारह ये चार सत्तास्थान होते हैं। जिस अनिवृत्तिवादरसंयतने आठ मध्यम कपायोंका क्षय नहीं किया, उसके इक्कीसप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। उसीके आठ कपायोंका क्षय होने पर तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः नपुंसकवेदका क्षय होने पर बारहप्रकृतिक सत्तास्थान होता

है और स्त्रीवेदका क्षय होने पर ग्यारहप्रकृतिक सत्तास्थान होता है । इस प्रकार पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमे दोनो श्रेणियोंकी अपेक्षा छह सत्तास्थान होते हैं ।

चारप्रकृतिक बन्धस्थानमे द्विप्रकृतिक और एकप्रकृतिक ये दो उदयस्थान और अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह और पाँच प्रकृतिक सात सत्तास्थान होते हैं । चार प्रकृतिक बन्धस्थान भी दोनो श्रेणियोंमे होता है । अतः उनके साथ उपशमश्रेणीमे अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्तास्थान होते हैं । शेष चार सत्तास्थान क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा जानना चाहिए । उनमेसे तेरह, बारह और ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थानोंका वर्णन तो पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानके समान ही जानना चाहिए । उसी जीवके हास्यादिपट्टकके क्षय हो जाने पर पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ।

तीन, दो और एक बन्धस्थानमे एक प्रकृतिक उदय और चार चार सत्तास्थान होते हैं, यह बात पहले स्वयं ग्रन्थकार बतला आये हैं । उन चार सत्तास्थानोंमेसे अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्तास्थान तो उपशमश्रेणीमे ही होते हैं । शेष चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक और द्विप्रकृतिक एक-एक सत्तास्थानका स्पष्टीकरण यह है कि उसी अनिवृत्तिवादरसंयतके वेदोंका क्षय होने पर चार प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है । संज्वलन क्रोधके क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, संज्वलन मानके क्षय हो जाने पर द्विप्रकृतिक सत्तास्थान होता है और संज्वलन मायाके क्षय हो जाने पर एकप्रकृतिक सत्तास्थान होता है । पुनः अवन्धक सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके एकप्रकृतिक उदयस्थानके साथ एकप्रकृतिक सत्तास्थान होता है । किन्तु अवन्धक सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमकके एक प्रकृतिक उदयस्थानके साथ अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्तास्थान पाये जाते हैं ।

[मूलगा०२०] 'दस णव पण्णरसाइ वंधोदयसंतपयडिठाणाणि ।

भणियाणि मोहणिज्जे इत्तो णामं परं वोच्छं' ॥५१॥

मोहनीये बन्धोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि क्रमेण दश १० नव ९ पञ्चदश १५ भणितानि । मोहनीय-प्रकृतिबन्धस्थानानि १० मोहप्रकृत्युदयस्थानानि ९ मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि १५ । इतः पर नामकर्मण-स्तानि बन्धोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानान्यह वक्ष्यामि ॥५१॥

इस प्रकार मोहनीयकर्मके दश बन्धस्थान, नौ उदयस्थान और पन्द्रह सत्त्वस्थान कहे । अब इससे आगे नामकर्मके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानोंको कहेंगे ॥५१॥

अब उनमेंसे सबसे पहले नामकर्मके बन्धस्थान कहते हैं—

[मूलगा०२१] 'तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसंमुगुतीसं ।

तीसेकतीसमेगं वंधट्ठाणाणि णामस्स' ॥५२॥

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३१।

नामकर्मणः बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिक २३ पञ्चविंशतिक २५ षड्विंशतिक २६ अष्टाविंशतिक २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्क ३० एकत्रिंशत्क ३१ एकक १ इत्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३१ । आद्यानि सप्त मिथ्याहृष्ट्याद्यपूर्वकरणपट्टभागान्त यथासम्भव बध्यन्ते । एक यशःकीर्तिक १ उभयश्रेण्योर-पूर्वकरणसप्तमभागप्रथमसमयात्सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयपर्यन्त बध्यते ॥५२॥

१. स०पञ्चस० ५, ६० । २. ५, ६१ ।

१. सप्ततिका० २३ । २. सप्ततिका० २४ ।

नाम कर्मके तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस और एक प्रकृतिक, इस प्रकार ये आठ बन्धस्थान होते हैं ॥५२॥

अब नामकर्मके चारों गतियोंमें संभव बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१इगि पंच तिणि पंचय बंधङ्गाणा हवन्ति णामस्स ।

णिरयगइ तिरिय मणुया देवगईसंजुआ होंति ॥५३॥

१।५।३।५

क गत्यां कियन्ति स्थानानि सम्भवन्तीत्याह—[‘इगि पंच तिणि’ इत्यादि ।] नरकगतिं याता मिथ्याद्विजीवेन तिर्यग्मनुष्येण नरकगतियुक्तं नामकर्मणः बन्धस्थानं एकं बध्यते १ । तिर्यग्गत्यां तिर्यग्गतिसंयुक्तानि नामकर्मणः बन्धस्थानानि पञ्च भवन्ति ५ । मनुष्यगत्यां मनुष्यगत्या सह नाम्नः कर्मणः बन्धस्थानानि त्रीणि भवन्ति ३ । देवगतौ देवगतिसंयुक्तानि नामकर्मणः बन्धस्थानानि पञ्च भवन्ति ॥५३॥

नरकगतिसंयुक्त नामकर्मका एक बन्धस्थान है । तिर्यग्गतिसंयुक्त नामकर्मके पाँच बन्धस्थान हैं । मनुष्यगतिसंयुक्त नामकर्मके तीन बन्धस्थान हैं और देवगतिसंयुक्त नामकर्मके पाँच बन्धस्थान होते हैं ॥५३॥

नरकगतियुक्त १ । तिर्यग्गतियुक्त ५ । मनुष्यगतियुक्त ३ । देवगतियुक्त ५ बन्धस्थान ।

अब आचार्य उक्त स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

अट्ठावीसं णिरए तेवीसं पंचवीस छब्बीसं ।

उणतीसं तीसं च हि तिरियगईसंजुआ पंच ॥५४॥

णिरए २८ । तिरियगईए २३।२५।२६।२८।३०

तानि कानि ? [‘अट्ठावीसं णिरए’ इत्यादि ।] नरकगत्यां नरकगतिं यातो जीवो नामप्रकृत्यष्टाविंशतिमेक स्थान बध्नाति २८ । तिर्यग्गतौ त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ पट्विंशतिकं २६ एकोनत्रिंशत्कं २८ त्रिंशत्कं ३० चेति पञ्च नामकर्मणः प्रकृतिबन्धस्थानानि तिर्यग्गतियुक्तानि भवन्ति ॥५४॥

नरकगतौ २८ । तिर्यग्गतौ २३।२५।२६।२८।३० ।

नरकगतिके साथ बँधनेवाला नामकर्मका अट्ठाईसप्रकृतिक एक बन्धस्थान है । तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पाँच बन्धस्थान तिर्यग्गति-संयुक्त बँधते हैं ॥५४॥

नरकगतियुक्त २८ । तिर्यग्गतियुक्त २३।२५।२६।२८।३०।

पणुवीसं उणतीसं तीसं च तिणि हुन्ति मणुयगई ।

^२देवगईए चउरो एकत्तीसादि णिगदी एयं ॥५५॥

मणुयगईए २५।२८।३०। देवगईए ३१।३०।२८।२८।१

मनुष्यगतौ पञ्चविंशतिक २५ एकोनत्रिंशत्क २८ त्रिंशत्क ३० चेति त्रीणि नामप्रकृतिबन्धस्थानानि मनुष्यगतियुक्तानि भवन्ति २५।२८।३०। देवगत्यां एकत्रिंशत्कादीनि चत्वारि । एकं गतिबन्धरहितं एक यशो बध्नाति । देवगतौ ३१।३०।२८।२८।१ ॥५५॥

मनुष्यगतिके साथ नामकर्मके पच्चीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक तीन स्थान बँधते हैं । देवगतिके साथ इकतीस प्रकृतिक स्थानको आदि लेकर चार स्थान बँधते हैं । एकप्रकृतिक स्थान गति-रहित बँधता है ॥५५॥

मनुष्यगतियुक्त २५।२८।३०। देवगतियुक्त ३१।३०।२८।२८। गतिरहित १ ।

१ गिरयदुयं पंचिदिय वेउव्विय तेउ कम्म णामं च ।
 वेउव्वियंगवंगं वण्णचउक्कं तहा हुंडं ॥५६॥
 अगुरुयलहुअचउक्कं तसचउ असुहं च अप्पसत्थगई ।
 अत्थिर दुब्भग दुस्सर अणाइज्जं चेव णिमिणं च ॥५७॥
 अजसकित्ती य तहा अट्ठावीसा हवंति णायव्वा ।
 गिरयगईसंजुत्तं मिच्छादिट्ठी दु वंधंति ॥५८॥

२ एत्थ गिरयगईए सह वुत्तिअभावादो एइदियवियल्लिदियजाईओ ण वज्झति । तेण भंगो ॥१॥

अथ नरकगतिं प्रति गन्तारो जीवा मिथ्यादृष्टयः नामकर्मप्रकृतीरष्टाविंशतिं बध्नन्तीत्याह—
 ['गिरयदुयं पंचिदिय' इत्यादि ।] नरकगतितदानुपूर्वद्वय २ पञ्चेन्द्रिय १ वैक्रियिक १ तैजस १ कर्मणं १
 वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग १ वर्णचतुष्क ४ हुण्डक १ अगुरुलघुपधातपरधातोच्छ्वासचतुष्क ४ त्रस-वादर-प्रत्येक-पर्याप्त
 चतुष्क ४ अशुभ १ अप्रशस्तविहायोगतिः १ अस्थिर १ दुर्भगं १ दुःस्वर १ अनादेय १ निर्माण १ अयश-
 स्कीर्तिः १ चेत्यष्टाविंशतिं प्रकृतोन्नरकगतिरुक्ता मिथ्यादृष्टयस्तिर्यङ्गो मनुष्या वा बध्नन्ति २८ ॥५६-५८॥

अष्टाष्टाविंशतिके नरकगत्या सह प्रवृत्तिविरोधात् एकेन्द्रियविकलेन्द्रियजातयो न बध्यन्ते, संहननानि
 च न बध्यन्ते, तेन भङ्ग एकः १ ।

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे नरकद्विक (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी) पंचेन्द्रियजाति,
 वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, (रूप, रस, गन्ध,
 स्पर्श नामकर्म) हुण्डकसंस्थान, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपधात, परधात, उच्छ्वास), त्रस
 चतुष्क (त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर) अशुभ, अप्रशस्तविहायोगति, अस्थिर, दुर्भग,
 दुःस्वर, अनादेय, निर्माण और अयशः कीर्ति, ये अट्ठाईस प्रकृतियों जानना चाहिए । इन प्रकृतियों-
 का नरकगतिसंयुक्त बन्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यङ्ग करते हैं ॥५६-५८॥

यहाँ नरकगतिके साथ उदय न पाये जानेसे एकेन्द्रिय और विकेन्द्रिय जातियाँ नहीं
 बंधती हैं, इसलिए भंग एक ही होता है ।

३ तत्थ य पढमं तीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च ।
 पंचिदियजाई वि य छस्संठाणाणमेयदरं ॥५९॥
 ओरालियंगवंगं छस्संठाणाणमेयदरं ।
 वण्णचउक्कं च तहा अगुरुयलहुयं च चत्तारि ॥६०॥
 उज्जोउ तसचउक्कं थिराइछज्जुयलाणमेयदरं णिमिणं ।
 वंधइ मिच्छादिट्ठी एयदरं दो विहायगदी ॥६१॥

४ एत्थ यः पढमतीसे छस्संठाण-छसघयण-थिराइछज्जुयल-विहायगईजुयलाणि ६।६।२।२।२।२।२।२।
 अण्णोण्णगुणिया भगा ४६०८ ।

1 म० पञ्चस० ५, ६३-६५ । 2. ५, 'नरकगत्या सह' इत्यादिगद्याशः (पृ० १६२) ।

3. ५, ६७-६९ । 4. ५, 'तत्र प्रथमत्रिंशति' इत्यादिगद्याशः (पृ० १६२) ।

अथ 'एयत्थ' इति पाठः :

नहीं पाया जाता। इसलिए पाँच संस्थान, पाँच संहनन और स्थिरादि छह युगलोंके तथा विहायोगतिद्विकके परस्पर गुणा करनेसे $(4 \times 4 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 3200)$ तीन हजार दो सौ भंग होते हैं। ये सर्व भंग पूर्वोक्त ४६०८ में प्रविष्ट होनेसे पुनरुक्त होते हैं, अतः उनका ग्रहण नहीं किया गया है।

^१तह य तदीयं तीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च ।

ओरालियंगवंगं हुंडमसंपत्त वण्णचदुं ॥६३॥

अगुरुयलयहुयचउकं तसचउउज्जोवमप्पसत्थगई ।

थिर-सुह-जसजुगलानं तिण्णोयदरं अणादेजं ॥६४॥

दुब्भग-दुस्सर-णिमिणं वियल्लिंदियजाइ एयदरमेव ।

एयाओ पयडीओ मिच्छाइड्डी दु वंधंति ॥६५॥

^२एत्थ वियल्लिंदियाण एयहुंडसठाणमेव । तहा एदेसिं बधोदयाण दुस्सरमेव । इदि थिर-सुह-जसजुयलतिणिणवियल्लिंदियजाइओ २।२।२।३ अण्णोण्णगुणिया भंगा २४ ।

तथा तृतीय नामकर्मप्रकृतिस्थान त्रिशत्क मिथ्यादृष्टिर्जीवो मनुष्यस्तिर्यग्वा बद्ध्वा विकलत्रयजीवः तिर्यग्गतावुत्पद्यते । तत्किम् ? तिर्यग्द्वय २ औदारिक-तैजस-कर्मणत्रिक ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ हुण्डक १ सृपाटिकं १ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ त्रसचतुष्क ४ उद्योत १ अप्रशस्तविहायोगतिः १ स्थिर-शुभ-यशोयुगलानां त्रयाणामेकतर १।१।१ । अनादेय १ दुर्भग १ दुस्वरं १ निर्माणं १ विकलेन्द्रियजात्येकतर १ चेत्थेताः प्रकृतोः ३० मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति ॥६३-६५॥

अत्र विकलेन्द्रियाणामेकं हुण्डसंस्थान भवति । एतेषां विकलत्रयाणां बन्धोदययोः दुस्वरमेव भवति । इति स्थिर-शुभ-यशोयुगलानि त्रीणि विकलत्रयजातित्रय २।२।२।३ । अन्योन्यगुणितभङ्गाः २४ ।

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक तृतीय बन्धस्थान है। उसकी प्रकृतियों इस प्रकार हैं—तिर्यग्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग हुंडकसंस्थान, असंप्राप्त-सृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति; इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक एक, अनादेय, दुर्भग, दुस्वर, निर्माण और विकलेन्द्रियजातियोमेंसे कोई एक, इन प्रकृतियोंको मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्च ही बांधते हैं ॥६३-६५॥

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि विकलेन्द्रियजीवोके हुंडकसंस्थान ही होता है। तथा इनके दुस्वरप्रकृतिका ही बन्ध और उदय होता है। इनकी तीन विकलेन्द्रिय जातियों तथा स्थिर, शुभ और यशस्कीर्ति युगल; इनके परस्पर गुणा करनेसे $(3 \times 2 \times 2 \times 2 = 24)$ चौबीस भंग होते हैं।

^३जहं तिण्हं तीसाणं तह चेव य तिणिण ऊणतीसं तु ।

णवरि विसेसो जाणे उज्जोवं णत्थि सव्वत्थ ॥६६॥

एयासु पुव्वुत्तभंगा ४६०८ । २४ ।

यथा त्रिशत्कानां त्रिक ३०।३०।३० तथैव एकोनत्रिशत्कानां त्रिक २६।२६।२६ । नवरि विशेषः -

१. स० पञ्चस० ५, ७१-७३ । २. ५, ७४-५५ । ३. ५, ७६ ।

† व जिह

किन्तु सर्वत्र तिर्यक्षु जीवेषु उद्योतो नास्तीति, केचिदुद्योतं वन्दन्ति, केचिन्न वन्दन्ति । अत उद्योतं विना एकोनविंशत्कं त्रिकं पूर्वोक्तप्रकृतिस्थानत्रिकं २६।२६।२६ ज्ञेयम् ॥६६॥

एतासु पूर्वोक्ता मङ्गा. ४६०भा२४ ।

जिस प्रकारसे तीन प्रकारके तीसप्रकृतिक वन्धस्थानोंका निरूपण किया है, उसी प्रकारसे तीन प्रकारके उनतीसप्रकृतिक वन्धस्थान भी होते हैं । केवल विशेषता यह है कि उन सभीमें उद्योतप्रकृति नहीं होती है ॥६६॥

इन तीनों ही प्रकारके उनतीसप्रकृतिक वन्धस्थानोंके भंग पूर्वोक्त ४६०८ और २४ ही होते हैं ।

१ तत्थ इमं छञ्चीसं तिरियदुगोराल तेयक्कं कम्मं च ।

एहंदिय वण्णचउ अगुस्यलहुयचउकं होइ हुंडं च ॥६७॥

आदाबुज्जोवाणमेयदर थावर वादरयं ।

पज्जत्तं पत्तेयं थिराथिराणं च एयदरं ॥६८॥

एयदरं च सुहामुह दुग्गम जसजुयलमेयदर णिमिणं ।

अणादिज्जं चेव तहा मिच्छादिह्ठी दु वंधंति ॥६९॥

२ एतत्थ एहंदियसु अंगवंगं णत्थि, अट्ठंगाभावाद्दो । संठाणमत्ति एयमेव हुंडं । आदाबुज्जोव-थिर-सुह-जसजुयलाणि २।२।२।२ अण्णोग्गलुगिया भंता १६ ।

तत्र तिर्यगन्त्र्यां इदं पट्त्रिंशत्त्रिकं नामप्रकृतिस्थानं मिथ्यादृष्टिर्जोवो बद्ध्वा निर्यग्जीव उत्पद्यते । किं तत् ? तिर्यग्द्वयं १ औदारिक-वैजस-कामणादि २ एकेन्द्रियं १ वर्णचतुष्कं २ अगुल्लयुचतुष्कं २ हुण्डकं १ आतपोद्योतयोरेकतरं १ स्यावरं १ वादरं १ पर्याप्तं १ स्थिरास्थिरयोरेकतरं १ शुभाशुभयोरेकतरं १ दुर्भागं १ यशोअशुभयोरेकतरं १ निर्माणं १ अनादेयं १ चेति पट्त्रिंशतिं प्रकृतोर्मिथ्यादृष्टयो वल्लन्ति २६ ॥६७-६९॥

अत्र एकेन्द्रियेषु ऋतोपाङ्गं नान्ति, अष्टाङ्गामावान् । संस्थानं हुण्डकमेव भवति । अत आतपोद्योत-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशोअशुभसंयुगलानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणिता मङ्गाः १६ ।

छञ्चीसप्रकृतिक वन्धस्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—निर्यग्विद्वक, औदारिकशरीर, वैजसशरीर, कामणशरीर, एकेन्द्रियजाति, वर्णचतुष्क, अगुल्लयुचतुष्क, हुंडकसंस्थान, आतप, और उद्योतमेंसे कोई एक, स्यावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर-अस्थिरमेंसे कोई एक, शुभ-अशुभमेंसे कोई एक, दुर्भाग और यशःकीर्तियुगलमेंसे कोई एक, निर्माण और अनादेय, इन छञ्चीस प्रकृतियोंको एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि देव बाँधते हैं ॥६७-६९॥

यहाँपर एकेन्द्रियमें अंगोपाङ्गनामकर्मका उद्भय नहीं होता है, क्योंकि उनके हस्त, पाद आदि आठ अंगोंका अभाव है । उनके संस्थान भी एक हुंडक ही होता है । अतः आतप उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति युगलोंको परस्पर गुणा करनेपर (२×२×२×२=१६) सोलह भंग होते हैं ।

^१जह* छव्वीसं ठाणं तह चेव य होइ पढमपणुवीसं ।

णवरि विसेसो जाणे उज्जोवादावरहियं तु ॥७०॥

बादर सुहुमेकदरं साहारणपत्तेयं च एकदरं ।

संजुत्तं तह चेव य मिच्छाइट्ठी तु बंधंति ॥७१॥

^२एत्थ सुहुम-साहारणाणि भवणादि ईसानता देवाण बधति । एत्थ जसकित्ति णिरुमिऊण थिराथिर-
दो भगा सुभासुम-दो-भगेहिं गुणिआ । ४। अजसकित्ति णिरंमिऊण बायर-पत्तेय-थिर-सुहजुयलाणि २।२।२।२।
अण्णोणगुणिआ अजसकित्तिभंगा १६ । उभए वि २० ।

यथा पट्विंशतिकं स्थानं तथा प्रथमपञ्चविंशतिक नामप्रकृतिस्थानं २५ भवति । नवरि किञ्चिद्वि-
शेषः, तत् पट्विंशतिकं उद्योतात्परहित त्व जानोहि, तत्र तद्द्वयं निराक्रियते इत्यर्थः २५ । बादर-सूक्ष्मयो-
र्मध्ये एकतरेण साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतरेण च संयुक्त पञ्चविंशतिक स्थान २५ मिथ्यादृष्टयो
वधन्ति ॥७०-७१॥

अत्र पञ्चविंशतिके सूक्ष्म-साधारणप्रकृति द्वे भवनत्रयज-सौधर्मैशानजा देवा न वधन्ति । किन्तु
बादर-प्रत्येकद्वयं वधन्तीत्यर्थः । अत्र यश कीर्त्तिमाश्रित्य स्थिरास्थिरभङ्गा २ शुभाशुभाभ्यां भङ्गाभ्यां २ गुणिता
भङ्गाश्चत्वारः ४ । अयशःकीर्त्तिमाश्रित्य बादरसूक्ष्म-प्रत्येकसाधारण-स्थिरास्थिर-शुभाशुभयुगलानि २।२।२।२
अन्योन्यगुणिताः अयशस्कीर्त्तिभङ्गाः १६ । उभयोऽपि २० ।

जिस प्रकार छव्वीसप्रकृतिक स्थान है, उस ही प्रकार प्रथम पञ्चीसप्रकृतिक स्थान जानना
चाहिए । विशेषता केवल यह है कि वह उद्योत और आतप, इन दो प्रकृतियोंसे रहित होता है ।
इस स्थानको बादर-सूक्ष्मोमेसे किसी एकसे संयुक्त, तथा साधारण-प्रत्येकशरीरमेसे किसी एकसे
संयुक्त मिथ्यादृष्टि जीव बंधते हैं ॥७०-७१॥

इस प्रथम पञ्चीस प्रकृतिक स्थानमे बतलाई गई प्रकृतियोंमेसे सूक्ष्म और साधारण इन दो
प्रकृतियोंको भवनत्रिक और सौधर्म-ईशान स्वर्गके देव नहीं बंधते हैं । यहाँ पर यशस्कीर्त्तिको
निरुद्ध करके स्थिर-अस्थिर-सम्बन्धी दो भंगोंको शुभ-अशुभ-सम्बन्धी दो भंगोंसे गुणित करने पर
चार भङ्ग होते हैं । तथा अयशस्कीर्त्तिको निरुद्ध करके बादर, प्रत्येक, स्थिर और शुभ, इन चार
युगलोंको परस्पर गुणित करने पर (२×२×२×२=१६) अयशकीर्त्तिसम्बन्धी सोलह भङ्ग
होते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त चार और सोलह ये दोनो मिल कर २० भङ्ग हो जाते हैं ।

^३विदियपणुवीसट्ठाणं तिरियदुगोराल तेय कम्मं च ।

वियलिंदिय-पंचिंदिय एयदरं हुंडसंठाणं ॥७२॥

ओरालियंगवंगं वण्णचउक्कं तहा अपज्जत्तं ।

अगुरुगलहुगुवघायं तस वायरयं असंपत्तं ॥७३॥

पत्तेयमथिरमसुहं दुभगमणादेज्ज अजस णिमिणं च ।

बंधइ मिच्छाइट्ठी अपज्जत्तसंजुयं एयं ॥७४॥

^४एत्थ परघाय-उत्सास-विहायगदि-सरणामाणं अपज्जत्तेण सह बधो णत्थि, विरोहाओ, अपज्जत्तकाले
य एदेसिं उदयाभावादो य । एत्थ चत्तारि जाह-भगा ४ ।

1. स० पञ्चस० ५, ८१ । 2. ५, ८२-८३ । 3. ५, ८४-८६ । 4. ५, 'यतोऽत्र परघातोच्छ्वास'
इत्यादि गद्यभागः (पृ० १६४) ।

द्वितीयं पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिस्थान २५ तिर्यग्जीवो मनुष्यो वा वद्ध्वा तिर्यग्गतौ समुत्पद्यते । तत्किम् ? तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्ये २ औदारिक-तैजस-कर्मणानि ३ विकलेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियाणां मध्ये एकतरं १ हुण्डकसंस्थान १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वर्णचतुष्क ४ अपर्याप्तं १ अगुरुलघु १ उपघातं १ त्रस १ वादर १ असम्प्राप्तसंहनन १ प्रत्येकं १ अस्थिरं १ अशुभ १ दुर्भग १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ चेति द्वितीयपञ्चविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं अपर्याप्तसंयुक्तं मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा वध्नाति २५ ॥७२-७४॥

अत्र परघातोच्छ्वास-विहायोगति-स्वरनामप्रकृतीनां अपर्याप्तेन सह बन्धो नास्तीति विरोधात् । अपर्याप्तकाले तेपासुदयाभावात् । अत्र चत्वारो जातिभङ्गाः ४ ।

द्वितीय पञ्चीसप्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियों इस प्रकार है—तिर्यग्विद्वक औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, विकलत्रय और पंचेन्द्रियजातिमेंसे कोई एक, हुण्डकसंस्थान, औदारिक-शरीर-अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर सृपाटिकासंहनन, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति और निर्माण, इस द्वितीय पञ्चीसप्रकृतिक अपर्याप्तसंयुक्त स्थानको मिथ्यादृष्टि जीव बंधता है ॥७२-७४॥

यहाँपर परघात, उच्छ्वास, विहायोगति और स्वर नामकर्मका अपर्याप्त नामकर्मके साथ विरोध होनेसे बन्ध नहीं होता । दूसरे अपर्याप्तकालमें इन प्रकृतियोंका उदय भी नहीं होता है । यहाँ पर जातिसम्बन्धो चार भंग होते हैं ।

^१तत्थ इमं तेवीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च ।

एइंदियवण्णचउं अगुरुयलहुयं च उवघायं ॥७५॥

थावरमथिरं असुहं दुभग अणादेज्ज अजस णिमिणं च ।

हुंडं च अपज्जत्तं वायर-सुहुमाणमेयदरं ॥७६॥

साहारण-पत्तेयं एयदर वंधगो तहा मिच्छो ।

एए वंधट्ठाणा तिरियगईसंजुया भणिया ॥७७॥

^२एत्थ संघयणवधो णत्थि, एइंदिएसु सघयणस्स उदयाभावादो । एत्थ वादर-सुहुम दो भंगा, पत्तेय-साहारण-दोभंगेहि गुणिया चत्तारि भगा ४ ।

एवं तिरियगईसंजुत्तसन्वभगा ६३०८ ।

इदं त्रयोविंशतिकं नामप्रकृतिबन्धस्थानं वद्ध्वा मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ् मनुष्यो वा तत्र तिर्यग्गतावुत्पद्यते । तत्किम् ? तिर्यग्द्वयं २ औदारिक-तैजस-कर्मणानि ३ एकेन्द्रियं १ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघु १ उपघातं १ स्थावर १ अस्थिर १ अशुभ १ दुर्भग १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माण १ हुण्डकं १ अपर्याप्तं १ वादर-सूक्ष्मयोर्मध्ये एकतरं १ साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतरं १ चेति त्रयोविंशतिनामप्रकृतीनां २३ वधको मिथ्यादृष्टिर्भवति । तिर्यग्गतौ एतानि नामकर्मप्रकृतिस्थानानि तिर्यग्गतियुक्तानि भणितानि सूरिभिरिति ॥७५-७७॥

अत्र त्रयोविंशतिके संहननबन्धो नास्ति, एकेन्द्रियेषु संहननानामुदयाभावात् । अत्र वादर-सूक्ष्मौ द्वौ २ प्रत्येक-साधारणाभ्यां द्वाभ्यां गुणिताश्चत्वारो भङ्गाः ४ ।

एवं तिर्यग्गतिसंयुक्तसर्वभङ्गा नवसहस्रत्रिगताष्टोत्तरसंख्याः ६३०८ ।

तेईसप्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियों इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कर्मणशरीर, एकेन्द्रियजाति, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, हुंडकसंस्थान, अपर्याप्त, वादर-सूक्ष्ममेसे कोई एक और साधारण-प्रत्येकमेंसे कोई एक । इस तेईसप्रकृतिक स्थानको मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है । इस प्रकार तिर्यग्गतिसंयुक्त बाँधनेवाले उपर्युक्त बन्धस्थान कहे ॥७५-७७॥

इस तेईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे संहननका बन्ध नहीं बतलाया गया है, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवके संहननका उदय नहीं होता है । यहाँ पर वादर-सूक्ष्मसम्बन्धी भंगोको प्रत्येक और साधारणसम्बन्धी दो भङ्गोंके साथ गुणा करने पर ४ भंग होते हैं ।

इस प्रकार तिर्यग्गतिसंयुक्त सर्व भङ्ग (४६०८ + २४ - ४६०८ + २४ + १६ + २० + ४ + ४ =) ६३०८ होते हैं ।

अब मनुष्यगतिसंयुक्त बाँधनेवाले स्थानोंका निरूपण करते हैं—

१ तत्थ य तीसट्ठाणा मणुयदुगोराल तेय कम्मं च ।
ओरालियंगवंगं समचउरं वज्जरिसभं च ॥७८॥
तसचउ वण्णचउकं अगुरुयलहुयं च हुंति चत्तारि ।
थिरमथिर-सुहासुहाणं एयदरं सुभगमादेज्जं ॥७९॥
सुस्सर-जसजुयलेकं पसत्थगई णिमिणयं च तित्थयरं ।
पंचिदियं च तीसं अविरयसम्मो उ वंधेइ ॥८०॥

२ एत्थ य दुब्भग-दुस्सर-अणादिजाणं तित्थयरेण सम्मत्तेण सह विरोधादो ण वधो । सुहय-सुस्सर-आदेजाणमेव वंधो । तेण थिर-सुह-जसजुयलाणि २।२।२ अण्णेण्णगुणिया भंगा ८ ।

अथेदं नामप्रकृतिबन्धस्थान बद्ध्वा मनुष्यगत्यां समुत्पद्यते । मनुष्यगत्या सह तत्स्थानकं गाथा-दशकेनाऽऽह—['तत्थ य तीसट्ठाणा' इत्यादि ।] तत्र मनुष्यगत्या नामकर्मप्रकृतिबन्धस्थान त्रिशत्कं ३० अविरतसम्यग्दृष्टिदेवो नारको वा बध्नाति । तत्किम् ? मनुष्यगति-तदानुपूर्व्ये २ औदारिक-तैजस-कर्मणानि ३ औदारिकाङ्गोपाङ्ग १ समचतुरस्रसंस्थानं १ वज्रवृषभनाराचसंहनन १ त्रसचतुष्कं ४ वर्णचतुष्कं ४ अगुरु-लघुचतुष्क ४ स्थिरास्थिर-शुभाशुभयुगलानां मध्ये एकतर १।१ सुभगं १ आदेय १ सुस्वरं १ यशोयुग्मस्यैक-तरं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ निर्माणं १ तीर्थंकरत्वं १ पञ्चेन्द्रिय १ चेति नामप्रकृतिबन्धस्थानकं त्रिशत्कं असंयतसम्यग्दृष्टिदेवो नारको वा बध्नाति ॥७८-८०॥

अत्र दुर्भग-दुःस्वरानादेयानां तीर्थकृतसम्यक्त्वाम्यां विरोधात्त बन्धः । सुभग-सुस्वरादेयानामेव बन्धः । यतस्तेन स्थिर-शुभ-यशो-युगलानि २।२।२ अन्योन्यगुणिता भङ्गाः अष्टौ ८ ।

उनमेसे तीसप्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियों इस प्रकार हैं—मनुष्यद्विक (मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्वी) औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र-संस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर, अस्थिर और शुभ-अशुभमेसे कोई एक एक, सुभग, आदेय, सुस्वर और यशःकीर्तियुगलमेंसे एक, प्रशस्तविहायो-गति, निर्माण, तीर्थंकर और पञ्चेन्द्रियजाति । इस तीसप्रकृतिक स्थानको अविरतसम्यग्दृष्टि बाँधता है ॥७८-८०॥

यहाँ पर दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन तीन प्रकृतियोंका तीर्थङ्करप्रकृति और सम्यक्त्वके साथ विरोध होनेसे बन्ध नहीं होता है; किन्तु सुभग, सुस्वर और आदेयका ही बन्ध होता है, इसलिए शेष तीन युगलोंके परस्पर गुणित करने पर $(२ \times २ \times ८ = ८)$ आठ भङ्ग होते हैं।

^१जह तीसं तह चेव य ऊणत्तीसं तु जाण पढमं तु ।

तित्थयरं वज्जित्ता अविरदसम्मो दु बंधेइ॥८१॥

एत्थ अट्ठ भंगा ८ पुणरुत्ता, इदि ण गहिया ।

यथा त्रिशत्कं बन्धस्थान तीर्थकरत्वं वर्जयित्वा प्रथममेकोनत्रिशत्कं नामप्रकृतिबन्धस्थान २६ अविरतसम्यग्दृष्टिर्देवो नारको वा बध्नातीति जानीहि ॥८१॥

अत्राष्टौ भङ्गाः ८ पुनरुक्तत्वाच्च गृह्यन्ते ।

जिस प्रकार तीसप्रकृतिक बन्धस्थान बतलाया गया है, उसी प्रकार प्रथम उनतीस प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए। इसमें केवल तीर्थङ्करप्रकृतिको छोड़ देते हैं। इस स्थानको अविरतसम्यग्दृष्टि जीव बंधता है ॥८१॥

यहाँ पर उपर्युक्त आठ भंग होते हैं, जो कि पुनरुक्त होनेसे ग्रहण नहीं किये गये हैं।

^२जह पढमं उणत्तीसं तह चेव य विदियऊणत्तीसं तु ।

णवरि विसेसो सुस्सर सुभगादेज्जुयलाणमेयदरं ॥८२॥

हुंडमसंपत्तं पिवं वज्जिय सेसाणमेकयरयं च ।

विहायगइज्जुयलमेयदरं सासणसम्मा दु बंधंति ॥८३॥

२।२।२।२।२।५।५।२ अण्णोण्णगुणिया भगा ३२०० ।

एए तइयउणत्तीसपविट्ठा ण गहिया ।

यथा प्रथममेकोनत्रिशत्कं तथा तेनैव प्रकारेण द्वितीयमेकोनत्रिशत्कं नामप्रकृतिबन्धस्थानं २६ भवति । नवरिः किञ्चिविशेषः, किन्तु सुस्वर-सुभगादेययुगलानां मध्ये एकतर १।१।१ । हुण्डकसंस्थाना-सम्प्राप्तसंहनने द्वे २ अन्तिमे वर्जयित्वा शेषाणां पञ्चानां संस्थानानां पञ्चानां सहननानां चैकतर १।१ विहायोगतियुग्मस्यैकतरं १ इति विशेषः । मनुष्यगतिसंयुक्तमेकोनत्रिशत्कं स्थान द्वितीयं २६ सासादन-सम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ॥८२-८३॥

स्थिर-शुभ-यशः-सुस्वर सुभगादेय-प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतियुगलान्त्यसंस्थान-सहननवर्जित-पञ्च-संस्थान-पञ्चसहननानि २।२।२।२।२।४।५ । ५ अन्योन्यगुणिता भङ्गाः ३२०० । एते भङ्गाः वक्ष्यमाण-तृतीयनवविंशतिं प्रति प्रविष्टा इति न गृहीता न गृह्यन्ते ।

जिस प्रकार प्रथम उनतीसप्रकृतिक स्थान कहा गया है, उसी प्रकार द्वितीय उनतीस-प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि सुस्वर, सुभग और आदेय, इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक एक, तथा हुंडक संस्थान, और सृपाटिका संहननको छोड़कर शेषमेंसे कोई एक एक और विहायोगति-युगलमेंसे कोई एक प्रकृति-संयुक्त द्वितीय उनतीस प्रकृतिकस्थानको सासादनसम्यग्दृष्टि जीव बंधते हैं ॥८२-८३॥

यहाँ पर स्थिरादि छह युगल, पाँच संस्थान, पाँच संहनन और विहायोगति-द्विकके परस्पर गुणित करनेपर $(२ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times ५ \times ५ \times २ =)$ ३२०० भंग होते हैं। ये भंग तृतीय उनतीसप्रकृतिक स्थानके अन्तर्गत हैं, इससे उनका ग्रहण नहीं किया गया है।

१. सं० पञ्चसं ५, ६४ । २. ५, ६५-६६ ।

†व पिच,

રારારારારાદાદાર એત્ય મંગા ૪૬૦૮ ।

रारारारारादादार अन्योन्येन गुणिता मङ्गा ४६०८ ।

इस तृतीय उन्तीसप्रकृतिक स्थानमे छह संस्थान, छह संहनन और सात युगलोंके परस्पर गुणा करने पर $(6 \times 6 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 =) 864$ भङ्ग होते हैं।

मणुयगइसंजुत्ताणि तिण्णि ठाणाणि भणियाणि ॥८७॥

अत्रास्या मनुष्यगत्यां इदं पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिवन्धस्थानं मिथ्यादृष्टिर्जीव तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति । तत्किम् ? मनुष्यद्विक २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ हुण्डकं १ असम्प्राप्त-सहनन १ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघु १ उपधातं १ ब्रह्मं १ वादरं १ प्रत्येकं १ अपर्याप्त १ अस्थिरं १ अशुभ १ दुर्भगं १ अनाद्रेय १ अयशः १ निर्माणं १ पञ्चेन्द्रिय १ चेति पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिवन्ध-स्थानक २५ लब्धपर्याप्तमनुष्यगतिसहितं मिथ्यादृष्टिर्मनुष्यस्तिर्यग् जीवो वा बध्नाति । मनुष्यगतिसहितानि श्रीणि स्थानानि मनुष्यगता भणितानि ॥८५-८७॥

अत्र सकलेगतो ब्रध्यमानेनापर्याप्तेन सह स्थिराद्रीनां विशुद्धप्रकृतीना वन्यो नास्ति यतः, तत
एको भद्रः १ ।

मनुष्यगतौ सर्वे भङ्गाः । (४६०८ + ८ + १ =) ४६१७ ।

पञ्चीसप्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियों इस प्रकार हैं—मनुष्यद्विक, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कामर्णशरीर, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर, प्रत्येक, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनाद्वय, अयश-कीर्ति, निर्माण और पंचेन्द्रियजाति । पंचेन्द्रियजातिसंयुक्त इस पञ्चीसप्रकृतिक स्थानको मिथ्या दृष्टि जीव ब्रह्मता है । इस प्रकार मनुष्यगतिसंयुक्त तीन स्थान कहे गये हैं ॥८५-८७॥

1. स० पञ्चसं० ५, ६७ । 2. ५, ६८-१०० । 3. ५, 'अत्र संक्लेशतो' इत्यादिगद्याशः -
(पृ० १६६) ।

यहाँ पर संक्लेशके बँधनेवाली अपर्याप्त प्रकृतिके साथ स्थिर आदि विशुद्धिकालमें बँधनेवाली विशुद्ध प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। इसलिए भंग एक ही है। इस प्रकार मनुष्यगति संयुक्त सर्व भंग (८ + ४६०८ + १ =) ४६१७ होते हैं।

अब देवगतिसंयुक्त बँधनेवाले स्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१देवदुयं पंचिदिय वेउव्वाहार तेय कम्मं च ।

समचउरं वेउव्विय आहारय-अंगवंगणामं च ॥८८॥

तसचउ वण्णचउक्कं अगुरुयलहुयं च होंति चत्तारि ।

थिर सुह सुहयं सुस्सर पसत्थगइ जस य आदेज्जं ॥८९॥

णिमिणं चिय तित्थयरं एकत्तीसं होंति णेयाणि ।

बंधइ पमत्त इयरो अपुव्वकरणो य णियमेण ॥९०॥

^२एत्थ देवगईए सह सघयणाणि ण वज्झति, देवेसु संघयणाणमुदयाभावादो भंगो १।

यदिद नामप्रकृतिबन्धस्थानक बद्ध्वा देवगतौ समुत्पद्यते, तद्विदं बन्धस्थानकदेवगतिसहितं गाथानव-
केनाऽऽह—[‘देवदुगं पंचिदिय’ इत्यादि ।] देवगति-देवगत्यानुपूर्वी द्वे २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिकाहारक-
तैजस कर्मणशरीराणि ४ समचतुरस्रसंस्थानं १ वैक्रियिकाहारकाङ्गोपाङ्गद्वय २ त्रसचतुष्कं ४ वर्णचतुष्क ४
अगुरुलघुचतुष्क ४ स्थिरं १ शुभ १ सुभगं १ सुस्वर १ प्रशस्तविहायोगतिः १ यशस्कीर्तिः १ आदेय १
निर्माण १ तीर्थकरत्वं १ चेति एकत्रिंशत्क प्रकृतिबन्धस्थानकं नामप्रकृतिबन्धस्थानकं ३१ । अप्रमत्तो मुनि-
रपूर्वकरणो यतिश्च बध्नाति नियमेन ज्ञातव्यं भवति ॥८८-९०॥

अत्र देवगत्या सह सहननानि न बध्यन्ते, देवेषु सहननानामुदयाभावाद् भङ्ग एक एव १ ।

देवद्विक (देवगति-देवगत्यानुपूर्वी) पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, प्रशस्तविहायोगति, यश-
स्कीर्ति, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर, ये इकतीसप्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियों जानना चाहिए।
इस स्थानको प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत या अपूर्वकरणसंयत नियमसे बँधते हैं ॥८८-९०॥

यहाँ पर देवगतिके साथ किसी भी सहननका बन्ध नहीं होता है; क्योंकि देवोंमें सह-
ननोंका उदय नहीं पाया जाता। यहाँ पर भङ्ग एक ही है।

^३एमेव होइ तीसं णवरि हु तित्थयरवज्जियं णियमा ।

बंधइ पमत्त इयरो अपुव्वकरणो य णायव्वो ॥९१॥

^४एत्थ अथिरादीण वधो ण होइ, विसुद्धीए सह एएसि बंधविरोधो । तेण भंगो ११।

तीर्थकरत्वं वज्जितमिदमेव त्रिंशत्कं ३० भवति पूर्वोक्तैकत्रिंशत्कस्थानं तीर्थकरत्ववज्जितं नामप्रकृति-
बन्धस्थानं त्रिंशत्कं ३० अप्रमत्तो यतिरपूर्वकरणो मुनिर्वा बध्नाति नियमात् । नवरि विशेषोऽयम् ॥९१॥

अत्रास्थिरादीनां बन्धो न भवति, विशुद्ध्या सह तेषां बन्धविरोधः । तेनैको भङ्गः १ ^{३०} ।

1. स० पञ्चसं० ५, १०२-१०४ । 2. ५, १०५ । 3. ५, १०६ । 4. ५, ‘अत्र यतोऽस्थिरादीना’
इत्यादिगद्यभागः । (पृ० १६७) ।

इसी प्रकार इकतीसप्रकृतिक स्थानके समान तीसप्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि इसमें तीर्थङ्करप्रकृति छूट जाती है । इस तीसप्रकृतिक स्थानको भी प्रमत्त, अप्रमत्त और अपूर्वकरण संयत नियमसे बंधते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥६१॥

यहाँ पर अस्थिर आदि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि विशुद्धिके साथ इनसे बंधनेका विरोध है । अतएव यहाँ एक ही भंग होता है ।

^१आहारदुयं अवणिय एकत्तीसम्हि पढममुगुतीसं ।

बंधइ अपुव्वकरणो अप्पमत्तो य णियमेण ॥६२॥

एत्थ वि भगो । १ ।

पूर्वोक्ते एकत्रिंशत्के ३१ आहारकद्वय अपनीय प्रथममेकोनत्रिंशत्क स्थान २६ अपूर्वकरणो मुनि-
बंधनाति, अप्रमत्तो यतिश्च बध्नाति नियमेन ॥६२॥

अत्र भङ्गः १ ^{२६}/_१ ।

एकतीसप्रकृतिक स्थानोंमेंसे आहारद्विक (आहारकशरीर-आहारक-अङ्गोपांग) के निकाल देने पर प्रथम उनतीसप्रकृतिक स्थान हो जाता है । इस स्थानको अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण-संयत नियमसे बंधते हैं ॥६२॥

प्रथम उनतीस प्रकृतिकस्थानमें भी भङ्ग एक ही होता है

^२एवं विदिउगुतीसं णवरि य थिर सुह जसं च एयदरं ।

बंधइ पमत्तविरदो अविरयं चेव देसविरदो य ॥६३॥

"एत्थ देवगईए सह उज्जोवो ण वज्झइ, देवगइम्मि तत्स य उदयाभावादो । तिरियगई मुत्तूण अण्ण-
गईए सह तत्स बंधविरोधादो । देवाण देहदिप्ती तओ कुदो ? वण्णणामकम्मोदयाओ । एत्थ य थिर-सुस-
जसजुयलाणि २।२।२ अण्णोण्णगुणिया भगा ८ ।

एव प्रथममेकोनत्रिंशत्कोक्तं द्वितीयमेकोनत्रिंशत्क नामप्रकृतिबन्धस्थान २६ भवति । नवरि विशेषः, किन्तु स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशोऽयशसा मध्ये एकतर १।१।१ । अस्थिरादीनां प्रमत्तान्तं बन्धात् । इदं द्वितीय नवत्रिंशतिक स्थान २६ प्रमत्तविरतोऽसयतसम्यग्दृष्टिदेशविरतश्च बध्नाति २६ ॥६३॥

अत्र देवगत्या सहोद्योतो न बध्यते, देवगतौ तस्योद्योतस्योदयाभावात्, तिर्यग्गतिं मुक्त्वाऽन्यत्रि-
गत्या सह तस्योद्योतस्य बन्धविरोधः । तर्हि देवानां देहदीप्तिः कुतः ? वर्णनामकर्मोदयात् । अत्र च स्थिर-
शुभ-यशोयुगलानि २।२।२ अन्योन्यगुणिता भङ्गाः अष्टौ ८ ^{२६}/_८ ।

इसी प्रकार द्वितीय उनतीसप्रकृतिक स्थान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि यहाँ पर स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति; इन तीन युगलोमेंसे किसी एक एक प्रकृतिका बन्ध होता है । इस द्वितीय उनतीसप्रकृतिक स्थानको प्रमत्तविरत देशविरत और अविरत सम्यग्दृष्टि जीव बंधते हैं ॥६३॥

यहाँ पर देवगतिके साथ उद्योतप्रकृति नहीं बंधती है; क्योंकि देवगतिमें उसका उदय नहीं होता है । तिर्यग्गतिको छोड़कर अन्यगतिके साथ उसके बंधनेका विरोध है । यदि ऐसा है, तो देवोके देहोंमें दीप्ति किस कर्मके उदयसे होती है ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वर्णनाम-

१ सं० पञ्चस० ५, १०७ । २. १, 'एकान्नत्रिंशदिय इत्यादिगद्याशः । (पृ० १६७) । ३. ५, 'अत्र देवगत्या' इत्यादिगद्यमागः (पृ० १६७) ।

कर्मके उदयसे उनके शरीरमें दीप्ति होती है। यहाँ पर स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन युगलके परस्पर गुणित करने पर $(२ \times २ \times २ =)$ आठ भङ्ग होते हैं।

^१तिथ्यराहारदुयं एकत्तीसमिह अवणिए पढमं ।

अट्टावीसं वंधइ अपुव्वकरणो य अप्पमत्तो य ॥६४॥

एत्थ भंगो १ पुणरुत्तो त्ति ण गहिओ ।

पूर्वोक्तैकविंशत्कनामप्रकृतिबन्धस्थानके तीर्थकरत्वाहारकद्वयेऽपनीते प्रथममष्टाविंशतिकं बन्धस्थानं २८ अपूर्वो मुनिः अप्रमत्तो यतिश्च वध्नाति ॥६४॥

अत्र भङ्ग एकः १ ^{२८} पुनरुक्तत्वान्न गृह्यते ।

इकत्तीसप्रकृतिक स्थानमेसे तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियोंके निकाल देने पर शेष रहीं अट्टाईसप्रकृतियोंको अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत बाधता है। यह प्रथम अट्टाईस प्रकृतिक स्थान है ॥६४॥

यहाँ पर भंग एक ही है, किन्तु वह पुनरुक्त है, अतः उसे ग्रहण नहीं किया गया है।

^२विदियं अट्टावीसं विदिउगुतीसं च तिथ्यरहीणं ।

मिच्छाद्वपमत्तंता वंधगा होंति णायव्वा ॥६५॥

^३कुदो एवं ? उवरिजाणं अधिर-असुह-भजसाण वंधामावादो । भंगा ८

पूर्वोक्तं द्वितीयमेकोनविंशत्क २६ तीर्थकरहीनं सत् द्वितीयमष्टाविंशतिकं बन्धस्थानं २८ मिथ्या-दृष्ट्यादि-प्रमत्तपर्यन्ता वध्नन्ति द्वितीयाष्टाविंशतिकस्य बन्धका भवन्ति ज्ञातव्याः ॥६५॥

एवं कुतः ? यन्मिथ्यात्वादि-प्रमत्तान्ता बन्धकाः, अप्रमत्तादयो न; उपरिजानां अप्रमत्तादीनां अस्थिरा-शुभायशसां बन्धाभावात् । अत्राष्टाविंशतिके २।२।२ गुणिता भङ्गा अष्टौ ^{२८} ८

द्वितीय उन्तीसप्रकृतिक स्थानमेसे तीर्थङ्करप्रकृतिके कम कर देने पर द्वितीय अट्टाईस प्रकृतिक स्थान हो जाता है। इस स्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके जीव होते हैं ऐसा जानना चाहिए ॥६५॥

ऐसा क्यों है ! इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अप्रमत्तसंयतादि उपरितन गुणस्थानवर्ती जीवोंके अधिर, अशुभ और अयशःकीर्त्ति, इन तीनों प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। यहाँ पर शेष तीन युगलोंके गुणा करनेसे आठ भङ्ग होते हैं।

^४बंधंति जसं एयं अपुव्वकरण अणियट्टि सुहुमा य ।

तेरे णव चउ पणयं वंधवियप्पा हवंति णामस्स ॥६६॥

चउगइया १३६४५ ।

अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्पराया मुनयः एकां यशस्कीर्त्तिं वध्नन्ति । देवेषु सर्वभङ्गाः १६ । नाम्नः कर्मणः सर्वे चातुर्गतिका भङ्गाः त्रयोदशसहस्रनवशतपञ्चचवारिंशद् बन्धविकल्पाः ॥६६॥

चातुर्गतिका भङ्गाः १३६४५ ।

इति नामकर्मणः बन्धप्रकृतिस्थानानि समाप्तानि ।

१. स० पञ्चसं० ५, १०८ । २. ५, १०६ । ३. ५, 'कुतो यतो' इत्यादिगद्याशः । (पृ० १६७) ।

४. ५, ११०-१११ ।

अथ विदियं उणत्तीसं ।

यशस्कीर्तिरूप एकप्रकृतिक स्थानको अपूर्वकरणसंयत, अनिवृत्तिकरणसंयत और सूक्ष्म-साम्परायसंयत बोधते हैं । (इस प्रकार देवगतिसंयुक्त सर्व भंग १ + १ + १ + ८ + १ + ८ = २० होते हैं ।) तथा नामकर्मके ऊपर बतलाये गये सर्व बन्धविकल्प (तिर्यग्गति-सम्बन्धी ६३०८ + मनुष्यगति-सम्बन्धी ४६१७ + देवगति-सम्बन्धी २० = १३६४५) तेरह हजार नौ सौ पैंतालीस होते हैं ॥६६॥

चतुर्गतिसम्बन्धी सर्वविकल्प १३६४५ होते हैं ।

इस प्रकार नामकर्मके बन्धस्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूलगाथाकार नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०२२] 'इगिवीसं चउवीसं एत्तो इगितीसयं ति एयहियं ।

उदयट्टाणाणि तहा णव अट्ठ य होंति णामस्स' ॥६७॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

अथ नामकर्मप्रकृत्युदयस्थानानि गत्यादिमार्गणामु तद्योग्यगुणस्थानादिषु दर्शयति—[इगिवीस चउवीस' इत्यादि ।] नामकर्मण उदयस्थानानि एकविंशतिक २१ चतुर्विंशतिक २४ इतः परमेकैकाधिक-मेकत्रिशत्यन्तम् । तेन पञ्चविंशतिक २५ षड्विंशतिकं २६ सप्तविंशतिक २७ अष्टविंशतिकं २८ एकोनत्रिशत्क २९ त्रिशत्क ३० एकविंशत्क ३१ तथा नवक ३२ अष्टकं चेति एकादश नामप्रकृत्युदयस्थानानि भवन्ति ॥६७॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

इक्कीसप्रकृतिक, चौबीसप्रकृतिक और इससे आगे एक अधिक करते हुए इक्कीसप्रकृतिक तक, तथा नौप्रकृतिक और आठप्रकृतिक, ये नामकर्मके ग्यारह उदयस्थान होते हैं ॥६७॥

इनकी अङ्कसंदष्टि इस प्रकार है—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००।

अब भाष्यगाथाकार नरकगतिमें नरकगतिसंयुक्त नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१इगिवीसं पणुवीसं सत्तावीसट्ठवीसमुगतीसं ।

एए उदयट्टाणा णिरयगइसंजुया पंच ॥६८॥

अथ नरकगतौ नरकगतिसंयुक्तानि नामोदयस्थानानि गाथाष्टकेनाऽऽह—['इगिवीस पणुवीस' इत्यादि ।] एकविंशतिक २१ पञ्चविंशतिक २५ सप्तविंशतिक २७ अष्टविंशतिक २८ एकोनत्रिशत्क २९ चेति एतानि नामप्रकृत्युदयस्थानानि नरकगतिसंयुक्तानि पञ्चोदयस्थानानि ५ नरकगत्या भवन्ति ॥६८॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

इक्कीस, पञ्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान नरक-गतिसंयुक्त होते हैं ॥६८॥

नरकगतिसंयुक्त उदयस्थान—२१, २५, २७, २८, २९ ।

इनमेंसे पहले नरकगतिसंयुक्त इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^२तत्थिगिवीसं ठाणा णिरयदुयं तेय कम्म वण्णचट्ठं ।

अगुरुगलहु पंचिंदिय तस बायरं च पज्जत्तं ॥६९॥

१. स० पञ्चस० ५, ११२ । २. ५, ११३ । ३. ५, ११४-११६ ।

१. सप्ततिक० २५ । पर तत्रेदक् पाठः—

वीसिगवीसा चउवीसगाति एगाहिया उ इगतीसा ।

उदयट्टाणाणि भवे नव अट्ठ य होंति नामस्स ॥

थिर अधिरं च मुहामुह दुमग अणादेज्ज अजस्र णिमिणं च ।
विनाहगईहि एदे एयं च दो व समयाणि ॥१००॥

तत्र नरकगतिं प्रति शान्तिं एकस्मिन् त्रिवे इदमेकविंशतिकनामप्रकृत्युदयस्थानमुदेति । नरकगति-
तदादुर्घ्ये २ तैजसकर्मणे २ वर्गचतुष्क २ अगुल्लवु १ पञ्चेन्द्रियं १ क्रमं १ वादरं १ पर्याप्तं १ स्थिरं
१ स्थिरं १ शुभं १ अशुभं १ दुर्मगं १ अनादेयं १ अग्रशः १ निर्माणं १ चेति एकविंशत्युदयप्रकृतयः २१
पुत्रा विग्रहगत्यां कर्मगणरारे नारकजीवं प्रति वदयं यान्ति २१ । विग्रहगती कर्मगणरारस्यैकसमयो
जवन्यकालः १ वृद्धशतौ द्वौ २ । एको वा द्वौ वा त्रयो वा (?) समया इत्यर्थः ॥१२२-१००॥

नरकद्विक, तैजसशरीर, कामगणरार, वर्गचतुष्क, अगुल्लवु, पञ्चेन्द्रियताति, त्रस, वादर,
पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्मग, अनादेय, अग्रशःकीर्ति, और निर्माण, इन इकोस
प्रकृतियोंवाला यह उदयस्थान नरकगतिको जाननेवाले जीवके विग्रहगतिमें एक या दो समय
नरक होता है ॥१२२-१००॥

अब नरकगतिसंयुक्त उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

एमेव य पणुवासं णवरि विसेसो सरिरगहियस्स ।
णिरयाणुपुच्चि अवणिय वेउच्चियदुयं च उववादं ॥१०१॥
हुंढं पत्तेयं पियं पक्खित्ते जाव सरिरणिफ्फत्ती ।
अंतोमुहूचकालो जहण्णमुक्कस्सयं च भवे ॥१०२॥

एवमेकविंशतिकोत्पत्तारो पञ्चविंशतिकं भवति । तत्र विसेस-वैक्रियकशरीरं गृह्यतः नारकस्य
तस्मिन्नेकविंशतिकं नरकदुर्घ्येनर्नाय तत्र वैक्रियकशरीर-वैक्रियकाङ्गोपाद्द्रव्योपवात-दुर्घकर्मस्थान-
प्रत्येकशरीरप्रकृतिवज्जके प्रहिते पञ्चविंशतिकं नामकर्मप्रकृत्युदयस्थानं भवति २५ । यावत्तु शरीरनिष्पत्तिः
शरीरपर्याप्तिः पूर्णतां यान्ति तावदिदं पञ्चविंशतिकमुदयति । जवन्य वृद्धशतान्तमुहूर्तकालः वैक्रियक-
शरीरविग्रहगत्यां जन्तुमुहूर्तः भवति ॥१०१-१०२॥

इसी प्रकार पञ्चासप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि
वैक्रियकशरीरको ग्रहण करनेवाले नारकीके उद्युक्त इच्छासु प्रकृतियोंमेंसे नरकानुपूर्वीको उदा-
करके उनमें वैक्रियकद्विक, उगवात, दृग्दकस्थान और प्रत्येकशरीर, इन पाँच प्रकृतियोंके भिन्ना
देनेपर पञ्चासप्रकृतिक उदयस्थान होता है । यह उदयस्थान जब तक शरीरपर्याप्तिकी पूर्णता नहीं
नहीं हो जाता है, तब तक रहता है । इस उदयस्थानका जवन्य और वृद्धकाल जन्तुमुहूर्त
प्रमाण है ॥१०१-१०२॥

अब नरकगतिसंयुक्त सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

एमेव सत्तवामं सरिरपल्लविणिट्ठिए णवरि ।
परयायमण्यसन्ध-विहायगई चेव पक्खित्ते ॥१०३॥

एवं पञ्चविंशतिकोत्पत्तारो सप्तविंशतिकं शरीरपर्याप्तनिष्ठापिते पूर्णे कृते सति वैक्रियकशरीरपर्याप्ति
पूर्व पञ्चविंशतिके परवातानुगन्तविहायोगविग्रहविद्ये प्रहिते नेत्तिने सप्तविंशतिकं भवति २७ । शरीर-
पर्याप्तनिष्ठापितकाले जन्तुमुहूर्तः ॥१०३॥

इसी प्रकार पञ्चीस प्रकृतिक उदयस्थानके समान ही सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान भी जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर पञ्चीस प्रकृतिक उदयस्थानमें परघात और अप्रशस्तविहायोगति ये दो प्रकृतियों और मिलाना चाहिए ॥१०३॥

अब नरकगतिसंयुक्त अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^१ एमेव अट्ठवीसं आणापज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।

उत्सासं पक्खित्ते कालो अंतोमुहुत्तं तु ॥१०४॥

आनप्राणपर्याप्तिनिष्ठापने श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिपूर्णे कृते सति पूर्वोक्तसप्तविंशतिके उच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते सति अष्टाविंशतिक प्रकृत्युदयस्थान नारकस्योदयागत २८ भवति । तु पुनः उच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्ति-पूर्णकरणेऽन्तर्मुहूर्तकालः ॥१०४॥

इसी प्रकार अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिके पूर्ण होनेपर सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानमें उच्छ्वासप्रकृतिके मिलानेपर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इस उदयस्थानका काल भी अन्तर्मुहूर्त है ॥१०४॥

अब नरकगतिसंयुक्त उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^२ एमेव य उगुतीसं भासापज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।

दुस्सरसहियजहणं दसवाससहस्स किंचूणं ॥१०५॥

तेतीस सायरोवम किंचिदूणक्कस्सयं हवइ कालो ।

णिरयगईए सव्वे उदयवियप्पा य पंचेव ॥१०६॥

पृथ भाग ५ ।

भापापर्याप्तिनिष्ठापिते परिपूर्ण कृते सति एव पूर्वोक्तमष्टाविंशतिक दुःस्वरभापासहितं नवविंशतिक भवति । नवीनमिति नारकस्य दुःस्वरभापापर्याप्ते दशवर्षसहस्रजघन्यकालः १०००० किञ्चिन्न्यूनः उक्त-चतुःकालोन अन्तर्मुहूर्तहीन इत्यर्थः १०००० समयत्रयं अन्तर्मुहूर्तत्रयम् । नारकस्य दुःस्वरभापापर्याप्ते-
स२११३

सा०३३

रुकृष्णकालः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः किञ्चिन्न्यूनः अन्तर्मुहूर्तहीनः सु २१३ भवेत् । तथाहि—विग्रह-
३

गतौ कार्मणशरीरे एको वा द्वौ वा त्रयो वा (१) समयाः ३, शरीरमिश्रेऽन्तर्मुहूर्तः २१ शरीरपर्याप्तौ अन्तर्मुहूर्तः २१ उच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तौ अन्तर्मुहूर्तः २१ भापापर्याप्तौ उक्तचतुष्कालोनं सर्वं मुख्यमानायुः ।

१०००० वर्षाणि साग० ३३

एव सर्वगतिषु ज्ञेयम् । नरकगत्यामिदं देवगत्यामिदं च सम ०३ सम ३ । एकोन-
अन्त० २१३ अन्त० २१३

त्रिंशत्कमिति किम् ? नरकगतिः १ तैजसकार्मणद्वय २ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघुकं १ पञ्चेन्द्रिय १ त्रसं १ वादर १ पर्याप्त १ स्थिरास्थिरद्वय २ शुभाशुभद्वय २ दुर्भग १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माण १ वैक्रियक-तदङ्गोपाङ्गद्वय २ उपघातः १ दुण्डसंस्थानं १ प्रत्येक १ परघातः १ अप्रशस्तविहायोगतिः १ उच्छ्वासनिःश्वासं १ दुःस्वरभापा १ चेति एकोनत्रिंशत्कनामप्रकृत्युदयस्थानं पर्याप्तकनारकस्य भवत्युदेति ॥१०७-१०६॥

नरकगतौ सर्वे उदयविकल्पा भङ्गा एकस्मिन् नारकजीवे पञ्चैव भवन्ति । अत्र भङ्गा. ५ ।

के ते ? २१ २५ २७ २८ २९ ।
१ १ १ १ १ ।

इति नरकगत्यां नामप्रकृत्युदयस्थानानि समाप्तानि । ॥

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि भाषा-पर्याप्तिके पूर्ण होनेपर अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानमे दुःस्वर प्रकृतिके मिलानेपर उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस उदयस्थानका जघन्यकाल कुछ कम दश हजार वर्ष है और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागरोपम है। इस प्रकार नरकगतिमे नामकर्मके उदयस्थानसम्बन्धी सर्व-विकल्प पाँच ही होते हैं ॥१०५-१०६॥

नरकगतिमें उदयस्थानके भंग ५ होते हैं।

अब तिर्यग्गतिमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१इगिवीसं चउवीसं एत्तो इगितीसयं ति एगधियं।

णव चेव उदयठाणा तिरियगईसंजुया होंति ॥१०७॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

अथ तिर्यग्गतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि गाथापञ्चाशदाऽऽह—[‘इगिवीसं चउवीसं’ इत्यादि।] एकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ इतःपरं एकत्रिंशत्पर्यन्तं एकैकाधिकं पञ्चविंशतिकं २५ षट्त्रिंशतिकं २६ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० यावदेकत्रिंशत्कं ३१ चेति नव नामकर्मणः प्रकृत्युदयस्थानानि तिर्यग्गतिसंयुक्तानि तिर्यग्गतौ भवन्ति ॥१०७॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

इक्कीसप्रकृतिक, चौबीसप्रकृतिक और इससे आगे एक-एक अधिक करते हुए इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान तक नौ उदयस्थान तिर्यग्गति-संयुक्त होते हैं ॥१०७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१।

^२पंचेवा उदयठाणा सामण्णेइंदियस्स बोहव्वा।

इगि चउ पण छ सत्त य अधिया वीसा य णायव्वा ॥१०८॥

सामण्णेइंदियस्स २१।२४।२५।२६।२७

एकविंशतिक २१ चतुर्विंशतिकं २४ पञ्चविंशतिकं २५ षट्त्रिंशतिकं २६ सप्तविंशतिकमिति नामप्रकृत्युदयस्थानानि सामान्यैकेन्द्रियाणां जीवानां मध्ये एकस्मिन् एकेन्द्रियजीवे पञ्चैव बोध-व्यानि ॥१०८॥

२१।२४।२५।२६।२७।

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिक पाँच उदयस्थान जानना चाहिए ॥१०८॥

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके २१, २४, २५, २६, २७ प्रकृतिक पाँच उदयस्थान होते हैं।

^३आयाउज्जोयाणं अणुदय एइंदियस्स ठाणाणि।

सत्तावीसेण विणा सेसाणि हवंति चत्तारि ॥१०९॥

२१।२४।२५।२६।

आतपोद्योतयोरनुदयैकेन्द्रियस्योतपोद्योतोदयरहितसामान्यैकेन्द्रियजीवस्य सप्तविंशतिकं विना एक-विंशतिक-चतुर्विंशतिक-पञ्चविंशतिक-षट्त्रिंशतिकानि चत्वारि नामोदयस्थानानि भवन्ति ॥१०९॥

२१।२४।२५।२६।

१. स० पञ्चसं० ५, १२४। २. ५, १२५-१२६। ३. ५, १२७।

१०८ पंचेव य।

आतप और उद्योतके उदयसे रहित एकेन्द्रियजीवके सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थानके बिना शेष चार उदयस्थान होते हैं ॥१०६॥

उनकी अंकसंदष्टि इस प्रकार है—२१, २४, २५, २६ ।

^१आयाबुजोयाणं अणुदय एइंदियस्स इगिवीसं ।

तिरियदुग तेय कम्मं अगुरुगलहुगं च वण्णचदुं ॥११०॥

जसक्क-वायर-पज्जत्ता तिण्हं जुयलाणमिकयर णिमिणं च ।

थिर-अथिर-सुहासुह-दुब्भगाणादेज्जं च थावरयं ॥१११॥

एइंदियस्स जाई विग्गहगइ पंचेव भंगा य ।

कालो जहण्ण इयरो इक्कं दो तिणिण समयाणि ॥११२॥

^२एतथ जसकित्तिउदए सुहुम-अपजत्तया ण होति, तेण एगो भंगो । १। अजसकित्तीउदए चत्तारि ४ । सर्वे ५ ।

आतपोद्योतोदयरहितसामान्यैकेन्द्रियस्य जीवस्यैकस्येदमेकविंशतिक २१ स्थानम् । किं तत् ? तिर्यग्गति-तदाबुपूर्व्ये २ तैजस-कार्मणद्वय २ अगुरुलघुकं १ वर्णचतुष्क ४ यशोऽयशोयुग्म-वादरसूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्तयुग्मानां त्रयाणामेकतरं १।१।१ । निर्माणं १ स्थिरास्थिरयुग्मं २ शुभाशुभयुग्म ६ दुर्भंग १ अनादेयं १ स्थावरं १ एकेन्द्रियजातिक १ चेति नामप्रकृत्युदयस्थानमेकविंशतिकं २१ विग्रहगत्या कार्मण-शरीरे सामान्यैकेन्द्रियस्य भवति । एकविंशतिकं तु पचधा, एकविंशतिका भङ्गा. ५ भवन्ति । एतेषां भङ्गानां जघन्यकाल एकसमयः, उत्कृष्टतो द्वौ त्रयो वा समयाः ॥११०-११२॥

अत्रैकविंशतिके यशस्कीर्त्युदये सूक्ष्मापर्याप्तोदयौ न भवतो यतस्तत् एको भङ्गः १ । अयशस्कीर्त्युदये वादर-सूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तोदयाश्चत्वारो भङ्गाः ४ । सर्वे ५ । अयशःपाके वादर-पर्याप्तयुग्मयोरन्योन्यगुणिते भङ्गाः ४ । यशःपाके [१] मीलितः भङ्गा. ५ । यशः

२१	२१	५०	२१	अ०	२१	सू०	२१
१	बाद०	१	१	१	१	१	१

आतप और उद्योतके उदयसे रहित सामान्य एकेन्द्रियजीवके यह चक्ष्यमाण इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है । वे इक्कीस प्रकृतियों इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क; यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, वादर-सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्त इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक-एक, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भंग, अनादेय, स्थावर और एकेन्द्रिय-जाति । यह इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान विग्रहगतिमें कार्मणकाययोगकी दशामे होता है । इसका जघन्य काल एक समय, मध्यमकाल दो समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है । इस स्थानके भङ्ग पाँच होते हैं ॥११०-११२॥

विशेषार्थ—इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके पाँच भङ्गोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—यशः-कीर्तिके उदयके साथ सूक्ष्म, और अपर्याप्त प्रकृतियोंका उदय नहीं होता है, इसलिए यशःकीर्तिके उदयमे एक ही भंग होता है । किन्तु अयशःकीर्तिके उदयमे वादर, सूक्ष्म और पर्याप्त, अपर्याप्त इन प्रकृतियोंका उदय होता है, अतएव इन दो युगलोंके परस्पर गुणा करनेसे चार भंग हो जाते हैं । इस प्रकार यशःकीर्तिके उदयका एक भंग और अयशःकीर्तिके उदयमे होनेवाले चार भङ्ग, इन दोनोंको मिला देनेपर पाँच भङ्ग हो जाते हैं ।

१. स०पञ्चसं०. ५, १२८-१३० । २. ५, १, ३१, 'तथाऽज्रेतनगद्यभागाः' (पृ० १७०) ।

ॐ द तस ।

अब चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^१एमेव य चउवीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स ।

अवणिय आणुपुन्वी ओरालिय हुंड उवघायं ॥११३॥

पक्खित्ते पत्तेयं साहारणसरीरमेकयरं च ।

णव चेव उदयमंगा कालो अंतोमुहुत्तं तु ॥११४॥

^२एत्थ जसकित्तिउदए सुहुम-अपज्जत्त-साहारणोदया ण होंति, तेण भंगो १ । अजसकित्तिउदये न । एवं सन्वे ६ ।

शरीरं गृह्यतः सामान्यैकेन्द्रियस्य पूर्वोक्तैकविंशतिकम् । नवरि विशेषः तत्रैकविंशतिके आनुपूर्व्यमपनीय औदारिकशरीर १ हुण्डकसंस्थान १ उपघातः १ प्रत्येक-साधारणयोर्मध्ये एकतरं १ चेति प्रकृति-चतुष्के तत्र विंशतिके प्रक्षेपे मिलिते चतुर्विंशतिकं स्थानम् २४ । तत्तु सामान्यैकेन्द्रियस्य शरीरमिश्रयोगे एवोदयति । अत्रोदयभङ्गा नव ६, नवधा चतुर्विंशतिका भवन्ति । अत्रौदारिकमिश्रकालोऽन्त-मुहूर्तः २१ ॥११३-११४॥

अत्र यशस्कीर्त्युदये सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणोदया न भवन्ति यतस्तत्त एको भङ्गः १ । यश० ^{२४} १ । अयशस्कीर्त्युदये स्थूलपर्याप्तप्रत्येकयुग्मानां त्रयाणां २।२।२ परस्परेण गुणिता भङ्गाः अष्टौ न । एवं सर्वे भङ्गा नव ६ । ^{२४ २४} न १ ।

इसी प्रकार इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके समान चौबीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि विग्रहगतिके समाप्त हो जानेपर जब जीव तिर्यञ्चके शरीरको ग्रहण करता है, उस समयसे लगाकर शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होने तक चौबीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है । अतएव उन इक्कीस प्रकृतियोंमेसे तिर्यगानुपूर्वी घटाकर औदारिकशरीर, हुण्डकसंस्थान, उपघात और प्रत्येक-साधारणयुगलमेसे कोई एक, इन चार प्रकृतियोंके मिला देनेपर यह चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इस उदयस्थानके नौ भङ्ग होते हैं और इसका काल अन्तर्मुहूर्त है ॥११३-११४॥

यहोपर यशस्कीर्तिके उदयमे सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणप्रकृतिका उदय नहीं होता है, इसलिए यशःकीर्तिसम्बन्धी एक भङ्ग होता है । तथा अयशःकीर्तिके उदयमें वादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त और प्रत्येक-साधारण ये तीनों युगल सम्भव हैं, अतः तीन युगलोके परस्पर गुणा करने-पर आठ भङ्ग होते हैं । इस प्रकार आठ और एक मिलकर नौ भङ्ग चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानके जानना चाहिए ।

अब पञ्चीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^३एमेव य पणुवीसं सरीरपज्जत्तए अपज्जत्तं ।

अवणिय पक्खिवियव्वं परघायं पंच भंगाओ ॥११५॥

एत्थ भंगा ५ ।

सामान्यैकेन्द्रियस्य शरीरपर्याप्तौ पूर्वोक्तचतुर्विंशतिके अपर्याप्तं अपनीय परघातं प्रक्षेपणीयम्, पञ्चविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थान सामान्यैकेन्द्रियस्य भवति २५ । तत्र पञ्चधा पञ्चविंशतिभङ्गाः पञ्च

१. स० पञ्चसं० ५, १३२-१३३ ।

३. ५, १३४-१३५ ।

२. ५, 'अत्रायशःपाके' इत्यादिगद्याशः (पृ० १७०) ।

भवति । तत्र कालोऽन्तर्मुहूर्तः २१ । अत्राप्यासि निष्काशिते परघाते प्रक्षिप्ते पञ्चविंशतिसंख्या । कथम् ? चतुर्विंशतिकस्य मध्ये पर्यासापर्यासद्वयमध्ये एकतर वर्तते । अत्र तु अपर्यासिर्निराक्रियते [तेन] चतुर्विंशतिका संख्या ऊना न भवति । तत्र परघाते प्रक्षिप्ते पञ्चविंशतिक स्थान भवतीत्यर्थः । अत्रायशस्कीर्त्युदये स्थूल-प्रत्येक २।२ युग्मयोः परस्परगुणिते भङ्गाश्चत्वारः ४ । यशःपाके एको भङ्गः १ । मीलिताः पञ्च ५॥११५॥

इसी प्रकार पञ्चीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । परन्तु परघातका उदय शरीर-पर्याप्तिके पूर्ण होने तक नहीं होता, अतएव शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेके पश्चात् अपर्याप्तप्रकृतिको घटा करके परघातप्रकृतिको जोड़ना चाहिए । इस उदयस्थानमें पाँच भङ्ग होते हैं ॥११५॥

इस पञ्चीसप्रकृतिक उदयस्थानमें अयशस्कीर्तिके साथ बादर तथा प्रत्येक ये दो युगल सम्भव हैं, इसलिए इन दोनों युगलोंके परस्पर गुणा करनेसे चार भङ्ग होते हैं और यशस्कीर्तिके उदयमें एक भङ्ग होता है । इस प्रकार दोनों मिलकर पाँच भङ्ग हो जाते हैं ।

अब छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थानका प्ररूपण करते हैं—

^१एमेव य छव्वीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।

पक्खित्ते पण भंगा कालो य सगड्ढिदी ऊणा ॥११६॥

(का०) २२००० । भंगा ५ । सव्वे वि २४ ।

एव पूर्वोक्तपञ्चविंशतिके आनप्राणपर्यासिपूर्णाकृतस्योच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते पञ्चविंशतिक २६ सामान्यैकेन्द्रियपर्याप्तस्य भवति । अत्र भङ्गाः पञ्च ५ । अत्र कालः स्वकीयायु स्थितिः किञ्चिद्गूढता उत्कृष्टा स्थितिः वर्षसहस्राणि १००० । द्वाविंशतिः परा २२००० किञ्चिद्गूढा आतपोद्योतोदयरहितस्य सामान्यैकेन्द्रियस्य सर्वे भङ्गाश्चतुर्विंशतिः २४॥११६॥

इसी प्रकार छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थान आनापान पर्याप्तिके प्रारम्भ होने पर उच्छ्वास प्रकृतिके मिला देनेसे होता है । इस उदयस्थानके भङ्ग पाँच होते हैं और इसका उत्कृष्ट काल कुछ कम स्वोत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है ॥११६॥

बादर एकेन्द्रिय जीवोकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्षकी होती है । इस उदयस्थान-सम्बन्धी पाँचों भंगोंका विवरण पञ्चीसप्रकृतिक उदयस्थानके समान ही जानना चाहिए । इस प्रकार इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके पाँच, चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानके पाँच, पञ्चीसप्रकृतिक उदयस्थानके नौ और छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थानके पाँच, ये सर्व भंग मिल करके २४ भंग आतप-उद्योतके उदयसे रहित एकेन्द्रिय तिर्यञ्चोके जानना चाहिए ।

^२आयावुज्जोबुदयं जस्सेयंतस्स णत्थि पणुवीसं ।

सेसा उदयट्ठाणा चत्तारि हवंति णायव्वा ॥११७॥

२१।२४।२६।२७।

येषु एकेन्द्रियेषु आतपोद्योतोदयौ भवतः, तेषामातपोद्योतसहिताना एकेन्द्रियाणामिदं पञ्चविंशतिक स्थानं भवति । शेषनामोदयस्थानान्येकविंशतिक २१ चतुर्विंशतिक २४ पञ्चविंशतिक २६ सप्तविंशतिकानि चत्वारि भवन्ति ॥११७॥

२१।२४।२६।२७

जिस एकेन्द्रिय जीवके आतप और उद्योतका उदय होता है, उसके पञ्चीसप्रकृतिक उदयस्थान नहीं होता है, शेष इक्कीस, चौबीस, छव्वीस और सत्ताईसप्रकृतिक चार उदयस्थान जानना चाहिए ॥११७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २४, २६, २७ ।

^१आयावुज्जोवुदये इगि-चउवीसं तहेव णवरिं तु ।

अवणिय साहारणयं सुहुममपज्जत्तभंगाओ ॥११८॥

एत्थ सुहुम-अपज्जत्तूणा २१ । साहारणं विणा २४ । एत्थ दो भंगा २ पुणरुत्ता ।

आतपोद्योतोदयैकेन्द्रियेषु तथैव पूर्वोक्तमेवैकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ च भवति । नवीनं किञ्चिद्विशेषः, किन्तु भङ्गात् एकविंशतिकाच्चतुर्विंशतिकाच्च साधारणं सूक्ष्मं अपर्याप्तं च अपनीय वर्जयित्वा ॥११८॥

अत्र सूक्ष्माऽपर्याप्तरहितं बादरपर्याप्तसहितं चैकविंशतिकं स्थानं २१ साधारणरहितं प्रत्येकसहितं चतुर्विंशतिकस्थानं २४ आतपोद्योतोदयभागिनां एकेन्द्रियाणां सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीरोदयाभावात् । यशोयुग्मस्यैकतरभङ्गौ द्वौ द्वौ पुनरुक्तौ २।२।

आतप और उद्योतके उदयवाले एकेन्द्रियजीवोंके तथैव पूर्वोक्त इक्कीसप्रकृतिक और चौबीसप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं । विशेष बात केवल यह है कि उनमेंसे साधारण, सूक्ष्म और अपर्याप्त-सम्बन्धी भंगोंको निकाल देना चाहिए ॥११८॥

यहाँ पर सूक्ष्म और अपर्याप्त ये दो प्रकृतियों उदययोग्य नहीं मानी जानेसे इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान इन दोको छोड़कर होता है और चौबीसप्रकृतिक उदयस्थान साधारणको भी छोड़कर केवल प्रत्येकके साथ होता है । यहाँ आतप और उद्योत प्रकृतिका उदय होनेवालोंमें सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर इन तीनका उदय नहीं रहता, अतएव भंग अधिक होनेका कारण केवल एक यशस्कीर्तियुगल है । इसके द्वारा इक्कीसप्रकृतिकस्थानमें भी दो भंग होते हैं और चौबीसप्रकृतिकस्थानमें भी दो भंग होते हैं । किन्तु ये भंग पहले कहे जा चुके हैं, अतः पुनरुक्त हैं ।

^२एमेव य छव्वीसं सरीरपज्जत्तयस्स जीवस्स ।

परघायुज्जोयाणं इक्कयरं चेव चउ भंगा ॥११९॥

२६ । भंगा ४ ।

शरीरपर्याप्तियुक्तस्यैकेन्द्रियजीवस्य पूर्वोक्तमेव पट्‌विंशतिकं परघातः १ आतपोद्योतयोर्मध्ये एकतरोदयः १ तत्र चतुर्भङ्गाः ४ । अन्तर्मुहूर्तकालश्च । कथं तत् पट्‌विंशतिकम् ? तिर्यग्गतिः १ तैजस-कामणद्वयं २ अगुरुलघुकं १ वर्णचतुष्कं ४ यशोयुग्मस्यैकतरं १ बादरं १ पर्याप्तं १ निर्माणं १ स्थिरास्थिरयुग्मं २ शुभा-शुभद्वयं २ दुर्भगं १ अनादेयं १ स्थावरं १ एकेन्द्रियं १ औदारिकशरीरं १ हुण्डकं १ उपघातः १ प्रत्येकशरीरं १ परघातः १ आतपोद्योतयोरेकतरोदयः १ । एवं पट्‌विंशतिकं २६ शरीरपर्याप्तप्राप्तस्यैकेन्द्रियस्योदयस्थानं भवति ॥११९॥

इसी प्रकार शरीरपर्याप्तिसे युक्त एकेन्द्रियजीवके परघात और आतप-उद्योत इन दोमेंसे किसी एकके मिलानेपर छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है । और इस स्थानके चार भंग होते हैं ॥११९॥

छव्वीसप्रकृतिक स्थानमें यशःकीर्तियुगल और आतप-उद्योत युगलके परस्पर गुणा करनेसे चार भंग हो जाते हैं ।

^३एयमेव सत्तवीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।

पक्खित्ते चउभंगा सव्वे भंगा य वत्तीसा* ॥१२०॥

२७ । भंगा ४ । एवमेहंदिशसव्वभंगा ३२ ।

1. सं० पञ्चसं० ५, १३८ । 2. ५, १३९ । 3. ५, १४० ।

* वत्तीसा ह्येति सव्वे वि' इति पाठः ।

उच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तिप्राप्तैकेन्द्रियजीवस्य पूर्वोक्तपट्विंशतिके उच्छ्वासनिःश्वास प्रक्षिप्ते सप्त-
विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं भवति । जीवितपर्यन्तमिदं ज्ञेयम् । अस्य भङ्गाश्चत्वारः ४ । उत्कृष्टा
स्थितिर्द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि २२००० किञ्चिन्म्यूना ॥१२०॥

एकेन्द्रियाणां सर्वे भङ्गा द्वात्रिंशत् ३२ ।

इसी प्रकार श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिसे पर्याप्त जीवके उच्छ्वासप्रकृतिके मिला देनेपर सत्ताईस
प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँपर भी चार भंग होते हैं । इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवके सर्व
भंग बत्तीस होते हैं ॥१२०॥

एकेन्द्रियोंके २४ भंग पहले बतलाये जा चुके हैं । आतप-उद्योतके उदयवाले जीवोंके
छव्वीसके उदयस्थानमें अपनरुक्त ४ भंग तथा सत्ताईसके उदयस्थानमें अपनरुक्त ४ भंग इस
प्रकार सर्व मिलकर एकेन्द्रियजीवोंके ३२ भंग हो जाते हैं ।

अब विकलेन्द्रिय जीवोंमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१वियलिंदियसामणो उदयट्टाणाणि होंति छव्वेव ।

इगिवीसं छव्वीसं अट्टावीसाइइगितीसं ॥१२१॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१

सामान्येन विकलत्रयेषु द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियेषु एकविंशतिकं २१ पट्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८
एकोनविंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ चेति पट् नामप्रकृत्युदयस्थानानि भवन्ति ॥१२१॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१

विकलेन्द्रिसामान्यमे इक्कीस, छव्वीस, अट्टाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक
छह उदयस्थान होते हैं ॥१२१॥

इन उदयस्थानोंकी अंकसंहति इस प्रकार है—२१, २६, २८, २९, ३०, ३१ ।

^२उज्जोयरहियवियले इगितीसूणाणि पंच ठाणाणि ।

उज्जोयसहियवियले अट्टावीसूणाणि पंच ॥१२२॥

^३उज्जोवुदयरहियवियले २१।२६।२८।२९।३०। उज्जोवुदयसहियवियले २१।२६।२९।३०।३१।

उद्योतरहितविकलत्रयेषु एकत्रिंशत्कोनानि एकविंशतिकं पट्विंशतिकाष्टाविंशतिकं-नवविंशतिकं-
त्रिंशत्कानि पञ्च नामोदयस्थानानि २१।२६।२८।२९।३० भवन्ति । उद्योतोदयसहितविकलत्रयेषु अष्टाविंशति-
कोनानि एकविंशतिकं-पट्विंशतिकं-नवविंशतिकं-त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि पञ्चोदयस्थानानि । २१।२६।२९।३०।३१
इति विशेषः ॥१२२॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे रहित विकलेन्द्रियोंमें इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानके विना शेष पाँच
उदयस्थान होते हैं । तथा उद्योतप्रकृतिके उदयसे सहित विकलेन्द्रियोंमें अट्टाईसप्रकृतिक उदय-
स्थानके विना शेष पाँच उदयस्थान होते हैं ॥१२२॥

उद्योतके उदयसे रहित विकलेन्द्रियोंमें २१, २६, २८, २९, ३० ये पाँच उदयस्थान होते हैं ।

उद्योतके उदयसे सहित विकलेन्द्रियोंमें २१, २६, २९, ३०, ३१ ये पाँच उदयस्थान होते हैं ।

1. स०पञ्चस० ५, १४१ । 2. ५, १४२ । 3. ५, 'निरुद्योते' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० १७१) ।

अथ द्वीन्द्रियके इक्षीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

¹उज्जोयलदयरहियवेइंदियट्टाण पंच इगिवीसं ।

तिरियदुर्य वेइंदिय तेजा कम्मं च वण्णचटुं ॥१२३॥

अगुरुयलहु तस वायर थिर सुह जुगलं तह अणादेज्जं ।

दुब्भगजसजुयलेक्कं पज्जत्तिदरेक्कणिमिणं च ॥१२४॥

विग्गहर्गईहि एए एक्कं वा दोण्णि चेव समयाणि ।

एत्थ वियप्पा जाणसु तिण्णेव य होंति बोहव्वा ॥१२५॥

²पुण्य जसक्किउदप्प अप्पज्जोदो नत्थि, तेण पुगो भंगो । १। अजसक्किभंगा २ । मज्जे ३ ।

उच्चोत्तोरदयरहितद्वीन्द्रियेषु स्थानानि पञ्च भवन्ति । तेषु मन्ये एकविंशतिकं स्थानं किमिति ? तिर्य-
गाति-तदनुपूर्व्ये २ द्वीन्द्रियजाति १ तैजस-कर्मणद्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ अगुल्लवुकं १ त्रसं १ वादरं १
स्तिरास्थिरयुग्मं २ शुभाशुभयुग्मं २ अनादेयं १ दुर्भगं १ यशोऽयगमोर्मध्ये एकतरं १ पर्याप्ताऽपर्याप्तयोरेक-
तरं १ निर्माणं १ चैत्येकविंशतिकनामकर्मप्रकृत्युदयस्थानं विग्रहगती कर्मणशरीरे द्वीन्द्रियस्योदंति २१ ।
तस्योदयकाल एकमयः द्वौ समयौ वा । अत्र विकल्पा भद्धान्नयो भवन्ति बोधव्या इति त्रीन् भद्धान्
जानीहि ॥१२३-१२५॥

अत्र यशस्कीर्त्युदये सति अपर्याप्तोदयो नास्ति, तत्र एको भङ्गः १ । पर्याप्तापर्याप्तोदयसद्भावा-
दत्रायशस्कीर्त्युदये द्वौ भङ्गौ २ । मौलिता ३ ।

उच्चोत्तप्रकृतिकके उदयसे रहित द्वीन्द्रियजीवोंके जो पाँच उदयस्थान होते हैं, उनमेंसे
इक्षीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—तिर्यग्विक्र, द्वीन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कर्मणशरीर,
वर्णचतुष्क, अगुल्लवु, त्रस, वादर, स्तिरयुगलं, शुभयुगल, अनादेय, दुर्भग, यशःकीर्तियुगलमेंसे
एक, पर्याप्तयुगलमेंसे एक और निर्माण । यह इक्षीसप्रकृतिक उदयस्थान विग्रहगतिमें एक या दो
समय तक उदयको प्राप्त होता है । इस उदयस्थानके यहाँपर तीन ही विकल्प या भंग होते हैं,
ऐसा जानना चाहिए ॥१२३-१२५॥

यहाँपर यशस्कीर्तिके उदयमें अपर्याप्तकर्मका उदय नहीं होता है, इसलिए एक ही भंग
होता है । पर्याप्त और अपर्याप्तकर्मका उदय पाये जानेसे अयशस्कीर्तिसम्बन्धी दो भंग होते हैं ।
इस प्रकार दोनों मिला करके इक्षीसप्रकृतिक उदयस्थानके तीन भंग हो जाते हैं ।

अथ द्वीन्द्रियके इक्षीसप्रकृतिक उदयस्थानका कथन करते हैं—

³एमेव य छज्जीसं सरीरगहियन्स आणुपुज्जी य ।

अवणिय पक्खिवियव्वं ओरालिय-हुंड-संपत्तं ॥१२६॥

ओरालियंगवंगं पत्तेयसरीरयं च उवघायं ।

अंतोमुहुचकालं भंगा वि हवन्ति तिण्णेव ॥१२७॥

पुण्य भंगा ३ ।

एवं पूर्वोक्तमेकविंशतिकं तत्रानुपूर्व्यमनोय विंशतिकं जातम् । तत्र औदारिकशरीरं १ हुण्डक-
मस्थानं १ असम्प्राप्तमंहननं १ औदारिकांशोपाङ्गं १ अन्येकशरीरं १ उपवातः १ चेति प्रकृतिषट्कं

1. सं० पञ्चसंग्र ५, १४३-१४५ । 2. ५, 'अत्रापर्याप्तोदया' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १७२) ।

3. ५, १४६-१४७ ।

प्रक्षेपणीयम् । पद्विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थान २६ शरीरगृहीतस्य स्वीकृतशरीरस्य द्वीन्द्रियस्योदेति २६ । तत्रौदारिकमिश्रकालोऽन्तर्मुहूर्त्त एव । अत्र भङ्गा विकल्पास्त्रयो भवन्ति ३ । यशोभङ्गः १ अयशोभङ्गौ २ एव ३ ॥१२६-१२७॥

इसी प्रकार छद्बीसप्रकृतिक उदयस्थान शरीरको ग्रहण करनेवाले द्वीन्द्रियजीवके जानना चाहिए । उसके उक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आनुपूर्वीको निकाल करके औदारिकशरीर, हुंडकसंस्थान सृपाटिकासंहनन, औदारिक-अंगोपांग, प्रत्येकशरीर और उपघात, ये छह प्रकृतियों जोड़ना चाहिए । इस उदयस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त्त है और भंग भी तीन ही होते हैं ॥१२६-१२७॥

यहाँ पर भंग इक्कीसप्रकृतिकस्थानके समान जानना चाहिए ।

अब द्वीन्द्रियके अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^१एमेव अट्ठवीसं शरीरपज्जत्तए अपज्जत्तं ।

अवणिय परघायं पि य असुहगईसहिय दो भंगा ॥१२८॥

॥२॥

एव पूर्वोक्तपद्विंशतिक २६ तत्रापर्याप्तमपनीय पर्याप्तद्विकमध्यादपर्याप्त निराक्रियते, तेन संख्या हीना न स्यात् । परघाताप्रशस्तविहायोगतिसहितं पद्विंशतिकमष्टाविंशतिक द्वीन्द्रियस्य शरीरपर्याप्ती पूर्णाङ्गे सति अन्तर्मुहूर्त्तकाले उदेति २८ । तत्र यशोयुग्मस्य द्वौ भङ्गौ भवतः २ । यशोपाके भङ्गः १, प्रतिपक्षप्रकृत्युदयाभावात् । अयशोपाकेऽप्येको भङ्गः १ । मीलितौ २ ॥१२८॥

इसी प्रकार अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर अपर्याप्तको निकाल करके परघात और अप्रशस्तविहायोगति इन दोको मिलाने पर होता है । यहाँपर भंग दो होते हैं ॥१२८॥

अब द्वीन्द्रियके उनतीस प्रकृतिक उदयस्थानका कथन करते हैं—

^२एमेवूणत्तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।

पक्खित्ते तह चेव य भंगा दो होंति णायच्चा ॥१२९॥

॥२॥

एवं पूर्वोक्तमष्टाविंशतिक २८ तत्रोच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्क स्थान २९ उच्छ्वासपर्याप्तिं प्राप्तस्य द्वीन्द्रियस्योदेति २९ । तत्र भङ्गौ द्वौ ज्ञातव्यौ भवतः २ । यशोयुग्मस्य भङ्गौ द्वावेव २ । तत्रान्तर्मुहूर्त्तकालो ज्ञेयः ॥१२९॥

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर उच्छ्वासप्रकृतिके मिलानेसे होता है । यहाँपर भी भंग दो ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१२९॥

अब द्वीन्द्रियके तीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^३एमेव होइ तीसं भासापज्जत्तयस्स णवरिं तु ।

सहिए दुस्सरणामं भंगा वि य होंति दो चेव ॥१३०॥

भंगा २ ।

एव पूर्वोक्तनवविंशतिक २९ दुःस्वरनामप्रकृतिसहित त्रिंशत्क नामप्रकृत्युदयस्थान ३० भासापर्याप्तिं प्राप्तस्य द्वीन्द्रियजीवस्योदय याति । इदं त्रिंशत्क जीवितावधे स्थानम् । उत्कृष्टा स्थितिः द्वादश वार्षिकी १२ । जघन्या अन्तर्मुहूर्त्तिकी । अत्र भङ्गौ द्वौ भवतः २ । यशोयुग्मस्यैव भङ्गौ द्वौ २ ॥१३०॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके भाषापर्याप्तिके पूर्ण होनेपर दुःस्वर-प्रकृतिके मिलानेसे होता है। यहाँपर भी भंग दो ही होते हैं ॥१३०॥

अब उद्योतके उदयवाले द्वीन्द्रियके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१उज्जोवउदयसहिए वेइंदिय एकवीस छव्वीसं ।

पुव्वुत्तं चेव तहा एत्थ य भंगा य पुणरुत्ता ॥१३१॥

एत्थ दो दो भंगा । २। २। पुणरुत्ता ।

उद्योतोदयसहिते द्वीन्द्रिये पूर्वोक्तमेवैकविंशतिकं अपर्याप्तरहितं २१ पट्विंशतिकं च भवति २६ । ग्रन्थभूयस्त्वभयाज्ञास्माभिर्वारवार लिख्यते । अत्र भङ्गौ द्वौ २ पुनरुक्तौ । तत्र कालः पूर्वोक्त एव ॥१३१॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे सहित, द्वीन्द्रियजीवके पूर्वोक्त ही इक्कीस और छव्वीस प्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। यहाँपर भी भङ्ग दो दो होते हैं, जो कि पुनरुक्त हैं ॥१३१॥

यहाँपर पुनरुक्त दो-दो भंग होते हैं ।

अब पूर्वोक्त जीवके उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^२छव्वीसाए उवरिं सरीरपज्जत्तयस्स परधायं ।

उज्जोवं असुहगई पक्खित्तु गुतीस दो भंगा ॥१३२॥

। २।

पट्विंशत्या उपरि परघातं १ उद्योतं १ अप्रशस्तगतिं च प्रक्षिप्य एकोनत्रिंशत्कं स्थानं २६ शरीर-पर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयसहितद्वीन्द्रियस्योदयागत भवति २६ । तत्र भङ्गौ द्वौ २ यशोयुग्मस्यैव ॥१३२॥

शरीरपर्याप्तिको पूर्ण करनेवाले द्वीन्द्रियजीवके छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थानके परघात, उद्योत और अप्रशस्तविहायोगति, इन तीन प्रकृतियोंके मिलानेपर उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है। यहाँपर भी दो भंग होते हैं ॥१३२॥

अब उसी जीवके तीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^३एमेव होइ तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।

पक्खित्ते तह चेव य भंगा वि हवन्ति दो चेव ॥१३३॥

भंगा २ ।

एवं पूर्वोक्तनवविंशतिक २६ । तत्रोच्छ्वासनिःश्वासे निक्षिप्ते त्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं उद्योतोदय-सहितद्वीन्द्रियस्योदयागत भवति ३० । उच्छ्वासपर्याप्तौ कालोऽन्तर्मुहूर्तः । त्रिंशत्कं द्वैधं, भङ्गौ द्वौ भवतः ॥१३३॥

इसी प्रकार श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिको सम्पन्न करनेवाले द्वीन्द्रियके उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानमे उच्छ्वासप्रकृतिके मिलाने पर तीसप्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है। यहाँ पर भी भङ्ग दो ही होते हैं ॥१३३॥

अब उसी जीवके इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानका कथन करते हैं—

^४एमेव एकत्तीसं भासापज्जत्तयस्स णवरिं तु ।

दुस्सर संपक्खित्ते दो चेव हवन्ति भंगा दु ॥१३४॥

। २।

एवमुक्तप्रकारं त्रिशत्कम् । भङ्गौ २ । तत्र दुःस्वरे संप्रचिसे निचिसे एकत्रिशत्कं नाम प्रकृत्युदयस्थानं भापापर्याप्ति प्राप्तस्योद्योतोदयसहितद्वीन्द्रियस्योदयागतं भवति ३१ । दुःस्वरं तत्र निचिसं नवीनविशेष इति । तत्र यशोयुग्मस्य भङ्गौ द्वौ ३१ । जघन्याऽन्तर्मौहूर्तिकी स्थितिः, उत्कृष्टा द्वादश वार्षिकी स्थितिः तस्य भापापर्याप्ति प्राप्तस्य द्वीन्द्रियस्येति ॥१३४॥

इसी प्रकार भापापर्याप्तिको पूर्ण करनेवाले द्वीन्द्रियजीवके तीसप्रकृतिक उदयस्थानमें दुःस्वरप्रकृतिके प्रक्षेप करने पर इकतीसप्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है । यहाँ पर भी भंग दो ही होते हैं ॥१३४॥

^१वेहंदियस्स एवं अट्टारस होंति सव्वभंगा दु ।

एवं वि-ति-चउरिंदियभंगा सव्वे वि चउवण्णा ॥१३५॥

वेहंदियस्स सव्वे भंगा १८ । एव ति-चउरिंदियाणं । सव्वे भगा ५४ ।

द्वीन्द्रियस्यैवं पूर्वोक्तप्रकारेणाष्टादश सर्वे भङ्गा विकल्पाः स्थानभेदा भवन्ति १८ । एव त्रीन्द्रियस्याष्टादश भङ्गाः १८ । चतुरिन्द्रियजीवस्याष्टादश भङ्गाः १८ । सर्वे एकीकृताः विकलत्रयाणां चतुःपञ्चाशत्सर्वे भङ्गाः ५४ भवन्ति ॥१३५॥

इस प्रकार द्वीन्द्रिय जीवके सर्वे भङ्ग अट्टारह होते हैं । त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके भी अट्टारह-अट्टारह भंग जानना चाहिए । इस प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियके सर्वे भंग चौवन होते हैं ॥१३५॥

द्वीन्द्रियके सर्वे भंग १८ हैं । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियके भी भंग १८-१८ होते हैं । विकलेन्द्रियोंके सर्वे भंग ५४ होते हैं ।

अब विकलेन्द्रियोंके तीस और इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंका काल बतलाते हैं—

^२तीसेक्कतीसकालो जहण्णमंतोमुहुत्तयं होइ ।

उक्कस्सं पुण णियमा उक्कस्सठिदी य किंचूणा ॥१३६॥

^३पृथ वेहंदियम्मि तीस इक्कत्तीसठाणाण ३०।३१ ठिदी वासा १२ । तेहंदियम्मि तीसेक्कतीसठाणाण ३०।३१ ठिदी दिवमा ४६ । चउरिंदियम्मि तीसेक्कतीसठाणाण ३०।३१ ठिदी मासा ६ ।

त्रिशत्कस्य एकत्रिशत्कस्य च नामप्रकृत्युदयस्थानस्य ३०।३१ जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्त्तो भवति । पुनः उत्कृष्टकालो निजनिजोत्कृष्टायुःस्थितिरेव किञ्चिन्न्यूनविग्रहगतिशरीरमिश्रशरीरपर्याप्त्युच्छ्वासपर्याप्तिकालहीनमुत्कृष्टायुरित्यर्थः ॥१३६॥

अत्र द्वीन्द्रियाणां त्रिशत्कस्थानस्य ३० एकत्रिशत्कस्थानस्य च ३१ स्थितिर्द्वादशवार्षिकी १२ किञ्चिन्न्यूना । त्रीन्द्रियाणां त्रिशत्कस्थानस्यैकत्रिशत्कस्थानस्य च स्थितिर्द्विमा एकोनपञ्चाशत् ४६ किञ्चिन्न्यूनाः । चतुरिन्द्रियेषु त्रिशत्कस्य एकत्रिशत्कस्थानस्य च स्थितिः पणमासा ६ किञ्चिन्न्यूना ।

विकलेन्द्रियोंके तीसप्रकृतिक और इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट काल नियमसे कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ॥१३६॥

यहाँ पर द्वीन्द्रियके तीस और इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंकी उत्कृष्ट स्थिति १२ वर्ष है । त्रीन्द्रियके तीस और इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंकी उत्कृष्ट स्थिति ४६ दिन है और चतुरिन्द्रियके तीस व इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंकी उत्कृष्ट स्थिति ६ मास है ।

अव पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके उदयस्थान वतलाते हैं—

^१पंचिदियतिरियाणं सामण्णे उदयठाणं छच्चेव ।

इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसादि जाव इगितीसं ॥१३७॥

२१।२।२८।२६।३०।३१।

सामान्येन पञ्चेन्द्रियाणामेकविंशतिकं २१ पङ्क्तिविंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनविंशत्कं २६ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ चेति नामप्रकृत्युदयस्थानानि पट्ट भवन्ति ॥१३७॥

२१।२६।२८।२६।३०।३१ ।

सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके इक्कीस, छव्वीस और अट्ठाईसको आदि लेकर इकतीस प्रकृतिक तत्त्वके छह उदयस्थान होते हैं ॥१३७॥

इन उदयस्थानोंकी अङ्कसंज्ञा इस प्रकार है—२१, २६, २८, २६, ३०, ३१ ।

अव उद्योतके उदयसे सहित और रहित पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके उदयस्थान कहते हैं—

^२उज्जोवरहियसयले एकत्तीसूणगाणि ठाणाणि ।

उज्जोवसहियसयले अट्ठावीसूणगा पंच ॥१३८॥

^३उज्जोवरहियपंचिदिण् २१।२६।२८।२६।३०। उज्जोउदयसहियपंचिदिण् २१।२६।२६।३०।३१ ।

उद्योतोदयरहितपञ्चेन्द्रियेषु तिर्यक्षु एकत्रिंशत्कोनानि नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च भवन्ति २१।२६।२८।२६।३० । उद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियेषु तिर्यक्षु अष्टाविंशतिकोनानि नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च भवन्ति २१।२६।२६।३०।३१ ॥१३८॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे रहित सकल अर्थात् पंचेन्द्रिय जीवके इकतीसप्रकृतिक स्थानके विना शेष पाँच उदयस्थान होते हैं । तथा उद्योतप्रकृतिके उदयसे सहित पंचेन्द्रिय जीवके अट्ठाईसप्रकृतिक स्थानके विना शेष पाँच उदयस्थान होते हैं ॥१३८॥

उद्योतके उदयसे रहित पंचेन्द्रियमें २१, २६, २८, २६, ३० ये पाँच उदयस्थान होते हैं । उद्योतके उदयसे सहित पंचेन्द्रियमें २१, २६, २६, ३०, ३१ ये पाँच उदयस्थान होते हैं ।

अव उद्योतके उदयसे रहित पाँचों उदयस्थानोंका क्रमसे वर्णन करते हैं—

^४उज्जोवरहियसयले तत्थ इमं एकवीससंठाणं ।

तिरियदुगं पंचिदिय तेया कम्मं च वण्णचट्ठं ॥१३९॥

अगुरुयलहुयं तस वायर थिरमथिर सुहासुहं च णिमिणं च ।

सुभगं जस पज्जत्तं आदेज्जं चेव चउज्जुयलं ॥१४०॥

एकयरं वेयंति य विग्गहगईहि एय-वियसमयं च ।

एत्थ वियप्पा णियमा णव चेव य होति णायव्वा ॥१४१॥

^५एत्थ अपज्जत्तोदण् दुभगअणादेज-अजसक्कित्तोणमेवोदओ, तेण एगो भंगो १ । पज्जत्तोदण् ८ । सव्वे ६ ।

१. स०पञ्चसं० ५, १५७ । २. ५, १५८ । ३. ५, 'उद्योतोदयरहिते' इत्यादिगद्याशः । पृ० १७४ ।

४. ५, १५६-१६१ । ५. ५, 'अत्र पूर्णादये' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १७४) ।

उद्योतोदयरहितपञ्चेन्द्रियाणां तिरश्चां मध्ये एकस्मिन् तिर्यग्जीवे तत्र नामोदयस्थानेषु पञ्चसु मध्ये इदमेकविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं भवति । किमिति ? तिर्यग्गतिद्वयं २ पञ्चेन्द्रियं १ तैजस-कर्मण-द्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघु १ त्रसं १ वादरं १ स्थिरास्थिरयुग्मं २ शुभाशुभद्वयं २ निर्माणं १ सुभगा-सुभग-यशोऽयशः-पर्याप्तापर्याप्ताऽऽदेयानादेयाना चतुर्युगलाना मध्ये एकतरं १ । १११ इत्येकविंशतिर्नाम-प्रकृतयो विग्रहगतौ उदयन्ति २ । उद्योतोदयरहितपञ्चेन्द्रियजीवस्य विग्रहगतौ कर्मणशरीरे इदमेकविंशतिक-मुदयगतं भवतीत्यर्थः । अत्रैकः समयो द्वौ समयौ वा । अत्र विकल्पा भङ्गा एकविंशतिकस्य भेदा नव भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥१३६-१४१॥

अत्रापर्याप्तोदये सति दुर्भंगाऽऽनादेयायशः कीर्त्तिनामुदयो भवत्येव यतस्तत एको भङ्गः १ । पर्याप्तो-दये सति दुर्भंग-सुभगादीनां त्रययुगमोदयादष्टौ भङ्गाः २।२।२ परस्परं गुणिताः भङ्गाः ८ । सर्वे नव ६ भङ्गाः ।

उद्योत-रहित पञ्चेन्द्रियके इक्षीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—तिर्यग्द्विक, पञ्चेन्द्रिय-जाति, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, त्रस, वादर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ; निर्माण और सुभग, यश कीर्त्ति, पर्याप्त और आदेय इन चार युगलोंमेंसे कोई एक एक, इन इक्षीस प्रकृतियोंका उदय विग्रहगतिमें एक या दो समय तक रहता है । यहाँ पर नियम-से नौ ही भङ्ग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१३६-१४१॥

इस इक्षीसप्रकृतिक उदयस्थानमें अपर्याप्तप्रकृतिके उदयमें दुर्भंग, अनादेय और अयशः-कीर्त्तिका ही उदय होता है, इसलिए उसके साथ एक ही भंग सम्भव है । किन्तु पर्याप्तप्रकृतिके उदयमें तीनों युगलोंका उदय सम्भव है, अतः तीन युगलोंके परस्पर गुणा करनेसे आठ भंग हो जाते हैं । इस प्रकार इस उदयस्थानमें दोनों मिलकर नौ भङ्ग होते हैं ।

अब उपर्युक्त जीवके छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

१ एमेव य छव्वीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स ।

अवणीय आणुपुव्वी पक्खिवियव्वं तथोरालं ॥१४२॥

तस्स य अंगोवंगं छस्संठाणाणमेयदरयं च ।

छच्चेव य संघयणा एकयरं चेव उपघायं ॥१४३॥

पत्तेयसरीरजुयं भंगा वि य तह य होंति णायव्वा ।

तिणिण सयाणि य णियमा एयरस ऊणिया होंति ॥१४४॥

१ पञ्जत्तोदए भंगा २८८ । अपञ्जत्तोदये हुंढ-असपत्त-दुब्भग-अणादेज्ज-अजसक्तिणमेवोदओ, तेण एगो भंगो १ । एव सच्चे २८६ ।

एवमेव पूर्वोक्तमेकविंशतिकं २१ तत्रानुपूर्व्यमपनीय २० तत्रौदारिकं १ तद्गोपाङ्गं १ पट्सस्थानानां मध्ये एकतर संस्थानं १ पण्णां मंहननानां मध्ये एकतरं [संहननं] १ उपघातः १ प्रत्येकशरीरं चेति प्रकृतिपट्कं ६ तत्र विंशतौ प्रक्षेपणीयम् । एवं पट्विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं शरीरं गृह्यतः औदारिक-मिश्रकायगृहीतस्योद्योतोदयरहितस्य पञ्चेन्द्रियस्य तिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति २६ । अस्य कालोऽन्तमु हूर्त्तं २१ । अस्य पर्याप्तोदये सति द्वादशोऽन्तः २८८ । अपर्याप्तोदये सति एको भङ्गः । एवं एकादशो-नास्त्रिंशतभङ्गा भवन्ति २८६ । तथाहि—अपर्याप्तोदये सति हुण्डकाऽसम्प्राप्तसूपाटिक-दुर्भंगानादेयायश-

कीर्तिनामोदय एव यतस्तत् एको भङ्गः १ । पर्याप्तोदये सति संस्थानपट्क-संहननपट्क-युग्मत्रयाणां
६।६।२।२।२ परस्परेण गुणिताः २८८ । शुभैः सहापूर्वोदयस्याभावादपूर्वोदये भङ्गः १ । ॥१४२-१४४॥

उक्तञ्च—

असम्प्राप्तमनादेयमयशो हुण्डदुर्भगे ।

अपूर्णेन सहोदेति पूर्णेन तु सहेतराः^१ ॥७॥

इति सर्वे २८६ ।

इसी प्रकार छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि शरीर-पर्याप्तिको ग्रहण करनेवाले जीवके आनुपूर्वीको निकाल करके औदारिकशरीर, औदारिक-अङ्गो-पांग, छह संस्थानोमेसे कोई एक संस्थान, छह संहननोमेसे कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक-शरीर इन छह प्रकृतियोंके मिला देने पर छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है, ऐसा जानना चाहिए । यहाँ पर नियमसे ग्यारह कम तीन सौ अर्थात् दोसौ नवासी भङ्ग होते हैं ॥१४२-१४४॥

यहाँ पर्याप्तप्रकृतिके उदयमें छह संस्थान, छह संहनन, तथा शुभ, आदेय और यशःकीर्ति इन तीनों युगलोंके परस्पर गुणा करने पर ($६ \times ६ \times २ \times २ \times २ = २८८$) दो सौ अठासी भङ्ग होते हैं । तथा अपर्याप्तप्रकृतिके उदयमें हुण्डक संस्थान, सृपाटिका संहनन, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्तिका ही उदय होता है, इसलिए एक ही भंग होता है । इस प्रकार $२८८ + १ = २८९$ भङ्ग छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थानमे होते हैं ।

अब उसी जीवके अट्टाईसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करतं हैं—

‘एमेवट्टावीसं शरीरपज्जत्तगे अपज्जत्तं ।

अवणिय पक्खिविद्वं एकयरं दो विहायगई ॥१४५॥

परघायं चेव तहा भंगवियप्पा तहा य णायव्वा ।

पंचेव सया णियमा छावत्तरि उत्तरा होंति ॥१४६॥

भंगा ५७६ ।

एवं पूर्वोक्तं षड्विंशतिकं तत्रापर्याप्तमपनीय प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्योर्मध्ये एकतरोदयः परघातं चैतदद्वयं षड्विंशतिके प्रक्षेपणीयम् । अष्टाविंशतिकं २८ तत्तु तिर्यग्गतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ तैजसकर्मणे २ वर्णचतुर्कं ४ अगुल्लघु १ त्रसं १ वादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ पर्याप्तं १ सुमगासुभ-गयोरेकतरं १ यशोऽयशसोरेकतरं १ आदेयानादेययोरेकतरं १ औदारिकशरीरं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गम् १ पण्णां संस्थानानां मध्ये एकतरं १ पण्णां संहननानां मध्ये एकतरं १ उपघातं १ प्रत्येकशरीरं १ प्रशस्ता-प्रशस्तविहायोगत्योर्मध्ये एकतरं १ परघातं १ चेत्यष्टाविंशतिकं स्थानं २८ शरीरपर्याप्तिप्राप्ते सति उद्योतोदयरहितस्य पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति । तस्यान्तमुहूर्त्तकालः जघन्योत्कृष्टतः । तथा तस्याष्टाविंशतिकस्य भङ्गविकल्पाः षड्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्योपेता ज्ञातव्याः ॥१४५-१४६॥

६।६।२।२।२ गुणिता ५७६ ।

इसी प्रकार अट्टाईसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होने पर अपर्याप्तप्रकृतिको निकाल करके दो विहायोगतिमेसे कोई एक और परघात प्रकृतिके मिलाने पर होता है । तथा यहाँ पर भङ्ग-विकल्प पाँच सौ छिहत्तर होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१४५-१४६॥

छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थानमें जो पर्याप्त-सम्बन्धी २८८ भङ्ग बतलाये हैं उन्हें यहाँ पर वढ़े हुए विहायोगति-युगलसे गुणा कर देने पर ($२८८ \times २ =$) ५७६ भङ्ग हो जाते हैं ।

१. सं० पञ्चसं० ५, १६६-१६७ ।

१. सं० पञ्चसं० ५, १६६ ।

अथ उपर्युक्त जीवके उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^१एमेऊणत्तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।

पक्खित्ते तह भंगा पुव्वुत्ता चेव णायव्वा ॥१४७॥

भंगा ५७६ ।

एवमेवोक्तमष्टाविंशतिके उच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते एकात्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं २६ आन-
पर्याप्तस्य उच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयरहितस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति । तस्य
जघन्योन्मृष्टतोऽन्तर्मुहूर्त्तकालः । तथा तस्य भङ्गा पूर्वोक्ता एव ज्ञातव्याः ५७६ ॥१४७॥

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके आनापानपर्याप्तिके पूर्ण होने पर
उच्छ्वासप्रकृतिके मिला देने होता है । यहाँ पर भङ्ग पूर्वोक्त पाँच सौ छिहत्तर (५७६) ही
जानना चाहिए ॥१४७॥

अथ उसी जीवके तीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^२एमेव होइ तीसं भासापज्जत्तयस्स सरज्जुयलं ।

एक्कयरं पक्खित्ते भंगा पुव्वुत्तदुगुणा दु ॥१४८॥

^३सव्वे भंगा ११५२ । एवमुज्जोउदयरहियपंचिदिण सव्वभंगा २६०२ ।

एवं पूर्वोक्तमेकात्रिंशत्कं २६ तत्र स्वरयुगलस्यैकतरं १ प्रक्षिप्ते त्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं ३०
भासापर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयरहितस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति ३० । तु पुन तस्य भङ्गा
पूर्वोक्ताः ५७६ स्वरयुगलेन २ हताः द्विगुणा भवन्ति ११५२ । एवमित्थं उद्योतोदयरहिते पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यग्जीवे सर्वे भङ्गाः २६०२ ॥१४८॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके भासापर्याप्तिके पूर्ण होने पर स्वर-
युगलमेसे किसी एकके मिलाने पर होता है । यहाँ पर भङ्ग पूर्वोक्त भङ्गोंसे दुगुण अर्थात् ११५२
होते हैं ॥१४८॥

पूर्वोक्त ५७६ भङ्गोंको स्वर-युगलसे गुणा करनेपर ११५२ भंग हो जाते हैं । इस प्रकार
उद्योतप्रकृतिके उदयसे रहित पञ्चेन्द्रियतिर्यचके सर्व भंग ($\frac{२१}{६} + \frac{२६}{२८६} + \frac{२८}{५७६} + \frac{२६}{५७६} + \frac{३०}{११५२} =$
२६०२ होते हैं

अथ उद्योतप्रकृतिके उदयवाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यचोंके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^४उज्जोवसहियसयले इगि-छव्वीसं हवदि पुव्वुत्तं ।

भंगा वि तह य सव्वे पुणरुत्ता होंति णायव्वा ॥१४९॥

उद्योतोदयमहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवे एकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं च पूर्वोक्तं भवति । तत्रै-
वापर्याप्तमपनीय पूर्वोक्तपुनरुक्ता भङ्गास्तत्र भवन्ति । तत्किम् ? तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्ये २ पञ्चेन्द्रियं १
तैजस्य कामणे २ त्रणञ्चतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ त्रसं १ वादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ पर्याप्तं १
सुभगासुभगयोः यशोऽयशमोर्युग्मयोर्मध्ये एकतरं ११ आदेयानादेययुग्मस्यैकतरं १ चेति एकविंशतिकं

१. स० पञ्चस० ५, १६८ । २. ५, १६६ । ३. ५, '३० । भङ्गा पूर्वोक्ताः' इत्यादिगद्याशः (पृ०
१७५) । ४. ५, १७० ।

† च जिहाहि ।

स्थानं उद्योतोदय [सहित-] पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति २१ । अस्य भङ्गाः सुभगदुर्भगा-
देयानादेयशोऽयशसां युग्मत्रयाणां २।२।२ परस्परं गुणिताः अष्टौ ८ । काल एक-द्वि-त्रिसमयाः । उद्योतोदये
सर्वत्रापर्याप्तं नास्तीति ज्ञेयम् । इदमेकविंशतिकं स्थानं तत्रानुपूर्व्यमपनीय औदारिक-तदङ्गोपाङ्गद्वयं २
पण्णां संस्थानानामेकतरं १ पण्णां संहनानामेकतरं १ उपघातः १ प्रत्येकशरीरं चेति प्रकृतिपट्टकं तत्र
प्रक्षेपणीयम् । तदा षड्विंशतिकं स्थानं २६ उद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति ।
तस्य कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः । तस्य भङ्गाः २।२।६।६ परस्परं गुणिताः २८८ पर्याप्तोदयभङ्गा विकल्पा
भवन्तीत्यर्थः ॥१४६॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे सहित सकलपञ्चेन्द्रियजीवके इक्कीस और छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थान
पूर्वोक्त अर्थात् उद्योतके उदयसे रहित पञ्चेन्द्रियजीवके समान ही होते हैं । तथा भंग भी उन्हींके
समान होते हैं । वे सब भंग पुनरुक्त जानना चाहिए ॥१४६॥

अब उक्त जीवके उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानका प्ररूपण करते हैं—

१ एमेव ऊणतीसं शरीरपञ्जत्तयस्स परघायं ।

उज्जोवं गइदुगाण एयदरं चेव सहियं तु ॥१५०॥

एत्थ वि भंग-वियप्पा छच्चेव सया हवंति ऊणा य ।

चउवीसेण दु णियमा कालो अंतोमुहुत्तं तु ॥१५१॥

भंगा ५७६ ।

एवमेव पूर्वोक्तं षड्विंशतिकं २६ परघातं १ उद्योतं १ प्रशस्ताप्रशस्तगत्योर्मध्ये एकतरं १ चित
प्रकृतित्रयसहितं षड्विंशतिकं तु एकोनत्रिंशत्कं शरीरपर्याप्ति गृह्यत उद्योतोदयसहितस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-
जीवस्योदयागतं २६ भवति । तस्यान्तर्मुहूर्त्तकालः । तत्र भङ्गाः पूर्वोक्ताः २८८ प्रशस्ताप्रशस्तेन गतियुग्मेन
गुणिताः ५७६ भवन्ति । तदाह—अत्रैकोनत्रिंशत्के भङ्गविकल्पाश्चतुर्विंशतिन्यूनाः षट्शतसंख्योपेता भवन्ति
५७६ । अत्र कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः ॥१५०-१५१॥

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके शरीरपर्याप्तिसे युक्त होनेपर परघात,
उद्योत और विहायोगनियुगलमेंसे किसी एकके मिला देनेपर होता है । यहाँपर भी भंग-विकल्प
चौवीससे कम छह सौ अर्थात् ५७६ होते हैं । इस उदयस्थानका काल नियमसे अन्तर्मुहूर्त्त
है ॥१५०-१५१॥

अब उक्त जीवके तीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

२ एमेव होइ तीसं आणापञ्जत्तयस्स उस्सासं ।

पक्खित्ते भंगा वि य सरिसा एऊणतीसेण ॥१५२॥

भंगा ५७६ ।

एवं पूर्वोक्तनवविंशतिकं २६ तत्रोच्छ्रामनि-श्रवासे निक्षिप्ते त्रिंशत्कं स्थानं ३० आनापानपर्याप्तस्यो-
द्योतोदय- [सहित-] पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति ३० । तस्यैकोनत्रिंशत्कसदृशा भङ्गाः ५७६
भवन्ति ॥१५२॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके आनापानपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर उच्छ्वास-
प्रकृतिके मिलानेसे होता है । इस उदयस्थानके भी भंग उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानके सदृश ५७६
होते हैं ॥१५२॥

अब उक्त जीवके इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^१एमेव एकतीसं भासापञ्जत्तयस्स सरजुयलं ।

एककयरं पक्खित्ते भंगा पुब्बुत्तदुगुणा दु ॥१५३॥

११५२ ।

एव पूर्वोक्तत्रिंशत्कं तत्र स्वरयुगलस्यैकतरं सुस्वरदुःस्वरयोर्मध्ये एकतरं १ निक्षिप्ते एकत्रिंशत्कं स्थानं ३१ भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागत ३१ भवति । तत्किम् ? तिर्यग्गतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ तैजस-कार्मणे २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ त्रसं १ बादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ पर्याप्तं १ सुभग-दुर्भगयुग्मस्य मध्ये एकतरं १ यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरं १ आदेयानादेययोर्मध्ये एकतरं १ औदारिक-तदङ्गोपाङ्गे २ पण्णा संस्थानानामेकतरं १ पण्णा सहननानामेकतरं १ उपघातः १ प्रत्येकशरीरं १ परघातः १ उद्योतं १ प्रशस्ताप्रशस्तगत्योर्मध्ये एकतरा गतिः १ उच्छ्वास-निःश्वासं १ सुस्वरदुःस्वरयोर्मध्ये एकतरोदयः १ । एवमेकत्रिंशत्कं प्रकृत्युदयस्थानं भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्यो-द्योतोदय-[सहित-] पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवतीत्यर्थः । अस्य भङ्गविकल्पा. २।२।२।६।६।२।२ परस्परं गुणिताः ११५२ । अथवा पूर्वोक्ता. ५७६ स्वरयुगलेन २ गुणिता द्विगुणा भवन्ति ११५२ ॥१५३॥

इसी प्रकार इकतीस प्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके भाषापर्याप्तिके पूर्ण होनेपर स्वर-युगल-मेसे किसी एकके मिलानेपर होता है । यहाँपर भंग पहले कहे गये भंगोसे दुगुने अर्थात् ११५२ होते हैं ॥१५३॥

अब तीस और इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानका काल बतलाते हैं—

^२तीसेकतीसकालो जहण्णमंतोमुहुत्तयं होइ ।

अंतोमुहुत्तऊणं उक्कस्सं तिण्णि पल्लाणि ॥१५४॥

त्रिंशत्कस्थानस्य ३० जघन्योऽन्तर्मुहूर्तकालः । एकत्रिंशत्कस्थानस्य ३१ जघन्योऽन्तर्मुहूर्तः । उत्कृष्टकालोऽन्तर्मुहूर्तानानि त्रीणि पल्यानि । विग्रहगति-शरीरमिश्र-शरीरपर्याप्ति-श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकाल-चतुष्कोनं सर्वं भुज्यमानायुरित्यर्थः ॥१५४॥

तीसप्रकृतिक उदयस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल अनन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्य है ॥१५४॥

^३एव उज्जोयसहियपंचिदियतिरिप्सु सव्वभगा २३०४ । एय सव्वपंचिदियतिरिप्सु ४६०६ ।

एवमुद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवे सर्वे भङ्गा २३०४ उद्योतरहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्क्षु २६०२ । एव पञ्चेन्द्रियेषु सर्वे भङ्गाः ४६०६ ।

इस प्रकार उद्योतप्रकृतिके उदयसे युक्त पंचेन्द्रियतिर्यग्चोके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व भंग (५७६ + ५७६ + ११५२ =) २३०४ होते हैं । इनमे उद्योतके उदयसे रहित पंचेन्द्रियोके २६०२ भंग मिला देनेपर (२०३३ + २६०२ =) ४६०६ भंग सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यग्चोके हो जाते हैं ।

^४सव्वेसि तिरियाणं भंगवियप्पा हवन्ति णायव्वा ।

पंचेव सहस्साइं ऊणाइं हवन्ति चदुगुणा ॥१५५॥

४६६२ ।

तिरियगई समत्ता

अष्टभिर्हीनाः पञ्च सहस्रा भङ्गविकल्पाः सर्वेपामेकेन्द्रियादिपञ्चैन्द्रियपर्यन्तानां तिरश्चां भवन्ति
ज्ञातव्याः ४६६२ ॥१५५॥ उक्तश्च—

सहस्राः पञ्च भङ्गानामष्टहीना निवेदिताः ।
तिर्यग्गतौ समस्तानां पिण्डितानां पुरातनैः ॥८॥

इति तिर्यग्गतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि समाप्तानि ।

एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके सर्व तिर्यचोके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व भंगोंके विकल्प
चारद्विक अर्थात् आठ कम पाँच हजार होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१५५॥

भावार्थ—एकेन्द्रियोंके ३२, विकलेन्द्रियोंके ५४ और सकलेन्द्रियोंके ४६०६ भंगोंको जोड़
देनेपर तिर्यचोके सर्व भंग ४६६२ हो जाते हैं ।

इस प्रकार तिर्यग्गति-सम्बन्धी नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मनुष्यगतिमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१मणुयगईसंजुत्ता उदये ठाणाणि होंति दस चैव ।
चउवीसं वज्जित्ता सेसाणि हवंति णायव्वा ॥१५६॥

२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।

अथ मनुष्यगतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि गाथापञ्चविंशत्याऽऽह—[मणुयगईसंजुत्ता' इत्यादि ।]
चतुर्विंशतिक स्थान वर्जयित्वा शेषाणि मनुष्यगत्यां मनुष्यगतिसंयुक्तानि नामकर्मप्रकृत्युदयस्थानानि दश
भवन्ति—एकविंशतिकं २१ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २७ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८
नवविंशतिकं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ नवकं ६ अष्टकं ८ चेति दश १० ॥१५६॥

नामकर्मके जितने उदयस्थान हैं, उनमेंसे चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानको छोड़कर शेष दश
उदयस्थान मनुष्यगति-संयुक्त होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१५६॥

उनकी अंकसंहति इस प्रकार है—२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ६, ८ ।

^२पंचिंदियतिरिएसुं उज्जोवूणेषु जाणि भणियाणि ।
ओघणरेसु वि ताणि य हवंति पंच उदयठाणाणि ॥१५७॥

२१।२६।२८।२९।३०।

उद्योतरहितपञ्चैन्द्रियतिर्यक्षु यानि उदयस्थानानि भणितानि, ओघनरेषु मनुष्यगतौ सामान्य-
मनुष्येषु तानि नामोदयस्थानानि पञ्चैव भवन्ति—एकविंशतिकं षड्विंशतिकं अष्टाविंशतिकं नवकविंशतिकं
त्रिंशत्कमिति २१।२६।२८।२९।३० नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च भवन्ति ॥१५७॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे रहित पंचेन्द्रियतिर्यचोंमे जो पाँच उदयस्थान बतलाये गये हैं,
सामान्यमनुष्योंमें वे ही पाँच उदयस्थान होते हैं ॥१५७॥

उनकी अंकसंहति इस प्रकार है—२१, २६, २८, २९, ३० ।

किन्तु मनुष्यगतिके उदयस्थानोंमें जो विशेषता है उसे बतलाते हैं—

^१तिरियदुवे मणुयदुयं भणणीयं होति सव्वभंगा हु ।
सत्तावीस सयाणि य अट्ठाणउदी य रहियाणि ॥१५८॥

॥२६०२॥

^२तथापि सुहवोहत्थं बुच्चए—

अत्र सामान्यमनुष्येषु तिर्यग्दिके मनुष्यद्विके भणनीयम् । यथा तिर्यंगतौ तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानु-
पूर्व्यं भण्यते, तथा मनुष्यगतौ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यं भण्यते । सर्वभङ्गाः पूर्वोक्तप्रकारेण भङ्गाः
अष्टानवतिरहिताः सप्तविंशतिशतप्रमा^१ द्विसहस्रपदशतद्विप्रमितभङ्गा इत्यर्थः २६०२ ॥१५८॥

उदयस्थानोको प्रकृतियोमे तिर्यग्दिके स्थानपर मनुष्यद्विको कहना चाहिए । यहाँपर
भी सर्व भग अट्ठावनवैसे रहित सत्ताईस सौ अर्थात् छव्वीस सौ दो (२६०२) होते हैं ॥१५८॥
तथापि सुगमतासे समझनेके लिए उनका निरूपण करते हैं—

तिथ्यराहाररहियपयडी मणुसस्स पंच ठाणाणि ।
इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसं ऊणतीस तीसा य ॥१५९॥

२१।२६।२८।२९।३०।

यद्यपि पूर्वोक्तास्ते, तथापि सुखबोधार्थं वा भव्यशिष्यानां प्रतिबोधनार्थमुच्यते—['तिथ्यरा-
हाररहिय' इत्यादि ।] तीर्थकरप्रकृत्याहारकद्विकप्रकृतिरहितस्य सामान्यमनुष्यस्य एकविंशतिक २१ पञ्च-
विशतिक २६ अष्टाविंशतिक २८ नवविंशतिक २९ त्रिंशत्क ३० चेति पञ्च नामप्रकृत्युदयस्थानानि
भवन्ति ॥१५९॥

तीर्थकर और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियोंके उदयसे रहित मनुष्यके इक्कीस, छव्वीस,
अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पोंच पोंच उदयस्थान होते हैं ॥१५९॥

उनकी अंकसंष्टि इस प्रकार है—२१, २६, २८, २९, ३० ।

^३तत्थ इमं इगिवीसं ठाणं णियमेण होइ ण यव्वं ।
मणुयदुयं पंचिदिय तेया कम्मं च वण्णचदुं ॥१६०॥
अगुरुयलहु तस वायर थिरमथिर सुहासुहं च णिमिणं च ।
सुभगं जस पज्जत्तं आदेज्जं चैव चउजुयलं ॥१६१॥
एययरं वेयंति य विग्गहगईहि एग-विगसमयं ।
एत्थ वियप्पा णियमा णव चैव हवंति णायव्वा ॥१६२॥

पज्जत्तोदए भंगा ८ । अपज्जत्तोदये १। सव्वे ६ ।

तत्र मनुष्यगत्यामिदमेकविंशतिकं स्थानं २१ नियमेन ज्ञातव्यं भवति । तत्किम् ? मनुष्यगति-
तद्वानुपूर्व्ये २ पञ्चवेन्द्रियं १ तैजस-कामर्णद्वयं २ वर्णचतुर्कं ४ अगुरुलघुर्कं १ त्रसं १ वादरं १ स्थिरास्थिरे
२ शुभाशुभे २ निर्माणे १ सुभगदुर्भगयुग्म-यशोऽयशोयुग्म-पर्याप्तापर्याप्तयुग्माऽऽदेयानादेययुग्मानां
चतुर्णां मध्ये एकतरमेकतरमुदय याति १।१।१।१ । चेत्येकविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं सामान्यमनुष्य-
स्यैकजीवस्य विप्रहृत्यां कामर्णशरीरे जघन्यमेकसमय उत्कृष्टेन द्वौ त्रीन् (?) समयान् प्रति उदयागतं

१. स० पञ्चसं० ५, १७८ । २. ५, 'यद्यपि पूर्वमुक्तास्ते' इत्यादिगद्याशः (पृ० १७६) ।

३. ५, १७६-१८१ ।

२१ भवति । अत्र विकल्पा भङ्गा नियमेन नव भवन्ति ज्ञातव्याः । यशस्कीर्त्तिमाश्रित्य पर्याप्त्युदये भङ्गाः अष्टौ । अयस्कीर्त्तिमाश्रित्यापर्याप्त्युदये भङ्ग एकः १ । एवं नव भङ्गाः ६ ॥१६०-१६२॥

उनमेंसे इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानमें नियमसे ये प्रकृतियों जानना चाहिए—मनुष्यद्विक, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, व्रस, वादर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण; तथा सुभग, यशःकीर्त्ति, पर्याप्त और आदेय इन चार युगलोंमेंसे कोई एक-एक । इन इक्कीस प्रकृतियोंका विग्रहगतिमें एक या दो समयतक मनुष्यसामान्य वेदन करते हैं । यहाँपर भंग नियमसे नौ ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१६०-१६२॥

पर्याप्तप्रकृतिके उदयमें ८ भङ्ग और अपर्याप्तके उदयमें १ भङ्ग; इस प्रकार सर्व ६ भङ्ग होते हैं ।

^१ एमेव य छव्वीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स ।

अवणीय आणुपुव्वी पक्खिवियव्वं तथोरालं ॥१६३॥

तस्स य अंगोवंगं छस्संठाणाणमेकदरयं च ।

छव्वेव य संघयणा एययरं चेव उवघायं ॥१६४॥

पत्तेयसरीरजुयं भंगा वि य तस्स होंति णायव्वा ।

तिणिण य सयाणि णियमा एयारस ऊणिया होंति ॥१६५॥

पज्जत्तोदए भंगा २८८ । अपज्जत्तोदये १ । सव्वे २८९ ।

एवमेव पूर्वोक्तमेकविंशतिकम् । तत्रानुपूर्व्यमपनीय २० तत्रौदारिकं १ तदङ्गोपाङ्गं १ पण्णां संस्थानानां मध्ये एकतरं संस्थान १ पण्णां संहननानां मध्ये एकतरं संहननं १ उपघातं १ प्रत्येकशरीरं १ चेति प्रकृतिषट्कं प्रक्षेपणीयम् । नवीनविशेषोऽयम् । इति षड्विंशतिकं स्थानं औदारिकशरीरं गृह्यतः औदारिकमिश्रकाले उदयागतं भवति २६ । तत्रान्तमुद्धर्त्तकालः । तस्य षड्विंशतिकस्य भङ्गा विकल्पा एकादशोनाः शतत्रयप्रमिता भवन्ति । यशस्कीर्त्तिमाश्रित्य पर्याप्त्युदये सति भङ्गाः २८८ । अयशःपाके अपर्याप्त्युदये एको भङ्गः १ । सर्वे भङ्गाः २८९ ॥ ६।६।२।२।२ गुणिताः २८८ । [एकश्चापर्याप्तभङ्गः] १ । एवं २८९ ॥१६३-१६५॥

इसी प्रकार छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि शरीर-पर्याप्तिको ग्रहण करनेवाले मनुष्यके मनुष्यानुपूर्विको निकाल करके औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपाङ्ग, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान, छह संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन छह प्रकृतियोंको और मिला देना चाहिए । इस उदयस्थानके भङ्ग भी ग्यारहसे कम तीन सौ अर्थात् दो सौ नवासी होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१६३-१६५॥

पर्याप्तके उदयमें २८८, अपर्याप्तके उदयमें १ इस प्रकार कुल २८९ भङ्ग होते हैं ।

^२ एमेव अट्ठवीसं सरीरपज्जत्तगे अपज्जत्तं ।

अवणिय पक्खिवियव्वं एययरं दो विहायगई ॥१६६॥

परघायं चेव तहा भंगवियप्पा तहेव णायव्वा ।

पंचेव सया णियमा छावत्तरि उत्तरा होंति ॥१६७॥

एवं पूर्वोक्तपट्विंशतिकम् । तत्रापार्याप्तमपनीय प्रशस्ताप्रशस्तगत्योर्मध्ये एकतर १ परघातं चेति द्वयं प्रक्षेपणीयम् । इत्यष्टाविंशतिकं स्थानं शरीरपर्याप्ति सामान्यमनुष्यस्योदयागत २८ भवति । तस्य कालोऽन्तर्मुहूर्तः । तथा तस्य स्थानस्य भङ्गविकल्पा पट्सप्तायुत्तरपञ्चशतप्रमिता ५७६ भवन्ति ज्ञेयाः ॥१६६-१६७॥

इसी प्रकार अट्टाईसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि उक्त जीवके शरीरपर्याप्तिके पूर्ण हो जानेपर अपर्याप्त प्रकृतिको निकाल करके दोनो विहायोगतियोंमेसे कोई एक और परघात; ये दो प्रकृतियों मिलाना चाहिए । इस उदयस्थानमे भङ्ग-विकल्प तथैव अर्थात् तिर्यचसम्बन्धी अट्टाईसप्रकृतिक उदयस्थानके समान नियमसे पाँच सौ छिहत्तर होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१६६-१६७॥

^१एमेवऊणत्तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।

पक्खित्ते तह भंगा पुव्वुत्ता चेव णायव्वा ॥१६८॥

भगा ५७६ ।

एवं पूर्वोक्तमष्टाविंशतिकम् । तत्रोच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्क स्थानं आनापानपर्याप्ति प्राप्तस्य सामान्यमनुष्यस्योदयागतं भवति २६ । तत्र कालोऽन्तर्मुहूर्तः । तथैतस्य भङ्गाः पूर्वोक्ताः ज्ञेयाः ५७६॥१६८॥

इसी प्रकार उन्तीसप्रकृतिक उदयस्थान शरीर-पर्याप्तिसे सम्पन्न मनुष्यके उच्छ्वास प्रकृतिके मिला देने पर होता है । तथा यहाँ पर भङ्ग भी पूर्वोक्त ५७६ ही जानना चाहिए ॥१६८॥

^२एमेव होइ तीसं भासापज्जत्तयस्स सरजुयलं ।

एययरं पक्खित्ते भंगा पुव्वुत्तदुगुणा दु ॥१६९॥

भगा ११५२ ।

एवमेव पूर्वोक्तनवविंशतिकप्रकारेण [त्रिंशत्क] भवति । तत्र सुस्वर-दुःस्वरयोर्मध्ये एकतर प्रक्षिप्ते त्रिंशत्क स्थानं भापापर्याप्ति प्राप्तस्य सामान्यमनुष्योदयागत ३० भवति । तत्कथम् ? मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ तैजसकर्मणे २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ अस्र १ वादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ पर्याप्तं १ सुभग-यशः-आदेययुग्मानां त्रयाणां एकतरं १११११ औदारिक-तदङ्गोपाङ्गे २ पण्णां संस्थानानामेकतरं सस्थानं १ पण्णा सहननानां मध्ये एकतर सहनन १ उपघातं १ प्रशस्ताप्रशस्तगति-द्वयस्यैकतरं १ परघातं १ उच्छ्वासनिःश्वासं १ सुस्वर-दुःस्वरयोर्मध्ये चैकतरं १ चेति त्रिंशत्क नामप्रकृत्यु-दयस्थान ३० सामान्यमनुष्यस्यैकजीवस्योदयागत भवति । तस्य परा पत्त्यत्रयं स्थितिः समुहूर्त्तोना इति । ६।६।२।२।२।२।२। परस्परगुणिताः ११५२ तत्र भङ्गाः । अथवा पूर्वोक्ताः ५७६ स्वरयुगलेन २ गुणिता द्विगुणा भवन्ति । सर्वे मीलिताः २६०२॥१६९॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक उदयस्थान भापा-पर्याप्तिसे युक्त मनुष्यके स्वर-युगलोमेसे किसी एकके मिलाने पर होता है । यहाँ पर भङ्ग पूर्वोक्त भङ्गोसे दूने अर्थात् ११५२ होते हैं ॥१६९॥

^३आहारसरीरुदयं जस्स य ठाणाणि तस्स चत्तारि ।

पणुवीस सत्तवीसं अट्ठावीसं च उगुतीसं ॥१७०॥

विसेसमणुपसु २५।२७।२८।२९।

१. स० पञ्चसं० ५, १८७ । २. ५, १८८ । ३. ५, १८९ ।

†व उण-

अथ विशेषमनुष्येषु नामोदयस्थानान्याऽऽह—['आहारशरीरुदय' इत्यादि ।] यस्य मुनेराहारक-शरीर-तदङ्गोपाङ्गोदयो भवति, तस्य विशिष्टपुरुषस्य पञ्चविंशतिकं २५ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनविंशतिकं २९ चेति चत्वारि नामप्रकृत्युदयस्थानानि २५।२७।२८।२९ स्युः ॥१७०॥

अब आहारक शरीरके उदयवाले जीवोंके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

जिस जीवके आहारकशरीरका उदय होता है उसके पचीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस; ये चार उदयस्थान होते हैं ॥१७०॥

आहारकशरीरके उदयवाले विशेष मनुष्यमें २५, २७, २८, २९ ये चार उदयस्थान होते हैं ।

^१तत्थ इमं पणुवीसं मणुसगई तेय कम्म आहारं ।

तस्स य अंगोवंगं वर्णचउक्कं च उवघायं ॥१७१॥

अगुरुलहु पंचिदिय-थिराथिर सुहासुहं च आदेज्जं ।

तसचउ समचउरं सुहयं जस णिमिण भंग एगो दु ॥१७२॥

भंगो १।

तत्र मनुष्यगत्याहारकद्विके इदं पञ्चविंशतिकं स्थानम् । मनुष्यगतिः १ तैजस-कर्मणे २ आहारका-हारकाङ्गोपाङ्गे २ वर्णचतुष्कं ४ उपघातं १ अगुरुलघु १ पञ्चेन्द्रियं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ आदेयं १ त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्टयं ४ समचतुरस्रसंस्थान १ सुभग १ यशःकीर्तिः १ निर्माणं १ चेति पञ्च-विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थान २५ आहारकद्विकोदये सति मुनेरुदयागत भवति । अस्यान्तमुर्हृत्कालः । तस्य पञ्चविंशतिकस्य भङ्गो १ भवति ॥१७१-१७२॥

उनमेंसे पचीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—मनुष्यगति, तैजसशरीर, कर्मण-शरीर, आहारकशरीर, आहारक-अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, उपघात, अगुरुलघु, पञ्चेन्द्रियजाति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, आदेय, त्रस-चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, सुभग, यशस्कीर्ति और निर्माण । इस उदयस्थानमें भङ्ग एक ही होता है ॥१७१-१७२॥

^२एमेव सत्तवीसं शरीरपज्जत्तयस्स परघायं ।

पक्खिविय पसत्थगई भंगो वि य एत्थ एगो दु ॥१७३॥

भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्तपञ्चविंशतिकम् । तत्र परघातं १ प्रशस्तविहायोगति च प्रक्षिप्य मुक्त्वा सप्तविंशतिकं नामोदयस्थान २७ शरीरपर्याप्तस्याऽऽहारकशरीरपर्याप्तिं प्राप्तस्य पूर्णाङ्गस्य मुनेरुदयागत भवति । अत्रैको भङ्गः १ । कालस्तु अन्तमुर्हृत्कः ॥१७३॥

इसी प्रकार सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थान शरीर-पर्याप्तिसे पर्याप्त मनुष्यके परघात और प्रशस्त विहायोगति इन दो प्रकृतियोंके मिलाने पर होता है । यहाँ पर भी भङ्ग एक ही होता है ॥१७३॥

^३एमेवट्ठावीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।

पक्खित्ते तह चेव य भंगो वि य एत्थ एगो दु ॥१७४॥

भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्त सप्तविंशतितम् । अत्रोच्छ्वासे प्रक्षिप्ते अष्टाविंशतिक नामप्रकृत्युदयस्थानं आनापान-पर्याप्तस्योच्छ्वासपर्याप्ति प्राप्तस्य मुनेरुदयागतं २८ भवति । अत्र भङ्ग एकः १ । अन्तमुद्धर्त्त-कालश्च ॥१७४॥

इसी प्रकार अष्टाईमप्रकृतिक उदयस्थान आनापानपर्याप्तिसे पर्याप्त मनुष्यके उच्छ्वास प्रकृतिके मिलाने पर होता है । यहाँ पर भी भङ्ग एक ही होता है ॥१७४॥

^१ एमेऊणत्तीसं भासापज्जत्तयस्स सुस्सरयं ।

पक्खिविय एयभंगो सव्वे भंगा दु चत्तारि ॥१७५॥

भगो १ सव्वे ४ ।

एवं पूर्वोक्तमष्टाविंशतिकम् । तत्र सुस्वर क्षिप्त्वा प्रक्षिप्य एकोनविंशत्क नामप्रकृत्युदयस्थानं आपा-पर्याप्ति प्राप्तस्याहारकोदये मुनेरुदयागतं २९ भवति । अत्र भङ्ग एकः । विशेषमनुष्ये एकस्मिन् भङ्गाश्चत्वारः । २५ । २७ । २८ । २९ ॥१७५॥

इसी प्रकार उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान आपापर्याप्तिसे संयुक्त मनुष्यके सुस्वर प्रकृतिके मिला देनेपर होता है । यहाँपर भी एक ही भङ्ग होता है । इस प्रकार आहारकप्रकृतिके उदय-वाले जीवके चारो उदयस्थानोंके सर्व भङ्ग चार ही होते हैं ॥१७५॥

अब तीर्थंकर प्रकृतिके उदयवाले मनुष्यके उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^२ तित्थयर सह सजोई एकत्तीसं तु जाण मणुयगई ।

पंचिंदिय ओरालं तेया कम्मं च वण्णचट्ठं ॥१७६॥

समचउरं ओरालिय अंगोवंगं च वज्जरिसहं च ।

अगुरुलघुचट्ठं तसचट्ठं थिराथिरं तह पसत्थगदी ॥१७७॥

सुभमसुभ सुहय सुस्सर जस णिमिणादेज्ज तित्थयरं ।

वासपुधत्त जहण्णं उक्कस्सं पुव्वकोडिदेसणं ॥१७८॥

तीर्थंकरप्रकृत्युदयसहितसयोगकेवलिनः एकत्रिंशत्क स्थान जानीहि भो मय्य त्वम् । किं तत् ? मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ औदारिक-तैजस-कामर्णशरीराणि १ वर्णचतुष्क ४ समचतुरस्रसंस्थान १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वज्रवृषभनाराचसहननं १ अगुरुलघूपधातपरधातोच्छ्वासचतुष्टय ४ त्रस-वादर-पर्याप्त-प्रायेकचतुष्क ४ स्थिरास्थिरं २ प्रशस्तविहायोगति १ शुभं १ अशुभं १ सुभग १ सुस्वर १ यशःकीर्त्ति-निर्माणे द्वे २ आदेय १ तीर्थंकरत्वं १ चेति एक- [त्रिंशत्कं स्थान तीर्थंकरप्रकृत्युदयसहितसयोगकेवलिन उदयागतं भवति । अस्योदयस्थानस्य जघन्या स्थितिः वर्षपृथक्त्वम् उत्कृष्टा च देशोना पूव-कोटी] ॥१७६-१७८॥

तीर्थंकरप्रकृतिके उदयके साथ सयोगिकेवलीके इकतीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार जानना चाहिए—मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कामर्णशरीर, वर्ण-चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक-अङ्गोपाङ्ग, वज्रवृषभनाराचसहनन, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपधात, परधात, उच्छ्वास) त्रसचतुष्क (त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर) स्थिर, अस्थिर, प्रशस्तविहायोगति, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, यशःकीर्त्ति, निर्माण, आदेय

नृगतिः पूर्णमादेयं पञ्चाक्षं सुभगं यशः ।

त्रसस्थूलमयोगेऽष्टौ पाके तीर्थकृतो नव ॥६॥

पाके ८ । भङ्गः १ । तीर्थकृता युता ६ । भङ्गः १ । सर्वे केवलिनो भङ्गाः ३ ।

पङ्चविंशतिशतान्युक्त्वा नवाग्राणि नृणां गतौ ।

भङ्गानतः परं वक्ष्ये सयोगे पाकसप्तकम् ॥१०॥

२६०६ ।

उदये विंशतिः सैकषट्सप्ताष्टनवाधिका ।

दशाग्रा चेति विज्ञेयं सयोगे स्थानसप्तकम् ॥११॥

२०।२१।२६।२७।२८।२९।३०

नृगतिः कर्मणं पूर्णं तेजोवर्णचतुष्टयम् ।

पञ्चाक्षाऽगुरुलब्धाश्च शुभस्थिरयुगे यशः ॥१२॥

सुभगं वादरादेये निर्मितं त्रसमिति स्फुटम् ।

उदयं विंशतिर्याति प्रतरे लोकपूरणे ॥१३॥

२०। भङ्गः १।

तत्र प्रतरे समयः १ । लोकपूरणे १ । पुनः प्रतरे १ । इत्थं त्रयः समयाः ३ ।

आद्ये संहनने क्षिप्ते प्रत्येकौदारिकद्वये ।

उपाधाताख्यसंस्थानपट्कैकतरयोरपि ॥१४॥

पाङ्चविंशतमिदं स्थानं कपाटस्थस्य योगिनः ।

संस्थानैकतरैः पङ्क्तिर्भङ्गपट्कमिहोदितम् ॥१५॥

२६। भङ्गाः ६ ।

परधातखगत्यन्यतराभ्यां सहितं मतम् ।

तदाष्टाविंशतं स्थानं योगिनो दण्डयायिनः ॥१६॥

२८ । अत्र द्वादश भङ्गाः ।

तदुच्छ्वासयुतं स्थानमेकोनविंशतं स्मृतम् ।

आनपर्याप्तपर्याप्तेर्भङ्गाः पूर्वनिवेदिताः ॥१७॥

२६।भङ्गाः १२ ।

त्रैशतं पूर्णभापस्य स्वरैकतरसंयुतम् ।

चतुर्विंशति-] रत्रोक्ता भङ्गा भङ्गविशारदैः ॥१८॥

पूर्वोक्तं नवविंशतिकं स्थानं सुस्वर-दु स्वरयोर्मध्ये एकतरेण १ युक्तं त्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं ३० सामान्यसमुदात्तकेवलिनो मापापर्याप्तौ उदयागतं भवति ३० । पूर्वोक्तभङ्गा द्वादश १२ स्वरयुगलेन २ गुणिताश्चतुर्विंशतिभङ्गा भवन्त्यत्र २४ ।

अथ तीर्थङ्करसमुद्घाते नामप्रकृत्युदयस्थानान्याह—

पृथक्तीर्थकृता योगे स्थानानां पञ्चकं परम् ।

प्रथमं तत्र संस्थानं प्रशस्तौ च गतिस्वरौ ॥१९॥

इति तीर्थकृति सयोगे स्थानानि पञ्च—२१।२२।२६।३०।३१। तथाहि—मनुष्यगतिः १ कर्मणं १ पर्याप्तं १ तैजसं १ वर्णचतुष्कं ४ पञ्चेन्द्रिय १ अगुरुलघुकं १ शुभाशुभे २ स्थिरास्थिरे २ यशः १ सुभग १ वादरं १ आदेयं १ निर्माणं १ त्रस १ तीर्थकर्त्तृत्वं १ चेति एकविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं २१ प्रतरे लोकपूरणे च तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलिनः उदयागतं भवति २१ । अत्र भङ्गः १ प्रतरे समयैकः

१. यहाँ तकका कोष्ठान्तर्गत अशः स० पञ्चसंग्रह पृ० १७६-१८० से जोड़ा गया है ।

२. सं० पञ्चसं० ५, २०६ ।

१ लोकपूरणे समयैकः १ पुनः प्रतरे एकसमयः । इत्थ त्रयः समयाः । इदमेकविंशतिकं वज्रवृषभनाराच-
संहननेन संयुक्तं द्वाविंशतिकं स्थानम् २२ । अत्र प्रत्येकशरीरं १ औदारिक तदङ्गोपाङ्गे २ उपघातं १ सम-
चतुरस्रमंस्थान १ परघातं १ प्रशस्तगतिं च प्रक्षिप्य एकोनविंशत्कं २६ स्थानं समुद्घाततीर्थकरकेवलिनः
शरीरपर्याप्तौ उदयागतं भवति । अत्र भङ्ग एकः १ । इदं नवविंशतिकं २६ उच्छ्वासेन संयुक्तं त्रिंशत्कं
स्थानम् ३० उच्छ्वासपर्याप्तौ समुद्घाततीर्थकरकेवलिनः उदयागतं ३० भवति । इदं सस्वरेण संयुक्तं
एकत्रिंशत्कस्थानं ३१ तीर्थकरसयोगकेवलिनः पर्याप्तावुदयागतं भवति । ३१ एकैकेन पञ्चसु भङ्गाः २१ ।
२२।२६।३०।३१ एव सयोगभङ्गाः ६० ।

अत्रैकत्रिंशत्कं स्थानं पञ्चमं पूर्वभाषितम् ।

भङ्गो न पुनरुक्तत्वात्तदीयः परिगृह्यते ॥२०॥

शेषाः ५६ संहैतेस्ते पूर्वोदिताः २६०६ । एतावन्तः २६६८ सर्वे भङ्गाः ॥१८१॥

इति मनुष्यगतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि तदङ्गाश्च समाप्ताः ।

मनुष्यगतिके सर्व भङ्ग नियमसे दो हजार छहसौ नौ (२६०६) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१८१॥

भावार्थ—इक्कीसप्रकृतिक स्थानके भङ्ग ६, छन्वीसप्रकृतिक स्थानके २८६, अट्ठाईसप्रकृतिक स्थानके ५७६, उनतीसप्रकृतिक स्थानके ५७६, तीसप्रकृतिक स्थानके ११५२, इक्कीसप्रकृतिक स्थानके ३ और आहारक शरीरधारी विशेष मनुष्योके ४ ये सब मिलकर २६०६ भङ्ग मनुष्यगति-सम्बन्धी सर्व उदयस्थानोके होते हैं ।

इस प्रकार मनुष्यगति-सम्बन्धी नामकर्मके उदयस्थानोका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब देवगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१इगिवीसं पणुवीसं सत्तावीसद्वीससुगुतीसं ।

एए उदयट्टाणा देवगईसंजुया पंच ॥१८२॥

२१।२५।२७।२८।२९।

अथ देवगतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि गाथादशकेनाह—[‘इगिवीसं पणवीम’ इत्यादि ।] देवगतौ एकविंशतिकं पञ्चविंशतिकं सप्तविंशतिकं अष्टाविंशतिकं नवविंशतिकं च एतानि नामप्रकृत्युदयस्थानानि देवगतिसंयुक्तानि पञ्च भवन्ति ॥१८२॥

२१।२५।२७।२८।२९।

इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान देवगति-संयुक्त होते हैं ॥१८२॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २५, २७, २८, २९ ।

अब उनमेंसे इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

^२तत्थिगिवीसं ठाणं देवदुयं तेय कम्म वण्णचट्ठं ।

अगुरुयल्लहु पंचिदिय तस वायरयं अपज्जत्तं ॥१८३॥

थिरमथिरं सुभमसुभं सुहयं आदेज्जयं च जसणिमिणं ।

विग्गहगईहिं एए एकं वा दो व समयाणि ॥१८४॥

भगो १ ।

1. सं० पञ्चसं० ५, २१० । 2. ५, २११-२१२ ।

१ सं० पञ्चसं० ५, २१० ।

तत्र देवगतौ एकविंशतिकं स्थानम् । किं तत् ? देवगति-देवगत्यानुपूर्व्ये २ तैजस-कर्मणे २ वर्ण-
चतुष्क ४ अगुरुलघु १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रस १ वादरं १ [अ] पर्याप्तं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ सुभगं
१ आदेयं १ यश १ निर्माणं चेति एकविंशतिकं स्थानं २१ विग्रहगतौ कर्मणशरीरे देवस्योदयागतं भवति
२१ । अत्र कालं जघन्येन एकममयः । उक्तुष्टतः द्वौ वा त्रय (?) समयाः । अत्र भद्रं १ ॥१८३-१८४॥

देवगति-सम्बन्धी उदयस्थानोर्मैसे इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—देवद्विक,
तैजसशरीर, कर्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रस, वादर, अपर्याप्त, स्थिर,
अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यश-कीर्ति और निर्माण । इन इक्कीस प्रकृतियोंका उदय
विग्रहगतिमें एक या दो समय तक होता है ॥१८३-१८४॥

इस इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानमें भद्रं १ है ।

१ एमेव य पणुवीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स ।

देवाणुपुत्तिं अवणिय वेउव्वदुगं च उवघायं ॥१८५॥

समचउरं पत्तेयं पक्खित्ते जा सरीरणिप्फत्ती ।

अंतोमुहुत्तकालं जहण्णमुक्कस्सयं च भवे ॥१८६॥

भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्तं एकविंशतिकम् । तत्र नवीनविशेषः—देवगत्यानुपूर्व्यमपनीय वैक्रियिक-तद्रूपोपाङ्गं
उपघातः १ समचतुरस्रसंस्थानं १ प्रत्येक १ एवं प्रकृतिपञ्चकं तत्र प्रक्षेपणीयम् । एवं पञ्चविंशतिकं
नामप्रकृत्युदयस्थानं २० शरीरं गृह्यतो वैक्रियिकशरीर स्वीकुर्वतो देवस्य वैक्रियिकमिध्रे उदयागतं भवति
यावच्छरीरपर्याप्तिः पूर्णतां याति तावत्कालमिदं जघन्योक्तुष्टतोऽन्तर्मुहुत्तकालः । तत्र भद्रं एक
एव १ ॥१८५-१८६॥

इसी प्रकार पञ्चवीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि शरीर
पर्याप्तिको ग्रहण करनेवाले देवके देवानुपूर्विको निकाल करके वैक्रियिकद्विक, उपघात, समचतुरस्र
संस्थान और प्रत्येकशरीर, इन पाँच प्रकृतियोंको मिलाना चाहिए । जब तक शरीरपर्याप्ति
पूर्ण नहीं होती है, तब तक यह उदयस्थान रहता है । इसका जघन्य और उक्तुष्टकाल
अन्तर्मुहुत्तप्रमाण है ॥१८५-१८६॥

२ एमेव सत्तवीसं सरीरपज्जत्तिणिड्डिए णवरि ।

परघाय विहायगई पसत्थयं चेव पक्खित्ते ॥१८७॥

भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्तं पञ्चविंशतिकम् । तत्र परवातं १ प्रशस्तविहायोगतिं १ च प्रक्षिप्य सप्तविंशतिकं
नामप्रकृत्युदयस्थानं २७ शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने सति देव प्रत्युदयागतं भवति । अत्र भद्रं एकः १ ।
कालस्तु अन्तर्मुहुत्तं ॥१८७॥

इसी प्रकार सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थान उक्त देवके शरीरपर्याप्तिके निष्पन्न होनेपर होता
है । विशेष बात यह है कि परवात और प्रशस्तविहायोगति और मिलाना चाहिए ॥१८७॥

सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानमें भद्रं १ है ।

^१एमेवद्वावीसं आणापज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।
उस्सासं पक्खित्ते कालो अंतोमुहुत्तं तु ॥१८८॥
भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्तसप्तविंशतिकम् । तत्रोच्छ्वासं प्रक्षिप्य अष्टाविंशतिकं २८ उच्छ्वासपर्याप्तिं पूर्णं कृते देवे उदयागतं भवति । अत्र कालोऽन्तर्मुहूर्तः । भङ्गस्तु एकः १ ॥१८८॥

इसी प्रकार अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थान उक्त देवके आनापानपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर और उच्छ्वासप्रकृतिके मिलानेपर होता है । इस उदयस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है ॥१८८॥

अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानमें भङ्ग १ है ।

^२एमेव य उगुतीसं भासापज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।
सुस्सरसहियं जहणं दसवाससहस्स किंचूणं ॥१८९॥
भंगो १ ।

^३तेतीससायरोपम किंचूणकस्सयं हवह कालो ।
देवगईए सव्वे उदयवियप्पा वि पंचेव ॥१९०॥
भंगा ५ ।

[एव देवगई समत्ता ।]

एव पूर्वोक्तमष्टाविंशतिकं सुस्वरेण सहितमेकोनविंशत्कं देवस्य हि भाषापर्याप्तिपूर्णे सति उदयागतं भवति । जघन्यकालः दशवर्षसहस्रः किञ्चिन्मयूः पूर्वोक्तविग्रहगत्यादिचतुःकालहीनः । उत्कृष्टकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः किञ्चिद्धीनः पूर्वोक्तचतुःकालहीन इत्यर्थः । अस्य भङ्ग एकः १ । देवगत्यां सर्वे उदय-
विकल्पा भङ्गा पञ्चैव भवन्ति ५ । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ १८९-१९० ॥

इति देवगतौ उदयस्थानानि समाप्तानि ।

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान उक्त देवके भाषापर्याप्तिके सम्पन्न होने और सुस्वर प्रकृतिके मिलानेपर होता है । इस उदयस्थानका जघन्यकाल कुछ कम दश हजार वर्ष और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागरोपम है । इस उदयस्थानमें भी एक ही भङ्ग होता है । इस प्रकार देवगतिमें नामकर्मके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व भङ्ग पाँच ही होते हैं ॥१८९-१९०॥

देवगतिमें $२१ + २५ + २७ + २८ + २९ = ५$ भङ्ग होते हैं ।

अब ग्रन्थकार चारों गतियोंके नामकर्म-सम्बन्धी भङ्गोंका उपसंहार करते हुए इन्द्रियमार्गणादिमें उनके कथन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

^४छावत्तरि एयारह सयाणि णामोदयाणि होंति चउगइया ।

॥७६११॥

गइचउरएसु भणियं इंदियमादीसु उवरि वोच्छामि ॥१९१॥

पट्सप्ततिशतैकादशप्रमिताः नामप्रकृत्युदयभङ्गविकल्पाश्चतसृषु गतिषु चातुर्गतिका भवन्ति सप्तसहस्र-
पट्सप्तैकादशप्रमिताश्चातुर्गतिका भङ्गा भवन्तीत्यर्थः ७६११ । समुदातापेक्षया नामप्रकृत्युदयविकल्पाः ५९

१. सं०पञ्चसं० ५, २१६ । २. ५, २१७ । ३. ५, २१८-२२० । ४. ५, २२१ ।

॥व सहिद- ।

मार्गणासु मध्ये गतिषु भणितम् । अत उपरि इदानीमिन्द्रियादिमार्गणासु नामप्रकृत्युदयस्थानानि वक्ष्यामि ॥ १६१ ॥

चारों गति-सम्बन्धी नामकर्मके उदयस्थानोंके भङ्ग छिहत्तर सौ ग्यारह (७६११) होते हैं । अर्थात् नरकगतिसम्बन्धी ५, देवगतिसम्बन्धी ५, तिर्यग्गतिसम्बन्धी ४६६२ और मनुष्यगति सम्बन्धी २६०६ इन सबको जोड़नेपर उक्त भङ्ग आ जाते हैं । इस प्रकार चारों गतियोंमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करके अब आगे इन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें उनका वर्णन करते हैं ॥१६१॥

पंचेव उदयठाणा सामणोहंदियस्स णायव्वा ।

इगि चंड पण छ सत्त य अधिया वीसा य होइ णायव्वा ॥१६२॥

अवसेससव्वभंगा जाणित्तु जहाकमं णेया ।

२१।२४।२५।२६।२७।

सामान्यैकेन्द्रियस्य नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च भवन्ति । तानि कानि १ एकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ सप्तविंशतिकं २७ चेति ज्ञेयानि । अवशेषान् सर्वान् ज्ञात्वा यथाक्रमं ज्ञेयाः ॥१६२॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा सामान्य एकेन्द्रिय जीवोंके इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस और सत्ताईसप्रकृतिक पाँच उदयस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए । एकेन्द्रियसम्बन्धी इन सर्व उदयस्थानोंके सर्व भङ्ग पूर्वोक्त प्रकार यथाक्रमसे जानना चाहिए ॥१६२॥

एकेन्द्रियोंके नामकर्मसम्बन्धी उदयस्थान—२१, २४, २५, २६, २७ ।

इगिवीसं छब्बीसं अट्ठवीसादि जाव इगितीसं ॥१६३॥

वियलंदियतिगस्सेवं उदयट्ठाणाणि छच्चेव ।

२१।२६।२८।२९।३०।३१।

एकविंशतिकं षड्विंशतिकं अष्टाविंशतिकं नवविंशतिकं त्रिंशत्कमेकत्रिंशत्कं च नामप्रकृत्युदयस्थानानि विकलत्रयेषु षट् भवन्ति ॥१६३॥

२१। २६। २८। २९। ३०। ३१।

तीनों विकलेन्द्रियोंके इक्कीस, छब्बीस और अट्ठाईससे लेकर इकतीस तकके चार इस प्रकार छह उदयस्थान होते हैं ॥१६३॥

विकलेन्द्रियोंके नामकर्मसम्बन्धी उदयस्थान २१, २६, २८, २९, ३०, ३१ ।

चउवीसं वज्जित्ता उदयट्ठाणा दसेव पंचक्खे ॥१६४॥

२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।

पञ्चाक्षे पञ्चेन्द्रिये चतुर्विंशतिकं वर्जयित्वा अपरनामप्रकृत्युदयस्थानानि दश भवन्ति २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । पञ्चेन्द्रियस्योदयागतानि भवन्तीत्यर्थः ॥ १६४ ॥

पंचेन्द्रियोंमें चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानको छोड़कर शेष दशस्थान होने हैं ॥१६४॥

उनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३ ।

काएसु पंचकेसु य उदयट्ठाणाणिगिदिभंगमिव ।

तसकाइएसु णेया विगला सयलंदियाणभंगमिव ॥१६५॥

२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।

पृथिव्यादिकेषु पञ्चकायेषु एकेन्द्रियोक्तभङ्गवत् । पृथ्वीकायिके २१ । २४ । २५ । २६ । २७ ।
अष्कायिके २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । आतपोद्योतोदयरहितयोस्तेजोवातकायिकयोः प्रत्येकं २१ । २४ ।
२५ । २६ । वनस्पतिकायिके २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । त्रसकायिकेषु विकल-सकलेन्द्रियोक्तनामोद-
यस्थानानि २१ । २५ । २६ २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ६ । ८ ॥ १६५ ॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा पाँचो स्थावरकायिकोंमें एकेन्द्रियोके समान उदयस्थान होते हैं ।
त्रसकायिक जीवोंमें विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीवोंके समान नामकर्मके उदयस्थान जानना
चाहिए ॥१६५॥

पृथ्वी, अप् और वनस्पति कायिकोंमें २१, २४, २५, २६, २७ । तेज-वायुकायिकोंमें २१,
२४, २५, २६ । त्रसकायिक जीवोंके उदयस्थान—२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ६, ८ ।

चतु-तिय मण-वचिए पंचिंदियसंज्ञिपञ्जत्तभंगमिव ।

असच्चमोसवचिए तसपञ्जत्तयउदयट्ठाणभंगमिव ॥१६६॥

सत्यासत्योभयानुभयमनोयोगचतुष्क-सत्यासत्योभयवचनयोगत्रिकेषु पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तोक्तभङ्गवत्
२६।३०।३१ । न सत्यमृपावचने अनुभयभाषायोगे त्रसपर्याप्तोदयस्थानकरचनावत् २६।३०।३१ ॥१६६॥

योगमार्गणाकी अपेक्षा सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, इन चार मनोयोगमें तथा सत्य,
असत्य, उभय, इन तीन वचनयोगोंमें पंचेन्द्रियसंज्ञी पर्याप्तके समान उनतीस, तीस और
इकतीसप्रकृतिक तीन उदयस्थान जानना चाहिए । असत्यमृपावचनयोगमें त्रसपर्याप्तकोके समान
उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं ॥१६६॥

ओरालियकाययोगे तसपञ्जत्तभंगमिव ।

ओरालियमिस्सकम्मे उदयट्ठाणाणि जाणिदव्वाणि ॥१६७॥

सत्तेव य.अपञ्जत्ता सणियपञ्जत्तभंगमिव ।

वेउव्वियकायदुगे देवाणं णारयाण भंगमिव ॥१६८॥

औदारिकाययोगे त्रसपर्याप्तभङ्गवदुदयस्थानानि २५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । औदारिक-
मिश्रकाययोगे अपर्याप्तजीवसमाप्तोक्तसंज्ञिपर्याप्तभङ्गवदुदयस्थानानि ज्ञातव्यानि २४।२६।२७ । कर्मण-
काययोगविग्रहगतौ इदं एकविंशतिकं २१ । केवलिसमुद्भाते प्रतरद्वये लोकपूरणे इदं विंशतिकं स्थानम् २० ।
वैक्रियिककाययोगद्विके देवगति-नरकगतिकार्थितोदयस्थानानि । देववैक्रियिककाययोगे २७।२८।२९ । देव-
वैक्रियिकमिश्रकाययोगे उदयस्थान २५ । नारकवैक्रियिककाययोगे २७।२८।२९ । तन्मिश्रकाय-
योगे २५ ॥१६७-१६८॥

औदारिकाययोगमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस,
उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक सात उदयस्थान होते हैं । औदारिकमिश्रकाययोगमें सातों
अपर्याप्त जीवसमाप्तोके समान चौबीस, छव्वीस और सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं ।
कर्मणकाययोगमें विग्रहगति-सम्बन्धी इक्कीसप्रकृतिक एक उदयस्थान जानना चाहिए । वैक्रियिक-
काययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें देव और नारकियोंके उदयस्थानोंके समान उदयस्थान
जानना चाहिए ॥१६७-१६८॥

विशेषार्थ—देवगतिसम्बन्धी वैक्रियिककाययोगमें सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृ-
तिक तीन उदयस्थान होते हैं । तथा इन्हींके वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें पच्चीसप्रकृतिक एक उदय-

स्थान होता है। नरकगति-सम्बन्धी वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे भी देव-सम्बन्धी उदयस्थान होते हैं, किन्तु उनकी उदय-प्रकृतियोंमे अन्तर पड़ जाता है, सो स्वयं विचार लेना चाहिए।

आहारदुगे णियमा पमत्त इव सव्वट्ठाणाणि ।

थी-पुरिसवेयगेसु य पंचिदिय-उदयठाणभंगमिव ॥१६९॥

णउंसए पुण एवं वेदे ओघवियप्पा य होंति णायव्वा ।

उदयट्ठाण कसाए ओघभंगमिव होइ णायव्वं ॥२००॥

आहारकद्विके प्रमत्तोक्तोदयस्थानानि । किन्तु आहारककाययोगे २७।२८।२९। आहारकमिश्रकाय-योगे २५ उदयस्थानम् । स्त्री-पुरुषवेदयो पञ्चेन्द्रियोक्तोदयस्थानभङ्गरचनावत् । किन्तु पुवेदे उदयस्थानानि २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । स्त्रीवेदे नामप्रकृत्युदयस्थानानि २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । नपुंसकवेदे गुणस्थानोक्तोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति । क्रोध-मान-माया-लोभकपायेषु ओघभङ्गमिव गुणस्थानोक्तोदयस्थानानि । किन्तु २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३० ॥१६९-२००॥

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमे प्रमत्तगुणस्थानके समान उदयस्थान जानना चाहिए । अर्थात् आहारककाययोगमे सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक तीन उदय-स्थान होते हैं । तथा आहारकमिश्रकाययोगमे पच्चीसप्रकृतिक एक उदयस्थान होता है । वेद-मार्गणाकी अपेक्षा स्त्रीवेद और पुरुषवेदमे पंचेन्द्रियोंके समान उदयस्थान जानना चाहिए । अर्थात् इक्कीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक आठ-आठ उदयस्थान होते हैं । नपुंसक वेदमें इसी प्रकार ओघविकल्प जानना चाहिए । अर्थात् इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं कपायमार्गणाकी अपेक्षा चारों कपायोमे ओघके समान इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक और आठ उदयस्थान जानना चाहिए ॥१६९-२००॥

मइ-सुय-अण्णाणेषु य मिच्छा-सासणट्ठाणभंगमिव ।

अवसेसं णाणाणं सण्णपज्जत्तभंगमिव जाणिज्जो ॥२०१॥

कुमति-कुश्रुतयोर्मिथ्यात्व-सासादनोक्तोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ अवशेष-ज्ञानाना सन्निपर्याप्तोक्तोदयस्थानानि जानीयात् । किन्तु विभङ्गज्ञाने नामप्रकृत्युदयस्थानानि २९।३०।३१ । मति-श्रुतावधिज्ञानेषु नामोदयस्थानानि २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । मनःपर्यये ज्ञाने ३० । केवलज्ञाने २०।२१।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२ ॥२०१॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा कुमति और कुश्रुतज्ञानमे मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानके समान इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं । शेष छह ज्ञानोके उदयस्थान संज्ञी पर्याप्तक पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिए ॥२०१॥

विशेषार्थ—विभङ्गज्ञानमे उनतीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं । मति, श्रुत और अवधिज्ञानके इक्कीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक आठ उदयस्थान होते हैं । मनःपर्ययज्ञानमें तीसप्रकृतिक एक ही उदय-स्थान होता है । केवलज्ञानमे इकतीस, नौ और आठ प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं । यहाँ

इतनां विशेष ज्ञातव्य है कि जिन आचार्योंके मतसे सभी केवलज्ञानी केवलिसमुद्धात करते हुए सिद्ध होते हैं, उनके मतानुसार केवलिसमुद्धातमें सम्भव अपर्याप्त दशाकी अपेक्षा बीस, इक्कीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक उदयस्थान भी बतलाये गये हैं। परन्तु प्राकृत पंचमंग्रहकारको यह मत अभीष्ट नहीं रहा है, अतएव उन्होंने इन उदयस्थानों को नहीं बतलाया, जब कि संस्कृत पंचसंग्रहकारने उन्हें बतलाया है।

असंजमे तहा ठाणं णेयं मिच्छाइचउसु गुणट्ठाणमिव ।

दसविरए च भंगा णेया तससंजमे चेव ॥२०२॥

अवसेससंजमट्ठाणं पमत्ताइगुणट्ठाणमिव ।

संयममार्गणायां त्रससंयमे मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतगुणस्थानोक्तं ज्ञेयम् । किन्तु असंयमे उदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। त्रससंयमे देशसंयमे देशविरतोक्तभङ्गरचना ज्ञेया । किन्तु उदयस्थानद्वयम् २ । अवशेष-संयमस्थानेषु प्रमत्तादिगुणस्थानोक्तोदयस्थानानि । किन्तु सामायिकछेदो-पस्थापनयोः २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । परिहारविशुद्धिसंयमे त्रिशक्मेकस्थानम् ३० । सूक्ष्मसाम्पराये ३० । यथाख्याते २० । २१ । २४ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ६ । ८ । ॥२०२३॥

संयममार्गणाकी अपेक्षा असंयममें मिथ्यात्व आदि चार गुणस्थानोंके समान उदयस्थान जानना चाहिए । अर्थात् असंयममें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इसतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं । त्रससंयम अर्थात् देशसंयममें देश-विरत गुणस्थानके समान तीस और इक्कीस प्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं । अवशेष संयमोंके उदयस्थान प्रमत्तादिगुणस्थानोंके उदयस्थानके समान जानना चाहिए ॥२०२३॥

विशेषार्थ—सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पाँच उदयस्थान होते हैं । परिहार विशुद्धि और सूक्ष्म साम्पराय संयममें तीस प्रकृतिक एक-एक ही उदयस्थान होता है । यथाख्यातसंयममें तीस, इक्कीस, नौ और आठ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं । किन्तु सभी केवलज्ञानियोंके केवलिसमुद्धात माननेवाले आचार्योंके मतकी अपेक्षा बीस, इक्कीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इक्कीस, नौ और आठ प्रकृतिक दश उदयस्थान पाये जाते हैं ।

अचक्षुस्स ओघभंगो चक्षुस्स य चउ-पंचिदियसमं णेयं ॥२०३॥

दर्शनमार्गणायां अचक्षुर्दर्शने गुणस्थानोक्तवत् २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। चक्षुर्दर्शने चतुः-पञ्चेन्द्रियोक्तसदृशं ज्ञेयम् । किन्तु २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति ॥२०३॥

दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा अचक्षुदर्शनके उदयस्थान ओघके समान और चक्षुदर्शनके उदयस्थान चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजीवोंके समान जानना चाहिए ॥२०३॥

विशेषार्थ—अचक्षुदर्शनमें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इक्कीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं । चक्षुदर्शनमें इक्कीस, पच्चीस; छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और एकतीस प्रकृतिक आठ उदयस्थान होते हैं, इनमें प्रकृति-सम्बन्धी जो अन्तर होता है, वह ज्ञातव्य है ।

ओधियं केवलदंसे ओधिय-केवलणाणमिव ।

तेजप्पउ मासुक्के सण्णी पंचिदियभंगमिव ॥२०४॥

अवधिदर्शने केवलदर्शने अवधि-केवलदर्शनोक्तमिव । अवधिदर्शने २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । केवलदर्शने २० । २१ । २६ । २७ । २८ । ३० । ३१ । ६ । ८ । लेख्यमार्गणायां कृष्ण-नील कापोतलेख्यात्रिके नामोदयस्थानानि २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । तेज पद्मशुक्लेषु सज्जिपक्षेन्द्रियोक्तोदयस्थानानि । किन्तु तेजलेख्याया २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । पद्मलेख्याया २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । शुक्ललेख्यायां २० । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ॥ २०४ ॥

अवधिदर्शनमे अवधिज्ञानियोंके समान और केवलदर्शनमें केवलज्ञानियोंके समान उदयस्थान होते हैं । लेख्यमार्गणाकी अपेक्षा तेज, पद्म और शुक्ललेख्यामे संज्ञी पंचेन्द्रियजीवके समान उदयस्थान जानना चाहिए ॥२०४॥

विशेषार्थ—संक्षिप्त या सुगम कथन होनेसे ग्रन्थकारने तीनों अशुभ लेख्याओके उदयस्थान नहीं कहे हैं । उन्हें इस प्रकार जानना चाहिए—कृष्ण, नील और कापोतलेख्यामें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छत्तीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं । तेज पद्म और शुक्ललेख्यामे उक्त नौ स्थानोंमेंसे चौबीस और छत्तीस प्रकृतिक उदयस्थानको छोड़कर शेष सात उदयस्थान होते हैं । तथा केवलसमुद्घातकी अपेक्षा बीसप्रकृतिक उदयस्थान भी होता है ।

भविष्यु ओघभंगो अभविण मिच्छाहृदिभंगमिव ।

मिच्छा-सासण-मिस्से सय-सयगुणठाणभंगमिव ॥२०५॥

उवसमसम्मत्तादी सय-सयगुणमिव हवन्ति त्ति ।

सण्णिस्स ओघभंगो असण्णि मिच्छोघभंगमिव ॥२०६॥

आहार ओघभंगो अणाहारे चउसु ठाण कम्ममिव ।

अवसेसविहिविसेसा जाणिचु जहाकमं णेया ॥२०७॥

अव्ये गुणस्थानोक्तवत् २० । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ६ । ८ । अभव्ये मिथ्यादृष्टिविकल्प इव । किन्तु २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । मिथ्यात्व-सासादन-मिश्रेषु स्वकीय-स्वकीयगुणस्थानोक्तवत् । मिथ्यादृष्टौ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । मासादनरुचौ २१ । २४ । २५ । २६ । २९ । ३० । ३१ । मिश्ररुचौ उदयस्थानानि २९ । ३० । ३१ । स्वकीय-स्वकीयगुणस्थानोक्तवत् उपशमसम्यग्वादयो भवन्ति । किन्तु उपशमसम्यग्दृष्टौ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । वेदकमस्यग्दृष्टौ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सायिक-सम्यग्दृष्टौ २० । २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ६ । ८ । सज्जिनः गुणस्थानोक्तमिव २१ । २४ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । असंज्जिनि मिथ्यात्वोक्तवत् २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । 'आहार ओघभंगो' आहारके गुणस्थानोक्तवत् । किन्तु एकविंशतिकमुदय स्थान नास्ति २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । अनाहारके चतुर्गुणस्थानेषु कार्मणोक्त-स्थानानि २० । २१ । ६ । ८ । तत्रानाहारे अयोगिनः उदये नवकाष्टके द्वे भवतः । सामान्यकेवलिनः प्रतर्लोकपूरणे उदयो विंशतिक २० । विग्रहगतौ २१ । तथा तीर्थङ्करे सयोगिनि प्रतर्लोकपूरणे २१ । अव-शेषविधिविगेपान् ज्ञात्वा यथाक्रमं ज्ञेयमिति ॥२०५-२०७॥

अथ पूर्वोक्तनामप्रकृत्युदयस्थानानां विग्रहगत्यादिकालमाधित्योत्पत्तिक्रमः कथ्यते—तैजस-कार्मणे २ वर्णचतुष्क ४ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ अगुरुलघुक १ निर्माण १ चेति द्वादश प्रकृतयः सर्वनामप्रकृत्युदय-स्थानेषु युवा निश्चला भवन्ति । नामध्रुवोदया द्वादश १२ । चतर्गतिषु एकतरा गतिः १ पञ्चसु जातिषु एक-तरा जातिः १ त्रस स्थावरयोर्मध्ये एकतर १ वादर-सूचमयोर्मध्ये एकतर १ पर्याप्तापर्याप्तयोर्मध्ये एकतर १

सुमग-दुर्भगयोर्मध्ये एकतरं १ आदेयानादेययोर्मध्ये एकतरं १ यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरं १ चतुरानुपूर्व्येषु मध्ये एकतरं १ इत्येकविंशतिकं स्थान २१ चातुर्गतिकानां विग्रहगतौ कार्मणशरीरे भवति । तदानुपूर्व्य-युतत्वाद्विग्रहगतवेवोदेति । तदानुपूर्व्यमपनीयौदारिकादित्रिशरीरेषु एकं शरीरं १ षट्संस्थानेषु एकं स्थानम् १ प्रत्येक-साधारणयोर्मध्ये एकतरं १ उपघातं १ इति प्रकृतिचतुष्कं विंशतिके युत चतुर्विंशतिकं स्थानम् २४ । इदमेकेन्द्रियाणां शरीरमिश्रे योगे एवोदेति, नान्यत्र । पुनः एकेन्द्रियस्य शरीरपर्याप्तौ तत्र चतुर्विंशतिके परधानयुते इदं २५ । वा विशेषमनुष्यस्याऽऽहारकशरीरमिश्रकाले तदङ्गोपांगे युते इदं २५ । वा देव-नारकयोः शरीरमिश्रकाले वैक्रियिकाङ्गोपांगे युते इदं २५ । पुनः एकेन्द्रियस्य पञ्चविंशतिके तच्छरीरपर्याप्तौ आतपे उद्योते वा युते इदं २६ । वा तत्सैवैकेन्द्रियस्योच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तौ उच्छ्वासे युते इदं २६ । वा चतुर्विंशतिके द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणां सामान्यमनुष्यस्य निरतिशयकेवलिकपाटद्वयस्य च औदारिकमिश्रकाले तदङ्गोपाङ्गसंहनने युते इदं २६ । पुनश्चतुर्विंशतिके प्रमत्तस्य शरीरपर्याप्तौ आहारकाङ्गोपाङ्ग-परघात-प्रशस्तविहायोगतिषु युतासु इदं २७ । तत्केवलपटुविंशतिक कपाटद्वयस्यौदारिकमिश्रे तीर्थयुते इदं २७ । चतुर्विंशतिके देव-नारकयोः शरीरपर्याप्तौ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग-परघाताऽविरुद्धविहायोगतिषु युतासु इदं २७ । वा तत्रैवैकेन्द्रियस्योच्छ्वासपर्याप्तौ परघाते आतपोद्योतके तस्मिन्नुच्छ्वासे च युते इदं २७ । पुनस्तत्रैव सामान्यमनुष्यस्य मूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातसामान्यकेवलिनः द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणां च शरीरपर्याप्तौ अङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघाताऽविरुद्धविहायोगतिषु युतासु इदं २८ । वा प्राप्ताऽऽहारकद्वैततच्छरीरोच्छ्वासपर्याप्त्योस्तदङ्गोपाङ्ग-परघात-प्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेषु इदं २८ । वा देव नारकयो-रुच्छ्वासपर्याप्तौ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग परघाताऽविरुद्धविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेषु इदं २८ । पुनस्तत्सामान्य-मनुष्याष्टाविंशतिके तस्य च मूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातसामान्यकेवलिनश्चोच्छ्वासपर्याप्तौ उच्छ्वासयुते इदं २९ । वा तच्चतुर्विंशतिके द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणां शरीरपर्याप्तौ उद्योतेन समं अङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघात-विहायोगतिषु युतासु इदं २९ । वा समुद्घातकेवलिनः शरीरपर्याप्तौ अङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघात-प्रशस्त-विहायोगति-तीर्थेषु युतेषु इदं २९ । वा प्रमत्तस्याहारकशरीर-भापापर्याप्त्योस्तदङ्गोपाङ्ग-परघात-प्रशस्त-विहायोगत्युच्छ्वास स्वशरीरेषु युतेषु इदं २९ । वा देव नारकयोः भापापर्याप्तौ अविरुद्धैकस्वरेण युते इदं २९ । पुनस्तत्रैव द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणामुच्छ्वासपर्याप्ताद्युद्योतेन समं सामान्यमनुष्य-सकल-विकलानां भापापर्याप्तौ स्वरद्वयान्यतरेण समं चाङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघात-विहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेषु इदं ३० । वा समुद्घाततीर्थङ्करकेवलिन उच्छ्वासपर्याप्तौ तीर्थेन समं सामान्यसमुद्घातकेवलिनो भापापर्याप्तौ स्वरद्वयान्य-तरेण समं चाङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघात-प्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेषु इदं ३० । पुनस्तत्सयोगकेवलि-स्थाने भापापर्याप्तौ तीर्थयुते इदं ३१ । वा चतुर्विंशतिके द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणां भापापर्याप्तौ अङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघातोद्योत-विहायोगत्युच्छ्वास-स्वरद्वयान्यतरेषु युतेषु इदं ३१* ।

विग्रहगतौ कार्मणशरीरे एकेन्द्रियाणां २१ स्थानमुदेति । शरीरमिश्रे २४, २५ । शरीरपर्याप्तौ २६ । २७ । उच्छ्वासपर्याप्तौ २६ उदयागतं भवति । देव-नारकयोः विग्रहगतौ कार्मणे २१ । २१ । वैक्रियिक-मिश्रे २५ । २५ वैक्रियिकशरीरपर्याप्तौ २७ । २७ । आनापानपर्याप्तौ २८ । २८ । भापापर्याप्तौ २९ । २९ उदयागतानि भवन्ति । द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रिय-तिरश्चां विग्रहगति [तौ] कार्मणे २१ औदारिकमिश्रे २६ शरीरपर्याप्तौ २७ उदेति । उच्छ्वासपर्याप्तौ २९, ३० भापापर्याप्तौ ३० । ३१ उदयागतानि । सामान्यमनुष्ये विग्रहगतौ कार्मणे २१ औदारिकमिश्रे २६ शरीरपर्याप्तौ २८ आनापानपर्याप्तौ २९ भापापर्याप्तौ ३० उदया-गतानि । सामान्यकेवलिन कार्मणशरीरे प्रतरद्वये लोकपूरणे २० औदारिकमिश्रकाययोगे २६ शरीरपर्याप्तौ २८ उच्छ्वासपर्याप्तौ २९ भापापर्याप्तौ ३० उदयस्थानानि । तीर्थङ्करकेवलिन । प्रतरद्वये लोकपूरणे च कार्मणे २१ औदारिकमिश्रे २७ शरीरपर्याप्तौ २९ उच्छ्वासपर्याप्तौ ३० भापापर्याप्तौ ३१ । आहारकविशेषमनुष्ये आहारकमिश्रे २५ आहारकशरीरपर्याप्तौ २७ उच्छ्वासपर्याप्तौ २८ भापापर्याप्तौ २९ ।

* उपरितनोऽयं सन्दर्भः गो० कर्मकाण्डस्य गाथाङ्क ५६३-५६४ तमटीकया शब्दशः समानः ।

(पृ० ७६५-७६६)

चातुर्गतिकजीवेषु नामप्रकृत्युदयस्थानयन्त्रम्—

	एकेन्द्रिये	देवे	नारके	द्वीन्द्रियादौ	सामान्य- मनुष्ये	सामान्य- केवलिनि	तीर्थङ्करे	आहारक- मनुष्ये
विग्रहगतौ कार्मणे	२१	२१	२१	२१	२१	२०	२१	०
शरीरमिश्रपर्याप्तौ	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२७	२५
	२४							
शरीरपर्याप्तौ	२६	२७	२७	२६, २८	२८	२८	२६	२७
आनपर्याप्तौ	२७, २६	२८	२८	३०, २६	२६	२६	३०	२८
भाषापर्याप्तौ	०	२६	२६	३१, ३०	३०	३०	३१	२६

इति नामप्रकृत्युदयस्थानानि मार्गणासु समाप्तानि ।

भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्यजीवोंमें ओघके समान सभी उदयस्थान जानना चाहिए । अभव्योंमें मिथ्यादृष्टिके समान नौ और आठ प्रकृतिक उदयस्थानोंको छोड़कर शेष नौ उदयस्थान होते हैं । सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें अपने-अपने गुणस्थानोंके समान उदयस्थान जानना चाहिए । तथा उपशमसम्यक्त्व आदिमें भी अपने-अपने संभव गुणस्थानोंके समान उदयस्थान होते हैं । संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञीके ओघके समान सभी उदयस्थान होते हैं । असंज्ञीके मिथ्यात्वगुणस्थानके समान भंग जानना चाहिए । आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारकोके ओघके समान भङ्ग जानना चाहिए । अनाहारकोमें कार्मण-काययोगके समान चार गुणस्थानोंमें संभव उदयस्थान जानना चाहिए । इसके अतिरिक्त जो अवशिष्ट विधिविशेष है, वह आगमके अनुसार यथाक्रमसे जान लेना चाहिए ॥२०५-२०७॥

अब मूलसप्ततिकाकार नामकर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २३] ^१ति-दु-इगिणउदिं णउदिं अड-चउ-दुगाहियमसीदिमसीदिं च ।उणसीदिं अट्टत्तरि सत्तत्तरि दस य णव संता^१ ॥२०८॥

६३।६२।६१।६०।८८।८२।८०।७६।७८।७७।१०।६।

अथ नामप्रकृतिसत्त्वस्थानप्रकरण गाथाद्वादशकेनाऽऽह—[‘ति-दु-इगिणउदिं’ इत्यादि ।] त्रिनवतिः ६३ द्वानवतिः ६२ एकनवतिः ६१ नवतिः ६० अष्टाशीतिः ८८ चतुरशीतिः ८४ द्वाशीतिः ८२ अशीतिः ८० एकोनाशीतिः ७६ अष्टसप्ततिः ७८ सप्तसप्ततिः ७७ दश १० नव ९ च प्रकृतयः नामकर्मसत्त्वस्थानानि त्रयोदश भवन्ति ॥२०८॥

६३।६२।६१।६०।८८।८२।८०।७६।७८।७७।१०।६।

नामकर्मके तेरानवै, बानवै, इक्यानवै, नव्वै, अठासी, चौरासी, बियासी, अस्सी, उन्यासी, अट्टहत्तर, सत्तहत्तर, दश और नौ प्रकृतिक तेरह सत्त्वस्थान होते हैं ॥२०८॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७, १०, ९ ।

अब भाष्यगाथाकार क्रमशः इन सत्त्वस्थानोंकी प्रकृतियोंका वर्णन करते हैं—

^२गइआदियतित्थंते सव्वपयडीउ संत तेणउदिं ।

वज्जित्ता तित्थयरं वाणउदिं होंति संताणि ॥२०९॥

६३।६२।

१. सं० पञ्चसं० ५, २२२-२२३ । २. ५, २२४ ।

१. सप्ततिका २६ । तत्रेद्वक् पाठः—

तिदुनउई उगुनउई अट्टच्छलसी असीइ उगुसीई ।

अट्ट य छप्पणत्तरि नव अट्ट य नामसत्ताणि ॥

तेषामुपपत्तिमाह—[‘गृहभादित्यतिथंते’ इत्यादि।] गत्यादि-तीर्थान्ताः सर्वप्रकृतयः गति ४ जाति ५ शरीरा ५ झोपाङ्ग ३ निर्माण १ बन्धन ५ संघात ५ संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्श ८ रस ५ गन्ध २ वर्णा ५ नुपूर्व्याऽ ४ गुरुलघू १ पघात १ परघाता १ तपो १ द्योतो १ च्छ्वास १ विहायोगतयः २ प्रत्येक-शरीर २ त्रस २ सुभग २ सुस्वर २ शुभ २ सूचम २ पर्याप्ति २ स्थिराऽऽ देय २ यशःकीर्त्ति २ सेतराणि तीर्थकरत्वं १ चेति सर्वनामप्रकृतयः त्रिनवतिः । इति प्रथमसत्त्वस्थानं ६३ भवति । तन्मध्यात्तीर्थकरत्वं वर्जयित्वाऽन्याः द्वावनवतिः प्रकृतयः, इति द्वितीयसत्त्वस्थानं ६२ भवति ॥२०६॥

६३।६२।

गतिनामकर्मको आदि लेकरके तीर्थकर प्रकृतिपर्यन्त नामकर्मकी जो तेरानवै प्रकृतियाँ हैं, उन सबका जहाँ सत्त्व पाया जावे, वह तेरानवै प्रकृतिकसत्त्वस्थान है इसमेंसे तीर्थकरप्रकृतिको छोड़ देनेपर बानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है ॥२०६॥

६३ तेरानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थान सर्वप्रकृतियों । तीर्थकर विना ६२ ।

तेणउदीसंतादो आहारदुअं वज्जिदूण इगिणउदी ।

आहारय-तित्थयरं वज्जित्ता वा हवंति णउदिसंताणि ॥२१०॥

६१।६०।

त्रिनवतिकसत्त्वादाहारकद्वयं वर्जयित्वा एकनवतिकं सत्त्वस्थानं ६१ भवति । तथा त्रिनवतिक-प्रकृतिसत्त्वतः आहारकद्वय तीर्थकरत्वं च वर्जयित्वा नवतिकं सत्त्वस्थानं ६० भवति ॥२१०॥

६१।६०

तेरानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमेंसे आहारकशरीर और आहारक-अंगोपांग, इन दोके निकाल देनेपर इक्यानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है । तथा उसी तेरानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें से तीर्थकर और आहारकद्विक; इन तीन प्रकृतियोंके निकाल देनेपर नववैप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है ॥२१०॥

आहारकद्विक विना ६१ । तीर्थकर और आहारकद्विक विना ६० ।

णउदीसंतेसु तहा देवदुगुव्विल्लिदे य अडसीदिं ।

णिरयचदुं उव्वेल्लिदे य चउरासी दीय संतपयडीओ ॥२११॥

८८।८४।

नवतिसत्त्वप्रकृतिषु ६० देवगति-देवगत्यानुपूर्व्यद्वये उद्वेल्लिते अष्टाशीतिकं सत्त्वस्थान भवति ८८ । अतः नारकचतुष्के उद्वेल्लिते चतुरशीतिकं सत्त्वप्रकृतिस्थान ८४ भवति ॥२११॥

८८।८४ ।

नववैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें से देवद्विक अर्थात् देवगति और देवगत्यानुपूर्वी इन दो प्रकृतियोंके उद्वेलन करनेपर अठासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है । तथा इसी अठासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान-मेंसे नरकचतुष्क अर्थात् नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक-अंगोपांग, इन चार प्रकृतियोंकी उद्वेलना करनेपर चौरासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है ॥२११॥

देवद्विक विना ८८ । नरकचतुष्क विना ८४ ।

मणुयदुयं उव्वेल्लिए वासीदी चेव संतपयडीओ ।

तेणउदीसंताओ तेरसमवणिज्ज णवमखवगाई ॥२१२॥

८२।८०

चतुरशीतिके मनुष्यद्वयमुद्बलिते द्वयशीतिः सत्त्वप्रकृतयः द्वयशीतिक सत्त्वस्थान तिर्यक्षु भवति । कुतः ? तैजस्कायिकवातकायिकयोः मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयस्योद्बलना भवतीति ८२ । त्रिनवति-सत्त्वस्थानात् ६३ त्रयोदशप्रकृतीरपनीय अनिवृत्तिकरणो मुनिः क्षपकः क्षपयति क्षय कृत्वाऽनन्तर नवमानि-वृत्तिकरणगुणस्थानादिषु पञ्चसु क्षपकश्रेणिषु अशीतिक सत्त्वस्थान ८० भवति ॥२१२॥

८२।८० ।

चौरासीप्रकृतिक सत्त्वस्थानमेसे मनुष्यद्विक अर्थात् मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दो प्रकृतियोंकी उद्बलना करनेपर वियासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है । तेरानवैप्रकृतियोंके सत्त्वस्थानमेसे तिर्यग्विक, मनुष्यद्विक, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, उद्योत, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म और साधारण इन तेरह प्रकृतियोंके निकाल देनेपर अस्सीप्रकृतिक सत्त्व-स्थान नवमगुणस्थानवर्त्ती क्षपक आदि उपरिम पाँच गुणस्थानवर्त्ती जीवोंके होता है ॥२१२॥

८४ मेंसे मनुष्यद्विकके विना ८२ । ६३ मेसे तेरहके विना ८० ।

^१आसीदि होइ संता विय-इगि-णउदी य ऊणिया चेव ।

तेरसमवणिय सेसं णवहुसत्तुत्तरा य सत्तरिया ॥२१३॥

अणियट्ठिखवगाइसु पचसु ७६।७८।७७ ।

अनिवृत्तिकरणादिषु पञ्चसु क्षपकश्रेणिषु अशीतिक सत्त्वस्थानं भवति ८० । तीर्थो न द्विनवतिक ६२ आहारकद्वयरहितमेकनवतिक ६१ तीर्थकराऽऽहारकद्वयहीन नवतिकं ६० च तत्त्रयेषु क्रमेण वक्ष्यमाणं प्रकृतित्रयोदशक अपनीय क्षपयित्वा शेषैकान्नाशीतिकं ७६ अष्टासप्ततिक ७८ सप्तसप्ततिक ७७ स्थान अनिवृत्तिकरणक्षपकादिषु पञ्चसु ७६।७८।७७ । तथाहि—अनिवृत्तिकरणस्य क्षपकश्रेणौ ८०।७६।७८।७७ । सूक्ष्मसाम्परायस्य क्षपकश्रेणौ ८०।७६।७८।७७ । क्षीणकपायस्य क्षपकश्रेणौ ८०।७६।७८।७७ । सयोगे ८०।७६।७८।७७ । अयोगस्योपान्त्यसमये ८०।७६।७८।७७ ॥२१३॥

वानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमेसे उपर्युक्त तेरह प्रकृतियोंके निकाल देनेपर उन्नासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है । इक्यानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमेसे उन्हीं तेरह प्रकृतियोंके कम कर देनेपर अठहत्तरप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है । नववैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमे से उन्हीं तेरह प्रकृतियोंके कम कर देनेपर सतहत्तरप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है ॥२१३॥

६२मेसे १३ के विना ७६ । ६१ मेसे १३ के विना ७८ । ६० मेसे १३ के विना ७७ ये तीनों सत्त्वस्थान अनिवृत्तिक्षपकादि पाँच गुणस्थानोमे होते हैं ।

^२इगि-वियलिंदियजाई णिरिय-तिरिक्खगइ आयउज्जोवं ।

थावर सुहुमं च तहा साहारण-णिरिय-तिरियाणुपुव्वी य ॥२१४॥

एए तेरह पयडी पंचसु अणियट्ठिखवगाई ।

अजोगिचरमसमए दस णव ठाणाणि होंति णायव्वा ॥२१५॥

१०।६।

ताः कास्त्रयोदश प्रकृतय इति चेदाऽऽह—[‘इगि-वियलिंदियजाई’ इत्यादि ।] एकेन्द्रियविकलत्रय-जातयः ४ नरकगति १ तिर्यगगतिः १ आतपोद्योतद्वय २ स्थावरं १ सूक्ष्म १ साधारणं १ नरकगत्यानुपूर्व्यं १ तिर्यगगत्यानुपूर्व्यं १ चेति १३ एतास्त्रयोदशप्रकृतीरनिवृत्तिकरणक्षपकः क्षपयति । क्षय कृत्वाऽनन्तरं अनिवृत्तिकरणक्षपक-सूक्ष्मसाम्परायक्षपक-क्षीणकपायक्षपक-सयोगायोगिद्विचरमसमयपर्यन्त अशीतिकादीनि

सत्त्वस्थानानि चत्वारि ८०।७६।७८।७७ । अयोगिचरमसमये दशकं सत्त्वस्थानं १० नवकं सत्त्वस्थानं ६ च द्वे भवत इति ज्ञातव्यं भवति ॥२१४-२१५॥

१०।६ ।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, नरकगति, तिर्यग्गति, आतप; उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, नरकानुपूर्वी और तिर्यगानुपूर्वी, इन तेरह प्रकृतियोंका विनाश अनिवृत्तिकरण क्षपक करता है । अतएव अनिवृत्तिकक्षपकसे आदि लेकर अयोगिकेवलीके द्विचरम-समयपर्यन्त अस्सी आदि चार सत्त्वस्थान होते हैं । दश और नव प्रकृतिक सत्त्वस्थान अयोगिकेवलीके चरम समयसे जानना चाहिए ॥२१४-२१५॥

मणुयदुयं पंचिंदिय तस वायर सुहय पञ्जत्तं ।

आएज्जं जसकित्ती तिथयरं होंति दस एया ॥२१६॥

किं तदाऽऽह-['मणुयदुयं पंचिंदिय' इत्यादि ।] मनुष्यगति-मनुष्यगत्यापूर्व्यद्वयं २ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ वादरं १ सुभगं १ पर्याप्तं १ आदेयं १ यशःकीर्त्तिः १ तीर्थकरत्वं १ चेति नामकृतिसत्त्वस्थानं दशकं १० अयोगिचरमसमये भवति । एतत्तीर्थकरत्वं विना नामप्रकृतिसत्त्वस्थानं नवकं ६ भवति ॥२१६॥

दशप्रकृतिक सत्त्वस्थानसे मनुष्यद्विक, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, वादर, सुभग, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्त्ति और तीर्थकर, ये दश प्रकृतियों होती हैं । (इनसे तीर्थङ्करप्रकृतिके विना शेष नौ प्रकृतियों नौप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें पाई जाती हैं) ॥२१६॥

अथ गुणस्थानोंमें उक्त सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

अट्ठसु असंजयाइसु चत्तारि हवंति आइसंताणि ।

तेणउदीरहियाइं मिच्छे छच्चेव पढमसंताणि ॥२१७॥

२अविरदाइसु अट्ठसु उवस्तेसु ६३।६२।६१।६०। मिच्छे ६२।६१।६०।८८।८७।८६।

अथ गुणस्थानेषु नामसत्त्वस्थानानि योजयति-['अट्ठसु असंजयाइसु' इत्यादि ।] अविरत-सम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकपायान्तेषु अष्टसु चत्वारि आदिमसत्त्वस्थानानि भवन्ति ६३।६२।६१।६०। तथाहि— असंयतसम्यग्दृष्टौ प्रथमं त्रिनवतिकं ६३ सत्त्वस्थानम्, तीर्थोर्न द्वितीयं द्विनवतिकं ६२ सत्त्वस्थानम्, आहारकद्वयरहितमेकनवतिकं ६१ तृतीयसत्त्वस्थानम्, तीर्थाऽऽहारकत्रिकरहितं चतुर्थं नवतिकं ६० स्थानम् । एवमष्टसु ज्ञेयम् । देशसंयमे ६३।६२।६१।६० । प्रमत्ते ६३।६२।६१।६० । अप्रमत्ते ६३।६२।६१।६० । अपूर्वकरणस्योपशम-क्षपकश्रेण्याः ६३।६२।६१।६० । अनिवृत्तिकरणस्योपशमश्रेणौ ६३।६०।६१।६० । क्षपक-श्रेणौ ८०।७६।७८।७७ । सूक्ष्मसाम्यरायस्योपशमश्रेण्यां ६३।६२।६१।६० । क्षपकश्रेण्यां ८०।७६।७८।७७ । उपशान्तकपाये ६३।६२।६१।६० । क्षीणकपाये ८०।७६।७८।७७ । सयोगे ८०।७६। ७८।७७ । अयोगिद्विचरम-समये ८०।७६।७८।७७ । अयोगिचरममये १०।६ । मिथ्यादृष्टौ त्रिनवतिकं विना आद्यसत्त्वस्थानानि षट् भवन्ति ६०।६१।६०।८८।८७।८६ । तिर्यग्गतिको मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः देवगति-तदानुपूर्व्यद्वयं उद्वेल्लयति, तदा अष्टाशीतिकं ८८ । तथा नारकचतुष्कमुद्वेल्लयति, तदा चतुरशीतिकं ८४ । तैजस्कायिक-वायुकायिकौ मनुष्यद्विकमुद्वेल्लयतस्तदा द्व्यशीतिकम् ८२ ॥२१७॥

आदिके चार सत्त्वस्थान असंयतसम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थानसे लेकर आठ गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं । तेरानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थानके विना प्रारम्भके छह सत्त्वस्थान मिथ्यात्व गुणस्थानमें होते हैं ॥२१७॥

अविरतादि उपशान्तान्त आठ गुणस्थानोंमे ६३, ६२, ६१, ६०, प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं । मिथ्यात्वमें ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं ।

^१णउदीसंता सादे वाणउदी णउदि होंति मिस्सम्मि ।

वाणउदि णउदि संता अड चट्टु दु अधियमसीदि तिरिएसु ॥२१८॥

^२वाणउदि एगणउदी णउदी णिरए सुरेसु पढमचट्टु ।

वासीदी हीणाइं मणुएसु हवंति सव्वाणि ॥२१९॥

^३सासणे ६० । मिस्से ६२।६० । तिरिएसु ६२।६०।८८।८४।८२ । णिरए ६२।६१।६० । मणुएसु संता १२ । देवेसु ६३।६२।६१।६० ।

पुत्र णामसत्तपरुवणा

सासादनगुणस्थाने नवतिक सत्त्वस्थान ६० भवति । मिश्रगुणस्थाने द्विनवतिकं ६० नवतिकं ६० च सत्त्वस्थानं भवति । कुतः ?

तित्थाहारा जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादिति ।

तत्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवदि^१ ॥२१॥

तीर्थाऽऽहारकयोरुभयेन युतं सत्त्वस्थान ६३ मिथ्यादृष्टौ नास्ति । तीर्थयुतमाहारयुत च नानाजीवापेक्षयास्ति । सासादने नानाजीवापेक्षयाप्याहारक-तीर्थयुतानि न भवन्ति । मिश्रगुणस्थाने तीर्थयुत ६२ न, आहारयुत चास्ति ६०; तत्कर्मसत्त्वजीवाना [तद्] गुणस्थान न सम्भवतीति ।

अथ तिर्यग्गत्यां तिर्यक्षु द्विनवतिक ६२ नवतिक ६० अष्टाशीतिक ८८ चतुरशीतिक ८४ द्व्यशीतिक ८२ चेति पञ्च सत्त्वस्थानानि तिर्यग्गतौ भवन्ति । नरकगत्या द्विनवतिकैकनवतिक-नवतिकानि त्रीणि सत्त्वस्थानानि भवन्ति ६२।६१।६० । देवगत्या प्रथमचतुष्क सत्त्वस्थानकम् । मनुष्यगत्या मनुष्येषु द्व्यशीतिकं विना गेपाणि द्वादश सत्त्वस्थानानि भवन्ति ६३।६२।६१।६०।८८।८४।८०।७६।७८।७७।१०।९ । इति मनुष्यगतौ यथासम्भव गुणस्थानेषु ज्ञातव्यानि ॥२१८-११९॥

पृथ्वीकायिकादिसर्वतिर्यक्षु पञ्च सत्त्वस्थानानि ६२।६०।८८।८४।८२ । भवनत्रयदेवाना ६२।६० । सर्वभोगभूमिजतिर्यट्-मनुष्याणां ६२।६० । अक्षनाद्यधस्तनचतु पृथ्वीनारकाणा च द्वानवतिक ६२ नवतिके ६० द्वे भवतः । सर्वसासादनाना नवतिकमेव ६० ।

१ नरकगत्या नामसत्त्वस्थानानि—

मिथ्या० ६२ ६१ ६०

सासा० ६०

मिश्र० ६२ ६०

अवि० ६२ ६१ ६०

२ तिर्यग्गतौ नामसत्त्वस्थानानि—

मिथ्या० ६२ ६० ८८ ८४ ८२

सासा० ६०

मिश्र० ६२ ६०

३ मनुष्यगतौ नामप्रकृतिसत्त्वस्थानानि—

मि० ६२ ६१ ६० ८८ ८४ ८२

सा० ६०

मि० ६२ ६०

अ० ६३ ६२ ६१ ६०

दे० ६३ ६२ ६१ ६०

प्र० ६३ ६२ ६१ ६०

अप्र० ६३ ६२ ६१ ६०

अपू० ६३ ६२ ६१ ६०

१ स० पञ्चस० ५, २३० । २, ५, २३१ । ३, ५, 'सासने' इत्यादिगद्याशः । (पृ० १८३) ।

१. गो० क० ३३३ ।

अवि०	६२	६०			उपशमश्रेणी	क्षपकश्रेणी
देश०	६२	६०			अनि०	६३ ६२ ६१ ६० ८० ७६ ७८ ७७
४ देवगत्यां नामसत्त्वस्थानानि—					सू०	६३ ६२ ६१ ६० ८० ७६ ७८ ७७
मिथ्या०	६२	६०			उ०	६३ ६२ ६१ ६०
सासा०	६०				क्षी०	८० ७६ ७८ ७७
मिश्र०	६२	६०			स०	८० ७६ ७८ ७७
अवि०	६३	६२	६१	६०	अयो० द्वि०	८० ७६ ७८ ७७
					च०	१० ६

सासादनगुणस्थानमें नब्बैप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। मिश्रगुणस्थानमें बानवै और नब्बै प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं। तिर्यञ्चोंमें बानवै, नब्बै, अट्ठासी, चौरासी और बियासी प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। नारकियोंमें बानवै, इक्यानवै और नब्बै प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं। देवोंमें आदिके चार सत्त्वस्थान होते हैं। मनुष्योंमें बियासीके बिना शेष सर्व सत्त्वस्थान होते हैं ॥२१८-२१९॥

सासादनमें ६०। मिश्रमें ६२, ६०। तिर्यञ्चोंमें ६२, ६०, ८८, ८४, ८२। नारकियोंमें ६२, ६१, ६०। मनुष्योंमें ८२ के बिना शेष १२ देवोंमें ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं।

चारों गतियोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

मनुष्यगतिमें नामसत्त्वस्थान—

नरकगतिमें नामसत्त्वस्थान—

१ मिथ्यात्व ६२ ६१ ६० ८८ ८४ ८२

मि० ६२ ६१ ६०

२ सासादन ६०

सा० ६०

३ मिश्र ६२ ६०

मि० ६२ ६०

४ अविरत ६३ ६२ ६१ ६०

अ० ६२ ६१ ६०

५ देशविरत ६३ ६२ ६१ ६०

तिर्यग्गतिमें नामसत्त्वस्थान—

६ प्रमत्तविरत ६३ ६२ ६१ ६०

मि० ६२ ६० ८८ ८४ ८२

७ अप्रमत्त वि० ६३ ६२ ६१ ६०

सा० ६०

८ अपूर्वकरण ६३ ६२ ६१ ६०

मि० ६२ ६०

अ० ६२ ६०

दे० ६२ ६०

९ अनि० वृ० क० उपशमश्रेणि क्षपकश्रेणि ० ०

६३ ६२ ६१ ६० ८० ७६ ७८ ७७

१० सूक्ष्मसा० ६३ ६२ ६१ ६० ८० ७६ ७८ ७७ ० ०

देवगतिमें नामसत्त्वस्थान—

११ उपशान्त० ६३ ६२ ६१ ६०

मि० ६२ ६०

स० ६०

१२ क्षीणमोह ८० ७६ ७८ ७७

मि० ६२ ६०

१३ सयोगिके० ८० ७६ ७८ ७७

अ० ६३ ६२ ६१ ६०

१४ अयो० द्वि० च० ८० ७६ ७८ ७७

४ १० ६

इस प्रकार नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

ओघेणादेसेण य एत्तो जिह संभवं + विसजे' ॥२२०॥

अद्व चउरद्वीसे णव सत्तुगुतीस तीसम्मि^३ ॥२२१॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है ।

२. सप्ततिका० ३१ ।

अथ भाष्यगाथाकार इसी अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

^१तिय पण छब्बीसेसु वि उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ।

पण संता वाणउदी णउदी अड-चउर वासीदिं ॥२२२॥

^२बंधट्टाणेषु २३।२५।२६ पत्तेयं णवोदयठाणाणि—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । संत-
ट्टाणाणि—६२।६०।८८।८४।८२।

अष्टाविंशतिके-पञ्चविंशतिके-पट् विंशतिकबन्धस्थानेषु उपरिमोभयस्थाने द्वे नवकाष्ठके वर्जयित्वा शेषोदयस्थानानि नव भवन्ति, द्वानवतिक-नवतिकाष्टाशीतिक-चतुरशीतिक-द्वयशीतिकानि पञ्च सत्त्वस्था-
नानि भवन्ति ॥२२२॥

तेईस, पच्चीस और छब्बीसप्रकृतिक बन्धस्थानोंमें उपरिम दो बन्धस्थानोंको छोड़कर आदिके नौ उदयस्थान होते हैं । तथा बानवे, नब्बे, अठासी, चौरासी और बियासीप्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं ॥२२२॥

बन्धस्थान २३, २५, २६ मेसे प्रत्येकमें उदयस्थान ये नौ हैं—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ । तथा सत्त्वस्थान ६२, ६०, ८८, ८४, ८२ ये पाँच-पाँच हैं ।

^३वासीदिं वज्जित्ता चउसंता होंति पुव्वभणिया दु ।

तह सत्तावीसुदए बंधट्टाणाणि ते तिणिण ॥२२३॥

बधे २३।२५।२६ उदये २७ संतट्टाणाणि ६२।६०।८८।८४।

बंधतिर्यं समत्तं ।

अष्टाविंशतिके बन्धे द्वयशीतिकं सत्त्वस्थानं वर्जयित्वा चतुःसत्त्वस्थानानि पूर्वोक्तानि भवन्ति । तु पुनस्तथाग्रे वक्ष्यमाणे सप्तविंशतिके उदयस्थाने द्वयशीतिकं सत्त्वस्थान वर्जयित्वाऽन्यस्थानानि भवन्ति ॥२२३॥

बन्धे २८ उदयस्थानान्यष्टौ २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वस्थानानि चत्वारि ६२।६१। ६०।८८। तानि बन्धस्थानानि त्रीणि २३।२५।२६।

इति बन्धादिक समाप्तम् ।

तथा सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान तो ये पूर्वोक्त तीन ही होते हैं, किन्तु सत्त्वस्थान पूर्वोक्तोंमेंसे बियासीको छोड़कर शेष चार होते हैं ॥२२३॥

२७ प्रकृतिक उदयस्थानमे बन्धस्थान २३, २५, २६ प्रकृतिक तीन, तथा सत्त्वस्थान ६६, ६०, ८८, ८४ प्रकृतिक चार होते हैं ।

इस प्रकार तीन बन्धस्थानोंमे उदय और सत्त्वस्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

^४उवरिमदुयचउवीस य वज्जिय अट्ठुदय अट्ठुवीसम्हि ।

चउ संता वाणउदी इगिणउदि णउदि अट्ठुसीदी य ॥२२४॥

^५बधे २८ । उदये २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ संता ६२।६१।६०।८८ ।

अष्टाविंशतिके बन्धस्थाने उदयं सत्त्व चाऽऽह—[‘उवरिमदुय चउवीस य’ इत्यादि ।] अष्टाविंशतिके बन्धके उपरिमद्विके अन्तिमे द्वे नवकाष्ठके स्थाने चतुर्विंशतिकमेकमिति स्थानत्रयं वर्जयित्वा त्यक्त्वा उदय-
स्थानान्यष्टौ भवन्ति न । द्विनवतिकैकनवतिक-नवतिकाष्टाशीतिकानि चतुःसत्त्वस्थानानि भवन्ति ॥२२४॥

बन्धे २८ उदयस्थानानि २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ सत्त्वस्थानानि ६२।६१।६०।८८ ।

१. सं० पञ्चसं० ५, २३५-२३६ । २. ५, ‘बन्धस्थानेषु’ इत्यादिगद्यभागः । (पृ० १८४) । ३. ५, २३७ । ४. ५, २३८-२३९ । ५. ५, ‘बन्धे २८’ इत्यादिगद्याशः (पृ० १८४) ।

अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें चौबीसप्रकृतिक और अन्तिम दो उदयस्थानोंको छोड़कर आठ उदयस्थान तथा वानवै, इक्यानवै, नव्वै और अठासीप्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥२२४॥

२८ अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक आठ उदयस्थान और ६२, ६१, ६०, ८८ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं ।

अब अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय तथा सत्त्वकी विशिष्ट दशामें जो स्थानविशेष होते हैं, उन्हें दिखलाते हैं—

१ अट्ट चउरट्टवीसे य कमसोदयसंतवंधठाणा दु ।

सामण्णेण य भणिया विसेसदो एत्थ कायव्वो ॥२२५॥

छव्वीसिगिवीसुदया वाणउदी णवदि अट्टवीसे य ।

खाइयसम्मत्ताणं पुण कुरवेसुप्पज्जमाणाणं ॥२२६॥

१ खाइयसम्माइट्टीण णराण वधे २८ उदये २६।२१। सत्ता ६२।६० ।

अष्टाविंशतिके बन्धे क्रमशः अष्टावुदयस्थानानि, चत्वारि सत्त्वस्थानानि सामान्येन भणितानि । अत्र

वं० २३

विशेषतः कर्त्तव्यः । अत्राऽऽद्यत्रिसंयोगे उ० ६ इदम्—तिर्यग्द्विक २ औदारिक-चैजस-कर्मणानि ३ एके-
स० ५

न्द्रियं १ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघुक १ उपघातं १ स्थावरं १ अस्थिरं १ अशुभं १ दुर्भगं १ अभादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ ह्रुण्डकं १ अपर्याप्तं १ वादरयुग्मस्यैकतरं १ साधारणप्रत्येकयोर्मध्ये एकतरं १ चेत्यत्रयोर्विण्णक बन्धस्थानं २३ एकेन्द्रियाऽपर्याप्तयुतत्वाद्देव-नारकेभ्योऽन्ये त्रस-स्थावर-मनुष्य-मिथ्यादृष्टय एव वधन्ति । तत्रैकेन्द्रियादिसर्वतिरक्षां बन्धे २३ एकेन्द्रियापर्याप्तस्योदयस्थानानि नव—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थानं पञ्चकम्—६२।६०।८८।८९।९० । मनुष्येषु कर्मभूमिजानामेव बन्धे २३ एकेन्द्रियालब्धपर्याप्तके उदयस्थानं पञ्चकम्—२१।२६।२८।२९।३० । सत्त्वस्थानचतुष्कम्—६२।६०।८८।

वं० २५

८४ । उ० ६ पञ्चविंशतिकमेकेन्द्रियपर्याप्त-त्रसापर्याप्तयुतत्वात्तिर्यग्मनुष्य-देव-मिथ्यादृष्टय एव वधन्ति ।
स० ५

तत्र सर्वतिरक्षां बन्धे २५ एकेन्द्रियपर्याप्ते त्रसापर्याप्ते उदयस्थाननवकम्—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थान पञ्चकम्—६२।६०।८८।८९।९० । मनुष्यगतौ बन्धे २५ । एकेन्द्रियपर्याप्ते त्रसा-पर्याप्ते उदयस्थानपञ्चकम्—२१।२६।२८।२९।३० । सत्त्वस्थानचतुष्कम्—६२।६०।८८।८९ । देवेषु भवन-त्रय सौधर्मद्वयजानामेकेन्द्रियपर्याप्तयुतमेव बन्धः २५ । उदयस्थानपञ्चकम्—२१।२५।२७।२८।२९ । सत्त्व-

वं० २६

स्थानद्वयम्—६२।६० । उ० ६ षड्विंशतिकं २६ एकेन्द्रियपर्याप्तोद्योतातपान्यतरयुतत्वात्तिर्यग्-मनुष्य
स० ५

देवमिथ्यादृष्टय एव वधन्ति । तच्चापि तेजो-वायु-साधारण सूक्ष्मापर्याप्तेषु तदुदये एव न बन्धः, तत्तिरक्षां बन्धः । उदयः—आत० १ उद्यो० स्थाननवकम्—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थान-पञ्चकम् ६२।६०।८८।८९।९० । तन्मनुष्याणां बन्धः २६ । आ० उ० उदयस्थानपञ्चकम्—२१।२६।२८।२९।३० । सत्त्वस्थानचतुष्कम्—६२।६०।८८।८९ । भवनत्रय-सौधर्मद्वयजानां बन्धः २६ । ए० प० आत० उद्यो० उदयस्थानपञ्चकम्—२१।२५।२७।२८।२९ । सत्त्वस्थानद्वयम् ६२।६० ।

1. ५, २४०-२४१ । 2. ५, 'बन्धे २८' इत्यादिगद्याशः । (पृ० १८५)"

वं० २८

उ० ८ अष्टाविंशतिकं नरक-देवगतियुतत्वादसंज्ञितिर्यक्-कर्ममूमिनुष्याणाम् । एवं विग्रहगति-
स० ५

शरीरमिश्रकाला व (?) तस्यापर्याप्तशरीरकाले एव बध्नन्ति । तत्तिरश्चां मिथ्यादृष्टेः बन्ध एव २८ । नरक-
देवयुतं उदयस्थानचतुष्कम्—२८।२६।३०।३१ । सत्त्वस्थानत्रयम्—६२।६०।८८ । तत्सासादनस्य बन्धः
२८ । देवे उदयद्वय ३०।३१ । सत्त्वमेकं ६० । मिश्रे बन्धः २८ देवे उदयः ३०।३१ । सत्त्वं ६२।६० ।
असंयतस्य बन्धः २८ देवे उदयः २१।२६।२८।२६।३०।३१ । सत्त्वद्वयम्—६२।६० । देशसंयतस्य बन्धः
२८ देवयुतं उदयस्थानद्वयम् ३०।३१ । सत्त्वं ६२।६० । द्व्यशीतिकं हि तत्सत्त्वयुततेजोवायुभ्यां पञ्चे-
न्द्रियेषूपपन्नानां विग्रहगति-शरीरमिश्रकालयोस्तिर्यग्गतियुत-त्रिं २३ पञ्च २५ षट् २६ नव २६ दशा ३०
अविंशतिकानि बध्नन्तां सम्भवन्ति । मनुष्यद्विकयुतं पञ्च २५ नव २६ विंशतिके बध्नन्तां न सम्भवति ।
चतुरशीतिकं च एक-विकलेन्द्रियभवे नारकचतुष्कमुद्भूतं पञ्चेन्द्रियपर्याप्तेषूपपन्नानां तस्मिन्नेव कालद्वये
सम्भवति । ततोऽस्मिन् अष्टाविंशतिकबन्धकाले तयोः सत्त्वं नोक्तम् । मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेः बन्धः २८ । नारक-
देवयुतं उदयस्थानत्रिकम्—२८।२६।३० । सत्त्वस्थानचतुष्कं ६२।६१।६०।८८ । सासादनस्य बन्धः २८ ।
देवयुतं उदयस्थानमेकं ३० । सत्त्वं ६० । मिश्रस्य बन्धः २८ । देवे उदयः ३० । सत्त्वं ६२।६० ।
असंयतस्य बन्धः २८ । देवयुतं उदयस्थानं पञ्चकम्—२१।२६।२८।२६।३० । सत्त्वस्थानद्वयम्—६२।६० ।
नात्रैकनवतिकसत्त्वम्, प्रारब्धतीर्थबन्धस्यान्यत्र बद्धनरकायुष्कात् । सम्यक्त्वप्रच्युतिर्नेति तीर्थबन्धस्य नैरन्त-
र्यात्, अष्टाविंशतिकाबन्धात् । देशसंयतस्य बन्धः २८ । देवे उदयस्थानमेकम् ३० । सत्त्वस्थानद्वयं
६२।६० । प्रमत्तस्य बन्धः २८ । देवयुतं उदयस्थानपञ्चकम्—२५।२७।२८।२६।३० । सत्त्वस्थानद्वयं ६२।
६० । अप्रमत्तस्य बन्धः २८ देवयुतम् । उदयस्थानमेकं ३० । सत्त्वस्थानद्वयम्—६२।६० । अपूर्वकरणस्य
बन्धः २८ देवयुत । उदयस्थानं ३० । सत्त्वद्वय ६२।६० । ॥२२५॥

अष्टाविंशतिकबन्धस्य विशेषं गार्थकेनाऽऽह—[‘छन्वीसिगिवीसुदया’ इत्यादि ।] कुरुवर्षोत्पन्नाना-
मुत्तमभोगभूमिजानां क्षायिकसम्यग्दृष्टिमनुष्याणामष्टाविंशतिके बन्धे २८ षड्विंशतिकमेकविंशतिकं चोदय-
स्थानद्वयं २६।२१ । द्वानवतिक-नवतिकसत्त्वस्थानद्वयं भवति । बन्धे २८ । उदये २६।२१ । सत्त्वे ६२।६० ।
तद्यथा—उत्तमभोगभूमिपूष्यमोनानां क्षायिकसम्यग्दृष्टिमनुष्याणां विग्रहगतौ सत्यां एकविंशतिकं नाम-
प्रकृत्युदयस्थानमुदयागतं भवति तदा ते देवगतियुतमष्टाविंशतिकं बन्धस्थानं बध्नन्तीत्यर्थः । तथा तेपा-
मौदारिकमिश्रकाले षड्विंशतिकं स्थानमुदयागतं, तदा ते देवगतियुतमष्टाविंशतिकं बध्नन्ति । तदा तेषां
तत्सत्त्वस्थानद्वयं सम्भवतीत्यर्थः ॥२२६॥

अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें क्रमशः आठ उदयस्थानों और चार सत्त्वस्थानोंका सामान्यसे वर्णन किया । अब यहाँपर जो कुछ विशेषता है, उसका वर्णन करना चाहिए । वह विशेषता यह है कि अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें इक्कीस और छन्वीसप्रकृतिक उदयस्थान तथा वानवै और नव्वैप्रकृतिक सत्त्वस्थान देवकुरु और उत्तरकुरुमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिक-सम्यक्त्वी मनुष्योंके ही संभव हैं ॥२२५-२२६॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २६ और २१ प्रकृतिक दो उदयस्थान तथा ६२ और ६० प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं ।

अब अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत दूसरी विशेषता बतलाते हैं—

‘पण सत्तावीसुदया वाणउदी संतमडुवीसे य ।

आहारयमुदयते पमत्तविरदे चेव हवे ॥२२७॥

बधे २८ । उदय २५।२७ । संता ६२ ।

प्रमत्तविरते आहारकोदये अष्टाविंशतिकं बन्धे पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकोदयस्थानद्वयं द्वानवतिसत्त्वमेव । तथाहि—प्रमत्तमुनेराहारकशरीरमिश्रकाले पञ्चविंशतिकमुदयागतं २५ तदा ते देवगतियुतमष्टाविंशतिकं स्थानं बन्धमायाति २८ । द्वानवतिसत्त्वमेव ६२ तदा । तथा प्रमत्तस्याहारकशरीरपर्याप्तौ सप्तविंशतिकं २७ स्थानमुदयागतं तदा देवगतियुतमष्टाविंशतिकं २८ बन्धमायाति । तदुक्तसत्त्वमेव ६२ ॥२२७॥

बन्धे २८ । उदये २५।२७ । सत्ता ६२ ।

अष्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे पच्चीस और सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए वानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थान आहारकशरीरके उदयवाले प्रमत्तविरत साधुके ही होता है ॥२२७॥

बन्धस्थान २८ में तथा उदयस्थान २५, २७ में सत्त्वस्थान ६२ ही होता है ।

अब अष्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानसम्बन्धी तीसरी विशेषता बतलाते हैं

^२उगुतीस अट्टवीसा वाणउदि णउदि अट्टवीसे य ।

आहारसंतकम्मे अविरयसम्मे पमत्तिदरे ॥२२८॥

बन्धे २८ । उदए २६।२८ । सते ६२।६० ।

आहारकसत्त्वकर्मण्यविरतसम्यग्दष्टौ अप्रमत्ते च अष्टाविंशतिकं बन्धे एकोनत्रिंशत्कं अष्टाविंशतिकं च [उदये] द्विनवतिकं नवतिकं च [सत्त्वं] भवति । तथा—आहारकसत्त्वस्याविरतसम्यग्दष्टेः आहारक-सत्त्वस्याप्रमत्तस्य च नवविंशतिकमुदयागतस्थानं २६ अष्टाविंशतिकमुदयागत २८ च, तदाष्टाविंशतिक-देवगतियुतस्थानं बन्धमायातीत्यर्थः २८ । तदा सत्त्वद्वयस्थानं ६२।६० । बन्धः २८ । उदये २६।२८ । सत्ताया ६२।६०॥२२८॥

अष्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे उनतीस और अष्टाईसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए वानवै और नववैप्रकृतिक सत्त्वस्थान आहारकप्रकृतिके सत्त्ववाले अविरतसम्यक्त्वी और संयतके होते हैं ॥२२८॥

बन्धस्थान २८ में तथा उदयस्थान २६ और २८ में सत्त्वस्थान ६२ और ६० होते हैं ।

अब अष्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वसम्बन्धी चौथी विशेषता कहते हैं—

^३वाणउदि-णउदिसंता तीसुदयं अट्टवीसबंधेषु ।

मिच्छाइसु णायव्वा विरयाविरयंतजीवेसु ॥२२९॥

बन्धे २८ । उदए ३० । सते ६२।६० ।

मिथ्यादृष्ट्यादि-विरताविरतपर्यन्तजीवेषु । कथम्भूतेषु ? अष्टाविंशतिक २८ स्थानबन्धकेषु द्वानवतिसत्त्व-नवतिसत्त्वद्वयस्थान ६२।६० । त्रिंशत्कमुदयस्थानं च ज्ञातव्यम् ॥२२९॥

बन्धे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ६२।६० ।

अष्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानोमे तथा तीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए वानवै और नववैप्रकृतिक सत्त्वस्थान मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर संयतासंयतगुणस्थान तकके जीवोमे पाये जाते हैं ॥२२९॥

अब अष्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत पाँचवीं विशेषता बतलाते हैं—

^४तह अट्टवीसबंधे तीसुदए संतमेकणउदी य ।

तित्थयरसंतयाणं वि-तिखिदिसुप्पज्जमाणं ॥२३०॥

बन्धे २८ । उदए ३० । सते ६१ ।

तीर्थङ्करसत्त्वानां द्वि-त्रिनरकक्षित्युत्पद्यमानानां अष्टाविंशतिके २८ बन्धे त्रिंशत्कोदये ३० एकनवतिक-
सत्त्वं ६१ भवति । तथाहि—प्राग्बद्धनरकायुष्कर्मभूमिजमनुष्याणां त्रिंशन्नामप्रकृत्युदयप्राप्तानां उपशम-
सम्यक्त्व वेदकसम्यक्त्व वा प्राप्तानां केवलिपादमूले तीर्थङ्करप्रकृतिं बद्ध्वा सत्त्वकृतानां नरकगतियुतमष्टा-
विंशतिकं बन्धप्रकृतिस्थानं बद्ध्वा द्वितीय-तृतीययोर्वशा-मेवयोरुत्पद्यमानानां नारकानां आहारकद्वयं विना
तीर्थङ्करयुतमेकनवतिकं सत्त्वस्थानं ६१ भवति । अत्राष्टाविंशतिके तीर्थबन्धो न । कुतः ? प्रारब्धतीर्थ-
बन्धानां बद्धनरकायुष्कात् । सम्यक्त्वप्रच्युतिर्नेति तीर्थबन्धस्य नैरन्तर्यादष्टाविंशतिकावन्वात् ॥२३०॥

अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें तथा तीसप्रकृतिक उदयस्थानमें इक्यानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थान
तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तासे युक्त और दूसरी-तीसरी नारकभूमिमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके
होता है ॥२३०॥

बन्धस्थान २८ में तथा उदयस्थान ३० में सत्त्वस्थान ६१ होता है ।

अब उसी बन्धस्थानकी छठी विशेषता बतलाते हैं—

^१अडसीदिं पुण संता तीसुदए अट्टवीसबंधेसु ।

सामित्तं जाणिज्जो तिरिय-मणुए मिच्छजीवाणं ॥२३१॥

बंधे २८ उदए ३० संते ८८ ।

तिर्यङ्मनुष्यमिथ्यादृष्टिजीवानामष्टाविंशतिकबन्धके स्वामित्वं जानीहि । त्रिंशत्कोदये अष्टाशीतिकं
सत्त्वम् । तथाहि—मिथ्यादृष्टिपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो वा मिथ्यादृष्टिमनुष्या कथम्भूताः पर्यासाः त्रिंशन्नामकर्म-
प्रकृत्युदयभुज्यमानाः अष्टाशीतिनामप्रकृतिसत्त्वसहिता नरकगतियुतमष्टाविंशतिकं बध्नन्ति । किं तत् ?
तैजस-कर्मणानुगुरुलघूपधात निर्माण-वर्णचतुष्काणीति ध्रुवप्रकृतयो नव । त्रस १ वादर १ पर्यास १ प्रत्येकाऽ-
१ स्थिराऽ १ शुभ १ दुर्भगाऽ १ नादेयाऽ १ यशस्कीर्ति १ नरकगति १ पञ्चेन्द्रिय १ वैक्रियिकशरीर १
हुण्डकसस्थान १ नरकगत्यानुपूर्वी १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग १ दुःस्वराऽ १ प्रशस्तविहायोगत्यु १ च्छास १ पर-
घातम् १ तदष्टाविंशतिकं नरकगतियुतं २८ मिथ्यादृष्ट्यस्तिर्यङ्मनुष्या बध्नन्तीत्यर्थः ॥२३१॥

बन्धः २८ उदये ३० सत्ता ८८ ॥

अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें तीसप्रकृतिक उदयस्थानमें और अठासीप्रकृतिक सत्त्वस्थानका
स्वामित्व मिथ्यादृष्टि तिर्यच और मनुष्योंके जानना चाहिए ॥२३१॥

बन्धस्थान २८ में उदयस्थान ३० में और सत्त्वस्थान ८८ में यह विशेषता कही ।

अब उपर्युक्त बन्धस्थानमें ही सातवीं विशेषता बतलाते हैं—

^२वाणउदिणउदिसंता इगितीसुदयट्टवीसबंधेसु ।

मिच्छाइसु णायव्वा विरयाविरयंतजीवेसु ॥२३२॥

बंधे २८ । उदए ३१ । संते ६२।६०

मिथ्यादृष्ट्यादि-विरताविरतान्ततिर्यङ्जीवेषु एकत्रिंशत्कोदयागताष्टाविंशतिबन्धकेषु द्वानवतिक-
नवतिकसत्त्वस्थानद्वयं ज्ञातव्यम् । तथाहि—मिथ्यादृष्ट्यादि-देशसयतान्ताः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः एकत्रिंशन्नाम-
प्रकृत्युदयभुज्यमानाः ३१ तीर्थं विना द्वानवतिकाऽऽहारक रहितनवतिक ६० सत्त्वसहिताः देवगतियुत-
मष्टाविंशतियुतं २८ बध्नन्तीत्यर्थः । किं तत् ? नव ध्रुवाः, त्रसं १ वादरं १ पर्यासं १ प्रत्येकं १ स्थिरा-
स्थिरैकतरं १ शुभाशुभैकतरं १ सुभगाऽऽ १ देयं १ यशोऽयशसोरेकतरं १ देवगतिः १ पञ्चेन्द्रियजातिः

१ प्रथमसंस्थान १ देवगत्यानुपूर्व्य १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग १ सुस्वर १ प्रशस्तविहायोगत्यु १ च्छासं १ परघातं १ तद्देवगतियुतमष्टाविंशतिकं २८ मिथ्यादृष्ट्यादिद्वेष्टान्तास्तिर्यङ्गो बध्नन्तीत्यर्थः ॥२३२॥

बन्धे २८ उदये ३१ सत्ता ६२।६०।

अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए वानवै और नव्वै प्रकृतिक सत्त्वस्थान मिथ्यादृष्ट्यादि विरताविरतान्त जीवोंके जानना चाहिए ॥२३२॥

यह बन्धस्थान २८ मे और उदयस्थान ३१ में सत्त्वस्थान ६२ और ६० गत विशेषता है ।

अब उसी बन्धस्थानमें उदय-सत्त्वगत आठवीं विशेषता बतलाते हैं—

^१अडसीदिं पुण संता इगितीसुदयद्वीसबंधेसु ।

सामित्तं जाणिज्जो तेरिच्छियमिच्छजीवाणं ॥२३३॥

बधे २८ उदए ३१ । संते ८८ ।

अट्टावीसबधो समत्तो ।

तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिजीवानामेकत्रिंशत्कोदयाष्टाविंशतिबन्धकेषु स्वामित्वं जानीयात् । पुनः अष्टाशीतिकं सत्त्वस्थान जानीहि । तद्यथा—मिथ्यादृष्टिषड्विंशत्युपपत्त्यास्तिर्यङ्गः एकत्रिंशन्नामप्रकृत्युदयागतमुज्यमाना ३१ अष्टाशीतिकसत्त्वसहिताः नारकयुतमष्टाविंशतिक बन्धस्थान २८ बध्नन्ति । तत्पूर्वं कथितमस्ति ॥२३३॥

बन्धे २८ उदये ३१ सत्ता ८८ ।

इत्यष्टाविंशतिकं बन्धस्थान समाप्तम् ।

अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे एकतीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्टासीप्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामित्व तिर्यङ्ग मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ॥२३३॥

यह बन्धस्थान २८ मे उदयस्थान ३१ में सत्त्वस्थान ८८ गत विशेषता है ।

इस प्रकार अट्टाईसप्रकृतिक बन्धस्थानोमे उदयस्थानो और सत्त्वस्थानोका वर्णन समाप्त हुआ ।

^२उगुतीस तीसबंधे चरिमे दो वज्जिदूण णवबुदये ।

तिगणउदादी णियमा संतट्ठाणाणि सत्तेव ॥२३४॥

बधे २६।३०। पत्तेयं उदया णव—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त सत्तट्ठाणाणि—६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६।

अर्थकोनत्रिंशत्कबन्धे २६ त्रिंशत्कबन्धे ३० चोदयसत्त्वस्थानान्याह—[‘उगुतीस-तीसबंधे’ इत्यादि ।] एकोनत्रिंशत्कबन्धे २६ त्रिंशत्कबन्धे ३० च चरमे द्वे नवकाएकस्थाने वर्जयित्वाऽन्यनवोदय-स्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । त्रिनवतिकादीनि सप्त सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ ॥२३४॥

उनतीस और तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमे अन्तिम दो स्थानोको छोड़कर शेष नौ उदयस्थानो के रहते हुए नियमसे तेरानवे आदिक सात सत्त्वस्थान होते हैं ॥२३४॥

बन्धस्थान २६, ३० में से प्रत्येकमे उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ और सत्तास्थान ६३, ६२, ६०, ८८, ८७, ८६ होते हैं ।

^३णव सत्तोदयसंता उगुतीसे तीसबंधठाणेसु ।

सामण्णेण य भणिया विसेसदो एत्थ वत्तव्वो ॥२३५॥

एकोनत्रिंशत्कवन्धस्थाने २६ नवोदयस्थानानि ६ सप्त सत्त्वस्थानानि ७ । त्रिंशत्कवन्धस्थाने ३० नवोदयस्थानानि ६ सप्त सत्त्वस्थानानि ७ । सामान्येन साधारणेन भणितानि । इदानीं विशेषतोऽत्र द्वयोर्वक्तव्यानि ॥२३५॥

व० २६

व० ३०

उ० ६

उ० ६

स० ७

स० ७

इस प्रकार उनतीस और तीसप्रकृतिक वन्धस्थानोंमें नौ उदयस्थान और सात सत्तास्थान सामान्यसे कहे । अब उनमें जो कुछ विशेष वक्तव्य है, उसे कहते हैं ॥२३५॥

उगुतीसबंधगेषु य उदये इगिवीससंततिगिणउदी ।

तिथ्यरबंधसंजुयमणुयाणं विग्गहे होइ ॥२३६॥

बंधे २६ । उदये २१ । सते ६३।६१।

अथैकोनत्रिंशत्कस्य विशेषं गाथासप्तकेनाऽऽह—['उगुतीसबंधगेषु य' इत्यादि ।] तीर्थंकर वन्ध-संयुतमनुष्याणां एकोनत्रिंशत्कवन्धे २६ एकविंशत्युदये २१ सति विग्रहगतौ त्रिनवतिकैकनवतिकसत्त्वस्थान-द्वयं ६३।६१ भवति । तथाहि—ये मनुष्याः असंयतादि-चतुर्गुणस्थानवर्तिनस्तीर्थंकर-देवगतियुतमेकात्र-त्रिंशत्कस्य वन्धं कुर्वन्तः सन्तः मरणं प्राप्तास्ते कर्मणासंयतविग्रहगतिमाश्रिता मनुष्या एकविंशतिक-मुदयभुज्यमानाः सन्तः ध्रुवप्रकृतिनवकं ६ त्रसं १ वादरं १ पर्यासं १ प्रत्येकं १ स्थिरास्थिरैकतरं १ शुभा-शुभैकतरं सुभगाऽ १ देयं १ यशोऽयशसोरेकतरं १ देवगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिकं १ प्रथमसंस्थानं १ देवगत्यानुपूर्वी १ वैक्रियिकाद्गोपाहं १ सुस्वरं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ उच्छ्वासं १ परघातं १ तीर्थंकर १ सहितमेकोनत्रिंशत्कं स्थानं २६ बध्नन्ति । एकविंशतिकभुज्यमाना इति किम् ? तैजस-कर्मणद्वयं २ वर्ण-चतुष्कं ४ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ अगुरुलघुर्क १ निर्माणं १ मिति द्वादश ध्रुवोदयप्रकृतयः १२ । देव-गतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ वादरं १ पर्यासं १ सुभगं १ आदेयं १ यशः १ देवगत्यानुपूर्वी १ एवमेक-विंशतिकं २१ विग्रहगतौ कर्मणकाले विग्रहगतिप्राप्तानामुदयागतं भवति । तदा तेषां सत्त्वस्थानद्वयं तीर्थसत्त्वसहितं ६३।६२ । योऽविरतो वा देशविरतो वा प्रमत्तो वाऽप्रमत्तो वा एतदेकोनत्रिंशत्कं देवगति-तीर्थंकरत्वसहितं २६ बध्नन् कालं कृत्वा वैमानिकदेवगतिं प्रति यायिन् विग्रहगतौ इदमेकविंशतिकस्यो-दयमनुभवति तस्य तीर्थंकरसहितसत्त्वस्थानद्वयं ६३।६१ भवतीत्यर्थः ॥२३६॥

उनतीसप्रकृतिक वन्धस्थानमें इक्कीसप्रकृतिक उदयके रहते हुए तेरानव और इक्यानवै-प्रकृतिक सत्तास्थान तीर्थंकरप्रकृतिके वन्धसंयुक्त मनुष्योंके विग्रहगतिमें होता है ॥२३६॥

वन्धस्थान २६में उदयस्थान २१ के रहते हुए सत्तास्थान ६३।६१ होते हैं ।

विशेषार्थ—जो असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य देवगति और तीर्थंकर प्रकृतिसे युक्त उनतीस प्रकृतिक वन्धस्थानका वन्ध करते हुए मरणको प्राप्त होते हैं, उनके देव-लोकको जाते हुए कर्मणकाययोग और असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके साथ विग्रहगतिमें इक्कीस-प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए तेरानव और इक्यानवै प्रकृतिक सत्तास्थान पाये जाते हैं ।

ते चेव य बंधुदया वाणउदी णउदि संतठाणाणि ।

चउगदिगदेसु जाणे विग्गहमुक्केसु होंति त्ति ॥२३७॥

बंधे २६ । उदये २१ । सते ६३।६०।

चातुर्गतिकजीवानां विग्रहगतिप्राप्तानां तावैव पूर्वोक्तबन्धोदयौ भवतः । एकोनत्रिंशत्कबन्धस्थानं २६ एकविंशतिकमुदयस्थानं च भवति । द्वानवतिक-नवतिकसत्त्वस्थानद्वयं च भवति ६२।६० । तथाहि—
इदं नवविंशतिकं द्वीन्द्रियादिप्रसर्पाप्तेन तिर्यग्गत्या वा मनुष्यगत्या वा युतं २६ चातुर्गतिजा जीवा विग्रहगति प्राप्ता एकविंशत्युदयं प्राप्ता द्वानवति-नवतिसहिताः बध्नन्तीत्यर्थः ॥२३७॥

बन्धः २६ प० वि-ति-च-पं० म० उ० २१ सत्ता ६२।६० ।

उन्हीं पूर्वोक्त उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान और इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए वानवै और नव्वै प्रकृतिक सत्तास्थान विग्रहगतिसे विमुक्त चारों गतियोंके जीवोंके होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२३७॥

बन्धस्थान २६ और उदयस्थान २१ के रहते ६२ व ६० सत्तास्थान विग्रहविमुक्त चातुर्ग-
तिक जीवोंके होता है ।

१ते चेव बंधुदया अड-चउसीदी य विगहे भणिया ।

मणुय-तिरिएसु णियमा वासीदी होदि तिरियम्हि ॥२३८॥

१बन्धे २६ । उदये २१ । मणुय-तिरियाण सते ८८।८४ । तिरियाण संते ८२ ।

मनुष्यगतिजानां तिर्यग्गतिजानां च विग्रहे वक्रगते विग्रहगतौ वा पूर्वोक्तबन्धोदयौ भवतः । बन्धः २६ उदय २१ । अष्टागोतिकचतुरशीतिकसत्त्वद्वयं च भवति ८८।८४ । नरतिर्यक्षु बन्धे २६ उदये २१ सत्त्वे ८८।८४ । तिरश्चा विग्रहगतौ तौ द्वौ बन्धोदयौ द्वयशीतिकसत्त्वस्थानं ८२ नियमाद् भवति ॥२३८॥

तिर्यक्षु बन्धे २६ उदये २१ सत्त्वे ८२ ।

उन्हीं उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान और इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठासी और चौरासीप्रकृतिक सत्तास्थान विग्रहगतिको प्राप्त तिर्यञ्च और मनुष्योंमें कहे गये हैं । किन्तु वियासी-
प्रकृतिक सत्तास्थान नियमसे तिर्यञ्चमें ही पाया जाता है ॥२३८॥

बन्धस्थान २६ और उदयस्थान २१ में सत्तास्थान ८८, ८४ मनुष्य-तिर्यञ्चोंके होता है ।
किन्तु ८२ सत्तास्थान तिर्यञ्चोंके ही होता है ।

१बंधं तं चेव उदयं चउवीसं णउदि होंति वाणउदी ।

एहंदियऽपज्जत्ते अड चउ वासीदि संता दु ॥२३९॥

एहंदियअपज्जत्ते बंधे २६ उदये २१ । सते ६२।६०।८८।८४।८२ ।

एकेन्द्रियापर्याप्तानां चतुर्विंशतिनामप्रकृत्युदये सति २४ तदेव नवविंशतिकं बन्धस्थानं द्वीन्द्रियादि-
प्रसर्पाप्तेन तिर्यग्गत्या वा मनुष्यगत्या वा युतं २६ बन्धमायाति, एकेन्द्रियापर्याप्तको बध्नातीत्यर्थः । तदा
तेषां मत्त्वं किमिति ? द्वानवतिक ६२ नवतिक ६० अष्टागोतिक ८८ द्वयशीतिक ८२ च भवति ॥२३९॥

एसी उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें चौवीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए वानवै, नव्वै,
अट्ठासी, चौरासी और वियासीप्रकृतिक पाँच सत्तास्थान एकेन्द्रिय अपर्याप्तके होते हैं ॥२३९॥

एकेन्द्रिय अपर्याप्तमें बन्धस्थान २६ उदयस्थान २४ और सत्तास्थान ६२, ६०, ८८, ८४,
८२ होते हैं ।

१बंधं तं चेव उदयं पणुवीसं संत सत्तु हेट्ठिमया ।

जह संभवेण जाणे चउगइपज्जत्तमिदराणं ॥२४०॥

अपज्जत्तेसु बन्धे २६ उदये २५ सते ६३।६२।६१।६०।८८।८४।८२ ।

1. सं० पञ्चसं ५, २५४ । 2. ५, 'नर-तिर्यक्षु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १८७) । 3. ५, २५५ ।

4. ५, २५६-२५७ ।

चातुर्गतिकानां अपर्याप्तकाले शरीरमिश्रकाले तदेवैकोनत्रिंशत्कं २६ स्थानं बन्धं याति । पञ्चविंशति-
कोदयागते २५ तदाऽधस्थितसत्त्वस्थानानि सप्त यथासम्भवं जानीहि । किन्तु तिर्यग्गत्यां त्रिनवतिकैकनवति-
कसत्त्वं नास्ति । तदुक्तञ्च—

परं भवति तिर्यक्तु त्र्येकाग्रे नवती विना ।

प्रजायन्ते न तिर्यञ्चः सत्त्व तीर्थकृतो यतः^१ ॥२२॥ इति ॥२४०॥

अपर्याप्तेषु शरीरमिश्रकाले बन्धे २६ उदये २५ सत्त्वे ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ ।

उसी उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें पञ्चीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अधस्तन सात
सत्तास्थान यथासंभव चारो गतियोंके अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए ॥२४०॥

चातुर्गतिक अपर्याप्तोंके बन्ध २६ और उदय २५ में सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८८,
८७, ८६ यथासंभव पाये जाते हैं ।

^१तीसादो एगूणं छव्वीसं अंतिमा दु उदयादु ।

संता सत्तादिल्ला ऊणत्तीसाण बंधंति ॥२४१॥

बधे २६ । जहसंभवं^४ उदये ३०।२६।२८।२७।२६। संते ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ ।

अन्तिमादुदयात्रिंशत्कादेकैकोनं पट्विंशतिकान्त ३०।२६।२८।२७।२६ । आदिमाः सत्ताः सप्त सत्त्व-
स्थानानि ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ एकोनत्रिंशत्कबन्धस्थाने २६ भवन्ति । तथाहि—चातुर्गतिक-
जीवानां एकोनत्रिंशत्कबन्धे सति २६ पट्विंशतिकं २६ सप्तविंशतिका २७ षट्त्रिंशतिक २८ एकोनत्रिंशतिक
२६ त्रिंशत्का ३० न्युदयस्थानानि यथासम्भवं सम्भवन्ति । तथा तद्वन्धके २६ यथासम्भवं त्रि-द्वि-एक-
नवति-नवत्यष्टाशीति-चतुरशीति-द्वयशीतिसत्त्वस्थानानि सम्भवन्ति ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ । अथ
तत्तदुदये तत्तत्सत्त्वे च तद्वन्धो जायते । तिर्यग्गत्यां त्रिनवतिकं एकनवतिकं च न सम्भवति ॥२४१॥

तीसप्रकृतिक अन्तिम उदयस्थानको आदि लेकर एक-एक कम करते हुए छव्वीसप्रकृतिक
उदयस्थान तकके स्थानवाले और आदिके सात सत्तास्थानवाले जीव उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान
को बँधते हैं ॥२४१॥

बन्धस्थान २६ में यथासंभव ३०, २६, २८, २७, २६ प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए
सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६ होते हैं ।

^२वा चदु अट्ठासीदि य णउदी वाणउदि संतठाणाणि ।

ऊणत्तीसं बंधंति य तिरि एकत्तीस उदए दु ॥२४२॥

बधे २६ । उदये ३१ संते ८२।८१।८०।७९।७८ ।

इदि एगूणत्तीसबंधो समत्तो

तिरश्चां तिर्यग्गतौ एकोनत्रिंशत्कबन्धे २६ एकत्रिंशत्नामप्रकृतिस्थानमुदयमायाति । तथा तेषां द्वय-
शीतिक ८२ चतुरशीतिक ८१ अष्टाशीतिक ८० नवतिक ७९ द्वावनवतिक ७८ सत्त्वस्थानानि सम्भवन्ति
यथासम्भवम् ॥२४२॥

बन्धे २६ उदये ३१ सत्त्वे ६२।६०।८८।८७।८६ ।

१. सं० पञ्चसं० ५, २५८ । २. ५, २५६ ।

१. सं० पञ्चसं० ५, २५८ ।

अथ संभवे ।

तथा नवविंशतिकवन्धे उदय-सत्त्वस्थानानि यथासम्भवेन बालबोधाय प्रतिपाद्यते—नवविंशतिकं नाम प्रकृतिवन्धस्थान द्वीन्द्रियादि-त्रसपर्याप्तेन तिर्यग्गत्या वा मनुष्यगत्या वा देवतीर्थेन वा युतत्वाच्चतु-र्गतिजा बध्नन्ति । २६ प० वि-ति-च ड० पच० म० दे० ती० । तत्र नारकमिथ्यादृशां बन्ध० २६ प० ति० म० । उदय० २१।२५।२७।२८। सत्त्व० ६२।६१।६०। अत्रैकनवतिक घर्मादित्रयापर्याप्तेष्वेव सम्भवति । सासादनस्य बन्धः २६ प० ति० म० । उदय० २६ । सत्त्व० ९० । मिश्रस्य बन्धः २६ म० । ड० २६ । म० ६३।६०। अर्जयतस्य घर्मायां बन्धः २६ मनु० । उद० २१।२५।२७।२८। सत्त्व० ६२। ६०। वशा मेघयोः बन्धः २६ म० ड० २६ । स० ६२।६०। अक्षनादिषु बन्धः २६ म० । ड० २६ । स० ६२।६०।

तिर्यग्गती मिथ्यादृष्टे बन्धः २६ वि० ति० च० प० मनु० । उद० २१।२४।२५।२६।२७।२८। २९।३०।३१। सत्त्व० ६२।६०।८१।८२। सामादनस्य बन्धः २६ प० ति० म० । उद० २१।२४।२६। ३०। सत्त्व० ६०। नात्र पञ्च-सप्ताष्टनवाप्रविंशतिकोदयः मिश्रादित्रये नास्य बन्धः ।

मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टौ बन्धः २६ वि० ति० च० प० म० । उदय० २१।२६।२८।२९।३०। सत्त्व० ६२।६१।६०।८१। अत्र तेजो-वायूनामनुत्पत्तेर्न द्वयर्गातिकसत्त्वम्, प्राग्बद्धनरकायुः प्रारब्धतीर्थ-बन्धामयतस्य नरकगमनाभिमुखमिथ्यादृष्टिष्वे मनुष्यगतियुत तत्स्थान बध्नत त्रिगत्कोदयेनैकनवतिक-सत्त्वम् । सामादने बन्धः २६ प० ति० म० उद० २१।२६।३० । सत्त्व० ६० । मिश्रे नास्य बन्धः । असंयते बन्धः २६ देव-तीर्थयुतम् । उदय० २१।२६।२८।२९।३०। सत्त्व० ६३।६१। देवे व० २६ देव-तीर्थयुतम् । उद० ३०। सत्त्व० ६३।६१। प्रमत्ते व० २६ दे० ती० । उद० २५।२७।२८।२९।३०। सत्त्व० ६३।६१। अप्रमत्ते व० २६ दे० ती० । उद० ३० स० ६३।६१। अपूर्वकरणे व० २६ दे० ती० । ड० ३०। म० ६३।६१ ।

देवगती भवनत्रयादिमहत्कारांते मिथ्यादृष्टौ सन्निपचेन्द्रिय-पर्याप्ततिर्यग्गत्या मनुष्यगत्या युतमेव बन्ध० २६ प० ति० म० । उद० २१।२५।२७।२८। सत्त्व० ६२।६०। सासादने बन्धः २६ प० ति० म० । उद० २१।२५।२७।२८। सत्त्व० ६०। मिश्रे व० २६ म० । उद० २६। म० ६२।६०। असंयते व० २६ म० । उद० २१।२५।२७।२८। भवनत्रयामयते व० २६ म० । उद० २६ । सत्त्व० ६२।६०। आनताद्युपरिमर्शवेयक्रान्ते मिथ्यादृष्टौ बन्धः २६ म० । उद० २१।२५।२७।२८। स० ६२।६०। सासादने बन्धः २६ म० । उद० २१।२५।२७।२८। सत्त्व० ६० । मिश्रे व० २६ म० । उद० २६ । म० ६३।६० । असंयते व० २६ म० । उद० २१।२५।२७।२८। स० ६२।६०। अनुदिशानुसारासयते बन्धः २६ मनुष्ययुतम् । उद० २१।२५।२७।२८। सत्त्व० ६२।६०।

इत्येकोनविंशतो बन्धः समाप्तः ।

इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए त्रियासी, चौरासी, अष्टासी, नव्वै और बानवै-प्रकृतिक सत्तास्थानवाले तिर्यञ्च उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानको बाँधते हैं ॥२४२॥

बन्धस्थान २६ में उदयस्थान ३१ के रहते हुए सत्तास्थान ६२, ६०, ८८, ८२ होते हैं ।

इस प्रकार उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानको आधार बनाकर उदयस्थान और सत्तास्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें सभब उदयस्थानों और सत्त्वस्थानोंका वर्णन करते हैं—

‘जे ऊणतीसबंधे भणिया खलु उदय-संतठाणाणि ।

ते तीसबंधठाणे णियमा होंति त्ति वोहन्वा ॥२४३॥

1 स० पञ्चम० ५, २६० ।

२ सर्वोऽयमुपरितनसन्दर्भं गो० कर्मकाण्डस्य गाथाङ्क ७४५ तमटीकया सह शब्दशः समानः ।

(पृ० ६००-६०१)

अथ त्रिशत्कस्थानबन्धस्य विशेष गाथासप्तकेनाऽऽह—['जे ऊणतीसवधे' इत्यादि ।] यान्युदय-सत्त्वस्थानान्येकोनत्रिशत्कबन्धे भणितानि, तान्येवोदय-सत्त्वस्थानानि त्रिशत्कबन्धस्थाने भणितानि भवन्तीति ज्ञातव्यानि ॥२४३॥

उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें जो-जो उदयस्थान और सत्तास्थान पहले कहे गये हैं, वे ही नियमसे तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२४३॥

अब यहाँपर जो कुछ विशेषता है उसे कहते हैं—

^१बंधं तं चेवुदयं पणुवीसं संत सत्त ठाणाणि ।

ति इग्गि णउदि देव-णिरए तिरिए वासीदि संता दु ॥२४४॥

वाणउदि णउदिसंता चउगइजीवेसु अट्ट चउसीदि ।

तिरिय-मणुएसु जाणे सन्वे सत्तेव सत्ता दु ॥२४५॥

^२वधे ३०। उदये २५ संते ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६। एएसिं च सत्तसत्तठाणाणं विभागो सुर-णारएसु—६३।६१। तिरिएसु ८२ । चउगइयजीवेसु ६२।६० । मणुय-तिरिएसु ८८।८४।

त्रिशत्कबन्धके सामान्येन तत्त्रिशतो बन्धे ३० पञ्चविंशतिकस्थानोदये २५ सत्त्वस्थानानि सप्त भवन्ति ९३।६२।६१।६०।८८।८७।८६। विशेषतो देवगतौ देवानां नारकगतौ नारकाणां च त्रिशत्कनाम-प्रकृतिबन्धके पञ्चविंशतिकोदयस्थाने २५ त्रिनवतिकैकनवतिकसत्त्वस्थानद्वयं ६३।६१। तिर्यग्गतौ तिर्यञ्चु त्रिशत्कबन्धे ३० पञ्चविंशतिकोदयस्थाने २५ द्वयशीतिकसत्त्वस्थानं ८२ । तु पुनश्चातुर्गतिकजीवानां त्रिशत्क-बन्धे ३० पञ्चविंशतिकोदये २५ द्वानवतिक-नवतिकसत्त्वस्थानद्वयम् ६२।६०। तिर्यङ्-मनुष्येषु त्रिशत्कबन्धे ३० पञ्चविंशतिकोदये २५ अष्टाशीतिक-चतुरशीतिसत्त्वस्थानद्वयम् ८८।८४। इति सर्वाणि सप्त सत्त्वस्थानानि सत्त्वभेदाद् विभाग जानीहि ॥२४४-२४५॥

एतेषा सप्तानां सत्त्वस्थानानां विभागः सुर-नारकेषु बन्धः ३० । उदये २५ । सत्त्वे ६३।६१ । तिर्यञ्चु बन्धः ३० । उदये २५ । सत्त्वे ८२ । चतुर्गतिजीवेषु बन्धः ३०। उदये २५। सत्त्वे ६२।६०। मनुष्य-तिर्यञ्चु बन्धः ३० । उदये २५ । सत्त्वे ८८।८४।

तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए आदिके सात सत्तास्थान होते हैं । उनमेंसे देव और नारकियोंके तेरानव और इक्ष्यानवैप्रकृतिक दो सत्तास्थान होते हैं, तिर्यञ्चोमें बियासीप्रकृतिक सत्तास्थान होता है, चारों गतियोंके जीवोंके बानवै और नव्वैप्रकृतिक स्थान होते हैं, तथा तिर्यञ्च और मनुष्योंमें अट्ठासी और चौरासीप्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार तीसप्रकृतिक बन्धस्थान और पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थानमें आदिके सातों ही सत्तास्थान जानना चाहिए ॥२४४-२४५॥

बन्धस्थान ३० और उदयस्थान २५ में सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७ और ८६ होते हैं । इन सत्तास्थानोंका विभाग इस प्रकार है—देव-नारकोंमें ६३, ६१, तिर्यञ्चोंमें ८२, चातु-र्गतिक जीवोंमें ६२, ६० और मनुष्य-तिर्यञ्चोंमें ८८, ८४ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं ।

^३तं चेव य बंधुदयं छव्वीसं णउदि होइ वाणउदी ।

अड चउरासीदि तिरिय-मणुए तिरिए वासीदि संता दु ॥२४६॥

^४वधे ३० उदये २६ तिरिय-मणुएसु सते ६२।९०।८८।८४। तिरिए ८२ ।

- 1 स० पञ्चम० ५, २६१-२६३ । २ ५, 'सामान्येन त्रिशद्वन्धे' इत्यादिगद्यांश (पृ० १८८) ।

३ ५, २६४ । ४ ५, 'त्रिशद्वन्धे' इत्यादिगद्यभाग (पृ० १८८) ।

तिर्यङ्-मनुष्येषु पञ्चविंशतिकस्थानोदये २६ तदेव त्रिशत्कवन्धस्थान ३० द्वावति ६२ नवतिकाऽ ६०
प्राणीति मम चतुरर्गितिकानि म४ सत्त्वस्थानानि भवन्ति । तिर्यङ्-मनुष्येषु वन्धः ३० उदये २६ सत्त्वे
६२।६०।म५।म४ तिरश्चा वन्धे ३६ उदये २६ द्वयर्गितिक सत्त्वस्थानं म२ भवति ॥२४६॥

उसी तीसप्रकृतिक वन्धस्थानमे छन्दोसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए वानवै, नन्दै,
अट्टासी और चौरासीप्रकृतिक सत्तास्थान तिर्यञ्च और मनुष्योमे पाये जाते हैं । किन्तु वियासी
प्रकृतिक सत्तास्थान तिर्यञ्चोमे ही पाया जाता है ॥२४६॥

वन्धस्थान ३० में तथा उदयस्थान २६ में ६२, ६०, म५, म४ प्रकृतिक सत्तास्थान मनुष्य-
तिर्यञ्चोमे तथा म२ प्रकृतिक सत्तास्थान तिर्यञ्चोमें होता है ।

१ इमि पण सत्तावीसं अट्टावीसणतीस उदया दु ।

तीसणं वंधम्मि य सत्ता आदिल्लया सत्ता ॥२४७॥

२ वंधे ३० उदये २१।२५।२७।२८।२९। सत्ते ६३।६२।६१।६०।म५।म४।म२।

त्रिगन्धामप्रकृतियन्धस्थाने ३० एकविंशतिक २१ पञ्चविंशतिकं २५ सप्तविंशतिक २७ अष्टाविंशतिकं
२८ एकोनविंशत्क २९ च क्रमाद् भवतीत्युदयस्थानपञ्चकम् । आदिमानि सत्त्वस्थानानि सप्त भवन्ति ॥२४७॥

वन्ध. ३० उदये २१।२५।२७।२८।२९ सत्तायां ६३।६२।६१।६०।म५।म४।म२।

तीस प्रकृतिक वन्धस्थानमे इक्षीस, पद्मीस, सत्ताईस, अट्टाईस, उनतीसप्रकृतिक उदय-
स्थानोंके रहते हुए आदिके सात सत्तास्थान होते हैं ॥२४७॥

वन्धस्थान ३० उदयस्थान २१, २५, २७, २८, २९ के रहते हुए ६३, ६२, ६१, ६०, म५,
म४ और म२ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं ।

३ चउल्लव्वीसिगितीसय-तीस-उदयम्मि तीस-वंधम्मि ।

तेणउदिगिणउदीओ वज्जित्ता पंच मंता दु ॥२४८॥

४ वन्धे ३० उदये २४।२६।३०।३१ सत्ते पंच ६२।६०।म५।म४।म२।

इति तीसवधो समत्तो ।

त्रिशत्कस्थानवन्धे ३० चतुर्विंशतिकोदये २४ पञ्चविंशतिकोदये २६ त्रिशत्कोदये ३० एकविंशत्कोदये
३१ त्रिनवतिकेनवतिकस्थानद्वय वर्जयित्वा पञ्च सत्त्वस्थानानि ॥२४८॥

वन्धे ३० उदये २४।२६।३०।३१ सत्त्वे पञ्च ६२।६०।म५।म४।म२।

अथ चतुर्गतिजाना यथासम्भव गुणस्थाने वन्धादित्रिकमुच्यते— वं ३० नामप्रकृतित्रिशत्क वन्ध-
उ० ६

स्थान वन्धः ३० त्रयपर्याप्तोद्योत-तिर्यग्गतियुत-मनुष्यगतियुत-मनुष्यगतितीर्थयुत-देवगत्याहारकद्वययुतत्वा-
द्युतर्गतिजा यन्तन्ति । व ३० प० वि० ति० च० प० म० म० ती० दे० आहारा । तत्र सर्वनारकमिथ्यादृष्टौ
व० ३० प० ति० । उद० २१।२५।२७।२८।२९ । स० ६२।६० । सासादने व० ३० प० ति० ।
उद्योतोदये २६ । सत्त्व० ६० । मिश्रे नास्य वन्धः । घर्मासयते मनुष्यगति-तीर्थयुतवन्ध ३० म० ती० ।
उद० २१।२५।२७।२८।२९ । सत्ता ६१ । वशा-मेघयोः व० ३० म० तीर्थ० उद० २६ । सत्ता ६१ ।
अञ्जनादिषु नास्ति ।

1. स० पञ्चम० ५, २६५ । 2. ५, 'वन्धे ३०' इत्यादिगद्यां (पृ० १८८) । 3. ५, २६६ ।

4. ५, 'वन्धे ३० उदये' इत्यादिगद्यां (पृ० १८८) ।

तिर्यग्गतौ सर्वमिथ्यादृष्टौ बन्धः ३० पं० ति० । उद्योतोदये २१।२४।२६।३०।३१ । स० ६० ।
[सासादने व० ३० ति० उ० । उ० २१।२४।२६।३०।३१ स० ६०] मिश्रादित्रये नास्य बन्धः ।

मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टौ बन्धः ३० ति० उ० । उदये २१।२६।२८।२९।३० । सत्त्व ६२।६०।८८।
८४ । सासादने व० ३० ति० उ० । उद० २१।२६।३० । स० ६० । मिश्रादिचतुष्के नास्य बन्धः ।
अग्रमत्तादिद्वये बन्धः ३० देव० आहारक० । उद० ३० । स० ६२ ।

देवगतौ भवनत्रयादि-सहस्रारान्तेष्वद्योत-तिर्यग्गतियुतम् । तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धः ३० ति० उद्यो० ।
उद० २१।२५।२७।२८।२९।३० । सत्त्व० ६२।६० । सासादने व० ३० ति० उद्यो० । उद० २१।२५।२६ ।
सत्त्व ६० । मिश्रे भवनत्रयासंयते च न त्रिशत्कम् । किं तर्हि ? तन्मनुष्यगतियुतं नवविंशतिकमेव सम्भवति ।
सौधर्मादि-सहस्रारान्तासयते मनुष्यगति-तीर्थयुत बन्धः ३० म० ती० । उद० २१।२५।२७।२८।२९ ।
सत्त्व० ६३।६१ । आनताद्युपरिमग्नैवेयकान्तमिथ्यादृष्ट्यादित्रये नास्य बन्धः । आनतादिसर्वार्थसिद्धयन्ता-
सयते च मनुष्यगति-तीर्थयुतबन्धः ३० मनु० तीर्थ० । उद० २१।२५।२७।२८।२९ । सत्त्व० ६३।६१ ।

इति त्रिशत्कस्थानबन्धः समाप्तः ।

उसी तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमे चौबीस, छब्बीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानके
रहते हुए तेरानवै और इक्यानवैप्रकृतिक दो स्थानोको छोड़कर शेष पाँच सत्तास्थान पाये
जाते हैं ॥२४८॥

बन्धस्थान ३० मे उदयस्थान २४, २६, ३०, ३१ के रहते हुए सत्तास्थान ६२, ६०, ८८,
८४, ८२ होते हैं ।

इस प्रकार तीसप्रकृतिक बन्धस्थानको आधार बनाकर उदयस्थान और सत्तास्थानोंका
वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूल सप्ततिकाकार शेष बन्धस्थानोंमें संभव उदय और सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—
[मूलगा० २६] 'एगेगं इगितीसे एगेगुदयद्व संतम्मि ।

उवरयबन्धे चउ दस वेदयदि संतठाणाणि ॥२४९॥

बन्ध०	३१	१	०
उद०	१	१	४
सत्त्व०	१	८	१०

अथैकत्रिशत्कैकोपरतबन्धेषु उदय-सत्त्वस्थानस्वरूपं गाथाचतुष्केणाऽऽह—['एगेग इगितीसे'
इत्यादि ।] एकत्रिशत्कनामप्रकृतिबन्धस्थाने ३१ एकमुदयस्थान १ एक सत्त्वस्थान १ । एकस्मिन् यशः-
प्रकृतिबन्धके एकोदयस्थान १ अष्टौ सत्त्वस्थानानि ८ । उपरतबन्धे बन्ध-रहिते ० उदयस्थानानि चत्वार्यु-
दयन्ति ४ । सत्त्वस्थानानि दश १० भवन्ति ॥२४९॥

व०	३१	१	०
उ०	१	१	४
स०	१	८	१०

इकतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें एक उदयस्थान और एक सत्तास्थान होता है । एकप्रकृतिक
बन्धस्थानमे एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान होते हैं । उपरतबन्धमें चार उदयस्थान और
दश सत्तास्थान होते हैं ।

इनकी अंकसंहति मूलमें दी है ।

१. स० पञ्चस० ५, २६७ ।

१. सप्ततिका० ३२ । तत्र चतुर्थचरणे 'वेयगसतम्मि द्वाणाणि' इति पाठः ।

अब भाष्यगाथाकार उपर्युक्त अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

¹इगितीसबंधगेसु य तीसुदओ संतम्मि य तेणउदिं ।

एयविहबंधगेसु य उदओ वि य तीस अडु संता य ॥२५०॥

आदी वि य चउठाणा उवरिम दो वज्जिऊण चउ हेड्डा ।

संतड्डाणा णियमा उवसम-खवगेसु वोहव्वा ॥२५१॥

²अप्पमत्त-अपुव्वाणं वधे ३१ उदये ३० संते ६३। वंधे १ उदये ३० उवसमपसु सते ६३।६२।६१।
६०। खवपसु ८०।७६।७८।७७।

एकत्रिंशत्कनामप्रकृतिबन्धकयोरप्रमत्तापूर्वकरणगुणस्थानयोः सत्त्वे त्रिनवतिकसत्त्वस्थानं स्यात् । अप्रमत्तापूर्वकरणयो बन्धे ३१ उदये ३० सत्त्वे ६३ । एकविधयन-कीर्त्तिबन्धकेषु अपूर्वकरणस्य सप्तमभागा-निवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांप्रदायिकेषु त्रिंशत्नामप्रकृत्युदयस्थानं ३० अष्टौ सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७। तानि कानि सत्त्वस्थानानान्यष्टौ ? सत्त्वेषु आद्यानि चत्वारि स्थानानि ६३।६२।६१।६०। उपरिसे द्वे दशकनवकस्थाने वर्जयित्वा अधःस्थितानि चतुःसत्त्वस्थानानि ८०।७६।७८।७७। उपशमेषु क्षपकेषु नियमाद् ज्ञातव्यानि । तथाहि—अपूर्वकरणसप्तमभागानि वृत्तिकरण-सूक्ष्मसांप्रदायाणामुपशमश्रेणिषु एकयशस्कीर्त्ति-बन्धकेषु अबन्धकोपशान्तकपाये च प्रत्येक सत्त्वस्थानानि चत्वारि ६३।६२।६१।६०। अपूर्वकरणस्य क्षपकश्रेण्यां आ[दिम] सत्त्वसत्तुष्टयम्-६३।६२।६१।६०। अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांप्रदाययोः क्षपकश्रेण्यो. ८०।७६।७८।७७। नरकद्विक २ तिर्यग्विद्वक २ विकलत्रय ३ आतप १ उद्योत १ एकेन्द्रियं १ साधारणं १ सूक्ष्मं १ स्यावर १ एवं त्रयोदश प्रकृती १३ रनिवृत्तिकरणस्य प्रथमभागे क्षपयति त्रिनवतिकमध्यात्तदा ८०। तीर्थं विना ७६। आहारकद्वयं विना ७८। तीर्थाहारकत्रिक विना ७७ ॥२५०-२५१॥

इकतीसप्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवामे तीसप्रकृतिक एक उदयस्थानका उदय, तथा सत्तामे तेगनवे प्रकृतिक एक सत्तास्थान रहता है । एकप्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवामे तीसप्रकृतिक एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान होते हैं । जो इस प्रकार हैं—आदि के चार सत्तास्थान और उपरिम दो को छोड़कर अधस्तन चार सत्तास्थान । ये सत्तास्थान नियमसे उपशामकोमे और क्षपकोंमें जानना चाहिए ॥२५०-२५१॥

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयतोके बन्धस्थान ३१ मे उदयस्थान ३० के रहते हुए ६३ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । एक प्रकृतिक बन्धस्थानमे उदयस्थान ३० के रहते हुए उपशामकोंमे ६३, ६२, ६१ और ६० प्रकृतिक चार सत्तास्थान तथा क्षपकोंमें ८०, ७६, ७८ और ७७ प्रकृतिक चार सत्तास्थान होते हैं ।

³उवरयबंधे इगितीस तीस णव अडु उदयठाणाणि ।

छा उवरिं चउ हेड्डा संतड्डाणाणि दस एदे ॥२५२॥

⁴उवरयबंधे उदया ३१।३०।६।८। सते ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७।१०।६।

एवं णामपरुवणा समत्ता ।

उपरतबन्धेषु उपशान्त-क्षपणकपाय-सयोगायोगिषु चतुष्टुं ०।०।०।०। एकत्रिंशत्क ३१ त्रिंशत्क ३० नवका ६ एकोदयस्थानानि चत्वारि ३१।३०।६।८ पदुपरितनसत्त्वस्थानानि अधःस्थानानि चतुःसत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७।१०।६। तथाहि—उपशान्तकपाये ६३।६२।६१।६०। उदय ३०।

1. स० पञ्चसं० ५, २६८-२६९। 2 ५, 'उपशमकेषु' इत्यादिगद्यभाग (पृ० १८९)।

3. ५, २७०। 4 ५, 'नष्टबन्धे पाका' इत्यादिगद्यभाग (पृ० १८७)।

क्षीणकपाये अवन्धके ०। उदय० ३० सर्वस्थानानि ८०।७१।७८।७७। सयोगे ०। उदये ३१।३० सत्त्व० ८०।७१।७८।७७। अयोगिद्विचरसमये उदये ३१।३०। सत्त्व० ८०।७१।७८।७७। तच्चरसमये उदये ६। ८। सत्त्व० १०।६ ॥२५२॥

पुनरपि एकत्रिंशत्कादिवन्धो विचार्यते—एकत्रिंशत्क ३१ देवगत्याऽऽहारकद्वयतीर्थयुतत्वादप्रमत्ता-पूर्वकरणा एव बध्नन्ति । व० ३१ देव आहारक-तीर्थयुत० । उद० ३० । स० ६३ । एकवन्धो विगतिर-पूर्वकरणे व० १ उद० ३० । स० ६३।६२।६१।६०। अनिवृत्तिकरणे व० १ उ० ३० स० ६३।६२।६१।६०। ८०।७१।७८।७७ । सूक्ष्मसाम्पराये व० १ उद० ३० । स० ६३।६२।६१।६०।८०।७१।७८।७७ । उपशान्ते व० ० । उ० ३० । स० ६३।६२।६१।६० । क्षीणे व० ० । उ० ३० स० ८०।७१।७८।७७ । सयोगे स्वस्थाने व० ० । उ० ३०।३१ । स० ८०।७१।७८।७७ । समुद्राते व० ० । उ० ३०।२१।२६।२७।२८। २९।३०।३१ । स० ८०।७१।७८।७७ । अयोगे व० ० । उ० ३० तीर्थसहितं ३१।६।८ । सत्त्व० ८०।७१। ७८।७७।१०।६ । इति विशेषो ज्ञातव्यः ।

इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनामलघुगोमटमारसिद्धान्तटीकायां नामकर्मग्ररूपणा समाप्ता ।

उपरत वन्धस्थानमे इकतीस, तीस, नौ और आठ प्रकृतिक चार उदयस्थान, तथा उपरितन छह और अधस्तन चार; इस प्रकार दश सत्तास्थान होते हैं ॥२५२॥

उपरतवन्धमे उदयस्थान ३१, ३०, ६, ८, तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८, ७७, १०, ६ होते हैं ।

इस प्रकार नामकर्मके वन्धस्थानमे उदयस्थानोंके साथ सत्तास्थानोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

अब मूल सप्ततिकाकार आठों कर्मोंके उपर्युक्त वन्धादि तीनों प्रकारके स्थानोंका जीव-समास और गुणस्थानोंकी अपेक्षा स्वामित्वके कथन करनेका निर्देश करते हैं—

[मूलगा० २७] ^१तिवियप्पपयडिठाणा जीव-गुणसण्णिदेसु ठाणेसु ।

भंगा पउंजियव्वा जत्थ जहा पयडिसंभवो हवइ^२ ॥२५३॥

ॐ नमः श्रीमत्सिद्धेभ्यः ।

जिनान् सिद्धान् नमस्कृत्य साधून् सद्गुणधारकान् ।

लक्ष्मीवीरेन्दुचिद्भूपात् ब्रुवे वन्धादिकत्रिकान् ॥

स्थानानां त्रिविकल्पानां कर्त्तव्या विनियोजना ।

अतो जीवगुणस्थाने क्रमतः सर्वकर्मणाम्^३ ॥२३॥

यत्र यथा प्रकृतीनां सम्भवो भवति, तत्र तथा जीव-गुणसंज्ञितेषु स्थानेषु जीवसमासेषु गुणस्थानेषु च त्रिविकल्पप्रकृतिस्थानानां सर्वकर्मणां सर्वप्रकृतीनां वन्धोदयसत्त्वरूपस्थानानां भङ्गा विकल्पा प्रकृष्टेन योजनीयाः ॥२५३॥

वन्ध, उदय और सत्ताकी अपेक्षा तीन प्रकारके जो प्रकृतिस्थान हैं, उनकी अपेक्षा जीव-समास और गुणस्थानोंमें जहाँ जितनी प्रकृतियाँ संभव हों, वहाँ उतने भङ्ग घटित करना चाहिए ॥२५३॥

१. स० पञ्चमं ५, २७६ ।

१ गो० क० गा० ७४५ सं० टीका (पृ० ६०३) ।

२ सप्ततिका० ३३ । तत्र प्रथमचरणे 'तिवियप्पपयडिठाणेहि' इति पाठः ।

३ स० पञ्चमं ५, २७६ ।

अब पहले जीवसमासोंमें ज्ञानावरण और अन्तराय कर्मसम्बन्धी बन्धादिस्थानोंके स्वामित्वका निर्देश करते हैं—

[मूलगा० २८] 'तेरससु जीवसंखेवएसु णाणंतराय-तिवियप्पो ।

एकस्मिं ति-दु-वियप्पो करणं पडि एत्थ अवियप्पो' ॥२५४॥

^५तेरससु जीवसमासेषु ^५सण्णिपज्जते मिच्छाडसहुमंतेषु गुणेषु ^५वधाइसु ^५तथेव उवरयवधे उव-

संत-प्पोणाण ५ ।

अथ चतुर्दशजीवसमासेषु ज्ञानावरणान्तरायकर्मणोः प्रकृतीनां बन्धादिविकल्पान् योजयति—
['तेरससु जीवसंखेवएसु' इत्यादि ।] एकेन्द्रिय-सूक्ष्मवाद्द्वि-त्रि-चतु-पञ्चेन्द्रियासंज्ञिनः पर्याप्तापर्याप्ता इति द्वादश, पञ्चेन्द्रियमध्यपर्याप्तक एक इति त्रयोदशजीवसमासेषु ज्ञानावरणान्तरायप्रकृतीनां त्रिविकल्पो भवति बन्धोदयसत्त्वसंखेवभवतीत्यर्थः । एकस्मिन् सञ्ज्ञिपर्याप्तके जीवसमासे त्रिविकल्पो द्विविकल्पश्च भवति । अत्र द्विविकल्पे करणमित्युपशान्त-क्षीणकपाययो बन्ध प्रति विकल्पो न भवति । उपशान्तक्षीणकपाययोः बन्धस्य विकल्पो न भवतीत्यर्थः ॥२५४॥

त्रयोदशसु जीवसमासेषु ज्ञानावरणान्तराययोः प्रकृतीनां बन्धोदयसत्त्वसंखेव—	ज्ञा० अ०		
	ब०	५	५
	उ०	५	५
	स०	५	५

संज्ञिनि पर्याप्ते जीवसमासे मिथ्यादृष्टिवादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तेषु गुणस्थानेषु बन्धादित्रिके	ज्ञा० अ०		
	ब०	५	५
	उ०	५	५
	स०	५	५

तत्रैव सञ्ज्ञिपर्याप्ते जीवसमासे उपरतबन्धयोर्यन्धरहितयोरुपशान्त-क्षीणकपाययोरुदये सत्त्वे च	ज्ञा० अ०		
	ब०	०	०
	उ०	५	५
	स०	५	५

इति जीवसमासेषु ज्ञानावरणान्तरायप्रकृतिविकल्प समाप्तः ।

आदिके तेरह जीवसमासोंमें ज्ञानावरण और अन्तरायके तीन विकल्प होते हैं । संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त नामक एक चौदहवें जीवसमासमें तीन और दो विकल्प होते हैं । किन्तु करण अर्थात् उपशान्त और क्षीणकपायगुणस्थानमें बन्धका कोई विकल्प नहीं है ॥२५४॥

विशेषार्थ—तेरह जीवसमासोंमें दोनों कर्मोंका पाँचप्रकृतिक बन्ध, पाँचप्रकृतिक उदय और पाँचप्रकृतिक सत्तारूप एक ही विकल्प या भङ्ग है । संज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तमें मिथ्यादृष्टिगुण-स्थानसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानतक पाँचप्रकृतिकबन्ध, और सत्तारूप, तथा उपरतबन्धवाले उपशान्त और क्षीणमोही जीवोंके पाँचप्रकृतिक उदय और सत्तारूप दो भङ्ग होते हैं । श्वे० चूर्णि और टीकाकारोंने गाथाके चौथे चरणका अर्थ इस प्रकार किया है—करण अर्थात् केवल द्रव्य मनकी अपेक्षा जो जीव संज्ञिपञ्चेन्द्रिय कहलाते हैं ऐसे केवलीके उक्त दोनों कर्मोंका बन्धोदय-सत्त्वसम्बन्धी कोई विकल्प नहीं है ।

1 स० पञ्चम० ५, २७७ । 2 ५, 'जीवसमासेषु' इत्यादिगद्यांश (पृ० १९०) ।

१ सप्ततिका० ३४ ।

अव मूलसप्ततिकाकार दर्शनावरण कर्मके बन्धादि स्थानोंके स्वामित्वसम्बन्धी भंगोंका जोवसमासोंमें निर्देश करते हुए, तथा वेदनीय, आयु और गोत्र-सम्बन्धी स्थानोंके भंगोंको जाननेका संकेत करते हुए मोहकर्मके भगोंके कथनकी प्रतिज्ञा करते हैं—

[मूलगा० २६] ^१तेरे णव चउ पणयं णव संता एयम्मि तेरह वियप्पा ।

वेयणीयाउगोदे विभज्ज मोहं परं वोच्छं ^१॥२५५॥

दंसणा०

^२तेरस जीवेसु ४ ५ सण्णपज्जत्ते तेरस त्ति कंहं ? वुच्चए—मिच्छा—सासणाणं ४ ५ मिस्साइ-
६ ६ ६ ६

अपुव्वकरणपढमसत्तमभाग जाव ४ ५ दुविहेसु उवसम-खवय-अपुव्वकरणाणियट्टिसु तहा उवसम सुहुम-
६ ६

४ ४ ४ ४ ० ० ० ०
कसाए ४ ५ अणियट्टि-सुहुमखवगाणं ४ ५ उवसंते ४ ५ खीणदुचरिमसमये ४ ५ खीण-
६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६

०
चरिमसमये ४ सव्वे मिलिया १३ ।

४

अथ दर्शनावरणस्य बन्धादि-विकल्पान् योजयति—['तेरे णव चउ पणयं' इत्यादि ।] संज्ञि-
पञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीवसमास विना त्रयोदशसु जीवसमासेषु दर्शनावरणनवप्रकृतीनां बन्धः ६ । चतुः-
प्रकृतीनामुदयः ४ । अथवा पञ्चप्रकृतीनामुदयः ५ । कथम् ? जाग्रज्जीवे चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानां
चतुर्णामुदयः, निद्रिते जीवे तु निद्राणां मध्ये एकतरा निद्रा १ इति पञ्चप्रकृतीनामुदयः ५ । दर्शनावरणस्य
नवप्रकृतीनां सत्ता ६ । एकस्मिन् पञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीवसमासे चतुर्दशे दर्शनावरणस्य त्रयोदश विकल्पा
भङ्गा भवन्ति । वेदनीयायुर्गोत्रेषु त्रिसंयोगभङ्गान् युक्त्वा जीवसमासेषु सयोज्याग्रे मोहनीयं वक्ष्यामि ॥२५५॥

व० ६ ६

त्रयोदशसु जीवसमासेषु दर्शनावरणस्य बन्धादित्रयम्—उ० ४ ५ । संज्ञिपर्याप्तजीवसमासे त्रयो-
स० ६ ६

व० ६ ६

दश भङ्गा इति कथं चेदुच्यते—पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तजीवसमासे मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः उ० ४ ५ । मिश्रा-
स० ६ ६

व० ६ ६

द्यपूर्वकरणद्वयप्रथमभागं यावत् स्त्यानगृद्धित्रयबन्धं विना उ० ४ ५ द्विविधेषु उपशम-क्षपक
स० ६ ६

श्रेणिद्वयापूर्वकरणशेषपट्भागानिवृत्तिकरणेषु तथा सूचमसाम्परायस्योपशमश्रेणौ निद्रा-प्रचले विना
व० ४ ४

उ० ४ ५ । ततोऽनिवृत्तिकरण-सूचमसाम्पराययोः क्षपकश्रेण्योः स्त्यानत्रिकसत्त्वं विना उ० ४ ५ । उपशान्त-
स० ६ ६

व० ० ० व० ० ० ०
कपाये अवन्धके उ० ४ ५ । क्षीणकपायस्य द्विचरमसमये । उ० ४ ५ । क्षीणकपायस्य चरमसमये ४ ।
स० ६ ६ स० ६ ६ ४

1. ५, २७८-२७९ । 2. ५, 'त्रयोदशसु' इत्यादिगद्यभाग. (पृ० १९०) ।

१ सप्ततिका० ३५ । तत्र द्वितीयचरणे 'नव सत्तेगम्मि भगमेक्कारा' इति पाठः ।

सर्वे मीलिता भङ्गाः १३ । कथम् ? दर्शनावरणस्य बन्धभङ्गास्त्रयः ३ । उदयभङ्गाः सप्त ७ । सत्त्वभङ्गास्त्रयः ३ । एवं विसदृशभङ्गास्त्रयोदश १३ ।

वं०	६	६	४	४	०	०	०
उ०	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५
सं०	६	६	६	६	६	६	४

इति जीवसमासेषु दर्शनावरणस्य विकल्पाः समाप्ताः ।

प्रारम्भके तेरह जीव-समासोंमें दर्शनावरणकर्मके नौ प्रकृतिक बन्धस्थान, चार अथवा पाँच प्रकृतिक उदयस्थान और नौ प्रकृतिक सत्तास्थानरूप दो भंग होते हैं । एक चौदहवें संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक नामक जीवसमासमें तेरह विकल्प होते हैं । वेदनीय, आयु और गोत्रकर्म-सम्बन्धी स्थानोंके भगोंका स्वयं विभाग करना चाहिए । तदनन्तर क्रम-प्राप्त मोहनीयकर्मके स्थानसम्बन्धी भगोंका मैं वर्णन करूँगा ॥२५५॥

आदिके तेरह जीवसमासोंमें दर्शनावरणकर्मके नौप्रकृतिक बन्धस्थानमें चारप्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान; तथा पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान ऐसे दो भंग होते हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक नामक जीवसमासमें तेरह भंग किस प्रकारसे संभव हैं ? इस शंकाका समाधान करते हैं—मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके नौप्रकृतिक बन्धस्थान, चारप्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान; तथा नौप्रकृतिक बन्धस्थान, पाँच प्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान, ये दो भंग होते हैं । तीसरे मिश्रगुणस्थानको आदि लेकर अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थानके सात भागोंमेंसे आदिके प्रथम भाग-पर्यन्त छहप्रकृतिक बन्धस्थान, चारप्रकृतिक उदयस्थान, नौप्रकृतिक सत्तास्थान; तथा छहप्रकृतिक बन्धस्थान, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान; ये दो भंग होते हैं । उपशामक और क्षपक अपूर्वकरणके शेष छह भागोंमें, तथा उपशामक अनिवृत्तिमें, उपशामक सूक्ष्मसाम्परायमें; एवं क्षपकश्रेणी-सम्बन्धी अनिवृत्तिकरणके असंख्यातवें भागपर्यन्त चारप्रकृतिक बन्धस्थान, चारप्रकृतिक उदयस्थान, नौप्रकृतिक सत्त्वस्थान, तथा चारप्रकृतिक बन्धस्थान, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान, नौप्रकृतिक सत्तास्थान, ये दो भंग होते हैं । क्षपक अनिवृत्तिकरणके शेष संख्यात भागमें और क्षपक सूक्ष्मसाम्परायमें चारप्रकृतिक बन्धस्थान, चारप्रकृतिक उदयस्थान, छहप्रकृतिक सत्तास्थान, तथा चार प्रकृतिक बन्धस्थान, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और पाँचप्रकृतिक सत्तास्थान, ये दो भंग होते हैं । दशवें गुणस्थानमें दर्शनावरणकी बन्धव्युच्छिन्ति होजानेसे उपशान्तमोहमें बन्धस्थान कोई नहीं है, उदयस्थान चारप्रकृतिक, सत्तास्थान नौप्रकृतिक; तथा उदयस्थान पाँचप्रकृतिक और सत्तास्थान नौप्रकृतिक; ये दो भंग होते हैं । क्षीणमोहमें द्विचरम समय तक चारप्रकृतिक उदयस्थान, छहप्रकृतिक सत्तास्थान; तथा पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और छह प्रकृतिक सत्तास्थान ये दो भंग होते हैं । क्षीणमोहके चरम समयमें चारप्रकृतिक उदयस्थान और चारप्रकृतिक सत्तास्थान ये रूप एक भंग होता है । इस प्रकार सब मिला करके संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवसमासमें तेरह भंग होते हैं । इन सबकी अंकसंदृष्टियों मूलमें दी हैं ।

अथ भाष्यगाथाकार मूलसप्ततिकाकार-द्वारा सूचित वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

१ वासट्वि वेयणीए आउस्स हवंति तियधिगसयं तु ।
गोदस्स य सगदालं जीवसमासेसु णायन्वा ॥२५६॥

६२।१०३।४७।

अथ जीवसमासेषु वेदनीयायुर्गोत्राणां भङ्गाः कति चेदाह—[‘वासट्वि वेयणीए’ इत्यादि ।] जीवसमासेषु वेदनीयस्य द्वापष्टिर्भङ्गाः ६२ । आयुपर्ययधिकशतभङ्गाः १०३ । गोत्रस्य सप्तचत्वारिंशद्विकल्पाश्च ४७ भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥२५६॥

जीवसमासोमे वेदनीयकर्मके वन्धादित्रिकके भंग वासठ होते हैं, आयुकर्मके तीन अधिक सौ अर्थात् एक सौ तीन भंग होते हैं और गोत्रकर्मके सैंतालीस भंग जानना चाहिए ॥२५६॥

वेदनीयके भंग ६२, आयुके १०३ और गोत्रके ४७ होते हैं ।

अथ भाष्यगाथाकार वेदनीयकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

२ चोदस जीवे पढमा चउ चउभंगा भवंति वेयणिए ।
ल्लच्चेव केवलीणं सन्वे वावट्वि भंगा हु ॥२५७॥

३ इदि पढमा चोदससु पत्तेयं चत्तारि १ १ ० ० इदि ५६ । सजोगे पढमा दो १ ० १ ० १० १० १० १०

१ १ १ ० अजोगे पढमा दो चेव, वंधेण विणा दुचरिमसमए वि १ ० १० १० तस्सेव चरिमसमए वि १ ० १० १०

इदि सन्वे ६२ ।

अथ वेद्यस्य द्वापष्टिभङ्गानाह—[चोदस जीवे पढमा’ इत्यादि ।] चतुर्दशसु जीवसमासेषु प्रत्येकं वेदनीयस्य प्रथमा आदिमाश्चत्वारश्चत्वारो भङ्गविकल्पा भवन्ति । चतुर्भिर्गुणिताश्चतुर्दश (१४ × ४) इति षट्पञ्चाशत् ५६ । केवलिनां षट्विकल्पाः ६ । इति सर्वे द्वापष्टिर्भङ्गा विकल्पाः वेद्यस्य जीवसमासेषु भवन्ति ६२ ॥२५७॥

इति चतुर्दशजीवसमासेषु प्रत्येकं चत्वारश्चत्वारो भङ्गाः १ १ ० ० १ ० १ ० एकेन्द्रियसूचमा- १० १० १० १०

पर्याप्तस्य सात्तावन्धोदयोभयसत्त्वं १ सातवन्धासातोदयोभयसत्त्वं १ असातवन्ध-सातोदयोभय- १० १०

सत्त्वं ० असातवन्धोदयोभयसत्त्वमिति ० चत्वारो भङ्गाः । एवं त्रयोदशसु जीवसमासेषु भङ्गा १० १०

ज्ञातव्याः । एकाङ्केन सद्देद्यस्य संज्ञा, शून्येनासद्देद्यस्य संज्ञा । इति ५६ भङ्गाः । सयोगकेवलिनि प्रथमौ

१. सं० पञ्चसं० ५, २८० । २. ५, २८१ । ३ ५, ‘चतुर्दशसु’ इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६१) ।

आद्यौ द्वौ भङ्गौ वं० १ १
 उ० १ ० अयोगकेवलिनि आद्यौ द्वौ भङ्गौ वन्धेन विना द्विचरमसमयेऽपि
 सं० १।० १।०

उ० १ ०
 सं० १।० १।० तस्यैवायोगिचरमसमये । इति सर्वे वेद्यस्य द्वापष्टिर्विकल्पा भवन्ति ६२ ।

इति जीवसमासेषु वेदनीयस्य विकल्पाः समाप्ताः ।

चौदह जीवसमासोमेसे प्रत्येक जीवसमासमें वेदनीयकर्मके त्रिसंयोगी प्रथम चार-चार भंग होते हैं । चौदहवें जीवसमासके अन्तर्गत केवलीके छह भंग होते हैं । इस प्रकार सर्व मिलकर वेदनीयकर्मके वासठ भंग हो जाते हैं ॥२५७॥

भावार्थ—इसी सप्ततिकाप्रकरणके प्रारम्भमें गाथाङ्क १६-२० का अर्थ करते हुए जो वेदनीयकर्मके आठ भंग बतलाये गये हैं, उनमेंसे प्रारम्भके चार भंग प्रत्येक जीवसमासमें पाये जाते हैं, अतः चौदह जीवसमासोंको चारसे गुणित करने पर छप्पन भंग हो जाते हैं । तथा केवलीके पूर्वोक्त आठ भंगोंमेंसे छह भंग पाये जाते हैं । इस प्रकार दोनों मिलकर (५६ + ६ = ६२) वासठ भंग होते हैं ।

इसी अर्थका भाष्यकारने अंकसंहति द्वारा इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकमें ये चार भंग होते हैं—
 वंघ १ १ ० ०
 उद० १ ० १ ०
 सं० १।० १।० १ १।०

यहाँ पर (१) एक अंकसे सातावेदनीय और (०) शून्यसे असाता वेदनीयका संकेत किया गया है ।

संयोगिकेवलीमें प्रथमके ये दो भंग $\begin{matrix} १ & १ \\ १।० & १।० \end{matrix}$ होते हैं । अयोगिकेवलीमें भी ये ही दो भङ्ग पाये जाते हैं । किन्तु उनके द्विचरम समयमें वेदनीयकर्मके वन्धका अभाव हो जाता है, अतएव वन्धके विना $\begin{matrix} १ & ० \\ १।० & १।० \end{matrix}$ ये दो भङ्ग होते हैं । उन्हीं अयोगिकेवलीके चरम समयमें $\begin{matrix} १ & ० \\ १।० & १।० \end{matrix}$ ये दो भङ्ग पाये जाते हैं । इस प्रकार वेदनीयकर्मके सर्व भङ्ग ६२ जानना चाहिये ।

इस प्रकार जीवसमासोंमें वेदनीयकर्मके वन्धादिस्थानोंका निरूपण किया ।

अत्र भाष्यगाथाकार चौदह जीवसमासोंमें आयुर्कर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

^१एयार जीवठाणे पणवण्णा चेव होंति भंगा य ।

पज्जत्तासण्णीसु य णव दस सण्णी अपज्जत्ते ॥२५८॥

^२सण्णी पज्जत्तस्स य अट्ठावीसा हवन्ति आउस्स ।

तिगधियसयं तु सन्वे केवलिभंगेण संजुत्तं ॥२५९॥

^३सुर-णिरएसु पंच य तिरिय-मणुएसु हवन्ति णव भंगा ।

वंधन्ते वंधेसु वि चउसु वि आउस्स कमसो दु ॥२६०॥

५।१।१।५।

अथ जीवसमासेषु आयुष्कस्य विकल्पान् गाथाचतुष्केनाऽऽह—['एयार जीवठाणे' इत्यादि ।] एकेन्द्रियसूक्ष्म-वादरौ २ द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियाः ३ इत्येते पञ्च पर्याप्ताऽपर्याप्ता एवं दश १० । असंज्ञपर्याप्तक एकः १ एवमेकादशजीवसमासेषु प्रत्येकं आयुषः पञ्च पञ्च स्थानानि भङ्गा विकल्पाः । इति सर्वे पञ्चपञ्चाशद्भङ्गा भवन्ति ५५ । पञ्चेन्द्रियासंज्ञिपर्याप्तजीवसमासे नव भङ्गाः ६ भवन्ति । अत्रासंज्ञितिर्यङ्जीवः कथं देव-नारकायुषी बध्नाति ? प्रथमनरकनारकायुर्बन्धनव्यन्तरायुश्च बध्नातीत्यर्थः । उक्तञ्च—

देवायुर्नारकायुर्बध्नीतः संज्ञ्यसंज्ञिनौ पूर्णौ ।

द्वादश नैकाक्षाद्या जीवसमासाः परे जातु^१ ॥२४॥ इति

असण्णी सरिसवेत्यादिना ज्ञेयम् । संज्ञ्यपर्याप्तजीवसमासे दश विकल्पाः १० स्युः । संज्ञि-पर्याप्तस्याष्टाविंशतिविकल्पा २८ भवन्ति । केवलज्ञानिनो भङ्ग एकः १ । एव सर्वे एकीकृताः आयुषो विकल्पाः सर्वेषु जीवसमासेषु श्रद्धिकशतसंख्योपेता १०३ भवन्ति । मनुष्य-तिर्यगायुषोर्बन्धाबन्धयोर्देव-नारकाणां पञ्च पञ्च भङ्गा विकल्पा भवन्ति ५५ । आयुश्चतुषु^२ बन्धाबन्धेषु तिर्यङ्-मनुष्याणां नव नव भङ्गा भवन्ति ६६ ॥२५८-२६०॥

एकेन्द्रिय सूक्ष्म, एकेन्द्रिय वादर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय इन पाँचके पर्याप्त और अपर्याप्त-सम्बन्धी दश, तथा एक असंज्ञी अपर्याप्त, इन ग्यारह जीवसमासोंमें आयुर्कर्मके त्रि-संयोगी भङ्ग पचपन होते हैं । पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमासमें नौ भङ्ग होते हैं । अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमासमें दश भङ्ग होते हैं । तथा पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमासमें अट्ठाईस भङ्ग होते हैं । ये सब केवलिसम्बन्धी एक भङ्गसे संयुक्त होकर एकसौ तीन भङ्ग आयु-कर्मके होते हैं । संज्ञी पंचेन्द्रियके अट्ठाईस भङ्ग इस प्रकार हैं—आयुर्कर्मके ये भङ्ग चारो गतियों-में आयु बँधने और नहीं बँधनेकी अपेक्षा क्रमसे देवोंमें पाँच, नारकियोंमें पाँच, तिर्यङ्गोंमें नौ और मनुष्योंमें नौ होते हैं ॥२५८-२६०॥

^१ नारय-देवभंगा चउरो चउरो चइऊण सेसा तिरियभगा पच पंच एयारसेसु जीवसमासेसु ते एकम्मि

पच पंच ति किच्चा पणवण्णा भवंति । ५५ । तत्थ पंचण्ह संदिट्ठी वि २ २ २ २ २ इदि ५५ ।
२ २।२ २।२ २।३ २।३

असण्णिपज्जत्तेसु सव्वे तिरियभंगा ६ । सण्णिअपज्जत्ते देव-नारयभंगा चउरो चउरो चइऊण सेसा तिरिया-उयभंगा ५ । मणुयाउयभंगा ५ सव्वे १० । सण्णिपज्जत्ते नारयभंगा ५ । तिरियभंगा ६ । मणुयभगा ६ ।

देवभगा ५ । एव सव्वे वि २८ । केवलिसु ३ एवं सव्वे १०३ ।
३

क्रमेण तु नारके ५ तिर्यक्षु ६ मनुष्येषु ६ देवे ५ । नारक देवभङ्गान् चतुरश्चतुरस्यक्त्वा शेषास्तिर्य-ग्भङ्गाः पञ्च पञ्च । एकादशजीवसमासेषु ते भङ्गाः एकैकस्मिन् पञ्च पञ्चेति कृत्वा पञ्चपञ्चाशद्भवन्ति ५५ । तथाहि—यस्मादेकादशजीवसमासा नारक-देवायुषी न बध्नन्ति, ततस्तेषु तिरश्चामायुर्बन्धभङ्गेभ्यो नवभ्यो नारकायुर्बन्धभङ्गो देवायुर्बन्धभङ्गो द्वौ द्वौ अपाकृत्य शेषा जीवसमासेष्वेकादशसु पञ्चपञ्चेति पञ्चपञ्चाशद् भवन्ति ५५ । ततः पञ्चानां संहतिः—

१. सं० पञ्चसं० ५, 'आसामर्थः—' इत्यादिगाद्याशः । (पृ० १६२) ।

१. सं० पञ्चसं० ५, २८३ ।

वं०	०	ति २	०	म ३	म ३	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २
स०	०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २
वं०	०	१	०	ति २	०	म ३
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २
स०	ति २	ति २	न १	ति २	ति २	ति २

[इति] तिर्यग्भङ्गाः ६ । ततः सञ्चयपर्याप्तजीवसमासे देव-नारकभङ्गान् घतुरश्चतुरः ४ त्यक्त्वा

शेषास्तिर्यगायुर्भङ्गाः पञ्च ५ । मनुष्यायुर्भङ्गाः पञ्च ५ । सर्वे दश । तथाहि—पंचेन्द्रियसञ्चयपर्याप्ते दश भङ्गाः, यस्मादपूर्णसञ्ज्ञी तिर्यङ् मनुष्यश्च देवनारकायुपी न बध्नाति तस्मात्तिरश्चा मनुष्याणां चायुर्वन्ध-भङ्गेभ्यो नवम्यः नारकायुर्वन्धभङ्गौ देवायुर्वन्धभङ्गौ च हित्वा शेषाः पञ्चायुर्वन्धभङ्गाः ५।५ । इत्थमपर्याप्ते पंचेन्द्रियसञ्ज्ञिनि भङ्गाः, तद्भवानां अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसञ्ज्ञिचरणा, अपर्याप्तमनुष्यचरणा, इति पञ्चेन्द्रियसञ्चय-पर्याप्तास्तिर्यङ्-मनुष्यभङ्गाः दश १० । सञ्ज्ञिपर्याप्तनारके भङ्गाः ५ । तिर्यग्पञ्चेन्द्रियसञ्ज्ञिपर्याप्ते भङ्गाः ६ । मनुष्यपर्याप्तके भङ्गा नव ९ । पर्याप्तदेवे भङ्गा ५ । एव सर्वे सञ्ज्ञिपर्याप्ते भङ्गा २८ । केवलिनि भङ्ग एक एव १ । एव सर्वे आयुपो भङ्गाः विकल्पाः १०३ भवन्ति ।

वं०	०	ति २	०	३	०	वं०	०	२	०	३	०
उ०	२	२	२	२	२	उ०	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३
स०	२	२।२	३।२	२।२	२।३	स०	म ३	३।२	३।२	३।३	३।३

वं०	०	२	०	३	०
उ०	न १	न १	न १	न १	न १
स०	१	१।२	१।२	१।३	१।३

वं०	०	१	०	२	०	३	०	४	०	४	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	२	ति २	ति २	ति २	ति २	म ३	म ३
स०	२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४	२।४	३।४	३।४

वं०	०	१	०	२	०	वं०	०	२	०	३	०
उ०	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	उ०	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४
स०	३	३।१	३।१	३।२	३।२	स०	४	४।२	४।२	४।३	४।३

इति जीवसमासेषु आयुर्विकल्पा समाप्ताः ।

स्पष्टीकरण—आयुर्कर्मके नरकादि गतियोंमें क्रमसे ५, ६, ६ और ५ भङ्ग होते हैं । इन भङ्गोंका विवरण इसी प्रकरणके प्रारम्भमें गाथाद्वारा २१ से २४ तक किया जा चुका है । वहाँ पर जो तिर्यग्गतियोंमें नौ भङ्ग बतलाये हैं, उनमेंसे नारकायु और देवायुके बन्ध-सम्बन्धी चार चार भङ्ग छोड़कर शेष जो पाँच भङ्ग हैं, वे आदिके ग्यारह जीवसमासोंमें पाये जाते हैं । एक एक जीवसमासमें पाँच पाँच भङ्ग होते हैं, इसलिए ग्यारहको पाँचसे गुणित करने पर पचपन (५५) भङ्ग हो जाते हैं । उन पाँच भङ्गोंकी सदृष्टि मूलमें दी हुई है । असञ्ज्ञी पर्याप्तोंमें तिर्यग्गतिके सर्व भङ्ग ६ होते हैं । सञ्ज्ञी अपर्याप्तके देव और नारकसम्बन्धी चार-चार भङ्ग छोड़कर तिर्यगायुसम्बन्धी शेष पाँच भङ्ग होते हैं, तथा मनुष्यायुसम्बन्धी भङ्ग भी ५ होते हैं; इस प्रकार दोनों मिलाकर १० भङ्ग अपर्याप्तसञ्ज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमासके होते हैं । सञ्ज्ञीपर्याप्त जीवसमासमें नारकियोंके ५ भङ्ग, तिर्यग्ज्योंके ६ भङ्ग, मनुष्योंके ६ भङ्ग और देवोंके ५ भङ्ग, इस प्रकार सर्व मिलाकर २८ भङ्ग होते हैं । केवलीके ६ भङ्ग बतलाये गये हैं । इस प्रकार सर्व मिलाकर आयु-कर्मके (५५ + ६ + १० + २८ + ६) = १०३ होते हैं ।

इस प्रकार जीवसमासोंमें आयुर्कर्मके बन्धादि-स्थानोंका निरूपण किया ।

अब जीवसमासोंमें गोत्रकर्मके बन्ध, उदय और सत्त्व-सम्बन्धी भङ्गोंको कहते हैं—

¹उच्चं णीचं णीचं णीचं बंधुदयसंतजुयलं च ।

सत्त्वं णीचं च तद्वा पुह भंगा ह्येति तिष्ठेत् ॥२६१॥

9 0 0
0 0 0
910 910 010

²तेरस ❀जीवसमासेसु एगुणताला हवंति भंगा हु ।

पठमा छ सण्णिपञ्चत्तयस्स दो केवलीणं च ॥२६२॥

^१तेरससु पत्तेय तिण्णि तिण्णि । एव ३६ । सण्णिपज्जे सव्वभंगेसु पढमा छ

१	१	०	०	०					
१	०	१	०	०	१	केवलीणं चरमा दो	१	१	एव ३६।२।
१।०	१।०	१।०	१।०	०।०	१।०				

⁴सव्वे वि मिलिएसु य भंगवियप्पा हवंति गोयस्स ।

सत्तत्तरतालीसं एत्तो मोहं परं वोच्छं ॥२६३॥

[गोत्रकर्मणः] त्रयोदशजीवसमासेषु प्रत्येकं त्रयो भङ्गा भवन्ति । ते के ? उच्चगोत्रस्य बन्धः ? नीचगोत्रस्योदयः ० पुनर्नीचैर्गोत्रस्य बन्धः ० । नीचगोत्रस्योदयः ० । तत्र द्वयोरुच्चबन्ध-नीचोदय-नीचबन्धो-

दययोः ० सत्त्वयुगलम् । उच्चगोत्रस्य सत्त्वं १ नीचगोत्रस्य सत्त्वं ० इति द्वौ भङ्गौ १ ० ० ० । तृतीयभङ्गे ११० ११०

सर्वनीचगोत्रस्य बन्धः ० नीचगोत्रस्योदयः ० नीचगोत्रस्य सत्त्वं ० पुनर्नीचगोत्रस्य सत्त्वम् ० इति त्रयो
०
०१०

भङ्गाः । पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तं विना त्रयोदशजीवसमासेषु प्रत्येकं १ ० ० त्रयो [भङ्गा] भवन्ति ।
११० ११० ०१०

त्रिभिः ३ गुणितास्त्रयोदशेति एकोनचत्वारिंशद्भङ्गा विकल्पा ३६ भवन्ति । इति पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्यासे जीव-
समासे षट् प्रथमाः ये पूर्वं गोत्रस्य भङ्गाः सप्त कथितास्तन्मध्ये आदिमाः षट् विकल्पाः ।

वन्धः	१	१	०	०	०
उदयः	१	०	१	०	० १
सत्ता	१।०	१।०	१।०	०।०	१।० १।०

पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ते भवन्ति ६ । केवलिनोः निरस्तसंज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशयोः केवलिनोर्द्वयोरन्तिमौ द्वौ । एते ३६।६।२। पिण्डिताः ४७ सर्वे गोत्रस्य सप्तचत्वारिंशद्भजाः ॥२६१-२६३॥

इति जीवसमासेषु गोत्रस्य विकल्पाः समाप्ताः ।

1. संपञ्चसं ५, २८६ । 2. ५, २८७ । 3. ५, 'प्रत्येक त्रयस्त्रय' इत्यादिगद्यभागः' (पृ० १६३) ।

4. ५, २८८ ।

१. द् प्रतिमें न यह गाथा है और न उसकी संस्कृत टीका ही उपलब्ध है ।

❦ 'तेरे जीवसमासे' इति पाठः ।

उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनोका सत्त्वरूप प्रथम भङ्ग है। नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनोंका सत्त्वरूप द्वितीय भङ्ग है। तथा सर्वनीच अर्थात् नीचगोत्र का बन्ध, नीचगोत्रका उदय और नीचगोत्रका सत्त्वरूप तृतीय भङ्ग है। इस प्रकार गोत्रकर्मके पृथक्-पृथक् ये तीन भङ्ग होते हैं ॥२६१॥

स्पष्टीकरण—इन तीनों भङ्गोंकी अंकसंहति मूलमें दी है। उसमें एकका अंक उच्चगोत्रका और शून्य नीचगोत्रका बोधक जानना चाहिए।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तको छोड़कर शेष तेरह जीवसमासोंमें उक्त तीन-तीन भङ्ग होते हैं। अतएव तेरहको तीनसे गुणित करनेपर तेरह जीवसमासोंके उनतालीस भङ्ग हो जाते हैं। संज्ञी-पंचेन्द्रिय पर्याप्तके प्रारम्भके छह भङ्ग होते हैं। केवलीके अन्तिम दो भङ्ग होते हैं ॥२६२॥

स्पष्टीकरण—इसी प्रकरणके प्रारम्भमें गाथाङ्क १८ की व्याख्या करते हुए गोत्रकर्मके सात भङ्ग संहतिके साथ बतला आये हैं। उनमेंसे प्रारम्भके छह भङ्ग संज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्तके होते हैं। इनकी अङ्कसंहति मूलमें दी है। केवलीके उन सात भङ्गोंमेंसे अन्तिम दो भङ्ग होते हैं। इनकी भी अंकसंहति मूल में दी है। इस प्रकार सर्व मिलाकर (३६ + ६ + २ =) ४४ भङ्ग गोत्रकर्मके होते हैं।

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका उपसंहार करते हुए आगे मोहकर्मके भङ्गोंके कहने-की प्रतिज्ञा करते हैं—

ऊपर जो तेरह जीवसमासके उनतालीस संज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्तके छह और केवलीके दो भङ्ग बतलाये हैं, वे सब मिलकर गोत्रकर्मके तैंतालीस भङ्ग होते हैं। अब इससे आगे मोहकर्मके भङ्ग कहेंगे ॥२६३॥

अब पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार सप्तिकाकार जीवसमासोंमें मोहकर्मके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३०] अट्सु पञ्चसु एगे एय दुय दसय मोहबंधगए ।

तिउ चउ णव उदयगदे तिय तिय पण्णरस संतम्मि ॥२६४॥

	८	५	१
जीवसमासेषु	व० १	२	१०
	उ० ३	४	९
	सं० ३	३	१५

अथ मोहनीयस्य जीवसमासेषु बन्धादित्रिसंयोगभङ्गान् गाथाचतुष्केनाऽऽह—[‘अट्सु पञ्चसु एगे’ इत्यादि ।] अष्टसु जीवसमासेषु ८ पञ्चसु जीवसमासेषु ५ एकस्मिन् जीवसमासे १ च क्रमेण मोहप्रकृतीनां बन्धस्थानमेक १ द्विकं २ दशक १० च, तथा मोहप्रकृत्युदयस्थानं त्रयं ३ चतुष्कं ४ नवकं ९, तथा मोह-प्रकृतीनां सत्त्वस्थानं त्रिकं ३ च त्रिक ३ च पञ्चदशकं च १५ भवन्ति ॥२६४॥

	जीवस० ८	जीवस० ५	जीवस० १
बन्ध	१	२	१०
उदय.	३	४	९
सत्ता	३	३	१५

आठ, पाँच और एक जीवसमासमें मोहकर्मके क्रमशः एक, दो और दश बन्धस्थान, तीन, चार और नौ उदयस्थान; एवं तीन-तीन और पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं ॥२६४॥

इनकी अंकसंहति मूलमें दी है।

अब भाष्यगाथाकार उक्त मूलगाथाके अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

^१सत्त अपञ्जत्तेसु य पञ्जत्ते सुहुम तह य अट्टसु य ।

वावीसं बंधोदय-संता पुण तिणिण पढमिल्ला ॥२६५॥

अट्टसु बंधे २२ उदये १०।१।८। संते २८।२७।२६।

एकेन्द्रियसूक्ष्म १ वादर १ द्वि १ त्रि १ चतुरिन्द्रिय १ पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यऽ १ संज्ञि १ जीवापर्याप्ताः सप्त । एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्त एकः १ एवमष्टसु जीवसमासेषु ८ मोहप्रकृतिबन्धस्थानं द्वाविंशतिकम् २२ । किं तत् ? मिथ्यात्व १ कषायाः १६ वेदानां त्रयाणां मध्ये एकतरवेदः १ हास्य-शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्मं २ भय-जुगुप्साद्वयं २ इति द्वाविंशतिक मोह[बन्ध-]स्थानं अष्टसु जीवसमासेषु बन्धमायाति २२ । तत्र मोहोदयस्थानानि आद्यानि त्रीणि ३—१०।१।८ । मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि आद्यानि त्रीणि ३—२८।२७। २६ । किं तत् उदये ? मिथ्यात्वमेक १ षोडशकषायाणां मध्ये एकतरकषायचतुष्कं ४ वेदत्रयाणां मध्ये एकतरवेदः १ हास्यादियुग्मं २ भयं १ जुगुप्सा १ एव मोहप्रकृत्युदयस्थानं दशकम् १० । इदं भयरहितं नवकम् ९ । इदं जुगुप्सारहितमष्टक स्थानम् ८ । मोहस्य सर्वप्रकृतिसत्त्व २८ । अतः सम्यक्त्वप्रकृत्युद्बलिते २७ । अतः मिश्रप्रकृत्युद्बलिते इदं २६ ॥२६५॥

सातों अपर्याप्तक, तथा सूक्ष्म पर्याप्तक, इन आठों जीवसमासोंमें बाईसप्रकृतिक बन्धस्थान के साथ आदिके तीन उदयस्थान और तीन सत्तास्थान होते हैं ॥२६५॥

आठ जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकमें बन्धस्थान २२ में उदयस्थान १०, ९, ८ प्रकृतिक और सत्तास्थान २८, २७, २६, प्रकृतिक तीन-तीन होते हैं ।

^२पंचसु पञ्जत्तेसु य पञ्जत्तयसण्णिणामगं वज्जत् ।

हेट्ठिम× दो चउ तिणिण य वंधोदयसंतठाणाणि ॥२६६॥

^३पंचसु पञ्जत्तेसु बंधे २२।२१। उदये १०।१।८। संते २८।२७।२६।

पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तक वर्जयित्वा एकेन्द्रियवादर १ द्वीन्द्रिय १ त्रीन्द्रिय १ चतुरिन्द्रिय १ पञ्चेन्द्रियासंज्ञि १ पर्याप्तेषु पञ्चसु जीवसमासेषु ५ आदिमे द्वे मोहबन्धस्थाने द्वाविंशतिकै २२ कविशतिके २१ भवतः । आदिमानि चत्वारि मोहप्रकृत्युदयस्थानानि १०।१।८।७ । आदिमानि त्रीणि मोहसत्त्वस्थानानि २८।२७।२६ ॥२६६॥

पञ्चसु पर्याप्तेषु बन्धे २२।२१ उदये १०।१।८। संतायाः २८।२७।२६ ।

पर्याप्त संज्ञीनामक जीवसमासको छोड़कर शेष पाँच पर्याप्तक जीवसमासोंमें अधस्तन दो बन्धस्थान, चार उदयस्थान और तीन सत्तास्थान होते हैं ॥२६६॥

पाँच पर्याप्तक जीवसमासोंमें बन्धस्थान २२, २१ प्रकृतिक दो; उदयस्थान १०, ९, ८, ७ प्रकृतिक चार और सत्तास्थान २८, २७, २६ प्रकृतिक तीन होते हैं ।

^४दस णव पण्णरसाइ वंधोदयसंतपयडिठाणाणि ।

सण्णिपञ्जत्तयाणं संपुण्ण त्ति+ बोहव्वा ॥२६७॥

^५सण्णिपञ्जत्ते सव्वाणि बंधे २२।२१।१७।१३।१।५।४।३।२।१। उदये १०।१।८।७।६।५।४।३।२।१। संते २८।२७।२६।२५।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१ ।

१. सं०पञ्चसं० ५, २८६ । २. ५, २६० । ३. ५, 'पञ्चाना पूर्णाना' इत्यादिगद्याशः (पृ० १६४) ।

४. ५, २६१ । ५. ५, 'सज्जिनि पूर्णे' इत्यादिगद्याशः । (पृ० १६४) ।

† वज्जा, द वज्जं । × द आदिम । + द इदि ।

एकस्मिन् पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्यासे जीवसमासे चतुर्दश मोहप्रकृतिबन्धस्थानानि २२।२१।१७।१३।
६।५।४।३।२।१। नव मोहप्रकृत्युदयस्थानानि १०।६।८।७।५।४।३।२।१। पञ्चदश मोहनीयप्रकृतिसत्त्व-
स्थानानि सम्पूर्णानि भवन्तीति ज्ञातव्यम् । एतत्सर्वं पूर्वं व्याख्यातमेव ॥२६७॥

इति जीवसमासेषु मोहनीयस्य बन्धादित्रिकसयोगविकल्पाः समाप्ताः ।

संज्ञी पर्याप्तक जीवोंके बन्धस्थान दश, उदयस्थान नौ और सत्त्वस्थान पन्द्रह होते हैं ।
अर्थात् इस चौदहवे जीवसमासमें सम्पूर्ण बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान जानना
चाहिए ॥२६७॥

संज्ञी पर्याप्तकमें सभी बन्ध, उदय और सत्तास्थान होते हैं । उनको अङ्कसंज्ञि इस प्रकार
है—बन्धस्थान २२, २१, १७, १३, ६, ५, ४, ३, २, १ । उदयस्थान १०, ६, ८, ७, ५, ४, ३,
२, १ । सत्तास्थान २८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १ ।

इस प्रकार जीवसमासोंमें मोहकर्मके बन्धादि स्थानोंका निरूपण किया ।

अब मूल सप्ततिकाकार जीवसमासोंमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्तास्थान
सम्यन्धी भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३१] ^१सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य वायरो चेव ।

वियलिंदिया य तिणिण दु तहा असण्णी य सण्णी य ॥२६८॥

७।१।१।३।१।१।

[मूलगा० ३२] ^२पणय दुय पणय पणयं चदु पण वंधुदय संत पणयं च ।

पण छक्क पणय छ छक्क पणय अट्टट्टमेयारं ॥२६९॥

अप०	७	१सु०	१	वा०	३	वि०	१अस०	१स०
वं०	५	५	५	५	६	८	८	८
उ०	२	४	५	६	६	८	८	८
स०	५	५	५	५	५	५	५	११

अथ जीवसमासेषु नामकर्मप्रकृतिबन्धोदयसत्त्वस्थानत्रिकसयोगान् याजयति—['सत्तेव अपज्जत्ता'
इत्यादि ।] सप्तापर्याप्तका जीवाः स्वामिनः ७ एकः सूक्ष्मो जीवः १ एको वायरो जीवः १ विकलत्रयजीवा-
स्तय ३ तथाऽसंज्ञी जीव एक १ संज्ञी जीव एक १ इति चतुर्दश जीवाः स्वामिनः ॥२६८॥

क्रमादेषा स्वामिसंख्या ७।१।१।३।१।१ ।

अथैतेषु बन्धादिस्थानसंख्यामाह—['पणय दुय पणय पणय' इत्यादि ।] एकेन्द्रियसूक्ष्म १ वादर
२ द्वि ३ त्रि ४ चतु ५ पञ्चेन्द्रियासंज्ञि ६ संज्ञि ७ जीवापर्याप्तेषु सप्तसु नामप्रकृतिबन्धोदयसत्त्वस्थानानि
पञ्च ५ द्वे २ पञ्च ५ सर्वसूक्ष्मैकजीवसमासेषु पञ्च ५ चत्वारि ४ पञ्च ५ सर्ववादरैकजीवसमासेषु पञ्च ५ पञ्च
५ पञ्च ५, विकलत्रयजीवसमासेषु पञ्च ५ पट् ६ पञ्च ५, असंज्ञिषु पट् ६ पट् ६ पञ्च ५, संज्ञिषु अष्टा ८
पट् ८ काटण ११ ॥२६९॥

	अपर्याप्तेषु ७	सूक्ष्म० १	वादर० १	विकल० ३	अस० १	संज्ञि०
बन्धः	५	५	५	५	६	८
उदयः	२	४	५	६	६	८
सत्ता	५	५	५	५	५	११

१ स० पञ्चस० ५, २६४ । २. ५, २६२-२६३ ।

१. सप्ततिका० ३८ । २. सप्ततिका० ३७ ।

पाँच बन्धस्थान, दो उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी सातों ही अपर्याप्तक जीवसमास है। पाँच बन्धस्थान, चार उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी सूक्ष्म एकेन्द्रिय-पर्याप्तक हैं। पाँच बन्धस्थान, पाँच उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी बादर एकेन्द्रियपर्याप्तक हैं। पाँच बन्धस्थान, छह उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी तीनों विकलेन्द्रिय हैं। छह बन्धस्थान, छह उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक हैं। तथा आठ बन्धस्थान, आठ उदयस्थान और ग्यारह सत्तास्थानके स्वामी संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्तक जीव हैं ॥२६८-२६९॥

इनकी अंकसंज्ञा मूल और टीकामें दी हुई है।

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

^१सत्तेव य पञ्जत्ते तेवीसं पंचवीस छव्वीसं ।

ऊणत्तीसं तीसं बंधवियप्पा हवन्ति त्ति ॥२७०॥

सत्त अपज्जत्तेसु बंधट्टाणाणि २३।२५।२६।२८।३०

तानि कानीति चेदाह—['सत्तेव य पञ्जत्ते' इत्यादि] सप्तसु अपर्याप्तेषु जीवसमासेषु नामप्रकृतिबन्धस्थानानि पञ्च—त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ नवविंशतिकं २८ त्रिंशत्कं ३० चेति । बन्धविकल्पाः पञ्च भवन्ति ॥२७०॥

२३।२५।२६।२८।३०।

सातों ही अपर्याप्तक जीवसमासोंमें तेईस, पच्चीस, छव्वीस, उनतीस और तीसप्रकृतिक पाँच बन्धस्थान होते हैं ॥२७०॥

सातों अपर्याप्तकोंमें २३, २५, २६, २८, ३० प्रकृतिक पाँच बन्धस्थान होते हैं ।

^२सुहुम-अपज्जत्ताणं उदओ इगिवीसयं तु वोहव्वो ।

वायरपज्जत्तेदरउदओ चउवीसमेव जाणाहि ॥२७१॥

उदया २१।२४।

एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्तानां स्थावरलब्धपर्याप्तकानां नामप्रकृत्युदयस्थानमेकविंशतिकं २१ ज्ञातव्यम् । एकेन्द्रियवादरापर्याप्तानां चतुर्विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं २४ जानीहि ॥२७१॥

एकेन्द्रियसूक्ष्म-वादरपर्याप्तयोः उदयस्थानद्वयम् २१।२४ ।

सूक्ष्म अपर्याप्तकोके इक्कीसप्रकृतिक एक उदयस्थान जानना चाहिए । वादर अपर्याप्तकोंके चौबीसप्रकृतिक एक ही उदयस्थान जानो ॥२७१॥

सूक्ष्म अपर्याप्तकके २१ प्रकृतिक और वादर अपर्याप्तकके २४ प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं ।

^३सेस-अपज्जत्ताणं उदओ दो चेव होंति णायव्वा ।

इगिवीसं छव्वीसं एत्तो सत्तं भणिस्सामो ॥२७२॥

२१।२६

शेषाणां पञ्चानामपर्याप्तानां त्रसलब्धपर्याप्तानां द्वे उदयस्थाने भवतः । किं तत् नामप्रकृत्युदयस्थानम् ? एकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं च । अतः परं तत्र सत्त्वस्थानानि वयं भणिष्यामः ॥२७२॥

पञ्चानामप्यपर्याप्तानामुदये २१।२६।

शेष अपर्याप्त जीवसमासोके इक्कीस और छत्तीसप्रकृतिक दो ही उदयस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। अब इससे आगे सातों अपर्याप्त जीवसमासोके सत्तास्थान कहेंगे ॥२७२॥
शेष अपर्याप्तकोके उदयस्थान २१ और २६ प्रकृतिक दो होते हैं।

^१तेसु य संतङ्गाणा वाणउदी णवदिमेव जाणाहि ।

अडसीदी चेव तहा चउ वासीदी य संतया होंति ॥२७३॥

सते ६२।६०।८८।८४।८२। 'सत्त अपज्जत्तेसु' ति गय ।

तयोर्नामप्रकृतिबन्धोदययोर्वा अपर्याप्तकसप्तके वा नामप्रकृतिसत्त्वस्थानं द्वानवतिक ६२ नवतिकं ६० अष्टाशीतिकं ८८ चतुरशीतिकं ८४ द्व्यशीतिकं ८२ चेति सत्तायाः पञ्च सत्त्वस्थानानि भवन्तीति जानाहि ॥२७३॥

६२।६०।८८।८४।८२ इति सप्तसु अपर्याप्तेषु व्याख्यानं गत पूर्णं जातम् ।

उन्हीं सातों अपर्याप्त जीवसमासोमे वानवै, नव्वै, अट्टासी, चौरासी और विथासी-प्रकृतिक पाँच सत्तास्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२७३॥

सातों अपर्याप्तकोमें ६२, ६०, ८८, ८४, ८२ प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं ।

^२ते चिय बंधङ्गाणा संता वि तहेव सुहुमपज्जत्ते ।

चत्तारि उदयठाणा इगि चउ पणवीस छव्वीसा ॥२७४॥

^१सुहुमपज्जत्ते बंधा २३।२५।२६।२६।३०। उदया २१।२४।२५।२६। संता ६२।६०।८८।८४।८२ ।

तान्येव पूर्व अपर्याप्तसप्तकोक्तनामबन्धस्थानानि तथैव सत्त्वस्थानानि च सूक्ष्मपर्याप्तकेषु बन्ध-स्थानानि २३।२५।२६।२६।३० । सत्त्वस्थानानि ६२।६०।८८।८४।८२ भवन्ति । एकविंशतिक २१ चतु-विंशतिक २४ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ इत्युदयस्थानानि चत्वारि भवन्ति—२१।२४।२५।२६ ॥२७४॥

सूक्ष्मपर्याप्तके जीवसमासे बन्धा २३।२५।२६।२६।३० । उदया. २१।२४।२५।२६ । सत्त्वानि ६२।६०।८८।८४।८२ ।

सूक्ष्मपर्याप्त जीवसमासमे वे ही पूर्वोक्त पाँच बन्धस्थान और पाँच सत्त्वस्थान होते हैं । किन्तु उदयस्थान इक्कीस, चौवीस, पच्चीस और छत्तीस प्रकृतिक चार होते हैं ॥२७४॥

सूक्ष्मपर्याप्तमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २६, ३०, उदयस्थान २१, २४, २५, २६ और सत्त्वस्थान २२, ६०, ८८, ८४, ८२ होते हैं ।

^३वायर पज्जत्तेसु वि ते चेव य होंति बंध-संतङ्गाणाणि ।

इगिवीसं ठाणादी सत्तावीसं ति ते उदया ॥२७५॥

^१वायर-पुड्ढियपज्जत्ते बंधा २३।२५।२६।२६।३०। उदया २१।२४।२५।२६।२७। सत्ता ६२।६०।८८।८४।८२।

तान्येव सूक्ष्मपर्याप्तोक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि वादरैकेन्द्रियपर्याप्तजीवसमासे भवन्ति २३।२५।२६।२६।३० । सत्त्वस्थानानि ६२।६०।८८।८४।८२ । एकविंशतिकादि-सप्तविंशतिपर्यंतोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७ भवन्ति ॥२७५॥

१ संपञ्चसं ५, २६८ । २. २६६ । ३. ५, 'सूक्ष्मे पूर्णे बन्धाः' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० १६५)

४. ५, ३०० । ५. ५, 'पूर्णे बन्धाः' इत्यादिगद्याशः । (पृ० १६५)

एकेन्द्रियबादरपर्याप्तके बन्धाः २३।२५।२६।२६।३० । उदयाः २१।२४।२५।२६।२७ । सत्ताः ६२।६०।८८।८४।८२ ।

बादर पर्याप्त जीवसमासमे वे ही पूर्वोक्त पाँच बन्धस्थान और पाँच सत्त्वस्थान होते हैं । किन्तु उदयस्थान इक्कीस प्रकृतिसे लेकर सत्ताईस प्रकृतिक तकके पाँच होते हैं ॥२७५॥

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकमें बन्धस्थान २१, २५, २६, २६, ३० होते हैं । उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७ होते हैं और सत्त्वस्थान ६२, ६०, ८८, ८४, ८२ होते हैं ।

^१वियलिंदिएसु तेन्चिय पुव्वुत्ता बंध-संतठाणाणि ।

तीसिगितीसुगुतीसा इगिछव्वीसद्वीसुदया ॥ २७६॥

^२वियलिंदिएसु बंधा २३।२५।२६।२६।३० । उदया २१।२६।२८।२६।३०।३१ संता ६२।६०।८८।८४।८२ ।

विकलत्रये पर्याप्ते तान्येव पूर्व सूच्योक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि २३।२५।२६।२६।३० । सत्ता, ६२।६०।८८।८४।८२ । त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ एकोनत्रिंशत्कं २६ एकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ इत्युदयस्थानानि षड् भवन्ति ॥२७६॥

विकलत्रयप र्याप्तजीवसमासेषु प्रत्येक बन्धाः २३।१५।२६।२६।३० । उदयाः २१।२६।२८।२६।३०।३१ । सत्त्वानि ६२।६०।८८।८४।८२ ।

विकलेन्द्रिय जीवसमासोंमे वे ही पूर्वोक्त पाँच बन्धस्थान और पाँच सत्तास्थान होते हैं । किन्तु उदयस्थान इक्कीस, छव्वीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इक्तीस प्रकृतिक छह होते हैं ॥२७६॥

विकलेन्द्रियोमे बन्धस्थान २३, २५, २६, २६, ३०; उदयस्थान २१, २६, २८, २६, ३०, ३१ और सत्तास्थान ६२, ६०, ८८, ८४, ८२ होते हैं ।

^३पज्जत्तासणीसु वि बंधा तेवीसमाह तीसंता ।

तेसिं चिय संतुदया सरिसा वियलिंदियाणं तु ॥२७७॥

^४असण्णिपज्जत्ते बंधा २३।२५।२६।२८।२६।३० । उदया २१।२६।२८।२६।३०।३१ । संता ६२।६०।८८।८४।८२ ।

असण्णिपचेन्द्रियपर्याप्तकेषु बन्धाः त्रयोविंशत्यादित्रिंशदन्ताः नामप्रकृतिबन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकषड्विंशतिकषड्विंशतिकाष्टाविंशतिकनवविंशतिकत्रिंशत्कानि षड् भवन्ति । तेषां विकलेन्द्रियाणां सदृशाणि सत्त्वोदयस्थानानि भवन्ति ॥२७७॥

असण्णिपचेन्द्रियपर्याप्तके जीवसमासे बन्धाः २३।२५।२६।२८।२६।३० । उदयाः २१।२६।२८।२६।३०।३१ । सत्त्वानि ६२।६०।८८।८४।८२ ।

पर्याप्त असंजी जीवोंमें तेईसप्रकृतिकको आदि लेकर तीसप्रकृतिक पर्यन्तके छह बन्धस्थान होते हैं । तथा उनके उदयस्थान और सत्तास्थान विकलेन्द्रियोंके सदृश ही जानना चाहिए ॥२७७॥

असंजी पर्याप्तकोंमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २६, ३०; उदयस्थान २१, २६, २८, २६, ३०, ३१ और सत्तास्थान ६२, ६०, ८८, ८४, ८२ होते हैं ।

१. स० पञ्चस० ५, ३०१-३०२ । २. ५, २३ इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६५) । ३. ५, ३०३ ।

४. ५, 'बन्धाः २३' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६६) ।

^१सन्वे वि बंधाणा सण्णी पज्जत्तयस्स बोहव्वा ।

चउवीस णवय अट्ठ य वज्जित्ता उदय पज्जत्ते ॥२७८॥

^२तस्स दु संतट्ठाणा उवरिम दो वज्जिदूण हेट्ठिल्ला ।

दोण्हं पि केवलीणं तीसिगितीसट्ठ णव उदया ॥२७९॥

^३णव दस सत्तत्तरियं अट्ठत्तरियं च संतट्ठाणाणि ।

ऊणासीदि असीदी बोहव्वा होंति केवल्लिणो ॥२८०॥

^४सण्णिपज्जत्ते यथा २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२ । उदया २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । संता २३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४० ।

^५णव सण्णिणव असण्णीणं उदया ३१।३०।३१।३२ । सता ८०।७९।७८।७७।७६।७५।७४ ।

इदि जीवसमासपरूवणा समत्ता ।

पचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तजीवस्य सर्वाणि बन्धस्थानान्यष्टौ भवन्तीति ज्ञातव्यम् २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२ । चतुर्विंशतिक-नवकाष्टकं स्थानत्रय वर्जयित्वा न्यान्यष्टौ सर्वाण्युदयस्थानानि पचेन्द्रिय-संज्ञिपर्याप्तके भवन्ति २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । तु पुनस्तस्य पचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकस्यो-परिमद्वये दशक नवकस्थानद्वयं वर्जयित्वा एकादश सत्त्वस्थानानि भवन्ति । सयोगायोगिकेवल्लिनोर्द्वयोः त्रिंशत्कै ३० कत्रिंशत्क ३१ नवका ६ एकानि ८ चत्वार्युदयस्थानानि भवन्ति । नवक ६ दशक १० सप्तसप्ततिका ७७ षट्सप्ततिकानि ७८ च । पुन एकोनार्शति ७९ अशीतिक ८० चेति पट् नामप्रकृति-सत्त्वस्थानानि केवलज्ञानिनो बोधव्यानि भवन्ति ॥२७८-२८०॥

पचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तजीवसमासे बन्धा. २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१ । उदयाः २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वानि २३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४० । सज्यसंज्ञिव्यपदेश-रहितयोः सयोगायोगद्वययोर्बन्धरहितयोरुदयस्थानानि ३०।३१।३२ । सत्त्वस्थानानि ८०।७९।७८।७७।७६।७५।७४ ।

अपर्याप्तसप्तकेषु प्रत्येकम्

सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ते

बादरैकेन्द्रियपर्याप्ते

बन्धः	उदयः	सत्त्वम्	बन्धः	उदयः	सत्त्वम्	बन्धः	उदयः	सत्त्वम्
५	२	५	५	४	५	५	५	५
२३	२१।२१	६२	२३	२१	६२	२३	२१	६२
२५	२४।२६	६०	२५	२४	६०	२५	२४	६०
२६	०	८८	२६	२५	८८	२६	२५	८८
२८	०	८४	२८	२६	८४	२८	२६	८४
३०	०	८२	३०	०	८२	३०	२७	८२

१. स०पञ्चस० ५, ३०४ । २ ५, ३०५ । ३ ५, ३०६ । ४ ५, 'बन्धा २३' इत्यादिगद्याशः (पृ० १६६) । ५. ५, 'उदये ३०' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६६) ।

विकलत्रयेषु प्रत्येकम्

वन्धः	उदयः	सत्त्वम्
५	६	५
२३	२१	६२
२५	२६	६०
२६	२८	८८
२६	२६	८४
३०	३०	८२
	३१	

असंज्ञिपर्याप्ते

वन्धः	उदयः	सत्त्वम्
६	६	५
२३	२१	६२
२५	२६	६०
२६	२८	८८
२८	२६	८४
२६	३०	८२
३०	३१	

संज्ञिपर्याप्ते

वन्धः	उदयः	सत्त्वम्
८	८	११
२३	२१	६३
२५	२५	६२
२६	२६	६१
२८	२७	६०
२६	२८	८८
३०	२६	८४
३१	३०	८२
१	३१	८०
		७६
		७८
		७७

सयोगायोगयोः

वन्धः	उदयः	सत्त्वम्
०	४	६
०	३०	८०
०	३१	७६
०	६	७८
०	८	७७
०		१०
०		६

समुद्रातकेवलिनि

वन्धः	उदयः	सत्त्वम्
०	१०	६
०	२०	८०
०	२१	७६
०	२६	७८
०	२७	७७
०	२८	१०
०	२६	६
०	३०	
०	३१	
०	६	
०	८	

इति जीवसमासप्ररूपणा समाप्ता ।

पर्याप्त संज्ञी जीवोंमें सर्व ही वन्धस्थान जानना चाहिए । उदयस्थान चौबीस, नौ और आठ प्रकृतिक तीनको छोड़कर शेष आठ होते हैं । उसके सत्तास्थान उपरिम दोको छोड़कर अधस्तन ग्यारह होते हैं । तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्त्ता दोनों ही केवलियोंके तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं । उन्हीं केवलियोंके सत्तास्थान अस्सी, उन्यासी, अट्ठहत्तर, सतहत्तर दश और नौप्रकृतिक छह होते हैं ॥२७८-२८०॥

संज्ञी पर्याप्तके वन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक आठ होते हैं । उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ प्रकृतिक आठ होते हैं । सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८ और ७७ प्रकृतिक ग्यारह होते हैं ।

इस प्रकार जीवसमासोंमें नामकर्मके वन्ध, उदय और सत्तास्थानोंका निरूपण समाप्त हुआ ।

अब मूल सप्ततिकार ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मके बन्धादिस्थानोंका गुणस्थानोंमें वर्णन करते हैं—

[मूलगा० ३३] ^१णाणावरणे विग्धे बंधोदयसंत पंचठाणाणि ।

मिच्छाद्दसगुणेषु खीणवसंतेषु पंच संतुदया^१ ॥२८१॥

व० ५ ५	व० ० ०
^२ मिच्छाद्दगुणेषु दससु उ० ५ ५ अवंधगोवसत-खीणार्ण	उ० ५ ५
सं० ५ ५	सं० ५ ५

अथाष्टकर्मणामुत्तरप्रकृतीनां बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रिसंयोगमङ्गान् गुणस्थानेषु प्ररूपयति । [तत्र] आदौ ज्ञानावरणान्तरायप्रकृतिबन्धादित्रिसंयोगान् गुणस्थानेष्वह—[‘णाणावरणे विग्धे’ इत्यादि ।] मिथ्या-दृष्ट्यादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तगुणस्थानेषु दशसु ज्ञानावरणान्तराययोर्वन्धोदयसत्त्वस्थानानि पञ्च पञ्च प्रकृतयो भवन्ति ५।५।५। बन्धोपरमेऽप्युपशान्त-क्षीणकपाययोरुदयसत्त्वे तथा पञ्च पञ्च प्रकृतयः स्युः । उदयरूपाः पञ्च प्रकृतयः ५ सत्त्वरूपाः पञ्च प्रकृतयः ५ इत्यर्थः ॥२८१॥

व० ५ ५	व० ० ०
मिथ्यादिषु दशसु उ० ५ ५ अवन्धकयोरुपशान्त-क्षीणकपाययोः	उ० ५ ५
सं० ५ ५	सं० ५ ५

ज्ञानावरणान्तराययोर्वन्धादित्रिकयन्त्रम्—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	सं०	अ०
व०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०	०
उ०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०
सं०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०

मिथ्यात्व आदि दश गुणस्थानोंमें ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मके पाँचप्रकृतिक बन्धस्थान, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और पाँचप्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं । इन दोनों ही कर्मोंके बन्धसे रहित उपशान्तमोह और क्षीणमोह नामक ग्यारहवें-चारहवें गुणस्थानमें पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ॥२८१॥

	ज्ञाना०	अन्त०
व०	५	५
मिथ्यात्व आदि दश गुणस्थानोंमें—	उ० ५	५
	सं० ५	५
व०	०	०
अवन्धक उपशान्त और क्षीणमोहमें	उ० ५	५
	सं० ५	५

१. ५, ३०७ । २. ५, ‘गुणस्थानदशके’ इत्यादिगद्याशः (पृ० १६६) ।

१. सप्ततिका० ३६ ।

अब मूलसप्ततिकाकार गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३४] ^१णव छक्कं चत्तारि य तिणिण य ठाणाणि दंसणावरणे ।

बन्धे संते उदये दोणिण य चत्तारि पंच वा होंति ॥२८२॥

अथ गुणस्थानेषु दर्शनावरणस्य प्रकृतिबन्धादिसंयोगभङ्गान् गाथाचतुष्केणाऽऽह—['णव छक्कं चत्तारि य' इत्यादि ।] दर्शनावरणे बन्धे नवकं ६ पट्कं ६ चतुष्कं चेति दर्शनावरणस्य बन्धस्थानानि त्रीणि । सत्तायां दर्शनावरणस्य सत्त्वस्थानत्रयं नवात्मकं ६ पडात्मकं ६ चतुरात्मकं ४ । दर्शनावरणस्य प्रकृत्युदयस्थानद्वयं जाग्रज्जीवे प्रथमं प्रकृतिचतुरात्मकं ४ वा अथवा निद्रितेषु द्वितीयमेकतरनिद्रया सहितं तदेव पञ्चात्मकं ५ इति दर्शनावरणस्य बन्धे त्रीणि ३ सत्ताया त्रीणि ३ उदये द्वे स्थानानि भवन्ति ॥२८२॥

दर्शनावरण कर्मके बन्धस्थान और सत्त्वस्थान तीन तीन होते हैं—नौ प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और चार प्रकृतिक । उदयस्थान दो होते हैं—पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक ॥२८२॥

अब भाष्यगाथाकार इन्हीं स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

^२णव सव्वाओ छक्कं थीणतियं रहिय दंसणावरणे ।

णिद्वापयलाहीणा चत्तारि य बंध-संताणि ॥२८३॥

६।६।४

दर्शनावरणस्य सर्वा नव प्रकृतयो बन्धरूपाः ६ । दर्शनावरणस्य सर्वा नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाः ६ स्थानगृद्धित्रयरहिता पट् प्रकृतयो बन्धरूपाः ६ । एता निद्रा-प्रचलाद्वयरहिताश्चतुःप्रकृतयो बन्धरूपाः ४ चतुःप्रकृतयः सत्त्वरूपाश्च ४ ॥२८३॥

बन्धे ६।६।४ सत्तायां ६।६।४।

नौ प्रकृतिक बन्ध और सत्त्वस्थानमें दर्शनावरणकी सर्व प्रकृतियाँ होती हैं । छह प्रकृतिक-स्थान स्थानगृद्धित्रिकसे रहित होता है । तथा चार प्रकृतिकस्थान निद्रा और प्रचलासे हीन जानना चाहिए ॥२८३॥

सर्व प्रकृतियों ६ । स्थानत्रिक विना ६ । निद्रा-प्रचला विना ४ ।

^३णेत्ताइदंसणाणि य चत्तारि उदिति दंसणावरणे ।

णिद्वाई पंचस्स हि अण्णयरुदण्ण पंच वा जीवे ॥२८४॥

दर्शनावरणस्य नेत्रादिचक्षुर्दर्शनानि चत्वारि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि चत्वारि ४ जाग्रन्निद्रिते जीवे सदोदयन्ति उदय गच्छन्ति । जाग्रज्जीवे मिथ्यादृष्ट्यादि-क्षीणकपायचरमसमयान्तं चक्षुर्दर्शनावरणादि-चतुष्कं निरन्तरोदय गच्छतीत्यर्थः । वा निद्रिते जीवे प्रसक्तपर्यन्तं स्थानगृद्ध्यादिपञ्चसु मध्ये एकस्यां उपरि क्षीणकपायद्विचरमसमयपर्यन्तं निद्रा-प्रचलयोरेकस्यां चोदितायां पञ्चात्मकमेव दर्शनावरणचतुष्कं ४ निद्रिते कयाचिदेकया निद्रया सह पञ्चप्रकृत्युदयस्थानमित्यर्थः ५ ॥२८४॥

१. सं० पञ्चसं० ५, ३०८ । २. ५, ३०६ । ३. ५, ३१० ।

१. सप्ततिका० ३६, परं तत्रेदृक् पाठः—

मिच्छा साणे विद्दुं नव चउ पण नव य संता ।

मिस्साइ नियट्ठीओ छच्चउ पण णव य संतकम्मंसा ॥

दर्शनावरणकर्मकी चतुर्दर्शनावरणादि चारों प्रकृतियोंका उदय उनकी उदयव्युच्छिन्ति होने तक बराबर बना रहता है। तथा जीवके सुप्त दशामे पाँचों निद्राओंमेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय रहता है। इस प्रकार जागृत दशामें चार प्रकृतिक उदयस्थान और सुप्त दशामें पाँच प्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए ॥२८४॥

अब गुणस्थानोंमें दर्शनावरणके बन्धादिस्थानोंका निरूपण करते हैं—

मिच्छामि सासणमि य णव होंति बंध-संतेहिं ।

छब्बंधे णव संता मिस्साइ-अपुव्वपढमभायंते ॥२८५॥

मिथ्यादृष्टिसामादनयोर्दर्शनावरणस्य नव प्रकृतयो बन्धरूपाः ६ नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाश्च भवन्ति ६ । मिश्राद्यपूर्वकरणप्रथमभागान्तेषु गुणस्थानेषु स्थानगृद्धित्रय विना षट्बन्धकेषु ६ दर्शनावरणस्य नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाः भवन्ति ६ ॥२८५॥

मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानमें नौ प्रकृतिक बन्धस्थान और नौ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं। मिश्र गुणस्थानको आदि लेकर अपूर्वकरणके प्रथम भागपर्यन्त छहप्रकृतिक बन्धस्थान और नौप्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं ॥२८५॥

[मिच्छे सासणे य]	६	६	१ मिस्साइअपुव्वकरणपढमसत्तमभाय जाव	६	६
	४	५		४	५ ।
	६	६		६	६
मिथ्यादृष्टि-सामादनयो	बं०	६ ६	मिश्राद्येवपूर्वकरणद्वयप्रथमसप्तमभाग यावत्	बं०	६ ६
	उ०	४ ५		उ०	४ ५ ।
	स०	६ ६		स०	६ ६
बंध ६ ६					
मिथ्यात्व और सासादनमें उ० ४ ५ मिश्रसे लेकर अपूर्वकरणके प्रथम सप्तम भाग तक					
स० ६ ६					

६ ६

४ ५ इस प्रकार बन्धादिस्थानोंकी रचना जानना चाहिए ।

६ ६

२चउबंधयमि दुविहापुव्वणियड्डीसु सुहुमउवसमए ।

णव संता अणियड्डी-खवए सुहुमखवयमि छच्चेव ॥२८६॥

चतुर्विधबन्धकेषु द्विविधापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायोपशमकेषु नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाः ६ । तथाहि—अपूर्वकरणस्य द्वितीयभागादि-षट्भागान्तस्योपशम-क्षपकश्रेणिद्वयगतस्य दर्शनावरणचतुर्वन्धकस्य ४ दर्शनावरणप्रकृतयो नव सत्त्वरूपाः ६ भवन्ति । अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोर्दर्शनावरणचतुर्वन्धकयो-रुपशमश्रेणोर्नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाः सन्ति ६ । अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायप्रक्षपकश्रेण्योश्चतुर्वन्धकयोः स्थानत्रिक विना षट् प्रकृतयः सत्त्वरूपाः स्युः ६ ॥२८६॥

दोनों प्रकारके अर्थात् उपशामक और क्षपक अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें, उपशामक सूक्ष्मसाम्परायमें चारप्रकृतिक बन्धस्थान और नौप्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं। अनिवृत्तिकरण क्षपक और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकमें चारप्रकृतिक बन्धस्थान और छहप्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं ॥२८६॥

1. सं० पञ्चसं ५, मिश्राद्ये' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६७) । 2. ५, ३११-३१२ ।

४ ४

^१दुविधेसु खवगुवसमग-अउव्वकरणानियट्टिकरणेसु तह उवसम-सुहुमकसाए ४ ५ अणियट्टि-सुहुम-
६ ६

४ ४
खवणाणं ४ ५ ।
६ ६

वं० ४ ४

क्षपकोपशमयुक्तशेषापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायोपशमकेषु ४ ५ अनिवृत्तिकरण-
स० ६ ६

वं० ४ ४
सूक्ष्मसाम्परायक्षपकयोः उ० ४ ५ ।
स० ६ ६

क्षपक और उपशामक इन दोनों प्रकारके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें तथा उप-
वं० ४ ४
शामक सूक्ष्मसाम्परायमें बन्धस्थानादिकी रचना इस प्रकार है—उ० ४ ५ क्षपक अनिवृत्तिकरण
स० ६ ६

४ ४
और सूक्ष्मसाम्परायमें रचना इस प्रकार है—४ ५ ।
६ ६

[मूलगा० ३५] ^२उवरयवंधे संते संता णव होंति छच्च खीणम्मि ।
खीणंते संतुदया चउ तेसु चयारि पंच वा उदयं' ॥२८७॥

उपरतबन्धे शान्ते उपशान्तकपाये दर्शनावरणप्रकृतयो नव सत्त्वरूपा भवन्ति । उदये दर्शनावरण-
चतुष्कं ४ निद्रया प्रचलया वामहितं प्रकृतिपञ्चकम् ५ । क्षीणे क्षीणकपायोपान्त्यसमये षट् प्रकृतयः सत्त्वरूपाः
६ । उदये चतुरात्मकं ४ पञ्चात्मकं वा ५ । क्षीणकपायस्य चरमसमये चक्षुरचक्षुरधिकेवलदर्शनावरण-चतुः-
प्रकृतयः सत्त्वरूपाः ४ उदयरूपाश्च ता एव ॥२८७॥

उपरतबन्धमे अर्थात् दर्शनावरण कर्मकी बन्धव्युच्छिन्ति हो जाने पर उपशान्तमोह
नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें नौप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है और क्षीणकषायमें छहप्रकृतिक
सत्त्वस्थान होता है तथा इन दोनों ही गुणस्थानोंमें चार या पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं ।
क्षीणकषायके चरम समयमें चारप्रकृतिक उदयस्थान और चारप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता
है ॥२८७॥

० ० ० ० ०
३उवसते ४ ५ खीणे ४ ५ खीणचरिमसमए ४ एवं सन्ने १३ ।
६ ६ ६ ६ ४

१. सं० पञ्चसं० ५, 'शेषापूर्वा' इत्यादिगद्यभागः' (पृ० १६७) । २. ५, ३१३ । ३. ५, 'शान्ते'
इत्यादिगद्याशः (पृ० १६७) ।

१. सप्ततिका० ४०, परं तत्रेदक् पाठः—

चउवंध तिगे चउ पण नवंस दुसु जुयल छसंता ।

उवसंते चउ पण नव खीणे चउरुदय छच्च चउ संतं ॥

तेषु पूर्वोक्तनवादिषु स्थानादिषु चतुरात्मकं ४ पञ्चात्मकं ५ वा उदया उपशान्ते ४ ५ क्षीणे
६ ६

० ० ०
४ ५ क्षीणचरममये ४ । एवं सर्वे भङ्गास्त्रयोदश १३ ।
६ ६ ४

गुणस्थानेषु दर्शनावरणस्य बन्धादित्रिकसंदष्टि —

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०
चं	६	६	६	६	६	६	६	६।४	४	४	४	०
उद०	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५।४	४।५।४	४।५।४
स०	६	६	६	६	६	६	६	६	६।६	६।६	६।६	६।४

इति गुणस्थानेषु दर्शनावरणस्य बन्धादिसंयोगभङ्गा समाप्ताः ।

उपशान्तमोहमे ४ ५ क्षीणमोहके उपान्त्य समयतक ४ ५ । क्षीणमोहके चरमसमयमे ४
६ ६ ४

इस प्रकारसे बन्धादिस्थान होते हैं। इस प्रकार दर्शनावरणके स्थानसम्बन्धी सर्व भंग १३ होते हैं।

अब मूल सप्ततिकाकार वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके बन्धादिस्थानसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३६] ^१बायाल तेरसुत्तरसदं च पशुवीसयं वियाणाहि ।
वेदणियाडगोदे मिच्छाह-अजोगिणं भंगा ॥२८८॥

४२।१३।२५

अथ गुणस्थानेषु वेदनीयाऽऽयुर्गोत्राणां त्रिसंयोगभङ्गसंख्यामाह—['बायाल तेरसुत्तर' इत्यादि ।]
मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवलपर्यन्तं वेदनीयस्य द्वाचचारिंशद्भङ्गान् ४२ आयुपञ्चयोदशाधिकशतभङ्गान् ११३
गोत्रस्य पञ्चविंशतिभङ्गान् २५ विशेषेण जानाहि भो भव्य, त्वम् ॥२८८॥

वेद्ये ४२ आयुपः ११३ गोत्रे २५ ।

मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अयोगि गुणस्थानपर्यन्त वेदनीयकर्मके बन्धादि स्थानसम्बन्धी
भंग व्यालीस, आयुकर्मके एकसौ तेरह और गोत्रकर्मके पच्चीस जानना चाहिए ॥२८८॥

वेदनीयके ४२, आयुकर्मके ११३ और गोत्रकर्मके २५ भङ्ग होते हैं ।

अब भाष्यगाथाकार उक्त भंगोंमेंसे पहले वेदनीय कर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

^२मिच्छाहपमत्तंता चउ चउ भंगा य वेयणीयस्स ।
उवरिमसत्तट्ठाणे दो दो य हवन्ति आदिल्ला ॥२८९॥

१. सं० पञ्चस० ५, ३१४ । २. ५, ३१५ पूर्वार्धम् ।

१. इसके स्थानपर श्वे० सप्ततिकामें केवल यह सूचना की गई है—

'वेयणियाडगोए विमज्ज मोह पर वोच्छ ॥४१॥

१ १ ० ०
 १ मिच्छादिपमत्तत्वेसु एकेकस्मि पढमा चत्तारि १ ० १ ० एवं छसु २४ । पत्तेयं सत्तसु
 १० १० १० १०

१ १
 पढमा दो दो १ ० एवं सत्तसु १४ ।
 १० १०

अथ वेदनीयस्य त्रिसयोगभङ्गान् गुणस्थानेषु गाथाद्वयेनाऽऽह—['मिच्छादिपमत्तता' इत्यादि ।]
 मिथ्यात्व-सासादन-मिश्राऽविरत-देश-प्रमत्तत्वेसु षट्कगुणस्थानेषु प्रत्येकं वेदनीयस्य चतुश्चतुर्भङ्गा भवन्ति । ते

के ? सातबन्धोदयोभयसत्त्वं १ सातबन्धासातोदयोभयसत्त्वं १ असातबन्ध-सातोदयोभयसत्त्वं १
 १० १० १०

असातबन्धोदयोभयसत्त्वं ० इति चत्वारो भङ्गा मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तान्तं भवन्तीत्यर्थः । तत उपरिमसप्त-
 १०

गुणस्थानेषु अप्रमत्तादि-सयोगिकेवल्यपर्यन्तं आदिमौ द्वौ द्वौ भङ्गौ भवतः । तौ कौ ? केवलि [ल] सात-

स्यैव बन्धात् सातोदयोभयसत्त्वं १ सातबन्धासातोदयोभयसत्त्वमिति द्वौ ० ॥२८६॥
 १० १०

बं० १ १ १ १
 मिथ्यात्वादि-प्रमत्तान्तेषु प्रत्येकं प्रथमाश्चत्वारो भङ्गाः उ० १ ० १ ० एवं षट्सु भङ्गाः
 स० १० १० १० १०

बं० ० ०
 २४ । ततः सप्तसु प्रत्येकं प्रथमौ द्वौ द्वौ उ० १ ० एवं सप्तसु भङ्गाः १४ ।
 स० १० १०

मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर प्रमत्तसंयतगुणस्थान तक वेदनीय कर्मके चार चार भंग होते हैं । इससे उपरिम सात गुणस्थानोंमें आदिके दो दो भंग होते हैं ॥२८६॥

मिथ्यात्वसे लेकर प्रमत्तसंयतान्त एक एक गुणस्थानमें पहले गाथाङ्क १६-२० में बतलाये गये ८ भंगोमेसे प्रारम्भके चार चार भंग होते हैं । उनकी संदृष्टि मूलमे दी है । छह गुणस्थानोंमे २४ भंग होते हैं । आगेके सात गुणस्थानोंमें आदिके दो दो भंग होते हैं । अतः सात गुणस्थानों के १४ भंग होते हैं ।

२चउचरिमा अजोगियस्स सव्वे भंगा दु वेयणीयस्स ।

वायालं जाणिज्जो एत्तो आउस्स वोच्छामि ॥२८७॥

अजोगे अतिमा चत्तारि १ ० १ ० एव सव्वे ४२ ।
 १० १० १ ०

अयोगिकेवलिनि चरिमाः अन्तिमाश्चत्वारो भङ्गाः सातोदयोभयसत्त्वं १ असातोदयोभयसत्त्वं १
 १० १०

सातोदयसत्त्वं १ असातोदयसत्त्वं ० इति चत्वारोऽयोगिनो भङ्गाः अयोगे अन्तिमाश्चत्वारः । वेदनीयस्य सर्वे द्वाचत्वारिंशद्भङ्गाः ४२ ज्ञातव्याः । एव ४२ । अतः परमायुषो भङ्गान् वक्ष्यामि ॥२८७॥

[गुणस्थानेषु वेदनीयभङ्गानां संदृष्टिः—]

1. स० पञ्चसं० ५, 'तत्र मिथ्यादृष्टीना' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६७) । 2. ५, ३१५ उत्तरार्धम् ।

मि० सा० मि० अवि० दे० प्र० अ० अपूर्० अग्नि० सू० उप० क्षी० स० अयो०
४ ४ ४ ४ ४ ४ २ २ २ २ २ २ २ ४

अयोगिकेवलीके अन्तिम चार भंग होते हैं। इसप्रकार वेदनीयकर्मके सर्व भंग व्यालीस जानना चाहिए। अब इससे आगे आयुर्कर्मके भंग कहेंगे ॥२६०॥

अयोगीके अन्तिम चार भंग होते हैं। जिनकी रचना मूलमें दी है। इस प्रकार सर्व भंग (२४ + १४ + ४ = ४२) व्यालीस हो जाते हैं।

^१अढ छव्वीसं सोलस वीसं छ त्ति त्ति चउसु दो दो दु ।

एगेगं तिसु भंगा मिच्छादिज्जा अजोगंता ॥२६१॥

^२मिच्छादिसु भगा २८।२६।१६।२०।६।३।३।२।२।२।२।१।१।१।

अथाऽऽयुषो भद्रसख्या त्रिसयोगभङ्गांश्च गुणस्थानेषु गाथापञ्चकेनाऽऽह—['अढ छव्वीसं सोलस' इत्यादि ।] मिलित्वा असदृशभङ्गाः मिथ्यादष्टौ अष्टविंशतिर्भङ्गाः २८ । सासादने षड्विंशतिर्भङ्गाः २६ । मिश्रे षोडश विकल्पाः १६ । असयते विंशतिर्भङ्गाः २० । देशसयते षट् भङ्गाः ६ । प्रमत्ताप्रमत्तयोस्त्रयो भङ्गाः ३।३। उपशमकेषु चतुर्षु द्वौ द्वौ भङ्गौ २।२।२।२। क्षपेष्वेकैक [१।१।१।१] क्षीणकपायादिषु त्रिषु त्रिषु एकैक एव १।१।१। एवमेकीकृतास्त्रयोदशाधिकशतभङ्गाः ११३ मिथ्यादष्टधाद्योगान्ता ज्ञातव्याः ॥२६१॥

मिथ्यात्वसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भंग क्रमसे अट्ठाईस, छव्वीस, सोलह, वीस, छह, तीन, तीन, दो, दो, दो, दो, एक, एक और एक होते हैं ॥२६१॥

इन भंगोंकी संहति इस प्रकार है—

मि० सा० मि० अवि० देश० प्रम० अप्र० अपूर्व० अग्नि० सूक्ष्म० उप० क्षी० सयो० अयो०
२८ २६ १६ २० ६ ३ ३ २ २ २ २ १ १ १

इन गुणस्थानोंके सर्व भङ्गोंको जोड़नेपर आयुर्कर्मके सर्व भङ्ग ११३ हो जाते हैं। अब आयुर्कर्मके उक्त भंगोंका स्पष्टीकरण करते हुए पहले नरकायुके भंग कहते हैं—

^३णिरियाउस्स य उदए तिरिय-मणुयाऊणऽवंध वंधे य ।

णिरियाउयं च संतं णिरियाई दोणिण संताणि ॥२६२॥

० २ ० ३ ०
^४णिरियभगा—१ १ १ १ १
१ १।२ १।२ १।३ १।३

अथ मिथ्यादष्टौ बन्धादि-त्रिसयोगानष्टाविंशतिमाह—['णिरियाउस्स य उदये' इत्यादि ।] नरकायुष उदये भुज्यमाने तिर्यङ्-मनुष्यायुषोरबन्धे बन्धे च उदयागतनरकायुष्यसत्त्वं च पुनः नरकादितिर्यङ्-मनुष्यसत्त्वद्वयं—एकमुदयागत-भुज्यमानायु सत्त्वम्, द्वितीयं तिर्यगायु सत्त्व वा मनुष्यायुसत्त्व वा इत्यर्थः । [एवं नरकायुर्भङ्गाः पञ्च ५] ॥२६२॥ तथा चोक्तम्—

उदितं विद्यमानं च देहिन्यायुरवधत्ति ।

वध्यमानोदिते ह्येवे विद्यमाने प्रवन्धति ॥२५॥ इति ।

१. स० पञ्चस० ५, ३१६-३१७ । २. ५, 'मिथ्यादष्ट्यादिषु इत्यादिगद्याशः (पृ० १६८) ।

३. ५, ३१८-३२० । ४. ५, 'एषा संहतिर्नारकेषु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६८) ।

१ स० पञ्चस० ५, ३१६ ।

नारकेषु भङ्गसंहतिः—

वं०	०	२	०	३	०
उ०	णि १	णि १	णि १	णि १	णि १
स०	१	१।२	१।२	१।३	१।३

नवीन आयुके अवन्धकालमें नरकायुका उदय और नरकायुका सत्त्वरूप एक भंग होता है। तिर्यगायु या मनुष्यायुके बन्ध हो जाने पर नरकायुका उदय और नरकायुके सत्त्वके साथ तिर्यगायु और मनुष्यायु इन दोका सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार नरकायुके पाँच भंग हो जाते हैं ॥२६२॥

नरकायुसम्बन्धी पाँच भंगोंकी संहति मूलमें दी है और इन भंगोंका स्पष्टीकरण इसी प्रकरणके प्रारम्भमे गाथाङ्क २१ के विशेषार्थमे कर आये हैं, सो विशेष जिज्ञासु जन वहींसे जान लेवे।

अब तिर्यगायुके भंगोंका निरूपण करते हैं—

तिरियाउस्स य उदये चउण्हमाऊणऽवंध वंधे य ।

तिरियाउयं च संतं तिरियाई दोणिं संताणि ॥२६३॥

०	१	०	२	०	३	०	४	०
^१ तिरियभंगा—	२	२	२	२	२	२	२	२
	२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४

तिर्यगायुप उदये उदयागतभुज्यमाने चतुर्णामायुपोऽवन्धे वन्धे च तिर्यगायुःसत्त्वं च तिर्यगाद्यायुर्द्वयं सत्त्वं उदयागतभुज्यमानसत्त्वं चापरं वध्यमानायुष्यचतुष्कस्य मध्ये एकतराऽऽयुपः सत्त्वमित्यर्थः। तिर्यगायु-भङ्गाः नव ६ ॥२६३॥

[तिर्यक्षु भङ्गसंहतिः—]

वं०	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	२
स०	२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४	२।४

तिर्यगायुके उदयमे और चारो आयुकर्माके अवन्धकालमें, तथा वन्धकालमे क्रमशः तिर्यगायुका सत्त्व और तिर्यगायुके साथ चारो आयुकर्मांसे एक एक आयुका सत्त्व; इस प्रकार दो आयुकर्माका सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार तिर्यगायुके नौ भंग हो जाते हैं ॥२६३॥

तिर्यगायुसम्बन्धी नौ भंगोंकी संहति मूलमे दी है। इन भंगोंका विशेष स्पष्टीकरण प्रारम्भमें गाथाङ्क २२ के विशेषार्थमे किया जा चुका है।

अब मनुष्यायुके भंगोंका निरूपण करते हैं—

मणुयाउस्स य उदए चउण्हमाऊणऽवंध वंधे य ।

मणुयाउयं च संतं मणुयाई दोणिं संताणि ॥२६४॥

०	१	०	२	०	३	०	४	०
^२ मणुयभंगा—	३	३	३	३	३	३	३	३
	३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४

1. सं० पञ्चसं० ५, 'तिर्यक्षु इत्यम्' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १६६)। 2. ५, 'मनुष्येषु' इत्यादिगद्याशः (पृ० १६६)।

मनुष्यायुष्युदयागतमुज्यमाने चतुर्णामायुषामवन्धे बन्धे च मनुष्यायुष्युदयागतमुज्यमानं सत्त्वं मनुष्यायुष्युदयसत्त्वं च, अपरायुष्यचतुष्कस्य मध्ये एकतरायुषः सत्त्वमित्यर्थः । मनुष्यायुर्भङ्गा नव ६ ॥२६४॥

[मनुष्येषु भङ्गसंदष्टिः—]

ब०	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ०	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३
स०	३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४	३।४

मनुष्यायुके उदयमें और चारों आयुक्रमोंके अवन्धकाल तथा वन्धकालमें क्रमशः मनुष्यायुका सत्त्व, एवं मनुष्यायुके सत्त्वके साथ चारों आयुक्रमोंमेंसे एक एक आयुका सत्त्व, इस प्रकार दो आयुक्रमोंका सत्त्व पाया जाता है । इस प्रकार मनुष्यायुके नौ भंग हो जाते हैं ॥२६४॥

मनुष्यायु-सम्बन्धी नौ भंगोंकी संदष्टि मूलमें दी है और भंगोंका खुलासा प्रारम्भमें गाथाङ्क २३ के विशेषार्थ द्वारा किया जा चुका है ।

अब देवायुके भंगोंका निरूपण करते हैं—

देवाउस्स य उदए तिरिय-मणुयाऊणञ्चं वंधे य ।

देवाउयं च संतं देवाई दोण्णि संताणि ॥२६५॥

०	२	०	३	०
^१ देवाण भंगा जहा—	४	४	४	४
	४	४।२	४।२	४।३

देवायुप उदये तिर्यग्मनुष्यायुपोरवन्धे बन्धे च देवायुष्युदयागतमुज्यमानं सत्त्वं देवाद्याऽऽयुष्यतिर्यग्मनुष्यायुष्यसत्त्वद्वयम् । देवायुर्भङ्गाः पञ्च ५ ॥२६५॥

[देवेषु भङ्गसंदष्टिः—]

ब०	०	२	०	३	०
उ०	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४
स०	४	४।२	४।२	४।३	४।३

देवायुके उदयमें और तिर्यगायु तथा मनुष्यायुके अवन्ध और वन्धकालमें क्रमशः देवायुका सत्त्व, और देवायु-मनुष्यायु तथा देवायु और तिर्यगायुका सत्त्व पाया जाता है । इस प्रकार देवायुके पाँच भंग हो जाते हैं ॥२६५॥

देवायु-सम्बन्धी पाँच भंगोंकी संदष्टि मूलमें दी है और उन भंगोंका खुलासा प्रारम्भमें गाथाङ्क २४ के विशेषार्थमें किया जा चुका है ।

^२एव मिच्छे सव्वे २८ । सासणो गिरएसु ण गच्छइ । गिरयाउय च वध तिरियाउय च उदयं दो वि सत्ता १ । गिरयाउयं वंध मणुयाउयं उदयं दो वि संता २ । एवं दो भंगे चइळणं सेसा सासणे २६ । सम्मामिच्छाहट्ठी एकमपि आउयं ण वंधइ । अटो तस्स उवरयवंधमगा १६ । तिरियाउयं च वध गिरयाउयं उदयं, दो वि सत्ता १ । गिरयाउयं वध तिरियाउय उदयं दो वि सत्ता २ । तिरियाउय वंध तिरियाउय उदय दो वि संता ३ । मणुयाउग-बंध तिरियाउगं उदयं, दो वि संता ४ । गिरयाउग उदयं वंध मणुयाउगं ५ । तिरियाउग वंध मणुयाउय उदयं दो वि सत्ता ६ । मणुयाउयं वंधं मणुयाउग उदयं दो वि संता ७ ।

१. सं० पञ्चसं० ५, 'देवेषु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६६) । २. ५, 'मिथ्याहट्ठी २८' इत्यादि-गद्यांशः (पृ० १६६-२००) ।

दो वि संता तिरियाउगं बंधं देवाउगं उदयं दो वि संता ८ । एवं अट्टभंगे चट्टण सेसा असंजयस्स २० । तिरियाउयं उदय तिरियाउगं संतं १ । देवाउयं बंधं तिरियाउयं उदय देवतिरियाउगं संतं २ । तिरियाउगं उदय देव-तिरियाउगं संतं ३ । मणुयाउग उदयं मणुयाउगं संतं ४ । देवाउगं बंधं मणुयाउगं उदयं देव-मणुयाउगं संतं ५ । मणुयाउय उदयं मणुय-देवाउगं संतं ६ । एवं सजयासंजयस्स । मणुयाउगं उदयं मणु-याउगं संतं १ । देवाउयं बंधं मणुयाउगं उदयं दो वि संता २ । मणुयाउगं उदयं मणुय-देवाउगं संतं ३ । एवं पमत्ते । एदावंतो अप्पमत्ते वि ३ । अपुच्चपहुर्दि जाव उवसंतं ताव चउसु उवसम-खवगेसु मणुयाउग उदयं मणुयाउग संतं १ । उवसमगे पडुच्च मणुयाउगं उदयं मणुयदेवाउगं संतं २ । एव दो दो भंगा चउसु पुह पुह ८ । खोण-सजोगाजोगेसु मणुयाउगं उदय मणुयाउगं संतं १ । एव तिसु तिणिण । सव्वे वि भाउस्स ११३ ।

एवं मिथ्यादष्टौ विसदृशभङ्गाः २८ । सासादनो जीवस्तिर्यग् मनुष्यो वा नरकगतिं न याति, इति

हेतोर्नरकायुर्वन्धः १ तिर्यगायुष्योदयं २ सत्त्वद्वयम् २ नरकायुर्वन्ध मनुष्यायुष्योदय ३ सत्त्वद्वयम्
२।१

१

३ एवं द्वौ भङ्गौ इमौ त्यक्त्वा शेषाः पञ्चाष्टाष्टपञ्चेति पट्विंशतिभङ्गाः सासादने २६ भवन्ति । सम्य-
३।१

मिथ्यादष्टिः मिश्रगुणस्थानवर्ती एकमप्यायुर्न बध्नाति, अतः कारणात्तस्य मिश्रगुणस्योपरतबन्धभङ्गाः षोडश
१६ । मिथ्यात्वोक्तास्ते सर्वायुर्वन्धभङ्गोनास्त्रयः पञ्च-पञ्च त्रय इति षोडश मिश्रे भङ्गाः १६ । तिर्यगायुर्वन्धे

२

नरकायुरुदये द्वयोः सत्त्वे १ इत्येको भङ्गः १ । नरकायुर्वन्धे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ इति द्वितीयो
१।२ १।२

२

भङ्गः २ । तिर्यगायुर्वन्धे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ इति तृतीयो भङ्गः ३ । मनुष्यायुर्वन्धे तिर्यगा-
२।२

३

युरुदये सत्त्वे २ चतुर्थो भङ्गः ४ । नरकायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ३ इति पञ्चमो भङ्गः ५ ।
२।३ १।३

२

तिर्यगायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ३ इति षष्ठो भङ्गः ६ । मनुष्यायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वयोः
३।२

३

सत्त्वे ३ इति सप्तमो भङ्गः ७ । तिर्यगायुर्वन्धे देवायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ४ इत्यष्टमो भङ्गः ८ ।
३।३ ३।४

इत्यष्टौ भङ्गान् त्यक्त्वा शेषा विंशतिभङ्गाः असंयतसम्यग्दृष्टेर्भवन्ति २० । कथमष्टौ त्यक्त्वा इति चेदुक्तञ्च—

यतो बध्नाति सदृष्टिर्नर-तिर्यग्गतिं गतः ।

देवायुरेव नान्यानि श्वभ्र-देवगतिं गतः ॥२६॥

मर्त्यायुरेव नान्यानि भङ्गानामष्टकं ततः ।

विहाय विशतिः प्रोक्ता भङ्गास्तस्य मनीषिभिः ॥२७॥ इति ।

तिर्यगायुरुदयसत्त्वयोः उ० २ भङ्गाः १ देवायुर्वन्धे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ भङ्गाः २ । तिर्य-
स० २ ४१२

गायुरुदये देवतिर्यगायुपोः सत्त्वे २ भङ्गाः ३ । मनुष्यायुरुदयसत्त्वयोः ३ भङ्गाः ४ । देवायुर्वन्धे मनुष्यायु-
४१२ ३

रुदये देव-मनुष्यायुपोर्द्वयोः सत्त्वे ३ भङ्गाः ५ । मनुष्यायुरुदये देव-मनुष्यायुपोर्द्वयोः सत्त्वे ३ भङ्गाः पष्ठः ५ ।
४१३ ३।४

एवं संयतासयतस्य सम्यग्दृष्टेर्भङ्गाः पट् भवन्ति ६ । मनुष्यायुष्योदये मनुष्यायुःसत्त्वे ३ देवायुर्वन्धे मनु-
३

ष्यायुरुदये तद्द्वयोः सत्त्वे ३ मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुपोः सत्त्वे ३ दृश्य प्रमत्ते सर्वे भङ्गास्त्रयः ३ । त
३।४ ३।४

एवाप्रमत्तेऽपि । अपूर्वकरगादारभ्य यावदुपशान्तं चतुर्णां शमकानां क्षपकानां च मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः
सत्त्व ३ उपशमकानाश्रित्य मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुपोः सत्त्वे ३ एवं च द्वौ भङ्गौ पृथक् । द्वाभ्या
भङ्गाभ्यां चतुर्षु भट्टौ भङ्गाः ८ । क्षीणकपाय-सयोगायोगिकेवल्लिपु गुणस्थानेषु त्रिषु मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः
सत्त्वं च ३ एवं त्रिषु त्रयो भङ्गाः ३ । सर्वेऽप्यायुपि भङ्गाः विकल्पाः असदृशास्त्रयोदशाधिकशतसंख्योपेताः
११३ भवन्ति ।

आयुर्भङ्गयन्त्रम्—

गु०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
५	५	५	४	३	३	३	२	२	२	२	२	१	१	१
६	८	८	६	३	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	८	८	६	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
५	५	५	४	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
भङ्गाः	२८	२६	२६	२०	६	३	३	२	२	२	२	१	१	१

इस मिथ्यात्वगुणस्थानमे नरकायुके ५, तिर्यगायुके ६, मनुष्यायुके ६, और देवायुके ५
ये सब मिलकर २८ भग हो जाते हैं । सासादन गुणस्थानवर्ती जीव नरकोमें नहीं जाता है,
इसलिए नरकायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और दोनोंका सत्त्वरूप भंग; तथा नरकायुका बन्ध,
मनुष्यायुका उदय और दोनोंका सत्त्वरूप भंग इन दोनों भंगोंको छोड़ करके मिथ्यात्वगुणस्थान-
वाले शेष २६ भंग सासादनगुणस्थानमे पाये जाते हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव किसी भी आयुका
बन्ध नहीं करता है, अतएव उसके बन्धकालवाले १२ भंग कम हो जानेसे उपरतबन्धकाल-
सम्बन्धी १६ भंग होते हैं । सम्यग्दृष्टि जीव यदि मनुष्यगति या तिर्यग्गतिमे हो, तो वह देवायुका
ही बन्ध करता है, शेष तीनका नहीं । यदि वह देवगति या नरकगति हो, तो केवल मनुष्यायु
का ही बन्ध करता है, शेष तीनका नहीं । अतएव २८ भंगोंमेंसे ८ भंग कमा देने पर २० भंग
चौथे गुणस्थानमे होते हैं । जो आठ भंग कम किये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—(१) तिर्यगायुका
बन्ध, नरकायुका उदय और दोनोंका सत्त्व, (२) नरकायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय, दोनोंका
सत्त्व, (३) तिर्यगायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय, दोनोंका सत्त्व, (४) मनुष्यायुका बन्ध, तिर्य-
गायुका उदय, दोनोंका सत्त्व, (५) नरकायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय, दोनोंका सत्त्व, (६) तिर्य-

गायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय, दोनोंका सत्त्व; (७) मनुष्यायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय, दोनोंका सत्त्व; ८ तिर्यगायुका बन्ध, देवायुका उदय, दोनोंका सत्त्व । ये आठ भंग छोड़ करके शेष २० भंग असंयतसम्यग्दृष्टिके होते हैं । अब संयतासंयतके छह भंगोंका स्पष्टीकरण करते हैं— (१) तिर्यगायुका उदय, तिर्यगायुका सत्त्व; (२) देवायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और देवायु-तिर्यगायुका सत्त्व, (३) तिर्यगायुका उदय और देवायु-तिर्यगायुका सत्त्व, (४) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुका सत्त्व (५) देवायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और देवायु-मनुष्यायुका सत्त्व, (६) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायु-देवायुका सत्त्व, ये छह भंग संयतासंयतके होते हैं । अब प्रमत्तसंयतके भंग कहते हैं—(१) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुका सत्त्व, (२) देवायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और दोनोंका सत्त्व, (३) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायु-देवायुका सत्त्व; इस प्रकार तीन भंग प्रमत्तगुणस्थानमें होते हैं । ये ही तीन भंग अप्रमत्तगुणस्थानमें भी होते हैं । अपूर्वकरणसे लेकर उपशान्तमोह तक चारों उपशामक और तीनो क्षपकोमे (१) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुका सत्त्व; तथा उपशामकोंकी अपेक्षा (२) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायु-देवायुका सत्त्व, ये दो दो भंग चारों गुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् होते हैं । उन सबका योग ८ होता है । क्षीणमोह, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली इन तीनों गुणस्थानोंमें मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुका सत्त्वरूप एक ही भंग होता है । इस प्रकार सर्व मिलकर (२८ + २६ + १६ + २० + ६ + ३ + ३ + २ + २ + २ + २ + १ + १ + १ = ११३ आयुकर्मके एक सौ तेरह भंग होते हैं ।

अब गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

^१मिच्छाई देसंता पण चदु दो दोणिण भंगा हु ।

अट्ठसु एगेगमदो गोदे पणुवीस दो चरिमे ॥२६६॥

^२गुणठाणेषु गोयभंगा ५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।१।१।१।१।२।

अथ गुणस्थानेषु गोत्रस्य त्रिसंयोगभङ्गान् तत्सख्याश्च गाथाचतुष्टयेन प्ररूपयति—[मिच्छाई देसंता' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्ट्यादि-देशसंयतान्तं क्रमेण पञ्च ५ चतु ४ द्वौ २ द्वौ २ द्वौ २ । ततोऽष्टसु गुणेषु एकैको भङ्गः १।१।१।१।१।१।१।१। अयोगे द्वौ भङ्गौ २ इति गोत्रस्य पञ्चविंशतिर्भङ्गाः स्युः २५ ॥२६६॥

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
भङ्गाः	५	४	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	१

मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर देशसंयतगुणस्थान तकक्रमसे पाँच, चार, दो, दो और दो भंग होते हैं । तदनन्तर आठ गुणस्थानोंमें एक एक भंग होता है । चरम अर्थात् अयोगिकेवलीके दो भंग होते हैं । इस प्रकार गोत्रकर्मके सर्व भंग पच्चीस होते हैं ॥२६६॥

गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भंग इस प्रकार होते हैं—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षी०	सयो०	अयो०
५	४	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	२

१. स० पञ्चस० ५, ३२३ । २. ५, 'गुणेषु गोत्रभङ्गा' इत्यादिगद्याशः (प्र० २००) ।

अथ उपर्युक्त भंगोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

^१उच्चुच्चमुच्चणीचं णीचं उच्चं च णीचणीचं च ।

बंधं उदयम्मि चउसु वि संत दुयं सव्वणीचं च ॥२६७॥

१ १ ० ० ०
१ ० १ ० ०
१० १० १० १० ००

यन्गोत्रयो उच्चोच्च उच्चनीचे नीचोच्च नीचनीचे एतेषु चतुर्षु सत्त्वद्वयम् । पञ्चमे सर्वनीच च । मिथ्यादष्टौ एते पञ्च भङ्गा । सासादने आदिमाश्रन्वारः त्रिषु द्वौ भङ्गौ । ततः पर पञ्चसु एको भङ्गाः । तथाहि—मिथ्यादष्टौ एते गोत्रस्य पञ्चभङ्गाः के । १ उच्चगोत्रस्य बन्धः । उच्चगोत्रस्योदयः । उच्चनीचगोत्रयो-

सत्त्वम् १ । उच्चबन्धः १ नीचोदयः ० तदुभयसत्त्वम् ० । नीचबन्धोच्चोदयोभयसत्त्वम् १ । नीचबन्धनीचोद-
१० ११ १०

योभयसत्त्वम् ० । एतेषु चतुर्षु भङ्गेषु सत्त्वद्वयमुच्चनीचसत्त्वद्विकमित्यर्थः । सर्वनीचं नीचबन्धोदये सत्त्व च
११२

०
० एते गोत्रस्य पञ्च भङ्गाः मिथ्यादष्टौ ५ भवन्ति ।
०

बंधं १ १ ० ० ०
उ० १ ० १ ० ०
स० १० १० १० १० ००

सासादने आद्याश्रन्वारो भङ्गाः, तस्य सासादनस्य तेजोद्वयेऽनुत्पत्तेरुच्चानुद्वेष्टनात् सासाद-
नस्य भङ्गाः ४ ॥२२६॥

बंधं १ १ ० ०
उ० १ ० १ ०
स० १० १० १० १०

उच्चगोत्रका बन्धः, उच्चगोत्रका उदयः, दोनों गोत्रकर्माका सत्त्वः, उच्चगोत्रका बन्धः, नीचगोत्र
का उदय और दोनों गोत्राका सत्त्वः; नीचगोत्रका बन्धः, उच्चगोत्रका उदय और दोनों गोत्राका
सत्त्वः; नीचगोत्रका बन्धः, नीचगोत्रका उदय और दोनों गोत्राका सत्त्वः; तथा नीच गोत्रका बन्धः,
नीच गोत्रका उदय और नीच गोत्रका सत्त्वः ये पाँच भंग गोत्र कर्मके होते हैं ॥२६७॥

इन पाँचों भंगोंकी अंकसंरूपि मूल और टीकामे दी है ।

^२मिच्छाम्मि पंच भंगा सासणसम्मम्मि आदिमचउक्कं ।

आदिदुगंतिसुवरिं पंचसु एगो तहा पढमो ॥२६८॥

^३मिच्छादु एते भगा—५१४१२१२११११११११

मिश्राविरतद्वेगविरतगुणम्यानेषु त्रिषु प्रत्येक आद्यौ द्वौ भङ्गौ—उच्चबन्धोदयोभयसत्त्व १ उच्चबन्ध-
१०

१. सं० पञ्चस० ५, ३२४ । २. ५, ३२५ । ३ ५, 'मिथ्यादष्ट्यादिषु' इत्यादिगद्यभागः ।
(पृ० २०१) ।

नीचोदयोभयसत्त्वं ^१ ० चेति द्वौ द्वौ भङ्गौ २ भवतः । तत उपरि पञ्चसु गुणस्थानेषु प्रमत्तादि-सूक्ष्मसाम्प-
११०

रायान्तं उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वमित्येकः प्रथमो भङ्गः ^१ १ ॥२६८॥
११०

गोत्रकर्मके उक्त पाँचों भंग मिथ्यात्व गुणस्थानमे पाये जाते हैं । सासादनगुणस्थानमें आदिके चार भंग होते हैं । तीसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थानमें आदिके दो दो भङ्ग होते हैं । इससे उपरितन पाँच गुणस्थानोंमें पहला एक ही भङ्ग होता है ॥२६८॥

मिथ्यात्व आदि दश गुणस्थानोंमें भङ्ग इस प्रकार हैं—५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

^१बंधेण विणा पटमा उवसंताइ-अजोइदुच्चरिमं ।

चरिमम्मि अजोयस्स दु उच्चं उदएण संतेण ॥२६९॥

^२उवसंताइसु चउसु पत्तेयं ^१ ११० अजोइस्स चरमसमए एगो ।१। एवं गोदे सव्वभंगा २५ ।

उपशान्ताद्ययोगिद्विचरमसमयपर्यन्तं बन्ध विना प्रथमो भङ्गः उ० १ । अयोगस्य चरमसमये स० ११०

उदये उच्चगोत्रं सत्त्वे उच्चगोत्रं च उच्चोदयसत्त्वमित्यर्थः उद० ^१ १ । इत्थं गोत्रे विसदृशभङ्गाः सर्वे पञ्च-
स० ^१ १ ।
विंशतिः २५ ॥२६९॥

इति गुणस्थानेषु गोत्रस्य त्रिसयोगभङ्गाः समाप्ताः ।

उपशान्तमोह गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवलीके द्विचरम समय तक बन्धके विना प्रथम भङ्ग होता है । अयोगिकेवलीके अन्तिम समयमे उच्चगोत्रका उदय और उच्चगोत्रका सत्त्वरूप एक भङ्ग होता है ॥२६९॥

उपशान्तमोह आदि चार गुणस्थानोंमें ^० १ अयोगिकेवलीके चरमसमयमें ^० १ । इस
११० १

प्रकारसे गोत्रकर्मके भङ्ग जानना चाहिए ।

अब मूल सप्ततिकाकार गुणस्थानोंमें मोहकर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३७] ^३गुणठाणएसु अट्टसु एगेगं बंधपयडिठाणाणि ।

पंचणियट्टिट्ठाणे बंधोचरमो परं ततो ॥३००॥

अथ गुणस्थानेषु मोहनीयस्य बन्धस्थानानि तद्भङ्गाश्च प्ररूपयति—[‘गुणठाणएसु अट्टसु’ इत्यादि ।] अट्टसु मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु प्रत्येक एकैकानि मोहप्रकृतिबन्धस्थानानि भवन्ति । तथा मिथ्यादृष्टौ द्वाविंशतिक मोहप्रकृतिबन्धस्थानकं २२ । सासादने एकविंशतिकं २१ । मिश्राऽविरतयोः सप्तदशक सप्त-दशक १७।१७ । देशविरते मोहप्रकृतिबन्धस्थान त्रयोदशकं १३ । प्रमत्तापूर्वकरणेषु प्रत्येकं मोहबन्ध-प्रकृतिस्थानं नवक ९।९।९ । अनिवृत्तिकरणे पञ्च बन्धस्थानानि—पञ्चक ५ चतुष्क ४ त्रिक ३ द्विक २

१. सं० पञ्चसं० ५, ३२६ । २. ५, ‘शान्तक्षीणसयोगेषु’ इत्यादिगद्याशः (पृ० २०१) ।

३. ५, ३२७-३२८ ।

१. सप्ततिका० ४२ ।

एकक १ इति पञ्च स्थानानि । ततः पर बन्धोपरमः बन्ध-रहितः सूक्ष्मसाम्परायादिषु मोहप्रकृतिबन्धो नास्तीत्यर्थः ॥३००॥

आदिके आठ गुणस्थानोंमें मोहकर्मका एक एक बन्धस्थान होता है । अनिवृत्तिकरणमे पाँच बन्धस्थान होते हैं । उससे परवर्ती गुणस्थानोंमे मोहकर्मका बन्ध नहीं होता है ॥३००॥
अब इसी अर्थका भाष्यगाथाकार स्पष्टीकरण करते हैं—

मिच्छाद्-अपुञ्चताणेगेगं चैव मोहबन्धाणि ।

पञ्चणियद्विद्वाणे पञ्चैव य ह्येति भंगा हु ॥३०१॥

मिच्छादिसु बध्नाणाणि २२।२१।१७।१७।१३।६।६।६। अणियद्विग्नि ५।४।३।२।१।

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तं मोहप्रकृतिबन्धस्थानकमेकैकं भवति । अनिवृत्तिकरणे पञ्च बन्धस्थानानि भवन्ति, तदेव पञ्च भङ्गाः ॥३०१॥

मि० सा० मि० अ० दे० प्र० अप्र० अपू० अनिवृत्तिकरण सू० उ० स्त्री० स० अयो०
२२ २१ १७ १७ १३ ६ ६ ६ ५ ४ ३ २ १ ० ० ० ० ०

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण तकके आठ गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मका एक एक बन्धस्थान होता है । अनिवृत्तिकरण नामक नवें गुणस्थानमे पाँच बन्धस्थान होते हैं और वहाँ पर बन्धस्थान-सम्बन्धी पाँच ही भङ्ग होते हैं ॥३०१॥

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोमे बन्धस्थान क्रमशः २२, २१, १७, १७, १३, ६, ६ और ६ प्रकृतिक होते हैं । अनिवृत्तिकरणमें ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं ।

अब उक्त बन्धस्थानोंके भंगोंका निरूपण करते हैं—

^१छव्वावीसे चउ इगिवीसे सत्तरस तेर दो दो दु ।

णव-बन्धए वि दोणिण य एगेगमदो परं भंगा ॥३०२॥

६।४।२।२।२। सेसेसु १।१।१।१।१।

तद्भङ्गानां सख्यामाह—['छव्वावीसे चउ इगिवीसे' इत्यादि] मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणान्तेषु मोहप्रकृतिबन्धस्थानके द्वाविंशतिके पद भङ्गाः २२ । एकविंशतिके चत्वारो विकल्पाः २१ । सप्तदशके द्विके द्वौ द्वौ भङ्गौ १७ । १७ । त्रयोदशके द्वौ भङ्गौ १३ । नवकबन्धस्थानके द्वौ भङ्गौ ६ । अतः परमेकैको भङ्गः १ ॥३०२॥

मि० सा० मि० अ० दे० प्र० अप्र० अपू० अनिवृत्तिकरणे
२२ २१ १७ १७ १३ ६ ६ ६ ५ ४ ३ २ १ एव २५ ।
६ ४ २ २ २ २ २ २ १ १ १ १ १

वाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमे छह भङ्ग होते हैं । इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें चार भङ्ग होते हैं । सत्तरह और तेरहप्रकृतिक बन्धस्थानोमे दो दो भङ्ग होते हैं । नौप्रकृतिक बन्धस्थानमें भी दो ही भङ्ग होते हैं । इससे आगेके बन्धस्थानोंमें एक एक ही भङ्ग होता है ॥३०२॥

बन्धस्थानोमे भङ्गोकी संदृष्टि इस प्रकार है—

बन्धस्थान २२ २१ १७ १३ ६ ५ ४ ३ २ १
भङ्ग ६ ४ २ २ २ १ १ १ १ १

अब मोहकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

¹एकं च दो व चत्वारि तदो एयाहिया दसुकस्सं ।

ओघेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि णव होंति ॥३०३॥

मोहोदया १०।१।८।७।६।५।४।३।२।१।

एकप्रकृतिक १ द्विप्रकृतिक २ चतुःप्रकृतिक ४ तत एकैकाधिकं पञ्च प्रकृतिक ५ षट् प्रकृतिक ६ सप्तप्रकृतिक ७ अष्टप्रकृतिक ८ नवप्रकृतिक ९ दशप्रकृतिक १० उत्कृष्टस्थानम् । मोहनीयस्य प्रकृत्युदय-स्थानानि नव ओघेन गुणस्थानेषु सामान्येन वा भवन्ति ॥३०३॥

मोहस्योदयाः १०।१।८।७।६।५।४।३।२।१ ।

ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयस्थान नौ होते हैं—(कथनकी सुलभतासे उन्हें यहाँ विपरीत क्रमसे कहते हैं—) वे एकप्रकृतिक, दोप्रकृतिक, चारप्रकृतिक और उससे आगे एक एक अधिक करते हुए उत्कर्षसे दश प्रकृतिक तक जानना चाहिए ॥३०३॥

मोहकर्मके उदयस्थान—१०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३ और १ प्रकृतिक नौ होते हैं ।

अब मोहकर्मके दशप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

²मिच्छा मोहचउक्कं अणायरं वा तिवेदमेकयरं ।

हस्सादिजुगस्सेयं भयणिंदा होंति दस उदया ॥३०४॥

१०।

मिथ्यात्वमेकं १ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनानां मध्ये एकतरं स्वजातिक्रोधादि-कपायचतुष्कं ४ त्रयाणां वेदानां मध्ये एकतरो वेदोदयः १ हास्यरतिद्विकारतिशोकद्विकयोर्मध्ये एकतरद्विकं २ भयं १ निन्दा १ एव दश मोहनीयप्रकृतयः १० एकस्मिन् जीवे मिथ्यादृष्टौ उदयगता भवन्ति १० ॥३०४॥

२

२।२

१।१।१

४।४।४।४

१

मोहकर्मके दशप्रकृतिक उदयस्थानमें एक मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि चारों जातिकी कपायोंमेंसे क्रोधादि कोई चार कपाय, तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्यादि दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, ये दश प्रकृतियाँ होती हैं ॥३०४॥

यह दशप्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानमें होता है ।

अब मिथ्यात्वगुणस्थानमें नौप्रकृतिक उदयस्थानकी भी सम्भवता बतलाते हैं—

³आवलियमित्तकालं मिच्छत्तं दंसणाहिसंपत्तो ।

मोहम्मि य अणहीणो पढमे पुण णवोदओ होज्ज ॥३०५॥

⁴मिच्छम्मि उदया १०।१।

१ सं० पञ्चसं० ५, ३३०। २. ५, ३३१। ३. ५, ३३२। ४. ५, 'इति मिथ्यादृष्टौ इत्यादिगद्याशः। (पृ० २०२)

अनन्तानुबन्धिविसंयोजितवेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यात्वकर्मोदयात् मिथ्यादृष्टिगुणस्थान प्राप्ते आवलिमात्र-
कालं अनन्तानुबन्ध्युदयो नास्ति, अतो मोहप्रकृतीनां दशकानामुदयः १० अनन्तानुबन्धिरहितो नव-
प्रकृतीनामुदयो ६ मिथ्यादृष्टौ प्रथमे गुणस्थाने भवेत् ॥३०५॥

मिथ्यादृष्टौ उदयौ द्वौ १०।६।

अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुआ जीव यदि मिथ्यात्व
कर्मके उदयसे मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हो जावे, तो एक आवलीप्रमाण काल तक उसके
अनन्तानुबन्धी कपायका उदय सम्भव नहीं है, अतएव मिथ्यात्वगुणस्थानमें नौप्रकृतिक उदय-
स्थान भी होता है ॥३०५॥

इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें दश और नौप्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं ।
अब सासादनादि गुणस्थानोंमें मोहकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१मिच्छत्तऽण कोहार्द विदि-तदिएहिं ते दु दसरहिया ।

सासणसम्माई खलु एगे दुग एग तीसु णायव्वा ॥३०६॥

^२सासणादिषु ६।८।८।७।६।६।

ते मोहप्रकृद्युदयाः दश १० मिथ्यात्वप्रकृतिरहिता एकस्मिन् सासादने नवोदयाः ६ । एते 'दुग'
इति द्वयोर्मिश्राविरतयोः अनन्तानुबन्धिरहिताः अष्टौ ८ । एते 'एग' इति एकस्मिन् देशविरते पञ्चमे
अप्रत्याख्यानरहिताः सप्तोदयाः ७ । एते त्रिषु प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणेषु तृतीयप्रत्याख्यानकपायरहिताः
षडुदयाः ६ ज्ञातव्या भवन्ति ॥३०६॥

सासादनादिषु ६।८।८।७।६।६।

ऊपर जो दशप्रकृतिक उदयस्थान बतलाया गया है, उसमेंसे मिथ्यात्वके बिना शेष नौ
प्रकृतियोंका उदय सासादनगुणस्थानमें होता है । अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कपायके बिना शेष
आठ प्रकृतियोंका उदय मिश्र और अविरतगुणस्थानमें होता है । दूसरी अप्रत्याख्यानकपायके बिना
शेष सात प्रकृतियोंका उदय देशविरतगुणस्थानमें होता है । तीसरी प्रत्याख्यानकपायके बिना शेष
छह प्रकृतियोंका उदय तीन गुणस्थानोंमें अर्थात् प्रमत्त, अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें जानना
चाहिए ॥३०६॥

सासादनादि गुणस्थानोंमें क्रमशः ६, ८, ८, ७, ६, ६, ६ प्रकृतियोंका उदय होता है ।

^३इदि मोहुदया मिस्से सम्मामिच्छेण संजुया होंति ।

अवरे सम्मत्तजुया वेदयसम्मत्तसहिया जे ॥३०७॥

^४एव मिस्से सम्मामिच्छत्तसहिया ६ । ^५असंजदादिषु चउसु जत्थ उवसम-खाइयसम्मत्ताणि ण
होंति तत्थ सम्मतोदये वेदयसम्मत्तेण सह अण्णो वि विट्ठिओ उदओ । तेण अविरयादिषु चउसु
दो दो उदया । एदे ६।८।८।७।७।६।६। अपुच्चे पुण सम्मतोदओ णत्थि, तेण तत्थ वेदगामावाटो
एगो चेव ६ ।

इत्यमुना प्रकारेण मोहप्रकृद्युदया अष्टौ ८ सम्यग्मिथ्यात्वेन मयुक्ता मिश्रगुणस्थाने नव मोहोदया
भवन्ति ६ । अपरे ये मोहोदया वेदकसम्यक्त्वसहितास्ते सम्यक्त्वप्रकृतिसंयुक्ताः । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिर्मिश्रे
उदेति, सम्यक्त्वप्रकृतिर्वेदकसम्यग्दृष्टावेवासयतादिचतुषु उदय याति । तत्पशमक-वायिकस्योदयः ॥३०७॥

1. स० पञ्चस० ५, ३३३ । 2. ५, 'सासनादिषु' 'इत्यादिगद्यभाग' । (पृ० २०२) । 3. ५, ३३४ ।

4. ५, 'सम्यग्मिथ्यात्व' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २२०) । 5. ५, ३३५-३३६ ।

एवं मिश्रगुणस्थाने सम्यग्मिथ्यात्वसहिता नवोदयाः ६ । असंयतादिषु चतुर्षु यत्रोपशम-क्षायिक-सम्यक्त्वे द्वे न भवतस्तत्र सम्यक्त्वप्रकृत्युदयो वेदकसम्यक्त्वेन सहान्यो द्वितीयोदयः, तेन कारणेन असंयता-दिषु चतुर्षु द्वौ द्वौ उदयौ एतौ । असंयते ६।८ देशे ८।७ । प्रमत्ते ७।६ अप्रमत्ते ७।६ । पुनरपूर्वकरणे सम्यक्त्वप्रकृत्युदयो नास्ति । ततस्तत्र वेदकसम्यक्त्वाभावादेको मोहोदयः ६ ।

इस प्रकार सासादनादि गुणस्थानोंमें जो मोहप्रकृतियोंका उदय बतलाया गया है, उनमेंसे मिश्रगुणस्थानमें उदय होनेवाली आठप्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वके संयुक्त कर देनेपर नौ-प्रकृतियोंका उदय होता है । वेदकसम्यक्त्वसे सहित जो चतुर्थादि चारगुणस्थान हैं, उनमें सम्यक्त्वप्रकृतिका भी उदय होता है । अतएव उनमें एक एक उदयस्थान और भी जानना चाहिए ॥३०७॥

अब आगे इसी कथनका स्पष्टीकरण करते हैं—इस प्रकार मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वसहित नौप्रकृतियोंका उदय होता है । असंयतादि चारगुणस्थानोंमें जहाँ उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व नहीं होता है, वहाँपर सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयमें वेदकसम्यक्त्वके साथ पूर्वमें बतलाया गया अन्य भी दूसरा उदयस्थान होता है । अतएव अविरतादि चारगुणस्थानोंमें दो-दो उदयस्थान होते हैं । अर्थात् अविरतमें नौ और आठप्रकृतिक दो उदयस्थान, देशविरतमें आठ और सातप्रकृतिक दो उदयस्थान; प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें सात और छहप्रकृतिक दो-दो उदय स्थान होते हैं । किन्तु अपूर्वकरणगुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय नहीं होता है, इसलिए वहाँपर वेदकसम्यक्त्वका अभाव होनेसे छहप्रकृतिक एक ही उदय स्थान होता है ।

ते सच्चे भयरहिया दुगुंछहीणा दु उभयहीणा दु ।

अण्णे वि य एदेसिं एकेकस्सोवरिं तिणिण ॥३०८॥

८	७	७	७	७	६	६	५	५	४
मिच्छे ६।६	८।८	सासणे ८।८	मिस्से ८।८	असंजए ८।८	७।७	देसे ७।७	६।६	प्रमत्ते ६।६	५।५
१०	६	६	६	६	८	८	७	७	६

अप्रमत्ते ६।६ ५।५ अपुंवे वेदयो णत्थि तेण एगो ५।५ अनियट्ठिए २।१ । सुहुमे १ ।

ते सर्वे दश-नवादयः उदयाः १० भयरहिताः नव ६ दुगुंछारहिता वा नव ६ । तु पुनः उभयहीना भय-जुगुप्साद्वयरहिता अष्टौ ८ । ततोऽन्येऽप्युदयास्तेषामेकैकस्योपरि त्रयः उदयाः ॥३०८॥

८	७	७	७	७	६	६
तत्र मिथ्यादष्टौ ६।६ ।	८।८	सासादने ८।८	मिश्रे ८।८	असंयते ८।८	७।७	देशे ७।७ ।
१०	६	६	७	६	८	८

५ ५ ४ ५ ४
६।६ । प्रमत्ते ६।६ । ५।५ । अप्रमत्ते ६।६ । ५।५ । अपूर्वकरणे वेदकसम्यक्त्वस्योदयो नास्ति, तत
७ ७ ६ ७ ६

एकं यन्त्रम् ५।५ । अनिवृत्तिकरणे २।१ । सूक्ष्मसांपराये सज्जलनलोभोदयः १ ।

ऊपर जो दश, नौ आदिक जितने भी सर्व उदयस्थान बतलाये हैं, वे भय-रहित भी होते हैं, जुगुप्सा-रहित भी होते हैं और दोनोसे रहित भी होते हैं । इसलिए ऊपर कहे गये एक-एक स्थानके ऊपर ये तीन-तीन उदयस्थान और भी होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३०८॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें मोहकर्मकी उदय होनेके योग्य सभी प्रकृतियोंके उदय होनेपर दशप्रकृतिक उदयस्थान होता है। भय या जुगुप्साके विना नौप्रकृतिक उदयस्थान भी होता है और दोनोंके विना आठप्रकृतिक उदयस्थान भी होता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके नीचे गिरे हुए जीवके मिथ्यात्वमें आनेपर एक आवली कालतक मिथ्यात्वका उदय सम्भव नहीं है, अतएव उसके नौ, आठ और सातप्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। इसी प्रकार सामादनमें नौ, आठ-आठ और सातप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। मिश्रमें नौ, आठ-आठ और सातप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। असंयत गुणस्थानमें वेदकसम्यग्दृष्टिके नौ, आठ-आठ और सातप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। तथा शेष सम्यग्दृष्टियोंके आठ, सात-सात और छहप्रकृतिक उदयस्थान होने हैं। देशविरतमें वेदकसम्यग्दृष्टिके आठ, सात-सात और छहप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं; तथा शेष सम्यग्दृष्टियोंके सात, छह-छह और पाँचप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। प्रसत्तसंयत और अप्रसत्तसंयतमें वेदकसम्यग्दृष्टिके सात, छह-छह और पाँचप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं; तथा शेष सम्यग्दृष्टियोंके छह, पाँच-पाँच और चारप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। अपूर्वकरणमें वेदकप्रकृतिका उदय नहीं होता है, इसलिए वहाँपर छह, पाँच-पाँच और चार-प्रकृतिक एक विकल्परूप ही उदयस्थान होते हैं। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणमें दो और एक-प्रकृतिक दो और सूक्ष्मसाम्परायमें एकप्रकृतिक एक उदयस्थान होते हैं। इन सब उदयस्थानोंकी संदृष्टियों मूलमें दी हुई हैं।

अब मूलसप्ततिकाकार इसी अर्थका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३८] 'सत्तादि दस दु भिच्छे सासादण मिससे सत्तादि णवुकस्सं ।

छादी अविरदसम्मे देसे पंचादि अट्ठेव' ॥३०६॥

[मूलगा०३९] विरए खओवसमिए चउरादि सत्त उक्कस्सं छ णियट्ठिम्हि ।

आणियट्ठिवायरे पुण एक्को वा दो व उदयंसां ॥३१०॥

[मूलगा०४०] एगं सुहुमसरागो वेदेदि अवेदया भवे सेसा ।

भंगाणं च पमाणं पुव्वुद्धिट्ठेण णायव्वं ॥३११॥

मिथ्यादृष्ट्यादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तं मोहोदयप्रकृतिस्थानसंख्या कथ्यते—मिथ्यादृष्टौ सप्तादि-दशो-
त्कृष्टान्ताः १०।६।८।७ । उदयप्रकृतिस्थानविकल्पा अष्टौ ८ । सासादने मिश्रे च सप्तादि-नवोत्कृष्टान्ता
मोहप्रकृत्युदयस्थानविकल्पाः ९।८।७।६ । अविरतसम्यग्दृष्टौ पञ्चादि-नवोत्कृष्टान्ताः ९।८।७।६ । देशसंयते
पञ्चाद्यष्टान्ता ८।७।६।५ । विरते प्रसत्ते अप्रसत्ते च क्षयोपशमसम्यक्त्वे वेदकसम्यक्त्वे सति चतुरादि-
सप्तोत्कृष्टान्ता मोहप्रकृतिस्थानविकल्पाः ७।६।५।४ । अपूर्वकरणे चतुरादि पट्पर्यन्ताः ६।५।४ । अनिवृत्ति-
करणे द्वयोः प्रकृतयोरुदयः २ स्थूललोभप्रकृतेरुदये वा १ । एकं सूक्ष्मलोभ सूक्ष्मसाम्परायो मुनिर्वेदयति
उदयमनुभवति १ । अनिवृत्तिकरणस्य सवेदस्य प्रथमे भागे त्रिवेद-चतुःसंज्वलनानामेकैकोदयसम्भवं द्वि-
प्रकृत्युदयसम्भवं द्विप्रकृत्युदयस्थानं २ स्यात् । परेषु चतुर्भागेषु यथासम्भवं वेदकपायाणामेकतमः १ ।
इत्यनिवृत्ती २ सूक्ष्मे १ । शेषाः अपूर्वकरणस्य द्वितीयभागादिसूक्ष्मसाम्परायान्ताः अवेदका वेदोदयरहिता
भवन्ति । भङ्गानां विकल्पानां प्रमाणं पूर्वोद्धिष्टेन पूर्वकथितेन ज्ञातव्यम् ॥३०९-३११॥

1. सं० पञ्चस० ३३८-३४१ ।

१ सप्ततिका० ४३ । २. सप्ततिका० ४४ । ३. सप्ततिका० ४५ ।

मिथ्यात्वगुणस्थानमें सातको आदि लेकर दश तकके चार उदयस्थान होते हैं। सासादन और मिश्रमे सातसे लेकर नौ तकके तीन उदयस्थान होते हैं। अविरतसम्यक्त्वमें छहसे लेकर नौ तकके चार उदयस्थान होते हैं। देशविरतमे पाँचसे लेकर आठ तकके चार उदयस्थान होते हैं। क्षायोपशमिकसम्यक्त्वी प्रमत्त और अप्रमत्तविरतके चारसे लेकर सात तकके चार उदयस्थान होते हैं। अपूर्वकरणमें चारसे लेकर छह तकके तीन उदयस्थान होते हैं। अनिवृत्तिवादा-साम्परायमे दो और एकप्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं। सूक्ष्मसाम्पराय एकप्रकृतिक स्थानका ही वेदन करता है। शेष उपरिम गुणस्थानवर्ती जीव मोहकर्मके अवेदक होते हैं। इन उदयस्थानोंके भङ्गोका प्रमाण पूर्वोद्दिष्ट क्रमसे जानना चाहिए ॥३०६-३११॥

अब मूलसप्ततिकाकार मिथ्यात्व आदिगुणस्थानोंकी अपेक्षा दशसे लेकर एकप्रकृतिक उदयस्थानोंके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०४१] एक य छक्केगारं एगारेगारसेव णव तिणि ।

एदे चउवीसगदा वारस दुग पंच एगम्मि ॥३१२॥

५२ । गु २४।३५२ । गु २४

सर्वगुणस्थानेषु मिलित्वा दशकं स्थानमेक १ नवकानि स्थानानि पट् ६ अष्टकानि स्थानानि एकादश ११ सप्तकानि प्रकृतिस्थानान्येकादश ११ पट्कानि स्थानान्येकादश ११ पञ्चकानिस्थानानि नव ६ चतुष्कानि स्थानानि त्रीणि ३ एतानि समुच्चयीकृतानि मोहप्रकृतिस्थानानि द्वापञ्चाशत् ५२ । क्रोधादयश्चत्वारः ४ वेदास्त्रयः ३ हास्यादियुगलं २ परस्परेण गुणिताश्चतुर्विंशतिः २४ । तैर्गुणिता द्वापञ्चाशत् ५२ । अष्टचत्वारिंशदधिकद्वादशशतसंख्योपेतः १२४८ मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तेषु प्रकृत्युदयस्थानविकल्पा भवन्ति । सवेदे अनिवृत्तौ भङ्गाः १२ अवेदे ४ सूक्ष्मे १ सर्वे मीलिताः १२६५ । एते मोहप्रकृत्युदयस्थानविकल्पाः स्युः भवन्ति । मोहप्रकृत्युदयस्थानानि १।६।११।११।११।१।१।३। स्वस्व-प्रकृतिसंख्याभिर्गुणितानि १०।५४।८८।७७।६६।४५।१२। एते मीलिताः ३५२ । एते चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः ८४४८ । तथा द्वादश द्विगुणिताः २४ । एकसंख्याकाः ५ मीलिताः ८४७७ एते पदबन्धा उदय-प्रकृतिविकल्पा भवन्ति ॥३१२॥

दशप्रकृतिक उदयस्थान एक है, नौप्रकृतिक उदयस्थान छह है, आठ, सात और छह-प्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह-ग्यारह हैं, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान नौ हैं, चारप्रकृतिक उदयस्थान तीन हैं। इन सबको चौबीससे गुणा करनेपर उन-उन उदयस्थानोंके भङ्गोंका प्रमाण आ जाता है। दोप्रकृतिक उदयस्थानके बारह भङ्ग हैं और एकप्रकृतिक उदयस्थानमें पाँच भङ्ग होते हैं ॥३१२॥

विशेषार्थ—दशसे लेकर चार तकके उदयस्थानोंके विकल्प क्रमशः इस प्रकार हैं— १, ६, ११, ११, ११, ६, ३ । इन्हें जोड़ देनेपर ५२ विकल्प होते हैं । इन्हें अपनी-अपनी प्रकृतियोंकी संख्यासे गुणा करनेपर ३५२ उदयस्थान-विकल्प हो जाते हैं । इन एक-एक उदयस्थानोंमें चार कपाय, तीन वेद और हास्यादियुगलके परस्परमें गुणा करनेपर चौबीस भङ्ग होते हैं । उदयस्थान विकल्पोको चौबीससे गुणा करनेपर सर्व भङ्गोका प्रमाण आ जाता है । कहनेका भाव यह है कि उक्त ५२ विकल्पोको २४ से गुणा करनेपर १२४८ प्रमाण आता है । उसमें द्विकप्रकृतिक उदयस्थानके १२ एवं एकप्रकृतिक स्थानके ५ और जोड़नेपर १२६५ उदयस्थान-सम्बन्धी विकल्प होते हैं । तथा ३५२ उदयस्थानोंको २४ से गुणित करनेपर ८४४८ होते हैं ।

इनमें दोप्रकृतिक उदयस्थानके $२ \times १२ = २४$ और एकप्रकृतिक उदयस्थानके ५ इस प्रकार २९ और मिला देनेपर पदवृन्दोंकी सर्व संख्या ८४७७ हो जाती है ।

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं—

वारसपणसद्वाहं उदयवियप्पेहिं मोहिया जीवा ।

चुलसीदिं सत्तत्तरि पयबंदसदेहिं विण्णेया ॥३१३॥

१२६५।८४७७।

द्वादशशतपञ्चपण्डिसंख्योपेतैरुदयविकल्पैर्मोहप्रकृत्युदयस्थानभङ्गैः १२६५ सप्तसप्तत्यधिकचतुरशीति-
शतसंख्योपेतैश्च पदवृन्दैः मोहप्रकृत्युदयविकल्पैः ८४७७ त्रिकालत्रिलोकोदरवर्त्तिचराचरजीवा मोहिता विकली-
कृता ज्ञेया ज्ञातव्या भवन्ति ॥३१३॥

ये सर्व संसारी जीव बारह सौ पैसठ (१२६५) उदयविकल्पोसे और चौरासी सौ सत्त-
हत्तर (८४७७) पदवृन्दोंसे मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३१३॥

उदयविकल्प १२६५ । पदवृन्द ८४७७ ।

अब इनकी संख्याके लिए भाष्यगाथाकार उत्तर गाथासूत्र कहते हैं—

‘जुगवेदकसाएहिं दुग-तिग-चउहि भवंति संगुणिया ।

चउवीस वियप्पा ते दसादि उदया य सत्तेव ॥३१४॥

एव दसादि उदयठानाणि सत्त १०।१।८।७।६।५।४। एयाणि कसायादीहिं चउवीसभेयाणि
भवति । एदेसिं च सखत्थ भणइ—

हास्यादियुग्मेन २ वेदत्रिकेण ३ कपायचतुष्केण ४ परस्परेण संगुणिताश्चतुर्विंशतिर्विकल्पाः २४
भवन्ति । ते पूर्वोक्ता दशादय उदयाः सप्तसंख्योपेताश्चतुर्विंशतिभेदान् प्राप्नुवन्ति ॥३१४॥

एवं दशादयो मोहप्रकृत्युदयस्थानानि सप्त १०।१।८।७।६।५।४ । एतानि सप्त स्थानानि कपायादि-
भिर्गुणितानि प्रत्येकं चतुर्विंशतिभेदा भवन्ति । तेषां च संख्यामाह—

मिथ्या	सासा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म०
८	७	७	७	६	५	५	४	२।१	१
१।६	८।८	८।८	८।८	७।७	६।६	६।६	५।५		
१०	६	६	६	८	७	७	६		
७		०	६	५	४	४			
८।८	०		७।७	६।६	५।५	५।५	०	०	०
६			८	७	६	६			
८	४	४	८	८	८	८	४	२।१	१
२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	६।४	१
१६२	६६	६६	१६२	१६२	१६२	१६२	६६	१२।४	१

हास्यादियुग्मको वेदत्रिक और कपायचतुष्कसे गुणा करने पर चौबीस विकल्प हो जाते
हैं । दश आदि सात उदयस्थान चौबीस चौबीस विकल्परूप होते हैं ॥३१४॥

दश आदि सात उदयस्थान इस प्रकार हैं—१०, ६, ८, ७, ६, ५, ४ ।

ये उदयस्थान कपायादिके चौबीस चौबीस भेदरूप होते हैं ।

१. स० पञ्चस० ५, ३४२ । २. ५ ‘इति दशाद्युदयः’ इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०३) ।

‘च पण्डाहं ।

१मिच्छे अड चउ चउ दुसु तदो चउसु हवन्ति अट्ठेव ।
चत्तारि अपुव्वे वि य उदयट्ठाणाणि मोहम्मि ॥३१५॥

दा१।१।दा।दा।दा। अपुव्वे ४ ।

मिथ्यादृष्ट्यादि-सूक्ष्मान्तगुणस्थानेषु मोहनीयप्रकृत्युदयस्थानानां दशक-नवकादीनां सरया कथ्यते—
मिथ्यादृष्टौ अष्टौ न सासादन मिश्रयोर्द्वयोश्चतुश्चतुःसंख्या ४।४ । ततश्चतुर्षु अविरत-देशविरत-प्रमत्ताप्रमत्तेषु
प्रत्येकमष्टौ दा।दा।दा। अपूर्वकरणे चत्वारि ४ । अग्रे वक्ष्यमाणानिवृत्तिकरणे द्वयं २ सूक्ष्मे एकं १ मोहे
प्रकृत्युदयस्थानसंख्यानि भवन्ति ॥३१५॥

दा।१।१।दा।दा।दा। अपूर्वे ४ । एते प्रकृत्युदयाश्चतुर्विंशत्या २४ गुणिता उदयविकल्पा
भवन्तीत्याह—

मिथ्यात्वगुणस्थानमें मोहके आठ उदयस्थान हैं । दूसरे और तीसरे इन दो गुणस्थानोंमें
चार चार उदयस्थान हैं । चतुर्थ आदि चार गुणस्थानोंमें आठ आठ उदयस्थान हैं । अपूर्वकरणमें
चार उदयस्थान हैं ॥३१५॥

मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी संख्या क्रमशः इस प्रकार है—८, ४, ४, ८, ८,
८, ८ । अपूर्वकरणमें ४ उदयस्थान होते हैं ।

२चउवीसेण विगुणिया मिच्छाइउदयपयडीओ ।
उदयवियप्पा होंति हु ते पयवंधा य णियमेण ॥३१६॥
३सासण मिस्सेऽपुव्वे उदयवियप्पा हवन्ति छण्णउदी ।
अण्णे पंचसु दुगुणा अणियट्ठि सुहुमे सत्तरसं ॥३१७॥

४एव मिच्छादिसु उदयवियप्पा १६२।६६।६६।१६२।१६२।१६२।१६२।६६। अणियट्ठि सवेदे
१२ । अवेदे ४ । सुहुमे १ ।

मिथ्यादृष्ट्यादिषु मोहप्रकृत्युदयस्थानसंख्या दा।१।१।दा।दा।दा।४ संख्याप्य चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः
सन्तः उदयविकल्पाः स्थानविकल्पा हु स्फुटं ते पदबन्धाश्च प्रकृतिविकल्पा भवन्ति नियमेन । तानुदय-
विकल्पान् प्राह—सासादने मिश्रे अपूर्वकरणे च पणवतिरुदयविकल्पा भवन्ति ६६ । अन्येषु पञ्चसु मिथ्या-
त्वाविरत-देश-प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानेषु पणवतिर्द्विगुणिताः द्विनवत्यधिकशतप्रमिताः १९२ उदयविकल्पा
भवन्ति । अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः सप्तदश १७ ॥३१६—३१७॥

एवं मिथ्यादृष्ट्यादि-बीजकपायान्तेषु मोहप्रकृत्युदयविकल्पाः मि० सा० मि० अवि० दे०
१६२ ६६ ६६ १६२ १६२

प्र० अग्र० अपू० अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे १२ अवेदभागे ४ सूक्ष्मे १ । एवं सर्वे मीलिता १२६५।
१६२ १६२ ९६

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें जो मोहकर्मकी उदय-प्रकृतियों हैं, अर्थात् उदयस्थानोंकी
संख्या है, उसे चौबीससे गुणा करने पर उदयस्थानके विकल्पोका प्रमाण आ जाता है । वे
उदयस्थानोंके विकल्प या पदवृन्द नियमसे सासादन, मिश्र और अपूर्वकरणमें छ्यानवै छ्यानवै

1. सं० पञ्चसं० ५, ३४३ । 2. ५, ३४४ । 3. ५, ३४५ । 4. ५, 'इति मिथ्यादृष्ट्यादिषु'
इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०४) ।

होते हैं। तथा शेष पाँच गुणस्थानोंमें इनसे दुगुने अर्थात् एकसौ बानवे एक सौ बानवै होते हैं। अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमे सत्तरह होते हैं ॥३१६-३१७॥

मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंके भेद इस प्रकार हैं—

मि०	सा०	मि०	असं०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपूर्व	अनि०	सवेद०	अवेद०	सूक्ष्म०
१६२	६६	६६	१६२	१६२	१६२	१६२	६६		१२	४	१

अथ भाष्यगाथाकार इन सर्व सख्याओंका योगफल बतलाते हैं—

^१उदयद्व्याणे संखा उदयवियप्पा हवंति ते चेव ।

तेरस चेव सयाणि दु पंचत्तीसा य हीणाणि ॥३१८॥

१२६५ ।

या मोहप्रकृत्युदयस्थानानां सख्यास्ते उदयविकल्पाः पञ्चत्रिंशद्बीनास्त्रयोदशशतप्रमिताः द्वादशशत-
पञ्चपट्टिर्भवन्तीत्यर्थः १२६५ ॥३१८॥

यह जो उदयस्थानोंकी संख्या है, उन सबका योग पैतीस कम तेरह सौ अर्थात् बारहसौ पैंसठ होता है, सो ये सब उदयस्थानके विकल्प जानना चाहिए ॥३१८॥

मोहकर्मके उदयस्थान-विकल्प १२६५ होते हैं ।

अथ आचार्य गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंका तथा उनके पदवृन्दोंका निरूपण करते हैं—

^२अडसट्ठी वत्तीसं वत्तीसं सट्ठि होंति वावण्णा ।

चउदालं चउदालं बीसमपुन्वे य उदयपयडीओ ॥३१९॥

ताओ चउवीसगुणा पयबंधा होंति मोहम्मि ।

अणियट्ठीसुहुमाणं वारस पंचयदुगेगसंगुणिया ॥३२०॥

अथ मोहोदयपदवृन्धसख्या गुणस्थानेषु गाथान्वक्त्रेणाऽऽह—[‘अडसट्ठी वत्तीसं’ इत्यादि ।] पूर्वोक्त-
दशकाद्युदयानां प्रकृतयो मिथ्यादष्टौ अष्टपट्टिः ६८ । सासादने द्वात्रिंशत् ३२ । मिश्रे द्वात्रिंशत् ३२ ।
असंयते पट्टिः ६० । देशमंयते द्वापञ्चाशत् ५२ । प्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत् ४४ । अप्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत्
४४ । अपूर्वकरणे विंशतिः २० चोदयप्रकृतयो भवन्ति । ता एता दशादिकाः ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४
२० चतुर्विंशत्या २४ गुणिता मोहनीये पदवृन्धा उदयविकल्पा भवन्ति । अनिवृत्तिकरणसवेदा २ वेद १
सूक्ष्माणा १ प्रकृत्युदया द्वादश पञ्च द्वयेके गुणिताः क्रमेण उदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ॥३१९-३२०॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयस्थानोंकी प्रकृतियाँ अडसठ हैं, सासादनमें वत्तीस हैं, मिश्रमें
वत्तीस हैं, अविरतमें साठ हैं, देशविरतमें वावन है, प्रमत्तविरतमें चवालीस है, अप्रमत्तविरतमें
चवालीस है, अपूर्वकरणमें बीस है, इन उदयप्रकृतियोंको चौबीससे गुणा करने पर आठ गुण-
स्थानोंमें मोहकर्मके पदवृन्दोंकी संख्याका प्रमाण आ जाता है। अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म-
साम्परायकी उदयप्रकृतियाँ बारह और पाँच हैं, उनके पदवृन्द क्रमशः दो और एकसे गुणित
जानना चाहिए ॥३१९-३२०॥

^१एवं मोहे पुण्युत्तदसगादि-उदयपयडोभो मिच्छादिसु ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४। अपुण्वे २०। अणियट्ठिमि २।१। सुहुमे १। एयाओ चउवीसगुणा जाव अपुण्वं। मिच्छे ८६४।७६८। दो वि मिलिए १।३२। सासणादिसु ७६८।७६८।१४४०।१२४८।१०५६।१०५६।४८०। एदा हु मिलिया ८४४८।
बुत्त च—

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तदशकाद्युदयप्रकृतयः ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२० चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः मिथ्यादृष्टौ ८६४। द्वि० ७६८। उभयोर्मिलिताः १६३२ सासादने ७६८। मिश्रे ७३८। असंयते १४४०। देशसंयते १२४८। प्रमत्ते १०५६। अप्रमत्ते १०५६। अपूर्वकरणे ४८०। एतासु मीलिताः ८४४८।

इस प्रकार मोहकर्मकी पूर्वोक्त दशप्रकृतिक उदयस्थानोंकी उदयप्रकृतियों मिथ्यात्व आदि सात गुणस्थानोंमें क्रमशः ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ होती हैं। अपूर्वकरणमें २० होती है। अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें २ और अवेदभागमें १ होती है, तथा सूक्ष्मसाम्परायमें १ उदय-प्रकृति होती है। अपूर्वकरणगुणस्थान तककी इन उदयप्रकृतियोंको चौबीससे गुणा करने पर पद-वृन्द इस प्रकार होते हैं—मिथ्यात्वमें पहले ३६ के भेदको २४ से गुणा करनेपर ८६४ आये। दूसरे भेदके ३२ को २४ से गुणा करने पर ७६८ आये। दोनोंको मिलाने पर १६३२ पदवृन्द होते हैं। सासादनादिगुणस्थानोंमें क्रमसे ७६८, ७६८, १४४०, १२४८, १०५६, १०५६, ४८० पदवृन्द होते हैं। ये सर्व मिलकरके ८४४८ पदवृन्द हो जाते हैं।

अब इसी कथनको भाष्यगाथाकार निरूपण करते हैं—

^२चउसट्ठी अडसया अड्ठही होंति सत्तसया ।

बत्तीसा सोलसया जुत्ता मिच्छम्मि उभओ वि ॥३२१॥

मिच्छे १६३२।

एतदुक्त च—[‘चउसट्ठी अडसया’ इत्यादि ।] चतुःपष्टयधिकाष्टशतानि ८६४ अष्टपष्टयधिकसप्त-शतानि ७६८ उभयविमिश्रे द्वात्रिंशदधिकषोडशशतप्रमिता मोहोदयप्रकृतिविकल्पा मिथ्यादृष्टौ १६३२ भवन्ति ॥३२१॥

मिथ्यात्वमें आठ सौ चौंसठ (८६४) और सात सौ अड़सठ (७६८) ये दोनों मिलकरके सोलह सौ बत्तीस (१६३२) पदवृन्द होते हैं ॥३२१॥

मिथ्यात्वमें १६३२ पदवृन्द हैं।

^३अड्ठही सत्तसया सासण-मिस्साण होंति पयबंधा ।

अविरयम्मि चोदह सयाणि चत्तालसहियाणि ॥३२२॥

७६८।७६८।१४४०।

सासादन-मिश्रयोरष्टपष्टयधिकसप्तशतप्रमिताः ७६८। ७६८। असंयते चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशत-प्रमिताः १४४० पदवन्धाः मोहोदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ॥३२२॥

सासादन और मिश्रमें पदवृन्द सात सौ अड़सठ, सात सौ अड़सठ होते हैं। अविरत-सम्यक्त्वमें चौदह सौ चालीस पदवृन्द होते हैं ॥३२२॥

सासादनमें ७६८, मिश्रमें ७६८ अविरतमें १४४० पदवृन्द हैं।

^१अडयाला वारसया देसेऽपुव्वम्मि चउसयाऽसीया ।

छप्पणं च सहस्सं पमत्तइयराण णायव्वं ॥३२३॥

१२४८।१०५६।१०५६।४८०। सञ्चाओ ८४४८

देशसयते अष्टत्वारिंशदधिकद्वादशशतप्रमिताः १२४८ । अपूर्वकरणे अशीत्यधिकशतचतुष्टय ४८० । प्रमत्ताप्रमत्तयोः पट्पञ्चाशदधिकसहस्रं १०५६।१०५६ ज्ञेयम् । सर्वा. पदबन्धाख्याः प्रकृतयो मोहोदय-प्रकृतिविकल्पाः ८४४८ भवन्ति ॥३२३॥

देशविरतमें बारह सौ अड़तालीस, तथा अपूर्वकरणमें चार सौ अस्सी पदवृन्द होते हैं । प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमे एक हजार छप्पन एक हजार छप्पन पदवृन्द जानना चाहिए ॥३२३॥

देशविरतमें १२४८, प्रमत्तमे १०५६, अप्रमत्तमे १०५६ और अपूर्वकरणमें ४८० पदवृन्द होते हैं । इन आठो गुणस्थानोंके पदवृन्दोका प्रमाण ८४४८ होता है ।

“संजलणा वेदगुणा वारस भंगा दुगोदया होंति ।

एगोदया दु चउरो सुहमे एगो मुणेयव्वो ॥३२४॥

उदयादो सत्तरसं खलु पयडीओ हवंति उगुतीसं ।

अणियट्ठी तह सुहुमे दुगेगपयडीहिं संगुणिया ॥३२५॥

^४एव अणियट्ठिस्मि दुगोदया १२ । एगोदया ४ । सुहुमे १ । एव उदयठाणाणि १७ । तहा वारससु दुगोदएसु पयडीओ २४ । एगोदयपयडीओ ४ । सुहुमे एया पयडी १ । एव पयडीओ २६ ।

अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे पुवेदः १ संज्वलनानां मध्ये एक १ एवं द्वौ उदयौ २ । संज्वलनाः ४ वेदै ३ गुणिताः द्वादश भङ्गा. १२ । तैर्द्वादशभिर्द्वौ उदय २ गुणिताश्चतुर्विंशतिः २४ । अवेदभागे एकोदयः कपायः १ चतुर्भिः कपायैर्गुणिताश्चत्वारः ४ । सूक्ष्मे संज्वलनसूक्ष्मैकलोभः १ । स एकेन गुणित एव १ । एवं एकोनत्रिंशदुदयप्रकृतिविकल्पाः २९ भवन्ति । तदेवाऽऽह—अनिवृत्तिकरणे सवेदे द्विकोदयाः १२ अवेदे एकोदयाः ४ सूक्ष्मे एकोदय. १ । एवमुदयात्सप्तदश प्रकृतयः १७ उदयस्थानरूपा भवन्ति । तथा अनिवृत्तिकरणे सवेदद्विकोदयौ २ द्वादशभिर्गुणिताश्चतुर्विंशतिः २४ । अवेदे एकोदयः १ चतुर्भिः कपायै ४ गुणितश्चत्वारः ४ । सूक्ष्मे एकोदय. एकेन गुणित एक एव १ । एवमेकोनत्रिंशत्कोदय-प्रकृतिविकल्पाः २६ भवन्ति ॥३२४-३२५॥

अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें एक संज्वलन और एक वेद; इन दो प्रकृतियोंके उदयस्थानके संज्वलन और वेदगुणित बारह भङ्ग अर्थात् चौबीस पदवृन्द होते हैं । अवेदभागमें एकप्रकृतिक उदयवाले चार भङ्ग होते हैं । तथा सूक्ष्मसाम्परायमे एकप्रकृतिक उदयवाला एक ही भङ्ग जानना चाहिए । अनिवृत्तिकरण सवेदभागमें उदयकी अपेक्षा द्विक उदयवाली बारह और अवेदभागमे एक उदयवाली चार; तथा सूक्ष्मसाम्परायमें एक, इस प्रकार सर्व मिलकर उदयकी अपेक्षा सत्तरह-प्रकृतियों होती हैं । इनमेंसे सवेदभागकी दोप्रकृतियोंको बारहसे गुणा करनेपर चौबीस पदवृन्द होते हैं । तथा अवेदभागकी चारको और सूक्ष्मसाम्परायकी एकप्रकृतिको एक-एकसे गुणा करनेपर पाँच पदवृन्द होते हैं । ये दोनो मिलकर दोनों गुणस्थानोंके उनतीस पदवृन्द हो जाते हैं ॥३२४-३२५॥

1. स० पञ्चस० ५, ३५२-३५३ । 2. ५, ३५४-३५५ । 3. ५, 'सवेदेऽनिवृत्तौ' इत्यादिगद्याशः (पृ० २०५) ।

करणसूचमसाम्परायोपशान्तक्षीणकषायेषु प्रत्येकं नव नव योगाः ६१६ भवन्ति । सयोगे सप्त योगाः ७ । अयोगे शून्य ० । सयोगान्तयोगाः सन्ति, अयोगे न सन्ति ॥३२८॥

पहले दो गुणस्थानोमे तेरह तेरह योग होते हैं । तीसरेमे दश योग होते हैं । चौथेमें तेरह योग होते हैं । पाँचवेंमें नौ और छठेमें ग्यारह योग होते हैं । इससे आगे सातवेंसे बारहवें तक छह गुणस्थानोमे नौ नौ योग होते हैं । सयोगिकेवलीके सात योग होते हैं । अयोगिकेवलीके कोई योग नहीं होता है ॥३२८॥

गुणस्थानोमे योग इस प्रकार होते हैं—

मि० सा० मि० अवि० देश० प्रम० अप्र० अपू० अनि० सू० उप० क्षीण० सयो० अयो०
१३ १३ १० १३ ६ ११ ६ ६ ६ ६ ६ ७ ०

अब पहले मिथ्यादृष्टिके योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

मिच्छादिद्विस्सोदयभंगा अट्ठेव होंति जिणभणिया ।

ते दसजोगे गुणिया भंगमसीदी य पज्जत्ते ॥३२९॥

उदया ऽ दसजोग्यगुणा ऽ० ।

मि०

ऽ

मिथ्यादृष्टेः स्थानानि दशकादीनि चत्वारि ६१६ अनन्तानुबन्धुदयरहितानि नवकादीनि चत्वारि १०

मि०

७

८८ मिलिन्वा अष्टौ उदयभङ्गा भवन्ति, जिनैर्भणितास्ते अष्टौ उदयविकल्पाः ऽ दशभिर्योगै १० गुणिता ६

उदयस्थानविकल्पाः ८० मिथ्यादृष्टेः पर्याप्तस्य भवन्ति ॥३२९॥

मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धीके उदयसहित दश आदि चार उदयस्थान और अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित नौ आदि चार उदयस्थान इस प्रकार आठ उदयस्थान जिन भगवान्ने कहे हैं । उन्हें पर्याप्त दशामे सम्भव दश योगोंसे गुणित करने पर उदयस्थान-सम्बन्धी अस्सी भङ्ग हो जाते हैं ॥३२९॥

मिथ्यात्वमें उदयस्थान ८ को १० योगोंसे गुणा करने पर पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके ८० भङ्ग होते हैं ।

तस्सेव अपज्जत्ते उदयवियप्पाणि होंति चत्तारि ।

ते तिण्णि-मिस्सजोगेहि गुणिया वारसा होंति ॥३३०॥

४११२।

ऽ

तस्यैव मिथ्यादृष्टेरपर्याप्तकाले उदयस्थानविकल्पाः ६१६ चत्वारो भवन्ति ४ । ते चत्वारो भङ्गाः ४ १०

औद्धारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कर्मणयोगैस्त्रिभिर्गुणिता द्वादशोदयस्थानविकल्पा अपर्याप्तमिथ्यादृष्टौ भवन्ति १२ ॥३३०॥

उसी अपर्याप्त मिथ्यादृष्टिके उदयस्थान-सम्बन्धी विकल्प चार ही होते हैं । उन्हें अपर्याप्त-कालमे सम्भव तीन मिश्रयोगोंसे गुणा करने पर बारह भङ्ग होते हैं ॥३३०॥

अपर्याप्त मिथ्यादृष्टिके उदय-विकल्प ४ और योग भङ्ग १२ होते हैं ।

अब सासादन गुणस्थानमें योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

आसादे चउभंगा वारसजोगहया य अडयाला ।

मिस्सम्हि य चउभंगा दसजोगहया य चत्तालं ॥३३१॥

४।४८।४।४०।

७

सासादनस्थानानि नवकादीनि चत्वारि ८।८ इति चतुर्भङ्गाः ४ । सासादनो नरक न यातीति वैक्रि-

६

यिकमिश्रं विना द्वादशभिर्योगै १२ हंता अष्टचत्वारिंशदुदयस्थानविकल्पाः ४८ सासादने भवन्ति । मिश्रे

७

८।८ चतुर्भङ्गाः दशयोगगुणिताश्चत्वारिंशदुदयस्थानविकल्पाः ४० भवन्ति ॥३३१॥

सासादन गुणस्थानमें नौ आदिक चार उदयस्थान होते हैं । उन्हें पर्याप्तकालमें संभव बारह योगोंसे गुणा करने पर अड़तालीस भङ्ग हो जाते हैं । मिश्र गुणस्थानमें सम्भव चार उदयस्थानोंको दश योगोंसे गुणा करने पर चालीस भङ्ग होते हैं ॥३३१॥

सासादनमे उदयस्थान ४ और भंग ४८ होते हैं । मिश्रमें उदयस्थान ४ और भंग ४० होते हैं ।

अब अविरतसम्यग्दृष्टिके योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

अट्ठेवोदयभंगा अविरयसम्मस्स होंति णायव्वा ।

मिस्सतिगं वज्जित्ता छह जोगहया असीदी य ॥३३२॥

८।८०।

७

६

अविरतसम्यग्दृष्टेर्वेदकसम्यक्त्वापेक्षया ८।८ । ७।७ अष्टावुदयस्थानभङ्गाः ८ मिश्रत्रिक वर्जयित्वा

६

८

दशभिर्योगै १० गुणिताः अशीत्युदयस्थानविकल्पा असयतसम्यग्दृष्टेः पर्याप्तस्य भवन्ति ८० ॥३३२॥

अविरतसम्यक्त्वके उदयस्थानके विकल्प आठ ही होते हैं । उन्हें अपर्याप्तकालमें संभव तीन मिश्रयोगोंको छोड़कर शेष दश योगोंसे गुणा करने पर अस्सी भंग चौथे गुणस्थानमें जानना चाहिए ॥३३२॥

अविरतसम्यक्त्वमें उदयस्थान ८ और योग भंग ८० होते हैं ।

अब देशविरतके योगसम्बन्धी भंग कहते हैं—

विरयाविरण वि णियमा †उदयवियप्पा दु होंति अट्ठेव ।

णवजोगेहि य गुणिया भंगा वावत्तरी होंति ॥३३३॥

उदया ८ णवजोगगुणा ७२ ।

६

५

विरताविरते देशसयते ७।७ । ६।६ मिलित्वाऽष्टौ प्रकृत्युदयस्थानविकल्पा नियमेन ८ भवन्ति ।

८

७

नवभिर्योगै गुणिता द्वासप्ततिरुदयस्थानविकल्पा भवन्ति ॥३३३॥

†व उदये ।

विरत्ताविरतमे उदयस्थान-सम्बन्धी विकल्प नियमसे आठ ही होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणा करने पर वहत्तर भंग होते हैं ॥३३३॥

देशविरतमें उदयस्थान ८ को ६ योगोंसे गुणा करने पर ७२ भंग होते हैं।

अब प्रमत्तविरतके योगसम्बन्धी भंग कहते हैं—

अद्दु य पमत्तभंगा जोगा एगारसा य तस्सेव ।

तेहि हया अडसीया भंगवियप्पा वि ते होंति ॥३३४॥

उदया ८ एगारहजोगगुणा ८८ ।

प्रमत्तस्य ६।६ । ५।५ मिलित्वाऽष्टौ भङ्गा ८ तस्य प्रमत्तस्यैकादशयोगाः ११ तैर्गुणिता. अष्टा-

शीतिरुदयस्थानविकल्पा. ८८ भवन्ति ॥३३४॥

प्रमत्तगुणस्थानमे उदयस्थानके विकल्प आठ होते हैं। उन्हें इस गुणस्थानमें सम्भव ग्यारह योगोंसे गुणा कर देने पर अट्ठासी भङ्ग होते हैं ॥३३४॥

प्रमत्तविरतमें उदयस्थान ८ को ११ योगोंसे गुणित करने पर ८८ भङ्ग होते हैं।

अब अप्रमत्तविरतके योगसम्बन्धी भंग कहते हैं—

अट्ठेवोदयभंगा पमत्तिदरस्स चावि वोहव्वा ।

णवजोगेहि हदा ते भंगा वावत्तरी होंति ॥३३५॥

उदया ८ णवजोगगुणा ७२ ।

अप्रमत्तस्य ६।६ । ५।५ मिलित्वाऽष्टौ भङ्गा ८ नवभिर्योगैर्हता द्वासप्ततिरुदयस्थानविकल्पा. ७२

भवन्ति ॥३३५॥

अप्रमत्तविरतके उदयस्थानके भेद आठ ही जानना चाहिए। उन्हें नौ योगोंसे गुणित करने पर वहत्तर भङ्ग हो जाते हैं ॥३३५॥

अप्रमत्तविरतमें उदयस्थान ८ को ६ योगोंसे गुणित करने पर ७२ भङ्ग होते हैं।

अब अपूर्वकरणके योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण कर शेष अर्थका उपसंहार करते हैं—

चउभंगापुव्वस्स य णवजोगहया हवन्ति छत्तीसा ।

एदे चउवीसहदा ठाणवियप्पा य पुव्वुत्ता ॥३३६॥

उदय ४ णवजोगगुणा ३६ ।

अपूर्वस्य ५।५ इति चतुर्भङ्गा. ४ नवयोगैर्हता षट्त्रिंशदुदयस्थानविकल्पा ३६ । एतावत्पर्यन्त

सर्वत्रोदयस्थानविकल्पाः गुणकारश्चतुर्विंशतिः । तथाहि—मिथ्यादष्टौ ८०।१२ । सासादने ४८ गु० २४ । मिथ्रे ४० गु० २४ । अविरते ८० गु० २४ । देशे ७२ । गु० २४ । प्रमत्ते ८८ गु० २४ । अप्रमत्ते ७२ गु० २४ । अपूर्वे ३६ गु० २४ ॥३३६॥

अपूर्वकरणमे उदयस्थान चार होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणित करने पर छत्तीस भङ्ग होते हैं। इन पूर्वोक्त योग-भङ्गोंको चौबीससे गुणा करनेपर सर्व उदयस्थान-सम्बन्धी भङ्ग प्राप्त हो जाते हैं ॥३३६॥

अपूर्वकरणमे उदयस्थान ४ को नौ योगोंसे गुणा करने पर ३६ भङ्ग होते हैं।

अब योगसम्बन्धा उक्त सर्व भङ्गोंका निर्देश करते हैं—

^१चउवीसेण य गुणिया सन्वट्टाणाणि एत्तिया होंति ।

वारसयसहस्साइ' छस्सदवाहत्तराइ' च ॥३३७॥

१२६७२ ।

एते पूर्वोक्तस्थानविकल्पाश्चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः मिथ्यादष्टौ १६२०।२८८ पिण्डिताः २२०८ । सासादने ११५२ । मिश्रे ६६० । असंयते १६२० । देशे १७२८ । प्रमत्ते २११२ । अप्रमत्ते १७२८ । अपूर्वकरणे ८६४ । सर्वे एकत्रीकृताः द्वादशसहस्रपट्शतद्वाससतिप्रमिताः सर्वोदयस्थानविकल्पाः १२६७२ भवन्ति ॥३३७॥

ऊपर जो योगसम्बन्धी सर्व उदयस्थानोंके भंग बतलाये हैं, उन्हें चौबीससे गुणा करने पर बागह हजार छह सौ बहत्तर सर्व भंग होते हैं ॥३३७॥

विशेषार्थ—ऊपर मिथ्यात्वगुणस्थानमें पर्याप्तकालसम्बन्धी योगभंग ८० और अपर्याप्तकालसम्बन्धी १२ बतलाये हैं, उन्हें उदय-प्रकृतियोंके परिवर्तनसे सम्भव २४ भङ्गोंसे गुणा करने पर क्रमशः (८० × २४ =) १९२० और (१२ × २४ =) २८८ आते हैं। इन दोनोंको जोड़ देने पर (१९२० + २८८ =) २२०८ भंग मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्राप्त होते हैं। सासादनमें योग भंग ४८ हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (४८ × २४ =) सर्व भंग ११५२ होते हैं। मिश्रमे योगभङ्ग ४० हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (४० × २४ =) सर्व भङ्ग ९६० होते हैं। अविरतमे योगभङ्ग ८० हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (८० × २४ =) सर्व भङ्ग १९२० होते हैं। देशविरतमे योगभङ्ग ७२ हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (७२ × २४ =) सर्व भङ्ग १७२८ होते हैं। प्रमत्तविरतमे योगभङ्ग ८८ हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (८८ × २४ =) सर्व भङ्ग २११२ होते हैं। अप्रमत्तविरतमे योगभङ्ग ७२ हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (७२ × २४ =) सर्व भङ्ग १७२८ होते हैं। अपूर्वकरणमे योगभङ्ग ३६ हैं। उन्हें २४ से गुणा करनेपर (३६ × २४ =) सर्वभङ्ग ८६४ होते हैं। प्रत्येक गुणस्थानके इन सर्वभङ्गोंको जोड़ देनेपर (२२०८ + ११५२ + ९६० + १९२० + १७२८ + २११२ + १७२८ + ८६४ =) १२६७२ सर्वगुणस्थानोंके-योग सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण जानना चाहिए।

इन भङ्गोंकी अंकसंज्ञा इस प्रकार है :—

क्रमांक	गुणस्थान	योग	उदय-विकल्प	गुणकार	भंग
१	मिथ्यात्व	पर्याप्त १०	८	८० २४	१९२०
		अप० ३	४	१२ २४	२८८
२	सासादन	पर्याप्त १२	४	४८ २४	११५२
३	मिश्र	१०	४	४० २४	९६०

१. स०पञ्चस० पू, ३५६-३६१ । तथा 'मिथ्यादष्टौ योगाः' इत्यादिगद्यभागः' (पृ० २०६) ।

क्रमांक	गुणस्थान	योग	उदयविकल्प	गुणकार	भंग
४	अविरत	पर्याप्त १०	८	८० २४	१६२०
५	देशविरत	६	८	७२ २४	१७२८
६	प्रमत्तविरत	११	८	८८ २४	२११२
७	अप्रमत्तविरत	६	७	७२ २४	१७२८
८	अपूर्वकरण	६	४	३६ २४	८६४

सर्वभंगोंका जोड़ १२६७२

अब सासादन गुणस्थानमें योगसम्बन्धी भंगोंमें जो कुछ विशेषता है उसे बतलाते हैं—

^१चउसट्टि होंति भंगा वेउन्वियमिस्ससासणे णियमा ।

वेउन्वियमिस्सस्स य णत्थि पुहत्तेग चउवीसा ॥३३८॥

सासणो णिरप्प ण उववज्जइ त्ति वयणाभो णपुंसकवेदो णत्थि । उदया ४ सोलसभगगुणा ६४ ।

सासादनाविरतयोर्विशेषमाह—['चउसट्टि होंति भंगा' इत्यादि ।] वैक्रियिकमिश्रकाययोगसंयुक्त-सासादने चतुःपट्टिरुदयस्थानविकल्पाः भवन्ति नियमतः वैक्रियिकमिश्रस्य चतुर्विंशतिगुणकारभङ्गाः पृथक्त्वेन

न सन्ति । कुतः ? सासादनो नरकेषु नोत्पद्यत इति वचनात् नपुंसकवेदो नास्ति । सासादने नाऽऽ उदय-
स्थानविकल्पाः ४ स्त्री पुंवेदद्वयं २ कपायचतुष्कं ४ हास्यादियुग्मं २ गुणिताः षोडशभङ्गगुणिताश्चतुःपट्टिः
सर्वोदयस्थानविकल्पाः ६४ ॥३३८॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोग-संयुक्त सासादनमे नियमसे चौसठ ही भङ्ग होते हैं, इसलिए वैक्रियिकमिश्रके चौबीस गुणकाररूप भङ्ग पृथक् नहीं बतलाये गये हैं ॥३३८॥

सासादनगुणस्थानवाला जीव मरकर नरकमें उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा आगमवचन है, इसलिए इस गुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ नपुंसकवेदका उदय संभव नहीं है, अतएव दो वेद, चार कपाय और हास्यादि दो युगलके परस्पर गुणा करनेसे उत्पन्न सोलह भङ्गोंसे चार उदयस्थानोंके गुणित करनेपर ६४ ही योगसम्बन्धी भङ्ग प्राप्त होते हैं ।

अब अविरतगुणस्थानमें योगसम्बन्धी भङ्गोंमें जो कुछ विशेषता है, उसे बतलाते हैं—

^२वेउन्वियमिस्सकम्मे वे जोगे गुणिय अट्ठभंगेहिं ।

सोलसभंगेहिं पुणो गुणिदे दु हवन्ति अजदिभंगा दु ॥३३९॥

असंयते वैक्रियिकमिश्र-कर्मणयोगाभ्यां २ नाऽऽ । ७।७ इत्यष्टौ स्थानविकल्पाः ८ गुणिताः षोडश
स्थानभङ्गाः १६ । पुनरेते पुंवेद-नपुंसकवेदद्वयं २ कपायचतुष्कं ४ हास्यादियुग्मं २ गुणिताः षोडश १६ तैः
स्थानभङ्गैः १६ गुणिता २५६ असंयते उदयस्थानविकल्पाः भवन्ति ॥३३९॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग इन दोनों योगोंको चौथे गुणस्थानमें संभव आठ उदयस्थानोंसे गुणाकर पुनः संलह भङ्गोंसे गुणा करनेपर असंयतगुणस्थानके भङ्ग उत्पन्न होते हैं ॥३३६॥

^१एतथ अविरदे कसाया ४ । पुंवेद-णपुंसगवेदा २ । हस्सादियुगलं २ अण्णोणगुणा भंगा १६ । एते अष्टोदयगुणा १२८ । वेदवियमिस्स- कम्मइयजोगेहि गुणा २५६ ।

तथाहि—असंयते वैक्रियिकमिश्र-कर्मणयोगयोः स्त्रीवेदोदयो नास्तीति, असंयतस्य स्त्रीवनुत्पत्तेः । अत्राविरते कपायाः ४ पुवेद-नपुंसकवेदौ २ हास्यादियुगलं २ अन्योन्यगुणिताः भङ्गाः १६ । एते अष्टोदय-गुणाः १२८ वैक्रियिकमिश्र-कर्मणयोगाभ्यां २ गुणिताः २५६ ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगमें स्थित चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवके स्त्रीवेद-का उदय संभव नहीं है । इसलिए यहाँ असंयतगुणस्थानमें चार कपाय, पुरुष, नपुंसक ये दो वेद और हास्यादि युगलको परस्पर गुणा करनेपर १६ भङ्ग होते हैं । उन्हें इस गुणस्थानमें संभव आठ उदयस्थानोंसे गुणा करनेपर १२८ भङ्ग होते हैं और उन्हें वैक्रियिकमिश्र और कर्मण-काययोगसे गुणा करनेपर २५६ भङ्ग हो जाते हैं । इस प्रकार इन दोनों योगोंके २५६ भङ्ग जानना चाहिए ।

अब चौथे ही गुणस्थानमें औदारिकमिश्रयोग गत विशेषताको बतलाते हैं—

२तेणेव होंति णेया ओरालियमिस्सजोगभंगा हु ।

उदयट्ठेण य गुणिण भंगवियप्पा य होंति सव्वेवि ॥३४०॥

तेनैव प्रकारेणौदारिकमिश्रयोगभङ्गा भवन्तीति ज्ञेयाः । असंयतौदारिकमिश्रयोगे स्त्री-पण्डवेदौ न स्तः । कुतः ? तस्य तयोरनुत्पत्तेः । अमयते अष्टौ उदयस्थानविकल्पाः ८ कपायचतुष्क ४ पुंवेद १ हास्या-दियुगल २ गुणिता अष्टौ । तैर्गुणकारैर्गुणिताश्चतुःषष्टिः ६४ सर्वे असंयतौदारिकमिश्रस्योदयस्थानभङ्गाः स्युः ॥३४०॥

उसी प्रकारसे औदारिकमिश्रकाययोगसम्बन्धी भङ्गोंको जानना चाहिए । अर्थात् चौथे गुणस्थानमें औदारिकमिश्रकाययोगके साथ स्त्री और नपुंसक इन दो वेदोंका उदय संभव नहीं है, इसलिए इस गुणस्थानमें संभव आठ उदयस्थानोंको प्रकृति-परिवर्तनसे उत्पन्न होनेवाले आठ ही भङ्गोंसे गुणा करनेपर सर्व भङ्ग-विकल्प आ जाते हैं ॥३४०॥

^१तह कसाया ४ पुंवेदे १ हस्साइजुग २ । अण्णोणगुणा भंगा ८ । एते वि अष्टोदयगुणा ६४ । ओरालियमिस्सगुणा वि ६४ ।

तद्यथा—कपायचतुष्कं ४ पुवेदः १ हास्यादियुगलं २ अन्योन्यगुणिताः अष्टौ ८ । एते अष्टोदयगुणिताः ६४ । एते औदारिकमिश्रयोगेन १ गुणितास्तदेव ६४ ।

औदारिकमिश्रकाययोगमें चार कपाय, एक पुरुषवेद और हास्यादियुगलको परस्पर गुणा करनेपर ८ भङ्ग होते हैं । उन्हें इस गुणस्थानमें संभव आठ उदयस्थानोंसे गुणा करनेपर ६४ भङ्ग आते हैं । उन्हें औदारिकमिश्रकाययोगसे गुणा करनेपर भी ६४ ही भङ्ग इस योग-सम्बन्धी उत्पन्न होते हैं ।

1. स० पञ्चसं० ५, 'पुंनपुमक वेदद्वय' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०७) । 2 ५, ३६६ ।

3. ५, 'युग्मैकवेद' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २०७) ।

अथ उक्त अर्थका उसंहार करते हैं—

^१वैसयल्लप्पणाणि य वैउन्वियमिस्स-ऊम्मजोगाणं ।

चउसट्ठि चेव भंगा तस्स य ओरालमिस्सए होंति ॥३४१॥

एवं अण्णे वि उदयवियप्पा ३२० ।

तस्यामंयतस्य वैक्रियिकमिश्रकर्मणयोगयोरुदयस्थानविकल्पा. पट्पञ्चाशदधिकद्विशतप्रमिता. २५६ ।
स्त्रीवेदोदयाभावद्रसंयतस्यौदारिकमिश्रयोगे उदयस्थानविकल्पाश्चतुः पट्ट ६४ भवन्ति । कुतः ? स्त्री-पण्डवेदोद-
याभावान् ॥३४१॥

उभयोर्मौलिता ३२० ।

चौथे गुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगसम्बन्धी दो सौ छप्पन भङ्ग होते हैं, तथा उसी गुणस्थानवर्तीके औदारिकमिश्रकाययोगमें चौसठ भङ्ग होते हैं ॥३४१॥

इस प्रकार $२५६ + ६४ = ३२०$ उदयस्थानसम्बन्धी अन्य भी भङ्ग चौथे गुणस्थानमें होते हैं ।

अथ अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके भङ्गोंको कहते हैं—

^२सत्तरस उदयभंगा अणियट्ठिय चेव होंति णायव्वा ।

णव-जोगेहि य गुणिए सदत्तेवण्णं च भंगा हु ॥३४२॥

अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोरुदयस्थानविकल्पानाह—[‘सत्तरस उदयभंगा’ इत्यादि ।] अनि-
वृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्पराययोः पूर्व उदयस्थानभङ्गा. सप्तदश कथिता भवन्ति १४ । ते नवभिर्योगैः १ गुणि-
तास्त्रिपञ्चाशदधिकगतमन्योपेतैः १५३ उदयस्थानविकल्पा ज्ञातव्या ॥३४२॥

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानसम्बन्धी उदयस्थानोंके विकल्प सत्तरह होते हैं, उन्हें इन गुणस्थानोंके सम्भव नौ योगोंसे गुणित करनेपर एक सौ तिरेपन भङ्ग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३४२॥

^३अणियट्ठिए भंजलणा ४ वेदा ३ अण्णोणगुणा हु दुगोदया १२ णवजोगगुणा १०८ । तहा अवेदे संजलणा एगोदया ४ णव जोगगुणा ३६ । एदेसिं मेलिया १४४ । सुहुमे सुहुमलोहो एगोदओ १ णवजोग-
गुणो ९ एवं सव्वे मिलिया १५३ ।

तथाहि—अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागो २ सज्जलनाः ४ वेदा ३ अन्योन्यगुणिता द्विकोदयाः १२ ।
एते नवयोगैर्गुणिताः १०८ । तथा अनिवृत्तिकरणस्य अवेदभागो १ चतुःसज्जलनान्यतमोदया ४ नवयोगै-
र्गुणिताः ३६ । द्वयेऽप्यनिवृत्तौ मौलिते १४४ । सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभोदयः १ नवभिर्योगैर्गुणिता नव
६ । एवं सर्वे मौलिता. १५३ ।

अनिवृत्तिकरणमें ४ संज्वलनकपाय और तीन वेदको परस्पर गुणा करनेपर द्विकप्रकृतिक उदयस्थानसम्बन्धी १२ भङ्ग होते हैं । उन्हें नौ योगोंसे गुणित करनेपर १०८ भङ्ग होते हैं । ये सवेदभागके भङ्ग हैं । अवेदभागमें एकप्रकृतिक उदयस्थानके चार सज्जलनकपायसम्बन्धी ४ भङ्ग होते हैं । उन्हें नौ योगोंसे गुणा करनेपर ३६ भङ्ग होते हैं । ये दोनों मिलकर (१०८ + ३६ =) १४४ भङ्ग अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होते हैं । सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक सूक्ष्म लोभका ही उदय होता है । उसे नौ योगोंसे गुणा करनेपर ६ भङ्ग नव गुणस्थानमें होते हैं । इस प्रकारके दोनों गुणस्थानोंके सर्व भङ्ग मिलकर (१४४ + ६ =) १५० हो जाते हैं ।

१. स०पञ्चम० ५, ‘एवमसयते’ इत्यादिगद्याशः । (पृ० २०७) । २ ५, ३६७ । ३. ५, सवेदेऽनिवृत्तौ इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०७) ।

अब योगकी अपेक्षा संभव उपर्युक्त सर्व भङ्गोंका उपसंहार करते हैं—

¹तेरस चेव सहस्सा वे चेव सया हवन्ति णव चेव ।

उदयवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहणीयस्स ॥३४३॥

१३२०९ ।

मोहनीयस्य योगान् प्रत्याश्रित्य त्रयोदशसहस्रद्विशतनवप्रमितान् उदयस्थानविकल्पान् जानीहि १३२०९ ॥३४३॥

गुण०	यो०	मं० वि०	गुण०	उ० वि०
मिथ्या०	१३	८०।१२	२४	२२०८
सासा०	१३	४८	२४	११५२।६४
मिश्र०	१०	४०	२४	६६०
अवि०	१३	८०	२४	१६२०।२५६।६४।३२०
देश०	६	७२	२४	१७२८
प्रम०	११	८८	२४	२११२
अप्र०	६	७२	२४	१७२८
अपू०	६	३६	२४	८६४
अनि०	६	६	१२	१०८
		६	४	३६
सूक्ष्म०	६	६	१	

१३२०९

इति गुणस्थानेषु योगानाश्रित्य मोहोदयस्थानविकल्पाः समाप्ताः ।

इस प्रकार योगकी अपेक्षा मोहनीय कर्मके सर्व उदयस्थान-विकल्प तेरह हजार दो सौ नौ (१३२०९) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३४३॥

भावार्थ—मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तकके उदयस्थान-भङ्ग १२६७२, सासादनगुणस्थानके वैक्रियिकमिश्रसम्बन्धी ६४, असंयतसम्यग्दृष्टिके औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कर्मणकाययोगसम्बन्धी ३२०, तथा नवें और दशवे गुणस्थानके १५३, इन सर्व भङ्गोंको जोड़नेसे मोहनीयकर्मके उदयसम्बन्धी १३२०९ विकल्प प्राप्त होते हैं ।

अब योगोंको आश्रय करके गुणस्थानोंमें पदवृन्दोंका निरूपण करते हैं—

छत्तीसं ति-वत्तीसं सट्ठी वावण्णमेव चोदालं ।

चोदालं वीसं पि य मिच्छादि-णियट्ठिपयडीओ ॥३४४॥

अथ पदवन्धान् योगानाश्रित्य गुणस्थानेषु प्ररूपयन्ति—[‘छत्तीसं ति-वत्तीसं’ इत्यादि ।] गुणस्थानेषु दशकादीनां प्रकृतयः मिथ्यादृष्टौ पट्त्रिंशत् ३६ । त्रिवारं द्वात्रिंशत् । पुनः मिथ्यादृष्टौ द्वात्रिंशत् ३२ । सासादने द्वात्रिंशत् ३२ । मिश्रे द्वात्रिंशत् ३२ । असंयते पट्टिः ६० । देशे द्वापञ्चाशत् ५२ । प्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत् ४४ । अप्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत् ४४ । अपूर्वकरणे विंशतिः २० चेति मिथ्यादृष्ट्याद्य-पूर्वकरणपर्यन्तं मोहप्रकृत्युदयसंख्या भवन्ति ॥३४४॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान तक मोहकर्मकी उदयप्रकृतियों क्रमशः छत्तीस; तीन बार बत्तीस, साठ, बावन, चबालीस, चालीस और बीस होती हैं ॥३४४॥

एवं मोहे पुण्वुत्तदसगादिउदयाणं पयङ्गीओ मिच्छादिसु ३६।३२।३२।३२।६०।५२।४४।४४ । अपुब्बे २० अणियट्ठिमि २।१ सुहुमे १ ।

इत्थं मोहे पूर्वोक्तदशदायुदयानां प्रकृतयो मिथ्यादृष्ट्यादिषु मिथ्यात्वे ३६।३२ सासादने ३२ मिश्रे ३२ अविरते ६० देशे ५२ प्रमत्ते ४४ अप्रमत्ते ४४ अपूर्वकरणे २० अनिवृत्तिसवेदे २ अवेदे १ सूक्ष्मे १ ।

मोहकर्मकी पूर्वोक्त दशप्रकृतिक आदि उदयस्थानोंकी प्रकृतियों मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों-मे इस प्रकार जानना चाहिए—

मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म०
३६।३२	३२	३२	६०	५२	४४	४४	२०	२	१

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए पहले मिथ्यादृष्टिके पदवृन्दभंगों-का निरूपण करते हैं—

दस णव अड सत्तुदया मिच्छादिट्ठिस्स होंति णायव्वा ।

सग-सग-उदएहिं गया भंगवियप्पा वि होंति छत्तीसा ॥३४५॥

१०।१।८।७।

मिथ्यादृष्ट्यादिषु दशकायुदयानां प्रकृतीर्दर्शयति—['दस णव अड सत्तुदया' इत्यादि ।] अनन्तानुबन्धुदयसहितमिथ्यादृष्टेर्देश १० नवा ६ ए ऽ सप्तो ७ दया भवन्ति ज्ञातव्या । स्वक-स्वकोदयं गता भङ्गा विकल्पाः षट्त्रिंशद् भवन्ति ३६ ॥३४५॥

मिथ्यादृष्टिके दश, नौ, आठ और सातप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए । इनमेसे अनन्तानुबन्धीके उदयसहित मिथ्यादृष्टिके अपने-अपने उदयस्थानगत प्रकृतियोंके भङ्ग-विकल्प छत्तीस होते हैं ॥३४५॥

उनकी अंकसंहति इस प्रकार है—१०, ६, ६, ८=३६ ।

अणुदय सव्वे भंगा बत्तीसा चेव होंति णायव्वा ।

उभओ वि मेलिदेसु य मिच्छे अट्ठत्तरा सट्ठी ॥३४६॥

उदयपयङ्गीओ ३६।३२। उभए वि ६८

	८	७
अनन्तानुबन्धुदयगतमिथ्यादृष्टेर्नवाष्टसप्तोदया भवन्ति ३।६ । ८।८ एषां प्रकृतयः । उभयेषु	१०	६

मिलितेषु मिथ्यादृष्टौ अष्टपष्टिः ६८ उदयविकल्पा भवन्ति ॥३४६॥

उदयप्रकृतयः ३६।३२ उभये ६८ ।

अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित मिथ्यादृष्टिके उदयस्थानगत प्रकृतियोंके सर्वभंगविकल्प बत्तीस होते हैं, ऐसा जानना चाहिए । दोनों उदय-भंगोंको मिला देनेपर मिथ्यादृष्टिके अड़सठ भंग हो जाते हैं ॥३४६॥

इनकी अंकसंहति इस प्रकार है—६, ८, ८, ७=३२ । ३६ + ३२=६८ ।

पुणरवि दसजोगहदा अट्ठासट्ठी हवंति णायव्वा ।

मिच्छादिट्ठस्सेदे छस्सयमसीदि य भंगा दु ॥३४७॥

६८०

मिथ्यादृष्टेः पर्याप्तकाले अष्टपष्टिः ६८ प्रकृत्युदयाः पुनरपि दशभिर्योगैः १० मनोवचनयोगैः मनो-
वचनयोगाष्टकौदारिकवैक्रियिकयोगैर्गुणिता एते षट्शताशीतिप्रमिताः ६८० उदयविकल्पाः पदबन्धमङ्गा
मिथ्यादृष्टौ पर्याप्ते भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥३४७॥

इन उपर्युक्त अड़सठ उदयस्थानसम्बन्धी भङ्गोंको पर्याप्त दशामे सम्भव चार मनोयोग,
चार वचनयोग, औदारिककाययोग और वैक्रियिककाययोग इन दश योगोंसे गुणा करने पर
पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके छह सौ अस्सी भङ्ग हो जाते हैं ॥३४७॥

पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके पदवृन्द भङ्ग $६८ \times १० = ६८०$ ।

ते चेव य छत्तीसे मिस्सेण तिगेण संगुणेयन्वा ।

पुव्वुत्ते मेलविदे अडसीदा होंति सत्तसया ॥३४८॥

७८८

मिथ्यादृष्टौ अपर्याप्ते ते एव षट्त्रिंशत्प्रकृत्युदयाः ३६ मिश्रेण त्रिकेणौदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-
कार्मणत्रिकेण ३ संगुणिताः अष्टोत्तरशतप्रमिता १०८ पूर्वोक्तेषु ६८० मीलितः अष्टाशीत्युत्तरसप्तशतप्रमिताः
७८८ उदयविकल्पा मिथ्यादृष्टौ भवन्ति । अथवा अनन्तानुबन्धिरहितमिथ्यादृष्टिद्वान्निशत्प्रकृतिं दशयोगेन
गुणिते एव ३२० । इतरषट्त्रिंशत्प्रकृतिं त्रयोदशयोगेन गुणिते एव ४६८ । तयोर्मेलने एवं ७८८ ॥३४८॥

उन्ही पूर्वोक्त भङ्गोंको अपर्याप्तकाल भावी मिश्रवोगत्रिकसे अर्थात् औदारिकमिश्र,
वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगसे गुणा करना चाहिए । इस प्रकारसे प्राप्त हुए एक सौ आठ
भङ्गोंको उपर्युक्त छह सौ आठमे मिला देनेपर मिथ्यात्वगुणस्थानके सर्व पदवृन्दसम्बन्धी भङ्ग
सात सौ अठ्ठासी हो जाते हैं ॥३४८॥

मिथ्यात्वमें पर्याप्तकालभावी ६८० । अपर्याप्तकाल भावी १०८ । सर्व भङ्ग ७८८ ।

अब सासादनगुणस्थानके पदवृन्दभंग बतलाते हैं—

बत्तीसोदयभंगा सासणसम्ममि होंति णियमेण ।

चउरासीदिविमिस्सा तिणिण सया वारसजोगहया ॥३४९॥

उदया ३२ वारसजोगगुणा ३८४

७

सासादने गुणस्थाने ८८८ एषामुदयप्रकृतयः ३२ । एतैर्वैक्रियिकमिश्रं विना द्वादशभिर्योगैः १२

६

हताश्चतुरशीति-संयुक्तास्त्रिंशतप्रमिताः प्रकृत्युदयाः ३८४ सासादने भवन्ति ॥३४९॥

सासादनगुणस्थानमे नियमसे उदयस्थान-सम्बन्धी भङ्ग बत्तीस होते हैं । उन्हें बारह
योगोंसे गुणा करने पर तीन सौ चौरासी पदवृन्द-भङ्ग हो जाते हैं ॥३४९॥

सासादनमे उदयप्रकृतियों ३२ को १२ योगोंसे गुणा करने पर ३८४ पदवृन्द भङ्ग होते हैं ।
अब मिश्रगुणस्थानके पदवृन्द भंग बतलाते हैं—

मिस्सस्स वि बत्तीसा दसजोगहया विसुत्तरा तिणिणसया ।

उदया ३२ दसजोगगुणा ३२० ।

७

मिश्रगुणस्थाने ८८८ एषां द्वात्रिंशत्प्रकृत्युदयाः ३२ दशभिर्योगैः १० हता विंशत्युत्तरत्रिंशतप्रमिता

६

उदयविकल्पा मिश्रस्य भवन्ति ३२० ।

मिश्रमें उदयसम्बन्धी प्रकृतियाँ वत्तीस होती हैं। उन्हें दश योगोंसे गुणा करने पर तीन सौ बीस भंग तीसरे गुणस्थानमें जानना चाहिए।

मिश्रमें उदयप्रकृतियाँ ३२ को १० योगोंसे गुणा करने पर ३२० पदवृन्द भंग होते हैं। अब अविरतगुणस्थानके पदवृन्द भंग वतलाते हैं—

अविरयसम्मे सद्दी दसजोगहया य छच्च सया ॥३५०॥

उदया ६० दसजोगहगुणा ६००

अविरतसम्यग्दष्टौ मान । ७।७ एपासुदया. पट्टि. ६० । कर्मणौदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रान् पृथक्

वक्ष्यतीति दशभिर्योगैः १० गुणिता पद्मशतप्रमिता उदयविकल्पा ६०० अस्यतन्व भवन्ति ॥३५०॥

अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें उदयसम्बन्धी प्रकृतियाँ साठ होती हैं। उन्हें दश योगोंसे गुणा करने पर छह सौ पदवृन्द-भंग होते हैं ॥३५०॥

अविरतमें उदयप्रकृतियाँ ६० को १० योगोंसे गुणा करने पर ६०० पदवृन्द भङ्ग होते हैं। अब देशविरतगुणस्थानके पदवृन्द भङ्ग कहते हैं—

वावण देसविरदे भंगवियप्पा य हुंति उदयगया ।

णव जोगेहि य गुणिया चउसयमडसडि णायन्वा ॥३५१॥

उदया ५२ णवजोगगुणा ४६८ ।

देशमंयते ७।७ । ६।६ एपासुदयगतभङ्गा द्वापञ्चागत् ५२ नवभिर्योगै ६ गुणिता अष्टपट्टयत्रचतु -

शतप्रमिता ४६८ सीहोदया देजे भवन्ति ज्ञातव्याः ॥३५१॥

देशविरतमें उदयगत भङ्ग-विकल्प वावन होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणा कर देने पर चार सौ अड़सठ पद वृन्द-भंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३५१॥

देशविरतमें उदयप्रकृतियाँ ४२ को नौ योगोंसे गुणा करने पर ४६८ पदवृन्द भंग प्राप्त होते हैं।

अब प्रमत्तविरतगुणस्थानके पदवृन्द भंग कहते हैं—

चउदालं तु पमत्ते भंगवियप्पा वि होंति बोहन्वा ।

एकारसजोगहया चउसीदा होंति चत्तसया ॥३५२॥

उदया ४४ एयारह जोगगुणा ४८४ ।

प्रमत्ते ६।६ । ५।५ एपां प्रकृत्युदयाश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४ भङ्गविकल्पा भवन्ति । ते एकादशभिर्योगै-

११ ईताश्चतुर्गुण्यधिकचतु शतप्रमिता ४८४ उदयविकल्पा प्रमत्ते ज्ञातव्या ॥३५२॥

प्रमत्तगुणस्थानमें उदयस्थानसम्बन्धी भंग-विकल्प चवालीस होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। उन्हें यहाँ सम्भव चार मनोयोग, चार वचनयोग, आहारिककाययोग, आहारक-काययोग और आहारकमिश्रकाययोग, इन न्यागह योगोंसे गुणा करने पर चार सौ चौगसी पदवृन्दभङ्ग प्राप्त होते हैं ॥३५२॥

प्रमत्तमें उदयविकल्प ४४ को ११ योगोंसे गुणा करने पर ४८४ पदवृन्दभङ्ग आ-जाते हैं।

अव अप्रमत्तगुणस्थानके पदवृन्द-भङ्ग कहते हैं—

पमत्तेदरेसुदया चउदाला चेव होंति जिणवुत्ता ।

तिणि सया छण्णउया भंगवियप्पा वि हुंति णवगुणिया ॥३५३॥

उदया ४४ णवजोगुणा ३६६ ।

५ ४

अप्रमत्तो ६।६ । ५।५ एयामुदयाश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४ जिनोक्ता भवन्ति । एते नवभिर्योगैः ६ गुणिताः

७ ६

षण्णवत्याधिकत्रिंशत्प्रमिताः ३६६ उदयमङ्गविकल्पाः अप्रमत्ते भवन्ति ॥३५३॥

अप्रमत्तविरतमे उदयस्थान-सम्बन्धी भङ्ग-विकल्प जिनभगवान् ने चवालीस ही कहे हैं ।
उन्हें नौयोगोंसे गुणा करने पर तीन सौ छयानवै पदवृन्द-भङ्ग होते हैं ॥३५३॥

अप्रमत्तमें उदयविकल्प ४४ को नौ योगोंसे गुणा करने पर ३६६ पदवृन्द आते हैं ।

अव अपूर्वकरणगुणस्थानके पदवृन्द-भङ्गोंका निरूपण कर प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हैं—

सुण्णजुयट्ठारसयं अपुव्वकरणम्मि वीस णवगुणिया ।

मिच्छादि-अपुव्वता चउवीसहया हवन्ति सव्वे वि ॥३५४॥

उदया २० णवजोगुणा १८० ।

४

अपूर्वकरणे ५।५ एयामुदया विंशति २० नवभिर्योगैर्गुणिता. अष्टादशकं शून्ययुक्तं अशीत्युत्तरशतप्रमिता

६

१८० उदयविकल्पा भवन्ति । मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तमुदयविकल्पाश्चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः । तथाहि—
मिथ्यात्वे ७८८ गु० २४ । सासादने ३८४ गु० २४ । मिश्रे ३२० गु० २४ । असंयते ६०० गु० २४ ।
देशे ४६८ गु० २४ । प्रमत्ते ४८४ गु० २४ । अप्रमत्ते ३६६ गु० २४ । अपूर्वकरणे १८० गु० २४ ॥३५४॥

अपूर्वकरणमे उदयप्रकृतियों बीस होती हैं । उन्हें नौ योगोंसे गुणा करने पर शून्ययुक्त
अट्टारह अर्थात् एक सौ अस्सी पदवृन्द-भङ्ग होते हैं । इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर
अपूर्वकरण तक बतलाये हुए उक्त सर्व पदवृन्द-भङ्गोंको प्रकृतियोंके परिवर्तनसे उत्पन्न चौबीस
भङ्गोंसे गुणा करना चाहिए ॥३५४॥

अपूर्वकरणमें उदयविकल्प २० को नौ योगसे गुणित करने पर १८० पदवृन्द-भङ्ग
होते हैं ।

अव चौबीससे गुणा करने पर जितने भंग होते हैं, उनका निरूपण करते हैं—

^१चउवीसेण विगुणिदे एत्तियमेत्ता हवन्ति ते सव्वे ।

असिदि चेव सहस्सा अडसट्ठि सदा असीदी य ॥३५५॥

८६८८० ।

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तमुदयविकल्पाश्चतुर्विंशत्या २४ गुणिता मिथ्यादृष्टौ १८६१२ सासादने
६२१६ मिश्रे ७६८० असंयते १४४०० देशे ११२३२ प्रमत्ते ११६१६ अप्रमत्ते ६५०४ अपूर्वकरणे ४३२०
सर्वे उदयविकल्पा एकीकृता एतावन्तः—षडशीतिसहस्राष्टशताशीतिप्रमिता. ८६८८० भवन्ति ॥३५५॥

1. सं० पञ्चसंग्रह ५, 'तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २०७-३०८) तथा श्लो० ३६६ ।

चौबीससे गुणा करने पर वे सर्व पदवृन्द भङ्ग छयासी हजार आठ सौ अस्सी (८६८८०) होते हैं ॥३५५॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्वसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक सर्व पदवृन्द-भङ्ग ८६८८० होते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

गुणस्थान	उदयपदवृन्द	सर्वभङ्ग
मिथ्यात्व	७८८ × २४ =	१८६१२
सासादन	३८४ × २४ =	९२१६
मिश्र	३२० × २४ =	७६८०
अविरत	६०० × २४ =	१४४००
देशविरत	४६८ × २४ =	११२३२
प्रमत्तविरत	४८४ × २४ =	११६१६
अप्रमत्तविरत	३६६ × २४ =	८७०४
अपूर्वकरण	१८० × २४ =	४३२०

इस प्रकार उक्त सर्व भङ्गोका योग = ८६८८०

अब सासादन गुणस्थानगत विशेष भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

^१बत्तीस आसादे वेउन्वियमिस्स सोलसेण हया ।

पंचसयाणि य णियमा बारससंजुत्तया य तहा ॥३५६॥

सासादनाविरतयोर्विशेषमाह— ['बत्तीस आसादे' इत्यादि ।] सासादनस्य वैक्रियिकमिश्रयोगे

७
८।८ एपासुदया द्वात्रिंशत् ३२ । स्त्री-पुवेदौ २ हास्यादिद्वयं २ कपायचतुष्कं ४ परस्पर गुणिता षोडश १६
६

तैर्गुणिताः पुनः द्वात्रिंशत् इति द्वादशोत्तरपञ्चशतप्रमिता. ५१२ पदबन्धाः स्युः । सासादनो नरक न यातीति तस्य नपुंसकवेदो नास्ति ॥३५६॥

सासादन गुणस्थानमें सर्व प्रकृतियों बत्तीस हैं । उन्हें वैक्रियिकमिश्रकाययोग-सम्बन्धी सोलह भङ्गोंसे गुणा करने पर नियमसे पौंचसौ बारह भङ्ग प्राप्त होते हैं ॥३५६॥

७
^२सासणे उदया ८८ एएसिं पयव्हीओ ३२ । पुव्वुत्तसोलस-भंगगुणा वेउन्वियमिस्सजोगहया

अण्णे वि पयवंधा ५१२ ।

७
तथाहि—सासादनस्य ८।८ एतेषां प्रकृतयः ३२ पूर्वोक्तषोडशभिर्भङ्गैर्गुणिता वैक्रियिकमिश्रयोगेन
६

१ हताश्च अन्ये पदबन्धाः ५१२ ।

सासादनमें उदयस्थान ६, ८, ८ और ७ हैं । इनकी उदयप्रकृतियों ३२ होती हैं । इस गुणस्थानवाला नरकमें नहीं जाता है, इसलिए बत्तीसको दो ही वेदोंके परिवर्तनसे सम्भव सोलह भङ्गोंसे गुणा करने पर वैक्रियिकमिश्रकाययोगसम्बन्धी ५१२ अन्य भी पदवृन्द-भङ्ग होते हैं ।

1. सं० पञ्चस० ५, ३७० । 2. ५, 'सासने चत्वारः पाकाः' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० २०८) ।

अब चौथे गुणस्थानमें सम्भव विशेष भगोंका निरूपण करते हैं—

^१अविरयसम्मे सट्टी भंगा वे-जोगएण संगुणिया ।

पुणरवि सोलह-गुणिया भंगवियप्पा हवन्ति णायव्वा ॥३५७॥

अविरतसम्यग्दृष्टेः पट्तिर्भङ्गा ६० वैक्रियिकमिश्र-कर्मणयोगाभ्यां २ संगुणिताः १२० । पुनरपि पुत्र-
पु सकवेदद्वयं हास्यादिद्वयं २ कपायचतुष्कजनितपोडशभिर्भङ्गै १६ गुणिता एकसहस्रविंशत्यधिकनवशत-
प्रमिताः भवन्ति ज्ञातव्याः ॥३५७॥

अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें जो पहले उदयस्थान-सम्बन्धी साठ भंग बतलाये हैं, उन्हें वैक्रियिकमिश्र और कर्मणकाय इन दो योगोंसे गुणित करना चाहिए । पुनरपि उदयप्रकृतियोंके परिवर्तनसे सम्भव सोलह भंगोंसे गुणित करने पर जो संख्या उत्पन्न हो, उसने अर्थात् उन्नीस सौ बीस (१६२०) भंग-विकल्प जानना चाहिए ॥३५७॥

७ ६
२ असंजये उदया ८८ ७७ एदेसिं च पयडोभो ६० पुवुत्ता-सोलसभंगगुणा ६६० । वेउव्विय-
६ ८

मिस्स-कम्मइयजोगगुणा एगसहस्स णवसदवीसुत्तरिया ते भंगा १६२० ।

तथाहि—असंयतवैक्रियिकमिश्र-कर्मणयोगयोः स्त्रीवेदोदयो नास्ति, असयतस्य स्त्रीष्वनुपत्तेः ।

७ ६
असंयते एते उदया ८८ । ७७ एतेषां च प्रकृतयः ६० पूर्वोक्तपोडशभिर्भङ्गैर्गुणितः ६६० । पुनः वैक्रि-
६ ८

यिकमिश्र-कर्मणयोगाभ्यां २ गुणिता एकसहस्रविंशत्यग्रनवशतप्रमिता १६२० उदयविकल्पा भवन्ति ।

असंयतगुणस्थानमे उदयस्थान ६, ८, ८, ७ और ८, ७, ७, ६ प्रकृतिक आठ होते हैं । इनकी सर्व प्रकृतियों साठ होती हैं । उन्हें पूर्वोक्त सोलह भंगोंसे गुणा करनेपर ६६० पदवृन्द-भंग होते हैं । इन्हें वैक्रियिकमिश्र और कर्मणकाय, इन दो योगोंसे गुणा करनेपर एक हजार नौ सौ बीस (१६२०) भंग प्राप्त होते हैं ।

^२तेसिं सट्टि वियप्पा अट्टवियप्पेण संगुणिया ।

तस्सोराणियमिस्से चउसदसीदी य भंगया जाण ॥३५८॥

एदे पुण पुव्वुत्ता पक्खित्ते हुंति भंगा दु+ ।

७ ६
असंयतस्यौदारिकमिश्रयोगस्य ८८ । ७७ तेषामुदयविकल्पाः पट्तिः ६० पुंवेदैक १ हास्यादियुग्म २
६ ८

कपायचतुष्क ४ हताष्टभिर्भङ्गै ८ गुणिताः अशीत्यधिकचतुःशतप्रमिताः ४८० असयतौदारिकमिश्रे इति जानीहि । असयतौदारिकमिश्रस्य स्त्री-पण्डत्वेनानुत्पत्तेः । एते पुनः पूर्वोक्ता भङ्गाः १६२० प्रक्षेपणीयाः ॥३५८॥

उसी अविरतसम्यक्त्वी जीवके औदारिकमिश्रकाययोगमें चारसौ अस्सी भंग और जानना चाहिए । जो कि पूर्वोक्त साठ उदयविकल्पोंको आठ भंगोंसे गुणा करनेपर प्राप्त होते हैं । इन भंगोंको पूर्वोक्त १६२० भंगोंमें प्रक्षेप करनेपर सर्व अपर्याप्त-द्रशागत भंगोंका प्रमाण २४०० आ जाता है ॥३५८॥

१. स० पञ्चस० ५, ३७१-३७२ । २ ५, 'असंयतेऽष्टोदयाः' इत्यादिगद्याशः । (पृ० २०८) ।

३ ५, ३७३ ।

+ सस्कृतटीकाप्रतौ गार्थार्धमिदं नास्ति ।

¹अविरयउदयपयदीओ ६० अट्टभंगगुणा ४८० । एवमण्णे विओरालियमिस्सजोगभंगा ४८० । एवमसजए तिसु जोगेसु अण्णे वि मेलिया पयवंधा २४०० ।

अविरतोदयप्रकृतयः ६० पुंवेद-हास्यादिद्वय-कपायचतुष्क ४ हतैरष्टभिर्भङ्गैर्गुणिता ४८० । एवमन्येऽपि औदारिकमिश्रयोगेनैकेन १ गुणिता भङ्गाः ४८० । एवमसंयते त्रिषु योगेषु अन्येऽपि मीलिताः पदबन्धाः २४०० ।

अविरतगुणस्थानमें उदयप्रकृतियों ६० हैं, उन्हें आठ भंगोंसे गुणा करनेपर ४८० होते हैं । ये औदारिकमिश्रकाययोग-सम्बन्धी और भी ४८० भंग होते हैं । इस प्रकार असंयतगुणस्थानमें तीनों योगोंके सर्व भंग मिला देनेपर २४०० पदवृन्द-भंग आ जाते हैं ।

अब नौवें और दशवें गुणस्थानके पद वृन्दोंका प्रमाण कहते हैं—

²वारसभगे विगुणे उवरिमभंगा वि पंच पक्खिविय ।

णवजोगेहि य गुणिए इगिसट्ठा विगसया होंति ॥३५६॥

अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोरुदयान् प्राह—[‘वारसभगे विगुणे’ इत्यादि ।] उपरिमा. अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः पुंवेद-सज्वलनचतुष्कमिति पञ्चप्रकृतिभङ्गाः प्रक्षेपणीयाः । तथाहि—अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे द्वादशभिः १२ भगैर्द्विकोदये गुणिते चतुर्विंशतिः २४ । अवेदभागे चतुर्भिरेकोदयेन गुणिते ४ । सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभोदयः । एवमेकोनत्रिंशदुदयाः २६ नवभिर्योगैः ६ गुणिता एकपञ्चव्यधिकद्विशतप्रमिता २६१ उदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ॥३५६॥

अनिवृत्तिकरणके संवेदभागमें दो उदयप्रकृतियोंसे गुणित वारह अर्थात् चौबीस भंग होते हैं । अवेदभागमें एक उदयप्रकृतिवाले चार भंग होते हैं । सूक्ष्मसाम्परायमें एक सूक्ष्मलोभ होता है । इन पाँचको उपर्युक्त चौबीसमें प्रक्षेप करनेपर उनतीस होते हैं । उन्हें नौ योगोंसे गुणित करनेपर दो सौ इकसठ भंग हो जाते हैं ॥३५६॥

³अणियट्ठीए उदया २ वारसभगगुणा २४ । एगोदएहि चदुहि सह २८ । सुहुमे एगोदएण सह २६ । एदाओ पयदीओ णवजोगगुणा २६१ ।

अनिवृत्तौ उदयौ २ द्वादशभङ्गगुणिताः २४ एकोदयैश्चतुर्भिः सह २८ सूक्ष्मे एकोदयेन सह २६ । एताः प्रकृतयो नवयोगगुणिताः २६१ ।

अनिवृत्तिकरणमें संवेदभागमें उदयप्रकृतियों दोको वारह भंगोंसे गुणा करनेपर २४ होते हैं । उनमें अवेदभागकी एक उदयवाली चार प्रकृतियोंको मिलानेपर २८ होते हैं । सूक्ष्मसाम्परायमें उदय होनेवाली एक प्रकृतिके मिलानेपर २६ होते हैं । इन २६ प्रकृतियोंको नौ योगोंसे गुणा करनेपर २६१ पदवृन्द-भंग प्राप्त होते हैं ।

अब मोहकर्मके योगोंकी अपेक्षा संभव सर्व भंगोंका निरूपण करते हैं—

⁴णउदी चेव सहस्सा तेवण्णं चेव होंति बोहव्वा ।

पयसंखा णायव्वा जोगं पडि मोहणीयस्स ॥३६०॥

⁵एव मोहे जोगं पडि गुणठाणेषु पयवंधा ६००५३ ।

1. स० पञ्चस० ५, ‘असयतेऽन्ये’ इत्यादिगद्याशः (पृ० २०८) । 2. ५, ३७४ । 3. ५, ‘नवमे उदये’ इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०६) । 4. ५, ३७५ । 5. ५, ‘इति मोहे’ इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०६) ।

इति गुणस्थानेषु मोहनीयस्य योगान् प्रत्याश्रित्य नवतिसहस्रत्रिपञ्चाशत्प्रमिताः पदबन्धसंख्या भवति ज्ञातव्याः ६००५३ । ॥३६०॥

गुण०	यो०	उद०	प्रकृ०	उद० पद०	सर्वभं०
मि०	१३	८	६८	७८८१२४	१८६१२
सा०	१३	४	३२	३८४१२४	१६१६५१२
मि०	१०	४	३२	३२०१२४	७६८०
अवि०	१३	८	६०	६००१२४	१४४००१२४००
देश०	६	८	५२	४६८१२४	११२३२
प्रम०	११	८	४४	४८४१२४	११६१६
अप्र०	६	८	४४	३६६१२४	६५०४
अपू०	६	४	२०	१८०१२४	४३२०
अनि०	६	१	२	२४	२५२
		१	१	४	
सूचम०	६	१	१	६	६
					६००५३

इति गुणस्थानेषु मोहप्रकृत्युदयविकल्पाः समाप्ताः ।

मोहनीयकर्मके योगोंकी अपेक्षा सर्वपदवृन्दोके भंगी संख्या नब्बै हजार तिरेपन होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३६०॥

भावार्थ—आठ गुणस्थानोंके पर्याप्तकाल-सम्बन्धी पदवृन्दोंका परिमाण ८६८८० बतला आये हैं, उनमें अपर्याप्तकाल सम्बन्धी सासादनगुणस्थानके ५१२, अविरतगुणस्थानके २४०० तथा नौवें और दशवें गुणस्थानके २६१ भंगोंको और जोड़ देनेपर योगोंकी अपेक्षा मोहकर्मके सर्व उदयस्थान-सम्बन्धी पदवृन्द-भंगोंका प्रमाण ६००५३ प्राप्त हो जाता है ।

योगकी अपेक्षा सर्व भंगोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गुण०	योग	उदयस्थान	उ० प्र०	पद०	गुण०	भं०
मिथ्यात्व	१३	८	६८	७८८	२४	१८६१२
सासादन	१३	४	३२	३८४	२४	६२१६
	१	४	३२		१६	५१२
मिश्र	१०	४	३२	३२०	२४	७६८०
अविरत	१०	४	६०	६००	२४	१४४००
	२	४	६०	१२०	१६	१६२०
	१	४	६०	६०	८	४८०
देशविरत	६	८	५२	४६८	२४	११२३२
प्रमत्तविरत	११	८	४४	४८४	२४	११६१६
अप्रमत्तविरत	६	८	४४	३६६	२४	६५०४
अपूर्वकरण	६	४	२०	१८०	२४	४३२०
अनिवृत्तिकरण	६	१	२	२४		२५२
		१	१	४		
सूक्ष्मसाम्पराय	६	१	१	१		६

समस्त पदवृन्द-भंग = ६००५३

विरयादिय-स्त्रीणंता उवओगा सत्त दुसु दोण्णि ॥३६१॥

48

पयोगै ६ गुणिता स्थानविकल्पाः ४८ । प्रमत्ते अप्रमत्ते च ६।६ । ५।५ स्वोपयोगै ७ गुणिताः स्थान-
७ ६

विकल्पाः ५६।५६ । अपूर्वकरणे ५।५ स्वोपयोगै ७ गुणिताः स्थानविकल्पाः २८ । पुनर्मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरण-
६

गुणस्थानेषु अष्टसु उपयोगाः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
५	५	६	६	६	७	७	७

स्व-स्वस्थानसंख्याभिः स्व-स्वोपयोगगुणिताः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
४०	२०	२४	४८	४८	५६	५६	२८

एते चतुर्विंशतिभङ्गगुणिताः सन्तः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
६६०	४८०	५७६	११५२	११५२	१३४४	१३४४	६७२

सर्वेऽपि मीलिताः सप्तसहस्रपद्मशताशीतिप्रमिताः स्थानविकल्पाः ७६८० भवन्ति ।

आदिके आठो गुणस्थानोमे उदयस्थान ८, ४, ४, ८, ८, ८, ८, ४ हैं । इन्हें अपने अपने गुणस्थानके उपयोगोसे गुणा करनेपर ४०, २०, २४, ४८, ४८, ५६, ५६, और २८ आते हैं । इन्हें चौबीससे गुणा करनेपर ६६०, ४८०, ५७६, ११५२, ११५२, १३४४, १३४४ और ६७२ भंग प्राप्त होते हैं । इन सर्व भंगोंको मिलानेपर ७६८० आठ गुणस्थानोंमें उपयोग-सम्बन्धी भंग आ जाते हैं ।

^१अणियट्टिसुदए भंगा सत्तरस चैव होंति णायव्वा ।

सत्तुवओगे गुणिया सय दस णव चैव भंगा हु ॥३६३॥

अणियट्टीए १२।४। सुहुमे १ । दो वि मेलिया १७ । सत्तुवजोगगुणा ११६ ।

अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः सप्तदशोदयभङ्गविकल्पा भवन्ति १७ ज्ञातव्याः । ते सप्तोपयोगै-
गुणिताः शत १०० दश १० नव ९ चेति [११६] भङ्गा विकल्पा भवन्ति ॥३६३॥

अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे १२ अवेदभागे ४ सूक्ष्मे १ सर्वे मीलिताः १७ । एते सप्तोपयोगै-
गुणिताः ११६ । तथाहि—अनिवृत्तौ सवेदभागे एकप्रकृतिकस्थानं १ सप्तोपयोगैगुणितं सप्तकम् ७ । पुन-
र्द्वादशभङ्गैर्गुणिते चतुरशीतिः ८४ । अवेदभागे स्थानमेकं १ सप्तभिर्पयोगैर्गुणितं सप्तकम् ७ । पुनश्चतुर्भङ्गै-
र्गुणिते अष्टाविंशतिः २८ । सूक्ष्मे स्थानमेकं १ सप्तोपयोगैर्गुणितं सप्तकम् ७ । एवं मीलिताः ११६ ।

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें उदयसम्बन्धी भंग सत्तरह होते हैं । उन्हें सात उपयोगोसे गुणा करने पर एकसौ उन्नीस भङ्ग होते हैं ऐसा जानना चाहिए ॥३६३॥

^२सत्तत्तरि चैव सया णवणउदी चैव होंति बोहव्वा ।

उदयवियप्पे जाणसु उवओगे मोहणीयस्स ॥३६४॥

उदयवियप्पा ७७६६ ।

उपयोगाश्रितमोहनीयोदयस्थानविकल्पान् जानीहि, ओ भग्यवर ! त्वम् । कति ? सप्तसहस्रसप्त-
शतनवनवतिर्जातव्या भवन्ति ७७६६ ॥३६४॥

गु०	स्था०	प्र०	उप०	भं०	भं० वि०	गु०
मि०	८	६८	५	४०	३४०	२४
सा०	४	३२	५	२०	१६०	२४
मि०	४	३२	६	२४	१६२	२४
अ०	८	६४	६	४८	३६०	२४
दे०	८	५२	६	४८	३१२	२४
प्र०	८	४४	७	५६	३०८	२४
अप्र०	८	४४	७	५६	३०८	२४
अपू०	४	२०	७	२८	१४०	२४
	१	२	७	७	१४	१२
अनि०	१	१		७	७	४
सू०	१	१	७	७	७	१
उ०			७			
ली०			७			
स०			२			
अयो०			२			

इस प्रकार मोहनोयकर्मके उपयोगकी अपेक्षा सर्व उदयविकल्प सतहत्तरसौ निन्यानबै (७७६६) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३६४॥

उपयोगोंकी अपेक्षा उदयविकल्पोंकी संदृष्टि इस प्रकार है:—

गुणस्थान	उपयोग	उदयस्थान	गुणकार	भंग
मिथ्यात्व	५	८	२४	६६०
सासादन	५	८	२४	४८०
मिश्र	६	४	२४	५७६
अविरत	६	८	२५	११५२
देशविरत	६	८	२४	११५२
प्रमत्तविरत	७	८	२४	१३४४
अप्रमत्तविरत	७	८	२४	१३४४
अपूर्वकरण	७	४	२४	६७२
अनिवृत्ति	७		१२	८४
			४	२८
सूक्ष्मसाम्य०	७		१	१

सर्व उदय विकल्प ७७६६

अब गुणस्थानोंमें उपयोगकी अपेक्षा मोहनोयकी उदयप्रकृतियोंकी संख्या बतलाते हैं—

^१मिच्छादि-अपुण्वन्ता पयडिवियप्पा हवन्ति णायच्चा ।

उवओगेण य गुणिया चउवीसगुणा य पुणरवि य ॥३६५॥

अथ गुणस्थानेषु उपयोगाश्रितमोहोदयप्रकृतिसंख्या कथ्यते—['मिच्छादि-अपुञ्चता' इत्यादि ।]

८ ७

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्ताः प्रकृतिविकल्पा भवन्ति ज्ञातव्याः । मिथ्यादृष्टौ १।६ । ८।८ एषामष्टपष्टिः ६८ ।
१० ६

एव सासादनाद्यपूर्वकरणान्तेषु ज्ञेयम् । ता उदयप्रकृतयः स्व-स्वगुणस्थानसम्भव्युपयोगैर्गुणिता पुनरपि चतुर्विंशतिभङ्गैः २४ गुणिता उदयविकल्पा भवन्ति ॥३६५॥

मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण तक जितने प्रकृतिविकल्प होते हैं, उन्हें पहले उपयोगसे गुणित करे । पुनरपि चौबीससे गुणा करे ॥३६५॥

१ एव गुणठाणेषु अष्टसु उदयपयद्विभो ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२०। उवभोगगुणा ३४०।
१६०।१६२।३६०।३१२।३०८।३०८।१४०। चउवीसभगगुणा—

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तगुणस्थानेषु अष्टसु उदयप्रकृतयः ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२० स्व-
स्वगुणस्थानसम्भव्युपयोगैः गुणिताः ३४०।१६०।१६२।३६०।३१२।३०८।३०८।१४०। पुनरपि वेदत्रय
३ हास्यादियुग्म २ कषायचतुष्क ४ गुणितचतुर्विंशतिभङ्गै २४गुणिताः—

मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानोंमें उदयप्रकृतियों क्रमशः इस इस प्रकार हैं—६८, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४, और २० । इन्हें अपने अपने गुणस्थानके योगोसे गुणा करनेपर ३४०, १६०, १६२, ३६०, ३१२, ३०८, ३०८ और १४० संख्या प्राप्त होती है । इन्हें चौबीस चौबीस भंगोसे गुणा करनेपर अपने अपने गुणस्थानके भंग आ जाते हैं ।

अब आगे प्रत्येक गुणस्थानमें उन भंगोंका प्रमाण बतलाते हैं—

अट्सहस्सा एयसदसट्टी मिच्छमिह हवन्ति णायव्वा ।

तिणिण सहस्सा अडसदचत्ताला सासणे भंगा ॥३६६॥

८१६०।३८४०।

तद्गुणितफलं गाथाचतुष्केणाऽऽह—['अट्सहस्सा य सदसट्टी' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्टौ अट्सहस्साः
एकशतपष्टिप्रमिताः मोहोदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ८१६० । सासादने त्रिसहस्रचत्वारिंशदधिकाष्टशतभङ्ग-
संख्या ज्ञातव्याः ३८४० ॥३६६॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमे आठ हजार एक सौ साठ भंग (८१६०) होते हैं । सासादनमें तीन हजार आठ सौ चालीस (३८४०) भंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३६६॥

सम्मामिच्छे भंगा अट्ठत्तरस्सदा चउसहस्सा ।

छच्च सया सत्ताला अट्सहस्सं तु अजदीए ॥३६७॥

४६०८।८६४०।

सम्यग्मिथ्यात्वे मिश्रे चतुःसहस्राष्टोत्तरपट्शतप्रमिता मोहोदयप्रकृतिविकल्पाः ४६०८ । असयते
अष्टसहस्रचत्वारिंशदधिकपट्शतभङ्गाः ८६४० ॥३६७॥

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें चार हजार छह सौ आठ (४६०८) भंग होते हैं । अविरत-
सम्यक्त्वगुणस्थानमें आठ हजार छह सौ चालीस (८६४०) भंग होते हैं ॥३६७॥

देसे सहस्स सत्तय चउसय अट्टुत्तरा अंसीदी य ।
तिणि सया वाणउदी सत्त सहस्सा पमत्ते दु ॥३६८॥

७४८८।७३६२।

देशसयते सप्तसहस्राष्टाशीत्युत्तरचतुःशतसख्या ७४८८ भवन्ति । प्रमत्ते शतत्रयद्वानवतिसप्तसहस्रा-
णीतिमोहोदयप्रकृतिपरिमाणं ७३६२ ॥३६८॥

देशविरतगुणस्थानमें सात हजार चार सौ अठासी (७४८८) भंग होते हैं प्रमत्तविरतमें
सात हजार तीनसौ बानवै (७३६२) भङ्ग होते हैं ॥३६८॥

अह+ अप्पमत्तभंगा तावदिया होंति णायव्वा ।

तिग तिग छस्सुण्णगदा भंगवियप्पा अपुव्वे य ॥३६९॥

७३६२।३३६० सव्वेमेलिया ५०८८० ।

अथ अप्रमत्ते भङ्गाः प्रमत्तोक्तप्रमितास्तावन्त उदयविकल्पाः ७३६२ भवन्ति । अपूर्वकरणे त्रिकत्रिक-
पट्शून्यं गताः उदयविकल्पाः ३३६० ज्ञातव्या भवन्ति ॥३६९॥

सर्वे मीलितः ५०८८० ।

इससे आगे सातवें अप्रमत्तगुणस्थानमें भी उतने ही अर्थात् सात हजार तीनसौ बानवै
(७३६२) भङ्ग जानना चाहिए । अपूर्वकरणमें तीन, तीन, छह और शून्य अर्थात् तीन हजार
तीन सौ साठ (३३६०) भङ्ग होते हैं ॥३६९॥

उक्त आठो गुणस्थानोंके भङ्गोंका जोड़ ५०८८० होता है ।

^१अणियट्ठिम्मि वियप्पा दोणि सया तिगधिया मुणेयव्वा ।

सव्वेसु मेलिदेसु य उवओगवियप्पया णेया ॥३७०॥

अणियट्ठिउदयपयडीओ २४ । अवेदे ४ सुहुमे १ । सव्वे वि २६ । सत्तुवओगगुणा २०३ ।

अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागो प्रकृतिद्वय २ वेदत्रयकपायचतुष्कहतैर्द्वादशभङ्गैर्गुणिताः २४ । अवेद-
भागो प्रकृतिः १ चतुःसत्त्वलनहता ४ । सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभः १ । एवमेकोनत्रिंशदुदयविकल्पाः २६ सप्तभि-
र्योगैर्गुणितास्त्रिकाधिकद्विशतप्रमिता उदयविकल्पाः २०३ ज्ञेयाः ॥३७०॥

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें तीन अधिक दो सौ अर्थात् २०३ भङ्ग जानना
चाहिए । इन सर्व भङ्गोंके मिला देने पर उपयोग-विकल्पोंका प्रमाण निकल आता है ऐसा
जानना चाहिए ॥३७०॥

अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें उदयप्रकृतियाँ २४ होती हैं और अवेद भागमें ४ होती हैं ।
सूक्ष्मसाम्परायमें उदयप्रकृति १ है । ये सब मिलकर २६ हो जाती हैं । उन्हें सात उपयोगसे गुणा
करने पर २०३ भङ्ग दोनों गुणस्थानोंके आ जाते हैं ।

^२इकावणसहस्सा तेसीदी चेव होंति वोहव्वा ।

पयसंखा णायव्वा उवओगे मोहणीयस्स^१ ॥३७१॥

५१०८३ ।

१. स० पञ्चसं० ५, ३८२ । २ ५, ३८३ ।

१. गो० क० गा० ४६३ ।

+ व अथ ।

उपयोगाश्रितमोहनीयपदबन्धसंख्या प्रकृतिपरिमाणं एकपञ्चाशत्सहस्रत्रयशीतिप्रमिता ५१०८३ मोहो-
दयविकल्पा सर्वे भवन्ति ज्ञातव्याः ॥३७१॥

गु०	प्र०	उ०	प्र० वि०	गु०	प्र० भ०
मि०	६८	५	३४०	२४	८१६०
सा०	३२	५	१६०	२४	३८४०
मि०	३२	६	१६२	२४	४६०८
अ०	६०	६	३६०	२४	८६४०
दे०	५२	६	२१२	२४	७४८८
प्र०	४४	७	३०८	२४	७३६२
अप्र०	४४	७	३०८	२४	७३६२
अपूर्०	२०	७	१४०	२४	३३६०
अनि०	२	७	१४	१२	१६८
	१		७	४	२८
सू०	१	७	७	१	७

५१०८३

इति गुणस्थानेषु उपयोगाश्रितमोहोदयप्रकृतिविकल्पाः समाप्ताः ।

इस प्रकार उपयोगकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके पदवृन्द-भङ्गोंका प्रमाण इकावन हजार
तेरासी (५१०८३) होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥३७१॥

उपर्युक्त सर्व भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	उपयोग	उदयपद	गुणकार	भङ्ग
मिथ्यात्व	५	६८	२४	८१६०
सासादन	५	३२	२४	३८४०
मिश्र	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	६	५२	२४	७४८८
प्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३६२
अप्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३६२
अपूर्वकरण	७	२०	२४	३३६०
अनिवृत्तिकरण	७	२	१२	१६८
		१	४	२८
सूक्ष्मसाम्पराय	७	१	१	७
सर्व पदवृन्द-भङ्ग				५१०८३

अब लेश्याओंकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें मोहके उदयस्थानोंकी संख्याका विचार करते
हुए पहले गुणस्थानोंमें संभवती लेश्याओंका निरूपण करते हैं—

^१मिच्छादि-अप्पमत्तंतयाण लेसा जिणेहिं णिदिट्ठा ।

छ छक छक छ त्तिय तिग तिणि य होंति लेसाओ ॥३७२॥

तत्सुवरि सुकलेसा मिच्छादि-अपुञ्चतया लेसा ।

चउवीसेण य गुणिदे भंगेहि गुणिज्ज पच्छा दु ॥३७३॥

अथ लेश्यामाश्रित्य गुणस्थानेषु मोहदयस्थानमस्यामाह । आदौ गुणस्थानेषु सम्भवल्लेश्याः प्राह—
['मिच्छादिअप्पमत्तं' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु क्रमेण पट् ६ पट्क ६ पट्क ६ पट् ६
तिस्र. ३ तिस्र. ३ तिस्रो ३ लेश्या भवन्ति । तथाहि—मिथ्यादृष्ट्याद्विचतुषु^१ गुणस्थानेषु प्रत्येकं पट् ६
लेश्या भवन्ति । देशसंयतादित्रये शुभा एव तिस्रः ३ । तत् उपर्यर्पूर्वकरणादिसयोगपर्यन्तमेका शुक्ललेश्यैव ।

मि० सा० मि० अ० दे० प्र० अप्र० अपू० अनि० सू० उ० क्षी० स० अ०
६ ६ ६ ६ ३ ३ ३ १ १ १ १ १ १ ०

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तलेश्या इति स्व-स्वगुणस्थानोक्तमोहोदयस्थानभङ्गा. स्वगुणस्थानोक्तलेश्या-
भिगुणिताः पञ्चाच्चतुर्विंशतिभङ्गा^२ २४ गुणिताः ॥३७२-३७३॥

मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक जिनेन्द्रदेवने लेश्याएँ क्रमशः इस प्रकारसे
निर्दिष्ट की हैं—छह, छह, छह, छह, तीन, तीन और तीन । अर्थात् चौथे गुणस्थान तक छहों
लेश्याएँ होती हैं । पाँचवेंसे सातवें तक तीनों शुभ लेश्याएँ होती हैं । इससे ऊपरके गुणस्थानोंमें
केवल एक शुक्ललेश्या होती हैं । (चौदहवाँ गुणस्थान लेश्या-रहित होता है ।) इनमेंसे मिथ्यात्व-
से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक की लेश्याओंको अपने-अपने गुणस्थानोंके मोहसम्बन्धी उदय-
स्थानोंकी संख्यासे गुणा करे । पाँछे चौवीस भङ्गोंसे गुणा करे ॥३७२-३७३॥

^१ ६।६।६।६।३।३।३।१ मिच्छादिसु उदया मा।४।४।मा।मा।मा।४। सग-सगलेसगुणा ४मा।२।४।२।४।
४मा।२।४।२।४।२।४।४ । चउवीसभंगगुणा—

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वभरणान्तोदयस्थानसंख्या—

मि० सा० मि० अ० दे० प्रम० अप्र० अपू०
म ४ ४ म म म म म

स्व-स्वगुणस्थानोक्तलेश्याभिगुणिताणिताः—

मि० सा० मि० अ० दे० प्रम० अप्र० अपू०
४म २४ २४ ४म २४ २४ २४ ४

मिथ्यात्वादि आठ गुणस्थानोंमें लेश्याएँ इस प्रकार हैं—६, ६, ६, ६, ३, ३, ३, १ । इन्हें
इन्हीं गुणस्थानोंके उदयस्थानोंसे गुणे, जिनकी संख्या इस प्रकार है—म, ४, ४, म, म, म, म, ४ ।
इस प्रकार अपनी अपनी लेश्यासे गुणा करने पर ४म, २४, २४, ४म, २४, २४, २४, ४ संख्या
आती है । उन्हें चौवीस भङ्गोंसे गुणा करने पर अपने अपने गुणस्थानके भङ्ग आ जाते हैं ।
जो इस प्रकार हैं—

मिच्छादिङ्की भंगा एकारस सया य होंति वावण्णा ।

सासणसम्मे भंगा छावत्तरि पंचसदिगा य ॥३७४॥

११५२।५७६।

तथाहि—मिथ्यादृष्टौ स्थानानि दशादीनि चत्वारि ६।६ नवादीनि चत्वारि मा।म मिलित्वाऽष्टौ म
१० ६

पङ्कश्लेष्याभि ६ गुणितानि ४८ । सासादने नवादीनि चत्वारि मा८ पङ्कश्लेष्याभिगुणितानि २४ मिश्रे

स्थानानिनवादीनि चत्वारि मा८ पङ्कश्लेष्याभिगुणितानि २४ । असंयते स्थानानि नवादीनि चत्वारि मा८

अष्टादीनि चत्वारि ७।७ । मिलित्वा अष्टौ ८ पङ्कश्लेष्यागुणितानि ४८ । देशसंयते स्थानानि अष्टादीनि

चत्वारि ७।७ सप्तादीनि चत्वारि ६।६ मिलित्वा अष्टौ शुभल्लेष्यात्रयगुणितानि २४ । प्रमत्ते अप्रमत्ते च

स्थानानि सप्तादीनि चत्वारि ६।६ षट्कादीनि चत्वारि ५।५ मिलित्वा अष्टौ तत्त्रयल्लेष्यागुणितानि २४।२४ ।

अपूर्वे स्थानानि षट्कादीनि चत्वारि शुक्लल्लेष्यागुणितानि चत्वार्येव ४ । एतावत्पर्यन्तं सर्वत्र गुणकारश्चतुर्विंशतिः २४ ।

मिथ्यादृष्टेरुदयस्थानभङ्गाः ४८ चतुर्विंशत्या भङ्गगुणिता एकादशशतद्वापञ्चाशत् ११५२ भवन्ति । सासादने २४ चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः पञ्चशतपट्सप्ततिप्रमिता मोहोदयस्थानविकल्पाः ५७६ स्युः ॥३७४॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके लक्ष्या-सम्बन्धी मोहके उदयस्थानोके भङ्ग ग्यारहसौ बावन (११५२) होते हैं । सासादनसम्यक्त्वमें पौंचसौ छिहत्तर भंग (५७६) होते हैं ॥३७४॥

सम्मामिच्छे जाणे तावदिया चेव होंति भंगा हु ।

एकारस चेव सया वावण्णासंजया सम्मे ॥३७५॥

५७६।११५२।

सम्यग्मिथ्यात्वे मिश्रे तावन्तः पूर्वोक्तपट्सप्तत्यधिकपञ्चशतप्रमिता भवन्तीति जानीहि ५७६ । असंयतसम्यग्दृष्टौ एकादशशतद्वापञ्चाशद् भङ्गा ११५२ भवन्ति ॥३७५॥

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमे उतने ही भङ्ग जानना चाहिए अर्थात् ५७६ भङ्ग होते हैं । असंयतसम्यक्त्वगुणस्थानमे ग्यारहसौ बावन (११५२) भङ्ग होते हैं ॥३७५॥

विरयाविरए भंगा छावत्तरि होंति पंचसदिगा य ।

विरए दोसु वि जाणे तावदिया चेव भंगा हु ॥३७६॥

५७६।५७६।५७६

❀ ॥३७६॥

छैट्टीका प्रतिमें १८१ वॉ पत्र नहीं होनेसे गाथाङ्क ३७६ से ३८६ तककी टीका अनुपलब्ध है । अतः छूटे अंशके सूचनार्थ बिन्दुएँ दी गई हैं । तथा १८२ वॉ पत्र आधा टूटा है, अतः त्रुटित अंश पर बिन्दु देकर उपलब्ध अंश दिया जा रहा है ।

विरताविरतगुणस्थानमें पाँचसौ छिहत्तर (५७६) भङ्ग होते हैं। दोनों विरत अर्थात् प्रमत्त और अप्रमत्तविरतमें भी उतने ही अर्थात् पाँच सौ छिहत्तर, पाँचसौ छिहत्तर भङ्ग जानना चाहिए ॥३७६॥

छण्णउदिं च वियप्पा अउव्वकरणस्स होंति णायव्वा ।

पंचेव सहस्साइं वेसदमसिदी य भंगा हु ॥३७७॥

६६।५२८०।

अपूर्वकरणमें छथानवै (६६) भङ्ग होते हैं। इस प्रकार आठो गुणस्थानोंके लेश्याकी अपेक्षा उदयस्थानके विकल्प पाँच हजार दो सौ अस्सी (५२८०) होते हैं ॥३७७॥

अणियट्ठिय सत्तरसं पक्खिवियव्वा हवन्ति पुव्वुत्ता ।

तेहिं जुआ सव्वे वि य भंगवियप्पा हवन्ति णायव्वा ॥३७८॥

इन उपर्युक्त भङ्गोंमें अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके पूर्वोक्त सत्तरह भङ्ग और प्रक्षेप करना चाहिए। इस प्रकार इनसे युक्त होने पर जो आठों गुणस्थानोंके उदयविकल्प हैं, वे सर्व मिलकर लेश्याकी अपेक्षा मोहके उदयविकल्प हो जाते हैं ॥३७८॥

अणियट्ठि-सुहुमाण उदया १७ । सुक्कलेसगुणा १७ । सव्वे वि मेलिया—

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके उदय-विकल्प १७ होते हैं। उन्हें एक शुक्ल-लेश्यासे गुणा करने पर १७ भङ्ग हो जाते हैं। ये उपर्युक्त सर्व भंग कितने होते हैं, इसे भाष्य-कार स्वयं बतलाते हैं—

वावणं चेव सया सत्ताणउदी य होंति वोहव्वा ।

उदयवियप्पे जाणसु लेसं पडि मोहणीयस्स ॥३७९॥

५२६७ ।

मोहनीयकर्मके लेश्याओंकी अपेक्षा सर्व उदयविकल्प वाचन सौ सत्तानवै (५२६७) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३७९॥

इन उदयस्थानोंके भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	लेश्या	उदयस्थान	गुणकार	भङ्ग
मिथ्यात्व	६	८	२४	११५०
सासादन	६	४	२४	५७६
मिश्र	६	४	२४	५७६
अविरत	६	८	२४	११५२
देशविरत	३	८	२४	५७६
प्रमत्तविरत	३	८	२४	५७६
अप्रमत्तविरत	३	८	२४	५७६
अपूर्वकरण	१	४	२४	६६
अनिवृत्तिकरण	१		१२	१२
			४	४
सूक्ष्मसाम्पराय	१		१	१
सर्व भङ्ग—				५२६७

अथ लेख्याओंकी अपेक्षा मोहनीयके पदवृन्द वतलाते हैं—

¹मिच्छादिद्विप्पहुदि जाव अपुव्वंतलेसकप्पा दु ।

पयडिढ्ढाणेहिं हया चउवीसगुणा य होंति पदबंधा ॥३८०॥

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक जो लेख्याके विकल्प वतलाये गये हैं उन्हें पहले उस उस गुणस्थानके उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंसे गुणा करे। पीछे चौबीससे गुणा करने पर विवृत्तित गुणस्थानके पदवृन्द प्राप्त हो जाते हैं ॥३८०॥

अद्वसु गुणठाणेषु पुव्वुत्ता उदयपयडोओ ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२०। सग-सगलेसगुणा ४०८।१६२।१६२।३६०।१५६।१३२।१३२।२० । चउवीस-भंग-गुणा—

आदिके आठो गुणस्थानोंसे पूर्वमें वतलाई गई उदयप्रकृतियों क्रमशः ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ और २० होती हैं। इन्हें अपने अपने गुणस्थानकी लेख्या-संख्यासे गुणा करनेपर ४०८, १६२, १६२, ३६०, १५६, १३२, १३२ और २० संख्या प्राप्त होती हैं। उस संख्याको चौबीस भंगोंसे गुणा करनेपर प्रत्येक गुणस्थानके उदयपदवृन्दोंका प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

अथ भाष्यगाथाकार स्वयं प्रत्येक गुणस्थानके पदवृन्दोंको कहते हैं—

मिच्छादिद्वी-भंगा सत्तसया णवसहस्स वाणउदी ।

सासणसम्मे जाणसु छायालसदा य अड्ढधिया ॥३८१॥

६७६२।४६०८।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके सर्व भंग नौ हजार सात सौ बानवै (६७६२) होते हैं। सासादन-सम्यक्त्वमें आठ अधिक छयालीस सौ अर्थात् चार हजार छह सौ आठ (४६०८) भंग होते हैं ॥३८१॥

सम्मामिच्छे जाणसु तावदिया चेव होंति भंगा हु ।

अट्ठेव सहस्साइं छस्सय चाला अविरदे य ॥३८२॥

४६०८।८६४० ।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें भी इतने ही अर्थात् चार हजार छह सौ आठ (४६०८) जानना चाहिए। अविरतसम्यक्त्वमें आठ हजार छह सौ चालीस (८६४०) भंग होते हैं ॥३८२॥

विरयाविरए जाणसु चोद्दाला सत्तसय तिय सहस्सा ।

विरदे य होंति णेया एकत्तीस सय अडसट्ठी ॥३८३॥

३७४४।३१६८।

विरताविरतमें तीन हजार सात सौ चवालीस (३७४४) भंग होते हैं। प्रमत्तविरतमें इकतीससौ अडसठ अर्थात् तीन हजार एक सौ अडसठ (३१६८) भंग होते हैं ॥३८३॥

अथ अप्पमत्तविरदे तावदिया चेव होंति णायव्वा ।

जाणसु अपुव्वविरदे चउसदमसिदी य भंगा हु ॥३८४॥

३१६८।४८०। सव्वे मेलिया ३८२०८।

अप्रमत्तविरतमें भी इतने ही भंग होते हैं अर्थात् तीन हजार एक सौ अड़सठ (३१६८) भंग जानना चाहिए । अपूर्वकरणमें चार सौ अस्सी (४८०) भंग होते हैं ॥३८४॥

इस प्रकार आठों गुणस्थानोंके सर्वपदवृन्द मिलकर ३८२०८ होते हैं ।

ऊणत्तीसं भंगा अणियट्ठी-सुहुमगाण वोहव्वा ।

सव्वे वि मेलिदेसु य सव्ववियप्पा वि एत्तिया होंति ॥३८५॥

अणियट्ठि सुहुमाण उदयपयट्ठीओ २६ ।

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके उनतीस भंग जानना चाहिए । इन सर्वभंगोंके मिला देनेपर जो सर्वविकल्पोका प्रमाण होता है । वह इतना (वक्ष्यमाण) है ॥३८५॥

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायकी उदयप्रकृतियों २६ होती हैं ।

१अट्ठत्तीससहस्सा वे चेव सया हवंति सगतीसा ।

पदसंखा णायव्वा लेसं पडि मोहणीयस्स ॥३८६॥

३८२३७।

... .. [अष्टात्रिंशत्सहस्र] द्विशतसप्तत्रिंशत्प्रमिता पदसंख्या मोहोदयप्रकृतिविकल्पाः प्रागुक्तलेख्यामाश्रित्य..... [ज्ञा] तव्याः ॥३८६॥

गुण०	स्थान०	प्रकृ०	लेश्या	स्था०	गुण०	भंगा	भगविक०	
मि०	८	६८	६	४८	२४	११५२	६७६२	४०८
सा०	४	३२	६	२४	२४	५७६	४६०८	१११
मि०	४	३२	६	२४	२४	५७६	४६०८	११२
अवि०	८	६०	६	४८	२४	११५२	८६४०	१६०
दे०	८	५२	३	२४	२४	५७६	३७४४	१५६
प्रम०	८	४४	३	२४	२४	५७६	३१६८	१३२
अप्र०	८	४४	३	२४	२४	५७६	३१६८	१३२
अपू०	४	२०	१	४	२४	६६	४८०	६
अनि०	४	२	१	१	१२	१२	४०	१
		१		१	४	४	४	
सूक्ष्म०	१	१	१	१	१	१	१	१

३८२३७

मोहनीयकर्मके लेश्याकी अपेक्षा सर्व पदवृन्दोंकी संख्या अड़तीस हजार दो सौ सैंतीस (३८२३७) होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३८६॥

१. सं० पञ्चस० ५, ३८६ ।

१. गो० क० गा० ५०५ ।

['तिण्णवसहससाह' इत्यादि । वेदान् प्रत्याश्रित्य मोहोदयस्थानविकल्पाः..... [त्रीणि सहस्राणि सप्तश-] तानि षट्पञ्चाशत् ३७५६ भवन्तीति मन्यस्व ॥३८७॥

वेदकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयविकल्प तीन हजार सात सौ छप्पन (३७५६) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३८७॥

उक्त भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	उदयपद	वेद	गुणकार	सर्वभङ्ग
मिथ्यात्व	८	३	२४	५७६
सासादन	४	३	२४	२८८
मिश्र	४	३	२४	२८८
अविरत	८	३	२४	५७६
देशविरत	८	३	२४	५७६
प्रसत्तविरत	८	३	२४	५७६
अप्रसत्तविरत	८	३	२४	५७६
अपूर्वकरण	८	३	२४	२८८
अनिवृत्तिकरण	४	३		१२

सर्व उदयविकल्प ३७५६

अब वेदकी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी पदवृन्द-संख्याको बतलाते हैं—

^१मिच्छादिषु उदयपयडीओ ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२० । एष त्रिवेदगुणा २०४।६६।६६। १८०।१५६।१३२।१३२।६०। एष चतुर्विंशगुणा ४८६६।२३०४।२३०४।४३२०।३७४४।३१६८।३१६८। १४४० । सन्वे वि मेलिया २५३४४ । अणियट्टीए संजलणा दो उदयगुणा त्रिवेदगुणा य ४८।२४ दो वि मेलिया—

पाठप्रकृतयः सर्वा वेदत्रयहता.....ताः १ मिथ्याहृत्वादिषु अष्टसु उदयप्रकृतयः मि० ६८ । सा० ३२ । मि० ३२ । अवि० ६० दे० ५२ [प्रम० ४४ । अप्र० ४४ । अपू० २० । एते त्रिवेदगुणिताः मि० २०४ । सा०] ६६ । मि० ६६ । अवि० १८० । दे० १५६ । प्रम० १३२ । अप्र० १३२ । अपू० ६० । एते चतुर्विंशत्या २४ गुणिता [मि० ४८६६ । सा० २३०४ । मि० २३०४ । अवि० ४३२० । देश०] ३७४४ । प्रम० ३१६८ । अप्र० ३१६८ । अपू० १४४० । सर्वेऽपि मीलिता २५३४४ । अनिवृत्तिकरणे [चत्वार संजलनाः उदयद्विकेन] गुणिताः ८ त्रिभिर्वेदगुणिता २४ । उभये मीलिता तदाह—

मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानोंमें उदयप्रकृतियों क्रमशः ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ और २० होती हैं । इन्हें तीनों वेदोंसे गुणा करने पर २०४, ६६, ६६, १८०, १५६, १३२, १३२ और ६० संख्या प्राप्त होती हैं । उसे चौबीससे गुणा करने पर क्रमशः ४८६६, २३०४, २३०४, ४३२०, ३७४४, ३१६८, ३१६८ और १४४० भङ्ग प्राप्त होते हैं । ये सब मिलकर २५३४४ हो जाते हैं । अनिवृत्तिकरणमें चारों संजलनोंको दो उदयप्रकृतियोंसे गुणा करके पुनः तीनों वेदोंसे गुणा करने पर (४×२×३=) २४ भंग प्राप्त होते हैं । दोनों राशियोंके मिला देने पर सर्व भङ्ग २५३६८ हो जाते हैं ।

अब भाष्यकार इसी अर्थको गाथाके द्वारा प्रकट करते हैं—

¹पणुवीससहस्साहं तिण्णेव सया हवन्ति अडसट्ठी ।

पयसंखा णायन्वा वेदं पडि मोहणीयस्स ॥३८८॥

२५३६८ ।

['पणुवीससहस्साहं' इत्यादि ।] वेदानाश्रित्य मोहनीयस्य पदबन्धसंख्या मोहोदयप्रकृतिप्रमाणं...
[पञ्चविंशतिसहस्राणि त्रीणि शतानि] अष्टपष्टिश्च २५३६८ मोहोदयप्रकृति-विकल्पा भवन्ति ॥३८८॥

वेदकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके पदबन्धोंकी संख्या पच्चीस हजार तीन सौ अडसठ होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३८८॥

इन पदबन्धोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	उदयपद	वेद	गुणकार	सर्वभङ्ग
मिथ्यात्व	६८	३	२४	४८६६
सासादन	३२	३	२४	२३०४
मिश्र	३२	३	२४	२३०४
अविरत	६०	३	२४	४३२०
देशविरत	५२	३	२४	३७४४
प्रमत्तविरत	४४	३	२४	३१६८
अप्रमत्तविरत	४४	३	२४	३१६८
अपूर्वकरण	२०	३	२४	१४४०
अनिवृत्तिकरण	४	३	२	२४

सर्व पदबन्ध-संख्या—२५३६८

अब संयमकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्पोंका निरूपण करते हैं—

²पमत्तापमत्ताण उदया ८८। तिसजमगुणा २४।२४। अपुव्वे उदया ४ । दुसंजमगुणा ८ । एए चउवीसगुणा ५७६।५७६।१६२। सव्वे वि मेलिया १३४४ । अणियट्ठीए उदया १६ । दुसजमगुणा ३२ । सुहुमे उदयो १ । एओ संजमगुणो १ सव्वे वि मेलिया—

अथ संयममाश्रित्य मोहो[दय.....वि]कल्पाः ८८ । सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-संयमैस्त्रिभिर्गुणिताः प्र० २४ । [अप्र० २४.....अपूर्वे उदयविकल्पाः ४] सामायिकच्छेदोपस्थापना-सयमाभ्यां द्वाभ्यां गुणिताः ८ । एते चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः [प्रमत्ते ५७६] अप्रमत्ते ५७६ । अपूर्वे १६२ । सर्वेऽपि मीलिताः १३४४ । अनिवृत्तिकरणे उदयाः १६ । सामायिकच्छेदोपस्थापना-भ्यां गुणिताः ३२ । सूक्ष्मे उदयः १ एकसूक्ष्मसाम्परायेण.....[गुणितः] १ सर्वेऽपि मीलिताः तदाह—

संयमकी प्राप्ति छठे गुणस्थानसे होती है । प्रमत्त और अप्रमत्त संयतके उदयस्थान ८, ८ हैं । उन्हें तीन संयमोंसे गुणा करने पर २४, २४ भंग होते हैं । अपूर्वकरणमे उदयस्थान ४ हैं । उन्हें दो संयमोंसे गुणा करने पर ८ भङ्ग आते हैं । इन सबको चौबीससे गुणा करने पर ५७६, ५७६ और १६२ भङ्ग हो जाते हैं । वे तीनों मिलकर १३४४ भङ्ग होते हैं । अनिवृत्तिकरणमें उदयविकल्प १६ हैं, उन्हें दो संयमोंसे गुणा करने पर ३२ भङ्ग प्राप्त होते हैं । सूक्ष्मसाम्परायमें उदयप्रकृति १ है उसे एक संयमसे गुणा करने पर १ भङ्ग रहता है । ये सर्व भङ्ग मिल करके १३७७ उदयविकल्प हो जाते हैं ।

अब भाष्यकार इन्हीं भंगोंको गाथाके द्वारा प्रकट करते हैं—

^१तेरस सयाणि सयरिं सत्तेव तहा हवंति णेया दु ।

उदयवियप्पे जाणसु संजमलंभेण मोहस्स ॥३८६॥

१३७७।

['तेरस सयाणि सयरिं' इत्यादि ।] संयमालम्बनेन मोहनीयस्य उदयस्थानविकल्पा. " . . . जानीहि । किं तत् ? त्रयोदश शतानि सप्तसप्तत्यग्राणि १३७७ मिलित्वा भवन्तीति जानीहि ॥३८६॥

संयमकी प्राप्तिकी अपेक्षा मोहनीय कर्मके उदयविकल्प तेरह सौ सतहत्तर (१३७७) होते हैं ऐसा जानना चाहिए ॥३८६॥

संयमकी अपेक्षा उदयविकल्पोकी संहति—

गुणस्थान	उदयविकल्प	संयम	गुणकार	सर्वभंग
प्रमत्तसंयत	८	३	२४	५७६
अप्रमत्तसंयत	८	३	२४	५७६
अपूर्वकरण	४	२	२४	१६२
अनिवृत्तिकरण		२	१६	३२
सूक्ष्मसाम्पराय		१	१	१

सर्व उदय-विकल्प—१३७७

अब संयमकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या बतलाते हैं—

^२प्रमत्ताप्रमत्ताण उदयपयडोभो ४४।४४। तिसजमगुणा १३२।१३२ । अपुन्वे उदयपयडोभो २० । दो सजमगुणा ४० । एए चउवीसभगगुणा ३१६८।३१६८।६० सन्वे वि मेलिया ७२६६ । अनियट्टीए वारहभंगा दुपयडिगुणा २४ । एकोदया ४ । मेलिया २८ । दो वि दुसंजमगुणा ५६ । सुहुमे एगोदो १ एयसंजमगुणो १ । सन्वे वि मेलिया—

...पदवन्धाः प्रमत्ताप्रमत्तयोरुदयप्रकृतयः प्रम० ४४ । अप्र० ४४ । सयमत्रयगुणा प्रम० १३२ [अप्र० १३२ " " "] पूर्वे उदयप्रकृतयः २० द्विसयमगुणाः ४० । ते चतुर्विंशतिभङ्गैर्गुणाः प्रम० ३१६८ । अप्र० ३१६८ । [.....अपूर्वे ६] ६० । सर्वेऽपि मीलितः ७२६६ । अनिवृत्तिकरणे सवेदभागो द्वे प्रकृती २ द्वादशभगैर्गुणिता. [२४ । अवे ।] द्वाभगे एकोदयप्रकृतिः १ चतुर्भिः ४ संज्वलनैर्गुणिता मिलिता २८ । सामायिकच्छेदो [पस्थापनासंयमाभ्यां द्वा] भ्या गुणिताः ५६ । सूक्ष्मे एकोदयः सूक्ष्मलोभः १ एकेन सूक्ष्मसाम्परायसयमेन गुणित १ ... [सर्वेऽपि मी] लिता. किमिति ?

प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें उदयप्रकृतियों ४४, ४४ हैं । इन्हें तीन संयमोसे गुणा करने पर १३२, १३२ भंग प्राप्त होते हैं । अपूर्वकरणमें उदयप्रकृतियों २० हैं, उन्हें दो संयमोसे गुणा करने पर ४० भङ्ग होते हैं । इन सर्व भंगोंको चौबीस भंगोंसे गुणा करने पर ३१६८ ३१६८ और ६६० भंग हो जाते हैं । ये सर्व मिलकर ७२६६ भंग होते हैं । अनिवृत्तिकरणमें वारह भंगोंको दो प्रकृतियोंसे गुणा करने पर २४ भंग होते हैं । तथा एक प्रकृतिके उदयवाले ४ भंग उनमें मिला देने पर २८ भंग हो जाते हैं । उन्हें दोनों संयमोसे गुणा करने पर ५६ भंग हो जाते हैं । सूक्ष्मसाम्परायमें एक प्रकृतिका उदय होता है और संयम भी एक ही होता है, अतः एक

1. स० पञ्चस० ५, ३६३-३६४ । 2. ५, ३६५ । तथा तदधस्तनगद्याश (प्र० २२२) ।

को एकसे गुणित करने पर भंग एक ही रहता है। इस प्रकार ये उपर्युक्त सर्व भङ्ग मिलकर ७३५३ हो जाते हैं।

अब भाष्यकार इन्हीं भंगोंको गाथाके द्वारा उपसंहार करते हैं—

‘सत्तेव सहस्साइ’ तिण्णोव सया हवंति तेवण्णा ।

पयसंखा गायव्वा संजमलंभेण मोहस्स ॥३६०॥

७३५३ ।

[‘सत्तेव सहस्साइ’ इत्यादि ।] सयमावलम्बनेन मोहनीयस्योदयप्रकृतयः सप्त सहस्राणि त्रीणि श[तानि] त्रिपञ्चाशत् ७३५३ पदवन्धसंख्या भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥३६०॥

संयमकी प्राप्तिकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या सात हजार तीन सौ तिरेपन (७३५३) होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३६०॥

इन पदवृन्दोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	उदयपद	संयम	भङ्ग	गुणकार	सर्वभंग
प्रमत्तविरत	४४	३	१३२	२४	३१६८
अप्रमत्तविरत	४४	३	१३२	२४	३१६८
अपूर्वकरण	२०	२	४०	२४	६६०
अनिवृत्तिकरण	२	२	४	१२	४८
	१	२		४	८
सूक्ष्मसाम्पराय		१		१	१

सर्व-पदवृन्द—७३५३

अब सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्पोंका निरूपण करते हैं—

^२असज्जदादिषु उदया नानानाना तिसम्मत्तगुणा २४।२४।२४।२४। अपुच्चे उदया ४ दुसम्मत्तगुणा ८ एए सच्चे वि चउवीसभंगगुणा ५७६।५७६।५७६।५७६।१६२। सच्चे वि मेलिया २४६६ । अनियट्ठि-सुहुमाण उदया १७ दुसम्मत्तगुणा ३४ दो वि मेलिया—

अथ सम्यक्त्वमाश्रित्य मोहोद[यप्रकृतिभङ्गा]न् दर्शयति—असंयतादिगुणस्थानचतुष्टये उदयस्थान-विकल्पाः अविरते ८ । दे० ८ । प्र० ८ अग्र० ८ । उपशम-वेदक-ज्ञायिकसम्यक्त्वत्रयेण गुणिताः अत्रि० २४ । दे० २४ । प्रम० २४ । अग्र० २४ । अपूर्वकरणे उदयस्थानानि ४ उपशम-ज्ञायिकाभ्यां २ द्वाभ्यां सम्यक्त्वाभ्यां गुणितानि ८ । एते उदयस्थानविकल्पाः सर्वेऽपि चतुर्विंशत्या २४ भंगैर्गुणितानि असयमे ५७६ । दे० ५७६ । प्र० ५७६ । अग्र० ५७६ । अपूर्वे १६२ । सर्वेऽपि मीलिताः ३४६६ । अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोरुदयस्थानविकल्पाः सप्तदश १७ । उपशम-ज्ञायिकसम्यक्त्वाभ्यां द्वाभ्यां २ गुणिताः ३४ । उभये मीलिताः—

असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें मोहकर्मके उदयस्थान ८, ८, ८, ८ होते हैं। उन्हें तीनों सम्यक्त्वोंसे गुणा करने पर २४, २४, २४, २४ भङ्ग होते हैं। अपूर्वकरणमें उदयस्थान ४ हैं। उन्हें दो सम्यक्त्वोंसे गुणा करने पर ८ भङ्ग होते हैं। इन सबको चौत्रोस भंगोंसे गुणा करने पर ५७६, ५७६, ५७६, ५७६, १६२ भंग होते हैं। ये सर्व मिलकर ३४६६ हो जाते हैं। अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें उदयप्रकृतियों १७ हैं। उन्हें दो सम्यक्त्वोंसे गुणा करने पर ३४ भंग प्राप्त होते हैं। इन दोनों राशियोंको मिला देने पर ३४३० उदयविकल्प हो जाते हैं।

1. स० पञ्चमं ५, ३६६, तद्वर्धस्तनगद्यांशः (पृ० २१२) ३६७ श्लोकश्च । 2. ५, ३६८-३६९ ।
तथा ‘असंयतादिगुणचतुष्टये’ इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१३) ।

अब भाष्यकार इसी अर्थको गाथाके द्वारा प्रकट करते हैं—

^१दो चेव सहस्साइं पंचेव सया हवंति तीसहिया ।

उदयवियप्पे जाणसु सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥३६१॥

२५३० ।

['दो चेव सहस्साइं' इत्यादि ।] सम्यक्त्वगुणेन सह मोहनीयस्य उदयविकल्पान् स्थानविकल्पान् त्वं जानीहि—द्वे सहस्रे पञ्च शतानि त्रिंशच्च २५३० इत्युदयविकल्पा भवन्तीति जानीहि । गोमट्टसारे प्रकाशान्तरेण स्थानविकल्पा दृश्यन्ते तत्तन्नावलोकनीयाः ॥३६१॥

सम्यक्त्वगुणकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदय-विकल्प दो हजार पॉच सौ तीस (२५३०) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३६१॥

इन उदयविकल्पोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुण०	उदयस्थान	सम्यक्त्व	गुण०	भङ्ग
अविरत	८	३	२४	५७६
देशविरत	८	३	२४	५७६
प्रमत्तविरत	८	३	२४	५७६
अप्रमत्तविरत	८	४	२४	५७६
अपूर्वकरण	४	२	२४	१६२
अनिवृत्तिकरण		२	१६	३२
सूक्ष्मसाम्पराय		२	१	२
सर्व उदयविकल्प				२५३०

अब सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या कहते हैं—

^२ अविरयादिसु उदयपयडीओ ६०।५२।४४।४४। तिसम्मत्तगुणा १८०।१५६।१३२।१३२ । अपुण्वे उदयपयडीओ २० दुसम्मत्तगुणा ४० । एए चउवीसभंगगुणा ४३२०।३७४४।३१६८।३१६८।६६० । सव्वे वि मेलिया १५३६० अणियट्टि-सुहुमाण उदयपयडीओ २६ दुसम्मत्तगुणा ५८ दोवि मेलिया—

अथासयतादिषु उदयप्रकृतय अविरते ६० । दे० ५२ । प्रम० ४४ । अप्र० ४४ सम्यक्त्वत्रयेण गुणिता असयते १८० । दे० १५६ । प्रम० १३२ । अप्र० १३२ । अपूर्वोदयप्रकृतयः २० उपशम-चायिक-सम्यक्त्वाभ्यां द्वाभ्यां २ गुणिता ४० । एता पुनरपि चतुर्विंशतिभङ्गगुणिताः असयते ४३२० । दे० ३७४४ । प्रम० ३१६८ । अपूर्वे ६६० । सर्वेऽपि उदयविकल्पा मीलितः १५३६० । अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे द्वे प्रकृती २ द्वादशभङ्गगुणिताः २४ । अवेदभागे प्रकृतिरेका १ चतुःसज्जलनैगुणिताः ४ । सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभप्रकृतिरेका एकेन गुणिता तदेकः १ एव । एव अनिवृत्ति-सूक्ष्मयोरुदयप्रकृतयः २६ उपशम-चायिकसम्यक्त्वद्वयेन गुणिता ५८ । उभये मीलितः तदाह—

अविरत आदि चार गुणस्थानोंमें उदयप्रकृतियों क्रमसे ६०, ५२, ४४, ४४ हैं । उन्हें तीनों सम्यक्त्वोंसे गुणा करनेपर १८०, १५६, १३२, १३२ भङ्ग प्राप्त होते हैं । अपूर्वकरणमें उदय-प्रकृतियों २० हैं । उन्हें दो सम्यक्त्वोंसे गुणा करनेपर ४० भङ्ग होते हैं । इन सबको चौबीस भङ्गोंसे गुणा करनेपर ४३२०, ३७४४, ३१६८, ३१६८, ६६० भङ्ग होते हैं । ये सर्व भङ्ग मिलकर १५३६० भङ्ग हो जाते हैं । अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्परायकी उदयप्रकृतियों २६ हैं, उन्हें दो

१. स० पञ्चस० ५, ४०० । २. ५, ४०१ । तथा तदधस्तनगद्यभागः । (पृ० २१३) ।

सम्यक्त्वोंसे गुणा करनेपर ५८ भङ्ग आते हैं। ये दोनों राशियाँ मिलकर १५४१८ पदवृन्दोंका प्रमाण हो जाता है।

अब भाष्यकार इसी अर्थको गाथाके द्वारा उपसंहार करते हैं—

^१पण्णरस सहस्साहं चत्तारि सया हवन्ति अट्टरसा ।

पयसंखा णायन्वा सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥३६२॥

१५४१८ ।

एवं मोहणीय उदयट्टाणपरूवणा समत्ता ।

['पण्णरस सहस्साहं' इत्यादि ।] सम्यक्त्वगुणेन सह मोहनीयोदयप्रकृतिपरिमाणं पञ्च[दश]-सहस्राष्टादशाधिकचतुःशतप्रमिताः १५४१८ पदबन्धसंख्या भवन्ति ज्ञातव्याः । एते गोम्मट्टसारे प्रकारान्तरेण दृश्यन्ते । अत्र प्रकरणे यथा गुणस्थानेषु योगोपयोगलेश्या-वेद-संयम-सम्यक्त्वान्याश्रित्य मोहनीयोदय-स्थानतत्प्रकृतय उक्तास्तथा जीवसमासेषु गाथादिविशेषमार्गणसु चागमानुसारेण वक्तव्याः ॥३६२॥

इति मोहनीयस्योदयस्थान-तत्प्रकृत्युदयविकल्पप्ररूपणा समाप्ता ।

मोहनीयकर्मके सम्यक्त्वगुणकी अपेक्षा पदवृन्दकी संख्या पन्द्रह हजार चार सौ अट्टारह (१५४१८) होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३६२॥

इन पदवृन्दोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुण०	उदयपद	सम्यक्त्व	गुण०	भङ्ग
अविरत	६०	३	२४	४३२०
देशविरत	५२	३	२४	३७४४
प्रमत्तविरत	४४	३	२४	३१६८
अप्रमत्तविरत	४४	३	२४	३१६८
अपूर्वकरण	२०	२	२४	६६०
अनिवृत्तिकरण	१२	२	१२	४८
	१	२	४	८
सूक्ष्मसाम्पराय	१	२	१	२

सर्व उदयपदवृन्द १५४१८

इस प्रकार मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

अब मूलसप्ततिकाकार गुणस्थानोंमें मोहकर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ४३] ^२तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से पंच-चटु णियट्ठीए तिणिण ।

दस बादरम्हि सुहुमे चत्तारि य तिणिण उवसंते^१ ॥३६३॥

अथ गुणस्थानेषु मोहनीयसत्त्वप्रकृतीर्यथासम्भव गाथापट्केन कथयति—['तिण्णेगे एगेगं' इत्यादि ।] मोहनीयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि मिथ्यादृष्टौ त्रीणि ३ । सासादने एकं १ । मिश्रे २ । असंयता-दिचतुषु^३ प्रत्येक पञ्च पञ्च ५।५।५।५ । अपूर्वकरणे त्रीणि ३ । अनिवृत्तिकरणे दश १० । स्थूललोभापेक्षयै-कादश ११ । सूक्ष्मसाम्पराये चत्वारि ४ । उपशान्तकषाये त्रीणि ३ च भवन्ति ॥३६३॥

१. स० पञ्चस० ५, ४०२-४०३ । २. ५, ४०५ ।

३ सप्ततिका० ४८ । परं तत्र तृतीयचरणे 'एफ्कार बायरम्मी' इति पाठः ।

मोहकर्मके सत्त्वस्थान मिथ्यात्वमे तीन, सासादनमें एक, मिश्रमे दो अविरत आदि चार गुणस्थानोमे पाँच-पाँच, अपूर्वकरणमें तीन, अनिवृत्तिबादरमे दश, सूक्ष्मसाम्परायमें चार और उपशान्तमोहमे तीन होते हैं ॥३६३॥

^१मोहे सतद्गुणसखा मिच्छादिसु उवसततेषु ३।१।२।५।५।५।३।१०।४।३।

मोहे सत्त्वस्थानसंख्या मिथ्यादृष्ट्याद्युपशान्तेषु ३।१।२।५।५।५।३।१०।४।३। तथाहि—तानि कानि मोहसत्त्वस्थानानि ? पञ्चदश । २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१ । अत्र त्रिदर्शनमोहं ३ पञ्चविंशतिचारित्रमोहं अष्टाविंशतिकम् २८ । तत्र सम्यक्त्वप्रकृतानुबद्धेक्षिताया सप्तविंशतिकम् २७ । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे उद्धेक्षिते पद्विंशतिकम् २६ । पुनः अष्टाविंशतिकेऽनन्तानुबन्धचतुष्के विसंयोजिते क्षपिते वा चतुर्विंशतिकम् २४ । पुनर्मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिकम् २३ । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिकम् २२ । पुनः सम्यक्त्वे क्षपिते एकविंशतिकम् २१ । पुनः मध्यमकपायाष्टके क्षपिते त्रयोदशकम् १३ । पुनः पण्डवेदे स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशकम् १२ । पुनः स्त्रीवेदे पण्डवेदे वा क्षपिते एकादशकम् ११ । पुनः पण्णोक्कपाये क्षपिते पञ्चकम् ५ । पुनः पु वेदे क्षपिते चतुष्कम् ४ । पुनः सज्जलनक्रोधे क्षपिते त्रिकम् ३ । पुनः संज्वलनमाने क्षपिते द्विकम् २ । पुनः सज्जलनमायाया क्षपितायामेककम् १ । पुनः बादरलोभे क्षपिते सूक्ष्मलोभरूपमेककम् १ । उभयत्र लोभसामान्येनैक्यम् ।

गुणस्थानेषु सत्त्वस्थानानि—

मि०	३	२८	२७	२६					
सा०	१	२८							
मि०	२	२८	२४						
अ०	५	२८	२४	२३	२२	२१			
दे०	५	२८	२४	२३	२२	२१			
प्र०	५	२८	२४	२३	२२	११			
अप्र०	५	२८	२४	२३	२२	२१			

उपशमश्रेणी

क्षपकश्रेणी

२८	२४	२१	अपू०	३	२१									
२८	२४	२१	अनि०	११	२१	१३	१२	११	५	४	३	२	१	
२८	२४	२१	सू०	४	१									
२८	२४	२१	उप०	३	१									

मिथ्यात्वसे लेकर उपशान्तमोह तकके गुणस्थानोंमे मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानोंकी संख्या इस प्रकार है—३, १, २, ५, ५, ५, ५, ३, १०, ४, ३ । इनका विशेष विवरण ऊपर सं० टीकामे दी हुई संहतिमे किया गया है ।

अथ भाष्यगाथाकार उक्त कथनका स्पष्टीकरण करते हैं—

^२अद्व य सत्त य छक्क य वीसधिया होइ मिच्छदिद्विस्स ।

अट्ठावीसा सासण अट्ठ चउव्वीसया मिस्से ॥३६४॥

^३मिच्छे २८।२७।२६। सासणे २८ । मिस्से २८।२४ ।

१. स० पञ्चस० ५, 'क्रमादेकादशगुणेषु' इत्यादिगद्याशः (पृ० २१४) । २. ५, ४०६ ।

३. ५, 'मिथ्यादृष्टौ' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१४) ।

अथ गुणस्थानेषु तानि कानि मोहसत्त्वस्थानानीति चेदाह—[‘अट्ट य सत्त य छक्क य’ इत्यादि ।] मिथ्यादृष्टेरष्टाविंशतिकं २८ सप्तविंशतिकं २७ षड्विंशतिकं २६ च त्रीणि भवन्तीति ३ । सम्यक्सत्त्व-मिश्र-प्रकृत्युद्बेहनायाश्चतुर्गतिजीवानां तत्र करणात् । सासादनेऽष्टाविंशतिकम् २८ । मिश्रे द्वेऽष्टाविंशतिकं चतुर्विंशतिकं च २८।२४ । विसंयोजितानन्तानुबन्धिनोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वोदये तत्र गमनात् ॥३६४॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमे मिथ्यादृष्टि जीवके अट्टाईस, सत्ताईस और छव्वीसप्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं । सासादनमे अट्टाईसप्रकृतिक एक सत्त्वस्थान होता है । मिश्रमे अट्टाईस और चौवीसप्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६४॥

^१असंजदमादिं किच्चा अप्पमत्तंत पंच ठाणाणि ।

अट्ट य चटु तिय दुगेगाहियवीस मोहसंताणि ॥३६५॥

^२अविरय-देसविरयप्पमत्तापमत्तेषु २८।२४।२३।२२।२१।

असंयतमादिं कृत्वाऽप्रमत्तान्तं असंयत-देशसंयत-प्रमत्ताप्रमत्तेषु प्रत्येकं मोहसत्त्वस्थानानि पञ्च—अष्टाविंशतिकं २८ चतुर्विंशतिकं २४ त्रयोविंशतिकं २३ द्वाविंशतिकं २२ एकविंशतिकं २१ चेति पञ्च मोह-सत्त्वस्थानानि, विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितमिथ्यात्वादित्रयाणां च तेषु सम्भवात् ॥३६५॥

अविरतादिचतुषु^३ २८।२४।२३।२२।२१ ।

मिथ्यात्वमे २८, २७, २६, सासादनमे २, मिश्रमे २८, २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं ।

असंयतको आदि करके अप्रमत्त-पर्यन्त चार गुणस्थानोमे अट्टाईस, चौवीस, तेईस, वाईस और इक्कीसप्रकृतिक पाँच-पाँच सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६५॥

अविरतगुणस्थामे २८, २४, २३, २२, २१ सत्त्वस्थान होते हैं ।

देशविरतगुणस्थानमे २८, २४, २३, २२, २१ सत्त्वस्थान होते हैं ।

प्रमत्तविरतगुणस्थानमे २८, २४, २३, २२, २१ सत्त्वस्थान होते हैं ।

अप्रमत्तविरतगुणस्थानमे २८, १४, २३, २२, २१ सत्त्वस्थान होते हैं ।

^३अपुव्वम्मि संतट्ठाणा अट्ट चउरेय अहिय वीसाणि ।

अणियट्ठिवादरस्स य दस चेव य होंति ठाणाणि ॥३६६॥

अपुव्वे २८।२४।२१।

^४अट्टचउरेयवीसं तिय दुय एगधिय दस चेव ।

पण चउ तिग दो चेवाणियट्ठिए होंति दस एदे ॥३६७॥

^५अणियट्ठिम्मि २८।२४।२१।१३।१२।११।१०।९।८।७।६।५।४।३।२।

अपूर्वकरणे अष्टाविंशतिक-चतुर्विंशतिकैकविंशतिकानि त्रीणि मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि २८।२४।२१ तथाहि—अपूर्वकरणस्योपशमश्रेण्या पृतानि त्रीणि स्थानानि २८।२४।२१ स्युः । विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितदर्शनमोहसत्त्वस्थानेषु तत्त्वस्थानेषु च तत्रारोहणात् । अपूर्वकरणस्य क्षपकश्रेण्यामेकविंशतिकम् २१ । अनिवृत्तिकरणस्य मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि दश भवन्ति । तानि कानि ? अष्टाविंशतिकं २८ चतुर्विंशतिकं २४ एकविंशतिकं २३ त्रयोदशकं १३ द्वादशकं १२ एकादशकं ११ पञ्चक ५ चतुष्कं ४ त्रिक ३ द्विक २ चेति मोहसत्त्वस्थानानि दशैतानि अनिवृत्तिकरणे भवन्ति । तथाहि—अनिवृत्तिकरणस्योपशम-

1 स० पञ्चसं० ५, ४०७ । 2. ५, चतुर्थपञ्चम' इत्यादिगद्याशः (पृ० २१४) । 3 ५, ४०८ ।

4 ५, ४०६ । 5. ५, 'अनिवृत्तेः शुभके' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१५) ।

श्रेण्यां २८।२४।२१ । विसयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य तत्सत्त्वस्य च तत्रारोहणात् अनिवृत्तिकरणस्य क्षपकश्रेण्या २१ । मध्यमकपायाष्टके क्षपिते [त्रयोदशकम्] १३ । पुनः पण्डे वा स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशकम् १२ । पुनः स्त्रीवेदे वा पण्डे वा क्षपिते एकादशकम् ११ । पुनः पण्णोकपाये क्षपिते पञ्चकम् ५ । पुनः पुवेदे क्षपिते चतुष्कम् ४ । पुनः संज्वलनक्रोधे क्षपिते त्रिकम् ३ । पुनः संज्वलनमाने क्षपिते द्विकम् २ । पुनः संज्वलनमायाया क्षपितायामेककम् १ । पुनः बादरलोभे क्षपिते एककम् १ ॥३६६-३६७॥

अपूर्वकरण गुणस्थानमे अट्टाईस, चौबीस और इक्कीसप्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं । अनिवृत्तिवादरसंयतके दश सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६६॥

अपूर्वकरणमे २८, २४, २१ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं ।

अनिवृत्तिवादरसंयतके अट्टाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन और दो प्रकृतिक दश सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६७॥

अनिवृत्तिकरणमे २८, २४, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ प्रकृतिक दश सत्त्वस्थान होते हैं ।

‘सुहुमस्मि होंति ठाणे अट्ट चदुरेय वीसमधियमेयं च ।

उवसंतवीयराए अट्टचदुरेयवीससंतट्टाणाणि ॥३६८॥

^२सुहुमे २८।२४।२१।१।उवसते २८।२४।२१।

एव मोहणीयस्स सत्तापरूवणा समात्ता ।

सूक्ष्मसाम्पराये अष्टाविंशतिक चतुर्विंशतिकैर्विंशतिकैककानि मोहसत्त्वस्थानानि चत्वारि भवन्ति २८।२४।२१।१ । तथाहि सूक्ष्मसाम्परायस्योपशमश्रेण्या २८।२४।२१ । विसयोजितानन्तानुबन्धिनः २४ । क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य २१ । तत्सत्त्वस्य च तत्रारोहणात् । सूक्ष्मसाम्परायस्य क्षपकश्रेण्या एक सूक्ष्म-लोभरूप सूक्ष्मकृष्टिरूपमनुद्यगत्तमत्रोदये गतमिति ज्ञातव्यम् । उपशान्तवीतरागे उपशान्तकषाये अष्टा-विंशतिकचतुर्विंशतिकैर्विंशतिकानि त्रीणि मोहसत्त्वस्थानानि २८।२४।२१ । विसयोजितानन्तानुबन्धिनः २४ क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य २१ तत्सत्त्वस्य तत्रारोहणात् ॥३६८॥

इति गुणस्थानेषु मोहसत्त्वस्थानप्ररूपणा समाप्ता ।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे अट्टाईस, चौबीस, इक्कीस और एक प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं । उपशान्तकपायवीतराग छद्मस्थके अट्टाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६८॥

सूक्ष्मसाम्परायमें २८, २४, २१, १ प्रकृतिक चार तथा उपशान्तमोहमे २८, २४, २१ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं ।

इस प्रकार मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानोकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

अथ मूलसप्ततिकाकार मिथ्यात्वसे आदि लेकर सूक्ष्मसाम्पराय तकके गुणस्थानोंमें अनुक्रमसे नामकर्मसम्बन्धी बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका निर्देश करते हैं—

मिच्छादि-सुहृत्तगुणगणेषु अणुक्रमेण नामसंबन्धिवन्धादितयं बुद्धय—

[मूलगा० ४४]^१छणव छत्तिय सत्तय एगदुयं तिय तियद्व चदुं ।

दुअ दुअ चउ दुय पण चउ चदुरेग चदुपणगेग चदुं ॥३६६॥

[मूलगा० ३५]^२एगेगमद्व एगेगमद्व छदुमत्थ-केवलजिणाणं ।

एग चदुरेग चदुरो दो चदु दो छकमुदयंसा ॥४००॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	सी०	स०	अ०
व०	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०
उ०	६	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२
स०	६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	६

अथ गुणस्थानेषु नामकर्मणो बन्धोदयसत्त्वस्थानानां त्रिसंयोग गाथाविशत्याऽऽह—[‘छणव छत्तिय’ इत्यादि ।] मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मसाम्परायान्तगुणस्थानेषु अनुक्रमेण नाम्नः सम्बन्धिवन्धादित्रयमुच्यते— तन्नाम्नः बन्धोदयसत्त्वस्थानानि गुणस्थानेषु क्रमेण मिथ्यादृष्टौ पट् नव पट् ६।६।६ । सासादने त्रीणि नसैकम् ३।७।१ । मिश्रे द्वे त्रीणि द्वे २।३।२ । असंयते त्रीण्यष्टौ चत्वारि ३।८।४ । देशसंयते द्वे द्वे चत्वारि २।२।४ । प्रमत्ते द्वे पञ्च चत्वारि २।५।४ । अप्रमत्ते चत्वार्येकं चत्वारि ४।१।४ । अपूर्वकरणे पञ्चैकं चत्वारि ५।१।४ । अनिवृत्तिकरणे एकमेकमष्टौ १।१।८ । सूक्ष्मसाम्पराये एकमेकमष्टौ १।१।८ । उपरतबन्धे शून्यं० । उदय-सत्त्वयोरेव उपशान्तकपाये एकं चत्वारि ०।१।४ । क्षीणकपायेऽप्येकं चत्वारि ०।१।४ । संयोगे द्वे चत्वारि ०।२।४ । अयोगे द्वे पट् ०।२।६ भवन्ति । छग्रस्थानां केवलिनोश्च छग्रस्थानां मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मान्तेषु संयोगायोगकेवलिनोर्द्वयोश्चेति ॥३६६-४००॥

गुणस्थानेषु नाम्नः बन्धोदयसत्त्वस्थानानि—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	सी०	स०	अयो०
बन्ध०	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उद०	६	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२	२
सत्त्व	६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

मिथ्यात्वगुणस्थानमे नामकर्मके बन्धस्थान छह, उदयस्थान नौ, और सत्त्वस्थान छह होते हैं । सासादनमे बन्धस्थान तीन, उदयस्थान सात और सत्त्वस्थान एक होता है । मिश्रमें बन्धस्थान दो, उदयस्थान तीन और सत्त्वस्थान दो होते हैं । अविरतमे बन्धस्थान तीन, उदयस्थान आठ और सत्त्वस्थान चार होते हैं । देशविरतमें बन्धस्थान दो, उदयस्थान दो और सत्त्वस्थान चार होते हैं । प्रमत्तविरतमे बन्धस्थान दो, उदयस्थान पाँच और सत्त्वस्थान चार होते हैं । अप्रमत्तविरतमे बन्धस्थान चार, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान चार होते हैं । अपूर्व-

१. सं० पञ्चसं० ५, ४११-४१३ । २. ५, ४१४-४१५ ।

१, सप्ततिका० ४६ । पर तत्रेदक् पाठः—

छणव छक्कं तिग सत्त दुग दुग तिग दुगं तिगष्ट चउ ।

दुग छच्चउ दुग पण चउ चउ दुग चउ पणग एग चउ ॥

२. सप्ततिका० ५० ।

करणमें बन्धस्थान पाँच, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान चार होते हैं। अनिवृत्तिकरणमें बन्ध-स्थान एक, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान आठ होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें बन्धस्थान एक, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान आठ होते हैं। दोनो छद्मस्थ जिनोके अर्थात् उपशान्तमोह और क्षीणमोह वीतराग संयतोंके एक एक उदयस्थान और चार चार सत्त्वस्थान होते हैं। केवली जिनोके अर्थात् सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्रमशः दो दो उदयस्थान और चार तथा छह सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६६-४००॥

इन तीनों स्थानोकी अङ्कसंहति मूल और टीकामें दी है।

अब भाष्यगाथाकार उक्त त्रिसंयोगी स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

णामस्स य बंधोदयसंताणि गुणं पडुच्च य विभज्ज ।

तिगजोगेण य एत्थ दु भणियव्वं अत्थजुत्तीए ॥४०१॥

नाम्नो बन्धोदयसत्त्वस्थानानि गुणस्थानानि प्रतीत्याऽऽश्रित्य अत्र गुणस्थानेषु त्रिसंयोगेन बन्धोदय-सत्त्वभेदेन विभज्य विभागं कृत्वाऽत्र तान्येव प्रत्येकतोऽर्थयुक्त्या सर्वाण्युच्यन्ते ॥४०१॥

नामकर्मके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान गुणस्थानोकी अपेक्षा विभाग करके त्रिसंयोगी भंगरूपसे अर्थयुक्तिके द्वारा यहाँ पर कहे जाते हैं ॥४०१॥

तेवीसमादि कादुं तीसंता होंति बंधमिच्छमिह ।

उवरिम दो वज्जित्ता उदया णव चेव होंति णायव्वा ॥४०२॥

मिच्छे बंधा २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ।

मिथ्यादृष्टौ बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकमादि कृत्वा त्रिंशत्कान्तानि २३।२५।२६।२८।२९।३० भवन्ति । उदयस्थानानि उपरिमद्वय नवकाष्टस्थानद्वय वर्जयित्वा एकविंशतिकादीनि नव भवन्ति ज्ञात-व्यानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१॥४०२॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें तेईस प्रकृतिको आदि करके तीस प्रकृतिक तकके छह बन्धस्थान होते हैं। तथा उपरिम दोको छोड़कर शेष नौ उदयस्थान होते हैं ॥४०२॥

मिथ्यात्वमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक छह होते हैं। उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक नौ होते हैं।

तस्स य संतट्ठाणा तेणउदिं वज्जिदूण छाउवरिं ।

सासणसम्मे बंधा अट्ठावीसादि-तीसंता ॥४०३॥

३२।३१।३०।२९।२८।२७।२६।२५।२४।२३। सासणे बंधा २८।२९।३० ।

तस्य मिथ्यादृष्टे सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकं वर्जयित्वा उपरितनानि पट् ३२।३१।३०।२९।२८।२७।२६।२५।२४।२३। तथाहि—तैजसकर्मणागुरुलघुपघातनिर्माणवर्णचतुष्काणीति ध्रुवाः १ । स्वरयुग्मोनत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येक स्थिरशुभसुभगादेययशस्कीर्त्तियुग्मानामेकैकेत्यपि नव १ । चतुर्गति-पञ्चजाति-त्रिदेह-पट्-सस्थान-चतुरानु-पूर्व्याणामेकैकेऽपि पञ्च ५ मिलित्वा त्रयोविंशतिक २३ बन्धस्थान इत्यादिवन्धस्थानानि पूर्वं प्रतिपादितानि । तैजस-कर्मणद्वय २ वर्णचतुष्क ४ स्थिराधिरे २ शुभाशुभे २ अगुरुलघु १ निर्माण १ चेति ध्रुवाः १२ । गतिषु एका गतिः १ जातिषु एका जातिः १ त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभगादेययशोयुग्मानामेकतराणि १।१।१।१।

१११ । चतुरानुपूर्व्येषु एकतरानुपूर्व्यं १ एवमेकविंशतिकं २१ चातुर्गतिकानां विग्रहगतौ इदं ज्ञेयम् । एवं पूर्वमेवोदय [स्थान] व्याख्यानं कृतम् । तैर्यं विना ६२ आहारकद्वयं विना ६१ तन्त्रितयं विना ६० । अत्र देवद्विकोद्वेहिते ८८ । अत्र नारकचतुष्के उद्वेहिते ८४ । अत्र मनुष्यद्विके उद्वेहिते ८२ । इत्येवं सत्त्वव्याख्या पूर्वमेव कृताऽस्ति, अतो ग्रन्थभूयस्त्वभयाच्चास्माभिर्विस्तीर्यते । सासादनं बन्धस्थानानि अष्टाविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि २८।२६।३० ॥४०३॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमे तेरानवैको छोड़कर उपरिम छह सत्त्वस्थान होते हैं । सासादनमें बन्धस्थान अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक तीन होते हैं ॥४०३॥

मिथ्यात्वमें सत्त्वस्थान ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२ प्रकृतिक छह होते हैं । सासादनमें बन्धस्थान २८, २६, ३० प्रकृतिक तीन होते हैं ।

तस्स य उदयट्ठाणाणि होंति इगिवीसमादिएकतीसंता ।

वज्जिय अट्ठावीसं सत्तावीसं च संत णउदीयं ॥४०४॥

^१सासादे उदया २१।२४।२५।२६।२६।३०।३१ । तित्थयराहारदुअसंतकम्मिओ सासणगुणं पडि-
वज्जह, तेण सत्ता ६० ।

तस्य सासादनस्य नामोदयस्थानानि अष्टाविंशतिकं सप्तविंशतिकं च परिवर्ज्यं एकविंशतिकाद्येकत्रिंशत्कान्तानि २१।२४।२५।२६।२६।३०।३१ । सत्त्वस्थानमेकं नवतिकम् ६० । कुतः ? तीर्थकराऽऽहारकद्विकसत्त्वकर्मयुक्तो जीवः सासादनगुणस्थानं न प्रतिपद्यते, तेन सत्त्वस्थानं नवतिकम् ६० । सासादनतीर्थ-
कराऽऽहारकद्वयसत्कर्मा न भवतीत्यर्थः ॥४०४॥

सासादनमें उदयस्थान सत्ताईस और अट्ठाईसको छोड़कर इक्कीसको आदि लेकर इकतीस प्रकृतिक तकके सात होते हैं । सत्त्वस्थान नवै प्रकृतिक एक होता है ॥४०४॥

सासाननमे उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २६, ३०, ३१ प्रकृतिक सात हैं । तीर्थकर प्रकृति और आहारकद्विकी सत्तावाला जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता है, इसलिए यहाँ पर सत्त्वस्थान ६० प्रकृतिक एक ही होता है ।

^२मिस्सम्मि ऊणतीसं अट्ठावीसा हवंति वंधाणि ।

इगितीसुणत्तीसं तीसं च य उदयठणाणि ॥४०५॥

मिस्से वंधा २८।२६। उदया २६।३०।३१ ।

मिश्रे बन्धस्थानान्येकोनत्रिंशत्काष्टाविंशतिकद्वयं २८ । २६ भवति । नामोदयस्थानानि एकोन-
त्रिंशत्कत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि त्रीणि २६।३०।३१ ॥४०५॥

मिश्रगुणस्थानमे बन्धस्थान अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक दो होते हैं । तथा उदयस्थान उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक तीन होते हैं ॥४०५॥

मिश्रमे बन्धस्थान २८, २६ प्रकृतिक दो और उदयस्थान २६, ३०, ३१ प्रकृतिक तीन हैं ।

^३तस्सेव संतकम्मा वाणउदि णउदिमेव जाणाहि ।

अविरयसम्मे वंधा अट्ठावीसुगुतीस-तीसाणि ॥४०६॥

तित्थयरासतकम्मिओ मिस्सगुणं ण पडिबज्जह, तेण तस्स तेणउदि-इगिणउत्तीओ ण संभवति सेसा
६०।१०। अमज्जए वथा २८।२६।३० ।

तस्यैव मिश्रगुणस्थानस्य सत्त्वस्थानद्वय द्वानवतिक-[नवतिक]द्वयमिति जानीहि १२।६० । तीर्थ-
करसत्कर्मा जीवो मिश्रगुणस्थानं न प्रतिपद्यते, तेन तस्य मिश्रस्य त्रिनवतिकमेनवतिकं च न सम्भवति ।
असंयतसम्यग्दृष्टौ नामबन्धस्थानानि त्रीणि—अष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि २८।२६।३० ॥४०६॥

उसी मिश्र गुणस्थानमे बानवै और नववै प्रकृतिक दो ही सत्त्वस्थान जानना
चाहिए । अविरत सम्यक्त्वगुणस्थानमे बन्धस्थान अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक तीन
होते हैं ॥४०६॥

तीर्थद्वरप्रकृतिकी सत्तावाला जीव मिश्रगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता है । इसलिए उसके
तेरानवै और इक्यानवै प्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव नहीं है । शेष ६२ और ६० प्रकृतिक दो
सत्त्वस्थान उसके होते हैं । असंयतसम्यग्दृष्टिके २८, २६, ३० प्रकृतिक तीन बन्धस्थान होते हैं ।

तस्सेव होंति उदया उवरिम दो वज्जिदूण हेड्डिल्ला ।

चउवीसं वज्जित्ता हिड्डिमचदुरेव संताणि ॥४०७॥

अविरण उदया २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सता ६३।६२।६१।६० ।

तस्यासंयतस्योदयस्थानानि उपरिमद्वयमष्टकनवकद्वन्द्व अधस्थचतुर्विंशतिक च वर्जयित्वा तस्य
चतुर्विंशतिकस्यैकेन्द्रियेष्वेवोदयात् एकविंशतिकादीन्यष्टौ २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । असंयते
सत्त्वस्थानानि अधःस्थितानि चत्वारि, अधानि चत्वारि ६३।६२।६१।६० ॥४०७॥

उसी असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उदयस्थान उपरिम दो और अधस्तन चौबीसको
छोड़कर शेष आठ होते हैं । तथा उसीके सत्त्वस्थान अधस्तन चार होते हैं ॥४०७॥

अविरतमे उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक आठ होते हैं ।
सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक चार होते हैं ।

^१विरदाविरदे जाणे ऊणत्तीसट्टवीसबंधाणि ।

तीसेकतीसमुदया हेड्डिमचत्तारि संताणि ॥४०८॥

देसे बधा २८।२६। उदय ३०।३१। सता ६३।६२।६१।६० ।

देशसंयते बन्धस्थाने द्वे—अष्टाविंशतिकैकोनत्रिंशत्कद्वय जानीहि २८।२६ । उदयस्थाने द्वे—
त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कद्वयम् ३०।३१ । सत्त्वस्थानानि अधःस्थानि चत्वारि ६३।६२।६१।६० ॥४०८॥

चिरताविरत गुणस्थानमें अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक दो बन्धस्थान जानना चाहिए ।
तीस और इकतीस प्रकृतिक दो उदयस्थान तथा अधस्तन चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥४०८॥

देशाविरतमें बन्धस्थान २८, २६, उदयस्थान ३०, ३१ और सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१,
प्रकृतिक ६० होते हैं ।

^२उगुतीसट्टावीसा पमत्तविरयस्स बंधठाणाणि ।

पणुवीस सत्तवीसा अडवीसुगुतीस तीसुदया ॥४०९॥

पमत्ते बंधा २८।२६। उदया २५।२७।२८।२९।३०।

प्रमत्तविरतस्थमुनेः अष्टाविंशतिक नवविंशतिकद्वयं बन्धस्थानम् २८।२६ । उदयस्थानानि पञ्च-
विंशतिक-सप्तविंशतिकाष्टाविंशतिक नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि पञ्च २५।२७।२८।२९।३० ॥४०९॥

प्रमत्तविरतके बन्धस्थान अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक दो तथा गुणस्थान पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पाँच होते हैं ॥४०६॥

प्रमत्तसंयतके बन्धस्थान २८, २६ और उदयस्थान २५, २७, २८, २६, ३० प्रकृतिक होते हैं ।

^१तस्स य संतट्ठाणा हेट्ठा चउरेव णिदिट्ठा ।

इगिबंघं वज्जित्ता हेट्ठिमचउ अप्पमत्तस्स ॥४१०॥

पमत्ते संता ६३।६२।६१।६०। अपमत्ते बंधा २८।२६।३०।३१।

तस्य प्रमत्तस्याऽऽद्यचतुःसत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६० । अप्रमत्तस्य एकं बन्धस्थानं यशुःकीर्त्तिकं १ वर्जयित्वा अधःस्थचतुर्बन्धस्थानानि २८।२६।३०।३१ ॥४१०॥

उसी प्रमत्तविरतके सत्त्वस्थान अधस्तन चारों ही कहे गये हैं । अप्रमत्तविरतके एकप्रकृतिक बन्धस्थानको छोड़कर अधस्तन चार बन्धस्थान होते हैं ॥४१०॥

प्रमत्तसंयतके सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक चार होते हैं । अप्रमत्तसंयतके २८, २६, ३०, ३१ प्रकृतिक चार बन्धस्थान होते हैं ।

^२तीसं चेव उदयं ति-दु-इगि-णउदी य णउदिसंताणि ।

जाणिज्ज अप्पमत्ते बंधोदयसंतकम्माणं ॥४११॥

अप्पमत्ते उदयं ३०। संता ६३।६२।६१।६०।

अप्रमत्ते त्रिंशत्कमुदयस्थानमेकमुदयति ३० । सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिक-द्विनवतिकैकनवतिक-नव-
तिकानि चत्वारि ६३।६२।६१।६० । अप्रमत्ते इत्येव बन्धोदयसत्त्वकर्मणां स्थानानि जानीयात् ॥४११॥

उसी अप्रमत्तसंयतमें तीनप्रकृतिक एक उदयस्थान होता है, तथा तेरानवै, बानवै, इक्या-
नवै और नव्वैप्रकृतिक चार सत्त्वस्थान जानना चाहिए ॥४११॥

अप्रमत्तमें ३० प्रकृतिक एक उदयस्थान और ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं ।

उवरिमपंचट्ठाणे अपुण्वकरणस्स बंधंतो ।

उदयं तीसट्ठाणं हेट्ठिम चत्तारि संतठाणाणि ॥४१२॥

अपुण्वे बंधा २८।२६।३०।३१।३१। उदय ३०। सत्ता ६३।६२।६१।६० ।

अपूर्वकरणस्य उपरिमपञ्चस्थानानि—अष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कैककानि २८।२६।
३०।३१।३१ बन्धतः त्रिंशत्कमुदयं याति ३० । अधःस्थचत्वारि सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०
भवन्ति ॥४१२॥

उपरिम पाँच बन्धस्थानोंको बाँधनेवाले अपूर्वकरणसंयतके तीसप्रकृतिक एक उदयस्थान
और अधस्तन चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥४१२॥

अपूर्वकरणमे बन्धस्थान २८, २६, ३०, ३१, १ प्रकृतिक पाँच; उदयस्थान ३० प्रकृतिक १
और सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक चार होते हैं ।

^१अणियट्टिस्स दुवधं जसकित्ती उदय तीसगं चेव ।

ति-दु-इगि-णउदिं णउदिं णव अड सत्तज्जियसत्तरिमसीदिं ॥४१३॥

^२एदार्ण चेव सुहुमस्स होंति वंधोदयाणि संताणि ।

उवसंते तीसुदए हेट्ठिमचत्तारि संताणि ॥४१४॥

अणियट्टि-सुहुमाण वधो १ उदओ ३० । सता ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७। उवरदबंधे उवसंते उदया ३० संता ६३।६२।६१।६०।

अनिवृत्तिकरणस्य एक यशस्कीर्त्तिनाम बन्धतः त्रिशत्क ३० सुदयं याति । त्रिनवतिक ६३ द्वि-
नवतिकै ६२ कनवतिक ६१ नवतिका ६० शीतिक ८० नवसप्ततिका ७६ सप्तसप्ततिका ७८ सप्तसप्ततिका ७७ सत्त्वस्थानान्यष्टौ भवन्ति । सूक्ष्मसाम्परायस्यैतानि बन्धोदयसत्त्वस्थानानि भवन्ति । अनिवृत्तिकरण-
सूक्ष्मसाम्पराययो बन्धस्थानमेकम् १ । उदये ३० । सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७ ।
उपशान्तकपाये बन्धरहिते उदये स्थान त्रिशत्क ३० त्रिनवतिकादीनि चत्वारि सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।
६० ॥४१३-४१४॥

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे एक यश'कीर्त्तिका बन्ध होता हैं । तीसप्रकृतिक एक उदय-
स्थान है । तेरानवै, वानवै, इक्यानवै, नवै, अस्सी, उन्यासी, अठहत्तर और सतहत्तरप्रकृतिक
आठ सत्त्वस्थान होते हैं । ये ही बन्ध, उदय और सत्त्वस्थान सूक्ष्मसाम्परायसंयतके भी होते हैं ।
उपरतबन्धवाले उपशान्तमोहमे तीसप्रकृतिक उदयस्थान और अधस्तन चार सत्त्वस्थान
होते हैं ॥४१३-४१४॥

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके बन्धस्थान एकप्रकृतिक एक, उदयस्थान ३० प्रकृतिक
एक और सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८, ७७ प्रकृतिक आठ है । मोहके बन्धसे
रहित उपशान्तमोहमे उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक है और सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक
चार होते हैं ।

^३तह खीणेसु वि उदयं उवरिमदुगमुज्झिऊण चउसंता ।

तीसेक्कीसमुदयं होंति सजोगिम्मि णियमेण ॥४१५॥

खीणे उदओ ३० संता ८०।७६।७८।७७।

तथा क्षीणकपाये उदयस्थान त्रिशत्क ३० । उपरितः दशक-नवकद्वय वर्जयित्वा अशीतिकार्त्तानि
चत्वारि सत्त्वस्थानानि ८०।७६।७८।७७ । सयोगिकेवलिनि त्रिशत्कैकत्रिशत्कद्वयमुदयस्थान ३०।३१ नियमेन
भवन्ति ॥४१५॥

क्षीणकपाय-गुणस्थानमे उदयस्थान तीसप्रकृतिक एक ही है । तथा उपरिम दोको छोड़कर
चार सत्त्वस्थान होते हैं । सयोगिकेवलीमे नियमसे तीस और एकतीसप्रकृतिक दो उदयस्थान
होते हैं ॥४१५॥

क्षीणकपायमे उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक है और सत्त्वस्थान ८०, ७६, ७८, ७७ प्रकृतिक
चार होते हैं ।

^४तस्य य संतट्ठाणा उवरिम दो वज्झिदूण चउ हेट्ठा ।

णव अट्ठेव य उदयाज्जोगिम्हि हवन्ति णेयाणि ॥४१६॥

सजोगे उदया ३०।३१ । सता ८०।७६।७८।७७।

१. स० पञ्चस० ५, ४२४ । २. ५, ४२५ । ३. ५, ४२६ । ४. ५, ४२७ ।

५. 'जोगीहि' इति पाठः ।

तस्य स्योगिकेवल्लिः उपरिसत्त्वस्यानद्वयं वर्जयित्वा अशीदिकादीनि चत्वारि सत्त्वस्यानानि न० ३६।३८।३९ भवन्ति । अयोगिकेवल्लिः नाम्नप्रकृतिनवकनष्टकं चोदयस्यानद्वयं भवति ॥४१६॥

उन्हा स्योगिकेवल्लिके उग्रिम दो दो छोड़कर अवस्तन चार सत्त्वस्यान होते हैं । अयोगिकेवल्लिके नौ और आठप्रकृतिक दो उदयस्यान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४१६॥

स्योगिकेवल्लिके ३०, ३१ प्रकृतिक दो उदयस्यान और न०, ७६, ७८, ७९ प्रकृतिक चार सत्त्वस्यान होते हैं ।

एव दम सत्तचरियं अडुत्तरियं च ऊणसीदी य ।

आसीदिं चाजोगे संनडाणाणि जाणेज्जो ॥४१७॥

उज्जमे उदया ६।मा संता न०।३६।३८।३९।३९।६ ।

एवं गन्तव्यत्वा गुणेषु समता ।

अयोगिकेवल्लिः नवक ६ दृगक १० नवसप्ततिका ३३ अष्टतविक ७८ नवसप्ततिका ३६ शीतिकानि न० ५६ सत्त्वस्यानानि अयोगिनो भवन्तीति जानीयान् ॥४१७॥

अयोगिकेवल्लिः उदयस्यानद्वयं ६।न । सत्त्वस्यानपट्टकम् न०।३६।३८।३९।३९।६ ।

अथ निर्यादद्वयादिगुणस्यानेषु नामवन्वोदयसत्त्वस्यानसंख्या-सप्तकृतिस्यानसंख्या रचना रच्यते ।

तस्य यन्त्ररचना—

गुण०	वन्व-सं०	वन्व-प्र०	स्या०	उदयसं०	उदय-प्र०	स्या०	सत्त्व-सं०	सत्त्व-प्र०	स्या०
नि०	३	२३, २५, २६, २८		६	२१, २४, २५, २६, २७,		३	२२, २१, २०, २२, २३,	
		२६, २८ ।			२८, २९, ३०, ३१ ।			२२ ।	
सा०	३	२८, २९, ३० ।		३	२१, २४, २५, २६, २६,		१	२० ।	
					३०, ३१ ।				
नि०	२	२८, २९ ।		३	२९, ३०, ३१ ।		२	२२, २० ।	
अवि०	३	२८, २९, ३० ।		८	२१, २५, २६, २७, २८, २८,		४	२३, २२, २१, २० ।	
					२९, ३०, ३१ ।				
देव०	२	२८, २९ ।		२	३०, ३१ ।		४	२३, २२, २१, २० ।	
प्रम०	२	२८, २९ ।		५	२५, २६, २७, २८, २९ ।		४	२३, २२, २१, २० ।	
नर०	४	२८, २९, ३०, ३१ ।		१	३०		४	२३, २२, २१, २० ।	
नरू०	५	२८, २९, ३०, ३१, ३१ ।		१	३०		४	२३, २२, २१, २० ।	
कनि०	१	१		१	३०		८	२३, २२, २१, २०, २१, २०,	
								२०, २१, २२, २३, २४, २५, २६	
सु०	१	१		१	३०		८	२३, २२, २१, २०, २१, २०,	
								२०, २१, २२, २३, २४, २५, २६	
उर०	०			१	३०		४	२३, २२, २१, २० ।	
नि०	०			२	३०		४	२०, २१, २२, २३ ।	
मनि०	०			२	३०, ३१ ।		४	२०, २१, २२, २३ ।	
कयो०	०			२	२, २ ।		३	२०, २१, २२, २३,	
								३०, ३१ ।	

अयोगिकेवलीके अस्सी, उन्यासी अष्टहत्तर, सत्तहत्तर, दश और नौप्रकृतिक छह सत्त्व-स्थान जानना चाहिए ॥४१७॥

अयोगिजिनके ६, ८ प्रकृतिक दो उदयस्थान और ८०, २६, ७८, ७२ १० और ६ प्रकृतिक छह सत्त्वस्थान होते हैं। इन सब स्थानोंका स्पष्टीकरण टीकामें दी गई संदृष्टिमें किया गया है।

इस प्रकार गुणस्थानोंमें नामकर्मके त्रिसंयोगी प्ररूपणा की।

अब मूलसप्तिकार मार्गणाओमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका विचार करते हुए सबसे पहले गतिमार्गणामें उनका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०४६] 'दो छक्कट्ट चउक्कं गिरयादिसु पयडिवंधाणाणि ।

पण णव दसयं पणयं ति-पंच-वारे चउक्कं च' ॥४१८॥

	नरक०	तिर्यच०	मनुष्य०	देव०
व०	२	६	८	४
गिरयादिसु	उ० ५	६	१०	५
स०	३	५	१२	४

अथ चतुर्दशमार्गणासु नामबन्धोदयसत्त्वस्थानानां त्रिसंयोगमाह—['दो छक्कट्ट चउक्कं' इत्यादि ।] नरकादिगतिषु नामप्रकृतियन्धन्यानां द्वे २ पट् ६ अष्टौ ८ चत्वारि ४ । नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च ५ नव ६ दश १० पञ्च ५ । नामप्रकृतिसत्त्वस्थानानि त्रीणि ३ पञ्च ५ द्वादश १२ चत्वारि ४ ॥४१८॥

	नरक०	ति०	म०	देव०
व०	२	६	८	४
उ०	५	६	१०	५
स०	३	५	१२	४

नरक आदि गतियोंमें नामकर्मके प्रकृतिक बन्धस्थान क्रमशः दो, छह, आठ और चार होते हैं। उदयस्थान क्रमशः पाँच, नौ, दश और पाँच होते हैं। तथा सत्त्वस्थान क्रमशः तीन, पाँच, बारह और चार होते हैं ॥४१८॥

इस गाथाके द्वारा चारों गतियोंके नामकर्म-सम्बन्धी बन्ध, उदय और सत्तास्थान बतलाये गये हैं, जिनकी संदृष्टि मूल और टीकामें दी हुई है।

अब उक्त गाथा-सूत्र-द्वारा सूचित स्थानोंका भाष्यगाथाकार स्पष्टीकरण करते हुए पहले नरकगतिसम्बन्धी बन्धादि-स्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१गिरए तीसुगुतीसं बंधट्टाणाणि होंति णायव्वा ।

इगि-पण-सत्तट्टाधिया वीसा उगुतीसमेवुदया ॥४१९॥

^२संतट्टाणाणि पुणो होंति तिण्णोव गिरयवासम्मि ।

वाणउदिमादियाणं णउदिट्टाणंतियाणि सया ॥४२०॥

^१गिरयगईए बंधो २६।३०। उदया २१।२५।२७।२८।२९। संता ६२।६१।६०।

1. स० पञ्चस० ५, ४२६-४३० । 2. ५, ४३१ । 3. ५, ४३२ । 4. ५, 'श्वभ्रे बन्धे' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१८) ।

१. सप्ततिका० ५१ । पर तत्र पाठोऽयम्—

दो छक्कट्ट चउक्कं पण णव एक्कार छक्कग उदया ।

नेरइभाइसु संता ति पंच एक्कारस चउक्कं ॥

तानि कानीति चेदाह—['गिरए तीसुगुतीस' इत्यादि ।] नरकगतौ एकान्नविंशत्क-त्रिंशत्के द्वे बन्धस्थाने भवतः २६।३० । एक-पञ्च-सप्ताष्ट-नवाग्रविंशतिकानि पञ्च नाम्नः प्रकृत्युदयस्थानानि २१।२५। २८।२९ ज्ञातव्यानि । पुनः नरकावासे नरकगतौ नामसत्त्वस्थानानि त्रीणि-द्वानवतिकैकनवतिक-नवतिकानि नवत्यन्तिकानि सदा भवन्ति ६२।६१।६० ॥४१६-४२०॥

नरकगतिमें उनतीस और तीस प्रकृतिक दो बन्धस्थान जानना चाहिए । इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक पाँच उदयस्थान होते हैं । तथा नरकावासमें बानवैको आदि लेकर नव्वे तकके तीन सत्त्वस्थान सदा होते हैं ॥४१६-४२०॥

नरकगतिमें बन्धस्थान २६, ३० प्रकृतिक दो; उदयस्थान २१, २५, २७, २८, २९, प्रकृतिक पाँच और सत्त्वस्थान ६२, ६१, ६० प्रकृतिक तीन होते हैं।

अब तिर्यग्गति-सम्बन्धी बन्धादि-स्थानोंका निरूपण करते हैं—

^१तिरियगई तेवीसं पणुवीस छव्वीसमडुवीसा य ।

तीखण तीस बंधा उवरिम दो वज्ज णव उदया ॥४२१॥

वाणउदि णउदिमडसीदिमेव संताणि चदु दु सीदी य ।

तिरिएसु जाण संता मणुएसुवि सन्वबंधा तो† ॥४२२॥

^२तिरियगईए वधा २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। तिस्थयरसत्तकम्मिओ तिरिएसु ण उप्पज्जइ त्ति तेण तेणउदिं एकाणउदिं विणा संता ६२।६०।८८।८९।९०

तिर्यग्गत्यां त्रयोविंशतिक-पञ्चविंशतिक-षट्विंशतिकाष्टाविंशतिक नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि नाम्नो बन्धस्थानानि षट् २३।२५।२६।२८।२९।३० भवन्ति । तिर्यग्गतौ उपरिमनवकाष्टकद्वय वर्जयित्वा एक-विंशतिकाष्टानि नव नाम्न उदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति । तिर्यग्गतौ द्वानवतिक-नवतिकाष्टाशीतिक-चतुरशीतिक-द्वयशीतिकानि सत्त्वस्थानानि पञ्च ९२।६०।८८।८९।९० । तीर्थ-करत्वसत्कर्मा तिर्यक्षु नोत्पद्यते इति । तेन त्रिनवतिकमेकनवतिक च तिर्यग्गतौ न भवतीति सर्व जानीहि । मनुष्यगतौ तानि सर्वाण्यष्टौ बन्धस्थानानि ॥४२१-४२२॥

तिर्यग्गतिमें तेईस, पच्चीस, छव्वीस, अट्ठाईस उनतीस और तीस प्रकृतिक छह बन्धस्थान होते हैं । उदयस्थान उपरिम दोको छोड़कर शेष नौ होते हैं । तथा सत्त्वस्थान बानवै, नव्वे अठाईस और वियासी प्रकृतिक पाँच होते हैं । ऐसा जानना चाहिए । मनुष्यगतिमें पूर्वमें बतलाये हुए सब बन्धस्थान होते हैं ॥४२१-४२२॥

तिर्यग्गतिमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक छह होते हैं । उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक नौ होते हैं । तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला जीव तिर्यञ्चोमे उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए तेरानव और इक्यानवकै बिना सत्त्वस्थान ६२, ६०, ८८, ८९, ९० प्रकृतिक पाँच होते हैं ।

अब मनुष्यगति-सम्बन्धी बन्धादि-स्थानोंका निरूपण करते हैं—

^३चउवीसं वज्जुदया सन्वाइं हवन्ति संतठाणाणि ।

वासीदं वज्जित्ता एत्तो देवेसु वोच्छामि ॥४२३॥

१. सं० पञ्चसं० ५, ४३३ । २. ५, 'तिर्यक्षु बन्वे' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१८) । ३. ५, ४३४ ।
† व ते ।

मनुष्यगतौ चतुर्विंशतिकमुदयस्थानं वर्जयित्वा सर्वाणि नामोदयस्थानानि, द्व्यशीतिक वर्जयित्वा सर्वाणि नामसत्त्वस्थानानि भवन्ति । अतः परं देवगत्या नामस्थानानि वक्ष्यामि ॥४२३॥

मनुष्यगतिमे चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान को छोड़कर शेष सर्वउदयस्थान होते हैं । तथा यियासीको छोड़कर शेष सर्वसत्त्वस्थान होते हैं । अब इससे आगे देवोंमें बन्धादिस्थानोंको कहेंगे ॥४२३॥

^१मणुयगईए बंधा २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

मनुष्यगतौ बन्धस्थानानि २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

मनुष्यगतिमे बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक आठ होते होते हैं । उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ६ और ८ प्रकृतिक दश होते हैं । सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ५९, ५८, ५७, ५६, ५५, ५४, ५३, ५२, ५१, ५० और ६ प्रकृतिक बारह होते हैं । अब देवगति-सम्बन्धी बन्धादि-स्थानोंका निरूपण करते हैं—

^२पणुवीसं छव्वीसं ऊणत्तीसं च तीसबंधाणि ।

इगिवीसं पणुवीसं अडसत्तावीसपुगुतीसं ॥४२४॥

एए उदयट्ठाणा संतट्ठाणाणि आदिचत्तारि ।

देवगईए जाणे एत्तो पुण इंदिएसु वोच्छामि ॥४२५॥

^३देवगईए बंधा २५।२६।२९।३०। उदया २१।२५।२७।२८।२९ । संता ६३।६२।६१।६० ।

देवगतौ पञ्चविंशतिक-पट्चविंशतिकैकोनत्रिशत्कत्रिशत्कानि चतुर्नामबन्धस्थानानि २५।२६।२९।३० । एकविंशतिक-पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकाष्टविंशतिकानि नामोदयस्थानकपञ्चकं २१।२५।२७।२८।२९ । देवगतौ आद्यानि चत्वारि सत्त्वस्थानानि ९३।६२।६१।६० । देवगत्यामिति जानीहि ।

इति गतिमार्गणा समाप्ता ।

अतः परं इन्द्रियमार्गणाया नामबन्धोदयसत्त्वस्थानाना त्रिसंयोग वक्ष्यामि ॥४२४-४२५॥

गति०	बंध०	व०	स्था०	उद०	उद०	स्था०	स०	सत्त्वस्था०
नरक०	२	२६, ३० ।		५	२१, २५, २७, २८, २९ ।	३	६२, ६१, ६० ।	
तिर्य०	६	२२, २५, २६, २७, २८, ३० ।		६	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ।	५	६२, ६०, ५९, ५८, ५७ ।	
मनु०	८	२३, २५, २६, २८, २९, २६, ३०, ३१, १ ।	११	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ६, ५ ।	१२	६३, ६२, ६१, ६०, ५९, ५८, ५७, ५६, ५५, ५४, ५३, ५२, ५१, ५०, ४९ ।		

देव० ४ २५, २६, २८, २९, ३० । ५ २१, २५, २७, २८, २९ । ४ ६३, ६२, ६१, ६० ।

देवगतिमे बन्धस्थान पञ्चीस, छव्वीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक चार होते हैं । उदयस्थान इक्कीस, पञ्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक पाँच होते हैं । तथा सत्त्वस्थान

१ स० पञ्चस० ५, 'वृत्ते बन्धाः' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१८) । २. ५, ४३५-४३६ ।

३ ५, 'स्वर्गे बन्धे' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० २१६) ।

आदिके चार जानना चाहिए। अब इससे आगे इन्द्रियमार्गणामें बन्धादिस्थानोंका निरूपण करेगे ॥४२४-४२५॥

देवगतिमें बन्धस्थान २५, २६, २६ और ३० प्रकृतिक चार होते हैं। उदयस्थान २१, २५, २७, २८, और २६ प्रकृतिक पाँच होते हैं। तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१ और ६० प्रकृतिक चार होते हैं।

अब मूल सप्ततिकाकार इन्द्रियमार्गणकी अपेक्षा नामकर्मके बन्धादि स्थानोंका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०४७]^१इगि-वियलिंदिय-सयले पण पंचय अट्ट बंधठाणाणि ।

पण छक्क दस य उदए पण पण तेरे दु संतम्मि^२ ॥४२६॥

	ए०	वि०	स०
ब०	५	५	८
ए०दिय-वियलिंदिय-पंचिदिएसु बंधाह—उ०	५	६	१०
स०	५	५	१३

एकेन्द्रिये विकलत्रये च पञ्चेन्द्रिये च क्रमेण नामबन्धस्थानानि पञ्च ५ पञ्च ५ अष्टौ ८ । नामोदय-स्थानानि पञ्च ५ पट् ६ दश १० । नामसत्त्वस्थानानि पञ्च ५ पञ्च ५ त्रयोदश १३ ॥४२६॥

	एके०	विक०	सक०
बन्ध०	५	५	८
उद०	५	६	१०
सत्त्व०	५	५	१३

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीवोंके क्रमशः पाँच, पाँच और आठ बन्धस्थान; पाँच, छह और दश उदयस्थान; तथा पाँच, पाँच और तेरह सत्त्वस्थान होते हैं ॥४२६॥

भावार्थ—एकेन्द्रिय, जीवोंके ५ बन्धस्थान, ५ उदयस्थान और ५ ही सत्त्वस्थान होते हैं। विकलेन्द्रिय जीवोंके ५ बन्धस्थान, ६ उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान होते हैं। सकलेन्द्रिय जीवोंके ८ बन्धस्थान, १० उदयस्थान और १३ सत्त्वस्थान होते हैं। इनकी संदृष्टि मूल और टौकामें दी हुई है।

अब भाष्यगाथाकार मूलगाथासूत्रसे सूचित अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए पहले एकेन्द्रिय जीवोंके बन्धादिस्थानोंका निर्देश करते हैं—

^३तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं ऊणतीस तीसं च ।

बंधा हवन्ति एदे उदया आदी य पंचेव ॥४२७॥

तेसिं संतवियप्पा वाणउदी णउदिमेव जाणाहि ।

अड-चदु-वासीदी वि य एत्तो वियलिंदिए वोच्छं ॥४२८॥

^४ए०दिएसु बंधा २३।२५।२६।२६।३०। उदया २१।२४।२५।२६।२७। संता ६२।६०।८।८।८।८।८।८।

१. स० पञ्चसं ५, ४३७ । २. ५, ४३८ । ३. ५, 'बन्धे २३' इत्यादिद्याशः (पृ० २१६) ।

१. सप्ततिका० ५२ । परं तत्रोत्तरार्धे पाठभेदोऽयम्—

'पण छक्केकारुदया पण पण वारस य संताणि ।'

६३

पंचेन्द्रिय जीवोंमें चौबीसको छोड़ कर शेष सर्व उदयस्थान तथा सर्व ही सत्त्वस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए । इसी प्रकार काय आदि मार्गणाओंमें भी बन्ध, उदय और सत्त्वस्थान लगा लेना चाहिए ॥४३१॥

पंचेन्द्रियोंमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १; उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ६, ८; तथा सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७, १० और ६ होते हैं ।

यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि मूलसप्ततिकाकारने नामकर्मके बन्धादिस्थानोंका निर्देश केवल गति और इन्द्रियमार्गणोंमें ही किया है, शेष मार्गणाओंमें नहीं । अतएव भाष्यगाथाकारने इस गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा उन्हें जाननेका यहाँ निर्देश किया है ।

अब भाष्यगाथाकार उक्त निर्देशके अनुसार शेष मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धादि स्थानोंका निरूपण करते हैं—

पंचसु थावरकाए बंधा पढमिल्लया हवे पंच ।

अट्ठावीसं वज्जिय उदया आदिल्लया पंच ॥४३२॥

थावरणं बंधा ५—, २३।२५।२६।२८।३०। उदया ५—, २१।२५।२६।२७।

पञ्चसु पृथिव्यसेजोवायुवनस्पतिकायिकेषु प्रथमाः पञ्च बन्धाः—त्रयोविंशतिकादीनि पञ्च बन्ध-स्थानानि भवन्तीत्यर्थः २३।२५।२६।२८।३० । अष्टोविंशतिकवर्जितानि उदयस्थानान्याद्यानि पञ्च २१।२५।२६।२७ । न तेजोद्विके सप्तविंशतिकं, तस्यैकेन्द्रियपर्याप्तयुतातपोद्योतान्यतरयुतत्वात्तत्रानुदयात् ॥४३२॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा पाँचों ही स्थावरकायिकोंमें प्रारम्भके पाँच बन्धस्थान होते हैं । तथा अट्ठाईसको छोड़कर आदिके पाँच उदयस्थान होते हैं ॥४३२॥

स्थावरकायिकोंके २३, २५, २६, २८, ३० ये पाँच बन्धस्थान, तथा २१, २५, २६, २७, और २७ ये पाँच उदयस्थान होते हैं ।

वाणउदि णउदिसंता अड चदु दुरधियमसीदि वियले ते ।

बंधा संता उदया अड णव छिगिवीस तीस इगितीसा ॥४३३॥

संता ५—६२।६०।८८।८४।८२। वियले बंधा ५—२३।२५।२६।२८।३०। उदया ६—२१।२५।२६।२७।२८।३०।३१। संता ७—६२।६०।८८।८४।८२ ।

पञ्चस्थावरकायिकेषु सत्त्वस्थानपञ्चकम्—द्वानवतिक ९२ नवतिक ६० अष्टाशीतिक ८८ चतुर-शीतिक ८४ द्व्यशीतिकानि पञ्च । विकलत्रय-त्रसर्जोवेषु तानि पूर्वं विकलत्रयोक्तानि बन्ध-सत्त्वस्थानानि । उदयस्थानानि अष्ट-नव-पदेकाविकविंशतिकानि त्रिशत्कैकत्रिशत्के च विकलत्रयत्रसर्जोवेषु बन्धस्थानानि पञ्च २३।२५।२६।२८।३० । उदयस्थानपट्कं २१।२५।२६।२८।३०।३१ । सत्त्वस्थानपञ्चकम्—६२।६०।८८।८४।८२ ॥४३३॥

पाँचों स्थावरकायिकोंमें वानवै, नव्वै, अट्ठासी, चौरासी और वियासीप्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं । विकलेन्द्रिय त्रसकायिकोंमें वे ही अर्थात् स्थावरकायिकोंवाले बन्धस्थान और सत्त्वस्थान होते हैं । किन्तु उदयस्थान इक्कीस, छत्तीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इक्कीस प्रकृतिक छह होते हैं ॥४३३॥

स्थावरोंके सत्त्वस्थान ६२, ६०, ८८, ८४, ८२ ये पाँच होते हैं । विकलत्रयोंके बन्ध-स्थान २३, २५, २६, २८, ३०, ३१ ये छह; तथा सत्तास्थान ६२, ६०, ८८, ८४ और ८२ ये पाँच होते हैं ।

मण-त्रचि-चउरे बंधा सव्वे उणतीस आई य ति-उदया ॥४३४॥

इति कायमार्गणा समाप्ता ।

१॥ मन और वचनयोगियोंके सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८०, ७६, ७८ और ७७ ये दश होते हैं। औदारिककाययोगियोंके वन्धस्थान २४, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ ये आठो ही होते हैं। उदयस्थान २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ ये सात होते हैं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके वन्धस्थान २६ और ३० ये दो, उदयस्थान २४ प्रकृतिक एक, तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६० ये चार होते हैं। आहारककाययोगियोंके वन्धस्थान २८ और २६ ये दो होते हैं।

संतादिल्ला चउरो उदया सत्तुवीस उणतीसा ।

तम्मिस्से ते बंधा उदयं पणुवीस संत पढम चदुं ॥४३६॥

उदया ३—२७।२८।२९। संता ४—६३।६२।६१।६०। मिस्से ते बंधा २—२८।२६। उदयो २५ । संता ४—६३।६२।६१।६० ।

आहारके सत्त्वस्थानान्याद्यानि चत्वारि ६३।६२।६१।६० । उदयस्थानानि सप्तविंशतिकाष्टविंशतिक-
नवविंशतिकानि त्रीणि २७।२८।२९ । तन्मिश्रे आहारकमिश्रे ते द्वे आहारकोके अष्टविंशतिकैकोनविंशत्के
वन्धस्थाने द्वे २८।२६ । उदयस्थानमेक पञ्चविंशतिकम् २५ । सत्त्वस्थानप्रथमचतुष्कम् ६३।६२।६१।६० ।
गोम्मट्टसारे आहारके तन्मिश्रे च त्रि-द्विनवतिकद्वयम् ॥६३।६२ ॥४३६॥

आहारककाययोगियोंके उदयस्थान सत्ताईस और अट्ठाईस ये दो तथा सत्तास्थान आदिके
चार होते हैं । आहारकमिश्रकाययोगियोंमे वन्धस्थान अट्ठाईस और उनतीस ये दो; उदयस्थान
पच्चीस प्रकृतिक एक और सत्तास्थान प्रारम्भके चार होते हैं ॥४३६॥

आहारककाययोगियोंमे उदयस्थान २७, २८ ये दो; तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६० ये
चार होते हैं । आहारकमिश्रकाययोगियोंमे वन्धस्थान २८, २६ ये दो; उदयस्थान २५ प्रकृतिक
एक; तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६० ये चार होते हैं ।

कम्मइए तीसंता बंधा इगिवीसमेव उदयं तु ।

दो उवरिं वज्जित्ता संता हिट्ठिल्लया सव्वे ॥४४०॥

कम्मइए बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयो १—२१। संता ११—६३।६२।६१।६०।८८।
८९।९०।९१।९२।९३ ।

कर्मणकाययोगे वन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादि-त्रिंशत्कान्तानि पट् २३।२५।२६।२८।३० । उदय-
स्थानमेकविंशतिकमेकम् २१ । केवलिसमुद्रातापेक्षया विंशतिकञ्च । दशक-नवकस्थानद्वयं वर्जयित्वा अधः-
स्थितानि सत्त्वस्थानानि सर्वाण्येकादश ६३।६२।६१।६०।८८।८९।९०।९१।९२।९३ ॥४४०॥

इतियोगमार्गणा समाप्ता ।

कर्मणकाययोगियोंमे आदिसे लेकर तीस तकके वन्धस्थान; इक्कीस प्रकृतिक एक उदय-
स्थान और अन्तिम दोको छोड़कर नीचेके सर्व सत्तास्थान होते हैं ॥४४०॥

कर्मणकाययोगियोंके वन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह, उदयस्थान २१
प्रकृतिक एक; तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४ और ९५ ये
ग्यारह होते हैं ।

ते चिय संता वेदे बंधा सव्वे हवंति उदया य ।

इगिवीस पंचवीसाई इगितीसंतिया णेया ॥४४१॥

वेदे बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२। उदया ८—२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।
संता ११—६३।६२।६१।६०।८८।८९।९०।९१।९२।९३ ।

वेदमार्गणायां त्रिषु वेदेषु तान्येव कर्मणोक्तान्येकादश सत्त्वस्थानानि वन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ ।
उदयस्थानान्यष्टौ एकविंशतिक-पञ्चविंशतिकादीन्येकत्रिंशत्कान्तानि चाष्टौ ज्ञेयानि ॥४४१॥

त्रिषु वेदेषु प्रत्येकं बन्धाष्टकम् २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदयस्थानाष्टकम् २१।२५।२६।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थानैकादशकम् ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७९।७८।७७ । अत्र स्त्री-पुंवेद्योर्न चतुर्विंशतिकं स्थानम्, तस्यैकेन्द्रियेष्वेवोदयात् । स्त्री-पण्डयोर्नाशीतिकाष्टसप्तिके, तीर्थसत्त्वस्य पुवेदोदयेनैव क्षपकश्रेण्याऽऽरोहणात् ।

इति वेदमार्गणा समाप्ता ।

वेदमार्गणाकी अपेक्षा तीनों वेदोंवालोंके सत्तास्थान तो कर्मणर्काययोगियोंके समान वे ही ग्यारह; और बन्धस्थान सर्व ही होते हैं । उदयस्थान इक्कीस और पच्चीसको आदि लेकर इक्कीस तकके जानना चाहिए ॥४४१॥

तीनों वेदियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ; उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६, ८५, ८४, ८३, ८२, ८१, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह होते हैं ।

कोहाइचउसु बंधा सव्वे संता हवंति ते चेव ।

उवरिं दो वज्जित्ता उदया सव्वे मुणेयव्वा ॥४४२॥

कसाए वधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदया ६—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । संता ११—६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७९।७८।७७ ।

क्रोधादिचतुर्षु बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ ८ । सत्त्वस्थानानि तान्येव पूर्वोक्तान्येकादश ११ । उदयस्थानानि उपरितननवाष्टकस्थानद्वय वर्जयित्वा सर्वाण्युदयस्थानानि नव ९ ज्ञातव्यानि ॥४४२॥

कपायेषु चतुर्षु बन्धस्थानाष्टकम् २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदयस्थाननवकम् २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थानैकादशकम् ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७९।७८।७७ ।

इति कपायमार्गणा समाप्ता ।

कपायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि चारो कपायवालोंके सभी बन्धस्थान होते हैं । तथा सभी सत्तास्थान होने हैं । उदयस्थान उपरिम दोको छोड़कर शेष नौ जानना चाहिए ॥४४२॥

चारो कपायवालोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ; उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ; तथा सत्तास्थान-६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६, ८५, ८४, ८३, ८२, ८१, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह होते हैं ।

मइ-सुय-अण्णाणेसुं बंधा तेवीसइ-तीसंतिया मुणेयव्वा ।

दुणउदि आइ छ संता ते उदया हवंति वेभंगे ॥४४३॥

मइ-सुयअण्णाणे वधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३० । उदया ६—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । संता ६—६३।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७९।७८।७७ ।

ज्ञानमार्गणायां कुमति कुश्रुताज्ञानयोर्नामबन्धस्थानानि प्रश्नोर्विंशतिकादि-त्रिशत्कान्तानि पट् मन्तव्यानि २३।२५।२६।२८।२९।३० । सत्त्वस्थानानि द्वानवतिकादीनि पट् ६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७९।७८।७७ । तान्येव कपायोक्तान्युदयस्थानानि नव २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।१ । भवन्ति । विभङ्गज्ञाने [उपरि वक्ष्यामः ।] ॥४४३॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मति और श्रुत-अज्ञानियोमे बन्धस्थान तेईसको आदि लेकर तीस तकके छह जानना चाहिए । उदयस्थान कपायमार्गणाके समान वे ही नौ होते हैं । सत्तास्थान वानवैको आदि लेकर छह होते हैं । अब विभङ्गज्ञानियोंके स्थानोंका वर्णन करते हैं ॥४४३॥

मति-श्रुताज्ञानियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह; उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ तथा सत्त्वस्थान ६२, ६१, ६०, ८८, ८४ और ८२ ये छह होते हैं।

ते चिय बंधा संता उदया अडवीस तीस इगितीसा ।

मह-सुय-ओहीजुयले बंधा अडवीस आदि पंचेव ॥४४४॥

वेभंगे बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ३—२८।३०।३१। संता ६—६२।६१।६०। ८८।८४।८२। मह-सुय-ओहीजुयले बंधा ५—२८।२९।३०।३१।१ ।

विभङ्गज्ञाने तान्येव कुमति-कुश्रुतोक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि । उदयस्थानानि अष्टाविंशतिक-त्रिशत्कै-
त्रिशत्कानि त्रीणि ॥४४४॥

विभङ्गज्ञाने बन्धस्थानपट्कम् २३।२५।२६।२८।२९।३० । उदयस्थानत्रिकम् २८।३०।३१ । सत्त्व-
स्थानपट्कम् ६२।६१।६०।८८।८४।८२ ।

विभंगज्ञानियोंके मतिश्रुताज्ञानियोंके समान वे ही बन्धस्थान और सत्त्वस्थान जानना चाहिए । किन्तु उदयस्थान अट्ठाईस, तीस और इकतीस ये तीन ही होते हैं । मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंके दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा अवधिदर्शनियोंके बन्धस्थान अट्ठाईस आदि पाँच होते हैं ॥४४४॥

विभंगज्ञानियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह, उदयस्थान २८, ३०, ३१ ये तीन; तथा सत्तास्थान ६२, ६१, ६०, ८८, ८४ और ८२ ये छह होते हैं । मति, श्रुत और अवधि-युगलवालोके बन्धस्थान २८, २९, ३०, ३१ और १ ये पाँच होते हैं ।

चउवीसं दो उवरिं वज्जित्ता उदय अट्टेव ।

चउ आइल्ला संता ऊवरिं दो वज्जिऊण चउ हेट्ठा ॥४४५॥

उदया ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ८—६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७।

मति श्रुतावधिज्ञानावधिदर्शनेषु बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि पञ्च २८।२९।३०।३१।१। चतुर्विंश-
तिक उपरिमनवकाष्टकद्वय च वर्जयित्वा उदयस्थानान्यष्टौ २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। चतुराद्य-
सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादिचतुष्क उपरिमदशक-नवकद्वय वर्जयित्वा चतुरध-स्थसत्त्वस्थानानि अशीतिका-
दीनि चत्वारि ह्यष्टौ ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७ ॥४४५॥

उन्हीं उपर्युक्त जीवोंके चौबीस तथा दो अन्तिम स्थानोंको छोड़कर शेष आठ उदयस्थान होते हैं । तथा सत्तास्थान आदिके चार और अन्तिम दोको छोड़कर अधस्तन चार, ये आठ होते हैं ॥४४५॥

मति, श्रुत और अवधि-युगलवालोके उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८ और ७७ ये आठ होते हैं ।

बंधा संता तेचिय मणपजे तीसमेव उदयं तु ।

केवलजुयले उदया चदु उवरिं छच्च संत उवरिल्ला ॥४४६॥

मणपजे बंधा ५—२८।२९।३०।३१।१। उदयो १—३० सता ८—६३।६२।६१।६०।८०।७६। ७८।७७। केवलजुयले उदया ४—३०।३१।६१। संता ६—८०।७६।७८।७७।१०।६१।

मन-पर्ययज्ञाने तान्येव सज्ञानोक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि भवन्ति । उदयस्थानमेक त्रिशत्कम् । मनः-
पर्ययज्ञाने बन्धस्थानपञ्चकम् २८।२९।३०।३१।१। उदयस्थानमेकम् ३० । सत्त्वस्थानाष्टकम् ६३।६२।६१।

६०।८०।७९।७८।७७। केवल्युगले केवलज्ञाने केवलदर्शने च उदयस्थानचतुष्कमुपरितनम् ३०।३१।३२।
केवलसमुद्धातपेक्षया उदयदशकम् २०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२। सत्त्वस्थानानि पट् उपरितनानि
अशीतिकादीनि पटित्यर्थः ८०।७९।७८।७७।७६। तत्र बन्धो नास्ति॥ ४४६॥

इति ज्ञानमार्गणा समाप्ता ।

मनः पर्ययज्ञानियोंके बन्धस्थान और सत्तास्थान तो मति-श्रुतादि ज्ञानियोंके समान वे ही पूर्वोक्त जानना चाहिए । किन्तु उदयस्थान केवल तीस प्रकृतिक ही होता है । केवलज्ञानियों और केवलदर्शनियोंके (बन्धस्थान कोई नहीं होता ।) उदयस्थान उपरिम चार तथा सत्तास्थान उपरिम छह होते हैं ॥४४६॥

मनः पर्ययज्ञानियोंके बन्धस्थान २८, २९, ३०, ३१, १ ये पाँच; उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक तथा सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये आठ होते हैं केवल-युगल-वालोंके उदयस्थान ३०, ३१, ६ और ८ ये चार; तथा सत्तास्थान ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ६ ये छह होते हैं ।

सामाह्य-छेदेसु बंधा अडवीसमाह पंचेव ।

पणुवीस सत्तवीसा उदया अडवीस तीस उणतीसा ॥४४७॥

सामाह्य-छेदेसु बंधा—२८।२९।३०।३१।१। उदया ५—२५।२७।२८।२९।३०।

संयममार्गणायां सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि पञ्चैव २८।२९।३०।
३१।१। उदयस्थानानि पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकाष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि पञ्च २५।२७।२८।
२९।३०। ॥४४७॥

संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापना संयतोके बन्धस्थान अट्ठाईस आदि पाँच होते हैं । उदयस्थान पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस, ये पाँच होते हैं ॥४४७॥

सामायिक-छेदोपस्थापनासंयतोंमें बन्धस्थान २८, २९, ३०, ३१, १ ये पाँच तथा उदय-स्थान २५, २७, २८, २९ और ३० ये पाँच होते हैं ।

पढमा चउरो संता उवरिम दो वज्जिदूण चउ हेट्ठा ।

संता चउरो पढमा परिहारे तीसमेव उदयं तु ॥४४८॥

संता ८-६३।६२।६१।६०।८०।७९।७८।७७। परिहारे उदया १-३० । सत्ता ४-६३।६२।६१।६०

प्रथमचतुःसत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादिचतुष्कम्, उपरिमदशक-नवकद्वयं वर्जयित्वा चतुरधःस्थ-सत्त्वस्थानानि अशीतिकादिचतुष्कमित्यष्टौ सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०।८०।७९।७८।७७। परिहारविशुद्धौ सत्त्वस्थानानि चत्वारि प्रथमानि त्रिनवतिकादीनि । त्रिंशत्कमुदयस्थानमेकम् ३० ॥४४८॥

उन्हीं दोनों संयतोंके सत्त्वस्थान प्रारम्भके चार, उपरिम दोको छोड़कर अधस्तन चार, ये आठ होते हैं । परिहारविशुद्धिसंयतोंके तीस प्रकृतिक एक उदयस्थान और प्रारम्भके चार सत्तास्थान होते हैं ॥४४८॥

सामायिक-छेदोपस्थापना संयतोंके सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये आठ होते हैं । परिहारविशुद्धिसंयतोंके उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक और सत्तास्थान ६३, ६२, ६१ और ६० ये चार होते हैं ।

अडवीसा उणतीसा तीसिगितीसा य बंध चत्तारि ।

जसकिती वि य बंधा सुहुमे उदयं तु तीस हवे ॥४४६॥

परिहारे यथा ४—२८।२६।३०।३१ सुहुमे यथा १—१ । उदय १—३०।

परिहारविशुद्धौ अष्टाविंशतिक नवविंशतिक-त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि चत्वारि बन्धस्थानानि । परिहार-विशुद्धिमयमे बन्धस्थानचतुष्कम् २८।२६।३०।३१। उदयस्थानमेकम् ३०। सत्त्वस्थानचतुष्कम् ६३।६२।६१।६०। सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मसाम्परायो मुनिरेकां यशस्कीर्त्तिं ब्रध्नन् त्रिंशत्कमुदयागतमनुभवति । [उदय-स्थान तु त्रिंशत्कमेकमेव ।] ॥४४६॥

उन्हीं परिहारविशुद्धि संयतोके बन्धस्थान अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक ये चार होते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय संयतोके यशस्कीर्त्ति प्रकृतिक एक ही बन्धस्थान और एक ही उदयस्थान होता है ॥४४६॥

परिहारविशुद्धि संयतोके बन्धस्थान २८, २६, ३०, ३१ ये चार होते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय संयतोके बन्धस्थान १ प्रकृतिक और उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक होता है ।

संताइल्ला चउरो उवरिम दो वज्जिदूण चउ हेड्डा ।

जहखायम्मि वि चउरो तीसिगितीसा णव अट्ठ उदयाय ॥४५०॥

संता ८—६३।६२।६१।६०।८०।३६।७८।७७। जहखाए उदया ४—३०।३१।६१।६०।

सूक्ष्मसाम्पराये सत्त्वस्थानान्याद्यानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि, उपरिमदशक-नवकद्वय वर्जयित्वा चतुरध स्थानान्यर्गातिकादीनि चत्वारि चेत्यष्टौ । सूक्ष्मसाम्पराये बन्धस्थानमेक १ यशस्कीर्त्तिनाम १ । उदयस्थानमेक त्रिंशत्कम् ३० । सत्त्वस्थानाष्टकम् ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७। यथाख्याते नामबन्धो नास्ति । उदयस्थानानि चत्वारि त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कनवकाष्टकानि ३०।३१।६१।६०। केवलिसमुद्घातपेक्षया उदयदशकम् २०।२१।२६।२७।२८।२९।३०।३१।६१।६० ॥४५०॥

उन्हीं सूक्ष्मसाम्पराय संयतोके सत्तास्थान आदिके चार तथा उपरिम दोको छोड़कर अधस्तन चार; ये आठ होते हैं । यथाख्यात संयतोके तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं ॥४५०॥

सूक्ष्मसाम्परायसंयतोके सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८ और ७७ ये आठ होते हैं । यथाख्यात संयतोके ३०, ३१, ६ और ८ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं ।

चउहेड्डा छाउवरिं संतट्ठाणाणि दस य णेयाणि ।

तससंजमम्मि णेया संतट्ठाणाणि चउ हेड्डा ॥४५१॥

संता १०—६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७।१०।६। तससंजमे सत्ता ४—६३।६२।६१।६०।

यथाख्याते सत्त्वस्थानानि चतुरध-स्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि, पडुपरितनानि सत्त्वानि अर्गातिकादीनि षट् । एव दश सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७।१०।६। त्रससंयमे देश-संयमे सत्त्वस्थानानि चतुरध स्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि ६३।६२।६१।६० ॥४५१॥

उन्हीं यथाख्यात संयतोके चार अधस्तन और छह उपरितन, ये दश सत्तास्थान जानना चाहिए । त्रस-संयमवालोके अर्थात् देशसंयतोके चार अधस्तन सत्तास्थान जानना चाहिए ॥४५१॥

यथाख्यात संयतोके सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८, ७७, १० और ६ ये दश सत्तास्थान होते हैं । देशसंयतोके ६३, ६२, ६१ और ६० ये चार सत्तास्थान होते हैं ।

अडवीसा उणतीसा बंधा उदया य तीस इगितीसा ।

अडसीदिं वज्जित्ता पढमा सत्ता^१ असंजमे संता ॥४५२॥

बंधा २—२८।२६। उदया २—३०-३१ । असंजमे संता ७—६३।६२।६१।६०।८४।८२।८०।

देशसंयमे बन्धस्थाने द्वे—अष्टाविंशतिक-नवविंशतिके २८।२६। उदयस्थाने द्वे—त्रिंशत्कैकत्रिंशत्के ३०।३१। असंयमे अष्टाशीतिकं वर्जयित्वा प्रथमानि त्रिनवतिकादीनि सत्त्वस्थानानि सप्त ६३।६२।६१।६०। ८४।८२।८० गोम्मट्टसारे ८८।८४।८२। एवमप्यस्ति, इदं साधु दृश्यते ॥४५२॥

असंयमे बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि पङ्क्त्वा बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयस्थानानि उपरिमनवकाष्टद्वयं वर्जयित्वा एकविंशतिकादीनि नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१

इति सयममार्गणा समाप्ता ।

उन्हीं देशसंयतोके अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक दो बन्धस्थान; तथा तीस और इकतीस प्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं । असंयतोके अठासीको छोड़कर प्रथमके सात सत्तास्थान होते हैं ॥४५२॥

देशसंयतोके बन्धस्थान २८, २६ ये दो; तथा उदयस्थान ३० और ३१ ये दो होते हैं । असंयतोके ६३, ६२, ६१, ६०, ८४, ८२, ८० ये सात सत्तास्थान होते हैं ।

तीसंता छव्वंधा उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ।

चक्खुम्मि सव्वबंधा उदया उणतीस तीस इगितीसा ॥४५३॥

बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ६—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। चक्खु-
दंसणे बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२। उदया ३—२६।३०।३१।

दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शने बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१। उदयस्थानानि एकोनत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि त्रीणि २६।३०।३१। शक्यपेक्षया २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। इदं गोम्मट्टसारेऽप्यस्ति ॥४५३॥

उन्हीं असंयतोके आदिसे लेकर तीस तकके छह बन्धस्थान और उपरिम दोको छोड़कर नौ उदयस्थान होते हैं । दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा चक्षुर्दर्शनियोंके बन्धस्थान तो सभी होते हैं; किन्तु उदयस्थान उनतीस तीस और इकतीस प्रकृतिक तीन ही होते हैं ॥४५३॥

असंयतोके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह; तथा उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ ये नौ होते हैं । चक्षुर्दर्शनियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ; तथा उदयस्थान २६, ३० और ३१ ये तीन होते हैं ।

उवरिम दो वज्जित्ता संता इयरम्मि होंति णायव्वा ।

बंधा संता तेच्चिय उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ॥४५४॥

संता ११—६३।६२।६१।६०।८४।८२।८०।७६।७८।७७। अचक्खुदंसणे बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२। उदया ६—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्ता—११—६३।६२।६१।६०। ८४।८२।८०।७६।७८।७७ ।

चक्षुर्दर्शने सत्त्वस्थानानि उपरिमदशकनवकद्वयं वर्जयित्वा एकादश सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१। ६०।८४।८२।८०।७६।७८।७७। इतरस्मिन् अचक्षुर्दर्शने तान्येव चक्षुर्दर्शनोक्तानि बन्ध-सत्त्वस्थानानि भवन्ति । उदयस्थानानि उपरिमद्विकं वर्जयित्वा नवोदयाः । अचक्षुर्दर्शने बन्धाष्टकम् । २३।२५।२६।२८।

२६।३०।३१।१। उदयस्थाननवकम् । २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सप्तैकादशकम् ६३।६२।
६१।६०।५९।५८।५७।५६।५५।५४। अवधि-केवलदर्शनद्वये ज्ञाने कथितमस्ति ॥४५४॥

इति दर्शनमार्गणा समाप्ता ।

चक्षुदर्शनियोके उपरिम दो सत्तास्थान छोड़कर शेष ग्यारह सत्तास्थान होते हैं । इतर अर्थात् अचक्षुदर्शनियोमें वे ही अर्थात् चक्षुदर्शनवालोके बतलाये गये बन्धस्थान और सत्तास्थान होते हैं । तथा उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान होते हैं ॥४५४॥

चक्षुदर्शनियोके सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ५९, ५८, ५७, ५६, ५५, ५४, ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं । अचक्षुदर्शनियोके २३, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ये आठ बन्ध-स्थान; २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ये नौ उदयस्थान, तथा ६३, ६२, ६१, ६०, ५९, ५८, ५७, ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं ।

किण्हाइति बंधा तेवीसाई हवंति तीसंता ।

सत्ता सत्ताइल्ला उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ॥४५५॥

किण्हा नील काकुसु बधा ६—२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९। उदया ६—२१।२४।२५।२६।२७।२८।
२९।३०।३१। सत्ता ७—६३।६२।६१।६०।५९।५८।५७।

लेश्यामार्गणायां कृष्णादित्रये बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिशत्कान्तानि पट २३।२४।२५।२६।२७।
३०। सत्त्वस्थानानि आद्यानि त्रिनवतिकादीनि सप्त ६३।६२।६१।६०।५९।५८।५७। उपरिमद्वयं वर्ज-
यित्वा चोदयस्थानानि नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ॥४५५॥

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्ण आदि तीन लेश्याओंमें तेईसको आदि लेकर तीस तकके
छह बन्धस्थान, उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान, तथा आदिके सात सत्तास्थान
होते हैं ॥४५५॥

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें २३, २४, २६, २७, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान, २१,
२४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ उदयस्थान, तथा ६३, ६२, ६१, ६०, ५९, ५८ और
५७ ये सात सत्तास्थान होते हैं ।

तेज पम्मा बंधा अडवीसुणतीस तीस इगितीसा ।

इगि पणुवीसा उदया सत्तावीसाइ जाव इगितीसं ॥४५६॥

तेज-पम्मासु बधा ४—२८।२९।३०।३१। उदया ७—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

तेज-पञ्चयोर्बन्धस्थानानि अष्टाविंशत्येकोनविंशत्कत्रिशत्कैकत्रिशत्कानि चत्वारि २८।२९।३०।३१।
पञ्चायमष्टाविंशतिकादीनि चत्वारि । पीतलेश्यायां २५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ एवमप्यस्ति । उदयस्थानानि
एकविंशतिक-पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकाद्येकत्रिशत्कान्तानि सप्त २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ॥४५६॥

तेज और पद्मलेश्यामें अष्टाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक ये चार बन्धस्थान,
तथा इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अष्टाईस, उनतीस, तीस, और इकतीस प्रकृतिक ये सात
उदयस्थान होते हैं ॥४५६॥

तेज और पद्मलेश्यामें बन्धस्थान २८, २९, ३०, ३१, ये चार तथा उदयस्थान २१, २४,
२७, २८, २९, ३० और ३१ ये सात होते हैं ।

संता चउरो पढमा सुक्काए होंति तेच्चिय विवाया ।

संता चउरो पढमा उवरिम दो वज्जिदूण चउ हेट्टा ॥४५७॥

सत्ता ४—६३।६२।६१।६०। सुक्काए उदया ७—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९। सत्ता ८—
६३।६२।६१।६०।५९।५८।५७।

पीत-पद्मयोः सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि १३।१२।११।१० । शुक्ललेश्यायां त एव पीतपद्मोक्तविपाका उदयस्थानानि सप्त २१।२५।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति । केवलिसमुद्घातापेक्षया विंशतिकोदयश्च सत्तास्थानानि चत्वारि त्रिनवतिकादीनि उपरिमद्विकं वर्जयित्वा चतुरधःसत्त्वस्थानानि अशीति-कादीनि चत्वारि । एवमष्टौ १३।१२।११।१०।८।७।६।५ ॥४५७॥

तेज और पद्मलेश्यामे प्रथमके चार सत्तास्थान होते हैं । शुक्ललेश्यामे विपाक अर्थात् उदयस्थान तो वे ही होते हैं, जो कि तेज-पद्मलेश्यामें बतलाये गये हैं । किन्तु सत्तास्थान आदिके चार तथा उपरिम दो को छोड़कर अधस्तन चार, इस प्रकार आठ होते हैं ॥४५७॥

तेज-पद्मलेश्यामें १३, १२, ११, १० ये चार सत्तास्थान होते हैं । शुक्ललेश्यामें २१, २५, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये सात उदयस्थान; तथा १३, १२, ११, १०, ८, ७, ६ और ५ ये आठ सत्तास्थान होते हैं ।

अडवीसाई बंधा णिल्लेसे उदय उवरिमं जुयलं ।

उवरिं छच्चिय संता भव्वे बंधा हवन्ति सव्वे वि ॥४५८॥

सुक्काए बंधा ५—२८।२९।३०।३१।१। अल्लेसे उदया २—१।८। संता ६—८।७।६।५।७।७। १०।११। भव्वे बंधा सव्वे २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।

शुक्ललेश्यायां बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि पञ्च २८।२९।३०।३१।१ । निर्लेश्ये अयोगे उदयो-परिमयुग्मं नवकाष्टकद्वयमस्ति १।८ । सत्त्वस्थानानि उपरिमस्थानानि पट् ८।७।६।५।७।७।१०।११ ।

इति लेश्यामार्गणां समाप्ता ।

भव्यमार्गणाया भव्ये बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ ॥४५८॥

शुक्ललेश्यामें अट्टाईसको आदि लेकर पाँच बन्धस्थान होते हैं । लेश्यासे रहित अयोगि-केवलीके उपरिम दो उदयस्थान; तथा उपरिम छह सत्तास्थान होते हैं । भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्यजीवोके सभी बन्धस्थान होते हैं ॥४५८॥

शुक्ललेश्यामे २८, २९, ३०, ३१, १ ये पाँच बन्धस्थान होते हैं । अलेश्यजीवोके ६ और ८ ये दो उदयस्थान; तथा ८, ७, ६, ५, ७, ७, १० और १ वे छह सत्तास्थान होते हैं । भव्योके २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, और १ ये सभी बन्धस्थान होते हैं ।

दो उवरिं वज्जित्ता संतुदया होंति सव्वे वि ।

अभव्वे तीसंता बंधा उदया य उवरि दो वज्जं ॥४५९॥

उदया १—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ११—१३।१२।११।१०।८।७।६।५।७।७। १०।११। भव्वे बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया १—२१।२४।२५।२६।२७।२८। २९।३०।३१।

भव्ये सत्त्वोदयस्थानानि उपरिमद्वयं वर्जयित्वा सर्वाण्युदयसत्त्वस्थानानि भवन्ति । भव्ये उदया नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थानैकादशकम् १३।१२।११।१०।८।७।६।५।७।७। १०।११। भव्ये बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि २३।२५।२६।२८।२९।३० । आहारक युत त्रिंशत्कं न स्यात्, किन्तु त्रिंशत्कमुद्योतयुत स्यात् । उपरिमस्थानद्वयं वर्जयित्वा उदयस्थानानि नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ॥४५९॥

भव्योके उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान; तथा उपरिम दो को छोड़कर शेष ग्यारह सत्तास्थान होते हैं । अभव्योके तीस तकके छह बन्धस्थान; तथा उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान होते हैं ॥४५९॥

भव्योके २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ उदयस्थान, तथा ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८ और ७७ ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं। अभव्यमें २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये दश वन्धस्थान, तथा २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ ये नौ उदयस्थान होते हैं।

संता णउदाइ चदुं णो भव्वां चदुं छांय उवरि उदय संता ।

उवसमसम्मे वंधा अडवीसाई हवंति पंचेव ॥४६०॥

सता ४—६०।८८।८४।८२। णोभव्वणोऽभव्वे उदया ४—३०।३१।६।८। सता ६—८०।७६।७८। ७७।१०।६। उवसमसम्मे वंधा ५—२८।२९।३०।३१।१।

अभव्ये नवतिकादीनि चत्वारि सत्त्वस्थानि ६०।८८।८४।८२। नोभव्याभव्ये अयोगे अन्त्योदया-
श्चत्वारः ३०।३१।६।८। अन्तिमसत्त्वस्थानि पट् ८०।७६।७८।७७।१०।६।

इति भव्यमार्गणा समाप्ता ।

सम्यक्त्वमार्गणायामुपशमसम्यक्त्वे वन्धस्थानानि अष्टाविंशतिकादीनि पञ्च २८।२९।३०।३१।१। ॥४६०॥

अभव्योके नव्वै आदि चार सत्तास्थान होते हैं। नोभव्य-नोअभव्य जीवोके उपरिम चार उदयस्थान और उपरिम छह सत्तास्थान होते हैं। सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वमें अट्ठाईसको आदि लेकर पाँच वन्धस्थान होते हैं ॥४६०॥

अभव्यके ६०, ८८, ८४, ८२ ये चार सत्तास्थान होते हैं। नो-भव्य-नोअभव्यके ३०, ३१, ६, ८ ये चार उदयस्थान, तथा ८०, ७६, ७८, ७७, १० और ६ ये छह सत्तास्थान होते हैं। उपशमसम्यक्त्वमें २८, २९, ३०, ३१ और १ ये पाँच वन्धस्थान होते हैं।

उदया इगि पणुवीसा उणतीसा तीस होंति इगितीसा ।

संता चउरो पढमा वेदयसम्मम्मि संत ते चेव ॥४६१॥

उदया ५—२१।२५।२६।३०।३१। सता ४—६३।६२।६१।६०। वेदये सता ४—६३।६२।६१।६०।

उपशमे उदयस्थानानि एक पञ्चाप्रविंशतिके द्वे, एकोनत्रिंशत्क त्रिंशत्कैक त्रिंशत्कानि त्रीणि, एव पञ्च २१।२५।२६।३०।३१ भवन्ति । सत्त्वस्थानानि चत्वार्याद्यानि नवतिकादीनि ६३।६२।६१।६०। वेदकसम्यक्त्वे सत्त्वस्थानानि तान्येवोपशमोक्तानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि ६३।६२।६१।६० ॥४६१॥

उपशमसम्यक्त्वमें इक्कीस, पच्चीस, उनतीस, तीस, इकतीस ये पाँच उदयस्थान और आदिके चार सत्तास्थान होते हैं। वेदकसम्यक्त्वमें भी ये ही आदिके चार सत्तास्थान होते हैं ॥४६१॥

उपशम सम्यक्त्वमे २१, २५, २६, ३०, ३१ ये पाँच उदयस्थान, तथा ६३, ६२, ६०, ६१, ये चार सत्तास्थान होते हैं। वेदकसम्यक्त्वमे भी ६३, ६२, ६१, ६० ये ही चार सत्तास्थान होते हैं।

अडवीसा उणतीसा तीसिगितीसा हवंति वंधा य ।

चडवीसं दो उवरिं वज्जित्ता उदयठाणाणि ॥४६२॥

बंधा ४—२८।२९।३०।३१। उदया ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

† भव्वाभव्वे ।

‡ व णोभव्वाभव्वे ।

वेदकसम्यक्त्वे बन्धस्थानानि अष्टाविंशतिकनवविंशतिकत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि चत्वारि भवन्ति २८।२६।
३०।३१ । उदयस्थानानि चतुर्विंशतिक उपरिमनवकाष्टकद्वय च वर्जयित्वा अन्यान्यष्टौ २१।२५।२६।२७।
२८।२९।३०।३१ ॥४६२॥

उसी वेदकसम्यक्त्वमें अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक चार बन्धस्थान;
तथा चौबीस और उपरिम दो स्थानोको छोड़कर शेष आठ उदयस्थान होते हैं ॥४६२॥

वेदकसम्यक्त्वमें २८, २९, ३०, ३१, ये चार बन्धस्थान और २१, २५, २६, २७, २८,
२९, ३०, ३१ ये आठ उदयस्थान होते हैं ।

चउरो हेट्टा छाउवरिं खाइए संता हवन्ति णायव्वा ।

चउवीसं वज्जुदया अडवीसाई हवन्ति बंधा य ॥४६३॥

खाइयसम्मत्ते बंधा ५—२८।२९।३०।३१। उदया १०—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।
३१। संता १०—३३।३२।३१।३०।२९।२८।२७।२६।२५।२४।२३।२२।२१।

ज्ञायिकसम्यक्त्वे चत्वारि सत्त्वस्थानान्यधस्थानानि पट्ठपरिष्ठानि, एवं दश सत्त्वस्थानानि ज्ञायिक-
सम्यग्दष्टौ भवन्ति । चतुर्विंशतिक वर्जयित्वा उदयस्थानानि दश । अष्टाविंशतिकानीनि पञ्च बन्धस्थानानि
भवन्ति ज्ञातव्यानि ॥४६३॥

ज्ञायिकसम्यक्त्वे बन्धस्थानपञ्चकम् २८।२९।३०।३१। उदयस्थानदशकम् २१।२५।२६।२७।२८।
२९।३०।३१।३२। केवलिसमुद्घातापेक्षया विंशतिकस्योदयोऽस्ति । सत्त्वस्थानदशकम् ३३।३२।३१।३०।
२९।२८।२७।२६।२५।२४।२३।२२।२१।

ज्ञायिकसम्यक्त्वमे चार अधस्तन और छह उपरिम ये दश सत्तास्थान होते हैं, ऐसा
जानना चाहिए । उदयस्थान चौबीसको छोड़करके शेष सर्व, तथा बन्धस्थान अट्ठाईसको आदि
लेकरके शेष सर्व होते हैं ॥४६३॥

ज्ञायिकसम्यक्त्वमे २८, २९, ३०, ३१, १ ये पाँच बन्धस्थान, २१, २५, २६, २७, २८,
२९, ३०, ३१, ६, ८ ये दश उदयस्थान; तथा ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८, ७७, १० और ६
ये दश सत्तास्थान होते हैं ।

अडवीसाई तिणि य बंधा सादम्मि संत णउदीया ।

इगिवीसाई सत्त य उदया अड सत्तवीस वज्जित्ता ॥४६४॥

सासणे बंधा ३—२८।२९।३०। उदया ७—२१।२४।२५।२६।२९।३०।३१। संता १—६०।

सासादनरुचौ बन्धस्थानानि अष्टाविंशतिकादीनि त्रीणि २८।२९।३० । सत्त्वस्थानमेकं नवतिकम्
६० । अष्टाविंशतिक सप्तविंशतिक च वर्जयित्वा एकविंशतिकादीनि सप्तोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२९।
३०।३१ । अत्र सप्ताष्टाविंशतिके तु अनयोरुदयक्रालागमनपर्यन्तं सासादनत्वासम्भवान्नोक्ते ॥४६४॥

सासादनसम्यक्त्वमें अट्ठाईसको आदि लेकर तीन बन्धस्थान; नवैप्रकृतिक एक सत्ता-
स्थान; तथा सत्ताईस और अट्ठाईसको छोड़कर इक्कीस आदि सात उदयस्थान होते हैं ॥४६४॥

सासादनमें २८, २९, ३० ये तीन बन्धस्थान, तथा २१, २४, २५, २६, २९, ३०, ३१ ये
सात उदयस्थान हैं और ६० प्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है ।

अट्ठावीसुणतीसा बंधा मिसम्मि णउदि वाणउदी ।

संता तीसिगितीसा उणतीसा होंति उदया य ॥४६५॥

मिस्से बंधा २—२८।२९। उदया ३—२९।३०।३१। संता २—६२।६०।

मिश्ररुचो बन्धस्थानेऽष्टाविंशतिक नवविंशतिके द्वे २८।२६ । सत्त्वस्थाने द्वे नवतिक द्वानवतिके ६२।
६० भवतः । उदयस्थानानि एकोनविंशत्कैकविंशत्कानि त्रीणि २६।३०।३१ ॥४६५॥

मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वमे अट्टाईस, उनतीसप्रकृतिक दो बन्धस्थान; वानवै और
और नवैप्रकृतिक दो सत्तास्थान, तथा उनतीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक तीन उदयस्थान
होते हैं ॥४६५॥

मिश्रमे २८ और २६ ये दो बन्धस्थान, २६, ३०, ३१ ये तीन उदयस्थान; तथा ६२ और
६० ये दो सत्तास्थान होते हैं ।

तीसंता छवंधा उवरिम दो वज्जिऊण णव उदया ।

मिच्छे पढमा संता तेणउदिं वज्जिऊण छवेव ॥४६६॥

मिच्छे बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ६—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।
सत्ता ६—६२।६१।६०।८८।८९।९०।

मिथ्यारुचौ बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि पट् २३।२५।२६।२८।२९।३० । उदय-
स्थानानि उपरिम-नवकाष्टस्थानद्वय वर्जयित्वा अन्यानि नवोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।
३०।३१ । त्रिनवतिकं वर्जयित्वा आदिमसत्त्वस्थानानि पट् ६२।६१।६०।८८।८९।९० ॥४६६॥

इति सम्यक्त्वमार्गणा समाप्ता ।

मिथ्यात्वमें तीसप्रकृतिक स्थान तकके छह बन्धस्थान; उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ
उदयस्थान; तथा तेरानवैको छोड़कर प्रारम्भके छह सत्तास्थान होते हैं ॥४६६॥

मिथ्यात्वमे २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान, २१, २४, २५, २६, २७,
२८, २९, ३०, ३१ ये नौ उदयस्थान; तथा ६२, ६१, ६०, ८८, ८९ और ९० ये छह सत्ता-
स्थान होते हैं ।

संज्ञिमि सन्धवंधा उवरिम दो वज्जिऊण संता दु ।

चउवीसं दो उवरिं वज्जिता होंति उदया य ॥४६७॥

संज्ञीसु बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१। उदया ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।
सत्ता ११—६३।६२।६१।६०।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।

संज्ञिमार्गणाया संज्ञिजीवे बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१ । उपरिम-
दशक नवकस्थानद्वय वर्जयित्वा अन्यसर्वाण्येकादश सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०।८८।८९।९०।९१।९२।९३।
९४।९५।९६।९७।९८।९९ । चतुर्विंशतिकं उपरिमनवकाष्टस्थानद्वयं च वर्जयित्वा उदयस्थानान्यष्टौ २१।२५।२६।२७।
२८।२९।३०।३१ । संज्ञिनि भवन्ति ॥४६७॥

संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी जीवोंमें सर्व बन्धस्थान होते हैं । उपरिम दोको छोड़कर
शेष ग्यारह सत्तास्थान; तथा चौबीस और उपरिम दोको छोड़कर शेष आठ उदयस्थान होते
हैं ॥४६७॥

संज्ञियोंमे २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ बन्धस्थान; २१, २५, २६, २७,
२८, २९, ३०, ३१ ये आठ उदयस्थान और ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६,
ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं ।

इगिवीसं छन्वीसं अडवीसुणतीस तीस इगितीसा ।

उदया असण्णिजीवे बंधा तीसंतिया छच्च ॥४६८॥

असण्णीसु बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३० । उदया ६—२१।२६।२८।२९।३०।३१।

असंज्ञिमार्गणायां वन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि पट् २३।२५।२६।२८।२९।३० ।
उदयस्थानान्येकविंशतिकपट्विंशतिकाष्टाविंशतिकैकोनत्रिंशत्कत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि पट् २१।२६।२८।२९।३०।
३१ ॥४६८॥

असंज्ञी जीवोमे इक्कीस, छन्वीस, अट्टाईस, उनतीस, तीस, इकतीस प्रकृतिक छह उदय-
स्थान और तीस तकके प्रारम्भिक छह वन्धस्थान होते हैं ॥४६८॥

असंज्ञियोमे २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह वन्धस्थान; तथा २१, २६, २८, २९, ३०
और ये छह उदयस्थान होते हैं ।

पंचाङ्गला संता तम्मि य चत्ता ति-इक्कणउदीओ ।

उदया चउ उवरिल्ला छोवरि संता य णोभए भणिया ॥४६९॥

संता ५—६२।६०।८८।८९।९० । णेवसण्णी-णेवअसण्णीसु उदया ४—३०।३१।६।८। संता ६—
८०।७६।७८।७९।१०।६ ।

सत्त्वस्थानानि—तत्र सत्त्वस्थानमध्ये त्रिनवतिकैकनवतिकस्थानद्वयं त्यक्त्वा आद्यानि सत्त्वस्थानानि
पञ्च ६२।६०।८८।८९।९० असंज्ञिजीवे भवन्ति । नोभययोः संन्यसज्जिव्यपदेशरहितयोः सयोगायोगयो-
रुदया उपरिष्ठाञ्चत्वारः । सत्त्वस्थानानि चरमाणि पट् भणितानि ॥४६९॥

नैवसज्जि-नैवासंज्ञिषु उदयाः ४—३०।३१।६।८। सत्तास्थानानि ६—८०।७६।७८।७९।१०।६।

इति सज्जिमार्गणा समाप्ता ।

उन्हीं असंज्ञियोमे तेरानवै और इक्यानवैको छोड़कर आदिके पाँच सत्तास्थान होते हैं ।
नोभय अर्थात् नैव संज्ञी नैव असंज्ञी ऐसे केवलियोंके ऊपरके चार उदयस्थान और ऊपरके ही
छह सत्तास्थान कहे गये हैं ॥४६९॥

असंज्ञियोमे ६२, ६०, ८८, ८९, ९० ये पाँच सत्तास्थान होते हैं । नो संज्ञी नो असंज्ञी
जीवोंमें ३०, ३१, ६, ८ ये चार उदयस्थान और ८०, ७६, ७८, ७९, १०, ६ ये छह सत्तास्थान
होते हैं ।

सन्वे बंधाहारे सन्वे संता य दो उवरि मुच्चा ।

इगिवीसं दो उवरिं मुत्तुं उदया हवन्ति सन्वे वि ॥४७०॥

आहारे बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१ । उदया ८—२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।
३१ । संता ११—६३।६२।६१।६०।८८।८९।९०।७६।७८।७९ ।

आहारकमार्गणायां वन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१। एकविंशतिक-
मुपरिमस्थानद्वयं च मुक्त्वा उदयस्थानान्यष्टौ २४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ उपरिमसत्त्वस्थानद्वयं
मुक्त्वाऽन्यसत्त्वस्थानान्येकादश ६३।६२।६१।६०।८८।८९।९०।७६।७८।७९ । आहारकजीवेषु
भवन्ति ॥४७०॥

आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंके सभी वन्धस्थान, तथा उपरिम दोको छोड़कर
शेष सभी सत्तास्थान होते हैं । इसी प्रकार इक्कीस और उपरिम दोको छोड़कर शेष सर्व ही उदय-
स्थान होते हैं ॥४७०॥

आहारकोमें २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ६१, १ ये आठ बन्धस्थान, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ उदयस्थान, और ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६, ८५, ८४ ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं ।

छव्वंधा तीसंता इयरे संता य होंति सव्वे वि ।

इगिवीसं चउ उवरिं पंचेवुदया जिणेहिं णिदिट्ठा ॥४७१॥

अनाहारे घधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ५—२१।३०।३१।६०। सत्ता १३—६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७६।७५।७४।७३।७२।७१।६०।

इतरेऽन्यस्मिन् अनाहारके त्रयोविंशतिकादि त्रिंशत्कान्तानि बन्धस्थानि षट् २३।२५।२६।२८।२९।३०। सत्त्वस्थानानि सर्वाणि त्रयोदश ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७६।७५।७४।७३।७२।७१।६०। उदयस्थानानि एकविंशतिक उपरितनचतुष्कं चेति पञ्च २१।३०।३१।६०। अनाहारकर्जावेपु भवन्ति । तत्रानाहारके अयोगिनि उदयस्थाने नवकाष्टके द्वे स्तः । सत्त्व दशक-नवके द्वे विद्येते । एव नामकर्मप्रकृति-बन्धोदयसत्त्व-त्रिसयोगो मार्गणासु जिनैर्निर्दिष्टे कथितः ॥४७१॥

इतर अर्थात् अनाहारक जीवोंके तीस तक के छह बन्धस्थान और सर्व ही सत्तास्थान होते हैं । तथा उन्हींसे डक्कीस और चार उपरिम ये पाँच ही उदयस्थान जिनेन्द्रोने कहे हैं ॥४७१॥

अनाहारकोके २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान; २१, ३०, ३१, ६, ८ ये पाँच उदयस्थान और ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६, ८५, ८४, ८३, ८२, ८१, ८०, ७६, ७५, ७४, ७३, ७२, ७१, ६० ये तेरह सत्तास्थान होते हैं ।

अथ चतुर्दशमार्गणासु नामकर्मप्रकृतिबन्धोदयसत्त्वत्रिसयोगरचना गोस्मट्टसारोक्ताऽत्र रच्यते—

१ गतिमार्गणायाम्—

१ नरकगतौ—	ब०	२	२६, ३०
	उ०	५	२१, २५, २७, २८, २९,
	स०	३	६२, ६१, ६०,
२ तिर्यग्गतौ—	ब०	६	२३, २४, २६, २८, २९, ३० ।
	उ०	६	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८७, ८६ ।
३ मनुष्यगतौ	ब०	८	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ।
	उ०	११	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ६, ८ ।
	स०	१२	६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६, ८५, ८४, ८३, ८२, ८१, ८०, ७६, ७५, ७४, ७३, ७२, ७१, ६०, ९ ।
४ देवगतौ—	ब०	४	२५, २६, २९, ३० ।
	उ०	५	२१, २५, २७, २८, २९ ।
	स०	४	६३, ६२, ६१, ६० ।

२ इन्द्रियमार्गणायाम्—

१ एकेन्द्रिये—	ब०	५	२३, २५, २६, २९, ३० ।
	उ०	५	२१, २४, २५, २६, २७ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८७, ८६ ।

इगिवीसं छन्वीसं अडवीसुणतीस तीस इगितीसा ।

उदया असण्णिजीवे वंधा तीसंतिया छच्च ॥४६८॥

असण्णीसु वंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३० । उदया ६—२१।२६।२८।२९।३०।३१।

अमज्झिमार्गणायां वन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि पट् २३।२५।२६।२८।२९।३०।
उदयस्थानान्येकविंशतिकपट्विंशतिकाष्टाविंशतिकैकोनत्रिंशत्कत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि पट् २१।२६।२८।२९।३०।
३१ ॥४६८॥

असंज्ञी जीवोंमें इक्कीस, छन्वीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस प्रकृतिक छह उदय-
स्थान और तीस तकके प्रारम्भिक छह वन्धस्थान होते हैं ॥४६८॥

असंज्ञियोंमें २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह वन्धस्थान; तथा २१, २६, २८, २९, ३०
और ये छह उदयस्थान होते हैं ।

पंचाङ्गला संता तम्मि य चत्ता ति-इक्कणउदीओ ।

उदया चउ उवरिल्ला छोवरि संता य णोभए भणिया ॥४६९॥

संता ५—६२।६०।८८।८९।९० । णेवसण्णी-णेवअसण्णीसु उदया ४—३०।३१।६।८। संता ६—
८०।७६।७८।७९।१०।११ ।

सत्त्वस्थानानि—तत्र सत्त्वस्थानमध्ये त्रिनवतिकैकनवतिकस्थानद्वयं त्यक्त्वा आद्यानि सत्त्वस्थानानि
पञ्च ६२।६०।८८।८९।९० असंज्ञीजीवे भवन्ति । नोभययोः मंज्यसंज्ञिव्यपदेशरहितयोः सयोगायोगयो-
रुदया उपरिष्ठाश्चत्वारः । सत्त्वस्थानानि चरमाणि पट् भणितानि ॥४६९॥

नैवसज्जि-नैवासंज्ञिषु उदयाः ४—३०।३१।६।८। सत्तास्थानानि ६—८०।७६।७८।७९।१०।११ ।

इति सज्जिमार्गणा समाप्ता ।

उन्हीं असंज्ञियोंमें तेरानवै और इक्यानवैको छोड़कर आदिके पाँच सत्तास्थान होते हैं ।
नोभय अर्थात् नैव संज्ञी नैव असंज्ञी ऐसे केवलियोंके ऊपरके चार उदयस्थान और ऊपरके ही
छह सत्तास्थान कहे गये हैं ॥४६९॥

असंज्ञियोंमें ६२, ६०, ८८, ८९, ९० ये पाँच सत्तास्थान होते हैं । नो संज्ञी नो असंज्ञी
जीवोंमें ३०, ३१, ६, ८ ये चार उदयस्थान और ८०, ७६, ७८, ७९, १०, ११ ये छह सत्तास्थान
होते हैं ।

सन्वे वंधाहारे सन्वे संता य दो उवरि मुच्चा ।

इगिवीसं दो उवरिं मुत्तुं उदया हवन्ति सन्वे वि ॥४७०॥

आहारे वंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२ । उदया ८—२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।
३१ । संता ११—६३।६२।६१।६०।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१०० ।

आहारकमार्गणायां वन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२। एकविंशतिक-
सुपरिमस्थानद्वयं च मुक्त्वा उदयस्थानान्यष्टौ २४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। उपरिमसत्त्वस्थानद्वयं
मुक्त्वा अन्यसत्त्वस्थानान्येकादश ६३।६२।६१।६०।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९। आहारकजीवेषु
भवन्ति ॥४७०॥

आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंके सभी वन्धस्थान, तथा उपरिम दोको छोड़कर
शेष सभी सत्तास्थान होते हैं । इसी प्रकार इक्कीस और उपरिम दोको छोड़कर शेष सर्व ही उदय-
स्थान होते हैं ॥४७०॥

आहारकोमे २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ६१, १ ये आठ बन्धस्थान, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ उदयस्थान, और ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६, ८५, ८४ ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं ।

छव्यंधा तीसंता इयरे संता य होंति सव्वे वि ।

इगिवीसं चउ उवरिं पंचेवुदया जिणेहिं णिदिट्ठा ॥४७१॥

अनाहारे वंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ५—२१।३०।३१।६।८। सता १३—६३।
६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।१०।११।

इतरंऽन्यन्मिन् अनाहारके त्रयोविंशतिकानि त्रिंशत्कान्तानि बन्धस्थानि पट् २३।२५।२६।२८।२९।
३०। सत्त्वस्थानानि सर्वाणि त्रयोदश ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।१०।११। उदयस्थानानि
एकविंशतिकं उपरितनचतुष्क चेति पञ्च २१।३०।३१।६।८। अनाहारकर्जावेपु भवन्ति । तत्रानाहारके अयो-
गिनि उदयस्थाने नवकाष्टे द्वे स्तः । सत्त्व दशक-नवके द्वे विद्येते । एव नामकर्मप्रकृति-बन्धोदयसत्त्व-
त्रिसंयोगो मार्गणासु जिनैर्निर्दिष्टः कथितः ॥४७१॥

इतर अर्थात् अनाहारक जीवोंके तीस तक के छह बन्धस्थान और सर्व ही सत्तास्थान होते हैं । तथा उन्हींसे डक्कीस और चार उपरिम ये पोंच ही उदयस्थान जिनेन्द्रोने कहे हैं ॥४७१॥

अनाहारकोंके २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान; २१, ३०, ३१, ६, ८ ये पोंच उदयस्थान और ६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६, ८५, ८४, १०, ११ ये तेरह सत्तास्थान होते हैं ।

अथ चतुर्दशमार्गणासु नामकर्मप्रकृतिबन्धोदयसत्त्वत्रिसंयोगरचना गोस्मट्टसारोक्ताऽत्र रच्यते—

१ गतिमार्गणायाम्—

१ नरकगती—	वं०	२	२६, ३०
	उ०	५	२१, २५, २७, २८, २९,
	स०	३	६२, ६१, ६०,
२ तिर्यग्गती—	वं०	६	२३, २४, २६, २८, २९, ३० ।
	उ०	६	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८७, ८६ ।
३ मनुष्यगती	वं०	८	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ।
	उ०	११	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ६, ८ ।
	स०	१०	६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८७, ८६, ८५, ८४, १०, ११ ।
४ देवगती—	वं०	४	२५, २६, २९, ३० ।
	उ०	५	२१, २५, २७, २८, २९ ।
	स०	४	६३, ६२, ६१, ६० ।

२ इन्द्रियमार्गणायाम्—

१ एकेन्द्रिये—	वं०	५	२३, २५, २६, २९, ३० ।
	उ०	५	२१, २४, २५, २६, २७ ।
	स०	५	६३, ६०, ८८, ८७, ८६ ।

	वं०	५	२३, २५, २६, २६, ३० ।
२ विकलत्रये—	उ०	६	२१, २६, २८, २६, ३०, ३१ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८४, ८२ ।
	वं०	८	२२, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ ।
३ सकलेन्द्रिये—	उ०	११	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१, ६, ८ ।
	स०	१३	६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७, १०, ६ ।

३ कायमार्गणायाम्—

	वं०	५	२३, २५, २६, २६, ३० ।
१ पृथ्वीकायिके—	उ०	५	२१, २४, २५, २६, २७ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८४, ८२ ।
	वं०	५	२३, २५, २६, २६, ३० ।
२ अणकायिके—	उ०	५	२१, २४, २५, २६, २७ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८४, ८२ ।
	वं०	५	२३, २५, २६, २६, ३० ।
३ तेजस्कायिके—	उ०	४	२१, २४, २५, २६ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८४, ८२ ।
	वं०	५	२३, २५, २६, २६, ३० ।
४ वातकायिके—	उ०	४	२१, २४, २५, २६ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८४, ८२ ।
	वं०	५	२३, २५, २६, २६, ३० ।
५ वनस्पतिकायिके—	उ०	५	२१, २४, २५, २६, २७ ।
	स०	५	६२, ६०, ८८, ८४, ८२ ।

४ योगमार्गणायाम्—

	वं०	८	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ ।
मनोयोगे—	उ०	३	२६, ३०, ३१ ।
	स०	१०	६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७ ।
	वं०	८	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ ।
वचनयोगे—	उ०	३	२६, ३०, ३१ ।
	स०	१०	६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७ ।
	वं०	८	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ ।
३ भौदारिककाययोगे—	उ०	७	२५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ ।
	स०	११	६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७ ।
	वं०	६	२३, २५, २६, २८, २६, ३० ।
४ भौदारिकमिश्रकाययोगे—	उ०	२	२४, २६ ।
	स०	११	६३, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७ ।
	वं०	५	२५, २६, २८, २६, ३० ।
५ वैक्रियिककाययोगे—	उ०	३	२७, २८, २६ ।
	स०	४	६३, ६२, ६१, ६० ।

सप्ततिका

६ वैक्यिकमिश्रकाययोगे—	वं०	२	२९,३० ।
	उ०	१	२५ ।
	स०	४	६३,६२,६१,९० ।

७ आहारककाययोगे—	वं०	२	२८,२६ ।
	उ०	३	२७,२८,२६ ।
	स०	४	६३,६२,६१,६० ।

८ आहारकमिश्रकाययोगे—	वं०	२	२८,२६ ।
	उ०	१	२५ ।
	स०	४	६३,६२,६१,६० ।

९ कर्मणकाययोगे—	वं०	६	२३,२५,२६,२८,२६,३० ।
	उ०	१	२१ ।
	स०	११	६३,६२,६१,६०,८८,८४,८२,८०,७६,७८,७७ ।

५ वेदमार्गणायाम्—

वेदत्रये—	वं०	८	२३,२५,२६,२८,२६,३०,३१,१ ।
	उ०	८	२१,२५,२६,२७,२८,२६,३०,३१ ।
	स०	११	६३,६२,६१,६०,८८,८४,८२,८०,७६,७८,७७ ।

६ कपायमार्गणायाम्—

कपायचतुष्टके—	वं०	८	२३,२५,२६,२८,२६,३०,३१,१ ।
	उ०	६	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२६,३०,३१ ।
	स०	११	६३,६२,६१,६०,८८,८४,८२,८०,७६,७८,७७ ।

७ ज्ञानमार्गणायाम्—

१ मति-श्रुताज्ञानयो—	वं०	६	२३,२५,२६,२८,२६,३० ।
	उ०	६	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२६,३०,३१ ।
	स०	६	६२,६१,६०,८८,८४,८२ ।

२ विभक्तज्ञाने—	वं०	६	२३,२५,२६,२८,२६,३० ।
	उ०	३	२८,३०,३१ ।
	स०	६	६२,६१,६०,८८,८४,८२ ।

३ मति श्रुतावधिषु—	वं०	५	२८,२६,३०,३१,१ ।
	उ०	८	२१,२५,२६,२७,२८,२६,३०,३१ ।
	स०	८	६३,६२,६१,६०,८०,७६,७८,७७ ।

४ मन पर्ययज्ञाने—	वं०	५	२८,२६,३०,३१,१ ।
	उ०	१	३० ।
	स०	८	६३,६२,६१,६०,८०,७६,७८,७७ ।

५ केवलज्ञाने—	वं०	०	
	उ०	३	३०,३१,६,८ ।
	स०	६	८०,७६,७८,७७,१०,६ ।

८ संयममार्गणायाम्—

	ब०	५	२८, २६, ३०, ३१, १ ।
१ सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः—	उ०	५	२५, २७, २८, २६, ३० ।
	स०	८	६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८, ७७ ।
	ब०	४	२८, २६, ३०, ३१ ।
२ परिहारविशुद्धे—	उ०	१	३० ।
	स०	४	६३, ६२, ६१, ६० ।
	ब०	१	१ ।
३ सूक्ष्मसाम्पराये—	उ०	१	३० ।
	स०	८	६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७९, ७८, ७७ ।
	ब०	०	
४ यथाख्यातसंयमे—	उ०	४	३०, ३१, ६, ८ ।
	स०	१०	६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८, ७७, १०, ६ ।
	ब०	२	२८, २६ ।
५ देशसंयते—	उ०	२	३०, ३१ ।
	स०	४	६३, ६२, ६१, ६० ।
	ब०	६	२३, २५, २६, २८, २६, ३० ।
असंयमे—	उ०	६	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ ।
	स०	७	६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ८४, ८२ ।

९ दर्शनमार्गणायाम्—

१ चक्षुर्दर्शने—	ब०	८	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ ।
	उ०	८	२१, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ ।
	स०	११	६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७ ।
२ अचक्षुर्दर्शने—	ब०	८	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ ।
	उ०	६	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ ।
	स०	११	६३, ९२, ६१, ६०, ८०, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७ ।
३ अवधिदर्शने—	ब०	५	२८, २६, ३०, ३१, १ ।
	उ०	८	२१, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ ।
	स०	८	६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८, ७७ ।
४ केवलदर्शने—	ब०	०	
	उ०	४	३०, ३१, ६, ८ ।
	स०	६	८०, ७६, ७८, ७७, १०, ६ ।

१० लेश्यामार्गणायाम्—

	ब०	६	२३, २५, २६, २८, २६, ३० ।
१ कृष्ण-नील-कापोतलेश्यासु—	उ०	६	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ ।
	स०	७	६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ८४, ८२ ।
	ब०	४	२८, २६, ३०, ३१ ।
२ तेजःपद्मलेश्ययोः—	उ०	७	२१, २५, २७, २८, २६, ३०, ३१ ।
	स०	४	६३, ६२, ६१, ६० ।

	बं०	६	२३, २५, २६, २८, २९, ३० ।
२ असंज्ञिनि—	उ०	६	२१, २६, २८, २९, ३०, ३१ ।
	स०	५	२२, २०, २८, २४, २२ ।

	बं०	०	
३ नैवसंज्ञिनि नैवासंज्ञिनि—	उ०	४	३०, ३१, २६, २८ ।
	स०	६	२०, २६, २८, २४, २०, २६ ।

१४ आहारमार्गणायाम्—

	बं०	८	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ।
१ आहारके—	उ०	८	२४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ।
	स०	११	२३, २२, २१, २०, २८, २४, २२, २०, २६, २८, २७ ।
	बं०	६	२३, २५, २६, २८, २९, ३० ।
२ अनाहारके—	उ०	५	२१, २०, २१, २६, २८ ।
	स०	१३	२३, २२, २१, २०, २८, २४, २२, २०, २६, २८, २७, २०, २६ ।

इस प्रकार चौदह मार्गणाओमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्तास्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूल सप्ततिकाकार प्रकृत विषयका उपसंहार करते हुए और भी विशेष जाननेके लिए कुछ आवश्यक निर्देश करते हैं—

[मूलगा० ४८]^१ इय कम्मपयडिठाणाणि सुट्ठु बंधुदय-संतकम्माणं ।

गदिआदिएसु अट्ठहिं चउप्पयारेण णेयाणि^२ ॥४७२॥

बन्धोदय उदीरणासत्ताणि [अट्ठहिं] अणुजोगदारेहिं ।

इत्यमुना प्रकारेण कर्मणां प्रकृतिबन्धोदयसत्त्वस्थानानि सप्तु अतिशयेन गत्यादिमार्गणासु गुणस्थानेषु जीवसमासादिषु च ज्ञेयानि ज्ञातव्यानि । कैः कृत्वा ? अष्टभिरनुयोगद्वारैः सूत्रोक्तसत्त्वस्थान-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावात्पबहुत्वैरथोत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्य-ध्रुवाध्रुव-साद्यनाद्यैर्ज्ञातव्यानि चतुःप्रकारेण बन्धोदयोदीरणासत्त्वप्रकारेण ज्ञेयानि ॥४७२॥

तथा च—

सर्वासु मार्गणास्वेवं सत्संख्याद्यष्टकेऽपि च ।

बन्धादित्रितयं नाम्नो योजनीयं यथागमम्^३ ॥२८॥

इति नामबन्धोदयसत्त्वस्थानानि मार्गणासु समाप्तानि ।

इस प्रकार कर्म-प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्तासम्बन्धी स्थानोंको अति सावधानीके साथ गति आदि मार्गणाओंकी अपेक्षा आठ अनुयोग-द्वारोंमें चार प्रकारसे लगाकर जानना चाहिए ॥४७२॥

विशेषार्थ—मूल सप्ततिकाकारने यहाँ तक कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्तास्थानोंका सामान्य रूपसे, तथा जीवस्थान, गुणस्थान और मार्गणाओंके द्वारा निर्देश किया । अब वे प्रस्तुत प्रकरणका उपसंहार करते हुए यही कथन विशेष रूपसे जाननेके लिए

१. स० पञ्चस० ५, ४४१ ।

१. सप्ततिका० ५३ ।

२. स० पञ्चस० ५, ४४१ ।

सूचित कर रहे हैं कि उक्त बन्धादि स्थानोंका गति आदि चौदह मार्गणाओंका आश्रय लेकर सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोग द्वारासे भी जानना चाहिए। प्राकृत पंचसंग्रहके संस्कृत टीकाकारने 'अथवा' कहकर उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इन आठके द्वारा भी जाननेकी सूचना की है, क्योंकि गाथामें 'अदृष्टि' ऐसा सामान्य पद ही प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'चलपयारेण' भी सामान्य पद है, सो उसका दिगम्यर टीकाकारने तो बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता इन चार प्रकारोंसे जाननेकी सूचना की है। किन्तु चूर्णिकारने प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चार प्रकारों से जाननेकी सूचना की है। श्वे० संस्कृत टीकाकारोंने भी यही अर्थ किया है।

अब मूल सप्ततिकाकार उदयसे उदीरणाकी विशेषता बतलाते हैं—

[मूलगा० ४६] 'उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्झदि विसेसो ।

मोत्तूण य इगिदालं सेसाणं सव्वपयडोणं' ॥४७३॥

विद्यानन्दीश्वरं देवं मल्लिभूपगसद्गुरुम् ।

लक्ष्मीचन्द्रं च वीरेन्दुं वन्दे श्रीजानभूषणम् ॥

एकचत्वारिंशप्रकृतीर्मुक्त्वा शेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां उदयस्योदीरणायाश्च स्वामित्वादिशेषो न विद्यते । एकचत्वारिंशप्रकृतीनां ४१ विशेषो वर्तते ॥४७३॥

तथा चोक्तम्—

न चत्वारिंशतं सैकं परित्यज्यान्यकर्मणाम् ।

विपाकोदीरणयोगस्ति विशेषः स्वाम्यतः स्फुटम् ॥२६॥

मिश्रसासादनापूर्वशान्तायोगान् विमुच्य सा ।

योजनीया गुणस्थाने विभागेन विचक्षणैः ॥३०॥

वक्ष्यमाण इकतालीस प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सर्व प्रकृतियोंके उदय और उदीरणामें स्वामित्वकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है ॥४७३॥

विशेषार्थ—यथाकालमें प्राप्त कर्म परमाणुओंके अनुभवन करनेका नाम उदय है और अकाल-प्राप्त अर्थात् उद्यावलीसे बाहर स्थित कर्म-परमाणुओंका सकपाय या अकपाय योगकी परिणति-विशेषसे अपकर्षणकर उद्यावलीमें लाकर-उदय-प्राप्त कर्म-परमाणुओंके साथ अनुभव करनेका नाम उदीरणा है। इस प्रकार फलानुभवकी दृष्टिसे स्वामित्वकी अपेक्षा उदय और उदीरणामें कोई विशेषता नहीं है। इन दोनोंमें यदि कोई विशेषता है, तो केवल काल-प्राप्त और अकाल प्राप्त परमाणुओंकी है। उदयमें काल प्राप्त कार्य परमाणुओंका और उदीरणामें अकाल-प्राप्त परमाणुओंका वेदन या अनुभवन किया जाता है। ऐसी व्यवस्था होनेपर भी सामान्य नियम यह है कि जहाँ पर जिस कर्मका उदय होता है, वहाँ पर उस कर्मकी उदीरणा अवश्य होती है। किन्तु इसके कुछ अपवाद हैं। पहला अपवाद यह है कि जिन प्रकृतियोंकी स्वोदयसे सत्ता-व्युच्छिन्ति होती है, उनकी उदीरणा-व्युच्छिन्ति एक आवली काल पहले हो जाती है और उदय-व्युच्छिन्ति एक आवलीके पश्चात् होती है दूसरा अपवाद यह है कि वेदनीय और मनुष्यायुकी उदीरणा प्रमत्तविरत गुणस्थान-पर्यन्त ही होती है। जब कि इनका उदय चौदहवें

१. न० पञ्चसं० ५, ४४२ ।

१ सप्ततिका० ५४ ।

२. न० पञ्चसं० ५, ४४२ ।

गुणस्थान तक होता है। तीसरा अपवाद यह है कि जिन प्रकृतियोंका उदय चौदहवें गुणस्थानमें होता है। उनकी उदीरणा तेरहवें गुणस्थान तक ही होती है। चौथा अपवाद यह है कि चारों आयुर्कर्मोंका अपने-अपने भवकी अन्तिम आवलीमें उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। पाँचवाँ अपवाद यह है कि पाँचों निद्राकर्मोंका शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् इन्द्रियपर्याप्तिके पूर्ण होने तक उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। छठा अपवाद यह है कि अन्तरकरण करनेके पश्चात् प्रथम स्थितिमें एक आवली शेष रहनेपर मिथ्यात्वका, क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवालेके सम्यक्त्वप्रकृतिका और उपशमश्रेणीमें जो जिस वेदसे उपशमश्रेणीपर चढ़ा है, उसके उस वेदका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं। सातवाँ अपवाद यह है कि उपशमश्रेणीके सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें भी एक आवली कालके शेष रहनेपर सूक्ष्मलोभका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं। इन सातों अपवादवाली कुल प्रकृतियों यतः 'इकतालीस ही होती है, अतः गाथा-सूत्रकारने इकतालीस प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सर्व अर्थात् एक सौ सात प्रकृतियोंकी उदय और उदीरणामें स्वामित्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं बतलाया है।

अब मूल ग्रन्थकार उन इकतालीस प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[मूलगा० ५०] गाणंतरायदसयं दंसण णव वेयणीय मिच्छत्तं ।

सम्मत्त लोभवेदाउगाणि णव णाम उच्चं च॥४७४॥

एकचत्वारिंशत्प्रकृतयो गुणस्थानं प्रति दीयन्ते—[गाणंतरायदसयं' इत्यादि । ज्ञानावरणपञ्चक ५ अन्तरायपञ्चक ५ दर्शनावरणनवकं ६ सातासातवेदनीयद्वय २ मिथ्यात्वं १ सम्यक्त्वं १ लोभः १ वेदत्रयं ३ आयुष्कचतुष्क ४ नव नामप्रकृतयः १ उच्चैर्गोत्रं १ चेति प्रकृतय एकचत्वारिंशत् ४१॥४७४॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी नौ, वेदनीयकी दो, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय, संज्वलन, लोभ, तीन वेद, चार आयु, नामकर्मकी नौ और उच्चगोत्र; इन इकतालीस प्रकृतियोंके उदय और उदीरणामें स्वामित्वकी अपेक्षा विशेषता बतलाई गई है ॥४७४॥

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दर्शनावरण, इन चौदह प्रकृतियोंकी बारहवें गुणस्थानमें एक आवली काल शेष रहने तक उदय और उदीरणा बराबर होती रहती है। किन्तु तदनन्तर उनका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। शरीरपर्याप्तिके सम्पन्न होनेके पश्चात् इन्द्रियपर्याप्तिके सम्पन्न नहीं होने तक मध्यवर्ती कालमें निद्रा आदि पाँच दर्शनावरण प्रकृतियोंका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। इसके सिवाय शेष समयमें उदय और उदीरणा एक साथ होती है। साता और असाता वेदनीयकी उदय और उदीरणा छट्ठे गुणस्थान तक एक साथ होती है; किन्तु उपरिम गुणस्थानोंमें इन दोनोंका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं। प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके अन्तरकरण करनेके पश्चात् प्रथम स्थिति में एक आवली कालके शेष रहनेपर मिथ्यात्वका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। क्षायिकसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जिस वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय होनेपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी सर्व-अपवर्तनाकरणके द्वारा अपवर्तनासे अन्तर्मुहूर्त्तप्रमित स्थिति शेष रह जाती है, तदनन्तर उदय और उदीरणाके द्वारा क्रमशः क्षीण होती हुई वह स्थिति जब आवलीमात्र शेष रह जाती है, तब उस समयसे लेकर सम्यक्त्वप्रकृति का उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। अथवा उपशमश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके अन्तरकरण करनेपर प्रथमस्थितिमें आवलीकालके शेष रह जानेपर उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती।

संवलन लोभकी सर्व प्राणियोंके उदय और उदीरणा सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके कालमें एक आवली शेष रहने तक होती रहती है। तदनन्तर आवलीमात्र कालमें उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। तीनों वेदोमेसे जिस वेदके उदयसे जीव श्रेणीपर चढ़ता है उसके अन्तर-करण करनेपर प्रथमस्थितिमें एक आवलीकालके शेष रह जानेके पश्चात् उस वेदका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं। चारों ही आयुक्रमोंका अपने-अपने भवकी अन्तिम आवलीके शेष रह जानेपर उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। किन्तु मनुष्यायुमें इतना विशेष ज्ञातव्य है कि छठे गुणस्थान तक उसके उदय और उदीरणा दोनों होते हैं, किन्तु उससे ऊपरके सर्व अप्रमत्त जीवोंके उसका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। नामकर्मकी वक्ष्यमाण नौ प्रकृतियोंका और उच्चगोत्रका तेरहवें गुणस्थान तक उदय और उदीरणा दोनों होते हैं। किन्तु चौदहवें गुणस्थानमें उनका केवल उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। इन इक्कीस-प्रकृतियोंके सिवाय शेष सर्व प्रकृतियोंके उदय और उदीरणामें स्वामित्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

अब भाष्यगाथाकार उपर्युक्त गाथासूत्रसे सूचित नामकर्मकी नौ प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं

मणुयगई पंचिदिय तस वायरणाम सुहयमादिजं ।

पञ्जत्तं जसकित्ती तित्थयरं णाम णव होंति ॥४७५॥

1

मिथ्या०	नरकायु देवायु	ति०आ० स०	प्र० सम्य०	वेदः लोभ	ज्ञा०५ द०४ नाम० अंत०५ मनु० नि०प्र०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०	१ २ १ ६ १ ३ १ १६ १०				

सच्चे मेलिया ४१ ।

नाम्नो नव का इति चेदाह—[‘मणुयगई पंचिदिय’ इत्यादि ।] मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ व्रतसव १ वादरनाम १ सुमगं १ प्रादेयं १ पर्याप्त १ यशस्कोर्त्तिनाम १ तीर्थङ्करत्व चेति नाम्नो नव प्रकृतयो भवन्ति ६ । एतासा ४१ प्रकृतीनामुदीरणाऽपक्वपाचना सासादन-मिश्रापूर्वकरणोपशान्तकपायायोगिकेवल्लिगुणस्थानेषु न भवति, अन्यगुणस्थानेषु एतासामुदीरणा भवति ॥४७५॥

गुणस्थानेषु उदीरणाप्रकृतयः

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
उदी० सं०	१	०	०	२	१	६	१	०	३	१	०	१६	१०	०

ज्ञा० ५

उदी० प्र० मिथ्या० ० ० नर० देवा० तिर्य० सातादि० सम्य० ० वेदाः स० लो० ० अ० ५ मनु० ० द० ६

तथाहि मिथ्यात्वप्रकृतेर्मिथ्यादष्टौ उपशमसम्यक्त्वामिमुखस्य समयाधिकावलिपर्यन्तमुदीरणाकरणं स्यात् १ । तावत्पर्यन्तमेव तदुदयात् । सासादने मिश्रे च शून्यम् ० । असंयते देव-नरकायुपोरुदीरणा २ । देशसंयते तिर्यगायुष उदीरणा १ । प्रमत्ते सातासाते २ मनुष्यायुः १ स्थानगृद्धित्रय ३ मिति पणामुदीरणा ६ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतेरुदीरणा १ । अपूर्वकरणे शून्यमुदीरणा नास्ति ० । अनिवृत्तिकरणे वेदानां त्रयाणा-

1. ५, ४४३-४४७ । तथा तदधस्तनसख्याङ्कपक्तिश्च (पृ० २२०) ।

मुदीरणा ३। सूक्ष्मसाम्प्रदाये संज्वलनसूक्ष्मलोभस्योदीरणा १, अन्यत्र तदुदयाभावात्। उपशान्ते
शून्यम्०। क्षीणकषाये ज्ञानावरणान्तरायदृशकं १० निद्रा-प्रचलाद्विकं २ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण-
चतुष्क ४ मिति षोडशानामुदीरणा १६। सयोगे मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रस १ वादरं १ सुभगं १
आदेयं १ पर्याप्तं १ यशः १ तीर्थकरत्वं १ उच्चैर्गोत्रं १ मिति दशानां १० प्रकृतीनामुदीरणा भवति।
अयोगे शून्य० मुदीरणा नास्ति। सर्वा मीलिताः ४१। तथा चोक्तम्-

मिथ्यात्वं तत्र दुर्दृष्टौ तुर्ये श्वभ्र-सुरायुषी।

तैरश्रं जीवितं देशे पडेताः सप्रमादके ॥३१॥

सातासातमनुष्यायुः स्त्यानगृद्धित्रयाभिधाः।

सम्यक्त्वं सप्तमे वेदत्रितयं त्वनिवृत्तिके ॥३२॥

लोभः संज्वलनः सूक्ष्मे क्षीणाख्ये दृक्चतुष्टयम्।

दश ज्ञानान्तरायस्था निद्राप्रचलयोर्द्वयम् ॥३३॥

त्रसपञ्चाक्षपर्याप्तवादरोच्चनृरीतयः^१।

तीर्थकृत्सुभगादेययशांसि दश योगिनि^२ ॥३४॥

१।०।०।२।१।६।१।०।३।१।०।१।६।१।०।मीलिताः ४१। इति विशेषः।

मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति और तीर्थकर
ये नौ नामकर्मकी प्रकृतियों हैं ॥४७५॥

विशेषार्थ—ऊपर उदय और उदीरणाकी अपेक्षा जिन इकतालीस प्रकृतियोंका स्वामित्व-
भेद बतलाया गया है, उनके विषयमें यह विशेष ज्ञातव्य है कि सासादन, मिश्र, अपूर्वकरण,
उपशान्तमोह और अयोगिकेवली, इन पाँच गुणस्थानोंमें किसी भी प्रकृतिकी उदीरणा नहीं होती
है। अन्य गुणस्थानोंमें भी सबमें सभीकी उदीरणा नहीं होती है, किन्तु मिथ्यात्वकी पहले
गुणस्थानमें ही उदीरणा होती है, अन्यमें नहीं। नरकायु और देवायु, इन दो कर्मोंकी उदीरणा
चौथे गुणस्थानमें ही सम्भव है, अन्यत्र नहीं। तिर्यगायुकी उदीरणा पाँचवें गुणस्थानमें होती
है, अन्यत्र नहीं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यायु, निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला और
स्त्यानगृद्धि; इन छह प्रकृतियोंकी उदीरणा छठे गुणस्थानमें ही संभव है, अन्यत्र नहीं। सातवें
गुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदीरणा होती है। तीनों वेदोंकी उदीरणा नवें गुणस्थानमें होती
है। संज्वलनलोभकी उदीरणा दशवें गुणस्थानमें होती है अन्यत्र नहीं। पाँच ज्ञानावरण, पाँच
अन्तराय, चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा और
प्रचला, इन सोलह प्रकृतियोंकी उदीरणा बारहवें गुणस्थानमें होती हैं। मनुष्यगति पंचेन्द्रियजाति,
त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थकर और उच्चगोत्र, इन दश प्रकृतियोंकी
उदीरणा तेरहवें गुणस्थानमें होती है। इस कथनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी हुई है।

अब मूलसप्ततिकाकार गुणस्थानोंका आश्रय लेकर कर्मप्रकृतियोंके बन्धका निरूपण
करते हैं—

[मूलगा० ५१]^१ तित्थयराहारविरहियाउ अजेदि सच्चपयडीओ।

मिच्छत्तवेदओ सासणो य उगुवीस सेसाओ^२ ॥४७६॥

१. ५, ४४८-४४९।

२. टीकाप्रती 'नृगतयः' इति पाठः। २. सं० पञ्चसं० ५, ४४४-४४७।

३. सप्ततिका० ५६।

[मूलगा० ५२]^१ छियालसेसमिस्सो अविरयसम्मो तिदालपरिसेसा ।

तेवण देसविरदो विरदो सगवण सेसाओ^१ ॥४७७॥

अथ गुणस्थानेषु कर्मणां प्रकृतिव्युच्छेद-बन्धाबन्धभेदाः कथ्यन्ते—['तित्थयराहार' इत्यादि ।] तीर्थङ्कराहारकद्वयरहिताः सर्वाः सप्तदशोत्तरशतप्रकृती ११७ मिथ्यात्ववेदको मिथ्यादृष्टिरर्जयति बध्नातीत्यर्थः । सासादनो जीव एकोनविंशति विना शेषा एकाधिकशतप्रकृतीर्बध्नाति १०१ । मिश्रगुणस्थानवर्ती षट्चत्वारिंशत्प्रकृतिभिर्विना शेषाश्चतुःसप्ततिं प्रकृतीर्बध्नाति ७४ । अविरतसम्यग्दृष्टिस्त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतिभिर्न्यूना शेषाः सप्तसप्ततिं प्रकृतीर्बध्नाति ७७ । देशविरतस्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतिविरहिताः शेषाः सप्तपष्टिं प्रकृतीर्बध्नाति ६७ । विरतः प्रमत्तो मुनिः सप्तपञ्चाशत्प्रकृतिभिर्विना त्रिपष्टिं प्रकृतीर्बध्नाति ६३ ॥४७६-४७७॥

मिथ्यात्वका वेदन करनेवाला अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थङ्करप्रकृति और आहारकद्विक; इन तीन प्रकृतियोंके विना शेष सर्व प्रकृतियोंका उपार्जन अर्थात् बन्ध करता है । सासादनसम्यग्दृष्टि उन्तीसके विना शेष सर्व प्रकृतियोंका बन्ध करता है । मिश्रगुणस्थानवर्ती छियालीसके विना, अविरतसम्यग्दृष्टि तेतालीसके विना, देशविरत तिरेपनके विना और प्रमत्तविरत सत्तावन-के विना शेष सर्व प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥४७६-४७७॥

विशेषार्थ—प्रस्तुत ग्रन्थके दूसरे और तीसरे प्रकरणमे यह बतलाया जा चुका है कि आठो कर्मोंकी जो १४८ उत्तरप्रकृतियों हैं, उनमेसे बन्धयोग्य केवल १२० ही होती हैं । इसका कारण यह है कि नामकर्मकी प्रकृतियोंमे जो पाँच बन्धन और पाँच सघात बतलाये गये हैं, उनका बन्ध शरीरनामकर्मके बन्धका अविनाभावी है । अर्थात् जहाँ जिस शरीरका बन्ध होता है, वहाँ उस बन्धन और संघातका अवश्य बन्ध होता है । अतः बन्धप्रकृतियोंमे पाँच बन्धन और पाँच सघातका ग्रहण नहीं किया जाता है । इसी प्रकार वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नामकर्मके अवान्तर भेद यद्यपि २० होते हैं, किन्तु एक समयमे किसी एक रूप, रस, गन्ध और स्पर्शका ही बन्ध संभव होनेसे वर्णादिक चार सामान्य प्रकृतियों ही बन्धयोग्य मानी गई हैं । इस प्रकार वर्णादिककी सोलह और बन्धन-संघातसम्बन्धी दश प्रकृतियोंको एक सौ अड़तालीसमेंसे घटा देनेपर १२२ प्रकृतियों रह जाती हैं । तथा सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति भी बन्धयोग्य नहीं मानी गई है, क्योंकि करण-परिणामोके द्वारा मिथ्यात्वदर्शनमोहनीयके तीन भाग करने पर ही उनकी उत्पत्ति होती है । अतएव इन दो के भी घट जानेसे शेष १२० प्रकृतियों ही बन्ध योग्य रह जाती है । उनमेसे आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध मिथ्यात्वमे संभव न होनेसे शेष ११७ का बन्ध बतलाया गया है । मिथ्यात्वगुणस्थानके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकद्विक, नरकायु, एकेन्द्रिय आदि चार जातियों, हुंङकसस्थान, सृपाटिका संहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त; इन सोलह प्रकृतियोंकी प्रथम बन्ध-व्युच्छिन्ति हो जानेसे सासादनमे बन्धयोग्य १०१ रह जाती हैं । दूसरे गुणस्थानमे अनन्तानुबन्धिचतुष्क, स्त्यानगृद्धित्रिक, स्त्रीवेद, तिर्यग्विक, तिर्यगायु, मध्यम चार संस्थान, चार सहनन; उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र इन पच्चीस प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छिन्ति हो जानेसे ७६ प्रकृतियों शेष रहती हैं, किन्तु मिश्र गुणस्थानमे किसी भी आयुकर्मका बन्ध नहीं होता है, अतएव मनुष्यायु और देवायु ये दो प्रकृतियों और भी घट जाती हैं । इस प्रकार (१६ + २५ + २ = ४३) छियालीसके विना शेष ७४ प्रकृतियोंका सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव बन्धक माना गया है । अविरत सम्यग्दृष्टिके तेतालीस

१. स० पञ्चस० ५, ४५० ।

१. सप्ततिका० ५७ ।

(४७) के विना शेष सतहत्तर (७७) का बन्ध होता है। इसका कारण यह है कि इस गुणस्थानमें मनुष्यायु और देवायुका बन्ध होने लगता है, तथा तीर्थकर प्रकृतिका भी बन्ध सम्भव है। अतएव तीसरे गुणस्थानमें नहीं बँधनेवाली ४६ मेंसे तीनके और निकल जानेसे ४३ के विना शेष ७७ का चौथेमें बन्ध माना गया है। देशविरतमें ५३ के विना शेष ६७ का बन्ध कहा है। इसका कारण यह है कि चौथे गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे जिन दश प्रकृतियोंका बन्ध होता था, उनका बन्ध पाँचवें गुणस्थानमें नहीं होता है। वे दश प्रकृतियों ये हैं—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, मनुष्यद्विक, मनुष्यायु, औदारिकद्विक और वज्रवृषभनाराचसंहनन। अतएव चौथेमें बन्धके अयोग्य ४३ में १० और मिला देनेपर ५३ हो जाती हैं। बन्धयोग्य १२० मेंसे ५३ के घटा देनेपर शेष ६७ प्रकृतियोंका देशविरत बन्धक कहा गया है। प्रमत्तविरतके ५७ के विना शेष ६३का बन्ध होता है। इसका कारण यह है कि यहाँपर प्रत्याख्यानावरण कषाय-चतुष्कका भी बन्ध नहीं होता। अतः ६७ मेंसे ४ के घटा देनेपर ६३ बन्ध-योग्य; तथा ५३ में ४ बढ़ा देनेपर ५७ अबन्ध-योग्य प्रकृतियों छठे गुणस्थानमें बतलाई गई हैं।

अब भाष्यगाथाकार उपर्युक्त अर्थका स्वयं ही निर्देश करते हैं—

सत्तरसधियसदं खलु मिच्छादिद्वौ दु बंधओ भणिओ ।

एगुत्तरसयपयडी सासणसम्मा दु बंधंति ॥४७८॥

1	१६	२५
तिथ्यराहारदुगूणा मिच्छे—	११७	सासणे १०१
	३	१६
	३१	४७

सप्तदशाधिशतप्रकृतीनां बन्धको मिथ्यादृष्टिर्भणितः ११७ । एकोत्तरशतप्रकृतीः सासादनरुचयो १०१ [बध्नन्ति] ॥४७८॥

व्यु० १६	व्यु० २५
तीर्थङ्कराहारकद्वयहीना मिथ्यादृष्टौ ब० ११७	सासादने ब० १०१ ।
अ० ३	अ० १६
३१	४७

मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे सत्तरह अधिक सौ अर्थात् एक सौ सत्तरह प्रकृतियोंका बन्धक कहा गया है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक अधिक सौ अर्थात् एक सौ एक प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥४७८॥

बन्धके अयोग्य तीर्थकर और आहारकद्विक इन तीनके विना मिथ्यात्वमें बन्ध-योग्य ११७ सासादनमें बन्ध-अयोग्य १६ के विना बन्ध-योग्य १०१ प्रकृतियों होती हैं। इनकी अंकसंहति मूलमें दी है।

चउहत्तरि सत्तरि मिस्सो य असंजदो तहा चेव ।

सत्तद्धि देसविरदो तेसद्धिं बंधगो पमत्तो दु ॥४७९॥

०	१०	४	६
मणुय-देवाड विणा मिस्से	७४	तिथ्यर-मणुय-देवाऊहि सह अविरदे	७७
	४६	देसे	६३
	७४	४३	५३
		७१	८१
			८५

मनुष्य-देवायुग्यन्ध विना मिश्रे व ० ७४ । तीर्थङ्कर-मनुष्य-देवायुक्कैः सह अविरते व ० ७७ ।
 अ० ४३
 ७४
 अ० ४३
 ७५

व्यु० ६
प्रमत्ते व० ६३।
अ० ५७
द५

[मूलगा० ५३]^१ उगुसद्धिमप्पमत्तो बंधइ देवाउगं च इयरो वि ।
अट्ठावण्णमपुव्वो छप्पण्णं चावि छव्वीसं ॥४८०॥

अपुन्वे सत्तभाएसु-

२	०	०	०	०	३०	४
५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८
८२	८४	८४	८४	८४	८४	८४
८०	८२	८२	८२	८२	८२	८२

आहारकद्विकचन्धेन सह अप्रमत्तगुणस्थाने—
 व्यु० १
 ब० ५६।
 अ० ६१
 ८६

अपूर्वकरणस्य सप्तभागेषु—

१. सप्ततिका० ५८ ।

विशेषार्थ—छठे गुणस्थानमें ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता था, किन्तु सातवें गुणस्थानमें असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशस्कीर्ति, इन छह प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है और आहारकद्विकका बन्ध होने लगता है, इसलिए ६३ मेंसे ६ घटानेपर ५७ प्रकृतियों रह जाती हैं किन्तु उनमें आहारकद्विक मिला देनेपर ५६ प्रकृतियों बन्ध योग्य हो जाती हैं। इन ५६ प्रकृतियोंमें यद्यपि देवायु सम्मिलित है, फिर भी गाथा सूत्रकारने 'अप्रमत्तसंयत देवायुको भी बाँधता है' ऐसा जो वाक्य-निर्देश किया है, उसका अभिप्राय चूर्णीकारने यह बतलाया है कि देवायुके बन्धका प्रारम्भ प्रमत्तसंयत ही करता है, किन्तु उसका बन्ध करते हुए यदि वह ऊपरके गुणस्थानमें चढ़े तो, अप्रमत्तसंयतके भी देवायुका बन्ध होता रहता है। इसका अर्थ यह निकला कि सातवे गुणस्थानमें देवायुके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता है, हाँ, यदि कोई प्रमत्तसंयत उसका बन्ध करता हुआ अप्रमत्तसंयत होवे, तो उसके बंध अवश्य संभव है। सातवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें देवायुके बन्धकी व्युच्छिन्ति हो जाती है, अतः आठवें गुणस्थानके पहले संख्या-तवे भागमें अपूर्वकरणसंयत ५८ प्रकृतियोंका बन्ध करता है। तदनन्तर निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छिन्ति हो जानेपर संख्यातवे भागके शेष रहने तक वह ५६ प्रकृतियोंका बन्ध करता है। तदनन्तर देवगति, देवगत्यानुपूर्वी पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीरद्विक, आहारक-द्विक, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपवात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थकर, इन तीस प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छिन्ति हो जाने पर अन्तिम भागमें वह अपूर्वकरणसंयत २६ प्रकृतियोंका बन्ध करता है। अपूर्वकरणके सातों भागोंमें बन्ध, अबन्ध आदि प्रकृतियोंकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

[मूलगा० ५४] 'वावीसा एगूणं बंधइ अट्टारसं च अणियट्ठी ।

सतरस सुहुमसराओ सायममोहो सजोई' दु ॥४८१॥

१ अणियट्ठीए पंचसु भाएसु

सुहमादिसु य—

१	१	१	१	१	१६	०	०	१	०
२२	२१	२०	१६	१८	१७	१	१	१	०
६८	६६	१००	१०१	१०२	१०३	११६	११६	११६	१२०
१२६	१२७	१२८	१२६	१३०	१३१	१४७	१४७	१४७	१४८

अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे द्वाविंशति २२ द्वितीये भागे एकविंशति २१ तृतीये भागे विंशति २० चतुर्थे भागे एकोनविंशति १९ पञ्चमे भागे अष्टादशप्रकृतीर्बध्नाति १८ । सूक्ष्मसात्परायः सप्तदश प्रकृतीर्बध्नाति १७ । अमोह इति उपशान्त-क्षीणकपाय-सयोगिनां एकस्य साताकर्मणो बन्धो भवति । एते उपशान्त-क्षीण-सयोगिनः एक सात बध्नन्तीत्यर्थः । अयोगी अबन्धको भवेत् ॥४८१॥

	व्यु०	१	१	१	१	१
अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेषु	ब०	२२	२१	२०	१६	१८
	अ०	६८	६६	१००	१०१	१०२
		१२६	१२७	१२८	१२६	१३०

१. स० पञ्चस० ५, ४५२ । २ , 'अनिवृत्तौ पञ्चसु भागेषु' इत्यादि (पृ० २२१) ।

१. सप्ततिका० ५६ ।

सूक्ष्मसाम्परायादिपु—	व्यु०	१६	०	०	१	०
	व०	१७	१	१	१	०
	अ०	१०३	११३	११३	११९	१२०
		१३१	१४७	१४७	१४७	१४८

अनिवृत्तिकरणसंयत वाईसका और उसमेंसे एक एक कम करते हुए इक्कीस, बीस, उन्नीस और अट्ठास प्रकृतियोंका बन्ध करता है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध करता है। तथा मोहरहित ग्यारहवें-चारहवें गुणस्थानवर्ती जीव और सयोगिकेवली जिन एक साता-वेदनीयका बन्ध करते हैं ॥४८१॥

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें वाईस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। पुनः प्रथम भागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे द्वितीय भागमें इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। पुनः दूसरे भागके अन्तिम समयमें संज्वलन क्रोधकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर तृतीय भागमें बीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। तृतीय भागके अन्तिम समयमें संज्वलनमानकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाने पर चतुर्थ भागमें उन्नीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। चौथे भागके अन्तिम समयमें संज्वलन मायाकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर पंचम भागमें अठारह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। षोडश भागके अन्तिम समयमें संज्वलन लोभकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है और वह जीव दशवें गुणस्थानमें पहुँचकर सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध करने लगता है। इस गुणस्थानके अन्तमें षोडश ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, षोडश अन्तराय, यशःकीर्ति और स्वर्गोन्नति, इन सोलह प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, अतएव ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमें एक मात्र सातावेदनीयका बन्ध होता है। तेरहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें सातावेदनीय प्रकृतिकी भी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिए अयोगिकेवली-के किसी भी प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है। अनिवृत्तिकरणके षोडश भागोंमें और सूक्ष्मसाम्पराय आदि शेष गुणस्थानोंमें बन्ध-अबन्ध आदिकी अकसदृष्टि मूलमें दी है।

अब मूल सप्ततिकाकार प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए इसी स्वामित्वको मार्ग-णाओंमें भी जाननेके लिए संकेत करते हैं—

[मूलगा० ५५] एसो दु बंधसाभित्तोघो गदिआदिएसु बोहव्वो ।

ओघाओ साहेजो जत्थ जहा पयडिसंभवो होइ ॥४८२॥

एषः प्रत्यक्षीभूतो बन्धस्वामित्वगुणस्थानकयुक्तः गतोन्द्रियकाययोगादिषु मार्गणासु ज्ञातव्यो भवति । यत्र गत्यादिमार्गणासु यथासम्भव प्रकृतिसम्भवो भवति, तथा तत्र गुणस्थानेभ्यः सकाशात् साधितव्यो भवति ॥४८२॥

यह ओघ-प्ररूपित अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षासे कहा गया बन्धस्वामित्व गति आदि मार्गणाओंमें भी जहाँ जितनी प्रकृतियाँ संभव हो वहाँपर ओघके समान सिद्ध कर लेना चाहिए ॥४८२॥

विशेषार्थ—मूल ग्रन्थकारने गुणस्थानोंमें कर्म-प्रकृतियोंके बन्ध और अबन्धका कथन कर दिया है, अब वे कर्म प्रकृतियोंके बन्ध-स्वामित्वको और भी विशेष रूपसे जाननेके लिए अपने

१ स० पञ्चसं० ५, ४५३ ।

१ सप्ततिका० ६० ।

शिष्योंको यह संकेत कर रहे हैं कि इसी प्रकार चौदह मार्गणाओंकी अपेक्षासे भी जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध सम्भव हो, उसे आगमके अनुसार जान लेना चाहिए। सो इसके विशेष परि-
ज्ञानके लिए गो० कर्मकाण्डका बन्धाधिकार देखना आवश्यक है विस्तारके भयसे भाष्यगाथाकार-
ने उसका विवेचन नहीं किया है।

अब मूल सप्ततिकाकार किस गतिमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है, यह बतलाते हैं—

[मूलगा० ५६]^१तिथयर देव-णिरयाउगं च तीसु वि गदीसु वोहव्वं ।

अवसेसा पयडीओ हवन्ति सव्वासु वि गदीसु ॥४८३॥

अथ प्रकृतिसत्त्वपरिभाषामाह—['तिथयर-देव-णिरयाउग' इत्यादि ।] तीर्थङ्करप्रकृतिसत्त्वं तिर्य-
ग्गतिं विना नरक-मनुष्य-देवगतिषु तिसृषु भवति ज्ञातव्यम् । देवायुःसत्त्वं च द्वयोस्तिर्यग्मनुष्यगत्योः स्यात् ।
अवशेषाः १४५ प्रकृतयः सर्वापि गतिषु सत्त्वरूपा भवन्ति ॥४८३॥

तीर्थंकर नामकर्म, देवायु और नरकायु; इन तीन प्रकृतियोंका सत्त्व तीन तीन ही गतियोंमें जानना चाहिए। इसके सिवाय शेष सर्व प्रकृतियों सर्व गतियोंमें पाई जाती हैं ॥४८३॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त गाथासूत्रके अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

^२देवेसु य णिरयाउ देवाऊ णत्थि चेव णिरएसु ।

तिथयरं तिरएसु य सेसाओ होंति चउसु वि गदीसु ॥४८४॥

देवगतौ भुज्यमानदेवायुः बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुपी चेति सत्त्वत्रयम्, नरकगतौ भुज्यमाननरकायुः
बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुपी चेति सत्त्वत्रयम्, देवायुःसत्त्व नास्ति । तिर्यग्गतौ तिर्यग्जीवे तीर्थङ्कवसत्त्वं न
स्यात् । शेष १४५ प्रकृतिसत्त्वानि चतुर्गतिषु भवन्ति ॥४८४॥

देवोंमें नरकायु और नारकियोंमें देवायु नहीं पाई जाती है। इसी प्रकार तिर्यचोंमें तीर्थ-
ंकर प्रकृति नहीं पाई जाती है। शेष सर्व प्रकृतियों चारों ही गतियोंमें पाई जाती हैं ॥४८४॥

विशेषार्थ—देव मरकर नरकगतिमें उत्पन्न नहीं हो सकता और नारकी मरकर देवगतिमें
उत्पन्न नहीं हो सकता, ऐसा नियम है। अतः देवोंके नरकायुका और नारकियोंके देवायुका बन्ध
नहीं होता। और इसी कारण देवायुका सत्त्व नरकगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंमें, तथा
नरकायुका सत्त्व देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंमें पाया जाता है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध
करनेवाले मनुष्यके देवायु या नरकायुका बन्ध सम्भव है। पर उसके तिर्यगायुका बन्ध कदाचित्
भी सम्भव नहीं है क्योंकि तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तावाला जीव तिर्यचोंमें उत्पन्न नहीं होता है,
ऐसा नियम है। अतएव तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व तिर्यग्गतिको छोड़कर शेष तीन ही गतियोंमें
पाया जाता है।

अब मूलग्रन्थकार मोहकर्मके उपशमन करनेका विधान करते हैं—

[मूलगा० ५७]^३पढमकसायचउकं दंसणतिय सत्तया दु उवसंता ।

अविरयसम्मत्तादी जाव णियट्ठि ति णायव्वा^२ ॥४८५॥

१. सं० पञ्चसं० ५, ४५४ । २. ५, ४५५ । ३. ५, ४५६ ।

१. सप्ततिका० ६१ । २. सप्ततिका० ६२ ।

अथ गुणस्थानेषु मोहोपशमविधानं गाथाचतुष्केनाह—['पदमकसायचउक्क' इत्यादि ।] प्रथम-
कपायचतुष्क अनन्तानुबन्धिक्रोध मान-माया-लोभाश्चत्वारः कपाया. ४ मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्व-
प्रकृतयः इति दर्शनत्रिक ३ एतासा सप्ताना प्रकृतीना ७ उपशमेन युक्ता जीवा असयतसम्यग्दृष्ट्यादि-निवृत्ति-
करणपर्यन्ता ज्ञातव्या भवन्ति ॥४८५॥

प्रथम कपाय-चतुष्क और दर्शनत्रिक; ये सातों ही प्रकृतियों अविरतसम्यक्त्व गुण-
स्थानसे लेकर निवृत्ति अर्थात् अपूर्वकरण गुणस्थान तक उपशान्त हो जाती हैं, ऐसा जानना
चाहिए ॥४८५॥

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मके दो भेद हैं, दर्शनमोह और चारित्रमोह । दर्शन मोहकी तीन
और चारित्रमोहकी पच्चीस प्रकृतियों होती हैं । उनमेसे दर्शन मोहकी तीन और चारित्रमोहकी
अनन्तानुबन्धि-चतुष्क, इन सात प्रकृतियोंका चौथे गुणस्थानसे लेकर आठवे गुणस्थान तक नियम-
से उपशम हो जाता है ।

अब भाष्यगाथाकार चारित्रमोहकी शेष प्रकृतियोंके उपशमनका विधान करते हैं—

[मूलगा०५८] 'सत्तट्ट णव य पण्णरस सोलस अट्ठरस वीस वावीसा ।

चउवीसं पणवीसं छुव्वीसं वायरे जाणे ॥४८६॥

अणियट्ठियम्मि ७।८।९।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२५।२६।

यादरे अनिवृत्तिकरणे सप्तप्रकृत्युपशमकोऽनिवृत्तिगुणस्थानवर्ती ७ संख्याततमे भागे नपु सकवेदमुप-
शमयति, तेन सहाष्टकम् ८ । ततः स्त्रीवेदमुपशमयते, तेन सह नवकम् ९ । ततः पण्णोक्कपायानुपशम-
यति, तैः सह पञ्चदशकम् १० । ततः पुवेदमुपशमयति । तेन सह षोडश १६ । तदनन्तर अप्रत्याख्यान-
प्रत्याख्यान-क्रोधद्वयमुपशमयति । ताभ्या सहष्टादश १८ । तदनन्तर सज्ज्वलनक्रोधमुपशमयति । तेन सह
एकोनविंशति १९ । तदनन्तर अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमानद्वयमुपशमयति । ताभ्या सहैकविंशति २१ ।
तदनन्तर सज्ज्वलनमानमुपशमयति । तेन सह द्वाविंशति २२ । तदनन्तर अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमायाद्वय-
मुपशमयति । ताभ्या सह चतुर्विंशति २४ । तदनन्तर सज्ज्वलनमायामुपशमयति । तथा सह पञ्चविंशतिः
२५ । तदनन्तर अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानलोभद्वयमुपशमयति । ताभ्या सह सप्तविंशति २७ । तदनन्तर
यादरलोभमुपशमयति । तेन महाष्टाविंशति २८ । सूचमसाम्पराये उपशान्तकपाये च सज्ज्वलनसूचमलोभ
मुपशमयति । ७ । प० १ स्त्री १।६ । पु० १ । क्रो २ । क्रो १ । मा २ । मा १ । मा २ । मा १ । लो
२ । लो १ । इदमुपशमविधान गोम्मट्टसारे प्रोक्तमस्ति । पञ्चसग्रहोक्तभावोऽयं कथ्यते—अनिवृत्तिकरण-
संख्यातभागेषु सप्तप्रकृतीनामुपशमक । ७ । पण्ठेन सह ८ । स्त्रीवेदेन सह ९ । हास्यादिभिः पट्भिः
सह १५ । पुवेदेन सह १६ । मध्यकपायक्रोधद्वयेन सह १८ । मध्यकपायमानद्वयेन सह २० । मध्य
कपाय-मायाद्वयेन सह २२ । मध्यकपायलोभद्वयेन सह २४ । सज्ज्वलनक्रोधेन सह २५ । सज्ज्वलनमानेन
सह २६ । क्षीणकपाये [सूचमसाम्पराये] सज्ज्वलनमायया सह २७ । उपशान्ते सज्ज्वलनलोभेन सह २८
इति पञ्चसग्रहोक्तोपशमविधानम् ॥४८६॥

वादर अर्थात् अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे क्रमशः सात, आठ, नौ, पन्द्रह, सोलह,
अट्ठारह, बीस, बाईस, चौबीस, पच्चीस और छुव्वीस प्रकृतियोंका उपशमन जानना
चाहिए ॥४८६॥

1. स० पञ्चम० ५, ४६० ।

१. इन गाथाओंके स्थान पर श्वे० सप्ततिकामें कोई गाथा नहीं है ।

छव्व अणियट्ठियम्मि ।

अनिवृत्तिकरणमें उपशम होनेवाली प्रकृतियोंका क्रम इस प्रकार है—७, ८, ९, १५, १६, १८, २०, २२, २४, २५, २६ ।

अब आचार्य उपर्युक्त क्रमसे उपशान्त होनेवाली प्रकृतियोंका नामनिर्देश करते हैं—

^१अण मिच्छ मिस्स सम्मं संढित्थी हस्सञ्जक पुंवेदो ।

वि ति कोहाई दो दो कमसो संता य संजलणा ॥४८७॥

७।१।१।६।१।२।२।२।२।१।१।१।१। एए मेलिया २८ ।

अनन्तानुबन्धि चतुष्कं ४ मिथ्यात्वं १ मिश्रं १ सम्यक्त्वप्रकृतिः १ एवं सप्तप्रकृत्युपशमकः असंयता-
धनिवृत्तिकरणान्तो भवति । सप्तप्रकृत्युपशमकोऽनिवृत्तिकरणः ७ स्वसंख्यातबहुभागेषु पण्डवेदमुपशमयति
१ । तदनन्तरं स्त्रीवेदमुपशमयति १ । तदनन्तरं हास्यादिषट्कमुपशमयति ६ । तदनन्तरं
पुंवेदमुपशमयति १ । ततः द्वि-त्रिकपाय-क्रोधादिकौ द्वौ द्वौ उपशमयति । अप्रत्याख्यान-
प्रत्याख्यानक्रोधद्वयमुपशमयति २ । तदनन्तरं अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमानद्वयमुपशमयति २ । तदनन्तरं
तन्मायाद्वयमुपशमयति २ । तदनन्तरं तल्लोभद्वयमुपशमयति २ । तदनन्तरं संज्वलनक्रोधमुपशमयति
१ । तदनन्तरं संज्वलनमानमुपशमयति १ । एवमनिवृत्तिकरणो मोहप्रकृतीनां षड्विंशतेरुपशमको भवति
२६ । सूक्ष्मसाम्परायः संज्वलमायामुपशमयति १ । तदनन्तरं उपशान्तकः संज्वलनलोभमुप-
शमयति १ ॥४८७॥

७।१।१।६।१।२।२।२।२।१।१।१।१। एताः सर्वाः मिलिताः २८ ।

अनिवृत्तिकरण बादरसाम्परायगुणस्थानके संख्यात भागों तक तो अनन्तानुबन्धिचतुष्क,
मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति; इन सातका उपशम रहता है । तदनन्तर
नपुंसकवेदका उपशम करता है, तदनन्तर स्त्रीवेदका उपशम करता है । तदनन्तर हास्यषट्क
(हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा) का उपशम करता है । तदनन्तर पुरुषवेदका
उपशम करता है । तदनन्तर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, इन प्रकृतियों
का उपशम करता है । तदनन्तर दोनो मध्यम मानकषायोंका उपशम करता है । तदनन्तर दोनों
मध्यम-मायाकषायोंका उपशम करता है । तदनन्तर दोनों मध्यम लोभकषायोंका उपशम
करता है । तदनन्तर संज्वलन क्रोधका उपशम करता है । तदनन्तर संज्वलन मानका उपशम
करता है । तदनन्तर संज्वलन मायाका उपशम करता है । तदनन्तर संज्वलन बादरलोभका
उपशम करता हुआ दशवे गुणस्थानमें प्रवेश करता है । पुनः दशवें गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्म
लोभका भी उपशम करके ग्यारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करता है । इस प्रकार सातसे लेकर छब्बीस
प्रकृतियोंका उपशम अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होता है ॥४८७॥

[मूलगा० ५६]^२सत्तावीसं सुहुमे अट्ठावीसं च मोहपयडीओ ।

उवसंतवीयराए† उवसंता होंति णायव्वा† ॥४८८॥

सुहुमे २७ । उवसते २८ ।

सूक्ष्मसाम्पराये सप्तविंशतिमोहप्रकृत्युपशमको मुनिः सूक्ष्मसाम्परायस्थो भवति २७ । अष्टाविंशति-
मोहप्रकृत्युपशमक उपशान्तकपायो भवति । इत्येवमुपशान्तपर्यन्तं मोहप्रकृत्युपशमको भवति ज्ञातव्यः ।
मोहनीयस्थोपशमो भवति । अन्यकर्मणामुपशमविधानं नास्तीति । एतत्सर्वमोहोपशमविधानं पञ्च-
संग्रहोक्तमस्ति ।

१. सं० पञ्चस० ५, ४५७ । २. ५, ४६१ ।

१. इन दोनो गाथाओंके स्थानपर श्वे० सप्ततिकामें कोई गाथा नहीं है ।

†व ओ ।

कति वारान् उपशमश्रेणि जीवः समारोहति ? तदाह—

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो ।

वत्तीसं वाराहं संयममुवलहिय णिन्वादि^१ ॥३५॥

उपशमश्रेणिमुत्कृष्टेन चतुर्वारानेवारोहति । अपितकर्मांशो जीवः उपरि नियमेन चपकश्रेणिमेवारोहति सयममुत्कृष्टेन द्वात्रिंशद्वारान् प्राप्य ततो नियमेन निर्वाति ।

सम्मत्तं देसजमं ऊणसंजोजणविहिं च उक्कसं ।

पल्लासंखेज्जदिमं वारं पडिवज्जदे जीवो^२ ॥३६॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे वेदकसम्यक्त्वं देशसयममनन्तानुबन्धविसंयोजनविधिं चोत्कृष्टेन पत्यासख्यातै-
कभागवारान् प्रतिपद्यते जीवः । उपरि नियमेन सिद्धयत्येव ॥३८८॥

दशर्वे सूक्ष्मसाम्परायमे मोहकी सत्ताईस प्रकृतियोका उपशम रहता है, तथा उपशान्त कपाय वीतरागद्वन्द्वस्थ नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें मोहकर्मकी अट्ठाईस ही प्रकृतियाँ उपशान्त रहती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३८८॥

बादर साम्परायमे उपशान्त प्रकृतियों इस प्रकार है—७, १, १, ६, १, २, २, २, २, १ १ । सूक्ष्मसाम्परायमे उपशान्तप्रकृतियों २७ और उपशान्तमोहमे २८ हैं ।

अब मूलसप्ततिकाकार सर्व कर्मोंके क्षपणका विधान करते हैं—

[मूलगा०६०]^१पढमकसायचउक्कं एत्तो मिञ्छत्त मिस्स सम्मत्तं ।

अविरदसम्मे देसे विरदपमत्ते य खीयंति^२ ॥३८९॥

[मूलगा०६१]^३अणियट्ठिवायरे थोणगिद्धितिग णिरय-तिरियणामाओ ।

संखेज्जदिमे सेसे तप्पओगा य खीयंति^४ ॥३९०॥

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशतकर्मप्रकृतिक्षपणविधिं गाथा-पञ्चदशकेन १५ निरूपयति—[‘पढम-
कसायचउक्क’ इत्यादि ।] अनन्तानुबन्धकपायचतुष्क ४ मिथ्यात्वप्रकृतिः १ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिः १
सम्यक्त्वप्रकृतिः १ एताः सप्त प्रकृतीः ७ असयतसम्यग्दष्टौ वा देशसंयते वा प्रमत्ते वा अप्रमत्ते वा क्षपयन्ति
क्षयं नयन्तीत्यर्थः । तथाहि—असयतादिषु चतुषु मध्ये एकतरः अनिवृत्तिकरणपरिणामकालान्तमुद्भूत-
चरमसमये अनन्तानुबन्धकपायचतुष्क युगपदेव विसंयोज्य द्वादशकपाय-नवनोकपायरूपेण परिणमय्य अन्त-
मुद्भूतकालं विम्रम्य पुनरप्यनन्तानुबन्धविसंयोजनवद्दर्शनमोहक्षपणोद्योगेऽपि स्वीकृतकरणलब्धयः प्रवृत्तापूर्वा-
निवृत्तिकरणेषु तदव्युत्पत्त्य (?) निवृत्तिकरणकालान्तमुद्भूतसख्यातबहुभागमतीत्येकभागे मिथ्यात्व ततः
सम्यग्मिथ्यात्वं ततः सम्यक्त्वप्रकृतिं च क्रमेण क्षपयति, चायिकसम्यग्दष्टिर्भवति, सप्तप्रकृतिक्षपको भवति ।
क्षपकश्रेणिचटनापेक्षया सप्तप्रकृतीनामसंयतादिचतुर्गुणस्थानेष्वेकत्र क्षपितत्वात् । नारक-तिर्यग् देवायुषां
चावद्यायुष्कवेनासत्त्वात् क्षपकश्रेण्यारुढानामपूर्वकरणेऽष्टत्रिंशदुत्तरशतप्रकृतिसत्त्वं स्यात् १३८ । अनिवृत्ति-
करणे सख्याततमे भागे एताः षोडश प्रकृतीः क्षपयन्ति क्षपकाः । ताः काः ? स्थानगृद्धिर्नय ३ नरकनाम
इति नरकगति-नरकगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ तिर्यङ्नाम इति तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयं २ तच्छेषभागेषु
तत्प्रायोग्याः प्रकृतीः क्षपयन्ति ॥३८९-३९०॥

१. स० पञ्चस० ५, ४६२ । २. ४६३-४६४ ।

१ सप्ततिका० ६३ तत्र चतुर्थक्षपणे ‘पमत्ति अपमत्ति’ । २ इसके स्थानपर भी श्वे० सप्ततिकां
कोई गाथा नहीं है ।

१. गो० क० ६१६ । २. गो० क० ६१८ ।

प्रथम अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्क, पुनः मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये सात प्रकृतियों अविरतसम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत इन चार गुणस्थानोंमें क्षयको प्राप्त होती हैं। अनिवृत्तिकरण कालके संख्यात बहुभागोंके व्यतीत हो जानेपर और संख्यातवे भागके शेष रह जानेपर स्त्यानगृद्धित्रिक, तथा नरकगति और तिर्यग्गति प्रायोग्य अर्थात् तत्सम्बन्धी तेरह, इस प्रकार सोलह प्रकृतियों क्षयको प्राप्त होती है ॥४८६-४९०॥

अब भाष्यगाथाकार नवें गुणस्थानमें क्षय होनेवाली उन सोलह प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

^१थीणतियं णिरयदुयं तिरियदुयं पढमजाइचदुं ।

साधारणं च सुहुमं आयावुज्जोव थावरयं ॥४९१॥

एत्थ णिरयणामाओ णिरयदुयं । तिरियदुगादि तिरियगइणामाओ । १६।

एकेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजातिचतुष्कं ४ साधारणं १ सूक्ष्मं १ आतपः १ उद्योतः १ स्थावरं १ चेति षोडश प्रकृतिः क्षपका. अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमभागे क्षयन्ति १६ ॥४९१॥

स्त्यानत्रिक अर्थात् स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा और प्रचला-प्रचला; नरकद्विक (नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी) तिर्यग्द्विक (तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वी) एकेन्द्रिय आदि चार जातियों, साधारण, सूक्ष्म, आतप, उद्योत और स्थावर इन सोलह प्रकृतियोंका नवें गुणस्थानमें क्षय होता है ॥४९१॥

यहाँ ऊपर मूलगाथामें नरकद्विकको नरकनाम और तिर्यग्द्विकको तिर्यग् नामसे कहा गया है ।

[मूलगा०६२]^२एत्तो हणदि कसायदुयं च पच्छा णउंसयं इत्थी ।

तो णोकसायछकं पुरिसवेदम्मि संखुहइ^१ ॥४९२॥

८।१।१।६।

[मूलगा०६३]^३पुरिसं कोहे कोहं माणे माणं च छुहइ मायाए ।

मायं च छुहइ लोहे लोहं सुहममिह तो हणइ^२ ॥४९३॥

१।१।१।१।१।

[मूलगा०६४]^४खीणकसायदुचरिमे णिदा पयला य हणइ छुदुमत्थो ।

णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिममिह^३ ॥४९४॥

२।१।४।

अत्रानिवृत्तिकरणे षोडशप्रकृतिक्षयानन्तरं अनिवृत्तिकरणः क्षपकः कपायाष्टक शेषैकभागे अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-कपायाष्टक क्षपयति क्षयं करोति हिनस्ति ८ । पश्चात् तदनन्तरं शेषैकभागे नपु सकवेद क्षपयति १ । ततः शेषैकभागे स्त्रीवेदं क्षपयति १ । ततो हास्यादिनोकपायपट्क हिनस्ति क्षपयति ६ । नोकपायपट्क हित्वा पुंवेदं 'संखुहइ' संस्पृशति क्षपयति १ । पु वेद हित्वा सज्जलनक्रोधे संस्पृशति, क्रोधं क्षपयतीत्यर्थः १ । क्रोधं हित्वा सज्जलनमाने संस्पृशति, सज्जलनमानं क्षपयतीत्यर्थः १ । ततो मान हित्वा क्षय कृत्वा मायायां स्पृशति, मायां क्षपयतीत्यर्थः । ततो मायां हित्वा क्षपयित्वा लोहे स्पृशति । अत्रानिवृत्ति

१. सं० पञ्चसं० ५, ४६५ । २. ५, ४६६ । ३. ५, ४६७ । ४. ५, ४६८ ।

१ श्वे० सप्ततिकामें यह गाथा नहीं है । २. सप्तिका० ६४ । ३. श्वे० सप्ततिकामें यह गाथा भी नहीं है ।

करणः क्षपकः वादरलोभ क्षपयति सूक्ष्मकृष्टीः करोति । ताः कृष्टयः सूक्ष्मसाम्पराये उदयन्तीति ज्ञातव्यम् । सूक्ष्मसाम्परायः सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मकृष्टिगतसूक्ष्मसञ्चलनलोभ क्षपयति १ । सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मसञ्चलनलोभो व्युच्छिन्नः । अनिवृत्तिकरणे मायापर्यन्तपट्टत्रिंशत्प्रकृतयः क्षय गता व्युच्छिन्ना भवन्ति ।

अनिवृत्तिकरणे षोडशाष्टकादिक्षपणाविधानरचनासंहतिः—

१६	८	१	१	६	१	१	१	१	१	१
प्र०	क०	न०	स्त्री०	नो०	पु०	क्रो०	मा०	मा०	वादरलो०	सू०लो०

क्षीणकपायस्य द्विचरमसमये उपान्त्यसमये छद्मस्थः क्षपकः निद्रा-प्रचले द्वे प्रकृती हन्ति दिनस्ति क्षपयति २ । अन्यसमये चरमे क्षणे ज्ञानावरणपञ्चक ५ अन्तरायपञ्चक ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण-चतुष्कं ४ इति चतुर्दश प्रकृतीः क्षीणरूपाय मुनिरन्त्यसमये क्षपयति १४ ॥४६२-४६४॥

तदनन्तरं वह अनिवृत्तिकरणसंयत आठ मध्यम कपायोंका क्षय करता है । तत्पश्चात् नपुंसकवेदका क्षय करता है । तदनन्तरं स्त्रीवेदका क्षय करता है । तदनन्तरं नोकषायपट्टकको पुरुषवेदमे संक्रान्त करता है । तदनन्तरं पुरुषवेदको संञ्चलनक्रोधमे संक्रान्त करता है । तदनन्तरं संञ्चलनक्रोधको संञ्चलनमानमे संक्रान्त करता है । तदनन्तरं संञ्चलनमानको संञ्चलन मायामे संक्रान्त करता है । तदनन्तरं संञ्चलनमायाको संञ्चलनलोभमे संक्रान्त करता है और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे संञ्चलनलोभका क्षय करता है । पुनः वारहवे गुणस्थानमें पहुँचकर वह क्षीणकपायवीतरागद्वयस्थ बन जाता है और अपने गुणस्थानके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचलाका क्षय करता है । पुनः चरम समयमें ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच और दर्शनावरणकी चार इन चौदह प्रकृतियोंका क्षय करता है ॥४६२-४६४॥

भाचार्य—क्षपक श्रेणीपर चढ़नेवाला जीव इस उपर्युक्त प्रकारसे कर्मप्रकृतियोंका क्षय करता हुआ दशवें गुणस्थानमे मोहका पूर्ण रूपसे क्षयकर तथा वारहवें गुणस्थानमें शेष तीन घातिया कर्मोंका भी क्षय करके सयोगिकेवली बन जाता है । सयोगिकेवली भगवान् किसी भी कर्मका क्षय नहीं करते हैं किन्तु प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करते हुए विहार करते रहते हैं । तदनन्तरं योग-निरोध करके अयोगी बन जाते हैं ।

[मूलगा० ६५] 'देवगइसहगयाओ दुचरिमभवसिद्धियम्हि खीयंति ।

सविवागेदरमणुयगइणाम णीचं पि एत्थेव' ॥४६५॥

द्विचरमभवसिद्धो अयोगिकेवल्लिनि द्विचरमसमये उपान्त्यसमये देवगति १ देवगत्या सह गता देव-गतिमन्वन्धिनी देवगत्यानुपूर्वी इत्यर्थः १ । इय प्रकृतिरेका क्षेत्रविपाका १ सविपाकेतरमनुष्यगतिनाम-जीवविपाकिन्यः पुद्गलविपाकिन्यश्च एकोनसप्ततिनामप्रकृतय ६६ नीचगोत्रं १ एव द्वासप्ततिं प्रकृती-रूपान्त्यसमयेऽयोगी क्षपयति ७२ ॥४६५॥

अयोगिकेवली चौदहवें गुणस्थानके द्विचरम भवसिद्धकालमे देवगति सहगत अर्थात् देव-गतिके साथ नियमसे बँधनेवाली दश प्रकृतियोंका, मनुष्यगति-सम्बन्धी जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंका, अयोगि अवस्थामें जिनका उदय नहीं आता है, ऐसी नामकर्मकी अविपाकी प्रकृतियोंका तथा नीचगोत्रका क्षय करते हैं ॥४६५॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

‘सरजुयलमपञ्जत्तदुब्भगणादेज्ज दो विहायगई ।

एयदरवेदणीयं उस्सासो अजस जीवपागाओ ॥४६६॥

११०।

ताः का इति चेदाह—[‘सरजुयलमपञ्जत्त’ इत्यादि ।] सुस्वर-दुःस्वर युग्मं २ अपर्याप्तं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्वयं २ सातासातयोर्मध्ये एकतरवेदनीयं १ श्वासोच्छ्वासं १ अयशस्कीर्तिनाम १ चेत्येता दश १० प्रकृतयः जीवविपाका जीवद्रव्ये उदय यान्तीति जीवविपाकिन्यः १० ॥४६६॥

स्वर-युगल (सुस्वर-दुस्वर), अपर्याप्त, दुर्भग, अनादेय, विहायोगतिद्विक, कोई एक वेदनीयकर्म, उच्छ्वास और अयशस्कीर्ति; ये दश जीवविपाकी प्रकृतियों चौदहवें गुणस्थानके उपान्त्य समयमे क्षयको प्राप्त होती हैं ॥४६६॥

अयोगीके द्विचरम समयमे क्षय होनेवाली जीवविपाकी प्रकृतियाँ १० हैं ।

^२पण्णरसं छ त्तिय छ पंच दोणि पंचय हवन्ति अट्टेव ।

देहादिय फासंता पुग्गलपागाउ सुहजुयलं ॥४६७॥

पत्तेयागुरुणिमिणं परघादुवघादथिरजुयलं ।

१५६।

देवगईए तासिं देव-दुगं णीचगोयं च ॥४६८॥

३। सन्वे वि मेलिया ७२।

^३बावत्तरि पयडीओ दुचरिमसमयम्मि खीणाओ ।

अंते तस्स दु बायर तस सुभगादेज्जपञ्जत्तं ॥४६९॥

अण्णयरवेयणीयं मणुयाऊ मणुयजुयल तित्थयरं ।

पंचिंदियजसमुच्चं सोऽजोगो वंदणिज्जो सो ॥५००॥

७२।१३।

देहादि-स्पर्शान्ताः पञ्च शरीराणि ५ पञ्च बन्धनानि ५ पञ्च संघाताः ५ इति पञ्चदश । पट् संहनन ६ आङ्गोपाङ्ग ३ पट् संस्थान ६ पञ्च वर्ण ५ द्विगन्ध २ पञ्चरसा ५ दृस्पर्शाः ८ इति शरीरादि-स्पर्शान्ताः पञ्चाशत् प्रकृतयः ५० । शुभाशुभयुग्मं २ प्रत्येक १ अगुरुलघुनाम १ निर्माणं १ परघातः १ स्थिरास्थिर-युग्म २ एवमेकोनपष्टिः प्रकृतयः ५६ पुद्गलविपाकिन्यः पुद्गले शरीरे उदयं यान्ति । दश जीवविपाकिन्यः १० । तासां मध्ये एकोनसप्ततेर्मध्ये देवगत्या देवद्विकं देवगतिः १ देवगत्यानुपूर्वी १ नीचगोत्रं १ चेति सर्वा मिलिताः द्वासप्तति प्रकृती ७२ रयोगिद्विचरमसमये क्षपयति । द्वासप्ततिः प्रकृतयः अयोगिद्विचरम-समये क्षय गताः ७२ । तदनन्तरं तस्य अयोगिनः अन्त्यसमये वादरनाम १ असं १ सुभगं १ आदेयं १ पर्याप्तं १ सातासातयोर्मध्ये एकतरवेदनीयं १ मनुष्यायुः १ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ तीर्थकरत्वं १ पंचेन्द्रिय १ यशस्कीर्तिनाम १ उच्चैर्गोत्रं १ एवं त्रयोदश प्रकृतियोंऽसौ अयोगिजिनो देवः अन्त्यसमये क्षपयति, स अयोगिजिनो वन्दनीयो भवति ॥४६७-५००॥

पाँच शरीर, पाँच बन्धन और पाँच संघात; ये पन्द्रह प्रकृतियों; छह संहनन, तीन अङ्गोपाङ्ग, छह संस्थान, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श; ये शरीरनाम कर्मसे

लेकर स्पर्श नाम कर्म तककी पचास प्रकृतियों; तथा शुभ-युगल, प्रत्येकशरीर, अगुरुलघु, निर्माण, परघात, उपघात और स्थिर-युगल; ये नौ, दोनों मिलाकर उनसठ पुद्गलविपाकी प्रकृतियों है। देवगतिके साथ नियमसे बंधनेवाली दश प्रकृतियों, देवगतिद्विक और नीच गोत्र इस प्रकार (१० + ५६ + २ + १ = ७२) ये वहत्तर प्रकृतियों अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें क्षय होती हैं। उन्हींके अन्तिम समयमें चादर, त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्त, कोई एक वेदनीयकर्म, मनुष्यायु, मनुष्यगति-युगल, तीर्थकर, पंचेन्द्रिय जाति, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, ये तेरह प्रकृतियों क्षयको प्राप्त होती हैं। इस प्रकार सर्व कर्म-प्रकृतियोंका क्षय करनेवाले वे अयोगिजिन हम आप सबके वन्दनीय हैं ॥४६७-५००॥

अयोगि जिनके द्विचरम समयमें ७२ और चरम समयमें १३ प्रकृतियोंका क्षय होता है।

१ सुर-गिरय-तिरियाऊहिं विणा मिच्छे १४५ तिथ्यराहारदुग्गुणा सासणे १४२ आहारदुगेण सह									
३ ६									
मिस्से १४४	तिथ्यरेण सह	अविरदे १४५	देसे १४५	पमत्ते १४५	अप्पमत्ते १४५	अपुब्बे १३८	अणियट्ठि-		
४		३	३	३	३	३	११		
१६	८	१	१	६	१	१	१	१	०
णवभाणसु १३८	१२२	१४४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३ सुहुमे	१०२ उवसते १४६ खीणदुच-
१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५	४६ २
२		१४	०		७२	१३	०		
रिमसमण १०१	(चरिमसमये ६६	सयोगे ८५	अयोगदुचरिमसमये ८५	चरिमसमये १३	सिद्धे ०				
४७	४६	६३	६३	६३	१३५	१४८			

मिथ्या०

देव नारक-तिरियायुर्मिर्विना मिथ्यादष्टौ सत्ता १४५ आहारकद्वय-तीर्थकरस्वैस्त्रिभिर्विना सासादने ३

सा०	मिश्र०	अवि०	देश०		
०	०	७	७	प्रमत्ते	
१४२	आहारकद्वयेन सह मिश्रे १४४	तीर्थकरेण सह असंयतसम्यग्दष्टौ १४५	देशसयते ३	१४५	प्रमत्ते ३
६					
प्रम०	अप्रमत्त०	अपू०	१६	८	१
७	अप्रमत्ते ७	अपूर्वकरणे ०	अनिवृत्तिकरणस्य नवसु भागेषु १३८	१२२	११४
१४५	३	१०	१०	२६	३४
३					
१	६	१	१	१	०
११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
३५	३६	४२	४३	४४	४५
द्विचरसमये १०१	क्षीणकपायचरमसमये ४७	१४	०	अयोगिकेवलिनि ८५	अयोगिद्विचरसमये ७२
		४६		६३	अन्त्यसमये ६३
१३	०				
१३ सिद्धे ०	१				
१३५	१४८				

1. सं० पञ्चसं० ५, 'रभ्रदेव' इत्यादिगद्याशः (पृ० २२४)।

मिथ्यात्व गुणस्थानसे ऊपर चढ़ते हुए जीवके किस गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका क्षय होता है कितनीका सत्त्व रहता है और कितनीका सत्त्व नहीं रहता है, यह स्पष्ट करनेके लिए भाष्यकारने जो अंक संहारियाँ दी हैं, उनका विवेचन किया जाता है। ऊपर चढ़कर कर्मक्षय करनेवाले जीवके मिथ्यात्व गुणस्थानमें देवायु, नरकायु औ तिर्यगायुकी सत्ता संभव नहीं है, अतः ३ का असत्त्व और १४५ का सत्त्व होता है। यहाँ पर सत्त्व-व्युच्छित्ति किसी प्रकृतिकी नहीं है। सासादनमें तीर्थंकरप्रकृति और आहारकद्विक, इन तीनका सत्त्व नहीं होता, अतः यहाँपर ६ का असत्त्व और १४२ का सत्त्व जानना चाहिए। यहाँपर भी किसी प्रकृतिकी सत्त्व-व्युच्छित्ति नहीं होती है। तीसरे मिश्र गुणस्थानमें आहारक द्विकका सत्त्व सम्भव है, अतः यहाँपर ४ का असत्त्व और १४४ का सत्त्व है। यहाँपर भी किसी प्रकृतिकी सत्त्व-व्युच्छित्ति नहीं होती है। अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें तीर्थंकर प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, अतः ३ का असत्त्व और १४५ का सत्त्व रहता है। इस गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धचतुष्क और दर्शनमोहत्रिक; इन सातकी सत्त्वव्युच्छित्ति जानना चाहिए। देशविरतमें भी असत्त्व ३ का सत्त्व १४५ का और सत्त्वव्युच्छित्ति ७ की है। प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें भी इसी प्रकार असत्त्व, सत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्ति जानना चाहिए। सातवे गुणस्थानके अन्तमें उक्त सातों प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति हो जानेसे और नरक आदि तीन आयुर्कर्मोंके सत्त्वमें न होनेसे असत्त्व प्रकृतियों १० और सत्त्व प्रकृतियों १३८ हैं। यहाँपर किसी भी प्रकृतिका क्षय नहीं होता, अतः सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं बतलाई गई है। अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें-से प्रथम भागमें असत्त्व १०, सत्त्व १३८ और सत्त्वव्युच्छित्ति १६ की है। दूसरे भागमें असत्त्व २६, सत्त्व १२२ और सत्त्वव्युच्छित्ति ८ की है। तीसरे भागमें असत्त्व २४, सत्त्व ११४ और सत्त्व-व्युच्छित्ति १ की है। चौथे भागमें असत्त्व ३५, सत्त्व ११३ और सत्त्व-व्युच्छित्ति १ की है। पाँचवें भागमें असत्त्व ३६, सत्त्व ११२ और सत्त्वव्युच्छित्ति ६ की है। छठे भागमें असत्त्व ४२, सत्त्व १०६ और सत्त्वव्युच्छित्ति १ की है। सातवें भागमें असत्त्व ४३, सत्त्व १०५ और सत्त्वव्युच्छित्ति १ की है। आठवें भागमें असत्त्व ४०, सत्त्व १०४ और सत्ताव्युच्छित्ति १ की है। नवें भागमें असत्त्व ४५, सत्त्व १०३ और सत्त्वव्युच्छित्ति १ की है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें असत्त्व ४६, सत्त्व १०२ और सत्त्वव्युच्छित्ति १ की है। क्षपक श्रेणीवाला ग्यारहवें में न चढ़कर बारहवें गुणस्थानमें ही चढ़ता है, अतः उसका यहाँ विचार नहीं किया गया है। क्षीणकषायके द्विचरम समयमें ४७ का असत्त्व, १०१ का सत्त्व और २ की सत्त्वव्युच्छित्ति होती है। क्षीणकषायके चरम समयमें ४६ का असत्त्व, ६६ का सत्त्व और १४ की सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। सयोगिकेवलीके ६३ का असत्त्व, और ८५ का सत्त्व रहता है। यहाँपर किसी भी कर्म-प्रकृतिकी व्युच्छित्ति नहीं होती है। अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें ६३ का असत्त्व, ८५ का सत्त्व और ७२ की सत्त्वव्युच्छित्ति होती है। अयोगि केवलीके चरम समयमें १३५ का असत्त्व, १३ का सत्त्व और १३ की सत्त्वव्युच्छित्ति होती है। सिद्धोंके किसी भी कर्म-प्रकृतिका सद्भाव नहीं पाया जाता। अतएव उनके १४८ प्रकृतियोंका असत्त्व जानना चाहिए।

अब सप्ततिकाकार अयोगिकेवलीके उदय आनेवाली प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[मूलगा० ६६] अणायरवेयणीयं मणुयाऊ उच्चगोय णामणवं ।

वेदेदि अजोगिजिणो उक्कस्स जहण्णमेयारं ॥५०१॥

अयोगे उदयप्रकृतीराह—अन्यतरवेदनीयं १ मनुष्यायुः १ उच्चगोत्रं १ नामप्रकृतिनवकं १ वषट्-
मागम् । एवं द्वादशानां प्रकृतीनामुदय अयोगिजिनः उत्कृष्टतया वेदयति अनुभवति । जघन्येन तीर्थंकरत्वं
विना एकादशानां प्रकृतीनामुदय अयोगिनो वेदयति अनुभवति ॥५०१॥

कोई एक वेदनीय, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और नामकर्मकी नौ प्रकृतियों; उस प्रकार इन
चारह प्रकृतियोंका अयोगिजिन उत्कृष्ट रूपसे वेदन करते हैं । तथा जघन्य रूपसे तीर्थङ्कर प्रकृतिके
विना ग्यारह प्रकृतियोंका वेदन करते हैं । क्योंकि सभी अयोगिजिनोके तीर्थङ्करप्रकृतिका उदय
नहीं पाया जाता है ॥५०१॥

अब आचार्य अयोगिजिनके उदय होनेवाली नामकर्मकी उपरि-निर्दिष्ट नौ प्रकृतियोंका
नामोल्लेख करते हैं—

[मूलगा०६७] मणुयगई पंचिदिय तस वायरणाम सुभगमादिजं ।

पञ्जत्तं जसकिती तित्थयरं णाम णव होंति ॥५०२॥

ता. का नवेति प्राह—['मणुयगई पंचिदिय' इत्यादि ।] मनुष्यगति १ पञ्चेन्द्रियं १ व्रतं १
वाटरनाम १ सुभगं १ आदेयं १ पर्याप्तं १ यशस्कीर्तिः १ तीर्थंकरत्वं १ चेति नाम्न नव प्रकृतयो
भवन्ति ॥५०२॥

मनुष्यगति. पंचेन्द्रियजाति, व्रत, वाटर, सुभग, आदेय, पर्याप्त, यश कीर्ति और तीर्थंकर-
प्रकृति नामकर्मकी इन नौ प्रकृतियोंका उदय अयोगिजिनके होता है ॥५०२॥

अयोगिजिनके मनुष्यानुपूर्विका सत्त्व उपान्त्य समय तक रहता है, या अन्तिम
समय तक ? आचार्य इस बातका निर्णय करते हैं—

[मूलगा०६८] मणुयाणुपुव्विसहिया तेरस भवसिद्धियस्स चरमंते ।

संतस्स दु उक्कस्सं जहण्णयं वारसा होंति ॥५०३॥

अयोगिचरममये उत्कृष्टतो जघन्यतः सत्त्वप्रकृतीराह—['मणुयाणुपुव्विसहिया' इत्यादि ।]
मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ व्रतं १ वाटर १ सुभगं १ आदेयं १ पर्याप्तं १ यशस्कीर्तिः १ तीर्थंकरत्वं १
इति नाम्नः नव प्रकृतयः १ । सातासातयोर्मध्ये एकतरवेदनीयं १ मनुष्यायुष्कं १ उच्चगोत्रं १ चेति
द्वादश । मनुष्यगत्यानुपूर्व्यसहितान्न्योदय प्रकृतयः सत्त्वरूपा उत्कृष्टतो भवसिद्धेः चरमान्ते अयोगि-
जिनस्य चरममये भवन्ति १३ । तीर्थंकरत्वं विना एता द्वादश प्रकृतयः सत्त्वरूपा जघन्यतो
भवन्ति १० ॥५०३॥

भवसिद्ध अयोगिजिनके चरम समयमें उत्कृष्ट रूपसे मनुष्यानुपूर्व्य-सहित तेरह प्रकृतियों
का और जघन्य रूपसे तीर्थङ्करप्रकृतिके विना चारह प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है ॥५०३॥

अब ग्रन्थकार उक्त कथनकी पुष्टिमें युक्तिका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०६९] मणुयगइसहगयाओ भव-खेत्तविवाय जीववागा य ।

वेदणियण्णदरुच्चं चरिमे भवसिद्धियस्स खीयंति ॥५०४॥

एताः प्रकृतयो मनुष्यगत्या सह त्रयोदश । तद्विचार क्रियते । अघातिकर्मचतुष्टयमध्ये क्रमेण कथ-
यति—आयुषां मध्ये मनुष्यायुस्तद्विवाकम् १ । नाममध्ये मनुष्यगत्यानुपूर्व्य सा क्षेत्रविपाको १ । मनु-
ष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ तीर्थंकरत्वं १ व्रत १ वाटर १ यशः १ सुभगः १ पर्याप्तं १ आदेयं १ एवं नव
प्रकृतयः १ जीवविपाकिन्य । [सातासात-] वेदनीययोर्मध्ये अन्यतरवेदनीयं १ तदपि जीवविपाकम् १

[उच्च-नीच-]गोत्रयोर्मध्ये उच्चगोत्रं तदपि जीवविपाकम् १ । एवं त्रयोदश प्रकृतीरयोगिचरमसमये अयोगिनः क्षयन्ति १३ ॥५०४॥

मनुष्यगतिके साथ नियमसे उदय होनेवाली भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियों, कोई एक वेदनीय और उच्चगोत्र, इन सत्रका क्षय भव्यसिद्धिक अयोगिजिनके अन्तिम समयमें होता है ॥५०४॥

भावार्थ—यतः मनुष्यगतिके साथ नियमसे उदय होनेवाली भवविपाकी आदि प्रकृतियों अयोगिकेवलीके अन्तिम समय तक पाई जाती है, अतः वहाँ तक क्षेत्रविपाकी मनुष्यानुपूर्वका अस्तित्व स्वतः सिद्ध है ।

अब ग्रन्थकार सर्व कर्मोंका क्षय करके जीव जिस अवस्थाका अनुभव करते हैं, उसका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०७०] 'अह सुद्वियसयलजयसिहर अरयणिरुवमसहावसिद्धिसुखं ।

अणिहणमव्यावाहं तिरयणसारं अणुहवन्ति' ॥५०५॥

अथ कर्मक्षय कृत्वा सिद्धाः सिद्धिसुखमनुभवन्तीत्याह—['अह सुद्वियसयलजय' इत्यादि ।] अथ अथानन्तरं कर्मक्षयानन्तरं स्वभावसिद्धिसुखमनुभवन्ति । स्वस्यात्मनः भावः स्वरूपं तस्मात् तत्र वा सिद्धि-सुखं स्वात्मोपलब्धिसुखं आत्मस्वरूपात् प्राप्तात्मसुखमनुभवन्ति भुञ्जन्ते । के ? सिद्धाः । कथम्भूताः ? सुष्ठु अतिशयेन स्थिताः सकलाः अनन्ताः जगच्छिखरे ये सिद्धाः त्रिभुवनशिखरस्थाः अनन्तसिद्धाः स्वभाव-सिद्धिसुखमनुभवन्ति । कथम्भूताः ? न विद्यते रजः कर्ममलकलङ्को येषां ते अरजसः कर्ममलकलङ्करहिताः । कथम्भूत स्वभावसिद्धिसुखम् ? निरुपम उपमानिष्क्रान्त उपमारहितम् । पुनः कथम्भूतम् ? अनिधनं विनाशरहितम्, अव्यावाधं बाधारहितम्, त्रिरत्नसारं रत्नत्रयफलमित्यर्थः ॥५०५॥

तथा चोक्तम्—

रत्नत्रयफलं प्राप्ता निर्वाधं कर्मवर्जिताः ।

निर्विशन्ति सुखं सिद्धास्त्रिलोकशिखरस्थिताः ॥३७॥

अष्टाचत्वारिंशतं कर्मभेदानित्थं हत्वा ध्यानतो निर्गुता ये १ ।

स्वस्थानन्तामेयसौख्याच्छिमन्नास्ते नः सद्यः सिद्धये सन्तु सिद्धाः ॥३८॥

कर्मोंका क्षय करनेके अनन्तर वे जीव सकल जगत्के शिखर पर सुस्थित होकर रज (मल) से रहित, निरुपम अनन्त, अव्यावाध और स्वाभाविक आत्मसिद्धिसे प्राप्त और त्रिभुवनमे साररूप आत्मिक-सुखका अनुभव करते हैं ॥५०५॥

भावार्थ—त्रिभुवनके शिखरपर विराजमान होकर वे सिद्ध जीव सर्व बाधाओंसे, मलोंसे और उपद्रवोंसे रहित होकर अनन्तकाल तक शुद्ध आत्मिक आनन्दका अनुभव करते रहते हैं ।

अब मूळसप्ततिकाकार प्रस्तुत प्रकरणका उपसंहार करते हुए कुछ आवश्यक एवं ज्ञातव्य तत्त्वका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०७१] दुरधिगम-णिउण-परमदु-रुद्ध-बहुभंगदिड्ढिवादाओ ।

अत्था अणुसरियव्वा वंधोदयसंतकम्माणं ॥५०६॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ४७८ ।

१ सं० पञ्च सं० ५, ४७८ । २ सं० पञ्चसं० ५, ४७६ ।

१. सप्ततिका० ७० । २. सप्ततिका० ७१ ।

बन्धोदयसत्त्वकर्मणां अर्था वाच्यरूपाः तत्त्वरूपरूपाः अनुसर्तव्या आश्रयणीया अङ्गीकर्तव्याः भव्यै । कुतः ? दुरधिगमनिपुणपरमार्थरुचिरबहुभङ्गदृष्टिवादाद्वात् ॥५०६॥

तथा च—

दृष्टिवादमकराकरादिदं प्राभृतैकलवरत्नमुद्धृतम् ।

ज्ञानदर्शनचरित्रवृंहकं गृह्यतां शिवनिवासकाङ्क्षिभिः^१ ॥३६॥

बन्धं पाकं कर्मणां सत्त्वमेतद्वक्तुं शक्तं दृष्टिवादप्रणीतम् ।

शास्त्रं ज्ञात्वाऽभ्यस्यते येन नित्यं सम्यक् तेन ज्ञायते कर्मतत्त्वम् ॥४०॥

दुरधिगम, सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा गम्य, परम तत्त्वका प्रतिपादक, रुचिर (आह्लाद-कारक) और अनेक भेद-युक्त दृष्टिवादसे कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वका विशेष अर्थ जानना चाहिए ॥५०६॥

भावार्थ—गाथासूत्रकारने इस ग्रन्थका प्रारम्भ करते हुए यह निर्देश किया था कि मैं दृष्टि-वादके आश्रयसे बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका निरूपण करूंगा । अब ग्रन्थको समाप्त करते हुए वे यह कह रहे हैं कि चारहवाँ दृष्टिवाद अङ्ग अत्यन्त गहन, विस्तृत और सूक्ष्मबुद्धि पुरुषोंके द्वारा ही जानने योग्य है । अतएव मेरेसे जितना भी संभव हो सका, प्रस्तुत अर्थका प्रतिपादन किया । जो विशेष जिज्ञासु जन हों, उन्हें दृष्टिवादसे प्रकृत अर्थका अनुसरण या अध्ययन करना चाहिए ।

अब मूलसप्ततिकाकार अपनी लघुता प्रकट करते हैं—

[मूलगा०७२] जो एतथ अपटिपुण्णो अत्थो अप्पागमेण रइओ त्ति ।

पं खमिऊण बहुसुया पूरेऊणं परिकहिंतु^१ ॥५०७॥

इदि पंचसंगहो समत्तो ।

अथ अस्मिन् ग्रन्थे यः अपरिपूर्णः अर्थो मया कथितः अल्पागमेन लेशसिद्धान्तज्ञायकेन रचित इति त अर्थं भो बहुश्रुता^२ अनेकसिद्धान्तवेदिनः ममोपरि क्षमा कृत्वा अपरिपूर्णमर्थं पूरयित्वा पूर्णं कृत्वा परिकथयन्तु प्रकाशयन्तु ॥५०७॥

मुझ अल्प आगम-ज्ञानीने इस प्रकरणमें जो अपरिपूर्ण अर्थ रचा हो, उसे बहुश्रुत ज्ञानी आचार्य मुझे क्षमा करके और छूटे हुए अर्थकी पूर्ति करके जिज्ञासु जनोको प्रस्तुत प्रकरणका व्याख्यान करें ॥५०७॥

इस प्रकार सभाष्य सप्ततिका-प्रकरण समाप्त हुआ ।

१. सं० पञ्चसं० ५, ४८२ । २. सं० पञ्चसं० ५, ४८३ ।

१ सप्ततिका ७२ ।

अथ इति ।

संस्कृतटीकाकारस्य प्रशस्तिः

श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघो वरो बलात्कारगणप्रसिद्धः ।
श्रीकुन्दकुन्दो वरसूरवर्यो बभौ बुधो भारतिगच्छसारे ॥१॥
तदन्वये देव-मुनीन्द्रवन्द्यः श्रीपद्मनन्दी जिनधर्मनन्दी ।
ततो हि जातो दिविजेन्द्रकीर्त्तिर्विद्या-[भि-] नन्दी वरधर्ममूर्तिः ॥२॥
तदीयपट्टे नृपमाननीये मल्ल्यादिभूषो मुनिवन्दनीयः ।
ततो हि जातो वरधर्मधर्त्ता लक्ष्म्यादिचन्द्रो बहुशिष्यकर्त्ता ॥३॥
पञ्चाचाररतो नित्यं सूरिसद्गुणधारकः ।
लक्ष्मीचन्द्रगुरुस्वामी भट्टारकशिरोमणिः ॥४॥
दुर्वारदुर्वादिकपर्वतानां वज्रायमानो वरवीरचन्द्रः ।
तदन्वये सूरिवरप्रधानो ज्ञानादिभूषो गणिगच्छराजः ॥५॥
त्रैविद्यविद्याधरचक्रवर्त्ती भट्टारको भूतलयातकीर्त्तिः ।
ज्ञानादिभूषो वरधर्ममूर्तिस्तदीयवाक्यात् क्षतसारवृत्तिः ॥६॥
भट्टारको भुवि ख्यातो जीयाच्छ्रीज्ञानभूषणः ।
तस्य पट्टोदये भानुः प्रभाचन्द्रो वचोनिधिः ॥७॥
विशदगुणगरिष्ठो ज्ञानभूषो गणीन्द्रस्तदनु पदविधाता धर्मधर्त्ता सुभर्त्ता ।
कुवलयसुखकर्त्ता मोहमिथ्यान्धहर्त्ता स जयतु यतिनाथः श्रीप्रभाचन्द्रचन्द्रः ॥८॥
दीक्षाशिक्षापदं दत्तं लक्ष्मीवीरेन्दुसूरिणा ।
येन मे ज्ञानभूषेण तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥९॥
आगमेन विरुद्धं यद् व्याकरणेन दूषितम् ।
शुद्धीकृतं च सत्सर्वं गुरुभिर्ज्ञानभूषणैः ॥१०॥

तथापि—

अत्र हीनाधिकं किञ्चिद्भ्रूयितं मतिविभ्रमात् ।
शोधयन्तु महाभव्याः कृपां कृत्वा ममोपरि ॥११॥
हंसाख्यवर्णिनाथेन ग्रन्थोऽयमुपदेशितः ।
तस्य प्रसादतो वृत्तिः कृता सुमतिकीर्त्तिना ॥१२॥
श्रीमद्विक्रमभूषते परिमिते वर्षे शते षोडशे
विंशत्यग्रगते (१६२०) सिते शुभतरे भाद्रे दशम्यां तिथौ ।
ईलावे वृषभालये वृषकरे सुश्रावके धार्मिके
सूरिश्रीसुमतीशकीर्त्तिविहिता टीका सदा नन्दतु ॥१३॥

इति श्रीपञ्चसग्रहापरनामलघुगोम्मतसारसिद्धान्तग्रन्थटीकाया कर्मकाण्डे सप्ततिकानाम सप्तमोऽ-
धिकारः ।

इति श्री लघुगोम्मतसारटीका समाप्ता ।

पाइय-वित्ति-सहिओ सिरि पंचसंगहो

इय वंदिऊण सिद्धे अरिहंते आइरिय उवज्झाए ।
साहुगणे वि य सव्वे वुच्छेऽहं मंगलं किं पि ॥
मंगलणिमित्तेहउं परिमाणं णाममेव जाणाहि ।
छट्ठं तह कत्तारं आयमिह य सव्वसत्थाणं ॥१॥

आदिमिह मंगलादीणि पुव्वमेव सीसस्स जाणाविय अभिपेदत्थं परुविज्जदि । तत्थ मंगलं विशिष्टेष्टदेवतानमस्कारो मङ्गलम् । तं धादु-णिकखेव-णअ-एगत्थ-णिरुत्तियणिओगहारेहि परु-विज्जदि । तत्र मगिरित्यनेन धातुना निष्पन्नो मङ्गलशब्दः । धातूक्तिः किमर्थम् ?

यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके सार्थकं चोपलभ्यते ।
तत्सर्वं धातुभिर्व्याप्तं शरीरमिव धातुभिः ॥२॥

इति वचनात् । तदर्थं धातुप्ररूपणं वक्ष्यति । तत्थ णिकखेवेण मंगलं छव्विहं—णाम-द्ववणा-दव्व-खेत्त-काल-भावमंगलं चेदि ।

अवगदणिवारणत्थं पयदस्स परुवणाणिमित्तं च ।
संसयविणासणत्थं सण्णाणुप्पादणत्थं च ॥३॥

णिकखेवे कदे [णवाण] अवदारो भवदि ।

उच्चारिदमिह दु पदे णिकखेवे वा कदमिह दट्ठूण ।
अत्थं णयंति तच्चेत्ति य तम्हा ते णया भणिदा ॥४॥

तं जहा—णइगम-संगह-ववहारा सव्वमंगलाणि इच्छंति । किं कारणं ? तिलोनेसु तिका-लेसु सव्वमंगलेहि संववहारा दिस्सति । उजुसुदो ठवणमंगलं नेच्छदि । किं कारणं ? जेण अदीदं विणट्ठं, अजागदमणुप्पणं । वट्ठमाणमेव तच्चेत्ति इच्छदि । सहणओ णाममंगलं भाव-मंगलं च इच्छदि । किं कारणं ? जेण पज्जयगाही परप्रत्यायनकाले नाममङ्गलमिच्छति । भाव-मंगलं पि तस्स विसओ होऊण इच्छदि । समभिरुद्ध-एवंभूदणया सहणए पविसति त्ति भणिदा ।

संपधि एत्थ णिकखेवपरुवणा किं कारणं वुच्चदे ?

प्रमाण-नय-निक्षेपैर्योऽर्थो नाभिसमीक्ष्यते ।

युक्तश्चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं सयुक्तिवत् ॥५॥

इति वचनात् ।

ज्ञानं प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास उच्यते ।

नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः^१ ॥६॥

तं णाममंगलं णाम जीवस्स वा एवमादि-अट्ठभंगेहि जस्स वा तस्स वा दव्वस्स वा णिमि-
त्तंतरमविविखऊण सण्णा कीरदे । तत्थ णिमित्तं चट्ठविधं—जादि-दव्व-गुण-किरिया चेदि । तत्थ
जादि गो-मणुस्सादि । दव्वं दुविहं—संजोगिदव्वं समवायदव्वं चेदि । संजोगिदव्वं णाम जीहा-
घट्ट-पवनादि । समवायदव्वं णाम विपाणिक-कूष्माणीति । गुणो णाम—जहा सव्वण्हु सुक्खिलं
क्खिण्हमिदि । किरिया णाम—लङ्घकी नत्तकी एवमादि । एदे णिमित्ते मोत्तूण तं णाममंगलं
वुच्चदि ।

ठवणमंगलं दुविहं—आकृतिमति सद्भावः अनाकृतिमति असद्भावः तत्र चित्र-लेप्यकर्मा-
दिपु लेखाक्षेपण-खनन-बन्धन-निष्पन्नं सद्भावस्थापना । तदेवात्ताङ्गुल्यादिविकल्पितमितर-
मङ्गलम् ।

दव्वमंगलं दुविहं—आगम—नोआगमभेदादो । आगमो सिद्धंतो । आगमादो वदिरित्तो
नोआगमो । तत्थ आगमादो दव्वमंगलं मंगलपाहुडजाणगो उवजुत्तो । जं तं नोआगमदव्वमंगलं
तं तिविहं—जागुण-भविय-तव्वदिरित्तं चेदि । जागुणसरीरं तिविहं—भविय-वट्टमाण-समुब्भादं
चेदि । समुब्भादं तिविहं—चुदं चइदं चत्तदेहं चेदि । अप्पणो आउक्खए जं चुदं तं चुदं णाम ।
विस-सत्थ-कंटयादीहि जं चइदं, तं चइदं णाम । चत्तदेहं तिविधं—पाउवगमरणं इंगिणिमरणं
भत्तपच्चक्खाणं चेदि ।

तत्थ अप्प-परणिराविक्खं पाउगमरणं । उक्तञ्च—

स्थितस्य वा निपण्णस्य यावत्सुप्तस्य वा पुनः ।

सर्वचेष्टापरित्यागः प्रायोग्यगमनं स्मृतम् ॥७॥

तत्थ इंगिणिमरणं अप्पसावेक्खं परणिरावेक्खं । उक्तञ्च—

एकैकस्योपसर्गस्य सहिष्णुः सविचारकः ।

सर्वाहारपरित्यागः इङ्गिनीमरणं स्मृतम् ॥८॥

भत्तपच्चक्खाणं णाम अप्प-परसावेक्खं चेदि । उक्तञ्च—

सल्लेख्य विधिना देहं क्रमेण सकपायकः ।

सर्वाहारपरित्यागो भवेद्भक्तव्यपोहनम् ॥९॥

भवियमंगलं मंगलपाहुडजाणगो भावी । तव्वदिरित्तं दुविधं—कम्ममंगलं णोकम्ममंगलं
चेदि । तत्थ कम्ममंगलं णाम दंसणविसुब्भदा एवमादिसोलसत्तिथयरणासकम्मकारणेहि पविभत्तं ।
णोकम्ममंगलं—लोइयं लोउत्तरियं चेदि । तत्थ लोइयमंगलं तिविधं सचित्ताचित्तमिस्सयं चेदि ।
तत्थ सचित्तमंगलं कण्णादि । अचित्तमंगलं सिद्धत्थ-पुण्णकुंभादि । मिस्समंगलं सिद्धत्थ-पुण्णकुंभ-
सहिदकण्णादि । जं तं लोउत्तरियं मंगलं [तं] तिविहं—सचित्ताचित्तमिस्सयं चेदि । तत्थ
सचित्तमंगलं अरहंतादिपंचण्हं गुरुआणं जीवपदेसा । अचित्तमंगलं चेदिया-पडिमादि । मिस्स-
मंगलं साहुपट्टसालादि ।

तत्थ खेत्तमंगलं णाम—गुणपल्लयपरिणदेणच्छिद्वेत्तं णिक्खवण-परिणिव्वाण-केवलणाणु-
पत्ति-खेत्तादि, अद्धुद्धरदणियादि जाव पंचवीसुत्तरपंचधणूसदपमाणसरीरत्थिदा लोगागासपदेसा
खेत्तमंगले ति वुच्चदि । अथवा आपजीवपदेसा वा ।

तत्थ कालमंगलं^१ णाम—जम्हि काले गुणपज्जयपरिणदो होऊणच्छिदो । तं कालमंगलं दुविधं—सगकालमंगलं परकालमंगलं चेदि । तत्थ सगकालमंगलं जम्हि काले अप्पणो अणंतणाण-दंसणाणि उप्पज्जंति [तं] कालमंगलं वुच्चदि । परकालमंगलं णाम जम्हि काले परेसि णिक्ख-वण-केवलणाणुप्पत्ति-परिणिव्वाणादीणि भवंति ।

भावमंगलं दुविहं—आगम-णोआगमं^२ चेदि । तत्थ आगमदो भावमंगलं पाहुडजाणगो उवजुत्तो । णोआगमभावमंगलं दुविहं—उवउत्तो तप्परिणदो वा । आगमविरहिदमंगलथोव [मंगलथो] उवजुत्तो । तप्परिणदो णाम मंगल एय [एहि] परिणदो जीवो । तं जहा—मलं गालयदि विद्धंसदि वा मंगलं । तं [मलं] दुविध—दव्वमलं भावमलं चेदि । दव्वमलं दुविहं—वाहिरमव्वमंतरं च । तत्थ वाहिरमलं सेद-रजादि । अव्वमंतरमलं णाम घण-कढिण-जीवपदेसणिवद्धं णाणावरणादि ।

आदी मज्झवसाणे मंगलं जिणवरेहि पण्णत्तं ।

तो कदमंगलविणओ इणमो सुत्तं पक्खामि^३ ॥१०॥

तं मंगलं दुविहं—णिबद्धमंगलं अणिबद्धमंगलं चेदि । तत्थ णिबद्धमंगलं णाम जं सुत्तस्स आदीए णिबद्धं । अणिबद्धमंगलं णाम जं सुत्तस्स आदीए ण णिबद्धं, अण्णसुदो [सुदादो] आणिदूण वक्खाणिज्जदि । संपधि अण्णसुत्तादो आणेऊण जदि वक्खाणिज्जदि तो सुत्तस्स अमंगल पावदि त्ति ? ओएसस [णो णवदि सुत्तस्स] । कहं ?

जहा लोए तहा सत्थे—

प्रदीपेनार्चयेदकमुदकेन महोदधिम् ।

वागीश्वरं तथा वाग्भिर्मङ्गलेन च मङ्गलम् ॥११॥

णिमित्तं भण्णमाणे बंधो बंधकारणं मुखो मुखकारणं णिक्खेय-णअ-प्पमाण-अणिओगद्दारेहि भव्ववरपुंडरीयमहारिसओ जाणंति त्ति ।

तत्थ हेदू दुविहो—पञ्चक्ख-परोक्खमिदि । पञ्चक्खहेदू दुविहो—सात्तात्प्रत्यक्षः परम्परा-प्रत्यक्षश्चेति । तत्र सात्तात्प्रत्यक्षः देव-मनुष्यादिभिः सततमभ्यर्चनम् । परम्पराप्रत्यक्षः शिष्य-प्रशिष्यादिभिः सततमभ्यर्चनम् । परोक्षहेतुर्द्विविधोऽभ्युदयो-नैः श्रेयसश्चेति । तत्राभ्युदयहेतुर्यथा सातादिप्रशस्तकर्मतीव्रानुभागोदयजनित-इन्द्र-प्रतीन्द्र-सामानिक-त्रायत्रिंशादिदेव-चक्रवर्त्ति-बलदेव-वासुदेव-मण्डलीक महामण्डलीक-राजाधिराजसुखप्रापकम् । नैः श्रेयसहेतुर्यथा—अव्याबाधमनन्त-कर्मक्षयजनितमुक्तिसुखम् ।

अदिसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं ।

अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं^४ ॥१२॥

तत्थ परिमाणं दुविहं—अत्थपरिमाणं गंथपरिमाणं [चेदि ।] अत्थपरिमाणं अणंतं [प] एयत्थ-अणतभेदभिण्ण- [तादो ।] गंथदो पुण अक्खर-पद-सघाद-पडिवत्ति-अणिओगद्दारेहि सुदक्खरेहि [सुदक्खरेहि] सखिज्ज । तं सुदक्खं पच्छा वत्तव्वं ।

तत्थ गुणणामं आराहणा इदि । कि कारणं ? जेण आराधिज्जन्ते अणआ दंसण-णाण-चरित्त-तवाणि त्ति ।

कत्तारा तिविधा—मूलतंतकत्ता उत्तरतंतकत्ता उत्तरोत्तरतंतकत्ता चेदि । तत्थ मूलतंत-
कत्ता भयवं महावीरो । उत्तरतंतकत्ता गोदमभयवदो । उत्तरोत्तरतंतकत्ता लोहायरिया भट्टारक-
अण्णभूदिअआयरिया ।

एयारसंगमूलो खंधो उण दिट्ठिवादपंचविहो ।
णो अंगारोहज्जदो (?) चउदहवरपुण्वसाहिल्लो ॥१३॥
वत्थूवसाहपवरो पाहुडदल पवलकुमुम चिंचइओ ।
अणिओगफलसमिद्धो सुदणाणाणोअहो जयऊ ॥१४॥

एत्थ सुदणाणस्स अधिआगदो सुदणाणस्स एवं पंचविधं उवक्कमं कायव्वं । तस्स सुदं-
णास—श्रुत्वा पठित्वा गृहातीति श्रुतं नाम । पमाणं अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणिओगहारेहि
संखेज्ज, अत्यदो अणंतं । वंचुपदा [वत्तव्वदा] सुदणाणं तदुभयवंतपदा [वत्तव्वदा] ।
अत्थाधियारो वारहविधो ।

आयारं सुदयडं ठाणं समवाय विवायपण्णत्ती ।
णादाधम्मकहाओ उवासयाणं च अज्झयणं ॥१५॥
अंतयडदसं अणुत्तरोववादियदसं पण्णवायरणं ।
एयार विवायसुत्तं वारसमं दिट्ठिवादं च ॥१६॥

एत्थ पुण आयारंगं अट्टारहपदसहस्सेहि १८००० ववहारं वण्णेदि रिसिगणस्स ।

कथं चरे कथं चिट्ठे कथमासे कथं सये ।
कथं भासेज्ज भुंजीज्जा कथं पावं ण वज्झदि ॥१७॥
जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये ।
जदं भासेज्ज भुंजीज्जा एवं पावं ण वज्झदि ॥१८॥

सुदयडणामंगं छत्तीसपदसहस्सेहि ३६००० ससमय-परसमयमगणदा । ठाणणामंगं
वाटालसहस्सेहि पदेहि ४२००० एगादि—एगुत्तरट्ठाणं वण्णेदि जीवस्स । तं जहा—

एओ चेव महप्पो सो दुवियप्पो तिलक्खणो भणिदो ।
चउचंक्रमणाजुत्तो पंचमागुणप्पहाणो य ॥१९॥
छक्कावक्रमजुत्तो कमसो पुण सत्तमंगिसम्भावो ।
अट्ठासवो णवपदो जीवो दसठाणिओ णेओ ॥२०॥

समवायणामंगं इक्कलक्ख-चउसट्ठिसहस्सेहि पदेहि १६४००० समकरणं मगणा ।
[समवायणा-] मंगं चदुविधं—दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो । दव्वदो धम्मस्थियाए
अधम्मस्थियाए लोगागासं एगजीवपदेसा वि य चत्तारि समा । खेत्तदो सोमंतणास गिरयं
माणुसं खेत्तं उडुविमाणं सिद्धिखेत्तपदं चत्तारि वि समा । कालदो समयं समण समं, मुहुत्तो
मुहुत्तसमो ति । भावदो केवलणाणं केवलदंसणं च समा, ओधिणाणं ओधिणाण- [दंसण-]
सममिदि ।

विवायपण्णत्ती णामंगं दोहि लक्खेहि अट्ठावीससहस्सेहिं पदेहिं २२८००० पुच्छणविधिं पडिच्छणविधिं च वण्णेदि । णादाधम्मकधा णामंगं पंचलक्ख-छप्पणसहस्सेहिं पदेहिं ५५६००० अरहंताणं धम्मदेसणं वण्णेदि । उवासयज्जयणं णामंगं एक्कारसलक्ख-सत्तरि-सहस्सेहिं पदेहिं ११७०००० सावगाचारं वण्णेदि दसण-वद-सामाइयादि ।

अंतयडदसणामंगं तेवीसलक्ख-अट्ठावीससहस्सेहिं पदेहिं २३२८००० एक्कम्हि य तित्थे दस-दस उवसग्गे दारुणे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण णिब्बाणगमणं वण्णेदि । तत्थ उवसग्गे, त जहा—माणुसुवसगं तिविधं इत्थि-पुरिस-णउसय [भेएण] एवं तिरिच्छियणं । देवं दुविध-इत्थि-पुरिसु त्ति । अचेदणीयं दुविधं-सामावियं आगंतुगं च । सामावियं सरीरमसमत्थ-सिरवेदण-कुच्छि-वेदणादि । आगंतुगं असणि-कट्ठ-रुक्खादि । सव्वसमासेण पुणो दस १० ।

अणुत्तरोववादियणामंगं चाणउदिलक्ख-चउदालसहस्सेहिं पदेहिं ६२४४००० एक्केक्कम्हि य तित्थे दस-दस उवसग्गे दारुणे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण अणुत्तरगमणं वण्णेदि । पण्हवायरण-णामंगं तेणउदिलक्ख-सोलहसहस्सेहिं पदेहिं ६३१६००० अक्खेवणी विक्खेवणी संवेगणी णिब्बेगणी पवण्णेदि । तत्थ अक्खेवणी जत्थ ससमयं वण्णेदि । विक्खेवणी जत्थ परसमयं वण्णिज्जदि । संवेगणी णाम [जत्थ] दसण-गाण-चरण-तव-पुण्ण-पावफलविसेसं वण्णिज्जदि । णिब्बेगणीणाम जत्थ सरीर-भोग-ससार-णिब्बेगं वण्णिज्जदि । विवागसुत्तणामंग एगकोडि-चउरासीदिलक्खपदेहिं १८४००००० पुण्ण-पावकम्माणं उदय-उत्तीरण विसेसेण फलविवागं वण्णेदि । एकादसंगपिडं चत्तारि कोडीओ पण्णरसलक्खवेसहस्सपदेहिं ४१५०२००० ।

वे चेव सहस्साणि य पणदहलक्खाणि कोडिचत्तारि ।

एयारसंगपिडं सुदणाणं होइ पदसंखा ॥२१॥

दिट्ठोओ वदंति दिट्ठिवादंगं ।

असिदिसदं किरियाणं अकिरियाणं च तह य चुलसीदी ।

सतसट्ठी अण्णाणी वेणइयाणं च वत्तीसा ॥२२॥

आदिसिओ गन्हाए (असिदिसद-गाथाए) अत्थो बुच्चदे । त जहा—आस्तिकमतेनेव स्व-पर-नित्येतरैर्नवजीवादपदार्थाः नियति-स्वभाव-कालेश्वरात्मकृति च शतमशीतिः । नियति-स्वभाव-कालेश्वरात्मकृति [त्वं] उपरि संस्थाप्य मध्ये जीवादपदार्थाः जीवाजीवास्रवसवर-निर्जराबन्धमोक्ष-पुण्यपाप [पाणि] एवं नव । [तदधः] स्व-पर-नित्यानित्यानि स्वकाइया [स्थाप्यानि] ।

स्वभाव		नियति	काल		ईश्वर		आत्मकृति	
जीव	अजीव	आस्रव	सवर	निर्जरा	बन्ध	मोक्ष	पुण्य	पाप
स्व		पर		नित्य				अनित्य

एवं ठविदे तदुच्चारणा वक्ष्यति—अस्ति स्वतः जीवो नियतितः १। एवमेव उच्चारणा-अस्ति परतः जीवो नियतितः २। अस्ति नित्यः जीवो नियतितः ३। अस्ति अनित्यः जीवो नियतितः ४। अस्ति स्वतोऽजीवो नियतितः ५। अस्ति परतोऽजीवो नियतितः ६। अस्ति नित्योऽजीवो नियतितः ७। अस्ति अनित्योऽजीवो नियतितः ८। एवमास्रवादिः स्वभाव-कालेश्वरात्मकृतिश्च यावच्छतमशीतिमुच्चारणा वक्तव्या । इति तासां प्रमाणम् १८० ।

नास्तिकमतेन स्व-पराभ्यां सह सप्त जीवादिकाः नियति-स्वभाव-कालेश्वरात्मकृतिः एवं चतुरशीतिः । नास्तिकाः पुण्य-पापं नित्यानित्यं च नेच्छन्ति ।

स्वभाव	नियति	काल	ईश्वर	आत्मकृति
जीव	अजीव आस्रव	संवर निर्जरा	बन्ध मोक्ष	पुण्य पाप
	स्वतः		परतः	

एषो नास्तिकप्रस्तारः । अस्योच्चारणा-नास्ति स्वतः जीवो नियतितः १ । नास्ति परतः जीवो नियतितः २ । नास्ति स्वतोऽजीवो नियतितः ३ । नास्ति परतोऽजीवो नियतितः ४ । एवं सर्वो-
च्चारणा सप्ततिः ७० । पुनः स्व-पराभ्यां विना कालनियतिताभ्यां सह जीवादयः सप्त नेतव्याः ।
तेषां प्रस्तारोऽयम्—

जीव	अजीव	आस्रव	बन्ध	संवर	निर्जरा	मोक्ष
	नियति			काल		

[अस्योच्चारणा—] नास्ति जीवो नियतितः १ । नास्ति अजीवो नियतितः २ । नास्ति आस्रवो नियतितः ३ । नास्ति संवरो नियतितः ४ । एवं उच्चारणा चतुर्दश । तासां प्रमाणम् १४ । पुनः सर्वपिण्डप्रमाणम् ८४ ।

अज्ञानवादिमतेन जीवादिपदार्थाः सदादि[भिः] सप्तविधाः—सत् । असत् । सदसत् । अवाच्यम् । सदवाच्यम् । असदवाच्यम् । सदसदवाच्यम् । जीवादीनां पदार्थाश्च [नाञ्च] । अस्योदाहरणम्—

जीव	अजीव	आस्रव	बन्ध	संवर	निर्जरा	मोक्ष	पुण्य	पाप
सत्	असत्	सदसत्	अवाच्य	सदवाच्य	असदवाच्य		सदसदवाच्य	

यथा—सत्-जीवभावं को वेत्ति १ । असत्-जीवभावं को वेत्ति २ । सदसत्-जीवभावं को वेत्ति ३ । अवाच्यं जीवभावं को वेत्ति ४ । सदवाच्यं जीवभावं को वेत्ति ५ । असदवाच्यं जीवभावं को वेत्ति ६ । उभयवाच्यं जीवभावं को वेत्ति ७ । एवमजीवादिषु ६३ । पुनर्जीवादिनव-
पदार्थान् परिमितवाच्यं च नेच्छन्ति । एवं ठविदे तस्योच्चारणा पुनर्भावोत्पत्तिः सत् असत् सदसत् अवाच्यं च इच्छन्ति । तस्योच्चारणा—सद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति १ । असद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति २ । सदसद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति ३ । अवाच्यभावोत्पत्तिं को वेत्ति ४ । एवं सर्वेषामुच्चारणा । प्रमाणम् ६३ । [उभौ मिलितौ ६३ + ४ = ६७ सप्तषष्टि]

वैनयिकमते विनयश्चेतोवाक्कायदानेष्विह कार्या । सुर-नृपति-यति-ज्ञानि- [ज्ञाति] वृद्धेषु तथैव बाले च मातृ-पितृभ्योऽपि च ।

सुर-नृपति-यति-ज्ञानि- [ज्ञाति] वृद्ध-बाल-मातृ-पितृ [पितरः ।] एवमेतेषु विनयो मनो वाक्काय [दान] योगतः । उपरिमसुराद्यष्टपदानि मनोवाक्कायदानानि । एवं वैनयिक-
प्रस्तारम्—

सुर	नृपति	यति	ज्ञाति	वृद्ध	बाल	माता	पिता
मन		वचन		काय		दान	

ठविय तदुच्चारणा वुच्चवद्दि । तं जहा—विनयः कार्यः मनसा सुरेषु १ । विनयः कार्यः वाचा सुरेषु २ । विनयः कार्यः कायेन सुरेषु ३ । विनयः कार्यः दानतः सुरेषु ४ । एवं नृपत्यादिषु द्वात्रिंशदुच्चारणाः भवन्ति । तासां प्रमाणम् ३२ । पुनः सर्वसमासः ३६३ । उक्तञ्च—

स्वच्छन्ददृष्टिप्रविकल्पितानि त्रीणि त्रिपटीनि शतानि लोके ।

पापण्डिभिर्व्याकुलिताः कृतानि यैरत्र शिष्या हृदयो हृदन्ते ॥२३॥

यद्भवति तद्भवति, यथा भवति तथा भवति, येन भवति तेन भवति, यदा भवति तदा भवति यस्य भवति तस्य भवति, इति नियतिवादः ।

कः कण्टकानां प्रकरोति तीक्ष्णं विचित्रभावान्मृगपक्षिणां च ।

स्वभावतः सर्वमिदं प्रसिद्धं तत्कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ॥२४॥

इति स्वभाववादः ।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।

कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥२५॥

इति कालवादः ।

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख-दुःखयोः ।

ईश्वरप्रेरितो गच्छेच्छ्वभ्रं वा स्वर्गमेव वा ॥२६॥

इति ईश्वरवादः ।

ब्रह्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नियोज्यो न परोऽस्ति कश्चित् ।

वृक्षे च तथो (१) दिवि तिष्ठते कस्तेनेदपूर्वं (१) पुरुषेण सर्वम् ॥२७॥

इति ब्रह्मवादः ।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

लोकव्यापी सर्वभूताधिदेवः साक्षी वेत्ता केवलो निर्गुणश्च ॥२८॥

इति आत्मवादः ।

आलस्योद्योतिरात्मा भोः न किञ्चित्फलमश्नुते ।

स्तनक्षीरादिपानं च पौरुषाच्च विना भवेत् ॥२९॥

इति पुरुषकारवादः ।

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् ।

एष शालोऽप्रतीकाशः कर्णो बध्नाति संयुगे ॥३०॥

इति दैववादः ।

सत्यं पिशाचात्र वने वसामो मेरी कराग्रैरपि न स्पृशामः ।

विवादमेव प्रथितः पृथिव्यां मेरी पिशाचा परितं निहन्ति ॥३१॥

इति यहच्छावादः ।

संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञाः नह्येकचक्रेण रथः प्रयाति ।

अन्धश्च पङ्गुश्च वने प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ ॥३२॥

इति संयोगवादः ।

एदाओ दिट्ठीओ वदन्ति त्ति तेण दिट्ठिवादित्ति वुच्चदि ।

एत्थ किं आयारादो, किं सुदयडादो, एवं पुच्छा सन्वेसिं । णो आयारादो, [णो] सुदय-
डादो, एवं धा- [वा-] रणा सन्वेसि । दिट्ठिवादादो । णाम--दिट्ठिं वदन्ति त्ति दिट्ठिवादमित्ति गुण-
णामं । पमाणेण अक्खर-पद-संघाद-पडिबत्ति-अणिओगद्वारेहिं संखेज्जं, अत्थदो पुण अणत्त । वत्त-

व्वदा तदुभयवत्तव्वदा । एवं अत्थाधियारो पंचविधो । तं जहा—परियम्म सुत्त पढमाणिओय पुव्वगद् चूलिया चेव । जं तं परियम्मं तं पंचविहं । तं जहा—चंदपण्णत्ती सूरपण्णत्ती जंवूदीव-पण्णत्ती दीवसायरपण्णत्ती वियाहपण्णत्ती चेदि । [तत्थ चंदपण्णत्ती] छत्तीसलक्ख-पंचपद-सहस्सेहि ३६०५००० चंदस्स [आउ-परिवारिद्धि-गइ-विवुस्सेह-] वण्णणं कुणदि । [सूरपण्णत्ती] सूरस्स पंचलक्ख-तिण्णिपदसहस्सेहि ५०३००० आउभोगोवभोगपरिवारइद्धि वण्णेदि । जंवूदीव-पण्णत्ती तिण्णि लक्खपंचवीसपदसहस्सेहि ३२५००० जंवूदीवे णाणाविधमणुसाणं भोगभूमियाणं कम्मभूमियाणं अण्णेसिं पि णदी-पव्वद-दह-खेत्त-दरिसरीणं च वण्णणं कुणदि । दीवसायरपण्णत्ती वावण्णलक्ख-छत्तीस-पदसहस्सेहि ५२३६००० उद्धारपल्लपमाणेण दीव-सायरपमाणं अण्णं पि अण्णभूदत्थं बहुभेयं वण्णेदि । वियाहपण्णत्ती णाम चदुरसीदिलक्ख-छत्तीसपदसहस्सेहि ८४३६००० रूविजीवदव्वं अरूविजीवदव्वं भवसिद्धिय-अभवसिद्धियरासि च वण्णेदि । एवं परियम्म० ।

सुत्तं अडसीदिलक्खपदेहि ८८०००००

पढमो अवंधगाणं विदिओ तेरासियाण वोधव्वो ।

तदियं च णियदिपक्खो हवदि चउत्थं च समयम्हि ॥३३॥

तेरासियं णाम श्रुति-स्मृति-पुराणवादिनः । [आदा] अघस्सगो [अवंधगो] अलेवगो पण्णत्ती [अणुमेत्तो] अकत्ता णिगुणो सव्वगदो अत्थियवादि[दी] समुदयवादि[दी] च वण्णेदि ।

पढमाणिओगो पंचसहस्सपदेहि ५००० पुराणं वण्णेदि ।

वारसविहं पुराणं जह दिट्ठं जिणवरेहिं [सव्वेहिं] ।

तं सव्वं वण्णेदि [हु] जं पढमाणिओगो हु ॥३४॥

पढमो अरहंताणं वंसो विदियो पुण चक्खवड्ढिवंसो दु ।

विज्जाहराण तदिओ चउत्थयो वासुदेवाणं ॥३५॥

चारणवंसो तह पंचमो दु छट्ठो य पण्णसमणाणं ।

सत्तमओ कुरुवंसो अट्ठमओ चावि हरिवंसो ॥३६॥

णवमो इक्खाउगाणं दसमो वि य कासियाण [वोद्धव्वो] ।

वाईणेगारसमो वारसमो भूदवंसो [दु] ॥३७॥

एव पढमाणिओगो ।

पुव्वगदो पंचाणलदिकोडि-पण्णासलक्ख-पंचपदेहि ६५५०००००५ उप्पाय-वय-धुवत्तादीणं वण्णेदि । चूलिया पंचविधा—जलगदा थलगदा मायागदा रूवगदा भव-[नभ-] गदा [चेदि] । [तत्थ जलगदा] दो कोडि-णवलक्ख-एऊणवदिसहस्स—वे सदपदेहिं जलथंभादि वण्णेदि । पदपमाणं २०६८६२०० । थलगदादिणाम तत्तिएहिं [तत्तिएहिं पदेहिं] भूमिगमणादि वण्णेदि । पदपमाणं २०६८६२०० । सव्वपदसमासो दसकोडि-उणवण्ण-लक्ख-छट्ठालसहस्साणि १०४६४६००० ।

एत्थ किं परियम्मादो, [किं] सुत्तादो ? एवं पुच्छा सव्वेसिं । णो परियम्मादो, णो सुत्तादो; एवं वारणा सव्वेसिं । पुव्वगदादो । तस्स उवक्कमो पंचविधो—आणुपुव्वी णामं पमाणं

१. ज प्रतौ 'तदिओ वासुदेवाणं चउत्थो विज्जाहराण' इति पाठः ।

२. धवलायां 'वारसमो णाहवंसो दु' इति पाठः (मा० १ पृ० ११२) ।

वत्तव्वदा अत्थाधियारो चेदि । तत्थ आणुपुव्वी ति विधा-पुव्वानुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थ-
तत्थाणुपुव्वी चेदि । एत्थ पुव्वानुपुव्वीए गणिज्जमाणे चत्थादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे
विदियादो, जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे पुव्वगदादो । पुव्वानं वण्णणादो का (वा) तेसि
आधारभूदलक्खणेण पुव्वगदो त्ति गुणणाम । पमाणं अक्खर-पद-संघाद-पडिवित्ति-अणिओगद्दारेहि
सखेज्ज, अत्थदो पुण अणंतं । वत्तव्वदा ससमयवत्तव्वदा । अत्थाधियारेण ज तं पुव्वगद त
चउदसविधं । तं जहा—उत्पायपुव्वं अग्गायणीयं वीरियाणुवादो अत्थिणत्थिपवादं णाणपवादं
सच्चपवादं आदपवादं वम्मपवादं पच्चक्खाणणामधेयं विज्जाणुवादं कल्लाणणामधेयं पाणावायं
किरियाविमालं लोगविंदुसुदं चेदि ।

तत्थ उपादपुव्वं दस वत्थू [हिं] वेसदपाहुडं [डेहि] १०।२०० कोडिपदेहि १०००००००
उपाद-वय-धुवत्त वण्णेदि । अग्गायणीयं णाम पुव्वं चोदस वत्थू [हिं] १४ वेसदासीदिपाहुडा
[डेहि] २८० छण्णउदिलक्खपदेहि ६६००००० अगपदेहि [पदाणि] वण्णेदि विरियाणुवाद-
णामपुव्वं अट्ठवत्थूहि ८ एगसदसट्ठि पाहुडेहि १६० सत्तरिलक्खपदेहि ७०००००० अपविरीय
परविरीयं उभयविरीयं खेत्तविरीयं भवविरीयं तवविरीयं वण्णेदि । अत्थिणत्थियवादं णाम पुव्वं
अट्ठारसवत्थूहि १८ तिणिसदसट्ठिपाहुडेहि ३६० सट्ठिलक्खपदेहि ६०००००० जीवाजीवाणं अत्थि-
णत्थित्तं वण्णेदि । [तं जहा-] जीवो जीवभावेण अत्थि, अजीवभावेण णत्थि । अजीवो अजीव-
भावेण अत्थि, जीवभावेण णत्थि । णाणपवादं णाम पुव्वं वारस-वत्थूहि १२ वेसदचत्तालीस-
पाहुडेहि २४० एऊणकोडिपदेहि ६६६६६६६ पंच णाण तिणिण अण्णाणं च वण्णेदि । दव्व-गुण-
पच्चयविसेसेहि अणादिमणिधण अणादिसणिधणं सादि-अणिधण सादि-सणिधण च वण्णेदि ।
सच्चपवादं तत्तियवत्थु-पाहुडेहि १२ । २४० एगकोडि-छप्पदेहि १००००००६ दसविधसच्चाणि
वण्णेदि ।

जणवय संमद डुवणा णामे रूवे पडुच्च सच्चेय ।

संभावण ववहारे भावे णो [ओ] पम्मसच्चेय ॥३८॥

आदपवादं सोलसवत्थूहि १६ वीसुत्तरतिणिसदपाहुडेहि ३२० हव्वीसकोडिपदेहि
२६००००००० आदं वण्णेदि आदि त्ति [वा] विण्हु त्ति वा भुत्तेत्ति वा धुद्वेत्ति वा [इच्चादि-
सरूवेण । उत्तं च—]

जीवो कत्ता य वत्ता य [पोणी] अप्पा [भोत्ता] य पोग्गलो ।

वेदो [विण्हू] सयंभू य सरीरी तह माणवो ॥३९॥

सत्ता जंतू य माणी य [माई] जोगी य संकरो [संकडो] ।

सयलो [असंकडो] य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य ॥४०॥

जीवदि जीविस्सदि संजीविदपुव्वो वा जीवो । सुहासुहं करेदि त्ति कत्ता । सच्चमसच्चं संत-
मसतं वददि त्ति वत्ता । [पाणा एयस्स संति त्ति पाणी ।] अमर-नर-तिरिक्ख-णाग्गभावे चट्ठुरप्पा
ससारे कुसलमकुसल भुज्जदि त्ति भोत्ता । पूरदि गलदि त्ति वा पुग्गलो । सुहमसुहं वेददि त्ति
वेदो । अदीदाणागदपच्चुप्पणं जाणदि त्ति विण्हू । सयमेव भूदं च सयंभू । सरीरमत्थि त्ति
सरीरी । शरीरं धारयतीति वा शरीरी । सरीरसमिदो त्ति वा सरीरी । [मणू णाणं तत्थ भवो
माणवो ।] सज्जणसंवंध-मित्तवग्गा [दिसु] सज्जदि त्ति वा सत्ता । चट्ठुगदिसंसारे जायदि जण-
यदि त्ति वा जंतू । [माणो अत्थि त्ति माणी । माया अत्थि त्ति मायी । जोगो अत्थि त्ति जोगी ।

१ गो० जी० २२१ । २. इमे गाये धव० पु० १, पृ० ११६ तथा गो० जी० जी० प्र० ३३६
तमगाथाटीकायामुद्धते स्तः ।

अइसण्हदेहपमाणेण संकुडदि त्ति संकुडो । सव्वं लोगागासं वियापदि त्ति असंकुडो । खेत्तं ससरुवं जाणादि त्ति खेत्तण्हू । अट्टकम्मन्मंतरो त्ति अंतरप्पा ।

कम्मपवादं वीस-वत्थूहि २० चत्तारि-सदपाहुडेहिं ४०० इक्क-कोडि-असीदिलक्खपदेहिं १८०००००० अट्टविधं कम्मं वण्णेदि । पच्चक्खाणणामधेयं तीसवत्थूहि ३० छसदपाहुडेहिं ६०० चउरसीदिलक्खपदेहिं ८४०००००० दव्व-भावपरिमिदापरिमिदपच्चक्खाणं उववासविधि च वण्णेदि । विज्जाणुवादं पण्णारसवत्थूहि १५ तिणिसदपाहुडेहिं ३०० एक्ककोडिदसलक्खपदेहिं ११०००००० अंगुट्टपसेणादि सत्तसदा खुल्लयमंता रोहिणी आदि पंचसदा महाविज्जा-उपत्ति वण्णेदि । कल्लाणणामधेयं दसवत्थूहि १० वेसदपाहुडेहिं २०० छव्वीसकोडिपदेहिं २६००००००० वल्लेव-वासुदेव-चक्खवट्ठि-तिथयरारणं णक्खत्त-गह-तारया-चंद-सूराणं चारं अट्टंगमहाणिमित्तफलं च वण्णेदि, चारित्तविधिं [च] ।

पाणावायं तत्तियवत्थूहि १०० पाहुडेहिं २०० तेरसकोडिपदेहिं १३००००००० विज्जासत्थं वण्णेदि । पाणाणं वड्ढि-हाणी कुमार-तिगिच्छा भूद-तंतादि-ऊसासाउगपाणादिपमाणं एदेहिं वण्णेदि । किरियाविसालं तत्तिएहिं वत्थूहिं १० पाहुडेहिं २०० णवकोडिपदेहिं ६००००००० छंदोवचित्ति-अक्खरकिरिया-कव्वादि वण्णेदि । लोगबिदुसुदं तत्तिएहिं वत्थूहिं १० पाहुडेहिं २०० वारसकोडि-पण्णसलक्खपदेहिं १२५००००००० मोक्खपरियम्मं मोक्खसुखं च वण्णेदि ।

दस चउदस अट्टट्टारस वारस तह य दोसु पुव्वेसु ।

सोलस वीसं तीसं दसमम्मि य पण्णारस वत्थू ॥४१॥

एदेसिं पुव्व्वाणं एवदिओ वत्थुसंगहो भणिदो ।

सेसाणं पुव्व्वाणं दस दस वत्थू य णिवदामि ॥४२॥

एदेसिं सव्वसमासो पंचाणउदिसदं १६५ ।

एक्केकम्मिह य वत्थू वीसं वीसं च पाहुडा भणिया ।

विसम-समा वि य वत्थू सव्वे पुण पाहुडेहिं समा ॥४३॥

पाहुडसव्वसमासं तिण्णि सहस्सा णवसदा ३६०० ।

अंगवाहिरं चउदसभेदं तमेयं णामं थवो भणियं । सामाइयं णामादि छसम्मत्तं वण्णेदि । थवं चउवीसण्हं तिथयरारणं वंदणासु छेहकल्लाणादि वण्णेदि । वंदणा एराजिण-जिणालयवंदणा-णिगवज्जभावं वण्णेदि । पडिक्कमणं सत्तविहं पडिक्कमणं वण्णेइ । वेणइयं णाणादिविणयं वण्णेइ । किरियम्मं अरहंतादीणं पूआ वण्णेइ । दसवेआलियं आयार-गोयारविहिं वण्णेइ । उत्तरज्झयण उत्तरपदाणि वण्णेइ । कप्पववहारो साहूणं जोगआचारमज्जगासेवणपाअच्छित्तं वण्णेइ । कप्पा-कप्पियं साहूणं जं कप्पदि, जं ण कप्पइ तं वण्णेइ । महाकप्पियं कालसंवणणे आसिदूण साहुपा-ओग्गदव्व-खेत्तादीणं वण्णेइ । पुंडरीयं चउविहदेवेसुववादकारण-अणुट्टाणाणि वण्णेइ । महापुंडरीयं इंद-पडिंद-उपत्तिं वण्णेइ । णिसीहियं बहु पायच्छित्तं वण्णेइ ।

एवं सुदरुक्खो समत्तो ।

पढमो

पयडिसमुक्कित्तणा-संगहो

पयडीवंधणमुक्कं पयडिसरूवं विजाणदे सयरं ।

वंदित्ता वीरजिणं पयडिसमुक्कित्तणा वुच्छं ॥१॥

मंगलणिमित्तहेदुं परिमाणं णाममेव जाणाहि ।

छट्ठं तह कत्तारं आइम्मि य सव्वसत्थाणं ॥१॥

आई मंगलकरणं सिस्सा लहुपारगा हवन्ति त्ति ।

मज्झे अव्वोच्छित्ती विज्जा विज्झाफलं चरमे ॥२॥

एत्तो पयडिसमुक्कित्तणा कस्सामो । तं जहा—

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेदणीय मोहणीयं ।

आउग णामं गोदं तहंतरायं च मूलपयडीओ ॥२॥

पडपडिहारसिमज्जा हडिचित्तकुलालमंडयारीणं ।

जह एदेसिं भावा तह वि य कम्मा मुणेयव्वा ॥३॥

पंच णव दुणि अट्ठावीसं चदुरो तथेव वादालं ।

दोणिण य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा हुन्ति ॥४॥

जं तं णाणावरणीयं कम्मं तं पंचविहं—आभिणिबोधियणाणावरणीयं सुअणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जयणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि । जं त दंसणावरणीयं कम्मं तं णवविधं—णिह्णिण्णिदा पयलापयला थोणगिद्धी णिदा पयला चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि । जं तं वेदणीयं कम्मं तं दुविहं—सादावेदणीयं असादावेदणीयं चेदि । जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविधं—दंसणमोहणीयं चरित्तमोहणीयं चेदि । जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविधं, संतकम्मं पुण तिविधं—मिच्छत्त सम्मत्त सम्मामिच्छत्तमिदि तिणिण । जं त चरित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविधं—कसायचरित्तमोहणीयं अकसायचरित्तमोहणीयं चेदि । जं तं कसायचरित्तमोहणीयं [तं] सोलसविधं—अणंताणु-वधि-क्रोध-माण-माया-लोभा अपञ्चक्खाणावरण-क्रोध-माण-माया-लोभा पञ्चक्खाणावरण-क्रोध-माण-माया-लोभा संजलणक्रोध-माण-माया-लोहा चेदि । जं त णोकसायचरित्तमोहणीयं कम्मं तं णवविहं—इत्थिवेद पुरिसवेद णपुंसकवेदं हस्स रदि अरदि सोग भय दुगुंछा चेदि । जं तं आउगणामकम्मं त चदुविधं—णिरयाउगं तिरियाउगं मणुआउगं देवाउगं चेदि । जं तं णामकम्मं तं वादालीसपिंडापिंडपयडीओ—गइणामं जाइणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीर-संधादणामं सरीरसठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंधणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणाम आणुपुव्वीणाम अगुरुलहुणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणाम आदवणामं

उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेगसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुभणामं असुभणामं सुभगणामं दुभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदिज्जणामं अणादिज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं तित्थयरणामं चेदि । जं तं गइणामकम्मं तं चउव्विहं—णिरयगइणामं तिरिक्खगइणामं मणुयगइणामं देवगइणामं चेदि । जं तं जादिणामकम्मं तं पंचविधं—एइंदियजादिणामं वेइंदियजादिणामं तेइंदियजादिणामं चउरिंदियजादिणामं पंचदियजादिणामं चेदि । जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेजससरीरणामं कम्मइगसरीरणामं चेदि । जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजइगसरीरबंधणणामं कम्मइगसरीरबंधणणामं चेदि । जं तं सरीरसंघादणामं कम्मं तं पंचविधं—ओरालियसरीरसंघादणामं वेउव्वियसरीरसंघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेजइगसरीरसंघादणामं कम्मइगसरीरसंघादणामं इदि । जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं—समचदुरससरीरसंठाणणामं णगोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं सादिसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि । जं तं अंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं—ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं इदि । जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छव्विहं—वज्जरिसभवइरणारायसरीरसंघडणणामं वज्जणारायसरीरसंघडणणामं अद्धणारायसरीरसंघडणणामं कीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरणामं चेदि । जं तं वणणामकम्मं तं पंचविधं—किण्हवणणामं नीलवणणामं रुहिरवणणामं हल्लिहवणणामं सुक्खिलवणणामं चेदि । जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं—सुरभिगंधणामं दुरभिगंधणामं चेदि । जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं—तित्तणामं कडुयणामं कसाइलणामं अंवलणामं महुरणामं चेदि । जं तं फासणामकम्मं तं अट्टविहं—कक्खडणामं मउवणामं गुरुगणामं लहुगणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उण्हणामं चेदि । जं तं आणुपुठ्ठीणामकम्मं तं चउव्विहं—णिरयगदिपाओग्गाणुपुठ्ठी तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुठ्ठी मणुसगदिपाओग्गाणुपुठ्ठी देवगदिपाओग्गाणुपुठ्ठी णामं चेदि । अगुरुगलहुगणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदवणामं उज्जोयणामं चेदि । जं तं विहायगदिणामकम्मं तं दुविधं—पसत्थविहायगदिणामं अपसत्थविहायगदिणामं चेदि । तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेगसरीरणामं साधारणसरीरणामं चेदि । थिरणामं अथिरणामं सुभणामं असुभणामं सुभगणामं दुभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं आदेज्जणामं अणादिज्जणामं जसकित्तिणामं [अजसकित्तिणामं] तित्थयरणामं चेदि । जं तं गोदणामकम्मं तं दुविहं—उच्चागोदं णिच्चागोदं चेदि । जं तं अंतराइयं कम्मं तं पंचविहं—दाण अंतराइयं लाभअंतराइयं भोगअंतराइयं उवभोगअंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ।

एवं पयडिसमुक्कित्तणं समत्तं ।

पयडि त्ति किं भणिदं होदि ? प्रकृतिः स्वभावः शीलमित्यर्थः । दृष्टान्तश्च इक्षोः का प्रकृतिः ? मधुरता । निम्बे का प्रकृतिः ? तिक्तता । एवं ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? अज्ञानता । ज्ञानमावृणोति प्रच्छादयतीति वा ज्ञानावरणीयम् । किमिव ? देवतामुखपटवस्त्रवत् । अथवा घटाभ्यन्तरदीपवत् । दर्शनावरणस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? दर्शनप्रच्छादनता । अथवा अदर्शनता । किमिव ? राजद्वारे निरोधितप्रतिहारवत् । प्रेक्षणेन्मुखस्य मेघप्रच्छादितादित्यवत् । वेदनीयस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? वेदनता । वेद्यत इति वेदनीयं सुखदुःखानुभवनता । किमिव मधुलिप्तखङ्गधारवत् । मोहनीयस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? मोहनता । मद्यत इति मोहनीयम् । किमिव ? धत्तुर-मद्य-मदनकोद्ववदिति । आयुष्कस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? चतुर्गतिविवर्धितानां (-व्यवस्थितानां) जीवानां भव-

धारणता । किमिव ? स्तम्भे बद्धपुरुषवत् । नामकर्मणः का प्रकृतिः ? नानाविधशरीराणि निर्वर्तयतीति नाम । अथवा शुभाशुभनामनिर्माणता । किमिव ? चित्रकारवत्, सुबलु ? काष्ठशिला-कर्मकारवदिति । गोत्रकर्मणः का प्रकृतिः ? उच्च-नीचगोत्रे निर्वर्तयतीति गोत्रम् । अथवा उच्च-नीचद्वयगोत्रनिर्माणता । किमिव ? कुम्भकारवत् । अन्तरायस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? विघ्नकर-णता । किमिव ? भाण्डागारिकवत् । अथवा गिरिदुर्गनद्यटवीवदिति ।

जं तं आभिनिबोधियणाणावरणीयं णामं त पञ्चभिरिन्द्रियैर्मनसा च दृष्ट-श्रुतानुभूतानाम-र्थानां अवग्रहेहावायधारणास्वरूपेण जानातीत्याभिनिबोधिकज्ञानम् । तस्य आवरण आभिनि-बोधिकज्ञानावरणीयम् । तत्रावग्रहो 'ग्रह उपादाने धातु', अवग्रहणमवग्रहः । अथवा विषय-विपयिसन्निपातसमनन्तरमाद्यग्रहणमवग्रहः । विपया येपा विद्यन्ते इति विषयिणः । तत्र ईहा नाम 'ईहा चेष्टाया धातुः', ईहनं मनसा विचारणं वा ईहा । अथवा अवगृहीतार्थस्य विशेषेणार्थकाङ्क्ष-णमोहा । जहा पुर्वं सामण्येण सव्वण्हु-सहं घेत्तूण पुणो तस्स विसेसमिच्छमाणो जिणिंद-बुद्ध-हरि-हर-हिरण्यगन्धमादीणं अत्तागम-पदस्थ-पमाण-हेदू-णय-दिद्वतेहि जा मग्गणा सा ईहा णाम । तत्रावायो नाम 'इण गतौ धातुः', अवायनं तत्त्वार्थपरिच्छेदकरणं वा अवायः । अथवा ईहितार्थस्य निश्चय-व्यवसायोऽवायः । जहा पुर्वं हरि-हर-हिरण्यगन्ध-बुद्ध-जिणिंदाणं परिक्खा काऊण पुणो एदेसि हरि-हर-हिरण्यगन्ध-बुद्धादयो सव्वण्हू अत्ता ण होदि त्ति एदेसिं अवणयणं काऊण पुणो सव्वण्हू अत्ता जिणिंदो चेव होदि त्ति णिच्छयं काऊण जो अत्तपरिग्गहो सो अवायो । तत्र धारणा णाम 'धृसु धारणे' धातुः, धरणं धारणा । अथवा पूर्वगृहीतस्यार्थस्य कालान्तरादपि स्मृतिधारणा । जहा पुर्वं णिच्छयं कादूण जो सव्वण्हू सदु (सइ) परिग्गहो कओ दीहेणं कालेणं अविसरणं सा धारणा नाम ।

बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनि-सृत-अनुक्त-ध्रुव[से]तराणामिति । यथा बहु इति बहूनां तज्जातीनां ग्रहणम् । यथा चक्षुषा बहूनां हंसानां ग्रहणम्, श्रोत्रस्य बहूनां शब्दानां ग्रहणम्, घ्राणस्य बहूनां चम्पक-कुसुमानां ग्रहणम्, रसनस्य बहूनां निम्बपत्राणां ग्रहणम्, स्पर्शनस्य बहूनामुदकबिन्दूनां ग्रहणम्, नोइन्द्रियस्य बहूनां संज्ञानां ग्रहणम् । चक्षुरादीनां यथासंख्यं बहुविधानां हंस-बलाकादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां शब्दभेदमृगादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां चम्पकोत्पलादीनां ग्रहणम्, बहु-विधानां निम्बपत्र-कटुकरोहिण्यादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां उदकबिन्दु-सर्पोत्प [द्वाञ्जोत्प-लादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां जीवसंज्ञानां ग्रहणम् । चक्षुरादीनां यथासंख्यं तेषामेवाक्षु ग्रहणं क्षिप्रम्, तत्सदृशदृश्यमानकेनार्थेन निःसृत-अनिःसृतानामर्थानां ग्रहणम् । यथाभ्रगर्जनं श्रुत्वा अभ्रगर्जनमेवेत्यवधारयति । एवं सर्वत्र । अनुक्तानां अकथितानां ग्रहणम्, यथाऽग्निमानयेत्युक्ते खर्परग्रहणं करोति । ध्रुवाणां नित्यानां ग्रहणम् । यथाऽऽकाश-धर्मास्तिकायादीनां ग्रहणम् । सेतराणां नाम बहुकस्य इतरं एकस्य ग्रहणम् । यथा बहूनां हंसानां मध्ये एकहसस्य ग्रहणम् । बहुविधस्य इतरं एकविधम् । बहुषु विद्यमानेषु एकस्य प्रकारस्य ग्रहणम् यथा—वीणा-मृदङ्गादिषु वीणाशब्दस्य ग्रहणम् । एवं सर्वत्र । क्षिप्रस्य इतरं [अक्षिप्रम्] स यथा एतेषां चिराद् ग्रहणम्, वीणादीनां चिराद् ग्रहणम् । अनिःसृतस्य इतरं निःसृतम्, यथाऽभ्रगर्जनवत्कुञ्जरगर्जनम्, शङ्ख-वदधिकं [शङ्खवच्छुक्ल दधिकम्], उत्पलगन्धवत्कुष्ठगन्धः, द्राक्षावद्गुडः, उत्पलनालवत्सर्पस्पर्श इति ग्रहणम् । अनुक्तस्य इतरं उक्तम् । यथा खर्परं गृहीत्वा अग्निमानयतीति । ध्रुवस्य इतरं अध्रुवम् । यथा अध्रुवाणां घट-पटादीनां अनित्यादीनां ग्रहणम् ।

आभिनिबोधिकज्ञानमिति—अ इति द्रव्य-पर्यायः, मि इति द्रव्याभिमुखः, निरिति निश्चय-बोध इति । 'बुध अवगमने' धातुः । आभिनिबोधि[ध]क एव आभिनिबोधिक वा प्रयोजनं अस्येति आभिनिबोधिकम् । आभिनिबोधिकमेव ज्ञानं आभिनिबोधिकज्ञानम् । आभिनिबोधिकज्ञानस्य आवरणं आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं चेति ।

आभिनिबोधिकज्ञानेनावगृहीतार्थस्य उपदेशपूर्वकं वा अनुपदेशपूर्वकं वा तत्समय-परसमय-गतानामर्थं पुनः जानातीति श्रुतज्ञानम् । श्रुतज्ञानस्य आवरणं श्रुतज्ञानावरणीयं चेति ।

अक्खरणांतिमभागो पज्जाओ णाम सो णाणो ।

अक्खरमेण पुणो णायव्वो अक्खरो णाणं ॥३॥

पदणामेण य भणिदो मज्झिमपदवणिदो पुव्वं ।

एओ य गदिसग्गणए संघादो होदि सो णाणो ॥४॥

चदुगदियमग्गणा विय बोधव्वो होदि पडिवत्ती ।

चउदहमग्गणणाणो अणिओगो णाम बोधव्वो ॥५॥

पाहुडपाहुडणाणो णादव्वो मग्गणा दु संखिज्जा ।

चउवीसदिअणिओगा पाहुडणाणो य णादव्वो ॥६॥

वीसदि पाहुडवत्थू संगवत्थुजुदो य पुव्वणाणो य ।

संखेवसहिद एदे बोधव्वा वीस भेदा य ॥७॥

अधस्ताद्धीयतीति अवधिः । कथमधस्तात् हीयतीति ?

अधोगौरवधर्माणः पुद्गला इति [चो]दिताः ।

ऊर्ध्वगौरवधर्माणो जीवा इति जिनोत्तमैः ॥८॥

कथिता [इति वाक्यशेषः] । पुद्गलेषु चिन्ता पुद्गलेषु धारणा पुद्गलेषु ज्ञानमित्यर्थः । अथवा अधो विस्तीर्णं द्रव्यं पश्यतीत्यवधिः । अवधिज्ञानस्य आवरणं अवधिज्ञानावरणीयं चेति ।

पल्लो सायर स्र्इ पदरो य घणंगुलो य जगसेढी ।

लोगपदरो य लोगो अट्ट दु माणा मुणेयव्वा ॥९॥

ओधिणाणी दव्वदो जहण्णेण जाणंते एगजीवस्स ओरालियसरीरसंचयविस्ससोवचयसहिदं घणलोगमेत्ते खंडे कदे तत्थेगखंडं जाणदि । समयं भूदं भविस्सं च जाणदि । उक्कस्सेण कम्मपरमाणू जाणदि । खेत्तदो जहण्णेण उस्सेधघणंगुलस्स असंखेज्जदिमभागं जाणदि । उक्कस्सेणासंखेयलोगं जाणदि । कालदो जहण्णेण आवलियाए असंखेज्जदिभागे भूदं भविस्सं च जाणदि । उक्कस्सेण असंखेज्जलोगमेत्तसगय [समयं] भूदं भविस्सं जाणदि । भावदो पुव्वभणिददव्वस्स सत्तिथं आवलियाए असंखेज्जभागं असंखेज्जलोगमेत्तवट्टमाणस्स पज्जायं जहण्णुक्कस्सेण जाणदि त्ति । सामण्णेण ओधिणाणस्स उक्कस्स-दव्वादिचटुविधो विसओ भणिदो । तं चेव विसेसिदूण भणिस्सामो ।

तद्यथा—ओधिणाणं तिविधं—देसोधी परमोधी सव्वोधी चेदि । जो सो देसोधि-उत्तस्स सामण्णभणिददव्वादि-जहण्णविसओ सो जहण्णेण होदि । वुत्तं च—

काले चदुण्ह वुड्डी कालो भजिदव्व खेत्तवुड्डी दु ।

वुड्डी दु दव्व-पज्जय भजिदव्वा खेत्त कालो य ॥१०॥

पुणो इदो पभुदि जाव मणवग्गणेण सूचि अगुल-असंखेज्जभागमेत्तं दव्वं खंडिज्जइ । एवं खंडिदे खेत्तदो एग-एगपदेसं वज्जाविज्जइ जाव सूचिअंगुलवियप्पं खेत्तदो [कालदो] एगसमयादि-कालं वड्ढाविज्जइ, भावो वि तप्पाओगो होदूण वड्ढुदि जाव उक्कोसेण खेत्त-कालदो किंचूणपल्लमेगं जाणदि । दव्व-भावं तप्पाओगं ।

देसोधियस्स जो दव्वादि-उक्कस्सविसओ सो परमोधियस्स जहणविसओ । तदो पहुदि-
दव्वं एगवारं आवलिण खंडिज्ज । खेत्त-काल-भावेण आवलिवियप्पं जाणदि । पुणो आवलि-
अणुणणगुणकारं कादूण दव्वभागहारो दव्वो खेत्तदो पडि आवलिमेत्तं आगासपदेस जाणदि,
पडिआवलियमेत्तं पज्जायं काल-भावेण जाणदि । एवं ताव खविं-[खंडि-]ज्जदि जाव पुव्व-
दव्वस्स आवलियसंखेज्जदिभागविअप्पं अत्थि । तदो त अवणेदूण कम्मक्खंधं ठवेदूण कमेण दव्वं
खंडिज्जदि, खेत्त-काल-भावो वड्ढाविज्जइ जाव उक्कस्सेण तप्पाओगं दव्व-खेत्त-काल-भावेण
असंखेज्जलोगं जाणदि ।

परमोधियस्स जो उक्कोसो विसओ सो सव्वोधियस्स जहणो । तदोप्पहुदि पुव्वविधाणेण
दव्वं खंडिज्जदि जाव उक्कस्सेण एगपरमाणू, खेत्तेण असंखेज्जलोगं, कालेण असंखित्तं लोममेत्त-
पज्जायं भूदं भविस्सं, भावेण असंखेज्जलोगमेत्तं वट्टमाणपज्जायं जाणदि ।

अण्णे पुण आयरिया भणंति ओहिणाणं छक्क । तं जहा—अणुगामी अणुगामी हीयमाणं
वड्ढमाणं अवट्ठिदं अणवट्ठिदं चेदि । अणुगामि प्रज्वलितहस्तधृतनिर्वातप्रदीपवत् । तं दुविध—
खेत्ताणुगामी भवाणुगामी । अणुगामी प्रज्वलितहस्तधृतनिर्वातप्रदीपवत् । एव दुविधं खेत्ता-
णुगामी भवाणुगामी चेदि । हीयमाणं कृष्णपत्ते चन्द्रमण्डलवत् । वड्ढमाणं शुक्लपक्षे चन्द्र-
मण्डलवत् । अवट्ठिदं आदित्यमण्डलवत् । अणवट्ठिदं लवणसमुद्रवत् । एवं ओधिणाणं
छन्विहं भणिद ।

‘मन ज्ञाने’ धातुः । मणदि परिवुब्भदि जाणदि त्ति वा मण । अधवा अप्पणो मणेण करण-
भूदेण इंदियाणिंदियसहगदे अत्थे अवमण्णदि बुज्झदि त्ति मणो । मणस्स पज्जया मणपज्जया ।
अथवा अप्पक्कचक्खेण परमणोगदाणि भवसंवधाणि दव्व-खेत्त-काल-भावधियप्पियाणि जाणदि
त्ति वा मणपज्जवणाणं । मनःपर्ययज्ञानस्य आवरणं मनःपर्ययज्ञानावरणीयं चेति । मणपज्ज-
वणाणी दुविहो—उज्जुमदी विचलमदी चेदि । तत्थ उज्जुमदी दव्वादि-चउन्विधो विसओ । दव्वादो
जहण्णेण जाणंतो एगसमइय-ओरालियं णिज्जरं जाणदि । उक्कस्सेण चक्खिंदिय-ओरालिय-
णिज्जरं जाणदि । खेत्तदो जहण्णेण गाउपुधत्तं जाणदि, उक्कस्सेण जोयणपुधत्तं जाणदि । कालदो
जहण्णेण दो-तिण्णि भवगहणाणि जाणदि । उक्कस्सेण सत्तट्टभवगहणाणि जाणदि । भावदो
जहण्ण-उक्कस्सेण दव्वस्स असंखेज्जपज्जायं जाणदि । विचलमदी दव्वदो जहण्णेण चक्खु-
इंदिय-अउरालियणिज्जरं जाणदि । उक्कस्सेण एगकम्मइयसमयपवद्धस्स विस्समोवचय-अविर-
हियस्स अणंतिमभागं जाणदि । खेत्तदो जहण्णेण जोयणपुधत्तं जाणदि । उक्कस्सेण माणुसखेत्तं
जाणदि । कालदो जहण्णेण सत्तट्टभवगहणाणि जाणदि । उक्कस्सेण असंखिज्जं जाणदि भव-
गहणाणि । भावे जं जं दिट्ठ दव्वं तस्स तस्स असंखेज्जं पज्जय जाणदि ।

सकलमसहायमेकं सर्वद्रव्यावभासकमनन्तम् ।

निरतिशयमनावरणं एतद्वरकेवलज्ञानम् ॥११॥

सर्वद्रव्यगुणपर्यायद्रव्यक्षेत्रकालभावतः करणकमव्यवधानेन विना युगपदेव एकस्मिन् समए
सव्वाओ जाणदि बुज्झदि पस्सदि त्ति वा [केवलज्ञानम्] । केवलज्ञानस्य आवरणं केवल-
ज्ञानावरणीयं चेति ।

तत्थ णिहाणिहाए तिन्वोदएण रुक्खग्गे विसमभूमीए जत्थ तत्थ वा देसे घोरंतो घोरंतो
सुवदि णिन्भर । पचला-पचलातिन्वोदएण वइट्ठओ उट्ठओ वा सुहेण गलमाणलालो पुणो
कंयमाणसिरो णिन्भर सुवदि थीणगिद्धीए तिन्वोदएण उट्ठाविदो पुणो सोवदि, सुत्तो वि कम्म

कुणदि, सुत्तो वि सकदि, दंतं कडकडावेदि । णिहाए तिब्बोदएण अप्पकालं सुवदि, उट्टाइज्जंतो लहुं उट्टेइ, अप्पसहेण चेयइ । पचत्ताए तिब्बोदएण बालुयाए भरियाइं व लोयणाइं होंति, गरुव-भारुदुद्धं व सीसयं होदि, पुणो पुणो लोयणाइं उम्मीलणं णिम्मीलणं कुणदि, णिहाभरेण पढंतो लहु अप्पाणं साहारेइ ।

सति प्रकाशे विमलविस्फारितलोचनोऽपि पश्यन्नपि न पश्यति तच्चक्षुरावृत्तं ज्ञेयम् । शृण्वन् जिघ्रन् रसन् स्पर्शन् स्वयं तद्गतार्थं अवग्रहमात्रमपि [न] स्यात्तदचक्षुरावृत्ति कर्म । पुद्गल-स्कन्धमेकैकं परमाणु पृथक्-पृथक्दर्शनसंज्ञावरणमेवावधिदर्शनावरणम् । सकलपदार्थातीता-नागतवर्तमानद्रव्यगुणपर्यायैर्युगपत्प्रतिसमयविलोकनासमर्थं येन तत्केवलदर्शनावृत्तम् ।

अव्यथितमनोवाक्कायैर्निरुपहृतपञ्चेन्द्रियनिरोगत्वाद्यनुभवनता सातम्, तद्विपरीतमसातम् ।

खयउवसमं विसोही देसण पाओग्ग करणलद्धीए ।

चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्तं ॥१२॥

पुण्वसंचियकम्ममलपडलअणुभागफट्टया जदा अणंतगुणहीणकमेण उदीरिज्जंति तदा खयउवसमलद्धी । अणंतगुणहीणकमेण उदीरिद-अणुभागफट्टयाण जणिदपरिणामो सादादिसुह-कम्मबंधणिमित्तो असादादि-असुहकम्मबंधविरुद्धो विसोधिलद्धी णाम । छद्दव्व-णवपदत्थोवदेसो देसणलद्धी णाम । सव्वकम्माणुक्कस्सट्ठिदिघादि-असुभाण उक्कस्स-अणुभागघादीए अंतोकोडाकोडी जहणट्ठिदी लदा-दारुसमाण-वे-अणुभागट्टाणु [-ट्टाणुभागो] ठविज्जइ पाओगलद्धी होइ ।

तत्थ करणलद्धी तिविधा-अधापवत्तयं अपुण्वं अणियट्ठी चेदि । तत्थ अधापवत्तकरण-पविट्ठस्स णत्थि ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी गुणसंकमो वा । केवलं अणंतगुणविसोधीए विसुद्धमाणो गच्छेदि । अप्पसत्थाणं कम्माणं अणंतगुणहीणकमेण ओहट्ठिदूण अणुभागं बंधदि । पसत्थाणं कम्माणं अणंतगुणवट्ठिकमेण अणुभागं बंधदि । एवं ठिदिकण [करण]-ओसरणे सहस्से कदे अधापवत्तद्धा समप्पदि ।

अपुण्वकरणपविट्ठस्स अत्थि ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी गुणसंकमो वा । एत्थेव अणंतगुणविसोधीए विसुद्धमाणो गच्छेदि, अप्पसत्थाणं कम्माणं अणंतगुणहीणकमेण ओहट्ठिदूण अणुभागबंधं बंधदि, पसत्थाण कम्माणं अणंतगुणवट्ठिकमेण अणुभागं बंधदि, एगट्ठिदिकंडयपडण-काले व्व [च] संखेज्जाणि अणुभागकंडयपडिदफट्टाणि गालेइ । एवं ठिदिकंडए ओसरणसहस्से कए अपुण्वकरणद्धा समप्पदि ।

अणियट्ठिकरणपविट्ठस्स अपुण्वकरणं व । णवरि मिच्छत्तस्स य अंतोकोडाकोडिट्ठिदि कादूण पढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तट्ठिदि मुत्तूण उवरि अंतोमुहुत्तं अंतरकरणं कादूण पुणो चरमावलि मोत्तूण ओकडुण-उदीरणं कादूण उवसमसम्माइट्ठिकाले मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त [मिदि] तिविहं करिय उवसमसम्माइट्ठी होदूण अच्छदि । एदेण कारणेण मिच्छत्तं एगं बज्झदि, सत्ताभेदेण तिविह होदि ।

पढमो दंसणघादी विदिओ पुण देसविरदिघादी य ।

तदिओ संजमघादी चउत्थ जहखायसंजमो घादी ॥१३॥

जलरेणुभूमिपव्वदराइसरिसो चदुविधो कोधो ।

तह वल्ली कट्टी सालत्थंभो हवे माणो ॥१४॥

माया चमरि-गोमुत्ति-विसाण-वंसमूलसमा ।

हालिद्-कदम-णिली-किमिरागसमो हवे लोहो ॥१५॥

संयोजयन्ति भवमनन्तसंख्येयभवः (?) कपायास्ते संयोजनावानन्ता (?) वानन्तानुबन्धिता वाधकतास्तेषाम् ।

स्तृणाति छादयति आत्मपरदोषमिति स्त्री । पुरु कर्माणि करोतीति पुरुषः । न पुमान्, न स्त्री नपुंसकम् । हसनं हासः । रमण रतिः । न रतिः अरतिः । शोचन शोकः । भीतिर्भयम् । जुगुप्सनं जुगुप्सा ।

[नारकायुः] नारकभवधारक इत्यर्थः । [तिर्यगायुः] तिर्यग्भवधारक इत्यर्थः । [मनुष्यायुः] मनुष्यभवधारक इत्यर्थः । [देवायुः] देवभवधारक इत्यर्थः ।

गतिर्भवः संसार इत्यर्थः । यदि गतिनामकर्म न स्यात्, अगतिः एव जीवः स्यात् । पुनर्भव-निर्वर्तकं गतिनाम । जातिः लब्धिः प्राप्ति शक्तिरित्यर्थः । यदि जातिनामकर्म न स्यात् जीव-स्यालब्धिः स्यात् । अत इन्द्रियाणां लब्धिनिर्वर्तकं जातिनाम । यदि शरीरनामकर्म न स्यात्, अशरीरी आत्मा स्यात् । अतः शरीरनिर्वर्तकं शरीरनाम । यदि शरीरबन्धननामकर्म न स्यात्, परस्परेणाबन्धनं शरीरस्य स्यात् सिकृतापुरुषवत् । अतः परस्परेण शरीरप्रदेशबन्धननिर्वर्तकं शरीरबन्धननाम । यदि शरीरसंघाननामकर्म न स्यात् तिलमोदकवत् शरीरं स्यात् । अयःपिण्ड-वदेकीकरणं शरीरसंघातनाम । समप्रतिभागेन शरीरावयवसन्निवेशव्यवस्थापनं कुशलशिल्प-निर्वर्तितं अवस्थितचक्रवत्-अवस्थानकरणं समचतुरस्रसंस्थानं नाम । नाभेरुपरिष्ठाद् भूयसो देहसन्निवेशस्य अधस्ताच्चात्पशो जातं न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानं नाम । न्यग्रोधाकारसमतप्राप्ति-तार्थः (?) तद्विपरीतसन्निवेशकं सातिसंस्थानं नाम । वाल्मीकनुल्याकारम् । पृष्ठकप्रदेशभाविबहु-पुद्गलप्रचयविशेषलक्षणस्य निर्वर्तकं कुञ्जसंस्थाननाम । सर्वाङ्गोपाङ्गद्वयव्यवस्थाविशेषकरणं वामनसंस्थानं नाम । सर्वाङ्गोपाङ्गानां हुण्डसंस्थितव्यं हुण्डसंस्थाननाम । यदि संस्थाननामकर्म न स्यात्, लोष्ठवत् [शरीरं स्यात्] अतः शरीरसंस्थाननिर्वर्तकं संस्थाननाम । यद्यङ्गोपाङ्गनामकर्म न स्यात् लोष्ठवत् । अतः अङ्गोपाङ्गनिर्वर्तकं अङ्गोपाङ्गनाम । तत्र तावदङ्गानि [पादौ] बाहू पृष्ठ-वक्षोसिरसि (नितम्ब-शिरांसि) । शेषाण्युपाङ्गानि । उक्तं च—

णलया बाहू य तथा णियं व पुट्टी उरो य सीसो य ।

अट्टे व य अंगाई देहे सेसा उवंगाई ॥१६॥

वज्राकारोभयास्थिसन्धिः । प्रत्येकमध्ये सवल्यबन्धनं सनाराचसंगूढनं वज्रर्षभनाराच-शरीरसंहनननाम । तदेवोभयवज्राकारो संप्राप्तवल्यबन्धनं वज्रनाराचशरीरसहनननाम । तदेवो-भयवज्राकारत्वव्यपेतमवल्यबन्धनं सनाराचशरीरसहनननाम । तदेवैकपार्श्वं सनाराचमित-रसनाराचमर्धनाराचशरीरसहननं नाम । तदुभयविरहितमन्ते सकीलिका नाम शरीरसहननं नाम । अन्तरे प्राप्त (?) परस्परास्थिसन्धिर्वहिः शरीरच्छाद्र (?) मासघटितमसंप्राप्तासृपाटिकासंहननं नाम । यदि संहनननामकर्म न स्यात्, असहननशरीरः स्यात्, देवशरीरवत् । अतः संहनन-निर्वर्तकं संहनननाम अस्थिवन्धनमित्यर्थः ।

यदि वर्णनामकर्म न स्यात्, अवर्णं शरीरं स्यात्, नानावर्णं वा स्यात् । अतः वर्ण-निर्वर्तकं वर्णनाम । यदि गन्धनामकर्म न स्यात् नानागन्धमगन्धं वा शरीरं स्यात् । अतः गन्ध-निर्वर्तकं गन्धनाम । यदि रसनामकर्म न स्यात्, नानारसं अरसं वा शरीरं स्यात् । अतः रसनिर्व-

तर्कं रसनाम । यदि स्पर्शनामकर्म न स्यात्, नानास्पर्शं [अस्पर्शं] वा शरीरं स्यात् । अतः स्पर्शनिर्वर्तकं स्पर्शनाम ।

अनुपूर्वे भवा आनुपूर्वी, अनुगतिः अनुक्रान्तिरित्यर्थः । आदिलाभे च क्षेत्रम् प्रतिगमानुपूर्वी । यद्यानुपूर्वी नामकर्म न स्यात् क्षेत्रान्तरप्राप्तिर्जीवस्य न स्यात् । अतः क्षेत्रान्तरप्रापकमानुपूर्वी नाम । यद्यगुरुलघु नामकर्म न स्यात्, लोह-तूलवद् गुरुर्वा लघुर्वा शरीरं स्यात् । अतः शरीरस्य अगुरुकलहुकनिर्वर्तकं अगुरुकलहुकनाम । उपेत्य घातः उपघातः । उपघात आत्मघात इत्यर्थः । यद्युपघातकर्म न स्यात्, स्वशरीरेण घातो न स्यात् । तद्यथा—महाशृङ्ग-लम्बस्तन-तुण्डोदरमित्येवमादि । अतः आत्मघातनिर्वर्तकं उपघातनाम । परेपां घातः परघातः । यदि परघातनामकर्म न स्यात्, अपरघातं शरीरं स्यात् । यथा सिंह-व्याघ्र-कुञ्जर-वृषभादीनां घातो न स्यात् । अतः परघातनिर्वर्तकं परघातनाम । ऊर्ध्वः श्वासः उच्छ्वासः । यद्युच्छ्वासनामकर्म न स्यात्, जीवस्योच्छ्वासनं न स्यात् । अतः उच्छ्वासनिर्वर्तकं उच्छ्वासनाम । यद्यातपनामकर्म न स्यात्, अनातप-शरीरः स्यात् । अत आतपशरीरनिर्वर्तकं आतपनाम । यद्युद्योतनामकर्म न स्यात्, उद्योतशरीरं न स्यात् । अतः उद्योतशरीरनिर्वर्तकं उद्योतनाम । विहाय आकाशं गगनमम्बरमित्यर्थः । विहायसि गतिः विहायोगतिः । यदि विहायोगतिनामकर्म न स्यात्, आकाशे जीवगतिर्न स्यात्, तदभावे अल्पप्रदेशानां भूम्यवस्थानं बहूनां आकाशव्यवस्थापनं पतनमेव स्यात् । अत आकाशगतिनिर्वर्तकं विहायोगतिनाम । यदि त्रसनामकर्म न स्यात्, न त्रसति जीवः; आकुञ्चन-प्रसारण-निमीलनोन्मीलन-स्पन्दनादि त्रसनं तद् द्वीन्द्रियादीनां न स्यात् । अतः त्रसनिर्वर्तकं त्रसनाम । यदि स्थावरनामकर्म न स्यात्, नावतिष्ठति जीवः, स्पन्दनाभावात् । अतः स्थावरनिर्वर्तकं स्थावरनाम । यदि बादरनामकर्म न स्यात्, सूक्ष्मजीव एव स्यात्, वर्णविभागाभावात्, चक्षुषा न ग्राह्यत्वात्; अनन्तानां जीवानां समुदीरितानामपि तमसि प्रक्षिप्ताञ्जनरेणुवत् अचक्षुर्विषयः स्यात् । अतः बादरनिर्वर्तकं बादरनाम । यदि सूक्ष्मनामकर्म न स्यात्, बादर एव जीवः स्यात्, पत्योपमस्यासंख्येयभागे जीवसमुदीरितेऽपि चक्षुषा ग्राह्यः स्यात् । अतः सूक्ष्मनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम । यदि पर्याप्तनामकर्म न स्यात्, आहारादीनामसंपूर्णत्वादपर्याप्त एव जीवः स्यात् । अतः पर्याप्तनिर्वर्तकं पर्याप्तनाम । यद्यपर्याप्तनामकर्म न स्यात्, आहारादीनां सम्पूर्णत्वात्पर्याप्त एव जीवः स्यात् । अतः अपर्याप्तनिर्वर्तकं अपर्याप्तनाम । यदि प्रत्येकनामकर्म न स्यात्, जीवस्य साधारणशरीरलब्धिः स्यात् । अतः प्रत्येकशरीरनिर्वर्तकं प्रत्येकशरीरनाम । यदि साधारणशरीरनामकर्म न स्यात्, एकैकस्य जीवस्य प्रत्येकशरीरं स्यात् । अतः साधारणशरीरनिर्वर्तकं साधारणशरीरनाम । यदि स्थिरनामकर्म न स्यात्, रस-रुधिर-मांसमेदास्थि-मज्जा-शुक्रादीनां स्थैर्याभावाद् गतिरेव स्यात् । अतस्तेषां स्थिरतानिर्वर्तकं स्थिरनाम । यदि अस्थिरनामकर्म न स्यात्, रसादीनां स्थैर्यं स्यात्, परस्पर-संक्रान्तिर्न स्यात् । अत एकधातु-शरीरं स्यात् । अतस्तेषां अस्थिरतानिर्वर्तकं अस्थिरनाम । यदि शुभनामकर्म न स्यात्, अशुभाङ्गाण्येव स्युः, कक्षोपस्थादिवत् । अतः शुभनिर्वर्तकं शुभनाम । यद्यशुभनामकर्म न स्यात्, नयन-ललाटादिवत् शुभाङ्गाण्येव स्युः । अतः अशुभनिर्वर्तकं अशुभनाम । यदि सुभगनामकर्म न स्यात्, दुर्भगत्वं अकान्तित्वं भवति । अतः कान्तित्वनिर्वर्तकं सुभगनाम । यदि दुर्भगनामकर्म न स्यात्, सुभगकान्तित्वं भवति । अतः दुर्भगं अकान्तित्वनिर्वर्तकं दुर्भगनाम । यदि सुस्वरनामकर्म न स्यात्, परुषनाद-शृगालोष्ट्रादिवत् [] । अतः सुस्वरनिर्वर्तकं सुस्वरनाम । यदि दुःस्वरनामकर्म न स्यात्, मधुरनाद-मयूरकोकिलादिवत् [] । अतः दुःस्वरनिर्वर्तकं दुःस्वरनाम । आदेयं ग्रहणीयता बहुमानतेत्यर्थः । अतः आदेयनिर्वर्तकं आदेयनाम । अनादेयमग्रहणीयता अवमानतेत्यर्थः । अतः अनादेयनिर्वर्तकं अनादेयनाम । यशः गुणोद्भावनं कीर्तिः ख्यातिरित्येकार्थः । अतः गुणख्यातिनिर्वर्तकं यशःकीर्तिनाम । अयशः अगुणोद्भावन-

मित्येकार्थः । अतः दोषख्यातिनिर्वर्तकं अयशःकीर्तिनाम । नियतं नाम निर्माणं अनेकधा इत्यर्थः । निर्माणनिर्वर्तकं निर्माणनाम । निर्माणं तद् द्विविधं प्रमाणनिर्माणं स्थाननिर्माणमिति । प्रमाणनिर्वर्तकं प्रमाणनिर्माणम् । यदि प्रमाणनिर्माणनामकर्म न स्यात्, असंख्येययोजन-विस्तार आयामः [स्यात्,] अतः लोके प्रमाणनिर्वर्तकं प्रमाणनिर्माणम् । अन्यथा तालश्रुचिवत् (?) आलोकान्तशरीरं स्यात् । अथवा हस्तिस्तम्भकीलवत् लोकान्तविस्तृतशरीरं स्यात् । अङ्गो-पाङ्गानां प्रत्यङ्गगतानां स्वे स्वे स्थाने निर्मापकं स्थाननिर्माणम् । तद्भावे ललाटे मूर्ध्नि कर्ण-नयन-नासिकादीनां विपरोतविन्यासः स्यात् । अतः स्वजात्यनुरूपतः अङ्गोपाङ्गनिर्वर्तकं स्थान-निर्माणनाम । त्रिलोकजीवार्हसर्वजीवहितोपदेशजनकतीर्थकरनिर्वर्तक तीर्थकरनाम ।

जनपद-पितृ-मातृ-शुचिस्थान-मानैश्वर्य-धनादिप्राप्तिजन्मोच्च (?) उच्चगोत्रम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम् ।

दानस्यान्तरायं दानान्तरायं दानविघ्नमित्यर्थः । लाभस्यान्तरायं लाभान्तरायं लाभविघ्न-मित्यर्थः । भोगस्यान्तरायं भोगान्तरायं भोगविघ्नमित्यर्थः । परिभोगस्यान्तरायं परिभोगान्तरायं परिभोगविघ्नमित्यर्थः । वीर्यस्यान्तरायं वीर्यान्तरायं वीर्यविघ्नमित्यर्थः ।

एवं प्रकृतिवृत्तिः समाप्ता ।

इदि पढमो पयडिसमुक्कित्तणा-सगहो समत्तो

विदिओ

कम्मत्थव-संगहो

णमिऊण अणंतजिणे तिहुवणवरणाणदंसणपईवे ।

बंधुदयसंतजुत्तं वुच्छामि थवं गिसामेह ॥१॥

एत्थ पयडिवुच्छेदे कीरमाणे दुविहणयाहिप्पाओ भवदि—उत्पादाणुच्छेदो अणुत्पादाणु-
च्छेदो त्ति । उत्पादः सत्त्वं सत्, छेदो विनाशः अभावनिरूपता इति यावत् । उत्पाद एव
अनुच्छेदः, उत्पादानुच्छेदः, भाव एव अभाव इति यावत् । एसो दब्बट्टियणयववहारो । अनु-
त्पादः असत्त्वं अनुच्छेदो विनाशः, अनुत्पाद एव अनुच्छेदः अनुत्पादानुच्छेदः, असतः अभाव
इति यावत्, सत. असत्त्वविरोधात् । एसो पज्जवट्टियणयववहारो ।

मिच्छे सोलस पणुवीस सासणे अविरदे य दस पयडी ।

चउ छक्कमेयदेसे विरदे इयरे कमेण वुच्छिण्णा ॥२॥

दुगतीसचदुरपुव्वे पंचऽणियट्ठिम्हि बंधवोच्छेदो ।

सोलस सुहुमसरागे साद सजोगिम्हि बंधवुच्छिण्णा ॥३॥

पण णव इगि सत्तरसं अड पंच य चदुर छक्क छच्चेव ।

इगि दुग सोलस तीसं वारस उदओ अजोयंता ॥४॥

पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठय चदुर छक्क छच्चेव ।

इगि दुग सोलगुदालं उदीरणा होंति जोगंता ॥५॥

अण मिच्छ मिस्स सम्मं अविरदसम्मादि-अप्पमत्तंता ।

सुर-णिरय-तिरिय-आऊ णिययभवे चेव खीयंति ॥६॥

सोलस अट्ठेक्केकं छक्केक्केक खीण अणियट्ठी ।

एयं सुहुमसराए खीणकसाए य सोलसयं ॥७॥

वावत्तरिं दुचरिमे तेरस चरिमे अजोगिणो खीणा ।

अडदालं पगडिसदं खविय जिणं णिव्वुदं वंदे ॥८॥

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेदणीय मोहणीयं ।

आउग णामं गोदं तहंतरायं च मूलपगडीओ ॥९॥

पंच णव दुण्णि अट्ठावीसं चदुरो तहेव वादालं ।

दोण्णि य पंच य भणिदा पगडीओ उत्तरा चेव ॥१०॥

मिच्छ णउंसयवेयं णिरयाउग तहय चेव णिरयदुगं ।

इगि-विगल्लिदिय जादी हुंडमसंपत्त आदावं ॥११॥

थावर सुहुमं च तहा साधारणं तह अपज्जत्तं ।
 एदे सोलस पयडी मिच्छम्हि य बंधुबुच्छेदो ॥१२॥
 थीणतिगं इत्थी वि य अण तिरियाउं तहेव तिरियदुगं ।
 मज्झिम चउसंठाणं मज्झिम चउ चेव संघडणं ॥१३॥
 उज्जोवमप्पसत्थं विहायगदि दुब्भगं अणादेज्जं ।
 दुस्सर णिच्चागोदं सासणसम्मम्हि बुच्छिणा ॥१४॥
 विदियकसायचउक्कं मणुआळ मणुअदुगं च ओरालं ।
 तस्स य अंगोवंगं संघडणादी अविरदम्हि ॥१५॥
 तदियकसायचउक्कं विरदाविरदम्हि बंधवोच्छिणा ।
 [साइयरमरइ सोयं तह चेव य अथिरमसुहं च ॥१६॥
 अज्जसकित्ती य तहा पमत्तविरयम्हि वोच्छेदो]
 देवाउगं च एयं पमत्त-इदरम्हि णादव्वं ॥१७॥
 णिद्दा पयला य तहा अपुव्वपढमम्हि बंधवुच्छेदो ।
 देवदुगं पंचिदिय ओरालिय वज्ज चउसरीरं च ॥१८॥
 समचउरं वेउव्वियमाहारय-अंगवंगणामं च ।
 वण्णचउक्कं च तहा अगुरुगलहुगं च चत्तारि ॥१९॥
 तसचउ पसत्थमेव य विहायगदि थिर सुहं च णायव्वा ।
 सुभगं सुस्सरमेव य आदिज्जं चेव णिमिणं च ॥२०॥
 तित्थयरमेव तीसं अपुव्वछन्माग बंधवुच्छिणा ।
 हस्स रदि भय दुगुंछा अपुव्वचरिमम्हि बुच्छिणा ॥२१॥
 पुरिसं चदुसंजलणं पंच य पगडीय पंचभागम्हि ।
 अणियट्ठी-अद्धाए जहाकमं बंधवोच्छेदो ॥२२॥
 णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि उच्चजसकित्ती ।
 एदे सोलस पगडी सुहुमकसायम्हि बंधवुच्छिणा ॥२३॥
 उवसंत खीणमोहे [खीण चत्ता] सजोगिचरिमम्मि सादबुच्छेदी ।
 णादव्वो पगडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥२४॥
 मिच्छत्तं आदावं सुहुममपज्जत्तगा च तह चेव ।
 साधारणं च पंच य मिच्छम्हि य उदयबुच्छेओ ॥२५॥
 अण एइंदियजादी विगलिंदियजादिमेव थावरयं ।
 एदे णव पगडीओ सासणसम्मम्हि उदयबुच्छिणा ॥२६॥
 सम्मामिच्छत्तेयं सम्मामिच्छम्हि उदयबुच्छेदो ।
 विदियकसायचउक्कं तह चेव य णिरय-देवायू ॥२७॥

मणुय-तिरियाणुपुव्वी वेउव्वियल्लक दुब्भगं चेव ।
 आणादिज्जं च तहा अज्जसकित्ती अविरदमिह ॥२८॥
 तदियकसायचउकं तिरियाऊ तह य चेव तिरियगदी ।
 उज्जोव णीचगोदं विरदाविरदमिह उदयवुच्छिण्णा ॥२९॥
 थीणतिगं चेव तहा आहारदुगं पमत्तविरदमिह ।
 सम्मत्तं संघडणं अंतिम तिगमप्पमत्तमिह ॥३०॥
 तह णोकसायल्लकं अपुव्वकरणमिह उदयवुच्छेदो ।
 वेदतिग कोह माणं माया संजलणमणियट्ठी ॥३१॥
 संजलण लोहमेयं सुहुमकसायमिह उदयवुच्छिण्णा ।
 तह वज्जं णारायं णारायं चेव उवसंते ॥३२॥
 णिद्दा पयला य तहा खीणदुचरिममिह उदयवुच्छिण्णा ।
 णाणंतरायदसयं दसणचेत्तारि चरिममिह ॥३३॥
 अण्णदर वेदणीयं ओरालिय-तेज-कम्म णामं च ।
 छच्चेव य संठाणं ओरालिय अंगवंगो य ॥३४॥
 आदी वि य संघडणं वण्णचउकं च दो विहायगदी ।
 अगुरुगलहुगचउकं पत्तेय थिराथिरं चेव ॥३५॥
 सुह सुस्सर जुगलाविय णिमिणं च तहा हवंति णायव्वा ।
 एदे तीसं पगडी सजोगिचरिममिह वुच्छिण्णा ॥३६॥
 अण्णदर वेदणीयं मणुयाऊ मणुयगदी य बोधव्वा ।
 पंचिंदियजादी वि य तस सुभगादिज्ज पज्जत्तं ॥३७॥
 बादर जसकित्ती वि य तित्थयरं णाम [उच्च] गोदयं चेव ।
 एदे बारस पगडी अजोगिचरिममिह उदयवुच्छिण्णा ॥३८॥
 उदयस्सुदीरणस्स सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।
 मुत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य ॥३९॥
 तीसं बारस उदयं केवल्लिणं मेलणं च कादूण ।
 सादासादं च तहा मणुआऊ अवणिदं किच्चाः ॥४०॥
 सेसं उगुदालीसं सजोगिमिह उदीरणा य बोधव्वा ।
 अवणीय तिण्णि पगडी पमत्तउदयमिह पक्खित्ता ॥४१॥
 तह चेव अट्ठ पगडी पमत्तविरदे उदीरणा हुंति ।
 णत्थि त्ति अजोगिजिणे उदीरणा हुंति णादव्वा ॥४२॥
 थीणतिगं चेव तहा णिरयदुगं तह य चेव तिरियदुगं ।
 इगिविगलिंदियजादी आदावुज्जोव थावरयं ॥४३॥

साधारण सुहुमं चिय सोलस पयडी य होइ णायव्वा ।
 विदियकसायचउक्कं तदियकसायं च अट्ठेदे ॥४४॥
 एय णउंसयवेयं इत्थीवेदं तहेव एयं च ।
 छण्णोकसायल्लकं पुरिसं कोहं च माणो य ॥४५॥
 मायं चिय अणियट्ठीभागं गंतूण संतबुच्छेरो ।
 लोभं चिय संजलणं सुहुमकसायमिह बुच्छिण्णा ॥४६॥
 खीणकसायदुचरिमे णिदा पयला य हणइ छदुमत्थो ।
 णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिममिह ॥४७॥
 देवदुग पण सरीरं पंचसरीरस्स बंधणं चेव ।
 पंचेव य संघादं संठाणं तह य ल्लकं च ॥४८॥
 तिण्णि य अंगोवंगं संघट्ठणं तह य हुंति ल्लका य ।
 पंचेव य वण्णरसं दो गंधं अट्ठफासो य ॥४९॥
 अगुरुगलहुगचउक्कं विहायगदि दो थिराथिरं चेव ।
 सुभ सुस्सर जुगलं चियं पत्तेयं दुब्भगं अजसं ॥५०॥
 आणादिज्जं णिमिणं अपज्जत्तं तह य णीचगोदं च ।
 अण्णदर वेदणीयं अजोगिदुचरममिह बुच्छिण्णा ॥५१॥
 अण्णदर वेदणीयं मणुयाऊ मणुयदुगं च बोधव्वा ।
 पंचिदियजादी वि य तस सुभगादिज्ज पज्जत्तं ॥५२॥
 चादरजसकित्ती वि य तित्थयरं उच्चगोदयं चेव ।
 एदे तेरस पगडी अजोगिचरिममिह संतबुच्छिण्णा ॥५३॥
 सो मे तिहुवणमहिदो सिद्धो बुद्धो णिरंजणो सुद्धो ।
 दिसदु वरणाणलाहं दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५४॥

देवासुरिंदमहिदं भवसायरपारयं महावीरं ।
 पणमिय सिरसा बुच्छं जहाकमं सुणह एयमणा ॥५५॥
 किं बंधोदयपुच्चं समं च स-परोदएण उभए वा ।
 संतर णिरंतरं वा तदुभयमिदि णवविधं पण्हं ॥५६॥
 पढमुदओ बुच्छिज्जइ पच्छा बंधो त्ति अट्ठ पगडीओ ।
 णादव्वाओ णियमा एकत्तीसं समं च बंधुदया ॥५७॥
 एगुत्तर असिदीओ पयडीओ जिणवरेहि दिट्ठाओ ।
 पच्छुदओ वोळ्ळिज्जइ पढमं बंधु त्ति णादव्वो ॥५८॥
 सत्तावीसेगारं सोदयमथ परोदएण बज्झंति ।
 वासीदीओ णियमा बज्झंति तत्थ उभएण ॥५९॥

चलतीसं चलवण्णं वत्तीसं चैव होइ परिसंखा ।
 संतर णिरंतरेण य वज्झंति हि तदुभयेण तहा ॥६०॥
 देवाऊ देवचऊ आहारदुग्गमयसं च अट्ठेदे ।
 पढमुदओ वुच्छिज्जइ पच्छा वंधो त्ति णादव्वो ॥६१॥
 मिच्छत्तं पण्णारस कसाय लोभं विणा पुरुस हस्सरदि भयदुगुंछा ।
 जादिचउक्कादावं थावर सुहुमादितिण्हं पि ॥६२॥
 मणुआणुपुव्विसहिदा एकतीसं समं च वंधुदया ।
 एयाओ पयडीओ णायव्वाओ हवंति णियमेण ॥६३॥
 णाणंतरायदसयं दंसणचउ उच्च णीचगोदं ग [च] ।
 इत्थि णउंसयवेदं सादासादं च लोहसंजलणं ॥६४॥
 णिरयाऊ तिरियाऊ णिरि-तिरिय मणुयगई ।
 वण्णचउक्कं च तहा उज्जोवं चैव दो विहायगदी ॥६५॥
 छस्संठाणं च तहा पंचिदियजादि अरदि सोगं च ।
 ओरालियंगवंगं छण्णं तह चैव संघडणं ॥६६॥
 तस वादर पज्जत्तं पत्तेयसरीरमेव णादव्वा ।
 ओरालियं च तेजा कम्मइयसरीरमेव तहा ॥६७॥
 णिरय-तिरियाणुपुव्वी जसकित्ति थिराथिरादिपणजुयलं ।
 णादव्वं तह चैव य अगुरुगलहुगं च चत्तारि ॥६८॥
 णिमिणं तित्थयरेण इगिसीदीओ हवंति पगडीओ ।
 पच्छुदओ वोच्छिज्जइ पढमं वंधुत्ति णादव्वो ॥६९॥
 आवरणमंतराए चउ पण मिच्छत्त तेज कम्मइया ।
 वण्णचउक्कं च तहा अगुरुगलहुगं थिरादि वे जुयलं ॥७०॥
 णिमिणेण सह सगवीसा वज्झंति हि सोदएण एदाओ ।
 सेसा पुण एयारा बोधव्वा तत्थ होंति इदरेण ॥७१॥
 णिरयाऊ देवाऊ वेउव्वियछक्क दोणिण आहारे ।
 तित्थयरेणेयाओ बोधव्वाओ हवंति पगडीओ ॥७२॥
 दंसणपण णिरियाउग मणुआउग मणुवगइमेव ।
 सोलस कसायमेव य तहेव णवणोकसायं च ॥७३॥
 मणुयतिरियाणुपुव्वी ओरालियदुगं तहेव णादव्वो ।
 संठाणलक्कमेव य छच्चेव य तह य संघडणं ॥७४॥
 उवघादं परघादं उस्सासं चैव पंच जाई य ।
 दो वेदणीयमेव य आदावुज्जोय दो विहायगई ॥७५॥

तस थावर सुहुमाविय वादर पज्जत्त तह अपज्जत्तं ।
 पत्तेयं साधारण णिच्चुच्चागोदमेव बोधव्वा ॥७६॥
 सुभगादिजुयलचदुरो णादव्वाओ हवंति एदाओ ।
 वासीदीओ णियमा सग यरउदएण वज्झंति ॥७७॥
 इत्थि-णउंसयवेयं सादिदर अरदिसोग णिरयदुगं ।
 जादिचउक्कं च तहा संठाणं पंच पंच संघडणं ॥७८॥
 थावर सुहुमं च तहा आदावुज्जोयमप्पसत्थगई ।
 तह चेवमपज्जत्तं साहारणयं च णादव्वा ॥७९॥
 अथिरासुहं तहेव य दुस्सरमध दूहवं च णियमेण ।
 आणादेज्जं च तहा अज्जसकित्ती मुणेदव्वा ॥८०॥
 एदे खलु चोत्तीसा वज्झंति हि संतरेण णियमेण ।
 एदे खलु चउवण्णा वज्झंति णिरंतरा सव्वे ॥८१॥
 णाणंतरायदसयं दंसणणव मिच्छ सोलस कसाया ।
 भयकम्म दुगुंछादिय तेजा कम्मं च वण्णचऊ ॥८२॥
 अगुरुगलहुगुवघादं तित्थयराहारदुग णिमिणमाऊणि ।
 सेसा खलु वत्तीसा वज्झंति हि तदुभएणेव ॥८३॥
 हस्स रदि पुरिसवेदं तह चेव य तिरिय-देव-मणुयगई ।
 ओरालिय वेउव्विय समचउरं चेव संठाणं ॥८४॥
 आदी विय संघडणं पंचिंदियजादि साद गोददुगं ।
 ओरालिय वेउव्विय अंगोवंगं पसत्थगदिमेव ॥८५॥
 मणुय-तिरियाणुपुव्वी परघादुस्सासमेव एदाओ ।
 देवगईणुपुव्वी बोधव्वा हुंति पयडीओ ॥८६॥
 तसवादरपज्जत्तं पत्तेयसरीरमेव णायव्वा ।
 थिर-सुभ सुभगं च तहा सुस्सरमादेज्ज जसकित्ती ॥८७॥
 एदे णवाहियारा जिणदिट्ठा वणिदा मए तच्चा ।
 भावियमरणो जं खलु भावियसिद्धिं लहुं लहइ ॥८८॥

णमिऊण जिणवरिंदे तिहुवणवरणाण-दंसणपईवे ।
 वंधोदयसंतजुत्तं वोच्छामि थवं णिसामेह ॥१॥
 मिच्छे सोलस पणवीस सासणे अविरदे य दस पयडी ।
 चटुल्लक्कमेय देसे विरदे इयरे कमेण वुच्छिण्णया ॥२॥

दुग तीस चदुरपुव्वे पंच णियट्ठिम्हि बंधवुच्छेदो ।
 सोलस सुहुमसरागे साद सजोगिय [म्हि] जिणवरिंदे ॥३॥
 पण णव इगि सत्तरसं अड पंच य चदुर छक्क छच्चेव ।
 इगि दुग सोलस तीसं वारस उदए अजोगंता ॥४॥
 पण णव इगि सत्तरसं अट्ठइय चउर छक्क छच्चेव ।
 इगि दुग सोलसु दालं उदीरणा होंति जोगंता ॥५॥
 अण मिच्छ मिस्स सम्मं अविरदसम्मादि-अप्पमत्तंता ।
 सुर-णिरय-तिरियआऊ णिययभवे चेव खीयंति ॥६॥
 सोलस अट्ठेक्केक्कं छक्केक्केक्केक्क खीण अणियट्ठी ।
 एयं सुहुमसरागे खीणकसाए य सोलसयं ॥७॥
 वावत्तरिं दुवरिमे तेरस चरिमे अजोगिणो खीणा ।
 अडयालं पयडिसदं खविदजिणं णिव्वुदं वंदे ॥८॥
 एदं कम्मविधाणं णिच्चं जो पढइ सुणइ पयदमदी ।
 दंसण-णाणसमग्गो सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥९॥

एत्तो सव्वपयडीणं बंधवुच्छेदो काढव्वो भवदि । तं जहा । ‘मिच्छे सोलस’—मिच्छत्त
 नपुंसकवेय णिरयाऊं णिरयगदि एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चतुरिंदिय जादि हुंडसंठाणं असंपत्त-
 सेवट्टसंघडणं णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीयं आदव थावर सुहुम अपज्जत्त साधारण एदाओ
 सोलस पयडीओ मिच्छादिट्ठिम्हि बंधवुच्छेदो ।

‘पणवीस सासणे’—णिदाणिदा पयलापयला थीणगिद्धो अणंताणुबंधिचदुक्कं इत्थिवेद
 तिरिक्खाड तिरिक्खगदी णिग्गोहसंठाणं सादिसंठाणं खुज्जसंठाणं चामसंठाणं वज्जणाराय-
 संघडणं णारायसंघडणं अट्ठणारायसंघडणं खीलियसंघडणं तिरिक्खगदिपाउग्गाणुपुव्वी उल्लोव
 अप्पसत्थविहायगदी दुभग दुस्सर अणादिज्ज णीचागोद एदासिं पणुवीसण्हं पयडीणं सासणसम्मा-
 दिट्ठिम्हि बंधवोच्छेदो ।

‘अविरदे य दस पयडि’—अपच्चक्खाणचदुक्कं मणुआऊ मणुस्सगदी ओरालियसरीर ओरा-
 लियसरीर-अंगोवंग वज्जरिसभवइरणारायसंघडणं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी एदासि दसपयडी-
 ओ[णं] असंजदसम्मादिट्ठिस्स बंधवुच्छेदो ।

‘चदु’ पच्चक्खाणावरणचदुक्कं एदाओ चत्तारि पयडीओ संजदासंजदम्हि बंधवुच्छेदो ।
 ‘छक्क’ असादावेदणीयं अरदि सोग अथिर सुभगं अजसक्कित्ती एदाओ छप्पयडीओ-जदस्स
 [पमत्तसंजदस्स] बंधवुच्छेदो । ‘एयं’ देवाऊ अप्पमत्तसंजदम्हि बंधवुच्छेदो । ‘दुग’ णिहा
 पयला य अपुव्वकरणद्धाए सत्तमभागे पढमभागचरमसमयबंधवुच्छेदो । ‘तीसं’ देवगदि पंचि-
 दियजादि वेउव्वियाहारतेजाकम्मइयसरीर समचदुरसंठाणं वेउव्विय-आहारसरीर-अंगोवंग
 वण्ण गंध रस फास देवगदिआणुपुव्वी अगुरुलहुग उवघाद परघाद उस्सास पसत्थगदी तस
 वादर पज्जत्त पज्जत्तेयसरीर थिर सुभ सुभग सुस्सर आदेज्ज णिर्मण तित्थयरणामं च एयाओ तीस
 पयडीओ अपुव्वकरणम्हि सत्तमभाग-छभागं गंतूण बंधवुच्छेदो । [‘चदु’ हस्स रदि भय दुगुंझा
 एदाओ चत्तारि पयडीओ अपुव्वचरिमम्हि वुच्छिज्जंते] । ‘पंच अणियट्ठिम्हि’ चदु संजलणं
 पुरिसवेद एयाओ पंच पयडीओ अणियट्ठि-अद्धाए पंचभागं गंतूणं एक्केक बंधवुच्छेदो । पढम-

भागे पुरिसवेद्वुच्छेदो, विदियभागे कोधसंजलणं, तदियभागे माणसंजलणं, चउत्थभागे माया-
संजलणं, चरमसमये लोभसंजलण-बंधवुच्छेदो ।

‘सोलस सुहुमसराने’—पंच णाणावरणीयं चदु दंसणावरणीयं जसक्कित्ती उच्चागोदं पंच
अंतराइयं एयाओ सोलस पयडीओ सुहुमसंपराइयस्स चरमसमए बंधवुच्छेदो । ‘उवसंत खीणमोहे
साद सजोगिजिणे’—सादावेदणीयं सजोगचरमसमए बंधवुच्छेदो ।

एत्तो सन्वपयडीणं कादब्बो उदयवुच्छेदो—‘पण’ मिच्छत्त आदाव सुहुमअपज्जत्त साधा-
रण एदाओ पंच पयडीओ मिच्छादिट्ठिह्मि उदयवुच्छेदो । ‘णव’ अणंताणुबंधिचदुक्कं
एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियजादि थावरणामं च एयाओ णव पयडीओ सासणसम्मादि-
ट्ठिह्मि उदयवुच्छेदो । ‘इगि’ [सम्मामिच्छत्तमेगं] सम्मामिच्छादिट्ठिह्मि उदयवुच्छेदो
‘सत्तरस’ अप्पञ्चक्खाणावरणीयं कोध माण माया लोभ णिरय-देवाउग णिरय-देवगदि वेउन्विय-
सरीर वेउन्वियसरीर-अंगोवंगं णिरयगदि-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-देवगदिपाओग्गाणुपुन्वी दुभग
अणादिज्ज अजसक्कित्ती एदासिं सत्तरसण्हं पयडीणं असजदसम्मादिट्ठिह्मि उदयवुच्छेदो । ‘अड’
‘अपञ्चक्खाणावरणीय कोध माण माया लोभ तिरिक्खगदि उज्जोव णोचगोदं च एदासिं अट्ठण्ह
पयडीणं संजदासंजदह्मि उदयवुच्छेदो । ‘पच’ णिहाणिहा पयलापयला थीणगिद्धी आहारसरीर
आहारसरीर-अंगोवंगं एदासिं पंचण्हं पयडीणं पमत्तसंजदह्मि उदयवुच्छेदो । ‘चदुरो’ वेदगसम्मत्तं
अद्धणारायसंघडणं खीलियसंघडणं असंपत्तसेवट्टसंघडणं एदासिं चउण्हं पयडीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि
जाव अपमत्तसंजदोत्ति उदयवुच्छेदो । ‘छक्क’ हस्स रदि अरदि सोग भय दुगुंछा एदासिं छण्ह
पयडीणं अपुव्वकरणउवसामयस्स वा खवयस्स वा चरिमसमयह्मि उदयवुच्छेदो । [‘छवेव’]
णवुसक-इत्थीवेदानं कोध माण मायासंजलणं एदासिं छण्हं पयडीणं मिच्छा-[दिट्ठि-] प्पहुडि जाव
अणियट्ठी सेससंखिज्जभागं गंतूण उदयवुच्छेदो । ‘इगि’ लोभसंजलणस्स सुहुम-संपराइयचरिम-
समयम्मि उदयवुच्छेदो । ‘दुग’ वज्जणारायसंघडणं णारायसंघडणं एदासिं दुण्हं पयडीणं मिच्छादि-
ट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-चरमसमए उदयवुच्छेदो । ‘सोलस’ णिहा पयलाणं खीणकसायस्स
दुचरमसमए उदयवुच्छेदो । पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं पंचण्हं अंतराइयाणं
एदासिं चउदसण्हं पयडीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायचरमसमए उदयवुच्छेदो । ‘तीसं’
अण्णदर वेदणीयं ओरालिय तेजाकम्मइगसरीर छ संठाण ओरालियसरीर-अंगोवंगं वज्जरिसभ-
वडरणारायसंघडणं वण्ण गंध रस फास अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उत्सास दो विहायगदि जाव
पत्तेयसरीर थिराथिग सुभासुभ सुत्सर दुत्सर णिमिण एदासिं तीसपयडीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि
सजोगिकेवल्लिचरमसमयउदयवोच्छेदो । ‘वारस’ अण्णदर वेदणीयं मणुसाउग-मणुसगदि पंचि-
दियजादि तस वादर पज्जत्तं सुभग आदेय जसक्कित्ती तित्थयर उच्चागोद एयासिं वारसण्हं पयडीणं
मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवल्लिचरिमसमयह्मि उदयवुच्छेदो । णवरि तित्थयरस्स सजो-
गिप्पहुडि जाव वत्तव्वो ।

एत्तो सन्वपयडीणं उदीरणवुच्छेदो कादब्बो भवदि । एत्थ सुत्तं—‘पण मिच्छत्तस्स’ उव-
समसम्मत्ताभिमुहमिच्छादिट्ठिह्मि आवलिसेसे वेदगसम्मत्ताभिमुहस्स वा चरिमसमए उदीरणा-
वुच्छेदो । आदाव सुहुम अपज्जत्त साधारणसरीर एदासिं चदुण्हं पयडीणं मिच्छादिट्ठिचरिम-
समए उदीरणवुच्छेदो । ‘णव’ अणंताणुबंधिचदुक्कं एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चदुरिंदियजादि
थावर णामा य एदासिं णवण्हं पयडीणं सासणसम्मादिट्ठिह्मि उदीरणवुच्छेदो । ‘इगि’ सम्मा-
मिच्छत्तस्स सम्मामिच्छादिट्ठिह्मि उदीरणवुच्छेदो । ‘सत्तरसं’ णिरयाउगं देवाउगं असंजदसम्मा-

दिट्ठिम्हि आवलियसेसे उदीरणावुच्छेदो । पञ्चक्खाणावरणचदुक्कं वेउन्वियल्लक्कं तिरिक्खगदि मणुसगदिपाओग्गाणुपुन्वी दुभग अणादिज्ज अजसक्कित्ती एदासिं पण्णरसण्हं पयडीणं असंजदस-
म्मादिट्ठिम्हि [चरिमसमए] उदीरणावुच्छेदो । ‘अट्ठ’ तिरिक्खाउगस्स संजदासंजदम्हि मरणा-
वलियसेसे उदीरणावुच्छेदो । पञ्चक्खाणावरणचदुक्कं तिरिक्खगदि उज्जोव णीचागोदं एदासिं
सत्तण्हं पयडीणं संजदासंजदचरमसमए उदीरणावुच्छेदो । ‘अट्ठ’ थीणगिद्धितिग सादासादा
एदासिं पंचण्हं पयडीणं पमत्तसंजदस्स उत्तरवेउन्वियस्स चरिमावलियसेसे उदीरणावुच्छेदो ।
आहारदुग मणुसाउगस्स पमत्तसंजदस्स चरिमावलियसेसे उदीरणावुच्छेदो । ‘चदु’ अट्ठणाराय-
संघडणं खीलियसंघडणं असंपत्तसेवट्ठसंघडणं वेदगसम्मत्तं एदासिं चदुण्हं पयडीणं अप्पमत्तसंज-
दस्स चरिमसमए उदीरणावुच्छेदो । ‘ल्लक्क’ हस्स रदि अरदि सोग भय दुगुंछा एदासिं ल्लण्हं पय-
डीणं अपुव्वकरण-उवसामयस्स वा खवयस्स वा चरमसमए उदीरणावुच्छेदो । ‘ल्लक्क’ अणियट्ठि-
उवसामयस्स वा खवयस्स वा तिण्हं वेदाणं तिण्हं संजलणाणं अणियट्ठिस्स सेसं संखेज्जभागं
गंतूण उदीरणावुच्छेदो । ‘इगि’ लोभसंजलणस्स सुहुमसांपराइय उवसमयस्स वा खवयस्स वा आव-
लियसेसे उदीरणावुच्छेदो । ‘दुग’ वज्जणाराय णारायसंघडणं एदासिं दोण्हं पयडीणं उवसंतकसा-
यम्हि उदीरणावुच्छेदो ‘सोलस’ णिदा-पयलाणं खीणकसायस्स समयावलियसेसे उदीरणावुच्छेदो ।
पंचण्हं णाणावरणीयाणं चउण्हं दंसणावरणीयाणं पंचण्हं अंतराइयाणं खीणकसायस्स आवलिय-
सेसे उदीरणावुच्छेदो । ‘उगुदालं’ मणुसगदि पंचिदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइगसरीरं ल्ल
संठाणं ओरालियअंगोवंगं वज्जरिसभवइरणारायसंघडणं वण्णं गंधं रसं फासं अगुरुगलहुग उव-
घादं परघादं उस्सासं दो विहायोगदि तसं बादरं पज्जत्तं पत्तेयसरीरं थिराथिरं सुभं असुभं सुभगं
सुस्सरं दुस्सरं आदिज्जं जसक्कित्ती णिमिणं तिथ्यरं उच्चागोदं एदासिं उगुदालीसण्हं पयडीणं सजो-
गिचरमसमये उदीरणावुच्छेदो ।

एत्तां सव्वपयडीणं संतवुच्छेदो कादव्वो भवदि । तत्थं सुत्तं—‘अणं मिच्छं मिस्सं सम्मं’
अणंताणुबंधिचदुक्कं मिच्छत्तं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं एदासिं सत्तण्हं पयडीणं असंजदसम्मादि-
ट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदो त्ति संतवुच्छेदो । ‘सुरणिरयं तिरियाऊ’ णिरयाउगं तिरिक्खाउगं
देवाउगं एदासिं पयडीणं अप्पणो भवम्हि संतवुच्छेदो । ‘सोलस’ थीणगिद्धितिग णिरयगदि
तिरिक्खगदि एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियजादि णिरयगइ तिरिक्खपाओग्गाणुपुन्वी आदा-
वुज्जोव थावरं सुहुमं साधारणसरीरं एदासिं सोलसण्हं पयडीणं अणियट्ठि-अट्ठाए संखेज्जभागं
गंतूणं संतवुच्छेदो । ‘अट्ठ’ तदो अंतोमुहुत्तं गंतूणं अट्ठण्हं कसायाणं संतवुच्छेदो । ‘इक्कं’ तदो
अंतोमुहुत्तं गंतूणं णवुंसयवेदो संतवुच्छेदो । ‘इक्कं’ तदो अंतोमुहुत्तं [गंतूणं] इत्थीवेद-संत-
वुच्छेदो । ‘ल्लक्कं’ तदो अंतोमुहुत्तं [गंतूणं] ल्लण्णोकसायसंतवुच्छेदो । ‘एक्केक्का य’ तदो सम-
यूणं आवलियं गंतूणं पुरिसवेदसंतवुच्छेदो । तदो अंतोमुहुत्तं कोधसंजलणं, तदो अंतोमुहुत्तं
माणसंजलणं, तदो अंतोमुहुत्तं मायासंजलणं संतवुच्छेदो । सुहुमसंपराइयलोभसंजलणचरमसमए
संतवुच्छेदो । ‘खीणकसाए सोलस’ णिदा-पयलाणं खीणकसायदुचरिमसमए संतवुच्छेदो । पंचण्हं
णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं पंचण्हं अंतराइयाणं एदासिं चउदसण्हं पयडीणं खीण-
कसायचरमसमए संतवुच्छेदो । ‘वावत्तरिं दुचरिमे’ देवगदि वेउन्विय-आहार-तेजा-कम्मइय-
सरीरं समचदुरससंठाणं वेउन्विय-आहारसरीरं-अंगोवंगं पंचं वण्णं पंचं रसं दो गंधं अट्ठं फासं
देवगदिपाओग्गाणुपुन्वी अगुरुगलहुग उस्सासं पसत्थविहायगदि पत्तेयसरीरं थिरं अथिरं
सुभं असुभं सुस्सरं दुस्सरं अजसक्कित्तिं णिमिणं एदाओ चत्तालं पयडीओ देवगदि-सहगदाओ
अण्णदरं वेयणीयं ओरालियसरीरं पंचं सरीरं बंधणं पंचसरीरं संघादं पंचं संठाणं ओरालियसरीरं
अंगोवंगं ल्ल संघडणं उवघादं परघादं अप्पसत्थविहायगदि अपज्जत्तं दुभगं दुस्सरं अणादिज्जं
णीचगोदं इमाओ अण्णाओ बत्तीसं पयडीओ मणुसगदि-सहगदाओ । एयासिं वावत्तरिं पयडीणं

अजोगिदुच्चरिमसमए संतवोच्छेदो । 'तेरस चरिमम्हि' अण्णदरवेदणीयं मणुसाउग' मणुसगदि पंचिदियजादि मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी तस बादर पज्जत्त सुभग आदेज्ज जसकित्ति तित्थयर उच्चागोद एदासिं तेरसण्हं पयड्डीणं अजोगिचरमसमए संतवुच्छेदो । अडयाळ पयडिसदं एवं भणिदो । पंच णाणावरणीयं णव दंसणावरणीयं दो वेदणीयं अट्ठावीस मोहणीयं चत्तारि आउग तेणउदि णाम गोद दुग पच अंतराइय एयाओ सव्वाओ एक्कदो मिलिदे अडदालं पयडिसदं भवदि । पुणो एव' खविद जेण सो जिणो, तस्स णमो त्ति भणिदं होदि ।

एव' पयडिसंतवुच्छेदो समत्तो
एवं वंधुदय-उदीरणा-संतवोच्छेदो समत्तो ।
इदि विदिओ कम्मत्थव समत्तो ।

तदिओ जीवसमासो

छदव्व-णवपदत्थे दव्वादिचउव्विधेण जाणंते ।
वंदित्ता अरहंते जीवस्स परूवणं वुच्छं ॥१॥

छदव्व-णवपदत्थे दव्वादिचउव्विधेण परूवणं कोरदे—तत्थ जीवदव्वं पुग्गलदव्वं धम्म-
दव्वं अधम्मदव्वं आगासदव्वं कालदव्वं चेदि । तत्थ जीवदव्वं दव्वपमाणादो केवडिया ?
अणताणता । खेत्तपमाणादो केवडिया ? अणंता अणंतलोगमेत्तां । कालपमाणादो केवडिया ? अणंता-
उस्सपिणि-अवसपिणी समयावली कदेण अवहिरदि कालेण । भावपमाणादो केवडिया ? केवल-
णाणविसय-अणंतिमभागमेत्तां । [जहा] जीवदव्वं दव्वादि [चउव्विधेण] परूविदं, तहा
पुग्गलदव्वं परूविदव्वं । णवरि जीवदव्वादो अणंतगुणं । तत्थ धम्मदव्वं अधम्मदव्वं
लोगागासदव्वं णिच्छयकालदव्वं एदे दव्वपमाणादो केवडिया ? असंखिज्जासखिज्जा । खेत्ता-
पमाणादो केवडिया ? लोगागासमेत्ता । कालपमाणादो केवडिया ? असंखिज्जासंखिज्जा उस्स-
पिणि-अवसपिणि समयावली अ कदे अवहीरदि त्ति कालेण । भावपमाणादो केवडिया ? ओधि-
णाणस्स विसयस्स असंखिज्जदिमभागमेत्ता । ववहारकालं अलोगागासं जीवदव्वं व वत्ताव्वा ।
जीवाजीवदव्वं दव्वादिपरूविदं, नद्यथा वा जीवाजीवपदत्था परूविदव्वा । पुण्ण-पाव-आसव-
संवरणिज्जर-बंध-मुक्खा एदे सत्ता पदत्था दव्वपमाणादो केवडिया ? अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा,
सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ता । खेत्ताकाल-भावदो जीवदव्वं व वत्ताव्वा । णवरि अणंतगुणा ।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदिय कम्मसंध परमाणू ।
छव्विधभेदं भणिदं पुग्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥१॥
लोगागासपदेसे एक्केक्कं जेड्डिया हु एक्केक्का ।
रदणाणं रासीमिव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥२॥

गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य ।
उवओगो वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया ॥२॥
जेहि दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं ।
जीवा ते गुणसण्णा णिदिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥३॥

मिच्छो साणण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदो पमत्त इदरो अपुव्व अणियट्ठि सुहुमो य ॥४॥
उवसंत-खीणमोहो सलोगि जिणकेवली अजोगी य ।
चउदस गुणठाणाणि य कमेण सिद्धा य णायव्वा ॥५॥

इदाणि लद्धिविहं वत्तइस्सामो । तं जहा—मिच्छादिट्ठि [त्ति] को भावो ? ओदइओ भावो, मिच्छत्तस्स कम्मस्स उदएण । सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो । तं कथमिति चेत्—दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण वा उवसमेण वा खएण वा खओवसमेण वा ण भवदि, सभावदो भवदि, अदो पारिणामिओ भावो । सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमियमिदि । तं कथमिति चेत् (?) वुत्तो वुच्चदि—मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदेसि पंचण्हं पयडीणं सव्वघादिफइयाण उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसघादिफइयाण उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मामिच्छत्तस्स य सव्वघादिफइयाण उदएण अणुदिण्णाण कम्माणं उवसतं च कट्ठु उदीरणेण कम्माणं खएण । अदो तस्स खओवसमिओ भावो । असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खओ वा खओवसमिओ [वा] भावो । तत्कथमिति चेत् मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदासिं सत्ताण्हं पयडीणं उवसमेण उवसमिओ भावो । एदासिं चेव खएण खइओ भावो । खओवसमियमिदि को भावो ? मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदासिं पंचण्हं पयडीणं सव्वघादिफइयाणं उदयखएणं तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मामिच्छत्तसव्वघादिफइयाणं उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मत्तस्स देसघादिफइयाण उदएण अणुदिण्णाणं कम्माणं उवसमेणे त्ति कट्ठु उदिण्णाणं च कम्माणं खएण । अदो तस्स खओवसमिओ भावो । असंजदो त्ति संजमघादीणं कम्माणं उदएण ।

सजदासंजदो त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो । अणंताणुबंधिचदुक्कं अपच्चक्खाणावरणचदुक्कं एदासिं अट्ठण्हं पयडीणं सव्वघादिफइयाणं उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण चउसंजलण-णवणोकसायाणं एदासिं तेरसण्हं पयडीणं सव्वघादिफइयाणं उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण तेसिं चेव देसघादिफइयाणं अ उदएण, पुणो पच्चक्खाणचदुक्कसव्वघादीणं फइयाण उदएण अणुदिण्णाणं कम्माणं उवसमएणेत्ति कट्ठु, उदिण्णाणं च कम्माणं खएण तदो तस्स खओवसमिओ भावो ।

पमत्तसंजदो त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो । अणंताणुबंधिचदुक्कं अपच्चक्खाणचदुक्कं पच्चक्खाणचदुक्कं एदासिं बारसण्हं पयडीणं उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण पुणो विचदुसंजलण-णवणोकसायाणं एदासिं तेरसण्हं पयडीणं सव्वघादिफइयाण उदएण खएण, तेसिं चेव संतोवसमेण, तेसिं चेव देसघादिफइयाणं उदएण अदो तस्स खओवसमिओ भावो । किमिदं सार्थकं (स्पर्धकं) नाम ? उच्यते—अविभागपत्त्यपुनः (?) छिन्नकर्मप्रदेशरसभागप्रचयपत्ति-क्रमवृद्धिः क्रमहानिः स्पर्धकम् । उदयप्राप्तस्य कर्मणः प्रदेशाः अभव्यानामनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागप्रमाणाः । न च सर्वजघन्यगुणाः प्रदेशाः तावत्परिच्छिन्ना यावद्विभागाभावः ।

एवं अप्पमत्तसंजदस्स वत्ताव्वं । णवरि यण्णारस पमादा णत्थि ।

अपुव्वकरणपइट्ठउवसामिओ खवओ त्ति को भावो ? उवसामिओ वा खइओ वा भावो । अणंताणुबंधिचदुक्कं मिच्छत्तं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तामिदि एदाओ सत्ताण्हं पयडीओ पुव्व उवसामिओ । पुणो अप्पच्चक्खाणचदुक्कं पच्चक्खाणचदुक्कं संजलणाणं णवणोकसायाणं एदासिं एगवीसपयडीणं ण दाव [ताव] उवसमेदि, पुरदो उवसामेदि त्ति । अदो तस्स उवसामिओ भावो । जहा तित्थं पवत्तिहिदि त्ति तित्थयरो त्ति भण्णइ, तहा चेव एत्थ वि । एदासिं चेव सत्तण्हं पयडीणं पुव्वमेव खविदाओ । पुणो एदासिं चेव एकवीसपयडीणं न दाव [ताव] खवेदि । पुरदो खवेदि त्ति अदो तस्स खाइओ भावो ।

अणियट्ठिउवसामो खवगेत्ति को भावो ? उवसमिओ भावो खइओ वा भावो । मोहणीयकम्मस्स काओ वि पयडीओ उवसमिदाओ, काओ वि उवसामेदि, काओ वि पयडीओ पुरदो

उवसामेदि त्ति अदो तस्स उवसामिओ भावो । पुणो मोहणीयस्स कम्मस्स काओ पयडीओ खविदाओ, काओ पयडीओ खवेदि, काओ वि पयडीओ पुरदो खवेदि त्ति । अदो तस्स खइओ भावो ।

सुहुमसंपराय-उवसामगो खवगो त्ति को भावो ? उवसामिगो वा खवगो वा भावो । मोहणीयस्स कम्मस्स सत्तावीसपयडीओ उवसामिदाओ, लोहसंजलणं पुरदो उवसामेदि त्ति अदो तस्स उवसामगो भावो । तस्स चेव मोहणीयसत्तावीसपयडीओ खविदाओ, लोहसंजलणं पुरओ खवेदि त्ति अदो तस्स खाइगो भावो ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थ इदि को भावो ? उवसमिओ भावो । मोहणीयस्स अट्ठावीसपयडीणं सव्वोवसमेण उवसमिओ भावो । खीणकसायवीदरागछदुमत्थ इदि [को] भावो ? खइगो भावो । अट्ठावीसभेदभिण्णमोहस्स खएण खाइगो भावो ।

सजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खाइगो भावो । आवरणमोहंतराइयखएण खइगो भावो । अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खाइगो भावो । कम्मजणिदचिरियक्खएण खइगो भावो ।

एवं लद्धिपरूवणा समत्ता ।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि ।
 ण य धम्मं रोचेदि हु महुरमिव रसं जहा जरिदो ॥६॥
 सम्मत्तरयणपव्वदसिहरादो मिच्छभावसमभिमुहो ।
 णासिदसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेदव्वो ॥७॥
 दधि-गुलमिव वामिस्सं पुधभावं णेव कारिदुं सका ।
 एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ॥८॥
 ण य इंदिएसु विरदो ण य जीवे थावरे तसे चावि ।
 अरहंते य पदत्थे अविरदसम्मो दु सदहदि ॥९॥
 थूले जीवे वधकरणवज्जगो हिंसगो य इदराणं ।
 एकम्हि चेव समए विरदाविरदु त्ति णादव्वो ॥१०॥
 विकहा तह य कसाया इंदिय णिहा तहेव पणगो य ।
 चदु चदु पण एगेगं हुंति पमादा य पण्णरसा ॥११॥
 सुभओगेसु पसंगो आरंभे तहा अणारंभो ।
 गुत्ति-समिदिप्पहाणो णादव्वो अप्पमत्तु त्ति ॥१२॥
 जह लोहं धम्मंतं सुज्झदि मुच्चदि य कलिमलं असुहं ।
 एवं अपुव्वकरणं अपुव्वकरणेहिं सोधेदि ॥१३॥
 जह लोहं धम्मंतं अपुव्वपुव्वे णियच्छदे किट्ठिं ।
 तह कम्मं सोधेदि य अपुव्वपुव्वेहिं करणेहिं ॥१४॥
 इदरेदरपरिमाणं णयंति वट्ठदि य वादरकसाए ।
 सव्वे वि एगसमए तम्हा अणियट्ठिणामा ते ॥१५॥

सुहृ वि अवदृमाणा (१)वादरकिट्टी णिअच्छदे किट्टी ।
 एवमणियट्टिणामो वादरसेसाणमिच्छंति ॥१६॥
 कोसुंभो जह रागो अब्भंतर सुहमरायरत्तो य ।
 एवं सुहमसरागो सुहमकसाओ त्ति णादव्वो ॥१७॥
 जह खोत्तुवंतु उदयं भायणखित्तं तु णिम्मलं होदि ।
 एवं कसाय उवसम उवसंतकसाओ त्ति णादव्वो ॥१८॥
 तं चेव सुप्पसण्णं पक्खित्तं अण्णभायणे उदयं ।
 सुह णिम्मल णिक्खउरं खीणकसाओ त्ति तं विंति ॥१९॥
 केवलणाणा[णी] लोगं[जोगं] सव्वण्हु जिणं अणंतवरणाणं ।
 चागरणजोगजुत्तं सजोगिजिणकेवलं विंति ॥२०॥
 सेलेसि संपत्तं णिरुद्धजोगं पणट्टकम्मरयं ।
 संखित्तसव्वजोगं अजोगिजिणकेवली विंति ॥२१॥
 अट्टविधकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
 अट्टगुणा कियकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥२२॥
 जेहिं अणेगा जीवा णज्जंते बहुविधाइं तज्जादी ।
 ते पुण संगहिदत्था जीवसमासे त्ति विण्णेया ॥२३॥
 वादरसुहमेगिंदिय वि-ति-चउरिंदिय-असण्णि-सण्णी य ।
 पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चउदसा होंति ॥२४॥
 जह पुण्णापुण्णाइं गिह-घड-वत्थादिआइं दव्वाइं ।
 तह पुण्णापुण्णाओ पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥२५॥
 आहारसरीरिंदियपज्जत्ती आणपाणभासमणो ।
 चत्तारि पंच छप्पि य एइंदिय-विकलऽसण्णि-सण्णीणं ॥२६॥
 बाहिरपाणेहिं जहा तहेव अब्भंतरेहि पाणेहि ।
 जीवंति जेहिं जीवा पाणा ते हुंति बोधव्वा ॥२७॥
 पंच वि इंदियपाणामण-वचि-काएण तिण्णि बलपाणा ।
 आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण हुंति दस पाणा ॥२८॥
 दस सण्णीणं पाणा सेसेगेगूण अंतियस्स वेऊणा ।
 पज्जत्तोमियरेसु य सत्त दुगे सेसगेगूणा ॥२९॥

पर्याप्ति-प्राणानां नास्मि विप्रतिपत्तिर्न वस्तुनीति चेत्कार्य-कारणयोर्भेदात् । पर्याप्तिष्वायुषो
 सत्त्वात् । मनोवागुच्छ्वासप्राणानामपर्याप्तकाले असत्त्वात् तयोर्भेदात् ।

पंचिंदियं च वयणं कार्यं तह आइ आणपाणो ।
 अस्सणियस्स णियमा एदे णव पाणया णेया ॥३०॥

चक्रवुं घाणं जिब्भा फासं वचि काय आउ आणपाणा य ।
 पज्जत्ते चदुरिंदिय णादव्वा होंति अट्ठेदे ॥३१॥
 फासं जिब्भा घाणं आउं अणपाण काय वयणं तु ।
 तेइंदियस्स एए णायव्वा पाणया सत्त ॥३२॥
 जिब्भा फासं वयणं काउं अणपाण आउ तह होंति ।
 वेइंदियम्मि पुण्णे छप्पाणा चेव णायव्वा ॥३३॥
 फासं कायं च तहा अणपाणा हुंति आउसहियाओ ।
 एइंदियपज्जत्ते पाणा चदुरो जिणुदिट्ठा ॥३४॥
 एदे पुव्वुदिट्ठा पाणा पज्जत्तयाण णायव्वा ।
 एत्तोऽपज्जत्ताणं जहाकमं चेय साहामि ॥३५॥
 अस्सण्णिय-सण्णीणं णत्थि हु मण वयण तह य आणपाणा ।
 दस मज्जे संफिट्ठिदे सत्त य पाणा हवन्ति त्ति ॥३६॥
 पुव्वुत्तसत्तमज्जे सोदेण विणा हवन्ति छप्पाणा ।
 चदुरिंदियस्स एदे कहिदा जिणवीरणाहेण ॥३७॥
 चक्रवुविहीणे तेइंदियाण पाणा हवन्ति पंचेव ।
 गंधे पुणु संफिट्ठिदे वेइंतियपाणया चदुरो ॥३८॥
 पुव्वुत्तचदुरमज्जे जिब्भाऽभावेण तिण्णि जाएइ ।
 एइंदियस्स पाणा णादव्वा जिणवरुदिट्ठा ॥३९॥

इह जाहि बाधिदा वि य जीवा पारवन्ति दारुणं दुक्खं ।
 सेवन्ता वि य उभयं ताओ चत्तारि सण्णाओ ॥४०॥
 आहारदंसणेण य तस्सुवओगेण ओमकुट्ठेण ।
 सादिदरउदीरणा वि य होदि हु आहारसण्णा दु ॥४१॥
 अदिभीमदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्तेण ।
 भयकम्भुदीरणाए भयसण्णा जायदे चदुहिं ॥४२॥
 पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगेण कुसीलसेवाए ।
 वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं ॥४३॥
 उवयरणदंसणेण य तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य ।
 लोहस्सुदीरणाए परिग्गहो जायदे चदुहिं ॥४४॥
 जाहिं य जामु व जीवा मग्गिज्जन्ते जहा तहा दिट्ठा ।
 ताओ चउदस जाणे सुदणाणे मग्गणा हुंति ॥४५॥

गइ इंदिएसु काए जोगे वेदे कसाय णाणे य ।

संजम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥४६॥

तद्यथा—मृगयिता मृग्यमाणं मार्गेण मार्गणोपायमिति । तत्र मृगयिता नाम पुरुष-भव्य-वरपुण्डरीकस्तत्त्वपदार्थश्रद्धालुः । मृग्यमाणं चतुर्दश जीव-गुणस्थानानि । मार्गेण नाम मृग इति विषयभूतानि गत्यादि-मृग्यस्थानानि । मार्गणोपायं नाम पाठादीनि । अथवा परिकर्मादीनि । अथवा शिष्याचार्यसम्बन्धानि । अथवा—

काले विणए उवधाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे ।

अत्थं वंजण तदुभय णाणचारो दु अट्ठविहो ॥३॥ इदि

एवमादि मार्गणोपायम् । एवं लोकेऽपि दृष्टमेतत् । मार्गणविधानं चतुर्विधं—नष्टद्रव्येव एव पुनर्मार्गणाविधिः ।

तत्थ इमाणि चउदसठाणाणि णादव्वाणि भवंति । गम्यतीति गतिः । अथवा भवाद्भव-संक्रान्तिर्गतिः । असंक्रान्तिः सिद्धगतिः । प्रत्यक्षविरतानीन्द्रियाणि, अक्षमक्षं प्रतिवर्तत इति प्रत्यक्षम् । चीयतीति कायः । अथवा आत्मप्रवृत्त्युपचितपुद्गलपिण्डः कायः । युञ्जतीति योगः । अथवा आत्मप्रदेशपरिस्पन्दनलक्षणो एन [योगः] । वेद्यत इति वेदः । अथवा मैथुनसम्मोहोत्पादो वेदः । सुख-दुःख बहुसण्यकर्मक्षेत्रं कृपन्तीति कपायाः । भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानं, तत्त्वार्थोपलम्भक वा । संयमनं संयमः । अथवा व्रत-समिति-कपाय-दण्डेन्द्रियाणां धारण-पालन-निग्रह-त्याग जयो संयमः । दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम् । आलोकनवृत्तिर्वा दर्शनम् । लिम्पतीति लेस्या । अथवा कपायानुरक्षित-काय-वाङ्मनोयोगप्रवृत्तिर्लेस्या । निर्वाणपुरष्कृतो भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । अथवा प्रशमसंवेगानुकम्पाऽऽस्तिक्यादिभिर्व्यक्तलक्षणं सम्यक्त्वम् । शिक्षाक्रियो-पदेशालापग्राही संज्ञी । तद्विपरीतोऽसंज्ञी । आह्वियत इत्याहारः । अथवा शरीरप्रायोग्यपुद्गलपिण्ड-ग्रहणमाहारः । तद्विपरीतोऽनाहारः ।

णिरयगई तिरियगई मणुयगई तह य जाण देवगई ।

इंदियसण्णा एइंदियादि पंचिदिया जाव ॥४७॥

पुढवी आऊ य तहा तेऊ मरु तरु तसा य णायव्वा ।

काया जिणेहि दिट्ठा संसारत्था य छब्भेया ॥४८॥

सच्चासच्चं च तहा सच्च य मोसो य असच्चभोसो य ।

मण-वयणस्स हु एवं पच्छा उण सुणहु काओगो ॥४९॥

ओरालिय तम्मिस्सं वेउव्विय पुण वि होइ तम्मिस्सं ।

आहारं पुण मिस्सं कम्मइगसमणियं जोयं ॥५०॥

पुरिस इत्थी णउंसय वेदा तिय होंति णादव्वा ।

कोहादी य कसाया लोभता जाण ते चउरो ॥५१॥

मदि-अण्णाणं च तहा सुद-अण्णाणं तहेव णादव्वं ।

होइ विहंगा णाणं अण्णाणतिगं च जाणेदे ॥५२॥

मदिसुदओही य तहा मणपज्जय केवलं वियाणाहि ।
पुच्चुच्चतिणिण सहियं णाणहं हुंति ते णियमा ॥५३॥

सामाहयं च पढमं छेदं परिहार सुहुम जहकहियं ।
संजममिस्सं च तहा असंजमं चेव सत्तोदे ॥५४॥

चक्खु अचक्खु ओधी केवलसहियं ज दंसणं चदुधा ।
किण्हादीया लेस्सा छब्भेया मुक्कपरियंता ॥५५॥

पढमं भव्वं च तहा वीयमभव्वं तु जिणवरमदम्हि ।
एत्तो सम्मत्तस्स य णामं साहंति जिणणाहा ॥५६॥
उवसम खइयं च तहा वेदगसम्मत्त सासणं मिस्सं ।
मिच्छन्नेण य सहिदं सम्मत्तं छव्विहं णाम ॥५७॥
सण्णि-असण्णी जीवा आहारी तह चे अणाहारी ।
उवओगस्स हु सण्णं एत्तो उहुं पवक्खामि ॥५८॥
अण्णाणतिगं ज तहा पंच य णाणा भणंति हु जिणिंदा ।
चउदंसणेण सहियं उवओगं वारसविधं तु ॥५९॥

गदिकम्मविणिव्वत्ता जा चेट्ठा सा गदी मुणेदव्वा ।
जीवा हु चादुरंगं गच्छंति त्ति य गदी हवदि ॥६०॥
ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल भावे य ।
अण्णोण्णोहिं य णिच्चं [तम्हा ते णारया भणिया ॥६१॥
तिरयंति कुडिलभावं मुत्रियडसण्णा णिगट्ठमण्णाणा ।
अच्चंतपाववहुला तम्हा तेरिच्छिया भविया ॥६२॥
मण्णंति जदो णिच्चं] मणेण णिउणा जदो हु ते जीवा ।
मण-उक्कडा य जम्हा तम्हा ते माणुसा भणिदा ॥६३॥
कीडंति जदो णिच्चं गुणेहि अट्ठेहिं दिव्व-भावेहिं ।
भासंति दिव्वकाया तम्हा ते वण्णिदा देवा ॥६४॥
जादि-जरा-मरण-भया वियोग-संजोग-दुक्खसण्णाओ ।
रागादिगा य जिस्से ण संति सा हवदि सिद्धगदी ॥६५॥

अहमिंदा वि य देवा अविसेसं वद्धमहं ति मण्णंता ।
ईसंति इक्कमेकं इंदा इव इंदियं जाण ॥६६॥
जाणदि पस्सदि भुंजदि सेवदि फासिंदिएण एक्केण ।
कुणइ य तस्सामिचं तो सो खिदिआदि एइंदी ॥६७॥

खुल्लग वरडग अक्खग रिट्ठग गंइव वालुगा संखा ।
 कुक्खि किमि सिप्पि-आदी णेया वेइंदिया जीवा ॥६८॥
 कुंथु पिपीलग मक्कुण विच्छिग जुग इंदगोव गोभीया ।
 उत्तिंगमट्ठि-आदी णेया तेइंदिया जीवा ॥६९॥
 दंसा मसगा मक्खिग गोमच्छिय भमर कीड मक्कड्या ।
 सलभ-पर्यंगादीया णेया चदुरिंदिया जीवा ॥७०॥
 अंडज पोदज जरजा रसजा संसेदिमा य सम्मुच्छा ।
 उब्भेदिमोववादिम णेया पंचिंदिया जीवा ॥७१॥
 ण वि इंदिय-करणजुदा अवग्गहादीहिं गाहगा अत्थे ।
 णेव य इंदियसुक्खा अणिंदियाणंतणाणसुहा ॥७२॥
 जह भारवहो पुरिसो वहदि भरं गेण्हऊण कायोडी ।
 एमेव वहदि जीवो कम्मभरं कायकाओडी ॥७३॥
 अप्पप्पवुत्तिसंचिदपुग्गलपिडं विजाण कायो त्ति ।
 सो जिणमदम्मि भणिदो पुढवीकायादियो छद्वा ॥७४॥
 पुढवी य वालुगा सक्कराय उवले सिलादि छत्तीसा ।
 वण्णादीहि य भेदा सुहुमाणं णत्थि ते भेदा ॥७५॥
 ओसा अ हिमिग महिगा हरदणु सुद्धोदगे घणदगे य ।
 वण्णादीहि य भेदा सुहुमाणं णत्थि ते भेदा ॥७६॥
 इंगाल जाल अच्ची मुम्मुर सुद्धागणी य अगणी य ।
 वण्णादीहि य भेदा सुहुमाणं णत्थि ते भेदा ॥७७॥
 वादुब्भामो उकलि मंडलि गुंजा महाघण तणू य ।
 वण्णादीहि य भेदा सुहुमाणं णत्थि ते भेदा ॥७८॥
 मूलग-पोर-वीया कंदा तह खंध-वीज-वीयरुहा ।
 सम्मुच्छिमा य भणिदा पत्तेयाणंतकाया ते ॥७९॥
 वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय असण्णि-सण्णि जे जीवा ।
 पंचिंदिया य जीवा ते तसकाया मुणेयन्वा ॥८०॥
 जह कंचणगिणेया बंधणमुक्का तहेव जे जीवा ।
 घणकायबंधमुक्का अकाइगा ते णिरावाधा ॥८१॥
 मणसा वचिया काएण चावि जुत्तस्स विरियपरिणामो ।
 जीवस्सप्पणिओ खलु स जोगसण्णा जिणक्खादा ॥८२॥

सञ्भावो सच्चमणो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।
 तच्चिवरीयो मोसो जाणुभयं सच्चमोसु त्ति ॥८३॥
 ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो ।
 जो जोगो तेण भवे असच्चमोसं तु मणजोगो ॥८४॥
 दसविधसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो ।
 तच्चिवरीदो मोसो जाणुभयं सच्चमोसु त्ति ॥८५॥
 जो णेव सच्चमोसो तं जाण असच्चमोसवचिजोगो ।
 अमणाणं जा भासा सणीणामंतणादीया ॥८६॥
 पुरु महमुदारुरालं एगडुं तं वियाण तम्मिह भवे ।
 ओरालिय त्ति वुत्तं ओरालियकायजोगो सो ॥८७॥
 अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णं च ।
 जो तेण संपओगो ओरालियकायमिस्सजोगो सो ॥८८॥
 विविहगुणइड्डिजुत्तो वेउव्वियमध व विकिरियाए य ।
 तिस्से भवं च णेयं वेउव्वियकायजोगो सो ॥८९॥
 अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णं च ।
 जो तेण संपओगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो सो ॥९०॥
 आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
 गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारकायजोगो सो ॥९१॥
 अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णं च ।
 जो तेण संपओगो आहारयमिस्सकायजोगो सो ॥९२॥
 कम्ममेव य कम्मभवं कम्मइगं तेण जो दु संजोगो ।
 कम्मइगकायजोगो एग-विग-तिगोसु समएसु ॥९३॥
 जेसिं ण संति जोगा सुभासुभा पुण्ण-पापसंजणया ।
 ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंतवलजुत्ता ॥९४॥
 मोहस्सु- [वेदस्सु] दीरणाए बालत्तं पुण णियच्छदे बहुसो ।
 इत्थी पुरिस णउंसय वेदंति हवदि वेदो सो ॥९५॥
 छाएदि सयं दोसेण जदो छाददि परं पि दोसेण ।
 छादणसीला णियदं तम्हा सा वणिणदा इत्थी ॥९६॥
 पुरुगुणभोगे सेदे करेदि लोगम्मि पुरुगुणं कम्मं ।
 पुरुसुत्तमो य जम्हा तम्हा सो वणिणदो पुरिसो ॥९७॥

णेवित्थी णेव पुमा णवुंसगो उभयलिंगविदिरित्तो ।
 इद्वय अवगिसरिसो वेदणगुरुगो कलुसचित्तो ॥६८॥
 कारिसतणिट्टमग्गीसमाणपरिणामवेदणुम्मुक्का ।
 अवगदवेदा जीवा सगसंभव-अमिय-वरसुक्खा ॥६९॥

सुह-दुक्खं बहुसस्सं कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स ।
 संसारगदीमेरं तेण कसाओ त्ति णं विंति ॥१००॥
 सिलभेद-पुढविभेदा धूलीराई य उदयराइसमा ।
 णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु कोहवसा ॥१०१॥
 सेलसमो अट्टिसमो दारुसमो तह य जाण वेत्तसमो ।
 णिर-तिरि-णर-देवत्तं उवेत्ति जीवा हु माणवसा ॥१०२॥
 वंसीमूलं मेहस्स सिंग गोमुत्तयं चउरप्पं ।
 णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु मायवसा ॥१०३॥
 किमिरागं चक्कमलं कद्दम-उवमं च जाण हालिहं ।
 णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु लोहवसा ॥१०४॥
 अप्पपरोभयवाधावंधासंजमणिमित्तकोधादी ।
 जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥१०५॥

जाणदि अणेण जीवो दव्व-गुण-पज्जए य बहुभेदे ।
 पच्चक्खं च परोक्खं तम्हा णाणो त्ति णं विंति ॥१०६॥
 विसजंतकूडपंजरबंधादिसु अणुवदेसकरणेण ।
 जा खलु पवत्तदि मदी मदि-अण्णाणेत्ति णं विंति ॥१०७॥
 आभीयमासुरक्खा भारह-रामाअणादि-उवदेसा ।
 रुच्छा [तुच्छा] असाधणीया सुद-अण्णाणेत्ति णं विंति ॥१०८॥
 विवरीयमोधिणाणं खओवसमियं च कम्मवीयं च ।
 वेभंगो चिय वुच्चदि सम्मंणाणीहि समयम्हि ॥१०९॥
 अहिमुहणियमिदबोधण इंदिय-णोइंदियत्थसंजुत्तं ।
 आभिणिवोधियणाणं विजाण तं वण्णिदं समए ॥११०॥
 सोदूण पाठसदं जं घेप्पदि अप्पणो मदिवलेण ।
 तं सुदणाणं जाणसु णिच्चं उवदेससिद्धं तु ॥१११॥
 अवधीयदि त्ति ओधी सीमाणाणेत्ति वण्णिदं समए ।
 भव-गुणपच्चयविहिदं तधावधिणाणेत्ति णं विंति ॥११२॥

उज्जुवमणुज्जुगं पि अ मणोगदं सव्वमणुयलोगमिह ।
 पज्जयगदं पि जाणदि वुच्चदि मणपज्जवं णाणं ॥११३॥
 संपुण्णं तु समग्गं केवल जुगवं च सव्वभावविदू ।
 'लोगालोगवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं ॥११४॥

जेम णियमेसु य पंचिंदिएसु पाणेसु संजमो दिट्ठं ।
 सददं मुणि संजदो त्ति य तेणं किर संजमो णाम ॥११५॥
 सामाइयमिह दु कदे एगं जाम अणुत्तरं धम्मं ।
 तिबिहेण सदहंतो सामाइयसंजमो स खलु ॥११६॥
 छेत्तूण य परियायं पोराणं पि त्थवेदि अप्पाणं ।
 धम्ममिह पंच जोगे छेदोवट्ठावगो स खलु ॥११७॥
 परिहरदि जो विसुद्धो एयं समयं अणुत्तरं धम्मं ।
 पंचसमिदो तिगुत्तो परिहारा संजमो स खलु ॥११८॥
 लोभं अणुवेदंतो जो खलु उवसामगो व खवगो वा ।
 सो सुहुमसंपराओ जहखादेणूणओ किंचि ॥११९॥
 उवसंते खीणे वा असुभे कम्मम्मि मोहणीयम्मि ।
 छट्ठमत्थो व जिणो वा जहखादं संजमो स खलु ॥१२०॥
 दंसण वद सामाइय पोसह सच्चित्त रायभत्ते य ।
 वंभारंभ परिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदी य ॥१२१॥
 तसजीवेसु य विरदो थावरजीवेसु णेव विरदु त्ति ।
 सावयधम्मो तम्हा संजमासंजमो स खलु ॥१२२॥
 जीवे च उदसभेदे इंदियविसएसु अट्ठवीसेसु ।
 जे तेसु णेय विरदा असंजदा ते मुणेदव्वा ॥१२३॥
 जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्ठु आयारं ।
 अविसेसदूण अत्थे दंसणमिदि भण्णए समए ॥१२४॥
 चक्खूणं जं पस्सदि वासदि[दीसदि]तं चक्खुदंसणं विंति ।
 दिट्ठस्स य जं सरणं णादव्वं तं अचक्खुइंत्ति ॥१२५॥
 परमाणुआदिगाहं अंतिमखंधं ति मुत्तिदव्वाइं ।
 तं ओधिदंसणं पुण जं पस्सदि ताणि पच्चक्खं ॥१२६॥
 बहुविह-बहुप्पयारा उज्जोआ परिमिदमिह खेत्तमिह ।
 लोगालोगवितिमिरं केवलवरदंसणुज्जोवो ॥१२७॥

लिंपदि अर्प्पीकीरदि एदाए गियय पुण्ण पावं च ।
 जीवस्स हवदि लेसा लेसगुणजाणणक्खादा ॥१२८॥
 जह गेरुवेण कुड्डो लिप्पदि लेवेण आमपिट्ठेण ।
 तह परिणामो लिप्पदि मुभासुभेणेत्ति लेवेण ॥१२९॥
 चंडो ण म्रुयदि वेरं भंडणसीलो य धम्म-दयरहिदो ।
 दुड्डो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥१३०॥
 मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी विसयलोलो य ।
 माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भीरु य ॥१३१॥
 णिंदा-वंचण बहुलो घण-घण्णे होदि तिव्वपरिणामो ।
 लक्खणमेयं भणियं समासदो णील्लेसस्स ॥१३२॥
 रूसदि णिंददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोग[भ]य-बहुगो ।
 अमुवदि परिभवदि परं पसंसदे अप्पयं बहुसो ॥१३३॥
 ण य पत्तियदि परं सो अप्पाणं पिव परो वि तह चेव ।
 [तु]स्सदि अभियुच्चंतो ण य जाणदि हाणि-वड्ढिं च ॥१३४॥
 मरणं पन्थेदि रणे देदि य बहुगं पि थुच्चमाणो ह ।
 ण गणदि कज्जमकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥१३५॥
 जाणदि कज्जाकज्जं सेयासेयं च सच्चसमपासी ।
 दय-डाणरदो य मिदू लक्खणमेदं तु तेउस्स ॥१३६॥
 चागी भदो चोक्खो उज्जुयकम्मो य खमदि बहुगं पि ।
 साहु-गुरुपुज्जणरदो लक्खणमेदं तु पउमस्स ॥१३७॥
 ण य कुणदि पक्खवादं ण वि य णिदाणं समो य सच्चेसु ।
 णत्थि य रागो दोसो ण्हो वि य मुक्कलेसस्स ॥१३८॥
 किण्हा भमरसवण्णा णीला पुण णीलगुलियसंकासा ।
 काऊ कओयवण्णा तेऊ तवणिज्जवण्णाहा ॥१३९॥
 पउमा पउमसवण्णा मुक्का पुणु कासकुमुमसंकासा ।
 वण्णंतरं च एदे हवन्ति परिता अणंता वा ॥१४०॥
 काऊ काऊ य तहा काऊ णीला य णील णील-किण्हा य ।
 किण्हा य परमकिण्हा लेसा रदणादिपुढवीसु ॥१४१॥
 तेऊ तेऊ य तहा तेऊ पम्मा य पम्म-मुक्का य ।
 मुक्का य परममुक्का लेसा भवणादिदेवाणं ॥१४२॥

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दुण्हं तु तेरसण्हं च ।
 एत्तो चउद्दसण्हं लेसा भवणादिदेवाणं ॥१४३॥
 णिम्मूलखंधदेसे[साहा]गुंछा चुणिऊण के वि पडिदा य ।
 जह एदेसिं भावा तहविह लेसा मुणेयव्वा ॥१४४॥
 लेसपरिणाममुक्का जे जीवा सिद्धिमस्सिदा अजोगी य ।
 अवगदलेसा जीवा सग-संभवगुणअणंतजुत्ता य ॥१४५॥

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते भवंति भवसिद्धा ।
 सिद्धिपुरक्कडजीवा संसारादो दु सिज्झंति ॥१४६॥
 संखिज्झमसंखिज्झं अणंतकालेण चावि ते णियमा ।
 सिज्झंति भव्वजीवा अभव्वजीवा ण सिज्झंति ॥१४७॥
 ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहा जुत्ततीदसंसारा ।
 ते जीवा णादव्वा णेव अभव्वा अ भव्वा य ॥१४८॥

छपंचणवविधाणं अत्थाणं जिणवरोवदिट्ठाणं ।
 आणाय अधिगमेण य सद्दहणं होदि सम्मत्तं ॥१४९॥
 देवे अणण्णभावो विसयविरागो य तच्चसद्दहणं ।
 दिट्ठीसु असम्मोहो सम्मत्तमणूणयं जाणे ॥१५०॥
 वयणेण वि हेदूण वि इंदिय-भय-विउव्विगेण रुवेण ।
 वीभच्छ-दुगंछाए तेलुक्केण वि ण कं पिज्जा ॥१५१॥
 एवं विउला बुद्धी ण विम्हयं एदि किंचि ददूण ।
 पट्टविदे सम्मत्ते खइए जीवस्स लद्धीए ॥१५२॥
 बुद्धी सुहाणुवंधी सुइक्कम्मरदो सुदं च संवेगो ।
 तच्चत्थे सद्दहणं पियधम्मं तिव्वणिव्वेगो ॥१५३॥
 इच्चेवमादिया जे वेदयमाणस्स ते भवंति गुणा ।
 वेदगसम्मत्तमिणं सम्मत्तुदएण जीवस्स ॥१५४॥
 दंसणमोहस्सुदए उवसंते सव्वभावसद्दहणं ।
 उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णकलुसं जहा तोयं ॥१५५॥
 छसु हेड्डिमासु पुढवीसु जोइस वण-भवण-सव्वइत्थीसु ।
 वारस मिच्छुवधादे सम्मादिट्ठी ण उप्पण्णो ॥१५६॥
 चत्तारि वि छेत्ताइं आउगवंधेण होदि सम्मत्तं ।
 अणुवय-महव्वदेहि य ण लभदि देवाउगं मुत्तुं ॥१५७॥

दंसणमोहकखवणे पट्टवगो कम्मभूमिजादो तु ।
 णियमा मणुसगदीए णिट्टवगो चावि सव्वत्थ ॥१५८॥
 खवणाए पट्टवगो जम्हि भवे णियमसा तदो अण्णे ।
 णादिच्छइ तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि ॥१५९॥
 दंसणमोहुवसमगो दु चटुसु वि गदीसु तह य त्रोधव्वो ।
 पंचिंदिओ दु सण्णी णियमा सो होदि पज्जत्तो ॥१६०॥
 मणपज्जपरिहारो उवसम्मत्त दोण्णि आहारा ।
 एदेसु इक्कपयदे णत्थि त्ति अ सेसयं जाणे ॥१६१॥
 सम्मत्त सत्तया पुण विरदाविरदे य चउदसा होंति ।
 विरदेसु य पण्णरसं विरहिदकालो य त्रोधव्वो ॥१६२॥
 अडदालीस मुहुत्ता पक्खं मासं तहेव वे मासा ।
 चउ छक्क मास वरिसं अंतर रदणादिपुढवीसु ॥१६३॥
 ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो दु परिपडिदो ।
 सो सासणो त्ति णेओ सादियमध पारिणामिओ भावो ॥१६४॥

सदहणासदहणं जस्स य जीवस्स होदि तच्चेसु ।
 विरदाविरदेण समो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ॥१६५॥
 मिच्छादिट्ठी जीवो उवदिट्ठं पवयणं ण सदहदि ।
 सदहदि असव्भावं उवदिट्ठं अणुवदिट्ठं वा ॥१६६॥

एवं कदे मए पुण एवं होदि त्ति कज्जणिप्पत्ती ।
 जो दु विचारदि जीवो सो सण्णी असण्णिणो इदरो ॥१६७॥
 सिक्खाकिरिउवदेसालावग्गाही मणोवलंबेण ।
 जो जीवो सो सण्णी तच्चिव्वरीदो असण्णी य ॥१६८॥
 मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं वा ।
 सिक्खादि णामेणेयदि य समणो अमणो य विवरीदो ॥१६९॥

आहरदि सरीराणं तिण्हं इक्कदरवग्गणाओ य ।
 भासा-मणस्स णियदं तम्हा आहारगो भणिदो ॥१७०॥
 विग्गहगइमावण्णा केवलिणो समुहदो अजोगी य
 सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिणो जीवा ॥१७१॥

वत्थुणिमित्तो भावो जादो जीवस्स जो दु उवओगो
 उवओगो सो दुविहो सागारो चेव अणगारो ॥१७२॥

मदि-सुद-ओधि-मणेहि य सग-सगविसए विसेसविण्णाणं ।
 अंतोमुहुत्तकालो उवओगो सो दु सागारो ॥१७३॥
 इंदियमणोधिणा वा अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं ।
 अंतोमुहुत्तकालो उवओगो सो अणगारो ॥१७४॥
 केवल्लिणं सागारो अणगारो जुगवदेव उवओगा ।
 सादियमणंतकालो पच्चक्खदो सच्चभावगदो ॥१७५॥
 णिक्खेवे एयद्धे णयप्पमाणे णिरुत्ति अणिओगे ।
 मग्गदि वीसं भेदे सो जाणदि जीवसब्भावं ॥१७६॥

[इदि तदिओ जीवसमासो-समत्तो ।]



चउत्थो सतग-संगहो

सयलससिसोमवयणं णिम्मलगत्तं पसत्थणाणधरं ।
पणामिय सिरसा वीरं सुदणाणादो इमं वोच्छं ॥१॥
णाणोदधिणिस्संदं विण्णाणतिसाभिघादजणणत्थं ।
भवियाणममिदभूदं जिणवयणरसायणं इणमो ॥२॥

भगवंत-अरिहत-सञ्चण्डु-वीयराय-परमेष्ठि-परमभट्टारयस्स मुहकमलविणिग्गयणाणोदधि-
सुयसमुदस्स णिस्संदं 'स्यन्दू' स्रवणे धातुना सिद्धम् । अप्पसुदं विण्णाणं, विसेसं णाण, वंध-मुक्ख-
जाणणतिसा कंखा, अभिघादजणणत्थं विणास-उप्पादणत्थं, भवियाणं भञ्जवरपुंडरीयाणं, अमय-
भूदं जादि-जरा-मरणविणासणभूदं जिणवयणं अनेकभवगहनविपमव्यसनप्रापकहेतून् कर्मातीन्
जयन्तीति जिनाः । तथा चोक्तं—

जितमदहर्पढेषा जितमोहपरीषहा जितकषायाः ।

जितजन्ममरणदोषा जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः ॥१॥

एवगुणविशिष्टानां जिनानां वचनम् । जिनस्य वचनं जिनवचनम् । किमुक्तं भवति ?
वक्तृप्रामाण्याद्वचनप्रामाण्यं भवति । वक्तारपमाणत्वेण सुदयगाहासुत्ताण पमाणत्वं जाणावणत्थं
जिणवयणमिदि वुत्तं । रसायणं अक्खयमुक्खस्स कारण । इणमो एदाणि पच्चक्खीभूदाणि
गाहासुत्ताणि ।

सुणह इह जीवगुणसण्णिदेसु ठाणेषु सारजुत्ताओ ।

वुच्छं कदिवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवादाओ ॥३॥

'सुणह' सोढारसिस्साणं पडिवोहणत्थं वुत्तं, अप्पडिवुद्धाणं वक्खाण णिरत्थयं होदि त्ति ।
तथा चोक्तं—

अप्रतिबुद्धे श्रोतरि वक्तृत्वमनर्थकं भवति पुंसाम् ।

नेत्रविहीने भर्त्तरि विलासलावण्यमिव स्त्रीणाम् ॥२॥

'इह' इदंशब्द प्रत्यक्षवाची । केपा प्रत्यक्षम् ? आगमाधित [श्रित] सस्कागाणां आचार्याणां
प्रत्यक्षम् । 'जीवगुणसण्णिदेसु ठाणेषु' एत्थ जीवसण्णिदा चउदस जीवसमासा, गुणसण्णिदा
चउदसगुणट्ठाणा । 'सारजुत्ताओ' सूत्रगुणेन युक्ता । किं तत्सूत्रगुणम् ?

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्-गूढनिर्णयम् ।

निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः ॥३॥

'बुच्छं' वच्चे । 'कदिवइयाओ गाहाओ' केत्तियाओ वि गाहाओ । 'दिट्ठिवादाओ' चारहम-
अंगस्स कम्मपवाद[णाम]अट्ठमपुब्बादो धेत्तूण ।

उवजोगा जोगविही जेसु य ठाणेसु जेत्तिया अत्थि ।

जं पच्चइओ बंधो हवइ जहा जेसु ठाणेसु ॥४॥

बंधं उदय उदीरणविहं च तिण्हं पि तेसु संजोगो ।

बंधं विहाणे वि तहा किं पि समासं पक्खामि ॥५॥

एइंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव ।

पंचिंदिएसु एवं चत्तारि हवंति ठाणाणि ॥६॥

एइंदिया दुविहा—बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । सुहुमा दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । एदे चत्तारि एइंदिएसु जीवठाणाणि ४ । वेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया य दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । एदे छ विगलिंदिएसु जीवठाणाणि ६ । पंचिंदिया दुविहा—सण्णी असण्णी । सण्णी दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । असण्णी दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । एवं पंचिंदिएसु चत्तारि जीवठाणाणि ४ । एवं चउदस जीवठाणा १४ ।

तिरियगईए चउदस हवंति सेसासु जाण दो दो दु ।

मग्गणठाणस्सेवं गेयाणि समासठाणाणि ॥७॥

तिरियगईए चउदस जीवठाणाणि हवंति १४ । गिरियगदि-देवगदि-माणुसगदीसु सण्णिय-पंचिंदियपज्जत्तापज्जत्ता [दो दो जीवठाणाणि हवंति ।] कायाणुवादेण पुढवि-आउ-तेउ-वाउकाइया एदे १६ । वणप्फदिकाइया १० । तसकाइया एदे [१०] एवं कायमग्गणा छत्तीसं ३६ । पत्तेयं पत्तेयं बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया एदे सोलसा १६ । वणप्फदिकाइया दुविहा—पत्तेयसरीरा साहारणसरीरा । पत्तेयसरीरा दुविहा पज्जत्तापज्जत्ता । साधारणा दुविहा—णिच्चणिगोदा चदुगदिणिगोदा । णिच्चणिगोदा दुविहा—बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा—पज्जत्तापज्जत्ता । सुहुमा दुविहा—पज्जत्तापज्जत्ता ४ । चदुगदि-णिगोदा दुविहा—बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा—पज्जत्तापज्जत्ता । सुहुमा दुविहा—पज्जत्तापज्जत्ता । बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया सण्णी असण्णी पज्जत्ता अपज्जत्ता १० । एवं कायमग्गणा छत्तीसा ३६ ।

जोगाणुवादेण मण चत्तारि वचि तिण्णि सण्णी पज्जत्त असच्चमोस वचिजोग वीइंदिय तीइंदिय चउरिंदिय असण्णी पंचिंदिय पज्जत्त सण्णिपज्जत्ताण कायजोगा चउदसण्हं पि १४ । ओरालियकायजोगो सत्तण्हं पज्जत्ताणं, ओरालियमिस्स० सत्तण्हं अपज्जत्ताणं । अट्टमओ केवली समुग्घादगदो कवाडो ओरालियमिस्सं । एवं कम्मइय वे विसेवि [] अट्टमं पदर-लोग-पूरणे । वेउन्वियकायजोगो सण्णिपज्जत्ताणं, वेउन्वियमिस्सकायजोगो सण्णि-अपज्जत्ताणं । आहारा-हारमिस्सकायजोगो सण्णिपज्जत्ताणं ।

वेदाणुवादेण णवुंसगवेदो चउदसण्हं पि । इत्थि-पुरिसवेदो सण्णि-असण्णि-पज्जत्तापज्जत्ताणं । कसायाणुवादेण कोधकसाइस्स चउदसण्हं पि १४ । माणकसाइस्स १४ । मायाकसाइस्स १४ । लोभ-कसाइस्स १४ । णाणाणुवादेण मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं चउदसण्हं पि १४ । विभंगणाणं सण्णि-पज्जत्ताणं आभिणिबोधियणाणं सुदणाणं ओधिणाणं सण्णिपज्जत्तापज्जत्ताणं । मणपज्जवणाणं सण्णि-पज्जत्ताणं । केवलणाणं णेव सण्णी णेव असण्णीपज्जत्ताणं । संजमाणुवादेण असंजमं चउदसण्हं पि १४ । सामाइय-छेदोवट्ठावणं परिहारा सुहुम जहाखायसंजमं सण्णिपज्जत्ताणं । संजमासंजमं पंचिंदियसण्णिपज्जत्ताणं ।

दंसणाणुवादेण अचक्खुदंसणं चउदसण्हं पि १४। चक्खुदसणं चउरिंदिय-असण्णि-
सण्णिपंचिंदियपज्जत्ताणं ३। ओधिदसणं सण्णिपज्जत्तापज्जत्ताणं २। केवलदंसणं णेव सण्णी णेवा-
सण्णी पज्जत्ताणं। लेसाणुवादेण किण्ह-णील-काउलेसा चउदसण्हं पि १४। तेउ-पउम-सुक्खेसा
सण्णिपज्जत्तापज्जत्ताणं। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया चउदसण्हं पि १४। अभवसिद्धिया चउदसण्हं
पि १४। सम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठो चउदसण्हं पि १४। सासणसम्मत्त वादर एइंदी वेइंदी
तेइंदी चउरिंदी असण्णि-सण्णिपंचिंदिय-अपज्जत्ता सण्णिपज्जत्तो च ७। सम्मामिच्छत्तं सण्णिपज्ज-
त्ताणं। उवसमसम्मत्तं वेदगसम्मत्तं खाइयसम्मत्तं सण्णिपज्जत्तापज्जत्ताणं। सण्णिआणुवादेण
सण्णी पज्जत्तापज्जत्ताणं २। असण्णी वारसण्हं १२। आहाराणुवादेण [आहारा] सत्तण्हं
पज्जत्ताणं, अपज्जत्ताणं च १४। अणाहारा सत्तण्हं अपज्जत्ताणं। अट्टमओ पदर-लोग-
पूरणे दीसदि।

एक्कारसेसु तिय तिय दोसु चदुक्कं च वारसेक्कम्मि।

जीवसमासस्सेदे उवओगविही मुणेदव्वा ॥८॥

एइदिएसु चदुसु वीइंदिय तीइंदिय पज्जत्तापज्जत्ता चदुरिंदिय पंचिंदिय सण्णी असण्णी
एदेसु इक्कारसेसु तिण्णि उवओगा—मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं अचक्खुदंसणे त्ति। चदुरिंदिय
असण्णिपंचिंदिय पज्जत्ता एदेसु दोसु चत्तारि उवओगा-मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं चक्खुदंसणं
अचक्खुदंसणे त्ति। एक्कम्मि सण्णिपंचिंदियपज्जत्ते वारस उवओगा—मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं
विभंगअण्णाणं पच णाणाणि, चत्तारि दंसणाणि एदे वारस उवओगा। सण्णिविसेसेण काऊण
केवलणाणं केवलदंसणं णत्थि, पंचिंदियसामण्णेण अत्थि।

णवसु चदुक्के इक्के जोगा इक्को य दोण्णि पण्णरसा।

तवभवगदेसु एदे भवंतरगदेसु कम्मइयं ॥९॥

‘णवसु चउक्के’ वादरेइंदियपज्जत्त-सुहुमेगिंदियपज्जत्तेसु ओरालियकायजोगो। वादर-सुहुमेइं-
दिय अपज्जत्त वीइंदिय [अ]पज्जत्त तीइंदियअपज्जत्त चउरिंदियअपज्जत्त सण्णिपंचिंदियअपज्जत्त-
अमण्णिपंचिंदियअपज्जत्तेसु ओरालियमिस्सकायजोगो। वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-असण्णि-
पंचिंदियपज्जत्तेसु एदेसु चदुसु दोण्णि ओरालियकायजोगो असच्चमोसवच्चिजोगा हुत्ति। एदेसु
पज्जत्तगहणेण णिव्वत्तिपज्जत्तयाणं गहणं, अपज्जत्तगहणेण णिव्वत्ति-लद्धिअपज्जत्तयाणं गहणं। एक्के
सण्णिपंचिंदियपज्जत्तमिह चत्तारि मणजोगा चत्तारि वच्चिजोगा सत्त कायजोगा हुंति। कवाडे
ओरालियमिस्सकायजोगो, पदरे लोगपूरणे कम्मइयकायजोगो, पमत्तसंजदमिह आहार-आहार
मिस्सकायजोगो। देव-गेरइयणिव्वत्तिपज्जत्तयाण पज्जत्तो त्ति काऊण वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स-
कायजोगो भणिदो। एवं सुत्ताभिप्पाअं, तेसु लद्धिअपज्जत्तगो णत्थि। ‘तवभवगदेसु’ ख [णव]
सरीरगहिदेसु एदे पुव्वुत्तजोगा हुंति। ‘भवतरगदेसु’ कम्मइयकायजोगो त्ति भणिदो, पुव्वसरीरं
छुड्डिऊण अण्णसरीरं जाव ण गेण्हइ ताव भवंतर विग्गहगइ त्ति एगट्ठो। तम्मि वट्टमाणे
कम्मइयकायजोगो।

उवओगा जोगविही जीवसमासेसु वण्णिदा एदे।

एत्तो गुणेहि सह परिणदाणि ठाणाणिमे सुणह ॥१०॥

[मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य।

णव संजयाइ एवं चोइस गुणणामठाणाणि ॥११॥]

मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी संजदासंजद-
पमत्तसंजद अपमत्तसंजद अपुव्वकरण अणियट्ठि सुहुम उवसंत खीणकसाय सजोगिकेवली
अजोगिकेवली ।

सुर-णारएसु चत्तारि हुंति तिरिएसु जाण पंचेव ।

मणुयगदीए वि तहा चउदस गुणणामधेयाणि ॥१२॥

गदियाणुवादेण देव-णेरइएसु चत्तारि गुणट्ठाणाणि मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्मामिच्छा-
दिद्वी असंजदसम्मादिद्वि त्ति । 'तिरिएसु जाण पंचेव' मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्मा-
मिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी संजदासंजदेत्ति । 'मणुयगदीए वि तहा चउदस गुणणामधेयाणि'
मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगि त्ति ।

इंदियाणुवादेण एइंदिय-नीइंदिय-तीइंदिय-चउरिदिएसु मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वि
त्ति २ । पंचिदिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति १४ ।

कायाणुवादेण पुढवीए [आउ] वणफदिएसु मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वि त्ति २ ।
तेउ-वाउकाइएसु मिच्छादिद्वि त्ति १ । तसकाइएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि
त्ति १४ ।

जोगाणुवादेण सच्चमणजोगि-असच्चमोसमणजोगि सच्चवचि-जोगि-असच्चमोसवचिजोगि-
ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति १३ । मोसमणजोगि-सच्चमो-
समणजोगि-मोसवचिजोगि-सच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसाओ त्ति १२ ।
ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी कवाडे सजोगि-
केवली ४ । वेउवियकायजोगीसु मिच्छादिद्वी सासणसम्माइद्वी सम्मामिच्छाइद्वी असंजदसम्मा-
दिद्वि त्ति ४ । वेउवियमिस्से मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्मादिद्वि त्ति ३ । कम्म-
इयकायजोगे मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी । पदरे लोगपूरणे सजोगिकेवलि
त्ति ४ । आहाराहारमिस्सकायजोगे एकं चेव पमत्तसंजद त्ति १ ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदे मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति णव गुणट्ठाणाणि । णवुंसय-
वेदे मिच्छादिद्विप्पहुडि अणियट्ठि त्ति ६ । पुरिसवेदे मिच्छादिद्विप्पहुडि अणियट्ठि त्ति ६ । अवगद-
वेदे सुहुमादि अजोगि त्ति ५ ।

कसायाणुवादेण कोहकसाएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि अणियट्ठि त्ति ६ । माणकसाएसु मिच्छा-
दिद्विप्पहुडि अणियट्ठि त्ति ६ । मायाकसाएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि अणियट्ठि त्ति ६ । लोभकसाईसु
मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइय त्ति दस गुणट्ठाणाणि १० । अकसाएसु उवसंतकसायादि
अजोगि त्ति ४ ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं विभंगाणाणं मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी इदि
दुण्णि गुणट्ठाणेसु हुंति २ । मदि-सुद-ओधिणाणेसु असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसाओ
त्ति ६ । मणपल्लवणाणेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाओ त्ति सत्त गुणट्ठाणाणि ७ । केवल-
णाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति दुण्णि गुणट्ठाणाणि २ ।

संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति
४ । परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदो अपमत्तसंजदो त्ति दुण्णि गुणट्ठाणाणि २ । सुहुमसंपराइय-
सुद्धिसंजदेसु सुहुमसंपराइयं एकं १ । जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु उवसंतकसायादि जाव अजोगि-
केवलि त्ति ४ । संजमासंजमे एकं चेव देसविरदगुणं १ । असंजमे मिच्छादिद्विप्पहुडि असंजद-
सम्मादिद्वि त्ति ४ ।

၎င်းတို့သည်

दुण्हं पंच य छच्चेव दोसु इक्कम्हि हुंति वामिस्सा ।
सत्तुवओगा सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु ॥१३॥

मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी एदेसु गुणट्ठाणेसु मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं विभंगाणाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं एदे पंच उवओगा हुंति । असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजद एदेसु दोसु गुणट्ठाणेसु मदिणाणं सुदणाणं ओधिणाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओधिदंसणं एदे छ उवओगा हुंति । सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि मइणाणं मइअण्णाणेण मिस्सं सुदणाणं सुदअण्णाणेण मिस्सं ओधिणाणं विभंगाणाणेण मिस्सं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओधिदंसणं एदे छ उवओगा हुंति । पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजद-अपुव्व-अणियट्ठि-सुहुम-उवसंत-खीणेसु य असंजदसम्मादिट्ठि-उवओगा मणपल्लवणाणसहिदा सत्त हुंति । सजोगि-अजोगिकेवलीणं केवलणाण केवलदंसणं च [दो] उवओगा हुंति ।

तिसु तेरेगे दस णव सत्तसु इक्कम्हि हुंति एगारा ।

एक्कम्हि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवदि एक्कं ॥१४॥

मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु चत्तारि मण जोग चत्तारि वचि-जोग-ओरालियकायजोग-ओरालियमिस्सकायजोग - वेउव्वियकायजोग - वेउव्वियमिस्सकायजोग-कम्मइयकायजोगा हुंति १३ । सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि चत्तारि मणजोग-चत्तारि वचिजोग-ओरालियकायजोग-वेउव्वियकायजोगा हुंति १० । संजदासंजद-अप्पमत्तसंजद-अपुव्व-अणियट्ठि-सुहुम-उवसंतखीणेसु चत्तारि मणजोग-चत्तारि वचिजोग-ओरालियकायजोगा हुंति ६ । पमत्तसंजदम्मि अणंतरवुत्तं णव जोगा आहारकायजोग-आहारमिस्सकायजोगेण जुत्ता एक्कारस हुंति ११ । सजोगिकेवलम्हि सच्चमणजोग-असच्चमोसमणजोग-सच्चवचिजोग-असच्चमोसवचिजोग-ओरालियकायजोग - ओरालियमिस्सकायजोग - कम्मइयकायजोगा हुंति ७ । जोगरहिदं अजोगिट्ठाणं हवदि एक्कं ।

चउपच्चइओ बंधो पढमाणंतरतिगे तिपच्चइगो ।

मिस्सं विदिओ उवरिमदुगं च देसेकदेसम्मि ॥१५॥

मिच्छादिट्ठिम्मि मिच्छत्तासंजमकसायजोगपच्चया हुंति । सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा-मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु मिच्छत्तवज्ज पुव्वुत्तपच्चया हुंति । संजदासंजदम्हि तससंजम-थावरासंजमकसायजोगपच्चया हुंति ।

उवरिल्लपच्चया पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं ।

सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं हुंति कम्माणं ॥१६॥

पमत्तसंजदेसु अप्पमत्तसजदेसु अपुव्व-अणियट्ठिसुहुमेसु कसाय-जोगपच्चया हुंति । उव-संतकसाओ खीणकसाओ सजोगिकेवली जोगपच्चओ चेव । अजोगिकेवली अवंधगो त्ति तम्मि ण पच्चओ भणिदो । एदे णाणेगसमयमूलपच्चया वुत्ता ।

पणवण्णा इर वण्णा [पण्णासा] तिदाल छादाल सत्ततीसा य ।

चउवीस दु वावीसा सोलस एगूण जाण णव सत्ता ॥१७॥

णाणेगजीवं पडुच्च एयंतं विवरीदं वेणइय संसइयं अण्णाणं चेव । वुत्तं च—

एयंतं बुद्धदरिसी विवरीदो वंभ वेणइए तावसो ।

इंदो वि य संसइओ मक्कलिओ चेव अण्णाणं ॥१८॥

एदे पंच मिच्छत्ता । चक्खू सोद घाण जिन्ना फास मणं च एदे छ इंदिय-असंजमपच्चया पुढवि आउ तेउ वाउ वणप्फदि तसकाइया एदे छपाणासंजमपच्चया । सोलस कसाय णव णोक-साया य कसायपच्चया । आहारकायजोग-आहारमिस्सकायजोग वज्जिय तेरस जोगपच्चया एदे सन्वे मिलिया पणवण्ण पच्चया मिच्छादिट्ठिस्स ५५ । एदे पंचमिच्छत्तवज्जा पण्णासपच्चया सासण-सम्माइट्ठिस्स ५० । एदे अणंताणुवधिचउक्कं ओरालियमिस्स-वेउवियमिस्स-कम्मइयकायजोग-वज्ज तिदाला पच्चया सम्मामिच्छादिट्ठिस्स ४३ । एदे ओरालियमिस्स-वेउवियमिस्स-कम्मइय-कायजोगसहिदा छादालपच्चया असंजदसम्मादिट्ठिस्स ४६ । एदे तसासजम-अपच्चक्खाणा-वरणीयचउक्क ओरालियमिस्स-वेउविय-वेउवियमिस्स-कम्मइयकायजोग वज्ज सत्ततीस पच्चया संजदासंजदस्स ३७ । एदे इक्कारसासंजमपच्चया पच्चक्खाणावरणचउक्क वज्जं आहाराहार-मिस्सकायजोगसहिया चउवीस पच्चया पमत्तसंजदस्स २४ । एदे आहार-आहारमिस्सकायजोग वज्ज वावीस पच्चया अपमत्तसंजदस्स २२ । अपुव्वकरणस्स एदे हस्स रइ अरइ सोग भय दुगुंछ वज्ज सोलस पच्चया १६ । अणियट्ठिपढमसमयप्पहुडि जाव संखेज्जभागं एत्तिया हुंति १६ । एदे णउंसगवेद वज्ज पण्णरस पच्चया १५ । तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव इत्थीवेद वज्ज चउदस पच्चया १४ । तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव पुरिसवेद वज्ज तेरस पच्चया १३ । तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव कोधसंजलण वज्ज वारस पच्चया १२ । तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव माणसंजलण वज्ज एक्कारस पच्चया ११ । तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव मायासंजलण वज्ज दस पच्चया १० । तओ पहुडि अणियट्ठिचरमसमयं जाव ते चेव वादरलोभरहिदा दस पच्चया सुहुमसापराइयस्स १० । ते चेव सुहुम लोभ वज्ज णव पच्चया ६ उवसंत [कसायस्स] । खीणकसायाणं ते चेव । मोसमण-सच्चमोसमण मोसवचि-सच्चमोसवचि वज्ज ओरालियमिस्स कम्मइयकायजुत्ता सत्त पच्चया सजोगिकेवलिस्स ७ । एदे णाणासमयजुत्तंतरपच्चया हुंति ।

दस अट्टारह दसयं सत्तरसेव णव सोलसं च दोण्हं पि ।

अट्ठय चउदस पणयं सत्त ति दुति एयमेयं च ॥१८॥

पंचमिच्छत्ताणमेक्कदरं छण्हं एयदर-इंदिएण एयदरकायं विराधयदि ति दोण्णि । अणंताणु-बंधिवज्ज तिण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमेयदरमिदि तिण्णि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं । हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुअलाणमेक्कदरं भय-दुगुछा विणा । आहाराहारमिस्स-ओरालियमिस्स-वेउविय-मिस्स-कम्मइय-कायवज्ज जोग पण्णरसण्हं जोगाणमेक्कदर एदे दस जहण्णपच्चया मिच्छादिट्ठिस्स १० । अणंताणुबंधि-अणुदओ मिच्छादिट्ठिस्स कमेण हुंति । अणताणुबंधी विसजोडऊण अवट्ठिद असंजद-देसविरद-पमत्तसंजद उवसम-वेदग-सम्मादिट्ठी अणताणुवधिसतविरहियसम्मामिच्छा-दिट्ठी वा तेसि मिच्छत्तगयाण बंधावलिमेत्तकालं उदओ णत्थि ति । तम्हि काले मरणम्मि [मरणं पि] णत्थि । ओरालियमिस्स-वेउवियमिस्स-कम्मइयकायजोगा णत्थि । पुव्विल्ल पंच-मिच्छत्तभंगा उवरिम-छ-इंदियभंगेहिं गुणिया तीसं ३० । ते चेव छक्काय उवरिल्लछक्कायभंगेहिं गुणियासीदी अधियसद १८० । ते चेव उवरिल्लकसायचउभंगेहिं गुणिया वीसअधियसत्तसदा ७२० । ते चेव उवरिमवेद-तिभंगेहिं गुणिया सट्ठि अधिय इक्कीससदा २१६० । ते चेव उव-रिम-जुयलदोभंगेहिं गुणिदा वीसधिया तेयालीससदा ४३२० । ते चेव उवरिमजोगदसभंगेहिं गुणिया तेयालीससहस्ता दुसदा य ४३२०० ।

पंचमिच्छत्ताणमेक्कदरं छण्हं एयदर इंदिएण छक्काय-विराहेण सत्त चउण्हं कोह-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं ति चत्तारि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं । एदे तस्सेव अट्टारस उक्कस्सपच्चया १८ । पुव्विल्लपंचमिच्छत्तभंगा उवरिल्ल छइदियभंगेहिं गुणिया

तीसं ३० । ते चेव कसायचउभंगेहिं गुणिया १२० । ते चेव वेद-तिभंगेहि गुणिया ३६० । ते चेव जुवलदोभंगेहि गुणिया ७२० । ते चेव जोगतेरसभंगेहि गुणिया ६३६० ।

छण्हं इंदियाणमेक्कदरेण छण्हं कायाणमेक्कदरविराधणे दोण्णि । चटुण्हं कोह-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं त्ति चत्तारि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं । हस्स-रइ-अरइ-सोग दुण्हं जुवलाणमेक्कदरं । आहाराहारमिस्सकायजोगवज्ज पण्णरसजोगाणमेक्कदरं । एदे दस जहण्णपच्चया सासणस्स १० । छक्काया छइंदियभेएहिं गुणिया ३६ । ते चेव कसायचउभंगेहिं गुणिया १४४ । ते चेव वेद-तिभंगेहिं गुणिया ४३२ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया ८६४ । वारस जोगभंगेहिं गुणिया १०३६८ । वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडुच्च णवुंसयवेदो णत्थि । सासणो णेरइएसु ण उप्पज्जदि त्ति । देवेसु इत्थि-पुरिसवेदो चेव, तेण सदं चउदालीसुत्तरं १४४ । वेद-दुभंगेहि य २८८ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया ५७६ । एदे भंगा पुव्वुत्तवारहभंगेहिं मिलिया एत्तिया हुंति १०६४४ ।

छण्हमिंदियाणमेक्कदरेण छक्कायविराधणे सत्त । चटुण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं त्ति चत्तारि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ-अरइ-सोग दुण्हं जुवलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च तेरसण्हं जोगाणमेक्कदरं एदे सत्तारस उक्कस्सपच्चया तस्सेव ।

छइंदियभंगा कसायचउभंगेहिं गुणिया २४ । ते चेव वेद-तिभंगेहिं गुणिया ७२ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया १४४ । ते चेव वारसजोगेहि गुणिया १७२८ । वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडुच्च चउवीसभंगा । इत्थी-पुरिसदोभंगेहि गुणिया ४८ । ते चेव जुवलदोभंगेहि गुणिया ६६ । एदे वारस पुव्वुत्तरजोगभंगेहि मिलिया एत्तिया हुंति १८२४ ।

छण्हमिंदियाणमेक्कदरेण छण्हं कायाणमेक्कदरं विराहणे दोण्णि अणंताणुवंधी वज्ज तिण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं त्ति तिण्णि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं दुण्हं जुवलाणमेक्कदरं । ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगे वज्ज दसण्हं जोगाणमेक्कदरं । एदे णव जहण्णपच्चया सम्मामिच्छादिट्ठिस्स ६ । छ इंदियभंगा छक्कायभंगेहिं गुणिया ३६ । ते चेव कसायचउभंगेहिं गुणिया १४४ । ते चेव वेदतिभंगेहि गुणिया ४३२ । ते चेव जुगलदोभंगेहि गुणिया ८६४ । ते चेव दसजोगभंगेहि गुणिया ८६४० ।

छण्हमिंदियाणमेक्कदरेण छक्कायविराहेण सत्त । अणंताणुवंधी वज्ज तिण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं त्ति तिण्णि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं । दुण्हं जुवलाणमेक्कदरं । भय दुगुंछा च सह दसण्हं जोगाणमेक्कदरं । एदे सोलस च उक्कस्सपच्चया तस्सेव १६ ।

छ इंदियभंगा कसायचउभंगेहिं गुणिया २४ । ते चेव वेदतिभंगेहि गुणिया ७२ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं [गुणिया] १४४ । ते चेव जोगदसभंगेहिं गुणिया १४४० । सम्मामिच्छादिट्ठिस्स १४४० । ते चेव जहण्णुक्कस्सपच्चया असंजदसम्मादिट्ठिस्स वि । णवरि भंगविसेसो अत्थि तथेव जधा ओरालियमिस्सं पडुच्च पुरिसवेदो वेदति चउदालीसुत्तरसदं १४४ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया २८८ । वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगं पडुच्च इत्थिवेदो णत्थि । णवुंसगवेदो-पुव्ववट्ठाउस्स पढमपुढविलपज्जमाणस्स चउदालीसउत्तरसयं १४४ । वेददोभंगेहि गुणिया २८८ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया ५७६ । ते चेव वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगदोभंगेहि गुणिया ११५२ । एदे पुव्वुत्त-ओरालियमिस्सजोगभंगसहिया एत्तिया हुंति १४४० । एदे सम्मामिच्छादिट्ठि-जहण्णपच्चयभंगसहिया असंजदसम्मादिट्ठिजहण्णपच्चया हुंति १००८८ ।

ओरालियमिस्सकायजोगं पडुच्च चउवीसभंगा जुवलदोभंगेहिं गुणिया ४८ । वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगं पडुच्च चउवीसभंगा वेद दोभंगेहिं गुणिया ६६ । ते चेव वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगदोभंगेहि गुणिया १६२ । एदे ओरालियमिस्सकायजोगसहिया एत्तिया

हुंति २४० । एदे सम्मामिच्छादिद्विउक्कस्सपच्चयभंगसहिया दो असंजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्स-
पच्चयभंगा एत्तिया हुंति १६८० ।

छण्हं इंदियाणमेक्कदरेण पंचकायाणमेक्कदरविराधणे दोण्णि अणंताणुवंधी अपच्चक्खा-
णावरण वज्ज दोण्ह कोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं ति दोण्णि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं ।
दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं । चत्तारि मणजोग चत्तारि वचिजोग ओरालियकायजोगाणमेक्कदरं एदे
अट्ट जहण्णपच्चया संजदासजदस्स ८ । छ इंदियभंगा तसवज्ज पंचकायभंगेहिं गुणिया ३० । ते
चेव कसायचउभंगेहिं गुणिया १२० । ते चेव वेदतिभंगेहिं गुणिया ३६० । ते चेव जुयलदोभंगेहिं
गुणिया ७२० । ते चेव णवजोग-विभंगेहिं गुणिया ६४८० ।

छण्हंमिंदियाणमिक्कदरेण पंचकायविराहेण छ अणंताणुवंधी वज्ज अपच्चक्खाणावरण
वज्ज दुण्ह कोध-माण-माया-लोभाणमिक्कदरं दोण्णि । तिण्ह वेदाणमेक्कदरं दुण्हं जुयलाणमेक्क-
दरं । भय दुगुंछा च । णवण्हं जोगाणमेक्कदरं । एदे चउदस उक्कस्सपच्चया तस्सेव । छ इंदिय-
भगा कसायभंगेहिं गुणिया २४ । ते चेव वेदतिभंगेहिं गुणिया ७२ । ते चेव जुयलदोभंगेहिं
गुणिया १४४ । ते चेव णवजोगभंगेहिं गुणिया १२६६ ।

संजलणकोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं । दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं ।
चत्तारि मणजोग-चत्तारि वचिजोग-ओरालियकायजोग-आहार-आहारमिस्सकायजोगाणमेक्कदरं ।
एदे पंच जहण्णपच्चया पमत्तसंजदस्स । चत्तारि कसायभंगा वेदतिभंगेहिं गुणिया १२ । ते चेव
जुवलदोभंगेहिं गुणिया २४ । ते चेव इक्कारस जोग भंगेहिं गुणिया २६४ । ते चेव जहण्णपच्चया
य भय-दुगुंछा च सहिया अ सत्त उक्कस्सपच्चया हुंति । भगा पुण ते चेव २६४ ।

एवं आपमत्तसजदस्स वि । णवरि विसेसो आहार-आहारमिस्सकायजोगा णत्थि । चउवीस
भंगा २४ जोगणवभंगेहिं गुणिया जहण्णुक्कस्सपच्चयाण भगा एत्तिया हुंति २१६ । एवं अपुव-
करणस्स वि । चदुसंजलणाणमेक्कदरं णवण्हं जोगाणमेक्कदरं । एदे दुण्णि जहण्णपच्चया
अवगदवेदअणियद्विस्स २ । चत्तारि कसायभंगा णवजोगभंगेहिं गुणिया ३६ । चदुण्हं संजलणाण-
मेक्कदरं । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं । णवण्हं जोगाणमेक्कदरं । एदे तिण्णि उक्कस्सपच्चया सवेदअणिय-
द्विस्स । चत्तारि कसायभगा वेदतिभंगेहिं गुणिया १२ । ते चेव णवजोगदुभंगेहिं गुणिया १०८ ।

सुहुमे लोभसंजलणं णवण्हं जोगाणमेक्कदरं । एदे दुण्णि जहण्णुक्कस्सपच्चया सुहुमस्स ।
जोगभंगा णव चेव ६ । णवण्हं जोगाणमेक्कदरं । इक्को चेव जहण्णुक्कस्सपच्चओ । उवसंतकसाय-
खोणकसायाण जोगभंगा णव चेव ६ । सच्चमणजोग-असच्चमोसमणजोग-सच्चवचिजोग-असच्च-
मोसवचिजोग-ओरालिय-ओरालियमिस्स-कम्मइयकायजोगाणमेक्कदरं । एक्को चेव जहण्णुक्कस्स-
पच्चओ मजोगिकेवल्लिस्स । जोगभंगा सत्त चेव ७ । एदे एकसमयजहण्णुक्कस्सपच्चया भणिया ।

पडिणीय अंतराए उवघादे तप्पदोस णिण्हवणे ।

आवरणदुगं भूओ बंधइ अच्चासणाए वि ॥१६॥

पडिणीय समच्छरो । कुदो वि कारणादो वि भावियणाणस्मि दाणजोगविर्णाय-
स्मिस्सम जदो ण दीयदे अत्थोवदेसो तम्मच्छरं तित्थपडिऊल । अंतरायं णाणवुच्छेदं । उवघादं
पसत्थणाणदूमणं । तप्पदोसं परमत्थणाणस्स मोक्खसाधणस्स कित्तणे कदे अकहं मणेण पेसुण-
परिणामो पदोसो । णिण्हवणे कुदो वि कारणादो णत्थि ण याणिमो पल्लावणं वंचणं णिण्हवणे ।
अच्चासणं अवि वाया काएग परपयासणस्म वज्जणं आसादणं तस्सद्वेणा(तप्पदेण)णाण-दस गणिहेसो
कदो । कुदो ? 'आवरणदुगं बंधइ' इदि वयणादो ।

भूदाणुकंप वद-जोगमुज्जदो खंति-दाण-गुरुभत्तो ।
बंधदि भूओ सादं विवरीदे बंधदे इदरं ॥२०॥

भूदाणुकंप जीवाण अणुगहणुल्लकदचित्तो । परपीडापच्छं व करेमाणोणुकंपा । 'वद-जोगमुज्जदो' णुकंपवाणसरागादिसंजम अखीणासया । खंति कोहादिणिवित्ति । दाण उत्तमपत्तादि-आहारादिदाणं । गुरुभत्तो अंतरंगपरिणामवदण-णिरिक्खिणादि पसण्णचित्तदा । एहिं पच्चएहिं बंधइ सादमिदि भणिदं होदि । 'विवरीदे बंधदे इदरं' असादं पोडालक्खल(ण)परिणाम दुक्ख इट्ठ-वियोय सोगपरिवादादि चित्तपीडाणिमित्तादो परिताव-पउर-अंसु-णिवडण-कंदणं इंदियाऊ-वियोग-निबंध-संकिलेसपरिणामावलंबण सपराणुगह-अभिलास-विसअ-अणणुकंपा परिवेदणं एदे पच्चया असादा-वेदणीयस्स दुक्खपच्चया ।

अरहंत-सिद्ध-चेदिय-तव-गुरु-सुद-संघ-धम्म-पडिणीओ ।
बंधदि दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण ॥२१॥

अरहंता केवलणाणिणो असब्भूदोसुब्भाव कवलाहाराहारिणो अरहंता इदि आसादणं सिद्धा अणोवमसुहोवजुत्ता तदवण्णवादो इत्थीसुहादिणा विणा कुदो सुहं ? चेदिय अरहंत-सिद्धाण गुणारोपणाधार तदसो [दासा] दणं अचेदणा णिग्गुणा, किं पडिनिवेणे त्ति । 'तव' कम्मणिज्जराण हेदु वारस । तदासादणं किमि णिसिणादितवेणाप्पाण संकिलेसेण कम्मबंधो सिया । 'गुरु' सम्मणाण-दंसण-चरित्तगउरवो गुरु । तप्पडिणीओ ण किपि णाणादिगुणो असुद-त्तादो । सुदं वारसंगं अरहदोवदिट्ठं, मंस-भक्खणादिणिरवज्जं सुदावण्णवादो । 'धम्म' चाउगाइ-पडंताण सुहेऽवधारणादो धम्म । जिणहिट्ठो णिग्गुणो धम्मो जे चरंति ते असुरा भविस्संति । संहरण अणंतओ वेदो दसमणसंह (संघ रिसि-मुणि-अणगारोवेदसमणा संघो) तेसिमवण्णवादो असुचि-सरीरा फरुवदो (विक्खवया) णिग्गुणा । एवं पच्चएण बंधदि दंसणमोहं जेण अणंतो संसारो ।

तिव्वकसाय बहुमोहपरिणदो राग-दोससंतत्तो ।
बंधदि चरित्तमोहं दुविधं पि चरित्तगुणघादी ॥२२॥

तिव्वकसाओ पावण-तवसीणं चारित्तदूसणं संकिलिट्ठा लिग-वद-धारणादिधम्मोवहास बहुपलावहाससीलदा हास । णाणाकीडण-परदा वद-सीलारुचि रदि । रदिविणासणं पावसीलं संग-स्सादि अरदि । अप्पसोगादि मोद-परसोगादि णिदण सोग । सभयपरिणाम परभय-उपादणं भय । अकुसलकिरिया परणिदा-दुगुंछा । अलियकहण अदिसंधारणपविद्ध रागिच्छी । थोव कोधाणुसित्त सदारसंतोसादि पुरिस । पउरकसाय गुर्ज्झिदियरोधण-परंगणागदि णवुंसय । बहुमोह अण्येमिच्छत्त-भेदेण परिणदो असुचिसारदा रागो । दोस रयणत्तअदूसणं । एदेहिं संतत्तो 'बंधदि चरित्तमोहं दुविधं' पंचाणुव्वदाणि, सयलपंचमहव्वयचरित्तगुणं घादेइ इमेहिं पच्चएहिं ।

मिच्छादिट्ठी महारंभ-परिग्गहो तिव्वलोह-णिस्सीलो ।
णिरयाउगं णिबंधइ पावमदी रुदपरिणामो ॥२३॥

'मिच्छादिट्ठी' तच्चत्थसहहरहिदो, महारंभ हिंसातेआणंद-अपरिमिदपरिग्गह-रक्खणाणंद किण्हलेसजुदो पावमदी णिरयाउगं बंधदि त्ति ण संदेहो ।

उम्मग्गदेसओ मग्गणासओ गूढहिययमाइल्लो ।
सदसीलो य ससल्लो तिरियाऊ णिबंधे जीवो ॥२४॥

‘उम्मग’ पचमिच्छत्तो वेदधम्मदेसण संधाणकुसलं पि य णील-कवोद्लेस-अट्टम्हाणरदो तिरियात्तं णिवंधदि ।

पयडीए तणुक्साओ दाणरदो सील-संजमविहीणो ।

मज्झिमगुणेहिं जुत्तो मणुआरं णिवंधदे जीवो ॥२५॥

‘पयडीए’ सहावेण तणुक्साओ मदकसाओ, दाण पत्तदाणरदो ‘सील-वदहीणो’ अक्ख-संजम-पाण-संजमरहिदो, मज्झिमगुण [गुणेहिं जुत्तो एतेण] कारणेण मणुआर्यवासवो होइ ।

अणुवद-महव्वदेहि य वालतवाकामणिज्जराए य ।

देवाउगं णिवंधइ सम्माइड्ढी य जो जीवो ॥२६॥

अकामचारिणिरोध वंधण-वध-छुहा-तिसा-णिरोह-वम्हचेर-भूमिसयण-मलधारण-परितावादि णिज्जरा वालतव मिच्छादंसणोवेदमणुवा संकिलेस-पडर-अणुवदादीहिं देवाउगं णिवंधदि त्ति भणिदं होदि ।

मण-वयण-कायवंको माइल्लो गारवेहि दढवट्ठो ।

अमुहं वंधदि णामं तप्पडिवक्खेहि सुहणामं ॥२७॥

मण-वयण-कायवंको कुडिलदा अण्णहा पवत्तणं । माइल्लो मिच्छत्त-पिसुण कूड-माणकूड-तुलागण-अपपससपरणिदादिया माया । गारव इड्ढि-द्व्वलाभ-रसमिद्धभोगण-सादसुहसयणादि । एदेहिं दढवट्ठो असुहणाम वधइ । तन्निवरीदं जोग पण्ण (?) यस (रस-) सादरहिदं धम्मिकत्त दंसणसंभव-संसार [संसकारो] सव्भावभोत्ता पमादादि-वज्जणादीहिं सुहणामं वधइ ।

अरहंतादिमु भत्तो सुत्तरुई पदणुमाण गुणपेही ।

बंधइ उच्चं गोदं विवरीदो बंधदे इदरं ॥२८॥

अरहंतादिमु भत्तो पंचगुरुमिह अदीवभत्तो, सुत्तरुई जिणुत्तमुत्ते अंतरंगादि-परिणामरुई, पदणुमाण अड्ढाडड माण, गुणपेही अपणिदण परपसंसण-गुणवभावणा सगुणाच्छादणं गुणक्खस विणएण णमणं विण्णाणादि-उक्खस सव्वो विअदमदहकार उच्छेय-रहिदादि वधदि गांदुच्चं । विवरीओ इदरं । किं त ? णिच्चगोदं । जेहिं हेदूहिं अपपसंस-परणिदा-सगुणुच्छेदागुणवभावणादीहिं अरुहादिभत्तिरहिदेहिं त्ति वुत्त होदि ।

पाणव्वहादिमु रदो जिणपूया-मोक्खमगाविग्घयरो ।

अज्जेइ अंतरायं ण लहदि हिय-इंछियं जेण ॥२९॥

पाणवघादि त्ति सुगमं । अंतरायं अज्जेदि पचपयारं । दाणंतराय तं कह (हं) जीवाणं अभय-विग्घेण जेण सम्मत्ताणुवद-महव्वद-लयणसित्सा ण उपज्जंति । उपण्णा वि ण थिरा होति । अहवा सुवण्ण-वत्थुआदिदाणविग्घादो सुवण्णादिदा णो उपज्जंति । लाभतराएणं अणवरय भुंजमाणमवि ण तिर्त्ती होइ, अण्णेवि लाभ सरीरावणहेद्वो ण लब्भंति । भोगंतरायं [एण] असणादिचउच्चि-हाहारं दित्ताण विग्घादो जेण सोदरमवि पूरेदुं ण सक्खे । पूरिदमवि छद्दि-आदि होइ । सयलमवि पच्चक्खं, आगमदोऽवसेयं च । उवभोगंतराएण वत्थित्थीतूलि-पल्लंक-मरुलालकारादिणसिया । पच्चं विरियंतराएण वलविरिया आहारव्वासहजा ण उपज्जंति, अदीवसी (लघीयसी) णासति त्ति वुत्त होइ । आहार-देयाणं दायार-पत्ताणं वा अतरं इच्छमज्जे ठाइ त्ति अंतरायं । तदेहिं पच्चएहिं वंधइ सामण्णे पच्चए जट्टत्तं तं एवं ण लब्भइ हिय-इंछियं चित्तेण माणसिय अहिलसियवत्थु तं ण पावए जीवो ।

छसु ठाणएसु सत्तट्ठविहं वंधंति तिसु वि सत्तविहं ।

छन्विहमेगु तिण्णेगविहं तु अवंधगो इको ॥३०॥

छसु गुणठाणएसु मिच्छादिट्ठि - सासणसम्मादिट्ठि-असंजद-देसविरद-पमत्तापमत्तेसु आउ-
वज्ज सत्त, तेण सह अट्ठवंधो । एइंदियप्पहुदि जाव असण्णिपंचिदियतिरिक्खेसु कम्मभूमिसण्णि-
पंचिदियतिरिक्खेसु कम्मभूमिपडिभागि-सण्णिपंचिदियतिरिक्खेसु च । मणुस्सा च अप्पपणां
आउग-तिभाग-सेसकाले आउगवंधपाउगो होदि । भोगभूमिसण्णिपंचिदिय तिक्ख-मणुस्सेसु
भोगभूमिपडिभागसण्णिपंचिदियतिरिक्खेसु च सव्वणेरइय-देवेसु छम्मासाउगसेसकाले आउगं
बंधमाणस्स पाओगो होदि । सव्वेसु सव्वसंकिलेस-विसुद्धपरिणामेसु आउगवंधो ण होइ, तप्पा-
उगसंकिलेसपरिणामेसु णिरयाउगवंधो, तप्पाउगविसोहिपरिणामेसु सेसाउगवंधो होइ । विग-
लिदिय-असण्णिपंचिदियतिरिक्खकम्मभूमि-कम्मभूमिपडिभागेषु होति वंधगा । कम्मभूमिपडि-
भागो णाम सयंभूरवणदीवमज्जे ठिदसयंपभणगिंदवरपव्वयप्पहुदि बाहिरभागो । भोगभूमिपडि-
भागो णाम माणुसुत्तरपव्वयप्पहुइय जाव सयंपभणगिंदवरपव्वउ त्ति । एइंदिया पुण सव्वत्थ
हुंति, तेण सोदाराण मदि-वाउलविणासणत्थं खेत्तविसेसो उववादं विसेसिदूण भणिदो । अण्णधा
सोदारा ण वुज्झंति । 'तिसु य सत्तविहं'—सम्मामिच्छादिट्ठि-अपुव्व-अणियट्ठीसु आउगवज्ज
सत्त कम्माणि वंधंति । 'एगो' सुहुमो मोहाउगवज्जाणि छकम्माणि वंधंति । 'तिण्णेगविहं तु
उवसंत-खीण-सजोगिणो वेयणीयमेयं वंधंति । अजोगी अवंधगो ।

अट्ठविह-सत्त-छवंधगा वि वेदंति अट्ठयं णियमा ।

एगविहवंधगा पुण चत्तारि व सत्त चेव वेदंति ॥३१॥

'अट्ठविह-सत्त-छवंधगा' पुव्वुत्ता यदु (अट्ठ) कम्माणि वेदंति । 'एगविहवंधगा' सजोगि-
केवली चत्तारि अघादिकम्माणि वेदंति । उवसंत-खीणकसाया मोहणीयवज्ज सत्त कम्माणि वेदंति ।
'च' सद्देण अजोगिकेवल्लिणो चत्तारि अघादिकम्माणि वेदंति ।

घादीणं छदुमत्था उदीरगा रागिणो य मोहस्स ।

तदियाऊण पमत्ता जोगंता हुंति दुण्हं पि ॥३२॥

मिच्छादिट्ठिपहुडि खीणकसायंता घादीणमुदीरगा हुंति । ते चेव सुहुमंता मोहस्स ।
'तदिआऊण' वेदणीयाउगाणं पमत्तंता । सजोगिकेवलि-अंता णामा-गोदाण उदीरगा हुंति । वट्ठ-
माणानं उदयट्ठिदियपढमसमयापहुदि जाव य आवलियमेत्तट्ठिदीओ मुत्तण उवरिमट्ठिदीणं पलि-
दोवम-अमंखिज्जदिमभागमेत्ते कम्मपरमाणू ओकट्ठिऊण उदयावलिपक्खेवणं उदीरणा । 'अपक्क-
पच्चणं' उदीरणेत्ति वयणादो ।

मिच्छादिट्ठिपहुदी अट्ठमुदीरंति जा पमत्तो त्ति ।

अट्ठावलियासेसे तहेव सत्तमुदीरंति ॥३३॥

मिच्छादिट्ठिपहुदि जाव पमत्तंता अट्ठ कम्माणि उदीरिति । सम्मामिच्छादिट्ठि-वज्जियाणं
एदेसिं चेव अप्पपणो आउगावलियकालाउसेसे आउगवज्ज-सत्तकम्माणमुदीरणा होइ । भुजमा-
णाउगस्स उदयावलिउवरि ट्ठिदी णत्थि । उदयावलि ट्ठिदाणं पि उदीरणा णत्थि ।

वेदणीयाउगवज्जिय छकम्ममुदीरंति जाव चत्तारि ।

अट्ठावलियासेसे सुहुमो उदीरेइ पंचेव ॥३४॥

अप्पमत्तप्पहुनि जाव सुहुमंता वेदणीय-आउगवज्ज छक्कम्माणि उदीरिति । सुहुम- सप-
राइगो गुणट्ठाणकालस्स आवलियकालावसेसे मोहणीयवज्ज पंचकम्माणि उदीरेइ, खवगस्स उदया-
वलियउवरि ट्ठिदी गत्थि । चडमाणोवसामगस्स उदयादो दा-आवलियउवरि अतोमुहुत्तमतर होऊण
उवरि अंतोकोडाकोडीमेत्तट्ठिदीओ विज्जमाणा वि ण उदीरेदि । पडिआवालियादो चेव उदी-
रणा । जाव य समयाधिया उदयावलियसेस त्ति तओ उदओ चेव । ओदरमाणोवसामगस्स एस
विही गत्थि ।

वेदणियाउगमोहे वज्जिय उदीरिति दोण्णि पंचेव ।

अट्ठावलियासेसे णामं गोदं च अकसाई ॥३५॥

‘वेदणियाउगमोहे वज्जिय’ उवसत-खीणकसाया पंच कम्माणि उदीरिति । खीणकसाओ
अप्पगो गुणट्ठाणकालस्स आवलियकालावसेसे णामागोदाणि उदीरेइ, णाणावरण-दंसणावरण-
अंतराइयाणं उदयावलि-उवरिट्ठिदी गत्थि, उदीरणा गत्थि ।

उदीरेइ णाम-गोदे [छक्कम्म]-कम्मविवज्जिदो सजोगी दु ।

वट्ठतो दु अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ ॥३६॥

छक्कम्माणि वज्ज णाम-गोदाणि सजोगिजिणो उदीरेइ । ‘वट्ठतो वि अघादिकम्मोदयसहिदो
वि अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ, जोगरहिदस्स उक्कट्टणादिकिरिया गत्थि, अतोमुहुत्तमेत्त
कम्मट्ठिदी विज्जमाणो वि ।

अट्ठविहमणुदीरितो अणुभवदि चदुन्विधं गुणविसालं ।

इरियावहं ण वंधइ आसण्णपुरक्कडो दिट्ठो ॥३७॥

अजोगिजिणो अट्ठकम्माणि ण उदीरेइ, अघाइचउक्कं वेदेइ । जोगणिमित्तं कम्मं ण वंधइ,
आसण्णपुरक्कडो दिट्ठो आसण्णगयसरीरभेओ सतो ।

इरियावहमाउत्ता चत्तारि व सत्त चेव वेदंति ।

उदीरिति दोण्णि पंच य संसारगदम्मि भयणिज्जा ॥३८॥

सजोगिजिणो जोगणिमित्तवेदणीयकम्मबंधजुत्तो अघादिचदुक्कं वेदेइ । उवसतकसाय-
खीणकसाया जोगणिमित्तं वेदणीयकम्मबंधजुत्ता मोहणीयवज्ज सत्त कम्माणि वेदंति । सजोगिजिणो
णाम-गोदाणि उदीरेइ । उवसंत-खीणकसाया वेदणीयाउगमोह वज्ज पंच कम्माणि उदीरिति ।
ससारगदम्मि णिगयसंसारे खीणकसाया भयणिज्जा पंच वा दोण्णि वा उदीरिति, अप्पणो
गुणट्ठाणकालस्स आवलियकालावसेसे दोण्णि, सेसकाले पच ।

छप्पंचमुदीरितो वंधइ सो छन्विहं तणुकसाओ ।

अट्ठविहमणुभवतो सुक्कज्जाणे डहइ कम्मं ॥३९॥

सुहुमसंपराइओ वेदणियाउगवज्जाणि छक्कम्माणि उदीरेइ, अप्पणो गुणट्ठाणकालस्स आव-
लियकालावसेसे चेव मोहणीयवज्जाणि पंच कम्माणि उदीरेइ, मोहाउगवज्जाणि छ कम्माणि वंधेइ,
अट्ठ कम्माणि वेदेइ ।

अट्ठविहं वेदंता छन्विहमुदीरिति सत्त वंधंति ।

अणियट्ठी य णियट्ठी अप्पमत्तो य ते तिण्णि ॥४०॥

अणियट्ठि-अपुठ्व-अप्पमत्तसंजदा अट्ठ कम्माणि वेदंति, वेदणियाउगवज्जाणि छ कम्माणि उदीरंति, आउगवज्जाणि सत्त कम्माणि बंधंति । पुठ्वं अप्पमत्तसंजदो अट्ठ कम्माणि बंधंति इदि वुत्तं । संपहि सत्त बंधदि त्ति कहं ण विरुज्झइ ? अप्पमत्तसंजदो आउगबंधं ण पारभदि त्ति जाणावणट्ठं वुत्तं । पमत्तसंजदो आउगं बंधमाणो अप्पमत्तसंजदो होदूण समाणेइ, अप्पमत्तगुणट्ठाणकाले आउगबंधपाओगकालादो गुणट्ठाणकालो थोओ, आउगबंधगद्धा बहुगेत्ति ण पारभदि ।

बंधंति य वेदंति य उदीरंति य अट्ठ अट्ठ अवसेसा ।

सत्तविहबंधगा पुण अट्ठण्हमुदीरणे भज्जा ॥४१॥

अवसेसा मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद-संजदासंजद-पमत्तसंजदा अट्ठ कम्माणि बंधंति, वेदंति, उदीरंति य । एदे चेव आउगवज्ज सत्त कम्माणि बंधकाले अट्ठ उदीरंति, अप्प-प्पणो आउगावलियकालावसेसे आउगवज्ज सत्त कम्माणि उदीरंति । सम्मामिच्छादिट्ठी आउग-वज्ज सत्त कम्माणि बंधइ, अट्ठ कम्माणि वेदेइ, उदीरेइ य । सम्मामिच्छादिट्ठी आउगवज्ज सत्त कम्माणि कहं ण उदीरेइ ? आउगावलिकालावसेसे सम्मामिच्छत्तगुणो ण संभवइ, अंतोमुहुत्ता-उगावसेसे संभवदि त्ति ।

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेदणीय-मोहणीया ।

आउग णामा गोदं अंतरायं च मूलपयडीओ ॥४२॥

एदाए गाहाए एगेगेगमूलपयडीओ, उत्तरा चेव । एदीए गाहाए एगुत्तरपयडिसमुक्कि-त्तणा वुत्ता ।

सादि अणादि धुवं अद्धुवो य पगडिठाण भुजगारो ।

अप्पदरमवट्ठिदं च हि सामित्तेणावि णव हुंति ॥४३॥

अबंधादो बंधदि त्ति सादी । सेढिमणारूढं पडुच्च जीवकम्माणमणादि त्ति । अणादि अभव-सिद्धि पडुच्च, धुवो भवसिद्धि पडुच्च । अबंधं वा बंधवुच्छेदो वा गंतूण अद्धुवो ।

सादि अणादिय धुव अद्धुओ य बंधो दु कम्मछक्कस्स ।

तदिया सादियसेसा अणादि-धुवसेसगो आऊ ॥४४॥

उवसंतकसाओ कालं क्कादूण देवेसुपण्णस्स आउग-वेदाणि वज्जाणं छण्हं अकम्माणं सादिय-बंधो होइ । सो चेव सुहुमसंपराओ जाओ, तस्स वा सादियबंधो मोहणीयवज्जाण पंचण्हं सुहुम-संपराओ उवसामगो अणियट्ठिगोवसामगो जाओ, तस्स मोहणीयस्स सादियबंधो । उवसम-खवगसेढिमणारूढं पडुच्च अणादी । अभवसिद्धि पडुच्च धुवो । सुहुमसंपराइगोवसामगो उवसंत-भावेण अद्धुओ । सुहुमसंपराइयखवगो खीणभावेण वा अद्धुओ । अणियट्ठि-उवसामगो खवगो वा सुहुमसंपराइय-उवसामग-खवगभावेण मोहणीयस्स अद्धुवबंधो । अ[पुठ्व]उवसामगस्स अद्धुवं अबंधभावेण, खवगस्स बंधवुच्छेदभावेण वा । 'तदिया सादिअसेसा वेदणीयस्स सादिय-बंधो णत्थि । कहं ? अजोगी हेट्ठा ण पडदि त्ति । सजोगी अजोगिभावेण अद्धुवं । जीव-कम्माण-मणादि त्ति अणादि धुवपुठ्व[बं]धयावुगस्स अणादि-धुवबंधो णत्थि । अबंधगो होदूण बंधमाणे सादियबंधो, बंधोवरमे अद्धुवबंधो ।

उत्तरपयडीसु तहा धुवयाणं बंध चदुवियप्पो दु ।

सादी अद्धुविआओ सेसा परियत्तमाणीओ ॥४५॥

णाणंतरायदसयं दंसण णव मिच्छ सोलस कसाया ।
भयकम्म दुगुल्ला वि य तेजा कम्मं च वण्णचदू ॥४६॥

अगुरुगलहुगुवघादा णिमिणं च तहा भवन्ति सगदालं ।
बंधो य चदुवियप्पो धुवपगडीणं पगिदिवंधो ॥४७॥

‘उत्तरपगडीसु तहा धुवयाणं’ पंच णाणावरणोय-चक्खु-अचक्खु-ओधि-केवलदंसणावरण-पंचंतराइयाणं उवसंतकसाओ देवभावेण सुहुमोवसामगभावेण सादियबंधो । अणादिधुव [बंधा] पुव्वं वा । सुहुमउवसामगो खवगो वा उवसंतभावेण खीणभावेण अदधुव । णिहा-पयलार्णं अपुव्वकरणद्धाए सत्तभागाण ओदरमाणस्स चरमभागपढमसमए सादियबंधो । अणादि-धुव [बंधा] पुव्वं व । अपुव्वउवसामगो खवगो वा पढमभागादिविदियभागस्स अदधुव । णिहाणिहा पचलापचला थीणगिद्धी अणताणुबंधिचदुक्काणं असजद-देसविरद-पमत्तसंजदा सासण-भावेण मिच्छभावेण वा सादियबंधो । अणादि मिच्छादिट्ठिस्स । धुव पुव्व व । मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छत्त-असंजद-देसविरद-अपमत्तसंजदभावेण वा अदधुवबंधो । मिच्छत्तस्स सासण-सम्मा-मिच्छत्त-असंजद-देसविरद-पमत्तसंजदाणं मिच्छत्तभावेण सादियबंधो । अणादि मिच्छादिट्ठिस्स । धुव पुव्वं व । अणताणुबंधिस्स जहा, तहा अपच्चक्खाणावरणचउक्कस्स वि । देसविरद-पमत्तसंजदाण असंजद-सम्मामिच्छत्त-सासण-मिच्छत्तभावेण सादियबंधो । मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदो त्ति एदेसि उवरिमगुणमगहिदाणं अणादि । धुव पुव्व व । एदेसि चेव उवरिमगुणभावेण अदधुव । पच्चक्खाणावरणचउक्कस्स अपमत्तसंजदस्स हेट्ठिमगुणभावेण सादियबंधो । मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव संजदासंजदु त्ति एदेसि उवरिमगुणमगहिदाण अणादिवंधो । एदेसि अपमत्तभावेण अदधुव । धुव पुव्वं व । कोहसंजलणस्स ओदरमाणेण अणियट्ठि-उवसामगो अवंधगे होदूण बंधगजाढस्स सादिय । अणादि धुव पुव्व व । अणियट्ठि-उवसामगस्स खवगस्स वा अवंध बंधवुच्छेदभावेण अदधुव । एवं माण-मायासंजलणाणं । लोभसंजलणस्स ओदरमाणसुहुम-उवसामगस्स अणियट्ठि-भावेण सादि । अणादि-धुव पुव्वं व । अणियट्ठि-उवसामगस्स खवगस्स वा सुहुमउवसामग-खवग-भावेण अदधुवा । भय-दुगुल्लाणं ओदरमाण-अणियट्ठिअ-उवसामगस्स अपुव्व-उवसामगभावेण सादिय । अणादि धुवआ पुव्वं [व] । अपुव्वकरण-उवसामगस्स खवगस्स वा अणियट्ठि-उवसामग-खवगभावेण अधुव । तेजा-कम्मइगमरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-णिमिणणामाण ओदरमाण-अपुव्वउवसामगस्स अवंधगयस्स सादि । अणादि धुव-पुव्वं व । अपुव्वकरण-उवसाम-गस्स खवगस्स वा सत्तमभागपढमसमए गयस्स अदधुव सत्तेत्तालीसं पगडीणं अवंधगाणं कालं काऊणं देवेसुप्पणाणं बंधजोगाणं साडिअबंधो होदि त्ति वा वत्तव्वो । वधजोगा पुण मिच्छत्त-अणताणुबंधिचदुक्क-णिहाणिहा-पचलापचला-थीणगिद्धी वज्जाओ बंधसंभवगुणट्ठाणेषु सव्वकालं बंधइ त्ति धुवपगडीओ वुञ्चति । चत्तारि आऊ आहारसरीर-आहारसरीर-अंगोवंग-परचाद-उत्सास-आदावुज्जोव-तित्थयरणामाणं सादि-अदधुवबंधो होदि, एदेसि पडिक्खपयडी णत्थि त्ति । सेसाओ त्ति वुञ्चति धुवपगडिसेसपगडीवज्जाणं परियत्तमाणीण सादि-अधुवबंधो होदि । पडि-क्खपगडिजुत्ताओ परियत्तमाणीओ वुञ्चति । सेसपगडी परियत्तमाणपगडीणं अणादिधुवरूवेण बंधो णत्थि । एदाहि दोहि गाहाहि मूलुत्तरपगडीसु सादि-आदि चत्तारि अणिओगहाराणि वुत्ताणि ।

चत्तारि पगडिट्ठाणाणि तिण्णि भुजगारमप्पदरगाणि ।
मूलपगडीसु एवं अवड्ढिदं चदुसु णादव्वं ॥४८॥

सव्वकम्माणि अट्ठ, आउगवज्जाणि सत्त, आउग-मोह-वज्जाणि छव्वभवे । वेदणीयं चेव इक्कं । एदाणि चत्तारि मूलपगडिद्वाणाणि अप्पं वंधंतो बहुदरं वंधइ त्ति एस भुजगार [वंधो] बहुदरं वंधंतो अप्पदरं वंधइ त्ति एस अप्पदरवंधो । भुजगारे अप्पदरे वा कदे तत्तियं तत्तिय वंधइ त्ति एस अवट्ठिदो वंधो । उवसंतकसायं एगं वंधंतो सुहुमो होदूण छकम्माणि वंधदि त्ति एस एक्को भुजगारो । सुहुमो अणियट्ठी होदूण सत्त वंधइ त्ति विदिओ भुजगारो । आउगवंधपाओग्गगुणद्वाणेषु सत्त वंधंतो अट्ठ वंधइ त्ति तदिओ भुजगारो । उवसंतकसाओ सुहुमो वा हेट्ठाऽहो होदूण सत्त वंधइ त्ति वा भुजगारो । विवरीदेण तिणिण अप्पदरगाणि वत्तव्वाणि । भुजगार-अप्पदरकालो एगसमइओ । सेसवंधकाले चत्तारि अवट्ठिदाणि ।

तिणिण दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरण-मोह-णामाणं ।

इत्थेव य भुजगारा सेसस्सेगं हवइ ठाणं ॥४६॥

दंसणावरणकम्मस्स तिणिण ठाणाणि-णव छ चत्तारि । दंसणावरणस्स सव्वकम्माणि घेत्तूणं णव वंधइ त्ति मिच्छादिट्ठिणो । थोणगिद्धीतिग वज्ज छ कम्माणि सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपढम-सत्तमभाग त्ति वंधंति । गेसु [एत्तेसु] मज्जे णिहा-पचला वज्ज चत्तारि कम्माणि अपुव्वकरणविदिय-सत्तमभागप्पहुदि जाव सुहुमसंपगय त्ति वंधंति । ओदरमाण-अपुव्वकरणुवसामगो चत्तारि वंधमाणो छ वंधइ त्ति एक्को भुजगारो । असंजदसम्मादिट्ठी देस-विरदं पमत्तसंजद छ कम्माणि वंधमाणस्स सासणभावेण वा मिच्छभावेण वा णव वंधमाणस्स विदिओ भुजगारो । सम्मामिच्छादिट्ठिस्स छ वंधमाणस्स मिच्छभावेण णव वंधमाणस्स वा भुजगारो । मिच्छादिट्ठिस्स णव वंधमाणस्स सम्मामिच्छत्त-असंजद-देसविरद-अपमत्तसंजदभावेण छ वंधमाणस्स इक्को अप्पदरो । छ वंधमाणो अपुव्वकरणो चत्तारि वंधदि त्ति विदिओ अप्पदरो । तिणिण अवट्ठिदाणि ।

वावीसमेकवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच ।

चदु तिग दुगं च एगं वंधट्टाणाणि मोहस्स ॥५०॥

मोहणीयस्स दस ट्टाणाणि । मिच्छत्त सोलस कसाय इत्थी-णवुंसग-पुरिसवेदानमेक्कदरं, हरस-रइ अरइ-सोग दुण्ह जुयलणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदासिं वावीसपगडीणं वंधमाणस्स एक्कं ठाणं । तिणिण वेद-भंगा दो-जुयलभंगेहि गुणिदा छ भंगा वावीसस्स । एदाओ चेव मिच्छत्त-णवुंसयवज्जाओ एक्कवीसपयडीओ वंधमाणस्स सासणस्स विदियट्टाणं । इत्थीपुरिस दो भंगा दो दोजुयल-दोभगेहिं गुणिया चत्तारि इक्कवीसस्स । एदाओ चेव पगडीओ अणंताणुवंधि-इत्थी-वज्जाओ सत्तरसपगडीओ वंधमाणस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा तदियठाणं । जुयल-भंगा दो चेव सत्तारसस्स । एयाओ चेव अपच्चक्खाणावरणचउक्क-वज्जाओ तेरस पगडीओ वंधमाणस्स दंसविरदस्स चउत्थट्टाणं । जुयल-भंगा दो चेव । पच्चक्खाणावरणचउक्क-वज्जाओ णव पगडीओ वंधमाणस्स पमत्तापमत्त-अपुव्वकरणस्स पंचमट्टाणं । जुयल-भंगा दो चेव । णवरि अपुव्वकरण-अपमत्त अरदि-सोगाणि ण वंधंति । पुरिसवेद-चउसंजलणाणि घेत्तूण पंच । पुरिसवेद-वज्ज चउ । कोधसंजलण-वज्ज तिणिण । माणसंजलण-वज्ज दोणिण । मायासंजलणं इक्कं । गदाणि पंच ठाणाणि अणियट्ठि-अट्ठाए पचसु भागेषु जहाकमेण हुंति । भंगो इक्केक्को चेव । दो'पहुदि जाव वावीस त्ति णव भुजगारा ६ । वावीस-बंधगो इक्कवीस-बंधगो ण होदि त्ति अट्ठ अप्पदरगाणि ८ । दस अवट्ठिदाणि १० ।

एक्कं च दो व तिणिण य चत्तारि पंचेव दो अंका ।

इगिवीसादेगंता भुजगारा वीस मोहस्स (२०) ॥५१॥

दुस्सर अणादिज्ज जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ तीसं पगडीओ बंधमाणस्स असं-
खिज्जवस्साउग वज्ज तिरिक्ख-मणुस्समिच्छादिट्ठिस्स । एवं तदिय तीसं तिण्णि जादि-भंगा थिरा-
थिर-दो भंगेहिं गुणिया ६ । ते चेव सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया १२ । ते चेव जस-अजसकित्ति-
दोभंगेहिं गुणिया ॥२४॥

जहा पढम-विदिय-तदियतीसं, तहा पढम-विदिय एगुणतीसं । णवरि उज्जोववज्ज ।
... ४६३२ ।

तिरिक्खगइ एइंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर हुंडसंठाण वण्ण गंध रस फास
तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी य अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास आदावुज्जोवाणमेक्कदरं
थावर बादर पज्जत्त पत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग अणादिज्ज जस-
अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ छव्वीसपगडीओ बंधमाणस्स असंखिज्जवस्साउगतिरिक्ख-
मणुस-सव्वणेरइय-सणक्कुमारादिदेववज्जमिच्छादिट्ठिस्स । एदं छव्वीसं ठाणं आदावुज्जोव-दोभंगा
थिराथिर-दोभंगेहिं गुणिया ४ । ते चेव सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया ८ । ते चेव जस-अजसकित्ति-
दोभंगेहिं गुणिया १६ ।

तिरिक्खगइ एइंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर हुंडसंठाण वण्ण गंध रस फास
तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास थावर बादर-सुहुमाणमेक्कदरं
पज्जत्त पत्तेग-साहारणसरीराणमेक्कदरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग अणादिज्ज
जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाणं पणुवीसं पगडीणं बंधगा ते चेव, जे छव्वीसपगडीणं
बंधगा हुंति । णवरि सुहुम-साहारणाणि भव्वणादि-ईसाणंता देवा सामी ण होति । जसकित्ती
णिसंभिज्जण थिराथिर-दो भंगा सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया ४ । अजसकित्ती णिसंभिज्जण बादर-
सुहुमदोभंगा पत्तेग-साहारण-दोभंगेहिं गुणिया ४ । ते चेव थिराथिर-दोभंगेहिं गुणिया ८ । ते
चेव सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया १६ । एदे अजसकित्ती सोलस पुव्वुत्त जसकित्ती चत्तारि सहिदा
वीसा पढमपणुवीसभंगा हुंति २० ।

तिरिक्खगइ वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिदियजादीणमेक्कदरं ओरालिय तेजा कम्म-
इयसरीर हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंग असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडण वण्ण गंध रस फास
तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद तस बादर पज्जत्त पत्तेयसरीर अथिर असुभ
दुभग अणादिज्ज अजसकित्ती णिमिणणामाओ पणुवीसं पयडीओ बंधमाणस्स असंखेज्जवस्सा-
उग वज्ज तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स विदियपणुवीसं ठाणं । एयस्स चत्तारि जाइ-भंगा ४ ।

तिरिक्खगइ एइंदियजाई ओरालिय तेजा कम्मइगसरीर हुंडसंठाण वण्ण गंध रस फास
तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद थावर बादर-सुहुमाणमेक्कदरं अपज्जत्त पत्तेग
साधारणसरीराणमेक्कदरं अथिर असुभ दुभग अणादिज्ज अजसकित्ती निमिणणामाओ तेवीसं पग-
डीओ बंधमाणस्स असंखेज्जवस्साउग वज्ज तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स तेवीसं ठाणं । बादर-
सुहुमदोभंगा पत्तेग-साधारणदोभंगेहिं गुणिया तिरिक्खगइसंजुत्तसव्वभंगा एत्तिया हुंति ६३०८ ।

मणुसगइसंजुत्ताणि तिण्णि ठाणाणि । मणुसगइ पंचिदियजादि ओरालिय तेजा कम्म-
इयसरीर समचउरसरीरसंठाण ओरालियसरीरंगोवंग वज्जरिसभवइरणारायसरीरसंघडण वण्ण
गंध रस फास मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास पसत्थविहायगइ
तस बादरपज्जत्तपत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग सुस्सर आदिज्ज जस-
अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण तित्थयरणामाओ तीसपयडीओ बंधमाणस्स चउत्थादिहेट्ठिम-
पुढवी-भवणवासि-वाणवितर-जोदिसिय वज्ज देव-णेरइयअसंजदसम्मादिट्ठिस्स तीस ठाणं ।
थिराथिर-दो भंगा सुभासुभदोभंगेहिं गुणिया ४ । ते चेव जस-अजसकित्ती-दोभंगेहिं गुणिया ८ ।

मणुसगइ पंचिदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर छसंठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीर-
अंगोवंगं छसंघडणाणमेक्कदरं वण्णादिचदुक्कं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुगादिचदुक्कं
पसत्थ-[अपसत्थ-]विहायगदीणमेक्कदरं तस वादर पज्जत्त-पत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभा-
सुभाणमेक्कदरं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदिज्ज-अणादिज्जाणमेक्कदरं जस-
अजसक्कितीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ एगुणतीसपगडीओ वधमाणस्स सत्तामपुढवीणेरइय तेउ वाउ
असखेज्जवस्साउगं वज्ज मिच्छादिट्ठिस्स पढमएगुणतीसठाणं । एदस्स वि भंगा तिरिक्खगइसजुत्त-
पढमएगुणतीसठाणं भंगा चेव ४६०८ ।

एव विदियं एगुणतीसठाण पि । णवरि हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं च वज्ज
सासणसम्मादिट्ठिस्स विदियएगुणतीसठाणं । वियप्पा पुणरुत्त त्ति ण गहिया ।

मणुसगइ पंचिदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर समचदुरसरीरसंठाण ओरालिय-
सरीरअंगोवंगं वज्जरिसहवइरणारायसरीरसंघडणं वण्णादिचदुक्कं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी य
अगुरुगलहुगादिचदुक्कं पसत्थविहायगइ तस वादर पज्जत्त पत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभा-
सुभाणमेक्कदरं सुभग सुस्सर आदिज्ज जस-अजसक्कितीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ एगुणतीसपग-
डीओ वंधमाणस्स देव-णेइयसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिस्स तदियएगुणतीसठाणं ।
एदस्स भंगा पुणरुत्त त्ति ण गहिया ।

मणुसगइ पंचिदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर हुंडसंठाण ओरालियसरीरअंगोवंगं
असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं वण्णादिचदुक्कं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद तस
वादर पज्जत्त पत्तेगसरीर अथिर असुभ दुभग अणादिज्ज अजसक्किती णिमिणणामाओ पणुवीस
पगडीओ वंधमाणस्स तेउ-वाउ असंखेज्जवस्साउगं वज्ज तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स पणुवीसं
ठाण । एदस्स इक्को चेव भंगो ? ।

मणुसगइसंजुत्ताण सव्वभंगा एत्तिया ४६१७ ।

देवगइसंजुत्ताणि पंच ठाणाणि । देवगइ पंचिदियजादि वेउव्वियाहारतेजाकम्मइय[सरीर]
समचउरससरीरसंठाणं वेउव्विय-आहारसरीरंगोवंगं वण्णचदुक्कं देवगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुग-
लहुगादिचदुक्कं पसत्थविहायगइ तस वादर पज्जत्त पत्तेयसरीरा थिर सुभ सुभग सुस्सर आदिज्ज
जसक्किती णिमिण-तित्थयरणामाओ[इ-]क्कतीसपयडीओ अपसत्तासंजदा अपुव्वकरणद्धाए सत्ता-
छभागगया अट्ठाणं [य ठाण] वंधंति । एवं एक्कतीसा अट्ठाण [य ठाणे] इक्को भंगो ? । एवं
चेव तीसाए ठाण पि । णवरि तित्थयरवज्जं । एदस्स वि एक्को चेव भंगो ? ।

पढमए उणतीसाए ठाणं जहा तहा एक्कतीसठाण णायव्वं । णवरि[आहार-]आहारसरीरंगो-
वंगं वज्ज । एवं विदिए एगुणतीसाए ठाणं । णवरि थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं जस-
अजसक्कितीणमेक्कदरं भाणियव्वं । सामिणो कम्मभूसिमणुस-असंजद-देस-चिरद-पमत्तसजदा
हुंति । थिराथिरा दोभगा सुभासुभ-दोभगेहि गुणिया ४ । ते चेव जस-अजसक्कितीण दोभगेहि
गुणिया ८ । पढम-एगुणतीसवियप्पा एत्थेव पुणरुत्त त्ति ण गहिया ।

पढम-अट्ठावीसा अ ट्ठाणं जहा पढम-एगुणतीसा अ ठाणं तहा णायव्वं । णवरि तित्थयरं
वज्ज । विदिय-अट्ठावीसा अ ट्ठाणं जहा विदिय-एगुणतीस ठाणं तहा णायव्वं । णवरि तित्थयरं
वज्ज । सामिणां वि य सण्णिरपंचिदिय-असण्णिरपंचिदिय-पज्जत्तमिच्छादिट्ठो सासणसम्मादिट्ठो
सम्मादिट्ठो असंजदसम्मादिट्ठो सज्जासंजद-तिरिक्ख-मणुस्सा पमत्तसजदा य हुंति । देवगइ-
संजुत्तसव्वभंगा अट्ठारस १८ ।

एक ठाणं अगदिसंजुत्त जसक्किती तम्हा सामिणो अपुव्वकरणद्धाए उवरिम-सत्तमभागगया
ज१व सुहुमसंपराइया त्ति । एदस्स भंगो इक्को चेव ? । सव्वभंगा मेलिया एत्तिया हुंति १३६४५ ।

जम्हि जम्हि असंखिज्जवत्साउग त्ति भणिया, तम्हि तम्हि भोगभूमिपडिभागियत्तिरिक्ख-भोग-
भूमिमणुसा च घेत्तव्वो । सेसतिरिक्ख-मणुससंखेज्जवत्साउगं परघाद उत्सास विहायगइ सुस्सर-
णामाणि अपज्जत्तेण सह वंधं णागच्छंति ।

पुव्वुत्तभंगा[णं]संखपरुवणा एस गाहा—

सव्वे वि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु इक्कमेकेसु ।

मेलंति त्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा ॥११॥

तेवीसं पणुवीसं [छव्वीसं] अट्ठावीस एगूणतीसं तीसं इक्कत्तीसं इक्कं एदाणि णामस्स
अट्ठ ठाणाणि । ओदरमाणेण अपुव्वुवसामगो एक्कं वंधंतो एक्कत्तीसं वा तीसं वा एगूणतीसं वा
अट्ठावीसं वा वंधंति त्ति चत्तारि भुजगारा ४ । तेवीसं वंधमाणो पंचवीस वंधइ त्ति एक्को भुज-
गारो । पंचवीसं वंधमाणो छव्वीसं वंधइ त्ति विदिओ भुजगारो २ । एवं जाव एक्कत्तीस त्ति
ताव जहासंभवेण भुजगारो घेत्तव्वो । एवं भुजगारट्ठाणाणि छह । अपुव्वकरणो अट्ठावीसं वा
एगूणतीसं वा तीसं वा एक्कत्तीसं वा वंधमाणो इक्को वधइ त्ति अप्पदर इक्कत्तीसं वंधमाणो
देवेसुप्पणो एगूणतीसं वंधइ त्ति अप्पदरो । इक्कत्तीसं वंधमाणो पमत्तभावेण एगूणतीसं वंधइ
त्ति तीसमादिं काऊण जाव तेवीसं जहासंभवेण अप्पदरा घेत्तव्वा । एवं सत्त अप्पदरट्ठाणाणि ।
उभयं अट्ठ ठाणाणि ।

इगि दुग दुगं च तिय चदु पणयं तीसादि तेवीस ठाणे ।

एयाई चत्तारि दु भुजगारा हुंति णामस्स (११) ॥५७॥

तिय छक्क पंच चदु दुग एगं इगितीस आइ ठाणेसु ।

पणुवीसंते जाणसु अप्पदरा हुंति णामस्स ॥५८॥

सेसेसु पंचसु कम्मसु एकदरट्ठाणं ति कहं ? पंच णाणावरणीयं पंच अंतराइयाणि सरि-
साणि य गच्छंति वंधमिदि तेसिं भुजगार-अप्पदरगाणि णत्थि । अवट्ठिओ चेव । सादासादाण
अण्णदरमिदि, उच्चाणिच्चागोदाणं अण्णदरं वंधइ त्ति एदेसि अप्पदर-भुजगारा णत्थि । अवट्ठिओ
चेव । आउगमेक्कं वंधंतो अण्णाउगाणि ण वंधइ त्ति भुजगार-अप्पदरं णत्थि । अवट्ठिओ चेव ।
वेदणीयवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं अवंधादो वंधदि त्ति [अ-] वत्तव्वो वंधो, तक्काले भुजगाराप्प-
दरावट्ठिओ त्ति ण वुच्चइ त्ति ।

एदाहिं दोहिं गाहाहिं मूलुत्तरपगडीसु पगडिट्ठाण-भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदाणि चत्तारि
अणिओगदाराणि वुत्ताणि ।

सव्वार्सिं पगडीणं मिच्छादिट्ठी दु वंधगो भणिदो ।

तित्थयराहारदुगं मुत्तूण य सेसपगडीणं ॥५९॥

सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं ।

वज्जंति सेसियाओ मिच्छत्तादीहिं हेदूहिं ॥६०॥

पंच णाणावरण णव दंसणावरण सादासादं मिच्छत्त सोलस कसाय णव णोकसाय चत्तारि
आउगाणि चत्तारि गदि पंच जादि पंच सरीर छ संठाण तिण्णि अंगोवंग छ संघडणं वण्ण गंध
रस फास चत्तारि आणुपुव्वी अगुरुगलहुगादि चत्तारि आदाउज्जोव दो विहायगइ तस
थावर वादर सुहुम पज्जत्तापज्जत्त पत्तेगसाधारणसरीर थिराथिर सुभासुभ सुभग दुभग सुस्सर
दुस्सर आदेज्ज अणादिज्ज अजस-जसकित्ती णिमिण तित्थयर उच्चाणिच्चागोदं पंच अंतराइयपगडीओ

एदाओ चौसुत्तरसदबंधपगडी णाम वुच्चंति । सन्वीसं पगडीणं आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-
तिथयरणामाओ वज्ज सेसवधपगडीओ मिच्छादिट्ठी बंधइ ११७ ।

सोलस मिच्छत्तंता आसादंता य होइ पणुवीसं ।

तिथयरउगसेसा अविरद-अंता दु मिस्सस्स ॥६१॥

मिच्छत्त-णवुंसगवेद णिरयाउ णिरयगइ एइंदिय बीइंदिय तीइंदिय चटुरिंदियजादि हुंड-
संठाणं असंपत्तसेवट्टसरीरसघडण णिरयगइपाओगाणुपुव्वी आदाव थावर सुहुम अपज्जत्तसाधा-
रणसरीर [एदाओ] सोलस पगडीवज्जियाओ इक्कुत्तरसयपगडीओ सासणसम्मादिट्ठिणो[ट्ठी]
बंधइ १०१ । थोणगिद्धीतिग अणंताणुबंधीचटुक्क इत्थिवेद तिरियाउग तिरिक्खगइ समचउर-
हुडवज्ज चउसंठाण वज्जरिसभवइरणाराय-असपत्तसेवट्टा वज्ज चउसंघडण तिरिक्खगइपाओगाणु-
पुव्वी उज्जोय अप्पसत्थविहायगइ दुभग दुस्सर अणादिज्ज णिच्चगोद[एदाओ] पणुवीसपगडी
वज्जियाओ एगुत्तरसदपगडीओ तिथयरसहियाओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधइ ७७ । मणुस-देवाउग-
तिथयरवज्जियाओ पगडीओ सत्तसत्तरि मिच्छादिट्ठी बंधइ ७४ ।

अविरद-अंता दु दसं विरदाविरदंतिया उ चत्तारि ।

छच्चेव पमत्तंता इक्का पुण अप्पमत्तंता ॥६२॥

अपच्चक्खाणावरणचटुक्क मणुसाउग मणुसगइ ओरा-[लियसरीर-ओरा-]लियसरीरअंगोवंगं
वज्जरिसभ [वइरणारायसंघडणं] मणुसगइपाओगाणुपुव्वी [एदाओ] दसपगडिवज्ज सत्तत्तरि
पगडीओ संजदासंजदो बंधइ ६७ । पच्चक्खाणावरणचउक्क वज्ज सत्तसट्ठिपगडीओ पमत्तसंजदो
बंधइ ६३ । असाद अरदि सोग अथिर असुभ अजसकिन्ती छ पगडीवज्जाओ आहारदुग-
सहियाओ तेसट्ठि पगडीओ अपमत्तो बंधइ ५६ । देवाउग वज्ज एगुणसट्ठि पगडीओ अपुव्व-
करणो बंधइ पढम-सत्तामभागम्मि ५८ ।

दो तीसं चत्तारि य भागा भागेसु संखसण्णाओ ।

चरिमेसु जहासंखा अपुव्वकरणंतिया हुंति ॥६३॥

णिहा-पयलाओ वज्ज अट्टवण्णपगडीओ विदियभागपढमसमयप्पहुडि छट्ट भाग जाव
चरमसमओ त्ति अपुव्वकरणो बंधइ ५६ । देवगइ पच्चिदियजाइ वेउव्विय आहार तेज कम्मइय-
सरीर समचउरमरीरसंठाण [वेउव्विय-] वेउव्वियसरीरंगोवंग वण्णाइचउक्क देवगइपाओगाणु-
पुव्वी अगुरुगलहुगादिचउक्क पसत्थविहायगइ तस वादर पज्जत्त पत्तोयसरीर थिर सुह सुहग
सुस्सर आदिज्ज णिमिण तिथयरं तीस पगडीओ वज्ज छप्पण्ण पगडीओ उवरिमसत्त-पढम-
समयप्पहुडि जाव चरमसमओ त्ति अपुव्वकरणो बंधइ २६ । हस्स रइ भय दुगुंछा चत्तारि
पगडीओ वज्ज छव्वीस पगडीओ अणियट्ठिअट्ठाए पढमसमयप्पहुइ संखिज्जभागेसु बंधइ २२ ।

संखेज्जदिमे सेसे आढत्ता वादरस्स चरमंतो ।

पंचसु इक्केकंता सुहुमंता सोलसा हुंति ॥६४॥

तओ [अंतोमुहुत्तं पुरिसवेदं वज्ज वावीस पगडीओ बंधइ २१ । तओ अंतोमुहुत्तं कोइसज-
लणं वज्ज इगिवीस पगडीओ बंधइ २० । तओ] अंतोमुहुत्तं माणसजलणं वज्ज बीसं पगडीओ
बंधइ १६ । तओ अणियट्ठिचरमसमओ त्ति मायसंजलणं वज्ज एगुणवीसं पगडीओ बंधइ १८ ।
लोभसंजलणं वज्ज अट्ठारसपगडीओ सुहुमसंपराइगो बंधइ १७ । पंच णाणावरण चउ दसणा-
वरण जसकिन्ती उच्चगोद पंच अतराइय सोलस पगडीओ वज्ज सत्तरस पगडीओ उवसंत-खीण-
सजोगिकेवल्लिणो बंधति, सादं बंधति त्ति वुत्तं होदि ।

सादंता जोगंता एत्तो पाएण णत्थि वंधो त्ति ।

णायव्वो पगडीणं वंधस्संतो अणंतो य ॥६५॥

गदि-आदिएसु एवं तप्पाओग्गाणमोधसिद्धाणं ।

सामित्तं णेयव्वं पगडीणं ठाणमासेज्ज ॥६६॥

देवाउग णिरयाउग णिरयगइ देवगइ एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चटुरिदियजादि वेउव्विय-
आहारसरीर वेउव्विय-आहारसरीरंगोवंग णिरयगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी आदाव थावर सुहुम
अपज्जत्त साधारण एयाओ एगूणवीस पगडीओ वज्जाओ वीसुत्तरसदपगडीओ णेरइया वंधंति
१०१ । तित्थयरवज्ज एगुत्तरसदपगडीणं तं णेरइयमिच्छादिट्ठी वंधंति १०० । एदाओ चेव मिच्छत्त
णउंसगवेदं हुंडसंठाणं असंपत्तसेवट्टसरीरसंवडणं एयाओ चत्तारि पगडीओ वज्ज णेरइय-सासणो
वंधेइ ६६ । एदाओ चेव ओघवुत्त-पणुवीसपगडी वज्ज तित्थयरसहिय छण्णउयपगडीओ सम्मा-
मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठिणो वंधंति । णवरिं सम्मामिच्छादिट्ठिणो मणुसाउग-तित्थयरा
ण वंधंति ७० । सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ७२ । एवं पढमादि जाव तदिया पुढवि
त्ति । एवं चउत्थादि जाव छट्ठी पुढवि त्ति । णवरि तित्थयर असंजदो ण वंधेइ मिच्छादिट्ठी
सासणो १००।६६।७०।७१ । एवं चेव सत्तमाए पुढवीए । णवरि मणुसाउगं मणुसगइपाओग्गाणु-
पुव्वी उच्चागोदं मिच्छादिट्ठी णो वंधंति । असंजदसम्मादिट्ठी मणुसाउगं ण वंधंति मिच्छादिट्ठी
सामिणो ६६।६२।६७।६७ ।

आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग तित्थयर वज्ज वीसुत्तरसदपगडीओ तिरिक्खा वंधंति
११७ । मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजद-देसविरदेसु अप्पणो वज्जमाण-
पगडीओ ओघं व णेयव्वा । एवं पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्ख-
जोणीसु ११७।१०१।७४।७६।६६ । एवं पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्त १०६ । तेसु णवरि णिरयाउग देवाउग
णिरयगइ देवगइ वेउव्वियसरीर वेउव्वियसरीरअंगोवंग णिरयगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी अट्ट
पगडीणं वंधो णत्थि । तेसु मिच्छादिट्ठिगुणट्ठाणमेकं चेव ।

एवं मणुसअपज्जत्तेसु वि । मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगडीओ ओघं व णेय-
व्वाओ । णवरि मणुसिणीसु तित्थयरं अपुव्वकरणो खवगो ण वंधइ ।

जहा णेरइयाणं सव्वपगडीओ वुत्ताओ, तहा देवाणं पि । णवरि एइंदिय आदाव थावर-
णाम पगडीओ वंधंति । एवं सोहम्मीसाणेसु । एवं भवणवासिय-वाणवितर-जोदिसियदेव-देवोसु,
सोधम्मीसाणदेवेसु च । णवरि तित्थयरवंधो णत्थि । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारेसु पढमपुढवी
भोवं [व णेयव्व] । एवं आणदादि जाव उवरिमगेवज्जेसु । णवरि तिरिक्खाउग तिरिक्ख
[गइ] तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी उज्जोव-वंधो णत्थि । अणुदिस-अणुत्तरदेवा असंजदा सम्मादि-
ट्ठिणो चेव । जाओ पगडीओ देव-असंजदसम्मादिट्ठिणो वंधंति ताओ चेव वंधंति ।

तित्थयरं कम्म मणुस्सेसु पारंभेऊग सोधम्मादि-उप्पण्णा वंधंति । मणुसा पुव्वाउगवंधा
असंजदसम्मादिट्ठिणो तित्थयरं वंधमाणो पढमपुढविउप्पण्णा वंधंति । मणुसअसंजदसम्मादिट्ठिणो
पुव्वाउगं वंधंति [वद्धा त्ति] तित्थयरं वंधमाणो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तकालेण कालं काऊण
विदिय-तदिय-पुढवीसुप्पण्णा अंतोमुहुत्तकालेण पज्जत्तीहि अ पज्जत्तगदा होऊण सम्मत्तं घेत्तूण
तित्थयरं वंधंति । तित्थयर-संत कम्मआ सण्णत्थ [अण्णत्थ] ण उप्पज्जंति ।

इंदियादिसु एवं णादव्वं । एदाहि अट्ठागाहाहि एगेगुत्तरपगडीसामित्ताणिओगदाराणि
वुत्ताणि । सामण्णेण य भणियं । विसेसो एत्थ कहिस्सामो ।

आदेसेण गइआणुवादेण णिरयगइए णेरइया कित्तियाओ पगडीओ वंधंति ? एउत्तरसयं ।
तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चइ—वीसुत्तरसयवंधपगडीण मल्ले णिरयाउय देवाउय णिरयगइ देवगइ

एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियजादि वेउन्विय-आहारसरीर वेउन्विय-आहार-सरीरंगो-
वंग गिरयगइ-देवगइपाओगाणुपुन्वी आदाव थावर सुहुम अप्पलत्त साधारण एयाओ एगुणवीस
पयडीओ अवणीय एगुत्तरसयं होइ । तं च एयं १०१ । एत्थेव तित्थवरणाम अवणीय सय होइ ।
त गेरइयमिच्छादिट्टी वंधति । तस्स पमाणयं एयं १०० । एत्थ मिच्छत्त णउसयवेय हुंडसठाण
असंपत्तसेवट्टसंघडण एदाओ चत्तारि पगडीओ अवणीदे सेसाओ छण्णउइ पगडीं सासणसम्मा-
दिट्टी वंधति ६६ । एत्थ जाओ सासणसम्मादिट्टिस्स पणुवीस पयडीओ वुच्छिण्णओ ताओ अव-
णीय पुणरवि मणुसाउअं अवणीय सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्टी वंधति ७० ।
एत्थेय मणुसाउय-तित्थयरणामं च पक्खित्ते वाहत्तरि पयडीओ असंजदसम्मादिट्टी वंधति ७२ ।
एवं चेव पढमाए पुढवीए विदियाए तदियाए चदुसु वि गुणट्ठाणेषु हुंति । पुवुत्त-एउत्तरसय-
पयडीण मज्जे तित्थयर णाम अवणीय सेस सय चउत्थपुढविणेइया वंधति १०० । मिच्छादिट्टी
वि एत्तिया चेव वंधति १०० । एत्थ मिच्छत्त णउसयवेय हुंडसठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण एदाओ
चत्तारि पयडीओ अवणीदे सेसाओ छणवइपगडीओ सासणसम्मादिट्टी वंधति ६६ । एत्थ
सासण-वुच्छिण्णपयडीओ पणुवीस, मणुसाउअं च अवणीय सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मा-
मिच्छादिट्टी वंधति ७० । एत्थेव मणुसाउअं तप्पक्खित्ते एयहत्तरिपयडी असंजदसम्मादिट्टी
वंधति । एवं चेव पंचमीए छट्ठीए पुढवीए चदुसु वि गुणट्ठाणेषु होइ । चउत्थपुढवीए गेरइय-
वंधपयडीं मज्जे मणुसाउयमवणीय सेसाओ णवणउइयपयडीओ सत्तमपुढविणेइया वंधति ।
तं च एवं ६६ । एत्थेव मणुयदुग उच्चगोद अवणीय सेसाओ छणउयपयडीओ मिच्छादिट्टी
वंधति ६६ । एत्थ मिच्छत्त णउसयवेय हुंडसठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण तिरियाउ अवणीदे सेसाओ
एयाणउइयपयडीओ सामणसम्मादिट्टी वंधति । एत्थ सासणसम्मादिट्टिवुच्छिण्णपयडीओ तिरियाउं
सोत्तूण चउवीसं अवणिऊण मणुमदुग उच्चगोद च पक्खित्ते सत्तरि पगडीओ मिच्छादिट्टी वंधति
७० । असंजदसम्मादिट्टि त्ति एत्तियाओ चेव वंधति ७० ।

एवं गिरयगई समत्ता ।

तिरियगईए सामण्णतिरिया केत्तियाओ पयडीओ वंधति ? सत्तरहुत्तरसयं । तं कह णज्जइ
त्ति वुत्ते वुच्चदे-वीसुत्तरसयवंधपयडीं मज्जे तित्थयर-आहारदुगं अवणीय सत्तर [ह-] सयं च
होइ । तं च एया ११७ । सामण्णतिरियमिच्छादिट्टी एतियाओ चेव वंधति ११७ । एत्थ
मिच्छादिट्टी-वुच्छिण्णपयडीओ सोलस अवणीय सेसाओ एउत्तरसयं सासणमिच्छा-[सम्मा-]दिट्टी
वंधति । तं च एयं १०१ । एत्थ सासणसम्मादिट्टिवुच्छिण्ण-पणुवीसपयडीओ अवणीय मणुय-
देवाउगाणि मणुयगदिपाओगाणुपुन्वी ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग आदिम संघडण-
मवणीय सेसणहत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्टी वंधति ६६ । एत्थ देवाउग पक्खित्ते असंजद-
सम्मादिट्टी वंधति ७० । एत्थेव विदियकसायचदुक्कं अवणीय सेसाओ छावट्टी पगडीओ संजदा-
सजदा वंधति ६६ । एवं चेव पंचिंदियतिरियपलत्त पंचिंदियतिरियजोणिणीसु । पंचिंदियतिरिया-
पलत्ता केत्तियाओ पयडीओ वंधति ? णउत्तरसयं । तं कह णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे-पुवुत्तसत्तरहुत्तर-
सयं पयडीं मज्जे गिरयाउय-देवाउय-वेउन्वियछक्कमवणीए णवुत्तरसयं होइ । तं च एयं १०६ ।

एवं तिरियगदी समत्ता ।

मणुयगईए सामण्णमणुया केत्तियाओ पयडीओ वंधति ? वीसुत्तरसयं १२० । आहारदुग-
तित्थयरेण विणा सत्तरहुत्तरसयं मिच्छादिट्टी वंधति । तं एद ११७ । एत्थ वुच्छिण्णमिच्छादिट्टि-
पयडीओ सोलस अवणीए सेसं एगुत्तरसदं सासणसम्मादिट्टी वंधति १०१ । एत्थ सासणसम्मा-
दिट्टि-वुच्छिण्णपयडीओ पंचवीसमवणिऊण देवाउ मणुयाउ मणुयगइ मणुयगइपाओगाणुपुन्वी
ओरालियसरीर ओरालियसरीरंगोवंग आदिसंघडण अवणिदे सेसाओ एगुणहत्तरिपगडीओ

सम्मामिच्छादिद्वी बंधंति ६६ । एत्थेव तित्थयर, देवाउगं च पक्खित्ते एयहत्तरि पगडीओ असंजदसम्मादिद्वी बंधंति ७१ । एत्थेव विदियकसायचटुक्कं अवणिय सेसाओ सत्तसट्ठि पगडीओ संजदासंजदा बंधंति ६७ । एत्तो पमत्तसंजदप्पहुदि जाव सजोगिकेवल्लि त्ति ताव ओवभंगो । जहा सामणमणुस्साणं भणियं, तहा चेव मणुसपज्जत्ताणं मणुसिणीणं च होइ । मणुय-अपज्जत्ताणं तिरिय-अपज्जत्तभंगो ।

एवं मणुयगई समत्ता ।

देवगईए सामणदेवा केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? चदुरुत्तरसयं । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्जे णिरयाउग देवाउग वेउव्वियळ्ळक्क वेइंदिय तीइंदिय चदुरिंदियजाइ आहारदुग सुहम अपज्जत्त साहारण एयाओ सोलस पयडीओ अवणीए चदुरुत्तरसयं होइ । तं च एयं १०४ । एत्थेव तित्थयरणाममवणीए सेसा तेउत्तरसयं मिच्छादिद्वी बंधंति १०३ । एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेय हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण एइंदियजादि थावर आदाव एयाओ सत्त पयडीओ अवणीय सेसाओ छण्णवइ पयडीओ सासणसम्मादिद्वी बंधंति ६६ । एत्थ सासणसम्मादिद्विबुच्छिण्णपयडीओ मणुसाउयं च अवणीय सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिद्वी बंधंति ७० । एत्थ मणुसाउगं पक्खित्ते एयहत्तरिपगडीओ असंजदसम्मादिद्वी बंधंति ७१ ।

सोहम्मीसाणकप्पेसु सामणदेवभंगो । सणक्कुमारप्पहुदि जाव सहस्सारकप्पवासिया देवा केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? एउत्तरसयं । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे । तं जहा-सामणदेव-पयडीणं मज्जे एइंदियजाइ थावर आदाव एयाओ तिण्णि पयडीओ अवणीय एउत्तरसयं च होइ । तं च एयं १०१ । एत्थेव तित्थयरणाम अवणीए सेसं सयं च मिच्छादिद्वी बंधइ त्ति १०० । एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेद हुंडसंठाणमसंपत्तसेवट्टसंघडणमवणीए सेसाओ छण्णवइ पयडीओ सासण-सम्मादिद्वी बंधंति ६६ । एत्थ सासणसम्मादिद्वि-बोच्छिण्णपयडीओ पणुवीस मणुआउगं च अवणीय सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिद्वी बंधंति ७० । एत्थ तित्थयर मणुसाउगं च पक्खित्ते बाहत्तरि पयडीओ हुंति, ताओ असंजदसम्मादिद्वी बंधंति ७२ ।

आणदादि जाव उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा केत्तियाओ पगडीओ बंधंति ? सत्ताण-उइ । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे । तं जहा—सामणदेवपगडीणं मज्जे तिरियाउगं च एइंदियजादि तिरियदुग आदाउज्जोव थावर एयाओ सत्त पयडीओ अवणीए सत्ताणउदि पयडीओ हुंति ६७ । एत्थेव तित्थयरणाममवणीए सेसाओ छण्णउइ पगडीओ मिच्छादिद्वी बंधंति ६६ । एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेद हुंडसंठाणं असंपत्तसेवट्टसंघडणं एयाओ चत्तारि पगडीओ अवणीय सेसा वाणउदि-पयडीओ सासणसम्मादिद्वी बंधंति ६२ । एत्थ सासणसम्मादिद्विबुच्छिण्णपयडीणं मज्जे तिरिया [उगं] तिरियदुगं [च] उक्खेव [पक्खेवे] एयाओ चत्तारि पयडीओ सासणबुच्छिण्ण इक्खीस पयडीओ अवणीए सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिद्वी बंधंति ७० । एत्थेव तित्थयर मणुसाउग पक्खित्ते बाहत्तरि पयडीओ हुंति । ताओ असंजदसम्मादिद्वी बंधंति ७२ । एयाओ असंजदसम्मादिद्वीओ अणुदिस-अणुत्तर जाव सव्वट्टसिद्धिविमाणवासिदेवा बंधंति ७२ ।

एवं देवगइमगणा समत्ता ।

इंदियमगणाणुवादेण जाव इगि-विगल्लिंदियाण तिरिय-अपज्जत्ताण भंगो । तस्स पमाणं १०६ । एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय [चउरिंदिय] मिच्छादिद्विणो बंधंति १०६ । एत्थ मिच्छादिद्वी-बुच्छिण्णपयडीणं मज्जे णिरयाउग णिरयदुगं सेसा दूणादि उस्सास (णवुत्तरसय) पयडीओ सासण-सम्मादिद्वी बंधंति ६६ । पंचिंदियाणं वेण [ओवमिव] ।

एवं इंदियमगणा समत्ता ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-वणप्फदिकाइयादिमिच्छादिट्ठीण एहंदियमिच्छा-दिट्ठि-सम्मादिट्ठादिट्ठादि [सासणसम्मादिट्ठिभंगमिव] जाव [] एहंदियपगडीणं मज्जे मणुसाउगं मणुसदुगं उच्चगोदं च अवणीय सेसं पचुत्तरसयं तेज-वाउकाइया वंधंति १०५ । तसकाइयाण ओघभंगो ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण चउण्हं मणजोगाणं चउण्ह वचि-[जोगाणं] ओघभंगो । ओराळियकाय-जोगस्स सामण्णमणुयभंगो । वीसुत्तरसयवंधपयडीणं मज्जे णिरय-देवाउगं णिरयदुगं आहारदुगं च अवणीए सेसा चउदसुत्तरसयं च ओराळियमिस्सकायजोगी वंधंति ११४ । एत्थेव देवदुगं वेउव्विय-दुगं तिथ्यरणाम अवणीय सेसणउत्तरसयं मिच्छादिट्ठी वंधंति १०६ । एत्थेव णिरयाउगं णिरयदुगं मोत्तूण सेसाओ मिच्छादिट्ठि-वुच्छिण्णपयडीओ तेरसमवणीए पुणरवि तिरियाउगं मणुयाउगं अवणीए सेसाओ चउणउदपयडीओ सासणसम्मादिट्ठी वंधंति ६४ । एत्थेव सासणसम्मादिट्ठिवोच्छि-ण्णपयडीणं मज्जे तिरियाउगं मोत्तूण सेसाओ चउवीस पगडीओ अवणिऊण देवदुगं वेउव्विय-दुगं तिथ्यरणामं च पक्खित्ते पंचहत्तरि पयडीओ हु ति, ताओ असंजदसम्मादिट्ठी वंधंति ७५ । वेउव्वियकायजोगस्स सामण्णदेवभंगो १०४ । सामण्णदेवपगडीणं मज्जे तिरियाउगं मणुयाउगं च अवणिय सेसा दोउत्तरसयं वेउव्वियमिस्सकायजोगी वंधंति १०२ । एत्थेव तिथ्यरणामं अवणीए सेस-एउत्तरसयं मिच्छादिट्ठी वंधंति १०१ । एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेय हुंडसंठाणमसंपत्त-सेवट्संघडण एहंदियजाइ थावर आदाव एयाओ सत्ता पयडीओ अवणीय सेसा चउणउदपयडीओ सासणसम्मादिट्ठी वंधंति ६४ । एत्थ सासणसम्मादिट्ठि-वुच्छिण्णपयडीणं मज्जे तिरियाउगं मोत्तूण सेसाओ चउवीस पयडीओ अवणिऊण तिथ्यरणाम पक्खित्ते एगत्तरि पगडीओ असंजद-सम्मादिट्ठी वंधंति ७१ ।

आहारमिस्सकायजोगी तेसट्ठि (?) पगडीओ वंधंति । [आहार-] कायजोगी तेसट्ठि पयडीओ जाओ पमत्तसंजदा वंधंति ताओ तेसट्ठि पयडीओ ६३ ।

कम्मइयकायजोगी केत्तियाओ पयडीओ वंधंति ? वारहुत्तरसयं । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसय-वंधपयडीणं मज्जे चत्तारि आउगाणि णिरयदुगं आहारदुगं अट्ठ पयडीओ अवणीए सेस वारहुत्तरसयं कम्मइयजोगी वंधंति ११२ । एत्थ देवदुगं वेउव्वियदुगं तिथ्यरणाम मवणीय सेसं सत्तुत्तरसयं मिच्छादिट्ठी वंधंति १०७ । एत्थ मिच्छादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीणं मज्जे णिरयाउग-णिरयदुगं तिण्ण पयडीओ मोत्तूण सेसाओ तेरस पयडीओ अवणिय सुद्धसेसाओ चउ-णउदि पयडीओ सासणसम्मादिट्ठी वंधंति ६४ । एत्थ सासणसम्मादिट्ठि-वुच्छिण्णपयडीणं मज्जे तिरियाऊ मोत्तूण सेसाओ चउवीस पयडीओ अवणेऊण देवदुगं वेउव्वियदुगं तिथ्यरणाम पक्खित्ते पंचहत्तरि पगडीओ असंजदसम्माइट्ठी वंधंति ७५ ।

एवं जोगमग्गणा सम्मत्ता ।

वेदाणुवादेण जाव वावीसवंधअणियट्ठि ताव तिण्ह वेदाणं ओघभंगो । अवगयवेयाणं पि एगवीस-वंध-अणियट्ठिप्पहुदि जाव सजोगिकेवल त्ति ओघभंगो ।

एवं वेदमग्गणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण सामण्णकसाई केत्तियाओ पगडीओ वंधंति ? वीसुत्तरसयं १२० । कोह-कसाईणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव एकवीस वंधय-अणियट्ठि ताव ओघभंगो । माणकसाईणं मिच्छा-दिट्ठिप्पहुदि-जाव वीसवंधयअणियट्ठि ताव ओघभंगो । मायकसाईणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव एकऊणवीस वंधय अणियट्ठी ताव ओघभंगो । लोभकसाईणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सुहुमसंप-राओ त्ति ताव ओघभंगो । अकसाईणं पि उवसंतकसाय-खीणकसाय-जोगीणं ओघभंगो ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मइअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? सत्तर-सुत्तरसयं । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्जे तित्थयरं आहारदुगं अवणिऊण सत्तरससयं च होइ । तं च एयं ११७ । मइ-अण्णाणी सुद-अण्णाणी विभंगणाणी मिच्छादिट्ठी एत्तियाओ चेव बंधंति ११७ । एत्थ मिच्छादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीओ सोलस अवणीए सेस-एउत्तरसयं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति १०१ । मइ-सुय-ओधिणाणीणं असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुदि जाव खीणकसाओ त्ति ताव ओघभंगो । मणपज्जवणाणीणं पमत्त-संजदप्पहुइ जाव खीणकसाओ त्ति ताव ओघभंगो । केवलणाणीणं पि सजोगीण ओघभंगो ।

[एवं] णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमाण पमत्तसंजदप्पहुइ जाव अणियट्ठि ओघ-भंगो । परिहारसुद्धि-संजदाणं पि पमत्तापमत्ताण ओघभंगो । सुहुमसंपराइयसुद्धिसंजदाणं पि सुहुम-ओघभंगो । जहाखादसंजदाणं पि उवसंतखीण-सजोगी ओघभंगो । संजमासंजमस्स ओघ-भंगो । असंजमस्स वि मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदसम्मादिट्ठी ओघभंगो ।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खु-अचक्खुदंसणस्स मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव खीणकसायवीयराय-छदुमत्थि त्ति ताव ओघभंगो । ओधिदंसणस्स असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुदि जाव खीणकसाय-वीय-रायछदुमत्थेत्ति ताव ओघभंगो । केवलदंसणस्स सजोगिओघभंगो ।

[एवं] दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेसाणुवादेण किण्ह-णील-काउलेसा केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? अट्टारहुत्तरसयं । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्जे आहारदुगं अवणीय अट्टारहुत्तरसयं च होइ । तं च एयं ११८ । एत्थ तित्थयर णाममवणीय सेससत्तरहुत्तरसया मिच्छादिट्ठी बंधंति ११७ । एत्थ मिच्छादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीओ सोलस अवणीय सेसं एउत्तरसयं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति १०१ । एत्थ सासणसम्मादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीओ देव-मणुसाउगं च अवणीय सेसाओ चउहत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ७४ । एत्थ तित्थयरणाम मणुसाउगं च पक्खित्ते सत्तहत्तरि पयडीओ हुंति । ताओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७७ ।

तेउलेसिया केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? एयारहुत्तरसयं । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं गिरयाउय गिरयदुअं वियल्लिदियजाइतिय सुहुम साहारण अपज्जत्त एयाओ णव पयडीओ अवणीय एयारहुत्तरसयं होइ । तं च एयं ११९ । एत्थेव तित्थयराहारदुगमवणीय सेस-अट्ठुत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०८ । एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेयपयडीओ हुंडसंठाणं असंपत्तसेवट्ठसंधण एइंदियजाइ आदव थावर एयाओ सत्ता पयडीओ अवणीअ सेस-एउत्तरसयं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति १०१ । संपहि सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुइ जाव अपमत्तासंजओ त्ति ओघभंगो ।

पम्मलेसिया केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? अट्ठुत्तरसयं । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्जे गिरयाउग-[गिरयाउग-]दुगं एगिदिय विगल्लिदियजाइ आदव थावर सुहुम अपज्जत्ता साधारण एयाओ वारस पयडीओ अवणीय सेसं अट्ठुत्तरसयं होइ । तं च एयं १०८ । एत्थ तित्थयर-आहारदुगमवणिदे सेसपंचुत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०५ । एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेद हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्ठ-संधणमवणिअ सेसएगुत्तरसयं सासण-सम्मादिट्ठी बंधंति १०१ । संपहि सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुइ जाव अपमत्तासंजओ त्ति ताव ओघभंगो ।

सुकलेशिया केतियाओ पयडीओ वंधंति ? चउरुत्तरसयं । तं कहं णजइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—
वीसुत्तरसयवंधपयडीणं मज्जे णिरयाउगं तिरियाउगं णिरयदुगं तिरियदुगं इगि-विगलिदियजाइ
आदाउजोव थावर सुहुम अपलत्त साहारण एयाओ सोलह पयडीओ अवणीय चदुस्तरसयं
होइ । त च एयं १०४ । एत्थ तित्थयर-आहारदुगमवणीय सेसं एउत्तरसयं मिच्छादिट्ठी वंधंति
१०१ । एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेय हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण एयाओ चत्तारि पयडीओ
अवणीय सेसाओ सत्ताणउदिपयडीओ सासणसम्मादिट्ठी वंधंति ६७ । एत्थ सासणसम्मादिट्ठी-
वुच्छिण्णपयडीणं मज्जे तिरियाउग तिरियदुग उल्लोव मोत्तुण सेसाओ एकवीस पयडीओ अवणि-
उण मणुय-देवाउगे अवणीए चदुहत्तरि पयडीओ हुंति । ताओ सम्मामिच्छादिट्ठी वंधंति ७४ ।
एत्थ तित्थयर-मणुस-देवाउगं च पक्खित्ते सत्तहत्तरि पयडीओ हुंति । ताओ असजदसम्मादिट्ठी
बंधंति ७७ । संपहि संजदासंजदापहुदि जाव सजोगिकेवलि त्ति ताव ओघभंगो ।

एवं लेसामगणा समत्ता ।

भवियाणुवाएण भवसिद्धियाण ओघभंगो । अभवसिद्धियाण ओघमिच्छादिट्ठी-भंगो ।

एवं भवियमगणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण खाइयसम्मत्तस्स असंजदसम्मादिट्ठीपहुइ जाव सजोगिकेवलि त्ति ताव
ओघभंगो । वेदयसम्मत्तास्स असंजदसम्मादिट्ठीपहुइ जाव अप्पमत्तसंजओ त्ति ताव ओघभंगो ।

उवसमसम्मत्तास्स असंजदसम्मादिट्ठिगुणट्ठाणे केतियाओ पयडीओ वंधंति ? पंचहत्तरि
पयडीओ । तं कहं णजइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—असंजदसम्मादिट्ठी सत्ताहत्तरि पयडीणं मज्जे
मणुय-देवाउगमवणीय पंचहत्तरि पयडीओ हुंति ७५ । एत्थ विदियकसायचउक्कं मणुयदुग ओग-
लियदुग आदिसंघडणं एयाओ अवणिय सेसाओ छावट्ठी पयडीओ संजदासंजदा वंधंति ६६ ।
तत्थ तदियकसायचउक्कं अवणीअ सेसाओ वासट्ठी पयडीओ पमत्तसंजदा वंधंति ६२ । एत्थ
सादिदरमरदि सोग अधिर असुभ अजसक्ती अवणिउण आहारदुग पक्खित्ते अट्ठावण पय-
डीओ हुंति । ताओ अप्पमत्तसंजदा वंधंति ५८ । सपहि अपुण्वकरणपहुइ जाव उवसंतकसाय-
वीयरायउमत्थु त्ति ताव ओघभंगो ।

सासणसम्मत्तस्स सासणसम्मादिट्ठी-भंगो । सम्मामिच्छत्तास्स सम्मामिच्छादिट्ठी-भंगो ।
मिच्छत्तस्स मिच्छादिट्ठी-भंगो ।

एवं सम्मत्तामगणा समत्ता ।

[सण्णियाणुवादेण] सण्णीणं ओघभंगो । असण्णीणं ओघमिच्छादिट्ठी-भंगो । असण्णि-
सामणसम्मादिट्ठीणं सासण-भंगो । नेव सण्णी नेवासण्णीण सजोगिकेवलीण ओघभंगो ।

एवं सण्णिमगणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारीणमोघभंगो । अणाहारीण कम्मइयकायजोगभंगो ।

[एवं आहारमगणा समत्ता ।]

जह जिणवरेहिं कहियं गणहरदेवेहिं गथियं सम्मं ।

आयरियकमेण पुणो जह गंगणइ-पवाहुव्व ॥१२॥

तह पडमणंदिमुणिणा रइयं भवियाण बोहणट्ठाए ।

ओघेणादेसेण य पयडीणं वंधसामित्तं ॥१३॥

छउमत्थयाय रइयं जं इत्थ हविज्ज पवयणविरुद्धं ।
तं पवयणाइकुसला सोहंतु मुणी पयत्तेण ॥१४॥

एवं गदिआदिवंधसामित्तं समत्तं ।

तिण्हं खलु पढमाणं उक्कस्सं अंतराइयस्सेव ।
तीसं कोडाकोडी सागरणामाणमेव द्विदी ॥६७॥
मोहस्स सत्तरिं खलु वीसं णामस्स चैव गोदस्स ।
तेतीसमाउगाणं उवमाऊ सागराणं च ॥६८॥

उक्तं च—

योजनं विस्तरं पत्यं यस्य योजनमुच्छ्रूतम् ।
आसप्ताहःप्ररूढानां केशानां तु सुपूरितम् ॥१५॥
ततो वर्षशते पूर्णे एकैके केशमुद्धृते ।
क्षीयते येन कालेन तत्पल्योपममुच्यते ॥१६॥
कोटकोटी दशा एषां पल्यानां सागरोपमम् ।
सागरोपमकोटीनां दशकोट्यावसर्पिणी ॥१७॥

अद्धाच्छेदो दुविधो—मूलपयडि-अद्धाच्छेदो उत्तरपयडि-अद्धाच्छेदो चेदि । तत्थ मूल-
पयडि-अद्धाच्छेदो दुविहो—जहण्णओ उक्कोसो च । [तत्थ] उक्कस्सए [पयदं-] णाणावरणीय-
दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं उक्कस्सो दु ठिदिबंधो तीस सागरोवमकोडाकोडीओ । तिण्णि
वाससहस्साणि आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । मोहणीयस्स उक्कस्सओ दु
द्विदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ । सत्तावाससहस्साणि आवाधा । आवाधेणूणिया
कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । आउगस्स उक्कस्सो दु द्विदिबंधो तेतीस सागरोवमाणि । पुव्वकोडि-
तिभागमावाधा । तेतीससागरोवमाणि कम्मणिसेगो । णामा-गोदाणं उक्कस्सओ दु द्विदिबंधो
वीससागरोवम-कोडा-कोडीओ । दुवाससहस्साणि आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी
कम्मणिसेगो ।

ओधेण मूलपयडीणं उक्कस्सओ अद्धाच्छेदो समत्तो ।

आवरणमंतरायं पण णव पणयं असादवेदणियं ।
तीसुदधिकोडकोडी सागर-उवमाणमुक्कस्सं ॥६९॥

जो सो उत्तरपयडि-अद्धाच्छेदो सो दुविधो—जहण्णुक्कस्सो चैव । तत्थ उक्कस्सए पयदं ।
पच णाणावरण णवदंसणावरण-असाद-पंचअंतराइयाणं उक्कस्सगो दु द्विदिबंधो तीससागरोवम-
कोडाकोडीओ । तिण्णि वाससहस्साणि आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

मणुय-दुग इत्थिवेदं सादं पण्णरस कोडकोडीओ ।

मिच्छत्तस्स य सत्तरि चरित्तमोहस्स चत्तालं ॥७०॥

सादं इत्थिवेद-मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीणं उक्कस्सगो ठिदिबंधो पण्णरससागरो-
वमकोडाकोडीओ । पण्णरस वास-सयाणि आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

मिच्छत्तस्स उक्कस्सगो ठिदिवंधो सत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ । सत्तवाससहस्साणि आवाधा ।
आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । सोलसकसायाणं उक्कस्सगो ठिदिवंधो चत्तालीससागरो-
वमकोडाकोडीओ । चत्तारि वाससहस्साणि आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

णिरयाउग-देवाउग-ट्टिदिउक्कस्सं हवेइ तेतीसं ।

मणुसाउग-तिरियाउग उक्कस्सं तिण्णि पल्लाणि ॥७१॥

णिरयाउग-देवाउगाण उक्कस्सगो दु ट्टिदिवंधो तेतीस सागरोवमाणि । पुव्वकोडित्तिभाग-
मावाधा । तेतीससागरोवमाणि कम्मणिसेगो । तिरिक्ख-मणुसाउगाण तिण्णि पल्लिदोवमाणि
उक्कस्सगो दु ट्टिदिवंधो । पुव्वकोडि-तिभागमावाधा । तिण्णि पल्लिदोवमाणि कम्मणिसेगो ।

णवुसयवेय-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ-णिरयगइ - तिरियगइ-एइदिय - पंचिदियजाइ-ओरालिय-
वेउन्विय-तेज-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-ओरालिय-वेउन्वियअंगोवग-असंपत्तसेवट्टसंघडण-वण्णादि-
चटुक्क णिरयगइ-तिरियगइपाओगाणुपुव्वी-अगुरुगलहुगादिचटुक्क - आदाउज्जोव - अप्पसत्थविहाय-
गइ-तस-थावर-वाइर-पज्जत्ता-पत्तेगसरीर-अथिरादिक्क-णिमिण-उच्चागोदाणं उक्कस्सगो दु ट्टिदिवंधो
वोससागरोवमकोडाकोडीओ । वेवाससहस्साणि आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणि-
सेगो ।

पुरिसवेय-हस्स-रइ - देवगइ - समचदुरसरीरसंठाण-वज्जरिसभवइरणारायसंघडण - देवगइ-
पाओगाणुपुव्वी-पसत्थविहायगइ-थिरादिक्क-उच्चगोदाणं उक्कस्सगो दु ट्टिदिवंधो दससागरोवम-
कोडाकोडीओ । दसवाससयाणि आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

वीडंदि य तीडंदि य-चटुरिदिय-वामणसंठाण-खीलियसंघडण - सुहुम - अपज्जत्त - साहारणाण
उक्कस्सगो दु ट्टिदिवंधो अट्टारस सागरोवमकोडाकोडीओ । अट्टारसवाससयाणि आवाधा ।
आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

णगोहपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायसंघडणाणमुक्कस्सगो दु ट्टिदिवंधो वारससागरोवम-
कोडाकोडीओ । वारस वाससयाणि आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । सादिय-
संठाण-णारायमंघडणाण उक्कस्सगो ट्टिदिवंधो चोदससागरोवमकोडाकोडीओ । चोदसवाससदाणि
आवाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । खुल्लसंठाण अट्टणारायसंघडणाणं उक्कस्सगो
ठिदिवंधो सोलससागरोवमकोडाकोडीओ । सोलसवाससदाणि आवाधा । आवाधेणूणिया
कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । आहारसरीर-आहारंगोवंग-तित्थयरणामाणं उक्कस्सगो दु ट्टिदिवंधो
अंतोकोडाकोडी सागरोवमाणि । अंतोमुहुत्ता आवाधा । आवाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

उत्तरपयडि-ओघ-उक्कस्स-अट्टाच्छेदो समत्तो ।

वारस य वेदणीए णामे गोदे य अट्ट य मुहुत्ता ।

भिण्णमुहुत्तं ह् दु ट्टिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥७२॥

जहण्णं पयदं । णाणावरण-दंसणावरण-मोहणीयंतराइयाणं जहण्णगो ठिदिवंधो अंतो-
मुहुत्त । अंतोमुहुत्तामावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । वेदणीयस्स जहण्णगो
ठिदिवंधो वारस मुहुत्ता । अंतोमुहुत्तामावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । आउ-
गस्स जहण्णगो ठिदिवंधो अंतोमुहुत्तो । अंतोमुहुत्तामावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्म-
णिसेगो । णामाउगोदाणं जहण्णगो ठिदिवंधो अट्टमुहुत्ता । अंतोमुहुत्तामावाधा । आवाधेणूणिया
कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

ओघेण मूलपगडि-जहण्णट्टाच्छेदो समत्तो ।

आवरणमंतराह्य पण चदु पणयं च लोहसंजलणं ।

ठिदिवंधो दु जहण्णो भिण्णमुहुत्तं वियाणाहि ॥७३॥

तत्थ जहण्णट्ठिदिवंधो पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-लोभसंजलण-पंचअंतगाइ-याणं जहण्णगो ट्ठिदिवंधो । अंतोमुहुत्तं । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

वारस मुहुत्त सादं अट्ठ मुहुत्तं तु उच्च जसकित्ती ।

वेमास मास पक्खं कोहं माणं च मायं च ॥७४॥

सादावेदणीयस्स जहण्णगो ठिदिवंधो वारस मुहुत्ताणि । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । जसकित्ति-उच्चागोदानं जहण्णगो ठिदिवंधो अट्ठिमुहुत्ताणि । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । कोहसंजलणस्स जहण्णगो ठिदिवंधो वे मासाणि । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । माणसंजलणस्स जहण्णगो ठिदिवंधो मासमिक्को । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । मायसंजलणस्स जहण्णगो ठिदिवंधो अट्ठमासो । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

पुरिसस्स अट्ठ वस्सं आउग-दुग भिण्णमेव य मुहुत्तं ।

देवाउग-गिरयाउग वाससहस्सा दस जहण्णा ॥७५॥

पुरिसवेदस्स जहण्णगो ठिदिवंधो अट्ठ वस्ताणि । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । तिरिक्खाउग-मणुसाउगाणं जहण्णगो ठिदिवंधो अंतोमुहुत्तं । अंतोमुहुत्तमावाधा । अंतोमुहुत्तं कम्मणिसेगो । गिरय-देवाउगाउगाणं जहण्णगो ठिदिवंधो दसवास-सहस्साणि । अवाधा अंतोमुहुत्तं । दसवाससहस्साणि कम्मणिसेगो ।

पंचय विदियावरणं सादीदरवेदणीय मिच्छत्तं ।

वारस य अट्ठ णियमा कसाय तह णोकसायाणं ॥७६॥

तिण्णि य सत्त य चदु दुग सागर उवमस्स सत्तभागा दु ।

ऊणं असंखभागा पल्लस्स जहण्णट्ठिदिवंधो ॥७७॥

णिहाणिहा पयलापयला थीणगिद्धी य णिहा य पयला य असादवेदणीयाण जहण्णगो ठिदिवंधो सागरोवमस्स तिण्णि-सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । मिच्छत्तास्स जहण्णगो ट्ठिदिवंधो सागरोवमं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागूणं । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । अणंताणुवंधि—अपक्खक्खाणावरण-पक्खक्खाणावरण-कोह-माण-माया-लोभाणं जहण्णगो ठिदिवंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखिज्जदिभागूणिया । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । इत्थी-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं जहण्णगो ठिदिवंधो सागरोवमस्स वे-सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखिज्जदिभागूणिया । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

तिरियगई मणुयदोणि य पंच य जादी सरीरणामतिगं ।

संठाणं संघट्ठणं छक्को ओरालियंगवंगो य ॥७८॥

वण्ण रस गंध फासा आणुपुन्वीदुगं अगुरुगलहुगादि हुंति चत्तारि ।
 आदाउज्जोवं खलु विहायगदी वि य तहा दोण्णि ॥७६॥
 तस-थावरादि जुगलं णव णिमिण अजसकित्ति णीचं च ।
 सागर-वि-सत्तभागा पल्लासंखिज्जभागूणा ॥८०॥
 उदधिसहस्सस्स^१ तहा वि-सत्तभागा जहण्णट्ठिदिवंधो ।
 वेउव्वियल्लकस्स हि पल्लासंखिज्जभागूणा ॥८१॥

णिरयगइ-देवगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग - णिरय - देवगइपाओग्माणुपुन्वीणं
 जहण्णगो ठिदिवंधो सागरोवमसहस्सस्स वे-सत्तभागा पल्लिदोवमस्सासंखिज्जदिमभागूणिया ।
 अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । सेसाण आहारदुग-तित्थयरवज्जाणं
 जहण्णगो ट्ठिदिवंधो सागरोवम-वे-सत्तभागा पल्लिदोवमस्स असंखिज्जदिमभागूणिया । अंतोमुहुत्तमा-
 वाधा । आवाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाणं
 अंतोकोडाकोडो सागरोवमाणि जहण्णट्ठिदिवंधो होदि । अंतोमुहुत्तमावाधा । आवाधेणूणिया
 कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

उत्तरपयडि-ओघ-जहण्णअद्धाच्छेदो समत्तो ।

उक्कस्समणुकस्सो जहण्णमजहण्णगो य ठिदिवंधो ।
 सादि-अणादिसहिया सामित्तेणावि णव हुंति ॥८२॥
 मूलट्ठिदिसुअजहण्णो सत्तण्हं बंध-चदुवियप्पो दु ।
 सेसतिए दुवियप्पो आउचउक्के वि दुवियप्पो ॥८३॥

आउगवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं उवसंत [कसाओ] कालं कादूण देवेसुववण्णस्स य जहण्ण-
 ट्ठिदिवंधो सादिओ होइ । तस्सेव सुहुमभावेण वा आउगमोहवज्जाणओ[-दर-] माणसुहुमसंपराइ-
 यस्स अणियट्ठिभावेण वा मोहस्स य जहण्णं सादि । सेढिमणारूढं पडुच्च अणादि । अभवसिद्धि पडुच्च
 धुव । अधुवसिद्धि पडुच्च जहण्णं वा । अवंधं वा गंतूण अद्धुवो । उक्कस्समणुकस्स जहण्णट्ठिदि-
 वंधो सादिअद्धुवो कहं ? अणुकस्स-ठिदि वंधमाणो उक्कस्स वंधइ त्ति अद्धुवो । विवरीदेण
 अणुकस्से सादि अद्धुवो । जहण्ण वंधमाणो जहण्णयं ति सादि । जहण्णवंधमाणो बंधवुच्छेदो
 गंतूण अद्धुवो । आउगरस्स उक्कस्स-अणुकस्स-जहण्ण-अजहण्णट्ठिदी सादि अद्धुवो चेव ।

अट्टारहपयडीणं अजहण्ण वंध चदुवियप्पो दु ।
 सादीअद्धुवबंधो सेसतिए हवदि बोधव्वो ॥८४॥
 णाणंतरायदसयं विदियावरणस्स हुंति चत्तारि ।
 संजलणं अट्टारस चदुधा अजहण्णबंधो सो ॥८५॥
 उक्कस्समणुकस्सो जहण्णमजहण्णगो य ट्ठिदिवंधो ।
 सादिय अद्धुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं ॥८६॥

अट्टारसपयडीणं पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-चउसंजलण-पचअतराइयाणं अजहण्णस्स
 उवसंतस्स देवेसुववण्णस्स सादि । तस्सेव सुहुमसंपराइयस्स अणियट्ठिभावेण लोभ-माया-माण-

१. आदर्शप्रती 'उवधी सहस्सस्' इति पाठः ।

कोहाणं जहाकमेण सादिबं धो । सेढिमणारूढं पडुच्च अणादि । अभवसिद्धिं पडुच्च धुव । अबंधं
वा जहणं वा गंतूण अद्धुवो । उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्णाणं सादि अद्धुवो चेव । सेसाणं पयडीणं
उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण-अजहण [ट्ठिदिबं धो] सादिअ अद्धुवो चेव । पुव्वुत्त-अट्ठारसधुव-
पगडीणं खवगसेढीए जहणट्ठिदिं काऊण अजहण्णेण पडइ । सेसाणं धुवपगडीणं बादरेइंदिअ
जहणं काऊण अजहण्णेण पडदि । अजहण्णदो जहणं पडइ ति । जहणस्स अणादि धुवो
णत्थि ।

एदाहिं तीहिं गाहाहिं मूलत्तरपयडीसु सादि अणादि-धुव-अद्धुव-उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण-
अजहण्णादि अट्ठ अणिओगद्वाराणि वुत्ताणि ।

सव्वाओ वि ठिदीओ सुभासुभाणं पि होंति असुभाओ ।

माणुस तिरिक्ख देवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥८७॥

सव्वासिं सुभासुभपगडीणं कसायवड्डीए ट्ठिदी वड्इ ति असुभाओ ठिदीओ हुंति । णवरि
तिरिक्ख-मणुस-देवाउगं तप्पाओगविसोहीए ठिदी वड्इ ति सुभाओ ठिदीओ हुति ।

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उ उक्कस्ससंकिलेसेण ।

विवरीदो दु जहणो आउगतिग वज्ज सेसाणं ॥८८॥

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधगो भणिओ ।

आहारं तिथयरं देवाउग चावि मुत्तूण ॥८९॥

देवाउगं पमत्तो आहारं अप्पमत्तविरदो दु ।

तिथयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ ॥९०॥

सव्वट्ठिदीणं देवाउगस्स उक्कस्सो ठिदिबं धो पमत्तास्स तप्पाओगविसुद्धस्स उक्कस्स-
आवाधाए उक्कस्सठिदिबं धे वट्टमाणस्स । आहारदुगस्स उक्कस्सगो ठिदिबं धो पमत्ताभिमुहस्स
अप्पमत्तसंकिलिट्ठस्स उक्कस्सचरमट्ठिदिबं धे वट्टमाणस्स । तिथयरस्स उक्कस्सगो ठिदिबं धो मणुस-
पज्जत्तो असंजदसम्मादिट्ठस्स मिच्छत्ताभिमुहस्स विदियतदियपुढवीसु उप्पज्जमाणस्स संकिलि-
ट्ठस्स उक्कस्सचरमट्ठिदिबं धे वट्टमाणस्स ।

पण्णरसण्ह ठिदीणं उक्कस्सं बंधंति मणुय-तेरिच्छा ।

छण्हं सुर-णेरइया ईसाणंता सुरा तिण्हं ॥९१॥

पण्णरसण्हं णिरयगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरंगोवंग - णिरयगइपाओगाणुपुव्वीणं
उक्कस्सगो ट्ठिदिबं धो सण्णिस्स तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठस्स संखिज्ज-वस्साउगस्स सव्वाहिं
पज्जत्तीहिं पज्जत्तगदस्स सागार-जागार-सुदो व-[जोग-] जुत्तस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स ईसिमज्झिम-
परिणामस्स वा उक्कस्सावाधाए उक्कस्सट्ठिदिबं धे वट्टमाणस्स । एवं तिरिक्ख-मणुसाउगाणं । णवरि
तप्पाओगविसुद्धस्स । एवं णिरयाउग-वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियजाइ-देवगइपाओगाणुपुव्वी-
सुहुम-अपज्जत्ता-साहारणसरीराणं । णवरि तप्पाओगसंकिलिट्ठस्स ।

तिरिक्खगइ-ओरालियसरीर-तदंगोवंग-असंपत्तासेवट्टाणं तिरियगइपाओगाणुपुव्वी-उज्जीवाणं
छण्हं उक्कस्सगो ठिदिबं धो सव्वणेरइय-आणदाइयदेव वज्ज सव्वदेव-मिच्छादिट्ठस्स पज्जत्तायस्स
सव्वसंकिलिट्ठस्स ईसिमज्झिम-परिणामस्स वा उक्कस्सावाधाए उक्कस्सट्ठिदिबं धे वट्टमाणस्स ।
णवरि ओरालियंगोवंग-असंपत्तासेवट्टसंघडणाणं भवणाइ-ईसाणंता मिच्छादिट्ठस्स उक्कस्सट्ठिदिं
णं बंधंति । उक्कस्स-संकिलेसेण एइंदियं बंधंति, तेण सह बंधं णागच्छंति । एइंदिय-आदाव-

थावराणं उक्कस्सगो ठिदिबंधो भवणवासिय-चाणवितर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणदेवा मिच्छादिदिठस्स पज्जत्तस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स ईसिमब्भिमपरिणामस्स वा उक्कस्सावाधाए उक्कस्सठिदिबंधे वट्टमाणस्स सागार-जागार-सुदोवजुत्तस्स ।

सेसाणं चट्ठगदिया ठिदि-उक्कस्सं करिंति पगडीणं ।

उक्कस्ससंकिलेसेण ईसिमहमब्भिममेणावि ॥६२॥

सेसाणं चट्ठगदिया पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-असादवेदणीय-मिच्छत्ता-सोलस कसाय-णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-पंचिदिय-तेज-कम्मइयसरीर - हुंडसंठाण-वण्णादिचट्ठक-अगुरुग-लहुगादिचट्ठक-अप्पसत्थविहायगइ-तस बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर-अथिरादि छ-णिमिण-णिच्च-गोदाण पंचअंतराइयाणं उक्कस्सगो ठिदिबंधो असंखेज्जवस्साउग-आणदादिदेव वज्ज चउगइ-सण्णिमिच्छादिदिठस्स पज्जत्तस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स उक्किट्ठसंकिलिट्ठस्स ईसि-मब्भिमपरिणामस्स वा । उक्कस्सठिदिबंधपाओग-असंखेज्जलोगपरिणामेसु जं चरमपरिणाम-ट्ठाणं तं उक्कस्ससंकिलेसेत्ति वुच्चइ । तेसु चेव जं पढमपरिणाम [ट्ठाण] ईसि त्ति वुच्चइ । दुण्ह विच्चालपरिणामट्ठाणं मब्भिमपरिणामे त्ति वुच्चइ । एवं सेसाणं पगडीणं । णवरि तप्पा-ओगसंकिलिट्ठस्स ।

आहारं तित्थयरं णियट्ठि अणियट्ठि पुरिसं संजलणं ।

बंधइ सुहुमसराओ साद-जसुच्चावरण-विग्घं ॥६३॥

आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाणं जहण्ण-उक्कस्सगो ठिदिबंधो अपुव्व-करणखवगस्स छट्ठमभागचरमे जहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स । पुरिसवेद-चट्ठसजलणाण जहण्णगे ठिदिबंधो अणियट्ठिखवगस्स अप्पप्पणो जहण्णगे चरमे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स । साद-जसकित्ति-उच्चगोद-पंचणाणावरण-चउदंसणावरण- पंचअंतराइयाणं जहण्णगे ठिदिबंधो सुहुमखवगस्स चरमजहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स ।

छण्हमसण्णिट्ठिदीण कुणइ जहण्णमाउगमण्णदरो ।

सेसाणं पज्जत्तो बादर एइंदियसुद्धो दु ॥६४॥

‘छण्हमसण्णी’ [णिरयग-] इ-णिरयगइपाओगाणुपुव्वीणं जहण्णगे ठिदिबंधो असण्णि-पंचिदियपज्जत्तस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स जहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स । देवगइ-वेउन्विय-सरीर-तदंगोवंग-देवगइपाओगाणुपुव्वीणं जहण्णगे ठिदिबंधो असण्णिपंचिदियपज्जत्तस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स । णिरयाउगस्स जहण्णगे ठिदिबंधो [असण्णिपंचिदिय-पज्जत्तस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स सव्वविसुद्धस्स मिच्छा-दिट्ठिस्स जहण्णगे ठिदिबंधे] वट्टमाणस्स । एव देवाउगस्स वि । णवरि तप्पाओगसंकिलिट्ठस्स । तिरिय-मणुसाउगाणं जहण्णगे ठिदिबंधो असंखेज्जवस्साउग वज्ज सव्वतिरिय-मणुसाणं मिच्छा-दिट्ठिण तप्पाओगसंकिलिट्ठाणं जहण्णठिदिबंधे वट्टमाणं ओगाहण [दोण्हमाउगाण] जादि [जायदि] । णाणा [णवरि] विसेसाण पडुच्च अण्णदरो त्ति णादव्वो । ‘सेसाणं पज्जत्तो’ पंच दंसणावरण-मिच्छत्त-वारस कसाय-इस्स-रइ-भय-दुगुंछ-पंचिदियजादि-ओरालिय तेज-कम्म-इयसरीर-समचउरसरीर-सठाण-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्जरिसभवइरणारायसरीरसंघडण-वण्णादि-चउक - अगुरुलहुगादिचउक्क - पसत्थविहायगइ-तस-बादर पज्जत्त-पत्तेगसरीर-थिर-सुभ - सुभग-सुस्सर-आदिज्ज-णिमिण [णामाणं] जहण्णगे ठिदिबंधो बादरएइंदियपज्जत्तस्स सागार-जागारस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स । असाद-इत्थी-णवुसक [वेद]-अरइ-सोग-चउजाइ-

पंचसंठाण-पंचसंघडण-अपसत्थविहायगइ-आदव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त - साहारण-अथिर-[अ-]
 सुभ-दुभग-दुस्सर-अणादिज्ज-अजसकित्तीणं जहण्णगो ठिदिबंधो वादर-एइंदियपज्जत्तस्स सागार-
 जागारस्स तप्पाओगगविसुद्धस्स जहण्णगो ठिदिबंधो वट्टमाणस्स । तिरिक्खगइ-तिरिक्खपाओग्गाणु-
 पुव्वी-उज्जोव-णिच्चगोदाणं जहण्णगो ठिदिबंधो वादरतेउ-वाउपज्जत्तस्स सागार-जागारस्स
 सव्वविसुद्धस्स जहण्णगो ठिदिबंधो वट्टमाणस्स । मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीणं जहण्णगो
 ठिदिबंधो वादर-पुढवी-आउ-पत्तेगसरीरपज्जत्तस्स सागार-जागारस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगो ठिदि-
 बंधो वट्टमाणस्स ।

ठिदिबंधो समत्तो ।

सादि अणादि अट्ठ य पसत्थिदरपरूवणा तहा सण्णा ।

पच्चय-विवाग देसा सामित्तेणाध अणुभागो ॥६५॥

घादीणं अजहण्णो अणुक्कस्सो वेयणीय-णामाणं ।

अजहण्णमणुक्कस्सो गोदे अणुभागबंधम्मि ॥६६॥

सादि अणादि धुव अट्ठुवो य बंधो दु मूलपयडीसु ।

सेसमिह दु दुवियप्पो आउचउक्के वि एमेव ॥६७॥

अणुभागो णाम कम्माण रसविसेसो । 'घादीणमजहण्णो' णाणावरण-दंसणावरण-मोहणी-
 यंतराइयाणं अजहण्णाणुभागबंधस्स उवंतस्स य [उवसंतकसायो] बंधगो । देवैसुप्पणस्स य
 सादियबंधो । तस्सेव सुहुमभावेण वा मोहणीयं वज्ज णं [वज्जिऊण] । मोहणीयस्स हु सुहुमस्स
 ओदरमाणस्स अणियट्ठिभावेण सादी । सेट्ठिमणारूढं पडुच्च अणादी । अवभवसिद्धिं पडुच्च धुवो ।
 जहण्णं वा अवंधं वा गंतूण अद्धुवबंधो । वेदणीय-णामाणं अणुक्कस्स-अणुभागबंधस्स उवसंतस्स
 देवभावेण वा सुहुमभावेण वा सादियबंधो । सेट्ठिमणारूढं पडुच्च अणादिबंधो । अभवसिद्धिं
 [पडुच्च] धुवबंधो उक्कस्सं वा । अवंधं गंतूण अद्धुवबंधो । गोदस्स य जहण्णमणुक्कस्साणं उवसंत
 [स्स] सुहुमभावेण वा देवभावेण वा अणुक्कसो सादी । अजहण्णस्स सत्तमाए पुढवीए उवसमसम्म-
 त्ताभिमुह-मिच्छादिट्ठि-चरमसमय जहण्णं काऊण उवसमसम्मत्तं गहिय मिच्छत्तं गयस्स सादिय-
 बंधो । सेट्ठिमणारूढं पडुच्च अणादि अजहण्णस्स सत्तमपुढवीए उवसमसम्मत्ताभिमुहमिच्छा-
 दिट्ठि चरमसमय जहण्णं अकरंतस्स वा अणादि । अवभवसिद्धियस्स धुव । अजहण्णस्स जहण्णं
 वा अवंधं वा बंधवुच्छेदं वा गंतूण अद्धुव । अणुक्कसो उक्कस्सं वा गंतूण अधुव । सेसतिगस्स एदेसिं
 वुत्तस्स कम्माणं गोदवज्जाणं सादिअद्धुवबंधो । गोदस्स सेसदुगस्स सादि अद्धुवबंधो । आउगस्स
 उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णाणं सादि-अद्धुवबंधो ।

अट्ठण्हमणुक्कस्सो तेदालाणमजहण्णगो बंधो ।

णेयो दु चदुवियप्पो सेसतिए होदि दुवियप्पो ॥६८॥

'अट्ठण्हमणुक्कस्सो' तेज-कम्मइयसरीर-पसत्थ-वण-गंध - रस-फास - अगुरुगलहुग-णिमिण-
 णामाणं अणुक्कस्स-ओदरमाणस्स अपुव्वस्स अवंधगस्स बंधमागदस्स सादियबंधो । देवैसुप्पणस्स
 वा अवंधगस्स सेट्ठिमणारूढं पडुच्च अणादि० । अवभवसिद्धिं पडुच्च धुव० । उक्कस्सं वा अवंधं वा
 बंधवुच्छेदं वा गंतूण अद्धुव० । 'तेदालाणमजहण्णं' पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-मिच्छत्त-सोलस
 कसाय-भय-दुगुंछ-अप्रसत्थवण्णादिचट्ठक-उवघाद-पंचंतराइयाणं अजहण्णस्स अवंधगाण अप-

पणो गुणद्वारे बंधमाणां सादियबंधो । अवंधगुणद्वारे अपमत्ताणं अणादि । अभवसिद्धियाणं धुवं । अवंधं वा जहणं वा गंतूणं य अद्धुवं । एदेसिं सेसतिगस्स सादि अद्धुवं ।

उक्कस्समणुक्कस्सो जहणमजहणगो य अणुभागो ।

सादिय अद्धुवबंधो पगडीणं हुंति सेसाणं ॥६६॥

सेसपगडीणं उक्कस्समणुक्कस्स-जहणमजहणाणं सादिअद्धुवबंधो ।

सुहपयडीण विसोही तिव्वं असुभाण संकिलेसेण ।

विवरीदे दु जहणो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥१००॥

सुहपगडीण विसोहीए तिव्वं उक्कस्स अणुभाग-बंधद्वारे होइ । असुभाणं पि पगडीणं संकिलेसेण उक्कस्सअणुभाग बंधद्वारे होइ । 'विवरीदे दु जहणगो' सुभपगडीणं संकिलेसेण जहणो अणुभागो, असुभाण विसोहीए जहणो अणुभागो ।

वादालं पि पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ ।

वासीदिमप्पसत्था मिच्छुकडसंकिलिट्ठस्स ॥१०१॥

'वादालं पि पसत्था' य सहेण मूलपयडीणं अपसत्थपरुवित्थादो वा सादी पयडीओ अपसत्थाओ अघादिपयडीओ पसत्थापसत्थाओ णायव्वाओ । णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं उक्कस्सो अणुभागबंधो असंखिल्लवस्साउग-आणदादिदेव वल्ल चउगइसणि पंचिंदियमिच्छादि-ट्ठिस्स सव्वाहिं पल्लत्तीहिं पल्लत्तगस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । वेदणीय-णाम-गोदाणं उक्कस्स-अणुभागबंधो सुहुमखवगस्स चरमे उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । आउगस्स उक्कस्स-अणुभागबंधो अपमत्तसंजदस्स सागार-जागार-सुनोवजुत्तस्स तप्पाओगाट्ठिदिवंधस्स उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । णाणावरणीय-दंसणावर-णीय-पंचअंतराइयाणं जहणगो अणुभागबंधो सुहुमखवगस्स चरमे जहणअणुभागबंधे वट्ट-माणस्स । मोहणीयस्स जहणअणुभागबंधो अणियट्ठिखवगस्स सागार-जागारस्स जहण-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । वेदणीयणामाणं जहणगो अणुभागबंधो सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छा-दिट्ठिस्स वा परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहणगो य अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । आउगस्स जहणगो अणुभागबंधो जहणियं अपल्लत्ततिरियाउगं बंधमाणस्स असंखिल्ल वस्साउगवल्ल तिरियस्स मणुसस्स मिच्छादिट्ठिस्स परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहणगो अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । गोदस्स जहणगो अणुभागबंधो सत्तमाए पुढवीए णेरइयमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारस्स सव्वविसुद्धस्स सम्मत्ताभिमुहस्स चरमे जहणे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स ।

'वादालं पि पसत्था' साद-तिरिक्ख-मणुस-देवाउग-मणुस-देवगइ पंचिंदियजादि-पंचसरीर-समचउरससंठाण-तिणिण अंगोवग वल्लरिसभवइरणारायसंधण-पसत्थवण्णादि-चटुक्क-मणुस-देवगइपाओगाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-परधाद-उस्सास-आदाव - उल्लोव-पसत्थविहायगइ तस-वादर-पल्लत्त-पत्तेग सरीर-थिर सुभ-सुभग-सुस्सर-आदिल्ल-जसकित्ती-णिमिण-तित्थयर-उव्वगोद वादालीस-पयडीओ पसत्थाओ उक्कस्स विसोहिगुणजुत्तस्स तिव्वकसाय-अणुभागाओ हुंति ।

'वासीदिमप्पसत्था' पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-असादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-णिरयाउ-णिरयगइ-तिरिक्खगइ-पंचिंदियवल्ल चउजाइ-समचउरवल्ल पंचसंठाण-वल्ल-रिसभ वल्ल पंचसंधण-अपसत्थवण्णादिचटुक्क णिरयगइ-तिरिक्खगइपाओगाणु पुव्वी-उव्वधाद-अपसत्थविहायगइ - थावर सुहुम-अपल्लत्त - साहारण-अथिर-असुभ-दुमग-दुस्सर-अणादिल्ल-अजस-कित्ति णिच्चगोद-पंचअंतराइया वासीदिपगडीओ अपसत्थाओ उक्कस्ससंकिलेसजुत्तमिच्छादिट्ठिस्स ।

आदाउज्जोवाणं मणुव-तिरिक्खाउगं पसत्थाओ ।

मिच्छस्स होंति तिक्वा सम्मादिट्ठिस्स सेसाओ ॥१०२॥

आदाउज्जोव मणुव-तिरिक्खाउगं चत्तारि पगडीओ पसत्थपगडीण मज्जे मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्स-अणुभागाओ हुंति । सेसाओ अट्ठत्तीस पगडीओ सम्मादिट्ठिस्स उक्कस्स-अणुभागट्ठिदीओ हुंति ।

देवाउगमपमत्तो तिक्वं खवगा करिंति वत्तीसं ।

बंधंति तिरिय-मणुया इकारस मिच्छभावेण ॥१०३॥

देवाउगस्स उक्कसो अणुभागबंधो अपमत्तस्स सागार-जागार सुदोवजुत्तस तप्पाओग-विसुद्धस्स उक्कस्स अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । तिवखवगा सं [तिक्वं खवगा करिंति वत्तीसं] साद-जसकित्ति-उच्चगोदाणं उक्कस्सगो अणुभागबंधो सुहुम-संपराइयखवगस्स चरमे उक्कस्सअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । देवगइ-पंचिंदियजाइ-वेउव्वियाहार-तेज-कम्मइयसरीर - समचउरसरीरसंठाण - वेउव्वियाहारसरी-रंगोवंग-पसत्थवण्णादिचउक्क-देवगइपाओगाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-परघाद - उस्सासपसत्थविहाय-गइ-तस-वादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदिज्ज - णिमिण - तित्थयरानं उक्कस्सगो अणुभागबंधो अपुव्वकरणखवगस्स छ-सत्तमभागचरमे उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स सागार-जागारस्स सव्व-विसुद्धस्स बंधंति । णिरयाउग-वीइंदिय-तीइंदिय-चतुरिंदियजादि-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं उक्कस्सगो अणुभागबंधो असंखिज्जवस्साउग वज्ज सण्णि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुस-पत्तज्जमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारस्स तप्पाओगसंकिलिट्ठस्स उक्कस्सअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । तिरिक्ख-मणुसाउगाणं च सो चेव भंगो । णवरि तप्पाओगविसुद्धस्स । एवं णिरयगइपावुग्गाणु-पुव्वीणं । णवरि उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स ।

पंच सुर-णिरयसम्मो सुरमिच्छो तिण्णि जददि पगडीओ ।

उज्जोवं तमतमगा सुर-णेरइया भवे तिण्णि ॥१०४॥

‘पंच सुर णिरयसम्मो’ मणुसगइ-ओरालिय-सरीर-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्जरिसभ-मणुस-गइपाओगाणुपुव्वीण उक्कस्स-अणुभागबंधो देव-णेरइयअसंजदसम्मादिट्ठिस्स पज्जत्तस्स सागार-जागारस्स सव्वविसुद्धस्स उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । ‘सुरमिच्छो’ ति पयडीओ एइंदिय-आदाव-थावराणं उक्कस्सो अणुभागबंधो भवणादि-सोहम्मोसाणं देवपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उक्कस्सअस्स । एवं आदावस्स । णवरि तप्पाओगविसुद्धस्स । उज्जोवस्स उक्कस्सअणुभागबंधो सत्तमपुढवीणेरइयपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारस्स सव्व-विसुद्धस्स सम्मत्ताभिमुहस्स चरमे उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । ‘सुर-णेरइया भवे तिण्णि’ तिरिक्खगइ-असंपत्तसेवट्टसंघडण-तिरिक्खगइपाओगाणुपुव्वीणं उक्कस्सअणुभागबंधो आणदादि-देव वज्ज देव-णेरइयअपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स ।

सेसाणं चदुगदिया तिक्वणुभागं करिंति पयडीणं ।

मिच्छादिट्ठी णियमा तिक्वकसाउक्कडा जीवा ॥१०५॥

‘सेसाणं चदुगदिया’ सेसाणं पगडीण असंखेज्जवस्साउग वज्ज आणदादिदेव वज्ज चउगइ-सण्णि-पंचिंदियपज्जत्तमिच्छादिट्ठिणो उक्कस्स-अणुभागं करिति । सागार-जागारस्स उक्कस्ससंकिले-सेण । णवरि इत्थी-पुरिसवेय-हस्स-रइ-समचदुर-हुंडवज्ज चउसंठाण वज्जरिसभ-असंपत्तसेवट्ट वज्ज-चउसंघडणाण तप्पाओगसंकिलेसेण ।

चउदस सरागचरमे पण अणियट्ठी णियट्ठि एयारं ।

सोलस मंदणुभागं संजमगुणपत्थिदो जददि ॥१०६॥

‘चउदस सराग चरमे’ पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-पंचअंतराइयाणं जहण्णगो अणु-
भागवंधो सुहुमसंपराइयखवगस्स चरमे जहण्णे अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । ‘पच अणियट्ठी’ पुरिस-
वेद-जहण्णगो अणुभागवंधो अणियट्ठिखवगस्स पुरिसवेदोदयस्स चरमे जहण्णअणुभागवंधे
वट्टमाणस्स । एवं कोह-माण-माया-लोभ-संजलणाणं । णवरि अप्पण्णो चरमे जहण्णअणुभागवंधे
वट्टमाणस्स । कोहस्स कोहोदएण वा, माणस्स कोहोदएण वा माणोदएण वा, मायाए कोह-माण-
मायाणं अण्णदरोदएण । लोभस्स चउसंजलणाणं अण्णदरोदएण खवगसेठिं चडिदस्स होइ ।
‘णियट्ठि एयारं’ हस्स-रइ-भय दुगुंछाणं जहण्णगो अणुभागवंधो अपुव्वकरणखवगस्स चरमसमए
वट्टमाणस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे आस्स [अणुभागवंधे वट्टमाणस्स] पसत्थ-
वण्णादिचउक्क-उवघादाण जहण्णगो अणुभागवंधो अपुव्वकरणखवगस्स छ-सत्तभागचरमसमए
वट्टमाणस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णअणुभागवंधे वट्टमाणस्स । णिहा-पचलाणं जह-
ण्णगो अणुभागवंधो अपुव्वकरणपढमसत्तमचरमसमए वट्टमाणस्स सागार-जागरस्स सव्वविसु-
द्धस्स जहण्णगे अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । ‘सोलस मंदणुभाग’ स० ट्ठि [संजमगुणपत्थिदो जददि]
णिहा-णिहा-पचलापचला थीणगिट्ठी-मिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णगो अणुभागवंधो मणुसपज्जत्तस्स
संजमाभिमुहस्स मिच्छादिट्ठिस्स चरमसमए वट्टमाणस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे
अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । एवं अपञ्चक्खाणावरणचउक्कस्स । णवरि असंजदसम्मादिट्ठिस्स । एवं
पच्चक्खाणावरणचउक्काणं । णवरि संजदासंजदस्स ।

आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो दु अरदि-सोगाणं ।

सोलस य मणुय-तिरिया सुर-णेरइया तमतमगा तिण्णि ॥१०७॥

‘आहारमप्पमत्तो’ आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगाणं जहण्णगो अणुभागवंधो अप्पमत्तस्स
सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंक्किलिद्धस्स पमत्ताभिमुहस्स चरमसमए जहण्णगे अणुभागवंधे
वट्टमाणस्स । ‘पमत्तसुद्धो दु अरदिसोगाणं’ अरदि-सोगाणं जहण्णगो अणुभागवंधो पमत्तसंजदस्स
सागार-जागरस्स तप्पाओगाविसुद्धस्स । ‘सोलस य मणुय तिरिया सुर-णेरइया तमतमा तिण्णि’
णिरय-देवाडगाणं जहण्णगो अणुभागवंधो असंखिज्जवस्साडग वज्ज सण्णि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-
मणुसस्स मिच्छादिट्ठिस्स पज्जत्तस्स दसवाससहस्साडगट्ठिदिवंधमाणस्स मज्झिमपरिणामस्स
सागार-जागरस्स जहण्णगे अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । तिरिक्खमणुसाडगाणं जहण्णगो अणुभाग-
वंधो असंखिज्जवस्साडग वज्ज मणुस-तिरिक्खमिच्छादिट्ठिस्स जहण्णं अप्पज्जत्ताडगं अंतोमुहुत्तं
बंधमाणस्स सागार-जागरस्स मज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । णिरयगइ-
णिरयगइपाओगाणुपुव्वीणं जहण्णगो अणुभागवंधो असंखिज्जवस्साडग वज्ज पंचिंदियतिरिक्ख-
मणुसपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स मज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे अणुभागवंधे वट्ट-
माणस्स । देवगइ-देवगइपाओगाणुपुव्वीणं जहण्णगो अणुभागवंधो पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसपज्जत्त
मिच्छादिट्ठिस्स परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णअणुभागवंधे वट्टमाणस्स । वेउव्वियसरीर-
वेउव्वियसरीरंगोवंगाणं जहण्णगो अणुभागवंधो असंखिज्जवस्साडग वज्ज सण्णि-पंचिंदियतिरिक्ख
मणुसपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरसुदोवजुत्तस्स उक्कस्ससंक्किलिद्धस्स जहण्ण-अणुभागवंधे
वट्टमाणस्स । वीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिदियजादि सुहुम-अपज्जत्त साहारणाण जहण्णगो अणुभागवंधो
असंखिज्जवस्साडगवज्ज तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स परियत्तमाणमज्झिम-
परिणामस्स जहण्णअणुभागवंधे वट्टमाणस्स । ओरालियसरीर-ओरालियसरीरंगोवंग-उज्जोवाणं

जहण्णगो अणुभागवंधो आणदादिदेव वज्ज देव-णेरइय-पज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्णअणुभागवंधे वट्टमाणस्स । तिरिक्खगइ-तिरिक्खगइपाओ-ग्गाणुपुव्वी-णीचगोदाणं जहण्णगो अणुभागवंधो सत्तमपुढवीए णेरइय पज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सम्मत्ताभिमुहस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स चरमसमए जहण्णगो अणुभागवंधे वट्टमाणस्स ।

एइंदिय थावरयं मंदणुभागं करिंति तेगदिया ।

परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा णारगं वज्ज ॥१०८॥

एइंदिय-थावराणं जहण्णअणुभागवंधो णेरइय-[अ-]संखेज्जवस्साउग-सणक्कुमारादि देव वज्ज सेसमिच्छादिट्ठिस्स परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णगो अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । मज्झिमपरिणामेति सुभासुभपगडीणं साधारणभूदा मज्झिमपरिणामा त्ति बुच्चंति ।

आदावं सोधम्मो तित्थयरं अविरद-मणुस्सेसु ।

चउगदि-उक्कडमिच्छो पण्णरस दुवे विसोधीए ॥१०९॥

‘आदावं सोधम्मो’ आदावस्स जहण्णगो अणुभागवंधो भवणादि-सोहम्मोसाणंतदेवपज्जत्त-मिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरसुदोवजुत्तस्स उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्णगो अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । तित्थयरस्स जहण्णगो अणुभागवंधो मणुसपज्जत्त-असंजदसम्मादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स मिच्छत्ताभिमुहस्स विदिय तदियपुढवी-उप्पज्जमाणस्स चरमे जहण्णगो अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । ‘चदुगदिमुक्कडमिच्छो’ पंचिंदियजाइ-तेजस-कम्मइयसरीर-पसत्थवण्णादिचदुक्क-अगुरुगलहुग-परघाद-उत्सास-तस - बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर - णिमिण-णामाणं जहण्णगो अणुभागवंधो असंखेज्जवस्साउग वज्ज-आणदादिदेव वज्ज चदुगदि-सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्णगो अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । ‘दुवे विसोधीए’ इत्थीवेदस्स जहण्णगो अणुभागवंधो चउगइ-सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्तमिच्छा-दिट्ठिस्स सागार-जागरस्स तपपाओगविसुद्धस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्णगो अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । एवं णवुंसकवेदस्स । णवरि असंखेज्जवस्साउग वज्ज ।

सम्मादिट्ठी मिच्छो वादं [व अट्ठ] परियत्तमज्झिमो जददि ।

परियत्तमाणमज्झिममिच्छादिट्ठी दु तेवीसं ॥११०॥

‘सम्मादिट्ठी मिच्छो वा अट्ठ’ सादासाद-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अजसकित्तीणं जहण्णगो अणुभागवंधो चउगदि-मिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णगो अणुभागवंधे वट्टमाणस्स । ‘मिच्छादिट्ठी दु तेवीसं’ छसंठाण-छसंघडण-मणुसगइ-मणुस-गइपाओग्गाणुपुव्वी - दोविहायगइ-सुभग - दुभग-सुस्सर-दुस्सर - आदिज्ज - अणादिज्ज-उच्चगोदाणं जहण्णगो अणुभागवंधो चउगइमिच्छादिट्ठिस्स परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णगो अणु-भागवंधे वट्टमाणस्स ।

केवलणाणावरणं दंसणछकं च मोहवारसयं ।

ता सव्वघादिसण्णा हवदि य मिच्छत्तवीसदिमं ॥१११॥

‘ता’ सदेण मूलपयडीणं घादि-अघादित्तं परूविज्जइ । णाणावरण-दंसणावरण-[णाण] उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्ण-अणुभागवंधो सव्वघादी । वेदणीय-आउग णामा-गोदाण उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्ण अणुभागवंधो अघादी घादियाणं पडिभागो । मोहंतराइयाणं उक्कस्स-अणुभागवंधो सव्वघादी । अणुक्कस्स-अणुभागवंधो सव्वघादी वा देसघादी वा । जहण्ण-

अणुभागवंधो देसघादी । अजहण-अणुभागवंधो देसघादी वा सव्वघादी वा । केवलणाणावरणं णिहाणिह । पचलापचला थीणगिद्धी णिहा पचला केवलदंसणावरण चउसंजलण वल्ल वारस कसाय मिच्छत्तं एदासिं वीसण्हं पगडीण उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण-अजहण-अणुभागवंधो सव्वघादी णाणादिगुणाणं सव्वं घादंतीति सव्वघादी, महावणदाहं व ।

णाणावरणचउक्कं दंसणतिग अंतराहमे पंच ।

ते [ता] होंति देसघादी संजलणं णोकसाया य ॥११२॥

केवलणाणावरण वल्ल आभिणिबोहिग-सुद-अवधि-मणपल्लवचउक्क-चक्खु-अचक्खु-ओहि-दंसणावरण-पंचअतराइय-चउसंजलण-णवणोकसायाणं उक्कस्स-अणुभागवंधो सव्वघादी अणु-क्कस्स-अणुभागवंधो सव्वघादी वा देसघादी वा । जहणगो अणुभागवंधो देसघादी । अजहण-मणुभागवंधो देसघादी वा सव्वघादी वा । णाणादिगुणाणं इक्कदेसं घादयंति त्ति देसघादी, एकदेसवणदाहं व ।

अवसेसा पगडीओ अघादि घादीण होइ पडिभागो ।

ता एव पुण्ण-पावा सेसा पावा मुणेदव्वा ॥११३॥

‘अवसेसा पगडीओ’ सादासाद-चउआउग-सव्वणामपयडी-उच्च णीचगोदाणं उक्कस्स अणु-क्कस्स-जहण-अजहण अणुभागवंधो ‘अघादि घादियाण पडिभागो’ घादि-कम्मसंजुत्ताणं अघादीणं सकल्लकरणसमाणिदो घादीणं पडिभाग त्ति बुद्धे । अघादिविसेसो । सकल्लकरणसामत्थ णत्थि, चोरसहिय-अचोरुव्व । ‘ता एव पुण्ण-पावा’ अघादिपयडीओ पुण्ण-पावपगडीओ हुति । घादि-कम्मपगडीओ सव्वाओ पावाओ हुति ।

आवरण देसघादंतराय संजलण पुरिस सत्तरसं ।

चउविहभावपरिणदा तिविहा भावा भवे सेसा ॥११४॥

मोहणीय-अंतराइयवज्जाणं छण्हं कम्माणं उक्कस्स-अणुभागवंधो चउट्टाणी । अणुक्कस्स-अणु-भागवंधो चउट्टाणिओ त्ति वा तिट्ठाणिगो त्ति वा विट्ठाणिगो त्ति वा । जहणअणुभागवंधो विट्ठाणिओ । अजहणं अणुभागवंधो विट्ठाणिगो त्ति वा तिट्ठाणिगो त्ति वा चउट्टाणिगो त्ति वा । मोहतराइयाणं उक्कस्स-अणुभागवंधो चउट्टाणिओ । अणुक्कस्स अणुभागवंधो चउट्टाणिओ वा, तिट्ठा-णिओ वा, विट्ठाणिओ वा, एगट्ठाणिओ वा । जहण-अणुभागवंधो एगट्ठाणिगो । अजहण अणु-भागवंधो एगट्ठाणिओ वा, विट्ठाणिओ वा, तिट्ठाणिओ वा, चउट्टाणिओ वा । आवरण देससेस-चउणाणावरण-तिण्हदंसणावरण-चउसजलण पुरिसवेद पंचअतराइय-सत्तरसपयडीणं उक्कस्स-अणु-भागवंधो चउट्टाणिओ । अणुक्कस्स-अणुभागवंधो चउट्टाणिओ वा तिट्ठाणिओ वा विट्ठाणिओ वा एक्कट्ठाणिओ वा । जहण अणुभागवंधो इक्कट्ठाणिओ वा । अजहण-अणुभागवंधो एक्कट्ठाणिओ वा, विट्ठाणिओ वा, तिट्ठाणिओ वा चउट्टाणिओ वा केवलणाणावरण-छदंसणावरण सादासाद-मिच्छत्त-वारस-कसाय-अट्ठणोकसाय-चउआउ सव्वणामपयडी-उच्च-णिच्च-गोदाणं उक्कस्स-अणुभाग-वंधो चउट्टाणिओ । अणुक्कस्स अणुभागवंधो चउट्टाणिओ, वा तिट्ठाणिओ वा विट्ठाणिओ वा । जहण-अणु भागवंधो विट्ठाणिओ । अजहण-अणुभागवंधो तिट्ठाणिओ वा, तिट्ठाणिओ वा, चउट्टा-णिओ वा । असुभपगडीण णिवं व एगट्ठाणं, कंजीरकं व विट्ठाणं विस व तिट्ठाणं कालकूड व चउट्टाणं । सुभ पगडीण गुड व एगट्ठाण, खड व विट्ठाण, सक्कर व तिट्ठाणं, अमीव चउट्टाणं । सव्वघादीणं एगट्ठाणं णत्थि । अट्ठणोकसाय केवलं एगट्ठाणं णत्थि, विट्ठणेण मिस्स होदूण एगट्ठाणं हुति ।

सादं चदुपच्चइगं मिच्छो सोलस दुपच्च पणत्तिस्सं ।

सेसा तिपच्चया खलु तित्थयराहार-वज्जाओ ॥११५॥

‘सादं चदुपच्चइदं’ सादस्स मिच्छत्त-असंजम-कसाय-जोग-चदुण्हं पच्चयाणं पत्तेयं पत्तेयं पाधण्णेण बंधो होइ । पगडिबंध-सामित्ते मिच्छादिट्ठिस्स वुत्ताणं सोलसण्हं पगडीणं मिच्छत्त-पच्चय-पाधण्णेण बंधो होइ । तम्हि चेव सासणंत-पणुवीसं असंजदंत-दस-पणतीसपगडीणं मिच्छत्त असंजम दुण्हं पच्चयाणं पत्तेगपाधण्णेण बंधो होइ । सेसाणं तित्थयराहार-दुगे वज्जाणं मिच्छत्त-असंजम-कसाय तिण्हं पच्चयाणं पत्तेय-पाधण्णेण बंधो हवदि । तित्थयरस्स सम्मत्त-पाधण्णेण, आहार-दुगस्स पमादरहिद-संजमपाधण्णेण ।

पंच य छ त्तिय छप्पंच दुण्णि पंच य हवंति अट्ठेव ।

सरिरादिय-फासंता पगडीओ हुंति आणुपुव्वी[ए] ॥११६॥

[अगुरुयलहुगुवघाया परघाया आदावुज्जोय णिमिण णामं च ।

पत्तेय-थिर-सुहेदरणामाणि य पुग्गलविवागा ॥११७॥]

आऊणि भवविवागी खेत्तविवागी य होइ अणुपुव्वी ।

अवसेसा पगडीओ जीवविवागी मुणेयव्वा ॥११८॥

‘पंच य छ’ पंचसरीर छ संठाण तिण्णि अंगोवंग छ संघडण पंच वण्ण दोगंध पंचरस अट्ठफास अगुरुगलहुग उवघाद परघाद आदाव उज्जोव णिमिण पत्तेग साहारण थिर अथिर सुभ असुभ एदाओ पगडीओ पुग्गलविवागा पुग्गलपरिणामकारणादो पुग्गलविवागा त्ति वुच्चंति । ‘आऊणि भवविवागी’ चत्तारि आउगाणि भवविवागा हवंति, भव-धारण-णिमित्तादो । चत्तारि आणुपुव्वीओ खेत्तविवागा हुंति, विग्गहं काऊण गच्छमाणस्स खेत्तफलदाणादो । अवसेसा पगडीओ जीवविवागा हुंति, जीवपरिणामणिमित्तादो ।

एवं अणुभागबंधो समत्तो ।

एयक्खेत्तवगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोगं ।

बंधइ जहुत्तहेद्दू सादिमह अणादियं चावि ॥११९॥

‘एयक्खेत्तवगाढं जीवस्स अप्पण्णो सव्वपदेसट्ठिदखेत्तपदेसे तत्तियमेत्तेण ठिदपुग्गलदव्वं कम्मजोगं बंधदि, जहुत्तकारणसहिदो जीवो ‘सादिअ’ कम्मसरूवेण गहिय-मुक्कपुग्गलदव्वं सादिअं । पुव्वकम्मसरूवेण गहिय-पुग्गलदव्वं अणादियं ।

पंचरस-पंचवण्णेहिं परिणदो दोगंध-चदुहिं फासेहिं ।

दवियमणंतपदेसं जीवेहि अणंतगुणहीणं ॥१२०॥

‘पंच रस’ तित्त कडुय-कसाय अंविळ-महुर[रसेहिं]संजुत्तं, किण्ह-णील-रुहिर-हालिह-सुक्किल-वण्णेहिं सहिदं, सुरभि-दुरभि गंध-सीदुण्ह-णिद्ध-लुक्खेहिं परिणदमणंतपदेसं सव्वजीवेहिं अणंत-गुणहीणं अवभवसिद्धेहिं अणंतगुण सिद्धाणमणंतभागं कम्मबंधजोगापुग्गलदव्वं होइ ।

आउगभागो थोवो णामा-गोदे समो तदो अधिगो ।

आवरणमंतराए सरिसो अहिओ दु मोहे वि ॥१२१॥

‘आउगभागो थोवो’ अट्ठविधकम्मार्ण बंधमाणस्स एगेगसमए गहणमागयाणं कम्मपदेसाणं मज्जे आउगभागो थोवो । णामा-गोदाणं अण्णुण्णं भागो समो, आउगभागादो इक्कदरेण अधिओ ।

णाणावरण दंसणावरण-अंतराइयाणं भागो अणुणुणसरिसो, णामा-भोद-एकदरभागादो एदेसिं इकदरभागो अधिओ । 'अधिओ दु' मोहस्स भागो आवरणमंतराइय-एकदरभागादो अधिओ ।

सव्वुवरि वेदणीए भागो अधिओ दु कारणं किंतु ।

सुह-दुक्खकारणत्ता ठिदिन्विसेसेण सवाणं [सेसाणं] ॥१२२॥

'सव्वुवरि वेदणीए' मोहभागादो वेदणीयभागो अधिगो, सव्वकम्मपदेसाणं उवरि वेदणीय-पदेसं अधियं । तस्स कारणं सुह दुक्खकारणत्तादो । आउहीणं सेसाणं कम्म-पदेसाणं ठिदि-अधि-यत्तादो भागो अधिगो, सव्वत्थ आवल्लियाए असखेज्जदिभागेण एगखंडमेत्तेण अधिओ । एवं सत्तविहवंधयाणं आउगवज्ज णामादीणं भाणियव्वं । एवं छन्विहवंधयाणं आउग-मोहवज्ज णामा-दीणं भाणियव्व । णाणावरणादीणं अप्पणो पदेसभागो अप्पणो उत्तरपयडीओ जत्तियाओ वंधमागच्छंति, तत्तियाणु जहाजोगं विभंजिऊण गच्छइ ।

छण्हं पि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चउन्विहो होइ ।

सेसतिए दुवियप्पो मोहाऊणं च सव्वत्थ ॥१२३॥

'छण्हं पि अणुक्कस्सो' मोहाउग-वेदणीय-वज्ज पंच कम्माणि अणुक्कस्सपदेसबंधस्स उवसंतस्स देवभावेण वा सुहुमभावेण वा अणुक्कस्सपदेसबंधस्स सादिं सुहुमसंपराइय-अप्पणो काले उक्कस्स-बंधमाणो अणुक्कस्स बंधइ त्ति वा । सादवेदणीयस्स अणुक्कस्सपदेसबंधस्स सुहुमसंपराइगो अप्पणो काले उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स अणुक्कस्स बंधइ त्ति सादिवंधो । सेढिमणारूढं पडुच्च अणादि अवभवसिद्धिं पडुच्च धुवं उक्कस्सं वा अवंधं वा बंधवुच्छेदं वा गंतूण अद्धुवो । वेदणीयस्स उक्कस्सबंधवुच्छेदं वा गंतूण अद्धुवो । 'सेसतिए दुवियप्पो' दुक्खस्स जहण्ण-अजहण्णाणं सादि अद्धुवबंधो । मोहमाउगाणं उक्कस्स अणुक्कस्स-जहण्ण अजहण्णाणं सादि-अद्धुवबंधो ।

तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपगडीसु चउन्विहो बंधो ।

सेसतिए दुवियप्पो सेसचउके वि दुवियप्पो ॥१२४॥

'तीसण्हं अणुक्कस्सो' पंचणाणावरणोय थीणगिद्धितिग वज्ज छ दंसणावरण-अणंताणुबंधि वज्ज वारसकसाय-भय-दुगुंछ-पंचअंतराइयाणं तीसण्हं पगडीणं अणुक्कस्स पदेसबंधस्स, उक्कस्सादो अणुक्कस्सबंधमाणस्स वा सादि, अप्पणो य बंधगुणट्ठाणं उक्कस्सं वा अप्पडिवण्णाण अणादि, अवभवसिद्धिं पडुच्च धुवं, उक्कस्स वा अवंधं वा गंतूण अद्धुवं, उक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णाणं सादि-अद्धुवबंधो । सेसाणं णउदिपयडीणं उक्कस्स अणुक्कस्स-जहण्णाणं सादि अद्धुवं ।

आउगस्स पदेसस्स छ सत्त मोहस्स णव दु ठाणाणि ।

सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कस्सजोएण ॥१२५॥

आउगस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइ सण्णिपज्जत्त-मिच्छादिट्ठि-सासण-असजद-तिरिक्ख-मणुस-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदाणं अट्टविहवंधयाणं उक्कस्स-जोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्ट-माणस्स । मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइसण्णिपंचिदिय-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठि-सासण-सम्मा-दिट्ठि-सम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-तिरिक्ख-मणुस-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-अपुव्वकरण-अणियट्ठीण उक्कस्सजोगीण आउगवज्ज सत्तकम्माण बंधमाणानं उक्कस्स-पदेसबंधे वट्ट-माणानं होइ । 'सेसाणि तणुकसाओ' आउग-मोहवज्जाणं छण्हं कम्माणं उक्कस्सपदेसबंधो सुहुम-संपराइयस्स मोहाउगवज्ज छकम्माणि बंधमाणस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसस्स ।

सुहुमणिगोद-अपज्जत्तगस्स पढमे जहण्णगे जोगे ।

सत्तण्हं पि जहण्हं आउगबंधो वि आउस्स ॥१२६॥

‘सुहुमणिगोद-अपज्जत्तगस्स’ आउगस्स वज्जाणं सत्तण्णं कम्माणं जहण्णपदेसबंधो सुहुम-
णिगोद-अपज्जत्ततवभव-पढमसमए[य]त्थ जहण्णजोगिस्स आउगवज्जसत्तकम्माणि बंधमाणस्स
जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणस्स । आउगस्स जहण्ण-पदेसबंधे सुहुमणिगोद जीव-अपज्जत्तगस्स खुद्दा-
भवग्गहण-तदिय-तिभागपढमसमए आउगं बंधमाणस्स अट्टविहबंधगस्स जहण्णपदेसबंधे
वट्टमाणस्स ।

सत्तरस सुहुमसरागे पण अणियट्ठी य सम्मओ णवयं ।

अअदी विदियकसाए देसयदी तदियगे जददि ॥१२७॥

‘सत्तरस सुहुमसरागे’ पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-साद-जसकित्ति-उच्चगोद-अंतराइयाणं
सत्तरसण्हं पगडीणं सुहुमसंपराइय आ[रुहमाणस्स]उवसामगस्स वा खवगस्स वा मोहाउगवज्ज
उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्स-पदेसबंधे वट्टमाणस्स । कोहसंजलणस्स उक्कस्स-
पदेसबंधो अणियट्ठिवादर-संपराइय-उवसामगस्स खवगस्स वा मोहणीय-चउविहबंधमाणस्स
उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स । एवं माणसंजलणस्स । णवरि मोहतिविहबंधगस्स ।
एवं मायासंजलणस्स वि । णवरि मोहदुविहबंधगस्स । एवं लोभसंजलणस्स वि । णवरि मोह-
एगविहबंधगस्स । पुरिसवेदस्स उक्कस्सपदेसबंधो अणियट्ठिवादरसंपराइय-उवसामगस्स वा
खवगस्स वा उक्कस्सजोगिस्स मोहपंचविह-बंधगस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स । ‘सम्मओ
णवयं’ णिद्दा-पचलाणं उक्कस्सपदेसबंधो चउगइपज्जत्त-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजद सम्मादिट्ठि-
तिरिक्ख-मणुस-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-अपुव्वकरणसत्तमभाग-पढमभागगयाणं उक्कस्सजोगीणं
आउगवज्ज सत्तकम्माणि बंधमाणानां उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणानां । एवं हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं ।
णवरि अपुव्वकरणचरमसमओ त्ति भाणियव्वं । एवमरदि-सोगाणं । णवरि पमत्तसंजदो त्ति
भाणियव्वं । तित्थयरस्स उक्कस्स-पदेसबंधो मणुसपज्जत्त-असंजदसम्मामिच्छादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-
अपमत्तसंजद-अपुव्वकरण-सत्तमभागगयाणं एगूणतीस-णामाए सह आउगवज्ज सत्तकम्माणि बंध-
माणानां उक्कस्सजोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणानां होइ । ‘अयदी विदियकसाए’ अपच्च-
क्खाणावरणचउक्कस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइपज्जत्त-असंजद-सम्मामिच्छादिट्ठिस्स सत्तविह-
बंधगस्स उक्कस्स जोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स । एवं पच्चक्खाणावरणचउक्कस्स ।
णवरि तिरिक्ख-मणुससंजदासजदस्स ।

तेरस बहुप्पदेसो सम्मो मिच्छो य कुणदि पगडीओ ।

आहारमप्पमत्तो सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ॥१२८॥

‘तेरस बहुप्पदेसो’ देवगइ-वेउव्वियसरीर-समचउरससरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियसरीर-अंगो-
वंग-देवगइपाओगणुपुव्वी-पसत्थविहायगइ-सुभग-सुस्सर-आदिज्जाणं उक्कस्स-पदेसबंधो तिरिय-
मणुस-सण्णिपंचिदियपज्जत्तमिच्छादिट्ठिप्पहुइ जाव अपुव्वकरणसत्तमभागगयाणं णववीसणामाए
सह सत्तविहबंधयाणं उक्कस्सजोगीण उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स [-णाणं] । मणुसाउगस्स
पदेसबंधो सत्तमपुढवी-असंखेल्लवस्साउग वज्ज चउगइ-सण्णि-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठि [स्स] देव-
णेरइय-पज्जत्त-असंजदसम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा अट्टविहबंधस्स वा उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे
वट्टमाणस्स । देवाउगस्स उक्कस्सपदेसबंधो तिरिक्ख-मणुस-सण्णि-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठि-सासण-
सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मामिच्छादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदानां अट्टविहबंधयाणं उक्कस्स-
जोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणानां । असादवेदणीयस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइ-सण्णि-पज्जत्त-

मिच्छादिद्विप्लुदि जाव पमत्तसंजदाणं सत्तविहवंधयाणं उक्कस्सजोगीणं उक्कस्सपदेसवंधे वट्ट-
माणानं । वज्जरिसभस्स उक्कस्सपदेसवंधो चउगइ-सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्त-मिच्छादिद्वि-सासण-
सम्मादिद्वि-[द्वीणं] देव-णेरइय-सम्मामिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीणं एगूणतीसणामाए सह
सत्तविहवंधयाणं उक्कस्स-जोगीणं उक्कस्सपदेसवंधे वट्टमाणानं । आहारसरीर-तदंगोवंगानं
उक्कस्सपदेसवंधो अप्पमत्तसंजद-अपुव्वकरण-अ-सत्तमभागगयाणं तीसणामाए सह सत्तविह-
वंधयाणं उक्कस्सजोगीणं उक्कस्सपदेसवंधे वट्टमाणानं । 'सेसपदेसुक्कडो मिच्छो' णिहाणिहा-
पचलापचला-थीणगिद्धिमिच्छत्त-अणंताणुवंधिचउक्क-इत्थी-णउंसगवेद-णीचगोदाणं उक्कस्सपदेस-
वंधो चउगइसण्णिपंचिंदियपज्जत्तमिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्वीणं सत्तविहवंधयाणं उक्कस्स-
पदेसवंधे वट्टमाणानं । णवरि मिच्छत्त-णुंसयवेदाणं सासणसम्मादिद्वी सामी ण होइ । णुंसग-
वेद-णिच्चागोदाणं असंखिज्जवस्साउगो सामी ण होइ । णिरयाउगस्स उक्कस्सपदेसवंधो असंखिज्ज-
वस्साउग वज्ज सण्णि-पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसपज्जत्तमिच्छादिद्विस्स अट्टविहवंधगस्स उक्कस्स-
जोगिस्स उक्कस्सपदेसवंधे वट्टमाणस्स । तिरियाउगस्स पदेसवंधो असंखिज्जवस्साउग-आण-
दादिदेववज्ज चउगइ-सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्त-मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्वीणं अट्टविहवंधयाणं
उक्कस्सजोगीणं उक्कस्सपदेसवंधे वट्टमाणानं । णवरि सत्तमपुढवीसासणो तिरिक्खाउगस्स
सामी ण होइ । णिरयगइ-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी-अप्पसत्थविहायगइ-दुस्सराण उक्कस्सपदेस-
वंधो असंखिज्जवस्साउग-पज्जत्त-सण्णि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुस-पज्जत्त-मिच्छादिद्विस्स अट्टवीस-
णामाए सह सत्तविहवंधगस्स उक्कस्स-पदेसवंधे वट्टमाणस्स । तिरिक्खगइ एइंदियजाइ-ओरालिय-
तेज-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-वण्णादिचउक्क-तिरिक्खाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-उवघाद-थावर-वादर-
सुहुम-अपज्जत्त-पत्तेग - साधारणसरीर - अथिर-असुभ-दुभग-अणादिज्ज-अजसकित्ती-णिमिणणामाणं
उक्कस्सपदेसवंधो असंखिज्जवस्साउग वज्ज सण्णि पंचिंदिय-तिरिक्ख मणुसपज्जत्त-मिच्छादिद्विस्स
तेवोसणामाए सह सत्तविहवंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसवंधे वट्टमाणस्स । मणुस-
गइ-वेइंदियादिचउजाइ-[ओरालियसरीर-] ओरालियसरीरंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसरीर सघडण-
मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी तसणामाण उक्कस्सपदेसवंधो असंखिज्जवस्साउगवज्ज सण्णिपंचिंदिय-
तिरिक्ख-मणुसपज्जत्तमिच्छादिद्विस्स पणुवीसणामाए सह सत्तविह-वंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स
उक्कस्सपदेसवंधे वट्टमाणस्स । समचउर-हुंडवज्ज चउसंठाण-वज्जरिसभ-असंपत्तवज्ज चउसंध-
डणाणं उक्कस्सपदेसवंधो असंखेज्जवस्साउग वज्ज चउगइ सण्णि पंचिंदियपज्जत्तमिच्छादिद्विस्स
वा सासणसम्मादिद्विस्स वा एगूणतीसणामाए सह सत्तविहवंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्स-
पदेसवंधे वट्टमाणस्स । परघाद-उत्सास-पज्जत्त-थिर-सुभ-णामाणं उक्कस्सपदेसवंधो णेरइय-
असंखिज्जवस्साउग-सणक्कुमारादि देव वज्ज तिरिक्खगइ-सण्णि पज्जत्त मिच्छादिद्विस्स पणवीस-
णामाए सह सत्तविह वंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसवंधे वट्टमाणस्स । एवं आदाव-
उल्लोवाणं । णवरि छव्वीसणामाए सह सत्तविहवंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसवंधे
वट्टमाणस्स ।

उक्कस्सजोगी सण्णी पज्जत्तो पगडिबंधमप्पदरो ।

कुणइ पदेसुक्कस्सं जहण्णगे जाण विवरीदं ॥१२९॥

उक्कस्सजोगी सण्णी पंचिंदियपज्जत्तो अहि पज्जत्तीहि [पज्जत्तयदो] थोवा पगडी बंध-
माणो उक्कस्सपदेसबंधं कुणइ । जहण्णपदेसबंधं जहण्णजोगी कुणइ । केसिंचि कम्माणं सुहुम-
एइंदिय-अपज्जत्तो, केसिंचि कम्माणं असण्णि-पंचिंदिय-अपज्जत्तो, केसिंचि कम्माणं असजदसम्मा-
दिद्वि-अपज्जत्तो, केसिंचि कम्माणं अप्पमत्तसंजदो बहुयाओ पगडीओ बंधमाणो ।

घोलणजोगिमसणी वंधइ चदु दोणिण अप्पमत्तो य ।

पंचासंजदसम्मो भवादिसुहुमो भवे सेसा ॥१३०॥

णिरयाउग देवाउग णिरयदुगं चेव जाण चत्तारि ।

आहारदुगं-दुगं [चेव य] देवचउक्कं तु तित्थयरं ॥१३१॥

‘घोलणजोगिमसणी’ उक्कत्सपरिणामजोगादो हीयमाणरूवमागतूण सव्वजहणपरिणाम-जोगो घोलमाणो जोगो त्ति वुच्चइ । णिरय-देवाउगाणं जहणपदेसवंधो असणि-पंचिदिय-पज्जत्त-जहणपरिणामजोगस्स अट्ठविहवंधगस्स जहणपदेसवंधे वट्ठमाणस्स । एवं णिरयगइ-णिरयगइपाओगाणुपुव्वीणं । णवरि अट्ठवीसणामाए सह अट्ठविहवंधगस्स । ‘दुणिण अप्पमत्तो दु’ आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगाणं जहणपदेसवंधो अप्पमत्त-अपुव्वकरण-छ-सत्तमभागगयाणं एकत्तीसणामाए सह अट्ठविहवंधगाणं जहणपरिणामजोगाणं जहणपदेसवंधे वट्ठमाणानं । ‘पंचासंजदसम्मो’ देवगइ-वेउव्वियसरीर - वेउव्वियसरीरंगोवंग - देवगइपाओगाणुपुव्वीणामाणं जहणपदेसवंधो असंखेज्जवस्साउग वल्ल मणुस-असंजदसम्मादिट्ठि-पढमसमए आहारक-पढमसमए तत्त्वभवत्थस्स एगूणतीसणामाए सह सत्तविहवंधगस्स जहणउववाद्-जोगिस्स जहणपदेसवंधे वट्ठमाणस्स । तित्थयरस्स जहणपदेसवंधो सोधम्मादिदेव-पढम-पुढवीणेरइयअसंजदसम्मादिट्ठि-पढमसमए आहारकपढमसमए तत्त्वभवत्थस्स तीसणामाए सह सत्तविहवंधगस्स जहणउववाद्जोगिस्स जहणपदेसवंधे वट्ठमाणस्स । ‘भवादि सुहुमो भवे सेसा’ सेसाणं पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-सादासाद् - मिच्छत्त-सोलसकसाय - णवणोकसाय-णिच्चुच्चगोद-पंचंतराइयाणं जहणपदेसवंधो सुहुमणिगोदपज्जत्तगस्स पढमसमए आहारक-पढमसमए तत्त्वभवत्थस्स सत्तविहवंधगस्स जहणउववाद्जोगिस्स जहणपदेसवंधे वट्ठमाणस्स । तिरिक्ख-मणुसाउगाणं जहणपदेसवंधो सुहुमणिगोदजीव-अपज्जत्तगस्स खुदाभवग्गहणनदिय-तिभाग-पढमसमए आहारं वंधमाणस्स जहणपरिणामजोगिस्स जहणपदेसवंधे वट्ठ-माणस्स । तिरिक्खगइ-वीइंदियादि-चदुजाइ-ओरालिय - तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण - ओरालिय-सरीर-[ओरालियसरीर-] अंगोवंग - छसंघडण - वण्णादिचदुक्क - तिरिक्खगइपाओगाणुपुव्वी-अगुरुगलहुगादिचउक्क-उव्वजोव-दोविहायगइ-तस-धादर - पज्जत्त-पत्तेगसरीर-थिगादि छ जुगल-णिमिणणामाणं जहणपदेसवंधो सुहुमणिगोद-अपज्जत्तगस्स पढमसमए अणाहारकपढमसमए तत्त्व-वत्थस्स तीसणामाए सह सत्तविहवंधगस्स जहणउववाद्जोगिस्स जहणपदेसवंधे वट्ठमाणस्स । एवं मणुसगइ-मणुसगइपाओगाणुपुव्वीणं । णवरि एगूणतीसणामाए सत्तविहवंधगस्स । एवं एइंदिय-आदाव-थावरणामाणं । णवरि छव्वीसणामाए सह सत्तविहवंधगस्स । एवं सुहुम-अपज्जत्त-साहारणणामाणं । णवरि पणुवीसाए सह सत्तविहवंधगस्स ।

जोगा पयडि-पदेसा ठिदि-अणुभागं कसायदो कुणइ ।

काल-भव-खेत्तपेती [पेही] उदओ सविवाग अविवागो ॥१३२॥

जोगादो पयडिवंधं पदेसवंधं च कुणइ । कसायदो ठिदिवंधं अणुभागवंधं च कुणइ । सीदादिकाल-णिरयादिभव-रट्ठणपमादिखेत्त-वत्थादिदव्व्वाणं इट्ठाणिट्ठाणं पेक्खिदूण कम्मोदओ उदीरणोदओ चेव होदि ।

सेट्ठि-असंखेज्जदिमे जोगट्ठाणाणि हंति सच्चाणि ।

तेसिमसंखिज्जगुणो पगडीणं संगहो सव्वो ॥१३३॥

तासिमसंखेजगुणा ठिदीविसेसा हवंति पगडीणं ।

ठिदिवंध-अञ्कवज्ज [स्स] द्वाणा [अ] संखिजगुणाणि एत्तो दु ॥१३४॥

तेण असंखेजगुणा अणुभागा हुंति बंधठाणाणि ।

एत्तो अणंतगुणिया कम्मपदेसा मुण्येय्वा ॥१३५॥

अविभागपलिदच्छेदो [दा] अणंतगुणिदा हवंति इत्तो दु ।

सुदपवरदिट्ठिवादे विसिद्धमदओ परिकथंति ॥१३६॥

सेटिमसंखेज्जदिजोणीसु सुहुमणिगोदजीव-अपज्जत्तगस्स जहण्ण-उववाद्दजोगट्ठाणप्पहुदि जाव सण्णि-पंचिदिय पज्जत्त उक्कस्सपरिणामजोगट्ठाणो त्ति पक्खेवुत्तरकमेण जोगट्ठाणाणि जगसेढीए असंखेज्जभागमेत्ताणि भवंति । पक्खेवपमाण जहण्णजोगट्ठाणस्स सेढीए असंखेज्जदि-भागमेतखंडगदस्स एगखंडं होदि । तेसिं जोगट्ठाणाणं णाणावरणादि-सव्वाओ पयडीओ असंखेज्ज-गुणाओ । तासिं पयडीणं सव्वपयडिद्विदिवधवियप्पा असंखिज्जसागरोवमगुणा । तेसिं ठिदिवंध-वियप्पाण ठिदिवंधञ्कवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जलोगगुणाणि हुति । 'तेण असंखेज्जगुणा तेसिं वा, तेसिं ठिदिवंधञ्कवसाणट्ठाणाण अणुभागवंधट्ठाणाणि असंखिज्जलोगगुणाणि हुंति । तेसिं अणुभागवंधट्ठाणाणं अवभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाणं अणतभागा कम्मपदेसा हुंति । 'अविभागपलियच्छेदो' तेसिं कम्मपदेसाण अविभागपलिदच्छेदा सव्वजीवेहिं अणंतगुणा होति । ['सुदपवरदिट्ठिवादे'], सुदप्पहाणदिट्ठिवादे कोट्टवुद्धिपहुइसंजुत्तगणहरपहुदिआयरिया एव वक्ख्वाणं कुव्वंति । उक्तं च—

“सेटिमसंखेज्जदिभागमेत्ता जोगट्ठाणाणि हुंति सव्वाणि” । तस्स सदिट्ठी—एगजोगट्ठाणं

पडि जदि असंखेज्जलोगमेत्तपयडीओ लहामो, तो सेटिमसंखेज्जदिभागमेत्तजोगट्ठाणेहिं केत्तियाओ पयडीओ लहामो १ १ । ० ० । १ । एगपयडि पडि जदि द्विदिवियप्पाणि असंखेज्जाणि लहामो,

तो असंखेज्जलोगमेत्तपयडिवियप्पेहिं केत्तियाणि ठिदिविसेसाणि लहामो १ ० । २२ । १ ।

एगट्ठिदिविसेसं पडि असंखेज्जाणि द्विदिवंधञ्कवसाणट्ठाणाणि लहामो, तो असं-
खेज्जलोगमेत्तट्ठिदिविसेसेहिं केत्तियाणि ठिदिवंधञ्कवसाणट्ठाणाणि लहामो

१ १ । २२० । १ । एगट्ठिदिवंधञ्कवसाणट्ठाणं पडि जदि [असंखेज्जलोगमेत्त] अणुभाग-
वंधञ्कवसाणट्ठाणाणि लहामो, तो असंखेज्जलोगमेत्तठिदिवंधञ्कवसाणट्ठाणेहिं केत्तियाणि

अणुभागवंधञ्कवसाणट्ठाणाणि लहामो । १ १ । २२२२ । १ । एगअणुभागवंधञ्कवसाण

पडि जदि असंखेज्जदिअणुभागवंधञ्कवसाणट्ठाणाणि लहामो, तो असंखेज्जलोगमेत्तट्ठिदि-
वंधञ्कवसाणट्ठाणेहिं केत्तियाओ अणुभागवंधञ्कवसाणट्ठाणाणि लहामो १ । १ १ । २२२

२२२२ । १ अणुभागवंधञ्कवसाणट्ठाणेहिं अणंतगुणागारे कदे कम्मपदेसा मुणेदेव्वा । १ । १ । १ ।

२२२२२२२।^१_० । कम्मपदेसेहि अणंतगुणगारे कदे अविभागपलिदच्छेदा भवन्ति^१ १।^१ १। २२२२२
 २२ । १ । १ । योगप्रकृतिस्थित्यध्यवसानानुभागकर्मप्रदेशाः पत्त्यस्य छेदविभागा^१ कर्मविभागाश्च
 क्रमेण ज्ञातव्या इति ।

एसो बंधसमासो पिंडुक्खेवेण वणिणदो कोइ [किंचि] ।

कम्मप्पवादसुदसागरस्सं णिस्संदमेत्तो दु ॥१३७॥

एसो बंधसंखेवो संखेवेण गहिदूण कहिओ कोइ कम्मप्पवाद-सुदसमुद्दो णिस्संदमेत्तो दु ।

बंधविहाणसमासो संखेवेण रइदो थोवसुद-अप्पबुद्धिणा दु ।

बंधे मुक्खे कुसला मुणओ पूरेदूण परिकहेत्तु ॥१३८॥

इय कम्मपयडिपयदं संखेवुद्धिणिच्छयमहत्थं ।

जो उवजुज्जइ बहुसो सो जाणइ बंध-मुक्खदु' ॥१३९॥

‘इयकम्मपयडिपयदं’ एवं कम्मपगडियवियारं संखेवेणुद्धिणिच्छयमहत्थं जो मुणी उवओगं
 करेइ, सो जाणइ बंध-मोक्खाणं अत्थं ।

• सो मे तिहुयणसहिदो सुद्धो बुद्धो णिरंजणो सिद्धो ।

दिसदु वरणाणलाभं चरित्तसुद्धिं समाहिं वा ॥१४॥

आदि-मज्झवसाणे मंगलं जिणचरेहिं पणत्तं ।

तो कदमंगलविणओ इणमो सुत्तं पवक्खामि ॥१५॥

सदगपंजिया समत्ता

[इदि चउत्थो सतगसंगहो समत्तो]

पंचमो सत्तरि-संगहो

वंदित्ता जिणचंदं दुण्णय-तम-पडल-पाडयं वरदं ।

सत्तरिगाहसमुदं बहु-भंग-तरंग-संजुत्तं ॥

सिद्धपदेहिं महत्थं वंधोदयसंतपगडिठाणाणि ।

बुच्छं सुण संखेवं णिस्सदं दिट्ठिवादादो ॥१॥

‘सिद्धपदेहिं महत्थं’[महत्थं]णाम ख्यातनिपातोपसर्गविरहितं, सभावसिद्धेहिं पदेहिं वंधो-
दयसंतपगडिठाणाणं बुच्छं महत्थं संखेवं सुण दिट्ठिवादस्स णिस्सदं । उदयगहणेण उदीरणा वि-
गहिदा । सत्तगहणेण उवसमणं खवणं च गहियं ।

कदि वंधंतो वेददि कइया कदि पगडिठाणकम्मंसा ।

मूलत्तरपगडीसु य भंगवियप्पा य बोधव्वा ॥२॥

‘कदि वंधंतो वेददि’ कदि पगडिठाणाणि वंधमाणो केत्तियाणि पगडिठाणाणि वेदेदि,
कदि वा संतकम्मपगडिठाणाणि तस्स । मूलपगडीसु उत्तरपगडीसु च भंगवियप्पा जाणियव्वा ।

अट्ठविह सत्त सो[छ]बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा ।

एगविधे तिवियप्पो एगवियप्पो अवंधम्मि ॥३॥

अट्ठविहबंधगेसु सत्तविहबंधगेसु छन्विहबंधेसु च अट्ठविह-उदयकम्माणि,
अट्ठेव संतकम्माणि हुंति । वेदणीय-एगविहबंधगे उवसंतकसाये मोहणीयवज्ज सत्त
उदयकम्माणि अट्ठ संतकम्माणि । एस इक्को वियप्पो । खीणकसाए मोहणीयवज्ज सत्त उदय-
कम्माणि । संतकम्माणि सत्त । एस विदिओ वियप्पो । सजोगिकेवलिम्मि चत्तारि अघादिकम्माणि
उदय-संताणि त्ति । एस तदिओ वियप्पो । अवंधम्मि अजोगिकेवलिम्हि चत्तारि अघादिकम्माणि
उदय-संताणि त्ति एक्को चेव वियप्पो ।

सत्तट्ठ वंध अट्ठोदयंस तेरससु जीवठाणेसु ।

इक्कम्हि पंच भंगा दो भंगा हुंति केवलिणो ॥४॥

‘सत्तट्ठबंध अट्ठोदयंस’ सण्णि-पंचिदिय पज्जत्त वज्ज तेरससु जीवसमासेसु सत्तकम्माणि
अट्ठकम्माणि वा वंधट्ठाणाणि, उदय-संतकम्मट्ठाणाणि अट्ठ । ‘इक्कम्हि पंच भंगा’ सण्णि-
पंचिदिय-पज्जत्त-जीवसमासेसु अट्ठबंधोदयसंतकम्मट्ठाणाणि त्ति एओ वियप्पो । सत्त कम्माणि
बंधट्ठाणं, अट्ठ उदय-संतकम्मट्ठाणाणि त्ति विदिओ वियप्पो । छक्कम्माणि वंधट्ठाण अट्ठ
उदय-संतकम्मट्ठाणाणि त्ति तदिओ वियप्पो । वेदणीयमेक्कं चेव वंधट्ठाणं, सत्त उदयकम्माणि,
संतकम्माणि अट्ठ इदि चत्थो वियप्पो । वेदणीयमेक्कं चेव वंधट्ठाणं, सत्तउदय-सत्तसंत-
कम्मट्ठाणाणि, पंचमो वियप्पो । ‘दो भंगा हुंति केवलिणो’ सजोगिकेवलिस्स वेदणीयमेक्कं चेव

बंधट्ठाणं, चत्तारि अघादिकम्माणि उदय-संतट्ठाणाणि त्ति । इदि एक्को वियप्पो । एवं अजोगि-
केवलस्स । णवरि बंधट्ठाणं णत्थि त्ति विदिओ वियप्पो ।

अट्ठसु एगवियप्पो छसुवि गुणसण्णिदेसु दुवियप्पो ।

पत्तेयं पत्तेयं बंधोदयसंतकम्माणं ॥५॥

‘अट्ठसु एगवियप्पो’ सम्मामिच्छादिट्ठि-अपुव्व-अणियट्ठीसु पत्तेयं पत्तेयं सत्त बंध
कम्माणि उदय-संतकम्माणि अट्ठ । सुहुमसंपराइयस्मि बंधकम्माणि छ, उदय-संतकम्माणि
अट्ठ । उवसंतकसायस्मि बंधकम्म वेदणीयं । मोहणीयवज्ज उदयकम्माणि सत्त । अट्ठ संत
कम्माणि । खीणकसायस्मि वेदणीय बंधं । मोहणीयवज्ज सत्त उदयकम्माणि, संतकम्माणि सत्त ।
सजोगिकेवलस्मि वेदणीयकम्मबंधो, चत्तारि अघादिकम्माणि उदय-संताणि । एवं अजोगिकेव-
ल्स्स । णवरि बंधो णत्थि । ‘छसु वि गुणसण्णिदेसु दुवियप्पो’ मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-
असंजदसम्मादिट्ठि संजदासंजद-अप्पमत्तासंजदेसु पत्तेयं पत्तेयं अट्ठ बंधुदयसंतकम्मट्ठाणाणि
त्ति एओ वियप्पो । सत्ताकम्माणि बंधट्ठाणाणि, अट्ठ उदय-संतकम्मट्ठाणाणि त्ति
विदिओ वियप्पो ।

बंधोदयकम्मंसा णाणावरणंतराइगे पंच ।

बंधोवरमे वि तहा उदयंसा हुंति पंचेव ॥६॥

‘बंधोदयकम्मंसा णाणावरणंतराइगे पंच’ बंधोदयसंतकम्माणि पंचेव । बंधवुच्छेदे
जादे वि उदय-संतकम्माणि पंच ।

बंधस्स य संतस्स य पगडिट्ठाणाणि तिण्णि सरिसाणि ।

उदयट्ठाणाणि दुवे चदु पणयं दंसणावरणे ॥७॥

बंध-संताणं तिण्णि पगडिट्ठाणाणि सरिसाणि । तं जहा-दंसणावरणसव्वपयडीओ घेत्तूण
णवेत्ति एगं बंधट्ठाणं । णिहाणिहा पचलापचला थीणगिद्धी वज्ज सेसपगडीओ घेत्तूण छ इदि
विदियं बंधट्ठाणं । एदाओ चेव णिहा पचला वज्जाओ पगडीओ घेत्तूण चत्तारि त्ति तदियं
बंधट्ठाणं । ताणि चेव तिण्णि संतट्ठाणाणि हुंति । उदयट्ठाणाणि टुण्णि चत्तारि वा, पंच वा । तं
जहा-चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं अवहिदंसणावरणीयं [केवलदंसणावरणीयं]
एयाओ पयडीओ घेत्तूण एगं उदयट्ठाणं । एदाओ चेव चत्तारि पयडीओ णिहाणिहा-पचलापचला
थीणगिद्धीण णिहा-पचलाणं एककदर-सहियायो घेत्तूण पंचेत्ति विदियमुदयट्ठाणं ।

विदियावरणे णवबंधगेसु चदु पंच उदय णव संता ।

सो [छ] बंधगेसु एवं तह चदुबंधे छ-णवंसा य ॥८॥

‘विदियावरणे’ दंसणावरणे णवकम्माणि बंधमाणेसु चत्तारि वा पंच वा उदयकम्माणि,
णव संतकम्माणि । एवं दो भंगा । छ कम्माणि बंधमाणेसु वि चत्तारि वा पंच वा उदय-
कम्माणि, णव संतकम्माणि [त्ति] दो चेव भंगा । चत्तारि कम्माणि बंधमाणेसु चत्तारि वा, पंच
वा, उदयकम्माणि, णव वा छ वा संतकम्माणि ६।४।६, ६।५।६; ६।४।६, ६।५।६; ४।४।६, ४।५।६;
४।४।६, ४।५।६ । एवं चत्तारि भंगा ।

उवरदबंधे चदु पंच उदय, णव छच्च संत चदु जुगलं ।

अवंधगे चत्तारि वा पंच वा उदयकम्माणि, णव वा छ वा संतकम्माणि, चत्तारि उदय-
कम्माणि; संत कम्माणि चत्तारि । ०।४।६, ०।५।६, ०।४।६; ०।५।६; ०।४।४ एवं पंचभंगा ।

वेदणियाउगगोदे विभज्ज मोहं परं वुच्छं ॥६॥

गोदेसु सत्त भंगा अट्ठ य भंगा हवन्ति वेदणिण् ।

पण णव णव पण भंगा आउचउक्के वि कमसो दु ॥१०॥

सादं बंधं, सादं उदयं, सादासादं सत्तं, सादं बंधं, असादं उदयं, सादासादं सत्तं, असादं बंधं, सादं उदयं, सादासादं सत्तं, असादं बंधं, असादं उदयं, सादासादं सत्तं । उवरदबंधे सादं उदयं सादासादं सत्तं, असादं उदयं सादासादं सत्तं, सादं उदयं सादं सत्तं, असादमुदयं असादं सत्तं, एवं वेदणीयस्स अट्ठ भंगा हुन्ति ।

णेरइयस्स णिरयाउगमुदयं णिरयाउगसत्तं, तिरिक्खाउगं बंधं णिरयाउगमुदयं णिरय-तिरि-याउगं सत्तं, मणुसाउगं बंधं णिरयाउगं [उदयं] णिरय-मणुसाउगं सत्तं, णिरयाउगं उदयं [णिरय-तिरिक्खाउगं सत्तं, णिरयाउग उदयं] णिरयमणु-साउगं सत्तं । एवं णिरयाउगस्स पंच भंगा हुन्ति । तिरिक्खस्स तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं सत्तं, णिरयाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं णिरयाउगं सत्तं, तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खणिरयाउगं सत्तं, तिरिक्खाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं सत्तं, तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं सत्तं, मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं सत्तं, तिरिक्खाउगं उदयं, तिरिक्ख-मणुसाउगं सत्तं, देवाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख देवाउगं सत्तं, तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं सत्तं । एवं तिरिक्खाउगस्स णव भंगा हुन्ति । मणुसस्स मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं सत्तं, णिरयाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउग सत्तं, मणुसाउगं उदयं मणुस णिरयाउगं सत्तं, तिरिक्खाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस तिरिक्खाउगं सत्तं, मणु-साउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं सत्तं, मणुसाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं सत्तं, मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं सत्तं, देवाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउग सत्तं, मणु-साउगं उदयं मणुस-देवाउग सत्तं । एव मणुसाउगस्स वि णव भंगा हुन्ति । देवस्स वि देवाउगं उदयं देवाउगं सत्तं, तिरिक्खाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं सत्तं, देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं सत्तं, मणुसाउगं बंधं देवाउग उदय देव मणुसाउग सत्तं, उवरदबंधे देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं सत्तं । एवं देवाउगस्स वि पंच भंगा हुन्ति ।

उच्चं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचसत्तं, उच्चं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसत्तं, णीचं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचसत्तं, णीचं बंधं णीचं उदयं उच्च णीचसत्तं, णीचं बंधं णीच उदयं णीचं सत्तं, उव्विज्झिदम्मि उच्चे तेउ वाउम्मि बोधन्वा । उवरदबंधे उच्चं उदयं उच्च-णीचसत्तं, उच्चं य उदयं उच्चं सत्तं । एवं गोदस्स वि सत्त भंगा हुन्ति ।

वावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच ।

चदु तिद दुगं च एगं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥११॥

वावीस एक्कवीस सत्तारस तेरस णव पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि इक्क एदाणि दस बंध-ट्ठाणाणि मोहणीयस्स । एदेसिं वावीसादीणं पगडिणिहेसो सदगो वुत्तकमेण णादन्वो ।

इक्कं च दो व चत्तारि तदो एगाधिया दसुक्कस्सं ।

ओघेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि णव हुन्ति ॥१२॥

इक्कं दोण्णि चत्तारि पंच छ सत्त अट्ठ णव दस एदाणि णव उदयट्ठाणाणि मोहणीयस्स हुन्ति ।

अट्ट य सत्त य छक्क य चदु तिग दुग एग अधिग वीसाणि ।

तेरस वारेगारं एत्तो पंचादि-एगूणं ॥१३॥

संतस्स पगडिठाणाणि मोहणीयस्स हुंति पण्णरसं ।

बंधोदयसंते पुण भंगवियप्पा बहु जाणे ॥१४॥

अट्टावीसं सत्तावीसं छव्वीसं चउवीसं तेवीसं वावीसं इक्कवीसं तेरस वारस इक्कारस पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि इक्क एदाणि पण्णरस संतट्ठाणाणि मोहणीयस्स । एदेसिं अट्टावीसादीणं पयडिणिहेसो । तं जहा—मोहणीयस्स सव्वपगडीओ घेत्तूण अट्टवीसं । अट्टवीसादो सम्मत्ते उव्विल्लिदे सत्तावीसं । सत्तावीसादो सम्मामिच्छत्ते उव्विल्लिदे छव्वीसं । अट्टावीसादो अणंताणुबंधिचदुक्के विसंजोइए चउवीसं । चउवीसादो मिच्छत्ते खविए तेवीसं । तेवीसादो सम्मामिच्छत्ते खविए वावीसं । वावीसादो सम्मत्ते खविए एक्कवीसं । एक्कवीसादो अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणा-वरण-अट्टकसाएसु खविएसु तेरस । तेरसादो णउंसयवेदे खविए वारस । वारसादो इत्थीवेदे खविए एक्कारस । एक्कारसादो हस्स रइ अरइ सोग भय दुगुंछा एदेसु छणोकसाएसु खविएसु पंच । पंचादो पुरिसवेदे खविदे चत्तारि । चउक्कादो कोहसंजलणे खविदे तिण्णि । तिगादो माणसंजलणे खविदे दोण्णि । दुगादो मायसंजलणे खविदे एक्कं । एक्केक्कस्स सत्तट्ठाणस्स इक्केको चेव भंगो । मोहणीयस्स संतकम्मट्ठाणाणि अट्टावीसादीणि पुव्वुत्ताणि पण्णरस हुंति । 'बंधोदय-संते पुण भंगो णे [भंगवियप्पा बहु जाणे]' बंधोदयसंतकम्मकम्मट्ठाणेषु भंगवियप्पा बहुगा जाणियव्वा ।

सो[छव्व-]वावीसे चदु इगिवीसे सत्तरस तेरस दो दो दु ।

णवबंधणे वि दोण्णि दु एगेगमदो परं भंगा ॥१५॥

[वावीसबंधट्ठाणे छ भंगा] । इक्कवीसबंधट्ठाणे चत्तारि भंगा । सत्तरसबंधट्ठाणे दो भंगा । तेरसबंधट्ठाणे दो चेव । णवबंधट्ठाणे दो भंगा । पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि इक्क एदेसु पंचसु बंधट्ठाणेषु इक्केको चेव भंगो । एदेसिं वावीसादिवंधट्ठाणाणं पयडिणिहेसो भंगपरुवणा च सदगे वुत्तकमेण णादव्वा ।

दस वावीसे णव इगिवीसे सत्तादि उदयकम्मंसा ।

छादी णव सत्तरसे तेरे पंचादि अट्टेव ॥१६॥

'दस वावीसे' वावीसबंधट्ठाणे सत्त अट्ट णव दस उदयट्ठाणाणि । तं जहा—मिच्छत्तं अणंताणुबंधीणमेक्कदरं अप्पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं [पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं] संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ—अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछाओ, एदाओ पयडीओ घेत्तूण दस-उदयट्ठाणं । चत्तारि कसायभंगा तिण्णि वेद-भंगेहिं गुणिया वारस १२ । ते चेव जुगल-दोभंगेहिं गुणिया चउवीस भंगा हुंति २४ । एवं दसण्हं इक्को चउवीसो । एदाओ चेव पगडीओ भय-विरहियाओ घेत्तूण पढम-णवउदयट्ठाणं । तस्स इक्को चेव पढम-चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछ-विरहियाओ भय-सहियाओ घेत्तूण विदियं णव-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । अणंताणुबंधी वल्ल सेसपगडीओ घेत्तूण तदियं णव-उदयट्ठाणं । एदस्स वि तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पयडीओ भय-रहियाओ घेत्तूण पढमं अट्ट-उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछ-विरहियाओ घेत्तूण विदियं अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भय-दुगुंछ-विरहिय अणंताणु बंधि-इक्कदसरहियाओ [इक्कदरसहियाओ] घेत्तूण तदिय-अट्टउदयट्ठाणं । एदस्स वि तदिओ चउवीस-

भंगो । एदाओ चेव पगडीओ अणंताणुबंधि-भय-दुगुंछविरहियाओ घेत्तूण सत्तूदयट्ठाणं । एदस्स वि एक्को चउवीसभंगो ।

एकवीसबंधट्ठाणे सत्त अट्ठ णव उदयट्ठाणाणि । तं जहा—मिच्छत्तं वज्ज सेसपुव्वुत्त-पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं । एदस्स वि एक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-विरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चेव चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछ-विरहियाओ भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-दुगुंछाविरहियाओ घेत्तूण सत्तूदयट्ठाणं । एदस्स वि इक्को चेव चउवीसभंगो ।

सत्तरसबंधट्ठाणे छ सत्त अट्ठ णव उदयट्ठाणाणि । तं जहा सम्मामिच्छत्तं अपञ्चखाणावरणाणमेक्कदरं पञ्चखाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेयाणमेक्कदरं हस्स-रइ-अरइ-सोग-दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा च, एदाओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं । एदस्स वि एक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मामिच्छत्तविरहियाओ सम्मत्तसहियाओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-सहिय दुगुंछरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्त-भयरहिय सम्मामिच्छत्त-दुगुंछ सहियाओ वा घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स तिदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछ-रहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स चउत्थो चउवीसभंगो । सम्मत्त-रहिय पुव्वुच्चरियपगडीओ घेत्तूण वा असंजद-उवसम-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठिम्मि अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स पंचमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मामिच्छत्तसहिय-भय दुगुंछविरहियाओ घेत्तूण सग [सत्त] उदयट्ठाणं । पढमो चउवीसभंगो । सम्मत्त-सहिय सम्मामिच्छत्त-विरहिय-असेसपगडीओ घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाण । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्त-भयरहिय-दुगुंछसहियाओ घेत्तूण वा असंजद-उवसम-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठिम्मि सत्त उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछ रहिय-भयसहियाओ घेत्तूण सत्त उदयट्ठाणं । एदस्स चउत्थो चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय दुगुंछविरहियाओ घेत्तूण वा-छ-उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एवं चेव सम्मत्त-रहिय असंजद-उवसमसम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठिम्मि उदयट्ठाणं ।

तेरस बंधट्ठाणे पंच छ सत्त अट्ठ उदयट्ठाणाणि । तं जहा-सम्मत्तं पञ्चखाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भयदुगुंछा च, एदाओ पयडीओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय रहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछ-रहिय भय-सहिय घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ-चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्त-रहिय दुगुंछा सहियाओ घेत्तूण वा संजदासंजद-उवसमसम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठिम्मि सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण छ उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव भयसहियाओ दुगुंछरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव भयरहिद-सम्मत्तसहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-दुगुंछ-सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो ।

चत्तारि आदि णवबंधगेषु उक्कस्स सत्त उदयसा ।

पंचविध बंधगे पुण उदओ दोण्हं मुणेदव्वो ॥१७॥

‘चत्तारि आदि णव बंधगेषु’ णवबंधट्ठाणे चत्तारि पंच छ सत्त उदयट्ठाणाणि । तं जहा—सम्मत्तं चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय

दुगुंछा च । एदाओ पगडीओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं-एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछ-रहिय-भय-सहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्ता-रहिय-दुगुंछ-सहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं उवसमखइयम्मि । एदस्स चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स एक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछ-रहिय-भय-सहियाओ घेत्तूण वा पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । सम्मत्ता-सहियाओ भयरहियाओ घेत्तूण वा पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण चत्तारि उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो ।

पंचविधबंधट्ठाणे चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं एदाओ घेत्तूण एकमुदयट्ठाणं । एदस्स बारस भंगा ।

एकं च दोणि चउबंधगेसु उदयंसया दु बोधव्वा ।

इत्तो परं तु इकं उदयंसा होदि सेसेसु ॥१८॥

‘इक्कं च दो व तिणि चउबंधगेसु’ चउविहबंधट्ठाणे दोणि उदयट्ठाणाणि । तं जहा—चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं, एदाओ घेत्तूण एकं उदयट्ठाणं । एदस्स बारस भंगा । चउसंजलणाणमेक्कदरं एयं उदयट्ठाणं । एदस्स चत्तारि भंगा । तिण्हं बंधट्ठाणे कोहवज्ज तिण्हं संजलणाणमेक्कदरं । एकं उदयट्ठाणं । एदस्स तिणि भंगा । दुविहबंधट्ठाणे कोह-माण वज्ज दुण्हं संजलणाणमेक्कदरं, एकं उदयट्ठाणं । एदस्स दो भंगा । एयविधबंधगे लोभसंजलणाणमेक्कं उदयट्ठाणं । एदस्स एक्को चेव भंगो । अबंधगेसु सुहुमलोहसंजलणं । एकं उदयट्ठाणं । एदस्स एक्को चेव भंगो ।

इक्क य छक्केयारं दस सत्त चउक्क इक्कयं चेव ।

एदे चउवीसगदा चउवीस दुगेगमेगारं ॥१९॥

णव पंचाणउदिसदा उदयवियप्पेण मोहिया जीवा ।

उणहत्तरि-एगत्तरि-पयबंधसदेहि विण्णेया ॥२०॥

‘इक्क य छक्केयारं’ दस-उदयट्ठाणे एक्को चउवीसो । णव-उदयट्ठाणे छ चउवीसा । अट्ठ-उदयट्ठाणे एगारस चउवीसा । सत्त-उदयट्ठाणे दस चउवीसा । छ उदयट्ठाणे सत्त चउवीसा । पंच-उदयट्ठाणे चत्तारि चउवीसा । चत्तारि-उदयट्ठाणे इक्को चउवीसो । दो-उदयट्ठाणे चउवीस-भंगा । एकउदयट्ठाणे एक्कारस भंगा ।

‘णव पंचाणउदिसदा’ दसादिचट्ठकंतं चउवीस गणण वलागा [सलागा] चालीस, चउवीसेण गुणिया एत्तिया हुंति ६६० । एदेसु दो-उदयट्ठाणे चउवीस भंगा, एक-उदयट्ठाणे इक्कारस भंगा, मेलिया सव्वे उदयवियप्पा एत्तिया हुंति ६६५ ।

दस-उदयट्ठाणे इक्का चउवीससलागा दसपयडीहिं गुणिया एत्तिया हुंति १० । णव-उदयट्ठाणे छ चउवीससलागा णवपगडीहिं गुणिया एत्तिया हुंति ५४ । अट्ठ-उदयट्ठाणे इक्कारस चउवीस-सलागा अट्ठपगडीहिं गुणिया एत्तिया हुंति ८८ । सत्त-उदयट्ठाणे दस चउवीससलागा सत्त-पगडीहिं गुणिया एत्तिया हुंति ७० । [छ-उदयट्ठाणे] सत्त चउवीससलागा छ पयडीहिं गुणिया एत्तिया हुंति ४२ । पंच-उदयट्ठाणे चत्तारि चउवीस सलागा पंचपगडीहिं गुणिया एत्तिया हुंति २० । चउ-उदयट्ठाणे एग चउवीससलागा चउपयडीहिं गुणिया एत्तिया हुंति ४ । एदे सव्वे मेलिया एत्तिया हुंति २८८ । एदे चउवीस गुणियाए एत्तिया हुंति ६६१२ । एदेसु दो-पगडीहिं [दो पगडि-

उदय] द्वाणे चउवीस उदय-वियप्पा दो पगड्डीहिं गुणिया एक्को अट्ठाण [] इक्का-
रस-उदयवियप्पा वि एगपगड्डीहिं गुणिया एत्तिया हुंति ११ । सव्वपदवधवियप्पा ६६७१ ।

तिण्णेव दु वावीसे, इगिवीसे अट्ठवीस कम्मसा ।

सत्तरह-तेरह-णव बंधगेसु पंचेव ठाणाणि ॥२१॥

पंचविह-चउविहेसु व छ सत्त सेसेसु जाण पंचेव ।

पत्तेयं पत्तेयं पंचेव दु सत्त ठाणाणि ॥२२॥

‘तिण्णेव दु वावीसे’ वावीसबंधद्वाणे अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस एदाणि तिण्णि संतट्ठा-
णाणि हुंति । इगिवीसबंधद्वाणे अट्ठावीस इक्कसंतट्ठाण । सत्तरस-तेरस-णवबंधद्वाणेषु अट्ठावीस
चउवीस तेवीस वावीस इक्कवीस एदाणि पंच संतट्ठाणाणि पत्तेयं हुंति ।

‘पंचविह-चउविहेसु य छ सत्ता’ पंचविहबंधद्वाणे अट्ठावीस चउवीस एगवीस तेरस वारस
एक्कारस छ संतट्ठाणाणि । चउविहबंधद्वाणे अट्ठावीस चउवीस इगिवीस वारस इक्कारस पंच
चत्तारि एदाणि सत्त संतट्ठाणाणि । तिण्हबंधद्वाणे अट्ठावीस चउवीस चत्तारि तिण्णि एदाणि पंच
संतट्ठाणाणि । दुविहबंधद्वाणे अट्ठावीस चउवीस इगिवीस तिण्णि दोण्णि एदाणि पंच संतट्ठा-
णाणि । एयविहबंधद्वाणे अट्ठावीस चउवीस इगिवीस दोण्णि एक्कं एदाणि पंच संतट्ठाणाणि ।
अबंधगे अट्ठावीस चउवीस इगिवीस इक्कं च एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि हुंति ।

दस णव पण्णरसाई बंधोदयसंतपगडिठाणाणि ।

भणिदाणि मोहणिज्जे एत्तो णामं परं बुच्छं ॥२३॥

दस बंधट्ठाणाणि, णव उदयट्ठाणाणि, पण्णरस संतट्ठाणाणि मोहणीयस्मि भणिदाणि ।
एत्तोवरि णामस्मि बंधोदयसंतट्ठाणाणि भणिस्सामो ।

तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगुतीसं ।

तीसेक्कतीसमेयं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥२४॥

इगिवीसं चउवीसं एत्तो इगितीसयं ति एगधियं ।

उदयट्ठाणाणि हवे णव अट्ठ य हुंति णामस्स ॥२५॥

[ति-दु-इगि-णउदी णउदी अड-चदु-दुगाधियमसीदिमसीदी च ।

उणसीदी अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव संता ॥२६॥]

तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसं उणतीसं नीसं इक्कतीसं एक्कं एदाणि अट्ठ बंधट्ठा-
णाणि णामस्स हुंति । ‘इगिवीसं चउवीसं एत्तो [इगितीसं ति] एगधियं’ इगिवीसं चउवीस
पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं उगुतीसं तीसं एक्कतीसं णव अट्ठ एदाणि इक्कारस
उदयट्ठाणाणि हुंति णामस्स । तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि
वासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि तेरस संतट्ठाणाणि हुंति
णामस्स ।

अट्ठेयारस तेरस बंधोदयसंतपगडिठाणाणि ।

ओघेणादेसेणं य एत्तो जहसंभवं विभजे ॥२७॥

अट्ठ बंधट्ठाणाणि, एक्कारस उदयट्ठाणाणि, तेरस संतट्ठाणाणि ओघेण णामस्स हुंति ।
विसेसेण गड-आडसु मगगणठाणेषु जहासंभवं विभजिऊण बंधोदयसंतट्ठाणाणि एदाणि हुंति
भणियव्वणि ।

तेरस णव चदु पणयं बंधवियप्पा उ हुंति बोधव्वा ।

छावत्तरिमेगारससदाणि णामोदया हुंति (७६११) ॥२८॥

तेवीसादि-अट्टसु बंधट्टाणेषु पगडिणिहेसो भंगणिरुवणा च सदगे वुत्ता [त्तक्क] कमेण जाणिऊण भाणियव्वा । तेरस सहस्सा णव सदा पंच य तालीसा णामस्स बंधट्ठाणवियप्पा हुंति १३६४५ । इक्कवीसादि-इक्कारसेसु उदयट्टाणेषु पगडिणिहेसो भंगपरुवणा च । तं जहा—
गिरयगइणामोदयसंजुत्ताणि पंचउदयट्टाणाणि । तं जहा—गिरयगइ-पंचिदियजाइ-तेजा-
कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-गिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-बादर-पज्जत्त-थिरा-
थिर-सुभासुभ-दुभग-अणादिज्ज-अजसकित्ति-णिमिणणामाओ एदाओ पगडीओ घेत्तूण इक्कवीस
उदयट्टाणं । तं विग्गहगइवट्टमाणस्स णेरइयस्स जहण्णेण एयसमयं, उक्कस्सेण वेसमयं । एदाओ
आणुपुव्वीवज्जाओ वेउव्वियसरीर-हुंउसंठाण-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-उवघाद-पत्तेयसरीरसहियाओ
पगडीओ घेत्तूण पणुवीस उदयठाणं । तं सरीरगहिय-पढमसमयमादिं काऊण जाव सरीरपज्जत्ता
[त्तो] ण होइ, ताव होदि । जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदाओ चेव परघाद-अप्पसत्थविहायगइ-
सहियाओ पयडीओ घेत्तूण सत्तावीस उदयठाणं । तं सरीरपज्जत्तगपढमसमयप्पहुडि जाव आणा-
पाणपज्जत्तो ण होइ, ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदाओ चेव उस्साससहियाओ
पयडीओ घेत्तूण अट्ठावीस उदयठाणं । तं आणापाणपज्जत्तगए पढमसमयप्पहुडि जाव भासाप-
ज्जत्तगओ ण होइ, ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदाओ चेव दुस्सरसहियाओ पयडीओ
घेत्तूण एगूणतीस-उदयठाणं । तं भासापज्जत्तगए पढमसमयप्पहुडि जाव जीविदंतं ताव होइ ।
जहण्णेण दस [वास-]सहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । एदेसिं पंचण्हं ठाणाणं एककेक्को चेव भंगो ।
उदयवियप्पा पंच ५ ।

इगिवीसं चउवीसं एत्तो इगितीस य त्ति एगधियं ।

णव चेव उदयट्टाणा तिरियगइसंजुदा हुंति ॥२९॥

पंचेव उदयठाणाणि सामण्णेइंदियस्स बोधव्वा ।

इगि-चउ-पण-छ-सत्तधिया वीसा तह होइ णायव्वा ॥३०॥

आदाउज्जोवाणमणुदय-एइंदियस्स ठाणाणि ।

सत्तावीसा य विणा सेसाणि हवंति चत्तारि ॥३१॥

आदाउज्जोउदओ जस्सेसो णत्थि तस्स णत्थि पणुवीसं ।

सेसा उदयट्टाणा चत्तारि हवंति णायव्वा ॥३२॥

आदाउज्जोवाणमणुदय-एइंदिएसु इगिवीसं तिरिक्खगइ-उदयसंजुत्ताणि णव ठाणाणि । तत्थ
सामण्णेइंदियस्स पंच उदयठाणाणि । तं जहा—तिरिक्खगइ-एइंदियजाइ-तेजाकम्मइयसरीर-वण्ण-
गंध-रस-फास-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-थावर-बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तापज्ज-
त्ताणमेक्कदरं थिराथिर-सुभासुभ-दुभग-अणादिज्ज-जस अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ पग-
डीओ घेत्तूण इगिवीस-उदयट्टाणं । तं विग्गहगइए वट्टमाणस्स जहण्णेणसमयं, उक्कस्सेण तिण्णि
समयं । एदस्स भंगा जसकित्ति-उदएण इक्को भंगो, सुहुमअपज्जत्त-उदओ णत्थि त्ति । अजस-
कित्ति-उदएण चत्तारि भंगा । [एवं पंच भंगा ५ ।] एदाओ चेव पगडीओ आणुपुव्वीवज्जाओ
ओरालियसरीर-हुंउसंठाण-उवघाद-पत्तेग-साधारणसरीराणमेक्कदरं सहियाओ घेत्तूण चउवीस-
उदयट्टाणं । तं सरीरगहियपढमसमयप्पहुडि जाम सरीरपज्जत्तगओ ण होइ ताम होइ । जहण्णु-
क्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदस्स भंगा—जसकित्ति-उदएण एक्को भंगो, सुहुम-अपज्जत्त-साहारणां

उदओ णत्थि त्ति । अजसकित्ति-उदएण अट्ठभंगा । एवं णव भंगा ६ । एदाओ अपज्जत्तवज्ज-परधादमहियाओ घेत्तूण पणुवीस उदयट्ठाणं । तं सरीरपज्जत्तागए पढमसमयप्पहुइ जाव आणा-पाणपज्जत्तागओ ण होइ ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदस्स भंगा—जसकित्ति-उदएण एक्को भंगा, सुहुम-साहारणाणं उदओ णत्थि त्ति । अजसकित्ति-उदएण चत्तारि भंगा ४ । एवं पंच भंगा ५ । एदाओ चेव उस्साससहियाओ पगढीओ घेत्तूण छव्वीस उदय-ट्ठाणं । त आणापाणपज्जत्तागए पढमसमयप्पहुडि जाव जीवियंतं ताव होइ । जहण्णेणंतोमुहुत्त-कालं, उक्कस्सेण वावीस [वास] सहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । एदस्स आ पंचवीस उदयट्ठाण वियप्पा तत्तिआ चेव ५ । आदावुज्जोवुदअविरहियाण[ए]इंदियाणं जहा भणिइ । आदावुज्जोव-उदयसहियाणं एइंदियाणं तहा इगिवीसं । चउवीस-उदयट्ठाण पुव्वं च । णवरि सुहुम-अपज्जत्ता-साहारणाणं उदओ णत्थि त्ति । एदेसिं दो दो भंगा । ते पुव्वभ गेसु पुणरुत्ता त्ति ण गहिया । चउवीस पगढीओ परधाद-आदावुज्जोवेक्कदरसहियाओ घेत्तूण छव्वीसउदयठाणं । तं सरीर-पज्जत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव आणापाणपज्जत्तागओ ण होइ ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणंतो-मुहुत्तकालं । एदस्म भंगा चत्तारि ४ । एदाओ चेव उस्साससहियाओ पगढीओ घेत्तूण सत्ता-वीस उदयठाणं । तं आणापाणपज्जत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव जीविदंतं ताव होइ । जहण्णेणतो-मुहुत्तं, उक्कस्सेण वावीसवस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । एदस्स वि भंगा चत्तारि ४ । एइंदि-याण सव्वे भ गा वत्तीसं ३२ ।

विगल्लिंदियसामण्णेणुदयट्ठाणाणि हुंति छच्चेव ।

इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसादि जाव इगितीसं ॥३३॥

उज्जोवरहियविगले इगितीसूणाणि पंच ठाणाणि ।

उज्जोवसहियविगले अट्ठावीसूणया पंच ॥३४॥

उज्जोव-उदयविरहियवेइंदियट्ठाणाणि पंच । वेइंदियस्स सामण्णेण छ उदयट्ठाणाणि । तं जहा—तिरिक्खगइ-वेइंदियजाइ तेजा - कम्मइयसरीर - वण्ण गघ-रस-फास-तिरिक्खगइपाओग्गाणु-पुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-त्रादर-पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं यिराधिर-सुभासुभ-दुभग-अणादिल्ल-जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ पयडीओ घेत्तूण इक्कवीस उदयट्ठाण । तं विग्गहगईए वट्टमाणस्स जहण्णेण एगसमयं, [उक्कस्सेण वे समयं] एदस्स भंगा—जसकित्ति-उदएणेक्को भ गो, अपज्जत्तोदओ णत्थि त्ति । अजसकित्ति-उदएण दो भंगा । एवं तिण्णि भंगा ३ । एदाओ चेव ओरालियसरीर-हुंडसठाण-ओरालियसरीरगोवंग-असंपत्तसेवट्टसरीरसवडण—उवघाद-पत्तेग-सरीरसहियाओ आणुपुव्वीवज्जाओ घेत्तूण छव्वीस-उदयट्ठाण । तं सरीरगहियपढमसमयप्पहुइ जाव सरीरपज्जत्तो ण होइ, ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणतोमुहुत्तकाल । एदस्स भ गा—जसकित्ति-उदएण इक्को भंगा १, अपज्जत्तोदओ णत्थि त्ति । अजसकित्ति-उदएण दो भंगा । एव भंगा तिण्णि ३ । एदाओ चेव अपज्जत्तावज्ज परधाद-अपसत्थ-विहायगइसहियाओ घेत्तूण अट्ठावीस उदयट्ठाणं सरीरपज्जत्ताए पढमसमयप्पहुइ जाव आणापाणपज्जत्तागओ ण होइ, ताव होइ । जहण्णु-क्कस्सेणतोमुहुत्तकालं । एदस्स दो भंगा २ । एदाओ सव्वाओ उस्साससहियाओ घेत्तूण एगूण-तीसउदयट्ठाणं । त आणापाणपज्जत्तागए पढमसमयप्पहुदि [जाव भासा-] पज्जत्तायओ ण होइ अंतोमुहुत्तकालं । [एव दो भंगा २ । एदाओ चेव दुस्सर-सहियाओ पगढीओ घित्तूण तीसउदयठाणं । तं भासापज्जत्तागए पढमसमयप्पहुडि जाव जीविदं ताव होइ । जहण्णेणतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वारस वासाणि । एदस्स दो भंगा ।

एवं उज्जोव अजसकित्तिआ उज्जोव-[उदयसहिय] वेइंदियस्स जहा इगिवीस-छव्वीस पुव्वं व । णवरि अपज्जत्त-उदओ णत्थि । एदेसिं दो दो भंगा चेव । पण्णरस

पुणरुत्तासमादिया । छत्तीस-[छव्वीस] पगडीओ परघाद-उज्जोव-अपसत्थविहाय[गदि] सत्त सहियाओ घेत्तूण..... जाव आणापाणपज्जत्तागओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स दो भंगा । एदाओ चेव उक्कस्स-[उस्सास-]सहियाओ पगडीओ घेत्तूण तीस-उदयट्ठाणं । तं आणापाणपज्जत्तागए पढम [समयप्प-हुदि जाव भासापज्जत्तागओ ण होइ ताव] अंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स वि दो भंगा २ । एदाओ चेव दुस्सरसहियाओ पयडीओ घेत्तूण एगवीस-उदयट्ठाणं [तं] भासापज्जत्तागए पढमसमयप्प-हुदि जाव जीविदंतं ताव होइ । जहण्णेणंतोमुहुत्ताकालं, उक्कस्सेण वारस वासाणि अंतोमुहुत्ता-णाणि । दो भंगा २ । सव्ववियप्पा अट्ठारस १८ ।

एवं विं [तीइं-] दियस्स णवरि तीइंदियजाइ भाणियव्वं । तीस-इक्कत्तीसकालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तां, उक्कस्सेण एगूणवण्ण रादिदिवाणि अंतोमुहुत्ताणाणि । एवं चउरिंदियस्स । णवरि चउरिंदियजाइ वत्ताव्वं । तीसेक्कत्तीसकालो जहण्णेणंतोमुहुत्ता, उक्कस्सेण छम्मासाणि अंतोमुहुत्ता-णाणि । वियल्लिंदियसव्ववियप्पा चउवण्णं ५४ ।

पंचिंदिय तिरियाणं सामण्णे उदयठाण छच्चेव ।

इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसादि जाव इगितीसं ॥३५॥

उज्जोवरहियसयले इगितीसूणाणि पंच ठाणाणि ।

उज्जोवसहियसयले अट्ठावीसूणगा पंच ॥३६॥

पंचिंदियतिरिक्खसामण्णेण छ उदयट्ठाणाणि । तं जहा—उज्जोवरहियसयले तस्स इमं एअवीसअं ठाणं—तिरिक्खगइ-पंचिंदियजाइ-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्ख-गइपाओगाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-वादर-पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिर - सुभासुभ-सुभग-दुभगाणमेक्कदरं आदेज्ज अणादेज्जाणमेक्कदरं जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ पग-डीओ घेत्तूण इक्कवीस-उदयट्ठाणं । तं विग्गहगईए वट्टमाणस्स जहण्णेणेगसमयं, उक्कस्सेण वे समयं । एदस्स पज्जत्तोदएण अट्ठभंगा ८ । अपज्जत्तोदएण एक्को भंगो १ । दुभग-अणादिज्ज-अजसकित्तीण एवं उदओ त्ति एव णव भंगा । एदाओ चेव आणुपुव्वीवज्जाओ ओरालिय-सरीर छ संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरंगोवंग-छसंघडणाणमेक्कदरं उवघाद-पत्तोगसरीरसहियाओ पयडीओ घेत्तूण छव्वीस-उदयट्ठाणं । तं सरीरगहियपढमसमयप्पहुइ जाव सरीरपज्जत्तागओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं । पज्जत्तोदएण दुसइ-अट्ठासीदि-भंगा २८८ । अपज्जत्तो-दएण इक्को भंगो १ । हुंढसंठाण-असंपत्तासेवट्टसरीरसंघडण-दुभग-अणादिज्ज-अजसकित्तीणमेव उदओ त्ति एवं सव्वभंगा २८६ । एदाओ चेव अपज्जत्तावज्ज परघाद-पसत्थापसत्थ विहायगईण-मेक्कदरं सहियाओ पगडीओ घेत्तूण अट्ठावीस-उदयट्ठाणं । तं सरीरपज्जत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव आणापाणपज्जत्तागओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स वियप्पा पंच सदा छ सत्तारी ५७६ । एदाओ चेव उस्साससहियाओ घेत्तूण एगूण तीस-उदयट्ठाणं आणापाण-पज्जत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव भासापज्जत्तागओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ता-कालं । एदस्स भंगा पंच सदा छहत्तरी ५७६ । एदाओ चेव सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरसहियाओ पगडीओ घेत्तूण तीस-उदयट्ठाणं । तं भासापज्जत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव जीविदंतं ताव होइ जहण्णेणंतोमुहुत्ताकालं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्ताणाणि । एदस्स भंगा इक्कार-सयवावण्णानि ११५२ । एवं उज्जोव उदएण रहिद-पंचिंदियतिरिक्खाणं भणिदं ।

उज्जोव-उदयसहियपंचिंदियतिरिक्खाणं जहा इगिवीस छव्वीस पुव्वं व भाणियव्वं । णवरि अपज्जत्तोदओ णत्थि । एदेसिं भंगा पुव्वुत्तभंगेसु पुणरुत्ता त्ति ण गहिया । एदाओ छव्वीस पगडीओ परघाद-उज्जोव-पसत्थ-अपसत्थविहायगईणमेक्कदरं सहिया घेत्तूण एगूणतीस-उदयट्ठाणं ।

तं सरीरपल्लत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव आणापाणपल्लत्तागओ ण होइ ताव होइ । जहणुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स भंगा ५७६ । एदाओ चेव उस्साससहियाओ पगडीओ घेत्तूण तीस-उदयट्ठाणं । तं आणापाणपल्लत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव भासापल्लत्तागओ ण होइ ताव होइ । जहणुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स भगा पंच सदा छावत्तरी ५७६ । एदाओ चेव सुस्सर-दुस्सरानमेक्कदरं सहियाओ घेत्तूण एक्कतीस-उदयट्ठाणं । तं भासापल्लत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव जीविदंतं ताव होइ जहण्णेणंतोमुहुत्ताकालं, उक्कस्सेण तिण्णि पल्लिदोवमाणि अंतो-मुहुत्तूणाणि । एदस्स भंगा इक्कारस सदा वावण्णा ११५२ । पंचिंदियतिरिक्खसन्वभगा चत्तारि सहस्स-णवसदा छट्ठत्तारा ४६०६ । सन्वतिरियभगा मेलिया एत्तिया ४६६२ ।

मणुसगइसंजुदाणं उदयट्ठाणाणि हुंति दस चेव ।

चउवीसं वज्जित्ता सेसाणि हवंति णेयाणि ॥३७॥

तित्थयरारहाररहिया पगडी मणुसस्स पंच ठाणाणि ।

इगिवीसं छन्वीसं अट्ठावीसणतीस तीसासु ॥३८॥

पयडी मणुसस्स उदयट्ठाणाणि । तं जहा—इगिवीसं छन्वीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीस एदाणि उदयट्ठाणाणि हुंति । जहा—उल्लोवउदयरहियपंचिंदियतिरिक्खाणं तहा वत्तन्वाणि । णवरि मणुसगइआदि भाणियन्वा । एदेसिं भंगा एत्तिया हुति २६०२ । एवं सामणमणुसस्स भणिदं । विसेसमणुसस्स तं जहा—मणुसगइ-पंचिंदियजाइ-आहार-तेज-कम्मइयसरीर-समचउरसरीरसंठाण-आहारसरीरंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-तस-वादर-पल्लत्त-पत्तेगसरीर-थिरा-थिर-सुभासुभ-सुभग-आदिज-जसकित्ति-णिमिणणामाओ पगडीओ घेत्तूण पणुवीस-उदयट्ठाणं आहारसरीर-उट्ठाविदपढमसमयप्पहुदि जाव पल्लत्तागओ होइ ताव होइ । जहणुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स भगो इक्को चेव १ । एदाओ चेव परघादापसत्थविहायगइसहियाओ सत्तावीस-उदयट्ठाणं । तं सरीरपल्लत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव आणापाणपल्लत्तागओ ण होइ [ताव होइ] । जहणुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स इक्को भंगो १ । एदाओ चेव उस्साससहियाओ पगडीओ घेत्तूण अट्ठावीसउदयट्ठाणं । तं आणापाणपल्लत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव भासापल्लत्तागओ ण होइ ताव होइ जहणुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स वि भंगो एक्को चेव १ । एदाओ चेव पगडीओ सुस्सरसहियाओ घेत्तूण एगूणतीस-उदयट्ठाणं । तं भासापल्लत्तागए पढमसमयप्पहुदि जाव आहारसरीरविउत्तिओ ण अच्छइ ताव होइ । जहणुक्कस्सेण अंतोमुहुत्ताकालं । एदस्स वि भगो एक्को चेव १ । एदस्स सन्वभंगा चत्तारि ४ ।

विसेसमणुसस्स तं जहा—मणुसगइ-पंचिंदियजाइ-ओरालिय-तेज-कम्मइयसरीर-समचउर-सरीरसंठाण-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्ज रिसभवडरणारायसरीरसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस वादर-पल्लत्त-पत्तेगसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदिज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयर-णामाओ पगडीओ घेत्तूण एक्कत्तीस-उदयट्ठाणं । तं सजोगिकेवलित्स सत्थाणस्स जहण्णेण वासपुघत्त, उक्कस्सेणंतोमुहुत्तमधिय-अट्ठवस्तूण-पुणव-कोडिकालं । एदस्स इक्को भंगो १ । मणुसगइ-पंचिंदियजाइ-तस-वादर-पल्लत्त-सुभग-अणादिज-जसकित्ति-तित्थयरणामाओ पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं । तं अजोगिकेवलित्स । एदस्स इक्को भंगो । एदाओ चेव तित्थयरवरिहियाओ पगडीओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदं पि अजोगिकेवलित्स । एदस्स वि इक्को भंगो १ । एदे तिण्णि भंगा ३ । मणुसगइसन्वभंगा एत्तिया हुंति २६०६ ।

इगिवीसं पणुवीसं सत्तावीसं अट्ठावीसमुगुतीसं ।

एदे उदयट्ठाणा देवगइ-संजुदा पंच ॥३९॥

देवगइ-उदयसंजुत्ताणि पंच ठाणाणि । तं जहा—देवगइ-पंचिन्द्रियजाइ-तेज-कम्मइयसरीर-
वण्ण-नंध-रस-कास-देवगइपाओगाणुपुव्वी-अगुल्लहुग-तस-वाद्दर - पज्जत्त - थिराधिरसुभासुभ-
सुभग-आदिज-जसकित्ति-णिमिणणासाओ पगडीओ धेत्तुण एकक्कास-उदयट्ठाणं । तं विग्गहगइए
वट्ठमाणस्स जहण्णेगेगसमयं, उक्कस्सेण वे समयं । एदस्स एकको चेव भंगो १ । एदाओ चेव
आणुपुव्वीवज्जाओ वेउत्तियसरीर-समचउरसंठाण-वेउत्तियसरीरंगोवंग-उववाद्-पत्तेयसरीर-
सहियाओ धेत्तुण पणवीस-उदयट्ठाणं । तं सरीरगहियपढमसमयप्पहुदि जाव सरीरपज्जत्तागओ
ण होइ, ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं । एदस्स भंगो इक्को चेव १ । एदाओ चेव पगडीओ
परवाद्-पसत्थविहायगइसहियाओ धेत्तुण सत्तावीस-उदयट्ठाणं । तं सरीरपज्जत्तागदपढम-समय-
प्पहुदि जाव आणापाणपज्जत्तागओ ण होइ, ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदस्स वि
एक्को चेव भंगो १ । एदाओ चेव पगडीओ उस्साससहियाओ धेत्तुण अट्ठावीस-उदयट्ठाणं । तं
आणापाणपज्जत्तागदपढमसमयप्पहुदि जाव भासापज्जत्तागओ ण होइ । ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणंतो-
मुहुत्तकालं । एदस्स इक्को चेव भंगो १ । एदाओ चेव पगडीओ सुत्तरसहियाओ धेत्तुण एगुणतीस-
उदयट्ठाणं । तं भासापज्जत्तागदपढमसमयप्पहुदि जाव जीविदं ताव होइ । जहण्णेगदसवाससह्माणि
अंतोमुहुत्तूणाणि, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि [अंतोमुहुत्तूणाणि] । एदस्स वि इक्को चेव भंगो १ ।
एदे पंच भंगो ५ ।

सञ्जगामकम्म उदयवियप्पा छावत्तरि सदा एयागस ७६११ ।

“ति-हु-इगि-णउदी अट्ठाहिय-चहु-दुरहिय असिदि असिदिं च ।

ऊणासिदि अट्ठत्तर सत्तत्तरि दस य णव संता ॥”

संतपगडिट्ठाणाणि । तं जहा—णिरयगइ-तिरियगइ-मणुसगइ-देवगइ-एइन्द्रिय-वेइन्द्रिय-तेइन्द्रिय-
चउरिन्द्रिय-पंचिन्द्रियजाइ - ओरालिय - वेउत्तिय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीर-ओरालिय - वेउत्तिय-
आहार-तेज-कम्मइयसरीरवण-ओरालिय - वेउत्तिय-आहार-तेजा - कम्मइयसरीरसंवाद्-उसंठाण-
तिणिग अंगोवंग-उसंघडण-पंचवण-दोगंव-पंचरस-अट्ठफास-चत्तारि आणुपुव्वी-अगुल्लहुगादि
चत्तारि-आदावुल्लोव-दो विहायगइ-तसादि दसजुगल-णिमिण-तित्थयरणासाओ पगडीओ धेत्तुण
तेगउदिसंतट्ठाणं ६३ । एदाओ चेव तित्थयरविरहियाओ वाणउदिसंतट्ठाणं ६२ । आहार-
दुगविगहियाओ तेगउदिपगडीओ धेत्तुण इक्काणउदिसंतट्ठाणं । एदाओ तित्थयरविरहियाओ
धेत्तुण णउदिसंतट्ठाणं ६० । णउदिसंतट्ठाणादो एइन्द्रियसु देवगइ-देवगइपाओगाणुपुव्वीसु उत्ति-
ल्लिदसु अट्ठासीदिसंतट्ठाणं ५५ । अट्ठासीदिदो णिरयगइ-वेउत्तियसरीर-वेउत्तियसरीरंगोवंग-
णिरयगइपाओगाणुपुव्वीसु उत्तिल्लिदसु चउरासीदिसंतट्ठाणं ५४ । चउरासीदिसंतटादो तेउ-
वाउकाइएसु मणुसगइ-मणुसगइपाओगाणुपुव्वी उत्तिल्लिदसु वासीदिसंतट्ठाणं होइ ५२ । तेण-
उदि-वाणउदि एक्काणउदि [णउदि] संतादो अणियट्ठिखवयम्मि णिरयगइ-तिरियगइ-एइन्द्रिय-वेइन्द्रिय-
तेइन्द्रिय-चउरिन्द्रियजादि-णिरयगइ-तिरियगइपाओगाणुपुव्वी-आदाउल्लोव-थावर - सुहुम-साहारण-
एदामु तेगसमयडीसु खवियासु असीदि ५०, एगुणसीदि ५६, अट्ठहत्तरि ७५, सत्तत्तरि ७७
संतट्ठाणाणि हुंति । मणुसगइ पंचिन्द्रियजाइ-मणुसगइपाओगाणुपुव्वी-नस-वाद्दर-पज्जत्त-सुभग-
आदेज-जसकित्ति-तित्थयरणासाओ पगडीओ धेत्तुण दससंतट्ठाणं अजोगिचमसमए होइ १० ।
एदाओ चेव तित्थयरवज्जाओ पगडीओ धेत्तुण णवसंतट्ठाणं तम्मि चेव होइ ६ । एवं तेरस
संतट्ठाणि हुंति । इक्केक्कस्स संतट्ठागस्स इक्केक्को चेव भंगो । १३६१५ । ७६११ ।

णव पंचोदयसंता तेवीसे पणुवीस छव्वीसे ।

अडु चउरडुवीसे णव सत्तमुगुतीस तीसम्मि ॥४०॥

एगेगं इगितीसे एगेगुदय अहुसंतम्मि ।

उवरदबंधे चउ दस वेदादि संतम्मि ठाणाणि ॥४१॥

‘णव पंचोदयसंता’ तेवीस बंधट्ठाणे पणुवीसबंधठाणे छव्वीसबंधठाणे इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एकत्तीस एदाणि णवउदयट्ठाणाणि, वाणउदि णवदि अट्ठासी चउरासी वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि होंति । अट्ठावीस बंधट्ठाणे इगिवीस पंचवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एकत्तीस एदाणि अट्ठ उदयट्ठाणाणि हुंति, वाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि हुति । एगूणतीस बंधट्ठाणे तीसबंधट्ठाणे इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एकत्तीस एदाणि णव उदयट्ठाणाणि, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि संतट्ठाणाणि हुंति । ‘एगेगं इगितीसे’ इक्कत्तीस बंधट्ठाणे तीसउदयट्ठाणं, तेणउदिसंतट्ठाणं होदि । इक्कविहबंधट्ठाणे तीस उदयट्ठाणं, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि उणासी अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि हुंति । णामाबंधगे तीस इक्कत्तीस णव अट्ठ एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि हुति, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि दस संतट्ठाणाणि ।

तिवियप्पपगडिद्धाणाणि जीवगुणसण्णिदेसु ठाणेषु ।

भंगा पडंजियव्वा जत्थ जहा पयडिसंभवो होदि ॥४२॥

‘तिविअप्पपयड्डिट्ठाणाणि जीवगुणसण्णदेसु ठाणेसु’ बंधोदयसंतकम्माणं तिविधाण पग-
ड्डिट्ठाणाणि पञ्जियन्वाणि, भंगा वि पञ्जियन्वा जीवट्ठाणेसु गुणट्ठाणेसु य ।

तेरेसु जीवसंखेवएसु णाणंतराय तिवियप्पो ।

एयम्मि ति-दुवियप्पो करणं पइ एत्थ अवियप्पो ॥४३॥

‘तेरसेसु जीवसंखेवएसु’ सण्णपच्चिदियं-पल्लत्त-वज्ज तेरसेसु जीवसमासेसु णाणावरणं-तराइयाणं पंच बंधं पंच उदयं पंच संतं । एकस्मि सण्णपच्चिदियपल्लत्त जीवसमासे बंधं पंच, उदयं पंच संतं पंच । उवरद्वबंधे पंच उदयं पंच संतं । ‘करणं पदि’ द्विविदियं पडुच्च सजोगि-केवल्लिस्स इत्थ णाणावरण-अंतराइएसु वियप्पो णत्थि ।

तेरे णव चढु पणयं णवंस एयम्मि तेरस वियप्पा ।

वेदणीयाउगगोदे विभज्ज मोहं परं बुच्छं ॥४४॥

‘तेरे णव चट्ठ पणयं’ सण्णपच्चिंदियपज्जत्तावज्ज सेसेसु जीवसमासेसु दंसणावरणस्स णव बंधं, चत्तारि उदयं, णव सतं; णव बंधं पंच उदयं णव संतं एवं दुवियप्पा । सण्णपच्चिंदिय-पज्जत्त-जीवसमासे णव बंधं चत्तारि उदयं णव संतं; णव बंधं पंच उदयं णव सतं, छ बंधं चत्तारि उदयं णव संतं, छ बंधं पंच उदयं णव संतं, चत्तारि बंधं चत्तारि उदयं णव संतं, चत्तारि बंधं पंच उदयं णव संतं, चत्तारि बंधं चत्तारि उदयं छ संतं, चत्तारि बंधं पंच उदयं छ संतं । उवरदबधे चत्तारि उदयं णव संतं, पंच उदयं णव संतं, चत्तारि उदयं छ संतं, पंच उदयं छ संतं, चत्तारि उदयं चत्तारि संतं । एत्थ वि करणं पदि अविद्यप्पो । ‘वेदणीयात्तगोदे विभज्ज मोहं परं बुच्छं ।’

१३ ॥

[illegible]

8
 7
 6
 5
 4
 3
 2
 1
 0
 9
 8
 7
 6
 5
 4
 3
 2
 1
 0

۱) ۲) ۳) ۴) ۵) ۶) ۷) ۸) ۹) ۱۰) ۱۱) ۱۲) ۱۳) ۱۴) ۱۵) ۱۶) ۱۷) ۱۸) ۱۹) ۲۰) ۲۱) ۲۲) ۲۳) ۲۴) ۲۵) ۲۶) ۲۷) ۲۸) ۲۹) ۳۰) ۳۱) ۳۲) ۳۳) ۳۴) ۳۵) ۳۶) ۳۷) ۳۸) ۳۹) ۴۰) ۴۱) ۴۲) ۴۳) ۴۴) ۴۵) ۴۶) ۴۷) ۴۸) ۴۹) ۵۰) ۵۱) ۵۲) ۵۳) ۵۴) ۵۵) ۵۶) ۵۷) ۵۸) ۵۹) ۶۰) ۶۱) ۶۲) ۶۳) ۶۴) ۶۵) ۶۶) ۶۷) ۶۸) ۶۹) ۷۰) ۷۱) ۷۲) ۷۳) ۷۴) ۷۵) ۷۶) ۷۷) ۷۸) ۷۹) ۸۰) ۸۱) ۸۲) ۸۳) ۸۴) ۸۵) ۸۶) ۸۷) ۸۸) ۸۹) ۹۰) ۹۱) ۹۲) ۹۳) ۹۴) ۹۵) ۹۶) ۹۷) ۹۸) ۹۹) ۱۰۰)

वावट्टि वेदणीए आउस्स हवन्ति तिरधियसयं च ।

गोदस्स य सगदालं जीवसमासेसु बोधन्वा ॥४५॥

‘वेदणीयाउगो गोदे वावट्टि’ वेदणीए सादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; सादं बंधं असादं उदयं सादासादं संतं; असादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; असादं बंधं असादं उदयं असादं संतं एकस्स जीवसमासस्स चत्तारि वियप्पा लोभमुत्ति [लभामो तो] चउदसेसु जीवसमासेसु केत्तिया हुंति त्ति चउहि चोदस जीवसमासा गुणिया छप्पण्णा हुंति ५६ । णेव सण्णिणेवासण्णिम्मि सादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; सादं बंधं असादं उदयं सादासादं संतं; उवरदबंधे सादं उदयं सादासादं संतं, असादं उदयं सादासादं संतं; अजोगि - चरमे सादं उदयं सादं संतं; असादं उदयं असादं संतं एदे छ भंगा पुव्विल्ल छप्पण्णभंगा मेलाविय वावट्टि भंगा हुंति वेदणीयस्स ६२ ।

‘आउगस्स हवन्ति तिरधियसयं च’ सुहुमिंदियापल्लत्तजीवसमासम्मि तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं, तिरिक्खाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं । एदे पंच भंगा । एवं असण्णिपंचिदियपल्लत्त-सण्णिपंचिदियपल्लत्तापल्लत्तजीवसमासाणं सव्वे भंगा पणवण्णा ५५ । असण्णिपंचिदियपल्लत्तयम्मि तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं; गिरयाउगं बंधं गिरयाउगं उदयं तिरिक्ख-गिरयाउगं संतं । उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-गिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगमुदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; एवं णव भंगा ६ । सण्णिपंचिदियपल्लत्तजीवसमासम्मि गिरयाउगं उदयं गिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं गिरयाउगं उदयं गिरय-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे गिरयाउगं उदयं गिरय-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं गिरयाउगं उदयं गिरय-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे गिरयाउगं उदयं गिरय-मणुसाउगं संतं एवं भंगा पंच ५ । तिरिक्खस्स तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं, गिरयाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-गिरयाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-गिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं, उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं । एवं णव भंगा ६ । मणुसस्स मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; गिरयाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं, मणुस-गिरयाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-गिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरियाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं, उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं । एवं णव भंगा ६ । देवस्स देवाउगं उदयं देवाउगं संतं, तिरिक्खाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं । एवं पंच भंगा ५ ।

सण्णिपंचिदियअपल्लत्तजीवसमासम्मि तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं; तिरिक्खाउगं

बंधं तिरिक्खाडगमुदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाडगं संतं, उवरदबंधे तिरिक्खाडगं उदयं तिरिक्खाडगं संतं; मणुसाडगं बंधं तिरिक्खाडगमुदयं तिरिक्ख-मणुसाडगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाडगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाडगं संतं । एवं पंच भंगा ५ । मणुसाडगं उदयं मणुसाडगं संतं; तिरिक्खाडगं बंधं मणुसाडगं उदयं मणुस-तिरिक्खाडगं संतं । उवरदबंधे मणुसाडगं उदयं मणुस-तिरिक्खाडगं संतं, मणुसाडगं बंधं मणुसाडगं उदयं मणुस-मणुसाडगं संतं । उवरदबंधे मणुसाडगं उदयं मणुस-मणुसाडगं संतं । एवं पंच भंगा ५ ।

गेव सण्णी-गेवासण्णीसु मणुसाडगं उदयं मणुसाडगं संतं एक्को चेव भंगो १ । सव्वे भंगा आडगस्स तिउत्तरसदं १०३ ।

['गोदस्स य सगदालं'] सुहुमेइंदियापज्जत्तजीवसमासम्मि उच्च बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसंतं, णीचं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसंतं, णीचं बंधं णीच उदयं णीच-णीच-संतं । एस तदियभंगो ३ तेउ-वाउकाइएसु उच्चमुवेल्लिऊण तम्मि दिट्ठस्स [द्विदस्स] वा अण्णत्थ उप्पणस्स वा होइ । एवं तिण्णि भंगा । एवं सण्णिपंचिदियपज्जत्तवज्ज सेसतेरसजीवसमासाण । एदेसिं भंगा एगूणचालीसं ३६ । सण्णिपंचिदियपज्जत्तजीवसमासम्मि उच्चं बंधं उच्चं उदयं उच्च णीच संतं; उच्चं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचं संतं; णीचं बंधं उच्च उदयं उच्च-णीचसंतं, णीचं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसंतं; णीचं बंधं णीचं उदयं णीच-णीचं संतं । उवरदबंधे उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं । एदे छ भंगा ६ ।

गेवसण्णी-गेवासण्णीसु उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं, अजोगिचरमसमए उच्चं उदयं उच्चं संतं, एदे दो भंगा २ । गोदस्स सव्वे भंगा सत्तेतालीसा हुंति ४७ ।

अट्ठसु पंचसु एगे एगं दुग दस दु मोहबंधगये ।

तिय चट्ठ णव उदयगदे तिय तिय पण्णरस संतम्मि ॥४६॥

मोहं बुच्छं 'अट्ठसु पंचसु एगे' सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ता बादरेइंदिय-अपज्जत्ता बीइंदिय अपज्जत्त तीइंदिय अपज्जत्त चउरिंदियअपज्जत्त असण्णिपंचिदिय अपज्जत्त एदेसु अट्ठसु जीवसमा-सेसु वावीसबंधठाणं एगं, दस णव अट्ठ एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि, अट्ठवीस सत्तावीस छव्वीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि । बादरेइंदियपज्जत्त बीइंदियपज्जत्त तीइंदियपज्जत्त चउरिंदियपज्जत्त असण्णिपंचिदियपज्जत्त एदेसु पंचसु जीवसमासेसु वावीस इक्कवीस एदाणि दोण्णि बंधट्ठाणाणि, दस णव अट्ठ सत्त एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि, अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि । सण्णिपंचिदियपज्जत्तजीवसमासम्मि वावीस इक्कवीस सत्तरस तेरस णव पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि एक एदाणि दस बंधट्ठाणाणि, दस णव अट्ठ सत्त छ पंच चत्तारि दु इक्क एदाणि णव उदयट्ठाणाणि, अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस चउवीस तेवीस वावीस इक्कवीस तेरस वारस एक्कारस पंच चत्तारि तिण्णि दुग इक्क एदाणि पण्णरस संतट्ठाणाणि । उवरदबंधे एगपगडि-उदय, अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एक एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि ।

पणग दुग पणग पणगं चट्ठ पण बंधुदयसंतपणगं च ।

पण छक्क पण य छक्कं पणय अट्ठट्ठमेयारं ॥४७॥

सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य बादरो चेव ।

विगलंदिया य तिण्णि दु तहा असण्णी य सण्णी य ॥४८॥

इदाणि णासं भणिस्सामो—'सत्तेव अपज्जत्ता' सुहुमादि सत्तसुअपज्जत्तजीवसमासेसु तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि, इगिवीस चउवीस एदाणि दोण्णि उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । सुहु-

मिदियपल्लत्तम्मि तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस एदाणि पंच संत[वंध]ट्ठाणाणि इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि, वाणउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । वादरेइंदियपल्लत्तजीवसमासम्मि तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस एदाणि पंच वंधट्ठाणाणि, इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । वीइंदियपल्लत्त तीइंदियपल्लत्त चदुरिदियपल्लत्त एदेसु तीसु जीवसमासेसु तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच वंधट्ठाणाणि, इगिवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस एकतीस एदाणि छ उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । असण्णिपंचिदियपल्लत्तजीवसमासम्मि तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एदाणि छ वंधट्ठाणाणि, इक्कवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि छ उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । सण्णिपंचिदियपल्लत्तजीवसमासम्मि तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं इक्कतीसं एकं एदाणि अट्ठ वंधट्ठाणाणि, एकवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि अट्ठ उदयट्ठाणाणि, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि इकारस संतट्ठाणाणि । उवरदव्वे उदयट्ठाणं तीसं इक्कं, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि । जेव सण्णी-जेवासण्णीसु तीस इक्कतीस णव अट्ठ एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि, असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि छ संतट्ठाणाणि ।

णाणंतराय तिविहमवि दससु दो हुंति दोसु ठाणेसु ।

मिच्छा सासण विदिए णव चदु पण णवय संतकम्मंसा ॥४६॥

मिस्सादि-णियट्ठीदो सो[छ]चउ पण णव य संतकम्मंसा ।

चंदुबंधं तिय चदु पण णव अंस दुवे छलंसा य ॥५०॥

उवसंतै खीणम्मि य चदु पण णव छच्च संत चउजुगलं ।

वेदणियाउगगोदे विभज्ज मोहं परं वुच्छं ॥५१॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइओ त्ति एदेसु दससु गुणट्ठाणेसु णाणावरणंतगाइ-याणं पंच वंधं पंच उदयं पंच संतं । उवसंत-खीणकसाय एदेसु दोसु गुणट्ठाणेसु पंच उदयं पंच संतं । दंसणावरणम्मि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि एदेसु दोसु गुणट्ठाणेसु णव वंधं, चत्तारि वा पंच वा उदयंसा, णव संता । ‘मिस्सादि अणियट्ठीदो’ सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अपुव्वकरणपढम-सत्तमभागो त्ति एदेसु छसु गुणट्ठाणेसु छ वंधं, चत्तारि वा पंच वा उदयं, णव संतं । अपुव्वकरणविदियसत्तमभागप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइओ त्ति एदेसु तीसु गुणट्ठाणेसु चत्तारि वा पंच वा उदयं, णव संतं । अणियट्ठिवग्गट्ठाए संखेल्लभागं गंतूण णिहाणिहा पचला-पचला-थीणगिट्ठी एदासु तीसु पगट्ठीसु खीणासु तवो पहुदि जाव सुहुमसंपराइयखवगो त्ति एदेसु दोसु गुणट्ठाणेसु छ संतं, वंधोदयपगट्ठीओ पुव्वुत्ताअं, चेव । उवरदव्वे उवसंतकसायम्मि चत्तारि वा पंच वा उदयं, णव संतं । खीणकसायम्मि चत्तारि वा पंच वा उदयं, छ संतं । तस्सेव चरम-समए चत्तारि उदयं, चत्तारि संतं । ‘वेदणियाउगगोदे विभज्ज मोहं परं वुच्छं’ ।

वादालतेरसुत्तरसदं च पणुवीसयं वियाणाहि ।

वेदणियाउगगोदे मिच्छादि-अजोगिणं भंगा ॥५२॥

मिच्छादिट्प्पहुदि जाव पमत्तसंजदो त्ति एदेसु छसु गुणट्ठाणेषु सादं वधं सादं उदयं सादासादं संतं, सादं वधं असादं उदयं सादासादं संतं; असादं वधं सादं उदयं सादासादं संतं, असाद वध असाद उदय सादासादं संत । एदेसिं गुणट्ठाणाणं चउवीस भंगा २४ । अप्पमत्त-सजदप्पहुदि जाव सजोगिकेवलि त्ति एदेसु सत्तसु गुणट्ठाणेषु सादं वधं सादं उदयं सादासादं संतं; सादं वधं असादं उदयं सादासाद सत । एदेसिं गुणट्ठाणाण चउदस भंगा १४ । अजोगि-केवलिम्हि साद उदयं सादासादं संतं, असादं उदयं सादासादं संतं, तस्सेव चरमसमए सादं उदयं सादं संतं असादं उदयं असादं सतं । एदेव चत्तारि भंगा ४ । सव्वभंगा वादालीसा हुंति ४२ ।

अह छवीसं सोलस वीसं छच्चेव दोसु तिण्णेव ।

दुगु दुगु दुगं च दोणि य एगेगं इक्क आउस्स ॥५३॥

मिच्छादिट्ठिम्मि गिरयाउगमुदयं गिरयाउगं संतं, तिरिक्खाउगं वधं गिरयाउगमुदयं तिरिक्ख-गिरयाउगं संतं, उवरदवंधे गिरयाउगं उदयं गिरय-तिरिक्खाउगं संतं, मणुसाउग वधं गिरयाउगं उदयं गिरय-मणुसाउगं संतं; उवरदवंधे गिरयाउग उदय गिरय-मणुसाउग संतं । एवं पंच भंगा ५ । तिरिक्खाउगं उदयं तिरियाउगं संतं, गिरयाउगं वधं तिरियाउग उदयं गिरय-तिरियाउगं संतं, उवरदवंधे तिरियाउगं उदयं गिरय-तिरियाउगं संत, तिरियाउगं वधं तिरियाउगं उदयं तिरियाउगं संतं, उवरदवंधे तिरियाउग उदयं तिरिय-तिरिक्खाउगं संत, मणुसाउग वधं तिरिया-उगं उदय तिरिय-मणुसाउगं संतं, उवरदवंधे तिरियाउगमुदयं तिरिय-मणुसाउग संतं, देवाउगं वधं तिरियाउगं उदयं देव-तिरियाउगं संतं, उवरदवंधे तिरियाउग उदयं देव-तिरियाउगं संतं । एव णव भंगा ६ । मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं, गिरयाउग वध मणुसाउगं उदयं मणुस-गिरयाउग सत, उवरदवंधे मणुसाउग उदयं मणुस-गिरयाउगं संतं, तिरियाउग वधं मणुसाउग उदयं तिरिय-मणु-साउगं संतं, उवरदवंधे मणुसाउग उदयं तिरिय-मणुसाउगं संतं; मणुसाउगं वधं मणुसाउग उदयं मणुस-मणुसाउगं संत, उवरदवंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं, देवाउग वधं मणुसाउग उदयं देव-मणुसाउगं सतं, उवरदवंधे मणुसाउग उदयं देव-मणुसाउग संतं । एवं णव भंगा । देवाउग उदयं देवाउगं संत, तिरियाउग वधं देवाउगं संतं देव-तिरियाउगं संतं, उवरदवंधे देवाउगं उदयं देव-तिरियाउगं संतं; मणुसाउग वध देवाउग उदय देव-मणुसाउगं संतं, उवरदवंधे देवाउगं उदय देव-मणुसाउगं सतं । एवं पंच भंगा ५ । एवं अट्ठावीस भंगा २८ ।

एवं सासणसम्मादिट्ठिस्स । णवरि गिरयाउग वध तिरिक्खाउगं उदय तिरिक्ख-गिरयाउग संतं, गिरयाउगं वध मणुसाउग उदय मणुस-गिरयाउगं संतं, एदे दो भंगा णत्थि । सव्वे भंगा २६ ।

सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि गिरयाउग उदय गिरयाउग संतं, गिरयाउग उदयं गिरय-तिरियाउगं संतं, गिरयाउग उदय गिरय-मणुसाउगं संतं, तिरियाउग उदयं तिरियाउगं संतं, तिरियाउगं उदय तिरिक्ख-गिरयाउगं सतं, तिरियाउगं उदयं तिरियाउग संत, तिरियाउगं उदयं तिरिय-मणुसाउग संतं, तिरियाउगं उदयं तिरिय-देवाउगं सत, मणुसाउग उदय मणुसाउग संतं, मणुसाउग उदयं मणुस-गिरयाउगं संतं, मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरियाउग संत, मणुसाउगं उदय मणुस-मणुसाउगं संत, मणुसाउग उदयं मणुस-देवाउग संत, देवाउग उदयं देवाउग संतं, देवाउगं उदय देव-तिरिया-उग संतं, देवाउगं उदयं देव-मणुसाउग सत । एवं सोलस भंगा १६ ।

असंजदसम्मादिट्ठिम्मि गिरयाउग उदयं गिरयाउगं संतं, गिरयाउगं उदयं गिरय-तिरियाउग संतं, [मणुसाउगं वधं] गिरयाउगं उदयं गिरय-मणुसाउग सत; उवरदवंधे गिरयाउगं उदयं गिरय-मणुसाउग सतं, तिरियाउगं उदयं तिरियाउगं सत, तिरियाउग उदयं तिरिय-गिरयाउगं संतं,

[तिरियाउगं उदयं तिरिय-तिरियाउगं संतं;] तिरियाउगं उदयं तिरिय-मणुसाउगं संतं; देवाउगं वंधं तिरियाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; उवरदवंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं संतं, मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं, देवाउगं वंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं; उवरदवंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं; देवाउगं उदयं देवाउगं संतं, देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं वंधं देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं । उवरदवंधे देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं । एवं वीस भंगा २० ।

संजदासंजदम्मि तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं, देवाउगं वंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; उवरदवंधे तिरियाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं, मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं, देवाउगं वंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं, उवरदवंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं । एवं छ भंगा ६ ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदेसु मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; देवाउगं वंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं; उवरदवंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं । एदेसिं गुणट्ठाणाणं छ भंगा ६ । अपुव्वकरणप्पहुदि जाव उवसंतकसाओ त्ति एदेसु चउसु गुणट्ठाणेसु मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं, एम भंगो खवगाणं पडुच्च । मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं एसो भंगो उवसाम-गाणं पडुच्च । एदेसिं गुणट्ठाणाणं अट्ठ भंगा ८ । खवग-अपुव्व-अणियट्ठि सुहुम-खीणकसाय-सजोगि-अजोगिकेवलीसु मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं । एदेसिं गुणट्ठाणाणं तिण्णि भंगा ३ ।

आउगास्स सव्वभंगा तेरसुत्तरसदा हुंति ११३ ।

मिच्छादिट्ठिम्मि उच्चं वंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं; उच्चं वंधं णीच उदयं उच्च-णीचं संतं; णीचं वंधं [उच्चं] उदयं उच्च-णीचं संतं, णीच वंधं णीचं उदयं उच्च-णीचं संतं; णीचं वंधं णीचं उदयं णीच-णीचं संतं । एस भंगो तेउ-वाउकाइएसु उच्चगोदं उव्विल्लिऊण तेसु चेव ट्ठिदस्स वा अण्णत्थ उप्पण्णस्स वा होइ । एवं पंच भंगा ५ ।

एवं सासणसम्मादिट्ठिम्मि । णवरि णीचं वंधं णीचं उदयं णीचं संतं इदि एस भंगो णत्थि । एव चत्तारि भंगा ४ । सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि असंजदसम्मादिट्ठिम्मि संजदासंजदेसु उच्चं वंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं; उच्चं वंधं णीचं उदयं उच्च-णीचं संतं, एदेसिं गुणट्ठाणाणं छ भंगा ६ । पमत्तसंजदप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइगो त्ति एदेसु पंचसु गुणट्ठाणेसु उच्चं वंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं । एदेसिं गुणट्ठाणाणं पंच भंगा ५ । उवसंतकसाय-खीणकसाय-सजोगिकेवलीसु उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं । एदेसिं गुणट्ठाणाणं तिण्णि भंगा हुंति ३ । अजोगिकेवलिम्मि उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं, तस्सेव चरमसमए उच्चं उदयं उच्चं संतं; एवं दो भंगा २ । एवं गोदस्स सव्वभंगा पंचवीस २५ ।

गुणट्ठाणएसु अट्ठसु एगेगं वंधपगडिठाणाणि ।

पंच अणियट्ठिट्ठाणे वंधोवरमो परं तत्तो ॥५४॥

सत्तादि दस दु मिच्छे आसायण मिस्से अ णवुक्कस्सं ।

छादी अविरदसम्मे देसे पंचादि अट्ठेव ॥५५॥

विरदे खओवसमिए चउरादी सत्त छ य णियट्ठिम्हि ।

अणियट्ठिवादरे पुण इक्कं च दुवे य उक्कंसा [उदयंसा] ॥५६॥

एयं सुहुमसरागो वेदेइ अवेदया भवे सेसा ।

भंगाणं च पमाणं पुव्वुदिट्ठेण णायव्वं ॥५७॥

मोहम्मि बंधोदयसंतकम्मपगडिहाणाणि पक्खखामि 'गुणट्ठाणएसु' मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अपुव्वकरणो त्ति एदेसु अट्ठसु गुणट्ठाणेषु चावीस एकवीस [सत्तारस] सत्तारस तेरस णव णव णव, एदाणि अट्ठ बंधट्ठाणाणि जहाकमेण णायव्वाणि । अणियट्ठिगुणट्ठाणे पच चत्तारि तिण्णि दो एदु एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि हुंति । उवग्गिमगुणट्ठाणेषु मोहणीयस्स बंधो णत्थि ।

'सत्तादि दससु मिच्छे' मिच्छादिट्ठिम्मि सत्त अट्ठ णव दस एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि । तं जहा-मिच्छत्तं अणंताणुबंधीणमेक्कदरं अपक्खखाणावरणाणमेक्कदरं पक्खखाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण दस-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो २४ । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण णव उदयट्ठाणं । एदस्स वि इक्को चेव चउवीस भंगो २४ । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछ-विरहियाओ हाससहियाओ घेत्तूण वा णव-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीस भंगो २४ । एदाओ चेव अणंताणुबंधी वज्ज दुगुंछसहियाओ घेत्तूण वा णव-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठउदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चेव चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछविरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीस भंगो । एदाओ चेव अणंताणुबंधिसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीस भंगो । एदाओ चेव अणंताणुबंधिरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो ।

सासणसम्मादिट्ठिम्मि सत्त अट्ठ णव एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि । एदाओ तं जहा-अणंताणुबंधीणमेक्कदरं अपक्खखाणावरणाणमेक्कदरं पक्खखाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदाओ पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो ।

सम्मादिट्ठिम्मि सत्त अट्ठ णव एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि । तं जहा-सम्मत्तं मिच्छत्तं अपक्खखाणावरणाणमेक्कदरं पक्खखाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलणमेक्कदरं भय दुगुंछा च । एदाओ पगडीओ घेत्तूण णव उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो ।

असंजदसम्मादिट्ठिम्मि छ सत्त अट्ठ णव एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि । तं जहा-सम्मत्तं अपक्खखाणावरणाणमेक्कदरं पक्खखाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलणमेक्कदरं भय दुगुंछा च । एदाओ पगडीओ घेत्तूण णव उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण सत्तउदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मतसहिय-भयरहियाओ पगडीओ घेत्तूण वा सत्तउदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो ।

सजदासंजदम्मि पंच छ सत्त अट्ठ एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि । तं जहा-सम्मत्तं पक्खखाणावरणाणमेक्कदरं संजलणकोहमाणमायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-

अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण अट्टुंउदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्टु-[सत्त]उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भय-सहियाओ घेत्तूण वा सत्त-उदय-ट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्तरहिद-दुगुंछसहियाओ घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण छ-उदय-ट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा छ-उदय-ट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण पंच-उदयट्ठाण । एदस्स वि इक्को चउवीसभंगो ।

‘विरदे खओवसमिए चउरादी’ पमत्तसंजदम्मि चत्तारि-पंच छ सत्त अट्ट एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि । तं जहा—सम्मत्तं संजलणकोहमाणमायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स रइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं । एदस्स वि पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछा-रहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहिय-भय दुगुंछा-सहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ [तदिओ] चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण पंचउदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव पग-डीओ भय-दुगुंछरहियाओ घेत्तूण वा पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा पंच उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण चत्तारि उदयट्ठाणं । एदस्स वि एक्को चउवीसभंगो ।

एवं अप्पमत्तसंजदस्स वि । अपुव्वकरणम्मि चत्तारि पंच छ एदाणि तिणिण उदयट्ठाणाणि । तं जहा—चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा च एदाओ चेव पगडीओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण पंचउदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहियाओ भयसहियाओ घेत्तूण वा पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण चत्तारि उदयट्ठाणं । एदस्स एक्को चउवीस भंगो । दंसणमोहणीयं उवसामिऊण वा उवसमसेट्ठिं चढइ, खविऊण खवगसेट्ठिं चढइ त्ति अपुव्वादिसु सम्मत्तोदओ णत्थि ।

अणियट्ठिम्मि इक्कं दोण्हं एदाणि दोणिण उदयट्ठाणाणि । तं जहा—चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं एदाओ पगडीओ घेत्तूण दोणिण उदयट्ठाणं । एदस्स वारस भंगा १२ । चउ-संजलणाणमेक्कदरं इक्कं चेव उदयट्ठाणं । एदस्स भगा चत्तारि ४ ।

‘एयं सुहुमसरागो वेदेदि’ सुहुमसंपरागो लोभसंजलणं इक्कं वेदेदि । एदस्स इक्को चेव भंगो । ‘सेसा’ उवसंतादिया अवेदया हुंति । भंगपमाणं पुव्वुत्तकमेण णायव्वं ।

इक्क य छक्केयारं एयारेयारमेव णव तिणिण ।

एदे चउवीसगदा वारस [दुग] एग पंचम्मि ॥५८॥

वारस पण सट्ठाई उदयवियप्पेहिं मोहिया जीवा ।

चुलसीदी सत्तत्तरि पदबंधसदेहिं विणोया ॥५९॥

‘एक य छक्केयारं’ दसण्हं चउवीससलागा इक्का । णवण्हं चउवीस सलागा छ । अट्ठण्हं चउवीससलागा एगारस । सत्तण्हं चउवीससलागा इक्कारस । छण्हं चउवीस सलागा इक्कारस । पंचण्हं चउवीस सलागा णव । चउण्हं चउवीस सलागा तिण्णि । एदाओ सलागाओ सव्वाओ मेलवियाओ वावण्णा होति । एदाओ चउवीसेहिं गुणिया दो पगडि-एक्कपगडिभंगसहियाओ वारससदपंचसट्ठिभंगा हुंति १२६५ । ‘वारस पणसट्ठाई’ एवं वारससदपंचसट्ठि-उदयवियप्पेण मोहियओ जीवो जीवेइ । इक्क छ इक्कारस णव तिण्णि चउवीससलागा दस-णव-अट्ठ-सत्त-छ-पच-चउसलागाहिं गुणेऊण मेलिया तिण्णि सदा वावण्णा हुंति । चउवीसेहिं गुणिया वारसेहिं दो-पगडिगुणिएहि पंचएहिं पगडिगुणिएहि सहिया चुलसीदिसदसत्तरिपदवधा हुंति ८४७७ । एदाहिं चउरासीदिसत्तत्तरिपगडीहिं मोहिदा जीवा विण्णेया ।

जोगोवओगलेसाइएहिं गुणिया हवेज्ज कायव्वा ।

जे जत्थ गुणट्ठाणे हवंति ते तस्स गुणगारा ॥६०॥

तेरस चेव सहस्सा वे चेव सदा हवंति णव चेव ।

उदयवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहणीयस्स ॥६१॥

णउई चेव सहस्सा तेवण्णा चेव हुंति बोधव्वा ।

पदसंखा गायव्वा जोगं पदि मोहणीयस्स ॥६२॥

‘तेरस चेव सहस्सा’ वेउवियमिस्सकायजोगम्मि मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तं अणंताणुबंधि-अपच्चक्खाणावरण-[पच्चक्खाणावरण-] सजलणकोहमाणमायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ चेव पगडीओ घेत्तूण दस-उदयट्ठाण । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाण । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा णव-उदयट्ठाण । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाण । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । सव्वे भंगा छण्णउदी ६६ । दसण्हं इक्कचउवीसं, णवण्हं दोचउवीसं, अट्ठण्हं इक्कचउवीस दस-णव-अट्ठपगडीहिं गुणेऊण मेलिया एत्तिया हुंति पदवधा ८६४ ।

सासणसम्मादिट्ठिस्स अणंताणुबंधि-अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण-संजलणकोहमाण-मायालोभाणमेक्कदरं इत्थि-पुरिसवेदाणमेक्कदरं, णेरइएसु सासणसम्मादिट्ठी ण उप्पज्जइ त्ति णउसयवेदो णत्थि । हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलणमेक्कदरं भय । दुगुंछा च एदाओ चेव पगडीओ घेत्तूण णव उदयट्ठाण । एदस्स इक्को सोलस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाण । एदस्स पढमो सोलस भंगो । एदाओ चेव दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाण । एदस्स विदिओ सोलस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाण । एदस्स वि इक्को सोलसभंगो । सव्वभंगा एत्तिया हुंति ६४ । णवण्हं इक्क सोलस, अट्ठण्हं वे सोलस, सत्तण्हं वे [इक्क] सोलस णव-अट्ठ-सत्त-पगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदवधा एत्तिया हुंति ५१२ ।

असंजदसम्मादिट्ठिम्मि अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण-संजलणकोहमाण-माया-लोभाणमेक्कदरं पुरिस-णउसगवेदाणं एकदर, असंजदसम्मादिट्ठी इत्थीवेदे ण उप्पज्जइ । पुव्वाउगवधो पढमपुढवीए उप्पज्जइ त्ति णवुसगवेदो लब्भइ । हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ चेव पगडीओ घेत्तूण [णव-] उदयट्ठाण, एदस्स इक्को सोलसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाण । एदस्स पढमो सोलस भंगो । एदाओ चेव

पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ सोलस-भंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहिय-दुगुंछासहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ सोलसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो सोलस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा सत्त उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ सोलस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा सत्त-उदय-ट्ठाणं । एदस्स तिदिओ सोलस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण छ-उदय-ट्ठाणं । एदस्स वि इक्को चेव सोलस भंगो । सव्वभंगा एत्तिया हुंति १२८ । णवणं इक्क सोलस, अट्ठणं तिणिण सोलस, सत्तणं तिणिण सोलस, छणं इक्क सोलसं णव-अट्ठ-सत्त-छपगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ६६० ।

कम्मइयकायजोगिस्मि मिच्छादिट्ठिस्मि असंजदसम्मादिट्ठीणं वेउव्वियमिस्सस्मि जहा भणियं तहा भाणियव्वं । मिच्छादिट्ठि-भंगा ८६४ । असंजदसम्मादिट्ठिभंगा १२८ । पदसंख्या ६६० ।

सासणसम्मादिट्ठिस्स अणंताणुबंधि-अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण-संजलणकोहमाण-मायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगुंछरहिय-[भय-]सहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदस्स सव्वे भंगा ६६ एत्तिया हुंति । णवणं इक्क चउवीस, अट्ठणं वे चउवीस, अट्ठणं [सत्तणं] एक [चउवीस], णव-अट्ठ-सत्तपगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ७६८ ।

ओरालियमिस्सस्मि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं जहा कम्मइयकायजोगिस्मि भणियं तहा [भाणियव्वं] । मिच्छादिट्ठि-भंगा ६६ । पदसंख्या ८६४ । सासणसम्मादिट्ठि-भंगा ६६ । पदसंख्या ७६८ ।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स सम्मत्तं अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण-संजलणकोहमाणमाया-लोभाणमेक्कदरं पुरिसवेद हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पग-डीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को अट्ठभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो अट्ठभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहि-याओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ अट्ठभंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्त-रहिय-दुगुंछसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ अट्ठभंगो । एदाओ चेव पयडीओ भयरहियाओ दुगुंछसहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो अट्ठभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण सत्तउदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ अट्ठ-भंगो । एदाओ पगडीओ सम्मत्तरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ अट्ठभंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं । एदस्स वि इक्को अट्ठ-भंगो । सव्वभंगा एत्तिया हुंति ६४ । णवणं इक्क अट्ठ, अट्ठणं तिणिण अट्ठ, सत्तणं तिणिण अट्ठ, छणं इक्क अट्ठ । णव - अट्ठ-सत्त - छपगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ४८० ।

वेउव्वियकायजोगिस्मि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठीणं जहा गुणट्ठाणाणि रंभेऊणं भणियं तहा भाणियव्वं । मिच्छादिट्ठि-भंगा १६२ । पदसंख्या १६३२ । सासणसम्मादिट्ठि-भंगा ६६ । पदसंख्या ७६८ । सम्मामिच्छादिट्ठि-भंगा ६६ । पद-बंधा ७६८ । असंजदसम्मादिट्ठि-भंगा १६२ । पदबंधा १४४० ।

आहारकायजोगिस्मि पमत्तसंजदस्स सम्मत्तं संजलणकोहमाणमायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदानमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तण छ-उदयट्ठाणं । एदस्स पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तण वा छ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहिय-दुगुंछ-सहियाओ घेत्तण वा छ-उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तण पंच-उदयट्ठाण । एदस्स वि पढमो चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तण वा पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ घेत्तण वा पंच उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीस-भंगो । एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तण वा चत्तारि उदयट्ठाणं । एदस्स वि इक्को चेव चउवीसभंगो । सव्वभगा एत्तिया हुंति १६२ । सत्तण्हं इक्को चउवीसभंगो, छण्हं तिण्णि चउवीसभंगो, पंचण्हं तिण्णि चउवीसभंगो, चउण्हं इक्क चउवीसभंगो, सत्त-छ-पंच-चउपगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति १०५६ ।

एवं आहारमिस्सस्मि । पमत्तसंजदभंगा १६२ । पदबंधा १०५६ । एवं वेउव्वियमिस्स-कम्मइय-ओरालियमिस्स-वेउव्वियाहाराहारमिस्सकायजोगस्स सव्वभंगा इत्तिया हुति १८२४ । पदबंधा एत्तिया हुंति १३७६० ।

मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइओ त्ति एदेसु दससु गुणट्ठाणेसु चत्तारि मणजोग-चत्तारि वचिजोग-ओरालिय-कायजोगा हुंति । एदेसिं इक्केक्कजोगस्मि पुव्वुत्तगुणट्ठाणेसु दससु भणिय-उदयवियप्पा वारससदा पण्णट्ठा हुंति १२६५ । ते सच्चमणजोगादि-णवजोगेहिं गुणिया एत्तिया हुंति ११३८५ । एदे उदयवियप्पा वेउव्वियमिस्सादिसु छसु जोगेसु भणिद-अट्ठारस-सद-चउवीस-छउदयवियप्पेहिं मेलविया सव्वबंधवियप्पा एत्तिया हुंति १३२०६ । एवं 'तेरस चेव सहस्सा वे चेव सदा हवन्ति णव चेव' । पुव्वुत्तगुणट्ठाणेसु भणिद-पदबंधा चउरासीदिसदसत्तत्तरी ८४७७ णवजोगेहिं गुणिया एत्तिया हुंति ७६२६३ । एदे पदबंधा वेउव्वियमिस्सकायजोगादिसु भणिय-तेरससहस्स-सत्तसदसट्ठि-पदवचेहिं सहिया सव्वपदबंधा एत्तिया हुंति ६००५३ । 'णउदी चेव सहस्सा तेवण्णा चेव हुंति बोधव्वा ।'

सत्तत्तरि चेव सदा णवणउदा चेव हुंति बोधव्वा ।

उदयवियप्पे जाणसु उवओगा मोहणीयस्स ॥६३॥

इक्कावण्णसहस्सा तेसीदा चेव हुंति बोधव्वा ।

पदसंखा णायव्वा उवओगे मोहणीयस्स ॥६४॥

'सत्तत्तरि चेव सदा' मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीसु मदि-अण्णाण सुद-अण्णाण विभंगा-णाणं चक्खुदसणं अचक्खुदसणं एदे पंच उवओगा हुति । एदे से [सिं] इक्केक्कस्मि उवओगस्मि तेसु गुणट्ठाणेसु पुव्वभणिद-उदयवियप्पा दुसदा अट्ठसीदा लब्धंति २८८ । ते पंचउवओगेहिं गुणिया एत्तिया हुंति १४४० । तेसु गुणट्ठाणेसु अप्पणो उदयवियप्पा अप्पणो पगडीहिं पुध पुध गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति २४०० । ते पंच-उवओगेहिं गुणिया पदबंधा हुति १२००० ।

सम्मा मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेसु तिसु गुणट्ठाणेसु आभिणिबोधिय-णाणं सुदणाणं ओहिणाणं चक्खुदसणं अचक्खुदसणं ओधिदंसणं एदे छ उवओगा हुति । एदेसिं इक्केक्कस्मि उवओगस्मि तेसु तीसु गुणट्ठाणेसु पुव्वभणिद-उदयवियप्पा चत्तारि सदा असीदी

लब्धंति ४८० । एदे छ-उवओगेहिं गुणिया एत्तिया हुंति २८८० । तेसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो भणिय-उदयवियप्पा पुध पुध अप्पण्णो पगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ३४५६ । ते छ-उवओगेहिं गुणिया पदबंधा एत्तिया हुंति २०७३६ ।

पमत्तसंजद-अपमत्तसंजद-अपुव-अणियट्ठि-सुहुमसंपराइय एदेसु पंचसु गुणट्ठाणेषु आभिणि-वोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं मणपल्लवणाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं एदे सत्त उवओगा हुंति । एदेसि उवओगम्मि तेसु पंचसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो पुव्वभणिदवियप्पा मेलिया चारि सदा सत्ताणउदी लब्धंति ४६७ । एदे सत्त-उवओगेहिं गुणिया इत्तिया हुंति ३४७६ । एदेसु पंचसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा अप्पण्णो पगडीहिं गुणिऊण मेलविया २६२१ हुंति । एदे सत्त उवओगेहिं गुणिया पदबंधा एत्तिया हुंति १८३४७ । सव्व-उदयवियप्पा मेलिया इत्तिया हुंति ७७६६ । एवं 'सत्तत्तरि चेव सदा णवणउदा चेव उदया हवन्ति बोधव्वा ।' सव्वपदबंधा मेलिया एत्तिया हुंति ५१०८३ । 'एक्कावण्णसहस्सा तेसीदा चेव हुंति बोधव्वा ।'

वावण्णं चेव सदा सत्ताणउदा हवन्ति बोधव्वा ।

उदयवियप्पे जाणसु लेसं पदि मोहणीयस्स ॥६५॥

अट्ठत्तीससहस्सा वे चेव सदा हवन्ति सगतीसा ।

पदसंखा णादव्वा लेसं पदि मोहणीयस्स ॥६६॥

'वावण्णं चेव सदा' मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदसम्मादिट्ठिस्स[त्ति]एदेसु चउसु गुणट्ठाणेषु किण्ह णील काउ तेउ पम्म सुक्क छ लेसा हुंति । एदेसिं इक्का वा लेस्साए चउसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा मेलिया पंचसदा छावत्तरी लब्धंति ५७६ । एदे छ-लेसाहिं गुणिया एत्तिया हुंति ३४५६ । तेसु चउसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो पुव्वभणिदवियप्पा अप्पण्णो पगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ४६०८ । एदे छ-लेसाहि गुणिया पदबंधा एत्तिया हुंति २७६४८ ।

संजदसंजद पमत्तसंजद अपमत्तसंजद एदेसु तिसु गुणट्ठाणेषु तेउ-पम्म-सुक्कलेसा तिण्णि हुंति । एदेसिं इक्केका य लेस्सा एत्तिएसु तिसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा मेलिया पंचसदा छावत्तरी लब्धंति ५७६ । एदे तीहिं लेसाहिं गुणिया उदयवियप्पा एत्तिया हुंति १७२८ । तेसु तिसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा अप्पण्णो पगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ३३६० । एदे तीहिं लेसाहिं गुणिया पदबंधा एत्तिया हुंति १००८० ।

अपुव्वकरणप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइगो त्ति एदेसु तीसु गुणट्ठाणेषु सुक्कलेसा इक्का चेव । तेसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा मेलिया एत्तिया हुंति [११३] । इक्काए लेसाए गुणिया वि तत्तिया चेव । तेसि पमाणं तेरसुत्तरसदा ११३ । तेसु तीसु गुणट्ठाणेषु अप्पण्णो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा अप्पण्णो पगडीहिं पुध पुध गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया [५०६] हुंति । एक्काए सुक्कलेसाए गुणिया तत्तिया चेव । तेसि पमाणं णवुत्तरपंचसदा ५०६ । सव्व-उदयवियप्पा मेलिया एत्तिया हुंति ५२६७ । एवं 'वावण्णं चेव सदा सगणउदा चेव हुंति बोधव्वा' । सव्वपदबंधा मेलिया एत्तिया हुंति ३८२३७ । एवं 'अट्ठत्तीस सहस्सा वे चेव सदा हवन्ति सगतीसा' ।

'जोगोवजोगं' जम्मि गुणट्ठाणे [जे] जोगादिया-हुंति, ते तम्मि गुणगारा हुंति त्ति । जोगोवओगलेसा-संजमादीहि गुणिया उदयवियप्पा पदसंखा य हुंति त्ति जाणियव्वा ।

तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से पंच चउ णिअट्ठिम्मि तिण्णि ।

दस वादरम्मि सुहुमे चत्तारिं य तिण्णि उवसंते ॥६७॥

‘तिण्णेगे एगेगं’ मिच्छादिट्ठिम्हि अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि । सासणसम्मादिट्ठिम्हि अट्ठावीससंतट्ठाणमेकं । सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि अट्ठावीस सत्तावीस एदाणि दोण्णि संतट्ठाणाणि । असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजद-अप्पमत्तसजद एहेसु चरसु गुणट्ठाणेषु अट्ठावीस चउवीस तेवीस वावीस इक्कवीस एदाणि पंच सतट्ठाणाणि । अपुव्वकरणम्हि अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि हुति उवसमगम्हि । खवगम्हि इगिवीस वादर-अणियट्ठिम्हि अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि हुति उवसामगे । खवगे पुण इक्कवीस तेरस वारस इक्कारस पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि एदाणि अट्ठ सतट्ठाणाणि हुंति । अणियट्ठिसुहुमम्हि अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एदाणि तिण्णि सतट्ठाणाणि हुति उवसामगे । खवगे पुण एगं लोभसंजलणसंतं । उवसंतकसायम्हि अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि हुंति ।

छण्णव छ त्तिय सत्त य एग दुग तिग दु तिगट्ठ चट्ठं ।

दुग दुग चट्ठ दुग पण चट्ठ चउरेग चट्ठ पणगेग चट्ठं ॥६८॥

एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छदुमत्थ-केवल्लिजिणाणं ।

एगं चट्ठ एग चट्ठ दो चट्ठ दो छक्क उदयकम्मसा ॥६९॥

इत्थानि णामस्स बुच्छामि—मिच्छादिट्ठिम्हि तेवीस पणुवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एदाणि छ वंधट्ठाणाणि, इक्कवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि णव उदयट्ठाणाणि, चाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि छ संतट्ठाणाणि ।

सासणसम्मादिट्ठिम्हि अट्ठावीस एगूणतीस तीस एदाणि तिण्णि वंधट्ठाणाणि, इक्कवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस [तीस] इक्कतीस एदाणि सत्त उदयट्ठाणाणि, णउदि इक्कं संतट्ठाणं । सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि दोण्णि वंधट्ठाणाणि, एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि, चाणउदि णउदि एदाणि दोण्णि संतट्ठाणाणि । असंजद-सम्मादिट्ठिम्हि अट्ठावीस एगूणतीस तीस एदाणि तिण्णि वंधट्ठाणाणि, इक्कवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एगतीस एदाणि अट्ठ उदयट्ठाणाणि, तेणउदि चाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि । संजदासंजदम्हि अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि दोण्णि वंधट्ठाणाणि, तीस इक्कतीस एदाणि दुण्णि उदयट्ठाणाणि, तेणउदि चाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि । पमत्तसजदम्हि अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि दोण्णि वंधट्ठाणाणि, पणुवीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, तेणउदि चाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि । अप्पमत्तसंजदम्हि अट्ठावीस एगूणतीस तीस एगतीस एदाणि चत्तारि वंधट्ठाणाणि, तीस इक्क-उदयट्ठाणं, तेणउदि चाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि ।

अपुव्वकरणम्हि अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस इक्क एदाणि पंच वंधट्ठाणाणि, तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, तेणउदि चाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि । अणियट्ठिम्हि जसकित्ती इक्कं च वंधट्ठाणं, तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, तेणउदि चाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि । सुहुमम्हि जसकित्ती इक्कं च वंधट्ठाणं, तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, तेणउदि चाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि । उवसंतकसायम्हि तीस इक्क उदयट्ठाणं, तेणउदि चाणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि । खीणकसायम्हि तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, असीदि एगूणा-

सीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि । सजोगिकेवल्लिम्भि तीसं इक्कत्तीसं एदाणि दोणिण उदयट्ठाणाणि, असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि । अजोगिकेवल्लिम्भि णव अट्ठ एदाणि दुणिण उदयट्ठाणाणि, असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि छ संतट्ठाणाणि ।

दो छक्कट्ठ चउक्कं गिरयादिसु वंधपगडिठाणाणि ।

पण णव दसयं पणय त्ति पंच वार चउक्कं तु ॥७०॥

‘दो छक्कट्ठ चउक्कं’ णेरइयम्भि एगूणतीसं तीसं एदाणि दोणिण वंधट्ठाणाणि, इक्कवीस पणुवीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । [तिरिक्खगइम्भि तेवीस पंचवीस छव्वीस अट्ठावीस ऊणत्तीस तीस एदाणि छ वंधट्ठाणाणि, इगिवीस चटुवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस ऊणत्तीस तीस एकत्तीस एदाणि णव उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि ।] मणुसम्भि तेवीस पंचवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीसं इक्कं एदाणि अट्ठ वंधट्ठाणाणि, एकवीस पंचवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस णव अट्ठ एदाणि दस उदयट्ठाणाणि, तेणउदि वाणउदि एक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि वारस संतट्ठाणाणि । देवगइम्भि पंचवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि चत्तारि वंधट्ठाणाणि, इक्कवीस पंचवीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि ।

इगि विगल्लिंदिय सयले पण पंचय अट्ठ वंधट्ठाणाणि ।

पण छक्कदसयमुदयं पण पण तेरे दु संतम्भि ॥७१॥

इगि विगल्लिंदियजादिआदि सयलिंदियम्भि तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच वंधट्ठाणाणि, इक्कवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । विगल्लिंदियम्भि तेवीस पंचवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि छ उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । पंचिंदियम्भि तेवीस पणुवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस इक्क एदाणि अट्ठ वंधट्ठाणाणि, इक्कवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस णव अट्ठ एदाणि दस उदयट्ठाणाणि, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि तेरस संतट्ठाणाणि ।

तिय दुणिण इक्किआ पण पंच य अट्ठ हुंति बंधाओ ।

पण चटु दस उदयगदा पण पण तेरे दु संतो ऊ ॥७२॥

‘तिय काया’ पुढवीकाइय-आउकाइय-वणप्फदिकाइएसु तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच वंधट्ठाणाणि, इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । ‘दुणिण य काया’ तेउ-वाउकाइएसु तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच वंधट्ठाणाणि, इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । ‘इक्किआया’ तसकाइएसु तेवीस पणुवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस इक्क एदाणि अट्ठ वंधट्ठाणाणि, इगिवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस णव अट्ठ एदाणि दस उदयट्ठाणाणि,

तेणउदि वाणउदि इक्कणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि तेरस संतट्ठाणाणि ।

इय कम्मपगडिट्ठाणाणि सुट्ठु बंधुदयसंतकम्माणि ।

गइआइएसु अट्ठसु चउप्पयारेण णेयाणि ॥७३॥

इय एवं बंधुदयसंतकम्मपगडिट्ठाणाणि [सुट्ठु] सम्मं णाऊण गइआइएसु णिरयगइ एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चदुरिंदिय पंचिंदिय तिरिक्खगइ मणुसगइ देवगइ एदासु अट्ठमग्गाणासु वध-उदय-उदीरणा-संतसरूवचउत्तिहेण जाणिज्जासु ।

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जइ विसेसो ।

मोत्तूण य इगिदालं सेसाणं सव्वपगड्डीणं ॥७४॥

‘उदयस्स उदीरणस्स य’ पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-पंचअंतराइयाण मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव खोणकसाय-अट्ठाए समयाधियआवलियसेस त्ति उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव चरमसमओ त्ति । णिहापचलाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव खोणकसायसमयाधियावलियसेस त्ति उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव दुचरमसमओ त्ति । णिहाणिहा-पचला-पचला-थीणगिद्धीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तसंजदो त्ति आहारसरीरं आवलियमेत्तकालेण उट्ठावेदि त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव चरमसमयो त्ति । सादासादं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तसंजदो त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण अजोगिचरमसमओ त्ति । मिच्छत्तस्स उदीरणा मिच्छादिट्ठिचरमसमयो त्ति सम्मत्ताभिमुहमिच्छादिट्ठिअणियट्टिकरणद्धाए समयाधिय-आवलियसेस त्ति उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव चरमसमओ त्ति । लोभसजलणस्स मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सुहुमसपराइगद्धाए समयाधियआवलियसेस त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव चरमसमओ त्ति । इत्थि-णवुंसग-पुरिसवेदाण मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अणियट्टिअट्ठाए संखेज्जभागे गंतूण अप्पणो वेदगद्धाए समयाधियआवलियसेस त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव अप्पणो वेदगद्धाए चरमसमओ त्ति । सम्मत्तस्स असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुदि जाव अप्पमत्तसंजदो त्ति ताव उदीरणा । णवरि अप्पणो दंसणखवण-अणियट्टिकरणद्धाइ समयाधिय आवलियसेस त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण अप्पणो चरमसमओ त्ति । णिरय-देवाउगाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ताव उदीरणा । णवरि मरणावलियं मुत्तूण । सम्मामिच्छादिट्ठी मरणावलियवसो णत्थि । उदओ पुण अप्पणो चरमसमओ त्ति । तिरिक्खाउगस्स मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव संजदासंजदो त्ति ताव उदीरणा । णवरि अप्पणो मरणावलिय मुत्तूण । सम्मामिच्छादिट्ठी मरणावलियवसो णत्थि । उदओ पुण अप्पणो चरमसमओ त्ति । मणुसाउगस्स मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तसंजदो त्ति ताव उदीरणा । णवरि अप्पणो मरणावलिं मुत्तूण । सम्मामिच्छादिट्ठिप्प मरणावलिववदेसो णत्थि । उदओ पुण अजोगिचरमसमओ त्ति । मणुसगइ-पंचिंदिय-जाइ-तस-वादर-पज्जत्त-सुभग-आटेज्ज-जसकित्तीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सजोगिकेवली ताव उदीरणा । उदओ पुण अजोगिवरमसमओ त्ति । तित्थयरस्स सजोगिकेवलस्मि उदीरणा । उदओ पुण अजोगि त्ति । उच्चागोदस्स जहा मणुसगदि तहा णेयन्वा । आदाव-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं उदय-उदीरणा मिच्छादिट्ठिप्पहुदि । अणंताणुबंधि-एइंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय चदुरिंदिय-थावराणं मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं उदयो उदीरणा च । अपच्चक्खाणावरणचउक्क-णिरयगइ-देवगइ-वेउत्तिवय-वेउत्तिवयसरीरंगोवंग-दुभग-अगादिज्ज-अजसकित्ति-णिमिणा-[णामाणं] मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति उदयो उदीरणा च । णिरयगइ-तिरिक्खगइ मणुसगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वीणं मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु उदओ उदीरणा च । णवरि सासणे णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी णत्थि । पच्चक्खाणावरणचउक्क-तिरिक्खगइ-उज्जोव-

तिरिक्खाउग-णीचगोदाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव संजदासंजदो त्ति उदओ उदीरणा च । आहार-
सरीर-आहारसरीरंगोवंगणं पमत्तसंजदस्स आहारसरीरअं तु उट्ठाविदस्स उदयो उदीरणा च ।
अट्ठणाराय-खीलिय-असंपत्तसेवट्ठसरीरसंघडणाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अप्पमत्तसंजदो त्ति
उदयो उदीरणा च । हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय-दुगुंछाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अपुव्वकरणो
त्ति उदयो उदीरणा च । कोह-माण-मायासंजलणाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अणियट्ठि-अट्ठा-
संखेज्जभागो त्ति उदयो उदीरणा च । वज्जणाराय-णारायसरीरसंघडणाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि
जाव उवसंतकसाओ त्ति ताव उदयो उदीरणा च । ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-असंठाण-ओरा-
लियसरीरंगोवंग-वज्जरिसभणारायवइरसरीरसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास - अगुरुगलहुग - उवघाद-
परघाद-उस्सास-पसत्थापसत्थविहायगइ-पत्तेगसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुत्सर - दुत्सर-णिमिणणा-
माणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सजोगिकेवली उदयो उदीरणा च ।

णाणंतरायदसयं दंसण णव वेदणीय मिच्छत्तं ।

सम्मत्त-लोभ-वेदाउगाणि णव णाम उच्चं च ॥७५॥

एदाओ इगिदालपगडीओ पुव्वं वुत्ताओ ।

तित्थयराहारविरहियाओ अज्जेइ सव्वपगडीओ ।

मिच्छत्तवेदओ सासणो य उगुवीससेसाओ ॥७६॥

छादालसेसमिस्सो अविरदसम्मो तिदालपरिसेसा ।

तेवण्ण देसविरदो [विरदो] सगवण्ण सेसाओ ॥७७॥

उक्कुट्ठि-[उगुसट्ठि-] मप्पमत्तो वंधइ देवाउगं च इयरो वि ।

अट्ठावण्णमपुव्वो छप्पणं चावि छव्वीसं ॥७८॥

वावीसा एगुणं वंधइ अट्ठारसं तु अणियट्ठी ।

सत्तरस सुहुमसरागे सादममोहो सजोगी दु ॥७९॥

एसो दु वंधसामित्तो गइयाइएसु य णायव्वो ।

ओघादो सासाविज्जो [साहिज्जो] जत्थ जहा पयडिसंभवो होइ ॥८०॥

‘तित्थयराहारविरहियाओ’ तित्थयराहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग एदाओ तिण्णि पगडि-
विरहियाओ वीसुत्तरसद-पगडीओ मिच्छादिट्ठी वंधइ ११७ । सदगम्हि य भणिद-सोलस
मिच्छत्तंता तित्थयराहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगसहिय - एगुणवीस - पगडिरहिय - वीसुत्तरसद-
पगडीओ सासणसम्मादिट्ठी वंधइ १०१ । सदगम्हि य भणिद-सोलसमिच्छत्तंता, सासणंता
पणुवीसं तित्थयर-आहारदुगं मेलिय मणुस-देवाउगमेलिया छादालपगडि-विरहिय-वीसुत्तरस-
पगडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी वंधइ ७४ । तित्थयरमणुस-देवाउग-विरहिय-पुव्वभणिद-छादाल
पगडिविरहिया वीसुत्तरसदपगडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी [असंजदसम्मादिट्ठी] वंधइ ७७ ।
सोलस मिच्छत्तंता, पणुवीस सासणंता, असंजदसम्मादिट्ठि-अंता दस, आहारसरीर-आहार-
सरीरंगोवंगमेलिया तेवण्ण-पगडिविरहिया वीसुत्तरसदपगडीओ संजदासंजदो वंधइ ६७ ।
सदगम्हि भणिद सोलस मिच्छत्तंता, पणुवीस सासणंता, दसय- असंजदसम्मादिट्ठि-अंता,
चत्तारि देसविरदंता आहारदुगमेलिया सत्तवण्णपगडिरहियाओ ‘वीसुत्तरसदपगडीओ’ पमत्त-
संजदो वंधइ ६३ । ‘उगुसट्ठिमप्पमत्तो वंधइ’ अप्पमत्तसंजदो पंचणाणावरणीयं छ दंसणावरणीयं
सादावेदणीयं चत्तारि संजलणं पुरिसवेद हस्स रइ भय दुगुंछ देवाउगं देवगइ पंचिदियजाइ-

वेउन्विवाहार-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरसंठाण-वेउन्विवा-आहारंगोवंग वण्णचत्तारि देवगइ-
पाओगाणुपुन्नी अगुरुगलहुगादि चत्तारि पसत्थविहायगइ तस वादर पल्लत्त पत्तेगसरीर थिर
सुभ सुभग सुस्सर आदिज्ज जसकित्ती णिमिण तित्थयर उच्चगोद पच अंतराइय एदाओ ऊणसट्ठि-
पगडीओ अप्पमत्तसजदो वंधइ । सेसाओ इक्कसट्ठिपगडीओ ण वंधइ । अप्पमत्तो सेससंखेज्जदि-
भागे अट्ठावण्णं वंधइ, वासट्ठी ण वंधइ । कहं ? अंतोमुहुत्त संखेज्जखडाणि काऊण दसमे
[संखेज्जदिमे] खंडे देवाउगं ण वंधइ, तेण अट्ठावण्णपगडीओ वंधइ; वासट्ठी ण वंधइ ।
'अट्ठावण्णमपुन्वो छप्पणं चावि छव्वीसं' अट्ठावण्ण जाणि चेव अप्पमत्तोदएण खएण वंधइ,
ताणि चेव अपुव्वकरणे सेससंखेज्जदिमे भागे गतूण छप्पणं वंधइ, चउसट्ठी ण वंधइ । किं
कारणं ? णिदा-पचलाओ संखेज्जदिमे भागे वोच्छिण्णाओ । सो चेव अपुव्वकरणे पुणरवि सेस-
संखेज्जदिमे भागे गंतूण पंचणाणावरण चउदसणावरण सादावेदणीयं चत्तारि सज्जलण पुरिसवेद
हस्स रद भय दुगुं द्वा जसकित्ती उच्चगोदं पंचअंतराइय एदाओ छव्वीस पगडीओ वंधइ, चउण-
उदिपगडीओ ण वंधइ । सो चेव अपुव्वकरणो चरमसमए वावीसपगडीओ वंधइ, अट्ठाणउदि-
पगडीओ ण वंधइ । कहं ? हस्स रइ भय दुगुं द्वा च चरमसमए वुच्छिण्णाओ । 'वावीसादो
एगेगूणं वंधइ अट्ठारसं अणियट्ठी । सत्तरस सुहुमसंपराइय सादममोहो सजोगि त्ति' अणियट्ठिस्स
अतोमुहुत्तसंखेज्जभागे गंतूण इक्कवीस पगडीओ वंधइ, एगूणसदं ण वंधइ, पुरिसवेदस्स वंधो
वुच्छिण्णो । सो चेव अणियट्ठी सेससंखेज्जदिमे भागे गतूण वीसपगडी वंधइ, एगपगडिसदं ण
बंधइ; कोहसंजलणो य वुच्छिण्णो । सो चेव अणियट्ठी पुण सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण वीस-
पगडीओ वंधइ, एगुत्तरपगडिसदं ण वंधइ, माणसंजलणा य वंधवुच्छिण्णा । सो चेव अणियट्ठी
पुणरवि सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अट्ठारस पगडीओ वंधइ, वेउत्तरपगडिसदं ण वंधइ, माय-
संजलणो य वंधवुच्छिण्णो । सुहुमसंपराइओ पंचणाणावरण चत्तारि दंसणावरण सादावेदणीय
जसकित्ती उच्चगोदं पंच अंतराइय त्ति एदाओ सत्तरस पगडीओ सुहुमसंपराओ वंधइ, ति-उत्तर-
पगडिसदं ण वंधइ, लोभसंजलणस्स वंधो वुच्छिण्णो । उवसंतकसाय खीणकसाय सजोगिकेवलित्ति
एक्कपगडी सादं वंधं, एगूणवीसुत्तरपगडिसदं ण वंधइ । अजोगिस्स वंधवुच्छिण्णो । 'एसो
दु वंधसामित्तो गदिआदिएसु वि तहेव ओघादो साहिल्लो जस्स जहा पयडिसंभवो होदि । एसोघो
गुणट्ठाणेसु भणिदन्वो ।

तित्थयर देव-णिरयाउगं च तीसु वि गईसु वोधन्वा ।

अवसेसा पगडीओ हवंति सन्वासु वि गईसु ॥८१॥

एदाणि वंधसामित्तादो साधिदूण गदि आदि कादूण जाव अणाहारए त्ति णादन्वं । तित्थ-
यरपगडिसंतेण तीसु वि गदीसु अत्थि । णिरयगइ मणुसगइ देवगइ एदासु तीसु गदीसु तित्थयर-
संतेण अत्थि । तिसु [वि] गदीसु देवाउसंतेण अत्थि । देव-[णिरय]-गइ तिरिक्खगइ मणुसगइ
एदासु तिसु गदीसु णिरयाउगं [सं-] तेण अत्थि त्ति विण्णेयं । सेसाओ पगडीओ चउसु वि गईसु
अत्थि । सेसाओ ओघदिसेण गदिआदि कादूण णेयन्वं जाव अणाहारए त्ति ।

पढमकसायचदुक्कं दंसणतिग सत्तआ दु उवसंता ।

अविरदसम्मत्तादी जाव णियट्ठि त्ति वोधन्वा ॥८२॥

सत्तट्ठ णव य पण्णरस सोलस अट्ठारस वीस वावीसा ।

चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं वादरे जाण ॥८३॥

सत्तावीसं सुहुमे अट्टावीसं तु मोहपगडीओ ।
उवसंतवीयरगे उवसंता हुंति णायव्वा ॥८४॥

मोहणीयस्स गुणट्ठाणएहिं काओ पगडीओ उवसंताओ ? सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदाओ सत्त पगडीओ पंचसु ठाणएसु उवसंताओ असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुदि जाव अपुव्वकरणो त्ति । अणियट्ठिवादरस्स सत्तह णव य पण्णरस सोलस अट्टारस वीस वावीस चउवीस पणुवीस छव्वीस एदे इक्कारस भंगा अंतोमुहुत्तस्स संखेज्जदिमभागे गंतूण । सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदाओ सत्त पगडीओ पुव्वोवसंताओ । संखेज्जदिमे भागे गंतूण णवुंसकवेदो उवसंतो । सत्तपगडीसु णवुंसगवेदो छत्तेदूण अट्ट । एवं जो जहा उवसंतो, वेण जहा [सो तहा] ढोढव्वा । पुणरवि सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण इत्थीवेदो उवसंतो, तेण णव । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय दुगुंछाओ एदाओ छ पगडीओ उवसंताओ, तेण पण्णरस । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण पुरिसवेदो उवसंतो, तेण सोलस । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणकोहो पच्चक्खाणावरणकोहो उवसंतो, तेण अट्टारस । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणमाणो पच्चक्खाणावरणमाणो उवसंतो, तेण वीसं । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणमाया पच्चक्खाणावरणमाया उवसंता, तेण वावीसं । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणलोभो पच्चक्खाणावरणलोभो उवसंतो, तेण चउवीसं । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण कोहसंजलणं उवसंतं, तेण पणुवीसं । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण माणसंजलणं उवसंतं, तेण छव्वीसं । सुहुमसंपराइयस्स सत्तावीस उवसंता । क्हं ? जेण अणियट्ठिवादरचरमसमए मायसंजलणा उवसंता तेण सत्तावीस भवंति । उवसंतकसायस्स अट्टावीसं पि उवसंता । क्हं जेण सुहुमसंपराइयस्स चरमसमए लोभसंजलणं उवसंतं, तेण अट्टावीस भवंति । एत्थ गाहा—

“सत्तावीसं सुहुमे अट्टावीसं पि मोहपगडीओ ।

उवसंत वीयराए उवसंता हुंति णायव्वा” ॥८५॥

पढमकसायचउक्कं इत्तो मिच्छत्त मिस्स सम्मत्तं ।

अविरदसम्मे देसे विरदे पमत्तापमत्ते य खीयंति ॥८६॥

अणियट्ठिवादरे थीणगिद्धित्तिग णिरयादि [णिरय-तिरिय-] णामाओ ।

संखेज्जदिमे सेसे तप्पाओग्गा य खीयंति ॥८७॥

एत्तो हणादि कसायड्डयं तु पच्छा णउंसयं इत्थी ।

तो णोकसायउक्कं पुरिसवेदम्मि संछुब्भदि ॥८८॥

पुरिसं कोहे कोहं माणे माणं च छुब्भदि मायाए ।

मायं च छुब्भदि लोहे लोभं सुहुमं पि तो हणादि ॥८९॥

इदाणिं गुणट्ठाणएसु भणिस्सामो—‘पढमकसायचदुक्कं’ मिच्छत्तं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं अणंताणुबंधी चत्तारि, एदाओ सत्त पगडीओ असंजदसम्मादिट्ठो संजदासंजदो पमत्त-अप्पमत्त-संजदो वा खवेदि । अणियट्ठिवादरे थीणगिद्धित्तिगं णिरय-तिरियणमाओ संखेज्जदिमे सेसे तप्पा-ओग्गा खीयंति । अपुव्वकरणो एगं पि पगडी ण खवेदि । अणियट्ठिवादरस्स णिदाणिहा पचला-पचला थीणगिद्धी णिरयगइ तिरिक्खगइ एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चदुरिंदिय णिरयतिरिक्खाणुपुव्वी आदाव उज्जोव थावर सुहुम साहारण एदाओ सोलस पगडीओ संखेज्जदिमे भागे खीयंति ।

पुणरवि सो चेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपञ्चक्खाणावरणचत्तारि पञ्चक्खाणावरण-
चत्तारि एदाओ अट्ठ पगडीओ खवेदि । सो चेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण णट्संगवेदं
खवेदि । सो चेव अणियट्टि [सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण] इत्थीवेदं खवेदि । सो चेव अणियट्टि
सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण हस्स रइ अरइ सोग भय दुगुंछा च एदे छण्णोकसाए पुरिसवेदम्मि
किंचिमिच्चं छोदूणं खीयंति । सो चेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण पुरिसवेदं किंचावलेखं
कोहसजलणे छोदूणं खीयंति । सो चेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण कोहसंजलणं माणसंज-
लणे किंचवसेसं छोदूणं खीयंति । तस्सेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण माणसंजलणं
किंचवसेस मायसजलणे छोदूणं खीयंति । तस्सेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण माय-
संजलणं किंचवसेसं छोदूणं खीयंति । तस्सेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण मायसंज-
लणा य किंचवसेसं पत्तेयं छोदूणं पाडंति लोभसंजलणयं सुहुमसंपराइयो वेदेदि [खवेदि] ।

खीणकसायदुचरमे णिहा पयला य हणदि छदुमत्थो ।

आवरणमंतराए छदुमत्थो हणइ चरमसमयम्मि ॥६०॥

खीणकसाओ दोहिं समएहिं केवली भविस्सदि त्ति णिहा पचला य खीयंति । तस्सेव
खीणकसायस्स पंचणाणावरण चउ दंसणावरण पंचअंतराइय त्ति एदाओ चोहस पगडीओ चरम-
समए खीयंति ।

देवगइसहगदाओ दुचरमभवसिद्धियस्स खीयंति ।

सविवागेदरसण्णा मणुसगइणाम णीचं पि इत्थेव ॥६१॥

अण्णदरवेदणीयं मणुसाउग उच्चगोद णाम णव ।

वेदेइ अजोगिजिणो उक्कस्स जहण्णमेयारं ॥६२॥

मणुसगइ पंचिंदियजादि तस वादरं च पज्जत्तं ।

सुभगं आदिज्जं जसक्किती तित्थयरणामस्स हवंति णव एदे ॥६३॥

तच्चाणुपुण्विसहिदा तेरस भवसिद्धियस्स चरमंते ।

संतस्स दु उक्कस्सं जहण्णयं वारसा हुंति ॥६४॥

मणुसगइसहगदाओ भव-खेत्तविवाग जीवविवाअं सा ।

वेदणियं अण्णदरुच्चं च चरमसमए भवसिद्धियस्स खीयंति ॥६५॥

सजोगिकेवली इक्कि वि पगडी ण खवेदि । “देवगइसहगदाओ दुचरमसमयस्स खीयंति ।
सविवागेदरमणुसगइणाम णीचं च इत्थेव” देवगइ पंच सरीर पंच संघाद पंच बंधण छ संठाण
तिणिण अंगोचंग छ संघडण पंच वण्ण दो गंध पंच रस अट्ठ फास देवाणुपुण्वी य अगुरुगलहुगादि
चत्तारि दो विहायगइ अपज्जत्त पत्तेग थिराथिर सुभासुभ सुभग दुभग सुस्सर दुस्सर अणादिज्ज
अजसक्किती णिमिण णीचगोदं सादासादं च एकदरं एदाओ अविवागाओ वावत्तरि पगडीओ
अजोगिदुचरससमए खीयंति । सविवागाओ—“मणुसगइसहियाओ अण्णदरवेदणीयं उच्चगोदं
वेदेइ अजोगिजिणो उक्कस्स जहण्ण वारसं” सादासाढाणमेक्कदर मणुसाउगं मणुसगइ पंचिंदियजाइ
तस वादर पज्जत्त सुभग आदिज्ज जसक्किती तित्थयर उच्चगोद मणुसाणुपुण्वीसहिदाओ एदाओ
तेरस पगडीओ चरमसमए संत-उक्कस्स तित्थयरेण अजोगिस्स जहण्णगस्स तित्थयर वज्ज वारस
पयडीओ, तित्थयगस्स अजोगिस्स “मणुसगइसहियाओ भव-खेत्तविवाग जीवविवागं सा वेदणीय
अण्णदरुच्चं चरमे भवियस्स खीयंति ।” मणुसाऊ भवविवागा, मणुसगइपाओगाणुपुण्वी अ

खेत्तविवागा; एदाओ भव-खेत्त-जीव-विवागाओ तेरस वारस पगडीओ चरमे भवियस्स अजोगिस्स
अणंतरसमए सिद्धो भविस्सदि त्ति खीयंति । एदासु खीणासु—

अह सुचरियसयलजयसिहर अरयणिरुवमसभावसिद्धिसुहं ।
अणिहणमन्वावाहं तिरयणसारं अणुभवंति ॥६६॥
दुरधिगम-णिउण-परमट्ठ-रुचिर-बहुभंगदिट्ठिवादादो ।
अत्था अणुसरिदन्वा बंधोदयसंतकम्माणं ॥६७॥
जो इत्थ अपरिपुण्णो अत्थो अप्पागमेण वद्धो त्ति ।
तं खमिदूण बहुसुदा पूरेदूणं परिकहंतु ॥६८॥
इय कम्मपगडिपगदं संखेवुदिट्ठणिच्छयमहत्थं ।
जो उवजुंजदि बहुसो सो णाहइ बंधमुक्खट्ठं ॥६९॥

एवं सत्तरिचूलिया समत्ता ।

[इदि पंचमो सत्तरि-संगहो समत्तो ।]

एकादशाङ्गम्—४१५०२००० । परियम्म १८१०५००० । सुत्त ८८०००००० । पढमाणि-
ओग ५००० । पुत्ताद ६५५००००००५ । चूलिया चेव १०४६४६००० । श्रुतज्ञानमिदं एवं
११२८३५०० ।

इति पंचसंग्रहवृत्तिः समाप्ता ।

शुभम्भवतु ।



श्रीपालसुत-उड्ड-विरचिते संस्कृत-पञ्चसंग्रहे

जीवसमासारख्यः प्रथमः संग्रहः

चतुर्णिकायामरवन्दिताय वातिष्ठयावासचतुष्टयाय ।

कुतीर्थतर्काजितशासनाय देवाग्निदेवाय नमो जिनाय ॥१॥

पदद्रव्याणि पदार्थाश्च न च द्रव्यादिभेदतः । विजानतो जिनास्त्रा वक्ष्ये जीवप्ररूपणम् ॥२॥

स्थानयोगुणं जीवानां पर्याप्तौ प्राण सज्जयोः । मार्गणासूपयोगे च विंशतिः स्युः प्ररूपणाः ॥३॥

१४।१४।६।१०।४।१४ (४।५।६।१५।३।१६।८।७।४।६।२।६।२।२) उपयोगः १२ ।

जीवस्यौदयिको भावः चायिकः पारिणामिकः । चायोपशमिकोऽयौपशमिकोऽस्ति गुणाह्वयः ॥४॥

मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रौपशमिकचायिकाभिधा । बन्धमौदयिका भावाः निःक्रिया पारिणामिकाः ॥५॥

अत्र निःक्रिया इति बन्धं मोक्षं च न कुर्वन्तीत्यर्थः ।

उदयादिभवेर्भावैर्जीवा यैर्लक्ष्यतां गताः । गुणसज्ञाः समादिष्टास्ते समस्तावसासिभिः ॥६॥

मिथ्यादृक्तासनो मिश्रोऽस्यतो देशसयतः । प्रमत्त इतरोऽपूर्वानिवृत्तिकरणावपि ॥७॥

सूक्ष्मोपशान्तर्द्धानकपाया योग्ययोगिनी । चतुर्दश गुणस्थानान्येव सिद्धास्ततोऽपरे ॥८॥

मिथ्यात्वस्योदयाज्जीवः स्यान्मिथ्यादृग् जिनोदितम् । अदृधाति न तत्त्वार्थं जीवाजीवास्त्रवादिकम् ॥९॥

मिथ्यात्वोऽयवान् जीवो जायते विपरीतदृक् । रुचिमात्रं न धर्मेऽस्ति ज्वरिवन्मधुरे रसे ॥१०॥

सासादनः प्रकर्षेण सम्यक्त्वस्याऽऽदिमस्य तु । शोपेऽस्त्यावलिकापट्टके समये च जघन्यत ॥११॥

सम्यक्त्वाप्रथमाद् अष्टौ मिथ्यास्थानमसादयन् । सासादनोऽस्त्यनन्तानुबन्ध्यन्यतमपाकतः ॥१२॥

सम्यग्मिथ्यात्वपाकेन सम्यग्मिथ्यादृगाह्वयः । मिश्रभावो भवेज्जीवो मिश्रं दधिगुडं यथा ॥१३॥

मिश्रं दधिगुडं नैव कर्तुं याति यथा पृथक् । मिश्रभावस्तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिरितीरितः ॥१४॥

विरतो नेन्द्रियार्थेभ्यस्त्रसथावरहिंसकः । पाकाचारिन्नमोहस्य त्रिसम्यक्त्वोऽस्त्यसयतः ॥१५॥

युक्तोऽष्टान्यकपायैर्यः स्थावरेन्द्रियसयमैः । नाऽप्ययं [युक्तः] सम्यक्त्वाद्येकादशगुणैश्च सः ॥१६॥

न हन्ता त्रसजीवानां स्थावराणां तु हिंसकः । एकस्मिन् समये जीवः सयतासयतः स्मृतः ॥१७॥

सयतेष्वाऽऽत्मसात्कुर्वन् यः प्राणीन्द्रियसंयमम् । किञ्चित्स्खलितचारित्र्यं प्रमत्तोऽसौ प्रमादतः ॥१८॥

सञ्जाल-नोकपायाणां यस्मात्तीव्रोदयो यते । प्रमादः सोऽस्त्यनुत्साहो धर्मे शुद्धपट्टके तथा ॥१९॥

तितिक्षा मार्दवं शौचमार्जवं सत्य-संयमौ । ब्रह्मचर्यं तपस्त्यागाऽऽकिञ्चन्ये धर्म उच्यते ॥२०॥

कालुष्यसन्निधानेऽपि द्विपदाक्रोशनादिभिः । अकालुष्य मुनेः प्राहुस्तितिक्षाऽतिविचक्षणा ॥२१॥
जात्याद्यष्टमदावेशविनाशः खलु मार्दवम् । शुचिभिः सर्वतो लोभान्निवृत्तिः शौचमुच्यते ॥२२॥
वाङ्-मनोऽङ्गक्रियारूपयोगस्यावक्रताऽऽर्जवम् । अपि सत्सु^१ प्रशस्तेषु^२ साधुत्वा^३ त्सत्यमुच्यते ॥२३॥
प्राण्यक्षपरिहारः स्यात्संयमो यमिनां मतः । वासो गुरुकुले नित्यं ब्रह्मचर्यमुदीर्यते ॥२४॥
परं कर्मचयार्थं यत्तप्यते तत्तपः स्मृतम् । त्यागः सुधर्मशास्त्रादिविश्राणने^४ मुदाहृतम् ॥२५॥
शारीरादिकमात्मीयमनपेक्ष्य प्रवर्तनम् । निर्ममत्वं मुनेः सम्यगाकिञ्चन्यमुदीरितम् ॥२६॥
मनोवाक्कायभिक्षेयांसूतसर्गे शयनासने । विनये च यतेः शुद्धिः शुद्धयष्टकमुदाहृतम् ॥२७॥
सर्वशीलगुणैर्युक्तः कर्तुराचरणो^५ यतिः । व्यक्ताव्यक्तप्रमादेषु वर्तमानः प्रमत्तकः ॥२८॥
कपायविकथानिद्राप्रणयाद्यैः प्रमाद्यति । स्याच्चतुश्चतुरेकैकपञ्चसङ्ख्यैः प्रमादवान् ॥२९॥

४।४।१।१।५। सर्वे १५ ।

निःप्रमादोऽप्रमत्ताख्यः स्यादस्खलितसंयमः । शमको न स चारित्रमोहस्य क्षपकश्च न ॥३०॥
प्रसक्तः शुभयोगेषु व्रतशीलगुणान्वितः । भवेत्समितिमिर्युक्तो गुप्तिभिर्ध्यानवानसौ ॥३१॥
ध्यायमानं यथा लौहं शुद्धयत्यशुभतो मलात् । अपूर्वकरणात्तद्वदपूर्वकरणै^६र्युतः ॥३२॥
करणो^७ न समो भिन्नसमयस्थेषु येष्वसौ । भावात्समोऽसमाश्चैकसमयस्थेषु सन्ति ते ॥३३॥
अपूर्वकरणाः कर्म न किञ्चित्क्षपयन्ति नो । शमयन्ति परं मोहशमन-क्षपणोद्यताः ॥३४॥
शुक्लध्यानसमारुढैस्तत्रोपस्थितसंयतैः । न प्राप्ता^८ करणाः पूर्वं तेऽपूर्वकरणास्ततः ॥३५॥
संस्थानादिषु भेदेऽपि परिणामैः समानता । समानसमयस्थानां स्याद्येषां तेऽनिवृत्तयः ॥३६॥
भावैः शुद्धतरैः कर्मप्रकृतीः शमयन् यतिः । क्षपयश्चानिवृत्तिः स्यात्कपाये वादरे स्थितः ॥३७॥
ततः शुद्धतरैर्भावैर्गालयल्लोभकिट्टिकाम् । सूक्ष्मेतरामसौ ज्ञेयोऽनिवृत्ताख्यः स संयतः ॥३८॥
पूर्वापूर्वविभागस्थः स्पर्धकात्यानुभागतः । योऽनन्तगुणहीनाणुलोभोऽसौ सूक्ष्मसंयतः ॥३९॥
यत्रोपशान्तिमायाति कपायो यत्र च क्षयम् । लोभसंज्वलनः सूक्ष्मसाम्परायः स संयतः ॥४०॥
कुसुम्भस्य यथा रागो गतोऽप्यस्यन्तरा तनुः । सूक्ष्मलोभयुतस्तद्वत्सूक्ष्मलोभो भवेदसौ ॥४१॥
यथाग्निः कतकेनाधोमले नीतेऽतिनिर्मलम् । उपर्यस्युपशान्ताख्यो मोहे शान्ते तथा यतिः ॥४२॥
मलं विना तदेवाग्निः पात्रेऽन्यत्र यथा कृतम् । स्यात्प्रसन्नं तथा क्षीणकपायो मोहसक्षये ॥४३॥
घातिकर्मक्षयोत्पन्ननवकेवललब्धिमान् । प्रणेता विश्वतत्त्वानां सयोगः केवली भवेत् ॥४४॥
ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य-सम्यक्त्व-दानयुक् । भोगोपभोगलाभाख्या नवकेवललब्धयः ॥४५॥
वेद्याऽऽयुर्नामगोत्राणि हुत्वा सद्ग्रहानतेजसि । मुक्तिं निरास्रत्रो याति शीलेशोऽयोगकेवली ॥४६॥
अष्टकर्मभिदः शीतोभूता नित्या निरञ्जनाः । लोकाग्रवासिनः सिद्धाः जयन्त्वष्टगुणान्विताः ॥४७॥
देव-श्वाश्रेषु चत्वारि गुणस्थानानि पञ्च तु । तिर्यक्षु नृषु सर्वाणि यथास्वं चेन्द्रियादिषु^९ ॥४८॥
ज्ञायन्तेऽनेकध्राऽनेकजीवास्तज्जातिजास्तु यैः । संचितार्थतया जीवसमासास्ते चतुर्दश ॥४९॥
चतुर्दशैर्कविंशत्या त्रिंशद्व्यष्टपञ्चादिकाः । त्रिंशत्पञ्चाष्टचत्वारिंशच्चतुःसप्तपूर्विका ॥५०॥
पञ्चाशद्व्यष्टजीवानां स्थाने ज्ञेया विरूपकाः । सूक्ष्म-वादरभेदेन कायेन्द्रियवितर्कणैः ॥५१॥
एकाद्या वादराः सूक्ष्मा द्व्यद्याद्या विकलास्तथा । पञ्चाख्याः संज्ञ्यसंज्ञ्याख्याः सर्वे पर्याप्तकेतरे ॥५२॥

१।१।२।३।४।५।५।

एकेन्द्रियेषु चत्वारि जीवानां विकलेषु षट् । पञ्चाक्षेऽपि चत्वारि स्थानान्येव चतुर्दश ॥५३॥

१ धर्मार्थिषु । २ मोक्षार्थिषु । ३ उपकारकत्वात् । ४ दानम् । ५ कर्तुरं मिश्रं आचरणं यस्य स कर्तुराचरणः । ६ अपूर्वपरिणामैः । ७ परिणामः । ८ इन्द्रियादिमार्गणादिषु ।

पूर्णाऽपूर्णानि वस्तूनि वस्त्रादीनि यथा तथा । पूर्णाऽपूर्णतया जीवाः पर्याप्तेतरका मता ॥५४॥
आहाराङ्गेन्द्रियेष्वाने पर्याप्तिर्वाचि मानसे । चतस्रः पञ्च षट् ताः स्युरेकाञ्चन्यूनसंज्ञिनाम् ॥५५॥

बहिर्भवेत्यथा प्राणैरेवमाभ्यन्तरैरपि । यैस्त्रिकालेऽपि जीवन्ति जीवाः प्राणा भवन्ति ते ॥५६॥
पञ्चेन्द्रियाणि वाक्कायमानसानां बलानि च । त्रीण्यानापान आयुश्च प्राणाः स्युः प्राणिना दश ॥५७॥
कायाद्यायूपि सर्वेषु पर्याप्तेष्वान इष्यते । वाग् द्व्यक्षादिषु पूर्णेषु मनः पर्याप्तसंज्ञिषु ॥५८॥
दश संज्ञिन्यतो हेयमेकैक द्वयमन्त्ययोः । पूर्णेष्वन्येषु सप्ताद्यै रेकैकोनाश्च तेऽप्यतः ॥५९॥

इति प्राणाः । ४।४।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।१०१।१०२।१०३।१०४।१०५।१०६।१०७।१०८।१०९।११०।१११।११२।११३।११४।११५।११६।११७।११८।११९।१२०।१२१।१२२।१२३।१२४।१२५।१२६।१२७।१२८।१२९।१३०।१३१।१३२।१३३।१३४।१३५।१३६।१३७।१३८।१३९।१४०।१४१।१४२।१४३।१४४।१४५।१४६।१४७।१४८।१४९।१५०।१५१।१५२।१५३।१५४।१५५।१५६।१५७।१५८।१५९।१६०।१६१।१६२।१६३।१६४।१६५।१६६।१६७।१६८।१६९।१७०।१७१।१७२।१७३।१७४।१७५।१७६।१७७।१७८।१७९।१८०।१८१।१८२।१८३।१८४।१८५।१८६।१८७।१८८।१८९।१९०।१९१।१९२।१९३।१९४।१९५।१९६।१९७।१९८।१९९।२००।२०१।२०२।२०३।२०४।२०५।२०६।२०७।२०८।२०९।२१०।२११।२१२।२१३।२१४।२१५।२१६।२१७।२१८।२१९।२२०।२२१।२२२।२२३।२२४।२२५।२२६।२२७।२२८।२२९।२३०।२३१।२३२।२३३।२३४।२३५।२३६।२३७।२३८।२३९।२४०।२४१।२४२।२४३।२४४।२४५।२४६।२४७।२४८।२४९।२५०।२५१।२५२।२५३।२५४।२५५।२५६।२५७।२५८।२५९।२६०।२६१।२६२।२६३।२६४।२६५।२६६।२६७।२६८।२६९।२७०।२७१।२७२।२७३।२७४।२७५।२७६।२७७।२७८।२७९।२८०।२८१।२८२।२८३।२८४।२८५।२८६।२८७।२८८।२८९।२९०।२९१।२९२।२९३।२९४।२९५।२९६।२९७।२९८।२९९।३००।३०१।३०२।३०३।३०४।३०५।३०६।३०७।३०८।३०९।३१०।३११।३१२।३१३।३१४।३१५।३१६।३१७।३१८।३१९।३२०।३२१।३२२।३२३।३२४।३२५।३२६।३२७।३२८।३२९।३३०।३३१।३३२।३३३।३३४।३३५।३३६।३३७।३३८।३३९।३४०।३४१।३४२।३४३।३४४।३४५।३४६।३४७।३४८।३४९।३५०।३५१।३५२।३५३।३५४।३५५।३५६।३५७।३५८।३५९।३६०।३६१।३६२।३६३।३६४।३६५।३६६।३६७।३६८।३६९।३७०।३७१।३७२।३७३।३७४।३७५।३७६।३७७।३७८।३७९।३८०।३८१।३८२।३८३।३८४।३८५।३८६।३८७।३८८।३८९।३९०।३९१।३९२।३९३।३९४।३९५।३९६।३९७।३९८।३९९।४००।४०१।४०२।४०३।४०४।४०५।४०६।४०७।४०८।४०९।४१०।४११।४१२।४१३।४१४।४१५।४१६।४१७।४१८।४१९।४२०।४२१।४२२।४२३।४२४।४२५।४२६।४२७।४२८।४२९।४३०।४३१।४३२।४३३।४३४।४३५।४३६।४३७।४३८।४३९।४४०।४४१।४४२।४४३।४४४।४४५।४४६।४४७।४४८।४४९।४५०।४५१।४५२।४५३।४५४।४५५।४५६।४५७।४५८।४५९।४६०।४६१।४६२।४६३।४६४।४६५।४६६।४६७।४६८।४६९।४७०।४७१।४७२।४७३।४७४।४७५।४७६।४७७।४७८।४७९।४८०।४८१।४८२।४८३।४८४।४८५।४८६।४८७।४८८।४८९।४९०।४९१।४९२।४९३।४९४।४९५।४९६।४९७।४९८।४९९।५००।५०१।५०२।५०३।५०४।५०५।५०६।५०७।५०८।५०९।५१०।५११।५१२।५१३।५१४।५१५।५१६।५१७।५१८।५१९।५२०।५२१।५२२।५२३।५२४।५२५।५२६।५२७।५२८।५२९।५३०।५३१।५३२।५३३।५३४।५३५।५३६।५३७।५३८।५३९।५४०।५४१।५४२।५४३।५४४।५४५।५४६।५४७।५४८।५४९।५५०।५५१।५५२।५५३।५५४।५५५।५५६।५५७।५५८।५५९।५६०।५६१।५६२।५६३।५६४।५६५।५६६।५६७।५६८।५६९।५७०।५७१।५७२।५७३।५७४।५७५।५७६।५७७।५७८।५७९।५८०।५८१।५८२।५८३।५८४।५८५।५८६।५८७।५८८।५८९।५९०।५९१।५९२।५९३।५९४।५९५।५९६।५९७।५९८।५९९।६००।६०१।६०२।६०३।६०४।६०५।६०६।६०७।६०८।६०९।६१०।६११।६१२।६१३।६१४।६१५।६१६।६१७।६१८।६१९।६२०।६२१।६२२।६२३।६२४।६२५।६२६।६२७।६२८।६२९।६३०।६३१।६३२।६३३।६३४।६३५।६३६।६३७।६३८।६३९।६४०।६४१।६४२।६४३।६४४।६४५।६४६।६४७।६४८।६४९।६५०।६५१।६५२।६५३।६५४।६५५।६५६।६५७।६५८।६५९।६६०।६६१।६६२।६६३।६६४।६६५।६६६।६६७।६६८।६६९।६७०।६७१।६७२।६७३।६७४।६७५।६७६।६७७।६७८।६७९।६८०।६८१।६८२।६८३।६८४।६८५।६८६।६८७।६८८।६८९।६९०।६९१।६९२।६९३।६९४।६९५।६९६।६९७।६९८।६९९।७००।७०१।७०२।७०३।७०४।७०५।७०६।७०७।७०८।७०९।७१०।७११।७१२।७१३।७१४।७१५।७१६।७१७।७१८।७१९।७२०।७२१।७२२।७२३।७२४।७२५।७२६।७२७।७२८।७२९।७३०।७३१।७३२।७३३।७३४।७३५।७३६।७३७।७३८।७३९।७४०।७४१।७४२।७४३।७४४।७४५।७४६।७४७।७४८।७४९।७५०।७५१।७५२।७५३।७५४।७५५।७५६।७५७।७५८।७५९।७६०।७६१।७६२।७६३।७६४।७६५।७६६।७६७।७६८।७६९।७७०।७७१।७७२।७७३।७७४।७७५।७७६।७७७।७७८।७७९।७८०।७८१।७८२।७८३।७८४।७८५।७८६।७८७।७८८।७८९।७९०।७९१।७९२।७९३।७९४।७९५।७९६।७९७।७९८।७९९।८००।८०१।८०२।८०३।८०४।८०५।८०६।८०७।८०८।८०९।८१०।८११।८१२।८१३।८१४।८१५।८१६।८१७।८१८।८१९।८२०।८२१।८२२।८२३।८२४।८२५।८२६।८२७।८२८।८२९।८३०।८३१।८३२।८३३।८३४।८३५।८३६।८३७।८३८।८३९।८४०।८४१।८४२।८४३।८४४।८४५।८४६।८४७।८४८।८४९।८५०।८५१।८५२।८५३।८५४।८५५।८५६।८५७।८५८।८५९।८६०।८६१।८६२।८६३।८६४।८६५।८६६।८६७।८६८।८६९।८७०।८७१।८७२।८७३।८७४।८७५।८७६।८७७।८७८।८७९।८८०।८८१।८८२।८८३।८८४।८८५।८८६।८८७।८८८।८८९।८९०।८९१।८९२।८९३।८९४।८९५।८९६।८९७।८९८।८९९।९००।९०१।९०२।९०३।९०४।९०५।९०६।९०७।९०८।९०९।९१०।९११।९१२।९१३।९१४।९१५।९१६।९१७।९१८।९१९।९२०।९२१।९२२।९२३।९२४।९२५।९२६।९२७।९२८।९२९।९३०।९३१।९३२।९३३।९३४।९३५।९३६।९३७।९३८।९३९।९४०।९४१।९४२।९४३।९४४।९४५।९४६।९४७।९४८।९४९।९५०।९५१।९५२।९५३।९५४।९५५।९५६।९५७।९५८।९५९।९६०।९६१।९६२।९६३।९६४।९६५।९६६।९६७।९६८।९६९।९७०।९७१।९७२।९७३।९७४।९७५।९७६।९७७।९७८।९७९।९८०।९८१।९८२।९८३।९८४।९८५।९८६।९८७।९८८।९८९।९९०।९९१।९९२।९९३।९९४।९९५।९९६।९९७।९९८।९९९।१०००।

अत्राऽऽहारशरीरेन्द्रियाऽऽनापानभापामनोनिष्पत्तिः पर्याप्तिः । शरीरेन्द्रियादिपर्याप्तिभ्यः^१ आयुषे-
श्चोत्पन्नशक्तयः प्राणाः । ते चोत्पन्नसमयादारम्भ यावज्जीवितचरमसमय तावन्न विनश्यन्ति, आजन्मन आम-
रणाच्च अवधारणत्वेनोपलम्भात् । उक्तञ्च—

^२प्राणित्येभिरात्मेति प्राणाः ।

यकामिर्दुःखमाप्नोति जन्तुरत्र परत्र ता । सञ्ज्ञाश्चतस्र आहार-भी-मैथुन-परिग्रहाः ॥६०॥
एकाक्षादिष्विमाः सर्वाः पर्याप्तेष्वितरेषु च । प्रमत्तान्तेष्वथाऽऽहारसञ्ज्ञाः स्युरतो द्वयो^३ ॥६१॥
"पञ्चस्वाद्येऽनिवृत्त्यंशे^४ द्वौ मैथुन-परिग्रहौ । संज्ञात्वेन ततः सूक्ष्म यावत्सञ्ज्ञा परिग्रहे ॥६२॥

अत्राप्रमत्तान्तराग्न्यसद्वेद्यस्योदीरणाभावादाहारसञ्ज्ञा नास्ति, कारणभूतकर्मादयसञ्ज्ञावाहुपचारेण भय-
मैथुनपरिग्रहसञ्ज्ञाः सन्तीति ।

जन्तोराहारसञ्ज्ञा स्यादसातोदीरणे यथा । रिक्तकोष्ठतयाऽऽहारदृष्टेस्तदुपयोगतः ॥६३॥
भयसंज्ञा भवेद् भीतिकृन्मोदीरणान्तया । भीमस्य दर्शनात्तस्योपयोगात्सत्त्वहानितः ॥६४॥
स्ववेदोदीरणसञ्ज्ञा मैथुनी वृष्यभोजनात् । स्त्रीषु सगोपयोगाभ्या स्यात्पुंसः पुंसि च स्त्रियः ॥६५॥

च शब्दादुभयोरपि पण्डस्य ।

लोभोदीरणतश्चास्ति सञ्ज्ञा जन्तोः परिग्रहे । उपयोगोक्षणात्तस्योपयोगान्मूर्च्छनादपि ॥६६॥

यकाभिर्यासु वा जीवा मार्ग्यन्तेऽत्र यथास्थिताः । श्रुतज्ञाने विनिश्चेयास्ताश्चतुर्दश मार्गणाः ॥६७॥
गत्यक्षकाययोगाख्या वेदक्रोधादिवित्तयः । सयमो दर्शनं लेख्या भव्यसम्यक्त्वसंज्ञिन ॥६८॥
आहारकश्च सन्त्येता याश्चतुर्दश मार्गणाः । सदाधैराशु मार्ग्यन्ते जीवा मिथ्याहगादयः ॥६९॥

४।५।६।१।५।३।४।८।७।४।६।२।६।२।२

अपर्याप्ता नरा गत्या योगेष्वहारकद्वयम् । मिश्रवैक्रियिकोपेत सयमे सूक्ष्मसयमः ॥७०॥

सम्यक्त्वे सासनो मिश्रस्तथौपशमिक च तत् । सान्तरा मार्गणाश्चाष्टौ चिकल्पा इति नापरे ॥७१॥

अत्रैको गतौ १ त्रितय योगे ३ एकः संयमे १ त्रय सम्यक्त्वे ३ इत्यष्टौ सान्तरा मार्गणासु
समुदिताः ८ ।

गतिकर्मकृता चेष्टा या सा निगदिता गतिः । ससार वा यथा जीवा भ्रमन्तीति गतिस्तु सा ॥७२॥
न रमन्ते यतो द्रव्ये क्षेत्रेऽथ काल-भावयोः । नित्यमन्योन्यतश्चापि तस्मात्ते सन्ति नारकाः ॥७३॥
तिरो^५ यान्ति यतः पापबहुलाः सञ्ज्ञामिरुक्तयाः । सर्वेष्वभ्यधिकाशानास्त्यर्ज्वचस्तेन कीर्तिताः ॥७४॥

१. सकाशात्, २. सकाशात्, ३. जीवति, ४. अप्रमत्तापूर्वयोः, ५. शेषपञ्चगुणस्थानेषु, ६. नवमगुण-
स्थानकपूर्वार्धे, ७. वक्रभावम् ।

मन्यन्ते यतो नित्यं मनसा निपुणा यतः । मनसा चोक्तया यस्मात्तस्मात्ते मानुषाः स्मृताः ॥७५॥
अणिमादिभिरष्टाभिर्गुणैः क्रीडन्ति ये सदा । भासन्ते दिव्यदेहाश्च देवास्ते वर्णितास्ततः ॥७६॥
न जातिर्न जरा दुःखमसंयोगवियोगजम् । नापि रोगादयो यस्यां सन्ति सिद्धिगतिस्तु सा ॥७७॥

अहमिन्द्रा यथा मन्वमाना अहमह सुरा । एकैकमीशते यस्मादिन्द्रियाणीन्द्रवत्ततः ॥७८॥
यवनालमसूरातिमुक्तेन्द्वर्धसमाः क्रमात् । श्रोत्राक्षिघ्राणजिह्वाः स्युः स्पर्शन नैकसंस्थितिः ॥७९॥
जीवे स्पर्शनमेकाक्षे द्वयक्षादिष्वेकवृद्धितः । भवन्ति रसनाघ्राणचक्षुः श्रोत्राण्यनुक्रमात् ॥८०॥
रूपं पश्यत्यसस्पृष्टं स्पृष्ट शब्दं शृणोति च । बद्धास्पृष्टञ्च जानाति स्पर्शं गन्धं तथा रसम् ॥८१॥
अक्षेणैकेन यद्वेत्ति स्वामित्वं कुरुते च यत् । भुङ्क्ते पश्यति चैकाक्षोऽतः पृथिव्यादिकायिकः ॥८२॥
शम्बूकः शङ्खशुक्ती च गण्डपदकपर्दकाः । कुक्षिक्रम्यादयश्चैव द्वीन्द्रियाः प्राणिनो मताः ॥८३॥
कुन्थुः पिपीलिका गुम्भी वृश्चिकाश्चेन्द्रगोपकाः । तथा मत्कुण्यूकाद्यास्त्रीन्द्रियाः सन्ति जन्तवः ॥८४॥
भ्रमराः कीटका दशा मशका मक्षिकादयः । एते जीवाः समासेन निर्दिष्टाश्चतुरिन्द्रियाः ॥८५॥
जरायुजाण्डजाः पोता गर्भजा औपपादिकाः । सम्मूर्च्छिमाश्च पञ्चाक्षा रसजाः स्वेदजोद्धिजाः ॥८६॥
अवग्रहादिभिर्नार्थग्राहकाः करणातिगाः । अनन्तातीन्द्रियज्ञाना ज्ञेया जीवा निरिन्द्रियाः ॥८७॥

यथा भारवहो भारं वहत्यादाय कावटिम् । कर्मभार वहत्येवं देहवान् कायकावटिम् ॥८८॥
कायः पुद्गलपिण्डः स्यादात्मप्रवृत्तिसञ्चितः । भेदाः षट् तस्य भूम्यम्बुतेजोवाततरुन्नसाः ॥८९॥
मसूराभ्युपसूचीकलापध्वजसन्निभाः । धराप्तेजोमरुत्काया नानाकारास्तरुन्नसाः ॥९०॥
पृथिवी-शर्करा-रत्न-सुवर्णोपलकादयः । षट्त्रिंशत्पृथिवीभेदा निर्दिष्टाः सर्वदर्शिभिः ॥९१॥
अवश्यायो हिमं बिन्दुस्तथा शुद्धघनोदके । शीकराद्याश्च विज्ञेया जिनैर्जीवा जलाश्रयाः ॥९२॥
ज्वालाङ्गारास्तथाऽर्चिश्च मुष्मुरः शुद्ध एव च (पावकः) । अग्निश्चेत्यादिकास्तेजःकायिकाः कथिता जिनैः ॥९३॥
महान् घनस्तनुश्चैव गुक्षा मण्डलिरुत्कलिः । वातप्रभृतयो वातकायाः सन्ति जिनोदिताः ॥९४॥
मूलाग्रपर्वकन्दोत्थाः स्कन्धबीजरुहास्तथा । सम्मूर्च्छिमाश्च विज्ञेयाः प्रत्येकानन्तकायिकाः ॥९५॥
साधारणो यदाहार आनपानस्तथाविधः । साधारणा तनुस्तेन जीवाः साधारणाः मताः ॥९६॥
यत्रैको त्रियते तत्रानन्तानां मरण मतम् । उत्पद्यते च यत्रैकोऽनन्तानां जन्म तत्र तु ॥९७॥
अनन्ताः सन्ति जीवा ये न जातु त्रसतां गताः । न मुञ्चन्ति निगोतत्वमुच्चैर्भावकलङ्किताः ॥९८॥
द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चैव चतुरक्षाश्च सज्जिनः । असज्जिनश्च पञ्चाक्षा जीवाः स्युस्त्रसकायिकाः ॥९९॥
न बहिर्लोकनाड्याः स्युर्जन्तवस्त्रसकायिकाः । मुक्त्वा परिणतांस्तेषु पपादे मारणान्तिके ॥१००॥
प्रत्येकाङ्गाः पृथिव्यम्बुतेजःपवनकायिकाः । देवाः श्वाभ्रास्तथाऽऽहारकाङ्गाः केवलिनोर्द्वयम् ॥१०१॥
इत्यप्रतिष्ठिताङ्गाः स्युर्निगोतैः सूक्ष्म-बादरैः । विकलाः शेषपञ्चाक्षा वृक्षाश्च तैः प्रतिष्ठिताः ॥१०२॥
वह्निस्थ काञ्चन यद्वन्मुच्यते द्विविधान्मलात् । कायबन्धविनिर्मुक्ता ध्यानतोऽकायिकास्तथा ॥१०३॥

मनोवाक्काययुक्तस्य वीर्यरूपेण वृत्तिता^१ । जीवस्यात्मनि योज्यो यः स योगः परिकीर्तितः ॥१०४॥
योगो वीर्यान्तरायाख्यक्षयोपशमसन्निधौ । भवेदात्मप्रदेशानां परिस्पन्दः त्रिधेति सः ॥१०५॥
मनोवाचौ चतुर्धा स्तः पृथक्सत्यमृषोभयैः । युक्तेश्चानुभयेनापि भवेत्कायोऽपि सप्तधा ॥१०६॥
यथावस्तु प्रवृत्तं यन्मनः सत्यमनोऽस्ति तत् । मृषा मनोऽन्यथा चोभयाख्य सत्यमृषात्मकम् ॥१०७॥
नो यत्सत्यं मृषा नैव तदसत्यमृषामनः । तैर्योगाः सन्ति चत्वारो मनोवत्सन्ति वाच्यपि ॥१०८॥
अस्ति सत्यवचो योगो दशधा सत्यवाक् स्थितः । विपरीतो मृषा त्वन्यः सत्यासत्यद्वयात्मकः ॥१०९॥

१ सा असत्यमृपात्मरूपा अनुभयभाषा अमनसा मनोरहिताना जीवाना भवति । २ आमन्त्रणी-
प्रमुखा नवप्रकारा अनुभयभाषा सजिना भवति । ३ उदारशब्दोऽत्र स्थूलवाची । ४ येन कारणभूतेन कायेन
कृत्वा । ५ पदाना अर्था. पदार्थास्तान् । ६ विग्रहगतौ । ७ अपरे एकेन्द्रियाः । ८ ते द्वे युगपत् न ।
९. अन्येषु मिश्रादिषु क्रमेण कथ्यन्ते । १० श्लोकयोः । ११ मेहनम् । १२ योनि-मेदूयोर्मध्ये ।

अस्याप्यर्थः—स्त्रीपुत्रपुसका जीवा द्रव्य-भावाभ्यां सदृशाः प्रायो भवन्ति, विसदृशाश्च सम्भवन्ति । कथम् ? द्रव्यतः पुंवेदस्यापि भावतः स्त्रीवेदोदयो भवति, द्रव्यतः स्त्रीवेदस्यापि भावतः पुंवेदोदयः स्यादित्यादि ।

पुनरपि भाव-द्रव्यवेदमाह—

मार्दवकलैव्यपुस्कामनादीन् भावान् दधाति यत् । स्त्रैणान्^१ यस्माच्च गर्भोऽस्यां स्त्यायति स्त्रीत्यतोऽस्ति सा ॥१३३॥
दोषैः स्तृणाति चात्मानं पुरुषं वाऽभिकाङ्क्षति । सदाऽऽच्छादनशीला च तेन सा स्त्रीति वर्णिता ॥१३४॥
पारुष्य-रभसत्व-स्त्रीकामनादीन् दधाति यत् । पोऽनान् भावान् पुमान् तेन भवेत्पुरुषगुणश्च यत् ॥१३५॥
कुर्यात्पुरुषगुणं कर्म शेते पुरुषगुणेषु च । आकाङ्क्षति स्त्रियं सूतेऽपत्यं यत्पुरुषस्ततः ॥१३६॥

अत्र शेते प्रमदयति, सूते जनयति ।

भावतो न पुमान् स्त्री द्वयाकाङ्क्षो नपुंसकः । स्त्रीरूपो नररूपश्च पापोऽभ्यधिकवेदनः ॥१३७॥
कारीषाग्नि-तृणाग्निभ्यां सदृशो नेष्टकाग्निना । वेदत्रयेण निर्मुक्ता जिनाः सन्ति सुखात्मकाः ॥१३८॥

कर्मक्षेत्रं कृषन्त्येते सुख-दुःखाख्यशस्यभृत् । यच्चतुर्गतिपर्यन्तं कषायास्तेन कीर्तिताः ॥१३९॥

अत्र कृषन्ति फलवत्कुर्वन्ति ।

चारित्रपरिणामं वा कर्षन्तीति कषायकाः । क्रुन्मानवञ्चनालोभाः प्रत्येकं ते चतुर्विधाः ॥१४०॥
सन्त्यनन्तानुबन्ध्याख्याः अप्रत्याख्यानसंज्ञकः । ते प्रत्याख्याननामानस्तथा संज्वलनाभिधाः ॥१४१॥
आद्याः सम्यक्त्व-चारित्र्ये द्वितीया धनन्त्यणुव्रतम् । तृतीयाः सयमं तुर्या यथाख्यातं क्रुधादयः ॥१४२॥
दृषद्भूमिरजोवारिरार्जाभिः क्रोधतः समात् । श्वभ्रतिर्यग्नृदेवेषु जीवो याति चतुर्विधात् ॥१४३॥
शिलास्तम्भास्थिकाष्टाद्रलतातुल्याच्चतुर्विधात् । श्वभ्रतिर्यग्नृदेवेषु जायते मानतोऽमुमान् ॥१४४॥
मायया वंशमूलाविश्वङ्गगोमूत्रचामरैः । श्वभ्रतिर्यग्नृदेवेषु जन्तुर्व्रजति तुल्यया ॥१४५॥
कृमिनीलीहरिद्राङ्गमलरागैः समाद् व्रजेत् । श्वभ्रतिर्यग्नृदेवेषु प्राणी लोभाच्चतुर्विधात् ॥१४६॥
क्रुधः श्वाभ्रेषु तिर्यक्तु मायायाः प्रथमोदयः । नृषूत्पन्नस्य मानस्य स्यात्लोभस्य सुरेषु हि ॥१४७॥
मतेनापरसूरीणां समुत्पन्नेषु जन्तुषु । गतिस्वनियमेन स्युः क्रोधादिप्रथमोदयः ॥१४८॥
स्व-परोभयबाधाया वधस्यासंयमस्य च । येषां हेतुः कषाया नो निःकषाया हि ते जिनाः ॥१४९॥

स्थित्युत्पादव्ययैर्युक्तं गुणपर्ययवच्च यत् । द्रव्यं जीवादि याथाख्यावगमो ज्ञानमस्य तत् ॥१५०॥
इन्द्रियैर्मनसा चार्थग्रहणं यन्मतिस्तु तत् । ज्ञानमस्य विकल्पाः स्युः षट्त्रिंशद्विंशतप्रमाः ॥१५१॥
मतिपूर्वं श्रुतं तच्च द्व्यनेकद्वादशात्मकम् । शब्दादग्न्यादिविज्ञानं धूमादिभ्योऽपि च श्रुतम् ॥१५२॥

तथा चोक्तम्—शब्दधूमादिभ्योऽर्थावगमः श्रुतम् ।

अवाच्यानामनन्तांशो भावाः प्रज्ञाप्यमानकाः । प्रज्ञाप्यमानभावानामनन्तांशः श्रुतोदितः ॥१५३॥
मूर्त्ताशेषपदार्थान् यज्ज्ञानं साक्षात्करोत्यसौ । अवधिः स्यादवाग्धानात्क्षायोपशमिकश्च सः ॥१५४॥
देवानां नारकाणां च स्याद् भवप्रत्ययोऽवधिः । क्षयोपशमहेतुस्तु स्याच्छ्लेषाणां च षड्विधः ॥१५५॥
अनुगोऽननुगामी च तदवस्थानवस्थितः । प्रवृद्धो हीयमानः स्यादित्थं षड्विधोऽवधिः ॥१५६॥
श्वभ्रतिर्यग्नृदेवानामेको देशावधिर्भवेत् । परमावधि-सर्वावध्यभिधं यतिषु द्वयम् ॥१५७॥
तीर्थकृच्छ्राभ्रदेवानां सर्वाङ्गोत्थोऽवधिर्भवेत् । नृ-तिरश्चां तु शङ्खाब्जस्वस्तिकाद्यङ्गचिह्नजम् ॥१५८॥

अत्र शङ्खाब्जस्वस्तिकश्रीवत्सध्वजकलशनन्द्यावर्तहलादीन्यवधेरुत्पत्तिक्षेत्रसंस्थानानि तिर्यङ्-मनु-
ष्याणां नाभेरुपरिमभागे भवन्ति, नाधस्तात् । विभङ्गस्तु पुनः सरटाद्यशुभाकृतान्युत्पत्तिस्थानानि नाभेरधस्ता-
द्भवन्ति, नोपरिष्ठात् ।

मनसाऽन्यमनो यात साक्षादर्थं करोति यः । स मनःपर्ययो भेदावस्यर्जुविपुले मती ॥१५६॥
मनःपर्ययबोधः स्यात्सयतेषु प्रकर्षतः । क्षेत्रे नृलोकमात्रे च मूर्त्तद्रव्यप्रकाशकम् ॥१६०॥
त्रिलोकगोचराशेषपदार्थान् विदधाति यत् । साक्षाजिनैरनन्त तत्केवलज्ञानमीरितम् ॥१६१॥
मिथ्यात्वेन सहैकार्थसमवायाद्विपर्ययम् । जनयेद्यत्तु रूपादौ तन्मत्तज्ञानमक्षजम् ॥१६२॥
यच्छब्दप्रत्यय ज्ञान मिथ्यात्वेन च सङ्गतम् । धर्मरिक्ततया तुच्छं श्रुताज्ञानं वदन्ति तत् ॥१६३॥
मिथ्यात्वसमवेतो यः पर्याप्तस्थास्ति देहिनः । अवधिः स विभङ्गाख्यः क्षयोपशमसम्भवः ॥१६४॥

कपाया नोकपायाश्च भेदाश्चारित्रमोहने । तेषामुपशमादौपशमिकं चाधिकं क्षयात् ॥१६५॥
द्वादशाद्याः कपाया ये स्युस्तेषामुदयक्षयात् । तत्सत्तोपशमान्मिश्रं^२ चारित्रं सयमाभिधम् ॥१६६॥
चतुःसज्जलनेष्वन्यतमपाकाच्च तत्तथा । नवाना नोकपायाणां यथासम्भवपाकतः ॥१६७॥
व्रताना धारणं दण्डत्यागः समितिपालनम् । कपायनिग्रहोऽक्षणां जयः संयम इष्यते ॥१६८॥
व्रतानामेकभावेन यदात्मन्यधिरोपणम् । नियतानियतः कालः स्यात्सामायिकसयमः ॥१६९॥
व्रताना भेदरूपेण यदात्मन्यधिरोपणम् । व्रतलोपे विशुद्धिर्वा छेदोपस्थापनं तु तत् ॥१७०॥
परिहृत्यैव सावधं सम्यक् समिति-गुप्तिभिः । यदासौ^३ प्राप्यते तेन स्यात्परिहारसयमः ॥१७१॥
य सूचमसाम्परायाख्ये शमके क्षपकेऽपि वा । स्यात्सूचमसाम्परायोऽसौ सयमः सूचमलोमतः ॥१७२॥
चारित्रमोहनीयस्य क्षयेणोपशमेन वा । अवाप्नुतो यथाख्यातं क्षयस्थौ यदि वा जिनौ ॥१७३॥
सयतेषु चतुर्वाद्यौ परिहारस्तथाऽऽद्ययोः । सूचमे स्यात्सयमः सूचमो यथाख्यातश्चतुर्ष्वतः ॥१७४॥
त्रसघातास्त्रिवृत्तो यः प्रवृत्तः स्थावराहने । जीवः श्रावकधर्मः स सयमासयमः श्रितः ॥१७५॥
दर्शन्यणुव्रतश्चैव स सामायिक इत्यपि । प्रोपर्था विरतश्चैव सचित्ताहिनमैथुनात् ॥१७६॥
ब्रह्मव्रती निरारम्भः श्रावको निःपरिग्रहः । निरनुशो निरनुद्दिष्टः स्यादेकादशधेति सः ॥१७७॥
अष्टौ स्पर्शा रसाः पञ्च द्वौ गन्धौ वर्णपञ्चकम् । घट्जादयः स्वराः सप्त दुर्मनोऽक्षेपस्वसयमः ॥१७८॥
इत्यष्टाविंशतिर्जीवसमासेषु चतुर्दश । नैतेभ्यो विरता ये स्युर्जीवास्ते सन्त्यसयता ॥१७९॥
इन्द्रियेष्वसयमाः २८ । जीवेष्वसयमाः १४ ।

रूपादिग्राहकत्वेन सामान्याख्यस्य वेदनम् । आत्मनो ह्यन्तरङ्गं यद्दर्शनं तज्जिनोदितम् ॥१८०॥
तच्चक्षुर्दर्शनं ज्ञेयं चक्षुषा यत्प्रकाशते । शेषेन्द्रियप्रकाशस्त्वचक्षुर्दर्शनमीरितम् ॥१८१॥
परमाण्वन्त्यभेदानि रूपिन्द्रियाणि पश्यति । सम्यक् प्रत्यक्षरूपेण यत्तच्चावधिदर्शनम् ॥१८२॥
उद्योता^४ बहवः सन्ति नियते क्षेत्रगोचराः । केवलो दर्शनोद्योतः पुनर्विश्वं प्रकाशते ॥१८३॥

लेश्या योगप्रवृत्तिः स्यात्कषायोदयरञ्जिताः । भावतो द्रव्यतोऽङ्गस्य छविः षोडोभयी तु सा ॥१८४॥
कृष्णा नीलाऽथ कापोती पीता पद्मा सिता च षट् । लेश्याः सन्त्यात्मसात्कुर्वन्त्याभिः कर्माणि जन्तवः ॥१८५॥
धराऽन्तेजोमरुद्वृक्षकायिकेषु यथाक्रमम् । लेश्याः स्युः षट् सिता पीता कापोता षट् च जन्तुषु ॥१८६॥

अत्र पण्णा^५ लेश्यानां शरीरमाश्रित्य प्ररूपणा—तत्र वादरपर्याप्तपृथिवीकायिकानां षड्लेश्यानि शरीराणि । तथा मृत्कायिकानां शुक्ललेश्यानि । अग्निकायिकानां तेजोलेश्यानि । वातकायिकानां कापोतलेश्यानि । वनस्पतिकायिकानां षड्लेश्यानीति श्लोकार्थः ।

सर्वसूचमेषु कापोता सर्वापर्याप्तकेषु च । लेश्या सर्वेषु शुक्लैका विग्रहतौ गतेषु च ॥१८७॥

अत्र सर्वेषां सूचमाणां शरीराणि कापोतलेश्यानि । सर्वे चापर्याप्ताः कापोतलेश्याङ्गाः । सर्वेषां च विग्रहगतौ शुक्ललेश्यानि शरीराणि ।

१ सहितः । २ सरागचारि इति श्रौपशमिकादि त्रिविधं चारित्रं भावसग्रहोक्तं ज्ञेयम् । ३ सयमः ।

४ दीप-चन्द्रादयः ।

लेश्याकर्माच्यते—

दुर्माहो दुष्टचित्तश्च रागद्वेषादिभिर्युतम् । क्रुन्मानवञ्चनालोभैस्तथाऽनन्तानुबन्धिभिः ॥२०२॥
 चण्डः सन्ततवैरश्च निर्दयः कलहप्रियः । मधुमाससुरासक्तः कृष्णलेश्यो मतोऽसुमान् ॥२०३॥
 निर्बुद्धिर्मानवान् मार्या मन्दो विषयलस्पटः । निर्विज्ञानालसो भीरुर्निद्रालुः परवञ्चकः ॥२०४॥
 नानाविधे धने धान्ये सर्वत्रैवातिमूर्च्छिताः । सारम्भो नीलया प्राणी लेश्यया सयुतो भवेत् ॥२०५॥
 बहुशः शोकभीमस्तो रूपत्यपि च निन्दति । असूयन् दूषयित्वा पर परिभवत्यपि ॥२०६॥
 आत्मान बहुशः स्तौति स्तूयमानश्च तुष्यति । मन्यमानः पर स्व वा न प्रत्येति कुतश्चन ॥२०७॥
 हानिं नावेति वृद्धिं वा वष्टि मृत्तुं रणाङ्गणे । श्लाघ्यमानस्तरां दत्ते जीवः कापोतलेश्यया ॥२०८॥
 सर्वत्र समदृग् वेत्ति कृत्याकृत्य हिताहितम् । दयादानरतो विद्रास्तेजोलेश्यावशोऽसुमान् ॥२०९॥
 त्यागी क्षान्तिपरश्चो भद्रात्मा सरलक्रियः । साधुपूजोद्यतो जीवोऽधिष्ठितः पद्मलेश्यया ॥२१०॥
 सर्वत्रापि समोऽपचपातस्त्यक्तनिदानकः । रागद्वेषव्यपेतात्मा स्यात्प्राणी शुक्ललेश्यया ॥२११॥

इति लेश्याकर्म समाप्तम् ।

त्यक्तकृष्णादिलेश्याका सिद्धिं याता निरापदः । अन्तातोतसुखा जीवा निर्लेश्याः परिकीर्तिताः ॥२१२॥

जीवाः सिद्धत्वयोग्या ये भवसिद्धा भवन्ति ते । न तेषु नियमः शुद्धेरस्ति हेमोपलेखिव ॥२१३॥
 सहस्रयेयेनाप्यसद्व्ययेन कालेनानन्तकेन वा । जीवा सिद्धयन्ति ये भव्या न त्वभव्याः कदाचन ॥२१४॥
 न भव्या नापि ये भव्या निर्द्वन्द्वा मुक्तिमाश्रिताः । विज्ञेया सन्ति ते जीवा भव्याभव्यत्ववर्जिताः ॥२१५॥

भव्यः पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी जीव पर्याप्तकस्तथा । काललब्ध्यादिभिर्युक्तः सम्यक्त्व प्रतिपद्यते ॥२१६॥

सप्तकर्मणा सागरोपमान्त कोटीकोटिस्थितौ सत्यां काललब्धिर्भवति । अत्र क्षयोपशम-विशुद्धि-
 देशन-प्रायोग्य-लब्धीर्लब्ध्वा पञ्चादधःप्रवृत्तापूर्वा निवृत्तिकरणान् कृत्वोपशम-क्षयोपशम-क्षयसम्यक्त्वरूपा
 बोधिं लभते जीवः । पूर्वसञ्चितकर्मपटलस्यानुभागस्पर्धकानि १ द्वा विशुद्ध्या प्रतिसमयमनन्तगुणहीनानि
 भूत्वोद्वीर्यन्ते तदा क्षयोपशमलब्धिर्भवति १ । प्रतिसमयमनन्तगुणहीनक्रमेणोदीरितानुभाग स्पर्धकजनित-
 जीवपरिणामः सातादिसुख (शुभ) कर्मबन्धनिमित्तः सावद्यासुख (शुभ) कर्मबन्धविरुद्धो विशुद्धि-
 लब्धिर्नाम २ । पञ्चास्तिकाय-पट्द्रव्य-सप्ततत्त्व-नवपदार्थोपदेशः, उपदेशकर्त्र्याचार्याद्युपलब्धिर्वा उपदिष्टार्थ-
 ग्रहण-धारण-विचारणशक्तिर्वा देशनालब्धिर्नाम ३ । सप्तकर्मणामुत्कृष्टस्थितिमुत्कृष्टानुभाग च हत्वाऽन्तःकोटी-
 कोटिस्थितौ द्विस्थानानुभागस्थान प्रायोग्यलब्धिर्नाम ४ । तथोपरिस्थितपरिणामैरथ स्थितपरिणामाः समाना
 अधःस्थितपरिणामैरुपरिस्थितपरिणामाः समाना भवन्ति यस्मिन्नवस्थाविशेषे काले सोऽधःप्रवृत्तकरण ।
 अपूर्वा अपूर्वाः शुद्धतराः करणाः परिणामा यस्मिन् कालविशेषे सोऽपूर्वकरणपरिणामः । एकसमये प्रवर्तमानैः
 करणैः परिणामैर्न विद्यते निवृत्तिर्भेदो यत्र सोऽनिवृत्तिकरण इति ५ ।

श्रद्धान् यजिनोक्तार्थेष्वप्याश्रयाऽधिगमेन च । पट्-पञ्च-नवमेदेषु सम्यक्त्वं तत्प्रवच्यते ॥२१७॥

तच्च प्रशमसवेगानुक्मपास्तिक्यलक्षणम् । चारित्रदर्शनधनाश्चत्वारोऽनन्तानुबन्धिनः ॥२१८॥

सम्यक्त्वमथ मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वमेव च । त्रीणि दर्शनमोहे चेत्येतत्प्रकृतिसप्तकम् ॥२१९॥

यत्तस्योपशमादौपशमिक क्षायिक क्षयात् । क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वाख्यद्वयमोहपाकतः ॥२२०॥

भवेत्सम्यग्मिथ्यात्वमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनम् । पाकक्षयाच्च सम्यक्त्व तत्सर्वोपशमाच्च तत् ॥२२१॥

अत्रानन्तानुबन्धिकपायचतुष्टयस्य मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोश्चोदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाच्च

सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्धकम्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भवति ।

दृष्टिमोहे क्षय जाते यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलम् । सम्यक्त्वं क्षायिक तत्स्यात्सदा कर्मक्षयावहम् ॥२२२॥

वचनैर्हेतुभी रूपैः सर्वेन्द्रियभयावहैः । जुगुप्सामिश्र चीभत्सैनैव क्षायिकदृक् चलेत् (युग्मम्) ॥२२३॥
 दग्मोहनजतेः कर्मभूजः प्रस्थापको मतः । मनुष्येष्वेव सर्वत्र भवेन्निष्ठापकः पुनः ॥२२४॥
 क्षयस्यारम्भको यस्मिन् भवे स्यादपरांस्ततः । नायेत्येव भवांस्त्रीन् स क्षीणे दर्शनमोहने ॥२२५॥
 जमको दर्शनमोहम्य गतिष्विष्टोऽग्निलास्त्वपि । संज्ञी पञ्चेन्द्रियश्चास्ति पर्याप्तः सान्तरश्च सः ॥२२६॥
 ज्योतिर्भावनभौमेषु पट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । तिर्यग्नर-सुरस्त्रीषु सदृष्टिर्नैव जायते ॥२२७॥
 सम्यक्त्वान्ययताद्येषु चतुषु^१ त्रीणि वेदकम् । मुक्त्वोपशमकेषु द्वे शेषेषु क्षायिकं परम् ॥२२८॥

०।०।०।३।३।३।३।२।२।२।२।१।१।१।१।

१।१।१।१।१।१।

सौधर्मादिष्वसंख्याद्वायुः तिर्यक्षु नृष्वपि । रत्नप्रभावनी च स्यात्सम्यक्त्वत्रयमङ्गिनाम् ॥२२९॥
 शेषेषु देवतिर्यक्षु पट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । द्वे वेदकोपशमिके स्यातां पर्याप्तदेहिनाम् ॥२३०॥
 जन्तोः सम्यक्त्वलाभोऽस्ति बद्धेऽप्यायुश्चतुष्टये । बद्धे घनद्वयप्राप्तिर्देवायुष्यपरेषु न ॥२३१॥
 सम्यक्त्वात्प्रथमाद् अष्टो मिथ्यात्वमगतोऽन्तरा । पारिणामिकभावोऽसौ सासादन इति स्मृतः ॥२३२॥
 मिथ्यात्वे त्वर्धसंशुद्धे कोद्वे मदशक्तिवत् । शुद्धाशुद्धात्मको भावः सम्यग्मिथ्यात्वमङ्गिनाम् ॥२३३॥
 उपदिष्टं^१ न मिथ्यादृक् श्रद्धधाति जिनोदितम् । श्रद्धधाति तत्सद्भाव^२ कथितं यदि वाऽन्यथा ॥२३४॥
 सम्यक्त्वस्याऽऽदिमो लाभः सकलोपशमान्ततः । नियमेनापरस्त्विष्टः सर्वदेशोपशान्तितः ॥२३५॥
 सम्यक्त्वस्याऽऽदिमात्लाभान्मिथ्यात्वं पृष्टतो भवेत् । मिथ्यात्वं मिश्रकं वा स्यात्लाभेष्वन्येषु पृष्टतः ॥२३६॥

शिञ्जाऽऽलापोपदेशानां ग्राही संज्ञी मनोबलात् । हिताहितपरीक्षायां योऽसमर्थोऽस्त्यसंज्ञ्यसौ ॥२३७॥
 कार्याकार्यं पुरा तत्त्वमतत्त्वं च विचारयेत् । शिञ्जते वापि नास्नेति समनस्कोऽन्यथेतरः ॥२३८॥
 एवं कृते सया भूय एवं कार्यं मविष्यति । एवं विचारको यो हि स संज्ञी त्वितरोऽन्यथा ॥२३९॥

अत्र संज्ञी नाम कथं भवति ? नोद्दिन्द्रियावरणसर्वधातिस्पर्धकानामुदयक्षयेण तेषामेव सत्तामुपशमेन देशधातिस्पर्धकानामुदयेन संज्ञी भवति । नोद्दिन्द्रियावरणस्य सर्वधातिस्पर्धकानामुदयेनासंज्ञिनो भवन्ति ।

विक्रियाऽऽहारकौटार्याङ्गपटुपर्याप्तिपुद्गलान् । योग्यान् गृह्णाति यो जीवः सः स्यादाहारकाभिधः ॥२४०॥
 समुदातं गतो योगी मिथ्यादृक्सासनायताः । विग्रहर्तावियोगश्च सिद्धाश्चाऽऽहारका न हि ॥२४१॥
 वण्ड औदारिको मिश्रः स स्याद्वण्ड-कपाटयोः । कर्मणो योगिनो योगः प्रतरे लोकपूरणे ॥२४२॥

अन्तरङ्गोपयोगः स्याद्दर्शनं तच्चतुर्विधम् । बहिरङ्गोपयोगस्तु ज्ञानमष्टविधं तु तत् ॥२४३॥
 ज्ञानदग्रोधमोहान्तरायाणां जिनयोः क्षयात् । तद्वृत्तिः स ममान्येषु तत्त्वयोपशमात् क्रमात् ॥२४४॥
 छद्मस्येषूपयोगः स्याद्विधाऽप्यन्तर्मुहूर्त्तगः । साद्यपर्यवसानोऽसौ जिनयोर्युगपद् भवेत् ॥२४५॥
 जीवयोगितयोपन्नो यो भावो वस्तुहेतुकः । उपयोगो द्विधा सोऽस्ति साकारेतरभेदतः ॥२४६॥
 मतिश्रुतावधिम्बान्तैर्यद्विशेषावधारणम् । उपयोगः स साकारो भवत्यन्तर्मुहूर्त्तकः ॥२४७॥
 यदिन्द्रियावविस्वान्तैरविशेषार्थभासनम् । उपयोगो निराकारः स स्यादन्तर्मुहूर्त्तगः ॥२४८॥
 द्वि-त्रि-सप्त-द्विषु ज्ञेया गुणेषु क्रमतो बुधैः ।] पञ्च पटु सप्त च द्वौ चैवोपयोगा यथायथम् ॥२४९॥

५।५।६।६।६।७।७।७।७।७।७।२।२ ।

ये मारणान्तिकाऽऽहारतेजो विक्रियकेवलिकपायवेदनाभेदान्समुदाता हि सप्त तु ॥२५०॥
 सम्भूयान्सप्रदेशानां बहिरुद्गमनानि च । एकदिकौ तु तेष्वौ दशदिकाः पञ्च चापरे ॥२५१॥

१ जिनवचनम् । २. तत्सद्भावं कथितं सत् अन्यथा अन्येन प्रकारेण श्रद्धधाति ।

* आदर्शप्रती कोष्ठान्तर्गतः पाठो नास्ति । स त्वमितगतिपञ्चसंग्रहाद् योजितः,—सम्पादकः ।

चतुर्थे दिवसाः सप्त पञ्चमे तु चतुर्दश । गुणे 'प्रथमद्वक्छेदस्ततः पञ्चदश द्वयोः ॥२५२॥
सुहृत्ताः पञ्चचत्वारिंशत्पञ्चदश चासराः । मासा एकद्विचत्वारः षट् द्वादश च सान्तरम् ॥२५३॥

रत्नादिषु औपशमिकसम्यक्त्वस्य ।

मनःपर्यय आहारयुग्म सम्यक्त्वमादिमम् । परीहारयमोऽस्त्येषां यन्निकत्वत्र नापरः ॥२५४॥

अत्र मनःपर्ययज्ञानेन सहोपशमश्रेण्या अवतीर्य^१ प्रमेत्तगुणं प्रपन्नस्योपशमसम्यक्त्वेन सह मनः-
पर्ययज्ञानं लभ्यते न पश्चात्कृतमिध्यात्वस्योपशमसम्यग्दृष्टेः प्रमेत्तस्य च तत्रोत्पत्तिसम्भवाभावात् ।
आहारर्द्धिः परीहारो मनःपर्यय इत्यमी । तीर्थकृच्चोदये न स्युः स्त्री-नपुंसकवेदयोः^३ ॥२५५॥

प्रमाण-नय-निक्षेपानुयोगादिषु विंशति । भेदान् विमार्गयन्नस्ति जीवसद्भाववेदकः ॥२५६॥
जीवस्थान-गुणस्थान-मार्गणास्थानतत्त्वचित् । तपोनिर्जीर्णकर्ममा नियोगः सिद्धिमृच्छति ॥२५७॥

इति जीवसमासाख्यः प्रथमः संग्रहः समाप्तः ।

१. उपशमसम्यक्त्वाभावः । २. प्रमेत्ताप्रमेत्तयोः । ३. उदये ।

प्रकृतिसमुत्कीर्तनाख्यः द्वितीयः संग्रहः

मुक्तं प्रकृतिबन्धेन प्रकृतिस्वात्मदेशकम् । प्रणम्योरुश्रियं वीरं वक्ष्ये प्रकृतिकीर्तनम् ॥१॥
 ज्ञानदर्शनयो रोधौ वेद्यं मोहायुपो तथा । नाम-गोत्रान्तरायौ च मूलप्रकृतयोऽष्ट वै ॥२॥
 क्रमात्पञ्च नव द्वे च विंशतिश्चाष्टसंयुताः । चतस्रस्त्यधिका नवतिर्द्वे पञ्चोत्तरा मताः ॥३॥
 तत्र प्रकृतयः पञ्च ज्ञानरोधस्य रुन्धतः । मतिश्रुतावधीन् जन्तोर्मनः पर्ययकेवले ॥४॥
 निद्रानिद्रादिका ज्ञेया प्रचलाप्रचलादिका । स्यान्गृह्णितस्तथा निद्रा प्रचला च प्रकीर्तिता ॥५॥
 वृक्षाग्रे वाऽथ रथ्यायां तथा जागरणेऽपि वा । निद्रानिद्राप्रभावेन न दृष्ट्युद्घाटनं भवेत् ॥६॥
 स्यन्दते मुखतो लालां तनुं चालयते मुहुः । शिरो नमयतेऽन्यथं प्रचलाप्रचलाक्रमः ॥७॥
 स्वपित्युत्थापितो भूयः स्वयं कर्म करोति च । अवह्दं वा प्रलपति स्यान्गृह्णितक्रमो मतः ॥८॥
 यान्तं सस्थापयत्याशु स्थितमासयते शनैः । आसितं शाययत्येव निद्रायाः शक्तिरोदशी ॥९॥
 किञ्चिदुन्मूलितो जीवः स्वपित्येव मुहुर्मुहुः । ईषदीपद्विजानाति प्रचलालक्षणं हि तत् ॥१०॥
 चक्षुषोऽचक्षुषोऽष्टेरवधेः केवलस्य च । रोधो दर्शनरोधस्य नव प्रकृतयो मताः ॥११॥
 वेद्यस्य प्रकृती द्वे तु सातासातानुवेदिके । अष्टाविंशतिसंख्याना मोहनीयस्य तद्यथा ॥१२॥
 मोहनं द्विविधं दृष्टेश्चरित्रस्थ च मोहनात् । दृग्मोहस्तत्र मिथ्यात्वं तस्यादेकं तु बन्धतः ॥१३॥
 तच्च सम्यक्त्व मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वभेदतः । सत्कर्म तु पुनस्तस्य दृग्मोहस्य त्रिधा भवेत् ॥१४॥
 यच्चचारित्रमोहाख्यं कर्म तद् द्विविधं मतम् । कपायवेदनीयं स्यान्नोकपायाभिध परम् ॥१५॥
 कपायवेदनीय तु तत्र षोडशधा भवेत् । क्रोधो मानस्तथा माया लोभोऽनन्तानुबन्धिनः ॥१६॥
 तथा त एव वाऽप्रत्याख्यानावरणसङ्काः । प्रत्याख्यानरुधश्चातस्तथा संज्वलनाभिधाः ॥१७॥
 नवधा नोकपायाख्यं स्त्रीदुर्वेदौ नपुंसकम् । हास्यं रत्यरती शोको भय साकं जुगुप्सया ॥१८॥

उक्तञ्च—

षोडशैव कपायाः स्युर्नोकपाया नवेरिताः । ईषद्भेदो न भेदोऽत्र कपायाः पञ्चविंशतिः ॥१९॥
 श्वभ्रतिर्यद्भृतेवायुर्भेदादायुश्चतुर्विधम् । पिण्डापिण्डाभिधा नाम्ना द्वाचत्वारिंशदीरिताः ॥२०॥
 पिण्डाश्चतुर्दशैतासामष्टाविंशतिरन्यथा ।

पिण्डाः १४ । अपिण्डाः २८ । मोलिताः ४२ ।

गतिर्जातिः शरीरं तद्बन्धसङ्घातयोर्द्वयम् ॥२१॥

संस्थानं तस्य तस्याङ्गोपाङ्गं तस्यैव संहतिः । वर्णगन्धरसस्पर्शाः आनुपूर्वी च तीर्थकृत् ॥२२॥
 निर्माणागुरुलध्वाख्य उपघातोऽन्यघातयुक् । उच्छ्वास आतपोद्योतौ विहायोगतिरित्यतः ॥२३॥
 त्रसं वादर-पर्याप्ते प्रत्येकं च स्थिरं शुभम् । सुभग सुस्वरादेये यशःकीर्तिश्च सेतराः ॥२४॥
 श्वभ्रतिर्यद्भृतेवानां गतिनाम चतुर्विधम् । एकेन्द्रियादिभेदेन जातिनामापि पञ्चधा ॥२५॥
 औदारिक तथा वैक्रियिकमाहार-तैजसे । कारणं चेति भेदेन कायनामास्ति पञ्चधा ॥२६॥
 बन्धनात्पञ्चकायानां बन्धन पञ्चधा स्मृतम् । एतेषामेव सङ्घातात्सङ्घातोऽपि च पञ्चधा ॥२७॥
 समादिचतुरस्रं हि न्यग्रोधं साति-कुब्जके । वामन हुण्डकं चेति षोढा संस्थानमिष्यते ॥२८॥
 औदार्यादित्रिदेहानामाङ्गोपाङ्गं त्रिधा मतम् । स्याद्वज्रपद्मनाराचं वज्रनाराचमेव च ॥२९॥
 नाराचमर्धनाराचं कीलिका चासृपाटिका । असम्प्राप्तपरा^१ पोढेत्येवं सहननं मतम् ॥३०॥

१. असम्प्राप्तसृपाटिकमित्यर्थः ।

वर्णाः शुक्लादयः पञ्च द्वौ गन्धौ सुरभीतरौ । मधुराम्लकटुस्तित् कपायः पञ्चधा रसः ॥३१॥
 भट्टधा स्पर्शनामापि कर्कशं मृदुगुर्वपि । लघु स्निग्धं तथा रूक्षं शीतलं चोष्णमेव च ॥३२॥
 श्वभ्रादिगतिभेदास्यादानुपूर्वी चतुर्विधा । शस्तेतरे नभोरीती पिण्डप्रकृतयस्त्विमाः ॥३३॥
 गोत्रमुच्चं तथा नीचमन्तरायोऽपि पञ्चधा । स्याद्दानलाभभोगोपभोगवीर्येषु विघ्नकृत् ॥३४॥
 द्वे त्यक्त्वा मोहनीयस्स नाम्ना पट्विशतिं तथा । सर्वेषां कर्मणा शेषा बन्धप्रकृतयो मताः ॥३५॥

१२० ।

अबन्धा मिश्रसम्यक्त्वे बन्धः सघातगा दश ।

५।५।

स्पर्शे सप्त तथैका च गन्धेऽष्टौ रसवर्णगाः ॥३६॥

२८

एता एवोदय नैव प्रपद्यन्ते कदाचन । सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिद्वयवर्जिताः ॥३७॥

२६।१२२ ।

पटकप्रतिहारासिमद्युप्यनुकृवते । चित्रकृत्-कुम्भकारौ च भाण्डागारिकमेव ताः ॥३८॥
 आहारविक्रियश्वभ्रनरदेवद्वयानि च । सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वमुच्चमुद्वेलेना इमाः ॥३९॥

अत्र परप्रकृतिस्वरूपेण सङ्क्रमणमुद्वेलेनम् १३ ।

दशापि ज्ञानविघ्नस्था इग्रीधा नव पोडश । कपाया भी जुगुप्सोपघातास्तैजसकामर्णे ॥४०॥
 मिथ्यात्वागुरुलघ्वाख्ये निर्मिद्वर्णचतुष्टयम् । ध्रुवाः प्रकृतयस्त्वेताश्चत्वारिंशच्च सप्तयुक् ॥४१॥

४७ ।

आहारद्वयमायूषि चत्वार्युद्योततीर्थकृत् । परघातातपोच्छ्वासाः शोषैकादशधा मताः ॥४२॥

११

द्वे वेद्ये गतयो हास्यचतुष्क द्वे नभोगती । पट्के सस्थानसहत्योगोत्रे वैक्रियिकद्वयम् ॥४३॥
 चतस्रश्चानुपूर्व्यापि दश युग्मानि जातयः । औदारिकद्वय वेदा एताः सपरिवृत्तयः ॥४४॥

६७ ।

इति प्रकृतिकीर्तन समाप्तम् ।

१ मिश्रोऽष्ट उदीरयति ।

	१७	८		५	४	६	
च सहासंयते	१०४	देशे	आहारकद्विकेन सह	प्रमत्ते	अप्रमत्ते	अपूर्वे	अनिवृत्तौ
	१८	३५		४१	७६	५०	
	४४	६१		६७	७२	७६	
६	१	२	२	१४	३०		
६६	६०	५६	५७	५५	४२		
५६	६२	६३	६५	६७	८०		
८२	८८	८६	६१	६३	१०६		
सूक्ष्मे	उपशान्ते	क्षीणद्विचरमसमये	चरमसमये	तीर्थकरेण सह सयोगे			

१२
अयोगे १२
११०
१३६

पञ्चापर्याप्तमिथ्यात्वसूक्ष्मसाधारणातपाः । मिथ्यादस्युदयाद्भ्रष्टाः स्थावरं सासनाभिधे ॥२६॥
चतस्रो जातयश्चाद्य कोपादि च चतुष्टयम् । सम्यग्मिथ्यात्वमेकं च सम्यग्मिथ्यादगाह्ये ॥३०॥

५।६।१

द्वितीया अपि कोपाद्या आयुर्नारकदेवयोः । नृ-तिर्यगानुपूर्व्ये द्वे दुर्भगं वैक्रियिद्वयम् ॥३१॥
देवद्विकमनादेयमयशो नारकद्वयम् । दश सप्तावतस्थानेऽतस्तृतीया क्रुधादयः ॥३२॥
तिर्यगायुर्गती नीचोद्योतावष्टावणुवते । पञ्चाऽऽहारद्वयं स्थानगृद्धित्रयमतः परे ॥३३॥

१७।८।५

सम्यक्त्वं संहतेश्चान्त्यं त्रयं चैवाप्रमत्तके । पट्कं तु नोकपायाणामपूर्वेऽप्युदयाच्च्युतिम् ॥३४॥

४।६।

वेद्यत्रयं तु संज्वालास्त्रयः पडनिवृत्तिके । सूक्ष्मे च लोभसंज्वाल एक एवान्तिमे क्षणे ॥३५॥

६।१

वज्रनाराच-नाराचे प्रशान्तेऽप्युदयाच्च्युते । निद्रा च प्रचला च द्वे क्षीणमोह उपान्तिमे ॥३६॥
पञ्च ज्ञानावृतेर्दृष्टेश्चतुष्कं विघ्नपञ्चकम् । चतुर्दशोदयाद् भ्रष्टाः क्षणे क्षीणस्य चान्तिमे ॥३७॥

२।१४।

वेद्यमेकतरं वर्णचतुष्कौशरिकद्वये । संस्थानानि पडाद्या च संहतिर्द्वे नभोगती ॥३८॥
तथैवागुरुलघ्वाद्विचतुष्कं तैजसं तथा । प्रत्येकं च स्थिरद्वन्द्वं शुभसुस्वरयोर्युगे ॥३९॥
निर्माणं कामर्णं त्रिशत्समयेऽन्त्ये हि योगिनः । वेदनीयं द्वयोरेक मनुष्यायुर्गती त्रसम् ॥४०॥
पञ्चाच्च सुभगं स्थूलं पर्याप्तं तीर्थकृतथा । आदेय यश उच्चं च द्वादशैवमयोगके ॥४१॥

३०।१२

विच्छिन्नोदीरणाः पञ्च नव मिथ्यादगादिषु । एका सप्तदशाष्टौ चतस्रः पट् पडेव तु ॥४२॥
एका द्वे षोडशैकान्नचत्वारिंशत्कमादिमाः । उदीर्य ते न चैकापि नियोगे प्रकृतिर्जिने ॥४३॥ (युग्मम् ।)

५

एताः सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाऽऽहारकद्वयतीर्थकरहीना मिथ्यादष्टौ ११७ नरकानुपूर्वीं विना सासने

३१

६
१११ तिर्यङ्नरसुरानुपूर्वीर्विना सम्यग्मिथ्यात्वेन सह मिश्रे १०० चतस्रभिरानुपूर्वीभिः सम्यक्त्वेन च सहा-
११ २२
३७ ४८

संयते	१७	८	८	८	८	८	८
	१०४	देशे	८७	आहारकद्विकेन सह प्रमत्ते	८१	अप्रमत्तादिषु पदसु—	
	१८	३५	३५	४१	४१	४३	
	४४	६१					
	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म०	उप०	द्वि० क्षी०	च० क्षी०
	४	६	६	१	२	२	१४
	७३	६६	६३	५७	५६	५४	५२
	४६	५३	५६	६५	६६	६८	७०
	७५	७६	८५	६१	६२	६४	६६
		३६	०				
तीर्थकरेण सह मयोगे		३६	०				
		८३	अयोगे				
		१०६	१२२ ।				
			१४८				

सातामातनरायुर्मिहीना प्रकृतयो यकाः । अयोगस्योदये तासा योगिन्येवास्त्युदीरणा ॥४४॥

इत्युदीर्यत एकाग्रचत्वारिंशत्सयोगके । सातासातनरायुमिं पष्टेऽष्टोदीरणान्तगा ॥४५॥

इति पष्टे प्रमत्ते उदयव्युच्छेदे ५ सातादिभिः सहाष्टौ ८ ।

प्रमत्त केवलिभ्योऽन्यत्रोदयोदीरणे समे । उदीर्यते न चैकापि निर्योगे प्रकृतिजिने ॥४६॥

आहारद्वयतीर्थशस्ये सासनताऽस्ति न । सत्त्वे तीर्थकृतो नैति वै तिर्यक्त्वं च मिश्रताम् ॥४७॥

नाशुग्रतेषु श्वभ्रायुः प्रमत्तेयतरयोश्च न । तिर्यक्-श्वभ्रायुषी सत्त्वे न चीपशमिकेषु ते ॥४८॥

सप्त स्युर्निर्ग्रन्ताऽऽद्येषु चतुर्वैकत्र सत्त्वये । षोडशाष्टौ तयैकैका पदेकैका चतुर्वर्त ॥४९॥

अनिवृत्तौ ततश्चैका सूक्ष्मे क्षीणेऽपि षोडश । अयोगे क्षीयते पश्चाद् द्वासप्ततिरुपान्तिमे ॥५०॥

श्रयोदश क्षणान्ये च हृत्त्वं प्रकृतीर्जिनम् । सिद्धिजात नमाम्यष्टचत्वारिंशच्छतप्रमाः ॥५१॥

१४८।

अत्र सामान्येन तावत्प्रथमो विकल्प-मिथ्यादृष्टौ १४८ । तीर्थकराऽऽहारद्वयोनाः सासने १४५ ।

आहारकद्विकेन सह मिश्रे १४७ । सर्वासंयते १४८ । नारकायुषा विना देशे १४७ । तिर्यगायुषा विना

प्रमत्ते १४६ । अप्रमत्ते १४६ । औपशमिकसम्यक्त्वेपूपशमकेषु चतुषु १४६ १४६ १४६ १४६ ।

सायिकसम्यक्त्वेपूपशमकेषु चतुर्वि १३६ १३६ १३६ १३६, अपूर्वादिषुपकेषु च १३८ ।

३६ १ १६ ० ७ १३
१३८ १०२ १०१ ८५ ८५ १३ ।
१० ४६ ४७ ६३ ६३ १३५

द्वितीयो विकल्पश्चरमशरीरेषु श्वभ्रायुर्ह्रीना मिथ्यादृष्टौ १४५ । तीर्थकराऽऽहारद्वयोनाः

सासने १४२ । आहारकद्विकेन सह मिश्रे १४४ । तीर्थकरेण सहासयते १४५ । देशे १४५ । प्रमत्ते

१ प्रमत्तसयोग्ययोगिगुणस्थानेभ्यः । २ तीर्थकरस्य । ३. तिर्यक्-श्वभ्रायुषी ।

७	७	०	१६	८	१	१	६	१
१४५। अग्रमत्ते १४५। अपूर्वे १३८। अनिवृत्तौ नव भागेषु १३८ १२२ ११४ ११३ ११२ १०६								
३	३	१०	१०	२६	३४	३५	३६	४२
१	१	१	१	०	२			१४
१०५ १०४ १०३। सूक्ष्मे १०२। उपशान्ते १४५। क्षीणोपान्त्यसमये १०१ चरमसमये च ६६।								
४३ ४४ ४५	४६	१			४२			४६

सयोगे ८५। अयोगे द्विचरमसमये ८५ चरमसमये च १३।
६३ ६३ १३५

श्वभ्रतिर्यक्सुरायुःषु प्रक्षीणेष्वन्यजन्मनि । उच्यते नृभवे जाते गुणस्थानेषु सत्त्वयः ॥५२॥
चतुर्ष्वस्यताद्येषु क्वाप्यनन्तानुबन्धिनः । मिथ्यात्वं मिश्रसम्यक्त्वे सप्त यान्ति क्षयं क्रमात् ॥५३॥
स्यानगृह्णित्य तिर्यग्द्वयं श्वभ्रद्वयं तथा । एकाक्षविकलाक्षणां जातयः स्थावरातपौ ॥५४॥
सूक्ष्मसाधारणोद्योताः षोडशोऽतोऽष्टमध्यमाः । कपायाः पण्डवेदोऽतः स्त्रीवेदोऽतस्ततः क्रमात् ॥५५॥
हास्यपट्कं च पुंवेदः क्रोधो मानोऽथ वञ्चनाः । अनिवृत्तेर्नवांशेषु सूक्ष्मे लोभस्ततोऽन्तिमः ॥५६॥

अनिवृत्तौ १६।८।१।१।६।१।१।१११ । सूक्ष्मे १ ।

निद्रा च प्रचला च द्वे क्षीणस्योपान्तिमे क्षणे । इक्चतुष्कमथो विघ्नज्ञानावृत्त्योर्दशान्तिमे ॥५७॥
२।१४।

पञ्चायोगे शरीराणि जिने तद्बन्धनानि च । सङ्घातपञ्चकं पट् च सस्थानान्यमरद्वयम् ॥५८॥
अङ्गोपाङ्गत्रयं चाष्टौ स्पर्शाः संहनानि पट् । अपर्याप्त रसाः पञ्च द्वौ गन्धौ वर्णपञ्चकम् ॥५९॥
अयशोऽगुरुलघ्वादिचतुष्कं द्वे नभोगती । स्थिरद्वन्द्वं शुभद्वन्द्वं प्रत्येकं सुस्वरद्वयम् ॥६०॥
वेद्यमेकतरं निर्मिञ्जीवानादेयदुर्भगम् । उपान्त्यसमये क्षीणाः द्वासप्ततिरिमाः समम् ॥६१॥

७२।

क्षणेऽन्येऽन्यतरद्वेष्टं नरायुर्द्वयं त्रसम् । सुभगादेयपर्याप्तपञ्चाक्षोच्चयशांसि च ॥६२॥
बादर तीर्थकृच्चैतास्त्रयोदश परिचयम् । यत्र प्रकृतयो जातास्तमयोगमभिष्टुवे ॥६३॥

१३।

किं प्राग्विच्छिद्यते बन्धः किं पाकः किमुभौ समम् । किं स्वपाकेन बन्धोऽन्यपाकेनोभयथापि किम् ॥६४॥
सान्तरस्तद्विपक्षो वा स किं चोभयथा मतः । एवं नवविधे प्रश्ने क्रमेणास्येतदुत्तरम् ॥६५॥
देवायुर्विक्रियद्वन्द्वं देवाहारद्वयेऽयशः । इष्टानां पुरा पाकः पश्चाद्वन्धो विनश्यति ॥६६॥

८।

हास्य रतिर्जुगुप्सा भीर्मिथ्यापुस्थावराऽस्तपाः । साधारणमपर्याप्तं सूक्ष्मं जातिचतुष्टयम् ॥६७॥
नरानुपूर्वी सज्वाललोभहीना क्रुधादयः । इत्येकत्रिंशतो बन्धपाकोच्छेदौ समं मतौ ॥६८॥

एकस्मिन् गुणस्थाने बन्धोदयौ ३१ ।

प्रकृतीनां तु शेषाणामेकाशीतिभिदा युजाम् । पूर्वं विच्छिद्यते बन्धः पश्चात्पाकस्य विच्छिदा ॥६९॥

८१।

ज्ञानद्वयोधवेद्यान्तरायगोत्रभवायशः । शोकारत्यन्तलोभाः स्त्रीषण्डवेदौ च तीर्थकृत् ॥७०॥
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूषि श्वभ्रतिर्यङ्नृरीतयः । तिर्यक्श्वभ्रानुपूर्व्यौ द्वे पञ्चाक्षौदारिकद्वये ॥७१॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रिसादिकचतुष्टयम् । पट्कं संस्थान-संहत्योरुद्योतो द्वे नभोगती ॥७२॥
स्थिरादिपञ्चयुग्मानि निर्मितैजसकर्मणे । एकाशीतेः पुरा बन्धः पश्चात्पाको विनश्यति ॥७३॥

८१।

विक्रियापट्कमाहारद्वयं श्वभ्रामरायुषी । तीर्थकृच्चैव वध्यन्ते एकादश परोदयात् ॥७४॥

अत्र एताः परोदयेन वध्यन्ते, बन्धोदययोः समानकाले वृत्तिविरोधात् ।

ज्ञानानुत्पन्तरायस्या दश तैजसकर्मणे । शुभस्थिरयुगे वर्णचतुष्क इक्षुचतुष्टयम् ॥७५॥

निर्माणगुरुलघ्वाह्ने मिथ्यात्वं सप्तविंशते । बन्धः स्यात्त्वोदयाच्छेषद्वयशरीतेः स्व-परोदयात् ॥७६॥

२७।

द्वे वेधे पञ्च द्योधाः कपायाः पञ्चविंशतिः । पट्के संस्थान-सहस्योर्नृद्वयौदारिकद्वये ॥७७॥

तिर्यग्द्वययुषी तिर्यग्द्वयोद्योती नभोगती । परघाताऽऽतपोच्छ्वासा द्वे गोत्रे पञ्च जातयः ॥७८॥

उपघात युगान्यष्टौ शुभस्थिरयुगे विना । त्रसादीनीति बन्धः स्याद् द्वयशरीतेः स्वपरोदयात् ॥७९॥

८२।

एताः स्वोदय-परोदयाभ्या वध्यन्ते, उभयथापि विरोधाभावात् ।

ज्ञानद्योधाविघ्नस्थाः सर्वाः सर्वे क्रुधादयः । मिथ्यात्व भी जुगुप्सोपघातास्तैजसकर्मणे ॥८०॥

निर्माणगुरुलघ्वाह्ने वर्णादिकचतुष्टयम् । इति प्रकृतयः सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवा इमाः ॥८१॥

४७।

आयुश्चतुष्टयाऽऽहारद्वयतीर्थकैर्युताः । चतुःपञ्चाशदामां च भवेद् बन्धो निरन्तरः ॥८२॥

५४।

पञ्चान्तिमानि संस्थानान्यन्य संहतिपञ्चकम् । चतस्रो जातयोऽप्याद्याः पण्डः स्त्रीस्थावरातपाः ॥८३॥

शोकारत्यशुभोद्योतसूचमसाधारणायगः । अस्थिरा सन्नभोरीती दुर्मंगापूर्णदुःस्वरम् ॥८४॥

श्वभ्रद्वयमनादेयासाते त्रिंशच्चतुर्युताः । वध्यन्ते सान्तरा यन्धेऽन्याः सान्तरनिरन्तराः ॥८५॥

३३।

तिर्यग्द्वयं नरद्वन्द्वं पुवेदौदारिकद्वये । गोत्रे सात सुरद्वन्द्वं पञ्चाक्षं वैक्रियद्वयम् ॥८६॥

परघात रतिर्हास्यमाद्ये संस्थानसंहती । दश त्रसादियुग्मानामाद्यान्युच्छ्वाससप्तती ॥८७॥

३२।

अत्रैकं समयं बद्ध्वा द्वितीयममये यस्याः बन्धविरामो दृश्यते, सा सान्तरा बन्धप्रकृतिः । यस्याः बन्धकालो जघन्योऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमात्रः, सा निरन्तरा बन्धप्रकृतिः । तेनोक्त-सान्तरो बन्ध एकसमयेन, द्वितीय-समयेन बन्धाभावात् । निरन्तरो बन्ध एक-एकसमयेन बन्धोपरमाभावात् । इति बन्धे सान्तरा ३४ । सान्तरनिरन्तरा ३२ ।

वाततेजोऽङ्गिनो नोच्च न वध्यन्ति नृजावितम् । सत्त्वे तीर्थकृतो नैति तिर्यक्त्वं न च मिश्रताम् ॥८८॥

आहारद्वयतीर्थेशः सत्त्वे सामनताऽस्ति न । अशस्तवेदपाकाच्च नाहारदिः प्रजायते ॥८९॥

पाके स्त्री-पण्डयोस्तीर्थकृमत्त्वे क्षपकोऽस्ति न । [] ॥९०॥

इति कर्मबन्धस्तवः समाप्तः ।

शतकाख्यः चतुर्थः संग्रहः

श्रुताम्भोनिधिनिष्पन्दाज्ञानतर्पाभिघातकृत् । भव्यानाममृतप्रख्यं जिनवाक्यं जयत्यदः ॥१॥
अत्रैव कतिचिच्छूलोकान् दृष्टिवादात्समुच्चितान् । वक्ष्ये जीवगुणस्थानगोचरान् सारसंयुतान् ॥२॥
उपयोगास्तथा योगा येषु स्थानेषु यत्प्रमाः । सन्ति यत्प्रत्ययो बन्धस्तेषु तत्सर्वमुच्यते ॥३॥
बन्धादयस्त्रयस्तेषां तेषु संयोग इत्यपि । तथा बन्धविधानेऽपि सक्षेपात्किञ्चिदुच्यते ॥४॥

अष्ट [अत्र] सूत्रपदादि—

एकाच्चा बादरा सूचमा द्वयत्ताद्या विकलास्त्रयः । पञ्चाख्या संज्ञयसंज्ञयाख्याः सर्वे पर्याप्तकेतरे ॥५॥
एकेन्द्रियेषु चत्वारि जीवानां विकलेषु षट् । पञ्चाक्षेष्वापि चत्वारि स्थानान्येवं चतुर्दश ॥६॥
तिर्यग्गतौ समस्तान्यन्यासु द्वे संज्ञिनि स्थिते । नेयानि मार्गणास्वेवं जीवस्थानानि कोविदैः ॥७॥

२, १४, २, २ । ४, २, २, २, ४ । ४, ४, ४, ४, ४, १० । १, १, १, १, १, १, ५, ७, ८, १, १, १, ८ । ४, ४, १४ ।
१४, १४, १४, १४ । १४, १४, १, २, २, २, १, १ । १, १, १, १, १, १ । १४ । ३, वि० ६, १४, २, १ । १४, १४, १४,
२, २, २ । १४, १४ । १, वि० २, २, २, २, वि० ८, १, १४ । २, २, वि० १२ । १४, ८ ।

देवश्वाभ्रेषु चत्वारि गुणस्थानानि पञ्च तु । तिर्यक्षु नृषु सर्वाणि यथास्व चेन्द्रियादिषु ॥८॥

४, ५, १४, ४ । २, २, २, २, १४ । २, २, १, १, २, १४ । १३, १२, १२, १३, १३, १२, १२, १३, १३, ४, ४,
३, १, १, ४ । ६, ६, ६ । ६, ६, ६, १० । २, २, २, ६, ६, ६, २, २ । ४, ४, २, १, ४, १, ४ । १२, १२, ६, २ । ४, ४, ४,
७, ७, १३ । १४, १ । ८, ४, ११, १, १, १ । १२, २ । १३, ५ ।

त्रिभिर्विना नवान्यासु नृगतावखिला अपि । ज्ञातव्या मार्गणास्वेवमुपयोगा यथायथम् ॥९॥

६, ६, १२, ६ । ३, ३, ३, ४, १२ । ३, ३, ३, ३, ३, १२ । १२, १०, १०, १२; १२, १०, १०, १२; १२, ६,
६, ७, ६, ६, ६ । ६, ६, १० । १०, १०, १०, १० । ५, ५, ५, ७, ७, ७, ७, २ । ७, ७, ६, ७, ६, ६, ६ । १०, १०, ७, २ ।
६, ६, ६, १०, १०, १२ । १२, ५ । ६, ७, ६, ५, ६, ५ । १०, ४ । १२, ६ ।

योगास्त्रयोदश ज्ञेया नृगतौ तु विचक्षणैः । अन्यास्वेकादशैवं ते यथास्वं चेन्द्रियादिषु ॥१०॥

११, ११, १३, ११ । ३, ४, ४, ४, १५ । ३, ३, ३, ३, ३, १५ । १, १, १, १, १, १, १, १, १, १, १, १, १, १, १ ।
१३, १५, १३ । १५, १५, १५, १५ । १३, १३, १०, १५, १५, १५, ६, ७ । ११, ११, ६, ६, ११, ६, १३ । १२, १५,
१५, ७ । १३, १३, १३, १५, १५, १५ । १५, १३ । १३, १५, १५, १३, १०, १३ । १५, ४ । १४, १ ।

एकादश द्विकैकेषु जीवस्थानेष्वनुक्रमात् । त्रिचतुर्द्वादश ज्ञेया उपयोगा भवन्ति वै ॥११॥

११ २^५ १^६
३ ४ १२

नवष्वथ चतुर्वेकस्मिन्नेको द्वौ तिथिप्रमाः । योगाः स्युस्तद्भवस्थेषु विग्रहतौ तु कार्मणः ॥१२॥

१. चतुर्दर्शने विग्रहगतौ षड् जीवसमासा भवन्ति—चतुरिन्द्रिया पर्याप्तापर्याप्ता इति । २ मिथ्यात्व-
सासादनाविरतिसयोग्ययोगिनः, एते पञ्च । ३-४ चतुर्विभङ्गामनःपर्यय विना नव भवन्ति । ५ चतुरिन्द्रिय-
पर्याप्त-पञ्चेन्द्रियासशिपर्याप्तौ द्वौ । ६ पञ्चेन्द्रियासशिपर्याप्त एकः ।

षोडशैव कषायाः स्युर्नोकषाया नवेरिताः । ईषद्भेदो न भेदोऽत्र कषायाः पञ्चविंशतिः ॥२६॥

अत्र षोडश कषायाः, नव नोकषायाः । ईषद्भेदो न भेद इति पञ्चविंशतिः कषायाः २५ ।

आहाराहारमिश्रयोः प्रसक्ते सम्भवादिति ताभ्यां सह 'निरुपभोगमन्त्यम्' इति वचनात्तैजसाच्च विना पञ्चदश योगाः १५ । उक्तञ्च—

न कर्म बध्यते नापि जीर्यते तैजसेन हि । शरीरेणोपभुज्येते सुख-दुःखे च तेन नो ॥३०॥

तैजसस्य जघन्येनैकः समयः, उत्कर्षेण पट्पष्टि-सागरोपमाणि स्थितिः । तदो ते समुदिताः ५७ ।

एताश्च गुणैश्चाऽऽह—

आद्ये स्युः पञ्चपञ्चाशत् पञ्चाशत्प्रत्ययाः परे । त्रिचत्वारिंशदप्यस्मात् पट्चत्वारिंशदप्यतः ॥३१॥

सप्तत्रिंशच्चतुर्विंशतिश्च द्वाविंशतिर्द्वयोः । षोडशैकैकहीनाः स्युः यावद्दशानिवृत्तिके ॥३२॥

दश सूक्ष्मकषायेऽपि शान्त-क्षीणकषाययोः । नव सप्त सयोगाख्ये निर्योगः प्रत्ययातिगः ॥३३॥

इति नानाजीवेषु नानासमयेषूत्तरप्रत्ययाः गुणस्थानेष्वष्टसु ५५।५०।४३।४६।३७।२४।२२।२२। अनिवृत्तौ १६।१५।१४।१३।१२।११। सूक्ष्मादिषु पञ्चसु १०।१।६।७।० ।

अत्र वृत्तिश्लोकाः—

आद्ये नाहारकद्वन्द्वं न मिथ्यात्वानि सासने । त्रिष्वाद्या न कषायाः स्युर्न देशे विक्रियाह्वयम् ॥३४॥

न त्रसासंयमो नान्ये कोपाद्या मिश्र-देशयोः । कर्मणौदार्यमिश्रे न नो वैक्रियिकमिश्रकम् ॥३५॥

साहारे न प्रसक्तेऽन्ये कोपाद्या नाप्यसयमः । द्वयोर्नाहारकद्वन्द्वं नानिवृत्तौ क्रमादिमे ॥३६॥

हास्यादिषट्कं षण्दस्त्री पु-क्रोधौ मान-वञ्चने । येऽनिवृत्तौ दश स्युस्ते सूक्ष्मे लोभाद्विना द्वयोः ॥३७॥

आद्यन्ते मानसे वाचौ चाद्यन्ते कर्मणं तथा । औदार्यौदार्यमिश्रे च प्रत्ययाः सप्त योगिनि ॥३८॥

५१।५३।५५।५२॥ ३८।४०।४१।४२।७॥ ३८।३८।३८।३८।३८।५७॥ ४३।४३।४३।४३।४३।४३।
४३।४३।४३।४३।४३।४३॥ १२।१२।४३॥ ५३।५५।५३॥ ४५।४५।४५।४५॥ ५५।५५॥ ५२।४८।४८।४८।
२०।७॥ २४।२४।२२।१०।११।३७।५५॥ ५७।५७।४८।७॥ ५५।५५।५५।५७।५७।५७॥ ५७।५५॥ ४६।४८।
४८।४३।५०।५५॥ ५७।४५।५६।४३॥

आहारौदार्ययुग्माभ्यां स्त्री-पुंभ्यां चापि वर्जिताः । प्रत्ययास्त्वेकपञ्चाशच्छेषाः श्वभ्रगतौ मताः ॥३९॥

५१।

विक्रियाऽऽहारयुग्माभ्यां हीनास्तिर्यक्तु ते मताः । त्रिपञ्चाशत् नृगतौ तु विक्रियद्वयहीनकाः ॥४०॥

५३।५५।

आहारौदार्ययुग्माभ्यां षण्दवेदेन वर्जिताः । सुरेषु प्रत्ययाः शेषाः द्वापञ्चाशत्प्रमाणकाः ॥४१॥

५२

मिथ्यात्वपञ्चकं स्पर्शः षट्कायाश्च क्रुधादयः । ते स्त्री-पुंभ्यां विनैकाक्षे औदार्यद्वयकर्मणे ॥४२॥

३८

ते जिह्वाक्षान्त्यवाभ्यां स्युः सार्धं द्वीन्द्रियके तथा । त्रीन्द्रिये घ्राणयुक्तास्ते चक्षुषा चतुरिन्द्रिये ॥४३॥

४०।४१।४२।

पञ्चाक्ष-त्रसयोः सर्वे स्थावरेष्वेकस्त्रे यथा ।

३८।३८।३८।

विहायाऽऽहारक युग्म शेषयोगेषु च त्रमात् ॥४४॥

नोकपाया नवाद्या योगाः कपायाष्ट चान्तिमाः ॥५५॥

एकोनाः संयमाः सर्वे सयमासयमे स्मृताः ।

३७।

असंयमे तु निःशेषा आहारद्वयवर्जिताः ॥५६॥

५५

कोविदैरखिला ज्ञेयाश्चक्षुर्दर्शनसंज्ञके ।

५७

अचक्षुर्दर्शने ते च सज्ञानत्रयसंज्ञके ॥५७॥

५७

ये सन्ति प्रत्ययाः केचिदवधिदर्शनेऽपि ते ।

४८

ये सन्ति केवलज्ञाने तेऽपि केवलदर्शने ॥५८॥

७

तिसृणामाद्यलेश्यानां नैवाहारद्वय भवेत् ।

५५।५५।५५।

शुभलेश्यात्रये सन्ति पञ्चाशदथ सप्त च ॥५९॥

५७।५७।५७।

भग्ये सर्वे त्वभग्येऽप्याहारयुग्मं विनाऽखिलाः ।

५७।५५।

औदार्यमिश्रमिथ्यात्वपञ्चकाऽऽहारयुग्मकम् ॥६०॥

आधान् कपायकांश्चैव त्यक्त्वोपशमिके मताः ।

४५

वेदके चायिकेऽप्येते आहारौदार्यमिश्रकैः ॥६१॥

४८।४८।

मिथ्यात्वपञ्चकानन्तानुबन्ध्याहारकैर्विना । मिश्रत्रयेण वै मिश्रे मिथ्यात्वानि न सासने ॥६२॥

४३।५०

युग्म नाहारकं मिथ्यात्वे संज्ञिन्यखिलास्ततः । स्त्री-पु श्रोत्रैदमा (?) सज्ञे ते ये ख्याताश्चतुःखके ॥६३॥

५५।५७।४५।

विहाय कर्मण चागाहारे शेष चतुर्दश । योगैर्विना मताः शेषा आहारे कर्मणोनकाः ॥६४॥

४३।५६

गत्यादिमार्गणास्वेवमुत्तराः प्रत्ययाः स्फुटाः । सामान्योक्तविधानेन विशेषेण च वर्णिताः ॥६५॥

उत्तरोत्तरसंज्ञाश्च कूटस्थानेषु पञ्चसु । गुणस्थानं प्रति प्रोक्तास्ते कथ्यन्तेऽधुना स्फुटाः ॥६६॥

द्वितीयविकल्पोद्भवा इमे मताः ।

दशाष्टादश सन्त्याद्ये दश सप्तदशाऽप्यतः । नव षोडश युग्मेऽतस्ततोऽष्टौ च चतुर्दश ॥६७॥

पञ्च सप्त त्रिके तस्माद् द्वौ त्रयोऽतश्चतुर्विमे । द्वौ वैकाधिक एकश्च जघन्योत्कृष्टहेतवः ॥६८॥

इत्येकजीव प्रतीत्यैकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्ययाः गुणेषु—

ज०	१०	१०	१	१	८	५	५	५	२	२	१	१	१	०
उ०	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१	०

यावदावलिकां पाको नास्त्यनन्तानुबन्धिनाम् । मिथ्यात्व दर्शनात्प्राप्तेऽन्तर्मुहूर्त्तं मृतिर्न च ॥६६॥

अत्र चशब्दात्सम्यक्त्व च मिथ्यात्वात्प्राप्तेऽन्तर्मुहूर्त्तं मृतिर्न च ।

१ कृ १ । कृ ३ । कृ ५ । कृ ६ । कृ ६ । कृ ६ । कृ ५ । कृ ३ । कृ १ ।

वामदृष्टेः यो १२ यो १ यो १३^२ यो १२ सासादनस्य यो १० मिश्रस्य^३ यो १०
वे ३ वे २ वे २ वे १ वे ३ वे स्त्री

यो १२ यो १३ यो १० यो २^४ यो १^५ अयतस्य यो ६ यो ६ यो ६ यो ६ यो ६ यो ६
वे न० वे पु० वे ३ वे २ वे पु वे ३ वे २ वे पु वे ० वे ० वे ०
अनिवृत्तौ सूचमादिपु ६ । ६ । ६ । ७ ।

एकसंयोगादिगुणकारास्तद्यथा—

६	१५	२०	१५	६	१	का	अ	म	यो
१	२	३	४	५	६	१	०	०	१०
एतेषां जघन्योत्कृष्टभङ्गाः	४३२००	१०६४४	८६४०	१००८०	६४८०				
	६३६०	१८२४	१४४०	१६८०	१२६६				
	२३२	२१६	२१६	३६	६	६	६	७	०
	२३२	२१६	२१६	१०८	६	६	६	७	०

अत्र वृत्तिश्लोकः—

मिथ्यात्वमिन्द्रिय कायस्त्रयः क्रोधाः परेऽथवा^६ । वेदा युग्म च हास्यादिष्वेक योगो दशान्न ते ॥७०॥

१।१।१।३।१।२।०।१। मीलितः १० ।

अत्र पञ्चाना मिथ्यात्वानामेकतरस्योदय इत्येको मिथ्यात्वप्रत्ययः १ । पणामिन्द्रियाणामेकतरेण, पणानां कायानामेकतरविराधने द्वावसयमप्रत्ययौ २ । अनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जाणां त्रयाणां क्रोधानामन्येषां वा एकतरत्रिकोदयेन त्रयः कषायप्रत्ययाः ३ । त्रयाणां वेदानामेकतरः १ । हास्यरतियुगलारतिशोकयुगल-योरेकतरं युगलम् २ । इति षट्कषाय-प्रत्ययाः । आहाराहारमिश्रौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रकर्मणकाय-योगान् मुक्त्वा शेषाणां दशानां योगानामेकतरेणैको योगप्रत्ययः १ । एवमेते मिथ्यादृष्टेरेकसमयप्रत्यया जघ-न्येन दश १० ।

अत्र विसयोजितानन्तानुबन्धी यः सम्यग्दृष्टिमिथ्यात्व गतोऽन्तर्मुहूर्त्तं न च म्रियते, न चानन्तानुबन्ध्यु-दयो यावदावलिका तस्यास्त्यतस्त्रयः कषाया औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कर्मणहीनाश्च दश योगाः । तथाऽत्र भङ्गाः-पञ्चमिथ्यात्वैकतरभङ्गाः, उपरिमपट्टिन्द्रियैकतरपट्टसङ्गन्तास्त एवोपरिमपट्टकार्यैकतरपट्टभङ्ग-गुणास्त एवोपरिमकषायचतुस्त्रिकैकतरचतुर्भङ्गन्तास्त एवोपरिम वेदत्रयत्रिभङ्गगुणास्त एवोपरिमद्वियुगल-द्विभङ्गताडितास्त एवोपरिमदशयोगदशभङ्गगुणा एतावन्तः ४३२०० ।

१ दशतः श्रष्टादशपर्यन्तानां क्रमेण कूटसख्या । २. यतस्त्रयोदशयोगेषु स्त्रीपुवेदौ स्तः, द्वादशयोगेषु एको नपुसकवेदोऽस्ति । ततः द्वादशयोगाः त्रिभिर्वेदैः गुण्याः । एको वैक्रियिकमिश्रयोगः द्वाभ्यां स्त्री-पुवेदाभ्यां गुण्यः । ३ यतो दशयोगेषु स्त्रीवेदः, द्वादशयोगेषु नपुसकवेदः, त्रयोदशयोगेषु पुवेदः । ततः दशयोगां वेदत्र-येण गुण्याः द्वौ योगौ द्वाभ्यां पुत्रपुंसकाभ्यां गुण्यौ, एको योगः एकेन नपुसकवेदेन गुण्यः, इत्यभिप्रायेण कोष्टका ज्ञेयाः । ४ वैक्रियिकमिश्र-कर्मणयोगौ, वेदौ द्वौ पुत्रपुसकौ ताभ्यां गुण्यौ । ५ औदारिकमिश्र १ नपुसकवेदेन एकेन गुण्यः । ६. अथवा परे मानादयः मानत्रय मायात्रय लोभत्रयमित्यर्थः ।

अथर्वते ५।६।७।८।९।१० अन्योन्यगुणा भिव्याहृष्टेर्जवन्यभङ्गा ४३२०० ।

	का०	अ०	म०	यो०	
एकादशः—	२	०	०	१०	२५०५६० ।
	१	१	०	१३	
	१	०	१	१०	

	का०	अ०	म०	यो०	
द्वादशः—	३	०	०	१०	६५५६२० ।
	२	१	०	१३	
	२	०	१	१०	
	१	१	१	१३	
	१	०	२	१०	

	का०	अ०	म०	यो०	
त्रयोदशः—	४	०	०	१०	१०२८१६० ।
	३	१	०	१३	
	३	०	१	१०	
	२	१	१	१३	
	२	०	२	१०	
	१	१	२	१३	

	का०	अ०	म०	यो०	
चतुर्दशः—	५	०	०	१०	१०५८४०० ।
	४	१	०	१३	
	४	०	१	१०	
	३	१	१	१३	
	३	०	२	१०	
	२	१	२	१३	

	का०	अ०	म०	यो०	
पञ्चदशः—	६	०	०	१०	७२५७६० ।
	५	१	०	१३	
	५	०	१	१०	
	४	१	१	१३	
	४	०	२	१०	
	३	१	२	१३	

	का०	अ०	म०	यो०	
षोडशः—	६	१	०	१३	३१६६८० ।
	६	०	१	१०	
	५	१	१	१३	
	५	०	२	१०	
	४	१	२	१३	

	का०	अ०	म०	यो०	
सप्तदशः—	६	१	१	१३	८२०८० ।
	६	०	२	१०	
	५	१	२	१३	

अत्र द्वितीयपञ्चविंशतौ परघातोच्छ्वासविहायोगतिस्वरनाम्नामपर्यासेन सह बन्धो नास्ति, विरोधात्, अपर्यासकाले चैषामुदयामावाह । अत्र चत्वारो जातिभङ्गाः ४ ।

त्रयोविंशतिरेकाच्च तिर्यग्द्वितयकर्मणे । तेजोऽशुभं तथौदार्यदुर्भगागुरुलब्धमि ॥१४७॥

हुण्ड वर्णचतुष्क चोपघातमयशोऽस्थिरम् । सूक्ष्म-बादरयोरेकमेक साधारणान्ययो ॥१४८॥

स्थावरापूर्णनिर्माणानादेयानि च वामहक् । सतिर्यग्गत्यपर्यासैकाच्च बन्धात्यमूमपि ॥१४९॥

अत्राहोपाङ्गसहननबन्धो नास्ति, एकेन्द्रियेष्वहोपाङ्गसहननयोरुदयामावात् । अत्र बादर-सूक्ष्मभङ्गयोः प्रत्येकसाधारणभङ्गगुणनायां चत्वारो भङ्गाः ४ ।

एवं तिर्यग्गतियुक्ता' सर्वे भङ्गा ६३०८ ।

दशभिर्नवभिर्युक्ता विंशतिः पञ्चभिः क्रमात् । बन्धस्थानानि युक्तानि नृगत्या त्रीणि नामनि ॥१५०॥

३०।२६।२५ ।

त्रिशदेशाऽत्र पञ्चाक्ष नृद्वयौदारिकद्वये । सुस्वरं सुभगादेयमाद्ये सस्थान-सहती ॥१५१॥

शुभस्थिरयशोयुग्मैकतराणि च सद्गतिः । वर्णाद्यगुरुलब्धादित्रसादिकचतुष्टयम् ॥१५२॥

तीर्थकृत्कर्मण तेजो निर्मिद्वधनात्यसयत् । एता नृगतिपञ्चाक्षपूर्णतीर्थकरैर्युक्ताम् ॥१५३॥

३०

अत्र प्रथमत्रिशति दुर्भगादु-स्वरानादेयाना तीर्थकरणे सम्यक्त्वेन च सह विरोधान्न बन्ध', सुभग-सुस्वरादेयानामेव बन्धः । तेन त्रीण्येवात्र युग्मानि २।२।२ । अन्योन्यगुणानि भङ्गा ८ ।

हीना तीर्थकृता त्रिशदेकात्रिशदस्यमूम । युक्ता मनुष्यगत्याद्यैर्बन्धीतो मिश्र-निर्गता ॥१५४॥

२६ ।

अत्राष्टौ भङ्गा ८ पुनरुक्ता इति न गृहीताः, वक्ष्यमाणैकात्रिशदभङ्गेषु प्रविष्टत्वात् ।

द्वितीयाप्येवमेकात्रिशदेकतरैरियम् । युग्माना सुस्वरादेयसुभगाना त्रिभिर्युक्ता ॥१५५॥

एता सहति-संस्थानपदकैकतरसंयुक्ताम् । सनभोगतियुग्मैकतरां बध्नाति वामहक् ॥१५६॥

अत्रैषा २।२।२।२।२।२।२।२।२ परस्परवधे भङ्गाः ४६०८ ।

तृतीयापि द्वितीयेव बध्नात्येता च सासनः । त्यक्त्वा हुण्डमसम्प्राप्तं तच्छेषैकतरान्विताम् ॥१५७॥

अत्रैषा २।२।२।२।२।२।२।२।२ अन्योन्यवधे भङ्गाः ३२०० । एते पुनरुक्ता इति न गृहीता ।

स्यात्पञ्चविंशतिरत्र मनुष्यद्विकर्मण । तेजोऽसम्प्राप्तहुण्डानि पञ्चाक्षौदारिकद्वये ॥१५८॥

प्रत्येकागुरुलब्धाहस्थूलापर्यासदुर्भगम् । त्रस वर्णचतुष्क चानादेयमयशोऽस्थिरे ॥१५९॥

निर्माण चाशुभ चोपघातोऽमूमादिमोऽर्जयेत् । मनुष्यगत्यपर्यासयुज पञ्चाक्षसयुक्ताम् ॥१६०॥

२५।

अत्र पञ्चविंशतौ सक्लेशेन बध्यमानापर्यासेन सह स्थिरादीनां विशुद्धिप्रकृतीना बन्धो नास्ति, तेन भङ्गः १ ।

एव मनुष्यगते सर्वभङ्गा' ४६१७ ।

एकत्रिणंदतस्त्रिंशजवाष्टाग्रे च विंशती । चत्वार्यमरगत्याऽमा निर्गत्येक तु पञ्चमम् ॥१६१॥

३१।३०।२६।२८।१ ।

तत्रैकत्रिशदेपाऽत्र देवद्वितयकर्मणे । पञ्चाक्षमाद्यसस्थान तेजोवैक्रियिकद्वयम् ॥१६२॥

वर्णाद्यगुरुलब्धादि त्रसादि च चतुष्टयम् । सुभगं सुस्वर शस्तनभोगतियशःशुभम् ॥१६३॥

स्थिराऽऽहारद्विकाऽऽदेयं निर्माण तीर्थकृत्तथा । बध्नाति चाप्रमत्तोऽमूमपूर्वकरणस्तथा ॥१६४॥

देवगत्या च पर्यासपञ्चाक्षाऽऽहारकद्वयै । युक्त तीर्थकृता चैकत्रिशस्थानमिदं भवेत् ॥१६५॥

अत्र देवगत्या सह सहननानि न बध्यन्ते, देवेषु सहननानामुदयामावात् । अत्र भङ्गः १ ।

८८

एकत्रिंशद्द्वेत्रिंशद्विना तीर्थकरेण सा । वध्यते साऽग्रमत्तेन तथाऽपूर्वाह्ण्येन च ॥१६६॥

अत्रास्थिरादीनां बन्धो न भवति, विशुद्धया सहैतेषां बन्धविरोधात् । तेनात्र भङ्गः १ ।
आहारद्वितयेऽपास्ते एकत्रिंशत्सती भवेत् । एकान्नत्रिंशदाद्येषां वध्यते सप्तमाष्टमैः ॥१६७॥

अत्रापि भङ्गः १ ।

एकान्नत्रिंशदन्यैवं परमेक स्थिरे शुभे । यशस्यपि च वध्नन्ति निर्ब्रताद्यास्त्रयस्तु ताम् ॥१६८॥

अत्र देवगत्या सहोद्योतो न वध्यते, देवगतौ तस्योदयाभावात् । तिर्यग्गतिं मुक्त्वाऽन्यगत्या तस्य बन्धविरोधः । देवानां देहदीप्तिस्तर्हि कुतः ? वर्णनामकर्मोदयात् । अत्र च त्रीणि युगानि २।२।२। भङ्गाः ८ ।

एकत्रिंशच्च निस्तीर्थकराऽऽहारद्वया भवेत् । अष्टाविंशतिराद्यैतां बध्नीतः सप्तमाष्टमौ ॥१६९॥

अत्र भङ्गः १ पुनरुक्तः ।

अष्टाविंशतिरत्रान्यैकान्नत्रिंशद्द्वितीयके । हीना तीर्थकरेणैतां प्रवध्नन्ति पडादिमाः ॥१७०॥

कुत एतत् ? उपरिजानामग्रमत्तादीनामस्थिराशुभायशसां बन्धाभावाद् । भङ्गाः ८

एवं देवेषु भङ्गाः १६ ।

यशोऽन्नैकमपूर्वाद्ये त्रये भङ्गास्तु नामनि । चतुर्दश सहस्राणि पञ्चपञ्चाशत् विना ॥१७१॥

एव नामनि सर्वे भङ्गाः १३६४५ ।

द्वाविंशतिर्भुजाकारा नामन्यल्पतरामिधाः । सन्त्येकविंशतिर्द्वा चान्यक्तौ सर्वेऽप्यवस्थिताः ॥१७२॥

२२।२१।२।४५।

	अपू०	मिथ्या०	मिथ्या०	मिथ्या०	अग्र०	अग्र०	अग्र०
नाम्नो भुजाकाराः—	१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
	२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
	२९	२६	२८	२९	३०	३१	
	३०	२८	२९	३०	३१		
	३१	२९	३०				
		३०					

	अपू०	अपू०	अपू०	अपू०	अपू०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०
अल्पतराः—	३१	३०	२९	२८	३१	३०	२९	२८	२९	२५
	१	१	१	१	३०	२९	२८	२९	२५	२३
					२९	२८	२९	२५	२३	१
					२	२९	२५	२३	२	
						२५	२३	२		
						२३	४			
						५				

उपशान्तकपायोऽवस्ताद्वर्तीर्य^१ सूक्ष्मोपशामको भूत्वा यशःकीर्तिं बध्नाति । अथवोपशान्तकपायः

कालं कृत्वा देवेषूपन्नो मनुष्यगतिसंयुक्तां त्रिंशत्तमेकान्नत्रिंशत् वा बध्नाति । अव्यक्तभुजाकारा १ । भुजा-
३०
३१

काराल्पतराव्यक्तसमासेनावस्थिता भवन्ति ४६ । भुजाकाराः २२ । अल्पतराः २१ । अव्यक्तौ २ । अव-
स्थिता द्वितीयविकल्पेनाथवा ४५ ।

॥ इति स्थानबन्धः समाप्तः ॥

१. उपशामश्रेणित्सूक्ष्म इत्यर्थः ।

मिथ्यादृष्टिः प्रवध्नाति प्रकृताः सकला अपि । हीनास्तीर्यकरत्वेन तथाऽऽहारद्वयेन च ॥१७३॥

सम्यक्त्व तीर्थकृत्वस्याऽऽहारयुगमस्य सयमः । वन्वहेतुः प्रवध्यन्ते गेपा मिथ्यादिहेतुभिः ॥१७४॥

पोढशैव समिथ्यात्वे सासने पञ्चविंशतिः । दशान्नते चतस्रस्तु देशे षट्क प्रमादिनि ॥१७५॥

एकोऽतोऽतो द्वय त्रिंशच्चतस्रोऽतोऽपि पञ्च च । सूक्ष्मे षोडश विच्छिन्ना बन्धात्सातं च योगिनि ॥१७६॥

पुतास्तीर्थकराऽऽहारद्वयोना मिथ्यादष्टौ ११७ । सासने १०१ । सुर-नरायुभ्यां विना मिश्रे

०	१०	४	६	
७४	७७	६७	६३	
४६ । तीर्थकरसुरनरायुमिं. सहासयते	४३ । देगे	५३ ।	५७ । प्रमत्ते	आहारद्विकेन सहाप्रमत्ते
७४	७१	८१	८५	

	५	२	०	०	०	३०	४	
५.६	अपूर्वे सप्तसु भागेषु	५.५	५.५	५.५	५.५	५.५	५.५	अनिवृत्तौ पञ्चसु भागेषु
६.७		६.२	६.४	६.४	६.४	६.४	६.४	
७.८		७.०	७.२	७.२	७.२	७.२	७.२	

२५	३	३	३	३	३	३	०	०	३	०
२५	२५	२०	३६	३५	३५	सूक्ष्माविषु	३७	३	३	३
६६	६६	५००	३०३	३०२	३०२	३०३	३१२	३१६	३१६	३२०
३०६	३०६	३०५	३०६	३०६	३०६	३०३	३४७	३४७	३४७	३४५

मिथ्यात्वं पण्डवेदश्च श्वभ्रायुर्निरयद्वयम् । चतस्रो जातयश्चाद्या सूक्ष्मं साधारणात्तपौ ॥१७७॥

अपर्याप्तमसम्प्राप्त स्याद्वर हण्डमेव च । पोदशेति समिध्यात्वे विच्छिद्यन्ते हि वन्धनात् ॥१७८॥

951

स्यान्नगृह्णित्रय तिर्यगायुराद्या. कपायकाः । तिर्यग्व्यमनादेय स्त्रीनीचोद्योतदुस्वरा. ॥१७१॥

संस्थानस्याथ संहत्याश्चतुष्के द्वे तु मध्यमे । दुर्भंगासन्नभोरीति सासने पञ्चविंशति ॥१८०॥

३५ ।

मिश्र विहाय कोपाद्या द्वितीया आदिसंहतिः । नरायुर्नृद्वयौदार्यद्वये च दश निव्रते ॥१८१॥

901

तृतीयमथ कोपादिचतुष्कं देगसयते ।

81

भसात्तमरति. शोकोऽस्थिर चाशुभमेव च ॥१८२॥

अथशः षट् प्रमत्ताख्ये देवायुश्चाप्रमत्तके ।

६११ ।

अपूर्वप्रथमे भागे हे निद्राप्रचले पुनः ॥१८३॥

३

पञ्चाशे कर्मणं तेजः पञ्चाशामसरद्वयम् । स्थिर प्रथमसंस्थानं शुभ वैक्रियिकद्वयम् ॥१८४॥

त्रसाद्यगुरुलघ्वादि वर्णादिकचतुष्टयम् । सुभगं सुस्वरादेये निर्माण सन्नभोगति ॥१८५॥

आहारकद्वयं तीर्थंकर त्रिंशदिमाः पुनः ।

३०

हास्य रतिर्जुगुप्सा भी. क्षणेऽपूर्वस्य चान्तिमे ॥१२६॥

8

क्रमात्पु वेदसञ्जालाः पञ्चांशेष्वनिवृत्तिके ।

५

सूक्ष्मेऽप्युच्चं यशो दृष्टेश्चतुष्कं ज्ञानविघ्नयोः ॥१८७॥

दशैव षोडशास्माच्च शान्तक्षीणौ विहाय च । सयोगे सातमेकं तु बन्धः सादिरनन्तकः ॥१८८॥

१६।१

स्वास्थ्यम्—

गत्यादौ तत्प्रयोग्यानां सिद्धानामोघरूपतः । प्रकृतीनां हि विज्ञेय स्वामित्वं च यथागमम् ॥१८९॥

इति प्रकृतिवन्धः समाप्तः ।

आद्यकर्मत्रिकस्यान्तरायस्यापि प्रकर्षतः । कोटीकोटयः स्फुटं त्रिंशत्सागराणां स्थितिर्भवेत् ॥१९०॥

सप्ततिर्मोहनीयस्य विंशतिर्नाम-गोत्रयोः । आयुपस्तु त्रयस्त्रिंशत्सागराणां परा स्थितिः ॥१९१॥

आयान्ति नोदयं यावत्कालेनोदीरणां विना । कर्मणवः स कालः स्यादावाधा सप्तकर्मणाम् ॥१९२॥

सा स्याद्वर्षशतं वार्धिकोटीकोटीस्थितेरिति । स्वस्थितिप्रतिभागेनावाधा त्रैराशिकेन तु ॥१९३॥

सप्तानां कर्मणां पूर्वकोटीज्यंशः पराऽऽयुषः । भवेदन्तर्मुहूर्तश्च जघन्या सर्वकर्मणाम् ॥१९४॥

इति सप्तकर्मोत्कृष्टाऽऽवाधा वर्षाणि ३००० । ३००० । ३००० । ७००० । २००० । २००० । ३००० । आयुषः पूर्वकोटीज्यंशः ३ ।

आवाधोना स्थितिः कर्मनिषेकः सप्तकर्मणाम् । स्थितिरेव निजा कर्मनिषेकस्वायुषो मतः ॥१९५॥

अत्र निषेचन निषेकः । आवाधोपरिस्थित्यां कर्मपरमाणुस्कन्धनिक्षेप इत्यर्थः । तत्र ज्ञानावरणीयस्य त्रीणि वर्षसहस्राण्यावाधा । तां मुक्त्वा यत्प्रथमसमये स्थितिप्रदेशाग्रं निषिक्तं तद्वहु । यद्द्वितीयसमये स्थितिप्रदेशाग्रं निषिक्तं, तद्विशेषहीनम् । यत्तृतीयसमये निषिक्तं तदपि विशेषहीनम् । एव विशेषहीनं तावद्यावदुत्कर्षेण त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः स्वावाधाहीनाः । एवमन्येषामपि कर्मणां स्वावाधां मुक्त्वा कर्म-निषेका वक्तव्याः । सर्वेषां च निषेकाणां गोपुच्छाकारेणावस्थानमिति ।

ज्ञानदग्धोदविघ्नेषु स्यात्पञ्च नव पञ्च तु । असाते च स्थितिस्त्रिंशत्कोटीकोटयो नदीशित्तम् ॥१९६॥

प्र० २०—३० साग० को० ।

चत्वारिंशत्कषायाणां मिथ्यात्वस्य च सप्ततिः । सातस्त्रीनृद्वये कोटीकोटयः पञ्चदशापि च ॥१९७॥

षोडशकषायाणां १६-४० साग० को० । मिथ्यात्वे १-७० साग० को० । सातादिषु ४-१५ साग० को० ।

सागराणां त्रयस्त्रिंशच्छ्रावदेवायुषोः स्थितिः । तिर्यङ्मनुषां परं चायुस्त्रिपत्योपमसम्मितम् ॥१९८॥

२-३३ साग० । २-३ पत्यो० ।

भय शोकोऽरतिश्चैव जुगुप्सा च नपुसकम् । नीचैर्गोत्र तथा श्वभ्रगतिस्तिर्यग्गतिस्तयोः ॥१९९॥

आनुपूर्व्यावयैकाचं पञ्चाक्ष कर्म-तेजसी । औदारिकद्वयं हुण्डोद्योतौ वैक्रियिकद्वयम् ॥२००॥

वर्णागुरुत्रसादीनि चतुष्काण्यथ दुर्भगम् । असन्नभोगतिर्निमिदात्तपश्चास्थिराशुभे ॥२०१॥

असम्प्राप्तमनादेयं दुःस्वरं वायशोऽपि च । स्थावरं स्थितिरासां च कोटीकोटयो हि विंशतिः ॥२०२॥

प्रकृ० ४३ आसां स्थितिः २० साग० को० ।

हास्य रतिर्नृवेदश्च सुस्वरं सन्नभोगतिः । देवद्विकं स्थिरादेये सुभग च यशः शुभम् ॥२०३॥

सस्थान-संहती चाद्ये उच्चमासां परा जिनैः । सागराणां समादिष्टा कोटीकोटयो दश स्थितिः ॥२०४॥

प्रकृ० १५ । आसां स्थितिः १० साग० को० ।

द्विज्यच्चतुरक्षेषु सूक्ष्मापर्याप्तयोस्तथा । साधारणे स्थितिः कोटीकोटयोऽष्टादश सम्मिताः ॥२०५॥

प्रकृ० ६ । १८ साग० को० ।

सन्ति द्वादश संस्थाने द्वितीये संहतावपि । चतुर्दश तु संस्थाने तृतीये संहतौ तथा ॥२०६॥

प्र० २।१२ सा० को० । प्र० २।१४ सा० को० ।

तुर्ये संहति-संस्थाने कोटीकोट्यस्तु षोडश । सस्थाने संहतौ चापि पञ्चमेऽष्टादश स्मृताः ॥२०७॥

प्र० २।१६ सा० को० । प्र० २।१८ सा० को० ।

सम्यग्दृष्टौ भवेत्तीर्थकराऽऽहारकयुग्मयोः । अन्तर्मुहूर्त्तमावाधाऽन्त कोटीकोट्यपि स्थितिः ॥२०८॥

प्र० ३ । १००००००००००००००० अन्तः को० सा० ।

मुहूर्त्ता द्वादश ज्ञेया वेद्येऽष्टौ नाम-गोत्रयोः । स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं तु जघन्या शेषकर्मसु ॥२०९॥

दशसु ज्ञान-विघ्नस्थास्त्वयान्ते इक्-चतुष्टये । लोमसज्वलने चैव स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तिका ॥२१०॥

मुहूर्त्ता द्वादशात्र स्युः सातेऽष्टावोच्चयशस्यपि (१) । क्रोधे मासद्वय मासार्धमासौ मान-माययो ॥२११॥

अत्र क्रोधे संज्वलने मासौ २ । माने मासः १ । मायायां पञ्च १ ।

तिर्यङ्नरायुपोरन्तर्मुहूर्त्तः स्वाभ्र-देवयोः । दशवर्षसहस्राणि पुवेदे सरदौष्टं च ॥२१२॥

असातेन युत चाद्यं दर्शनावृत्तिपञ्चकम् । मिथ्यात्वं द्वादशाष्टौ च कृपायाः नोकृपायकाः ॥२१३॥

६।१।१२।८

त्रयः सप्त च चत्वारो द्वौ पयोधेरनुकृमात् । सप्तभागास्तु पत्न्यस्यासंख्यमागोनिता स्थितिः ॥२१४॥

३ ७ ४ २
७ ७ ७ ७

तिर्यङ् नरगतिद्वन्द्वे जातयः पञ्च चातपः । पट्के सस्थान-संहत्योद्द्योतो द्वे नमोगती ॥२१५॥

वर्णाद्यगुरुलघ्वादिचतुष्टके कर्म-तेजसां । त्रसादीनि च युग्मानि नवाप्यौदारिकद्वयम् ॥२१६॥

निर्माणमयशो नीचं जघन्याऽऽस्ता स्थितिर्मता । जलधेः सप्तभागौ द्वौ पद्या संख्यांशरिक्तौ ॥२१७॥

प्रकृ० ५८ स्थितिः २ ।

उदधीना सहस्रस्य सप्तगौ द्वौ जघन्यिका । स्थितिर्वैक्रियिकपट्कस्य पत्न्यासंख्यांशहीनकौ ॥२१८॥

२००० ।
७

अपूर्वक्षपके तीर्थकराऽऽहारकयुग्मयोः । जघन्यस्थितिवन्धोऽन्त कोटीकोटी नदीशिनाम् ॥२१९॥

अत्र जघन्याऽऽवाधा सर्वत्रान्तर्मुहूर्त्तवर्तिनी ।

उत्कृष्टः स्यादनुत्कृष्टो जघन्यस्त्वजघन्यकः । साद्यादिमिश्रतुर्धा च स्थितिवन्धः स्वान्येन च ॥२२०॥

६

अजघन्यश्चतुर्मेदः^२ स्थितिवन्धो हि सप्तसु^३ । साद्यध्रुवास्त्रयोऽन्ये तु चत्वारोऽप्ययुपो द्विधा^४ ॥२२१॥

इति मूलप्रकृतिषु । अत उच्यते—

दशके ज्ञान-विघ्नस्थे संज्वालेष्वथ द्वाग्रुधः । चतुष्टकेऽष्टादशस्त्वैवमजघन्यश्चतुर्विध ॥२२२॥

१८

साद्यश्चाध्रुवा शेषाश्च त्रयोऽष्टादशस्वपि । उत्कृष्टाद्यास्तु चत्वारोऽप्यन्यासु सादयोऽध्रुवा ॥२२३॥

१०२

शुभानामशुभानां च सर्वाः स्युः स्थितयोऽशुभा । नृतिर्यगमरायूषि मुक्त्वाऽन्यासा तु वन्धने ॥२२४॥

उत्कृष्टः स्थितिवन्धः स्यात्सङ्क्षेपकर्मतोऽपर । विशुद्धयुत्कर्पतस्तिर्यङ् नृपुशायु स्वसौ^५ अन्यथा ॥२२५॥

अत्र सातवन्धयोग्यः परिणाम विशुद्धिः । असातवन्धयोग्य परिणामः सङ्क्षेपः । तत उत्कृष्ट-विशुद्धया या स्थितिर्वध्यते सा जघन्या भवति, सर्वस्थितानां प्रशस्तमावाभावात् । तेन सङ्क्षेपवृद्धे सर्वप्रकृतिस्थितानां वृद्धिर्भवति, विशुद्धिवृद्धे स्तासामेव हानिर्भवति । उत्कृष्टस्थितौ च विशुद्धयः स्तोका

१. सवत्सराष्टकम् । २. साद्यनादि—ध्रुवाध्रुवाः । ३. सप्तसु कर्मसु । ४. जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाः ।
५. साद्यध्रुवौ । ६. वन्धः ।

भूत्वा गणनया वर्धमाना [तावद्] गच्छन्ति, यावज्जघन्या स्थितिः । जघन्यस्थितौ पुनः संक्लेशाः स्तोका
भूत्वोपरि प्रक्षेपोत्तरक्रमेण वर्धमानाः [तावद्] गच्छन्ति, यावदुत्कृष्टा स्थितिरिति ।
सर्वोत्कृष्टस्थितीनां हि मिथ्यादृष्टिस्तु बन्धकः । विमुच्याऽऽहारकं तीर्थकरं देवायुरित्यपि ॥२२६॥
सप्रमादो हि देवायुराहारं त्वप्रमत्तकः । तीर्थकृत्त्वं पुनर्मर्त्यः समर्जयति निर्वृतः ॥२२७॥

४।

स्थितेरुत्कर्षका पञ्चदशानां नृ-गवादयः । देवाश्च नारकाः पण्णामीशानान्ताः सुरास्त्रिषु ॥२२८॥

१५।६।३।

श्वभ्रतिर्यङ्मनरायूपि पट्कं वैक्रियिकाह्वयम् । साधारणमपर्याप्तं सूक्ष्मं च विकलत्रिकम् ॥२२९॥
इत्यासां नर-तिर्यञ्चः सोत्कर्षां कुर्वते स्थितिम् । आतपस्थावरैकाक्षेष्वीशानान्ताः सुरास्त्रिषु ॥ २३०॥
तिर्यङ्मनसम्प्राप्तमुद्योतौदारिकद्वये । इत्युत्कर्षस्थितेरासां देवाः श्वाभ्राश्च कुर्वते ॥२३१॥
प्रकृतीनां तु शेषाणां चतुर्गतिगताः स्थितिम् । कुर्युत्कृष्टसंक्लेशेनेपन्मध्यमकेन च ॥२३२॥

शेषाः प्रकृतयः ६२ ।

आहारकद्वयस्याप्यपूर्वस्तीर्थकृतस्तथा । अनिवृत्तिस्तु पुंस्त्वस्य चतुःसंज्वलनस्य च ॥२३३॥

३।५।

द्वयोधस्थचतुष्कस्य दशानां ज्ञानविघ्नयोः । सातोच्चयशसां सूक्ष्मो जघन्यां कुरुते स्थितिम् ॥२३४॥

१७।

वैक्रियस्य तु पट्कस्य तामसंज्ञायुषां पुनः । सज्यसङ्गी चतुर्णां च यथास्वं कुरुते स्थितिम् ॥२३५॥

१० ।

पुनरप्यासां दशानां विशेषमाह—

पर्याप्तासंज्ञिपञ्चाक्षः श्वभ्ररीतिद्वयस्य तु । तद्योग्यप्राप्तसंक्लेशो जघन्यां कुरुते स्थितिम् ॥२३६॥
देवगत्यानुपूर्व्यो हि वैक्रियद्वितयस्य तु । हेतुस्तस्याः स एव स्यात्किन्तु सर्वविशुद्धिकः ॥२३७॥
श्वभ्रायुपस्तु पञ्चाक्षोऽसंज्ञी वा यदि वेतरः । मिथ्यादृक् सर्वपर्याप्तस्तथा सर्वविशुद्धिकः ॥२३८॥
एवं देवायुषः किन्तु तत्प्रायोग्येन संयुतः । संक्लेशेनात्मनो जन्तुर्जघन्यां कुरुते स्थितिम् ॥२३९॥
भोगभूमिजवर्जानां नृ-तिरश्चां तदायुषः । योग्यं संक्लेशमाप्तानां जघन्या स्थितिरिष्यते ॥२४०॥
प्रकृतीनां तु शेषाणां जघन्यां कुरुते स्थितिम् । पर्याप्तवादरैकाक्षः प्राप्तसर्वविशुद्धिकः ॥२४१॥

५

एवं स्थितिबन्धः समाप्तः ।

अष्टोत्कृष्टादयः शस्ताशस्तौ संज्ञानुभागगाः । स्युः प्रत्ययविपाकौ च स्वामित्वं च चतुर्दश ॥२४२॥
घातीनामजघन्योऽस्त्यनुत्कृष्टो नाम-वेद्ययोः । गोत्रे यस्त्वजघन्यो योऽनुत्कृष्टः स चतुर्विधः ॥२४३॥
बन्धाः साद्यध्रुवाः शेषाश्चत्वारोऽप्यायुषि द्विधा । अनुभागो मतो ह्येव मूलप्रकृतिगोचरः ॥२४४॥

अत्रोत्कृष्टानां साद्यादयो भेदाः—

❁

अष्टानामस्त्यनुत्कृष्टोऽनुभागश्चतुरंशकः । त्रिचत्वारिंशतोऽपि स्यादजघन्यश्चतुर्विधः ॥२४५॥
अनुभागाख्यबन्धास्तु परिसृष्टास्त्रयोऽत्र ये । साद्यध्रुवप्रकारेण द्विविक्त्वा भवन्ति ते ॥२४६॥
तैजसागुरुलघ्वाह्वे शस्तं वर्णचतुष्टयम् । कर्मणं निर्मिदष्टानामनुत्कृष्टश्चतुर्विधः ॥२४७॥
दृष्टिरोधे नव ज्ञाने विघ्ने च दश षोडश । कषाया भोजगुप्से च निन्द्यं वर्णचतुष्टयम् ॥२४८॥

* आदर्शप्रतावेते भेदा लिखिता न सन्ति, अतः शतकगाथाङ्क ४४३ स्य संस्कृतटीकातो बोध्याः ।
सम्पादकः ।

मिथ्यात्वमुपघातश्च त्रिचत्वारिंशतोऽपि हि । अजघन्यश्चतुर्भेदस्त्रयोऽन्ये सादयोऽध्रुवाः ॥२४६॥

४३ ।

प्रकृतीनां तु शेषाणामनुभागा मता जिनैः । उत्कृष्टाद्यास्तु चत्वारः साद्याः प्रत्येकमध्रुवाः ॥२५०॥

७३ ।

स्वमुखेनैव पच्यन्ते मूलप्रकृतयोऽपराः । स्वजातावेव मोहायुरूनाः परमुखेन च ॥२५१॥

अस्यार्थः—सर्वासा मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनैवानुभवः उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीयानां परमुखेनापि भवति । आयुर्देक्-चारित्रमोहवर्जानाम् । उक्तञ्च—

पच्यते न मनुष्यायुर्नरकायुर्मुखेन हि । नापि चारित्रमोहाख्यं दृष्टिमोहमुखेन तु ॥२५२॥

विशुद्धया च प्रकृष्टोऽनुभागः स्याच्छुभकर्मणाम् । सकलेशेनाशुमानां तु जघन्यस्त्वन्यथा मतः ॥२५३॥

द्विचत्वारिंशतस्तीव्र-शस्तानां स्याद्विशुद्धितः । अशस्तानां द्वयशीतेस्त्वसुदृक् सकलेशयोगतः ॥२५४॥

वपुःपञ्चक्रमायुष्कत्रिकं त्रसचतुष्टयम् । अङ्गोपाङ्गत्रिकं निर्मिदाद्ये सस्थान-सहती ॥२५५॥

परघातागुरुलज्जान्नेः देवद्विक-नरद्विके । सुभगोच्चस्थिरोच्छ्वासा सुस्वर सन्नभोगतिः ॥२५६॥

पञ्चाक्ष च शुभादेये शस्त वर्णचतुष्टयम् । यशः सातातपोद्योताः प्रशस्तातीर्थकृयुताः ॥२५७॥

४२ ।

प्रशस्तास्वातपोद्योतौ नृ-तिरश्चां तथाऽऽयुपी । तीव्रा मिथ्यादशः सन्ति शेषाः सम्यग्दशस्तथा ॥२५८॥

औदारिकद्वयं चाद्या सहतिर्नृद्वयं तथा । सुर-नारकसदृष्टिः पञ्च तीव्रीकरोत्यमूम् ॥२५९॥

अप्रमत्तोऽपि देवायुर्द्विचत्वारिंशतस्ततः । शेषां द्वात्रिंशतं तीव्रां चपका एव कुर्वते ॥२६०॥

४१।१।३२। मीलिताः ४२ ।

ज्ञानविघ्ने च द्योद्ये पञ्च पञ्च नव क्रमात् । मोहे पङ्क्तिशतिर्नाच निन्द्य वर्णचतुष्टयम् ॥२६१॥

श्वभ्र-तिर्यग्द्वये पञ्च सस्थानान्ययशोऽशुभम् । पञ्चसहृतयोऽसात्वानादेयासन्नभोगतिः ॥२६२॥

सूक्ष्म साधारणैकाक्षे श्वभ्रायुर्विकलत्रिकम् । उपघातमपर्याप्तं स्थावरास्थिरदुःस्वरम् ॥२६३॥

दुर्भग चाप्रशस्तेय द्वयशीतिर्वामद्वयुताः ।

८२ ।

श्वभ्र-तिर्यग्-नरायूष्यपर्याप्तं विकलत्रिकम् ॥२६४॥

सूक्ष्म साधारण श्वभ्रद्वयमेकादशेति याः । मिथ्यादशो नृ-तिर्यग्जस्तीव्रास्ताः कुर्वतेऽङ्गिनः ॥२६५॥

११ ।

आतपस्थावरैकाक्षं तीव्रयेद् वामदृक् सुरः । तीव्रयन्ति तथोद्योतमाश्रिताः सप्तमीं क्षितिम् ॥२६६॥

३।१ ।

तिर्यग्द्वयमसप्राप्तं तिष्ठस्तु प्रकृतीरिमाः । तीव्रानुभागबन्धास्तु कुर्वन्ति सुरनारकाः ॥२६७॥

३

चतुर्गतिगताः शेषाः प्रकृतीस्तीव्रयन्ति तु । जीवास्तीव्रकपायाख्याः नियमेनासदृष्टयः ॥२६८॥

६४ ।

अथ शुद्धस्वामित्वमाह—

सूक्ष्मो मन्दानुभागो हि कुर्यादन्ते चतुर्दश । अनिवृत्तिः पुनः पञ्चापूर्वास्त्वेकादशापि च ॥२६९॥

१४।५।११ ।

ज्ञानावृद्धिर्नयोर्दृष्ट्यावृत्तेर्दश चतुष्टयम् । सूक्ष्मेऽनिवर्तिके पुंस्त्व सज्जालानां चतुष्टयम् ॥२७०॥

१४।५

ॐ अस्मिन् श्लोकपादेऽक्षराधिक्यमस्ति । सम्पादकः ।

हास्यं रतिर्जुगुप्सा भीर्निन्दं वर्णचतुष्टयम् । प्रचला चोपघाताश्च निद्रैका दश चाष्टमे ॥२७१॥

अपूर्वे ११

आहारस्याप्रमत्ताख्यः शोकारत्योः प्रमादवान् ।

२।२।

स्थानगृद्धित्रयं मिथ्यात्वं चानन्तानुबन्धिनः ॥२७२॥

मिथ्यादृष्टिर्द्वितीयांश्च कोपादीनभ्यसयतः । तृतीयं च कपायाणां चतुष्कं दश सयतः ॥२७३॥

८।४।४। मीलिताः १६ ।

इत्येताः प्रकृतीरेते चारित्र्याभिमुखास्त्रयः । मन्दानुभागबन्धा हि क्रमात्पोडश कुर्वते ॥२७४॥

१६।

सूक्ष्ममायुश्चतुष्कं च षट्कं वैक्रियिकाह्वयम् । साधारणमपर्याप्त विकलाद्यत्रयं तथा ॥२७५॥

मिथ्यादृशो नृ-तिर्यञ्चो मन्दाः कुर्वन्ति पोडश । औदार्यद्वयमुद्योतस्तिस्त्रश्च सुर-नारकाः ॥२७६॥

१६।३।

नीच तिर्यग्द्वयं चेति तिसृणां कुर्वतेऽङ्गिनः । मन्दानुभागबन्धं तु सप्तमीमवनिं गताः ॥२७७॥

३।

देवमानुष्यतिर्यञ्चः स्थावरैकाक्षयोस्तथा । मन्दतां कुर्वते भावे वर्तमानास्तु मध्यमे ॥२७८॥

२।

मिथ्यादृशो हि सौधर्मदेवान्ता एकमातृपम् । मर्त्यास्तीर्थकरत्वं तु मन्दीकुर्वन्त्यसंयताः ॥२७९॥

१।१।

पञ्चाक्षं कार्मण तेजः शस्तं वर्णचतुष्टयम् । निर्मित्रसचतुष्कं चाथोच्छ्वासाऽगुरुलघ्वपि ॥२८०॥

परघातं च संविलष्टाश्चतुर्गतिगता अपि । मिथ्यादृशस्तु कुर्वन्ति मन्दाः पञ्चदशाप्यमूः ॥२८१॥

१५।

तथा मिथ्यादृशस्तीव्रविशुद्धियुतचेतसः । स्त्रीत्व-पण्डत्वयुग्मस्य मन्दिमानं वितन्वते ॥२८२॥

२।

सद्दृष्टिरितरो चाष्टौ दुर्दृष्टिस्त्यग्रविंशतिम् । मन्दयेत्परिणामेऽथ वर्तमानो हि मध्यमे ॥२८३॥

सातासाते स्थिरद्वन्द्वं शुभाशुभ-यशोऽयशः । अष्टाप्येता हि सद्दृष्टिर्वामदृष्टिश्च मन्दयेत् ॥२८४॥

८।

षट्के सस्थान-सहृद्योर्नभोगतियुगं तथा । मर्त्यद्वितयमादेयमनादेयं सुरद्वयम् ॥२८५॥

दुर्भगं सुभगं चैव तथोच्चैर्गोत्रमेव च । विंशतिं श्रयधिकामेव मन्दीकुर्वन्त्यसद्दृशः ॥२८६॥

२३।

भवन्ति सर्वघातिन्यो मिथ्यात्वं केवलावृत्तिः । पञ्चाद्या दृग्बुधोऽन्त्याश्च कषाया द्वादशादिमा ॥२८७॥

इति बन्धे विंशतिः २० । सम्यग्मिथ्यात्वेन सहोदये एकविंशतिः २१ ।

चतस्रो ज्ञानरोधे स्थुस्तिस्त्रो दृग्बुधि मोहने । सज्वाला नोकपायाश्च देशघ्न्यो विघ्नपञ्चकम् ॥२८८॥

इति बन्धे पञ्चविंशतिः २५ । सम्यक्त्वेन सहोदये षड्विंशतिः २६ । एवं घातिप्रकृतयो मीलिताः ४७ ।

नान्नो वेद्यस्य गोत्रस्यायुपः प्रकृतयस्तु याः । अघातिन्यस्तु ताः सर्वा एकोत्तरशतप्रमाः ॥२८९॥

१०१ । इति सर्वा मीलिता १४८ ।

अघातिन्योऽपि घातिन्यः सन्त्येता घातिसंयुजः । पुण्य-पापास्त्वघातिन्यः स्थुःपापा घातिसंज्ञकाः ॥२९०॥

चतस्रो ज्ञानरुध्याद्याः संज्वालाः विघ्नपञ्चकम् । तिस्रो दृग्बुधि पु वेद इति सप्तदशप्रमाः ॥२९१॥

१७।

मिथ्यात्वमिन्द्रिय काया. पट् कपायचतुष्टयम् । वेदो हास्यादिषु द्वे भीयुग्म योगो दशाष्ट च ॥७१॥

१११६।१।१।२।२।१ । मीलिताः १८ ।

अत्रापि पञ्चाना मिथ्यात्वानामेकतर १ पण्णामिन्द्रियाणामेकतरेण पट्कायविराधने सप्तासयम-
प्रत्ययाः ७ । चतुर्णां क्रोधमानमायालोभचतुष्काणामेकतर क्रोधचतुष्कमन्यद्वा चतुष्क ४ । एकतरो वेद. १,
एकतर युगल २, भयजुगुप्सा च २ । आहारद्वयवर्जशेषत्रयोदशयोगानामेकतरः १ । एवमेतेऽष्टादशोक्तृष्ट-
प्रत्ययाः १८ ।

अत्र पञ्चमिथ्यात्वैकतर पञ्च भङ्गाः, पट्मिन्द्रियभङ्गा, एकः कायभङ्ग, चत्वारः कपायचतुष्कभङ्गा, त्रयो
वेदभङ्गा, द्वौ हास्यादियुगलभङ्गौ, एको भययुगलभङ्गः, त्रयोदश योगभङ्गा । ५।६।१।१।२।२।१।१३ ।
अन्योन्याभ्यस्ता. सर्वे भङ्गाः, ६३६० । एवमेते जघन्योक्तृष्टा जघन्यानुक्तृष्टप्रत्ययैर्मिथ्यादष्टिरर्पितप्रकृतीर्व-
ध्नाति । वामदृष्टेर्भङ्गा सर्वे मीलिता. ४१७३१२० । एवमन्येऽपि नेया. ।

तत्र सासनस्यैते जघन्यप्रत्ययाः का० अ० म० यो० ०।१।१।१।१।२।०।१ मीलिताः १० ।
१ १ ० १२।१

एवमेते ०।६।१।१।२।०।१२ । अन्योन्यघ्ना भङ्गा. १०३६८ । तथा वैक्रियिकमिश्रयोगे सासनो नरकेषु न
व्रजति, तेन तस्य देवेषु स्त्री-पुंवेदयोरेते ०।६।१।१।२।०।१ । अन्योन्यघ्ना भङ्गाः ५७६ । एवमेते
१०३६८ । एते च ५७६ मीलिताः जघन्याः १०६४४ ।

	का०	अ०	म०	यो०	
एकादशः—	२	१	०	१२।१	४६२४८ ।
	१	१	१	१२।१	
द्वादशः—	का०	अ०	म०	यो०	१०२१४४ ।
	३	१	०	१२।१	
	२	१	१	१२।१	
त्रयोदशः—	१	१	२	१२।१	१२७६८० ।
	का०	अ०	म०	यो०	
	४	१	०	१२।१	
	३	१	१	१२।१	
चतुर्दशः—	२	१	२	१२।१	१०२१४४ ।
	का०	अ०	म०	यो०	
	५	१	०	१२।१	
	४	१	१	१२।१	
	३	१	२	१२।१	
पञ्चदशः—	का०	अ०	म०	यो०	५१०७२ ।
	६	१	०	१२।१	
	५	१	१	१२।१	
	४	१	२	१२।१	
षोडशः—	का०	अ०	म०	यो०	१४५६२ ।
	६	१	१	१२।१	
	५	१	२	१२।१	
सप्तदशः—	का०	अ०	म०	यो०	१७२८ ।
	६	१	२	१२।१	

उत्कर्षेणैते प्रत्यया ०।६।१।१।१।२।२।१ मीलिताः १७ । एवमेते ०।६।१।१।२।२।१।१२
अन्योन्यघ्ना भङ्गाः १७२८ । तथा वैक्रियिकमिश्रे देवेषु स्त्री-पुंवेदयोरेते ०।६।१।१।२।२।१।११ अन्योन्यघ्ना
भङ्गाः ६६ । उभये १८२४ ।

सासादनस्य सर्वेऽपि भङ्गाः मीलिताः ४५९६४८ ।

सम्यग्मिथ्यादष्टेरेते जघन्याः का० भ० यो० ०।१।१।३।१।२।०।१ मीलितः ९ । एषामेते ०।१।
१ ० १०

६।४।३।२।०।१० अन्योन्यघना भङ्गाः ८६४० ।

	का०	भ०	यो०	
दशमः—	२	०	१०	३८८८० ।
	१	१	१०	
	का०	भ०	यो०	
एकादशः—	३	०	१०	८०६४० ।
	२	१	१०	
	१	२	१०	
	का०	भ०	यो०	
द्वादशः—	४	०	१०	१००८०० ।
	३	१	१०	
	२	२	१०	
	का०	भ०	यो०	
त्रयोदशः—	५	०	१०	८०६४० ।
	४	१	१०	
	३	२	१०	
	का०	भ०	यो०	
चतुर्दशः—	६	०	१०	४०३२० ।
	५	१	१०	
	४	२	१०	
	का०	भ०	यो०	
पञ्चदशः—	६	१	१०	११५२० ।
	५	२	१३	
	का०	भ०	यो०	
षोडशः—	६	२	१०	१४४० ।

तथोक्तृष्टा एते ०।१।६।३।१।२।१ मीलितः १६ । एषामेते ०।६।१।४।३।२।१।१० अन्योन्यघना
भङ्गाः १४४० । मिश्रस्य भङ्गाः सर्वेऽपि मीलितः ३६२८८० ।

असंयतस्याप्येते एव प्रत्ययाः, किन्तु भङ्गविशेषस्तत्र दशसु योगेष्वेते जघन्याः का० भ० यो०
१ ० १०

०।१।१।३।१।२।१ मीलितः ६ । एषामेते ०।६।६।४।३।२।०।१० अन्योन्यगुणा भङ्गाः ८६४० । तथौदारिक-
मिश्रमाश्रित्य नृतिर्यक्तु पुंवेद एवैकोऽस्ति, तेनात्रैते ०।६।६।४।१।२।०।१ अन्योन्यगुणा भङ्गाः २८८ । तथा
वैक्रियिकमिश्रकर्मणयोगयोर्देवेषु पुंवेदो वद्वायुष्कस्य नारकेषु नपुंसकवेदोऽस्तीति द्वावेव वेदौ । तेनात्रैते
०।६।६।४।२।२।०।२ अन्योन्यगुणा भङ्गाः ११५२ । एवमसंयते सर्वजघन्यभङ्गाः १००८० ।

	का०	भ०	यो०	
दशमः—	२	०	१०।२।१	४५३६० ।
	१	१	१०।२।१	
	का०	भ०	यो०	
एकादशः—	३	०	१०।२।१	६४०८० ।
	२	१	१०।२।१	
	१	२	१०।२।१	

	का०	म०	यो०	
द्वादशः—	४	०	१०।२।१	
	३	१	१०।२।१	११७६०० ।
	२	२	१०।२।१	

	का०	म०	यो०	
त्रयोदशः—	५	०	१०।२।१	
	४	१	१०।२।१	१४०८० ।
	३	२	१०।२।१	

	का०	म०	यो०	
चतुर्दशः—	६	०	१०।२।१	
	५	१	१०।२।१	४७०४० ।
	४	२	१०।२।१	

	का०	म०	यो०	
पञ्चदशः—	६	१	१०।२।१	१३४४० ।
	५	२	१०।२।१	

उत्कृष्टप्रत्ययाश्च १६ दशसु योगेष्वेते का० म० यो० एतेषामेते ०।६।१।४।३।२।१

अन्योन्यगुणा भङ्गाः १४४० । तथैदारिकमिश्राश्रयेण नृ-तिर्यक्षु पुवेद एवैकोऽस्ति, तेनाग्रैते ०।६।१।४।१।२।१।१ अन्योन्यगुणा भङ्गाः ४८ । तथा वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगयोः श्वाभ्र-देवेषु पण्ड-पुवेदौ द्वावेव भवत-स्तेनाग्रैते ०।६।१।४।२।२।१।२ अन्योन्यगुणा भङ्गा १६२ । एवमेते मीलिताः असयतस्योत्कृष्टाः १६८० ।

असयतस्य सर्वेऽपि भङ्गा मीलिताः ४२३३६० ।

देशगुणकाराः ५।१०।१०।५।१ । सयतासयतस्यैते जघन्याः का० म० यो० । १।१।१।२।१।१

२।०।१ मीलिताः ८ । एतेषामेते ०।६।५।४।३।२।०।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः ६४८० ।

	का०	म०	यो०	
नवमः—	२	०	६	
	१	१	६	२५६२० ।

	का०	म०	यो०	
दशमः—	३	०	६	
	२	१	६	४५३६० ।
	१	२	६	

	का०	म०	यो०	
एकादशः—	४	०	६	
	३	१	६	४५३६० ।
	२	२	६	

	का०	म०	यो०	
द्वादशः—	५	०	६	
	४	१	६	२७२१६ ।
	३	२	६	

१ इग दुग तिग सजोए देसजयग्मि चउ पच सजोए ।

पचेव दसय दसग पचय एक्क हवति गुणयारा ॥

	का०	भ०	यो०	
त्रयोदशः—	५	१	६	६०७२ ।
	४	२	६	

का० भ० यो०

तथोक्तृष्टाः ५ २ ९ ०।१।५।२।१।२।१।१। मीलिताः १४ । एषां चैते ०।६।१।४।३।२।१।६ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः १२६६ ।

संयत्तासंयतस्य सर्वेऽपि भङ्गाः मीलिताः १६०७०४ ।

अशस्तवेदपाकाच्च नाहारद्धिः प्रजायते । पाके स्त्रीषण्डयोस्तीर्थकृत्सत्त्वे क्षपत्रेऽस्ति न ॥७२॥

अनेन एतदुक्तं भवति—प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वाणामेते जघन्याः ०।०।०।१।१।२।०।१ मीलिताः ५ । एषा-
मेते ०।०।०।४।३।२।०।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः २१६ । मध्यमाः ०।०।०।१।१।२।१।१ एते मीलिताः ६ ।
पुषामेते ०।०।०।४।३।२।२।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः ४३२ । भय-जुगुप्सासहिता उत्कृष्टाश्चैते ०।०।०।१।१।२।२।१ मीलिताः ७ । पुषामेते ०।०।०।४।३।२।१।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः २१६ । किन्तु प्रमत्तस्य स्त्री-नपुंसक-
वेगेन्द्रये सत्याहारद्वयस्योदयाभावात्पुर्वेदस्यैवोदये सति तस्योदयादन्येऽपि पुर्वेदभङ्गाः १६ । कथम् ?
उच्यते—सज्जलनाः ४ एकः पुर्वेदः १ द्वे युगले २ आहारकद्वयं २ । एषामन्योन्यबंधे भङ्गाः १६ । मध्यमाः
४।१।२।२।२ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः ३२ । उत्कृष्टाः ४।१।२।१।२ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः १६ । एवं प्रमत्तस्य
सर्वे भङ्गा मीलिता ६२८ । अप्रमत्तस्य च सर्वे भङ्गा मीलिताः ८६४ । अपूर्वस्य च सर्वे भङ्गा
मीलिताः ८६४ ।

अनिवृत्तेर्जघन्येन द्वौ, उत्कर्षेण त्रयम् । कथम् ? सवेदानिवृत्तेश्चतुर्णां संज्वलनानामेकतरः १ त्रिवे-
दानामेकतरः १ नवयोगानामेकतरः १ । एवमेते त्रयः ०।०।०।१।१।०।०।१ उत्कृष्टाः ३ । पुषामेते ०।०।
०।४।३।०।०।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः १०८।४।२।६ अन्योन्यगुणा मध्यमाः ७२।४।१।६ अन्योन्यगुणा
भङ्गाः ३६ । अवेदानिवृत्तेर्जघन्याः ०।०।०।१।०।०।०।१ सज्जलनयोगावनयोरेते ०।०।०।४।०।०।०।६
अन्योन्यगुणा भङ्गाः ३६ । ३।६ अन्योन्यगुणा मध्यमाः २७।२।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः १८।१।६ तथा
भङ्गाः ६ । सर्वे मीलिताः ३०६ ।

सूचमे सूचमलोभ एकः १ । नवानां योगानामेकतरः १ । एवं द्वौ जघन्यौ उत्कृष्टौ च प्रत्ययौ । अत्र
नवयोगभङ्गाः ६ ।

शान्त-क्षीणयोर्नवानां योगानामेकतरः १ इत्येको जघन्य उत्कृष्टश्च १ योगप्रत्ययोऽस्य । नव
योगभङ्गाः ६ ।

सयोगस्य सप्तानां योगानामेकतरः १ । इत्येको जघन्य उत्कृष्टश्च योगप्रत्ययः । सप्तयोगभङ्गाः ७ ।

तत्प्रदोषोपघातान्तरायासादननिह्नुवाः । तन्मात्सर्यं च बन्धस्य हेतवो ज्ञान द्रुधोः ॥७३॥

अस्यार्थः—तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य कीर्त्तने कृते कस्यचिदनभिव्याहारतोऽन्तःपैशुन्यपरिणामः
प्रदोषः । उपघातस्तु ज्ञानमज्ञानमेवेति ज्ञाननाशाभिप्रायः । ज्ञानव्यवच्छेदकरणमन्तरायः । कायेन वाचा
वा परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनमासादनम् । कुतश्चित्कारणान्नास्ति, न वेद्मीत्यादि ज्ञानस्य व्यपलपनवचनं
निह्नवः । कुतश्चित्कारणान्नावित्तमपि ज्ञानं दानार्हमपि यन्न दीयते तन्मात्सर्यमिति ।

सगगसंयमादिभ्यो भूतव्रत्यनुकम्पया । स्यादानात्त्वान्तितः शौचाद् बन्धः सद्बेद्यकर्मणः ॥७४॥

दुःखशोकवधाक्रन्दपरिदेवनतापतः । स्वान्योभयस्थिताद् बन्धोऽस्त्यसद्बेद्यस्य कर्मणः ॥७५॥

प्रत्यनीको भवन्नहंसिद्धसाधुषु पाठके । गुरौ रत्नत्रये चापि दृष्टिमोहं समर्जयेत् ॥७६॥

केवलश्रुतसंग्रहानां तपोधर्मद्विवैकसाम् । वध्नाति प्रत्यनीकः सन् जीवो दर्शनमोहनम् ॥७७॥

कपायोदयतस्तीव्राद्वागादिपरिणामतः । द्विमेढं परिवध्नाति जीवश्चारित्रमोहनम् ॥७८॥

मिथ्यादृग् निर्बलतो लोभी ब्रह्मभ्रमपरिग्रहः । रौद्रचित्तो विशीलश्च नरकायुः समर्जयेत् ॥७९॥

रन्मार्गदेशको जीवः शल्यवान् मार्गनाशकः । मूढचित्तः शठो मार्या तिर्यगायुः समर्जयेत् ॥८०॥

इति विशेषप्रत्यया बन्धास्रवयो ।

[illegible]

गुणैश्वरीणा दादादादादादा६।६।६।६।५।५।२।० ।

गुणपूर्वार्णः—

बन्धोदयोदीरणा एकत्र तद्यथा—

ଅଂ	ଭା	ଭା	ତ	ଭା	ଭା	ଭା	ତ	ତ	ତ	ନ	୧	୧	୧	୦
ଟଂ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	ନ	୧	୧	୧	୦
ତୃତୀଂ	ନା	ନା	ନ	ଭା	ନା	ନା	ନ	ନ	ନ	ନ	୧	୧	୧	୦

अग्र प्रमत्त धार्युर्वन्धमारभते, अप्रमत्तो भूत्वा समार्तिं नयेदिति ज्ञापनार्थं सप्त कर्माणि ब्रह्मार्ता-

सुक्तम् ।

ज्ञान-दर्शनयो रोधी वेद्य मोहायुपी तथा । नामगोत्रान्तरायौ च मूलप्रकृतयोऽष्ट वै ॥१००॥
क्रमात्पञ्च नव द्वे च विंशतिश्चाष्टसयुता । चतस्रो द्व्यधिका चत्वारिंशद् द्वे पञ्च चोत्तरा ॥१०१॥

પ્રાદરારદાષ્ટાષ્ટારાખા

बन्धभेदेन चेति स्युः साधनादिध्रुवाध्रुवाः । स्थान^१ भुजाकृतिश्चात्पतरोऽवस्थित ईशिता ॥१०२॥

६

अबन्धाद्धनतः सादिरनादिः श्रेण्यसङ्क्रमे । बन्धोऽभ्ये ध्रुवो बन्धे बन्धध्वसेऽथवा ध्रुवम् ॥१०३॥

अल्प बद्ध्वा भुजाकारे बहुबन्धात्यतोऽन्यथा । बन्धात्यल्पतरे बन्धे तत्तद्बन्धात्यवस्थिते ॥१०४॥

कर्मबन्ध विशेषस्य कर्तृता स्वामिता मता ।

ज्ञातव्यं नवभेदानां बन्धानामिति लक्षणम् ॥ (अमित० स० पंच सं० ४, १०४)

कर्मपट्कस्य बन्धाः स्युः साधनादिध्रुवाध्रुवाः । साधूनास्ते हि वेदस्यायुपोऽनादिध्रुवोनिताः ॥१०५॥

चतुर्विधा ध्रुवाख्याः स्युरुत्तरप्रकृतिष्वपि । शेषाः साद्यध्रुवा बन्धे तथा सपरिवृत्तयः ॥१०६॥

दशापि ज्ञान-विधनस्था द्योधे नव षोडश । कषाया भीर्जुगुप्सोपघातस्तैजसकर्मणे ॥१०७॥

मिथ्यात्वागुरुलघ्वाख्ये निर्मिद्वर्णचतुष्टयम् । ध्रुवाश्चतुर्विधा बन्धे चत्वारिंशच्च सप्तयुक् ॥१०८॥

इति ध्रुवाः ४७ ।

आहारद्वयमायूँपि चत्वार्युद्योततीर्थकृत् । परघातातपोच्छ्वासाः शेषाः साद्यध्रुवा इमाः ॥१०९॥

इत्यध्रुवाः निःप्रतिपक्षाः ११ ।

द्वे वेद्ये गतयो हास्यचतुष्कं द्वे नभोगती । पट्के संस्थान-सहत्योर्गोत्रे वैक्रियिकद्वयम् ॥११०॥

चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि दश युग्मानि जातयः । औदारिकद्वयं वेदा एताः सपरिवृत्तयः ॥१११॥

६२ सप्रतिपक्षा इत्यर्थः ।

बन्धे स्थानानि चत्वारि भुजाकारास्त्रयस्त्रयः । कर्मस्वल्पतरा ज्ञेयाश्चत्वारोऽष्टस्वस्थिताः ॥११२॥

मूलप्रकृतिषु बन्धस्थानानि ८।७।६।१। भुजाकाराः १ ६ ७ । अल्पतराः ६ ७ ८ ।

अवस्थिताः ८ ७ ६ १ ।

द्योधे मोहने नाग्नि बन्धे त्रीणि दशाष्ट च । स्थानान्येषु भुजाकाराः शेषेषु स्थानमेकम् ॥११३॥

नव पट्क चतुष्क च स्थानानि त्रीणि द्युधि । भुजाकारोऽत्र वाच्योऽल्पतरोऽवस्थित एव च ॥११४॥

बन्धस्थानानि १।६।४। भुजाकारौ ४ ६ अल्पतरौ ६ ६ अवस्थिता ६ ६ ४ ।

द्योधे नव सर्वाः पट् स्थानगृद्धित्रयं विना । चतस्रः प्रचला-निद्राहीनाः स्थानेष्विति त्रिषु ॥११५॥

१।६।४।

आद्यौ द्वौ नव बन्धीतो मिश्राद्याः षट् द्युधि । अपूर्वान्ताश्चतस्रोऽत्रापूर्वाद्याः सूचमपश्चिमाः ॥११६॥

१।६।६।६।६।६

अपूर्वप्रथमसप्तमभागे ६ । अपूर्वद्वितीयसप्तमभागादारभ्य यावत्सूचमम् ४ ।

द्व्येकाग्रे विशती सप्तदश बन्धे त्रयोदश । नव-पञ्च-चतुष्क-त्रिद्व्येकस्थानानि मोहने ॥११७॥

२२।२१।१७।१३।१।५।४।३।२।१।

द्वाविंशतिः समिथ्यात्वाः कषायाः षोडशैककः । वेदो युग्मं च हास्यादिष्वेकं भयजुगुप्सने ॥११८॥

१।१६।१।२।१।१। मीलिताः २२ ।

इयमाद्ये द्वितीये तु निर्मिथ्यात्वनपु सकाः । हीनाऽनन्तानुबन्धिस्त्रीवेदैर्मिश्रेऽथवाऽन्रते ॥११९॥

२

मिथ्यादृष्टौ २२ । प्रस्तारः २ २ भङ्गाः ६ ।

१ १ १

१ ६

१

१. कर्मबन्धविशेषो यः स स्थानमिति कथ्यते । (अमित० स० पंचसं० ४, १०२) ।

सासने २१ । प्रस्तारः २ २ भङ्गाः ४ । मिश्रासयतयोः १७ । प्रस्तारः २ २ भङ्गौ २ ।

१ १
१६

१
१२

देशे द्वितीयकोपाद्यैरुनाः पण्डेऽपि तत्परैः^१ । अग्रमत्ते तथाऽपूर्वे शोकारतिविवर्जिताः ॥१२०॥

देशग्रते १३ । प्रस्तारः २ २ भङ्गौ २ । प्रमत्ते ६ । प्रस्तारः २ २ भङ्गौ २ । अग्रमत्तापूर्वयोः ६

१
८

१
४

२

प्रस्तारः २ भङ्गः १ ।

१
४

बन्धे पुंवेदसंज्वाला* संज्वालाश्चानिवृत्तिके । तेऽपि क्रुन्मानमायोना* क्रमास्थानानि मोहने ॥१२१॥

अनिवृत्तौ बन्धाः ५।४।३।२।१।

भङ्गाः द्वाविंशतेः पट् स्युः बन्धस्थाने ततः परे । चत्वारस्त्रिंशत्तौ द्वौ द्वावेकैकोऽन्येषु मोहने ॥१२२॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।१।

अत्र त्रयो वेदभङ्गाः* द्वियुगलभङ्गगुणिताः पट् भङ्गाः* द्वाविंशतिस्थाने मिथ्यादृष्टौ ६ । स्त्री-पुरुषभङ्गौ द्वियुगलगुणितौ चत्वारो भङ्गाः एकविंशतिस्थाने सासनस्य ४ । मिश्रासयतयोः सप्तदश बध्नतो देशसंयतस्य त्रयोदश बध्नतः* प्रमत्तस्य च नव बध्नतो द्वौ युगलभङ्गौ त्रिषु बन्धस्थानेषु २ । अग्रमत्तापूर्वकरणावरतिशोको न बध्नीतस्तेन नव बध्नतोरपि तयोरेकैक एव भङ्गः १ । एवमनिवृत्तौ पञ्चसु बन्धस्थानेषु ५।४।३।२।१। एकैको भङ्गः १।१।१।१।१ ।

विंशतिः स्युर्भुजाकाराः सैकाश्रावपतरा दश । मोहेऽवक्तव्यबन्धौ द्वौ त्रयस्त्रिंशदवस्थिताः ॥१२३॥

२०।११।२।३३।

मोहे भुजाकाराः—एक बध्नत्रयस्तादवतीर्य द्विविध बध्नाति । तत्रैव कालं कृत्वा देवेष्टपक्षः सप्तदशविध वा बध्नाति । एव सर्वत्रोच्चारणीयम् ।

	१	२	३	४	५	६	१३	१७	२१
भुजाकाराः—	२	३	४	५	६	१३	१७	२१	२२
	१७	१७	१७	१७	१७	१७	२१	२२	
						२१	२२		
						२२			
	२२	१७	१३	३	५	४	३	२	
अवपतरा—	१७	१३	६	५	४	३	२	१	
	१३	६	५						
	६								

सूक्ष्मोपशामकोऽधस्तादवतीर्योऽनिवृत्तिर्भूत्वैक बध्नाति । अथवा सूक्ष्मोपशामक कालं कृत्वा देवेष्ट-

पक्षः सप्तदशविध बध्नाति । अन्यक्तभुजाकारौ १ । भुजाकारावपतरान्यक्तसमासेनावस्थिता भवन्ति

१७

भुजाकाराः २० अवपतराः ११ अवक्तव्यौ २ । समासेन ३३ ।

त्रिकपण्डिताया नवाग्रा विंशतिः क्रमात् । दशैकादशयुक्तैक बन्धस्थानानि नामनि ॥१२४॥

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३१ ।

श्वभ्रतिर्यद्दुन्देवानामेकं पञ्च त्रि पञ्च तु । क्रमेण गतियुक्तानि बन्धस्थानानि नामनि ॥१२५॥

१।५।३।५।

तत्र श्वभ्रद्वयं हुण्डं निर्माणं दुर्भगास्थिरे । पञ्चेन्द्रियमनादेयं दुःस्वरं चायशोऽशुभम् ॥१२६॥

भसन्नभोगतिस्तेजः कार्मण विक्रियद्वयम् । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादि च चतुष्टयम् ॥१२७॥

इत्यष्टाविंशतिस्थानमेक मिथ्यात्वसंयुजः । श्वभ्रतिपूर्णपञ्चाक्षैर्युक्त बध्नन्ति देहिनः ॥१२८॥

भङ्गाः १ ।

अत्र नरकगत्या सह वृत्त्यभावादेकाक्षविकलाक्षजातयो न वध्यन्ते ।

दशभिर्नवभिः षड्भिः पञ्चभिर्विंशतिस्त्रिभिः । युक्तस्थानानि पञ्चैव तिर्यग्गतियुतानि तु ॥१२९॥

३०।२१।२६।२५।२३ ।

तत्राद्या त्रिंशदुद्योततिर्यग्विद्वतयकार्मणे । तेजः संहति-संस्थानपट्कस्यैकतरद्वयम् ॥१३०॥

नभोगतियुगस्यैकतरमौदारिकद्वयम् । वर्णाद्यगुरुलघ्वादि त्रसादि च चतुष्टयम् ॥१३१॥

स्थिरादिषड्युगेष्वैकतरं पञ्चाक्षनिर्मिती । पञ्चाक्षोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥१३२॥

मिथ्यादृष्टिः प्रबध्नाति बध्नात्येतां च सासनः । द्वितीयां त्रिशतं किन्तु हुण्डासम्प्राप्तवर्जिताम् ॥१३३॥

तत्र प्रथमत्रिंशति पट्संस्थान-पट्संहनन-नभोगतिर्युगस्थिरादिषड्युगलानि ६।६।२।२।२।२।२।२ ।

अन्योन्याभ्यस्तानि भङ्गाः ४६०८ ।

द्वितीयत्रिंशति सासनेऽन्तिमसंस्थान-संहनने बन्धं नागच्छतस्तद्योग्यतीव्रसंक्लेशाभावात् । अतः

५।५।२।२।२।२।२।२ । अन्योन्याभ्यस्तानि भङ्गाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टाः पुनरुक्ता इति न गृह्यन्ते ।

तत्र त्रिंशत्तृतीयेयं तिर्यग्विद्वतयकार्मणे । तेजश्चौदारिकद्वन्द्वं हुण्डासम्प्राप्तदुर्भगम् ॥१३४॥

त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादिकचतुष्टयम् । विकलत्रितयस्यैकतरं दुःस्वरमेव च ॥१३५॥

यशःस्थिरशुभद्वन्द्वत्रिकस्यैकतरत्रयम् । निर्माणं चाप्यनादेयमुद्योतोऽसन्नभोगती ॥१३६॥

बध्नात्येतां मिथ्यादृक् पर्याप्तोद्योतसंयुताम् । विकलेन्द्रियसयुक्तां तिर्यग्गतियुतामपि ॥१३७॥

अत्र तृतीयत्रिंशति विकलेन्द्रियाणां हुण्डसंस्थानमेकमेव । तथैतेषां बन्धोदययोः दुःस्वरमेवेति ।

तिस्रो जातयस्त्रीणि युगलान्यन्योन्याभ्यस्तानि ३।२।२।२ । भङ्गाः २४ ।

तिस्रो हि त्रिंशतो यद्वदेकाक्षत्रिशतस्तथा । तिस्रो विशेष एतासु यदुद्योतो न विद्यते ॥१३८॥

एतासु पूर्वोक्ता भङ्गाः ४६०८।२४

षड्विंशतिरियं तत्र तिर्यग्विद्वतयकार्मणे । तेज औदारिकैकाक्षे हुण्डं पर्याप्तबादरे ॥१३९॥

निर्मिच्छागुरुलघ्वादिवर्णादिक चतुष्टयम् । शुभस्थिरयशोद्वन्द्वेष्वैकैकमथ दुर्भगम् ॥१४०॥

आतपोद्योतयोरैक प्रत्येक स्थावरं तथा । अनादेयं च बध्नाति मिथ्यादृष्टिरिमामपि ॥१४१॥

सतिर्यग्गतमेकाक्षपूर्णबादरसंयुताम् । तथैकतरसंयुक्तामातपोद्योतयोरपि ॥१४२॥

तत्र षड्विंशतावेकेन्द्रियेष्वङ्गोपाङ्गं नास्ति, अष्टाङ्गाभावात् । संस्थानमप्येकमेव हुण्डम् । आत-

पोद्योत-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशो-ऽयशोर्युगानि २।२।२।२ । अन्योन्यगुणानि भङ्गाः १६ ।

षड्विंशतिर्विनोद्योतातपाभ्यां पञ्चविंशतिः । तस्यैकतररोपेताः सूक्ष्म-प्रत्येकपुग्मयोः ॥१४३॥

अत्र प्रथमपञ्चविंशतौ सूक्ष्म-साधारणे भावनादीशानान्ता देवा न बध्नन्ति । तेन यशःकीर्त्ति

निरुध्य स्थिरास्थिरभङ्गौ शुभाशुभभङ्गाभ्यां गुणितौ ४ । अयशःकीर्त्ति निरुध्य बादर-प्रत्येकस्थिरशुभयुगानि

२।२।२।२ । अन्योन्यगुणान्ययशःकीर्त्तिभङ्गाः १६ । द्वयेऽपि २० ।

पञ्चविंशतिरत्रान्या तिर्यग्विद्वतयकार्मणे । पञ्चाक्षविकलाक्षैकतरमौदारिकद्वयम् ॥१४४॥

तेजोऽपर्याप्तनिर्माणे प्रत्येकागुरुलघ्वपि । उपघातायशो हुण्डास्थिरासम्प्राप्तदुर्भगम् ॥१४५॥

त्रसं स्थूलं च वर्णाद्यनादेयमशुभं त्विमाम् । सतिर्यग्गत्यपर्याप्तत्रसां बन्धोति वामदृक् ॥१४६॥

चतुर्विधेन भावेनैताः स्युः परिणताः सदा । शेषास्त्रिविधभावेन सप्तोत्तरशतप्रमाः ॥२६२॥

लतादार्वास्थिपापाणैः समभावैरिमा मताः । शेषा दार्वास्थिपापाणैः सप्तोत्तरशतप्रमाः ॥२६३॥

इति चतुर्विधभावाः १०७ ।

शुभप्रकृतिभावाः स्युर्गुणखण्डसितामृतैः । अपरे निम्बकाक्षीरविपहालाहलैः समाः ॥२६४॥

अत्रापरे अशुभप्रकृतिभावाः ।

^१चतुर्थाप्रत्ययात्सातं मिथ्यात्वादपि षोडश । पञ्चाग्रासयतात्रिंशद्व्यन्तेऽन्याः कपायतः ॥२६५॥

सम्यक्त्वात्तीर्थकृत्वा चाहारक सयमादिमे । प्रधानप्रत्यया यस्मान्नासा बन्धोऽस्ति तैर्विना ॥२६६॥

इति प्रधानहेतुनिर्देशः । अपरे त्वेवमाहुः—

मिथ्यात्वेनाथ कोपादिचतुष्कैश्च त्रिभिः क्रमात् । षोडशाना तथा पञ्चविंशतेर्दशकस्य च ॥२६७॥

चतुर्णां^२ योगतो बन्धः स्यात्सातस्य कपायतः । प्रकृतीनां तु शेषाणां तीर्थसाहारकैर्विना ॥२६८॥

अत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धव्यवच्छिन्नप्रकृतयः षोडश मिथ्यात्वोदयकारणाः । मिथ्यात्वोदयेन विना तासां बन्धानुपलब्धेः १६ । एवमनन्तानुबन्धुदयकारणाः सासने पञ्चविंशतिः २५ । अप्रत्याख्यानोदयकारणाः अविरते दश १० । प्रत्याख्यानोदयनिमित्ता देशव्रते चतस्रः ४ । योगकारण सयोगे सातम् १ । शेषा स्वगुणसंस्थानेषु संज्वलनकपायोदयकारणाः । कुत ? कपायोदयेन सह बन्धोपलब्धेः । ६४ । सम्यक्त्व तीर्थकृत्वस्याऽऽहारयुग्मस्य सयमः^३ बन्धहेतुरिति पूर्वमेवोक्तम् ।

शरीरपञ्चक पञ्च वर्णाः पञ्च रसास्तथा । सस्थानपट्कमष्टौ च स्पर्शाः सहननानि पट् ॥२६९॥

अद्रोपाङ्गश्रिक गन्धौ निर्माणोऽगुरुलघ्वपि । प्रत्येकस्थिरयुग्मे च परधातः शुभाशुभे ॥२७०॥

उपघातात्तपोद्योताः केपास्त्रिद्वन्द्वनान्यपि । सघातैः सह सन्त्येव द्वापष्टि पुद्गलोदयाः ॥२७१॥

एताः पुद्गलविपाकाः वेदितव्याः । कुत ? एतासां विपाकेन शरीरादीनां निष्पत्तेर्दर्शनात् । एव नाग्नि पुद्गलनिबन्धना द्वापञ्चांशत् ५२ । बन्धन-सघातैः सह द्वापष्टिः ६२ ।

ज्ञानद्विगोर्धर्मोहो^४न्तरा^५योथा वेद्यगोत्रजा । गर्तयो जातयस्तीर्थ^६कृदुच्छ्वासा नभोगती ॥२७२॥

असंयुस्त्वेरपर्याप्तस्थूलदेयैर्युगानि च । यशःसुभेगयुग्मे च जीवपाका इमा मताः ॥२७३॥

७८ ।

तत्र ज्ञान-दर्शनावरणे जीवविपाके । कुतः ? जीव एव तयोर्विपाकस्योपलब्धेः । मोहनीयमप्यात्मनि निबद्धमवगन्तव्यम् । कुतः ? सम्यक्त्व-चारित्र्ययोर्जीवगुणयोर्घातकस्वभावत्वात् । अन्तरायमपि जीव निबद्ध वेदितव्यम् । कुतः ? घातिकर्मत्वात्, दानादीनां च विघ्नकरणे तद्व्यापारोपलब्धेः । वेदनीयमप्यात्मनिबद्धम् । कुतः ? सातासातविपाकफलयोः सुख-दुखयोर्जीवे समुपलम्भात् । गोत्रमप्यात्मनिबद्धम् । कुतः ? उच्च-नीचगोत्रयोर्जीवपर्यायत्वे दर्शनात् । गत्यादयोऽपि सप्तविंशतिर्नामप्रकृतयः आत्मनिबद्धाः । कुतः ? एतासां विपाकस्य जीव एवोपलब्धेः ।

चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि क्षेत्रपाका मताः^७ जिनैः । आयूप्यपि हि चत्वारि भवपाकानि सन्ति हि ॥२७४॥

४

तत्र चतस्र आनुपूर्व्यं क्षेत्रनिबद्धाः । कुतः ? प्रतिनियतक्षेत्र एवैतासां फलोपलब्धेः । नरकायुर्नरक-भवननिबद्धम् । कुतः ? नरकभवधारणशक्तिदर्शनात् । शेषायूप्यप्यात्मीयात्मीयभवेषु निबद्धानि, तेभ्यस्तेषां भवानामवस्थानोपलब्धेः ।

मीलिताः १४८ ।

इत्यनुभागबन्धः समाप्तः ।

१ योगात् । २ चतुर्णां प्रत्ययानां सयोगात् । ३ अत्रार्थश्लोकाग्रे वाक्यमस्तीति ज्ञेयम् ।

भागाभागस्तथोत्कृष्टाद्याः स्वामित्वमेव च । दश प्रदेशबन्धे स्युर्भागाभागोऽत्र चास्त्ययम् ॥३०५॥
 एकात्मपरिणामेन गृह्यमाणा हि पुद्गलाः । अष्टकर्मत्वमायान्ति प्रभुक्ताक्षरसादिवत् ॥३०६॥
 एकक्षेत्रावगाढास्तान् कर्माहान् सर्वदेशगान् । यथोक्तहेतून् बध्नाति जीवः सादीननादिकान् ॥३०७॥
 वर्णगन्धरसैः सर्वैश्चतुःस्पशैश्च तद्युतम् । स्यात्सिद्धानामनन्तांशः कर्मानन्तप्रदेशकम् ॥३०८॥

अत्र शीतोष्ण-स्निग्धरूक्षाश्चत्वारः स्पर्शाः ४।

असख्यातांशमावल्याः अपनीय ततोऽपरम् । अष्टकर्मसु तुल्यांश दत्त्वाऽन्यद्विभजेदिति ॥३०९॥
 बध्नतोऽष्टविधं कर्मैकैकस्मिन् समयेऽत्र ये । प्रदेशबन्धमायान्ति तेषामेतद्विभजनम् ॥३१०॥
 भागोऽष्टपोऽत्रायुषस्तुल्यो गोत्र-नाम्नोस्ततोऽधिकः । तुल्यो वरणविघ्नेष्वधिकोऽतोऽतोऽधिमोहने ॥३११॥
 सर्वोपरिमभागो हि वेदनीयेऽधिको मतः । सुख-दुःखनिमित्तत्वाच्छेषाणां स्थित्यपेक्षया ॥३१२॥
 अनुत्कृष्टः प्रदेशाख्यः षण्णां बन्धश्चतुर्विधः । साद्यध्रुवास्त्रयः शेषाः सर्वे मोहायुषोर्द्विधा ॥३१३॥
 ज्ञानावृद्धिघ्नगाः सर्वाः स्त्यानगृद्धित्रय विना । द्योदये पट् जुगुप्सा भीः कपायाः द्वादशान्तिमाः ॥३१४॥
 अनुत्कृष्टाश्चतुर्धाऽऽसां त्रयोऽन्ये सादयोऽध्रुवाः । शेषाणां सादयः सन्ति चत्वारोऽप्यध्रुवास्तथा ॥३१५॥

३०।१०।

मिश्र विनाऽऽयुषो बन्धः षट्सूक्तप्रदेशतः । गुणस्थानेषु चोत्कृष्टो मोहस्य स्याज्जवस्वसौ ॥३१६॥
 आयुर्मोहनचर्जानां षण्णां स्यात्कर्मणा स तु । समुत्कृष्टेन योगेन स्थाने सूक्ष्मकपायके ॥३१७॥
 सप्तानां कर्मणां बन्धो जघन्योऽधमयोगिनः^१ । सूक्ष्मापूर्णनिगोतस्य (?) आयुर्बन्धे तथाऽऽयुषः ॥३१८॥
 सूक्ष्मे सप्तदशानां हि पञ्चानामनिवृत्तिके । सम्यग्दृष्टौ नवानां तु स्यादुत्कृष्टप्रदेशता ॥३१९॥

१७।५।१।

पञ्च पञ्च चतस्रश्च ज्ञाने विघ्नेऽथ द्युधि । सातमुच्चं यशः सप्तदश सूक्ष्मेऽनिवृत्तिके ॥३२०॥

१७।

पुंस्त्वं सञ्जलनाः पञ्च हास्याद्याः पट् च तीर्थकृत् । निद्रा च प्रचला चैवं सम्यग्दृष्टौ हि मानवे ॥३२१॥

५।१।

द्वितीयस्य चतुष्कस्य कोपादीनामसयते । तृतीयस्यापि देशाख्ये प्रदेशोत्कृष्टता भवेत् ॥३२२॥

४।४।

देवद्विकमथाऽऽदेय सुभगं नृ-सुरायुषी । आद्ये सहति संस्थाने सुस्वरं सन्नभोगतिः ॥३२३॥
 असात विक्रियद्वन्द्वमिति याः स्युस्त्रयोदश । मिथ्यादृष्टौ च सद्दृष्टौ तासामुत्कृष्टप्रदेशता ॥३२४॥

१३।

आहारकद्वयस्याथ प्रमादरहितो यतिः । शेषाणां तु स मिथ्यात्वः प्रदेशोत्कर्षणक्षमः ॥३२५॥

६६।

संज्ञी पर्याप्त उत्कृष्टयोगः स्तोकाः समर्जयन् । कुर्यात्प्रदेशमुत्कृष्ट विपरीतो जघन्यकम् ॥३२६॥
 श्वभ्र-देवायुषी श्वभ्रद्वयमेतच्चतुष्टयम् । विवर्त्तमानयोगस्त्वसंज्ञी वाऽऽहारकद्वयम् ॥३२७॥
 अप्रमत्तो यतिः पञ्च तीर्थ सुरचतुष्टयम् । नयेत्सूक्ष्मनिगोतस्तु शेषाः स्वल्पप्रदेशताम् ॥३२८॥

अत्रासंज्ञी ४ । अप्रमत्तः २ । असंयतः ५ । निगोतः शेषाः १०६ ।

प्रदेश-प्रकृती बन्धौ योगात् स्थित्यनुभागकौ । कषायात्कुरुते जन्तुर्न तौ यत्र न तत्र ते ॥३२९॥
 प्रकृतिः स्यात्स्वभावोऽत्र स्वभावादच्युतिः स्थितिः । तद्वसोऽप्यनुभागः स्यात्प्रदेशः स्यादित्यत्वगः^३ ॥३३०॥
 प्रकृतिस्तिकता निम्ने तत्स्वभावादच्युतिः स्थितिः । तद्वसोऽप्यनुभागः स्यादित्येवं कर्मणामपि ॥३३१॥

१ जघन्ययोगस्य । २ मध्ययोगव्यवस्थितः । ३ इयत्प्रमाणां इयत्-आत्मप्रदेशप्रमाणमित्यर्थः । तस्य भाव इयत्वम्, तद्गच्छतीति इयत्वगः ।

कालं भवमय क्षेत्रमपेक्ष्यबोद्धव्यो भवेत् । कर्मणां स पुनर्द्वेधा सविपाकैतरत्वत ॥३३०॥
 श्रेण्यमन्यातभागो हि योगस्थानानि मन्ति वै । ततोऽमर्यगुणस्त्विष्ट सर्वप्रवृत्तिसग्रह ॥३३१॥
 ततोऽसंख्यगुणो ज्ञेयो विज्ञेयः स्थितिगोचरः । स्थितेरध्यवसायानां स्थानानि तथा तत ॥३३२॥
 रमस्थानान्यर्पाष्टानि ततोऽमर्यगुणानि तु । ततोऽनन्तगुणाः सन्ति प्रदेशाः कर्मगोचराः ॥३३५॥
 भविभागपरिच्छेदाः सन्त्यनन्तगुणान्ततः । कथयन्त्येवमाचार्याः सिद्धान्ते सूक्ष्मबुद्धयः ॥३३६॥

[इति प्रदेशवन्धः समाप्तः]

किञ्चिद्वन्धममामोऽयं मक्षेपेणोपवर्णितः । कर्मप्रवादपूर्वमोनिधिनिव्यन्त्रमात्रकम् ॥३३७॥
 अवपश्रुतेन मक्षेपादुक्तो वन्धविधिर्यथा । यस्तं ममप्रतां नीत्वा कथयन्तु बहुश्रुता ॥३३८॥
 श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्रान्ताष्टवर्णिना कृते । श्रीपालसुतदब्दे [न] स्फुटार्थं पञ्चसग्रहे ॥३३९॥

इति शतकं समाप्तम् ।

सप्ततिकारव्यः पञ्चमः संग्रहः

वच्ये सिद्धपदैर्वन्धोदयसत्प्रकृतिश्रिताम् । स्थानानां लेशमुच्चार्य (मुद्घृत्य) निष्यन्दं श्रुतचारिधेः ॥१॥

कति बध्नाति भुङ्क्ते च सत्त्वे स्थानानि वा कति । मूलोत्तरगताः सन्ति कति वा भङ्गकल्पनाः ॥२॥

अष्ट-सप्तक-पङ्क्तेष्वष्टैवोदयसत्त्वयोः । एकवन्धे त्रयो भेदा एकभेदस्त्ववन्धके ॥३॥

वं०	८	७	६		वं०	१	१	१		वं०	०
उ०	८	८	८	एकवन्धे	उ०	७	७	४	अवन्धे	उ०	४
स०	८	८	८		स०	८	७	४		स०	४

त्रयोदशसु^१ सप्ताष्टौ बन्धेऽष्टौ पाक-सत्त्वयोः । विकल्पाः सञ्ज्ञिपर्याप्ते पञ्च द्वौ केवलिद्वये ॥४॥

	वं०	७	८		वं०	८	७	६	१	१
त्रयोदशसु जीवसमासेषु	उ०	८	८	एकस्मिन् सञ्ज्ञिपर्याप्ते	उ०	८	८	८	७	७
	स०	८	८		स०	८	८	८	८	७

केवलिनोः	वं०	१	०
	उ०	४	४
	स०	४	४

गुणस्थानेषु भेदौ द्वौ षट्सु मिश्रं विनाष्टसु । एकैककर्मणां वन्धोदयसद्रूपतां प्रति ॥५॥

					वं०	८	७						
षट्सु मिथ्यादृष्ट्यादिषु मिश्रवर्जितेषु द्वौ भङ्गौ					उ०	८	८						
					स०	८	८						
					मिश्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०	
एकैकोऽष्टसु					वं०	७	७	७	६	१	१	१	०
					उ०	८	८	८	८	७	७	४	४
					स०	८	८	८	८	८	७	४	४

वन्धोदयास्तित्ता सम्यग् मूलप्रकृतिषु स्थिताः । अभिधाय ततो वच्ये उत्तरप्रकृतिश्रिताः ॥६॥

ज्ञानावृद्धिर्नयोः पञ्च पञ्च बन्धादिषु त्रिषु । शान्ते क्षीणे च निर्वन्धे पञ्चानामुदयास्तिते^२ ॥७॥

	वं०	५	५		वं०	०	०
दशसु गुणस्थानेषु	उ०	५	५	उपशान्त-क्षीणकषाययोः	उ०	५	५
	स०	५	५		स०	५	५

नव षट् च चतस्रश्च स्थानानि त्रीणि द्युधि । वन्धे सत्त्वे च पाके तु द्वे चतस्रोऽथ पञ्चकम् ॥८॥

द्युधौ नव सर्वाः षट् स्थानगृद्धिर्त्रयं विना । चतस्रः प्रचला-निद्राहीनाः स्युर्वन्धसत्त्वयोः ॥९॥

१।६।४

द्युधोऽस्योदये चक्षुर्दर्शनान्तरणादयः । चतस्रः पञ्च वा निद्रादीनामेकतरोदये ॥१०॥

४।५

नव बन्धत्रये सत्त्वे षट् चतुर्थत्वके नव । षट्त्वाऽबन्धेऽत्र पाकौ द्वौ चतुःसत्त्वोदयौ परे ॥११॥

वं०	१	१	६	६	४	४	४	४	०	०	०	०	०
उ०	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४
स०	१	१	१	१	१	१	६	६	१	१	६	६	४

अत्र बन्धत्रयं १।६।४ । सर्वे मूलभङ्गाः १३ ।

१. जीवसमासेषु । २ उदयश्च अस्तित्ता च उदयास्तिते । ३ अवन्धे सत्त्वे नव षट् च ।

अबध्नत्युदितं सत्स्यादायुर्जीवे तु बध्नति । बध्यमानोदिते सत्त्वे बद्धे बद्धोदिते सती ॥२१॥

तिर्यङ्-मनुष्यायुषी बध्नत्सु निरयायुष उदये नारकेष्वेव पञ्च भङ्गाः—

०	२	०	३	०
१	१	१	१	१
१	१२	१२	१३	१३

अत्र नारक-तिर्यङ्-मनुष्य-देवायुषामेक-द्वि-त्रि-चतुरङ्गैः सङ्दृष्टयः १२।३।४ ।

एवं निरय-तिर्यङ्-मनुष्य-देवायुषि बध्नत्सु तिर्यक्षु तिर्यगायुरुदये नव भङ्गाः—

०	१	०	२	०	३	०	४	०
२	२	२	२	२	२	२	२	२
२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४	२।४

एवं निरय-तिर्यङ्-मनुष्य-देवायुषि बध्नत्सु मनुष्येषु मनुष्यायुरुदये नव भङ्गाः—

०	१	०	२	०	३	०	४	०
३	३	३	३	३	३	३	३	३
३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४	३।४

एवं तिर्यङ्-मनुष्यायुषी बध्नत्सु देवेषु देवायुरुदये पञ्च भङ्गाः—

०	२	०	३	०
४	४	४	४	४
४	४।२	४।२	४।३	४।३

द्व्येकाग्रे विंशती सप्तदश बन्धे त्रयोदश । नव पञ्च चतुष्कं त्रिद्व्येकं स्थानानि मोहने ॥२२॥

२२।२१।१७।१३।१।५।४।३।२।१

द्वाविंशतिः समिध्यात्वाः कपायाः षोडशैककः । वेदो युग्मं च हास्यादिष्वेकं भयजुगुप्सने ॥२३॥

१।१६।१।२।१।१। मीलिताः २२ ।

इयमाद्ये द्वितीये तु निर्मिध्यात्वनपुंसकाः । हीनाऽनन्तानुबन्धिस्त्रीवेदैर्मिश्रायताह्वयोः ॥२४॥

मिध्याद्व्यौ २२ । प्रस्तारः— २ २ । सासने २१ । प्रस्तारः— २ २ । मिश्रासंयतयोः १७ ।

प्रस्तारः— २ २ ।

१
१२

देशे द्वितीयकोपाद्यैरुना पष्ठेऽपि तत्परैः । अप्रमत्ते तथाऽपूर्वे शोकारतिविवर्जिताः ॥२५॥

देशयतौ १३ प्रस्तारः— २ २ । प्रमत्ते ६ । प्रस्तारः— २ २ । अप्रमत्तापूर्वकरणयोः ६ ।

प्रस्तारः— २
१
४

बन्धे पुंवेद-संज्वाला संज्वालाश्चानिवृत्तिके । तेऽप्येकद्वित्रिभिर्हीनाः कोपाद्यैः सन्ति मोहने ॥२६॥

अनिवृत्तौ ५।४।३।२।१

१०।६।८।७।६।५।४।३।२।१

१ वन्धस्थाने । २ अनन्तानुबन्धिसहितः । ३ उदयमङ्गौ । ४ मिश्राविरतयोः । ५ वन्धस्थानयोः ।

दशाऽन्ये भयेनोना जुगुप्सोना द्वयोनकाः । इत्यन्येऽप्युदया एषामेकैकस्योपरि त्रयः ॥३८॥

२२	२१	१७	१३	६
७	७	वे० ओ० ञा०	वे० ओ० ञा०	वे० ओ० ञा०
८	८	७	६	५
६१६	६१६	७१७	६१६	५१५
१०	१०	८	७	६

एको दशोदयोने स्युः पडेकादश वै दश । सप्त चत्वार एकोऽन्नानिवृत्तौ द्वौ च पञ्चकम् ॥३९॥

अत्र पञ्चसु बन्धस्थानेषु दशोदयादीनां सख्याः १।६।११।१०।७।४।१। मीलिताः ४० । अनिवृत्तौ २।४। [सूक्ष्मे १ ।]

दश द्वाविंशतेर्बन्धे सप्ताद्याः उदयाः परे । नव सप्तादिकाः सप्तदशे नव पडादिकाः ॥४०॥

त्रयोदशोऽष्ट पञ्चाद्याः सप्तास्तश्चतुरादिकाः । चत्वारिंशदिमे पाकाः बन्धस्थानेषु पञ्चसु ॥४१॥

४० ।

कपायवेदयुग्मैस्ते चतुस्त्रिद्विभिराहताः । चतुर्विंशतिभेदाः स्युः प्रत्येकमखिलोदयाः ॥४२॥

एव पञ्चसु बन्धस्थानेषु चत्वारिंशदुदयाश्चतुर्विंशतिभङ्गगुणाः सन्त एतावन्त उदयविकल्पाः ६६० ।

भङ्गाः कपाय-वेदैः स्युर्बन्धयोर्द्वादशाद्ययोः । द्विकोदये चतुर्बन्धे चत्वारोऽन्येऽन्येकोदये ॥४३॥

बन्धत्रिके त्रिक-द्वयेकभङ्गाश्चैकोदये क्रमात् । अनिवृत्तावतः सूक्ष्मे स्यादेकः पाक-भङ्गयोः ॥४४॥

५	४	४	३	२	१	०
२	२	१	१	१	१	सूक्ष्मे
१२	१२	४	३	२	१	१

सहैतावन्तः ६६५ ।

पाकस्थानानि पाकस्थप्रकृतिधनानि ताडयेत् । स्वैर्विकल्पैश्चतुर्विंशत्याद्यैश्च पदबन्धनैः ॥४५॥

मोहप्रकृतिसंख्यायाः पदबन्धास्त एव हि । एकाक्षत्रिंशद्भूतानि सहस्राणि तु सप्त ते ॥४६॥

६६७१ ।

अत्र दशादि-चतुरन्तानि पाकस्थानान्येतावन्ति १।६।११।१०।७।४।१ दशादिपाकस्थप्रकृतिधनानि १०।५४।८८।७०।४२।२०।४ मीलिताः २८८ । पुनश्चतुर्विंशतिधनानि ६६१२ । अनिवृत्तौ पूर्वोक्ता द्विकाद्युदयप्रकृतयः २।२।१।१।१।१। सूक्ष्मे १ । एता एभिर्भङ्गैः १२।१२।४।३।२।१।१। पूर्वोक्तैर्गुणिता एतावन्तः ६६७१ ।

आद्ये त्रीणि परे चैकं त्रिषु पञ्च च षट् परे । सप्तातोऽन्येषु चत्वारि सप्तास्थानानि बन्धने ॥४७॥

२२	२१	१७	१३	६	५	४	३	२	१	०
३	१	५	५	५	६	७	४	४	४	४

एव सामान्येनाभिधाय विशेषेणाऽऽह—

आद्यमाद्ये त्रयं बन्धे द्वितीयेऽष्टाप्रविंशतिः । सत्तयाऽष्ट चतुस्त्रिद्वयेकाग्रान्निष्वपि विंशतिः ॥४८॥

सातोऽष्टचतुरेकाग्रा त्रिद्वयेकाग्रास्तथा दश । पञ्चाग्राणि परेऽमूनि त्रिष्वतो बन्धके तथा ॥४९॥

प्रत्येकं चतुरष्टैकयुक्ता विंशतयः क्रमात् । चतुस्त्रिद्वयेकसक्तैस्ताः सप्तास्थानैश्च संयुताः ॥५०॥

द्वाविंशतिबन्धके सप्तास्थानानि २८।२७।२६। एकविंशतिबन्धके २८। सप्तदश-त्रयोदश नवबन्धकेषु सप्तास्थानानि २८।२४।२३।२२।२१। पञ्चबन्धके २८।२४।२१।३।१२।११। चतुर्बन्धके २८।२४।२१।१३। १२।११।५। शेषबन्धत्रिकेऽबन्धकेऽपि चत्वारि सप्तास्थानानि । तत्र त्रिबन्धके २८।२४।२१।४। द्विबन्धके २८।२४।२१।३। एकबन्धके २८।२४।२१।२ सप्तास्थानानि । अबन्धके २८।२४।२१।१।

बन्धेऽत्र नव पाकेऽपि मोहने स्थानानि दश । सत्त्वे पञ्चदशोक्तेति नामातो वक्ष्यते परम् ॥५१॥

त्रिक-पञ्च-पडष्टाग्रा नवाग्रा विंशतिः क्रमात् । दशैकादशयुक्तैकं बन्धस्थानानि नामनि ॥५२॥

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१

१।५।३।५

३०।२६।२५।२३।

20

अत्र देवगत्या सह उद्योतो न चध्यते, देवगतौ तस्योदयाभावात्, तिर्यग्गतिं मुक्त्वाऽन्यगत्या सह तस्य बन्धविरोधाच्च । देवानां देहदीप्तिस्तर्हि कुतः ? वर्णनामकर्मोदयात् । अत्र च त्रीणि युगानि २।२।० । भङ्गा ८ ।

एकत्रिंशच्च निन्तीर्थकराऽऽहारद्वया भवेत् । अष्टाविंशतिराद्यंतां वध्नीतः सप्तमाष्टमौ ॥६७॥

अत्र भङ्गः पुनरुक्तः १ ।

अष्टाविंशतिर्ग्रान्यैकान्नत्रिंशद्द्वितीयका । हीना तीर्थकरैर्गतां प्रवध्नन्ति पञ्चादिमाः ॥६८॥

कुतः १ पृतदुपरिजानामप्रमत्तादीनामस्थिराशुभायणतां बन्धाभावात् । भङ्गा ८ । एवं देवेषु भङ्गा १६ ।

यणोऽत्रैकमपूर्वाद्ये त्रये भङ्गास्तु नामानि । चतुर्दश सहस्राणि पञ्चपञ्चाशत् विना ॥६९॥

१३६४५ ।

पाकेऽत्रैकचतु पञ्च पट् सप्ताष्टनवाधिका । दशैकादशयुक्तापि विंशतिर्नव चाष्ट च ॥१००॥

नाम्नः पाके २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।

एकपञ्चकमसप्ताष्टनवयुक्ताऽत्र विंशतिः । पाकस्थानानि पञ्चैव सन्ति श्वभ्रगताविति ॥१०१॥

२१।२५।२७।२८।२९।

अत्रैकविंशत् श्वभ्रयुग्मं तैजमकार्मणे । निमिर्दूर्णचतुष्कं च पर्याप्तागुलध्वपि ॥१०२॥

अनादेयायण न्यूलं पञ्चाक्ष दुर्भगं त्रमम् । नित्योदयचतुष्कं च स्थिरास्थिरशुभाशुभै ॥१०३॥

विग्रहक्षितिगतस्य स्यान्नारकस्योदयेऽस्य तु । जघन्यसमर्थं द्वौ च समयो परमोऽपि च ॥१०४॥

२,१। भङ्गः १ ।

अपञ्चभ्रानुपूर्वाक्रमस्तीक्ष्णं पाञ्चविंशतम् । युक्तं प्रत्येकदण्डोपघातवैक्रियिकद्वयै ॥१०५॥

अहोऽस्यात्तगरीराद्यक्षणाद्वारम्य पूर्णताम् । यावच्छरीरपर्याप्ते कालोऽत्रान्तमुहूर्त्तमाक् ॥१०६॥

२५ । भङ्गः १ । कुतोऽत्र न संहननोदयः ? नरकगत्या देवगत्या च सह सहननस्य बन्धाभावात् ।

पर्याप्ताद्देज्यवातासप्तयुक् साप्तविंशतम् । तत्कालेऽस्य न पर्याप्तिनिष्पत्तिर्वावदस्यद् ॥१०७॥

२७। भङ्गः १ ।

अष्टाविंशत्तमानासौ भाषापर्याप्तिपूर्णताम् । यावत्सोऽह्वासमस्तीक्ष्णं कालोऽस्यान्तमुहूर्त्तमाक् ॥१०८॥

२८ । भङ्गः १ ।

एकाक्षत्रिंशत् तत्स्याद् वाक्पर्याप्तौ सदुस्वरम् । कालस्तु जीवितान्तोऽस्यैकैको भङ्गोऽपि पञ्चसु ॥१०९॥

२९ । भङ्गः १ । एवं सर्वे ५ ।

अत्र जघन्या दशवर्षसहस्राणि, उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्मागरोपमाणि उभेऽप्येतेऽन्तमुहूर्त्तानि ।

एवं नरकगति समाप्ता ।

एकाग्रं विंशतिं सा च चतुराद्विभिरन्विता । एकाग्रत्रिंशत् यावत्तिर्यक्त्वे ते नवोदयाः ॥११०॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

पृथिवीकायिके स्थूले पूर्णाद्वेऽस्यातपोदयः । तिर्यक्षूद्योतपाकोऽस्ति मुक्त्वा तेजोऽनिलाङ्गिनौ ॥१११॥

अत्र तेजोवातकायिकौ मुक्त्वाऽन्येषु वायुरपर्याप्तपृथिव्यम्बुवनस्पतिषु पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियेषु च तिर्यक्षूद्योतोदयो भवतीत्यर्थः ।

सामान्यैकेन्द्रियस्याद्य स्थानं पञ्चकमिष्यते । निःसाप्तविंशत् तत्स्यान्निरुद्योतातपोदये ॥११२॥

अत्र सामान्यैकेन्द्रियाणामुदयस्थानानि पञ्च २१।२४।२५।२६।२७। तेषामेवातपोद्योतधोरनुदयेनामूनि चत्वारि २१।२४।२५।२६।

आतपोद्योतपाकोनैकेन्द्रियस्यैकविंशतम् । इदं तिर्यग्द्वय तेजोऽगुरुलघ्वय कार्मणम् ॥११३॥

वर्णगन्धरसस्पर्शा निर्माणं च शुभाशुभम् । स्थिरास्थिरमनादेय स्थावरैकाक्षदुर्भगम् ॥११४॥

यशोबादरपर्यासत्रियुग्मैकतरत्रयम् । वक्तव्यं वक्तमानस्यास्यैकद्वित्रिचणस्थितिः ॥११५॥

सूचमसाधारणापूर्णैः सहोदेति न यद्यशः । यशःपाकेऽस्ति तेनैको भङ्गोऽन्यत्र चतुष्टयम् ॥११६॥

२१ । अत्र भङ्गाः अयशःकीर्त्युदये बादरपर्यासयुग्माभ्यां चत्वारः ४ । यशःकीर्त्युदये चैकः १ । कुतः ? सूचमापर्यासाभ्यां सह यशःकीर्त्तेरुदयाभावात्, यशःकीर्त्या च सह सूचमापर्यासयोरुदयाभावाद् वा । सर्वे भङ्गाः ५ ।

चातुर्विंशतमस्तीदं स्वानुपूर्व्योनमागते^१ । हुण्डे प्रत्येकयुग्मैकतरे चौदारिकेऽपि च ॥११७॥

उपघाते गृहीताङ्गस्याङ्गपर्यासिपूर्णताम् । यावद्भङ्गा नवास्यान्तर्मुहूर्त्तश्च द्विधा स्थितिः ॥११८॥

२४ । अत्राप्ययशःकीर्त्युदये बादरपर्यासप्रत्येकयुग्मैरष्टौ भङ्गाः ८ । यशःकीर्त्युदये चैकः १ । कुतः ? यशःकीर्त्या सह सूचमापर्याससाधारणानामुदयाभावात् । सर्वे नव ९ ।

सान्यघातमपूर्णो न स्यादेतत्पाञ्चविंशतम् । तत्काल पञ्चधा यावदानपर्यासिनिष्ठितम् ॥११९॥

२५ । अत्र भङ्गाः अयशःकीर्त्युदये चत्वारः ४ । कुतः ? अपर्यासोदयस्याभावात् । यशःकीर्त्युदये चैकः १ । सर्वे ५ ।

षोड्विंशतं तदानाप्तौ सोच्छ्वासं पञ्चभङ्गयुक् । स्यादस्याब्दसहस्राणि स्थितिर्द्वाविंशतिः परा ॥१२०॥

२६ । भङ्गाः ५ । स्थितिः २२००० । एवं सर्वे भङ्गाः २४ ।

एकाक्षे पञ्चधोक्तं यत्स्थान तत्पाञ्चविंशतम् । विनैकाक्षे चतुर्धा स्यादातपोद्योतवेदने ॥१२१॥

२१।२४।२६।२७ ।

एकाक्षे सातपोद्योते चतुरेकाग्रविंशती । पूर्वोक्ते किन्तु पर्याससूचमसाधारणोऽङ्गिते ॥१२२॥

२१।२४ । अनयोः सूचमपर्यासोना एकविंशतिः २१ । साधारणोना चतुर्विंशतिः २४ । कुतः ? आतपोद्योतोदयभाविनां सूचमापर्याससाधारणशरीराणामुदयाभावाद् यशोयुग्मैकतरम् । भङ्गौ चात्र द्वौ द्वौ पुनरुक्तौ २।२ ।

पर्यासस्याङ्गपर्याप्त्या स्यात् षाड्विंशतं त्विदम् । आतपोद्योतयोरेकतरे क्षिप्तेऽन्यघातयुक् ॥१२३॥

२६ । अस्थोत्कृष्टजघन्या स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तगा भङ्गाः ४ ।

स्यात्तदेवानपर्याप्तौ सोच्छ्वासं साप्तविंशतम् । तच्चैतच्चतुर्भङ्गकालोऽस्य प्राणितावधिः ॥१२४॥

२७ । अत्रोत्कृष्टा द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि स्थितिः २२००० । भङ्गाः ४ । एवमेकेन्द्रियस्य सर्वे भङ्गाः ३२ ।

स्थानान्येकषडष्टाग्रा नवाग्रा चैकविंशतिः । त्रिशसैकाधिका पाके सामान्यादिकलेषु षट् ॥१२५॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१

एतान्येव निरुद्योते सन्येकत्रिशत विना । सोद्योते तु विनाऽष्टाग्रविंशति तानि सन्ति हि ॥१२६॥

उद्योतोदयरहिते विकले २१।२६।२८।२९।३०।३१ । उद्योतोदययुक्ते विकले २१।२६।२९।३०।३१ ।

अनुद्योतोदयस्यादो द्वीन्द्रियस्यैकविंशतम् । द्वयक्ष तिर्यग्द्वयं वर्णचतुष्कं त्रसकर्मणे ॥१२७॥

शुभस्थिरयुगे तेजोऽनादेयागुरुलघ्वपि । स्थूलमेकतरे च द्वे यशःपर्यासयुग्मयोः ॥१२८॥

निर्माणं दुर्भगं वक्तव्यं विकद्वित्रिचणस्थितिः । यशःकीर्त्युदये भङ्गोऽत्रैको द्वापरत्र तु ॥१२९॥

२१ । अत्र यशःकीर्त्युदये एको भङ्गः १ । कुतः ? अपर्यासोदयेन सह यशःकीर्त्तेरुदयाभावात् । अयशःकीर्त्युदये द्वौ भङ्गौ । कुतः ? पर्याप्तापर्याप्ताभ्यां सहायशःकीर्त्युदयसम्भवात् । भङ्गाः ३ ।

प्रत्येकोदर्यायुरमोपघातासम्प्राप्तहुण्डयुक् । इदं गृहीतकायाद्यक्षणे षाड्विंशतं भवेत् ॥१३०॥

अपनीतानुपूर्वीकं यावत्कायस्य पूर्णताम् । भङ्गाश्चयोऽस्य कालोऽन्तर्मुहूर्त्तोऽस्ति द्विधा स्थितौ ॥१३१॥

२६ । भङ्गाः ३ ।

पर्यासाङ्गेऽस्यपूर्णं तदेवाष्टाविंशतम् । तत्कालमन्यघातासदगतियुक्तं द्विभङ्गयुक् ॥१३२॥

२८ । अत्रायशःकीर्त्युदये एको भङ्गः १ । यशःकीर्त्युदये एको भङ्गः १ । अयशःकीर्त्युदयेऽप्येकं कुतः ? प्रतिपक्षप्रकृत्युदयाभावात् । मिलितौ भङ्गौ २ ।

पर्यासानस्य सोच्छ्वासमेकात्रिंशतं भवेत् । यावद्वाक्पूर्णतां कालोऽन्तर्मुहूर्त्तो द्विभङ्गयुक् ॥१३३॥

२९ । भङ्गौ २ ।

स्थानं त्रिंशतमेतत्स्याद्वाक्पर्याप्तौ सदुःस्वरम् । जीवितान्ता परा चास्य वर्षाणि द्वादश स्थितिः ॥१३४॥

३० । भङ्गौ २ । स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेण द्वादश वर्षाणि ।

उद्योतोदयभागद्वये पदेकाग्र्ये च विंशती । स्यातां पूर्वोदिते किन्तु नास्त्यपर्याप्तकेऽन्तयोः ॥१३५॥

२१ । २६ । अत्र पुनरुक्तौ भङ्गौ द्वौ द्वौ २ । २ ।

सोद्योताशस्तगत्यन्यघात पाद्विंशतं भवेत् । एकात्रिंशत पूर्णाङ्गेऽन्तकाल द्विभङ्गयुक् ॥१३६॥

२९ । भङ्गौ २ ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्त्यपर्याप्ते त्रिंशतं स्वदः । यावद्वाक्पूर्णतां कालोऽन्तर्मुहूर्त्तो द्विभेदकः ॥१३७॥

३० । भङ्गौ २ ।

एकात्रिंशतं तत्स्याद्वाक्पर्याप्तौ सदुःस्वरम् । द्विभेद परमा चास्य स्थितिर्द्वादशवार्षिकी ॥१३८॥

३१ । भङ्गौ द्वौ २ । सर्वे भङ्गाः १८ ।

एव द्वयक्षगताः भङ्गाः सन्त्यष्टादश मीलिताः । द्वयक्षवत्स्थानमहादि सर्वं त्रिचतुरक्षयोः ॥१३९॥

त्रीन्द्रिये त्रिंशदेकात्रिंशतोऽस्य परा स्थितिः । दिनान्येकात्रिंशत्पञ्चाशत्पणमासाश्चतुरिन्द्रिये ॥१४०॥

अत्र त्रीन्द्रियस्य निरुद्योत-सोद्योतस्थानयोः ३० । ३१ । स्थितिस्त्यक्षे दिवसाः ४६ । सर्वे च भङ्गाः अष्टादश १८ । चतुरिन्द्रिये चतुःस्थानयोः ३० । ३१ । स्थितिश्चतुरक्षे मासाः ६ । सर्वे च भङ्गाः १८ । एव त्रिषु विकलेन्द्रियेषु सर्वे भङ्गाः ५४ ।

तिर्यक्पञ्चेन्द्रिये पाकाः षडोवा द्विंशतिर्युताः । एकपदकाष्टकैरस्त्रैस्त्रिंशच्चैकोत्तरा व्रसाः ॥१४१॥

२१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।

अनुद्योतोदये स्थानान्येकात्रिंशतं विना । उद्योतमात्रं पञ्चाक्षे सन्त्यष्टाविंशतिं विना ॥१४२॥

उद्योतोदयरहिते पञ्चाक्षे २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सोद्योतोदये च २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।

अनुद्योतोदयेऽस्तीद पञ्चाक्षे चैकविंशतम् । तिर्यग्द्वयं च पञ्चाक्षं तेजोऽगुरुलघुं व्रसम् ॥१४३॥

निर्माणं सुभगादेययशःपर्याप्तनामसु । युग्मे चैकतरं वर्णचतुष्कं स्थूलकर्मणे ॥१४४॥

शुभस्थिरयुगे वक्रताविकद्विचणस्थितिः । भङ्गाः पर्याप्तपाकेऽष्टावेकोऽन्यत्रोभये न च ॥१४५॥

२१ । अत्र पर्याप्तोदये अष्टौ भङ्गाः ८ । अपर्याप्तोदये चैकः १ । कुतः ? सुभगादेययशःकीर्त्तिभिः सह

अपर्याप्तोदयस्याभावात् । १६ ।

इदमेवानुपूर्व्यं चिन्ते पाद्विंशतं भवेत् । सस्थान-सहस्रिष्वेकतर औदारिकद्वये ॥१४६॥

प्रत्येक उपघाते च गृहीतवपुस्त्वित्त्वम् । पर्याप्तिं यावदङ्गस्य पर्याप्तस्योदयेऽत्र च ॥१४७॥

भङ्गाः शतद्वयं साष्टाशीतमेकोऽपरत्र च । कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तोऽस्य जघन्यः परमस्तथा ॥१४८॥

२६ । अत्र पर्याप्तोदये त्रिभियुग्मैः सस्थानैः सहननैश्च षड्भिः २ । २ । २ । ६ । अन्योन्यगुणैर्भङ्गाः

२८ । अपर्याप्तोदये चैकः १ । कुतः ? शुभैः सहापर्याप्तस्योदयाभावात् । उक्तं च—

अयशःकीर्त्यानादेयहुण्डासम्प्राप्तदुर्मगम् । उदयं यात्यपर्याप्ते पर्याप्ते त्वितरैः सह ॥१४९॥

एव सर्वे २८६ ।

अष्टाविंशतमेतत्स्यादपर्याप्तोत्तमागते । ^२खेत्योरन्यतरे वान्यघाते पूर्णतनोरिदम् ॥१५०॥

१ सामान्यात् । २ विहायोगत्योः ।

शतानि पञ्चभङ्गानां षट्सप्ततियुतानि तु । कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तोऽत्र जघन्यः परमोऽपि च ॥१५१॥

२८ । अत्र पूर्वोक्ता एव २८८ विहायोगतियुगमघ्ना भङ्गाः ५७६ ।

आनपर्याप्तिपर्याप्तस्यैकान्नत्रिशतं त्वदः । सोच्छ्वासमस्ति तत्कालं भङ्गाश्चापि तथाविधाः ॥१५२॥

२९ । भङ्गाः ५७६ ।

वाक्पूर्णे त्रैशतं तत्स्यात्स्वरैकतरसयुतम् । भङ्गास्तद्विगुणाः पत्यत्रयमस्य स्थितिः परा ॥१५३॥

३० । अत्र पूर्वोक्ता एव ५७६ स्वरयुगलघ्ना भङ्गाः ११५२ । एवमुद्योतोदयरहिते पञ्चाक्षे सर्वे भङ्गाः २६०२ ।

सोद्योतोदयपञ्चाक्षौ षडेकाग्रे तु विंशती । स्यातां पूर्वोदिते किन्तु नास्त्यपर्याप्तकं तयोः ॥१५४॥

२१।२६ । अत्र पुनरुक्तभङ्गाः ८।२८८ ।

षाड्विंशत तदेकान्नत्रिशतं देहनिर्मितौ । स्वगत्यन्यतरोद्योतपरघातैर्युतं भवेत् ॥१५५॥

शतानि पञ्च भङ्गानामस्य षट्सप्ततिस्तथा । उत्कृष्टोऽस्य जघन्यश्च कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१५६॥

२९ । भङ्गाः ५७६ ।

पर्याप्तस्यानपर्याप्त्या सोच्छ्वासं त्रैशतं त्वदः । कालोऽप्यस्यास्ति पूर्वोक्तो भङ्गास्तावन्त एव च ॥१५७॥

३० । भङ्गाः ५७५ ।

एकत्रिशतमेतत्स्यात्स्वरैकतरसयुतम् । वाक्पूर्णे द्विगुणा भङ्गा कालोऽस्य प्राणितावधिः ॥१५८॥

३१ । भङ्गाः ११५२ । कालः पत्यत्रयम् ३ । एवं सोद्योते पञ्चाक्षे सर्वे भङ्गाः २३०४ । [निरुद्योते २६०२ ।] एवं पञ्चाक्षे सर्वे भङ्गाः ४६०६ ।

सहस्राणि तु चत्वारि भङ्गाः नव शतानि तु । द्वानवत्युत्तराणि स्युः सर्वे तिर्यग्गतौ गताः ॥१५९॥

४६६२ ।

एवं तिर्यग्गति- [भङ्गाः] समाप्ताः ।

नरगत्या समेताः स्युः सर्वे पाका नृणामपि । चतुर्विंशतिपाकोनाः शेषाः सन्ति दशैव ते ॥१६०॥

२१।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२ ।

पाकस्थानानि यानि स्युर्निरुद्योतेषु पञ्च तु । पञ्चेन्द्रियेषु तिर्यक्षु तानि सामान्यनृष्वपि ॥१६१॥

२१।२६।२८।२९।३० ।

तिर्यग्द्वयप्रसङ्गे तु चाच्यं तत्रास्ति नृद्वयम् । भङ्गस्तद्विक्रमाणि षाड्विंशतिशतानि तु ॥१६२॥

२६०२ ।

तथापि सुखबोधार्थमुच्यते—

अपतीर्थकराहारे नरीदं त्वैकत्रिशतम् । मनुजद्वय-पञ्चाक्ष-तेजोऽगुरुलघुत्रयम् ॥१६३॥

निर्माणं सुभगादेयशःपर्याप्तनामसु । युग्मेष्वेकतरं वर्णचतुष्कं स्थूल-कर्मणे ॥१६४॥

शुभस्थिरयुगे वक्रार्तावेक-द्विचक्षणस्थितिः । भङ्गाः पर्याप्तपाकेऽष्ट चैकोऽन्यत्रोभये नव ॥१६५॥

२१ । अत्र पर्याप्तोदयेऽप्यष्टौ ८ । अपर्याप्तोदये चैकः १ । उभये नव ९ ।

इदमेवानुपूर्व्यूनं क्षिप्ते षाड्विंशत भवेत् । सस्थान-सहतिष्वेकतरे औदारिकद्वये ॥१६६॥

प्रत्येके उपघाते च गृहीतवपुषस्त्विदम् । पर्याप्तिं यावदङ्गस्य पर्याप्तस्योदयेऽत्र च ॥१६७॥

भङ्गाः शतद्वयं चाष्टाशीतं चैकोऽपरत्र च । कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तोऽस्य जघन्यः परमोऽपि च ॥१६८॥

अयशःकीर्त्यनादेयहुण्डासम्प्राप्तदुर्भगम् । उदयं यान्त्यपर्याप्ते पर्याप्ते त्वितरैः सह ॥१६९॥

२६ । इत्यपर्याप्तोदये भङ्गाः १ । पर्याप्तोदये २८८ । सर्वे २८९ ।

अष्टाविंशतमेतत्स्यादपर्याप्तोनमागते । खेत्योरन्यतरेऽथान्यघाते पूर्णतनोरिदम् ॥१७०॥

शतानि पञ्च भङ्गानां षट्सप्ततियुतानि तु । कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तोऽत्र जघन्यः परमोऽपि च ॥१७१॥

२८। भङ्गाः ५७६ ।

भानापयान्पिपयान्पित्तस्यैकान्नत्रिगतं त्रिदम् । सोच्छ्रासं त कालं च नङ्गाश्चापि तयावित्रा ॥१७०॥

२६। मङ्गा. ५७६ ।

वाक्पूर्णे त्रिगतं तस्यास्त्वरैकतरसंयुतम् । मङ्गास्तद्विगुणाः पत्यत्रयमस्य स्थिति परा ॥१७१॥

३० । मङ्गाः ११५० ।

आहारोदयमयुक्ते विशेषनरि नामनि । उदये पञ्च-सप्ताष्ट-नवाग्रा विगतिर्मवेत् ॥१७२॥

२५।२७।२८।२९।

स्यान्पाञ्चविंशत तत्र नृगयाऽहारकद्वये । कर्मणं सुखगात्रे तेजो वर्णचतुष्टयम् ॥१७५॥

पञ्चाङ्गं चतुरस्रं चोपघातोऽगुरुत्वपि । शुभस्थिरयुगे निर्मिद्यगस्रसचतुष्टयम् ॥१७६॥

आहारोत्थापनेऽस्तीर्णं यावत्तदेहपूर्णताम् । पूर्णाङ्गे समगन्धन्यघातयुक् मासत्रिगतम् ॥१७७॥

२५। मङ्गा १ । [२७ । मङ्गा. १ ।]

सोच्छ्रासं चानपयांसावाष्टाविगतमस्यदः । त्रिषु मङ्गास्त्रय कालोऽन्तर्मुहूर्तो द्विधाऽत्र तुः ॥१७८॥

२८ । मङ्गा १ । एवं त्रिषु मङ्गास्त्रयः ३ ।

एकान्नत्रिगतं तस्याद्वाक्पर्याप्तं ससुस्तरम् । यावदाहारदेहान्तं कालोऽत्रान्तर्मुहूर्त्तनाम् ॥१७९॥

२६ । मङ्गाः १ । एवं विगेषमनुष्ये मङ्गाश्चत्वार ४ ।

ऐकत्रिगतमेन स्यात्तीर्थकृद्युक्तयोगिनः । नृगयौदारिकद्वन्द्वमात्रे मस्यान-सहती ॥१८०॥

तेज कर्मणपञ्चाले तीर्थकृत्सुमगं यग । वर्णाद्यगुरुत्वत्रि-त्रसादिकचतुष्टयम् ॥१८१॥

शुभस्थिरयुगे निर्मिसुखरादेयमद्गति । पूर्वकोटिः पराङ्गनां पृथक्च चापरा स्थिति ॥१८२॥

३१ । अत्र तबन्या वर्षपृथक्चमुहूर्ताऽन्तर्मुहूर्त्तान्यधिकगमाद्यष्टवर्षीना पूर्वकोटौ । मङ्गा. १ ।

नृगतिः पूर्णपञ्चाङ्गं स्थूलादेयपगस्रसम् । सुमगं चैवयोगेऽदौ पाके तीर्थकृजो नव ॥१८३॥

उदये ऽ। मङ्गा. १। तथा ६। मङ्गा. १। एवं विगेषविगेषमनुष्येषु मङ्गाः ३।

नवात्रायुदये नृणां षड्विंशतिशतानि तु । मङ्गा पाके सयोगे तु वस्येऽन्यस्यानसप्तकम् ॥१८४॥

२६०६ ।

मयोगे विगति मैकपट्मप्लाष्टनवाधिका । त्रिगच्चान्यत्तु पूर्वोक्तमैकत्रिगतमष्टकम् ॥१८५॥

२०।२१।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

नृगति कर्मणं तेजः पञ्चाङ्गं त्रय-चादरे । शुभस्थिरयुगे वर्णचतुष्टागुरुत्वपि ॥१८६॥

पर्याप्तसुभगादेययोगिनिर्मिच्च विंशति । सयोगस्योदयं यान्ति प्रतरे लोकपूग्णे ॥१८७॥

२०। मङ्गा १।

अत्र प्रतरे १। लोकपूग्णे १। पुनः प्रतरे १। एवं त्रय समया ३।

कपाटस्थमयोगस्य त्रिप्ते चौदारिकद्वये । प्रत्येक उपघाताख्ये चाद्ये मंहनने तथा ॥१८८॥

संस्थानेषु च पट्स्वेकतरे षड्विंशतिर्मवेत् । संस्थानैकतरै षड्भिर्मङ्गा सन्ति षडत्र तु ॥१८९॥

२६। मङ्गाः षट् ६ ।

अष्टाविगतमस्तीर्णं षण्डस्यस्यान्यवातयुक् । त्रिप्तेऽत्रान्यतरे स्त्रेयोर्मङ्गाः द्वादश योगिनः ॥१९०॥

२८। मङ्गा. १२।

पर्याप्तस्यानपर्याप्त्या चैकान्नत्रिगतं त्वद् । मवेदुच्छ्रामयुग्मङ्गा द्वादशात्रापि योगिनः ॥१९१॥

२६। मङ्गा १०।

स्यानं त्रैगतमस्तीर्णं भाषापयान्तिनिष्ठिनौ । स्वरैकतरयुक्तं च चतुर्विंशतिमहयुक् ॥१९२॥

३०। मङ्गा. २४।

पृथक्तीर्थकृतैतानि युक्त्यान्यन्यानि पञ्च तु । संस्थानं किन्तु तत्राद्यं प्रशस्तौ च गतिस्वरौ ॥१९३॥

इति तीर्थकृद्युक्तसंयोगे २१।२७।२६।३०।३१। पञ्चस्वेकैकभङ्गेन भङ्गाः ५। एवं संयोगे भङ्गाः ६०। किन्वेकत्रिंशद्भङ्गोऽत्र पुनरुक्तः । शेषाः ५६ । एतैः सहैते पूर्वोक्ताः २६०६ एतावन्तः २६६८ नृगतौ भङ्गा इति ।

एवं मनुष्यगतिः समाप्ता ।

एकपञ्चकसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात् । देवगत्या युतं नाम्न्युदयेऽस्ति स्थानपञ्चकम् ॥१६४॥

२१।२५।२७।२८।२९।

तत्रैकविंशत देवद्वय तैजस-कार्मणे । पञ्चाक्षस्थूलपर्यासागुरुलघ्वशुभ शुभम् ॥१६५॥

निर्माणं सुभगादेये यशो वर्णचतुष्टयम् । त्रसं स्थिरास्थिरे वक्रत्ताविक-द्विचक्षणस्थितिः ॥१६६॥

२१।भङ्गः १।

एतदेवानुपूर्व्यूनं पाञ्चविंशतमागतैः । प्रत्येकचतुरस्रोपघातवैक्रियिकद्वयैः ॥१६७॥

इदमात्तस्य शरीरस्य स्याद्वावद्देहस्य निर्मितम् । कालस्तु द्विविधोऽप्यस्य भवेदन्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१६८॥

२५ । भङ्गः १।

साप्तविंशतमेतच्चान्यघाते सन्नभोगतौ । क्षिप्तायामङ्गपर्यासे तत्कालोऽन्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१६९॥

२७ । भङ्गः १।

सोच्छ्वासमानपर्यासावाष्टविंशतमीरितम् । यावत्स्याद्वाचिपर्यासिस्तत्कालोऽन्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥२००॥

२८ । भङ्गः १।

एकात्रिंशतं तत्स्याद्वाक्पर्यासौ ससुस्वरम् । कालस्तु जीवितान्तोऽस्यैकैको भङ्गोऽपि पञ्चसु ॥२०१॥

२९ । भङ्गः १ । एवं सर्वे ५ ।

अत्र स्थितिभापापर्याप्या पर्याप्तस्य प्रथमसमयप्रभृति यावदायुषश्चरमसमयस्तस्याश्च प्रमाणं जघन्यं दशवर्षसहस्राणि, उत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, उभे अन्तर्मुहूर्त्तौने ।

एवं देवगतिः समाप्ता ।

सर्वाप्यन्तर्मुहूर्त्तौना भापापर्याप्तके स्थितिः । वाच्योत्कृष्टा जघन्या च देव-नारकयोर्द्वयोः ॥२०२॥

नृ-तिरश्चोः जघन्याऽन्तर्मुहूर्त्तौना गतिपूदयाः । नाम्न एकादशोपेतपट्सप्ततिशतप्रमाः ॥२०३॥

७६११।

एकान्नपटिरन्ये च समुद्रातस्थयोगिनि । सत्तास्थानान्यतो नाम्नो वक्ष्यन्तेऽत्र त्रयोदश ॥२०४॥

५६। सर्वे ७६७०

नवतिस्त्रिद्विकैकाग्रा सा च सा द्वि-पडष्टभिः । हीनाशीतिश्च सैक-द्वि-त्र्य्यूना दश नवापि च ॥२०५॥

६३।६२।६१।६०।५९।५८।५७।५६।५५।५४।५३।५२।५१।५०।४९।४८।४७।४६।४५।४४।४३।४२।४१।४०।३९।३८।३७।३६।३५।३४।३३।३२।३१।३०।२९।२८।२७।२६।२५।२४।२३।२२।२१।२०।१९।१८।१७।१६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९।८।७।६।५।४।३।२।१।०।

सत्तास्थानेषु नाम्नोऽस्त्यादिमे त्रिनवतिस्त्रिषु । सोना तीर्थकृताहारद्वयेनैभिस्त्रिभिः क्रमात् ॥२०६॥

आद्ये स्थाने ६३। त्रिष्वतः स्थानेषु ६२।६१।६०।

स्थानानि त्रीणि तिर्यक्षूद्वैलिते नवतेरपि । देवद्वये ततः श्वभ्रचतुष्के नृद्वये ततः ॥२०७॥

नर-तिर्यक्षु ८८।८७। तिर्यक्षु ८२।

श्वभ्र-तिर्यग्वैकैकविक्लस्थावरातपाः । सूक्ष्मसाधारणोद्योतास्त्रयोदशसु चास्त्विति ॥२०८॥

आद्याच्चतुष्कतः पश्चात्प्रत्येकं क्षपितास्विदम् । अशीत्यादिचतुष्क चानिवृत्तिक्षपकादिषु ॥२०९॥

[अनिवृत्त्यादिषु] पञ्चसु ८०।७९।७८।७७।

पञ्चाक्ष नृद्वयं पूर्णं सुभगादेयतीर्थकृत् । त्रसस्थूलं यशोऽयोगे दशातीर्थकरे नव ॥२१०॥

अयोगे [तीर्थकरे] १०। तीर्थकृतोनाः ६ ।

१. अनिवृत्तिक्षपके शेषनवाशेषु चाष्टसु सूक्ष्म-क्षीण-संयोगेषु नियोगस्य च द्विचरमसमयं यावत् इति पञ्चसु स्थानेषु कस्यचित् अशीतिः, कस्यचिदेकोनाशीतिः, कस्यचित् अष्टसप्ततिः, कस्यचित् सप्तसप्ततिः इति ज्ञेयम्, २. तीर्थकरं विना ।

अष्टस्वसंयताद्येषु चत्वारि प्रथमानि तु । द्धानवत्यादिक पट्क सत्त्वे मिथ्यादृगाह्वये ॥२११॥
 अष्टस्वसंयताद्युपशान्तान्तेषु १३।१२।११।१०। मिथ्यादृष्टौ १२।११।१०।८।८।८।८।८।८।
 सासने नवतिर्मिश्रे नवतिर्द्वयधिका च सा । तिर्यक्षु द्धानवत्यामा नवत्यादिचतुष्टयम् ॥२१२॥
 सासने १० । मिश्रे १२। १०। तिर्यक्षु १२।१०।८।८।८।८।८।८।
 द्धानवत्यादिक सत्त्वे त्रिक श्वाभ्रेष्वथो नृषु । द्वयशीत्यूनानि सर्वाणि देवेष्वथ चतुष्टयम् ॥२१३॥
 नारकेषु १२।११।१०। नृषु द्वयशीतिं विना सर्वाणि १२ देवेषु १३।१२।११।१०।
 एवं नाम्नः सप्तरूपणा समाप्ता ।

बन्धे त्रिपञ्चपदयुक्तविंशतिरुदये नव । स्थानानि पञ्च सत्ताया बन्धे त्वष्टाविंशतिः ॥२१४॥
 सत्त्वे चत्वारि पाकेऽष्टावैकाग्रविंशते तथा । सत्त्वे स्युः सत्त्व पाके च नवैव त्रिंशतेऽपि च ॥२१५॥

व०	२३	२५	२६		व०	२८	२९	३०
[त्रयोविंशत्यादिबन्धेषु—]	उ०	१	१	१	अष्टाविंशत्यादिबन्धेषु—	उ०	८	८
	स०	५	५	५		स०	४	७

त्रिकपञ्चपदग्राया विंशतेर्बन्धकेषु तु । अग्रा द्वितय त्यक्त्वा भवन्त्याद्या नवोदयाः ॥२१६॥
 सत्तास्थानानि पञ्चैषु नवतिर्द्वयग्रास्य केवला । तथा क्रमान्मताऽशीतिरधिकाष्टचतुर्द्विभिः ॥२१७॥
 बन्धस्थानेषु २३।२५।२६ । प्रत्येक नवोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ।
 सत्तास्थानानि १२।१०।८।८।८।८।८ ।
 सप्तविंशतिपाके तु प्राग्वद्बन्धत्रयं भवेत् । द्वयशीतिं वर्जयित्वाऽन्यसत्तास्थानचतुष्टयम् ॥२१८॥
 पूर्वोक्तनवोदयमध्ये सप्तविंशत्युदये बन्धेषु २३।२५।२६ । उदये २७ । सत्तास्थानानि १२।१०।
 ८।८।८ ।

इति बन्धत्रय समाप्तम् ।

वर्जयित्वान्तिम युग्म चतुर्विंशतिमेव च । अष्टोदया भवन्त्येवमष्टाविंशतिबन्धके ॥२१९॥
 सत्तास्थानानि चत्वारि नवतिर्द्वयैकसंयुता । दशाष्टसहिताऽशीतिरित्येतेन विशेषतः ॥२२०॥
 बन्धे २८ । उदये २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे १२।११।१०।८।८ ।
 बन्धेऽष्टाविंशतिः पाके पट्विंशत्येकविंशती । नवतिः सा द्वियुक्सत्त्वे निर्दृक्मोहे^१ कुरुद्भवे^२ ॥२२१॥
 इति क्षायिकसम्यग्दृष्टीना नर्णा बन्धे २८ । उदये २६।२१ । सत्त्वे १२।१०
 पञ्चसत्ताग्रविंशत्यो पाके द्धानवतिः सती । आहारारम्भणे बन्धेऽप्रमत्तेऽष्टाग्रविंशतिः ॥२२२॥
 अप्रमत्ते बन्धः २८ । उदयः २५।२७ । सत्ता १२ ।
 बन्धेऽष्टाविंशतिः पाके नवाष्टाग्रे तु विंशती । सत्तास्थाने मते द्वे तु नवतिर्द्धानवतिस्तथा ॥२२३॥
 पृषोऽष्टाविंशतेर्बन्धः सम्यग्दृष्टावसंयते । आहारकाव्यसत्कर्मवति चापि प्रमत्तके ॥२२४॥
 बन्धे २८ । उदये २६।२८ । सत्त्वे १२।१० ।
 नवतिर्द्वयं तत्रा सा च सत्ताया त्रिंशदुद्गमाः । तथाष्टाविंशतेर्बन्धो मिथ्यादृष्ट्यादिपञ्चके ॥२२५॥
 बन्धे २८ । उदये ३० । सत्त्वे १२।१० ।
 बन्धेऽष्टाविंशतिः पाके त्रिंशत् नवतिः सती । एकाग्रा तीर्थकृतसत्त्वे द्वि-त्रिंशतिविगाहिनाम् ॥२२६॥
 बन्धे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ११ ।
 अष्टाशीतिर्मता सत्त्वे त्रिंशतोऽपि तथोदयः । नर-तिर्यक्षु बन्धोऽष्टाविंशतेर्वासदृष्टिषु ॥२२७॥
 बन्धे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ८ ।
 नवतिर्द्वयं तत्रा सा च सत्येकत्रिंशदुद्गमः । तथाष्टाविंशतेर्बन्धो मिथ्यादृष्ट्यादिपञ्चके ॥२२८॥
 बन्धे २८ । उदये ३१ । सत्त्वे १२।१० ।

१. क्षायिकसम्यग्दृष्टौ । २. उत्तमभोगभूमिजे ।

अष्टाशीतिः सती त्वेकत्रिंशतोऽस्युदयेऽपि च । तथाष्टाविंशतेर्वन्धस्तिर्यक्षु वामदृष्टिषु ॥२२६॥

बन्धे २८ । उदये ३१ । सत्त्वे ८८ ।

इत्यष्टाविंशतेर्वन्धः समाप्तः ।

एकात्रिंशतेर्वन्धे बन्धेऽपि त्रिंशतस्तथा । पाका नवान्निमं द्वन्द्वं त्यक्त्वोद्येन भवन्ति हि ॥२२७॥

आदौ त्रिनवती कृत्वाऽशीतिं यावद्विकोत्तरा । सत्तास्थानानि सप्तौवाततो वक्ष्ये विशेषतः ॥२२८॥

बन्धे २६।३० । प्रत्येकमुदया नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सप्त सत्तास्थानानि ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ ।

एकात्रिंशतो बन्धे स्यात्पाकस्त्वेकविंशतिः । सत्यां तु श्येकनवती तीर्यकृद्भागवत्विग्रहे ॥२२९॥

बन्धे २६ । उदये ११ । सत्त्वे ६३।६१ ।

प्राग्बन्धोदयौ सत्त्वे नवतिर्द्विकयुक् च सा । चतुर्गतिकर्जीवेषु स्यादेवं विग्रहे कृते ॥२३०॥

बन्धे २६ । उदये २१ । सत्त्वे ६२।६० ।

प्राग्बन्धोदयौ सत्त्वेऽशीतिश्चतुरष्टयुक् । नर-तिर्यक्षु तिर्यक्षु द्वयशीतिर्विग्रहे मता ॥२३१॥

बन्धे २६ । उदये २१ । सत्त्वे ८८।८७ । तथैव तिर्यक्षु बन्धे २६ । उदये २१ । सत्त्वे ८२ ।

प्राग्बन्धस्तथैकादशे चतुर्विंशतिपाकगे । आद्यानि सप्त सत्त्वेन तृतीय-प्रथमे विना ॥२३२॥

अपर्याप्तिकादशे बन्धे २६ । उदये २४ । सत्त्वे ६२।६०।८८।८७।८६ ।

प्राग्बन्धस्तथाद्यानि सत्तास्थानानि सप्त तु । पञ्चाग्रविंशतेः पाकश्चतुर्गतिषु जन्तुषु ॥२३३॥

इति यथासम्भवं पर्याप्तेषु बन्धः २६ । उदये २५ । सत्त्वे ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ ।

एकात्रिंशतो बन्धे सत्त्वे चाद्यानि सप्त तु । पाके दशनवाष्टाग्रा सप्तपट्टयुक्तविंशतिः ॥२३४॥

बन्धे २६ । यथासम्भवमुदये ३०।२६।२८।२७।२६ । सत्त्वे ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ ।

प्राग्बन्धस्तथैकाग्रा त्रिंशत्तिर्यच्चयौदये । सत्त्वेऽशीतिश्चतुर्दशदशदशयुक् पृथक् ॥२३५॥

बन्धे २६ । उदये ३१ । सत्त्वे ८४।८२।८८।६०।६२ ।

इत्येकात्रिंशद्वन्धः समाप्तः ।

एकात्रिंशतो बन्धे पाकस्थानादि यद्भवेत् । तदेव त्रिंशतः सर्वं बन्धस्थाने प्रकीर्तितम् ॥२३६॥

विशेषत्रिंशतो बन्धे पाके स्यात्पञ्चविंशतिः । स्थानानि सप्त सत्तायां तेषां चैषा प्रकल्पना ॥२३७॥

देव-ज्वात्रेषु सत्तायां श्येकाग्रे नवती मता । तिर्यक्षु द्वयधिकाऽशीतिः स्यात्सत्त्वेऽन्यौ^१ पूर्ववत् ॥२३८॥

चानुर्गतिकर्जीवेषु नवतिः सा द्वियुक् सती । अशीतिश्चतुरष्टाग्रा सत्त्वे तिर्यक्षु नृष्वपि ॥२३९॥

इति सामान्येन त्रिंशद्वन्धे ३० । उदये २५ । सत्त्वे ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ । पृषां च सप्तसत्तास्थानानां विभागः सुर-नारकेषु ६३।६१ । तिर्यक्षु ८२ । चानुर्गतिकर्जीवेषु ६२।६० । नर-तिर्यक्षु ८८।८७ ।

पाके षड्विंशतिः सत्त्वेऽशीतिस्तिर्यक्षु द्वियुता । नृ-तिर्यक्षु नवत्यादि त्रिकं द्वावनतिस्तथा ॥२४०॥

इति त्रिंशद्वन्धे ३० तिर्यक्षुदये २६ सत्त्वे ८२ । नृ-तिर्यक्षु बन्धे ३० उदये २६ सत्त्वे ६२।६०।८८।८७ ।

एकपञ्चकसप्ताष्टनदाग्रा विंशतिः पृथक् । पाके स्युस्त्रिंशतो बन्धे सत्त्वे चाद्यानि सप्त च ॥२४१॥

बन्धे ३० । उदये २१।२५।२७।२८।२६ । सत्त्वे ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६ ।

पाके दश चतुःषट्कैकादशाग्रा च विंशतिः । तत्रैव तानि सप्तापि श्येकाग्रे नवती विना ॥२४२॥

तत्र बन्धे ३० । उदये ३०।२४।२८।२६ । सत्त्वे च पञ्च ६२।६०।८८।८७।८६ ।

इति त्रिंशतो बन्धः समाप्तः ।

वेद्ये द्वापष्टिरायुष्के विकल्पास्त्युत्तरं शतम् । चत्वारिंशच्च सप्ताग्रा गोत्रे जीवसमासगाः ॥२५८॥

६२।१०३।४७ ।

चतुर्दशसु चत्वारो भङ्गाः प्रत्येकमादिमाः । पट् स्युः केवलिनोर्वेद्ये पष्टिरेवं द्विकाधिका ॥२५९॥

इति चतुर्दशसु प्रत्येकमादिमाश्चत्वारः
 १ १ ० ०
 १ ० १ ० इति । सयोगे द्वावाद्यौ
 १० १० १० १०

१ १
 १ ० अयोगे त्वाद्यावेव बन्धेन विनाऽऽद्यावुपान्तिमे समये १ ० द्वावयोगस्यैवान्ते समये
 १० १० १० १०

० १
 ० १ एवं सर्वे ६२ ।

मतान्तरम्—

देवायुर्नारकायुश्च पर्याप्तौ संज्ञसंज्ञिनौ । बध्नीतोऽन्ये न बध्नन्ति द्वादशैकेन्द्रियादयः ॥२६०॥

पृथग्जीवसमासेषु स्युः पञ्चैकादशस्वतः । नवासंज्ञिनि पर्याप्ते दशापर्याप्तसंज्ञिनि ॥२६१॥

विकल्पाः संज्ञिपर्याप्ते त्वष्टाविंशतिरायुषः । युताः केवलभङ्गेन मीलितास्त्यधिक शतम् ॥२६२॥

१०३ । एवमर्थः—यस्मादेकादश जीवसमासाः नारकदेवायुपी न बध्नन्तीत्युक्तम्, अतस्तेषु तिरश्चामायुर्वन्धभङ्गेभ्यो नवभ्यो द्वौ नारकायुर्वन्धभङ्गौ, द्वौ च देवायुर्वन्धभङ्गौ, एवं चतुरस्त्यक्त्वा शेषा एकादशसु जीवसमासेषु पञ्च पञ्चेति कृत्वा पञ्चपञ्चाशद्भवन्ति ।

तत्र पञ्चानां संदष्टिः—
 ० २ ० ३ ०
 २ २ २ २ २
 २ २ २ २ २ २ ३ २ ३

ततः परमसंज्ञिपर्याप्ते नव तिर्यग्भङ्गा भवन्ति ६ । ततश्च दशापर्याप्तसंज्ञिनि, यस्मादपर्याप्तसंज्ञी तिर्यङ्मनुष्यश्च नारकदेवायुपी न बध्नीतोऽस्तितिरश्चां मनुष्याणां च स्वायुर्वन्धभङ्गेभ्यो नवभ्यो नवभ्यो द्वौ नारकायुर्वन्धभङ्गौ, द्वौ च देवायुर्वन्धभङ्गाविति प्रत्येकं चतुरश्चतुरस्त्यक्त्वा शेषाः पञ्च पञ्चायुर्वन्धभङ्गा भवन्ति ५।५ । एवमपर्याप्तसंज्ञिनि दश १० ।

भङ्गाः श्वाभ्रेषु पञ्च स्युर्नव तिर्यक्षु नृष्वपि । पञ्च देवेषु बध्नन्त्यु बद्धेष्वायुःष्वपि क्रमात् ॥२६३॥

५।६।६।५ ।

० २ ० ३ ० ० १ ० २ ० ३ ० ४ ०
 १ १ २ १ १ २ २ २ २ २ २ १ २ २
 १ १ २ १ २ १ ३ १ ३ २ २ १ २ १ २ २ २ २ २ ३ २ ३ २ ४ २ ४
 ० १ ० २ ० ३ ० ४ ० ० २ ० ३ ०
 ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ४ ४ ४ ४ ४
 ३ ३ १ ३ १ ३ २ ३ २ ३ ३ ३ ३ ४ ३ ४ ४ ४ २ ४ २ ४ ३ ४ ३

पर्याप्तसंज्ञिनि श्वभ्रतिर्यङ्मनुष्यदेवायुर्वन्धभङ्गाः भवन्ति, ते चैते ५।६।६।५ मीलिताः २८ ।

०
 एकः केवलिषु ३ । एव सर्वे १०३ ।

३

उच्च बन्धेऽथ पाकेऽन्यद् द्वे सत्त्वे बन्ध-पाकयोः । नीचं सत्त्वे द्वय नीचं सर्वेष्विति पृथक् त्रयम् ॥२६४॥

१ ० ०
 ० ० ०
 १ ० १ ० ० ०

त्रयोदशसु जीवेषु त्रिंशद्भिरनवाधिकाः । पदाद्याः सञ्ज्ञिपर्याप्ते द्वौ चान्त्या केवलित्यतो ॥२६५॥

त्रयोदशसु प्रत्येकं त्रयस्त्रय इति ३६ ।

सञ्ज्ञिपर्याप्तेषु अष्टमङ्केषु प्रथमाः षट् । सञ्ज्ञिसंज्ञिन्यपदेशरहितकेवलिनोरिमा द्वौ ^{१ १}_{१ ० १} एव

३६।६।२। मीलिताः ४७ ।

सर्वेपि मीलिता भङ्गाः गोत्रे सप्तभिरन्विताः । चत्वारिंशद्भवेदेवमतो मोहः प्रचक्ष्यते ॥२६६॥

सप्तापर्याप्तकेषु स्युः सूक्ष्मे चेत्यष्टजन्तुषु । बन्धे द्वाविंशतिस्त्रीणि चाद्यानि सत्त्व-पाकयोः ॥२६७॥

अष्टसु बन्धे २० उदये १०।६।८ सत्त्वे २८।२७।२६।

मुक्तैक संज्ञिपर्याप्त पर्याप्तेष्वथ पञ्चसु । बन्धोदयसतां स्युर्द्वे चत्वारि त्रीणि चादित ॥२६८॥

पञ्चसु पर्याप्तेषु बन्धे २२।२१। उदये १०।६।८।७। सत्त्वे २८।२७।२६।

एकस्मिन् सञ्ज्ञिपर्याप्ते मोहस्य ढग बन्धने । नव स्थानानि पाके स्युः सत्त्वे पञ्चदशपि च ॥२६९॥

सञ्ज्ञिपर्याप्ते सर्वाणि बन्धे २२।२१।१७।१३।६।५।४।३।२।१। उदये १०।६।८।७।६।५।४।३।२।१। सत्त्वे २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

पञ्च द्वे पञ्च नाम्नि स्युर्यन्धपाकमता त्रिके । पञ्च चत्वारि पञ्च पञ्चाथ पञ्च च ॥२७०॥

स्थानानि पञ्च षट् पञ्च षट् पञ्च ततः क्रमात् । अष्टाष्टकादणपा तु स्वामिनः स्युः क्रमादिने ॥२७१॥

सप्तापर्याप्तका सूक्ष्मो वादरो विरुलत्रिकम् । असञ्ज्ञी क्रमतः सञ्ज्ञी विगेषोऽतः प्रचक्षते ॥२७२॥

५	५	५	५	६	८
२	४	५	६	६	८
५	५	५	५	५	११

क्रमादेपां च स्वामिसंख्या ७।१।१।३।१।१।

त्रिपञ्चपट्नवाग्रा हि विंशतिस्त्रिंशदप्यतः । सप्तपर्याप्तकेष्वेवं बन्धस्थानानि पञ्च तु ॥२७३॥

२३।२५।२६।२७।३०।

स्थूलं सूक्ष्मे त्वपर्याप्ते पाकास्तेष्वेकविंशते । विंशतेश्चतुरग्रायाः स्यादेवमुदयद्वयम् ॥२७४॥

२१।२४।

शेषापर्याप्तकानां तु पञ्चानामुदयद्वयम् । षड्विंशत्येकविंशत्योस्तेष्वतः सत्त्वमुच्यते ॥२७५॥

उदये २१।२६

सत्तास्थानानि तेषु द्वानवतिर्नवतिस्तथा । अर्शातिश्च युताष्टाभिश्चतुर्भिश्च द्विकेन च ॥२७६॥

६२।६०।८।८।८।८।८।

सप्तापर्याप्तेष्विति गतम् ।

सूक्ष्मपर्याप्तके बन्ध-सत्तास्थानानि पूर्ववत् । पाके त्वेक-चतु-पञ्च-षट्पञ्च विंशतिर्भवेत् ॥२७७॥

सूक्ष्मपर्याप्तके बन्धाः २३।२५।२६।२६।३०। उदया २१।२४।२५।२६। सत्त्वानि ६२।६०।८।८।

८।८।८।८।

सन्ति वादरपर्याप्ते बन्धाः सत्ताश्च पूर्ववत् । एकविंशतितः सप्तविंशत्यन्तास्तयोदयाः ॥२७८॥

वादरैकेन्द्रिये पञ्चबन्धाः २३।२५।२६।२६।३०। उदयाः २१।२४।२५।२६।३०। सन्ति ६२।६०।८।८।

८।८।८।८।

बन्धस्थानानि तान्येव तानि सत्ताऽऽपदानि च । पूर्णेषु विकलाक्षेषु प्रत्येक त्रिषु सन्ति हि ॥२७९॥

एकत्रिंशत्तया त्रिंशदेकान्नत्रिंशदप्यतः । विंशतिश्चाष्टपट्कैकयुक्ताः सन्ति तथोदयाः ॥२८०॥

विकलेषु बन्धा २३।२५।२६।२६।३०। उदयाः २१।२६।२८।२६।३०।३१। सन्ति ६२।६०।८।८।

८।८।८।८।

१ सप्तपर्याप्ताः सूक्ष्मपर्याप्तेन सह तेषु बन्धे ।

अवधनस्युदितं सत्स्यादायुर्जीवे तु वध्नति । वध्यमानोदिते सत्त्वे वद्धेऽवद्धोदिते सती ॥२६३॥

इति नरकायुरादिषु पूर्वोक्ता मङ्गा. ५।१।१।५ । एषा संदष्टिनारकेषु

०	२	०	३
१	१	१	१
१	१	२	१ २ १ ०

०
१
१ ३

तिर्यक्षु	०	१	०	२	०	३	०	४	०
	२	२	२	२	२	२	२	२	२
	२	२ १	२ १	० २	२ २	२ ३	२ ३	२ ४	२ ४

मनुष्येषु	०	१	०	२	०	३	०	४	०
	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	३	३ १	३ १	३ २	३ २	३ ३	३ ३	३ ४	३ ४

देवेषु	०	२	०	३	०
	४	४	४	४	४
	४	४ २	४ २	४ ३	४ ३

इति मिथ्यादृष्टौ सर्वे २८ । सासनो नरकेषु न वज्रतीति निरयायुर्वन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती १ । नरकायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती १ । इति द्वौ मङ्गौ त्यक्त्वा शेषा सामने २६ । सम्यग्मिथ्यादृष्टिरेकमप्यायुर्न वध्नात्यतस्तस्योपरतवन्धमङ्गा. १६ । यस्यादस्यतो मनुष्यस्तिर्यग्गतिस्थो वा देवायुरेव वध्नाति, नेतराणि । नारक-देवगतिस्थश्च मनुष्यायुष एव वन्धको नापरेषाम् । ततस्तिर्यगायुर्वन्धे नरकायुरुदये द्वे अपि सती १ । नरकायुर्वन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती २ । तिर्यगायुर्वन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती ३ । मनुष्यायुर्वन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती । नरकायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती ५ । तिर्यगायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती ६ । मनुष्यायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती ७ । तिर्यगायुर्वन्धे देवायुरुदये द्वे अपि सती ८ । एवमष्टौ त्यक्त्वा शेषा असंयतस्य २० । तिर्यगायुरुदये तिर्यगायुः सत् १ । देवायुर्वन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती २ । तिर्यगायुरुदये तिर्यग्देवायुषी सती ३ । मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत् ४ । देवायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती ५ । मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुषी सती ६ । एवं सयतामंयतस्य ६ । मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत् १ । देवायुर्वन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती २ । मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुषी सती ३ । एवं प्रमत्ते ३ । एत एवाप्रमत्तेऽपि ३ । अपूर्व-प्रभृति यावद्रूपशान्तस्तावच्चतुर्षु पशमकेषु त्रिषु च चपकेषु मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत् १ । उपशमकान् प्रतीत्य मनुष्यायुरुदये मनुष्य देवायुषी सती २ । एव द्वाभ्यां द्वाभ्यां मङ्गाभ्यां चतुर्ष्वष्ट ८ । क्षीणकृपाय-सयोगायोगेषु मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत् १ । एव त्रिषु त्रय. ३ । सर्वेऽप्यायुषि ११३ । पञ्चस्वाद्येषु पञ्च स्युश्चत्वारो द्वौ द्विकद्वयम् । अष्टस्रैककमन्ये द्वौ गोत्रे पञ्चाग्रविगति ॥२६४॥

गुणस्थानेषु गोत्रमङ्गा ५।१।२।२।२।१।१।१।१।१।१।१।२।

उच्चोच्चमुच्चनीचं च नीचोच्चं नीचनीचकम् । वन्धे पाके चतुर्ष्वेषु सद्वद्वय सर्वनीचकम् ॥२६५॥

१	१	०	०	०
१	०	१	०	०
१ ०	१ ०	१ ०	१ ०	० ०

इत्याद्ये पञ्च चत्वार आद्या मङ्गा सुसासने । द्वावाद्यौ त्रिष्वतोऽन्येषु पञ्चस्वैकस्तथादिम ॥२६६॥

मिथ्यात्वादिसूक्ष्मान्तोऽन्त्रे मङ्गा ५।१।२।२।२।१।१।१।१।१।१।

उच्चं पाके द्वय सत्त्वे वन्धकैकादगादिषु । स्यादुच्चमुदये सत्त्वे चायोगस्यान्तिमक्षणे ॥२६७॥

न याति सासनः श्वभ्रं तेन वैक्रियमिश्रके । न भावपण्डवेदोऽस्य भङ्गः षोडशभिस्ततः ॥३२८॥

कपायवेदयुग्मोत्थैश्चत्वारः सासनोदयाः । गुणिताः स्युश्चतुःषष्टिमिश्रवैक्रियसंगुणाः ॥३२९॥

इति वैक्रियिकमिश्रवेदद्वये सासनेऽप्युदयविकल्पाः ६४ ।

पण्डः श्वाभ्रेषु देवेषु पुमान् वैक्रियमिश्रके । स्यादौदारिकमिश्रे च पुंवेदो नृष्वसंयतः ॥३३०॥

कपायवेदयुग्मोत्थैर्भङ्गैः षोडशभिर्हताः । मिश्रे विक्रिय-कर्माभ्यां चायतेऽष्टोदया गुणाः ॥३३१॥

षट्पञ्चाशे शते द्वे स्तो मिश्रेऽप्यौदारिकेऽष्ट च । पाकभङ्गाष्टकघ्नाः स्युर्भङ्गाः षष्टिश्चतुर्युताः ॥३३२॥

अत्रासयते कपायाः ४ । पुंवेद-नपुंसकवेदौ २ । हास्यादियुग्मं २ । अन्योन्यगुणा भङ्गाः १६ । एतेऽष्टोदयगुणाः १२८ । वैक्रियिकमिश्रकर्मणयोगाभ्यां हताः २५६ । तथा कपायाः ४ पुंवेदहास्यादियुग्म २ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः ८ । एतेऽप्यष्टोदयघ्नाः ६४ । औदारिकमिश्रघ्नाः अपि ६४ । एवमयतेऽन्येऽप्युदय-विकल्पाः ३२० ।

अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे पाकाः सप्तदशोदिताः । नवयोगहतास्ते च त्रिपञ्चाशं शत मतम् ॥३३३॥

५३ । प्रथम-पञ्चमभागे सवेरानिवृत्तौ वेदाः ३ सज्वलनाः ४ अन्योन्यगुणा द्विकोदयाः १२ । एते नवयोगहताः १०८ । तथाऽनिवृत्ताववेदे जाते शेषपञ्चमभागेषु चतुर्षु चतुःसज्वलनैरेकोदयाः ४ नव-योगगुणाः ३६ । एते मीलिताः अनिवृत्तौ १४४ । सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभसज्वलने नैकोदयः, नवयोगगुणाः ६ । एव सर्वे मीलिताः १५३ ।

मोहोदयविकल्पाः स्युर्योगानाश्रित्य मीलिताः । त्रयोदश सहस्राणि द्वे शते नवकोत्तरे ॥३३४॥

१३२०६

साम्प्रत पदबन्धा योगान् प्रति कथ्यन्ते । तत्र च मिथ्याहृष्यादिषु पूर्वोक्तयोगैरेतैः १३१०। सास-नादिषु १२।१०।१०।११।११।११। क्रमादेताः प्रकृतयः पूर्वोक्ता मिथ्याहृष्टौ ८६४।७६८। सासनादिषु ७६८।७६८।१४४०।१२४८।१०५६।१०५६।४८०। गुणिता जाताः [मिथ्याहृष्टौ] ११२३२।७६८०। सास-नादिषु ६२१६।७६८०।१४४००।११२३२।११६१६।६५०४।४३२० ।

चतुर्विंशतिभङ्गोत्थाः पाकप्रकृतयस्त्विमाः । षडशीति सहस्राण्यशीत्या युक्तं शताष्टकम् ॥३३५॥

पाकप्रकृतयो द्व्यग्रा त्रिंशत्षोडशभिर्गुणाः दश पञ्चशती द्वौ च सासने मिश्रवैक्रिये ॥३३६॥

७

सासने चत्वार उदयाः ८ ८ । एषां प्रकृतयः ३२ । पूर्वोक्तषोडशभङ्गगुणाः वैक्रियिकमिश्रयोग-

६

हताश्चान्येऽपि पदबन्धाः ५१२ ।

पात्रेष्वष्टसु षष्टिर्या सन्ति प्रकृतयोऽयते । कपायवेदयुग्मोत्थैर्भङ्गैः षोडशभिर्हताः ॥३३७॥

मिश्रवैक्रिययोगेन कर्मणेन च ताडिताः । शतानि नव त्रिंशानि सहस्र च भवन्ति ताः ॥३३८॥

७

६

असंयतेऽष्टोदयाः ८ ८ । ७ ७ । एषां च प्रकृतयः ६० पूर्वोक्तषोडशभङ्गघ्नाः ६६० वैक्रियिक-

६

८

मिश्र-कर्मणयोगाभ्यां गुणाः १६२० ।

पाके प्रकृतयः षष्टिर्भङ्गैरष्टभिराहताः । मिश्रौदारिकभङ्गघ्नाः अशीत्यग्रा चतुःशती ॥३३९॥

असयतेऽन्येऽपि औदारिकमिश्रयोगभङ्गाः ४८० । एवमसंयते त्रिषु योगेष्वन्येऽपि मीलिताः पद-बन्धाः २४०० ।

अनिवृत्तौ तु या सूक्ष्मेऽप्येकान्नत्रिंशदाहताः । नवयोगैः शते द्वे स्त एकषष्ट्यधिके तु ताः ॥३४०॥

इत्यनिवृत्तौ २ द्वादशभिर्द्विकोदयैर्हताः २४ । चतुर्भिरेकोदयैः ४ । एवं २८ । सूक्ष्मे एकोदयः एकः १ । एव २६ । एताः पूर्वप्रकृतयो नवयोगहताः २६१ ।

ततोऽष्टकचतुस्त्रिद्वयोः काग्रा चैव चतुर्ध्वतः । अपूर्वे विंशतिस्त्वष्टचतुरेकसमन्विताः ॥३५४॥

अस्यत-देशव्रत-प्रसत्ताप्रसत्तेषु चतुर्षु २८।२४।२३।२२।२१। अपूर्वोपशमके २८।२४।२१। अपूर्वे क्षपके च २१ ।

तथाऽष्टचतुरेकाग्रा विंशतिस्तु त्रयोदश । द्वादशैकादशात्रैव पञ्चकं च चतुष्टयम् ॥३५५॥

त्रयो द्वौ चानिवृत्त्यालये सन्त्येव दश सत्तया । सूक्ष्मेऽष्टचतुरेकाग्रा विंशतिस्त्वेक एव च ॥३५६॥

विंशतिश्चोपशान्तेऽपि स्यादष्टचतुरेकयुक् । एकादशसु सन्त्येवं सत्तास्थानानि मोहने ॥३५७॥

इत्यनिवृत्त्युपशमके २८।२४।२१। अनिवृत्तिक्षपके च २१।१३।१२।११।५।४।३।२। सूक्ष्मोपशमके २८।२४।२१। सूक्ष्मक्षपके १। तथोपशान्ते २८।२४।२१ ।

एवं मोहनीयप्ररूपणा समाप्ता ।

मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मान्तगुणस्थानेष्वनुक्रमात् । नामात्यकर्मसम्बन्धि-बन्धादित्रयमुच्यते ॥३५८॥

आद्ये षट् नव षट् चातन्त्रयः सप्तैक एव च । मिश्रेऽपि द्वौ त्रयो द्वौ चातन्त्रयोऽष्टौ चतुष्टयम् ॥३५९॥

ततो द्वौ द्वौ च चत्वारोऽनो द्वौ पञ्च चतुष्टयम् । चतुष्कैकचतुष्काणि पञ्चैकश्च चतुष्टयम् ॥३६०॥

द्वयोरेकस्तथैकोऽष्टौ गान्ते न पाठ-सत्त्वयोः । एकस्तथा चतुष्कं च त्रीणेऽप्येकचतुष्टयम् ॥३६१॥

सयोगे द्वौ चतुष्कं च नियोगे द्वौ च षट् तथा । बन्धनोदयसत्तांशाः सन्ति नाम्नो गुणेष्विति ॥३६२॥

मिथ्यादृष्ट्यादिषु दशसु ६, ६, ६ । ३, ७, १ । २, ३, २ । ३, ८, ४ । २, २, ४ । २, ५, ४ । ४, १, ४ । ५, १, ४ । १, १, ८ । १, १, ८ । अवन्धकेषूपशान्तादिषु ०, १, ४ । ०, १, ४ । ०, २, ४ । ०, २, ६ ।

मिथ्यादृष्टौ षडाद्यानि बन्धे पाके नवादितः । विना त्रिनवति सत्त्वे स्थानान्याद्यानि नाम्नि षट् ॥३६३॥

बन्धे २३।२५।२६।२८।२९। उदये २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ६२।६१।६०। ८८।८७।८६ ।

नवादृशयुगबन्धे विंशतिः सप्त चोदयाः । स्युर्ग्यष्टाग्रसप्ताग्रे विंशती नवतिः सती ॥३६४॥

सासने बन्धाः २८।२९।३० । उदयाः २१।२४।२५।२६।२९।३०।३१ । तीर्थकराऽऽहारद्वयसत्कर्मा सामनगुणं न प्रतिपद्यत इति सासने सत्त्वे ६० ।

मिश्रेऽष्टनवयुगबन्धे दशैकादशयुक् तथा । नवाग्रविंशतिः पाके नवतिः सा द्वियुक्सती ॥३६५॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टौ बन्धे २८।२९ । उदये २९।३०।३१ । तीर्थकृत्सत्कर्मा मिश्रगुणं न प्रतिपद्यत इति तस्य व्येकनवती न सत्यौ, गेपे सत्यौ ६२।६० ।

नवादृशयुगबन्धे विंशतिश्चादिनोऽन्यते । द्वितीयोनानि^३ पाकेऽष्ट सत्त्वे चाद्यं चतुष्टयम् ॥३६६॥

असंयते बन्धाः २८।२९।३० । उदयाः २१।२४।२५।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ६३।६२। ६१।६० ।

बन्धे तु विंशती देशे नवाष्टाग्रे तथोदये । एकत्रिंशत्तथा त्रिंशत्सत्त्वे चाद्यं चतुष्टयम् ॥३६७॥

देशयत्ते, बन्धे २८।२९ । उदये ३०।३१ । सत्त्वे ६३।६२।६१।६० ।

बन्धे नवाष्टयुक्पाके नव सप्ताष्टपञ्चयुक् । विंशतिर्दशयुक्ताद्यं प्रसत्ते सच्चतुष्टयम् ॥३६८॥

प्रसत्ते बन्धे २८।२९। उदये २।१२७।२८।२९।३०। सत्त्वे ६३।९२।६१।६०।

नवाष्टैका दशाग्रा तु दशाग्रा चैकविंशतिः । बन्धे त्रिंशत्तथा पाके सत्त्वे तान्यप्रसत्ते ॥३६९॥

अप्रसत्ते बन्धाः २८।२९।३०।३१ । उदये ३० । सत्त्वे ६३।६२।६१।६० ।

समके क्षपकेऽपूर्वे बन्धेऽग्र्य स्थानपञ्चकम् । उदये तु भवेत्त्रिंशत्सत्त्वे चाद्यं चतुष्टयम् ॥३७०॥

इत्यपूर्वे बन्धे २८।२९।३०।३१।१ । उदये ३० । सत्त्वे ६३।६२।६१।६० ।

१. सत्तया दशस्थानानि इमानि । २. शान्तादिषु बन्धो न । ३. चतुर्विंशत्यनानि ।

सप्ततागे चरमेऽपूर्वोऽनिवृत्तिः सूक्ष्म एव च । वधनन्त्येक यशः शेषाष्टत्वार सन्त्यवन्धका ॥३७१॥

१११११०१०१०१० ।

अपूर्वादित्रये शान्ते क्षीणे त्रिंशदथोदये । त्रिंशत्सा चैकयुगयोगिन्ययोगाख्ये नवाष्ट च ॥३७२॥

इत्युदयेऽपूर्वादिषु पञ्चसु ३०।३०।३०।३०।३० । सयोगे ३०।३१ । अयोगे १।८ ।

त्रिपूषगमवेपूषगान्ते चाद्य चतुष्टयम् । क्षपकेष्वप्यपूर्वे सदनिवृत्तौ च सङ्गवेत् ॥३७३॥

षोडशप्रकृतोनां तु यावन्न कुरुते क्षयम् । क्षपितास्वनिवृत्तौ सदशीत्यादिचतुष्टयम् ॥३७४॥

सूक्ष्मादिष्वयोगे च यावद्विचरमक्षणम् । चरमे समयेऽयोगे सत्त्वे दश नवापि च ॥३७५॥

इत्युपगमश्रेण्यामपूर्वादिषु चतुर्षु क्षपकेषु चापूर्वेऽनिवृत्तिप्रथमनवागे च सत्त्वे ६३।९२।६१।६० ।

अनिवृत्तिक्षपकेपनवाशेषु चाष्टसु सूक्ष्म क्षीण-सयोगेषु नियोगस्य च द्विचरमसमय यावत् सत्त्वे ८०।७६
७८।७७ । चरमसमये चायोगे १०।६ ।

एव नामप्ररूपणा समाप्ता ।

द्विपट्टचतुर्भङ्गा वन्धाः स्युर्नरकादिषु । पाकाः पञ्च नवातोऽतो दश पञ्चाथ सत्तया ॥३७६॥

स्थानानि त्रीण्यतः पञ्च द्वादशातञ्चतुष्टयम् । त्रिंशदेकोनिता सा च वन्धे श्वाग्नेष्वथोदये ॥३७७॥

	नरक०	तिर्य०	मनु०	देव०
व०	२	६	८	४
उ०	५	६	१०	५
स०	३	५	१२	४

एकपञ्चकसप्तप्राष्टनवाग्रा च विंशतिः । स्थानान्यपि त्रीणि द्वावन्ध्यादिकानि हि ॥३७८॥

नरकगतौ वन्धे २१।३०। उदये २१।२५।२७।२८।२९ । तीर्थकरयुक्ताहारद्वयसत्कर्मा नरके नोत्प-
द्यत इति त्रिनवतिं विना सत्त्वे ६२।६१।६० ।

तिर्यक्प्राधानि षट् वन्धे नवाद्यान्युदये सर्ता । नवतिर्द्वियुता सा चाशीतिश्चाष्टचतुर्द्वियुक् ॥३७९॥

तिर्यग्गतौ वन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदये २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ।
तीर्थकरसत्कर्मा तिर्यक्षु नोत्पद्यत इति तेन विना सत्त्वे ६२।६०।८८।८७।८६ ।

सर्वे वन्धा मनुष्येषु चतुर्विंशतिवर्जिता । सर्वे पाका विनाद्यप्राशतिं सर्वाणि सत्तया ॥३८०॥

मनुष्यगतौ वन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।३२ । उदयाः २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।
३२। सत्त्वानि ६३।६२।६१।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७९।७८।७७।७६।७५।७४।७३।७२।७१।७०।६९।६८।६७।६६।६५।६४।६३।६२।६१।६०।५९।५८।५७।५६।५५।५४।५३।५२।५१।५०।४९।४८।४७।४६।४५।४४।४३।४२।४१।४०।३९।३८।३७।३६।३५।३४।३३।३२।३१।३०।२९।२८।२७।२६।२५।२४।२३।२२।२१।२०।१९।१८।१७।१६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९।८।७।६।५।४।३।२।१।०।

पञ्च षट्-नवयुगवन्धे दशयुक्तापि विंशतिः । पाके नवाष्टसप्तप्रा पञ्चैकाग्रा च विंशति ॥३८१॥

सत्त्वे चाद्य चतुष्क तु देवानां स्याद् गताविति । तान्येवातः पर वक्ष्ये हृषीकविषये यथा ॥३८२॥

देवगतौ तु वन्धाः २५।२६।२८।२९।३०। उदया २१।२५।२७।२८।२९। सत्त्वानि ६३।६२।६१।६०।

एकाक्षविकलाक्षे च पञ्चाक्षे च यथाक्रमम् । पञ्च पञ्चाष्ट वन्धे स्युः पञ्च षट् दश चोदये ॥३८३॥

क्रमस्थानानि सत्तया पञ्च पञ्च त्रयोदश । एकाक्षेषु त्रि-पञ्चाग्रा षट् नवाग्रा दशाधिका ॥३८४॥

वन्धे स्याद्विंशतिः, पाके पञ्चाद्यान्यथ सत्तया । नवतिर्द्वियुता सा चाशीतिश्चाष्टचतुर्द्वियुक् ॥३८५॥

	ए०	वि०	प०
एक-विकल-पञ्चाक्षेषु वन्धादयः	५	५	८
	५	६	१०
	५	६	१३

एकाक्षेषु वन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयाः २१।२४।२५।२६।२७। सत्त्वे ६२।६०।८८।८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७९।७८।७७।७६।७५।७४।७३।७२।७१।७०।६९।६८।६७।६६।६५।६४।६३।६२।६१।६०।५९।५८।५७।५६।५५।५४।५३।५२।५१।५०।४९।४८।४७।४६।४५।४४।४३।४२।४१।४०।३९।३८।३७।३६।३५।३४।३३।३२।३१।३०।२९।२८।२७।२६।२५।२४।२३।२२।२१।२०।१९।१८।१७।१६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९।८।७।६।५।४।३।२।१।०।

सन्त्येकेन्द्रियवद्वन्धा विकलाक्षेऽपि त्रिषु । तथैकेन्द्रियवत्सत्तास्थानान्यपि भवन्ति हि ॥३८६॥

एकत्रिंशत्तथा त्रिंशदेकात्रिंशदप्यतः । एकषट्काष्टैर्युक्ता विंशतिः स्वस्ति पाकतः ॥३८७॥

विकलेन्द्रियेषु वन्धा २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयाः २१।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वानि ६२।६०।८८।
८७।८६।८५।८४।८३।८२।८१।८०।७९।७८।७७।७६।७५।७४।७३।७२।७१।७०।६९।६८।६७।६६।६५।६४।६३।६२।६१।६०।५९।५८।५७।५६।५५।५४।५३।५२।५१।५०।४९।४८।४७।४६।४५।४४।४३।४२।४१।४०।३९।३८।३७।३६।३५।३४।३३।३२।३१।३०।२९।२८।२७।२६।२५।२४।२३।२२।२१।२०।१९।१८।१७।१६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९।८।७।६।५।४।३।२।१।०।

सूचममाधारणोद्योता. पोडगेत्यनिवृत्तिके । स्युः मरयेयतमे शेषे क्षयभाजस्ततश्च सः ॥४११॥

अत्र तिर्यग्द्वयादयः तिर्यग्गतिसहगता ११ । अत्रद्वयादयः स्वभ्रगतिसहगता ५ ।

कपायान्माप्यमानद्यौ हन्त्यतोऽपि नपुंसकम् । स्त्रीवेद च ततो हन्ति पट्क हास्यादिकं ततः ॥४१२॥

पुंस्त्वे प्रक्षिप्य पुस्त्व च क्रोचे माने च तं पुन । मायार्या त च ता लोमे लोमं सून्मो निहन्यत ॥४१३॥

द्वे निद्रा प्रचले क्षीणः समये हन्त्युपान्तिमे । इक्वतुष्कमयो विघ्न-ज्ञानावृत्योर्दशान्तिमे ॥४१४॥

२।१४।

देवगत्या नृगत्या च सहितो हन्त्ययोगकः । जीवेतरविपाकाहा नीच चोपान्तिमे क्षणे ॥४१५॥

अत्र सर्वा. ७२ ।

जीवपाकाः स्वरद्वन्द्वमुच्छ्वासो द्वे नभोगर्ता । वेद्यमेकमनादेयायशोऽपर्याप्तदुर्भगम् ॥४१६॥

स्युः पुद्गलोदया. पञ्च देहास्तद्वन्धनानि च । तत्तत्तातास्तत पट् सस्थानान्यशुभं शुभम् ॥४१७॥

अङ्गोपाङ्गत्रय चाष्टौ स्पर्शाः सहननानि पट् । पञ्च वर्णा रसाः पञ्च गन्धौ निर्मित्तिरद्वयम् ॥४१८॥

उपघातोऽन्यघातश्च प्रत्येकागुरुलघ्वपि । देवगत्या सहैतासु देवद्वन्द्व च नीचकम् ॥४१९॥

एवं द्वासप्ततिः क्षीणाः समये स्यादुपान्तिमे । अन्ते त्वन्यतरद्वेद्य नरायुर्वृद्धय त्रयम् ॥४२०॥

शुभगादेयपर्याप्तपञ्चाक्षोक्षयगामि च । वादर तीर्थकृच्चेति यस्यायोगः स वंघते ॥४२१॥

७२।१३।

प्राप्तोऽय स जगत्प्रान्त निर्विशल्यात्मसम्भवम् । रत्नत्रयफलं नित्य सिद्धिसौख्य निरक्षणम् ॥४२२॥

दुरत्येधातिगर्भार महायाद् दृष्टिवाततः । कर्मणामनुसर्तव्या. सन्ति बन्धोदया स्फुटम् ॥४२३॥

स्वल्पागमतया किञ्चिदपूर्णमिहोदितम् । कृत्वा तदतिमम्पूर्णं कथयन्तु बहुश्रुता ॥४२४॥

संक्षिप्योक्तमिदं कर्मप्रकृतिप्राच्यत मठा । अभ्यसन् पुरपो वेत्ति स्वरूपं बन्ध-मोक्षयो. ॥४२५॥

अष्टकर्ममिदं शीतोभूता नित्या निरञ्जना. । लोकाग्रवासिनः मिदा जयन्त्वष्टगुणान्विता. ॥४२६॥

उक्तं च—

जीवस्थान-गुणस्थान-मार्गणास्थानतत्त्ववित् । तपोनिर्जीर्णकर्ममा विमुक्त सुखमृच्छति ॥४२७॥

श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते । श्रीपालसुतद्वन्द्वेन स्फुटार्थः पञ्चमग्रहे ॥४२८॥

इति सप्ततिः समाप्ता ।

सप्ततिका-चूलिका

अभिवन्ध जिन वीरं त्रिदशेन्द्रनमस्कृतम् । बन्धस्वामित्वमोघेन विशेषेण च वर्ण्यते ॥१॥

शते सप्तदशैकाग्रे चतुः सप्ताग्रसप्तती । सप्तपट्टिं त्रिपट्टिं चैकाग्रपट्टिमथादिमा ॥२॥

सप्त बन्धन्यपूर्वाख्याः पट्टिं द्विचतुरनुनिताम् । पट्टविंशतिं क्षणान्त्ये चानिवृत्तिः प्रकृतीः क्रमात् ॥३॥

द्वयोकोग्रविंशती तां च ते चैवैकद्विरिक्ते । सूक्ष्मः सप्तदशान्येऽतस्त्रयः सातं न तत्परः ॥४॥

अबन्धा मिश्रसम्यक्त्वे बन्ध संघातका दश । स्पर्शे सप्त तथैकश्च गन्धेऽष्टौ रस-वर्णयोः ॥५॥

इत्यबन्धप्रकृतयः २८ । शेषा बन्धप्रकृतयः १२० ।

सम्यक्त्वं तीर्थकृत्वस्याहारयुग्मस्य संयमः । बन्धहेतुः प्रबध्यन्ते शेषा मिथ्यादिहेतुभिः ॥६॥

इति मिथ्यादृष्टौ ^{१६}_{११७} । सासने ^{२५}_{१०१} । नरसुरायुभ्यां विना मिश्रे ^०_{७४} । तीर्थकर-नर-सुरायुभिः

सहासंयते ^{१०}_{७७} । देशे ^४_{६७} । प्रमत्ते ^६_{६३} । आहारद्वयेन सहाप्रमत्ते ^१_{५६} । अपूर्वे सप्तसु भागेषु ^२_५ ^०_{५६}

^०_{५६} ^०_{५६} ^०_{५६} ^{३०}_{५६} ^४_{२६} अनिवृत्तौ पञ्चसु भागेषु ^१_{२२} ^१_{२१} ^१_{२०} ^१_{१६} ^१_{१८} सूक्ष्मादिषु

^{१६}_{१७} ^०_१ ^०_१ ^१_१ ^०_०

मिथ्यात्वं पण्डवेदश्च श्वभ्रायुर्निरयद्वयम् । चतस्रो जातयश्चाद्याः सूक्ष्मं साधारणतपौ ॥७॥

अपर्याप्तमसम्प्राप्तं स्थावर हुण्डमेव च । पोदशेति स मिथ्यात्वे विच्छिद्यन्ते हि बन्धतः ॥८॥

१६।

स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्यगायुराद्याः कपायकाः । तिर्यगद्वयमनादेय स्त्री नीचोद्योतदुःस्वराः ॥९॥

संस्थानस्याथ संहत्याश्चतुष्के द्वे तु मध्यमे । दुर्भगासन्नभोरीती सासने पञ्चविंशतिः ॥१०॥

इत्युत्तरत्रापि पञ्चविंशतिग्रहणेनैता एव ग्राह्याः ।

२५।

चतस्रो जातिकाः सूक्ष्मापर्याप्तस्थावरातपान् । साधारणं सुरश्वभ्रायुष्के श्वभ्रसुरद्वये ॥११॥

विक्रियाहारकद्वन्द्वे सुक्त्वाऽन्यच्छतमेकयुक् । श्वाभ्रा बन्धन्ति ता मिथ्यादशस्तीर्थकरं विना ॥१२॥

हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वपण्डोनास्त्यासु सासनः । त्यक्त्वैताभ्यो मनुष्यायुरोद्योतां पञ्चविंशतिम् ॥१३॥

शेषा मिश्रोऽयतस्तासु नरायुस्तीर्थकृद्युताः । इति श्वभ्रत्रिकेऽस्त्याद्ये विना तीर्थकृतापरे ॥१४॥

इति सामान्येन नारकेषु ^{१०१}_{१६} । मिथ्यादृष्टौ ^{१००}_{२०} । सासने ^{६६}_{२४} । मिश्रे ^{७०}_{५०} । असंयते

^{७२}_{४८} । इति त्रिषु नरकेषु । अनन्तरेषु च त्रिष्वेता एव तीर्थकरोनाः सामान्येन ^{१००}_{२०} । मिथ्यादृष्टौ ^{१००}_{२०} ।

सासने ^{६६}_{२४} । मिश्रे ^{७०}_{५०} । असंयते ^{७१}_{४६} ।

शतं च सप्तमे श्वभ्रे बन्धन्यूनं नरायुषा । ता मनुष्यद्वयोद्योना बन्धन्ति वामदृष्टयः ॥१५॥

हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वतिर्यगायुर्नपुंसकम् । त्यक्त्वैकनवति शेषास्ताभ्यो बन्धन्ति सासनाः ॥१६॥

तिर्यगायुर्विना पञ्चविंशतिं सासनोष्मिताम् । त्यक्त्वा मिश्रायती क्षिप्त्वा नृद्वयोद्ये तु सप्ततिम् ॥१७॥

इति चतुर्थपृथिवीप्रकृतिशत नरायुरूनं सप्तमे नरके सामान्येन ^{६६}_{२४} । मिथ्यादृष्टौ ^{६६}_{२४} । सासने ^{६१}_{२४} । मिश्रे ^{७०}_{५०} । असंयते ^{७०}_{५०} ।

एवं नरकगतिः समाप्ता ।

१ सातं न बध्नाति त्रयोगकः ।

तिर्यञ्च. प्रकृतीस्तीर्थकराऽऽहारद्वयोनिताः । मिथ्यादृशश्च तास्तासु सासनाः षोडशोनिताः ॥१८॥

सामान्येन तिर्यञ्चः ११७ । पर्याप्ततिर्यञ्चस्तिरस्यश्च मिथ्यादृशः ११७ । सासना १०१ ।

पञ्चविंशतिमोघोक्ता नृद्वय नृसुरायुषाम् । औदार्यद्वन्द्वमाद्यं च त्यक्त्वा सहनन तथा ॥१९॥

एताभ्योऽन्यासु मिश्राह्वा बध्नन्त्येकाग्रससतिम् । बध्नन्त्यसयतामिह्या. सयुक्तास्ताः सुरायुषा ॥२०॥

मिश्रायतौ ६६ । ७० ।

हीना द्वितीयकोपाद्यैस्ताश्च बध्नन्त्यणुवताः । एव पञ्चाक्षपर्यासास्तिर्यञ्चस्तस्त्रियोऽपि च ॥२१॥

सयतासयता. ६६ ।

स्वौघादपूर्णतिर्यञ्चस्यक्त्वाश्च-सुरायुषी । तथा वैक्रियपट्क च बध्नन्ति नवयुक्छतम् ॥२२॥

१०६

एव तिर्यग्गतिः समाप्ता ।

तिर्यग्बलप्रकृतीर्मर्त्याः पञ्च मिथ्यादृगादयः । बध्नन्त्ययतदेशाख्यौ तेषु तीर्थकराधिका ॥२३॥

अपर्याप्तमनुष्याश्च तिर्यग्बलवयुच्छतम् । बध्नन्त्यतः प्रमत्ताद्याः प्रकृतीरोघसम्भवा ॥२४॥

इति सामान्यमनुष्याः १०१ । पर्याप्तमनुष्या मानुष्यश्च मिथ्यादृष्टाद्याः पञ्च ११७।१०१।६६।७१।
६७ । प्रमत्ताद्याः सप्त ६३।५६।५८।५६।२६।२२।१७।११।११० । अपर्याप्तमनुष्याः १०६ ।

इति मनुष्यगतिः समाप्ता ।

सूक्ष्म साधारणाहारद्वये आश्र-सुरायुषी । पट्क वैक्रियिकाह्वं चापर्याप्त विकलत्रयम् ॥२५॥

मुक्त्वाऽन्याः प्रकृतीर्देवाश्चतुर्थकशतप्रमा । बध्नन्ति तीर्थकृत्वोना मिथ्यादृक् श्युत्तर शतम् ॥२६॥

हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वस्थावरैकेन्द्रियातपान् । पण्ड चाभ्योऽपि मुक्त्वान्या बध्नन्ति सासनाभिधाः ॥२७॥

इति सामान्यदेवा १०४ । मिथ्यादृष्टिः १०३ । सासने ६६ ।

त्यक्त्वैताभ्यो मनुष्यायुरोघोक्ता पञ्चविंशतिम् । शेषा मिश्रोऽयतस्तास्तु नरायुस्तीर्थकृद्युताः ॥२८॥

मिश्रे ७० । असयता ७२ ।

बध्नन्ति वामदृष्टाश्चत्वारोऽसयतान्तिमाः । देवीघ तीर्थकृत्वोना ज्योतिर्व्यन्तरभावना. ॥२९॥

देवा देव्यश्च देव्यश्च सौधर्मसानसम्भवा । सामान्यदेवभङ्गास्तु सौधर्मैश्चनकवपयो ॥३०॥

इति भावनादिषु त्रिषु तद्देवीषु च सौधर्मैश्चानदेवीषु च सामान्येन १०३ । मिथ्यादृगादिषु १०३ ।

६६।७०।७१। सौधर्मैश्चानयो. सामान्येन १०४ । मिथ्यादृगादिषु १०३।६६।७०।७२ ।

त्यक्त्वा बध्नन्ति देवीघाटेकाक्षस्थावरातपान् । शेषा सनकुमाराद्या. सहस्रारान्तिमाः सुराः ॥३१॥

सामान्येन १०१।

मिथ्यादृक् तीर्थकृत्वोनास्ता बध्नाति शतप्रमा. । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वपण्डोनास्तास्तु सासनः ॥३२॥

१००।६६।

त्यक्त्वाऽऽभ्योऽपि मनुष्यायुरोघोक्ता पञ्चविंशतिम् । शेषा मिश्रोऽयतस्तास्तु नरायुस्तीर्थकृद्युता ॥३३॥

७०।७२।

तिर्यग्द्वयातपोद्योतस्थावरैकाक्षमोघत । देवाना तिर्यगायुश्च त्यक्त्वाऽन्याश्चानतादिषु ॥३४॥

अन्यग्रैवेयकान्तेषु तीर्थोना वामदृक् च ता. । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वपण्डोनास्तास्तु सासनाः ॥३५॥

इत्यानतादिषु सामान्येन ६७ । तीर्थोना मिथ्यादृश ६६ । सासना ६२ ।

त्यक्त्वेताभ्यो मनुष्यायुरोघोक्ता पञ्चविंशतिम् । मिश्रास्तिर्यग्द्वयोद्योततिर्यगायुभिरुनिताम् ॥३६॥

मिश्रा ७०।

बध्नन्त्येता मनुष्यायुस्तीर्थकृत्सयुजोऽयता. । एता एव च बध्नन्ति सर्वेऽप्युपरिमाः सुरा. ॥३७॥

असयताः ७२ । एता एवानुदिशप्रभृति यावत् सर्वार्थसिद्धिदेवाः ७२ ।

एव देवगतिः समाप्ता ।

मुक्त्वा वैक्रियिकपट्कर्तार्यं श्वभ्र-सुरायुपी । आहारकद्वयं बध्नन्त्येकाक्षविकलेन्द्रियाः ॥३८॥

११

श्वभ्रायुः श्वभ्रयुगमोनास्यक्त्वौघोक्तास्तु षोडश । ताम्योऽन्याः सासना बध्नन्त्याद्यं पञ्चेन्द्रियाभिधाः ॥३९॥

एकाक्षविकलेन्द्रियाः सामान्येन १०६ । मिथ्यादृशः १०६ । सासनाः ६६ । पञ्चाक्षः १२० ।

एकाक्ष-विकलाक्षेषु समुत्पन्नस्तु सासनः । न शरीरेऽपि पर्याप्तिं समापयति यत्ततः ॥४०॥

नरायुस्तिर्यगायुश्च नैव बध्नात्यसौ ततः । ताम्यां विनाऽस्य बन्धे स्याच्चतुर्नवतिरेव हि ॥४१॥

इति केपाञ्चित् ६४।

इतीन्द्रियमार्गणा समाप्ता ।

एकाक्षवच्च बध्नन्ति पृथिव्यस्रकायिकाः । मिथ्यादृशस्तथैकाक्षसासनैः सासनाः समम् ॥४२॥

त्रिषु कायेषु मिथ्यादृश्यो १०६ । सासने ६६ । अथवा ६४ ।

मनुष्यायुर्नरद्वन्द्वमुच्चं तेजोऽनिलाङ्गिनाम् । त्यक्त्वैकाक्षौघतः शेषाः बध्नन्त्योघं त्रसाङ्गिनः ॥४३॥

तेजोवातकायिका मिथ्यादृश्यो बध्नन्ति १०५ । ओघं त्रसकायिकाः १२० ।

एवं कायमार्गणा समाप्ता ।

ओघभङ्गोऽस्ति योगेषु बाह्यमानसचतुष्कयोः । सामान्यनरभङ्गेषु योगेऽस्यौदारिकाह्वये ॥४४॥

औदारिके ११७।१०१।६६।७१ उपर्योघः ।

श्वभ्रदेवायुपी श्वभ्रद्वयमाहारकद्वयम् । त्यक्त्वौदारिकमिश्राह्वे योगे बध्नन्ति चापराः ॥४५॥

इति सामान्येनौदारिकमिश्रे ११४ ।

त्यक्त्वौताभ्यः सुरद्वन्द्वं तीर्थकृद् वैक्रियिकद्वयम् । मिथ्यादृशस्तु बध्नन्ति प्रकृतीर्नवयुक् शतम् ॥४६॥

१०६

श्वभ्रायु-श्वभ्रयुगमोनास्यक्त्वौघोक्तास्तु षोडश । तिर्यङ्-नरायुपी चाभ्यस्त्यक्त्वाऽन्याः सासनाभिधाः ॥४७॥

६४।

त्यक्त्वाऽऽभ्यस्त्यिर्यगायुष्कविहीनां पञ्चविंशतिम् । तीर्थं विक्रियदेवाह्वे युग्मे प्रक्षिप्य निर्गताः ॥४८॥

७५। तथौदारिकमिश्रे योगे सयोगः शतम् १ ।

सामान्यदेवभङ्गेषु योगे वैक्रियिकाह्वये । तिर्यङ्-नरायुरुनास्ता मिश्रे वैक्रियिके पराः ॥४९॥

वैक्रियिके सामान्येन १०४ । मिथ्यादृश्यादिषु १०३।६६।७०।७२। वैक्रियिकमिश्रे सामान्येन १०२ ।

तीर्थोनौघस्ताश्च मिथ्यादृक् स्थावरैकेन्द्रियात्तपान् । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वषण्ठास्यक्त्वा च सासनः ॥५०॥

मिथ्यादृष्टिः १०१ । सासनः ६४ ।

पञ्चविंशतिमेताभ्यस्त्यक्त्वोनां तिर्यगायुषा । प्रक्षिप्य तीर्थकृन्नाम शेषा बध्नन्त्यसंयताः ॥५१॥

७१ ।

प्रमत्तवच्च बध्नन्त्याहाराहारकमिश्रयोः । आयुश्चतुष्टयश्वभ्रद्वयाहारद्वयैर्विना ॥५२॥

बध्नन्ति कामर्णे योगे शेषा मिथ्यादृशस्त्वमाः । तीर्थकृद्विक्रियद्वन्द्वदेवद्वयविवर्जिताः ॥५३॥

आहारकाहारकमिश्रयोः ६३ । सामान्येन कामर्णकाययोगे ११२ । मिथ्यादृशः १०७ ।

श्वभ्रायुः श्वभ्रयुगमोनास्यक्त्वौघास्तासु षोडश । ताम्योऽन्याः सासनाभिख्या योगे बध्नन्ति कामर्णे ॥५४॥

पञ्चविंशतिमेताभ्यस्त्यक्त्वोनां तिर्यगायुषा । तीर्थविक्रियदेवाह्वे युग्मे प्रक्षिप्य निर्गताः ॥५५॥

सासनाः ६४।७५ । सयोगः सातं प्रतर-लोकपूरणयोः १ ।

एवं योगमार्गणा समाप्ता ।

भोघो वेदत्रयेऽप्यस्ति यावदेकामविंशतेः । बन्धकोऽस्य निवृत्ताख्यः सन्त्यवेदास्ततोऽपरे' ॥५६॥

एवं वेदमार्गणा समाप्ता ।

क्रुन्मानवञ्चनलोभेऽभोघो मिथ्यादृगादिषु । तावद्यावत्तु बन्धान्तमनिवृत्तौ क्रमेण तु ॥५७॥

इति चतुःकपायाणा सामान्येन १२० । विशेषेण क्रोधमानमायाकपायाणा यथाक्रम मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदेकविंशति-विंशत्येकाग्रविंशत्यष्टादशबन्धकानिवृत्तयः तावदोघमङ्गः । लोमकपायिणां सूक्ष्मसाधारणचरम-समय यावत्तावदोघः । अकपायिणामप्युपशान्तक्रीणसयोगायोगानामोघः ।

एव कपायमार्गणा समाप्ता ।

अज्ञानत्रितयेऽप्योघो मिथ्यादृक्-सासनाख्ययोः । नवस्वसंयताद्येषु त्वोघो मत्यादिकृत्रिके ॥५८॥

स्यान्मनःपर्ययेऽप्योघः प्रमत्तादिषु सप्तसु । केवलस्याप्यथोघः स्याज्जिनयोर्योगयोगयोः ॥५९॥

इति सामान्यमत्यज्ञानि-श्रुताज्ञानि-विभङ्गज्ञानिषु ११७ । मिथ्यादृष्टौ ११७ । सासने १०१ । शेष सुगमम् ।

एव ज्ञानमार्गणा समाप्ता ।

ओघः सामायिकाख्यस्य छेदोपस्थापनस्य च । आद्ये यतिचतुष्केऽस्ति परिहारस्य चाद्ययोः ॥६०॥

सूक्ष्मवृत्तस्य सूक्ष्माख्येऽधाख्यातस्य चतुर्ध्वतः । देशाख्ये देशवृत्तस्यासयमस्य चतुष्टये ॥६१॥

एवं सयममार्गणा समाप्ता ।

द्वादशस्वाद्विमेऽभोघो दृष्टेश्वरचक्षुषोः । स्यादोघोऽत्रधिदृष्टेश्वर नवस्वसंयतादिषु ॥६२॥

ओघः केवलदृष्टेश्वर भवेत्केवलिनो द्वये ।

इति दर्शनमार्गणा समाप्ता ।

कृष्णा नीलाऽथ कापोता लेश्यात्रितयमादिमम् ॥६३॥

भायलेश्याग्रयोपेता बध्नन्त्याहारकद्वयम् । त्यक्त्वान्यास्तीर्थकृत्वोनास्तासु मिथ्यादृगाद्व्याः ॥६४॥

सासनाः पौढगोनास्ता मिश्राह्वाः पञ्चविंशतिः । नरदेवायुपी चाभ्यस्त्यक्त्वा बध्नन्ति चापराः ॥६५॥

तीर्थकृन्नरदेवायुः सयुक्तास्तास्वसंयता । तेजोलेश्यासु बध्नन्त्यपर्याप्त विकलत्रयम् ॥६६॥

श्वभ्रायुः श्वभ्रायुर्म च सूक्ष्म साधारणं तथा । त्यक्त्वान्या वामदृष्टिस्तास्तीर्थाहारद्वयोनिताः ॥६७॥

इति कृष्णनीलकापोतलेश्याः सामान्येन ११८ ।

मिथ्यादृष्टयः ११७ । सासनाः १०१ । मिश्राः ७४ । असंयताः ७७ । तेजोलेश्याः सामान्येन

१११ । मिथ्यादृष्टयः १०८ ।

हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वस्थावरैकेन्द्रियातपान् । पण्ड चाभ्योऽपि मुक्त्वाऽन्या बध्नन्ति सासनाभिधाः ॥६८॥

१०१ ।

पञ्चस्वतो भवेदोघः सम्यग्मिथ्यादृगादिषु ।

पञ्चस्वोघः ७४।७७।६७।६३।५६ ।

पञ्चलेश्यास्वबध्नन्ति श्वभ्रायुर्निरयद्वयम् ॥६९॥

सूक्ष्मसाधारणैकाद्यस्थावर विकलत्रयम् । तथाऽऽतपसपर्याप्त त्यक्त्वाऽन्याः शतमष्टयुक् ॥७०॥

सामान्यपञ्चलेश्या १०८ ।

मिथ्यादृशस्तु तास्तीर्थकराहारद्वयोनिताः । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वपण्डोनास्तासु सासनाः ॥७१॥

मिथ्यादृशः १०५ । सासनाः १०१ ।

पञ्चस्वतो भवेदोघः सम्यग्मिथ्यादृगादिषु । शुक्ललेश्यासु बध्नन्ति स्थावर विकलत्रयम् ॥७२॥

तिर्यक्-श्वभ्रायुपी सूक्ष्मपर्याप्ते नरकद्वयम् । साधारणातपोद्योता तिर्यग्द्वयमेकेन्द्रियम् ॥७३॥

त्यक्त्वाऽन्या वामदृष्टिस्तास्तीर्थाहारद्वयोनिता । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वपण्डोनास्तास्तु सासनाः ॥७४॥

सामान्येन शुक्ललेश्याः १०४ । मिथ्यादृष्टयः १०१ । सासनाः २७ ।

उद्योततिर्यङ्गायुष्कतिर्यङ्गितयवर्जिताम् । युक्तां नर-सुरायुभ्यां त्वक्त्वाऽभ्यः पञ्चविंशतिः ॥७५॥

शेषाः बध्नन्ति मिश्राह्वाः सयुक्तास्वसंयताः । तीर्थकृन्तु-सुरायुभिर्नैवस्वाद्या भवेदतः ॥७६॥

७४।७७।

एवं लेश्यामार्गणा समाप्ता ।

ओघो भव्येषु मिथ्यादृग्भङ्गश्चाभव्यजन्तुषु । ओघो वेदकसम्यक्त्वस्यायतादिचतुष्टये ॥७७॥

भवेत्त्रायिकसम्यक्त्वस्याप्योघोऽसंयतादिषु । एकादशसु सम्यक्त्वस्याथौपशमिकस्य तु ॥७८॥

ओघो नर-सुरायुभ्यां हीनः स्यादयतेषु यत् । बध्नन्ति नैकमप्यायुः सम्यक्त्वे प्रथमे स्थिताः ॥७९॥

आभ्यो विहाय कोपादीन् द्वितीयानादिसंहितम् । नृद्वयौदारिकद्वन्द्वे शेषा बध्नन्त्यणुव्रताः ॥८०॥

इत्यसंयतेषु ७५। संयतासयतेषु ६६।

हीनस्तृतीयकोपाद्यैस्ताः प्रमत्ताख्यसंयताः । असातमरतिशोकायशोऽशुभमस्थिरम् (?) ॥८१॥

त्यक्त्वाऽभ्योऽप्यप्रमत्ताख्याः शेषाः साहारकद्वयाः । ओघभङ्गोऽस्त्यपूर्वाद्येषूपशान्तान्तिमेषु च ॥८२॥

प्रमत्तेषु ६२ । अप्रमत्तेषु ५८ ।

एवं भव्यमार्गणा सम्यक्त्वमार्गणा च समाप्ता ।

ओघः संज्ञिषु मिथ्यादृग्भङ्गोऽसंज्ञिषु जन्तुषु । सासादनेऽप्यसंज्ञाख्यभङ्गाः सासादनोद्भवाः ॥८३॥

एवं संज्ञिमार्गणा समाप्ता ।

ओघ आहारकाख्येषु स्यादनाहारकेषु तु । भङ्गः कार्मणकायोत्थः कर्मप्रकृतिबन्धने ॥८४॥

एवमाहारमार्गणा समाप्ता ।

इति सप्ततिका समाप्ता ।

श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवरिजा कृते ।

श्रीपालसुतड्डेन स्फुटः प्रकृतिसंग्रहः ॥८५॥

उद्धृतः पञ्चसंग्रहः समाप्तः ।

शुभम्भवतु ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

जीवसमास आदि प्रकरणोंमें जिन संदृष्टियोंके परिशिष्टमें देखनेकी सूचना की गई है वे इस प्रकार हैं—

सदृष्टि सं० १, चौदह जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
एके०—	अप० प०, ० १ १ ०	प० अ०
	द्वी० प० १ ० अ०	
	त्री० „ १ ० „	
	चतु० „ १ ० „	
पंचे०	असं०—० १, १ ० सं०	

सदृष्टि सं० ३, तीस जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
	अप०, प०, प० अ०	
पृ०	० १ १ ०	
ज०	० १ १ ०	
ते०	० १ १ ०	
वा०	० १ १ ०	
वन०	० १ १ ०	
	प० अ०	
	द्वी० १ ०	
	त्री० १ ०	
	चतु० १ ०	
पंचे०	असं० । संज्ञी	
	० १ १ ०	

सदृष्टि सं० ५, छत्तीस जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
	अ० प० प० अ०	
पृ०	० १ १ ०	
ज०	० १ १ ०	
ते०	० १ १ ०	
वा०	० १ १ ०	
	साधारण	प्रत्येक
नित्य०	इतर नि०	प० अ०
बा० । सू०	बा० । सू०	१ ०
अ प प अ । अ प प अ		
० १ १ ० । ० १ १ ०		

सदृष्टि सं० २, इक्कीस जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
एके०—	ल० नि० प० । प० नि० ल०	
	० ० १ १ ० ०	
	प० नि० ल०	
	द्वी० १ ० ०	
	त्री० १ ० ०	
	चतु० १ ० ०	
पंचे०	असं०—० १, १ ० ० सं०	

सदृष्टि सं० ४, बत्तीस जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
	अ० प०, प० अ०	
पृ०	० १ १ ०	
ज०	० १ १ ०	
ते०	० १ १ ०	
वा०	० १ १ ०	
	साधारण । प्रत्येक	
	बा० सू०	
वनस्पति	अ० प० प० अ० प० अ०	
	० १ १ ० १ ०	
	प० अ०	
	द्वी० १ ०	
	त्री० १ ०	
	चतु० १ ०	
पंचे०	असं० । संज्ञी	
	० १ १ ०	

सदृष्टि सं० ६, सैंतीस जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
	अ० प० प० अ०	
पृ०	० १ १ ०	
ज०	० १ १ ०	
ते०	० १ १ ०	
वा०	० १ १ ०	
	साधारण	प्रत्येक
नित्य०	इतर नि० सप्र० अप्र०	
बा० सू०	बा० सू०	
अ प प अ	अ प प अ	अ० प० प० अ०
० १ १ ०	० १ १ ०	० १ १ ०

	प०	अ०
द्वी०	१	०
त्री०	१	०
चतु०	१	०
असं०	।	संज्ञी
० १		१ ०

	प०	अ०
द्वी०	१	०
त्री०	१	०
चतु०	१	०
असं०		संज्ञी
० १		१ ०

सदृष्टि सं० ७, अडतालीस जीवसमास

सदृष्टि सं० ८, चौवन जीवसमास

	वादर	सूक्ष्म
	ल०नि०प०	प०नि०ल०
पृ०	० ० १	१ ० ०
ज०	० ० १	१ ० ०
ते०	० ० १	१ ० ०
वा०	० ० १	१ ० ०

	वादर	सूक्ष्म
	ल०नि०प०	प०नि०ल०
पृ०	० ० १	१ ० ०
ज०	० ० १	१ ० ०
ते०	० ० १	१ ० ०
वा०	० ० १	१ ० ०

वन०	साधा०	प्रत्येक
	वा० सू०	
	ल.नि.प. प.नि.ल. प. नि. ल.	
	० ० १ १ ० ० १ ० ०	
	ल०नि०प०	
	द्वी० ० ० १	
	त्री० ० ० १	
	चतु० ० ० १	
पंचे०	असं० संज्ञी	
	ल०नि०प० प०नि०ल०	
	० ० १ १ ० ०	

वन०	साधारण	प्रत्येक वन०
	नित्य० इतर०	
	वा० सू० वा० सू०	
	ल.नि.प. प.नि.ल. ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प.	
	० ० १ १ ० ० ० ० १ ० ० १ ० ० १	
	ल० नि० प०	
	द्वी० ० ० १	
	त्री० ० ० १	
	चतु० ० ० १	
	असंज्ञी संज्ञी	
	ल०नि०प० ल०नि०प०	
	० ० १ ० ० १	

सदृष्टि सं० ९, सत्तावन जीवसमास

	वादर	सूक्ष्म
	ल० नि० प०	ल० नि० प०
पृ०	० ० १	० ० १
ज०	० ० १	० ० १
ते०	० ० १	६ ० १
वा०	० ० १	० ० १
	साधारण	प्रत्येक
वनस्पति	नित्य	इतर
	वा०सू०	वा०सू०
	ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प.	सप्र० । अप्रति०
	० ० १ ० ० १ ० ० १ ० ० १ ० ० १ ० ० १	
	ल० नि० प०	
	द्वी० ० ० १	
	त्री० ० ० १	
	चतु० ० ० १	
	असंज्ञी संज्ञी	
	ल० नि० प० ल० नि० प०	
	० ० १ ० ० १	

संक्षिप्त सख्या १०

गुणस्थानोंमें बन्ध-अबन्धादिकी संक्षिप्त इस प्रकार है :—

नाम	गुणस्थान	बन्धव्युच्छिन्न	बन्ध	अबन्ध	सर्वप्रकृतियोंकी	विशेष विवरण
					अपेक्षा अवंध	
१ मिथ्यात्व	१६	११७	३+	३१		+ तीर्थकर और आहारद्विकके विना
२ सामादन	२५	१०१	१६	४७		
३ मिश्र	०	७४+	४६	७४		+ मनुष्यायु और देवायुके विना
४ अविरत	१०	७७+	४३	७१		+ तीर्थकर, मनुष्यायु और देवायुके मिल जानेसे
५ देशविरत	४	६७	५३	८१		
६ प्रमत्तविरत	६	६३	५७	८५		
७ अप्रमत्तविरत	१	५६+	६१	८६		+ आहारद्विक मिल जानेसे
	१	२	५८	६२	६०	
	२	०	५६	६४	६२	
	३	०	५६	६४	६२	
८ अपूर्वकरण	४	०	५६	६४	६२	
	५	०	५६	६४	६२	
	६	३०	५६	६४	६२	
	७	४	२६	६४	१२२	
	१	१	२२	६८	१२६	
	२	१	२१	६६	१२७	
९ अनिवृत्तिकरण	३	१	२०	१००	१२८	
	४	१	१६	१०१	१२६	
	५	१	१८	१००	१३०	
१० सूक्ष्मसाम्पराय	१६	१७	१०३	१३१		
११ उपशान्तमोह	०	१	११६	१४७		
१२ क्षीणमोह	०	१	११६	१४७		
१३ सयोगकेवली	१	१	११६	१४७		
१४ अयोगिकेवली	०	०	१२०	१४८		

संक्षिप्त सख्या ११

गुणस्थानोंमें उदय-अनुदयादिकी संक्षिप्त इस प्रकार है :—

नाम	गुणस्थान	उदयव्युच्छिन्न	उदय	अनुदय	सर्व प्रकृतियोंकी	विशेष विवरण
					अपेक्षा अनुदय	
१ मिथ्यात्व	५	११७	५+	३१		+ सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारद्विक और तीर्थकरके विना
२ सासादन	६	१११	११	३७		+ नरकानुपूर्विके विना
३ मिश्र	१	१००	२२+	४८		+ तिर्यगानु० अनुष्यानु० देवानुपूर्विके विना और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ
४ अविरत	१७	१०४+	१८	४४		+ चारों आनुपूर्वों और सम्यक्त्व प्रकृति के मिलानेसे

५ देशविरत	८	८७	३५	६१	
६ प्रमत्तविरत	५	८१ +	४१	६७	+ आहारकद्विकके मिलानेसे
७ अप्रमत्तविरत	४	७६	४६	७२	
८ अपूर्वकरण	६	७२	५०	७६	
९ अनिवृत्तिकरण	६	६६	५६	८२	
१० सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	६२	८८	
११ उपशान्तमोह	२	५६	६३	८६	
द्विचरमसमय	२	५७	६५	६१	
१२ क्षीणमोह	१४	५५	६७	६३	
चरमसमय					
१३ सयोगिकेवली	३०	४२ +	८०	१०६	+ तीर्थकर प्रकृतिके मिलानेसे
१४ अयोगिकेवली	१२	१२	११०	१३६	

संक्षिप्त संख्या १२

गुणस्थानोंमें उदीरणा-अनुदीरणादिकी संक्षिप्त इस प्रकार है :—

गुणस्थान	उदीरणा	व्यु०उदीरणा	अनुदीरणा	सर्व प्रकृतियोंकी अपेक्षा अनुदीरणा	विशेष विवरण
१ मिथ्यात्व	५	११७	५ +	३१	+ सम्यक्त्व प्र० सम्मग्निमिथ्या तीर्थकर और आहारकद्विक विना
२ सासादन	६	१११ +	११	३७	+ नरकानुपूर्वीके विना
३ मिश्र	१	१०० +	२२	४८	+ तिर्यगानु० मनुष्या० देवानु० विना तथा मिश्र सहित
४ अविरत	१७	१०४ +	१८	४४	चारोंअनुपूर्वी और सम्यक्त्वप्रकृतिके साथ
५ देशविरत	८	८७	३५	६१	
६ प्रमत्तविरत	८	८१ +	४१	६७	+ आहारक द्विक मिलाकर
७ अप्रमत्तविरत	४	७३	४६	७५	
८ अपूर्वकरण	६	६६	५३	७६	
९ अनिवृत्तिकरण	६	६३	५६	८५	
१० सूक्ष्मसाम्पराय	१	५७	६५	६१	
११ उपशान्तमोह	२	५६	६६	६२	
द्विचरम स०	२	५४	६८	६४	
१२ क्षीणमोह	१४	५२	७०	६६	
चरम स०					
१३ सयोगिकेवली	३६	३६ +	८३	१०६	+ तीर्थकर प्रकृति मिलाकर
१४ अयोगिकेवली	०	०	१२२	१४८	

संक्षिप्त संख्या १३

गुणस्थानोंमें सत्त्व-असत्त्वादिकी संक्षिप्त इस प्रकार है :—

गुणस्थान	सत्त्वव्युच्छिन्ति	सत्त्व	असत्त्व	विशेष विवरण
१ मिथ्यात्व	०	१४५ +	३	+ देवायु, नरकायु और तिरगायुके विना
२ सासादन	०	१४२ +	६	+ तीर्थकर और आहारकद्विकके विना

३ मिश्र	०	१४४+	४
४ अविरत	७	१४५	३
५ देशविरत	७	१४५	३
६ प्रमत्तविरत	७	१४५	३
७ अप्रमत्तविरत	७	१४५	३
८ अपूर्वकरण	०	१३८	१०
प्र०भा० १६		१३८	१०
द्वि०भा० ८		१२२	२६
तृ०भा० १		११४	३४
च०भा० १		११३	३५
९ अनिवृत्तिकरण पं०भा० ६		११२	३६
ष०भा० १		१०६	४२
स०भा० १		१०५	४३
अ०भा० १		१०४	४४
न०भा १		१०३	४५
१० सूक्ष्मसाम्पराय	१	१०२	४६
११ उपशान्तमोह	०	१०१	४७
१२ क्षीणमोह	द्वि० च० स० २	१०१	४७
चरमसमय १४		६६	४६
१३ सयोगिकेवली	०	८५	६३
द्वि० च० स० ७२		८५	६३
१४ अयोगिकेवली	१३	१३	१३५
चरमसमय			
+ आहारकद्विक मिलाकर क्षतीर्थकर मिलाकर			

सदृष्टि सख्या १४

गुणस्थानोंमें बन्धायन्धादि दशक यंत्र

बन्धयोग्य सर्व प्रकृतियों १२०

सं.	गुणस्थान	बन्ध प्र०	बन्ध व्यु०	अबन्ध	बन्धाभाव
१	मिथ्यात्व	११७	१६	३	३१
२	सासादन	१०१	२५	१६	४७
३	मिश्र	७४	०	४६	७४
४	अविरत	७७	१०	४३	७१
५	देशविरत	६७	४	५३	८१
६	प्रमत्तविरत	६३	६	५७	८५
७	अप्रमत्तविरत	५६	१	६१	८६

८	अपूर्वकरण	प्रथम भाग	५८	२	६२	६०
		द्वितीय ,,	५६	०	६४	६२
		तृतीय ,,	५६	०	६४	६२
		चतुर्थ ,,	५६	०	६४	६२
		पंचम ,,	५६	०	६४	६२
		षष्ठ ,,	५६	३०	६४	६२
		सप्तम ,,	२६	४	६४	१२२
९	अनिवृत्तिकरण	प्रथम भाग	२२	१	६८	१२६
		द्वितीय ,,	२१	१	६६	१२७
		तृतीय ,,	२०	१	१००	१२८
		चतुर्थ ,,	१६	१	१०१	१२६
		पंचम ,,	१८	१	१०२	१३०
१०	सूक्ष्मसांपराय	१७	१६	१०३	१३१	
११	उपशान्तमोह	१	०	११६	१४७	
१२	क्षीणमोह	१	०	११६	१४७	
१३	सयोगिकेवली	१	१	११६	१४७	
१४	अयोगिकेवली	०	०	१२०	१४८	

संक्षेप सं० १५

नरक सामान्यकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों १०१

गुणस्थान	बन्धयोग्य	अबन्ध	बन्धव्यु०
मिथ्यात्व	१००	१	४
सासादन	६६	५	२५
मिश्र	७०	३१	०
अविरत	७२	२६	१०

संक्षेप सं० १६

सप्तम पृथिवीगत नारकियोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों ६६

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्धव्यु०
मिथ्यात्व	६६	३	५
सासादन	६१	८	२४
मिश्र	७०	२६	०
अविरत	७०	२६	६

सदृष्टि स० १७

तिर्य्यच सामान्यकी बन्ध-रचना
बन्धयोग्य सर्व प्रकृतियाँ ११७

मिथ्यात्व	११७	०	१६
सासादन	१०१	१६	३१
मिश्र	६६	४८	०
अविरत	७०	४७	४
देशविरत	६६	५१	४

सदृष्टि स० १८

मनुष्य सामान्यकी बन्ध-रचना
बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १२०

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्धव्यु०
मिथ्यात्व	११७	३	१६
सासादन	१०१	१६	३१
मिश्र	६६	५१	०
अविरत	७१	४६	४
देशविरत	६७	५३	४
प्रमत्तविरत	६३	५७	६
अप्रमत्तविरत	५६	६१	१
अपूर्वकरण	५८	६२	३६
अनिवृत्तिकरण	२२	६०	५
सूक्ष्म सान्स्पर्श	१७	१०७	१६
उपशान्तमोह	१	११६	०
क्षीणमोह	१	११६	०
सयोगिकेवली	१	११६	१
अयोगिकेवली	०	१२०	०

सदृष्टि स० १९

देवसामान्यकी तथा सौधर्म-ईशानकालकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १०४

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्धव्यु०
मिथ्यात्व	१०३	१	८
सासादन	६६	८	२५
मिश्र	७०	३४	०
अविरत	७२	३२	१०

सदृष्टि सं० २०

भवनत्रिक देव-देवियोंकी तथा कल्पवासिनी देवियोंकी बन्ध रचना
बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों १०३

मिथ्यात्व	१०३	०	७
सासादन	६६	७	२५
मिश्र	७०	३३	०
अविरत	७१	३२	१०

सदृष्टि सं० २१

सनत्कुमारादि-सहस्रारान्त कल्पवासी देवोंकी बन्ध-रचना
बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों १०१

मिथ्यात्व	१००	१	४
सासादन	६६	५	२५
मिश्र	७०	३१	०
अविरत	७२	२६	१०

सदृष्टि संख्या २२

आनतादि-उपरिमग्नैवेयकान्त कल्पवासी देवोंकी बन्ध-रचना
बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों ६७

गुणस्थान	बंध	अबन्ध	बन्धव्यु०
मिथ्यात्व	६६	१	४
सासादन	६२	५	२१
मिश्र	७०	२७	०
अविरत	७२	२५	१०

सदृष्टि संख्या २३

एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय जीवोंकी बन्ध-रचना
बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों १०६

मिथ्यात्व	१०६	०	१३
सासादन	६६	१३	२६

सदृष्टि संख्या २४

बन्ध-योग्य प्रकृतियों ११२

मिथ्यात्व	१०७	५	१३
सासादन	६४	१८	२४
अविरत	७५	३७	१३
प्रमत्तविरत	६२	५०	६१
सयोगिकेवली	१	१११	१

प्रमत्तविरतमें वहाँ व्युच्छिन्न होनेवाली ६, आहरकद्विके बिना अपूर्वकरणकी ३४, अनि-
वृत्तिकरणकी ५ और सूक्ष्म साम्परायकी १६, इस प्रकार सबको जोड़नेसे ६१ प्रकृतियोंकी बन्ध-
व्युच्छिन्ति बतलाई गई है ।

सदृष्टि संख्या २५

औदारिक मिश्र काययोगियोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य प्रकृतियों ११४

मिथ्यात्व	१०६	५	१५
सासादन	६४	२०	२६
अविरत	७५	४४	६६ +
सयोगिके०	१	११३	१

+ यहाँ पर अविरतमे व्युच्छिन्न होगेवाली ४ तथा ऊपरके गुणस्थानोंमें व्युच्छिन्न होनेवाली ६५ मिलाकर ६६ को व्युच्छिन्न जानना चाहिए।

सदृष्टि संख्या २६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य प्रकृतियों १०२

मिथ्यात्व	१०१	१	७
सासादन	६४	८	२४
अविरत	७१	३१	६

सदृष्टि सं० २७

कर्मणकाययोगियोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों ११२

मिथ्यात्व	१०७	५	१३
सासादन	६४	१८	२४
अविरत	७५	३७	७४ +
सयोगिकेवली	१	१११	१

+ ऊपरके गुणस्थानोंमें विच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंको भी यहाँ गिन लिया गया है।

सदृष्टि सं० २८

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंकी बन्ध रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों ११८

मिथ्यात्व	११७	१	१६
सासादन	१०१	१७	२५
मिश्र	७४	४४	०
अविरत	७७	४१	१०

संहृष्टि सं० २६

तेजोलेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों १११

	मि०	सासा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०
बन्ध	१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५६
अबन्ध	३	७	३४	३१	४१	४५	४६
बंधव्यु०	४	२५	०	१०	४	६	१

संहृष्टि सं० ३०

पद्मलेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों १०८

गुण०	मि०	सासा.	मि०	अवि०	देश०	प्रमत्त	अप्र०
बन्ध	१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५६
अबन्ध	३	७	३४	३१	४१	४५	४६
बन्धव्यु०	४	२५	०	१०	४	६	१

संहृष्टि सं० ३१

शुक्ललेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों १०४

गु०	मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म	उप०	क्षी०	सथो०
बन्ध	१०१	६७	७४	७७	६७	६३	५६	५८	२२	१७	१	१	१
अब०	३	७	३०	२७	३७	४१	४५	४६	८२	८७	१०३	१०३	१०३
बंधव्यु.	४	२१	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१

संहृष्टि सं० ३२

औपशमिकसम्यक्त्वी जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियों ७७

गुण०	अवि०	देश०	प्रमत्त	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०
बन्ध०	७५	६६	६२	५८	५८	२२	१७	१
अब०	२	११	१५	१६	१६	५५	६०	७६
बंधव्यु०	६	४	६	०	३६	५	१६	१०

सभाष्य पञ्चसंग्रह

की

गाथानुक्रमणिका

गाथा प्रथम चरण प्र० पद्याङ्क

[अ]

अइभीमदसणेण	१, ५३
अगुरुगलहुगुवघाद	४, २९२
अगुरुगलहुवघाय	५, ८६
अगुरुयलहुगुवघाया	४, ४९०
अगुरुयलहुतसवायर-	५, १२४
अगुरुयलहुतसवायर-	५, १६१
अगुरुयलहुपचिदिय-	५, १७२
अगुरुयलहुयचउक्क	३, ६२
अगुरुयलहुयचउक्क	४, २६
अगुरुयलहुयचउक्क	४, २७१
अगुरुयलहुयचउक्क	४, ४००
अगुरुयलहुयचउक्क	५, ५७
अगुरुयलहुयचउक्क	५, ६४
अगुरुलहुय तमवा-	५, १४०
अगुरुयलहुय तसवा-	५, १५८
अचक्खुस्स ओघभगो	५, २०३
अजयाई स्त्रीणता	४, ६६
अज्जसक्किती य तहा	३, २१
अज्जसक्किती य तहा	४, २६५
अज्जसक्किती य तहा	४, ३१४
अज्जसक्किती य तहा	५, ५८
अट्टचउरट्टवीसे	५, २२५
अट्टचउरयवीस	५, ३९७
अट्टट्टी वत्तीम	५, ३१९
अट्टट्टी सत्तसया	५, ३२२
अट्टण्हमणुक्कस्मो	४, ४४३
अट्टत्तीम सहस्सा	५, ३८६
अट्ट य पमत्तभगा	५, ३३४
अट्ट य वघट्टाणा	४, २५४
अट्ट य सत्त य छक्क य	५, ३३
अट्ट य सत्त य छक्क य	५, ३९४
अट्ट विहक्कम्मवियडा	१, ३१
अट्टविह-सत्त-छब्ब	४, २२१

गाथा प्रथम चरण प्र० पद्याङ्क

अट्टविहसत्त-छब्ब	५, ४
अट्टविह वेयता	४, २३०
अट्टसहस्सा य सद	५, ३६६
अट्टसु असजयाड्सु	५, २१७
अट्टसु एयवियप्पो	५, ६
अट्टसु पचसु एगे	५, २६४
अट्टारस पयडोण	४, ४२०
अट्टारसेहि जुत्ता	१, ४१
अट्टावीस गिरए	४, २६१
अट्टावीस गिरए	५, ५४
अट्टावीसुणतीसा	५, ४६५
अट्टेगारस तेरस	५, २२०
अट्टेयारह चउरो	४, ६८
अट्टेवोदयभगा	५, ३२९
अट्टेवोदयभगा	५, ३३२
अट्टेवोदयभगा	५, ३३५
अडछब्बीस सोलस	५, २९१
अडयाला वारसया	५, ३२३
अडविहमणुदोरतो	४, २२७
अडवीसाई तिण्णि य	५, ४६४
अडवीसाई वघा	५, ४५८
अडवीसा उणतीसा	५, ४४९
अडवीमा उणतीसा	५, ४५२
अडवीसा उणतीसा	५, ४६२
अडसीदि पुण सता	५, २३१
अडसीदि पुण मता	५, २३३
अण-एइदियजाई	३, ३३
अण-मिच्छविदियतसवह-	४, ९५
अण-मिच्छ-मिस्स-सम्म	५, ४८७
अण-मिच्छ मिस्स-सम्म	३, ५१
अण-मिच्छाहारदुगूणा	४, ९७
अण-रहिओ पढमिल्लो	५, ३६
अणादेज्ज णिमिण च	३, ६३
अणियट्टिवादरेथी-	५, ४९०

गाथा प्रथम चरण प्र० पद्याङ्क

अणियट्टिम्मि वियप्पा	५, ३७०
अणियट्टिय सत्तरस	५, ३७८
अणियट्टिसुदयभगा	५, ३६३
अणियट्टिस्स दु वध	५, ४१३
अणियट्टि मिच्छाई	४, ३६८
अणुगो य अणुणुगामी	१, १२४
अणुदय सव्वे भगा	५, ३४६
अणुदिस-अणुत्तरवासी	४, ३५४
अणुलोह वेयतो	१, १३२
अणुवय-महव्वएहि य	४, २११
अण्णयरवेयणीय	३, ४१
अण्णयरवेयणीय	३, ४४
अण्णयरवेयणीय	३, ६४
अण्णयरवेयणीय	५, ५००
अण्णयरवेयणीय	५, ५०१
अण्णाणत्ति ए होत्ति य	४, ३१
अण्णाणत्तिय दोसु	४, ७२
अत्थाओ अत्थतर	१, १२२
अत्थि अणता जीवा	१, ८५
अथ अप्पमत्तभगा	५, ३६९
अथ अप्पमत्तविरदे	५, ३८४
अपुव्वम्मि सत्तठाणा	५, ३९७
अप्पपरोमयवाहण	१, ११६
अप्पप्पवुत्तिसचिय	१, ७५
अप्प वधिय कम्म	४, २३४
अरई सोएणूणा	४, २५०
अरई सोएणूणा	५, २८
अरहत-सिद्ध-चेइय-	४, २०६
अरहतादिसु भत्तो	४, २१३
अवरादीण ठाण	४, ९७
अवसेसविहिंविसेसा	५, २०७
अवसेम सजमट्टाण	५, २०३
अवसेस णाणाण	५, २०१
अवसेसा पयडोओ	४, ४८४

	प०	अ०
द्वी०	१	०
त्री०	१	०
चतु०	१	०
असं०	१	संज्ञी
० १		१ ०

	प०	अ०
द्वी०	१	०
त्री०	१	०
चतु०	१	०
असं०	१	संज्ञी
० १		१ ०

संदष्टि सं० ७, अद्वितालोस जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
	ल० नि० प०	प० नि० ल०
पृ०	० ० १	१ ० ०
ज०	० ० १	१ ० ०
ते०	० ० १	१ ० ०
वा०	० ० १	१ ० ०
वन०	साधा०	प्रत्येक
	बा० सू०	
	ल.नि.प. प.नि.ल. प. नि. ल.	
	० ० १ १ ० ० १ ० ०	
	ल० नि० प०	
	द्वी० ० ० १	
	त्री० ० ० १	
	चतु० ० ० १	
पंचे०	असं०	संज्ञी
	ल० नि० प०	प० नि० ल०
	० ० १ १ ० ०	

संदष्टि सं० ८, चौवन जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
	ल० नि० प०	प० नि० ल०
पृ०	० ० १	१ ० ०
ज०	० ० १	१ ० ०
ते०	० ० १	१ ० ०
वा०	० ० १	१ ० ०
वन०	साधारण	प्रत्येक वन०
	नित्य० इतर०	
	बा० सू० बा० सू०	
	ल.नि.प. प.नि.ल. ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प.	
	० ० १ १ ० ० ० १ ० ० १ ० ० १	
	ल० नि० प०	
	द्वी० ० ० १	
	त्री० ० ० १	
	चतु० ० ० १	
	असंज्ञी	संज्ञी
	ल० नि० प०	ल० नि० प०
	० ० १ ० ० १	

संदष्टि सं० ९, सत्तावन जीवसमास

	बादर	सूक्ष्म
	ल० नि० प०	ल० नि० प०
पृ०	० ० १	० ० १
ज०	० ० १	० ० १
ते०	० ० १	६ ० १
वा०	० ० १	० ० १
वनस्पति	साधारण	प्रत्येक
	नित्य	इतर
	बा० सू० बा० सू०	सप्र० । अप्रति०
	ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प. ल.नि.प.	
	० ० १ ० ० १ ० ० १ ० ० १ ० ० १	
	ल० नि० प०	
	द्वी० ० ० १	
	त्री० ० ० १	
	चतु० ० ० १	
	असंज्ञी	संज्ञी
	ल० नि० प०	ल० नि० प०
	० ० १ ० ० १	

इदिय छक्क य काया	४,१५६
इदिय छक्क य काया	४,१५८
इदिय छक्क य काया	४,१७१
इदिय छक्क य काया	४,१७४
इदिय छक्क य काया	४,१७६
इदिय तिण्णि य काया	४,१४४
इदिय तिण्णि य काया	४,१४८
इदिय तिण्णि य काया	४,१५२
इदिय तिण्णि य काया	४,१६२
इदिय तिण्णि व काया	४,१७०
इदिय तिण्णि य काया	४,१८८
इदिय तिण्णि य काया	४,१८८
इदिय तिण्णि य काया	४,१९२
इदिय तिण्णि वि काया	४,१६६
इदिय दोण्णि य काया	४,१४२
इदिय दोण्णि य काया	४,१४५
इदिय दोण्णि य काया	४,१४९
इदिय दोण्णि य काया	४,१४८
इदिय दोण्णि य काया	४,१६०
इदिय दोण्णि य काया	४,१६३
इदिय दोण्णि य काया	४,१६७
इदिय दोण्णि य काया	४,१८२
इदिय दोण्णि य काया	४,१८५
इदिय दोण्णि य काया	४,१८९
इदिय पच्च य काया	४,१५०
इदिय पच्च य काया	४,१५४
इदिय पच्च य काया	४,१५७
इदिय पच्च य काया	४,१७२
इदिय पच्च य काया	४,१७५
इदिय पच्च वि काया	४,१६८
इदिय पच्च वि काया	४,१९०
इदिय पच्च वि काया	४,१९३
इदिय पच्च वि काया	४,१९५
इदिय मणोहिणा वा	१,१८०
इदियमेओ काओ	४,१४१
इदियमेओ काओ	४,१४३
इदियमेओ काओ	४,१४६
इदियमेओ काओ	४,१४७
इदियमेओ काओ	४,१५७
इदियमेओ काओ	४,१५९

इदियमेओ काओ	४,१६१
इदियमेओ काओ	४,१६४
इदियमेओ काओ	४,१८१
इदियमेओ काओ	४,१८३
इदियमेओ काओ	४,१८६

[उ]

उक्कस्सजोगसण्णी	४,५०९
उक्कस्सपदेसत्ता	४,५०५
उक्कस्समणुक्कस्स	४,४२२
उक्कस्समणुक्कस्स	४,४४७
उक्कस्समणुक्कमो	४,३८९
उगुतीस अट्ठवीसा	५,२२८
उगुतीसट्ठावीसा	५,४०९
उगुतीस तीसवधे	५,२३४
उगुतीस वधेगुसु य	५,२३६
उगुमट्ठिमप्पमतो	५,४८०
उच्च णीच णीच	५,२६१
उच्चुच्चमुच्चणीच	५,१६
उच्चुच्चमुच्चणीच	५,२९७
उज्जोउ'तसचउक्क	५,६१
उज्जोयमप्पसत्थ	४,३१०
उज्जोयमप्पमत्था	३,१८
उज्जोयरहियवियले	५,१२२
उज्जोव-उदयरहिय-	५,१२३
उज्जोव-उदयसहिं	५,१३१
उज्जोव-तसचउक्क	४,२६८
उज्जोवरहियसयले	५,१३८
उज्जोवरहियसयले	१३९
उज्जोयसहियसयले	५,१४९
उणवीसेहि य जुत्ता	१,४२
उत्तमअगम्हि हवे	१,९६
उत्तरपयडीसु तहा	४,२३६
उदधिसहस्मस्स तहा	४,४१७
उदयट्ठाणकसाए	५,२००
उदयट्ठाणेसखा	५,३१८
उदयपयडि सखेज्जा	५,३२६
उदयस्सुदीरणस्स य	३,४६
उदयस्सुदीरणस्स य	५,४७३
उदया इगि-पणुवीसा	५,४६१

उदयादो सत्तरम	५,३२५
उदया हु णोकसाया	१,१०३
उदीरेइ णामगोदे	४,२२६
उम्मगदेसओ सम	४,२०९
उवओगा जोगविही	४,४
उवओगा जोगविही	४,५५
उवरयणदसणेण य	१,५५
उवरयवधे इगिती-	५,२५२
उवरवधे सते	५,१४
उवरवधे सते	५,२८७
उवरिम द्रुय चउवीस य	५,२२४
उवरिम पच्चट्ठाणे	५,४१२
उवरिल्लपच्चया पुण	४,७९
उवरिमदो वज्जित्ता	५,४५४
उववाद मारणत्तिय-	१,८६
उवसमसम्मत्तादी	५,२०६
उवसत-खीणमोहे	३,२८
उवमतखीणमोहो	१,५
उवसते खीणे वा	१,१३३
उस्साओ पज्जत्ते	१,४७

[ऊ]

ऊणत्तीस भगा	५,३८५
-------------	-------

[ए]

एइदिय आयाव	४,४६४
एइदिय गिरयाऊ	४,४५७
एइदिय थावरय	४,४७५
एइदिय-पच्चिदिय	४,३९९
एइदिय-वियल्लिदि	१,१८६
एइदियस्स जाई	५,११२
एइदियस्स फास	१,६७
एइदिएसु चत्तारि	४,६
एइदिएसु वायर-	४,९
एए उदयट्ठाणा	५,४२५
एए तेरस पयडी	५,२१५
एए पुब्बपट्ठि	५,६१
एक्कम्हि कालसमये	१,२०
एक्कम्हि महुत्तरपयडी	४,५१४
एक्क य छक्केगार	५,३१२
एक्कयर च सुहाचुह,	४,२७६
एक्कयर वेयति य	५,१४१

एकक च दो व चत्तारि	५,३०	एनेव सत्तवीस	५,१०३	ओरालिय उज्जोव	४,४७४
एकक च दो व चत्तारि	५,३०३	एमेव सत्तवीसं	५,१२०	ओरालियगवग	४,२६७
एक्काई पणयत	४,२५२	एमेव सत्तवीस	५,१७३	ओरालियगवग	४,२८०
एक्कासी पयडीण	३,७२	एमेव सत्तवीस	५,१८७	ओरालियगवग	५,६०
एगणिगोदसरीरे	१,८४	एमेव होइ तीस	४,२९८	ओरालियगवग	५,७३
एगसहस्स णवसद-	५,३५२	एमेव होइ तीस	५,९१	ओरालियगवग	५,१२७
एग सुहुमसरागो	५,३११	एमेव होइ तीस	५,१३०	ओसा य हिमय महिया	१,७८
एगोगमट्ट एगे	५,४००	एमेव होइ तीस	५,१३३	ओहीदसे केवल	४,३५
एगोग इगितीसे	५,२४९	एमेव होइ तीस	५,१४८	[क]	
एत्तो हणदि कसाय	५,४९२	एमेव होइ तीस	५,१५२		
एत्तो उवरित्ताण	४,३४६	एमेव होइ तीस	५,१६९	कदकफलजुदजल वा	१,२४
एत्थ इम पणुवीस	५,८५	एमेवूणत्तीस	५,१३९	कदि बधतो वेददि	५,३
एत्थ वि भग-वियप्पा	५,१५१	एमेवूणत्तीस	५,१४७	कम्मइए तीसता	५,४४०
एयम्हि गुणट्ठाणे	१,१८	एमेवूणत्तीस	५,१६८	कम्मइयकायजोई	४,३६५
एदाणि चैव सुहुमस्स	५,४१४	एमेवूणत्तीस	५,१७५	कम्मोरालदुगाइ	४,४५
एमेव अट्टवीस	५,१०४	एयक्खेतोगाढ	४,४९३	कम्मोरालदुगाइ	४,४६
एमेव अट्टवीस	५,१२८	एयणउसयवेय	३,५७	कम्मोरालदुगाइ	४,९४
एमेव अट्टवीस	५,१६६	एयदर च सुहासुह-	५,६९	करिस-तणेट्टावग्गी	१,१०८
एमेव ऊणतीस	५,१४४	एययर वेयति य	५,१६२	कचण-रूपपदवाण	३,२
एमेव ऊणतीस	५,१५०	एय-विय-कायजोगे	४,१०२	काऊ काऊ तह का-	१,१८५
एमेव ऊणतीस	५,१७२	एयार जीवठाणे	५,२५८	किण्हाइतिआसजम	४,५१
एमेव एकतीस	५,१३४	एयारसेसु तित्ति य	४,२१	किण्हाइतिए चउदस	४,१८
एमेव एकतीस	५,१५३	एव कए मए पुण	१,१७५	किण्हाइतिए णेया	४,३६
एमेवट्टावीस	५,१४५	एव तइ उगुतीस	४,२९१	किण्हाइतिए वधा	५,४५५
एमेवट्टावीस	५,१७४	एव तइयउगुतीस	५,८४	किण्हाइलेस्सरहिया	१,१५३
एमेवट्टावीस	५,१८८	एव विउला बुद्धी	१,१६२	किण्हाई तिसु णेया	४,३७१
एमेव विदियतीस	४,२६९	एव विदि-उगुतीस	४,३००	किण्हा भमरसवण्णा	१,१८३
एमेव विदियतीस	५,६२	एव विदि-उगुतीस	५,९३	किमिराय-चक्कमल-कह्म	१,११५
एमेव य उगुतीस	५,१०५	एसो दु बधसामित्तोघो	५,४८२	कोडति जदो णिच्च	१,६३
एमेव य उगुतीस	५,१८९	एसो बधसमासो	४,५१९	कु थु-पिपीलिय-मकुण	१,७१
एमेव य चउवीस	५,११३	[ओ]		केवलजुयले मण वचि-	४-४९
एमेव य छव्वीस	५,११६			केवलणाणदिवायर	१,२७
एमेव य छव्वीस	५,११९	ओघियकेवलदसे	५,२४४	केवलणाणम्हि तहा	४,३२
एमेव य छव्वीस	५,१२६	ओरालियकाययोगे	५,१९७	केवलणाणावरण	४,४८२
एमेव य छव्वीस	५,१४२	ओरालमिस्स-कम्मे	४,१२	केवलदुगमणहीणा	४,३०
एमेव य छव्वीस	५,१६३	ओरालमिस्स-कम्मे	४,६२	केवलदुयमणपज्जत्र-	४,२९
एमेव य पणुवीस	५,१०१	ओरालमिस्स-कम्मे	५,१९७	केवलदुयमणवज्ज	४,२४
एमेव य पणुवीस	५,११५	ओरालमिस्सजोग	४,१७९	केवलिण सागारो	१,१८१
एमेव य पणुवीस	५,१८५	ओरालाहारदुए	४,४४	कोसुभो जिह राओ	१,२२
एमेव विदिय तीस	४,२६९	ओरालिय-आहारदु-	४,८४	कोहाइकसाएसु	४,३६९
				कोहाइचउसु बधा	५,४४२

[ख]

खवणाए पट्टवगो	१,२०३
खविए अण-काहार्ई	५,३६
खाइयमसजयाइसु	१,१६७
खीणकसायदुचरिये	५,४९४
खीणता मज्झिम्मे	४,६१
खीणे दसणमोहे	१,१६०
खुल्ला-वराड-मखा	१,७०

[ग]

गइ-आदिय-तित्तये	५,२०६
गइ इदिय च काए	१,५७
गइकम्मविणिक्कत्ता	१,५९
गइ चउ दो य सरीर	२,१२
गइ चउ दो य सरीर	४,२४०
गइचउरएसु भणिय	५,१८९
गइयादिएसु एव	४,३२४
गुणजीवा पज्जत्तो	१,२
गुणठाणएसु अट्टसु	५,३००
गूढसिरमधिपव्व	१,८३
गोदेसु सत्त भगा	५,१५

[घ]

घाइतिय खीणता	३,६
घाईण अजहण्णो	४,४४१
घादीण छट्टमत्था	४,२२२
घोलणजोगमसण्णी	४,५१०

[च]

चउ-इयरणिगोएहि जु-	१,३८
चउ चरिमा अजोगियस्स	५,२९०
चउ-छक्क बघतो	४,२४४
चउ-छव्वीसिगितीस य	५,२४९
चउ-तिय मण-वचिए	५,१९६
चउतीम पयडीण	३,७९
चउदाल तु पमत्ते	५,३५२
चउपच्चइयो बघो	४,७८
चउवघयम्मि दुविहा	५,१३
चउवघयम्मि दुविहो	५,२८६
चउ भगा पुव्वस्स य	५,३३६
चउरो हेट्टा छा उवारें	५,४६३
चउवीस दो उव्वरि	५,४४५

चउवीस वज्जित्ता	५,१९४
चउवीस वज्जुदया	५,४२३
चउवीस वज्जुदया	५,४३१
चउवीस वज्जुदया	५,४३४
चउवीसेण य गुणिया	५,३३७
चउवीसेण वि गुणिदे	५,३५५
चउवीसेण वि गुणिया	५,३१६
चउसट्ठि होति भगा	५,३३८
चउसट्ठी अट्टसया	५,३२१
चउहत्तरि सत्तत्तरि	५,४७९
चउ हेट्टा छा उव्वरि	४,४५१
चक्खूण ज पयासइ	१,१३९
चक्खूदसे छट्टा	४,१७
चक्खूदसे जोगा	४,५२
चत्तारि-आदिणववध-	५,४१
चत्तारि पयडिठाणा	४,२४१
चत्तारि वि छेत्ताइ	१,२०१
चट्टसजलण-णवण्ह	४,२०२
चटो ण मुयइ वेर	१,१४४
चाई भट्ठी चोक्खो	१,१५१
चितियमचितिय वा	१,१२५
चोहस जीवे पढमा	५,२५७
चोहस पुव्वुहिट्टा	१,३५
चोहस सराय-चरिमे	४,४६६

[छ]

छक्क हत्साईण	४,८३
छण्णउदि च वियप्पा	५,३७७
छण्णव छत्तिय सत्त य	५,३९९
छण्णोकसाय-पयला	४,५०६
छण्हमसण्णी द्विदि	४,४३३
छण्ह पि अणुक्कस्सो	४,४९७
छण्ह सुर-णेरइया	४,४३०
छत्तीस ति-वत्तीस	५,३४४
छट्ठव-णवपयत्थे	१,१
छप्पढमा बघति य	४,२१९
छप्पच-णवविहाण	१,१५९
छप्पचमुदीरंतो	४,२२९
छव्वधा तीसता	५,४७१

छव्वावीसे चउ इगि-	४,२५१
छव्वावीसे चउ इगि-	५,२९
छव्वावीसे चउ इगि-	५,३०२
छम्मासाउगसेसे	१,२००
छव्वीसाए उव्वरि	५,१३२
छव्वीसिगिवीसुदया	५,२२६
छसु ठाणेसु सत्तट्ठ	४,२१८
छसु पुण्णेसु उराल	४,४२
छसु हेट्टिमासु पुढवीसु	१,१९३
छादयदि सय दोसे	१,१०५
छायाल-सेस मिस्सो	५,४७७
छावत्तरि एयारह	५,१९१
छिज्जइ पढम बघो	३,६७
छेत्तण य परियाय	१,१३०

[ज]

जन्थेक्कु मरइ जीवो	१,८३
जव्वाणलिया मसूरी	१,६६
जसकिन्ती बघतो	४,२५७
जस-वादर-पज्जत्ता	५,१११
जह कचणमगिगय	१,८७
जह गेखवेण कुट्ठी	१,१४३
जह छव्वीस ठाण	४,२७७
जह तिण्ह तीसाण	४,२७३
जह तीस तह चेव य	४,२८८
जह तीस तह चेव य	५,८१
जह पढम उणतीस	४,२८९
जह पुण्णापुण्णाइ	१,४३
जह भारवहो पुरिसो	१,७६
जह सुद्धफलियभायण	१,२६
ज णत्थि राय-दोसो	१,२८
ज सामण्ण गहण	१,१३८
जाइ-जरा-मरण-भया	१,६४
जा उव्वसता सत्ता	३,१०
जाणइ कज्जाकज्ज	१,१५०
जाणइ तिकालसहिए	१,११७
जाणइ पस्सइ भुजइ	१,६९
जाहि व जासु व जीवा	१,५६
जिह छव्वीस ठाण	५,७०
जिह तिण्ह तीसाण	५,६६

जिह तिण्ह तीसाण	४,२७३	ण रमति जदो णिच्च	१,६०	णिरए तीमुगितीस	५,४१९
जिह पढम उणतीस	५,८२	णवगाई बघतो	४,२५३	णिरय-णर-देवगईसु	४,८
जीवट्टाणवियप्पा	१,३३	णव छक्क चदुक्क च हि	४,२४३	णिरयदुग-आहारजुयल	४,३६०
जीवा चोद्दस भेया	१,१३७	णव छक्क चत्तारि य	५,९	णिरयदुयस्स असण्णी	४,४३५
जुगवेदकसाएहि	५,४२	णव छक्क चत्तारि य	५,२८२	णिरयदुय पच्चिदिय	४,२६४
जुगवेदकमाएहि	५,३१४	णव दस सत्तत्तरिय	५,२८०	णिरयदुय पच्चिदिय	५,५६
जे ऊणतीम बवे	५,२४३	णव दस सत्तत्तरिय	५,४१७	णिरयाउग-देवाउग-	४,३९८
जे जत्थ गुणे उदया	५,३२७	णव पचाणउदि सया	५,४६	णिरयाउग-देवाउग-	४,५१२
जे पच्चया वियप्पा	४,१७८	णव-पचोदय-सता	५,२२१	णिरयाउअस्स उदए	५,२१
जे पच्चया वियप्पा	४,२००	णव सत्तोदयसता	५,२३५	णिरयाउअस्स उदए	५,२९२
जेसि ण मति जोगा	१,१००	णव सव्वाओ छक्क	५,१०	णिरयाणुपुब्बि-उदओ	३,३१
जेहि अणेया जीवा	१,३२	णव सव्वाओ छक्क	५,२८३	णिस्सेसखीणमोहो	१,२५
जेहि दु लक्खिज्जते	१,३	णवसु चउक्के एक्के	४,४१	णेत्ताइ दसणाणि य	५,११
जो एत्थ अपडिपुण्णो	५,५०७	णव अजोई ठाण	५,१७९	णेत्ताइ दसणाणि य	५,२८४
जोगा पयडि-पदेसा	४,५१२	णाणस्स दमणस्स य	२,२	णेरइयदुय मोत्तु	४,३५८
जोगिम्मि ओघभगो	४,३६७	णाणतरायदसय	३,२७	णोइदिएसु विरदो	१,११
जो ण विरदो हु भावो	१,१३४	णाणतरायदसय	४,७४	[त]	
जो णेव सच्चमोमो	१,६२	णाणतरायदसय	४,३२३		
जो तसवहाउ विरदो	१,१३	णाणतरायदसय	४,४२२	तइयकसायचउक्क	३,२०
जो समाइय-छेदो-	१,१९५	णाणतरायदसय	४,४४६	तइयकसायचउक्क	४,३१४
[ण]		णाणतरायदसय	४,४५६	तइयकसायचउक्क	४,४७२
		णाणतरायदसय	४,४६८	तइयचउक्कयरहिया	४,३८७
णउदी चैव सहस्सा	५,३६०	णाणतरायदसय	४,५००	तत्थ इम इगिवीस	५,१६०
णउदी मता सादे	५,२१८	णाणतरायदसय	४,५०५	तत्थ इमं छव्वीस	४,२७५
णउदी सतेसु तहा	५,२११	णाणतरायदसय	५,४७४	तत्थ इम छव्वीस	५,६७
णउसए पुण एव	५,२००	णाण पचविह पि य	१,१७८	तत्थ इम तेवीस	४,२८३
ण कुणेइ पक्खवाय	१,१५२	णाणावरणचउक्क	४,४८४	तत्थ इम तेवीस	५,७५
णट्टासेसपमाओ	१,१६	णाणावरणे विग्घे	५,२८१	तत्थ इम पणुवीस	५,१७१
णमिऊण अणतजिणे	३,१	णाणणेषु सजमेसु य	४,३७१	तत्थ इम पणुवीस	४,२९३
णमिऊण जिणिदाण	५,१	णाणोदहि-णिस्सद	४,२	तत्थ य तीसट्टाणा	५,७८
ण य इदिय-करणजुआ	१,७४	णामस्स य बघोदय-	५,४०१	तत्थ य तीस ठाण	४,२८६
ण य जे भव्वाभव्वा	१,१५७	णिकखेवे एयट्टे	१,१८२	तत्थ य पढम तीस	४,२६७
ण य पत्तिइ पर सो	१,१४८	णिट्ठा पयला य तहा	३,४०	तत्थ य पढम तीस	५,५९
ण य मिच्छत पत्तो	१,१६८	णिट्ठा पयला य तहा	३,२२	तत्थिगिवीस ठाण	५,१८३
ण य सच्च-मोसजुत्तो	१,९०	णिट्ठा पयला य तहा	४,३१७	तत्थिगिवीस ठाण	५,९९
णरदुय-उच्चजुयाओ	४,३३२	णिट्ठा-वचणबहुलो	१,१४६	तत्थुप्पण्णा देवा	४,३५०
णरदुय-उच्चूणाओ	४,३३०	णिट्ठा-चिय तित्थयर	४,२९८	तदियत्कसायचउक्क	३,३६
णरदुयणराउउच्चूणा	४,३५७	णिमिण चिय तित्थयर	५,९०	तम्मिस्से तित्थयरूणा	४,३६२
णर-देवाऊरहिया	४,३३५	णिम्मूलखधसाहा	१,१९२	तमकाइएसु णेया	५,१९५
णर-देवाऊरहिया	४,३४०	णियव्वेत्ते केवलिदुग	१,९६	तसचउ वण्णचउक्क	४,२८७
				तसचउ वण्णचउक्क	५,७९

तसचउ वण्णचउक्क	४,२९७	तिण्णेवाउय मुहुम	४,४६४	तिव्वकसाओ बहुमोह	४,२०७
तसचउ वण्णचउक्क	५,८९	तिण्ह खलु पढमाण	४,३९१	तिव्वेदाए सब्बे	१,१०२
तमचउ पमत्थमेव य	३,२४	तिण्ह दोण्ह दोण्ह	१,१८८	तिसु तेरेगे दम णव	४,७४
तमचउ पमत्थमेव य	४,३१९	तित्थयर-णराउजुया	४,३४६	तिस्से हवेज्ज हेऊ	४,४३६
तमथावरादिजुयल	४,४१७	तित्थयर-णराउजुया	४,३५९	तीसण्हमणुक्कम्मो	४,४९९
तमपचक्खे सब्बे	४,८७	तित्थयर-देव-णिरया-	५,४८३	तीस चव य उदय	५,४११
तस्स दु सत्तट्ठाणा	५,२७९	तित्थयरमेव तीम	३,२५	तीमता छव्ववा	५,४५२
तम्म य अगोवग	५,१४३	तित्थयरमेव तीस	४,३२०	तीसता छव्ववा	५,४६६
तम्म य अगोवग	५,१६४	तित्थयर मह सजोई	५,१७६	तीस वारस उदय	३,४३
तम्म य उदयट्ठाणा-	५,४०४	तित्थयर मुरचदुजुया	४,३६३	तीमादी एगूण	५,२४१
तम्म य मतट्ठाणा	५,४०३	तित्थयर-मुरचदुणा	४,३६१	तीमुगतीमा ववा	५,४३८
तम्म य सत्तट्ठाणा	५,४१०	तित्थयर-मुर-णराऊ	४,३८४	तीसेक्कतीसकालो	५,१३६
तम्म य मतट्ठाणा	५,४१६	तित्थयर वज्जित्ता	५,१८०	तीमेक्कतीमकालो	५,१५४
तम्मुवरि मुक्कलेम्मा	५,३७३	तित्थयराहारजुयल-	४,३७९	तेउप्पउमामुक्के	५,२०४
तम्मेव अपज्जत्ते	५,३३०	तित्थयराहारदुअ	३,५४	तेऊ तेऊ तेऊ	१,१८९
तम्मेव मनकम्मा	५,४०६	तित्थयराहारदुअ	३,७३	तेऊ पम्मा ववा	५,४५६
तम्मेव हेति उदया	५,४०७	तित्थयराहारदुअ	३,७६	तेऊ पम्मासु तहा	४,६७
तम्मोराणियमिम्मे	५,३५३	तित्थयराहारदुअ	४,३७२	तेऊ वाऊ काए	४,६०
तह भट्ठवीसवधे	५,२३०	तित्थयराहारदुगूणा	४,३७६	ते एयारह जोया	४,८२
तह उवमममुद्धमकसाए	५,२८४	तित्थयराहारदुगूणा	४,३८२	ते चिय ववट्ठाणा	५,२७४
तह गीणेमु वि उदय	५,४१५	तित्थयराहारदुय	४,३०२	ते चिय ववा सता	५,४४४
तह चेह भट्ठ पयडी	३,४९	तित्थयराहारदुय	५,९४	ते चिय मता वेदे	५,४४१
तह णोक्कमायठक्क	३,३८	तित्थयराहाररहिय	५,१५९	ते चव य छत्तीसे	५,३४८
तह मणुअ-मणुमणीओ	४,३४३	तित्थयराहारविरहि-	५,४७६	ते चव य ववुदया	५,२३७
तह य तदीय तीम	४,२७१	निदु इमि णठदि णठदि	५,२०८	ते चव य ववुदया	५,२३८
तह य तदीय तीम	५,६३	तिय ण छव्वीमेमु वि	५,२२३	तेजणिय चक्खुजुयले	४,९६
त चव य ववुदय	५,२४६	तियमण-चउमणजोए	४,११	तेजप्पउमा सुक्के	५,२०२
त ववतो चउगे	४,२५५	तिरि-णरमिच्छेयारह	४,४६३	तेजाकम्मसरीर	४,४४५
त मिच्छत जममदहण	१,७	तिरियगई-मणुयदोणिण य	४,४१५	तेजाकम्ममरीर	४,४७८
ताओ चउवीसगुणा	५,३२०	तिरियगई ओराल	४,४३०	तेणउदीसतादो	५,२१०
ताओ तत्त य णिरया	४,३३२	तिरियगई तेवीस	५,४२१	तेण सत्त अ मिम्सो	३,८
तारिसपरिणामट्ठिय	१,१९	तिरियगदीए चोह्म	४,७	तेणेव होति णेया	५,३४०
तामिममवेज्जगुणा	४,५१७	तिरियदुवे मणुयदुय	५,१५८	तेतीस सायरोवम	५,१०६
निणिण दम भट्ठट्ठाणा	४,२४२	तिरियमणुयाउगेहि	४,३६२	तेतीस मायरोवम	५,१९०
निणिण य अगोवग	३,६१	तिरियति कुटिलभाव	१,६१	तेयाल प्यडीण	४,४४७
निणिण य अगोवग	४,४५४	तिरियाउ तिरियजुयल	४,३८३	तेरस चव सहस्सा	५,३४३
निणिण य मत्त य चदु दुग	४,४१४	तिरियाउस्स य उदए	५,२२	तेरस जीवममासे	५,२६२
निणिणेगे एगेग	५,३९३	तिरियाउस्स य उदए	५,२९३	तेरम मयाणि सयारि	५,३८९
तिण्णेव महस्साड	५,३८७	तिरिया तिरियगईए	४,३३४	तेरससु जीवमखे-	५,२५४
		तिवियप्पपयट्ठिठाणा	५,२५३	तेरह बहुप्पएमो	४,५०८

तेरासिएण जेया	४,३९४
तेरे णव चउ पणय	५,२५५
तेवीसमादि कादु	५,४०२
तेवीस पणुवीस	४,२५७
तेवीस पणुवीस	५,५२
तेवीस पणुवीस	५,४२७
ते सव्वे भयरहिया	५,३०८
तेसिमसखेज्जगुणा	४,५१८
तेसिं सट्ठि वियप्पा	५,३५८
तेसिं सतवियप्पा	५,४२८
तेसु य सतट्ठाणा	५,२७३
तेहि विणा णेरइया	४,३२७
तेहि विणा वधाओ	४,३३९

[थ]

थावर अथिर असुह	४,२८४
थावर आदाउज्जो	४,३५३
थावरमथिर असुह	५,७६
थावर सुहुम च तहा	३,१६
थावर सुहुम च तहा	४,३०९
थिर अथिर च सुहासुह-	५,१००
थिरमथिर सुभमसुभ	५,१८४
थिरसुहजस आदेज्ज	४,४०४
थीणतिय इत्थी वि य	४,३१०
थीणतिय इत्थी वि य	३,१७
थीणतिय चैव तहा	२,३७
थीणतिय चैव तहा	३,५५
थीणतिय णिरयदुय	५,४९१
थी-पुरिसवेयगेषु य	५,१९९

[द]

दम अट्टारस दसय	४,१०१
दमगादि-उदयठाणा	५,४४
दस णव अडसत्तुदया	५,३४५
दम णव पण्णरसाइ	५,५१
दम णव पण्णरसाइ	५,२६७
दम वधट्ठाणाणि	४,२४६
दस वावीसे णव इगि	५,४०
दमविहमच्चे वयणे	१,९१
दम मण्णीण पाणा	१,४८
दहिगुडमिव वामिम्म	१,१०

दडदुगे ओराल	१,१९९
दसण-आइदुअ दुसु	४,७३
दसण-णाणाइतिय	४,३३
दसण-णाणाइतिय	४,३८
दसणमोहवखवणा	१,२०२
दंसणमोहस्सुदए	१,१६६
दसणमोहस्सुवसमगो	१,२०४
दसण वय सामाइय	१,१३६
दस-मसगो य मक्खिय-	१,७२
दुग तीस चउरपुव्वे	३,१२
दुव्वभग दुस्सर णिमिण	४,२७३
दुव्वभग दुस्सर णिमिण	५,६५
दुव्वभगदुस्सरमजस	४,४०२
दुव्वभगदुस्सरमजस	४,४५९
दुव्वभगदुस्सरमसुभ	३,७८
दुरविगमणिउणपरमट्ठ-	५,५०६
दुसु तेरे दस तेरस	५,३२८
देवगडसहगयाओ	५,४९५
देवगईपयडोअ	४,३४७
देवदुअ पणसरीर	३,६०
देवदुय पच्चिदिय-	४,२९६
देवदुय पच्चिदिय-	५,८८
देव-मणुस्सादीहि	१,३७
देवाउ अजसक्किती	३,६९
देवाउग वज्जेविय	४,४२९
देवाउग पमत्तो	४,४२७
देवाउगमपमत्तो	४,४६२
देवाउस्स य उदए	५,२४
देवाउस्स य उदए	५,२९५
देवाउस्स य एव	४,४३८
देवे अणण्णभावो	१,१६५
देवेमु य णिरयाउ	५,४८४
देसविरये च भगा	५,२०२
देसे सहस्स सत्त य	५,३६८
दो उव्वरि वज्जित्ता	५,४३६
दो उव्वरि वज्जित्ता	५,४५९
दो चैव सहस्साइ	५,३९९
दो छक्कट्टुचउक्क	५,४१८
दोण्ह पच य छच्चेव	४,७१
दो तीस चत्तारि य	४,३१६

[ध]

धण्णस्स सगहो वा ३,३

[प]

पक्खित्तं पत्तेय	५,११४
पच्चइणो मणुयाऊ	४,४५०
पच्चति मूलपयडी	४,४४९
पज्जत्तय जीवाणं	१,१९०
पज्जत्ता णियमेण	४,३३८
पज्जत्तासण्णीसु वि	५,२७७
पडपडिहारमिमज्जा	२,३
पडिणीयमतराए	४,२०४
पडिणीयाई हेऊ	४,२१६
पढमकसायचउक्क	४,४७१
पढमकसायचउक्क	५,४८५
पढमकसायचउक्क	५,४८९
पढमचउक्केणित्थी	५,२७
पढमचउक्केणित्थी	५,२४९
पढमा-चउ छ-लेस्सा	१,१८७
पढमा चउरो सता	५,४४८
पढमादोऽणाणतिए	४,६३
पढमे दड कुणड य	१,१९७
पढमे विदिए तीसु वि	५,४७
पढमो दसणघाई	१,११०
पण णव इगि सत्तरस	३,२९
पण णव इगि सत्तरस	३,५०
पणय दुय पणय पणय	५,२६९
पणयालीस मुहुत्ता	१,२०६
पणवण्णा पण्णासा	४,८०
पणवीम उगुतीस	४,२६३
पण सत्तावीसुदया	५,२२७
पणिदरमभोयणेण य	१,५४
पणुवीस सहस्साइ	५,३८८
पणुवीस उणतीस	५,५५
पणुवीस छव्वीस	५,४२४
पणुवीसाई पच य	५,४३७
पण्णर छत्तिय छप्पच	५,४९३
पण्णररसण्ह ठिदि	४,४२८
पण्णरस सहस्साइ	५,३९२
पण्णरस छत्तिय छ-	५,४९७
पण्णरस छत्तिय छ-	५,४९७

पत्तेयमथिरमसुह	४,२८२	पुढवी य सक्करा वा-	१,७७	वाणउदि-णउदिसता	५,४३३
पत्तेयमथिरमसुह	५,७४	पुणरवि दसजोगहदा	५,३४७	बायर-सुहुमेक्कदर	५,७१
पत्तेयसरीरजुय	५,१४४	पुण्णेषु सण्णि सव्वे	१,४९	बायर-जसक्कित्ति वि य	३,४५
पत्तेयसरीरजुय	५,१६५	पुरिसस्स अट्ठुवास	४,४१२	बायर-जयक्कित्ति वि य	३,६५
पत्तेयागुरुणिमिण	५,४९८	पुरिस कोहे कोह	५,४९३	बायर-पज्जत्तेसु वि	५,२७५
पमत्तेदरेसु उदया	५,३५३	पुरिस चउसजलण	३,२६	वायर-सुहुमेक्कयर	४,२७९
पम्मा पउमसवण्णा	१,१८४	पुरिस चउसजलण	४,३२२	वायर-सुहुमेगिदिय-	१,३४
पयडिविवधणमुक्क	२,१	पुरिस चउसजलण	४,४६९	वायालतेरसुत्तर-	५,२८८
पयडी एत्थ सहावो	४,५१४	पुरिसे सव्वे जोगा	४,४७	वायाल पि पसत्था	४,४५२
पयडीए तणुकसाओ	४,२१०	पुरुगुणभोगे सेदे	१,१०६	वारसपण्णट्ठाड	५,३१३
परघादुस्सासाण	२,१०	पुम्महमुदारुदाल	१,९३	वारण भगे वि गुणे	५,३५९
परघादुस्सासाण	४,२३८	पुव्वापुव्वप्फडुय-	१,२३	वारस मुहुत्ता साय	४,४११
परधाय चैव तहा	५,१४६	पुव्वुत्ता छत्तीसा	१,३९	वारस य वेयणीए	४,४०९
परधाय चैव तहा	५,१६७	पुव्वुत्ता जे उदया	५,४५	वावण देसविरदे	५,३५१
परमाणुआदियाइ	१,१४०	पुव्वुत्ता वि य तीसा	१,३७	वावण चैव सया	५,३७९
पहिया जे छप्पुरिमा	१,१९१	पुवेदो मिच्छत्त	३,७१	वावत्तरी पयडीओ	५,४९९
पचवखडुए पाणा	१,५०	[व]		वावत्तरी दुचरिमे	३,५३
पच णव दोण्णि अट्ठा	२,४	वत्तीस आसादे	५,३५६	वावीसमेक्कवीस	४,२४७
पच णव दोण्णि छव्वी-	२,५	वत्तीसोदयभगा	५,३४९	वावीसमेक्कवीस	५,२५
पच-तिय-चउविहिं	१,१३५	वहुविहवहुप्पयारा	१,१४१	वावीसा एगूण	५,४८१
पचमय मठाण	४,४०७	वघ-उदया उदीरण-	४,५	वावीसादिसु पचसु	५,३७
पच य विदियावरण	४,४१३	वघट्ठाणा चउरो	४,२१६	वासट्ठि वेयणीए	५,२५६
पच रस पच वण्णेहिं	४,४९५	वघपयडीहिं रहिया	४,३६६	वासीदि दो उव्वरि	५,४३५
पच वि इदिय पाणा	१,४६	वघविहाणसमासो	४,५२१	वासीदि वज्जित्ता	५,२२३
पच वि थावरकाया	१,३६	वघ त चैवुदय	५,२३९	वाहिर पाणेहिं जहा	१,४५
पचविहे अडचउगा-	५,४९	वघ त चैवुदय	५,२४४	वि-ति-एइदियजीवे	४,२५
पचसमिदो तिगुत्तो	१,१३१	वघ त चैवुदय	५,२४०	वि-ति-चउरिदिय-सुहुम	४,४०५
पचसु थावरकाए	४,१०	वघति अप्पमत्ता	४,३८८	वि-ति-चउरिदिय-सुहुम	४,४७४
पचसु थावरकाए	४,२६	वघति जस एय	४,३०४	विदियकसाएहि विणा	४,३३७
पचसु थावरकाए	५,४३२	वघति जस एय	५,६६	विदियकसाएहि विणा	४,३४२
पचसु पज्जत्तेसु य	५,२६६	वघति य वेयति य	४,२३१	विदियकसायचउक्क	३,१९
पचाडल्ला सता	५,४६९	वघा सता ते च्चिय	५,४४६	विदियकसायचउक्क	४,३१३
पचिदियो असण्णी	४,४३७	वघेण विणा पढमो	५,१८	विदियचउमणुसो-	४,३८६
पचिदियतिरियाण	५,१३७	वघेण विणा पढमो	५,२९९	विदियपणुवीसठाण	४,२८०
पचिदियतिरिएसु	५,१५७	वघोदयकम्मसा	५,८	विदियपणुवीसठाण	५,७२
पचिदियमजुत्त	४,२९५	वाणउदि एगणउदी	५,२१९	विदिय अट्ठावीस	४,३०३
पचिदियमजुत्त	५,८७	वाणउदि-णउदिमडसी-	५,४२२	विदिय अट्ठावीस	५,९५
पचेव उदयठाणा	५,१९२	वाणउदि-णउदिसता	५,२२९	विदिय-चउमणुसोरा-	४,३८६
पाणवहाईसु रओ	४,२१४	वाणउदि-णउदिसता	५,२३२	विहिं तिहिं चउहिं पचिहिं	१,८६
पुट्ट सुणेइ सइ	१,६८	वाणउदि-णउदिसता	५,२४५	बुद्धी सुहाणुवधी	१,१६३

वेइदियस्स एवं ५,१३५

वेसय छप्पणाणि य ५,३४१

[भ]

भयमरइदुगुछा वि य ४,३९९

भयरहिया णिदूणा ५,३९

भविआ सिट्ठी जेत्ति १,१५६

भविण्णु ओघभगो ५,२०५

भव्वो पच्चिदियो सण्णी १,१५८

भासा-मणजोबाण ४,७६

भिण्णसमयट्ठिहं हि दु १,१७

भूयाणुकप-वद-जोग- ४,२०४

[म]

मड-सुअअण्णाणाडं ४,२१

मड-सुअअण्णाणाड ४,४०

मड-सुअअण्णाणेमु य ५,२०१

मड-सुअअण्णाणेमुं ४,१५

मड-सुअअण्णाणेषु ४,४८

मड-सुअअण्णाणेमुं ४,९७

मड-सुअअण्णाणेमु ५,४४३

मड-सुअ-ओहिदुगेमु ४,९१

मड-सुअ-ओहि-मणेहि य १,१७९

मड-सुअ-ओहिदुगाड ४,२३

मज्झिल्ले मण-वचिए ४,२६७

मणपज्जवपरिहारो १,१९४

मणपज्जे केवलदुवे ४,९२

मण-वयण-कायवको ४,२१२

मणना बाया काएण १,८८

मणुयगड मव्वभगा ५,१८१

मणुयगड सहगयाओ ५,५०४

मणुयगडं पच्चिदिय- ५,४७५

मणुयगडं पच्चिदिय- ५,५०२

मणुयगडं सजुत्ता ५,१५६

मणुय-तिरियाउवस्स हि ४,४३९

मणुय-तिरियाणुपुव्वो ३,३५

मणुयदुव उव्वेल्लिय ५,२१२

मणुयदुय ओरालिय- ४,४६१

मणुयदुय पच्चिदिय- ५,२१६

मणुया य अपज्जन्ता १,५८

मणुयाउस्स य उदए ५,२३

मणुयाउस्स य उदए ५,२९४

मणुयाणुपुव्विमहिया ५,५०३

मणुसगडमव्वभगा ५,१७८

मणुमदुग इत्थिवेय ४,३९७

मण्णत्ति जदो णिच्च १,६२

मरण पत्थेड रणे १,१४९

मदो बुद्धिविहीणो १,१४५

माय चिय अणियट्ठी- ३,५८

मिच्छक्खपचकाया ४,११९

मिच्छक्खपचकाया ४,१२६

मिच्छक्खपचकाया ४,१२७

मिच्छक्खपचकाया ४,१३३

मिच्छक्खपचकाया ४,१३४

मिच्छक्खपचकाया ४,१३८

मिच्छक्ख चउकाया ४,११३

मिच्छक्ख चउकाया ४,१२०

मिच्छक्ख चउकाया ४,१२१

मिच्छक्ख चउकाया ४,१२८

मिच्छक्खं चउकाया ४,१२९

मिच्छक्ख चउकाया ४,१३५

मिच्छ णउसयवेय ३,१५

मिच्छ णउसयवेयं ४,३०८

मिच्छ णउसयवेय ४,३२८

मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,१०८

मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,१३०

मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,११४

मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,११५

मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,१२२

मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,१२३

मिच्छत्तक्ख दुकाया ३,१०५

मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,१०९

मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,११६

मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,११७

मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,१२४

मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,११०

मिच्छत्तक्ख काओ ४,११८

मिच्छत्तक्ख काओ ४,१११

मिच्छत्तक्ख काओ ४,११२

मिच्छत्तक्ख काओ ४,१०४

मिच्छत्तक्खं काओ ८,१०६

मिच्छत्तक्खं काओ ४,१०७

मिच्छत्तण कोहाई ५,३२

मिच्छत्तण कोहाई ५,३०६

मिच्छत्त आयाव ३,३२

मिच्छत्त वेदतो १,६

मिच्छत्ताई चउदुय ४,८६

मिच्छम्मि छिण्णपयडो ४,३४०

मिच्छम्मि पच भगाऽ- ५,१७

मिच्छम्मि पच भगाऽ- ५,२९८

मिच्छम्मि य वावीसा ४,२४८

मिच्छम्मि य वावीसा ५,२६

मिच्छम्मि सामणम्मि ५,१२

मिच्छम्मि सामणम्मि य ५,२८५

मिच्छाड-अपुव्वता- ३,३०१

मिच्छाडचउक्केयार- ४,९८

मिच्छाडट्ठी जीवो १,१७०

मिच्छादिट्ठी जीवो १,८

मिच्छाडपमत्ता ता ५,२८९

मिच्छाडसजोयता ४,६७०

मिच्छाई खीणता ४,६९

मिच्छाई चत्तारि य ४,५८

मिच्छाई तिसु ओघो ४,३४७

मिच्छाई देसता २,२९६

मिच्छा कोहचउक्क ५,३१

मिच्छा कोहचउक्क ५,३००

मिच्छादि-अपुव्वता ५,३६५

मिच्छादि-अप्पमत्ता ५,३७२

मिच्छादिट्ठिप्पमई ४,२२३

मिच्छादिट्ठिप्पहुई ५,३८०

मिच्छादिट्ठिस्सोदय, ५,३२९

मिच्छादिट्ठी भगा ५,३७४

मिच्छादिट्ठी भगा ५,३८१

मिच्छादिट्ठी महारभ ४,२०७

मिच्छादिय-देमंता ५,३६१

मिच्छा मोहचउक्क ५,३०४

मिच्छामजम वृत्ति दु ४,७७

मिच्छासादा दोण्णि य ४,५९

मिच्छा सासण णवयं ४,२४५

मिच्छा सासण मिस्सो १,४

मिच्छा सासण मिस्सो ४,५६

मिच्छा सासण मिस्सो	५,२०५	विग्गहगइभावणा	१,१७७	सण्णिम्मि सव्ववधा	५,४६७
मिच्छाहारदुगूणा	४,९८	विग्गहगइभावणा	१,१९१	सण्णिस्स ओघभगो	५,२०६
मिच्छिदियछक्काया	४,१३२	विग्गहगईहिं एए	५,१२५	सण्णी पज्जत्तस्स य	५,२५९
मिच्छिदियछक्काया	४,१३७	वियलिदिएसु तीसु वि	५,४२९	सत्त-अपज्जत्तेसु य	५,२६५
मिच्छिदियछक्काया	४,१२५	वियलिदिएसु तेच्चिय	५,२७६	सत्त-अपज्जत्तेसु	२,२६५
मिच्छिदिय छक्काया	४,१३२	वियलिदिय गिरयाऊ	४,३७५	सत्तट्ठ छक्कठाणा	३,४
मिच्छिदिय छक्काया	४,१३९	वियलिदियसामण्णे	५,१२१	सत्तट्ठ णव य पणरस	५,४८६
मिच्छिदिय छक्काया	४,१३६	विरए खओवसमए	५,३१०	सत्तट्ठवघ्न अट्ठो-	५,५
मिच्छे तेत्तियमेत्त	४,३५७	विरदाविरदे जाणे	५,४०८	सत्तत्तरि चैव सया	५,३६४
	४,३७१	विरयाविरए जाणसु	५,३८३	सत्तरस उदयभगा	५,३४२
मिच्छे भट्ठ चउ चउ	५,३१५	विरयाविरए णियमा	५,३३३	सत्तरसधियसद खलु	५,४७८
मिच्छे सोलस पणुवी-	३,११	विरयाविरए भगा	५,३७६	सत्तरस सुहुमसराए	४,५०४
मिस्सस्स वि वत्तीसा	५,३५०	विवर पचमसमए	१,१९८	सत्तरस वधतो	५,२५२
मिस्स उदेइ मिस्से	३,३०	विवरीयमोहिणाण	१,१२०	सत्तादि दस दु मिच्छे	५,३०९
मिस्सम्मि उणत्तीस	५,४०५	विविहगुणइड्डिजुत्त	१,९५	सत्तावीस सुहुमे	५,४८८
मीमसइ जो पुव्व	१,१७४	विसजतकूढपजर-	१,११८	सत्ताहियवीसाए	३,७५
मूलगपोरवीया	१,८१	विहिं तिहिं चट्ठहिं पचहिं	१,८६	सत्तेव अपज्जत्ता	५,१९८,२६८
मूलट्ठिदि-अजहण्णो	४,४२०	वेउव्वजुयलहीणा	४,८५	सत्तेव य पज्जत्ते	५,२७०
मूलपयडीसु एव	५,७	वेउव्वमिस्सकम्मे	५,३३९	सत्तेव सहस्साइ	५,३९०
मोहस्स मत्तरी खलु	४,३९२	वेउव्वमिस्सजोय	४,१४०	सहहणासहहण	१,१६९
मोहाऊण हीणा	४,२२०	वेउव्वाहारदुगे	४,१३	सव्वावो सच्चमणो	१,८९
मोहे सता मव्वा	५,३५	वेउव्वे मणपज्जव	४,२८	समचउरस वेउव्विय	३,२३
[र]		वेदणिए गोदम्मि व	५,१९	समचउर ओरालिय	५,१७७
रुसइ णिदइ अण्णे	१,१४७	वेदय-खइए भव्वा	४,३८५	समचउर पत्तेय	५,१८६
[ल]		वेदय-खइए सव्वे	४,५३	समचउर वेउव्विय	४,३१८
लिपइ अप्पीकीरइ	१,१४२	वेदयसम्मे केवल-	४,३९	सम्मत्तगुणणिमित्त	३,१४
[व]		वेदस्सुदीरणाए	१,१०१	सम्मत्तगुणणिमित्त	४,३०६
वण्णरसगधफाम	४,४१६	वेदाहया कसाया	५,४३	सम्मत्तगुणणिमित्त	४,४८९
वण्णरसगधफासा	२,६	वेयण कसाय वेउव्विओ	१,१९६	सम्मत्तदेससयम-	१,११०
वण्णरसगधफासा	२,७	वेयणियगोयघाई	४,४९३	सम्मत्तपढमलो	१,१७१
वत्तावत्तपमाए	१,१४	वेयणियाउयमोहे	४,२२५	सम्मत्तरयणपव्वय-	१,९
वत्थुणिमित्तो भावो	१,१७८	वेयणियाउयवज्जे	४,२२४	सम्मत्तादिमलभस्सा-	१,१७२
वदसमिदिकसायाण	१,१२७	[स]		सम्मत्ते सत्त दिणा	१,२०५
वयणेहिं हेऊहिं य	१,१६१	सगवण जीवहिंसा	१,१२८	सम्माइट्ठी काल	४,५७
वस्ससय आवाहा	४,३९३	सग-सगभगेहिं य ते	५,३६२	सम्माइट्ठी जीवो	१,१२
वसीमूल मेसस्स	१,११४	सगुणा अट्ठावलिया	३,९	सम्माइट्ठी णिर-त्तिरि	४,१७९
वाउव्वामो उक्कलि	१,८०	सण्णिअपज्जत्तेसु	४,४३	सम्माइट्ठी मिच्छो	४,४८०
वा चट्ठ अट्ठासीदि य	५,२४२	सण्णिअसण्णी आहा-	४,३८९	सम्मामिच्छत्तेय	३,३४
विकहा तथा कसाया	१,१५	सण्णिम्मि सण्णिदुविहो	४,२०	सम्मामिच्छाइट्ठी	४,३७४
				सम्मामिच्छे जाणसु	५,३८२

सम्मामिच्छे जाणे	५,३७५	साइ अणाइ धुव अद्धुवो	४,४४३	सुण्ण जुयट्टारसय	५,३५४
सम्मामिच्छे भगा	५,३६७	साइ अणाइ य धुव अद्धुवो	४,२३५	सुभमसुभसुहयसुस्सर-	५,१७८
सयलससिसोमवयण	४,१	साइ अबघा बधइ	४,२३३	सुर-णारएसु चत्तारि	४,५७
सरजुयलमपज्जत्त	५,४९६	साईयर वेदतिय	२,११	सुर-णिरएसुं पच्च य	५,२६०
सव्वट्ठिदीणमुक्कस्साओ	४,४२५	सादि अणादि य अट्टु य	४,४४१	सुस्सरजसजुयलेक्कं	४,२८८
सव्वाओ वि ठिदीओ	४,४२४	सादि अणादि य धुव अद्धुवो		सुस्सरजसजुयलेक्क	५,८०
सव्वासि पयडीण	४,३०५		४,२३५	सुह-दुक्ख वहुसस्स	१,१०९
सव्वुक्कस्सठिदीण	४,४२६	सादियर वेया विय	४,२३५	सुहपयडीण विसोही	४,४५१
सव्वुवरि वेदणीए	४,४९७	सादेदर दो आऊ	४,५०९	सुहपयडीण भावा	४,४८७
सव्वे बघाहारे	५,४७०	सामण्णणिरयपयडी	४,३३०	सुहसुस्सरजुयलाविय	३,४३
सव्वे वि बघठाणा	५,२७८	सामाइय-छेदेसु	४,९३	सुहुम अपज्जत्ताण	५,२७१
सव्वे वि य मिलिएसु	५,२६३	सामाइय-छेदेसु	४,६४	सुहुमणिगोयअपज्जत्त-	४,५०३
सव्वेसि तिरियाण	५,१५५	सामाइय-छेदेसु	५,४४७	सुहुमतट्ठ वि कम्मा	३,५
सव्वेसि पयडीण	३,१३	सामाइयाइछस्सु	४,१६	सुहुमम्मि सुहुमलोह	४,२०३
सखेज्ज-असखेज्जा	१,१५५	साय चउपच्चइओ	४,४८८	सुहुमम्मि होति ठाणे	५,३९८
सखेज्जदिमे सेसे	४,३२१	साय तिण्णेवाउग-	४,४५३	सेढिअसखेज्जदिमे	४,५१६
सगहियसयलसजम-	१,१२६	सायतो जोयतो	४,३२४	सेलसमो अट्टिसमो	१,११३
सजलण-णोकसाया	४,८८	सायासाय दोण्णिवि	४,४८१	सेलेसि सपत्तो	१,३०
सजलण-तिवेदाणं	४,२०१	सासणमिस्सेऽपुव्वे	५,३१७	सेसअपज्जत्ताण	५,२७२
सजलणलोहमेय	३,३९	सासणसम्माइट्ठी	४,३६५	सेस उगुदालीसं	३,४८
संजलण एयदर	४,१९७	सासणसम्माइट्ठी	४,३७७	सेसाण चउगइया	४,४३२
सजलण य एयदर	४,१९८	सासणसम्माइट्ठी	४,३३५	सेसाण चउगइया	४,४६६
सजलण य एयदर	४,१९९	सासणसम्मा देवा	४,३५०	सेसाण पयडीण	४,४४०
सजलणा वेदगुणा	५,३२४		३५४	सेसेसु अबधम्मि य	५,५०
संठाण पच्चेव य	४,४५७	सासणसम्मे सत्त अ	४,१९	सो मे तिहुअणमहिओ	३, ६६
सटाण सघयण	३,७७	साहारण पत्तेय	४,२८५	सोलस जीवसमासा	१,४०
सठाण सघयण	४,४०६	साहारण पत्तेय	५,७७	सोलस मिच्छतता	४,३०७
सठाण सघयण	४,४८२	साहारणमाहार	१,८२	सोलह अट्टेक्केक्कं	३,५२
सत्तट्ठाणाणि पुणो	५,४२०	साहारण-विर्याल्लिदिय	४,३४२		[ह]
सतर णिरतरो वा	३,६८	साहारण सुहुम चिय	३,५६	हस्स रइ भय दुगुछा	३,७०
सत्तस्स पयडिठाणा	५,३४	सिक्खाकिरिउवएसा-	१,१७३	हास रइ पुरिस वेय	४,४०३
सताइल्ला चउरो	५,४५०	सिद्धत्तणस्स जोगा	१,१५४	हास रइ भय दुगुछा	४,४७०
सतादिल्ला चउरो	५,४३९	सिद्धपदेहि महत्थ	५,२	हुंडमसपत्त पि य	४,२९१
सता चउरो पढमा	५,४५७	सिलभेय-पुढविभेया	१,११२	हुंडमसपत्त पि य	५,८३
सता णउदाइचट्टु	५,४६०	सुक्काए सव्वे वि य	४,३७	हुड पत्तेय पि व	५,१०२
सपुण्ण तु समग्ग	१,१२६	सुणह इह जीवगुणसण्णि-	४,३	होति अणियट्ठिणो ते	१,२१

संस्कृतटीकोद्धृत-पद्यानुक्रमणी

[अ]

अटुविहमणु दीरतो-	४,२९
अणसजोजिद मिच्छे मुहुत्त-अतो	४,१३
अणसजोजिद सम्म मिच्छ-	५,५
अणसजोजिद सम्मे मिच्छ-	४,१२
अग्रैकत्रिशक्त स्थान-	५,२०
अनुभाग प्रति प्रोक्ता-	४,२७
अनुलोम-विलोमाभ्या	४,१०
असौ न म्रियते यस्मात्	४,१९
असख्यातगुणान्यस्माद्रसस्थानानि-	४,५५

असम्प्राप्तमनादेयमयशो-	५,७
अविभागपरिच्छेदा	४,५६

[आ]

आद्ये सहनने क्षिप्ते	५,१४
आवाधोर्ध्वस्थितावस्था-	४,३५
आवाधोनाऽस्ति मप्ताना	४,३४

[उ]

उदये विंशति नैक-	५,११
उदित विद्यमानञ्च	५,२५
उवसम-खड्ग-सम्म	५,३

[ए]

एक-द्वि-त्रि-चतु -पञ्च पद	४,९
---------------------------	-----

[क]

कम्मसत्त्वेणागयदब्ब	४,३२
कर्मप्रवादाम्बुधिविन्दुकल्प	
चतुर्विधो-	५,५७
कालमावलिकामात्र	४,१४
कालक्षेत्र-भव	४,४८
कपायाणा द्वितीयानामुदये	४,४०

[ग]

गुणस्थानविशेषेषु	४,६०
घोरससारस्वाराशित-	४,३०
चरिम-अपुण्णभवत्यो-	४,४७

[छ]

छद्मो ति पढमसण्णा	४,५
जघन्यो नाधरो यस्माद-	४,५२

[त]

ततोऽपख्यगुणानि स्युः	४,५४
तदुच्छ्वासयुत स्थानमेको-	
नत्रिशत-	५,१७
तिण्णेगे एगेगदो मिस्से-	५,४
तित्थाहारा जुगव सव्व	५,२१
तिर्यक्ष्वौदारिके मिश्रे-	५,२४
त्रिभिर्द्वाम्या तथैकेन-	४,२५
त्रयस्त्रिंशज्जिनैर्लक्षा -	४,३१
त्रैशत पूर्णभापस्य-	५,१८

[द]

देवार्युनारकायुर्वध्नोत -	५,२४
---------------------------	------

[न]

न दुर्भगमनादेय दु स्वर	४,२९
नृगति कामण पूर्ण-	५,१२
नृगति पूर्णमादेय पञ्चाक्ष-	५,९

[प]

पज्जत्ती पाणा विय सुगमा	४,४
परघात इव गत्यन्यतराभ्या-	
	५,१६

परत परत स्तोक -	४,३६
पर भवति तिर्यक्षु	५,२२
पाको नावलिका-	४,१८
पुद्गला ये प्रगृह्यन्ते,	४,४६
पूर्वकेन पर राशि गुण-	
यित्वा-	४,११

प्रकृति परिणाम -	४,४९
प्रकृतिस्तिकता निम्बे	४,५१
पृथक्तीर्थकृता योगे-	५,१९

[च]

वन्धकालो जघन्योऽपि	३,२
वन्धयोग्यगुणस्थाने	३,१
वन्धस्य हेतवो येऽमी-	४,२६
वन्धविचार बहुविधिभेद	४,५९
वन्धे कत्युदये सत्त्वे सन्ति	५,१
वायर-सुहुमेगिदिय वि ति	४,२

[भ]

भागोऽपख्यातिम -	४,५३
भोगामुमा देवायु-	५,३

[म]

मर्त्यायुरेव नान्यानि	५,२७
मिच्छे चोद्दस जीवा सासण	४,३
मिच्छे सासणसम्मो	४,७
मिथ्यात्व १ मिन्द्रिय १	

काय -	४,१६
मिथ्यात्व विशतिर्वन्धे	४,३७
मिथ्यात्वस्योदये यान्ति	४,३९

[य]

यतो वध्नाति सद्दृष्टिर्नर-	५,२६
यावत्कालमुदीर्यन्ते-	४,३३
ये सन्ति यस्मिन्नुपयोग-	

योगा	४,१
योगिन्यौदारिको दण्डे	४,८
योगे वैक्रियिके मिश्रे-	४,२३
मोगैर्द्वादशभिस्तस्मान्मिश्र-	४,२१

[व]

विग्गहगइमावण्णा	४,९
वेद्यार्युनामगोत्राणा	४,३८

[ष]

षड्विंशति शतान्युक्त्वा-	५,१०
षष्टि पञ्चाधिका वन्ध	४,४२
षाड्विंशतमिद स्थान	५,१५

[स]

सत्रयोदशयोगस्य	४,१७
सप्तैवावलिकाशेषे-	४,२८
सम्यक्त्वतो न मिथ्यात्व	४,१५
सम्यक्त्व कारण पूर्व-	४,४३
सयलरसरूपगर्धेहि-	४,४५
सयोगेन योगत सातं	४,४१
सहस्रा पञ्चभङ्गानामष्ट-	५,८
सासादनो यत्तो जातु	४,२०
सुभग बादरादेये निमित्त-	५,१३
सुरणिरया णरतिरिय	५,२६
सस्थाप्य सासन द्वेधा-	४,२२
स्थानाना त्रिविकल्पाना-	५,२३
स्वभाव प्रकृतिर्ज्ञेया-	४,५०
स्वहेतुजनितोऽप्यर्थ -	४,६
स्वामित्वभागभागाभ्या	४,४४

प्राकृतवृत्ति-गत-पद्यानुक्रमणी

[अ]		अदिभोमदसणेण	५७४	आवरणदेसघादंतराय	६२३
अक्खरणत्तिमभागो	५५४	अदिसयमादसमुत्थ	५४३	आरणमताराय	६१२
अगुरुगलहुगचउक्क	५६३	अधो गौरवधर्माणः	५५४	आवरणमतराइय	६१४
अगुरुगलहुगुवघादा	५९९	अण्पपरोभयवाधा	५७९	आवरणमतराए	५६४
अगुरुयलहुगुवघाया	६२४	अण्पपवृत्तिसच्चिद	५७७	आहरदि अणेण मुणी	५७८
अगुरुगलहुगुवघाद	५६५	अप्रतिबुद्धे श्रोतरि	५८५	आहरदि सरीराण	५८३
अज्जसकिर्त्तीय तहा	५६१	अरहत्तसिद्धचेदिय	५९४	आहारमप्यमत्तो	६२१
अज्जो जन्तुरनीशोऽय-	५४७	अरहतादिसु भत्तो	५९५	आहारदसणेण य	५७४
अट्ठण्हमणुक्कस्सो	६१८	अल्पाक्षरमसदिग्ध	५८५	आहारसरीरिदिय	५७३
अट्ठत्तीस सहस्सा	६५४	अवग्गदणिवारणत्थ	५४१	आहार तित्थयर	६१७
अट्ठ य सत्त य छक्क य	६३४	अवधीयदि त्ति ओही	५७९	[इ]	
अट्ठविधकम्मवियला	५७३	अवसेसा पगडीओ	६२३	इक्क य छक्केयार	६३६
अट्ठविहमणुदीरितो	४९७	अविभागपल्लिदच्छेदो	६२९	इक्क य छक्केयार	६५०
अट्ठविह-सत्त-छवघगा	५९६	अविरद-अता दसयु	६०५	इक्कावण्णसहस्सा	६५३
अट्ठविह सत्त सो [छ]	६३१	असिदिसद किरियाण	५४५	इक्क च दो य चत्तारि	६३३
अट्ठविह वेदता	५९७	अस्सण्णिय-सण्णीण	५७४	इगि तिण्णि पन्न पंच य	६०१
अट्ठसु एगवियप्पो	६३२	अहमिदा विय देवा	५७६	इगि दुग दुग च तिय चट्ठ	६०४
अट्ठसु पचसु एगे	६४५	अहिमुहणियमिदवोधण	५७९	इगि विगलिदिय सयले	६५६
अट्ठारह पयडीण	६१५	अहसुचरियसयलजय	६६२	इगिवीस चउवीस	६३७
अट्ठावीस णिरए	६०१	[आ]		इगिवीस चउवीस	६३८
अट्ठेयारस तेरस	६३७	आई मगल करण	५५१	इगिवीस पणुवीस	६४१
अट्ठेव सदसहस्स-	५८९	आउगभागो थोवो	६२४	इच्चेवमादिया जे	५८२
अड छवीस सोलस	६४७	आउगस्स पदेसस्स	६२५	इत्थि-णउसयवेय	५६५
अडदालीस मुहुत्ता	५८३	आऊणि भवविवागी	६२४	इदरेदरपरिमाण	५७२
अण एइदियजादी	५६१	आणादिज्ज णिमिण	५६३	इयकम्मपगडिट्ठाणाणि	६५७
अणमिच्छमिस्स सम्म	५६०	आदाउज्जो उदओ	६३८	इयकम्मपगडिपगद	६६२
अणमिच्छमिस्स सम्मं	५६६	आदाउज्जोवाणमणुदय	६३८	इयकम्मपयडिपयद	६३०
अणियट्ठिवादरे थीणगिद्धित्तिग	६६०	आदाउज्जोवाण	६२०	इय वदिऊण सिद्धे	५४१
अणुवद-महव्वदेहि य	५९५	आदाव सोघम्मो	६२२	इरियावहमाउत्ता	५९७
अण्णदरवेदणीय	६६१	आदिमज्झवसाणे	६३०	इह जाहि वाधिदा विय	५७४
अण्णदरवेदणीय	५६२	आदी मज्झवसाणे	५४३	इगाल जाल अच्ची	५७७
अण्णदरवेदणीय	५६२	आदी विय सघडणं	५६२	इदियमणोधिणा वा	५८४
अण्णदरवेदणीय	५६२	आदी विय सघडण	५६५	[उ]	
अण्णदरवेदणीय	५६३	आभीयमासुरक्खा	५७९	उवओगा जोयविही	५८७
अण्णाणत्तिग च तहा	५७६	आयार सुद्ध्यड	५४४	उक्कस्सजोगी सण्णी	६२७
अथिरासुह तहेव य	५६५	आलस्योद्योतिरात्मा भो	५४७	उक्कस्समणुक्कस्सो	६१५

उक्कस्समणुक्कस्सो	६१६
उक्कुट्ठि (उगुसट्ठि)	
मप्पमत्तो	६५८
उच्चारिदम्हि दु पदे	५४१
उज्जुवमणुज्जुग पिअ	५८०
उज्जोवमप्पसत्थ	५६१
उज्जोवरहियविगले	६३९
उज्जोवरहियसयले	६४०
उत्तरपयडोसु तहा	५९८
उदधिसहस्सस्स तहा	६१५
उदयस्सुदीरणस्स य	५६२
उदयस्सुदीरणस्स य	६५७
उदीरेइ णामगोदे	५९७
उम्मगदेसओ मगा-	५९४
उवजोगा जोगविही	५८६
उवयरणदसणेण	५७४
उवरदवधे चटुपच	६३२
उवरिल्लपञ्चया पुण	५९०
उवघाद परघाद	५६४
उवममखइय च तहा	५७६
उवमतखीणमोहे	५६१
उवसत-खीणमोहो	५७०
उवमते खीणम्मि य	६४६
उवसते खीणे वा	५८०
[ण]	
एइदिएसु चत्तारि	५८६
एइदिय थावरयं	६२२
एओ चेव महप्पो	५४४
एकैकस्योपसर्गस्य	५४२
एको देव सर्वभूतेषु गूढ	५४७
एवकारसेसु तिय तिय	५८७
एवकेवकम्मि य वत्थू	५५०
एवक च दोणि चउवघगेसु	६३६
एवक च दोव तिणि य	६००
एगुत्तर असिदीओ	५६३
एगेगमट्ट एगेगमट्ट	६५५
एगेग इगितीसे	६४३
एत्तो हणदि कसायट्ट य	६६०
एदे खलु चोत्तीसा	५६५
एदे णवाहियारा	५६५

एदे पुव्वुद्धिहा	५७४
एदेसि पुव्वाण	५५०
एद कम्मविघाण	५६६
एयक्खेत्तपगाढ	६२४
एय णवुसयवेय	५६३
एयारसगमूलो	५४४
एयतवुद्धदरिसी	५९०
एय सुहुमसरागो	६४८
एव कदे मएपुण	५८३
एव विउला बुद्धी	५८२
एव सुहुमसरागो	५७३
एसो दु वघसामित्तो	६५८
एसो वघसमासो	६३०
[ओ]	
ओरालिय तम्मिस्स	५७५
ओसा यहि मिग	५७७
[अं]	
अडज पोदज जरजा	५७७
अतयडदस अणुत्तरो	५४४
अतोमुहुत्तमज्झ	५७८
[क]	
क. कण्टकाना प्रकरोति	५४७
कदि वघतो वेददि	६३१
कघ चरे कघ चिट्ठे	५४४
कम्मेव य कम्ममवं	५७८
काऊ काऊ य तहा	५८१
कारिसतणिट्टमगी	५७९
काल सृजति भूतानि	५४७
काले चटुण्ह बुद्धी	५५४
काले विणए उवघाणे	५७५
किण्हा भवरसवण्णा	५८१
किमिराग चक्कमल	५७९
किं वघोदयपुव्व	५६३
कीडति जदो णिच्च	५७६
कुथु पिपोलगमक्कुण	५७७
केवलणाणावरण	६२२
केवलणाणी लोग	५७३
केवलण सागारो	५८४
कोटकोटी दशा एषा	६१२
कोसुभो जह रागो	५७३

[ख]	
खयउवसम विसोही	५५६
खवणाए पट्टवगो	५८३
खीणकसाय दुचरमे	६६१
खीणकसाय दुचरिमे	५६३
खुल्लग वरडग अक्खग	५७७
[ग]	
गइ इदिएसु काए	५७५
गदिआदिएसु एवं	६०६
गदिकम्म विणिव्वत्ता	५७६
गुणजीवा पज्जत्ती	५७०
गुणट्ठाणएसु अट्टसु	६४८
गोदेसु सत्त भगा	६३३
[घ]	
घादीण अजहण्णो	६१८
घादीण छट्टमत्था	५९६
घोलणजोगिमसण्णी	६२८
[च]	
चउतीस चउवण	५६४
चउदस सरागचरमे	६२१
चउपच्चइओ वघो	५९०
चक्खु अचक्खू ओघी	५७६
चक्खु विहीणे ते इदियाण	५७४
चक्खु घाण जिब्भा	५७४
चक्खूणं ज पस्सदि	५८०
चत्तारि आदि णववघ	६३५
चत्तारि पगडिट्ठाणाणि	५९९
चत्तारि वि छेत्ताइ	५८२
चटुगदियमग्गणा विय	५५४
चागी भद्दो चोक्खो	५८१
चारणवसो तह पंचमो	५४७
चढो ण मुयदि वेद	५८१
[छ]	
छउमत्थयाय रइय	६१२
छक्कावक्कमजुत्तो	५४४
छणव छत्तिय सत्त य	६५५
छण्हमसणिट्ठिदीण	६१७
छण्ह पि अणुक्कस्सो	६२५
छदब्बणवपदत्थे	५७०

छप्पचणवविधान	५८२
छप्पचमुदीरितो	५९७
छसु ठ्ठाणएसु सत्तट्ठ	५९६
छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु	५८२
कृस्संठाण च तहा	५६४
छाएदि सय दोसेण	५७८
छादालसेसमिस्सो	६५८
छेत्तूण य परिमाय	५८०

[ज]

जणवय समद ठवणा	५४९
जदं चरे जद चिट्ठे	५४४
जलरेणुभूमिपव्वद	५५६
जह कचणगिणेया	५७७
जह खोत्तुवंतु उदय	५७३
जह गेरुवेण कुड्डो	५८१
जह जिणवरेहिं कहिय	६११
जह पुण्णापुण्णाड	५७३
जह भारवहो पुरिसो	५७७
जह लोहं धम्मत्त	५७२
जह लोह धम्मत्त	५७३
जाणदि अणेण जीवो	५७९
जाणदि कज्जाकज्ज	५८१
जाणदि पस्सदि भुजदि	५७६
जादिजराजरामया	५७६
जाहिं य जासु व जीवा	५७४
जित्तमदहपट्ठेपा	५८५
जिन्मा फासं वयण	५७४
जीवे चउदसभेदे	५८०
जीवो कत्ता य वत्ता य	५४९
जेम णियमेसु य पच्चि-	५८०
जेमि ण सत्ति जोगा	५७८
जेहिं अणेगा जीवा	५७३
जेहिं दुलक्खिज्जते	५७०
जो इत्थ अपरिपुण्णो	६६२
जोगा पयडि पदेसा	६२८
जोगोवओगलेसाड	६५१
जो णेव मच्चमोसो	५७८
ज सामण्ण गहणं	५८०
ज्ञान प्रमाणमित्याहु	५४२

[ण]

णउई चैव सहस्सा	६५१
णमिऊण अणतजिणे	५६०
णमिऊण जिणवरिदे	५६५
ण य इ दिएमु विरदो	५७२
ण य कृणदि पक्खवाद	५८१
ण य जे भव्वाभव्वा	५८२
ण य पत्तियदि पर सो	५८१
ण य मिक्खत्त पत्तो	५८३
ण य सच्चमोमजुत्तो	५७८
ण रमति जदो णिच्च	५७६
णलया वाहू य तहा	५५७
णव पचाणउदिसदा	६३६
णव पंचोदयसता	६४२
णवमो इक्खाउगाण	५४८
णवसु चट्ठके इक्के	५८७
णवि इदियकरणजुदा	५७७
णाणस्स दसणस्स य	५५१
णाणस्स दसणस्स य	५६०
णाणस्स दसणस्म य	५९८
णाणतराय तिविहमवि	६४६
णाणतराय दसयं	६१५
णाणंतरायदसय	६५८
णाणतराय दसय	६६१
णाणतरायदसय	६६४
णाणतरायदसय	५६५
णाणतरायदसय	५९९
णाणावरणचउक्कं	६२३
णाणोदविणिस्सदं	५८५
णिकखेवे एयट्ठे	५८४
णिद्दा पयला य तहा	५६१
णिद्दा पयला य तहा	५६२
णिदा वचणवहुलो	५८१
णिमिणेण सह सगवीसा	५६४
णिमिण तित्थयरेण	५६४
णिम्मूल खवदेसे	५८२
णिरयगई तिरियगई	५७५
णिरय-तिरियाणुपुव्वी	५६४
णिरयायुग देवाउग	६१३

णिरयाऊ तिरियाऊ	५६४
णिरयाऊ देवाऊ	५६४
णे वित्थो णेव पुमा	५७९

[त]

तच्चाणुपुव्विसहिदा	६६१
ततो वर्षगते पूर्णे	६१२
तदियकसायचउक्क	५६१
तदियकसायचउक्क	५६२
तसचउ पसत्थमेव य	५६१
तसजीवेसु य विरदो	५८०
तस थावर सुहुमाविय	५६५
तस थावरादिजुगल	६१५
तस वादरपज्जत्त	५६४
तस वादरपज्जत्त	५६५
तह चैव अट्ठपगडी	५६२
तह णोकसायछक्कं	५६२
तह पउमणादिमुणिणा	६११
तासियमसंखेज्जगुणा	६२९
तिणिण दस अट्ठठाणाणि	६००
तिणिण य अगोवग	५६३
तिणिण य सत्त य चट्ठुग	६१४
तिण्णेव दु वावीसे	६३७
तिण्ह खलु पढमाण	६१२
तिण्हं दोण्ह दोण्ह	५८२
तित्थयर देव-णिरयाउगं	६५९
तित्थयरमेव तीस	५६१
तित्थयराहाररहिया	६४१
तित्थयराहारविरहियाओ	६५८
ति-दु-डगि-णउदी अट्ठा	६४२
[ति-दु-डगि-णउदी णउदी]	६३७
तिय छक्क पंचचट्ठुग	६०४
तिय दुणिण इक्कक्काआ	६५६
तिय दोणिण छक्कक्क	६०१
तिरियगई चउदस	५८६
तिरियगई मणुयदोणिण	६१४
तिरियंति कुडिलभाव	५७६
तिव्वकसायवहुमोह-	५९०
तिवियप्पगट्ठिणाणि	६४३
तिसद वदति केई	

तिसु तेरेगे दस णव	५९०	दैवमेव पर मन्ये	५४७	पुरिसस्स अट्ठ वस्स	६१४
तीसण्हमणुक्कस्सो	६२५	दो छक्कटु चउक्क	६५६	पुरिस कोहे कोह माणे	६६०
तीस वारस उदय	५६२	दो तीस चत्तारि य	६०५	पुरिस चटु सजलण	५६१
तेऊ तेऊ य तहा	५८१	दसणपण णिरयाजग	५६४	पुरुगुण भोगे सेदे	५७८
तेण असखेज्जगुणा	६२९	दसण मोहक्खवणे	५८३	पुरुमह मुदाराल	५७८
तेरस कोडी देसे	५८९	दसणमोहस्सुदए	५८२	पुव्वुत्त चटुरमज्जे	५७४
तेरस चेव सहस्सा	६५१	दसणमोहस्सुवसमगो	५८३	पुव्वुत्त सत्तमज्जे	५७४
तेरस णव चटु पणय	६३८	दसण वद सामाइय	५८०	पच णव दुण्णि अट्ठा	५५१
तेरस बहुप्पदेसो	६२६	दसा मसगा मक्खिग	५७७	पच णव दुण्णि अट्ठा	५६०
तेरे णव चटु पणय	६४३			पच य छ त्तिय छप्पच	६२४
तेरेसु जीवसखेवएसु	६४३	[प]		पचय विदियावरण	६१४
तेवीस पणुवीस	६०१	पउमापउमसवण्णा	५८१	पचरस-पचवण्णेहिं	६२४
तेवीस पणुवीस	६३७	पडपडिहारसि मज्जा	५५१	पच विइदियपाणा	५७३
त चेव सुप्पसण्ण	५७३	पडिणीय अतराए	५९३	पचविह-चउविहेसु व	६३७
		पढम कसाय चउक्क	६५९	पच सुरणिरयसम्मो	६२०
[थ]		पढम कसाय चउक्क	६६०	पच्चिदिय तिरियाण	६४०
थावर सुहुम च तहा	५६१	पढमुदओ वुच्चिज्जइ	५६३	पच्चिदिय च वयण	५७३
थावर सुहुम च तहा	५६५	पढमो अवघगाण	५४८	पचेव उदयठाणाणि	६३८
थीणत्तिग इत्थी विय	५६१	पढमो अरहताण	५४८	पचेव य तेणउदो	५८९
थीणत्तिग चेव तहा	५६२	पढमो दसण घादी	५५६	प्रदीपेनार्चयेदक-	५४३
थूले जीवे वघकरण	५७२	पढम भव्व च तहा	५७६	प्रमाणनयनिकोपे	५४१
		पणग दुग पणग पणग	६४५		
[द]		पण णव इगि सत्तरस	५६०	[फ]	
दए अट्ठारह दसय	५९१	पण णव इगिसत्तरस	५६६	फास काय च तहा	५७४
दस चउदस अट्ठट्ठा	५५०	पण वण्णा इर वण्णा	५९०	फास जिम्मा घाण	५७४
दस णव पण्णरसाई	६३७	पणिदरस मोयणेण	५७४		
दस वावीसे णव	६३४	पणुवीस उगुतीस	६०१	[ब]	
दस पिधसच्चे वयणे	५७८	पणहरसण्हिदीण	६१६	बहुविह-बहुप्पयारा	५८०
दस सण्णीण पाणा	५७३	पदणामेण य भणिजिदो	५५४	बादर जसकित्ती विय	५६२
दहि गुलमिव वामिस्स	५७२	पयडीए तणुकसाओ	५९५	बादर जसकित्ती विय	५६३
दुगतीस चटुरपुव्वे	५६०	पयडो बघण मुक्क	५५१	बादर सुहुमेगिंदिय	५७३
दुगतीस चटुरपुव्वे	५६६	परमाणु आदि गाह	५८०	बादर पि पसत्था	६१९
दुण्ह पच य छच्चेव	५९०	परिहरदि जो विसुद्धो	५८०	बारस मुहुत्त सार्द	६१४
दुरघिगम-णिजण-परमट्ठ	६६२	पल्लो सायर सूई	५५४	बाहिद पाणेहिं जहा	५७३
देवगइ सहगदाओ	६६१	पाणव्वहादिसु रदो	५९५	बुद्धी सुहाणुवधी	५८२
देवदुगपण सरीर	५६३	पाहुड पाहुडणाणो	५५४	बघविहाण समासो	६३०
देवाजगमपमत्तो	६२०	पुढवीय आऊ य तहा	५७५	बघस्स य सतस्स य	६३२
देवाजग पमत्तो	६१६	पुढवी जल च छाया	५७०	बघ उदय उदीरण	५८६
देवाऊ देवचऊ	५६४	पुढवी य बालुगा	५७७	बघति य वेदति य	५९८
देवासुरिदमहिद	५६३	पुरिस इत्थी णउसय	५७५	बघोदयकम्मसा	६३२
देवे अणणभावो	५८२			ब्रह्मात्पर नापरमस्ति	५४७

[भ]		मगल निमित्त हेतु	५५१	वीसदि पाहुड वत्थू	५५४
भविष्या सिद्धी जेसि	५८२	मद्रो बुद्धिविहीणो	५८१	वेइंदिय तेइदिय	५७७
भाय चिय अणियट्ठी	५६३	[य]		वे चैव सहस्साणि य	५४५
भूदाणकपवदजोग	५९४	यत्किञ्चिद्वाङ्मय लोके	५४१	वेदणियाउग मोहे	५९७
[म]		योजन विस्तर पल्य	६१२	वेदणियाउग वज्जिय	५९६
मणपज्जवपरिहारो	५८३	[र]		वदित्ता जिणचद	६३१
मण वयणकायपको	५९५	रुसदि णिंददि अण्णे	५८१	वसीमूल मेहस्स	५७९
मणसा वचिया काएण	५७७	[ल]		[स]	
मणुआणुपुव्विसहिदा	५६४	लिंपदि अण्णीकीरदि	५८१	मकलमसहायमेक	५५५
मणुय-तिरियाणुपुव्वी	५६२	लेसपरिणाममुक्का	५८२	सच्चासच्च च तहा	५७५
मणुय-तिरियाणुपुव्वी	५६४	लोगागासपदेसे	५७०	सण्णि-असण्णी जीवा	५७६
मणुय-तिरियाणुपुव्वी	५६५	लोभं अणुवेदतो	५८०	सत्तट्ठवध अट्ठोदयस	६३१
मणुयदुग इत्थिवेद	६१२	[व]		सत्तट्ठ णव य पण्णरस	६५९
मणुसगइ पंचिंदियजादि	६६१	वण्ण रस गध फासा	६१५	सत्तत्तरि चैव सदा	६५३
मणुसगइ सहगदाओ	६६१	वण्णादीहिय भेदा	५७७	सत्तरस सुहुमसरागे	६२६
मणुसगइ संजुदाणं	६४१	वत्थुणिमित्तो भावो	५८३	सत्ता जतू य माणीय	५४९
मण्णत्ति जदो णिच्च	५७६	वत्थूवसाहपवरो	५४४	सत्तादि दस दु मिच्छे	६४८
मदिअण्णाण च तहा	५७५	वयणेण वि हेट्ठण वि	५८२	सत्तादी अट्ठंता	५८९
मदि-सुद-ओधि-मणेहिय	५८४	वादाल तेरसुत्तर	६४६	सत्तावीसेगार	५६३
मदिसुदओही य तहा	५७६	वादुब्भामो उक्कलि	५७७	सत्तावीसं सुहुमे	६६०
मरण पत्थेदि रणे	५८१	वारस पण सट्ठाई	६५०	सत्तेव अपज्जत्ता	६४५
माया चमरि गोमुत्ति	५५७	वारस य वेदणीए	६१३	सत्य पिशाचात्र वने वसामो	५४७
मिच्छ णवुसय वेय	५६०	वारस विह पुराण	५४८	सद्दहणासद्दहण	५८३
मिच्छत्त आदाव	५६१	वावट्ठि वेदणीए	६४४	मव्भावो सच्चमणो	५७८
मिच्छत्त पण्णारस	५६४	वावण चैव सदा	६५४	समचउर वेउव्विय	५६१
मिच्छत्तं वेदतो	५७२	वावत्तरि दुचरिमे	५६०	सम्मत्तगुणणिमित्त	६०४
मिच्छादिट्ठिप्पहुदी	५९६	वावत्तरि दुचरिमे	५६६	सम्मत्तरयण पव्वद	५७२
मिच्छादिट्ठी जीवो	५८३	वावीसमेक्कवीस	६००	सम्मत्त सत्तया पुण	५८३
मिच्छादिट्ठी महारभ	५९४	वावीसमेक्कवीसं	६३३	सम्मामिच्छत्तेय	५६१
मिच्छे सोलस पणुवीस	५६०	वावीसा एगूण	६५८	सम्मादिट्ठी मिच्छो	६२२
मिच्छे सोलस पणवीस	५६५	विकहा तह य कसाया	५७२	सयलससिसोमवयण	५८५
मिच्छे सासणमिस्सो	५७०	विगल्लिंदिय सामण्णेणुद	६३९	सल्लेख्य विधिना देह	५४२
[मिच्छो सासणमिस्सो]	५८७	विग्गहगइ मावण्णा	५८३	सव्वट्ठिदीण मुक्कस्सओ	६१६
मिस्सादि णियट्ठीदो	६४६	विदिय कसाय चउक्कं	५६१	सव्वाओ वि ठिदीओ	६१६
मीमंसदि जो पुव्वं	५८३	विदियावरणे णववध	६३२	सव्वासि पगडीण	६०४
मूलगगपोरवीया	५७७	विरदे खओवसमिए	६४८	सव्वुक्कस्सठिदीण	६१६
मूलट्ठिदिमु अजहण्णो	६१५	विवरीय मोधिणाणं	५७९	सव्वुवरि वेदणीए	६२५
मोहस्स सत्तरि खलु	६१२	विविह गुण इट्ठि जुत्तो	५७८	सव्वेवि पुव्वभगा	६०४
मोहस्सु [वेदस्सु] दीरणाए	५७८	विएजंत कूडपजर	५७९	सादिअणादि अट्ठ य	६१८
मंगलनिमित्त हेजं	५४१				

सादि अणादि य ध्रुव	५९८	सुर-गारणसु चत्तारि	५८८	मो मे तिहुवणमहिदो	५६३
सादि अणदि ध्रुवअध्रुवो	६१८	सुह-डुक्ख बहुसस्म	५७९	सोलस अट्टेक्केक्क	५६०
सादि अणादि ध्रुव	५९८	सुहपयडीण विलोही	६१९	सोलस अट्टेक्केक्क	५६५
साद चटुपच्चङ्ग	६२४	सुहसुस्सर जुयलाविय	५६२	सोलस मिच्छत्तत्ता	६०५
सादता जोगत्ता	६०६	सुहमणिगोदअपज्जत्त	६२६	सोलसय चजवीम	५८९
साधारणसुहम चिय	५६३	सेढिअसखेज्जदिमे	६२८	सखिज्जमसखिज्ज	५८२
सामाइयम्हि दुक्कदे	५८०	सेलसमो अट्टिसमो	५७९	सखेज्जदिमे सेसे	६०५
सामाइय च पढमं	५७६	सेलेसि सपत्तो	५७३	सजलण लोहमेय	५६२
मिक्खाकिरिउवदेसा	५८३	सेसाण चटुगदिया	६१७	सम्पुण्ण तु समग्ग	५८०
मिद्धपदेहि महत्थ	६३१	सेमाण चटुगदिया	६२०	सयोगमेवेह वदन्ति तज्जा	५४७
सिलभेद-पुढविभेदा	५७९	सेम उगुदालीस	५६२	स्वच्छन्ददृष्टिप्रविकल्पितानि	५४६
सुट्ठुवि अवट्टमाणा	५७३	सो [छव्] वावीसेचटु	६३४	स्वित्तस्य वा निपण्णस्य	५४२
सुप्पहहजीवगुणसण्णिदेसु	५८५	सोदूण पाठसद्	५७९		
सुभओगेसु पसगो	५७२	सो मे तिहुवणमहिदो	६३०	[ह]	
सुभगादिजुयल चटुरो	५६५			हस्सरदिपुरिमवेद	५६५

संस्कृत-पञ्चसंग्रहस्थश्लोकानुक्रमः

[अ]					
अकामनिर्जरावाल-	६९३	अपस्वभ्रानुपूर्वीक-	७१५	अष्टाविंशतमेतत्स्या-	७१७
अघातिन्योऽपि घातिन्य-	७०४	अप्रमत्तस्तथैकान्न-	७३६	अष्टाविंशतमेतत्स्या-	७१८
अङ्गोपाङ्गत्रयं चाष्टौ	७३७	अप्रमत्तोऽपि देवायु-	७०३	अष्टाविंशतिरत्रान्यै-	६९८
अङ्गोपाङ्गत्रयं चाष्टौ	६८०	अप्रमत्तो यति पञ्च	७०६	अष्टाविंशतिरत्रान्यै-	७१५
अङ्गोपाङ्गत्रिकं गन्धौ	७०५	अपूर्वकरणा कर्म	६६४	अष्टावुदीरयन्त्येव	६९३
अजघन्यश्चतुर्भेद	७०१	अपूर्वक्षपके तीर्थ-	७०१	अष्टाशीतिर्मता सत्त्वे	७२१
अणिमादिभिरष्टाभि-	६६६	अपूर्वादित्रये शान्ते	७३३	अष्टाशीति सतीत्वेक	७२२
अतः प्रभृति वन्धस्य	७३६	अपूर्वादिकत्रिंश-	७२३	अष्टोत्कृष्टादयः शस्ता-	७०२
अत्र द्वभ्रद्वयं हुण्ड	७१३	अवघ्नत्युदितं सत्स्या-	७१०	अष्टौ सप्ताथ पट्वघ्नन्	६९३
अत्रैकविंशतं श्वभ्र-	७१५	अवघ्नत्युदितं सत्स्या-	७२७	अष्टौ स्पर्शा रसा पञ्च	६६९
अत्रैव कतिचिच्छ्लोकान्	६८२	अवघ्नाद्वघ्नतः सादि-	६९४	असन्नभोगतिस्तेज	६६६
अनन्ता सन्ति जीवा ये	६६६	अवघ्नामिश्रसम्यक्त्वे	६७५	असन्नभोगतिस्तेज	७१३
अनादेयायशः स्थूल	७१४	अवघ्ना मिश्रसम्यक्त्वे	७३८	असम्प्राप्तमनादेय	७००
अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे	७३०	अभिवन्द्य जिन वीर	७३८	असख्याताशमावल्याः	७०६
अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे	७३१	अयशः कीर्त्यनादेय-	७१७	असंज्ञिनि च पर्याप्ते	६८३
अनिवृत्तौ तु या सूक्ष्मेऽ-	७३०	अयशः कीर्त्यनादेय-	७१८	असात विक्रियद्वन्द्वं	७०६
अनुत्कृष्टं प्रदेशाल्य	७०६	अयशः पट्प्रमत्ताख्ये	६७७	असातेन युत चाद्य	७०१
अनुत्कृष्टाश्चतुर्धासा	७०६	अयशः पट्प्रमत्ताख्ये	६९९	अस्ति सत्यवचो योगो	६६६
अनुगोऽननुगामी च	६६८	अयशोऽगुरुलघ्वादि-	६८०	अहमिन्द्रा यथा मन्य-	६६६
अनुद्योतोदयस्यादो	७१६	अल्पश्रुतेन सक्षेपा-	७०७	अहोऽस्त्यात्तशरीराद्य-	७१५
अनुद्योतोदयेऽस्तीदं	७१७	अल्प वद्ध्वा भुजाकारे	६९४	अक्षेणैकेन यद्वेत्ति	६६६
अनुद्योतोदये स्थाना-	७१७	अवग्रहादिभिर्नार्थि-	६६६	अज्ञानत्रितयेऽप्योघो	७४१
अनुभाग प्रतिप्रोक्ता	६९३	अवश्यायो हिम विन्दु-	६६६	[आ]	
अनुभागाख्यवन्धास्तु	७०२	अवाच्यानामनन्ताशो	६६८	आतपस्थावरैकाक्ष	७०३
अन्त्यग्रवेयकान्तेपु	७३९	अविभागपरिच्छेदाः	७०७	आतपोद्योतपाकोनै-	७१५
अन्तरङ्गोपयोग स्या-	६७२	अशस्तवेदपाकाच्च	६९२	आतपोद्योतयोरेक	६९६
अन्तरायस्य दानादि-	६९३	अष्टकर्मभिद शीतो-	६६४	आतपोद्योतयोरेक	७१३
अपतीर्थकराहारे	७१८	अष्टकर्मभिद शीतो	७३७	आत्मप्रवृत्तिसम्भो-	६६७
अपनीतानुपूर्वीक	७१६	अष्टधा स्पर्शनामापि	६७५	आत्मान बहुश स्तौति	६७१
अपर्याप्तमनुप्याश्च	७३९	अष्टसप्तकपट्काशा	७३१	आद्यकर्मत्रिकस्यान्त-	७००
अपर्याप्तमसंप्राप्तं	६७७	अष्ट-सप्तक-पट्वन्धे-	७०८	आद्यमाद्ये त्रय वन्धे	७१२
अपर्याप्तमसम्प्राप्त	६९९	अष्टस्वमयताद्येषु	७२१	आद्यन्ते मानसे वाची	६८४
अपर्याप्तमसम्प्राप्त	७३८	अष्टात्रिंशत्सहस्राणि	७३१	आद्यन्ते मानसे वाची	६८५
अपर्याप्ता नरागत्या	६६५	अष्टानामस्त्यनुत्कृष्टोऽ-	७०२	आद्ययोर्नव पट् चातोऽ-	७०९
अपर्याप्तेषु कृष्णाद्या	६७०	अष्टाविंशतमस्तीदं	७१९	आद्ययोर्नव पट् चातोऽ-	७२६
		अष्टाविंशतमानाप्ती	७१५	आद्ययोर्निर्वृते चैव	६८३

आद्यलेश्यात्रयोपेता	७४१	आहारोङ्गेन्द्रियेष्वाने	६६५	उद्योता बहव सन्ति	६६९
आद्यान्वतुष्कत पश्चा-	७२०	आहारोत्थापनेऽस्तीद	७१९	उद्योतोदयभागद्वयक्षे	७१७
आद्यान् कपायकाश्चैव	६८६	आहारोदयसयुक्ते	७१९	उदीरकास्तु घातीना	६९३
आद्यावेव विना बन्ध-	७०९	आहारोदार्थयुग्माभ्या	६८४	उदीरयन्ति चत्वार	६९३
आद्यास्तिस्रोऽप्यपर्याप्ते	६७०	आहारोदार्थयुग्माभ्या	६८४	उदीरयन्ति षड्वाष्टौ	६९३
आद्या मम्यवत्त्व-चारित्रे	६६८	[इ]		उदीरिकास्तु घातीना	६७६
आद्येऽनन्तानुबन्धूनोऽ-	७११	इति मोहोदया मिश्रे	७२८	उदेति मिश्रक मिश्रे	६७७
आद्ये शीणि परे चैक	७१२	इत्यप्रतिष्ठिताङ्गा स्यु-	६६६	उन्मार्गदेशको जीव	६९२
आद्ये द्वाविंशतिर्मोहि	७२८	इत्यष्टाविंशतिर्जीव-	६६९	उपघातातपोद्योता	७०५
आद्ये नाहारकद्वन्द्व	६८४	इत्यष्टाविंशतिस्थान-	६९६	उपघाते गृहीताङ्ग-	७१६
आद्ये बन्धश्चतुर्हेतु-	६८३	इत्याष्टाविंशतिस्थान-	७१३	उपघातोऽन्यघातश्च	७३७
आद्ये भेदास्थयोऽप्येको	७३१	इत्याद्ये दश सप्ताद्या	७२८	उपघात युगान्यष्टौ	६८१
आद्ये पट् नव पट् चा-	७३२	इत्याद्ये पञ्च चत्वार	७०९	उपदिष्टं न मिथ्यादृक्	६७२
आद्ये स्यु पञ्चपञ्चाशत्	६८४	इत्याद्ये पञ्च चत्वार	७२७	उपयोगास्तथायोगा	६८२
आद्यौ द्वौ नव बघ्नीतो	६९४	इत्यासा नर-तिर्यञ्च	७०२	उपशान्तास्तु सप्ताष्ट-	७३६
आदिम तु कपायाणा	७३६	इत्युदीर्यत एकान्न-	६७९	[ऋ]	
आदौ प्रिनवतीकृत्वाऽ-	७२२	इत्येता प्रकृतीरेते	७०४	एकत्रिंशच्च निस्तीर्थ-	६९८
आनतादिपु शुबलाऽत-	६७०	इदमात्तस्य शरीरस्य	७२०	एकत्रिंशच्च निस्तीर्थ-	७१५
आनपर्याप्तिपर्याप्त-	७१८	इदमेवानुपूर्व्यून	७१७	एकत्रिंशतमेतत्स्या-	७१८
आनापर्याप्तिपर्याप्त-	७१९	इदमेवानुपूर्व्यून	७१८	एकत्रिंशत्तथा त्रिंश-	७२५
आनुपूर्व्याविशैकाक्ष	७००	इन्द्रियैर्मनसा चार्थ-	६६८	एकत्रिंशत्तथा त्रिंश-	७३३
आवाधोना स्थिति कर्म-	७००	इयमाद्ये द्वितीये तु	६९४	एकत्रिंशदतस्त्रिंश-	७१४
आम्यो विहाय कोपादीन्	७४२	इयमाद्ये द्वितीये तु	७१०	एकत्रिंशदतस्त्रिंश-	६९७
आयान्ति नोदय यावत्-	७००	[उ]		एकत्रिंशद्भवेत्त्रिंश-	६९८
आयुञ्चतुष्टयाऽऽहार-	६८१	उच्चोच्चमुच्चनीच च	७०९	एकत्रिंशद्भवेत्त्रिंश-	७१४
आयुर्मोहनवर्जाना	७०६	उच्चोच्चमुच्चनीच च	७२७	एकपञ्चकसप्ताष्ट-	७३३
आहारकद्वय तीर्थ-	६७७	उच्च पाके द्वय सत्त्वे	७०९	एकपञ्चकसप्ताष्ट-	७१५
आहारक द्वय तीर्थ-	६९९	उच्च पाके द्वय सत्त्वे	७२७	एकपञ्चकसप्ताष्ट-	७२०
आहारकद्वयस्याथ	७०६	उच्च बन्धेऽथ पाकेऽन्यद्	७२४	एकपञ्चकसप्ताष्ट-	७२२
आहारकद्वयस्याप्य-	७०२	उत्कृष्ट स्थितिवन्ध स्यात्	७०१	एकस्मिन् सः पर्याप्तो	७२५
आहारकश्च सन्त्येता	६६५	उत्कृष्ट स्यादनुत्कृष्टकृष्टौ	७०१	एकक्षेत्रावगाढास्तान्	७०६
आहारद्वयतीर्थेण-	६७९	उत्तरप्रत्यया ज्ञान-	६८५	एकान्नत्रिंशत तत्स्या-	७१७
आहारद्वयतीर्थेण	६८१	उत्तरोत्तरसज्ञाश्च	६८६	एकान्न विंशति सा च	७१५
आहारद्वयमायूपि	६७५	उदधीना सहस्रस्य	७०१	एकतोऽतो द्वय त्रिंश-	६७६
आहारद्वयमायूपि	६९४	उदयस्थानसंख्यैव	७२९	एकात्मपरिणामेन	७०६
आहारद्वितयेऽपास्ते	६९८	उदयादिभवैर्भावै-	६६३	एकादश द्विकैकेषु	६८२
आहारद्वितयेऽपास्त	७१४	उदया पदबन्धाश्च	७३१	एका द्वे षोडशैकान्न-	६७८
आहारोद्धि परीहारो	६७३	उदयाद्यान्ति विच्छेद	६७७	एकान्नत्रिंशत तत्स्याद्	७१५
आहारविक्रियव्वभ्र-	६७५	उदारे यो भवो वाऽस्यो-	६६७	एकान्नत्रिंशत तत्स्याद्	७१९
आहारस्याप्रमत्ताख्यः	७०४	उद्योगतिर्यगायुष्क-	७४२	एकान्नत्रिंशत तत्स्या-	७२०

एकान्नत्रिंशतेर्बन्धे	७२२	ओघो वेदत्रयेऽप्यस्ति	७४१	केवलिश्रुतसंधाना	६९२
एकान्नत्रिंशतो बन्ध	७२२	[औ]		कोविदैरखिला ज्ञेया-	६८६
एकान्नत्रिंशतो बन्धे	७२२	औदारिकद्वय चाद्या	७०३	कृमिनीलीहरिद्राङ्ग-	६६८
एकान्नत्रिंशदन्येव	७१४	औदारिक तथा वैक्रियिक-	६७४	कृष्णा नीलाऽथ कापोती	६६९
एकान्नत्रिंशदन्यैव	६९८	औदार्यादित्रिदेहाना-	६७४	क्रमात्पञ्च नव द्वे च	६७४
एकान्यषष्टिरन्ये च	७२०	[क]		क्रमात्पञ्च नव द्वे च	६९३
एकाक्षादिष्विमा सर्वा	६६५	कति बध्नाति भुङ्क्ते च	७०८	क्रमात्पुंवदेसज्वाला	६७७
एकाक्षा बादरा सूक्ष्मा	६६४	कपाटस्थसयोगस्य	७१९	क्रमात्पुंवदेसज्वाला	७००
एकाक्षा बादरा सूक्ष्मा	६८२	करणो न समो भिन्न-	६६४	क्रमात्स्थानानि सत्ताया	७३३
एकाक्षवच्च बध्नन्ति	७४०	कर्मबन्धविशेषस्य	६९४	क्रमादष्टषड्ये तु	७२६
एकाक्षविकलाक्षे च	७३३	कर्मषट्कस्य बन्धाः स्यु	६९४	क्रुधः स्वाभ्रेषु तिर्यक्षु	६६८
एकाक्ष-विकलाक्षेषु	७४०	कर्मषट्क विना योगी	६९३	क्रुन्मानवञ्चनालोभे	७४१
एकाक्षे पञ्चधोक्त य-	७१६	कर्मक्षेत्र कृषन्त्येते	६६८	[क्ष]	
एकाक्षे सातपोद्योते	७१६	कर्मेव कर्मण कायो	६६७	क्षणेऽन्त्येऽन्यतरद्वेद्य	६८०
एकेन्द्रियेषु चत्वारि	६६४	कपायकलुषो ह्यात्मा	६७६	क्षपितेज्वाद्यकोपादि-	७११
एकेन्द्रियेषु चत्वारि	६८२	कषाययोगजः पञ्च-	६८३	क्षयस्यारम्भको यस्मिन्	६७२
एकेन्द्रियेषु पर्याप्ता	६६७	कषायविकथानिद्रा	६६४	[ग]	
एकोऽतोऽतो द्वय त्रिश-	६९९	कषायवेदनीय तु	६७४	गतिकर्मकृता चेष्टा	६६५
एकोदशोदयोने स्यु	७१२	कषायवेदयुग्मोत्थै-	७३०	गत्यक्षकाययोगाख्या	६६५
एकोनाः सयमा सर्वे	६८६	कषायवेदयुग्मैस्तु	७२८	गत्यादिमार्गणास्त्वेव-	६८६
एतदेवानुपूर्व्यून	७२०	कषायवेदयुग्मैस्ते	७१२	गत्यादिमार्गणास्त्वेवं	७३४
एता एवोदय नैव	६७५	कषायाणा चतुष्क च	६७७	गत्यादौ तत्प्रयोग्याना	७००
एतान्येव निरुद्योते	७१६	कषाया नोकषायाश्च	६६९	गुणस्थानेषु भेदी द्वौ	७०८
एताभ्योऽन्यासु मिश्राह्वा	७३९	कषायान्माव्यमानष्टौ	७३७	गुणस्थानोदिता भङ्गा.	७२३
एता सहति-सस्थान-	६९७	कषायोदयतस्तीव्रा-	६९२	गोत्रमुच्च तथा नीच-	६७५
एता सहति-सस्थान-	७१४	कायाक्षायूषि सर्वेषु	६६५	गोत्रे स्यु सप्तवेद्येऽष्टौ	७०९
एव कृते मया भूय	६७२	काय पुद्गलपिण्डः स्या-	६६६	[घ]	
एव देवायुषः किन्तु	७०२	कारीषाग्नि-तृणाग्निभ्या	६६८	घातिकर्मक्षयोत्पन्न-	६६४
एव द्वयक्षगता भङ्गा	७१७	कर्मणो वैक्रियौदार्य-	७२९	घातीनामजघन्योऽस्त्य-	७०२
एव द्वासप्तति क्षीणा	७३७	कर्मणौदार्यमिश्राभ्या	६८५	[च]	
एपोऽष्टाविंशतेर्बन्ध	७२१	कर्मण शुक्लेश्य स्या-	६७०	चण्ड सन्ततवैरश्च	६७१
[ऐ]		कार्याकार्यं पुरातत्त्व-	६७२	चतस्रश्चानुपूर्व्योपि	६७५
ऐकत्रिंशतमेतत्स्या-	७१९	कालुष्यसन्निधानेऽपि	६६४	चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि	६९४
[ओ]		कालं भवमथ क्षेत्र-	७०७	चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि	७०५
ओघभङ्गोऽस्ति योगेषु	७४०	किञ्चिदुन्मीलितो जीवः	६७४	चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि	७०५
ओघ केवलदृष्टेश्च	७४१	किञ्चिद्बन्धसमासोऽय	७०७	चतस्र पट् तथा षट्क-	६७७
ओघ सामायिकाख्यस्य	७४१	किं प्राग्विच्छिद्यते बन्ध	६८०	चतस्रो जातयश्चाद्य	६७८
ओघ सज्ञिषु मिथ्यादृग्	७४२	कुन्थुः पिपीलिका गुम्भी	६६६	चतस्रो जातिका सूक्ष्मा-	७३८
ओघो नर-सुरायुर्मर्या	७४२	कुर्यात्पुरुगुण कर्म	६६८	चतस्रोऽन्त्यक्षणे क्षीणे	७०९
ओघो भव्येषु मिथ्यादृग्-	७४२	कुसुम्भस्य यथा रागो	६६४	चतस्रोऽन्त्यक्षणे क्षीणे	७२६

चतस्रो ज्ञानरुध्याद्या	७०४
चतस्रो ज्ञानरोधे स्यु-	७०४
चतुर्गतिगता. शेपा	७०३
चतुर्णां योगतो बन्धः	७०५
चतुर्णिकायामरवन्दिताय	६६३
चतुर्थप्रत्ययात्सात	७०५
चतुर्थे दिवसा सप्त	६७३
चतुर्दशसु चत्वारो	७२४
चतुर्दशैकविंशत्या	६६४
चतुर्विधा ध्रुवाख्या स्यु-	६९४
चतुर्विधेन भावेन-	७०५
चतुर्विंशतिभङ्गघ्ना-	७२९
चतुर्विंशतिभङ्गोत्था.	७३०
चतुर्विंशतिभेदा ये	७२९
चतुर्षु सयताद्येषु	७३६
चतुर्ष्वसयताद्येषु	६८०
चतु पञ्चकपटकाग्रा	७३६
चतु घाताधिकाशीत्याऽ-	७२९
चनु मज्जलनेष्वन्य-	६६९
चत्वारिंशच्चतुर्युक्ता	७२९
चत्वारिंशतमेकाग्रा	७३६
चत्वारिंशत्कपायाणा	७००
चत्वारिंशद्द्विफाग्रास्यु-	७२६
चक्षुषोऽचक्षुषो दृष्टे-	६७४
चातुर्गतिरुजीवेषु	७२२
चातुर्विंशतमस्तीद	७१६
चारित्र्यमोहनीयस्य	६६९
चारित्र्यपरिणाम धा	६६८
[छ]	
छप्रस्थेपूपयोग स्या-	६७२
[ज]	
जन्तोराहारसज्ञा स्या-	६६५
जन्तो सम्यक्त्वलाभोऽस्ति	६७२
जरायुजाण्डजा पोता	६६६
जात्याद्यष्टमनावेश-	६६४
जीवपाका स्वरद्वन्द्व-	७३७
जीवयोगितयोत्पन्नो	६७२
जीवस्थान-गुणस्थान-	६७३
जीवस्थान-गुणस्थान-	७३७

जीवस्थानेषु सर्वेषु	७२३
जीवस्यौदयिको भाव	६६३
जीवा सिद्धत्वयोग्या ये	६७१
जीवे स्पर्शनमेकाक्षे	६६६
[झ]	
ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य-	६६४
ज्ञानदर्शनयो रोधौ	६७४
ज्ञानदर्शनयो रोधौ	६९३
ज्ञानदृग्दोषमोहान्त-	६७२
ज्ञानदृग्दोषमोहान्त-	७०५
ज्ञानदृग्दोषविघ्नस्था	६८१
ज्ञानदृग्दोषविघ्नेषु	७००
ज्ञानदृग्दोषवेद्यान्त-	६८०
ज्ञानविघ्ने च दृग्दोषे	७०३
ज्ञानावृद्धिघ्नगा सर्वा.	७०६
ज्ञानावृद्धिघ्नयो पञ्च	७०८
ज्ञानावृद्धिघ्नयो पञ्च	७२६
ज्ञानावृद्धिघ्नयोदृष्ट्या-	७०३
ज्ञानावृत्त्यन्तरायस्था	६८१
ज्ञायन्तेऽनेकधाऽनेक-	६६४
ज्ञेया दश नवाष्टौ च	७२८
ज्योतिर्भाविनभावेषु	६७२
ज्वालाङ्गारास्तथाऽचिश्च	६६६
[त]	
तच्च प्रशमसंवेगा-	६७१
तच्च सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-	६७४
तच्चक्षुर्दर्शन ज्ञेय	६६९
तत शुद्धतरैर्भावि-	६६४
ततो द्वौ द्वौ च चत्वारोऽ-	७३२
ततोऽष्टकचतुस्त्रिद्वये-	७३२
ततोऽसंख्यगुणो ज्ञेयो	७०७
तत्प्रदोषोपघातान्त-	६९२
तत्र त्रिशत्तृतीयेय	६९६
तत्र त्रिशन्तृतीयेय	७१३
तत्र प्रकृतय पञ्च	६७४
तत्र श्वभ्रद्वय हुण्ड	६९६
तत्राद्या त्रिशदुद्योत-	६९६
तत्राद्या त्रिशदुद्योत	७१३
तत्रैकत्रिंशदेपाऽत्र	६६७

तत्रैकत्रिंशदेपाऽत्र	७१४
तत्रैकविंशत देव-	७२०
तत्सूक्ष्मादिष्वयोगे च	७२३
तथाऽष्टचतुरेकाग्रा	७३२
तथा त एव वाऽप्रत्या-	६७४
तथा मिथ्यादृष्टस्तीव्र-	७०४
तथैकत्रिंशतो बन्धे	७२३
तथैकबन्धके पाके	७२३
तथैवागुरुलघ्वादि-	६७८
तृतीयमथ कोपादि-	६९९
तृतीयापि द्वितीयेव	६९७
तृतीयापि द्वितीयेव	७१४
तितिक्षा मार्दव शौच-	६६३
तिरो यान्ति यत पाप-	६६५
तिर्यक्पञ्चेन्द्रिये पाका	७१७
तिर्यक्-श्वभ्रायुषो सूक्ष्मा-	७४१
तिर्यगायुर्गती नीचो-	६७८
तिर्यगती समस्तान्य-	६८२
तिर्यग्द्वयं नरद्वन्द्व	६८१
तिर्यग्द्वयप्रसङ्गे तु	७१८
तिर्यग्द्वयमसम्प्राप्त-	७०२
तिर्यग्द्वयमसंप्राप्त	७०३
तिर्यग्द्वयातपोद्योत-	७३९
तिर्यङ्-नरगतिद्वन्द्वे	७०१
तिर्यङ्-नरायुषी तिर्यग्	७८१
तिर्यङ्-नरायुषोरन्त-	७०१
तिर्यङ्क्षाद्यानि षट्बन्धे	७३३
तिस्रो हि त्रिंशतो यद्व-	६९६
तिस्रो हि त्रिंशतो यद्व-	७१३
तिसृणामाद्यलेश्याना	६८६
तीर्थकृत्कार्मण तेजो	६९७
तीर्थकृत्कार्मण तेजो	७१४
तीर्थकृत्कार्मणदेवायु	७४१
तीर्थकृच्छ्वाभ्रदेवाना	६६८
तीर्थोनीधस्ताश्च मिथ्यादृक्	७४०
तीव्रो लेख्या स कापोता	६७०
तुर्थे सहति-सस्थाने	७०१
ते च वैक्रियिकं च स्यु-	६६७
तेजः कार्मणपञ्चाक्षे	७१९
ते जिह्वाक्षान्त्यवाग्भ्या स्यु	६८४

तेजोपर्याप्तनिर्माणे	६९६	त्रिवेदघ्नं कपायं स्यु-	७२९	देवश्वाग्नेषु सत्तायां	७२२
तेजोऽपर्याप्तनिर्माणे	७१३	त्रिशत्सा चैकयुक्पाके	७२३	देवा देव्यञ्च देव्यश्च	७३९
तेजसागुल्लव्वाहे	७०२	त्रिशदेपाऽत्र पञ्चाक्षं	६९७	देवानां नारकाणां च	६६८
त्यक्तकृष्णादिलेश्यानाः	६७१	त्रिशदेपाऽत्र पञ्चाक्षं	७१४	देवायुनारकायुञ्च	७२४
त्यक्त्वाऽन्या वामदृष्टिन्ता-	७४२	त्रिपूषशमकेपूप-	७२३	देवायुर्विक्रियद्वन्द्वं	६८०
त्यक्त्वा वदन्ति देवीना-	७३९	त्रिपूषशमकेपूप-	७३३	देवे द्वितीयकोपाद्यै-	७१०
त्यक्त्वाऽऽन्यस्तिर्यगायुक्-	७४०	त्रिष्वाहारकयुग्मोना	६८३	दोषैः स्तृणाति चात्मानं	६६८
त्यक्त्वाऽऽन्योऽप्यप्रमत्ताल्याः	७४२	त्रीन्द्रिये त्रिशदेकाग्रे	७१७	द्वयं चोदीरयेत्कीण.	६६३
त्यक्त्वाऽऽन्योऽपि मनुष्यायु-	७३६	[द]		द्वादशस्वादिमेष्वोघो	७४१
त्यक्त्वेताभ्यो मनुष्यायु-	७३९	दण्ड औदारिको मित्र.	६७२	द्वादशाद्याः कपाया ये	६६९
त्यक्त्वेताभ्यः सुरद्वन्द्व	७४०	दर्शन्यणुव्रतस्त्वं	६६९	द्वादशा विरतेर्भेद	६८३
त्यक्त्वेताभ्यो मनुष्यायु-	७३९	दशके ज्ञान-विघ्नस्ये	७०१	द्वानवत्यादिकं सत्त्वे	७२१
त्यागो क्षान्तिपरञ्चोक्षो	६७१	दशद्वविंशतेर्वन्वे	७१२	द्वापञ्चाशद्द्विहीनानि	७२९
त्रयः सप्त च चत्वारो	७०१	दशभिर्नवमिर्युक्ता	६९७	द्वाविंशतिर्भृजाकारा	६९८
त्रयोदशानु जीवेपु	७२५	दशभिर्नवमिर्युक्ता	७१४	द्वाविंशतिः समिध्यात्वाः	६९४
त्रयोदशदशाप्याद्ये	७२९	दशभिर्नवमिः पद्मिः	६९६	द्वाविंशतिः समिध्यात्वाः	७१०
त्रयोदशमुद्गोवे	७२३	दशभिर्नवमिः पद्मिः	७१३	द्वित्रिचत्वारिंशतस्तीव्रः	७०३
त्रयोदशानु सप्ताष्टौ	७०८	दशसन्नित्यतो ह्ये-	६६५	द्वितीयमय कोपादि-	६७७
त्रयोदशाग्रमायुक्ते	७२६	दशानु ज्ञान-विघ्नस्या-	७००	द्वितीयस्य चतुष्कस्य	७०६
त्रयोदशेऽष्ट पञ्चाद्या.	७१२	दशमूढमकपायेऽपि	६८४	द्वितीया अपि कोपाद्या	६७८
त्रयो द्वौ चानिवृत्ताल्ये	७३२	दशाऽन्येते भयेनोना	७१२	द्वितीयाप्येवमेकान्न-	६९७
त्रयोविंशतिरस्त्रिंश-	७२६	दशापि ज्ञानविघ्नस्या	६७५	द्वितीयाऽप्येवमेकान्न-	७१४
त्रयोविंशतिरेकाक्षं	६९७	दशापि ज्ञान-विघ्नस्या	६९४	द्वि-त्रि-सप्त-द्विपु ज्ञेया	६७२
त्रयोविंशतिरेकाक्षं	७१४	दशाष्टदशसन्त्याद्ये	६८६	द्वित्रिसप्तद्विपु ज्ञेया	७३१
त्रसमुत्स्वरपर्याप्त-	७०५	दशैवं षोडशास्माच्च	६७७	द्वित्र्यक्षचतुरक्षेपु	७००
त्रसं वादर-पर्याप्ते	६७४	दशैवं षोडशास्माच्च	७००	द्विषष्ठचतुः सल्या	७३३
त्रसं वर्गादयः सूक्ष्म-	७१३	दुःखशोकवधाक्रन्द-	६९२	द्विष्कापोताऽकापोता	६७०
त्रसं स्यूतं च वर्णाद्य-	६९६	दुःख्येयातिगम्भीरं	७३७	द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चैव	६६६
त्रसतात्त्रिवृत्तो यः	६६९	दुःप्रहो दुष्टचित्तस्य	६७१	द्वे त्यक्त्वा मोहनीयस्य	६७५
त्रसाद्यगुल्लव्वादि-	६७७	दुर्मगं चाग्र्यस्तेयं	७०३	द्वे निद्रा-प्रचले-क्षीण.	७३७
त्रसाद्यगुल्लव्वादि-	६९६	दुर्मगं सुमगं चैव	७०४	द्वे वेद्ये गतयो हास्य	६७५
त्रसाद्यगुल्लव्वादि	६९९	देवगत्या च पर्याप्त-	६९७	द्वे वेद्ये पञ्च दृशोवाः	६८१
त्रसाद्यगुल्लव्वादि-	७१३	देवगत्याऽय पर्याप्त-	७१४	द्वे वेद्ये गतयो हास्य-	६९४
त्रिपञ्चपद् नदाग्रा हि	७२५	देवगत्यानुषव्यां हि	७०२	द्वौ चाहारौ प्रमत्तेऽन्या	६८३
त्रिपञ्चपडगाया	७२१	देवगत्यानुगत्या च	७३७	द्वयोः पञ्चद्वयोः पद् ते	६८३
त्रिपञ्चपडद्याग्रा	६९५	देवद्विक्मनादेय-	६७८	द्वयोरेकस्तयोकोऽष्टौ	७३२
त्रिपञ्चपडद्याग्रा	७१२	देवद्विक्मनाऽऽदेयं	७०६	द्वयोर्द्वे दर्शने त्रीणि	६८३
त्रिपञ्चाद्यच्छातान्येवं	७३१	देवगत्यानुष्यतिर्यञ्च-	७०४	द्वयोस्त्रयोदशान्येषु	६६७
त्रिनिविता नवान्वानु	६८२	देव-श्वाग्नेषु चत्वारि	६६४	द्वयोस्त्रयोदशान्येषु	७२९
त्रिज्योत्तोरचराक्षेप-	६६०	देवश्वाग्नेषु चत्वारि	६८२	द्वयेकाग्रविंशती तां च	७३८

दृष्टेकाग्रे विंशती सप्त-
दृष्टेकाग्रे विंशती सप्त-
दृष्टोहनक्षतं कर्म-
दृष्टोघस्यचतुष्कस्य
दृष्टोघस्योदये चक्षु-
दृष्टोवे मोहने नाम्नि
दृष्टोवे नव सर्वा. पट्
दृष्टोघे नव सर्वा पट्
दृष्टभूमिरजोवारि-
दृष्टिमोहे क्षय जाते
दृष्टिरोधे नवज्ञाने

६९४
७१०
६७२
७०२
७०८
६९४
६९४
७०८
६६८
६७१
७०२

[घ]

घानस्य सग्रहो वासत्
घाराप्तेजोमरुद्वृक्ष-
ध्मायमान यथा लौह

६७६
६६९
६६४

[न]

न कर्म वध्यते नापि
न कर्म वध्यते नापि
न जातिर्न जरा दुःख-
नत्वा सर्वान् जिनान्
न त्रसासयमो नान्ये
नपुमके स्त्रिया हास्या-
न बहिलोकनाड्या स्यु-
न भव्या नापि ये भव्या
नभोगतियुगस्यैक-
नभोगतियुगस्यैक-
न याति सासनं स्वभ्र
नरगत्या समेता स्यु.
न रमन्ते यतो द्रव्ये
नरानुपूर्वी सञ्चाल-
नरायुस्तिर्यगायुश्च
नवतिद्विधु त्तरा सा च
नवतिस्त्रिद्विककाश
नवधा नो कपायाख्यं
नववन्धयमे सत्त्वे
नव योगा समादिष्टाः
नवपट्क चतुष्क च
नवध्वज चतुर्ध्वक-
नवपट् च चतस्रश्च

६६७
६८४
६६६
६७६
६८४
७११
६६६
६७१
६९६
७१३
७३०
७१८
६६५
६८०
७४०
७२१
७२०
६७४
७०८
६८३
६९४
६८२
७०८

नवाग्राप्युदये नृणां
नवाष्टदशयुगवन्वे
नवाष्टका दशाग्रा तु
न हन्ता त्रसजीवाना
नाणव्रतेषु स्वभ्रातृ-
नानाविधे धने धान्ये
नाम्नो वेद्यस्य गोत्रस्या-
नाराचमर्धनाराच
निजयोगेन सयुक्ता
निद्रा च प्रचला च द्वे
निद्रानिद्रादिका ज्ञेया
निप्रमादोऽप्रमत्ताख्य
निर्वुद्धिर्मानवान् मायी
निर्माणं कर्मणं त्रिश-
निर्माणं चाशुभं चोप-
निर्माणं चाशुभं चोप-
निर्माणं दुर्भगं वक्र-
निर्माणं सुभगादेय-
निर्माणं सुभगादेय-
निर्माणं सुभगादेय-
निर्माणगुरुलघ्वाख्य-
निर्माणगुरुलघ्वाह-
निर्माणमयसो नीच
निर्मिन्वागुरुलघ्वादि
निर्मिन्वागुरुलघ्वापि
निर्मूल-स्कन्ध-शाखोप-
नीच-तिर्यग्द्वयं चेति
नृगतिं कर्मणं तेज
नृगतिं पूर्णपञ्चाक्ष
नृ-तिरश्चो जघन्याऽन्त-
गोकपायस्तु सञ्चाला
नोकपायोदयाद् भाव-
नो यत्सत्यं मृषा नैव

७१९
७३२
७३२
६६३
६७९
६७१
७०४
६७४
६८५
६८०
६७४
६६४
६७१
६७८
६९७
७१४
७१६
७१७
७१८
७२०
६७४
६८१
७०१
७१३
६९६
६७०
७०४
७१९
७१९
७२०
६८५
६६७
६६६

[प]

पच्यते न मनुष्यायु-
पञ्च द्वे पञ्च नाम्नि स्यु-
पञ्च पञ्च चतस्रश्च
पञ्चविंशतिमेताभ्य-
पञ्चविंशतिरत्रान्या
पञ्चविंशतिरत्रान्या-

७०३
७२५
७०६
७४०
६९६
७१३

पञ्च-षड्-नवयुगवन्वे
पञ्च-सप्त त्रिके तस्माद्
पञ्चसप्ताग्रविंशत्यो
पञ्चस्वतो भवेदोष
पञ्चस्वाद्येऽनिवृत्त्यशे
पञ्चस्वाद्येषु पञ्च-स्यु-
पञ्चस्वाद्येषु वन्धेषु
पञ्च ज्ञानावृतेर्दृष्टे
पञ्चान्तिमानि सस्थाना-
पञ्चापर्याप्तमिध्यात्व-
पञ्चायोगे शरीराणि
पञ्चाशद्विंशजीवाना
पञ्चाक्षं कर्मणं तेज
पञ्चाक्षं चतुरक्षं चो
पञ्चाक्षं च शुभोदये
पञ्चाक्षं नृद्वयं पूर्ण-
पञ्चाक्षं सुभगं स्थूल
पञ्चाक्ष-त्रसयो सर्वे
पञ्चेन्द्रियाणि वाक्काय-
पटकप्रतिहारासि-
पद्मा भन्दतरं शुक्ला
पर कर्मक्षयार्थं यत्त-
परघातं च सक्लिष्टा-
परघातं रतिर्हास्य-
परघातागुरुलघ्वाह्वे
परमाण्वन्त्यभेदानि
पर्याप्तसुभगादेय-
पर्याप्तस्याङ्गपर्याप्त्या
पर्याप्तस्यानपर्याप्त्या-
पर्याप्तस्यानपर्याप्त्या
पर्याप्ताङ्गेऽन्यघातास-
पर्याप्ताङ्गेऽन्यपूर्ण-
पर्याप्तानस्य सोऽङ्गवास-
पर्याप्तासन्निपञ्चाक्ष-
परिहृत्यैव सावद्य
पाकप्रकृतयो द्व्यभ्रा
पाकप्रकृतयो या स्यु-
पाकप्रकृतिसख्याया
पाकस्थानानि पाकस्थ-
पाकस्थानानि यानि स्यु-

७३३
६८६
७२१
७४१
६६५
७२७
७११
६७८
६८१
६७८
६८०
६६४
७०४
७१९
७०३
७२०
६७८
६८४
६६५
६७५
६७०
६६४
७०४
६८१
७०३
६६९
७१९
७१६
७१८
७१९
७१५
७१७
७१७
७०२
६६९
७३०
७३१
७२९
७१२
७१८

पाका सप्तदशैकान्न-	७२९	प्रशान्तान्तेषु सन्त्यष्टौ	६७६	बादर तीर्थकृच्चैता-	६८०
पाकेऽत्रैकचतु पञ्च	७१५	प्रशान्तक्षीणमोहो तु	७३६	ब्रह्मव्रतीनिरारम्भः -	६६९
पाके केवलनि त्रिश-	७२६	प्रसक्त शुभयोगेषु	६६४	[भ]	
पाके दशचतु.षट्कै-	७२२	प्राग्वद्वन्धस्तथाद्यानि	७२२	भङ्गाः कपाय-वेदै. स्यु-	७१२
पाके प्रकृतय षष्टि-	७३०	प्राग्वद्वन्धस्तथैकाग्रा	७२२	भङ्गा. द्वाविंशते. षट् स्युः	६९५
पाके श्वभ्रानुपूर्वी न	६७७	प्राग्वद्वन्धस्तथैकाक्षे	७२२	भङ्गाः द्वाविंशते पट् स्युः	७११
पाके षड्विंशति सत्त्वेऽ-	७२२	प्राग्वद्वन्धोदयो सत्त्वे	७२२	भङ्गाः शतद्वय चाष्टा-	७१८
पाकेष्वष्टसु षष्टिर्या	७३०	प्राण्यक्षपरिहार' स्यात्	६६४	भङ्गा. शतद्वय चाष्टा-	७१७
पाके स्त्री-षण्ढयोस्तीर्थ-	६८१	प्राप्तोऽथ स जगत्प्रान्त	७३७	भङ्गा श्वाभ्रेषु पञ्च स्यु-	७२४
पारुण्य-रभसत्त्व-स्त्री-	६६८			भय शोकोऽरतिश्चैव	७००
पिण्डाश्चतुर्दशैतासा-	६७४	[च]		भयसङ्गा भवेद् भीति-	६६५
पुंस्त्वं सज्ज्वलना' पञ्च	७०६	बध्नतोऽष्टविध कर्म-	७०६	भवन्ति सर्वधातिन्यो	७०४
पुस्त्वे प्रक्षिप्य पुस्त्व च	७३७	बध्नन्ति कर्मणे योगे	७४०	भवेत्सम्यग्मिथ्यात्व-	६७१
पूर्णाऽपूर्णानि वस्तूनि	६६५	बध्नन्ति वामदृष्ट्याश्च	७३९	भवेत्क्षायिकसम्यक्त्व-	७४२
पूर्णैर्वौदारिक षट्सु	६८३	बध्नात्येता च मिथ्यादृक्	७१३	भवेदसयमस्यापि	६६७
पूर्वापूर्वविभागस्थ.	६६४	बध्नात्येता मिथ्यादृक्	६९६	भव्य पञ्चेन्द्रिय सङ्गी	६७१
पूर्वोक्त मीलने योगै	७३१	बध्नन्त्युदीरयन्त्यन्ये	६९३	भव्ये सर्वे त्वभव्येऽप्य-	६८६
पृथक्तीर्थकृतैतानि	७१९	बध्नन्त्येता मनुष्यायु-	७३९	भागाभागस्तथोत्कृष्टा-	७०६
पृथग्जीवसमासेषु	७२४	बन्धत्रिके त्रिक-द्वयेक-	७१२	भागोऽल्पोऽत्रायुषस्तुत्यो	७०६
पृथिवीकायिके स्थूले	७१५	बन्धनात्पञ्चकायाना	६७४	भावतो न पुमान् स्त्री	६६८
पृथिवी-शर्करा-रत्न-	६६६	बन्धभेदेन चेति स्यु	६९४	भावै शुद्धतरै. कर्म-	६६४
प्रकृतिस्तिक्ततानिम्बे	७०६	बन्धस्थानानि तान्येव	७२५	भोगभूमिजवर्जाना	७०२
प्रकृतिः स्यात्स्वभावोऽत्र	७०६	बन्धस्थानानि सर्वाणि	७२६	भुङ्क्ते चत्वारि कर्माणि	६९३
प्रकृतीना तु शेषाणा-	६८०	बन्धा' सर्वेऽपि पञ्चाक्षे	७३४	भुञ्जतेऽष्टापि कर्माणि	६७६
प्रकृतीना तु शेषाणा	७०२	बन्धा, साद्यध्रुवा शेषा-	७०२	भ्रमरा कीटका दशा	६६६
प्रकृतीना तु शेषाणा-	७०३	बन्धादयस्त्रयस्तेषा	६८२	[म]	
प्रकृत्यामन्दकोपादि-	६९३	बन्धे तु विंशती देशे	७३२	मतिपूर्वं श्रुत तच्च	६६८
प्रत्यनीको भवन्नर्ह-	६९२	बन्धेऽत्र नव पाकेऽपि	७१२	मतिश्रुतावधिस्वान्तै-	६७२
प्रत्येक उपघाते च	७१७	बन्धे त्रिपञ्चषड्यु-	७२१	मतेनापरसूरीणा	६६८
प्रत्येक चतुरष्टक-	७१२	बन्धे नवाष्टयुक् पाके	७३२	मत्यज्ञानं श्रुताज्ञान-	६८३
प्रत्येकागुरुलघ्वाह्व-	६९७	बन्धे पञ्चानिवृत्तौ स्यु-	७२८	मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने	६८५
प्रत्येकागुरुलघ्वाह्वे	७१४	बन्धे पाके च सत्त्वे स्यु.	७२३	मन पर्यय आहार-	६७३
प्रत्येकाङ्गा पृथिव्यम्बु-	६६६	बन्धे पुवेदसज्ज्वाला	६९५	मन पर्ययबोध स्यात्	६६९
प्रत्येके उपघाते च	७१८	बन्धे पुवेद-सज्ज्वाला	७१०	मनसाऽन्यमनो यात	६६९
प्रत्येकौदार्ययुग्मोप-	७१६	बन्धेऽष्टाविंशतिः पाके	७२१	मनुष्यायुर्नरद्वन्द्व-	७४०
प्रदेश-प्रकृती बन्धौ	७०६	बन्धे स्थानानि चत्वारि	६९४	मनोवाक्कायभिक्षेर्या-	६६४
प्रमत्त-केवलिन्योऽन्य-	६७९	बन्धे स्याद्विंशति पाके	७३३	मनोवाक्काययुक्तस्य	६६६
प्रमत्तवच्च बध्नन्त्या	७४०	बन्धोदयास्तिता सम्यग्	७०८	मनोवाक्कायवक्र. सन्	६९३
प्रमाण-नय-निक्षेपा-	६७३	बहिर्भवैर्यथा प्राणै-	६६५	मनोवाचौ चतुर्धा स्त	६६६
प्रशस्तास्वातपोद्योती	७०३	बहुशः शोकभीमस्तो	६७१	मन्यन्ते यतो नित्य	६६६

नलं विना तदेवान्मः	६६४	मिव्यादृष्टिद्वितीयांश्च	७०४	यत्रोपशान्तिमप्याति	६६४
मसूराभ्वृषपत्सूची-	६६६	मिव्यादृष्टौ पडाद्यानि	७३२	यत्तदङ्कमोदयोत्कर्षा-	७३६
महान् धनस्तनुश्चैव	६६६	मिथं दधि गुडं नैव	६६३	ययाम्भः कतकेनाधो-	६६४
मायया वंशमूलावि-	६६८	मिथं विनाऽऽयुषो वन्वः	७०६	यथा भारवहो भारं	६६६
मार्दवकलैव्यपुंस्काम-	६६८	मिथं विहाय कोपाद्या	६९९	यथावस्तु प्रवृत्तं यन्	६६६
मिव्या क्रोधाश्च चत्वारोऽ-	७११	मिथवैक्रिययोगेन	७३०	यदिन्द्रियावधिस्वान्त-	६७२
मिव्याक्रोधाश्च चत्वारोऽ-	७२८	मिथसासादनापूर्वो-	७३६	यवनालमसूराति-	६६६
मिव्यात्वं दर्शनात्प्राप्ते	७२८	मिथायतो तु बध्नोत-	७३६	यशःकीर्त्या सह सूक्ष्मा-	७१६
मिव्यात्वं स्वप्नदेवायु-	७३६	मिथेऽष्टनवयुग्वन्वे	७३२	यशःस्थिरशुभद्वन्द्व-	६९६
मिव्यात्वं पण्डवेदश्च	७३८	मिथे सासादनेऽपूर्वे	७२९	यशःस्थिरशुभद्वन्द्व-	७१३
मिव्यात्वं पण्डवेदश्च	६७७	मिथे ज्ञानत्रिकं युग्मे	६८३	यशोऽत्रैकमपूर्वाधि	६९८
मिव्यात्वं पण्डवेदश्च	६९९	मुक्तं प्रकृतिवन्वेन	६७४	यशोऽत्रैकमपूर्वाधि	७१५
मिव्यात्वमिन्द्रियं काय-	६८६	मुक्त्वा निजं निजं शेष-	६८५	यशोवावरपर्याप्त-	७१६
मिव्यात्वमिन्द्रियं कायाः	६८६	मुक्त्वाऽऽयाः प्रकृतीर्देवा-	७३९	याऽऽकाङ्क्षा स्यात्स्त्रियःपुंसि	६६७
मिव्यात्वपञ्चकानन्ता-	६८६	मुक्त्वा वैक्रियिकपट्क-	७४०	यान्तं संस्थापयत्याशु	६७४
मिव्यात्वपञ्चकं स्पर्शः	६८४	मुक्त्वैकं संज्ञिपर्याप्तं	७२५	यावदष्टादशैकैक-	७३६
मिव्यात्वमाद्यकोपादीन्	७११	मुहूर्ताः पञ्चचत्वारि-	६७३	यावदावलिकां पाको	६८७
मिव्यात्वमुपधातश्च	७०३	मुहूर्ता द्वादश ज्ञेया	७०१	मुक्तोऽष्टान्त्यकपार्ययः	६६३
मिव्यात्वसमवेतो यः	६६९	मुहूर्ता द्वादशात्र स्युः	७०१	युग्मं नाहारकं मिव्या-	६८६
मिव्यात्वस्योदयाज्जीवः	६६३	मूतशिपपदायान् यज्ज्ञा-	६६८	ये मारणान्तिकाऽऽहार-	६७२
मिव्यात्वागुरुलब्धाख्ये	६७५	मूर्धोऽथो हस्तमात्रश्चा-	६६७	ये यत्र स्युर्गुणस्थाने	७२९
मिव्यात्वागुरुलब्धाख्ये	६९४	मूलनिर्वर्तनात्तस्या-	६७०	ये सन्ति प्रत्ययाः केचि-	६८६
मिव्यात्वाविरती योगः	६८३	मूलाग्रपर्वकन्दोत्याः	६६६	योगाद्या नव संचालाः	६८५
मिव्यात्वे त्वर्धसंशुद्धे	६७२	मेहनं खरता स्ताव्यं	६६७	योगा नवादिमा लोभोऽ-	६८५
मिव्यात्वेन सहकार्य-	६६९	मोहनं द्विविधं दृष्टे-	६७४	योगाविरतिमिव्यात्व-	६७०
मिव्यात्वेनाय कोपादि-	७०५	मोहप्रकृतिसंख्यायाः	७१२	योगास्त्रयोदश ज्ञेया	६८२
मिव्यात्वेनाद्य कोपाद्यै-	७२८	मोहायुर्म्या विना पट्कं	६७६	योगिन्योदारिको योगो	६८३
मिव्यात्वोदयवान् जीवो	६६३	मोहायुर्म्या विना पट्कं	६९३	योगीक्षीणोपशान्तौ च	६९३
मिव्यादृक् तीर्थाकृत्योना-	७३९	मोहे स्युः सत्तया सर्वाः	७११	योगो वीर्यन्तरायाख्य-	६६६
मिव्यादृक्सासनो मिथोऽ-	६६३	मोहोदयविकल्पाः स्यु-	७३०	यो न सत्यमृपाख्यः	६६७
मिव्यादृग् निर्गतो लोभी	६९२	मोहोदयविकल्पाः स्युः	७३१	योनिमृदुत्वप्रस्तत्वं	६६७
मिव्यादृशस्तु तास्तीर्य-	७४१	मोक्षं कुर्वन्ति मिथोप-	६६३	योनिःसरादिसंयुक्ता	६६७
मिव्यादृशो नृ-तिर्यञ्चो	७०४	[य]			
मिव्यादृशो हि सौधर्म-	७०४	यः सूक्ष्माभ्यपरायाख्ये	६६९	[र]	
मिव्यादृश्यष्टचत्वारि	७२९	यकामिर्दुःखमाप्नोति	६६५	रसस्थानान्यपीष्टानि	७०७
मिव्यादृश्यष्टपष्टिः स्यु-	७२९	यकामिर्यासु वा जीवा	६६२	रायो (ययो) रैक्यं यन्ना	६७६
मिव्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मान्त-	७३२	यच्छब्दप्रत्ययं ज्ञानं	६६९	रूपं पश्यत्यसंस्पृष्टं	६६६
मिव्यादृष्टिः प्रवध्नाति	६९६	यत्तच्चारित्रमोहाख्यं	६७४	रूपादिग्राहकत्वेन	६६९
मिव्यादृष्टिः प्रवध्नाति	६९९	यत्तस्योपशमादोप-	६७१	[ल]	
मिव्यादृष्टिः प्रवध्नाति	७१३	यत्रैको म्रियते तत्रा-	६६६	लतादार्वस्थिपापाणिः	७०५

लेख्यायोगप्रवृत्तिः स्या-	६६९	वेद्यमेकतरं निर्मि-	६८०	अदानं यज्जिनोक्तार्थ-	६७१
लेख्याचतुर्षु पदं च स्यु-	६७०	वेद्यमेकतरं वर्ण-	६७८	श्रीचित्रकूटवास्तव्य-	७०७
लेख्याचतुर्षु पदं पदं स्यु-	७३१	वेद्यस्य गोश्रवद्भुजा-	७०९	श्रीचित्रकूटवास्तव्य-	७३७
लोभोदीरणतश्चास्ति	६६८	वेद्यस्य प्रकृती द्वे तु	६७४	श्रीचित्रकूटवास्तव्य-	७४२
[च]		वेद्यायुर्नामगोत्राणि	६६४	श्रुताम्भोनिविनिष्यन्दा-	६८२
वचनैर्हेतुभी रूपैः	६७२	वेद्ये द्वापटिरायुष्के	७२४	श्रेण्यसंख्यातभागो हि	७०७
वज्रनाराच-नाराचे	६७८	वेद्ये भङ्गास्तु चत्वार-	७२६	श्वभ्रतिर्यक्सुरायु पु	६८०
वपुःपञ्चकमायुष्क-	७०३	वैक्रियस्य तु पदस्य-	७०७	श्वभ्रतिर्यन्द्ये पञ्च	७०३
वर्णगन्धरसस्पर्शाः	७१५	वैक्रियिकाञ्छारयोरेक-	६६७	श्वभ्र-तिर्यन्द्येकाक्ष-	७२०
वर्णगन्धरसं. सर्वे-	७०६	व्रतानां धारण दण्ड-	६६९	श्वभ्रतिर्यन्द्यदेवाना-	६६८
वर्णाः शुक्लादयः पञ्च-	६७५	व्रतानामेक भावेन	६६९	श्वभ्रतिर्यन्द्यनारायूपि	६८०
वर्णागुह्य त्रसादीनि	७००	व्रतानां भेदरूपेण	६६९	श्वभ्रतिर्यन्द्यनारायूपि	७०२
वर्णाद्यगुरुलब्धादि-	६८०	[श]		श्वभ्रतिर्यन्द्यदेवानां	६७४
वर्णाद्यगुरुलब्धादि-	६९७	शक्यं यन्नोदये दातु-	७३६	श्वभ्रतिर्यन्द्यदेवान-	७१३
वर्णाद्यगुरुलब्धादि-	७०१	शिलाञ्छापोपदेशाना	६७२	श्वभ्रतिर्यन्द्यदेवाना-	६९६
वर्णाद्यगुरुलब्धादि-	७१४	शतं च सप्तमे श्वभ्रे	७३८	श्वभ्रतिर्यन्द्यदेवायु-	६७४
वर्जयित्वान्तिमं युग्मं	७०१	शतानि चाष्ट पृष्टाऽमा	७२९	श्वभ्रदेवायुपी तीर्थ-	७३६
वर्जित्यं काञ्चनं यद्वन्-	६६६	शतानि पञ्चमङ्गानां	७१८	श्वभ्र-देवायुपीश्वभ्र-	७०६
वक्ष्ये सिद्धपदैर्द्वन्द्वो-	६७०	शतान्यष्टौ चतुःपृष्टाऽ-	७२९	श्वभ्रदेवायुपी श्वभ्र-	७४०
वाक्पूर्णे विद्यतं तत्स्या-	७१९	शते मत्तदशकाग्रे	७३८	श्वभ्रद्वयमनादेवा-	६८१
वाक्पूर्णे वैद्यतं तत्स्या-	७१८	शमको दर्शनमोहस्य	६७२	श्वभ्रादिगतिभेदात्स्या-	६७५
वाङ्मनोऽङ्गक्रियारूप-	६६४	शम्भूक. शङ्खशुक्ती च	६६६	श्वभ्रायुर्नास्ति देवेषु	७३६
वाततेजोऽङ्गानो नोच्च-	६८१	शरीरपञ्चकं पञ्च	७०५	श्वभ्रायुःश्वभ्रयुग्मं च	७४१
विद्यति. स्युर्मुखाकाराः	६९५	शान्तशीणी तु पञ्चवता	६९३	श्वभ्रायुः. श्वभ्रयुग्मोना	७४०
विद्यतिश्चोपग्रन्थेऽपि	७३२	शारीरादिकमात्मीय-	६६४	श्वभ्रायुपस्तु पञ्चाक्षो	७०२
विद्यतिस्त्वष्टसप्ताग्राः	७११	शिलास्तम्भास्तिकाष्टा-	६६८	[प]	
विकल्पाः संनिपर्याप्ते-	७२४	शुभप्रकृतिभावा. स्यु-	७०५	पदके संस्थान-महत्त्वो-	७०४
विक्रियाया भवः कायो-	६६७	शुभस्त्रिरयद्योयुग्म-	६९७	पदचत्वारश्चतुर्षु द्वा-	७२८
विक्रियापदकमाहार-	६८१	शुभस्त्रिरयद्योयुग्म-	७१४	पदं नृतिर्यक्षु तिनोऽस्त्या-	६७०
विक्रियाञ्छारकौदार्या-	६७२	शुभस्त्रिरयुगे तेजोऽ-	७१६	पदपञ्चाशे शते द्वे स्तो	७३०
विक्रियाञ्छारयुग्मान्यां	६८४	शुभस्त्रिरयुगे निर्मित्	७१९	पङ्कज्याणि पदार्थाश्च	६६३
विग्रहनिगतस्य स्य-	७१५	शुभस्त्रिरयुगे वक्रता-	७१७	पङ्कज्याङ्गा मतेज्येषा	६७०
विना तीर्थकराहारं	७३६	शुभस्त्रिरयुगे वक्रता-	७१८	पङ्कज्यतिरियं तत्र	६९६
विरतो नेन्द्रियायैव-	६६३	शुभानामशुभानां च	७०१	पङ्कज्यतिरियं तत्र	७१३
विशुद्ध्या च प्रकृष्टोऽनु-	७०३	शुक्लव्यानसमालङ्घ-	६६४	पङ्कज्यतिर्विनोद्योता-	६६६
विशेषस्त्रिशतो बन्धे	७२२	शेषाः बन्धन्ति मित्राङ्गाः	७४२	पङ्कज्यतिर्विनोद्योता-	७१३
विहाय कर्मणं चाना-	६८६	शेषानयान्तिकानां तु	७२५	पङ्क- श्वाश्रेषु देवेषु	७३०
वृक्षाग्रे वायु रथ्यायां	६७४	शेषा मिथोऽप्यतस्तानु	७३८	पङ्कस्त्रीनोकपायाः पु-	७३६
वेद्ययं तु संज्वाला-	६७८	शेषेषु देवतिर्यक्षु-	६७२	पङ्काशे कर्मणं तेजः	६९९
वेदोदीरणया जीवो-	६६७	शोकारत्यशुभोद्योत-	६८१	पङ्के सकर्मणं तेजः	६७७

णड्विंशत तदानाप्त	७१६	सन्त्यनन्तानुबन्धाख्या	६६८	सरसगसयमादिभ्यो	६९२
पाड्विंशत तदेकाग्र-	७१८	सन्त्येकेन्द्रियवद्वन्वा	७३३	सर्वत्र समदृग् वेत्ति	६७१
पोडशयत्त-पञ्चाक्षे	७३६	सप्ततिर्माहिनीयस्य	७००	सर्वत्रापि समोऽपक्ष-	६७१
पोडशप्रकृतीना तु	७२३	सप्तत्रिंशच्चतुर्विंश-	६८४	सर्वशीलगुणैर्मुक्त	६६४
पोडशप्रकृतीना तु	७३३	सप्तवज्रन्त्यपूर्वाख्या	७३८	सर्वसूक्ष्मेषु कापोता	६६९
पोडशैव कपाया स्यु-	६७४	सप्तविंशतिपाके तु	७२१	सर्वान्यन्तर्मुहूर्त्ताना-	७२०
पोडशैव कपाया स्यु-	६८४	सप्त स्युर्निर्वृताऽऽद्येषु	६७९	सर्वेऽपि मीलिता भङ्गा	७२५
पोडशैव च मिथ्यात्वे	६७६	मप्ताद्या द्वयोः सप्ता-	७२८	सर्वेऽप्येते भयेनोना	७२८
पोडशैव नमिथ्यात्वे	६९९	मप्ताना कर्मणा पूर्वं कोटी-	७००	सर्वे वन्वा मनुष्येषु	७३३
[स]		सप्ताना कर्मणा वन्वो	७०६	सर्वे वक्रगतौ द्व्यङ्गा-	६६७
सत्तास्थानेषु नाम्नोऽस्त्या-	७२०	सप्तापर्याप्तका सूक्ष्मो	७२५	सर्वोत्कृष्टस्थितीना हि	७०२
सत्त्वे चत्वारि पाकेऽष्टा-	७२१	मप्तापर्याप्तकेषु स्यु	७२५	सर्वोपरिमभागो हि	७०६
सत्त्वे चाद्य चतुष्क तु	७३३	सप्ताद्ये चरमेऽपूर्वोऽ-	७२३	सहस्राणि तु चत्वारि	७१८
सत्त्वेन चोपशान्ता ता	७२६	सप्ताद्ये चरमेऽपूर्वोऽ-	७३३	सागराणा त्रयस्त्रिंश-	७००
सत्त्वे नवोपशान्तान्ता	७०९	मप्ताष्टौ वा प्रवज्रन्ति	६७६	सातासातनरायुर्भि-	६७९
सत्त्वे पञ्चचतुस्त्रिंशद्ये-	७११	सप्ताष्टौ वा प्रवज्रन्ति	६९३	सातासाते स्थिरद्वन्द्वं	७०४
मदृष्टिस्तिरो चाष्टौ	७०४	सप्तैव काययोगा- स्यु	६६७	साश्लोऽष्ट चतुरेकाग्रा	७१२
गन्ति द्वादशसन्त्याने	७००	मप्रमादो हि देवायु-	७०२	सादयश्चाध्रुवा शेषा-	७०१
सत्ताम्यानानि पञ्चेषु	७२१	समके क्षपकेऽपूर्वं	७३२	साधारणो यदाहार-	६६६
सत्ताम्यानानि तत्संवा-	७२६	समादिचतुरस्र हि	६७४	सान्तरस्तद्विपक्षो वा	६८०
सत्ताम्यानानि तेषु द्वा-	७२५	समुदात्त गतो योगी	६७२	सान्द्यघातमपूर्णौ न	७१६
सह्ये येनाप्यसह्येन	६७१	सम्प्राप्तदि प्रमत्ताख्यो	६६७	साप्तविंशतमेतच्च	७२०
सशोपप्राप्त उत्कृष्ट-	७०६	सम्भूयात्मप्रदेशाना	६७२	सामान्यदेवभङ्गेषु	७४०
सयतेषु चतुर्धाद्यौ	६६९	सम्यक्त्वमय मिथ्यात्व	६७१	सामान्यैकेन्द्रियत्वाद्य	७१५
सयतेष्व्वाऽऽमसात्कुर्वन्	६६३	सम्यक्त्वस्याऽऽदिमो लाभ	६७२	सासना षोडशोनास्ता	७४१
सशयाज्ञानिकैकान्त-	६८३	सम्यक्त्वस्याऽऽदिमालाभा-	६७२	सासने नवतिमिश्रे	७२१
सस्यान तस्य तस्याङ्गो-	६७४	सम्यक्त्वात्तीर्थकृत्व चा-	७०६	सासादन प्रकर्षेण	६६३
सस्यानम्याय सहत्या-	६७७	सम्यक्त्व तीर्थकृत्वस्याऽ-	६७६	सा स्याद्वर्षशत वाधि-	७००
सस्यान-सहती चाद्ये	७००	सम्यक्त्व तीर्थकृत्वस्याऽ-	६९९	साहारे न प्रमत्तेऽप्ये	६८४
सस्यानादिषु भेदेऽपि	६६४	सम्यक्त्व तीर्थकृत्वस्या-	७३८	सुभगादेयपर्याप्त-	७३७
सस्यानेषु च पटस्वेक-	७१९	सम्यक्त्व वेदलोभोऽन्यो	७३६	सूक्ष्म साधारणाहार-	७३८
सजातीय निज त्यक्त्वा	६८५	सम्यक्त्व सहृतेश्चान्त्य	६७८	सूक्ष्म साधारणैकाक्षे	७०३
सञ्ज्वाल-नोकपायाणा	६६३	सम्यक्त्वात्प्रथमाद्भ्रष्टो	६६३	सूक्ष्मपर्याप्तके वन्ध-	७२५
सतिर्यगतिमेकाक्ष-	६९६	सम्यक्त्वात्प्रथमाद्भ्रष्टो	६७२	सूक्ष्ममायुश्चतुष्क च	७०४
सतिर्यगतिमेकाक्ष-	७१३	सम्यक्त्वान्यताद्येषु	६७२	सूक्ष्मवृत्तस्य सूक्ष्माख्येऽ-	७४१
सत्ताम्यानानि चत्वारि	७२१	सम्यक्त्वे सासनो मिश्र-	६६५	सूक्ष्मसाधारण श्वभ्र-	७०३
संस्थानस्याय सहत्या-	६९९	सम्यग्दृष्टौ भवेत्तीर्थकरा-	७०१	सूक्ष्मसाधारणापूर्णः	७१६
सस्यानस्याय सहत्या-	७३८	सम्यग्मिथ्यात्वपाकेन	६६३	सूक्ष्मसाधारणैकाक्ष-	७४१
सक्षिप्योक्तामिदं कर्म-	७३७	सयोगे द्वौ चतुष्क च	७३२	सूक्ष्मसाधारणोद्योता	६८०
मन्ति वादपर्याप्ते	७२५	सयोगे विंशति सैक-	७१९	सूक्ष्मसाधारणोद्योता	७३७

सूक्ष्मादिष्वयोगे च	७३३	स्थानानि त्रीण्यतः पञ्च	७३३	स्वपित्युत्थापितो भूयः	६७४
सूक्ष्मे सप्तदशाना हि	७०६	स्थानानि पञ्च पट् पञ्च	७२५	स्वप्रशंसाऽन्यनिन्दा च	६९३
सूक्ष्मोपशान्तक्षीण-	६६३	स्थानान्येकषडष्टाग्रा	७१६	स्वमुखेनैव पच्यन्ते	७०३
सूक्ष्मो मन्दानुभागो हि	७०३	स्थानयोर्गुणजीवाना	६६३	स्वल्पागमतया किञ्चि-	७३७
सोच्छ्वास चानपर्याप्त-	७१९	स्थावरापूर्णनिर्माणा-	४१४	स्ववेदोदीरणात्सज्ञा	६६५
सोच्छ्वासमानपर्याप्ता-	७२०	स्थावरापूर्णनिर्माण-	६९७	स्वीघादपूर्णतिर्यञ्च-	७३९
सोच्छ्वासमानपर्याप्त्य-	७१७	स्थितेरुत्कर्षका पञ्च-	७०२	[ह]	
सोद्योताशस्तगत्यन्य-	७१७	स्थित्युत्पादन्यैर्युक्त	६६८	हानिं नावेति वृद्धि वा	६७१
सोद्योतोदयपञ्चाक्षी	७१८	स्थिरादिपञ्चयुग्मानि	६८०	हास्य रतिर्जुगुप्सा भी-	६८०
सौधर्मादिष्वसंख्याब्दा-	६७२	स्थिरादिपङ्क्युगैर्वैक-	७१३	हास्य रतिर्जुगुप्सा भी-	७०४
सौधर्मैशानयो पीता	६७०	स्थिरादिपङ्क्युगैर्वैक-	६९६	हास्य रतिर्नृदेवश्च	७००
स्त्यानगृद्धित्रय तिर्य-	६७७	स्थिराऽऽहारद्विकाऽऽदेय	६९७	हास्यषट्क च पुवेदः	६८०
स्त्यानगृद्धित्रय तिर्य-	६८०	स्थिराहारद्विकादेय-	७१४	हास्यादि षट्कं पण्डस्त्री	६८४
स्त्यानगृद्धित्रय तिर्य-	६९९	स्थूले सूक्ष्मे त्वपर्याप्ते	७२५	हीनस्तृतीयकोपाद्यै-	७४२
स्त्यानगृद्धित्रय तिर्य-	७३८	स्यन्दते मुखतो लाला	६७४	हीना तीर्थकृता त्रिश-	६९७
स्त्यानगृद्धित्रय स्वभ्र	७३६	स्यात्तदेवानपर्याप्ती	७१६	हीना तीर्थकृता त्रिश-	७१४
स्त्रीपुत्रपुसका प्रायो	६६७	स्यात्पाञ्चविंशत तत्र	७१९	हीना द्वितीयकोपाद्यै-	७३९
स्त्रीपुत्रपुसकाख्याभि-	६६७	स्यात्पाञ्चविंशतिरत्र-	६९७	हुण्ड वर्णचतुष्क चो-	६९७
स्त्री-पण्डवेदनिर्मुक्ता-	६८५	स्यात्पाञ्चविंशतिस्तत्र	७१४	हुण्ड वर्णचतुष्क चो-	७१४
स्थान त्रिशतमेतत्स्या-	७१७	स्यान्मन पर्ययेऽप्योघः	७४१	हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्व-	७३८
स्थान दशनवाण्टौ च	७११	स्युः पुद्गलोदयाः पञ्च	७३७	हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्व-	७३८
स्थान त्रैशतमस्तीदं	७१९	स्युः सर्वेऽप्युपयोगेपु	७३१	हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्व-	७३९
स्थानानि त्रीणि तिर्यक्षू-	७२०	स्व-परोभयवाधाया	६६८	हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्व-	७४१

परिशिष्ट

श्री० ब्र० प० रतनचन्द्रजी मुल्गार (सहारनपुर) ने प्रस्तुत ग्रन्थका स्वाध्याय कर मूल एवं टीकागत पाठोंके विषयमें कितने ही स्थलोपर सैद्धान्तिक आपत्तियाँ उठाई हैं और उसके परिहारार्थ पाठ-मशौदनके रूपमें अनेक सुझाव दिये हैं, हम उन्हें यहाँ साभार ज्यों-का-त्यों दे रहे हैं और विद्वज्जनोंसे अनुरोध करते हैं कि वे उनपर गहराईके साथ विचार करें और जो पाठ उन्हें आगमानुकूल प्रतीत हों, उन्हें यथाम्यान सुधार लें। चूँकि मूलप्रतिमें वैसे पाठ उपलब्ध नहीं हैं, अतएव सुझाये गये पाठोंको हमने शुद्धि-पत्रके रूपमें नहीं दिया है। उनके द्वारा पृष्टी गई दो-एक बातोंका उत्तर इस प्रकार है—

पृ० १२ पर टिप्पणीमें जो “सवममेण सह आणयमिकम्य मय्य दिनानि” पाठ दिया है, वह आदर्श मूलप्रतिमें हाँथियेमें दिये गये टिप्पणके आधारसे दिया गया है।

पृ० २४ पर गाथाङ्क ११० में ११५ तकके अर्थमें जो अनन्तानुबन्धी आदि कपायोंके नामोंका उल्लेख किया गया है, उसका आधार श्वे० नवीन कर्मग्रन्थ भाग प्रथमकी निम्न गाथा है—

“जा जीव-वग्नि-चउमाम-परत्तगा निरय-तिरिय-नर-ग्रमरा।

मम्माणुसव्वविरई-अहसायवरित्तघायकरा ॥१८॥

इसके अनिरिक्त नेमिन्द्राचार्य विरचित कर्मप्रकृतिमें (जो कि अभी तक अप्रकाशित है) भी चारो गाथाएँ आई हैं और ये गाथाएँ गो० जीवकाण्डमें भी हैं। उनके उल्लेख टीकाकारोंन उनका अर्थ करते हुए कपायोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजयन्य और जयन्य अनुभागशक्तिक फलस्वरूप क्रमशः नरकादि गणियोंमें उत्पत्ति बतलाई है। इन दोनों टीकाओंका आधार लेकर प० हेमराजजीने आजसे लगभग तीनसौ वर्ष पूर्व उक्त गाथाओंका जो अर्थ किया है उसमें भी भेरे किये गये अर्थकी पुष्टि होती है। यहाँ उसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

“भावार्थ—आपाणरेखा समान उत्कृष्ट [शक्ति] समुक्त अनन्तानुबन्धी क्रोध जीवको नरगण्डिपे उपजावै है। हठ करि कुवाजुहै भूमिभेद तिस समान मध्यमशक्ति समुक्त अप्रत्यारयान क्रोध तिर्यचगतिको उपजावै है। धूलिरेपा समान [अ] जयन्यशक्ति समुक्त प्रत्यख्यान क्रोध जीवको मनुष्यगति उपजावै है। जहरेपा समान जयन्यशक्ति समुक्त मन्त्रलन क्रोध देवगति विप्रे उपजावै है।” (देखो पृष्ठ ३३)

इस टीकाकी एक हस्तलिखित प्रति मेरे नज़रमें है जो कि वि० सं० १७५३ के वैशाख सुदी ५ रविवारकी लिखी हुई है।

कमायपाठोंमें उक्त दृष्टान्त चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक और एकस्थानिक अनुभागशक्तिकोंके ही रूपमें दिये गये हैं, किन्तु वहाँपर उनके द्वारा नरकादि गणियोंमें उत्पन्न करानेकी कोई चर्चा नहीं है।

पृ० ३९५ पर गा० २२८ के अन्तमें ‘पमत्तिदरे’ पाठ आया है। मस्कृत टीकाकारने उसका ‘अप्रमत्ते’ अर्थ किया है और तदनुसार हमने भी अनुवादमें ‘अप्रमत्तगुणस्थान’ लिखा है। परन्तु श्री० ब्र० प० रतनचन्द्रजी मुल्गारका कहना है कि अप्रमत्तगुणस्थानमें २८ व २९ स्थानवाले नामकर्मका उदय नहीं है, केवल ३० स्थानवाले नामकर्मका उदय है। प्रमत्त गुणस्थानमें आहारकममुद्घातके समय २८ व २९ प्रकृतिक स्थान होना है। अतः मूल पाठ ‘पमत्तिदरे’ के स्थानपर ‘पमत्तविरदे’ पाठ कर देना चाहिए और तयैव ही मस्कृत टीका और अनुवादमें भी अर्थ करना चाहिए। पर चूँकि किमी भी मूल प्रतिमें ‘पमत्तविरदे’ पाठ हमें नहीं मिला और न मस्कृत टीकाकारको ही, अतः शुद्धिपत्रमें उनका यह संशोधन नहीं दिया गया है, पर उनका तर्क आगमका बल रखना है, इसलिए विद्वज्जन इसपर अवकाश विचार करें।

इनके अतिरिक्त उन्होंने और भी अनेक स्थलोपर पाठोंके संगोघनार्थ अनेक सुझाव उपस्थित किये हैं, जो कि निम्न प्रकार हैं—

पृष्ठ पंक्ति

- १११ ४ 'परिहारविशुद्धौ त एव २४ आहारकद्विकोना' द्वाविंशतिः २२ ।' स्त्रीवेदी व नपुंसकवेदी जीवोंके भी नहीं होता (धवल पु० २ पृ० ७३४) । अतः परिहारविशुद्धि समयमें स्त्रीवेद व नपुंसकवेद ये दोनों वधप्रत्यय भी कम होकर शेष २० वधप्रत्यय होने चाहिए (धवल पु० ८ पृ० ३०५) ।
- २५२ ४ व ८ 'पल्लासखेज्जभागूणा ॥४१८॥' (पंक्ति ४) । 'पल्यासख्यातभागहीना ।' (पंक्ति ८) के स्थानपर 'पल्लसंखेज्जभागूणा ॥ ४१८ ॥' 'पल्यसंख्यातभागहीनाः ।' होना चाहिए (महावध पु० २ पृ० २४३) ।
- २८७ २१ 'तन्न, मिथ्यात्वद्रव्यस्य देशघातिनामेव स्वामित्वात् ॥५०८-५०९॥' अनन्तानुबधीके मिथ्यात्वका देशघातिपना कैसे ?
- ३३१ २४-२५ "तच्चतुर्विधबन्धकानिवृत्तिकरणक्षपकश्रेण्या एकविंशतिकसत्त्वस्थाने २१ मध्यमकपायाष्ट-क्षपिते त्रयोदशक सत्त्वस्थानम् ।" क्षपक श्रेणीमें चारका वधस्थान सवेदके अन्तिम समयमें या अवेदमें होगा, उस समय आठ मध्यम कपायका सत्त्व नहीं होता ।
- ३३२ २,३,४,६,८ "ते पुन अहिया णेया कमसो चउ-तिय-दुगेणेण ॥५०॥" 'तत्थ तिवधए २८।२४।२१।४ । दुवधए २८।२४।२१।३ एयवधे २८।२४।२१।२।' (पंक्ति ३-४) । 'तानि पुनः क्रम-शश्चतुस्त्रिद्विकैकेनाधिकानि मोहसत्त्वस्थानानि ।' (पंक्ति ६) । 'तत्त्रिबन्धानिवृत्तिकक्षपके पुवेदे क्षय गते चतु सज्ज्वलनसत्त्वस्थान ४ ।' (पंक्ति ८) । तीन (मान माया लोभ) के वधकके क्रोधका क्षय हो जानेपर ३ का सत्त्वस्थान भी होता है । इसी प्रकार दो (माया, लोभ) के वधकके मानका क्षय हो जानेपर दो प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी होता है । इसी प्रकार एक (लोभ) के वधकके मायाका क्षय हो जानेपर एक प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी होता है । किन्तु ये सत्त्वस्थान मूल या टीकामें क्यों नहीं कहे गये ?
- ३४९ गुणस्थानकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका कथन नहीं पाया जाता, किन्तु पृ० ३८३ गाथा २०५-२०७ में गुणस्थानवत् जाननेकी सूचना की है । इससे ज्ञात होता है कि गुणस्थानकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका पाठ छूटा हुआ है ।
- ३७५ ३५ } तीर्थंकरके केवलिसमुद्घातमें नामकर्मका २२ प्रकृतिक उदयस्थान कहा है, जो ठीक नहीं
३७६ २ } है । प्रतर लोकपूरण अवस्थामें २१ प्रकृतिक उदयस्थान कहा है । उसके पश्चात् कपाट समुद्घातमें औदारिक मिश्र होनेपर औदारिकद्विक २, वज्रवृषभनाराच सहनन ३, उपघात ४, समचतुरस्रसंस्थान ५, प्रत्येकशरीर ६, के मिलनेपर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । परघात, प्रशस्तविहायोगतिके मिलनेपर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । पृ० ४२२ पर समुद्घात केवलीके २२ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं कहा है । सामान्य केवलीकी अपेक्षा २०, २६ व तीर्थंकर केवलीकी अपेक्षा २१, २७ का उदयस्थान कहा है ।
- ३८८ ३०-३१ "तिर्यग्गतिको मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टि 'देवगति-तदानुपूर्व्यद्वय उद्वेल्लयति, तदा अष्टाशीतिक ८८ । तथा नारकचतुष्कमुद्वेल्लयति, तदा चतुरशीतिकं ८४ ।" पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य देवगतिद्विक या नरकचतुष्ककी उद्वेलना नहीं करता । अतः यह पाठ इस प्रकार होना चाहिए—"तिर्यग्गतिको मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः देवगति-तदानुपूर्व्यद्वयं पूर्वभवे उद्वेल्य तस्य अष्टाशीतिकं ८८ । तथा नरकचतुष्कमुद्वेल्य तस्य चतुरशीतिकं ८४ ।" या 'मनुष्यो वा' पाठ निकाल दिया जावे । (गो० क० गाथा ६१४, ६१६, ६२४ ।)

पृष्ठ पंक्ति

४०२ १६, १७, १८ “तु पुनश्चतुर्गतिजीवानां त्रिशत्क-बंधे ३० पञ्चविंशतिकोदये २५ द्वानवतिक-नवतिक-सत्त्वस्थानद्वयं १२।१०। तिर्यङ्मनुष्येषु त्रिशत्कबंधे ३० पञ्चविंशतिकोदय २५ अष्टाशीतिक-चतुरशीतिसत्त्वस्थानद्वयम् ८८।८४।” नोट—मनुष्यमे २५ का उदयस्थान आहारक-समुद्घातके समय होता है। वहाँपर देवगति-सहित २८ का या तीर्थकर-सहित २९ का बंधस्थान संभव है। प्रमत्तगुणस्थान होनेके कारण आहारकद्विकका बंधस्थान संभव नहीं। प्रमत्तगुणस्थानमें ८८ व ८४ का सत्त्वस्थान भी संभव नहीं है। अतः ‘चतुर्गति-जीवानां’ के स्थानपर ‘त्रिगतिजीवानां’ पाठ होना चाहिए। तथा ‘तिर्यङ्-मनुष्येषु’ के स्थानपर ‘तिर्यक्षु’ पाठ होना चाहिए।

४१८ २६, २७ “सूक्ष्म अपर्याप्तिकोंके इक्कीस प्रकृतिक एक उदयस्थान जानना चाहिए। वादर अपर्याप्तिकोंके चौबीस प्रकृतिक एक ही उदयस्थान जानो ॥२७१॥” सूक्ष्म अपर्याप्तिकोंके विग्रहगतिमें नामकर्मका २१ प्रकृतिक उदयस्थान और शरीर ग्रहण करनेपर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसी प्रकार वादर अपर्याप्तिकोंके भी ये दोनों उदयस्थान होते हैं। अतः पाठ इस प्रकार होना चाहिए—‘सूक्ष्म अपर्याप्तिकों और वादर अपर्याप्तिकोंके २१ प्रकृतिक और २४ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं ॥२७१॥’ पृ० ४१७ मूलगाथा ३१ व ३२ में सातों अपर्याप्त जीव समासोमे प्रत्येकके दो-दो उदयस्थान कहे हैं।

पृष्ठ गाथा

४३४ २९६ “मिच्छाई देसंता पण चट्टु दो दोण्णि भंगा हु।” इसमें ‘दो दोण्णि’ का अर्थ ‘दो, दो और दो’ किया गया है किन्तु इसका अर्थ ‘दो दो बार’ होता है। अतः ‘दो तिण्णि’ पाठ होना चाहिए।

४५१ ३३४ } प्रमत्त गुणस्थानमें ९ योग तो तीनों वेदोंके उदयमें होते हैं। किन्तु आहारक-द्विक काय-
४५९ ३५२ } योगमें मात्र पुरुषवेद होता है अतः भंग लाते समय ९ योगसे गुणाकर २४ (४ कपाय
४६१ ३५५ } $\times ३$ वेद $\times २$ हास्यादि युगल) से गुणा करना चाहिए। आहारक और आहारक मिश्र
इन दो योगोंसे पृथक् गुणाकर ८ (४ कपाय $\times १$ वेद $\times २$ हास्यादि युगल) से गुणा करना चाहिए। एक साथ ग्यारह योगसे गुणा कर, गुणनफलको पुनः २४ से गुणा करना ठीक नहीं है।

४८४ ३९६-३९७ अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे एक प्रकृतिक सत्त्वस्थान मोहनीय कर्मका क्यों नहीं कहा ? मायाके क्षय होनेपर मात्र वादर लोभका सत्त्व रहता है।

४८६ ३९९ ‘छण्णव छत्तिय सत्त य एग दुयं तिय तियट्टु चट्टुं।’ अर्थ—६ ९ ६, ३ ७ १, २ ३ २, ३ ८ ४। ‘२ ३ २’ से दूसरे ‘२’ के लिए गाथामे कौन शब्द है ? गाथाका पाठ इस प्रकार होना चाहिये—‘छण्णव छत्तिय सत्त य एग दुयं तिय [दुयं] तियट्टु चट्टुं।’

५०० ४३७ ‘पणुवीसाई पंच य वंवा वेउव्विए भणिया।’ वैक्रियिक काययोगमे २५।२६।२८।२९।३० ये पाँच बंधस्थान नामकर्मके कहे हैं। किन्तु वैक्रियिक काययोगमें २८ प्रकृतिक बंधस्थान कैसे संभव है ? क्योंकि २८ का बंधस्थान देवगति या नरकगति सहित होता है। वैक्रियिक काययोग देव व नारकियोंके होता है जो देव या नरकगतिका बंध नहीं करते।

५०१ ४३९ आहारक काययोगियोंके नामकर्मका ९१ व ९० का सत्त्वस्थान कैसे सम्भव है ? क्योंकि आहारक काययोगके आहारक द्विकका सत्त्व अवश्य होगा।

५०३, ४४४ व टीका “अडवीस” के स्थानपर ‘णव वीस’ होना चाहिए। क्योंकि २८ प्रकृतिक नामकर्म उदय-स्थान चारों गतियोंमें छहों पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेसे पूर्व होता है और विभंगज्ञान मनः-

पृष्ठ गाथा

पर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् होता है। तथा विभंग ज्ञानियोंके ८८, ८४, ८२ का सत्त्व-स्थान भी नहीं होना चाहिए (गौ० क० गाथा ७२४)।

५०६ ४५२ असंयमोके नामकर्मका ८० प्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव नहीं है, क्योंकि अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थानमें सम्भव है। किन्तु देवद्विककी उद्वेलना होनेपर ८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव है। अतः गाथा ४५२ में ८० के स्थानपर ८८ होना चाहिए।

५०७ ४५६ तेज पद्मलेख्यामें नामकर्मका २६ प्रकृतिक उदयस्थान भी सम्भव है। जो सम्यग्दृष्टि देव मरकर मनुष्योमे उत्पन्न होता है उसके शरीर ग्रहण करनेपर २६ प्रकृतिक उदयस्थान तेज व पद्म लेख्यामें होता है। (पृ० ३८२ गा० २०४, पृ० ३७९ गाथा १९५)

५१२ ४६८ असंज्ञी जीवोमे नामकर्मका २४ प्रकृतिक भी उदयस्थान है, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवोमें शरीर ग्रहण करनेपर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

५१३ ४७१ अनाहारकोमे नामकर्मके ३० व ३१ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होते। १४ वें गुण-स्थानमें भी ९ व ८ प्रकृतिक नामकर्मका उदयस्थान होता है। १४ वें गुणस्थानवाले अनाहारक है। (देखो, पृ० ३८३ व पृ० ५०८ गा० ४५८) अतः गाथा ४७१ में 'चउ उर्वारि' के स्थानपर 'द्वयं उर्वारि' होना चाहिए।

विद्वान् पाठक गण उक्त सुझाये गये पाठोके ऊपर विचारकर आगमानुकूल अर्थका अवधारण करें।

—सम्पादक

शुद्धि-पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	२९-३०	और अप्रतिष्ठित ये	के पर्याप्त और अपर्याप्त ये
९	४-५	मे वादर चतुर्गति सप्रतिष्ठितके चार	में, इतरनिगोदके वादर सूक्ष्म पर्याप्त तथा अपर्याप्त अर्थात् वादर इतरनिगोद पर्याप्त, वादर इतरनिगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म इतरनिगोद पर्याप्त, और सूक्ष्म इतरनिगोद अपर्याप्त, ये चार
१०	२१	ये प्राण	ये द्रव्य प्राण
१०	२३-२४	आदिको तथा वचन	×
१०	३३	वीहदियादि	एहदियादि
१२	५	वा तीव्र उदय	×
१३	२७-२८	और युगके आदिमें मनुओसे उत्पन्न हुए हैं	×
१८	३२	गो० जी० २०७	गो० जी० २१५
२३	५	भी आच्छादित करे	भी दोपसे आच्छादित करे
२३	३२	पृ० २४१	पृ० ३४१
२५	३०	पृ० ३५४	पृ० ३५१
४२	१२	पहले और आठवे	पहले और सातवे
२७	२७	द्रव्यसयम	सयम
२७	३२	"	"
२८	१	भावसयमका स्वल्प	×
२८	४	विरत होना, सो भावसयम	जो विरतिभाव है सो सयम
४०	२७	कर, कोई	कर, कोई शाखाको काटकर, कोई
४१	३५-३६	ध० १, ३, २ गो०	ध० भा० ४ पृ० २९ गो०
४९	२०	११।	१३।
४९	३३	उच्छ्वास, उद्योत	उच्छ्वास, आतप, उद्योत
५०	१२-१३	उदय	वन्व
	१४-१५		
५३	२८	जानेपर नाम और गोनको छोड़कर	जानेपर मोहनीयको छोड़कर
६८	२४	तत्र सत्त्वम् १६।	तत्र तासा व्युच्छेद १६।
		०	×
६९	२३, २४,	उवसते १०१	
	२५	४७	
७०	१९	चाँतीसका सत्त्व है।	चाँतीसका असत्त्व है
७०	२८-३०	उपशान्तमोह व्युच्छिति नहीं होती	×
७३	२	पञ्चक ५	पञ्चक ५ [औदारिकादिचारोबन्धनपञ्चक ५]
७४	१	स्वात्मलाम	स्वात्मलाम
७५	२७	अप्रत्याख्यानचतुष्टयस्य देशविरते	अप्रत्याख्यानचतुष्टयस्याविरते युगपद् बन्धोदयो विच्छेदो भवत ४/प्रत्याख्यानचतुष्टयस्य देशविरते

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७५	२९	भवत २/९	भवत १/९
७६	१९	संहननस्य ७/२	संहननस्य ७/१
७६	३१	अस्थिरस्य १३/६ अशुभस्य	अस्थिरस्य १३/६ [शुभस्य १३/८] अशुभस्य
७६	२३	तीर्थविधायिताया १३/८	तीर्थविधायितायाः १४/८
७९	२२	मनुष्यद्विक २ औदारिक-	मनुष्यद्विकं २ तीर्थद्विकं २ औदारिक-
७९	२३	समचतुरस्रसंस्थानं २	समचतुरस्रसंस्थान १
८२	४	गिरय-	गिरय-
८२	३९	X	१ सं० पञ्च सं० ४ 'श्वभ्रमानवदेवेसु' इत्यादि गद्यभाग. (पृ० ७४)
८३	२२	पर्याप्तक जीवसमास	अपर्याप्तक जीवसमास
८४	२१	केव० २	केव० १
८५	५	एव २।	एव १।
८८	२०-२१	मिथ्यादृष्टि सन्नी चार, तथा	X
८९	८	१०,	१२,
९१	२८	२ चेति	३ चेति
९१	३०	९ स्युः	६ स्युः
९४	२२	कर्मणकाययोग	वैक्रियिकमिश्रकाययोग
९५	२५	१० योगा	१५ योगा
१०१	२५	दश गुणस्थानानि भवन्ति १० ।	द्वादश गुणस्थानानि भवन्ति १२ ।
१०२	१९	मि० सा० दे० ६ ६ ६	मि० अ० दे० ६ ६ ६
१०२	३३	१,११७।	१,१७७
१०४	२१	मध्ये असत्यमृपायोगौ मुक्त्वा अन्ये अनुभय-	मध्ये मुक्त्वा अन्ये असत्यमृपायोगौ अनुभय-
१०७	१०	११। वादरलोभ	११। संज्वलनमाया विना सप्तमे भागे दश १०। वादरलोभ
१०७	२५	न० ५५	न० ५३
१०७	२८	प० २२	प० २०
१११	४	द्वाविंशति २२।	विंशति. २०।
१११	२३	आहारकद्विके सिवाय शेष वाईस	आहारकद्विक, स्त्री तथा नपुंसक-वेदके सिवाय शेष वीस
		अनि० सू०	अनि० सू०
११४	५	२ २ २	२ २ २
		२ १	३ २
१२०	१८	मिथ्यात्व खमिन्द्रिय	मिथ्यात्व १ खमिन्द्रिय

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२१	२०	५।६।४।३।२।१०	५।६।४।३।२।१०
१२१	२९	" "	" "
१२२	२	" "	" "
१२३	८	२ × १	२ + १
१२३	२६	४।४।३	४।३
१२५	३६	२।२ इनका	२।२।१० इनका
१२६	२४	एक, काय पाँच	एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच
१२७	१२	२।२।१०	२।१०
१२७	२०	२।२।१३	२।१३
१२९	२९	२।२।१३	२।१३
१३०	२	२।२	२।२।१३
१३१	९	२ योगत्रयोदशक	२ एकभययुग्म १ योगत्रयोदशक
१३५	५	४।२।२।२ एदे	४।२।२।१ एदे
१३५	६	३।२।१२	३।२।३।१२
१३५	२७	३।२।२।१२	३।२।१२
१३५	३६	६।२०।४।३	६।२०।४
१३६	७	३।२। वै० मि०	३।२।१२ वै० मि०
१३७	८	४।२।२।१। एते	४।२।२।२।१। एते
१३७	२३	४।२।२।१। एए	४।२।२।२।१। एए
१३८	२३	३।२।२।१२	३।२।१२
१३९	४	२१५२	११५२
१४४	१५	३।२।१०	३।२।२।१०
१४९	३०	रहिता	हता
१५०	१२	६।१५।४।२।२ परस्परण	६।१५।४ परस्परण
१५०	१८	६।६।४।२।२।२ परस्परण	६।६।४ परस्परण
१५१	६ और ७ के बीचमें	×	दसयोग-तिवेदभगा—८०६४०
१५१	१८	हास्यादि २ भय २ योगा	हास्यादि २ योगा
१५२	९	हास्यादि २ भययुग्म २ गुणिता ९६०।	हास्यादि २ गुणिता ९६०। भययुग्म-
१५२	१२	३।२।१०	३।२।२।१०
१५२	१२ और १३ के बीचमें	×	३६०।१।२।१ परस्परं गुणिता ७२०
१५२	२४	१०८०००	१००८००
१५३	४	वैक्रियिकमिश्रेण	औदारिकमिश्रेण
१५४	१६	५ १	६ १
१५४	१७	६ २	५ २
१५४	२७	१।५।३।१।२।१ '६।४।४	१।५।३।१।२।१ '६।६।४
१५६	८	२० अशे तथाकृत द्वि २ त्रि ३ हारेण भक्ते	२० त्रि अशे ६० तथाकृत द्वि २ त्रि ३ हारेण ६ भक्ते
१५८	११	६।१०।४।२।२।१।	६।१०।४।३।२।१
१५८	३३	२५९६०	२५९२०

पृ०	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२७	१६	६२ ९० १०७ ११९	६२ ९८ १०३ ११९
२२७	२३	६५	६७
२२८	२६	१३	१०३
२२९	९	मि० अ० १७२।	मि० १७०। अ० १७२।
२३०	४	१७१।	१७२।
२३०	११	हुण्डकामम्प्राप्त १	हुण्डकासम्प्राप्त २
२३१	७	मि० सा०	मि० सा०
		१५ २९	१५ २४
		१०५ ९४	१०९ ९४
		० १५	० १५
२३२	११	गुणस्थानानि १४।	गुणस्थानानि १३।
२३२	३०	तीर्थञ्च	तीर्थङ्करञ्च
२३५	२१	७२	७७
२३५	२४	कुन २	कुन ?
२३६	८	सूक्ष्मलोभस्य वन्वोऽस्ति	सूक्ष्मलोभस्य [वन्वाभावात्सप्तदशप्रकृतीनां] वन्वोऽस्ति
२३६	१३	अठारह प्रकृतियों	अठारह तथा सूक्ष्मसामान्यके सतरह प्रकृतियों
२३६	३१	९	१
३३७	४	४२	४३
२३७	२८	मत्यादि चार । केवलज्ञानमे	मत्यादि तीन । मन पर्यय ज्ञानमे प्रमत्तादि सात गुणस्थान होते हैं । केवलज्ञानमें
२३८	१७	११७ ७४ ७४ ७७	११७ १०१ ७४ ७७
२४०	२६	१६ ० ० ०	१६ ० ० १
२४०	३०	मनुष्यायु, तिर्यगायु, मनुष्यद्विक,	नरकायु, तिर्यगायु, नरकद्विक
२४१	२१	औदारिक-तदङ्गोपाङ्गद्वय	औदारिक-तदङ्गोपाङ्गद्वय
२४१	२५	प्रकृती २ प्रमत्तोपशम-	प्रकृतीरप्रमत्तोपशम-
२४२	३२	नियमिद्विक २	तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वय २
२४४	२५	३०००।२०००	३०००।७०००।२०००
२४७	१८	साग० ३२	साग० ३३
२५३	३६	जघन्य	अजघन्य
२५४	२३	अनादि	X
२५६	१८	सप्तदशोत्तरशतमर्व-	सप्तदशोत्तरशतमर्व-
२५६	२०	उत्कृष्टविशुद्ध तद्विपरीतेनोत्कृष्टमविशुद्ध	उत्कृष्ट विशुद्ध तद्विपरीतेन अविशुद्ध
२५६	३२	तद्देवायुर्वन्वान्निरतिशये	तद्देवायुर्वन्वान्निरतिशये
२५७	८	अप्रमत्तसयतके	प्रमत्तसयतके
२५८		गाथा ४३२ के अर्थके नीचे दिये गये उत्थानिका वाक्यको इसी गाथाके ऊपर पढ़ें ।	
२५८	२३	निर्वचनाति ३।	मुनिर्वचनाति ३।
२५९	२३	मेणाण पयडीण	सेसाण पयडीण
२६१	२२	जघन्योत्कृष्टवन्वा-	जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टवन्वा-

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६१	२९	० ध्रुव अध्रुव	० ० अध्रुव
२६१	३०	० " "	० ध्रुव "
२६१	३१	० " "	० ० "
२६१	३२	० " "	० ध्रुव "
२६२	११	५ उत्कृ०	४ उत्कृ०
२६३	२३	साद्यध्रुवान्या अजघन्या-	साद्यध्रुवान्या जघन्यानुभागवन्व साद्यध्रुवभेदान्या अजघन्या-
२६३	२५	४३ जघ० ०	४३ जघ० सादि ०
२६३	२६	४३ अज० अना०	४३ अज० " अना०
२६३	२७	४३ उत्कृ० ०	४३ उत्कृ० " ०
२६३	२८	४३ अनु० ०	४३ अनु० " ०
२६६	२९	आदेय १	अनादेय १
२७०	३१	वण्णचउक्क पसत्य	वण्णचउक्कापसत्यं
२७१	१०	उपघात. १ प्रगस्तवर्ण-	उपघातः १ अप्रगस्तवर्ण-
२७१	२२	और प्रगस्त वर्ण	और अप्रगस्त वर्ण
२७४	४	यद्य परिवर्त्तमान-	यदा परिवर्त्तमान-
२७४	१६	सस्यानं १, संहननं १	संस्यानं ६, महनन ६
२७४	१७	मनुप्यट्टिकं ५	मनुप्यट्टिक २
२७४	१७	देवट्टिकं २	स्वरट्टिकं २
२७४	३०	-वरण १ निद्रानिद्रा	-वरणं १ [निद्रा १ प्रचला १] निद्रानिद्रा
२७५	१	कृत. १	कृतः ?
२७७	४	तामु घातिन्य. ७५ ।	तासु अघातिन्य. ७५ ।
२७९	११	ये सर्व ६१	ये सर्व ६२
२८०	२३	सूक्ष्मचतु	सूक्ष्मचतु
२८३	८	णाणंतरायदयय	णाणंतरायदमयं
२८६	२९	मिश्रगुणस्यानको	चौये गुणस्यानको
२८८	४	और प्रकृतियोंका अल्पतर वन्व	और अल्प प्रकृतियोंका वन्व
२८८	६	तथा प्रकृतियोंका अविकतर वन्व	तथा अविक प्रकृतियोंका वन्व
२८८	१७	देवगति-नरकगति	नरकगति
२८९	२७	ये ३७	ये २७
२९१	२८	पत्यस्याविभागप्रतिच्छेदाः	तस्याविभागप्रतिच्छेदा-
		८ ७ ७ ६	८ ७ ६
२९७ १६, १७, १८	८ ८ ८ ८		८ ८ ८
	८ ८ ८ ८		८ ८ ८
२९७	२६	अष्टवाष्टवा सप्तवा	अष्टवाष्टवा अष्टवा
२९७	२९	८ ८ ७ ७ ७	८ ८ ८ ७ ७
२९७	३६	तथा आठ प्रकृति मत्त्वस्यान,	X
		८ ७	८ ७
२९८ २२, २३, २४	भवतः ८ ८		भवतः ८ ८
	८ ७		८ ८

पृ०	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		० ०	० ०
३०२	२४, २५, २६	सत्ता ४ ४	सत्ता ४ ५
		६ ६	६ ६
३०३	३	४१४	४१५
३०३	२६	भङ्गा । पञ्च	भङ्गा पञ्च
३११	४१	ति २।१ ति २।३ २।२	ति २।१ ति २।१ २।२
३१३	६	२।२	३।२
३१३	३७	नौ वन्व	नौ भङ्ग
३१५	११	३।२१।	३।२।१।
३१६	१९	२२	२ २
३१६	२०	सासणे २० पत्थारो	सासणे २१ पत्थारो
३२१	१४	पुन मध्यमप्रत्याख्यान	पुन मध्यमाप्रत्याख्यान
३२२	२	उदयस्था०	उदयस्था०
३२२	१२	२१, १२	२१, १३, १२
३२३	९	२१	२१
		३	९
३२३	१७	५ ४	५ ४
		२ ४	२ २
३२४	८	२०	२२
३२४	१४	मिश्रसहितमण्डक	मिश्ररहितमण्डक
३२४	१७	१२ ९	१३ ९
३२८	२	५ ४	५ ४
		२ १	२ २
		४	४
३२८	३	१	२
		१२	१२
३२९	६	सुहमे ।	सुहमे १।
३२९	१४	१२।१२।४।३।२।१	१२।१२।४।३।२।११
३२९	२४	(यथा-२।२।१।१।१।१)	(यथा-२।२।१।१।१।१।१)
३३३	१४	सत्ताईस	X
३३३	२९-३२	किन्तु जिस सत्ताईस प्रकृतिक सत्त्व- स्थान होता है ।	X
३३४	२५	तेईस और	तेईस, वाईस और
३३८	१५	नारकी	X
३४०	१९	पर्याप्त १ स्थिरा-	पर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिरा-
३४०	२७	दुर्भग और यशस्कीर्ति	दुर्भग, यशस्कीर्ति
३४३	३२	सुस्वर और यश कीर्ति	सुस्वर, यश कीर्ति
३४४	३	(२ X २ X = ८)	(२ X २ X २ = ८)
३४४	२६	।२।४।५	।२।२।५
३४५	५	१।२।१	१।१।१

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४५	११	(६ × ६ × २ × २ × २ × २ × २ × २ =)	(६ × ६ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ =)
३४६	२३	प्रमत्तसयत	×
३४७	३	प्रमत्त	×
३४९	२	१ + १ + १ + ८ + १ + ८ = २०	१ + १ + ८ + ८ + १ = १९
३४९	३	(तिर्यग्गति	(नरकगति-सम्बन्धी १ + तिर्यग्गति
३४९	४	२० =	१९ =
३५०	१२	सयुक्त उदयस्थान	सयुक्त पञ्चीसप्रकृतिक उदयस्थान
३५२	१८	३०, १	३०, ३१।
३५३	१४	९ दुर्भग १	२ दुर्भग १
३५५	१७	वर्षसहस्राणि १०००१ द्वाविंशति	वर्षसहस्राणि द्वाविंशति
३५५	३१	स्थान भवति ।	स्थान न भवति ।
३६७	२३	उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।	उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्य है ।
३६७	२४	अनन्तमुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
३६८	१७	षड्विंशतिक २७	षड्विंशतिक २६
३७६	१६	स्थानके ३	आठ प्रकृतिक व नौ प्रकृतिक स्थानके ३
३८०	२३	मिश्रकाययोग	मिश्रकाययोग
३८०	२९	-काययोगमें	काययोगमें
३८१	१२	२९।३०	२९।३०।३१
३८१	२२	उनतीस और तीस प्रकृतिक और आठ	उनतीस, बीस और इकतीस प्रकृतिक नौ
३८१	३७	केवलज्ञानमें इकतीस, 'तीन	केवलज्ञानमें तीस, इकतीस, 'चार
३८२	१३	२०।२१।२४।२६।२७	२०।२१।२६।२७
३८३	२	२७।२८।३०।३१	२७।२८।२९।३०।३१
३८३	४	२५।२७	२५।२६।२७
३८३	५	२१।२५।२७।२८ २०।२१।२५	२१।२५।२६।२७।२८ ' २०।२१।२५।२६
३८३	१३	और छत्तीस	×
३८३	१४	शेष सात	शेष आठ
३८३	२९	२१।२४।२६।२७।२८।	२१।२५।२६।२७।२८।
३८४	२२	स्वशरीरेषु	सुस्वरेषु
३८४	२९	शरीरमिश्रे २४।२५।	शरीरमिश्रे २४।
३८४	३०	२६।२७। उच्छ्वासपर्याप्तौ २६ उदयागत	२५।२६। उच्छ्वासपर्याप्तौ २६।२७। उदयागत
३८४	३३	शरीरपर्याप्तौ २७ उदेति ।	शरीरपर्याप्तौ २८।२९। उदेति ।
३८५	५	शरीरमिश्रपर्याप्तौ ३५	शरीरमिश्रपर्याप्तौ २४
३८५	६	शरीरपर्याप्तौ २६	शरीरपर्याप्तौ २५, २६
३८५	२२	६३।९२।९१।९०।८८।८२।८२	९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२
३८७	८	मनुष्यद्विक	नरकद्विक
३८८	२२	९३।६२।६१।९०।	९३।९२।९१।९०।
३८८	३०	८१। तिर्यग्गतिको	८२। तिर्यग्गतिको
३८९	७	मिस्से ९२।६०।	मिस्से ९२।९०।

पृ०	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८९	८	देवेसु ९३।९२।९१।६०।	देवेसु ९३।९२।९१।९०।
३८९	१०	द्विनवतिक ९०	द्विनवतिक ९२
३८९	१५-१६	तीर्थयुत ९२ न आहारयुत चास्ति ९०,	तीर्थयुत न, आहारयुत चास्ति ९२।९०,
३८९	२६	मि० ९२ ९१ ८८ ८४ ८२	मि० ९२ ९१ ८८ ८४
३९०	३	सू० ९३ ९२ ६१ ९०	सू० ९३ ९२ ९१ ९०
३९०	१८	८८ ८४ ८२	८८ ८४
३९०	३१	४ १० ९	१० ९
३९१	९	३०।९।८।	३०।३१।९।८।
३९१	१०	७८।१०।९।	७८।७७।१०।९।
३९२	२७	९९, ९०, ८८, ८४	९२, ९०, ८८, ८४
३९७	१	१ प्रथममस्थान १	१ वैक्रियिकशरीर १ प्रथमसस्थान १
३९७	३६	२५२-२५१	२५०-२५१
३९८	२३	९१।९२।	९१।९३।
३९८	२९-३१	जो असयतसम्यग्दृष्टि आदि देवलोकको जाते हुए कामेणकाययोग	जो असयत सम्यग्दृष्टि देव या नारकी तीर्थकर-प्रकृतिका वध कर रहा है, वह मरण करके मनुष्यगतिको जाते हुए विग्रहगतिमें तीर्थकर प्रकृति सहित देवगति युत २९ प्रकृतिक स्थानका वध करता है, उसके कामेणकाययोग
३९९	२८	८८ द्व्यशीतिक	८८ चतुरशीतिक ८४ द्व्यशीतिक
४०१	२२	२७।२८।	X
४०१	२४	वन्ध १९ म० ।	वन्ध २९ म० ।
४०१	२५	२७।२८।	X
४०१	२६	म० ९३।९०।	म० ९२।९०।
४०३	२७	मनुष्यगतियुत	X
४०३	२८	प० म० म० ती०	प० उ० म० ती०
४०३	२९	प० ति०।उद० २१ प० ति० ।	प० ति० उ०।उद० २१ प० ति०-
४०३	३१	सत्ता ९१।वशा	सत्ता ९३।९१।वशा
४०४	१	२१।२४।२६।३०।३१।स० ९०।	२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ स० ९२।९०।८८।८४।८२।
४०४	१६	८२, ९०	९२, ९०
४०८	३६	म० ६ ४	म० ६ ६
४०८	३७	४	०
४०९	४	४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५	४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४
४०९	५	९ ९ ९ ९ ९ ६ ४	९ ९ ९ ९ ६ ६ ४
४०९	२७	और पाँचप्रकृतिक	और छहप्रकृतिक
४११	२२	अयोगिकेवलीमें भी ये ही दो भङ्ग	अयोगिकेवलीमें भी ये ही दो भङ्ग वन्ध विना
४११	२३	वेदनीय कर्मके वन्धका अभाव	वेदनीय कर्मकी किसी एक प्रकृतिकी सत्ताका अभाव
४११	२४	वधके विना	X

पृ०	पक्ति	श्रुद्ध	शुद्ध
		म ३ म ३ ०	म ३ ०
४१३	१-२-३	ति २ ति २ ति २	ति २ ति २
		ति २ म २ ति २ ति २ ति २ म ३	ति २ म ३ ति २ म ३
४१३	१७	स० २ २।२ ३।२ २।२ २।३	स० २ २।२ २।२ २।३ २।३
		०	० ३ ०
४१३	२४-२५-२६	म ३	म ३ म ३ म ३
		३।२	३।२ ३।३ ३।३
४१३	३५	तिर्यगायुसम्बन्धी	तिर्यचोमे आयुसम्बन्धी
४१३	३५	मनुष्यायुसम्बन्धी	मनुष्योमे आयुसम्बन्धी
४१३	३८	केवलीके ६ भङ्ग वतलाये गये हैं ।	केवलीके १ भङ्ग वतलाया गया है ।
४१३	३९	२८ + ९)	२८ + १)
४१५	२०	सप्तिकाकार	सप्ततिकाकार
४१८	१०	य पज्जत्ते	अपज्जत्ते
४१८	१३	”	”
४१८	२५	वादरपर्याप्तियो	वादरापर्याप्तियो
४१९	२६	२२, ९०,	९२, ९०,
४२१	१८	३१। उदया	३१।१। उदया:
४२१	२४	२३ २१।२१ ९२	२३ २१।२४ ९२
४२१	२६	८२	८८
४२१	२८	२०	३०
४२३	१८	५ ५ ० ० ०	५ ० ० ० ०
४२४	१८	६। एता	६। षट् प्रकृतयः सत्त्वरूपाश्च ६। एता
४२७	९	४ ४ ०	४ ० ०
४२७	१०	४।५।४ ४।५।४ ४।५।४	४।५ ४।५ ४।५।४
४२७	१३	० ४ ० ० ०	० ० ० ० ०
४२८	१९	व० १ १ १ १	व० १ १ ० ०
४२८	२२	व० ० ०	व० १ १
४३१	३४	णिरयालग उदय वध मणुयालग ५ ।	णिरयालग वध मणुयालग उदय दो वि सता ५ ।
४३२	१	दो वि सता तिरियालग	तिरियालग
४३३	८	षष्ठः ५ ।	षष्ठ ६ ।
४३३	२३-२८	मि०	मि०
		५	३
		८	५
		८	५
		५	३
		२६	१६
४३४	२६	२ १ १ १ १ १ १ १ १ १	२ १ १ १ १ १ १ १ १ २
४३७	३०	२ २ २ २ २ २	२ २ २ २ १ १
४३७	३६	२ २ २	२ २ २।१

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३८	४	४।३।२।	४।२।
४४०	२९	९ ९ ७ ९	९ ९ ९ ९
४४१	३२	शेषा अपूर्वकरणस्य	शेषा अनिवृत्तिकरणस्य
४४२	४	क्षायोपशमिकसम्यक्त्वौ	क्षायोपशमिकसम्यक्त्व भी होता है, अतः
४५०	९-१०	७ ८।८ चतुर्भङ्गा	७ ८।८ चतुर्भङ्गा
४५१	३१	मिथ्यादृष्टौ ८०।१२। सासादने	मिथ्यादृष्टौ ८०।१२।गु० २४। सासादने
४५२	२६	(२२०८ × ११५२	(२२०८ + ११५२
४५५	१७	भवन्ति १४।	भवन्ति १७।
४५५	३२	२६ भङ्ग	३६ भङ्ग
४५५	३३	२६ =) १४४	३६ =) १४४
४५६	१६	अनि० ९ ९ १२ १०८	अनि० ९ १ १२ १०८
४५६	१७	९ ४ ३६	९ १ ४ ३६
४५६	१८	सूक्ष्म० ९ ९ १	सूक्ष्म ९ १ १ ९
४५७	२	चालीस और	चबालीस और
४६१	२६-२८	मासणे उदया ८८	सासणे उदया ८।८
४६४	५	१९१६।५१२	९२१६।५१२
४६४	२४	सासादन १३	सासादन १२
४६७	५	अ० ८ ६४ ६	अ० ८ ६० ६
४६७	२२	सासादन ५ ८ २४	सासादन ५ ४ २४
४६७	२४	अविरत ६ ८ २५	अविरत ६ ८ २४
४६७	३१	सूक्ष्मसाम्प० ७ १ १	सूक्ष्मसाम्प० ७ १ ७
४६८	१४	इस प्रकार हैं—६८, ३२	इस प्रकार हैं—६८, ३२, ३२
४७०	८	दे० ५२ ६ २१२ २४	दे० ५२ ६ ३१२ २४
४७०	२८	अपूर्वकरण ७ २० २४ ३६६०	अपूर्वकरण ७ २० २४ ३३६०
४७१	२१	८ ८ ८ ८ ८	८ ८ ८ ८ ४
४७५	१७	१९१	१९२
४७५	१९	१६०	३६०
४७५	२३	२	२०
४७५	२४	१२ ४४ १	१२ २४ १
४८४	१५	सासादनमें २,	सामादनमें २८, (इस पंक्तिको पंक्ति ७ के पश्चात् पढ़ें)
४८४	२१	अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें २८, १४, २३,	अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें २८, २४, २३,
४८९	२८	प्रकृतिक ९० होते हैं ।	९० प्रकृतिक होते हैं ।
४९०	१	गुणस्थान	उदयस्थान
४९१	२६	८९।७९	८०।७९
४९२	३	उपरिम दो दो छोड़कर	उपरिम दो छोड़कर

पृ०	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९२	३३	क्षी० ० २ ३०	क्षी० ० १ ३०
४९३	३	८० २९ ७८ ७२ १०	८० ७९ ७८ ७७ १०
४९४	३	२८।२९	२७।२८।२९
४९५	४	वियासीको	वियासीको
४९५	२७	तिर्य० ६ २२, २५, २६, २७, २९,	तिर्य० ६ २३, २५, २६, २८, २९,
४९५	३२	देव० ४ २५, २६, २८, २९, ३० ।	देव० ४ २५, २६, २९, ३० ।
४९५	२५	टीकामे	टीकामे
४९८	१६	। अष्टाविंशतिकवर्जितानि उदयस्थानान्याद्यानि अष्टाविंशतिकवर्जितानि । उदयस्थानान्याद्यानि	
४९८	१८-२०	स्थावरकायिकोमे ' प्रारम्भके	स्थावरकायिकोमे २८ को छोड़कर प्रारम्भके
४९८	१९	तथा अट्टाईसको छोड़कर आदिके	तथा आदिके
५००	७	उदयस्थाने द्वे चतुर्विगतिके	उदयस्थाने द्वे षड्विगतिक-चतुर्विगतिके ।
५०२	२	२८।२९।३०।३१।	२७।२८।२९।३०।३१।
५०६	२०	२१।२४।२५।२६	२१।२५।२६
५०७	१४	८८।८४।	८८।८४।८२
५०९	३	ये दश वन्वस्थान	ये छह वन्वस्थान
५०९	९	नोभव्याभव्ये अयोगे	नोभव्याभव्ये सयोगे अयोगे
५०९	२४	नवतिकादीनि	त्रिनवतिकादीनि
५११	२	एकोनत्रिंशत्कैर्कत्रिंशत्कानि	एकोनत्रिंशत्कैर्कत्रिंशत्कानि
५१३	२४	व० ६ २३, २४, २६	व० ६ २३, २५, २६
५१४	४	व० ८ २२, २५	व० ८ २३, २५
५१४	३६	व० ५ २५, २६, २८, २९, ३० ।	व० ४ २५, २६, २९, ३० ।
५१५	६ व ९	स० ४ ९३, ९२, ९१, ९० ।	स० २ ९३, ९२ ।
५१५	२६	उ० ३ २८, ३०, ३१ ।	उ० ३ २९, ३०, ३१ ।
५१५	२७	स० ६ ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ ।	स० ३ ९२, ९१, ९० ।
५१६	३८	उ० ७ २१, २५, २७, २८, २९, ३०, ३१ ।	उ० ८ २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ।
५१७	२	" " "	" " "
५१८	२	उ० ६ २१, २६, २८, २९, ३०, ३१ ।	उ० ७ २१, २४, २६, २८, २९, ३०, ३१ ।
५१८	१२	उ० ५ २१, ३०, ३१, ९, ८ ।	उ० ३ २१, ९, ८ ।
५२१	१०	इन इक्कीस-	इन इक्कालीस
५२४	१	(४७)	(४३)
५२५	५	अ० ४३ अ० ४३	अ० ४६ अ० ४३
५२५	१२	तिरेपन	तिरेसठ
५२६	१०-११	गुणस्थानके अन्तिम समयमें	गुणस्थानमें
५२९	१२	भाष्यगाथाकार	मूल सप्ततिकाकार
५३१	६	ऊणसंजोजणविहिं	अणसंजोजणविहिं
५३५	३	देवगतिके साथ नियमसे बँधनेवाली दश	जीवविपाकी दश
५३५	१५	११	१०
५३५	१७	१४४	११४
५३५	४१	'रभ्रदेव'	'स्वभ्रदेव'

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३६	१६	अमत्त्व प्रकृतियाँ	अपूर्वकरणमें असत्त्व प्रकृतियाँ
५३६	१९	२४	३४
५३६	२३	४०	४४
५४२	१४	जागुण-भविष्य	जागुण-भविष्य
५४६	४	पुण्य पाप	X
५५०	११	१००	१०
५५२	२८-२९	जमकित्तिणाम [अजसकित्तिणाम]	X
५६४	९	दसण चउ	दमण णव
५६४	११	णिरयाऊ तिरियाऊ	णिरय-तिरिय-मणुयाउ
५६४	२१	आवरणमताराए चउ पण	आवरणमताराए णव पण
५६४	२७	णिरियाउग मणुवगइमेव ।	तिरियाउग मणुवतिरिगइमेव ।
५६६	९	छक्केक्केक्केक्क	छेक्केक्केक्केक्क
५६६	३३	पज्जत्तेयसरीर	पत्तेयमरीर
५६७	१३	लोभ तिरिक्खगदि	लोभ[तिरिक्खाउग]तिरिक्खगदि
५६७	१९	इत्थीवेदाण	इत्थी-पुवेदाण
५६७	२६	जाव	X
५६७	२७	प्पहुडि	प्पहुडि जाव
५६७	३२	'पण मिच्छत्तम्म'	'पण' मिच्छत्तस्स
५७०	१८	कम्ममघ	कम्ममवघ
५७०	२५	साणण	मासण
५९१	३८	एदे	[भय दुगुछा च तेरसण्ह जोगाणमेक्कदर] एदे-
६००	१	छक्केक्क	छक्केक्क
६०२	२५	पज्जत्त	अपज्जत्त
६०३	१८	पज्जत्त	अपज्जत्त
६०५	१२	मिच्छादिट्ठी	सम्मामिच्छादिट्ठी
६०६	१६	९६।९२।६७।६७।	९६।९१।७०।७०।
६०६	२०	७४।७६।	६९।७०।
६०६	२७	देवेमु	देवीसु
६०७	२०	मिच्छादिट्ठी	सम्मामिच्छादिट्ठी
६०८	१५	मणुसाउग पक्खित्ते	मणुसाउग[तित्थियर] पक्खित्ते
६०८	१६	७१।	७२।
६१३	१२	उच्चागोदाण	णिच्चागोदाण
६१५	१९	य जहण-	अजहण-
६१५	२१	य जहण	अजहण
६१७	२८	[अमणि	[सणि
६२६	३२	णववीस-	अट्ठवीस-
६२८	१२	आहारक-	अणाहारक
६२८	१५	आहारक	अणाहारक
६२८	१८	आहारक-	अणाहारक-

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध
६३०	१५	तिहुयणसहिदो
६३७	१२	चउवीसं
६४४	५	अमाद
६४६	१	एगूणतीस
६४६	२	वाणउदि
६४६	४	एगूणतीस
६४६	७	एक्कतीस
६४६	३१	चत्तारि
६४७	३१	तिरियाउग संतं,
६४९	१०	हाससहियाओ
६४९	३५	सत्त उदयट्ठाणं ।
६४९	३६	चउवीस भंगो । एदाओ

शुद्ध
तिहुयणमहिदो
चउवीसं इगिवीसं
सादासादं
एगूणतीस तीस
वाणउदि णउदि
एगूणतीस तीस
तीस एक्कतीस
चत्तारिवंव, चत्तारि
तिरिय-तिरियाउगं मतं,
भयसहियाओ
अट्ट उदयट्ठाणं ।
चउवीस भंगो । एदाओ [सम्मत वज्ज दुगुछ
सहियाओ घेत्तूण अट्ट उदयट्ठाण । एदस्स तदिओ
चउवीस भंगो । एदाओ चैव भयरहियाओ पग-
ढीओ घेत्तूण सत्त उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को
चउवीस भंगो । एदाओ चैव पगढीओ दुगुछार-
हियभयसहियाओ घेत्तूण सत्त उदयट्ठाणं । एदस्स
विदिओ चउवीस भंगो ।] एदाओ

६५०	१०	अट्ट
६५०	१८	भय-दुगुछरहियाओ
६५५	२	सत्तावीस
६५६	८	वाणउदि णउदि अट्ठासीदि
६५६	९	चउरासीदि वासीदि एदाणि पच
६५६	१२	चत्तारि
६७६	२४	८।४।४
६७९	३२	७ ८५
६८०	२८	इष्टाना पुरा
६८४	१२	११। नूदमादिपु
६८४	१९	४२।७।।
६८४	२०	४३।।१०।१२।४३।।
६९३	३०	६ २ २ १ ०
७०१	१८	स्थिति. २। ६
७०३	३२	६४।
७०४	-६	देशसंयत्त.
७०९	१	सप्तकाल्य.
७११	१	सप्तकाल्यः

X
भयसहियाओ दुगुछरहियाओ
चउवीस
वाणउदि इक्काणउदि णउदि
एदाणि त्रीणि
पंच
७।४।४
७२
८५
अष्टाना पुरा
११।१०। नूदमादिपु
४२।५७।।
४३।४३।। १२।१२।।
६ १ १ १ ०
स्थिति. २। ७
६६।
देशसंयत्त.
सप्तकाल्यः
सप्तकाल्यः

पृ०	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७१२	२-६	२२ २१ वे० ७ ७ ७ ८ ८।८ ८।८ ९।९ ९ ९ १०	२२ २१ १७ वे० ७ ७ ७ ७ ८।८ ८।८ ८।८ ८।८ ९ ९ ९ ९
७१६	२९	२९।३०।३१	२९।३०।
७१७	२४	२९।३०।३१। सोद्योतोदये	२९।३०। सोद्योतोदये
७२२	९	उदये ११।	उदये २१।
७२५	२१	२६।२७।३०।	२६।२९।३०।
७२६	१८	च ४ ४ ४ ५ ९ ९	च ४ ४ ४ ५ ६ ६
७२६	२१	४१।११३।२५।	४२।११३।२५
७२६	२८	मिथ्यादृष्ट्यादिषु	मिथ्यादृष्ट्यादिषु
७२७	१३	तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती ।	तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती ४।
७२८	१८	९, ८।८, ७।७, ६।६, ६।	८।८, ८।७, ७।६, ७।६
७३४	१२	२६।२७।३०।३१।	२६।३०।३१।
७३४	१८	८२।८०।७९।७७। पुर्वेदे	८२।७९।७७। पुर्वेदे
७३४	२१	८२।८०।७९।७७।	८२।७९।७७।
७३५	८	चक्षुर्दर्शने वन्वा —	चक्षुर्दर्शने वन्वा ८—
७३५	८	उदये ८—२१।२५।२६।२८।२९।३०। ३१।१।	उदये ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। ३०।३१।
७३५	१२	पटसु	त्रिषु
७३६	१	उदया ६—२१।२६।२८।२९।३०।३१	उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९। ३०।३१।
७३६	२०	१ १ १ ० ० ० ० ०	१ १ १ ० ० ० १ ०
७३८	९	भागेषु २ ५	भागेषु २ ५८
७४०	२३	७५। तथौदारिकमिश्रे	७०। तथौदारिकमिश्रे
७४५	३०	मैतीस जीवसमाम	अष्टमीम जीवसमास
७४७	३६	अनुष्यानु०	मनुष्यानु०
७५१	२१	२२ ९० ५	२२ ९८ ५
७५१	२२	१७ १०७ १६	१७ १०३ १६
७५१	२८	ईशानकालकी	ईशान कल्पकी
७५१	३१	१०३ १ ८	१०३ १ ७
७५३	६	अविरत ७५	अविरत ७०
७५४	५	वन्ध १०५	वन्ध १०८

पृ०	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७५४	६	अबन्ध ३ ७ ३४ ३१ ४१ ४५ ४९	अबन्ध ३ १० ३७ ३४ ४४ ४८ ५२
७५४	७	बन्धव्यु० ४	बन्धव्यु० ७
७५४	२८	ब० व्यु० ९ ४ ६ ० ३६ ५ १६ १०	ब० व्यु० ९ ४ ६ ० ३६ ५ १६ ०

यह शुद्धिपत्र भी श्री० ब्र० प० रतनचन्द्रजी मुस्तारने ही तैयार करके भेजा है, इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं ।

—सम्पादक

